दैवज्ञ श्रीरामाचार्य विरचितः

मुहूर्तचिन्तामणिः

केदारदत्त जोशी



॥ श्रीः ॥

दैवज्ञानन्तसुतश्रीरामाचार्य-विरचितः

मुहूर्तचिन्तामणिः

श्रीमद्गोविन्द-विरचित पीयूषधारा संस्कृत टीका

तथा

पीताम्बरा हिन्दी-व्याख्या एवं भूमिका सहित

व्याख्याकार

केदारदत्त जोशी

प्रथम संस्करण : वाराणसी, १९७२
द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण : वाराणसी, १९७९
पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १९८३, १९८८, १९९२, १९९५

मूल्य : रु० १९८ (सजिल्द)
रु० १७५ (अजिल्द)

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड,
दिल्ली ११० ००७ द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस,
ए-४५ नारायणा, फेज़-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

॥ श्रीः ॥

शुभ मुहूर्तोऽस्तु

"म"नो दोषादि दूरत्वात् "हे" तुवादादिवर्जनात् ।
"श्वा"दिप्राणिषु सादृश्याद् "र"म्यत्वाच्च "महेश्वरः" ॥ १ ॥
"की"टादि ब्रह्मपर्यन्ता "ना"ना राशि समुद्भवाः ।
"रा"मेति नाम स्मरणात् "म"ङ्गलं के न प्रापिता॥ २ ॥

शुभ समय

त्रिस्कन्ध ज्योतिष (१) सिद्धान्त, (२) संहिता (३) होरा) में मुहूर्त ज्यौतिष का स्थान संहिता स्कन्ध में आता है। होरा-स्कन्ध की, संहिता-स्कन्ध के अनेक प्रकरणों से समता होने से मुहूर्त-ज्यौतिष, संहिता और होरा स्कन्ध से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। संहिता और होरा स्कन्ध ज्यौतिष के महान् स्कन्ध तो हैं ही, तो भी इन दोनों शाखाओं का मूल स्रोत ग्रहगणित स्कन्ध या ग्रहसिद्धान्त स्कन्ध ही कहा जावेगा। या ज्यौतिष कल्पवृक्ष का मूल ग्रह-गणित ज्यौतिष है जो खगोलविद्या से ज्ञात होता है। अङ्कगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रैकोणमितिक गणित, ग्रहगोलीयरेखागणितादि अनेक उपकरण गणितों से इस सौरमण्डल की गतिविधि समझ कर, उनसे किसी भी अभीष्ट समय के क्षितिज-क्रान्ति वृत्त-सम्पातरूप लग्नविन्दु के ज्ञान से विश्व का, विश्व के जीवों का और विशेषकर मानव सृष्टि मे उत्पन्न जातकों के शुभाशुभ भविष्यज्ञान की भूमिका उत्पन्न होती है। इसी आधार पर ज्यौतिषशास्त्र के अमृत फल, जिसका नाम आदेश या आदेश-शास्त्र या फलादेश शास्त्र है, उसकी रचना के कार्यक्रम मे बुद्धि स्वतः प्रयत्नशील हो जाती है। इस प्रकार भविष्य फलादेश की अनेक पद्धतियाँ अनेक भेदों में आजतक उत्तरोत्तर उपलब्ध होती जा रही हैं। जैसे—

(१) जातक ज्यौतिष, (२) संहिता ज्यौतिष, (३) प्रश्न ज्यौतिष, (४) नष्ट जातक, (५) पञ्चाङ्ग ज्यौतिष, (६) मुहूर्त, (७)स्वप्न, (८) स्वर, (६) शाकुन, (१०) अंगदर्शन, (११) वास्तुविद्या, (१२) वृष्टि विचार, (१३) ओषधियों के प्रभाव, (१४) मनो-विज्ञान, (१५) सामुद्रिक, (१६) इष्ट सिद्धि से वाक्सिद्धि, (१७) मन्त्र-तन्त्र प्रयोग, (१८) भूतसाधनविद्या, (१९) समर्घ महर्घ, (२०) दूरानुभूति (टेलीपैथी, टेलीपिन्टर, टेलीविजन, टेलीफोन, टेलीग्राफ आदि आधुनिक प्रयोग) (२१) बिना सोचे समझे अकस्मात् किसी अपठित के मुख से भी भविष्यज्ञान विषयक वाक्यों का उच्चारण जो कालान्तर में सही होते देखे गए हैं और पशुपक्षियों की बोली (काक भाषा) व उनके दर्शन आदि से भविष्यज्ञान इत्यादि। इनके अतिरिक्त और भी विषय फलित ज्यौतिष से सम्बन्धित होते देखे जाते हैं।

प्रकृत में ज्यौतिष के मुहूर्त विषय पर कुछ कहना आवश्यक है। मानव जीवन से उसकी मृत्यु तक के समग्र जीवनोपयोग की विभिन्न समस्याओं के अनुकूल व प्रतिकूल समयों

प्रथम संस्करण : वाराणसी, १९७२
द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण : वाराणसी, १९७९
पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १९८३, १९८८, १९९२, १९९५

मूल्य : रु० १९८ (सजिल्द)
रु० १७५ (अजिल्द)

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड,
दिल्ली ११० ००७ द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस,
ए-४५ नारायणा, फेज़-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

॥ श्रीः ॥

शुभ मुहूर्तोऽस्तु

"म"नो दोषादि दूरत्वात् "हे" तुवादादिवर्जनात् ।
"श्वा"दिप्राणिषु सादृश्याद् "र"म्यत्वाच्च "महेश्वरः" ॥ १ ॥
"की"टादि ब्रह्मपर्यन्ता "ना"ना राशि समुद्भवाः ।
"रा"मेति नाम स्मरणात् "म"ङ्गलं के न प्रापिता॥ २ ॥

शुभ समय

त्रिस्कन्ध ज्यौतिष (१) सिद्धान्त, (२) संहिता (३) होरा) में मुहूर्त ज्यौतिष का स्थान संहिता स्कन्ध में आता है। होरा-स्कन्ध की, संहिता-स्कन्ध के अनेक प्रकरणों से समता होने से मुहूर्त-ज्यौतिष, संहिता और होरा स्कन्ध से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। संहिता और होरा स्कन्ध ज्यौतिष के महान् स्कन्ध तो हैं ही, तो भी इन दोनों शाखाओं का मूल स्रोत ग्रहगणित स्कन्ध या ग्रहसिद्धान्त स्कन्ध ही कहा जावेगा। या ज्यौतिष कल्पवृक्ष का मूल ग्रह-गणित ज्यौतिष है जो खगोलविद्या से ज्ञात होता है। अङ्कगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रैकोणमितिक गणित, ग्रहगोलीयरेखागणितादि अनेक उपकरण गणितों से इस सौरमण्डल की गतिविधि समझ कर, उनसे किसी भी अभीष्ट समय के क्षितिज-क्रान्ति वृत्त-सम्पातरूप लग्नविन्दु के ज्ञान से विश्व का, विश्व के जीवों का और विशेषकर मानव सृष्टि मे उत्पन्न जातकों के शुभाशुभ भविष्यज्ञान की भूमिका उत्पन्न होती है। इसी आधार पर ज्यौतिषशास्त्र के अमृत फल, जिसका नाम आदेश या आदेश-शास्त्र या फलादेश शास्त्र है, उसकी रचना के कार्यक्रम मे बुद्धि स्वतः प्रयत्नशील हो जाती है। इस प्रकार भविष्य फलादेश की अनेक पद्धतियाँ अनेक भेदों में आजतक उत्तरोत्तर उपलब्ध होती जा रही हैं। जैसे—

(१) जातक ज्यौतिष, (२) संहिता ज्यौतिष, (३) प्रश्न ज्यौतिष, (४) नष्ट जातक, (५) पञ्चाङ्ग ज्यौतिष, (६) मुहूर्त, (७) स्वप्न, (८) स्वर, (९) शाकुन, (१०) अंगदर्शन, (११) वास्तुविद्या, (१२) वृष्टि विचार, (१३) ओषधियों के प्रभाव, (१४) मनो-विज्ञान, (१५) सामुद्रिक, (१६) इष्ट सिद्धि से वाक्सिद्धि, (१७) मन्त्र-तन्त्र प्रयोग, (१८) भूतसाधनविद्या, (१९) समर्घ महर्घ, (२०) दूरानुभूति (टेलीपैथी, टेलीपिन्टर, टेलीविजन, टेलीफोन, टेलीग्राफ आदि आधुनिक प्रयोग) (२१) बिना सोचे समझे अकस्मात् किसी अपठित के मुख से भी भविष्यज्ञान विषयक वाक्यों का उच्चारण जो कालान्तर में सही होते देखे गए हैं और पशुपक्षियों की बोली (काक भाषा) व उनके दर्शन आदि से भविष्यज्ञान इत्यादि। इनके अतिरिक्त और भी विषय फलित ज्यौतिष से सम्बन्धित होते देखे जाते हैं।

प्रकृत में ज्यौतिष के मुहूर्त विषय पर कुछ कहना आवश्यक है। मानव जीवन से उसकी मृत्यु तक के समग्र जीवनोपयोग की विभिन्न समस्याओं के अनुकूल व प्रतिकूल समयों

को जान कर प्रतिकूल वातावरण से मानव को बचाया जाना और अनुकूल वातावरण से मानव मात्र के अभ्युदय का समय जानना, यह मुहूर्त ज्योतिष का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य हो जाता है। इसी प्रकार राज्यसञ्चालन के शुभ समयों की तालिका के ज्ञान के साथ-साथ समाज के विभिन्न उद्योग-धन्धों के प्रारम्भिक शुभ मुहूर्तों की गवेषणा भी मुहूर्त ज्योतिष द्वारा ही हो सकती है। अतः ज्योतिष के संहिता शाखा के निर्माण के अनन्तर संहिताओं में उपलब्ध सूत्र रूप के मुहूर्त विषयों के विस्तृत-विवेचन का कार्य मुहूर्त ज्योतिष ग्रन्थों में प्रारम्भ कर दिया गया। तदनुसार कालान्तर में मुहूर्त ज्योतिष ने मुहूर्तसर्वस्व, मुहूर्त कल्पद्रुम, मुहूर्तदीपक, मुहूर्त-मार्तण्ड, मुहूर्तभास्कर, मुहूर्तमञ्जरी, मुहूर्तसंग्रह, विवाह वृन्दावन, विवाह पटल, रत्नमाला, मुहूर्तचिन्तामणि प्रभृति अनेक ग्रन्थों की रचना-परम्परा आजतक अक्षुण्ण है। इस प्रकार उप-लब्ध सभी मुहूर्त ग्रन्थों में विशेष विषयों की विस्तृत विवेचना मिलती है। सभी ग्रंथ पूर्ण हैं, तथापि यह कहना पड़ेगा कि उक्त ग्रन्थों में मुहूर्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ के प्रणेता आचार्य श्रीराम ने इसके निर्माण में अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने "संक्षिप्त-सारार्थविलासगर्भम्" की अपनी उक्ति को चरितार्थ किया। इसीलिये ज्योतिष शास्त्र के इस ग्रन्थ के आज भी पूरे भारतवर्ष में सर्वत्र अध्ययनाध्यापन के साथ इसी के अनुसार जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, अक्षरारम्भ, विद्यारम्भ, उपनयन (जनेऊ), विवाह, यात्रा, गृहनिर्माण, गृहप्रवेश, अग्न्याधान, कृषि, वाणिज्य, शस्त्रनिर्माण, युद्धारम्भ, राज्याभिषेक, विष-अग्नि प्रयोग, राजाओं में परस्पर सन्धि, व्यापार क्रय-विक्रय और संन्यास ग्रहण तक के अनेक शुभ मुहूर्तों की व्यवस्था सभी को सुलभ होती देखी जाती है।

मुहूर्तचिन्तामणि के रचयिता श्रीरामदैवज्ञ ने अकबर बादशाह के कृपापात्र जयपुराधि-पति श्री रामनृपति के सन्तोष के लिए, श्री रामनृपति की ही आज्ञा से १७ श्लोकों में (तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण—) पञ्चाङ्ग साधन सारिणी सहित रामविनोद नामक करण ग्रन्थ की रचना की थी। अकबर बादशाह की राज्यप्राप्ति का समय शक १४७७ (ई० सन् १५५५) है। जयपुर आदि (राजस्थान) में आज भी उक्त सारिणी से पञ्चाङ्गों का निर्माण होता देखा जा रहा है। जैसे रामविनोद नामक करण ग्रन्थ से स्पष्ट है—

"गणपतिमभिवन्द्य श्रीशपादारविन्द–स्मरणविदित तत्त्वोऽनन्तजो रामचन्द्रः।
अकबरनृपशाकादुक्तिपञ्चाङ्गपत्रम् ग्रहगतिसमवेतं रामभूपाल तुष्ट्यै॥"

तदुपरि समीप काल में श्री रामदैवज्ञ के भ्रातुष्पुत्र, 'ताजिकनीलकण्ठी' के प्रणेता, आचार्य नीलकण्ठ के सुपुत्र श्रीगोविन्द दैवज्ञ ने शके १५२५ (ई० १६०३) में इसी वाराणसी में उक्त मुहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थ की पीयूषधारा नाम की सुविशद टीका प्रस्तुत की है। श्री-गोविन्द दैवज्ञ का जन्म शके १४९१ (ई० १५६९) अश्विन शुक्ल सप्तमी रविवार पुनर्वसु नक्षत्र में हुआ था। मुहूर्त ग्रन्थों में मुहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थ जिस प्रकार शीर्षस्थ है, निःसन्देह उसी प्रकार उसी के अनुरूप इसकी पीयूषधारा व्याख्यान का भी स्थान है। इसके अध्ययन-रूपी ज्ञानसागर की लहरों से मस्तिष्क को पोषण मिलता है, कल्पनाशक्ति बढ़ती है, नित्य

नूतन गवेषणाओं से शास्त्र की परम्परा सुदृढ़ होती जाती है। मैं तो पीयूषधारा के अध्ययन से ही पीयूष रसपान की अनुभूति अपने में समझता हूँ। पीयूषधारा नामकरण पूर्णत: अन्वर्थ है। इसका ठीक-ठीक अनुभव उस शिष्य को होगा जो गुरु मुख से इस ग्रन्थ का अध्ययन करेगा।

"पीयूषधारा" में श्रुति-स्मृति और पुराणों के साथ-साथ न्याय, व्याकरण, मीमांसा, धर्मशास्त्र और ज्योतिष शास्त्र के विशेष वैदुष्य की सर्वतोमुखी समन्वयवादिता अत्यन्त स्पष्ट है।

अपनी सारी श्रेष्ठता के बावजूद दैवात् तथाऽयनांशाः खरसाहता स्युः" इत्यादि (सङ्क्रान्ति प्रकरण श्लो. ९) पद्य के व्याख्यान के अवसर पर पीयूषकार को गणितस्कन्ध के गोलिकज्ञान में (अयनांश) कुछ भ्रम सा हो गया था। ऐसा लगता है। यद्यपि यह विषय आजतक भी प्राचीन भारतीय ज्योतिर्विदों के लिये संशयोत्पादक ही बना है। गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की परिपुष्टि हो जाने से आधुनिक ग्रहगणितज्ञ उक्त भ्रम से अत्यन्त दूर होकर ग्रहगणित की सही दिशा में आए दिन उत्तरोत्तर वर्धमान—ग्रहगणित के अति अद्भुत चमत्कार से विश्व को आश्चर्य चकित कर चुके हैं। जैसे चन्द्र धरातल में मानव के पदार्पण के साथ-साथ शुक्र-मंगल प्रभृति ग्रहपिण्डों की स्थानीय स्थितियों के समझने की दिशा में भी आधुनिक खगोलज्ञ निरन्तर प्रयत्नशील हैं। बुद्धि की सीमा नहीं आंकी जा सकती अत: आधुनिक ब्रह्मर्षि खगोलज्ञों की स्तुति तो करनी ही पड़ेगी। तथापि प्राचीन भारतीय ब्रह्मर्षि ज्योतिर्विदों की देन भी इस प्रसंग में भुलाई नहीं जा सकती। [देखिये अपोलो ११ के प्रसंग में चन्द्रमा पर भारतीय ग्रहगणितज्ञों की गवेषणा ले० केदारदत्तजोशी दैनिक आज, जुलाई ७—१९६९, आग्रहायण जून, १९६९, ज्योतिष मार्तण्ड जयपुर जून १९६९]।

अत: प्रत्येक शास्त्र के विद्वानों ने ज्यौतिषशास्त्र के इस ग्रन्थ का सर्वाधिक समादर किया है।

पीयूषधारा टीका के साथ-साथ इस ग्रन्थ के आमूलचूड अध्ययन से मेरा दृढ़ विश्वास है कि परिश्रमी और अध्ययनशील छात्र (शिष्य) भारतीय फलित-ज्योतिष जगत में तो सुयोग्य वैदुष्य की प्राप्ति से वह अवश्य ख्याति प्राप्त करेगा।

पीयूषधारा ग्रन्थ में अनेकों प्राचीन ग्रन्थों के वचनों के उद्धरणों के साथ अनेकों प्राचीन ज्योतिषाचार्यों के अनुभूत प्रमाण वचनों का सप्रमाण उल्लेख है। संक्षेप से ये ग्रन्थ तथा आचार्य हैं—रत्नसार, समरसार, टोडरानन्द, महेश्वर, व्यवहार तत्त्व, भुजबल, गर्ग, वसिष्ठ, भारद्वाज, चण्डेश्वर, च्यवन, यम, वराह, श्रीपति, राजमार्तण्ड, भास्कराचार्य, वराह, उत्पल, भामह, व्यवहारोच्चय, नारद, गुरु, अत्रि, गरुड, मत्स्य, दीपिका, भागुरि, डामर, श्रुतकीर्ति, रत्नमाला, काश्यप, दुर्गादित्य, वृद्ध नारद, कालिदास, अमरसिंह, अच्युत भट्ट, दैवज्ञमनोहर, हेमाद्रि, महाभाष्य, षट्त्रिंशन्मत, विष्णु, शातातप, लिङ्ग, कूर्म, स्कन्द' शिवरहस्य, विश्वरूप, निर्णय, मार्कण्डेय, व्यास, वाल्मीकि, भीमपराक्रम, सुमन्तु, और साङ्ख्यप्रकाश प्रभृति ख्यातनाम अनेकों आदिके।

इस प्रकार अनेक शास्त्रों शास्त्रकारों और निबन्धों के वचन उक्त पीयूषधारा में

सम्यगुपलब्ध होते हैं। जो ग्रन्थकर्त्ता के व्यापक पाण्डित्य के साथ सर्वतोमुखी असाधारण प्रतिभा के सूचक हैं।

अतः उक्त विशेष महत्त्व के मूल ग्रन्थ के साथ-साथ इसकी "पीयूषधारा" टीका तो स्वतः एक गहन ग्रन्थ हो जाती है। प्रायः देखा जाता है कि मूलग्रन्थ रचयिता आचार्यों के ग्रन्थों के व्याख्याकार आचार्यों की सविशेष प्रतिभाएँ पाठकों को आह्लादित सी कर देती हैं। अतः मूल ग्रन्थ के अध्ययन के साथ व्याख्याकारों के व्याख्यान का भी अध्ययन गुरु मुख से यदि हो सके तो स्वर्णे सुगन्धः (सोने में सुगन्ध) की उक्ति चरितार्थ हो जाती है। तिसपर भी उक्त ग्रन्थ, व इसकी पीयूषधारा संस्कृत व्याख्या की पीताम्बरा हिन्दी व्याख्या से स्वतः ग्रन्थ के जटिल से जटिल स्थल विषयों को समझने में सहृदय पाठकों को अच्छी सहायता मिलेगी" इस अभिप्राय से पीताम्बरा व्याख्यान को सर्व सरल करने की यथाशक्ति चेष्टा की गई है। आजतक मूल ग्रन्थ और पीयूषधारा दोनों का ज्ञान प्राचीन राष्ट्रभाषा संस्कृत वाङ्मय से जनता को प्राप्त हो रहा है। किन्तु अब संस्कृत भाषा की सुपुत्री हिन्दी-भाषा राष्ट्रभाषा हो चुकी है। चिरकाल से मैं दोनों ग्रन्थों (मुहूर्तचिन्तामणि और उसकी पीयूषधारा) का ज्ञान हिन्दी भाषा के माध्यम से सर्वत्र पहुँचाना आवश्यक समझता था। यतः उक्त मुहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थ की हिन्दी माध्यम की अनेक टीकाएँ आजतक पर्याप्त मात्रा में सर्वत्र उपलब्ध हैं। जिनमें पीयूषधारा के आशयों की चर्चा नहीं है। संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशन के प्रेमी भारतीय संस्कृति के उपासक श्रीमान् सुन्दरलाल जी जैन, अध्यक्ष मोतीलाल बनारसीदास जी ने ऐसे समय में उक्त भाँति का पीताम्बरा व्याख्यान लिखने का मुझसे अनुरोध किया जबकि मैं अत्यन्त रोगग्रस्त से सन्तप्त और गम्भीर शोक में था, ऐसी स्थिति में इस पीताम्बरा टीका की रचना घोर शोक को शास्त्र चिन्तन द्वारा भुलाने के प्रसंग में की गयी। डेढ़ वर्ष के भीतर ही दुर्दैव से, सुयोग्य, चरित्रवान, श्रौत-स्मार्त कर्मानुष्ठानरत तपस्वी ज्योतिर्विद अपने दो अग्रजों (१) श्री० पं० नेत्रवल्लभ, (२) श्री पं० पीताम्बर और (३) तीसरे भाई पितृव्य पुत्र (अनुज) श्री० पं० घनानन्द के असामयिक निधन से रोग से मेरा दुर्बल हृदय और भी दुर्बल हो गया, उक्त भ्रातृवर्ग वियोग से मैं अत्यन्त दुखी हो गया। मेरे कूर्माद्रि अल्मोड़ा मण्डल के जुनायल ग्राम के समीप की सम्बन्धित जनता के धार्मिक व ज्योतिष में मार्गनिर्देशक के लिए भाइयों के निधन से मेरी वंश परम्परा तो लुप्तप्राय सी हो गई आसपास में अन्यत्र यहाँ विद्वानों का अभाव-सा हो गया। जब सन्तप्त मन होकर किंकर्तव्य विमूढ़ की स्थिति मे मैं था, उसी समय में उक्त संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशन के प्रेमी श्रीमान् मोतीलाल बनारसीदास के वाराणसी शाखा के श्री नरेन्द्रकुमार जैन ने मुझसे उक्त ग्रन्थ का सुन्दर हिन्दी व्याख्यान करने का अनुरोध किया, सन्तप्त चित्त को बहलाने का विद्वदुचित मार्ग जानकर मैं इसमें संलग्न हो गया। व्यसन मे ज्ञान रूप हरि का स्मरण दुःखसागर के सन्तरण के लिए नौका के समान होता है, मुझे इस कार्य में लगने के पश्चात् जो अनुभूति हुई, और जिस प्रकार मेरे हृदय का दुःखान्धकार, ज्ञानसूर्य के अपनाने से छिन्न-भिन्न हुआ, उसे मैं शब्दों में अंकित नहीं कर पा रहा हूँ।

मुहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थ की प्रकृत पीताम्बरा व्याख्या लिखने में जो स्वाभाविक रुचि रही है, उसकी उत्पत्ति का महत्त्वपूर्ण कारण है। ज्योतिर्विदों एवं शास्त्रानुरागी समाज में इसकी लोकप्रियता स्वतः सिद्ध हो गई है और हो रही है। फलतः सन् १९.. का प्रथम

संस्करण शीघ्र समाप्त हो गया और १९७९ में द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया गया तथा अब तीसरा संस्करण पाठकों के सामने आ रहा है। तृतीय संस्करण की भूमिका में भी आवश्यक संशोधन पाठकों के सामने निवेदन रूप में उपस्थित कर रहा हूँ इसलिए जीवन के अन्तिम चरण में अवस्था जा रही है। अतः स्वयं अपना स्वल्प परिचय दे देने की धृष्टता-सी यदि हुई तो पाठक क्षमा ही करेंगे।

प्रथमतः ८…१० पीढ़ी पूर्व से फलित ज्यौतिष विद्या के साथ वैदिक कर्मकाण्ड, तन्त्र विद्याओं का सदुपयोग एवं शक्ति उपासना की विधि मुझे कुल परम्परा से ही प्राप्त रही है। मेरी उक्त वंशपम्परा कूर्माचल (कुमायूँ) में ख्यात नाम रही है। ज्योतिर्विद्या में विशेष ज्ञाता होने से मेरी कुल परम्परा कूर्माचलीय ब्राह्मण-समाज में स्वनाम धन्य रही है। वंशपरम्परा से उपलब्ध फलित ज्यौतिष के ज्ञान एवं काशी में खगोल विद्या के यथेष्ट अध्ययन के कारण ज्यौतिष शास्त्र के मर्म को समझने की मेरी स्वाभाविक उत्सुकता थी। कुछ मौलिक ग्रन्थों के साथ मैंने श्रीमद्भास्कराचार्य के ग्रहगोल गणित के विश्वविख्यात ग्रन्थ 'सिद्धान्त शिरोमणि की व्याख्या लिखी। उक्त ग्रन्थ केन्द्रीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्रव्य से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से मुझे विद्वत् समाज में, विशेषतः खगोलज्ञ ज्योतिर्विदों के समाज में प्रतिष्ठा भी मिली। शोधपूर्ण ग्रहगणित ग्रन्थों का प्रकाशन अधिक व्ययसाध्य है। अपनी लघु आर्थिक स्थिति के कारण व्ययभार का वहन करना कठिन होता है। भारत में फलित ज्यौतिष के ज्ञाताओं का बाहुल्य होने से कोई संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशक ग्रहगणित सम्बन्धी ग्रन्थों के प्रकाशन में अरुचि दर्शाता है। ग्रहगणित खगोल के वरिष्ठ विद्वानों का १८-१९ वीं शताब्दी के उपरान्त अभाव सा हो गया है। ऐसा क्यों हुआ होगा ? पाठकों के लिए विचारणीय है।

संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास के अनुरोध से मेरे द्वारा लिखी गयी इस 'मुहूर्तचिन्तामणि' की 'पीताम्बरा' व्याख्या जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपयोगिनी प्रतीत हुई। उसके बाद पुनः मुझसे बार-बार अनुरोध होने लगा कि नीलकण्ठी की टीका भी लिखूँ। संवत २०३६, सन १९७९ में जो हरिनेत्र वल्लभा व्याख्यान के साथ प्रकाशित भी हो गई है।

वंश परम्परा से नीलकण्ठी ग्रन्थ का यथोचित ज्ञान का संस्कार बाल्याकाल से ही बुद्धिस्थ रहा है। नीलकण्ठी ग्रन्थ के प्रत्येक प्रकरण के अन्त में स्वयं आचार्य ने लिखा है—

"श्री गर्गान्वयभूषणं गणितविच्चिन्तामणिस्तत्सुतो
अनन्तोऽनन्तमतिः, व्यधात्खलमतिध्वस्त्यै जनुः पद्धतिम्
तत्सूनुः खलु नीलकण्ठविबुधो विद्वच्छिवानुज्ञया।
सत्तुष्टयै व्यदधाद्ग्रहप्रकरणं संज्ञाविवेकेऽलम्" इति

पढ़ाते समय पिताजी श्रुतपरम्परा का उल्लेख करते हुए कहते थे कि हमारी ही दाक्षिणात्य ब्राह्मण परम्परा में जो इस समय कुमायूं में है, उक्त आचार्य उत्पन्न हुए थे। हमारे पूर्वज सर्वप्रथम दक्षिण से सांस्कृतिक एवं वैदिक परम्परा के साथ चन्दराजाओं से सम्मानित होते हुए कूर्माचल में आकर यहीं कर्मसार कर्मसाक्ष्य पटी के अपभ्रंश कमस्यार के धुरपटा में वर्तमान शानीउड्यार के समीप में ऋषिवदाचरण करते हुए रहने लगे थे। धुरपटा नामक

तपोभूमि जो आज ग्राम का रूप है, चीड़ के वृक्षों से सुशोभित सुरम्य स्थान में स्थित है। इसी के निकट समीप में—

"ज्वाला करालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोस्तुते" ॥

मारकण्डेय पुराणोक्त जगज्जननी जगदम्बा की सिद्ध एवं अत्यन्त उग्र पीठ श्रीभद्रकाली की अद्भुत प्राकृतिक गुफा है। कूर्माचलीय भक्त समाज के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत के शैव, शाक्त भक्तगण प्रतिवर्ष यहाँ आया करते हैं। श्री भद्रकाली जो हमारी कुलदेवी कही जाती हैं। सिद्धपीठ भद्रकाली की महिमा लिखने में लेखनी अवरुद्ध हो रही है। शाक्ततन्त्र में लिखित 'गुह्याद्गुह्यगोप्त्री त्वं" उक्ति से इस दर्शन के प्रत्यक्ष चमत्कारों का व्याख्यान इतना ही अलम् करना समीचीन होगा। इतना अवधेय है कि हमारे ऋषिकल्प पूर्वजों के आचार-विचार-तपस्या एवं अद्भुत चमत्कारिक ज्ञान गरिमा का कूर्माचल के राजवंश एवं प्रजा पर सर्वत्र प्रभाव पड़ने लगा। भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण पन्तों के पूर्वज (रेखाड़ी), पराशर गोत्रीय पन्तों के पूर्वज (कुट्यूड़ा) तथा गर्गगोत्रीय ज्योतिर्विद् हमारे पूर्वज दक्षिण से सम्मान एकीभूय आकर उक्त तीन सुरम्य स्थानों (वर्तमान अल्मोड़ा जिले की कर्मसार पट्टी), जो मेरी जन्मभूमि जुनायल (दुग) से ३-४ मील के अन्तर में स्थित है, में बस गये। अपने ज्ञान एवं सदाचार के द्वारा कूर्माचल की गुणग्राही जनता से हमारे पूर्वजों को जुनायल ग्राम के प्राचीन ब्राह्मणों से सम्मान मिला, वैदिकविद्याओं को ग्रहण करने के उद्देश्य से धुरपुटा से सम्मानपूर्वक एक बड़ी भूमि देकर हमें जुनायल की रमणीय धरती पर बसाया गया। आज तक आभारी हैं हम जुनायल के प्राचीन भूमिदाता उन ब्राह्मणों के। यह पवित्र स्थल इस लेखनी का जन्मस्थान है। जुनायल के आस-पास तथा सुदूर चतुर्दिक् की जनता में ज्यौतिष विद्या एवं कर्मकाण्ड के क्षेत्र में आज तक इस वंशपरम्परा को सम्मान प्राप्त हुआ है।

हमारे पूर्वजों की एक शाखा, श्री सरयू गङ्गा, तीरस्थ वागीश्वर (बागेश्वर) और वेणीनाग के मध्य स्थित शाडिल्य ऋषि की तपोभूमि शानीउडचार नामक (अपभ्रंश शाण्डिल्य गुफा) सुरम्य स्थान धुरपटा ग्राम से माता भद्रकाली पीठ के निकट भेटा, पैठाण और देवल ग्रामों में आजतक अपनी ज्ञानगरिमा से विभूषित है। भारद्वाज पन्त और पारशर पन्तों की वैदिक परम्परा कूर्माचल में संस्कृति के साथ ससम्मान आजभी अक्षुण्ण है।

कूमाऊँ का एक वृहत् भूखण्ड सरयू एवं पूर्वस्थ रामगङ्गा के मध्य में गंगौली नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ काश्यप गोत्रीय पाठक वंशीय ब्राह्मण परम्परा, दशौली गाँव में विख्यात है।

इसी पाठक वंश परम्परा में मेरा मातुल कुल होने से पूज्य मातुल एवं पूज्या माता के मुख की श्रुतपरम्परा के अनुसार प्रत्यक्ष दर्शनीय दशौली को शास्त्रीयविचार का दशम स्थान माना जाता है। 'धर्मशीला' नामक पावन स्थल इसी गाँव के मध्य में स्थित हैं जहाँ प्राचीन-काल में विद्वद्गण धर्मशास्त्रीय समस्याओं पर एकीभूय विचार किया करते थे। पुराण प्रथित स्वर्णाचलपर्वत जिसकी कालीनाग देव का स्थान कूर्माचल में कालिनाग शिखर नाम से प्रसिद्धि है, दशौली (धर्मशिला) से ७ मील के अन्तर में स्थित है। ज्ञातव्य है कि कालीदहन के बाद भगवान् कृष्ण ने कालीनाग को इसी पर्वत शिखर में रहने के लिए स्थान दिया था। आज भी इस शिखर के ऊपर गृद्धों का विचरण नहीं दिखाई देता, जिससे पौराणिक कथन की

ध्रुवसत्यता सिद्ध होती है। दशौली से उक्त शिखर गमन हेतु, मार्ग के मध्य में 'सभाशिला' नामक एक विशाल पावन प्रस्तरखण्ड है, जहाँ प्राचीन काल में शास्त्रीय विषयों पर शास्त्रार्थ होता था।

इस प्रकार उत्तर और दक्षिण के दशविध भारतीय ब्राह्मणों की परम्परा कूर्माचल में ससम्मान अपने वैदुष्य से एवं तपोबल से प्रायः चन्द्रराज्य कालों में पहुँच चुकी थी। सर्वप्रथम आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित ज्योतिष्पीठ, (जोशीमठ) बदरिकाश्रम से कौन नहीं परिचित है ? श्रुत परम्परा से इस श्री शङ्कराचार्य सम्प्रदाय के साथ वशिष्ठगोत्रीय पन्त भी ससम्मान कुमाऊँ में पहुंचे थे, जिन्हे जोशीमठ से दृश्य अल्मोड़े की उपराजधानी रानीखेत व समीपस्थ कुड़कोली आदिक ग्रामों में बसाया गया।

पञ्चविध दाक्षिणात्य ब्राह्मणों में श्रौतस्मार्त कर्मानुष्ठानरत आचार्य रूप में एकविध कर्णाटक ब्राह्मण, दाक्षिणात्य ब्राह्मणों के साथ आज भी कुमाऊँ में अपने कर्मकाण्ड के वैदुष्य से प्रसिद्धिगत हुआ है। कुमाऊँ का कर्णाटक ब्राह्मण वंश आज भी परम पुनीत वैदिक संस्कृति को किसी प्रकार कुमाऊँ में सुरक्षित एवं विकसित किए हुए हैं।

गर्गाचार्य का नाम पौराणिक ज्योतिर्विदों में जैसे सविशेष उल्लेख्य है तदनुसार प्रकृत की गर्ग गोत्रीय अनन्त दैवज्ञ सुत श्री राम दैवज्ञ प्रणीत मुहूर्तचिन्तामणि के तथा तस्य भ्रातुष्पुत्र श्री नीलकण्ठाचार्य विरचित नीलकण्ठी ग्रन्थ का गणित एवं फलादेश मेरे स्वर्गीय पूज्य पिताजी श्री पं० हरिदत्त जोशी (ज्योतिर्विद्) तक को कण्ठगत था। ८वें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार के अनन्तर पिता जी से प्राप्त वही संस्कार इस लेखनी के लेखक में आज तक यथा श्रुत उपलब्ध है। मुहूर्तचिन्तामणि एवं नीलकण्ठी-दोनों ग्रन्थों का ज्यौतिष जगत् में यत्र-तत्र सर्वत्र व्यवहार होने से मैं भी श्रद्धा के साथ इन ग्रन्थों की व्याख्या में मैं प्रवृत्त हुआ। मेरे पूर्वाग्रज स्व० श्री० पं० पीताम्बर में मेरे वंश के वैदिक कर्मकाण्ड ज्यौतिष के सभी संस्कार उपस्थित थे। अतः मैंने ज्येष्ठ भ्राता श्री पीताम्बर जी की चिरस्थायी स्मृति के लिए इस व्याख्या का नामकरण पीताम्बरा किया है।

जातकों में बृहज्जातक, मुहूर्त्त ग्रन्थों मे मुहूर्त्त चिन्तामणि और ताजिक शास्त्रों में नीलकण्ठी, इन तीन ग्रन्थों के सम्यक् अध्ययन से किसी भी दैवज्ञ को फलित ज्यौतिष के ग्रन्थों का ज्ञान सरलता से हो जाता है। ये तीनों ग्रन्थ भारतीय ब्राह्मण ज्यौतिषियों के घर में उपस्थित रहते हैं, तथा फलितज्ञों को कण्ठगत भी रहते हैं।

१. बृहज्जातक—जन्म से मृत्यु तक के भविष्य का इतिवृत्त, बृहज्जातक ग्रन्थ से ज्ञात किया जाता है। त्रिस्कन्ध ज्योतिर्विद् आचार्य वाराहमिहिर (शक्वर्ष ४२१) ने तो जिन व्यक्तियों की जन्मपत्रियां नहीं बनी है एवं जिनका जन्मेष्ट, वर्ष, ऋतु, मास, और तिथि, वार, नक्षत्र तक भी ज्ञात नहीं हैं, उनके लिए उनसे पूछे गये प्रश्न समय को इष्ट मानकर, इस इष्ट वश नष्टजातक को स्पष्ट जातक बनाकर शुभाशुभ भविष्य ज्ञान का तरीका तक बता दिया है। आजन्म मृत्यु पर्यन्त उपनयन, विवाहादिक संस्कारों के अतिरिक्त व्यवहार जगत् के नाना प्रकार के कार्यों के शुभाशुभ का भविष्यज्ञान भी उक्त मार्ग से सम्भव है।

२. मुहूर्त्तचिन्तामणि—मुहूर्तचिन्तामणि प्रणेता आचार्य श्री राम ने १३ प्रकरणों से ग्रन्थ की रचना की है। तेरह प्रकरणों का नाम निम्न भाँति हैं—१. शुभाशुभ प्रकरण। २. नक्षत्रप्रकरण। ३. संक्रान्तिप्रकरण। ४. गोचरप्रकरण। ५. संस्कारप्रकरण। ६. विवाहप्रकरण ७. वधूप्रवेशप्रकरण। ८. द्विरागमनप्रकरण। ९. अग्न्याधानप्रकरण। १०. राजाभिषेकप्रकरण। ११. यात्राप्रकरण। १२. वास्तुप्रकरण और ''सर्वशुद्धात्रयोदशो'' से १३. गृहप्रवेशप्रकरण।

१. शुभाशुभप्रकरण—तिथियों के अन्य नाम नन्दादि, संज्ञा, तिथिनक्षत्र सम्बन्धी दोष आनन्दादियोग वार सम्बन्धेन सिद्धियोग, सभी शुभ कार्यों में वर्ज्यपदार्थों ग्रहणनक्षत्र त्याग की अवधि, कुलिकादि दुष्टयोग, भद्रा सम्बन्धी तिथियाँ व भद्रा का समय शुरुशुक्रास्तादि में निषिद्ध कर्म लुप्तसंवत्सर दोष कथन, वारप्रवृत्ति समय, शुभ कार्य मात्र में निषिद्ध मनु आदिक और युगादिक तिथियों का उल्लेख प्रथम प्रकरण में हुआ है।

२. नक्षत्रप्रकरण—नक्षत्रों के नाम व उनके अधिपति देवता, नक्षत्रवार सम्बन्ध से ध्रुव चर-उग्र-मिश्र-क्षिप्र मैत्र और दारुण संज्ञक नक्षत्रों का नाम—लतापादपरोपण, राजदर्शन औषधि सेवन, क्रय विक्रय, हस्ति-अश्वादिकों को शिक्षा व क्रय विक्रय, आभूषण निर्माण, मुद्रा (सिक्का) रुपया पैसा आदि निर्माण, खड्गधारण, नष्ट वस्तु प्राप्ति या अप्राप्ति विचार, जलाशय निर्माण, स्वामी के लिए सेवक रखने का शुभ मुहूर्त, धन का उपयोग व ऋण ग्रहण समय हल आरम्भ व बीज बोने का मुहूर्त, रक्तवाहिनी नाडी से अशुद्ध रक्तस्राव मुहूर्त, धान्यच्छेदन व संग्रह शान्तिक व पौष्टिक कर्म के मुहूर्त होमाहुति में शुभ ग्रह का दिन, अग्निवास, प्रतिवर्ष में नवीन अन्न भक्षण मुहूर्त, नाव का निर्माण; वीर वेताल सिद्ध करने का मुहूर्त, रोगनिर्मुक्त स्नान मुहूर्त, शिल्प विद्या, राजाओं में परस्पर सन्धि करने का शुभ मुहूर्त, सुवर्णादि परीक्षा मुहूर्त, ज्वरादिरोग उत्पत्ति समय ज्ञान से रोगनिवृत्ति दिन ज्ञान, रोगी की शीघ्र मृत्यु ज्ञान, प्रेतदाह मुहूर्त, काष्ठ गोमयपिण्ड (गोहरी) संग्रह का शुभ समय, द्विपुष्कर त्रिपुष्करादि योग व फल, शव (मृत) प्रतिकृति दाह समय, मूलनक्षत्र व अभुक्त मूल विचार, मूल निवास व शान्ति विचार, गण्डान्तादि विचार, अश्विन्यादि नक्षत्रों का स्वरूप व संख्या और जलाशय आराम वाटिकादि निर्माण मुहूर्त्तों का विवेचन द्वितीय प्रकरण में हुआ है।

३. संक्रान्तिप्रकरण—नक्षत्रवार-करण और समय भेद से १२ संक्रान्तियों का शुभाशुभ फल विमर्श, दिन रात्रि विभाग से संक्रान्तियों का अशुभ फल, संक्रान्ति की उत्तरायण दक्षिणायन संज्ञा, संक्रान्तियों के सामान्यतः पुण्यकाल ज्ञान, अर्द्धोदयास्त तथा ठीक अर्द्धरात्रि में होने वाली संक्रान्ति का पुण्यकाल निर्णय, रवि की सायन संक्रान्ति कालज्ञान तथा सायन संक्रान्तियों का पुण्यकाल निर्णय, संक्रान्तियों से बाजार की मन्दी तेजी समता विचार, सूर्यादिक सात वारों के क्रम से संक्रान्तियों का बलाबल विचार करणों के (७ चल करण + ४ स्थिर करण एवं ११) सम्बन्ध से संक्रान्तियाँ की सुप्त-उपविष्ट, ऊर्ध्वगत स्थिति वश बाजार में मन्दी-तेजी आदि विचार, करणों के आधार से संक्रान्तियों के सफल वाहन, वस्त्र, आयुध, भक्ष्य, लेपन जाति और पुष्प-आदिक ज्ञान, संक्रान्ति नक्षत्र से अपने जन्मनक्षत्र तक की संख्या सम्बन्ध से उस संक्रान्तिक सौर मास का शुभाशुभ विचार, संक्रान्ति प्रसंग से ग्रहबल विचार पूर्वक व्याव-

हारिक कार्य, संक्रान्ति सम्बन्ध के अधिक क्षय (चान्द्रमास) मासों का पीताम्बरा व्याख्यान में सुविस्तृत निर्णय के साथ संक्रान्ति प्रकरण नाम के तृतीय प्रकरण में उक्त विषयों का सम्यक् सुवर्णन किया गया है।

४. गोचरप्रकरण—अपनी जन्मराशि से तत्कालीन ग्रहों की स्थिति वश शुभाशुभ फल विचार, ग्रहवेध में दो प्रकार के ऋषिमत, सूर्य-चन्द्र ग्रहणीय नक्षत्रों से शुभाशुभ फल, चन्द्रबल में विशेषता, मतान्तर से चन्द्रबल विचार, अनिष्टग्रहों के दुष्परिणाम निवारणाय रत्नधारणज्ञान, ९ ताराओं के नाम व फल, दुष्ट ताराओं का परिहार, चन्द्रमा की १२ अवस्थाएँ, ग्रहों के विकार विनाश के लिए औषधियाँ व उनसे स्नान, ग्रहों को गन्तव्य राशि से पूर्व में ही फलदान दिनादि वर्णन सूर्यादिक ग्रहों का राश्यादि या मध्य राश्यन्त में कब फलदान सामर्थ्य होगा" इत्यादि विचारों से विभूषित गोचर ४ = चतुर्थ प्रकरण है।

५. संस्कारप्रकरण—स्त्री का प्रथम रजोदर्शन काल से शुभाशुभ भविष्य ज्ञान, षोडश संस्कारों के नाम व मुहूर्त, रजोदर्शन का निन्द्य समय, प्रथम रजस्वला स्नानमुहूर्त, गर्भाधान, सीमन्त, गर्भस्थ मानव जीव के प्रथम से ९ मास तक के अधिपति ग्रह, पुंसवनमुहूर्त, जातकर्म-नामकर्म (नामकरण) प्रसूति का स्त्री स्नान मुहूर्त, प्रथमादि १० मासों में दन्तोत्पत्ति का शुभाशुभ फल, दोलारोहण, अन्नप्राशन, भूम्युपवेशन, ताम्बूल सेवन, कर्णवेध, चूडाकरण, (मुण्डन) क्षौर विचार, अक्षरारम्भ मुहूर्त, व्रतबन्ध (उपनयन या यज्ञोपवीत) ब्रह्मणादि वर्णों के अधिपति ग्रह और प्रयोजन, जन्ममासादि विचार, गुरुबल, व्रतबन्ध में वर्ज्य समय, व्रतबन्ध लग्ननवांश से शुभाशुभ फल विचार, निषिद्ध प्रदोष तिथियाँ, नान्दी श्राद्धोत्तर अशौच में, निर्णय, मातृ-रजोदर्शन में धर्म-शास्त्रीय निर्णय, केशान्तादि (समावर्तन) संस्कार विचार विमर्श व्याख्यान से विभूषित ५ वाँ संस्कार प्रकरण है।

६. विवाह प्रकरण—शुभ त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-मोक्ष) की हेतु भार्या, आठ प्रकार के विवाह, प्रश्न लग्न से विवाह योग, कुलटायोग, मृतवत्स योग, विवाह भंग योग, बाल-वैधव्ययोग के परिहार, शकुन से कन्या की सन्तान किस प्रकार, सामान्यतः शुभशकुनादि, कन्या व वर-वरण, कन्या विवाहकाल, गुरु शुद्धि, विवाहोचित मास जन्ममासादि निषेध, ज्येष्ठमासादि विचार, त्रिपुरुष में कन्या-पुत्र विवाह निर्णय, वर-कन्या के कुल में मृताशौच निर्णय, विवाह के अनन्तर त्रिपुरुष में मुण्डनादिक निषेध, त्रिशाखामूलाश्लेषानक्षत्रोत्पन्न वर-कन्याओं का शुभाशुभ फल, सर्वदेश प्रसिद्ध अष्टविध मेलापकों में वर्ण-वश्य-तारा-ग्रहमैत्र गणमैत्र भकूट और नाडी विचार से १८ से ऊपर के गुणैक्य में विवाह शुभ, राशि-नवांश होरा-द्रेष्काण-त्रिंशाशादि लग्न षड्वर्ग साधन, कर्त्तरी दोष, सद्ग्रह दोष, अष्टम लग्न दोष, अष्टम लग्न दोष परिहार योग, नक्षत्रों की विषघटिकाएँ, दिन रात्रि के १५ मुहूर्त्त, वार सम्बन्धेन निषिद्ध मुहूर्त्त, ग्रह वेध दोष, क्रूरविद्ध नक्षत्रों दोषों का परिहार, लतादोष, पात दोष, सूर्यचन्द्रक्रान्ति साम्य दोष, खार्जूर दोष, उपग्रह दोष, परिहार, वारदोष, जामित्र दोष देश भेद से परिहार, दश योग दोष, दशयोग फल अपवाद, बाणदोष, उदयास्तादि दोष, उदयास्त शुद्धि, सूर्यसक्रमणं दोष, अन्य ग्रहों की संक्रान्तियों की शुभकर्म में वर्ज्य घटी पंगु-

अन्ध काणादिक लग्न दोष, वर्गोत्तमरहित अन्तिम नवांश त्याज्य, विवाह लग्न में ग्रह शुद्धि लग्न कर्त्तरी प्रभृति दोषों का अपवाद, अनेक दोषों के परिहार वाक्य, गान्धर्वादि विवाहों में त्रिपदी (नक्षत्रों से) चक्र, विवाह दिन से पूर्व सर्वारम्भ काल विचार, विबाह मण्डपनिर्माण गौधूलिकाल विचार, सूर्यादिग्रहों की मासिक गति तात्कालिक सूर्यसाधन, विवाह के इष्टकाल में लग्न साधन, अन्त में विवाहादि शुभ कार्य में आवश्यक वर्ज्य दोषों का उल्लेख के साथ विवाह प्रकरण सम्पन्न होता है।

७. वधूप्रवेश प्रकरण—विवाह संस्कार के अथवा अनन्तर विवाह के साथ अन्य शुभ मुहूर्तों में वधू प्रवेश = विवाहिता कन्या का पितृ गृह से पति के घर के प्रथम प्रवेश के लिए शुभ मुहूर्त की गवेषणा, विवाहानन्तर प्रथम ज्येष्ठ आषाढ़-पौष अधिक मास का वधू प्रवेश निषेध तथा प्रथम चैत्र मास में पितृ गृह वास का निषेधादि विषय वधू प्रवेश प्रकरण में उपलब्ध हैं।

८. द्विरागमन प्रकरण—यथा समय तक पति के घर से पिता के घर में रहकर पुनः पति के घर में जाने के विचार के लिए मुहूर्त्त, सम्मुख दक्षिण शुक्र का परिहार, तथा पितृ गृह में कुचपुष्प सम्भव और (रजोदर्शन) में भी प्रति शुक्र सम्भव विचार अनावश्यक के साथ प्रकरण सम्पन्न हुआ है।

९. अग्न्याधान प्रकरण—नित्य-अग्नि, होत्र (हवन) के लिए, कालनियम होने पर मुहूर्त्तविचार, अग्नि आधान-मुहूर्त्तानुसार शुभाशुभ फल कथन से प्रकरण पूर्ति हुई है।

१०. राजाभिषेक प्रकरण—राज्य में उत्तराधिकारी राजा का अभिषेक मुहूर्त्त, सपरिहार राज्याभिषेक लग्न फल, राज्याभिषेक लग्न से स्थिर सम्पत्ति लाभ कर योग के साथ प्रकरण समाप्ति हुई है।

११. यात्राप्रकरण—यात्रा के अधिकारी, यात्रा के लिये शुभ सूचक प्रश्न अशुभ सूचक यात्रा प्रश्न, "यात्रा किस दिशा में होगी" विचार प्रश्न लग्न से यात्रा का शुभाशुभ विचार, तिथिनक्षत्र शुद्धि, वारनक्षत्र शूल विचार पूरे अहोरात्र सम्बन्ध २४ घण्टे से दिशाओं में यात्रा विचार, राहु नक्षत्र से जीवमृत नक्षत्र संज्ञा व फल, अकुल-कुल-व-कुलाकुल से यात्रा विचार, पथि राहुचक्र से यात्रा विचार १२ महीनों की यात्रा में दक्षिण पूर्व उत्तर पश्चिम दिशा यात्रा फल, हिंवर योग, घातचन्द्र घाततिथि, घातवार, घात लग्न विचार, योगिनी विचार, काल पाश विचार, परिध दण्ड लंघन विचार, दिग्द्वार के नक्षत्र, अयन शुद्धि विचार, सम्मुख शुक्र बुधादि विचार, लग्न शुद्धि, दिग्द्वार लग्न, लालाटिक योग, यात्रा के पूर्व प्रस्थान विचार, विशिष्ट ग्रह योग, नाना प्रकार के ग्रह योग, से राजयोग, यात्रा समय चित्तशुद्धि शकुन, एक दिन में गमन व पुनः प्रवेश में विचारणीय, प्रवेश से नवम दिन का गमन एवं गमन दिन से नवें दिन का प्रवेश निषेध, नक्षत्र तिथिवार दिशा क्रम में दोहद (नाना प्रकार के पदार्थों का स्पर्श भोजन उच्चारण आदि यात्रा प्रारम्भ करने की विधि (पहिले दाहिना पैर चलाना आदि) पूरे राजगृह, या साधारण मकान में किस स्थान (कमरे) से यात्रा चलाई

जाय विचार, जिस दिशा की यात्रा उस दिशा का वाहन (घोड़ा हाथी रथ नरयान आदि) विचार, यात्रा समय आवश्यक कार्य से उत्पन्न विलम्ब का उपाय, राजा से साधारण प्रसाद तक प्रस्थान की सीमा, यात्रा समय त्याज्य पदार्थ, प्रस्थान के नियम, अकाल वृष्टि में यात्रा विचार, यात्रा समय के आकास्मक शुभ और अशुभ शकुन, विरुद्ध शकुन, परिहार, यात्रा निवृत्ति के अनन्तर गृह प्रवेश मुहूर्त्त विचार के साथ यात्रा प्रकरण सुसम्पन्न होता है।

१२. वास्तु प्रकरण—आवास के उपयुक्त नगर गाँव आदि का नाम क्या हो ? मकान के द्वार, क्षेत्रफल, ध्वजादिक आयों, के नाम, गृहारम्भ शुभ समय, परहस्तगत घर होने का विचार, स्नान, पाक शयन-कोष देव आदि कमरे किस दिशा में ? विचार, और शतायु सहस्रायु होने वाले गृहारम्भ योगों का विचार वास्तु प्रकरण में किया गया है।

१३. गृहप्रवेश प्रकरण—प्रवेश की समय शुद्धि, पुराने घर प्रवेश ही की भूमि में निर्मित घर या नवीन संस्कार का गृह प्रवेश समय विचार, वास्तुपूजा विचार, लग्न शुद्धि, गृह प्रवेश के अनन्तर के शुभ कृत्यादि विचारों से विभूषित अन्तिम गृह प्रवेश प्रकरण है।

आधुनिक भारतीय पञ्चाङ्गों का उपयोग—काश ? विभिन्न मत के विभिन्न पञ्चाङ्गों में एक वाक्यता तो नहीं ही है तथा एक मत के पञ्चाङ्गों में भी विभिन्नता क्यों देखी जा रही होगी ? सारिणी ग्रन्थों का उपयोग से ही पञ्चांङ्ग निर्मित होने चाहिए ठीक है भी तो सारिणियों में आए दिन अवयव त्यागादि अनेक स्थूलताओं को जो कालान्तर में अधिक अन्तरित हो जाती है ध्यान तो देना ही चाहिए। तथा कम से कम सर्व सम्मत एक स्थिर अयनांश को ही मान्यता दी जानी चाहिए थी। वर्षमान वेधसिद्ध सर्व सम्मत एक वर्षमान की भी भारतीय पञ्चाङ्गों ने उपेक्षा सी क्यों कर दी होगी ?

अन्ततो गत्वा इधर के ग्रहगणित के विकसित इन दशकों ही में ही मैंने भारतीय पञ्चाङ्गों की वर्धमान हठवादिता की विभिन्न और विभिन्नताओं को देख कर मुझे भी निर्विवाद सत्य व तथ्य वेध गणित सिद्ध प्रामाण्य पञ्चाङ्गों का अनुसरण करना पड़ रहा है।

पञ्चाङ्ग जगत में कुछ भ्रम भी उत्पन्न हैं जो दृश्य और अदृश्य पञ्चाङ्ग। हमारे खगोल-वेत्ता ब्रह्मर्षियों ने ही स्वयं दृग्गणित नाम करण किया है इस लिए कि ग्रह गणित सिद्धान्तों से उपलब्ध राश्यादिक ग्रहों को नलिकावेध से आकाश मे देख कर ही सही मानना चाहिए। यदि गणित और वेध मे अनन्तर प्रतीत हो तो वे संस्कार अवश्य ग्रहों में देने चाहिए जिससे गणित और वेध मे एक वाक्यता अवश्य हो।

तत्तद् गतिवशान्नित्यं यथादृक्तुल्यतां ग्रहाः
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्
सूर्य सि० स्पष्टा० श्लो० (१४)

यात्राविवाहोत्सव जातकादौ
खेटैस्फुटैरेव फलस्फुटत्वरम्
स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणाम्
स्फुटक्रियादृग्गणितैक्यकृद्या ॥
भास्कराचार्य सिद्धान्त शिरोमणि स्पष्टा० श्लो० १

इस प्रकार सभी आचार्यों का दृग्गणितैक्य पक्ष का नाम दृग्गणित है अतः दृश्य या अदृश्य पञ्चाङ्ग नाम करण करना मात्र ज्यौतिष जगत में भ्रम उत्पन्न करने के अतिरिक्त और क्या कहा जावेगा।

क्योंकि त्रिस्कन्ध ज्यौतिष की आधार शिला मात्र एक पञ्चाङ्ग गणित है। तथा वर्षारम्भ चैत्रादि चान्द्र वर्ष प्रारम्भ जो चैत्र शुक्ल प्रतिपद तिथि से प्रारम्भ होता है, उसी दिन वर्ष भर के लिए पञ्चाङ्ग फल दैवज्ञ वर्य (ज्यौतिर्विद) के मुख से सुनकर श्री देवी कलश स्थापन, देवी पूजन प्रभृति वासन्तिक नवरात्रारम्भ होता है। इसी शुभ समय में पञ्चाङ्ग फल श्रवण भी आवश्यक कहा गया है। यथा तिथि नाम सुनने से श्री प्राप्ति, वार नाम सुनने से आयुष्य वृद्धि, नक्षत्र नाम श्रवण से पापक्षय, योग नाम श्रवण से रोग निवारण एवं करण नाम श्रवण से अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है। जैसे

"तिथेश्चश्रियमाप्नोति वारादायुष्य वर्द्धनम्।
नक्षत्राद्धरते पापं योगाद्रोग निवारणम्॥
करणात्कार्यसिद्धिश्च पञ्चाङ्गफलमुच्यते" इति॥

अतः संक्षेप से पाठकों के ज्ञानवर्द्धन के लिए सोदाहरण पञ्चाङ्ग साधन क्रिया दिखा देना भी उचित होग।

ता० १ मार्च १९७९ को तदनुसार सं० २०३६ फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा शनिवार कैसे सिद्ध होगा?

यतः ग्रहलाघव कर्त्ता आचार्य गणेश की गणित की बड़ी ही देन है जो १४४२ शक से आज तक अक्षुण्ण चली आ रही है। उन्होंने पञ्चाङ्ग साधन में सूर्य चन्द्रमा का जो साधन किया है वह सूर्य सिद्धान्त सम्मत कहा है।

(१) तिथि साधन—उक्त दिन के चन्द्र स्पष्ट ४।८।२२।१२ में सूर्य स्पष्ट १०।१७।१०।११ को कम कर शेषांश १७१।१२।११ में १२ का भाग देने से गत तिथि १४ और वर्त्तमान तिथि १५ पूर्णिमा होती है।

पूर्णिमा के भुक्त अंशों ३।१२।१ और भोग्य अंशों ८।४७।५९ में सूर्य चन्द्रमा के गत्यन्तर ७३२।४२–६०।१९ = ६७२।२३ क्रमशः भाग देने से पूर्णिमा की गत और ऐष्य घटिका १७।८ + ४७।५ = ६४।१३ यह पूर्णिमा का पूर्णमान काशी में हो रहा है।

(२) वार साधन—तदनुसार १ मार्च १९७९ का ग्रहलाघवीय अहर्गण = ३३२८

और चक्र = ४१ आता है। "वारः स्याच्छरहतचक्र" से ४१ × ५ = २०५ को ३३२८ में जोड़ने से ३५३३ में ७ का भाग देने से शेष ५ बचता है। सोमवार से गत वार संख्या ५ शुक्रवार होने से वर्त्तमान शनिवार होता है जो सही है।

(वार ७ ही क्यों हैं ? वार गणना वैदिक है या नहीं ? तथा क्या लक्षण कि आज अमुकवार है। तथा प्रथम वार रवि से सोम-मंगल का ही क्रम कैसे, माना जाय ? रवि मंगल और शनि-बुध क्यों नहीं ? इत्यादि बृहद्विवेचन के लिए सिद्धान्त शिरोमणि के ग्रह-गणिताध्याय की भूमिका, लेखक केदार दत्त जोशी, के पेज ८९ से पेज ९१ तक में देखिए)।

(३) "तिथ्यर्द्धं करणम्" गत तिथि १४ को २ से गुणा कर ÷ २८ = ७ = शेष० या ७ वाँ भद्रा या विष्टिकरण का मान तिथि मान का आधा = ६४।१३ ÷ २ = ३१।६।३० पूर्णिमा के पूर्वार्ध में अर्थात् शुक्रवार की चतुर्दशी के अन्त घटी ४२।४७ + ३२।६।३० घटी, अर्थात् शनिवार के दिन ७४।५३।३० तक अर्थात् १४।५३।३० भद्रा होती हैं।

(४) नक्षत्र साधन—स्पष्ट चन्द्रमा ४।८।२२।२२ की कलाओं में ८०० का भाग देने से गत नक्षत्र अश्लेषा, वर्त्तमान नक्षत्र मघा की गत और एष्य कलाओं में क्रमशः ५०२'।२२' २।९७।३८ कलाओं में चन्द्रगति कला का भाग देने से मघा की गत और ऐष्य घटिका क्रमशः ४०।४२ + २४।३६ = ६५।२८ मघा नक्षत्र का मान होता है।

(५) योग साधन—स्पष्टसूर्य + स्पष्ट चन्द्रमा १०।१७।१०।११ + ४।८।२२।२२ = २।२५।३२।३३ की कलाओं में ८०० का भाग देने से गत योग = अतिगण्ड की संख्या ६ वर्त्तमान ७ वें सुकर्मा योग की भुक्त एवं भोग्य का कलाएँ क्रमशः ३३२।३३, ४६७।२७ में सूर्यगति + चन्द्रगति = ७३२।४२ + ६०।१९ = ७९३।१ का भाग देने से क्रमशः सुकर्मा योग की गत एवं ऐष्य घटिका = २५।५५, ३४।३७ घटी पल होता है। ६०।३२ से सुकर्मा का पूरा मान होता हैं।

पीयूषधारा टीका सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ टीका है। वह लुप्त प्रायः हो रही है। राष्ट्र-भाषा हिन्दी से उसके व्याख्यान का प्रकाशन आवश्यक है। मेरे तीनों अग्रजों में अग्रज स्व० श्री पं० पीताम्बर जी ने मेरे वंश परम्परा की पाण्डित्य पद्धति के आचरण और उसके संरक्षण से सुयश प्राप्त किया था, अतः मैंने उक्त ग्रन्थ की ज्येष्ठ भ्रातृ के नाम पीताम्बर सम्बन्धिनी पीताम्बरा नाम की व्याख्या से अपनी भ्रातृभक्ति उन्हें समर्पण की है। आशा है भविष्य में संस्कृत भाषा माध्यम की मुहूर्तचिन्तामणि व इसकी पीयूषधारा व्याख्या के साथ इसकी राष्ट्रभाषा हिन्दी की यह पीताम्बरा व्याख्या ज्ञानसागर संगमिनी त्रिवेणी संगम की तरह विद्वानों को अनन्तकाल के लिए सर्व प्रकारेण सुखी करेगी।

विद्यागुरु विश्वनाथ की राजधानी काशी में ही उक्त ग्रन्थ व उसके पीयूषधारा की रचना हुई है। उक्त दोनों (१) ग्रन्थ रचयिता "श्री राम" और (२) पीयूष व्याख्याकार श्री गोविन्दाचार्य दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। वेद-वेदाङ्ग में प्रौढ़ पण्डित थे, प्रायः संस्कृत ग्रन्थ भण्डार को सुसमृद्ध बनाने में दाक्षिणात्य विद्वानों का महत्त्व पूर्ण योग दान रहा है। भारत के सभी प्रान्तों के विद्वानों ने इस प्रकार अपने उच्च स्तर के वैदुष्य के साथ अपने वार्धक्य चतुर्थी अवस्था का मोक्ष साधन का जीवन, काशी क्षेत्र में बिताया और अनेक संस्कृत ग्रन्थों की रचना भी की। स्व जन्मभूमि के प्रेम की अपेक्षा काशी जीवन समाप्ति की अधिक इच्छा

ऐसा क्यों ? यह एक सहज शङ्का होती है। जिसका निराकरण पीयूषकार श्री गोविन्द ने उपसंहार में सम्यक् किया है।

समाधान—पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त होने के ऊँचे मानवीय शुभ ध्येय पर पहुँचने के लिए ज्ञान सञ्चय में जीवन बिताते हुए मुक्ति प्राप्ति प्रदा, अयोध्या, मथुरा, गाया, काशी काञ्ची, उज्जयिनी और द्वारवती जैसे उत्तम ज्ञानपीठ की किसी एक नगरी में देह त्यागकर मुक्ति लाभ करने की भावना आज भी भारतीय जनता के विचारों में सुदृढ़ है।

उक्त सातों नगरियाँ (सातों पुरी) मोक्ष साधन के लिए समान बल की होतीं हुई भी मोक्षसाधनिका में काशी पुरी का ही सबसे अधिक महत्त्व है, इसलिए कि ये छै अयोध्यादि ६ ज्ञानपीठों के मरण से प्राणी काशी क्षेत्र की प्राप्ति करता है, इसलिए कि ये छै अयोध्यादि पुरियाँ भी तो ज्ञान राशिका और सम्यक् स्वयं प्रकाशिका श्री काशी प्राप्तिकरा हो जाती हैं। "काशीं प्राप्य विमुच्येत नान्यथा तीर्थकोटिभिः" इस वाक्य के अनुसार जीव की मुक्ति काशी प्राप्ति से ही होती है। अतः मुक्ति साधन का एक मात्र क्षेत्र काशी क्षेत्र है।

व्यास जी के पूर्व कथन के अनुसार "सातों मुक्ति साधक क्षेत्र (पुरियाँ) कहे जाते हुए भी तदनन्तर केवल काशी क्षेत्र को ही मुक्ति का क्षेत्र या मोक्ष क्षेत्र कहना" इस परस्पर के विरोध वाक्यों की सङ्गति कैसे बैठेगी ? यह भी एक सही शङ्का है।

पूर्व कथित सातों मोक्ष क्षेत्रों में श्री काशी को छोड़ कर शेष ६ क्षेत्रों में जीव को, सम्यक् ज्ञान द्वारा उसे सालोक्य कैवल्य प्राप्ति (शिव लोक प्राप्ति) मुक्ति प्राप्त नहीं होती है। अपि च जिसमें पुनः गर्भवास बन्धन भय उपस्थित हो जाता है, ठीक इस प्रकार की सालोक्य मुक्ति, चतुर्विध काशी क्षेत्र के प्रथम क्षेत्र नाम काशी (आगे स्पष्ट हो रहा है) में ही होती है।

तथा काशी क्षेत्र के मुक्ति विभागीय चार क्षेत्रों में ज्ञान या अज्ञान से भी मरण होने पर सायुज्य मुक्ति मिलती है जीव को पुनः गर्भवास होने की समस्या उपस्थित नहीं होती है।

जैसे पद्मपुराण के अनुसार—

> **तीर्थान्तराणि क्षेत्राणि विष्णुभक्तिश्च नारद।**
> **अन्तःकरणसंशुद्धिं जनयन्ति न संशयः॥**
> **वाराणस्यापि देवर्षे! तादृश्येव परन्तु सा।**
> **प्रकाशयति ब्रह्मैक्यं तारकस्योपदेशतः॥**

काशी खण्ड में भी—

> **अविमुक्तरहस्यज्ञा मुच्यन्ते ज्ञानिनो नराः।**
> **अज्ञानिनोऽपि तिर्यञ्चो मुच्यन्ते हि सकल्मषाः।**

सभी तीर्थों के दर्शनों से अन्तःकरण मात्र की शुद्धि होती है वैसे वाराणसी (काशी) तीर्थ प्राप्ति से अन्तःकरण शुद्धि के साथ-साथ काशी में तारकेश ब्रह्म के उपदेश से जीव का ब्रह्म में विलय भी हो जाता है। सदा शिव सङ्गमिनी काशीक्षेत्ररहस्य मर्मज्ञ नरदेहधारी जीव (देही) की काशी में मुक्ति होती है तो अज्ञानी पशु पक्षी प्रभृति पातकी जीवों की भी

काशी क्षेत्र की मृत्यु से मुक्ति हो जाती है। अतः मोक्षद काशी क्षेत्र का, अन्तःकरण शुद्धिप्रद अयोध्यादि क्षेत्रों से विशेष अधिक महत्त्व हो जाता है।

पुनः पद्मपुराण के अन्य वचनों से भी काशीक्षेत्र महत्त्व—

"नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे" कथन के अनुसार नैमिषारण्य, गङ्गाद्वार, कुरुक्षेत्र, पुष्कर··· आदि अनेक तीर्थों के स्नान दान आदि से मुक्त न होकर काशी तीर्थ में स्नान दान आदि कर्मों के करने के पश्चात् काशी मरण से ही देही की मुक्ति प्राप्ति सुलभ हो जाती है।

विश्व के समग्र अन्य स्थानों में उत्तरायणादि शुभ समयों की मृत्यु से जहाँ सद्गति प्राप्त होती है वहाँ काशी क्षेत्र में वर्ष भर के किसी भी अयन मास-तिथि का मरण मोक्षप्रद होता है। काशी में मरण नाम की वस्तु का ही नाम मंगल शब्द वाचक है।

"मरणं मङ्गलं यत्र सा काशी केन नीयते"

नरदेह धारी के लिए काशी मरण विशेष प्राक्तन पुण्य का द्योतक है।

इस सम्बन्ध में वृहज्जाबालि उपनिषद में भी पर्याप्त विवेचन मिलता है।

शास्त्रों में काशी के चार विभागों की संख्या निम्न भांति है।

प्रथम नाम काशी क्षेत्र, द्वितीय नाम वाराणसी, तृतीय नाम अविमुक्त क्षेत्र और चतुर्थ नाम अन्तर्गृहनाम क्षेत्र है।

(१) काशी ज्ञान राशि क्षेत्र होने से काशी नाम उचित होगा।

(२) वाराणसी से वरणा पापकर्म से रोकने वाली + असी पाप हटाने वाली नगरी का नाम वाराणसी है।

(३) अविमुक्त से न मुक्तमविमुक्तं, कदापि किसी भी काल में भगवान् शङ्कर से मुक्त न होने वाली नगरी अर्थात् महा प्रलय में भी जो विद्यमान क्षेत्र है उसे अविमुक्त वाराणसी क्षेत्र कहा गया है। इसी लिए काशी का विशेषण दिया गया है कि "त्रिकण्टक विराजिते" अर्थात् भगवान् शङ्कर के आयुध त्रिशूल पर विराजमान काशी नगरी है। भौतिक काशी का महा प्रलय में विलय हो सकता है, किन्तु ज्ञान काशिका नित्य है जो महा प्रलय में भी प्रकाशिका ही रहती है।

(४) अन्तर्गृह क्षेत्र—उक्त तीनों क्षेत्रों से सर्वोपरि अन्तर्गृह क्षेत्र कहा गया है।

पद्म पुराण के पातालखण्ड के वर्णन के अनुसार उक्त चारों क्षेत्रों की सीमा का विचार।

(१) मध्यमेश्वर महादेव से आरम्भ कर देहली गणेश (पञ्चकोश में।) तक के एक सूत्र के व्यासार्ध से मध्यमेश्वर केन्द्र बिन्दु से निर्मित वृत्त परिधि के भीतर की भूमि का नाम काशी है। इस क्षेत्र में मरने वाले देही की सालोक्य मुक्ति होती है, अर्थात् वह जीव पुनः, पुनर्जन्ममृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

(२) दक्षिण में वरुणा और उत्तर में असी और पूर्व में जगज्जननी जाह्नवी और पश्चिम में पाशपाणी गणेश्वर (पञ्चकोशी में) के भीतर की भूमि का नाम वाराणसी है। इसमें देह त्यागने से जीवबन्धन मुक्त प्राणी को सारूप्य मुक्ति होती है।

(३) विश्वेश्वर (विश्वनाथ मन्दिर) मन्दिर से चारों तरफ की ८०० हाथ की दूरी का नाम अविमुक्त क्षेत्र है। इस क्षेत्र में मृत्यु होने से प्राणी की सांनिध्य मुक्ति होती है।

(४) जिस क्षेत्र के पश्चिम में गोकर्णेश, पूर्व में गङ्गा का मध्य, उत्तर में भारभूतेश्वर और दक्षिण में ब्रह्मेशान मन्दिर है, वह तारकेश ब्रह्म भगवान् विश्वंभर विश्वेश्वर का भवन कहा जाता है; इसी उक्त अवधि के क्षेत्र का नाम भगवान् शंकर का अन्तर्गृह है। अन्तर्गृह क्षेत्र की मृत्यु से जीव को कैवल्य प्राप्ति होती है। अर्थात् जीव केवल एक मात्र ब्रह्म में ब्रह्मीभूत हो जाने से या जीव का परब्रह्म में तादात्म्य हो जाने से कैवल्य पद प्राप्ति हो जाती है।

एक शङ्का के साथ—

(१) वाराणसी में वर्तमान राजघाट काशी स्टेशन से कुछ दक्षिण से मिला हुआ "विश्वेश्वर" गञ्ज नाम का मुहल्ला इस समय गल्ले आदि व्यापार के लिये प्रसिद्ध है। विश्वेश्वरगञ्ज नामकरण से यहाँ भी भगवान् "विश्वेश्वर का मन्दिर था" ऐसा अनुमान होता है।

(२) प्राचीन विश्वनाथ मन्दिर के भग्नावशेष स्थल पर इस समय जो मस्जिद है, उसके सन्निहित वर्तमान साम्ब शिव भगवान् विश्वनाथ का लोक प्रसिद्ध मन्दिर है, जिसका पुनर्निर्माण धर्म प्राण हृदया श्री अहल्या बाई देवी जी से हुआ है।

(३) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक विश्व-वन्द्य-ब्रह्मर्षि महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी के सत्य-शिव संकल्प से निर्मित यह सुन्दर विश्वनाथ मन्दिर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की परिधि केन्द्र में स्थित है जो उत्तरोत्तर की श्रद्धा भक्ति पूजा आदि के साथ लोक विश्रुत हो रहा है।

(४) इसी दशक द्वय का अनन्त श्री विभूषित श्री १००८ महात्मा करपात्री स्वामी जी से निर्मित व प्रतिष्ठापित विश्वनाथ मन्दिर, काशी के गङ्गा तीर के प्रसिद्ध मीरघाट पर है।

(५) वाराणसी नगर गुदौलिया से चौक जाने वाले मार्ग के बीच में बांयी तरफ भगवान् श्री सत्यनारायण मन्दिर के पीछे भगवान् आदि विश्वेश्वर का विश्वेश्वर मन्दिर है। अतः सभी विश्वनाथ मन्दिरों से चारों तरफ की ८०० हाथ की दूरी के भीतर (परिधि के भीतर की) को भूमि को अविमुक्त क्षेत्र कहा जाना चाहिये या इनसे भिन्न अविमुक्त क्षेत्रात्मक नियत कोई अन्य प्रदेश विशेष है? जिज्ञासा का समाधान विद्वानों से होता रहेगा।

उक्त चतुर्विध मुक्तियों का तात्पर्य

(१) काशी में मरने से साक्षात् सालोक्य प्राप्ति होती है। शिवलोक की प्राप्ति होती है।

(२) वाराणसी में मरने से प्राणी शिवसारूप्य, रूप में सुन्दर शिव ही का रूप प्राप्त करता है।

(३) अविमुक्त क्षेत्र की मृत्यु से जीव का शिव सांन्निध्य अर्थात् जीव परब्रह्म के समीप हो जाता है।

(४) अन्तर्गृहात्मक क्षेत्र की मृत्यु से जीव का पुनः गर्भवास न होकर वह जन्म मृत्यु बन्धन से क्रमशः मुक्त होकर विश्वनाथ लोक की प्राप्ति कर विश्वनाथ रूप धारण करते हुए, सुराणामपि ईशः सुरेशः, अर्थात् सर्वेश्वर ब्रह्म के समीपस्थ भी होते हुए ब्रह्म रूप दिनेश तेज के साथ भगवान् तारकेश ब्रह्म में मिलकर जीव नित्य पदे पदे नवीनता की सी अनुभूति के साथ अखण्ड परात्पर नवीन विचित्र अद्भुत अनिर्वचनीय ब्रह्म तत्त्व में विलीन हो जाता है।

जिन नरदेहियों या अन्य अनेक योनियों के देहियों की मरण के अनन्तर कहीं सद्गति नहीं होती तो काशी में सभी योनियों के देहियों को सद्गतियाँ हो जाती हैं।

"येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः"

अतः अकाम या सकाम मुक्ति साधक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज, चाण्डाल, वर्णसङ्कर, म्लेच्छ, अन्य अनेक संकीर्ण योनियाँ, कीट, पिपीलिका, मृग, पक्षी आदि जो अपने मृत्यु समय में काशी प्राप्ति कर लेता है उसे निश्चय शिवलोक प्राप्ति हो जाती है। तस्मात् मोक्ष प्राप्ति के लिए अन्य क्षेत्रों को अपेक्षा काशी क्षेत्र ही सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र सिद्ध हो जाता है।

गम्भीरता से विचारणीय विषय

शंका—यदि उक्त प्रकार की सर्वश्रेष्ठ मुक्ति साधिका निष्पापा काशी नगरी है ही, इसमें सन्देह नहीं है, तो नरदेहधारी यह मानव, दानवीय मायावश सदा मानवहत्या, ब्रह्महत्या, सुरापान, देवद्रव्यहरण, प्रभृति अनेक पापाचरण में प्रवृत्त होगा, क्योंकि उसे मालूम है कि अन्तकालीन सद्गति तो काशी मरण से होगी ही ? इस प्रकार स्वभावतः अन्तकालीन काशी मरण मुक्ति रूपा सद्गति प्राप्ति इच्छा के प्रलोभन से मानव अनुचित अनैतिक कर्मों में भी प्रवृत्त हो सकता है, जो कदापि उचित नही है। क्योंकि पाप कर्मों के आचरण से मानव समाज का पतन, मानव समाज के विघटन से विश्व में भयंकर से भयंकर अनैतिकता को ही प्रश्रय मिलेगा तब तो ऐसे काशी के मङ्गलमय मरण से विश्व पर होनेवाले विपरीत प्रभावों से संसार में अवश्य अनेक भयंकर दुष्परिणामों के होने का मार्ग प्रशस्त हो जावेगा। इस प्रकार की यह एक विकट समस्या क्यों उत्पन्न की गई होगी ?

समाधान—(१) संसार के कहीं भी किसी कोने में किये गये दुराचार, अन्याय, अधर्म (पाप) का प्रायश्चित्त पुण्य क्षेत्र, या ज्ञान क्षेत्र में, जहाँ सुगठित सभ्य विवेकी मानव समाज का निवास है वह ऐसे सत्संग से विनष्ट हो जाता है।

(२) भ्रम से या अज्ञान से पुण्य क्षेत्र में भी यदि पापाचरण हो गया है तो विशेष ज्ञान प्रकाशिका काशी नगरी के सत्संग से उसका प्रायश्चित्त या उस पाप का परिमार्जन हो जाता है।

(३) इसके आगे, यदि वाराणसी प्राप्ति से भी मानव की दानव वृत्ति में परिवर्तन न हो सका तो पञ्चकोशी यात्रा (काशी परिधि में जहाँ सन्त, साधु, विद्वान्, योगी, त्यागी

और विभिन्न प्रकार के वीतराग भगवद्भक्तों के आश्रम हैं) से उस पापिष्ठ मानव की पाप भावना का विनाश हो जाता है और उसमें उत्तरोत्तर मानवीय गुणों का सञ्चार होता जाता है।

(४) पञ्चकोश के सेवन से भी यदि पापवृत्तियों का क्षय न हो सका और पञ्चकोश में रहकर भी अमानवीय विचार के देहधारी पापी मानव से, ज्ञानी मानव समाज के आश्रमों की व्यवस्था भी भंग होने लगेगी तो ऐसे कुसंस्कृत मानव से, किए पापों का क्षय, उसके काशी के अन्तर्गृह के निवास से हो सकता है ?

"ब्रह्मवैवर्त काशी रहस्य" के अनुसार—

काश्यां स्वदारेष्वपि नित्यवृत्तिः काश्यां स्वचित्तेष्वपि सुप्रवृत्तिः।
काश्यां कुटुम्बेष्वपि यत्स्वबुद्धिर्देहे ह्यहं यस्य न तस्य शुद्धिः॥

स्वस्त्री संगम की भी नित्य इच्छा, अपनी इच्छाचारिता का ही चित्त, कुटम्ब में ममत्व का भाव और अपने शरीरादि के अहंभाव की धारणा से काशी निवास से भी शुद्धि नहीं होती अर्थात् सद्गति अर्थात् मोक्षप्राप्ति नहीं होती।

काश्यां वसेद्धर्मपरो महात्मा, न वित्तकामादिपरः कदाचित्।
वित्तं पुरा दैवकृतं तु यावत् तावद्भवत्येव न चात्र वादः॥

वित्त-पुत्र-कलत्रादिक कामनारहित होकर विश्वेश्वर चरणों के आश्रय में निवास मे ही विश्वेश्वर की प्राप्ति होती है।

(५) मुक्ति क्षेत्र के उत्तरोत्तर के क्षेत्रों की गरिमा उत्तरोत्तर होती हुई भी यदि अन्तर्गृह निवास के बावजूद मानव का पापाचरण दूर न हो सका तो फिर इसके आगे मानव सुधार की कोई भी क्षेत्र स्थिति नहीं रह जाती है। अर्थात् अन्तर्गृह क्षेत्र वास से किए गये पाप कर्मों का फल वज्रलेप की तरह अत्यन्त सुदृढ हो जाता है। इसके आगे पापाचरण निवृत्ति का अब कोई भी प्रायश्चित्त नहीं रह जाता है ऐसे भयंकर महापापी की अत्यन्त अवर्णनीय अधोगति अवश्यम्भावी है। जैसे शास्त्रों में कहा भी है कि—

'अन्यक्षेत्रे कृतं पापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं वाराणस्यां विनश्यति॥
वाराणस्यां कृतं पापं पञ्चकोशे विनश्यति।
पञ्चकोशे कृतं पापं अन्तर्गेहे विनश्यति॥
अन्तर्गेहे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति"।

काशी आदिमकाल से ज्ञान नगरी रही है। जिसकी ज्ञान गरिमा आज तक अक्षुणा बनी है, इस अभिप्राय से स्वयं ज्ञान प्रकाशिका काशी नगरी का मरण मोक्षप्रद होता है। साथ ही उक्त विशेष विवेचन से यही सिद्ध होता है कि—

ज्ञान, विज्ञान, धर्म, विवेक, न्याय, आचार, परोपकार, दया, दाक्षिण्य, दान, त्याग, साहस, तप, ब्रह्मचर्य, देशभक्ति, औचित्य प्राप्ति के लिए आत्मत्याग तक की सुशिक्षाओं से

समृद्ध क्षत्र का नाम प्रकाशक्षेत्र या काशी क्षेत्र है। अवश्य ऐसे क्षेत्रों में साधु सन्त महात्मा और विद्वान् सज्जन व्यक्तियों की उपलब्धि से मानव समाज को सतत शुभ प्रेरणाएँ मिलती रहती हैं, जिससे मानव का उत्तरोत्तर उत्थान होता है। ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम, विश्ववन्द्य, पवित्र विवेकी मानव रत्नों से वसुन्धरा के जो-जो राष्ट्र, देश नगर, उपनगर और ग्रामादिक सुसेवित हुए हैं, होते रहते हैं, और होते रहेंगे, उन-उन ऐसे उत्तम अनेक ऐतिहासिक पुण्य क्षेत्रों के मरण से नरदेही की ऊर्ध्व गति होती है। विश्वभर के ये सब ऋषिकुल, गुरुकुल, आश्रम, विद्यालय, महाविद्यालय, और विश्वविद्यालय तक के क्षेत्रों से देहियों को ज्ञान प्राप्ति होती है। ज्ञान प्राप्त सुसंस्कृत ऐसे प्राणी ज्ञानप्राप्ति के अनन्तर जन्म मृत्यु बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर परपद मोक्ष की प्राप्ति करने में पूर्ण समर्थ होते हैं। कहा भी है—

**"यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चेत् सुयन्त्रितम्।
विद्या तपश्च योनिश्च स तीर्थफलमश्नुते" ॥**

जिस मानव के हाथ, पाँव, मन, विद्या, तप योनि सभी अवयव सुनियन्त्रित हैं, वही तीर्थ फल भागी अर्थात् वही शरीर, काशी क्षेत्र रूपी तीर्थ है। ऐसा जीव विश्व में कहीं भी हो, वह मोक्ष पद प्राप्त करता है।

जहाँ ज्ञान है वहीं काशी है। "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" विना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। सर्व समन्वय से, ज्ञान व्यापक है, जो अन्तरिक्ष में और विश्व में सर्वत्र है। ज्ञान सर्व समन्वय से, ज्ञान स्थान काशी, या काशी ही ज्ञान स्थान है, जो सर्वोपरि है।

नगवा (नलदमयन्तीगाँव, नलगाँव) घाट से उत्तरवाहिनी गङ्गा, मणिकर्णिका तीर्थ (चक्रतीर्थ) और विश्वेश्वर राजधानी वाराणसी में उक्त सभी लक्षण सुन्दर सुघटित हैं। अनेक जन्म जन्मान्तर के शुभ कर्मों से जिन्हें जहाँ स्वयं प्रकाशिका ज्ञानराशि काशी प्राप्ति है वे धन्य हैं।

**स्नातव्यं जान्हवीतोये द्रष्टव्यः पार्वतीपतिः।
स्मर्तव्यः कमलाकान्तो वस्तव्यं काशिकास्थले ॥**

गङ्गास्नान, विश्वनाथ अन्नपूर्णा दर्शन, भगवान् विष्णु स्मरण के साथ काशी निवास अहोभाग्य का जीवन समझ कर—

सौभाग्य की बात है कि यह पीताम्बरा व्याख्या भी (जगतः पितरौ वन्दे भवानी शङ्करौ) जहाँ माता भवानी अन्नपूर्णा, पिता महेश्वर सदा शाश्वत हैं, उन्हीं सर्वज्ञ शम्भु के सन्निधान में शिवधन्य काशी नगरी में लिखी गई है और "विश्वनाथार्पणमस्तु" वचन के साथ उन्हीं को समर्पित भी है।

"पीताम्बरा व्याख्या"

पीयूषधारा की प्रमित अक्षरों की प्रमिताक्षरा टीका भी उपलब्ध है। जिसे पीयूषधारा

रूप बृहद् व्याख्यान का स्वल्पाक्षरों में सारगर्भित व्याख्यान तो कहा ही जाना चाहिए। किन्तु पीयूषधारा के अतिरिक्त कोई भी नवीन प्रक्षेप प्रमिताक्षरों में उपलब्ध नहीं है।

संक्षिप्त हिन्दी भाषा अनुवाद के माध्यम से अनेक संस्करण इस समय भी सुलभ हैं। इन हिन्दी संस्करणों में मूल ग्रन्थ के ही पद्यों का अनुवाद उपलब्ध है। पीयूष या प्रमिताक्षरा की हिन्दी अनुवाद रूप की इनमें कोई चर्चा नहीं सी मिलती है। अतः मुहूर्तचिन्तामणि और पीयूषधारा की राष्ट्रभाषा हिन्दी माध्यम के इस पीताम्बरा व्याख्यान में मैंने यथाशक्ति यथामति यथायोग्यता का परिचय देकर कुछ नवीन आशयों का भी समावेश किया है, तथापि मूलग्रन्थों की (आगम) आर्षमूलकता यथावत् बनी रहे इसे ध्यान में रखकर पीताम्बरा में बुद्धिगत कुछ शंकाओं के उल्लेख के साथ-साथ उनके निराकरण की दिशा में लेखनी से संकोच सा हुआ है। वैदिक वाङ्मय की आर्षपरम्परा में ननु नच करने का साहस नहीं हो सकने से आमूलचूड ग्रन्थ की पीयूष व पीताम्बरा व्याख्यान भी मूल से पूर्ण सहमत होकर लिखे गये हैं। तब भी कुछ दिग्देश काल के अनुसार पीताम्बरा ने नयी दिशा में मोड़ ले लिया है। अतः ग्रन्थोक्त संस्कार मुहूर्तों के समय में भी आवश्यक परिवर्तन स्वयं आ जाता है। जैसे—

आधुनिक युग के मानव की जीवनयात्रा के साधन उस प्राचीन युगीन साधनों से विभिन्न होते जा रहे हैं।

अतः तत्कालीन संस्कारादिक मुहूर्तों के काल की अपेक्षा इदानीन्तन संस्कारादिक मुहूर्तों आदि के समयों में पर्याप्त अन्तर देखा जा रहा है। जैसे प्राक्काल में यदि कन्याओं का विवाह शास्त्रोक्त ८, ९, १० वर्षों तक में ही हो जाता था तो आज के युग में समाज से यह अवधि छूट गई है, साथ ही राजकीय नियमों में भी उक्त अवधियों को अवैध घोषित कर दिया है। अतः मेरे विचार से वैवाहिक मुहूर्तों में शास्त्रीय मुहूर्तों का उपयोग जनता की इच्छा से भी सरलता के साथ करना आवश्यक होगा। आधुनिक खगोलशास्त्र भौतिकशास्त्र एवं अन्तरिक्ष विज्ञान के विचार से अनेक नवीन सिद्धान्त प्रकाश में आये हैं, उन सिद्धान्तों का प्रभाव हमारे ज्योतिष विचारों पर पड़ना अनिवार्य है। अतः मुहूर्त विनिश्चय आदि के विषय में कुछ नवीन सारिणी और सिद्धान्तों को स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है।

फलित ज्योतिष की श्रुति मूलकता में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, इस मतभेद का समुचित समाधान कर एक निश्चित निष्कर्ष यह है कि फलित ज्योतिष की प्रचलित यह वर्तमान परम्परा है, भारत के समीपस्थ पश्चिमीय देशों में अत्यन्त विकसित रूप में विद्यमान थी, ऐसी मेरी धारणा है जिसका त्रिस्कन्ध ज्योतिष मर्मज्ञ आचार्य वाराह ने पाश्चात्य ज्योतिर्विदों को ऋषि संज्ञा तक से उच्चारित किया है। जैसे निम्न पद्य से मिलता है जिसमें कि उन्होंने पश्चिम के ज्योतिर्विदों को ऋषि शब्द से उद्बोधित किया है।

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु, सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते, किम्पुनर्दैवविद्द्विजः॥

आचार्य वाराह ने (ईसवीय पाँचवीं शताब्दी) पाश्चात्य देशों की (विशेषतः यवन) भाषा के ज्ञानपूर्वक ज्योतिष ज्ञान से भारतवर्ष में ज्योतिष को एक नया मोड़ दिया था। उनके

बृहज्जातक जैसे प्राचीन जातक ग्रन्थ में क्रिय, तावुरि, जितुम, लेय पाथोन, द्यूक-जूक, कौर्प्य, तौक्षिक, आकोकेर, हृद्रोग इत्थम्हेलि (हिमन) आर, कोण, आस्फुजित, होरा द्रेष्काण अनफा, सुनफा, दुरूधरा, केमद्रुम, आपोक्लिम, पणफर, हिबुक, जामित्र, मेषूरण, द्यून, रिःफ, इत्यादि अनेक द्वादश राशियों वा द्वादश भावों के ग्रीक यवन भाषा के शब्दों का स्पष्ट उल्लेख होने से वाराहकाल तथा तत्पूर्व के आर्य भट्ट के समय में भी भारत के पश्चिमपश्चिमोत्तर देशों से भारत में ज्ञान का आदान तथा पश्चिम में प्रदान होता आ रहा है ऐसा निःसंशय ही कहा जा सकता है ।

इसी प्रकार मध्यकाल शके १५०९ (ई० १८५७) में प्रसिद्ध अनन्त दैवज्ञ के सुपुत्र नीलकण्ठ दैवज्ञ ने पारसी और अरबी शब्दों से मिश्रित वर्षफल निर्माण की "ताजक" मत की तीन तन्त्र विभाग से नीलकण्ठी नामक ग्रन्थ की संस्कृत वाङ्मय से रचना की है जो भारत-वर्ष के फलोपजीवि ज्योतिषियों के प्रत्येक के घर में उपलब्ध है, इस ग्रन्थ में संज्ञा तन्त्र के श्लोक १५, १६ से

"प्रागिक्कबालो पर इन्दुवारस्तथेत्थशालोऽपर ईसराफः ।
नक्तं ततः स्याद्यमयामणाऊ कबूलतोगैरिकबूलमुक्तम् ॥
खल्लासरं रद्द मथोदुफालि कुत्थं च दुत्थोत्थदबीर नाम्ना ।
तम्बीर कुत्थौ दुरूफश्च योगाः स्युः षोडशैषां कथयामि लक्ष्म" ॥ इत्यादि ।

स्पष्ट है कि यवनों से प्राप्त वर्षफल निर्माण ज्ञान के आधार पर आचार्य श्री नीलकण्ठ ने संस्कृत भाषा से नीलकण्ठी नामक ग्रन्थ की रचना से संस्कृत ग्रन्थ भण्डार के ज्योतिष कोष की वृद्धि में योगदान दिया था, अपने वैदुष्य से श्री नीलकण्ठ अकबर बादशाह के सभा पण्डित हो चुके थे ।

नीलकण्ठी में ग्रहों की अनेक सम्बन्धों से अनेक प्रकार के योगों का सहमाध्याय, मेषादि द्वादश राशियों में प्रतिवर्ष एक-एक राशि सञ्चलन गतिशील एक ग्रह सदृश फल देनेवाले दशवें १० ग्रह का नाम मुंथहा और उस प्रकरण को मुंथहाध्याय कहा है, जिस वर्ष में जिस पुरुष की वर्ष कुण्डली "मुंथहा" वर्ष लग्न से चौथी, आठवीं और बारहवीं होती है, ऐसी स्थिति की मुंथहा का अन्न वस्त्र द्रव्यादि से दान आवश्यक कहा गया है। संभवतः पञ्चाङ्गों में मुंथा दान सामग्री इसी आधार से लिखी जा रही है । इसी प्रकार यह गणित मर्मज्ञ गणक सार्वभौम कमलाकर भट्ट ने भी अपने सिद्धान्त तत्त्वविवेक में (वृत्त पाद की सूक्ष्म ज्या साधन गणित के अवसर पर मिर्जा उलूक वेग (प्रायः रूस देशीय) नामक ग्रहगणित की गणितगोल ज्ञान की विशुद्धभाव से संस्तुति की है । यहाँ पर इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा ।

अङ्कगणना, अङ्कगणित; बीजगणित जैसे महान् गणित विज्ञान की उत्पत्ति तो भारत में हुई थी जो आज सारे विश्व में फैली है ।

गणकचक्र चूडामणि श्रीमद्भास्कराचार्य की अङ्कगणित की संस्कृत की लीलावती नाम की पुस्तिका का अनुवाद "फैजी" नामक विद्वान् ने नृपति अकबर शाह की आज्ञा से

ई० १५८७ में पारसी भाषा में किया था मुगल परम्परा में भी विद्वानों का निरन्तर समादर रहा है।

सन् १६३४ में शाहजहाँ के राज्यकाल में आत "उल्लाह रसीदा" ने उक्त भास्कराचार्य के संस्कृत बीजगणित का अनुवाद अरबी भाषा माध्यम से किया था।

सन् १८१७ मे हेनरी टामस कोलब्रूक ने उक्त दोनों ग्रन्थों का आङ्गल भाषा में अनुवाद किया था। १८१६ में जेटेलर ने लीलावती का, १८१३ में स्टेची ने बीजगणित का अनुवाद इंगलिश में किया था, जहाँगीर बादशाह के सभा पण्डित श्री कृष्णदैवज्ञ ने बीजगणित की बीजाङ्कुरा टीका लिखी है। १६७२ में शाहंशाह औरङ्गजेब की आज्ञा से नृपति जयसिंह शिवाजी से युद्ध के लिए दक्षिण देश में गये थे, दक्षिण से लौटते समय २० वर्ष के वयस्क वेदवेदाङ्ग, दर्शनशास्त्र पारङ्गत पं० जगन्नाथ के साक्षात्कार से नृपति जयसिंह बहुत प्रभावित हुए थे। अतः पं० जगन्नाथ को अरबी और पारसी भाषा सीखनें के लिए अपने साथ जयपुर ले आये थे, और जयपुर के पण्डित सभा के प्रधान पद पर इन्हें आसीन किया, थोड़े ही समय में पं० जगन्नाथ अरबी; पारसी भाषा ज्ञान में प्रवीण हो गये थे। दिल्लीश्वर औरङ्गजेब ने जगन्नाथ के प्रौढ़ पाण्डित्य और असाधारण प्रतिभा से प्रभावित होकर इनको अपनी सभा के प्रधान पण्डित पद पर नियुक्त कर दिया। बादशाह औरंगजेब से विशेष सम्मानित होने के नाते पुनः नृपति जयसिंह के अनुरोध पर भी श्री जगन्नाथ ने जयसिंह की पण्डित सभा के प्रधान पद को सुशोभित करने की स्वीकृति नहीं दी बल्कि जयसिंह के अनुरोध पत्र का—

"दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थः।
अन्यैर्वराकैः खलु दीयमानं, शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात्" ॥

"दिल्लीश्वर ही मेरे मनोरथों की पूर्ति में समर्थ हैं, अन्य साधारणों से दी गई सहायता से नमक या तरकारी का ही खर्च चलता है।" इस प्रकार का उत्तर-पत्र भेज दिया। तत्पश्चात् पुनः नृपति जयसिंह ने औरंगजेब से ही प्रार्थना कर पण्डित राज जगन्नाथ को जयपुर में अपनी पण्डित सभा का प्रधान सभासद बनाकर जगन्नाथ की सहायता से बहुत से अरबी पारसी भाषाओं के बहूपयोग के अनेक ग्रन्थों का संस्कृत भाषा में अनुवाद कराया।

जन्म समय ई० १६५२ जयपुर नृपति जयसिंह से "पण्डितराज" जगन्नाथ ने महाराज जयसिंह की आज्ञा से अरबी भाषा के मिजास्ती नामक ज्योतिष सिद्धान्त ग्रन्थ का संस्कृत भाषा में सिद्धान्त सम्राट् नामक अनुवाद किया था। इसी प्रकार अरबी भाषा के युक्लेद ग्रन्थ का संस्कृत में अनुवाद रेखागणित के नाम से पण्डित सम्राट् जगन्नाथ ने किया है, जिसके १५ अध्यायों का हिन्दी में अनुवाद, इस लेख के लेखक के गुरुदेव के गुरुदेव म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी के शिष्य श्री शशिपाल झा ने किया है, सिद्धान्त सम्राट् तथा रेखागणित के अनुवाद से अति प्रसन्न नृपति जयसिंह ने गणितज्ञ पण्डितराज जगन्नाथ को पुरस्कार में अनेक ग्राम दिये थे। ("गणक तरङ्गिणी से अनुवादित")

जिसके प्रमाण जगन्नाथ वंशीय ग्राम आज भी जयपुर राज्य में विद्यमान है। रसगङ्गाधर ग्रन्थप्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ, इस भारत वन्द्य गणक जगन्नाथ से भिन्न हैं, ज्योतिष

में "लह्यानंकवजं दाखिला मित्यादि से ग्रीक यवन देशों के ज़्योतिष की उपलब्धि सुस्पष्ट है। भविष्यज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए चतुष्कोण सुदृढ़ पाषाण खण्ड में निर्मित बिन्दुओं के पाशा को हाथ में घुमाकर जमीन में गिराकर लग्नादि व्यय पर्यन्त १२ द्वादश भावों के विस्तारवश भविष्य फलादेश की रमल ज्योतिष की सारणि भी उक्त फलित ग्रन्थों से मेल खाती है, इत्यादि।

इस प्रकार पूर्व पश्चिम के आदान-प्रदान से फलित ज्योतिष का नित्य ज्ञानवर्धन होते आया है फलित ज्योतिप ग्रन्थों के सभी प्रकरणों में यह ग्रन्थ विस्तृत रूप में हैं तो कुछ सूत्र रूप में हैं। सभी में आमूलचूड एकवाक्यता है एक ही सिद्धान्त की भित्ति पर उत्तरोत्तर खड़े हो रहे हैं।

किन्तु वाराह से लेकर आज़ तक की परम्परा में "दशवर्ग" ज्ञान की एक ही पद्धति को आचार्यों ने स्वीकार किया है, ऐसा क्यों हुआ होगा ? प्राचीन परम्परा का संरक्षण तो होना ही चाहिये परम्परा सर्वमान्य होगी ही। विषय ज्ञान की किसी भी परम्परा के मूल में कोई सिद्धान्त अवश्य रहता है, लेखकाध्यापकाध्येतृ समाज के भ्रम से समय-समय पर यदि कोई भूल हो गई तो उस परम्परा में आगे की शिष्य परम्परा द्वारा सुधार किया जाना चाहिये। आँख मूँदकर केवल आर्षपरम्परा कहने से काम नहीं चलेगा, ग्रहगणित सिद्धान्त परम्परा स्वतः उपपत्तिमान है, या स्वतः आगम है, या स्वतः आर्ष है "ज्योतिष ग्रहगणित" सिद्धान्त मूलक फलित ज्योतिष के लिए ग्रहगणित ही आगम है।

(२) भारतीय फलित ज्योतिष में गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त या अयन-चलन का कोई असर नहीं हुआ है, जहाँ पर मेष राशि ग्रह का असर पश्चिम के फलित ज्योतिष में आजकल २२ या २३ मार्च को हो जाता है, वहाँ भारतीय पद्धति से मेष राशि गतग्रह का फल १३ या १४ अप्रैल से ही माना जा रहा है पूर्व पश्चिम के मतभेदों का अवश्य कोई समन्वय हो जाना चाहिए। यतः मुञ्जाल के समय में अयनांश ० शून्य था तत्पश्चात् के भारतीय ग्रहगणितज्ञ अपने सिद्धांतों में गुरुत्वाकर्षण (अयनांश) की चर्चा करते आ रहे हैं, ज्योतिषशास्त्र का फलादेश निश्चय लग्न बल के अधीन है। भारतीय ग्रहगणित सिद्धान्तों ने भी गुरुत्वाकर्षण संस्कार से ही लग्न साधनगणित स्वीकार किया है। जिसे वे सायन लग्न या गुरुत्वाकर्षण संस्कार से उत्पन्न सही लग्न को लग्न मानते हुए फलादेश के लिए पुनः सायन लग्न को निरयण बनाकर उससे फलादेश करते रहते हैं। गणेश दैवज्ञ के मत से यतः ईसवी ५वीं तक में गुरुत्वाकर्षण (अयनांश) शून्य था जो अपनी प्रतिदिन या मास या वार्षिक गति से आज तक २३° या लगभग २१, २२, २३ दिनों से अन्तरित हो गया है। तो ऐसी स्थिति में १४ जनवरी के दिन होने वाले रवि ग्रह का फल सर्वत्र भी २३ दिसम्बर से ही क्यों न माना जाय ? सही अर्थ का उत्तरायण २३ दिसम्बर ही है एवं अयनांश भगण जो लगभग २६००० वर्षों में परिपूर्ण होगा इतने लम्बे समय के समय तक फलित ज्योतिष अपरिवर्तनीय होगा। यदि सृष्टि के प्रारम्भिक सम्पात के प्रारम्भिक दिन के खगोल के आधार पर फलित निर्माण हुआ है, जो सदा एकरूपता के लिए है, तब तो निरयण गणना भी ठीक है। गुरुत्वाकर्षण की प्रतिदिन की

सूक्ष्मगति से फलित ज्योतिष के धरातल पर कोई असर नहीं पड़ेगा ऐसे विचारों से युक्तियों का सहयोग नहीं हो पा रहा है। स्वल्पान्तर के अयनांश की वार्षिक गति, ५०″ मानकर पूरे क्रान्ति वृत्त के २१६०० कलाओं में ग्रहगणित से अयनांश चलन काल ५०″ विकला में १ वर्ष तो

१२ राशि × ३० = ३६० अंश × ६० = २१६०० कला × ६०=१२९६००० विकला

$$\text{में} \quad \frac{\text{१ वर्ष तो} \times \text{१२९६०००}}{\text{५० विकला में}} = \text{२५९२० वर्ष}$$

स्वल्पान्तर से २६००० वर्षों में गुरुत्वाकर्षण से सारे खगोल का भ्रमण = ३६०° अंश हो जाता है। इस प्रकार २६००० वर्षों में चल सम्पात पुनः अपनी जगह पर सृष्टि के आदिम बिन्दु स्थिर सम्पात पर आ जावेगा।

फलित ज्योतिष में इस प्रकार स्थिर सम्पात बिन्दु से ज्ञात ग्रहों की दूरी के आधार से ही फलित ज्योतिष चल रहा है। जो वास्तव में वह सम्पातीय मेष बिन्दु इस समय २३°.... अंश पीछे हट जाने से सभी ग्रह २३° अंश के अयनांश जन्य फल से अन्तरित हो जाते हैं। स्थिर सम्पात से तात्पर्यतः १४ जनवरी के दिन होने वाले मकर राशि के सूर्य की सत्ता २३ दिन पूर्व ही मकर में २३ दिसम्बर को हो गई है, ग्रहगणित ने २३वें दिसम्बर को ही उद्गमन उत्तरक्रान्ति दिन, उत्तरगोल में दिन वृद्धि आदि खगोल ने सही अर्थ में स्थापित किया है, ऐसी स्थिति में फलित ज्योतिष के फलादेश कालों में भी परिवर्तन आवश्यक है, या वे सदा अपरिवर्तनीय ही रहेंगे ?

इसी प्रकार शुद्ध दश वर्ग प्रणाली

इस ग्रन्थ के प्रणेता आचार्य श्रीराम और पीयूष व्याख्याकार वाराहमिहिर बृहज्जातक ई० ५००, कल्याण वर्मा की सारावली (ई० ५७८) पद्मनाभ की व्यवहार प्रदीप, श्रीपति (वे० ९९९) वल्लाल सेन का अद्भुत सागर, (११६८ ई०) कालिदास का ज्योतिर्विदाभरण (ई० १२४२) गणेश दैवज्ञ की विवाह वृन्दावन टीका (ई० १५०७) ढुण्ढिराज का जातकाभरण (ई० १५४१), नीलकण्ठ की नीलकण्ठी (ई० १५५७), नारायण के मुहूर्त (ई० १५७१), गणेश के जातकालङ्कार, (ई० १५७८) विट्ठल दीक्षित के मुहूर्तकल्पद्रुम, (ई० १५८७) शिवदैवज्ञ के मुहूर्तचूडामणि (ई० १५९१), बलभद्र मिश्र का हायनरत्न (ई० १५९२)....प्रभृति अनेक सभी ग्रन्थों में दश वर्ग की साधन की एक ही रीति उपलब्ध हो रही है। नीलकण्ठी में नाम मात्र भेद हुआ है।

मेरे मत से दशवर्ग के कुछ वर्गों की प्रणाली में भ्रम पैदा होता है प्राचीनों की दशवर्गों को साधन पद्धति उपपत्ति सिद्ध नहीं प्रतीत होती है। प्रतीत होता है कि उक्त दशवर्ग में के होरा द्रेष्काण, दशमांश और त्रिंशांश में सभी पूर्वाचार्यों ने एकरूपता से बाराहमिहिर की ही प्रणाली अपनायी है। वराहाचार्य ने होरा द्रेष्काण दशमांश और त्रिंशांश साधन की सदोष की यवन प्रणाली में त्रुटि तो समझी ही होगी किन्तु शील सङ्कोच के भय वश उस यवन मत के विरोध में उन्हें आवाज उठाने का साहस न हुआ होगा, अथवा सम्भव है आदान-प्रदान में विघ्नभय से अथवा किन्हीं और कारणों से आचार्य वाराह भी उक्त यवन मत में सहमत हो गये होंगे।

इसी प्रकार फलित विकास ग्रन्थ के पृष्ठ १५ से उद्धृत—

दशवर्ग की शुद्धरीति

(१) "मेष, वृश्चिक का स्वामी मंगल, वृष, तुला का शुक्र, मिथुन, कन्या का बुध, कर्कट का चन्द्रमा, सिंह का सूर्य, धनु मीन का गुरु और मकर, कुम्भ का स्वामी शनि होता है। इसी को राशि या गृह कहते हैं। जिस ग्रह की जो राशि है उस राशि का जो-जो वर्ग जहाँ-जहाँ पड़ेगा वह सब वर्ग उस राशीश ग्रह के वर्ग होंगे।

(२) द्विभाग या होरा एक ही वस्तु का नाम है। प्रत्येक राशि में पन्द्रह अंश की दो होराएँ होती हैं विषम राशि में पहिले सूर्य की, पीछे चन्द्रमा की तथा सम राशि में पहिले चन्द्रमा की पीछे सूर्य की होरा होती है।

आजकल प्रचार इसी रीति का है। परन्तु यह रीति आर्ष नहीं है। वाराहमिहिर ने यह भी लिखा है कि पहिली होरा राशीश की दूसरी एकादशेश की होती थी यह भी किसी का मत है। सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों ही की होरा हो यह बात वाराहमिहिर के "होरेशर्क्ष-दलाश्रितैः शुभकरोराद्दृष्टशशीतद्गतः" इस मत के विचार से नहीं निकलती। जो ग्रह सूर्य होरा में हो वह सिंह में समझा जाय और जो चन्द्रमा की होरा में हो वह कर्क में समझा जाय यह बात भी काल्पनिक है किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं है। इसे श्लोक में "ऋक्षदल" होरा का नाम लिखा है। वर्त्तमान पद्धति इसके विरुद्ध है इससे प्रसिद्ध होराक्रम असंगत जान पड़ता है।

जैमिनी सूत्र की कारिका में राशि की होरा लिखी है।

"राशेरर्द्धं भवेद्धोरा ताश्चतुर्विंशतिः स्मृताः।
मेषादितः तासां होराणां परिवृत्तिद्वयं भवेत् ॥"

इस नियम से वाराहमिहिर के पूर्वोल्लिखित वचन की पुष्टि होती है इस कारण ऋषि सम्मत यही होरा की रीति शुद्ध है। ज्योतिर्विदाभरण नाम की पुस्तक जो वाराहमिहिर के समकालीन जान पड़ती है उसके राजसत्ताध्याय में लिखा है।

शस्तस्तिमिस्त्रीजितुमादिहोरास्थिरांशगुर्वंशवतीह लग्ने।
चरेतरेश्वशुभदशुभदशुजारैं स्त्र्यायारिगैर्भूमि भुजोऽभिषेकः ॥

इसका अर्थ यह है कि चर से अतिरिक्त अर्थात् स्थिर द्विस्वभाव लग्न हो उसमें मीन, कन्या, मिथुन और मेष की होरा हो स्थिर राशि का या वृहस्पति का नवांश हो राहु, सूर्य, शनि और मंगल लग्न से तृतीय एकादश और षष्ठ में हों तो राजा का अभिषेक करना।

इससे भी राशि का होरा होना ही सिद्ध होता है। ग्रह की होरा हो यह रीति इसके बाद शुरू हो गई इससे भी निकलती है।

शुद्ध होरा चक्र।

१५°	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
३०°	मे.	मि.	सि.	तु.	ध.	कुं.	मे.	मि.	सि.	तु.	ध.	कुं.
	वृ.	क.	कं.	वृ.	म.	मी.	वृ.	क.	क.	वृ.	म.	मी.

प्रत्येक राशि में दश-दश अंश के तीन हिस्से होते हैं। इन्हीं को द्रेष्काण या विभाग कहते हैं। कभी पहले के समयों में यह द्रेष्काण जिस राशि में देखा जाता था पहला उसी का, दूसरा उसके द्वादश का और तीसरा उसके एकादश का होता था। आजकल यवनों की रीति प्रचलित है। उसके अनुसार प्रथम पचम और नवम राशि के द्रेष्काण होते हैं।

"द्रेष्काणकाः प्रथमपञ्चनवाधिपानाम्"

तथा च—

"द्रेष्काणसंज्ञामपि वर्णयन्ति स्वद्वादशैका दशराशिपानाम्"

राशियों का स्वरूप प्राचीनों ने लिखा है।

द्रेष्काणैस्तस्कराः स्मृताः

इससे द्रेष्काण से स्त्री वा पुरुष चौर का निश्चय होता है। वर्तमान नियम के अनुसार विषम राशि में सभी द्रेष्काण पुरुष होते हैं। तथा समराशि में सभी द्रेष्काण स्त्री राशि के होते हैं। परन्तु द्रेष्काण स्वरूप में विषम राशि में स्त्री द्रेष्काण तथा समराशि में भी पुरुष द्रेष्काण मिलता है। जो युक्ति संगत नहीं जान पड़ता, परन्तु जैमिनिसूत्र की कारिका में जो द्रेष्काण की विधि लिखी गई है उस रीति का अवलंबन करने से सभी द्रेष्काण स्वरूप ठीक मिलते हैं। इससे वही नियम ठीक जान पड़ता है।

राशि त्रिभागा द्रेष्काणास्ते च षट्त्रिंशदीरिताः।
परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादि क्रमतो भवेत्॥ २॥

शुद्ध द्रेष्काणचक्र।

मे. सि ध.	वृ. क. म.	मि. तु. कुं.	क. वृ. मी.	
मेष	कर्क	तुला	मकर	१०
वृष	सिंह	वृश्चिक	कुंभ	२०
मिथुन	कन्या	धन	मीन	३०

दशमांश प्रत्येक राशि के दश हिस्से का नाम है। यह तीन-तीन अंश का दश होता है। वर्तमान समय में विषम राशि में तदादि और सम में नवमादि लिखा मिलती है। परन्तु इसके नामके अनुसार इसकी कल्पना नहीं मिलती। युक्ति भी नहीं दीख पड़ती, इससे इसको भी मेषादिक हों जानना चाहिए, क्योंकि राशिहोरा द्रेष्काण सप्तमांश नवांश षोडशांश तथा त्रिशांश ये मेषादि हो तथा दशमांश मेषादि न हो यह युक्ति विरुद्ध प्रतीत होता है। इससे इसको भी मेषादिक ही जानना चाहिए।

मे. तु.	वृष वृ.	मि. ध	क. म.	सि. कुं.	क. मी.	
१	११	९	७	५	३	३।०
२	१२	१०	८	६	४	६।०
३	१	११	९	७	५	९।०
४	२	१२	१०	८	६	१२।०
५	३	१	११	९	७	१५।०
६	४	२	१२	१०	८	१८।०
७	५	३	१	११	९	२१।०
८	६	४	२	१२	१०	२४।०
९	७	५	३	१	११	२७।०
१०	८	६	४	२	१२	३०।०

इसको यवनों ने भी ऐसा माना है जैसा कि—

"लवीकृतो व्योमचरोङ्गशैल"

इत्यादि श्लोक द्वारा स्पष्ट है।

त्रिशांश चक्र

	मे. मि. सिं. तु. ध. कुं-	वृ. कर्क कन्या वृ. म. मी.
१	१	७
२	२	८
३	३	९
४	४	१०
५	५	११
६	६	१२
७	७	१
८	८	२
९	९	३
१०	१०	४
११	११	५
१२	१२	६
१३	१	७
१४	२	८
१५	३	९
१६	४	१०
१७	५	११
१८	६	१२
१९	७	१
२०	८	२
२१	९	३
२२	१०	४
२३	११	५
२४	१२	६
२५	१	७
२६	२	८
२७	३	९
२८	४	१०
२९	५	११
३०	६	१२

त्रिशांश की बात विलक्षण है। नाम तो त्रिशांश है। परन्तु हिस्से पाँच ही है।

कुजरविजगुरुज्ञ शुक्रभागाः
पवनसमीरण कौर्पिजूकलेयाः
अयुजि युजितुभे विपर्यस्थाः
शशिभवनालिझषान्तमृक्षसन्धिः

इसको यदि पञ्चमांश कहा जाय तो कोई हानि नहीं क्योंकि पञ्चमांशेश ही इसके स्वामी है। अंश किसी ने घटावढ़ा दिया—जैसा यवन-मत में लिखा है।

ओजर्क्षेपञ्चमांशेशाः
कुजार्कीज्यज्ञभार्गवाः।
समभेव्यत्ययाज्ज्ञेया
द्वादशांशाः स्वभात् स्मृताः॥

प्राचीन ऋषि प्रणीतरीति त्रिशांश की प्रत्येक राशि में हिस्से की है। त्रिशांशवश कई मूक्ष्मवस्तु का विचार लिया है। इस प्रथा को जब वाराहमिहिर ने छोड़ा और ·········ग्रीक वालों का मत लिया उस समय यदि नाम बद-लते तो लोग भड़क उठते। इसी कारण नाम नहीं बदला यह अनुमान है।

(१०) षष्टचंश प्रत्येक राशि में ६० हिस्से का नाम है। यह तीस-तीस कला का होता है। जिस राशि में देखा जाय तदादि क्रम से होता है। एक·······पुस्तक "बृहत्पाराशर होरा" है उसमें षष्टचंश चक्र अशुद्ध रख दिया गया है। और भी विचारणीय विषय—ग्रहों के उच्च विन्दु-

सूर्यादि ग्रहों का उच्चनीचादि चक्र

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	
० १०	१ ३	९ २८	५ १५	३ ५	११ २७	६ २०	उच्च
६ १०	७ ३	३ २८	११ १५	९ ५	५ २७	० २०	नीच
सिं.	वृ.	मे.	क.	ध.	तु.	कुं.	मूलत्रिकोण

(१) इसमें जो उच्च और नीच लिखे गये हैं आजकल के ज्योतिषी इसी से व्यवहार करते हैं। उच्च-नीच वाराहमिहिर के समय से इस देश में प्रसिद्ध हुआ है।

वास्तविक में उच्च ग्रहों के मन्दोच्च का नाम है, नीच भी मन्दोच्च के सातवें स्थान को कहते हैं। उच्च में रहने से ग्रह अपनी कक्षा में प्रायः मध्यमा गति की अपेक्षा अल्पगति से चलने के कारण विशेष फलद होता है, नीच में रहने से इसका विपरीत भाव धारण करता है। इसके ऊँच-नीच वश फल का विचार करना आवश्यक है। प्रसिद्ध उच्च भी किसी समय के मन्दोच्च ही का नाम है। परन्तु जैसे-जैसे अनधिकारी इस शास्त्र को पढ़ने लगे, गणित सम्बन्धी ज्ञान शिथिल होता गया और शुद्ध परिपाटी छूट गयी। बहुत से ज्योतिष के ग्रन्थ-कार कुछ भी सिद्धान्त नहीं जानते थे, उनको साहित्य व्याकरण का उत्तम ज्ञान था, कविता-शक्ति अच्छी थी, कई पुस्तकों को इकट्ठा करके उन्होंने अपना एक ग्रन्थ बना दिया, यदि इसकी समालोचना लिखी जाय तो एक बड़ी पुस्तक बन जायेगी। उन ग्रन्थकारों में प्रसिद्ध श्रीपति भट्ट, ज्ञानराज, नारायण भट्ट .... इत्यादि कई आचार्य हैं। इस मेरे लेख को देखकर विद्वान् मेरी हँसी उड़ावेंगे, परन्तु यदि इसका विचार करेंगे तो इस मेरे लेख को सर्वथा ठीक पावेंगे। यदि एक सूर्य के ही मन्दोच्च निकालते हैं तो भारत में ज्योतिष के उन्नति का समय वर्षात्मक ११०८५२७ आता है।

बहुतों के मन में यह विश्वास है कि वर्तमान समय में प्रसिद्ध उच्च राशि फलित के लिए नियत है। यदि मेष में रवि का उच्च माना जाता है तो श्री रामचन्द्र जी का जन्म रामनवमी को नहीं आता और—

ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये वाक्पताविन्दुना सह॥

यह वाल्मीकि भगवान् का पद कथमपि अशुद्ध नहीं है। इससे यह कल्पना अवश्य ही ठीक हो जाती है कि उस समय रवि का मन्दोच्च मीन राशि में था, इससे रामचन्द्र भगवान् की जो प्रसिद्ध कुण्डली है, वह अशुद्ध प्रतीत हो जाती है। परन्तु उस कुण्डली के ठीक होने का प्रमाण किसी आर्ष ग्रन्थ में नहीं मिलता उसी प्रकार वाराहमिहिर के—

अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादि तुङ्गाः।
दशशिखि मनुयुक् तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्त नीचाः ॥

इस श्लोक के बदले में कोई आर्ष वचन नहीं मिलता जिससे कि यह प्रामाणिक माना जाय।

चन्द्रमा के उच्च की दैनिक गति ६ कला ४१ विकला के करीव होती है। उसको अहर्गण से बनाना ही चाहिए, सूर्यादि ग्रहों का मन्दोच्च सूर्यसिद्धान्त के अनुसार विक्रम संवत् १९७६ में इस प्रकार था—

सू.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.
२	४	७	५	२	७
१७	१०	१०	२१	१९	२६
१७	२	२८	२१	५१	३७
९	३२	५	४४	५५	३३

सूर्य का मन्दोच्च प्रायः नव वर्षों में, मङ्गल का सोलह वर्षों में बुध का नव वर्षों में, बृहस्पति का चार वर्षों में, शुक्र का छः वर्षो में और शनि का पच्चीस वर्षों में एक विकला चलता है। अभीष्ट संवत् में अनुपात द्वारा बना लेना उचित है। इसी उच्च से सप्तम नीच राशि होती है। (फलित विकास से उद्धृत)

इस प्रकार के अनेक विवादों विकल्पों के बावजूद फलित ज्यौतिष के लिए कोई निश्चित नियम न हो सकने से फलित कहने से मेरा मन अत्यन्त संकुचित होता रहा है। जो कि गणित एवं फलित ज्योतिष मनुष्य मात्र के कल्याण हेतु पग-पग पर पथ-प्रदर्शक है किन्तु इसीलिए आजकल के जीवन में जनसाधारण की आस्था इन विषयों पर से हटती जा रही है इस अनास्था का कारण केवल आधुनिक पदार्थवादी अथवा घोर यथार्थवादी दृष्टि ही नहीं है अपितु ज्योतिष विद्या के वास्तविक मर्मज्ञों की संख्या कम होते जाना भी है। फलित ग्रन्थों में भी ऐसे विरोधाभास प्रतीत होते हैं, जिनके कारण भविष्य की घोषणायें समय पर घटित नहीं होती अथवा उनके परिणाम विपरीत देखे जाते हैं।

उदाहरणार्थ यात्रा करने के लिए जो शुभ मुहूर्त घोषित किये गये हैं, उन्हीं में दुर्घटनाएँ हो गई हैं। जिन तिथियों में विशिष्ट दिशा की ओर गमन वर्जित हैं, उधर जाने पर कोई दुष्परिणाम नहीं हुआ। इसी प्रकार वर-वधू का विवाह करने के लिए आजकल कुण्डली में हेर-फेर करना साधारण सी बात हो चली है इसमें भावी जीवन संघर्षमय या अशान्तिमय हो गया है, अथवा कुण्डली के अनुसार विवाह अनुचित है किन्तु विवाह कर लेने पर वैवाहिक जीवन बड़ा सुखद है। मैंने तो यहाँ तक देखा है कि कन्या की ग्रहदशा में कहीं वैधव्य योग नहीं लिखा फिर भी विवाहोपरान्त एक दो वर्षों में वह विधवा हो गई ऐसी घटनाओं को देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ज्योतिष ग्रन्थों में भी कहीं गणित फलित सम्बन्धी अशुद्धियाँ हैं, जिसके फलस्वरूप ठीक भविष्य फल ठीक समय पर नहीं लगते अतः मूल ग्रन्थों में भी आवश्यकतानुसार संशोधन होने चाहिए।

ज्योतिष विषय जनसाधारण की उदासीनता का एक मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि इसके नियमों में सार्वकालिक एकरूपता नहीं पाई जाती। जैसे उत्तर भारत में विवाह के जो मास नियत हैं किन्तु दक्षिण भारत या बंगाल में ऐसे कोई मास उक्त अनुक्त नहीं हैं। भारतीय ऋषियों का यह भी वचन है कि विवाह सार्वकालिक होने उचित हैं, फिर भी कुछ मास अनुक्त घोषित कर दिये जाते हैं। फिर उन्हीं के भीतर शुभ मास खोज लिए जाते हैं। होना यह चाहिए कि ज्योतिष के नियम व्यापक रूप से सभी स्थानों पर समान रूप से लागू हों, अच्छे दिनों में कोई शुभ कार्य कराने में कोई हानि नहीं, अर्थात् अमावस्या, संक्रान्ति, ग्रहण भद्रा व्यतीपात रिक्तादि दोषों जैसे को छोड़कर शेष समयों में शुभ कार्य कहीं पर भी जनता विशेष की सुविधानुसार कराने में कोई हानि नहीं। इससे ज्योतिष ग्रन्थों में जनसाधारण की रुचि बढ़ेगी ही।

मैं तो व्यक्तिगत रूप से ज्योतिष का क्षेत्र केवल मुहूर्तों के गणित फलित आदि तक ही सीमित नहीं मानता जैसा कि प्रायः समझा जाता है। वैयक्तिक भविष्य घोषणाएँ तथा दूरानुभूति जैसे विषय भी ज्योतिष के अन्तर्गत समाविष्ट हो जाते हैं, कुछ व्यक्ति विशिष्ट यौगिक सिद्धियों के आधार पर सुदूर भविष्य तक की घटनाओं को देख लेते हैं और तत्सम्बन्धी भविष्यवाणियाँ सिद्ध कर देते हैं। ऐसी भविष्यवाणियाँ सही हो जाती हैं, यह सिद्धि प्रदत्त ज्ञान आगामी घटनाओं का अनुमान, जिन कल्पनाओं द्वारा किया जाता है वह ज्योतिष विद्या के गणित का एक विशिष्ट प्रकार है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि तत्सम्बन्धी ग्रन्थों के नियमों में एकरूपता लाई जाय और सरल भाषा में इनका बोध जनसाधारण तक पहुँचाया जाये तभी ज्योतिष की महत्ता और उपयोगिता ठीक समझी जा सकती है। अतः इस प्रकार के वक्तव्य की ओर भी अध्येतृ वर्ग का ध्यान आकृष्ट करते हुए उक्त अपने संक्षिप्त अनुभवों की चर्चा के साथ यह विनम्र निवेदन भी पाठकों के सामने रखकर मनस्तोष करता हूँ।

पीताम्बरा व्याख्यान के लिखने में सरयूमूल समीपस्थ सरयू पश्चिम तीर उत्रौड़ा ग्रामस्थ आङ्गिरस गोत्रीय श्रीख्यालीराम जोशी तथा भ्रातुष्पुत्र श्री पं० सीतावर जोशी वैदिक, सुपुत्र स्वर्गीय श्री पं० पीताम्बर जोशी जुनायलस्थ से प्रेषित पाण्डुलिपि (स्व० अग्रज पं० पीताम्बर जी की विशिष्ट स्थलों पर कुछ टिप्पणियों से भी सहायता ली गई है।) के लिए उन्हें धन्यवाद देकर विश्राम करते हुए विनम्र निवेदन है कि इस द्वितीय संस्करण में भी अज्ञान विस्मृति और भ्रान्ति से जो त्रुटियाँ रह गई हैं उन्हें वे स्वयं सुधार देंगे या प्रकाशक को बता देंगे जिससे भविष्य के संस्करणों में विशेष स्वच्छता आती रहेगी।

विजया १० सं० २०३६
हरिहर्ष निकेतन १।२८
नगवा, वाराणसी ५।

केदारदत्त जोशी
नलगाँव (नगवा)
वाराणसी–५

विषय सूची

२. नक्षत्रप्रकरणम्

॥ श्रीः ॥

श्रीगणेशाय नमः

अनन्तज्योतिर्वित्पुत्रश्रीरामदैवज्ञविरचितः

मुहूर्तचिन्तामणिः

श्रीमद्गोविन्दविरचितपीयूषधाराख्यव्याख्यासहितः

तथा

पर्वतीय- श्रीकेदारदत्तज्योतिर्विद् कृत पीताम्बरा"

हिन्दी व्याख्या सहित

श्रीगणेशाय नमः ॥ दधानंभृंगालीमनिशममले गंडयुगले ददानं सर्वार्थान्निजचरणसेवासुकृहिते । दयाधारं सारं निखिलनिगमानामनुदिनं गजास्यं स्मेरास्यं तमिह कलये चित्तनिलये ॥१॥ निपीतध्वांताय प्रसृमरकरायोग्रमहसे निकामं कामानां वितरणविनोदव्यसनिने । समस्तप्रत्यूहप्रशमनकृते श्रीदिनकृते नमस्तस्मै यस्मै स्पृहयति समस्तांबुजननी ॥२॥ लसल्लक्ष्मीलीलावसतिरनिशं वेदविहितस्फुरद्धर्माधारः श्रितसुखपयोदः प्रतिदिवम् । अतीव प्रख्यातः स जयति गुणाना जननभूर्विदर्भाख्यो देशो हरिरिव सदानन्दजनकः ॥३॥ तस्मिन्विदर्भविषये विषये वितृष्णश्चिंतामणिर्द्युमणिरेव वभूव मूर्तः । जाग्रच्चतुर्मुखचतुर्मुखशायि विद्यामाद्यां प्रवर्तयितुमज्ञ पवित्रकीर्तिः ॥४॥ वादैर्विजित्य धरणीतलमासमुद्रमुन्निद्रतर्कशतकर्कशबुद्धिसिद्धैः । चत्वार ऊर्जितसमर्जितकीर्तिदंभस्तंभा दिशासु रचिताः सकलासु येन ॥५॥ ज्योतिर्विदुज्वलयशोहरणाय किं वा चंद्रांशुनिर्मलकलाभरणाय किं वा । विद्यासरोरुहदृशःशरणाय किं वा श्रीमाननं त इति तत्तनयोऽजनिष्ट ॥६॥ यस्मात्पद्माख्यपत्न्यामतिविमलमती वाक्पती दिक्पतीनामाशाः कासारजाभस्फुरदधिकयशोरश्मिभिर्व्याप्य भातौ । प्राभूता तौ तनूजौ श्रुतिगणगदिताचारधारापवित्रौ ज्येष्ठः श्रीनीलकंठस्तदनु गुणगणालंकृतो रामनामा ॥७॥ सीमा मीमांसकानां कृतसुकृतचयः कर्कशस्तर्कशास्त्रे ज्योतिःशास्त्रे च गर्गः फणिपतिभणितिव्याकृतौ शेषनागः । पृथ्वीशाकब्बरस्य स्फुरदतुलसभामंडनं पण्डितेंद्रः साक्षाच्छ्रीनीलकंठः समजनि जगतीमण्डले नीलकण्ठः ॥८॥ रामो हेरम्बभक्तेरधिगतविशदानेकविद्योऽनवद्यो बुद्धिप्रद्योतमानो गणितगुणवतां मानवाना सुखाय । ग्रंथैर्नानाप्रकारैरतिकठिनतरग्रंथनक्रे विशाले ज्योतिः शास्त्रार्णवे द्राग्दृढतरमतुलं सेतुबंधं चकार ॥९॥ श्रुतिस्मृतिप्रोक्तसमस्तकर्मोपयुक्तमानंदितशिष्टलोकम् । मुहूर्तचिंतामणिनामकं स ग्रंथं व्यधाच्छर्वपुरे स्वपद्यैः ॥१०॥ श्रीनीलकंठस्य बभूव पत्नी सा चंद्रिकाख्योभयवंशभूषा । नारायणस्येव समुद्रकन्या शर्वस्य गौरीव विराजते या ॥११॥ तस्माद्दैवविदग्रगण्यतिलकाच्छ्रीनीलकंठात्तया गोविंदाख्यसुतोऽजनि स्वगुरुतः संप्राप्तविद्यागणः । यः शास्त्रामृतसिंधुबंधुरवचोवीचीषु नित्योदितां सानंदं समवाप्य भूरि कृतवान् ग्रंथे श्रमं ज्यौतिषे ॥१२॥ अनेकबुधमंडलीविरचितां हि टीकाकृतौ निधाय हृदयेऽर्थनामिह मुहूर्त-

चिंतामणेः। निगूढतरतद्गतप्रचुरभावमात्मोक्तिभिर्बुधा विवरणे करामलकमाशु कर्तुं यते ॥१३॥ मुहूर्तचिंतामणिदुग्धसिंधुमामथ्य युक्तिव्रजमंदरेण। गोविन्दसंज्ञस्तनुते सुखाय पीयूषधारां भुवि भूसुराणाम् ॥१४॥ तत्रादितो गाणपतं प्रणम्य पादाब्जयुग्मं विदुषां सुतुष्ट्यै। शुभाशुभाध्याय-भवां हि टीकां गोविंददैवज्ञ इमां करोति ॥१५॥

अथ ग्रंथादौ ग्रंथमध्ये ग्रंथांते च मंगलमाचरणीयमवश्यमिति शिष्टाचारः। उक्तं च महाभाष्ये—'मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलांतानि च शास्त्राणि प्रथंते वीरपुरुषाणि भवंत्यायुष्मत्पुरुषाणि च' इति। तच्च मंगलं त्रिविध—'आशीरूपं नमस्कारूपं वस्तुनिर्देशरूपं च' इति। उक्तं च दंडिना काव्यादर्शे—'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' इति। वस्तुनिर्देशो नलादेर्महाराजराजस्य सिद्धादिशब्दानां वा ग्रंथादौ कथनम् तत्र तावद्गार्ग्यमुनिवरवंशतिलकमैत्रावरुण्यलंकारदिगंतर्गतमातृपुरनिवासी सकलज्योतिर्विन्मुकुटरत्नचिंतामणिज्योतिर्वित्पुत्रानंतज्योतिर्वित्पुत्रो नीलकंठज्योतिर्विदनुजो रामज्योतिर्वित्त्रिस्कंधज्योतिःशास्त्रसरोजनिचयभास्करो ग्रंथकृन्मुहूर्तचिंतामणिनामकं श्रौतस्मार्ताद्यनेकमौपयिकं संहितास्कंधांतर्गतनानामुहूर्तसंग्रहरूपं ज्यौतिषग्रंथं चिकीर्षुरनेकजन्मोपार्जितदुरितसंभूतविघ्नध्वंसकामो निर्विघ्नग्रंथसमाप्तिप्रचयगमनार्थं विशिष्टशिष्टाचारानुमित श्रुतिबोधित कर्तव्यताककर्माभिमतगणेशदेवताशीर्वादरूपं मंगलमिंद्रवज्राच्छंदसोपनिबध्नाति—

गौरीश्रवःकेतकपत्रभंगमाकृष्य हस्तेन ददन्मुखाग्रे।
विघ्नं मुहूर्ताकलितद्वितीयदंतप्ररोहो हरतु द्विपास्यः॥ १ ॥

पीयूषधारा—गौरीत्यादिना। द्विपास्यो विघ्नं हरत्वित्यन्वयः युष्माकमित्यध्याहारः। द्विपस्य हस्तिन आस्यमिवास्यं मुखं यस्य स द्विपास्यो गणेशो युष्माकं विघ्नं हरतु निराकरोतु। 'आशिषि लिङ्लोटौ' इति लोट्। कीदृशो द्विपास्यः? गौरीश्रवःकेतकपत्रभगं गौरी पार्वती तस्याः श्रवसी कर्णौ तयोः स्थितं यत्केतकपत्र केतकीवृक्षस्य पुष्पं केतकं तस्य पत्रं तस्य भंगोऽशस्तं हस्तेन शुंडादंडेन कृत्वा आकृष्य हठाद् गृहीत्वा मुखाग्रे स्वमुखौष्ठे ददाति भक्षणार्थं स्थापयतीति ददत्। अनेन बाललीला गणेशस्य सूचिता। बालो हि मातृसमीपवर्तियत्किंचित्स्वेष्टं वस्तु बलात्कारेण गृहीत्वा मुखे निक्षिपति। अत एव कीदृशो गणेशः? मुहूर्ताकलितद्वितीयदंतप्ररोहः। मुहूर्तेन क्षणेनाकलितः धातूनामनेकार्थत्वात् अनुहृतो हस्ति द्वितीयदंतसादृश्यं प्रापितो द्वितीयदंतस्य प्ररोह उद्गमो येन सः। अनेनात्याश्चर्यं सूचितं भवति। तथा हि—हस्तिनो दृश्यमाना द्विदंता एव। गणेशस्त्वेकदंत एवेति पुराणप्रसिद्धम् केतकप..स्य मुखस्थापनसमये यावन्निगरणं करोति तावद्गणेशोऽपि द्विदंत एवालोकि लोकैः। अद्भुतोपमाख्योऽलंकारः। उक्तं च दंडिना काव्यादर्शे—'यथाकथंचित्सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते। उपमा नाम सा तस्याः प्रपंचोऽयं प्रदृश्यते॥ यदि किंचि-द्भवेत्पद्म सुभ्रुविभ्रांतलोचनम्। तत्ते मुखश्रियं धत्तामित्यसावद्भुतोपमा॥' इति, श्लोकार्थो व्याख्यतः। तत्र गणेशस्य नमनादिरूपा पूजा ब्रह्मवैवर्तेऽभिहिता—'ढुंढिराजः प्रियः पुत्रो भवान्याः शंकरस्य च। तस्य पूजनमात्रेण त्रयोऽपि वरदाः सदा॥' त्रयः ब्रह्मविष्णुशिवाः। 'गणेशः सर्वदेवानामादौ पूज्यः सदैव हि। सर्वेरपिः महाविघ्ननाशकोऽन्यो न विद्यते॥' इति। शिष्टाचारोऽप्येतन्मूलक एव। तथा—'सुमुखश्चैकदंतश्च

कपिलो गजकर्णकः । लंबोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचंद्रो गजाननः । द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि । विद्यारंभे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा । संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥' इति । गौरीति । 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीष् । केतकं केतक्याः पुष्पसंज्ञेयमवयवार्थे 'अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः' इत्यण । 'पुष्पमूलेषु बहुलम्' इति तस्य लुक् । ददत् । ददातीति ददत् । शतृप्रत्यये जौहोत्यादिकत्वाद्विकरणस्य शपः श्लौ सति' 'श्लौ' इति द्विर्वचने 'उभे अभ्यस्तम्' इत्तभ्यस्तसंज्ञायां 'श्नाभ्यस्तयोरातः' इत्याकारलोपः । ततः 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः, इति प्राप्तस्य 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमोऽभावः । आकलितेति 'निष्ठा' इति बहुव्रीहौ निष्ठांतस्य पूर्वनिपातः । द्विपास्य इति । द्वाभ्यां शुंडादंडमुखाभ्यां जलं पिबतीति द्विपः । अतोऽनुपसुर्गे कः । 'आतो लोप इटि च' इत्याकारलोपः । द्विपस्यास्यमिवास्यं यस्यासौ द्विपास्यः । 'सप्तम्युपमानपूर्वस्य वाच्यो वोत्तरपदलोपश्च' इति बहुव्रीहिः समास उत्तरपदलोपश्च । 'हस्तौ तु पाणिनक्षत्रे' इति-हस्तशब्दः पाणिनक्षत्रवाचकः, तथाप्युपचाराद्धस्तिशुंडायामपि वर्तते । अत एव 'हस्ताज्जातौ, इति वदन्पाणिनिरप्यत्रानुकूलः । क्षीरस्वाम्यपि 'वलिहस्तांशवः कराः' इतस्य व्याख्याने हस्तिशुंडोपि कर उपचारादिति व्याचख्यौ । तद्वत्प्रस्तुतेऽपि । 'हस्तो नक्षत्रभेदे स्यात्करेभकरयोरपि' इति विश्वप्रकाशे हस्तिशुंडावाचकत्वमप्युक्तं हस्तशब्दस्य । अथात्र कवित्वे भंगशब्दोऽनुचितः । तथा हि– लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्यम्' इति काव्यलक्षणस्यात्र कवित्वे सत्त्वात् यस्मिन्कस्मिश्चित्पद्ये भंगशब्दोपादानमयुक्तम् । विशेषतो ग्रंथारंभभूते कुतः । 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' इति काव्यप्रकाशकारेण दोषोल्लासे–'दुष्टं पदं श्रुतिकटुच्युतसंस्कृत्यप्रयुक्तसमर्थम् । निहतार्थमनुचितार्थं निरर्थकमवाचकं त्रिधाऽश्लीलम् ॥ संदिग्धमप्रतीतं ग्राम्यं नेयार्थमथ भवेत्क्लिष्टम् । अविमृष्टविधेयांशं विरुद्धमतिकृत्समासगतमेव ॥' इति शब्ददोषा उक्ताः । तत्र भंगशब्देनासभ्यार्थान्तरकत्वादश्लीलाख्यो दोषोऽभिहितो भवति । तल्लक्षणं वामनेनोक्तम्–'असभ्यार्थान्तरमसभ्यस्मृतिहेतुश्चाश्लीलम्, इति अस्यार्थः–यस्य पदस्यानेकार्थस्यैकोऽर्थोऽसभ्यः स्यात्तदसभ्यार्थान्तरम् । यथा वर्च इति पदं तेजसि पुरीष च । यत्तु पदमेकदेशद्वारेणासभ्यमर्थं स्मारयति तदसभ्यस्मृतिहेतु, यथ कृकाटिकेति । एवं भंगशब्दोऽपि नानार्थः । तरंगरचनाशकलपराजयनाशादीनामर्थानां प्रकरणं विना स्फुरणादसभ्यार्थान्तरस्य नाशस्य प्रतीतेरश्लीलत्वम् । काव्यप्रकाशेऽप्यश्लीलोदाहरणम् 'पितृवसतिमहं व्रजामि तां सह परिवारजनेन यत्र मे । भवति सपदि पावकान्वये हृदयमशेषितशोकशल्यकम् ॥' अत्र पितृवसतिशब्देन पितुर्गृहमिति विवक्षितम् । तत्र श्मशानार्थस्यापि प्रतीतेरश्लीलत्वादमंगलार्थत्वम् । कथं तर्हि–'भंगं जयं चापतुरव्यवस्थम्' इति कालिदासः ? अथ भंगशब्देन पराजयो विवक्षित इत्यश्लीलत्वमिति चेत्, सत्यम्,–तत्र हि युद्धप्रस्तावे स्वरूपान्वाख्यानाददोषः । प्रस्तुते ग्रंथारंभे प्रकरणमपि नास्त्यतो भंगशब्दपाठोऽनुचितः । तस्मात् 'गौरीश्रवः केतकबालपत्रम्' इति पाठः साधीयान् (कल्प्यः । केचिदत्र पाठे बह्वक्षरपरिवर्तनभयात् 'गौरीश्रवः केतक बालपत्रभागम्' इति पठंति) । तदेतत्सर्वं मत्सररहितैः सूरिभिर्विवेचनीयम् । अथ काव्यत्वादेव प्रसंगतो वर्णगणशुद्धी विचार्येते । तत्र श्लोकादावसंयुक्तशुभफलदगकारप्रक्षेपादस्ति वर्णशुद्धिः । तदुक्तं भामहेन—'कः खो गो घश्च लक्ष्मीं वितरति च यशो ऽस्तथा चः मुखं छः प्रीतिं जो मित्रलाभं भयमरणकरौ झञौ टठौ खेददुःखे । डः शोभां ढो

विशोभां भ्रमणमथ च णस्तः सुखं यश्च युद्धं दो धः सौख्यं मुदं न सुखभयमरणक्लेशदुः खं पवर्गः ।। यो लक्ष्मीं रश्च दाहं व्यसनमथ लवौ शः सुखं पश्च खेदं सः सौख्यं हश्च खेदं व्यसनमथ च लः क्षः समृद्धि करोति । संयुक्तं चेह न स्यात्सुखमरणपटुर्वर्णविन्यासयोगः पद्यादौ गद्यवक्त्रे वचसि च सकले प्राकृतादौ समोऽयम् ।।' इति । तेन नायकादेःसुखं भवति । 'अक्षरे परिशुद्धे तु नायको भूतिमृच्छति' इति वचनात् । प्रस्तुते ग्रंथकर्तुरध्येतुरध्यापकस्य वा सुखं वाच्यम् । अथ गण-शुद्धिः । तत्रास्मिन्पद्ये इंद्रवज्रा छंदः । तल्लक्षणं वृत्तरत्नाकरेणोक्तम्—'स्यादिंद्रवज्रा यदि त जगौ गः' इति । तव गणलक्षमपि तेनैवोक्तम्–'सर्वगुर्मो मुखांतलौ यरावंतगलौ सतौ । ग्मध्याद्यौ ज्भौ त्रिलो नोऽष्टौ भवंत्यत्र गणास्त्रिकाः ।।' इति । एषां गणानां फलमन्यैरभ्यधायि–'मकारः श्रियं योऽतिवृद्धि ररोगं सकारश्च देशाटनं द्रव्यहानिम् । तकारो जकारो रुजं भश्च कीर्ति न आयुः प्रयच्छत्यजस्रं जनानाम् ।' इति वचनादिदं फलमध्यापकाध्येतृप्रभृतीनां ज्ञेयम् । एवं सति द्रव्यहानिरूपफलदस्य तगणस्यादौ प्रयोगाद्दुष्टमिदं काव्यमिति चेत्, सत्यम्,—'उमा कात्यायनी गौरी' इति वचनाद्गौरीशब्दो देवतावचकरतस्यादौ प्रयोगाद्दुष्टफलत्वं नास्तीति समाधिः । यथोक्तम्–'देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः । ते सर्वे नैव निंद्याः स्युर्लि-पितो गणतोऽपि वा ।।' इति । नन्वेवमपींन्द्रवज्रालक्षणासंगतिः । पादांतस्थाक्षरस्य 'ह्रस्वं लघु' इति लघुसंज्ञकत्वात् 'संयोगे गुरु 'दीर्घं च' इति विशेषलक्षणानाक्रातत्वेन गुरुत्वायोगाच्च । उच्यते–पादांतस्थस्य लघोरपि वैकल्पिकगुरुत्वोक्तेरदोषः । यथोक्तं वृत्तरत्नाकरे—'सानुस्वारो विसर्गतो दीर्घो युक्तपरश्च यः । वा पादांते त्वसौ ग्वक्रो ज्ञेयोऽन्यो मात्रिको ऋजुः ।।' इत्यल-मतिप्रसंगेनेति शिवम् ।। १ ।।

पीताम्बराकृतो मङ्गलाचरणम्—

मूलनारायणं नन्दादेवीं बज्रेन्द्रसंज्ञिकम् ।
नवलिङ्गं तथा भक्त्या हरिनागं पुनः पुनः ।।
ज्वालामुखीं कुलाभीष्टदेवतां सप्तसंख्यकाम् ।
ध्यायंध्यायमहन्तावत्प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।। १ ।।
यत्पादस्पर्शमात्रेण मूढो गूढार्थविद् भवेत् ।
तद्गुरोः पादयोरेष प्रणामकुसुमाञ्जलिः ।।
अञ्जलिं शिरसा स्पृष्ट्वा प्रह्वीभूतः पुनः पुनः ।
कामये त्वत्प्रसादं हि निर्विघ्नं स्याम फलेग्रहिः ।। २ ।।
दैवज्ञानन्तपुत्रेण श्रीरामविदुषा ननु ।
चिन्तामणिर्मुहूर्तानां चिन्तामणिरिवाद्भुतः ।।
निर्मितः कोऽप्यपूर्वोऽसौ ग्रन्थराजो हि विश्रुतः ।
गोविन्द इव गोविन्दो दैवज्ञो विद्वदग्रणीः ।। ३ ।।

व्याख्यानमकरोत्तत्र यत्र पाण्डित्यमद्भुतम् ।
पीयूषमिव पीयूषधारा व्याख्येति विश्रुता ॥ ४ ॥

जुनायलाभिधे ग्रामे संस्थितस्य महात्मनः ।
ज्योतिर्विदां वरिष्ठस्य ब्रह्मीभूतस्य धीमतः ॥

हरिदत्तस्य पुत्रोऽयमास्ते विद्वद्वशंवदः ।
केदारदत्तजोशीति संज्ञया परिचीयते ॥

[1]विश्वविद्यालये काश्यां ज्यौतिषाध्यापकस्तु यः ।
व्याख्यां पीयूषधारायाः मूलचिन्तामणेश्च सः ॥

पीताम्बराभिधामेतां सरसां सरलां तथा ।
जिज्ञासुजनबोधाय कुरुते[2] राष्ट्रभाषया ॥

अनया सेवया देवी माता पीताम्बरा परा ।
विधूय सकलान् विघ्नान् शीघ्रं सा संप्रसीदतु ॥

पीताम्बरा—श्री गणेश जी की वन्दना की गई है । ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त मे मंगलाचरण किया जाना संस्कृत शास्त्रों की मर्यादा है । इससे ग्रन्थ रचयिता को आध्यात्मिक प्रेरणा मिलती हैं । सरस्वती की कृपा से ग्रन्थ सर्वोत्तम, सर्वोपादेय होते हुए लोकप्रिय भी होता है और सनातन काल के लिए शास्त्रों की मर्यादा सुरक्षित भी रहती हैं ।

यहाँ पर पीयूषधाराकार श्री गोविन्द ने साहित्य शास्त्र की दृष्टि से "केतकपत्रभङ्गम्" भङ्ग शब्द के स्थान पर केतकपत्रभागम् या "केतकबाल-पत्रम्" होना चाहिए भंग शब्द सदोष होने से "भाग शब्द होना और अच्छा है" कहा है । वस्तुतः अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता । पाठकों की रुचि "भंग" या "भाग" में, जिस पर स्वाभाविक हो वही ठीक है ।

"मुहूर्त्तचिन्तामणि ग्रन्थ का प्रारम्भ शुभ हो और निर्विघ्न रूप से ग्रन्थ को समाप्ति होकर लोक कल्याण हो" ऐसी सुन्दर शास्त्र भावना की प्रबलता के लिए आचार्य ने शक्ति और शिव, के साथ श्री गणेश जी की स्तुति करते हुए उनके क्षणिक अति सुन्दर बाल स्वरूप का वर्णन किया है कि—

पार्वती के दोनों कर्णों में केतकी पुष्प के एक भाग को, माता की गोद में बैठे हुए, श्री गणेश जी ने अपने सूड़ (शुण्ड) से खींच कर उसे अपने मुख के अग्र भाग दांतों की जगह पर (यद्यपि गणेश जी का एक ही दांत हैं) रख दिया । माता पार्वती की गोद में बैठे हुए गणेश की इस बाल-लीला से उनके मुँह में क्षण मात्र के लिए एक दांत की जगह दर्शकों ने दर्शनीय गणेश जी को दूसरे दांत की उत्पत्ति से सुशोभित देखा ।

कवि ने "केतकी पुष्प अवयव से उत्पन्न क्षणिक द्वितीय दांत की सी शोभा" इत्यादि

---

१. "हिन्दू विश्वविद्यालये" स्पष्टार्थम् ।

२. अत्र अन्य-पुरुषप्रयोगः स्वकीयानौद्धत्यप्रदर्शनार्थ इति ।

इस सुन्दर सही कल्पना से निर्विघ्न ग्रन्थ समाप्ति के लिए साम्ब शिव पुत्र श्री गणेश जी की प्रार्थना की है ।। १ ।।

एवमादिपद्येनेष्टदेवताशीर्वादरूपमंगलमभिधायेदानीं ज्योतिषग्रंथमारंभमाणो रामज्योतिविद्विषयप्रयोजनसंबंधाधिकारिणः सूचयन् कर्तव्यमुपजातिकया प्रतिजानीते—

क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतुं संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भम् ।
अनन्तदैवज्ञसुतः स रामो मुहूर्तचिंतामणिमातनोति ।। २ ।।

पीयूषधारा—क्रियाकलापेति । स प्रसिद्धो जगतीतलेऽनंताख्यो दैवज्ञो ज्योतिर्वित् तस्य सुतः पुत्रो रामो रामज्योतिर्वित् मुहूर्तचिंतामणि मुहूर्तानां दिनशुद्धिविशेषाणाम् । अथवा मुहूर्तशब्देन दिनस्य रात्रेर्वा पंचदशो विभाग उच्यते । उक्तं च रत्नमालायाम्—'दिनस्य यः पंचदशो विभागो रात्रेस्तथा तद्धि मुहूर्तमानम्' इति । तत्र लक्षणया मुहूर्तोपलक्षितः कालो मुहूर्तशब्देन विवक्ष्यते । तस्य चिंता शुभाशुभरूपो विचारस्तस्य मणिरिव मुहूर्तचिंतामणिः । यथा मणिर्हीरकादिः समस्तकांतीनामाधारस्तथायमपि ग्रंथो निखिलमुहूर्तानामाधार इत्यन्वर्थनामानं लक्षणया मुहूर्तचिंतामणिं ज्योतिषग्रंथमातनोति । निषेधविध्यादिसंनिवेशविशेषेण निरूपयतीत्यर्थः ननु जीर्णा अपि मुहूर्तग्रंथाः संति, तैरेव निखिलमुहूर्तविचारनिर्वाहे सिद्धे किमनेन जीर्णमुहूर्तग्रंथानुवादभूतेनेत्यत आह—कीदृशं मुहूर्तचिंतामणिम् ? क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतुम् । क्रिया जातकर्मनामकर्मादिकास्तासां कलापः समूहस्तस्य अमुकस्मिन् शुभदिने कार्यमेतस्मिन्नशुभदिने न कार्यमित्येवंरूपा प्रतिपत्तिः सम्यक् ज्ञानं तस्यां हेतुं कारणम् । अयमर्थः—अन्येषु मुहूर्तग्रंथेषु तिथिप्रकरणं कर्मविशेषेषु शुभाशुभतिथयो निरूपितः । एवं वारप्रकरणे वारा एव । तथा नक्षत्रप्रकरणे नक्षत्राण्येव । योगप्रकरणे योगा एव । लग्नप्रकरणे लग्नान्येवाभिहितानि एवं सत्यखिलप्रकरणानां पुनः पुनरांदोलनेन मुहूर्तविचारः प्रसिध्येदिति गौरवमस्ति । अत्र त्वेकस्मिन्नेव पद्ये यो यो मुहूर्तो विचार्यते तस्य तस्य तत्रैव निर्वाह इति लाघवम् । यथा—'नवान्नं स्याच्चरक्षिप्रमृदुभे सत्तनौ शुभम् । विना नंदाविषघटीमधुपौषार्किभूमिजान् ।।' इत्यादि । केचित्तु 'क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतोः' इति पंचम्यंतपाठमाहुः । ननु मुहूर्ततत्त्वादावपि क्वचिदेवंविधमुहूर्तनिरूपणाद्व्यर्थोऽयं श्रम इत्यत आह—कीदृशं मुहूर्तचिंतामणिं? संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भम् । संक्षिप्तः शब्दैः सारार्थो निष्कृष्टार्थस्तस्य विलासः प्रकाशः स गर्भे यस्यासौ । संक्षिप्तश्चासौ सारार्थविलासगर्भश्चसंक्षिप्तसारार्थविलासगर्भस्तमिति कर्मधारयः । यद्यपीदानींतनग्रंथेषु शब्दलाघवेनार्थबाहुल्यमस्ति तथापि शब्दानां दुरवबोधार्थत्वाद्गुरुमुखादप्यध्ययने सति झटिति मनस्यर्थास्फुरणाच्चेत्यनुपादेयत्वम् । अत्र तु शब्दतोऽपि लाघवं, तत्रापि निष्कृष्टस्याप्यर्थस्य तादृशशब्दैर्निरूपणाद्यथा गुरुमुखं विनैवार्थज्ञानं सद्यो मनसि जागर्तितरामित्यवश्यमुपादेयत्वमस्य ग्रंथस्य । ननु किमभिधेयार्थकमिदं शास्त्रम् ? प्रयोजनमपि किम् ? 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मंदोऽपि प्रवर्तते' इति न्यायात् । उक्तं च—'सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् । यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते ।।' अन्यच्च—"ज्ञानार्थं ज्ञानसंबंधं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते । ग्रंथादौ तेन वक्तव्यः संबंधः सप्रयोजनः ।।' इति । उच्यते—मुहूर्तचिंतामणिमित्यनेनैव पदेन सर्वं सूचितम् । तथा हि—शुभाशुभप्रकरण-

नक्षत्रप्रकरणसंक्रांतिगोचरप्रकरणसंस्कारविवाहप्रकरणवधूप्रवेशाग्न्याधान - राज्याभिषेकयात्राप्रकरणगृहारंभगृहप्रवेशमुहूर्तसमुदायाः संहितापदार्था प्रतिपाद्यत्वेन विषयभूताः। यद्यपि वसिष्ठादिभिः सूर्यचाराद्युत्पातादिकमपि संहितापदार्थेष्वभ्यधायि तथाप्यत्र तेषां मुहूर्तविचारेऽनुपयोगाद् ग्रन्थकृता नोक्तमिति तात्पर्यम्। मुहूर्तानां प्रतिक्षणं लौकिकविचारार्हत्वेन तदभिधानात्। अत्राभिधेयपदार्थानां मुहूर्तचिंतामणिनामकग्रन्थस्य च प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः संबंधः। प्रयोजनं शुभाशुभकथनं विवाहादिकालनिर्णयश्च। यदाह नारदः—'प्रयोजनं तु जगतः शुभाशुभनिरूपणम्।' कश्यपोऽपि—'ग्रहणग्रहसंक्रांतियज्ञाध्यनकर्मणाम्। प्रयोजनं व्रतोद्वाहक्रियाणां कालनिर्णयः॥' एतज्जिज्ञासुरधिकारी। स च द्विज एव नान्यः। तदुक्तं नारदेनैव—'सिद्धांतसंहिताहोरारूपस्कंधत्रयात्मकम्। वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः-शास्त्रमकल्मषम्। विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिध्यति। तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा॥ अत एव द्विजैरेतदध्येतव्यं प्रयत्नतः॥' इति। अत्रैवकारस्य प्रपाठक्रमेण योजने प्रयोजनं विनैव ज्योतिःशास्त्राध्ययनस्यावश्यकत्वं प्रतीयते। द्विजैरेवेति व्याख्याने द्विजव्यतिरिक्तैः शूद्रैर्नाध्येयमिति च प्रतीयते। व्याख्याद्वयमपि युक्तमेव। द्विजा=ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः। उक्तं च काशीखंडे—'ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजाः स्मृताः। प्रथमं मातृतो जन्म द्वितीयं चोपनायनात्॥' इति। यत्तु वसिष्ठवचने—'अध्येतव्यं ब्राह्मणैरेव तस्माज्जयोतिःशास्त्रं पुण्यमेतद्रहस्यम्। एतद्बुध्वा सम्यगाप्नोति नूनं धर्मं चार्थं मोक्षमग्र्यं यशश्च' इति। ब्राह्मणग्रहणमध्यापनेऽप्यावश्यकत्वसूचनार्थम्। अत एव महाभारते—'यजनं याजनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ। अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्मा ब्राह्मणः स्मृतः॥' इति। क्षत्रियविशोस्त्वध्ययन एवाधिकारो नाध्यापने। तदुक्तं मनुना—'प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च॥ विषयेष्वप्रसक्ति च क्षत्रियस्य समादिशेत्॥ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वाणिज्यं च कुसीद च वैश्यस्य कृषिरेव च॥' इति। अत्र प्रजारक्षणाद्युक्तेर्नाध्यापनाधिकारः। ननु कथं ज्योतिषं श्रौतस्मार्तकर्मौपयिकं? इति चेदुच्यते—'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीत', तथा 'वसंते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत', 'दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत्' इत्यादिश्रुतयः संति। तत्र वर्षज्ञानमादित्यादिग्रहचारपरिच्छेदसाध्यं, तस्य वसन्ताद्यृतूनां च दर्शपौर्णमासयोश्च ज्ञानं ज्यौतिषं विना सर्वथैव न निर्वहतीत्यवश्यमध्येतव्यं ज्योतिःशास्त्रम्। उक्तं च वेदांगज्योतिषे='वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः। तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥' अत एव वेदस्य मुख्यमिदमंगं चक्षूरूपत्वात्। तदप्युक्तं शिक्षायाम्—'छंदः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥ शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरण स्मृतम्।' तथा—'यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा। तद्वद्वेदांगशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम्॥' इति। एवं मुख्यतायां सत्यां दृष्टांतो वसिष्ठसिद्धान्ते—'वेदस्य चक्षुः किल शास्त्रमेतत्प्रधानतांगेषु ततोऽर्थजाता। अंगैर्युतोऽन्यैः परिपूर्णमूर्तिश्चक्षुर्विहीनः पुरुषो न किंचित्॥' तस्मात्कर्मौपयिकत्वादवश्यमध्येयं ज्योतिःशास्त्रम्। तत्राध्ययने समीचीनशिष्या एवाध्याप्या न कृतघ्नादयः। तदुक्तं श्रुतौ—'विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेहमस्मि। असूयकायानृजवेशताय न मां ब्रूयावीर्यवती तथा स्याम्॥' इति समरसारेऽपि—'नैतद्देयं दुर्विनीताय

जातु ज्ञानं गुप्तं तद्धि सम्यक् फलाय। अस्थाने हि स्थाप्यमानैव वाचां देवी कोपान्निर्दहेन्नो चिराय ।। विनयावनताय दीयमानं प्रभवेत्कल्पलतेव सत्फलाय। उपकृत्यनुचितकानि शास्त्राण्युपकारस्य पदं हि साधुरेव ।।' इति। सिद्धांतशिरोमणावपि—'दिव्यं ज्ञानमतींद्रियं यदृषिभिर्ब्राह्मं वसिष्ठादिभिः पारं पर्यवशाद्रहस्यमवनौ नीतं प्रकाश्यं ततः। नैतद्द्वेषिकृतघ्नदुर्जनदुराचारचिरावासिनां स्यादायुःसुकृतक्षयो मुनिकृतां सीमामिमामुञ्झतः ।।' इति। एवं सत्यस्मिञ्ज्योतिःशास्त्रे सर्वथा न शूद्राणामधिकारः। उक्तं च मनुना—'एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ।।' इति नारदवाक्यं तु प्रागेवाभिहितम्। तत्र यदि ब्राह्मणः शूद्रं लोभादिना पाठयति तस्माच्च पठति तदा महान् दोषः। यदाह गर्गः—'स्नेहाल्लोभाच्च मोहाच्च यो विप्रोऽज्ञानतोऽपि वा। शूद्राणामुपदेशं तु दद्यात्स नरकं व्रजेत् ।। लग्नं ददाति यः शूद्रः सत्कृत्षोडशकर्मणाम्। अंधो युगसहस्रांते जायते श्वानयोनिषु। सम्यगाचारयुक्तोऽपि यः शूद्रः सर्वशास्त्रवित्। वर्जयेद्वचनं तस्य कपालस्थोदकं यथा ।।' इति। कपालं=मनुष्यशिरोमध्यवर्त्यस्थि। 'भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितश्चयः। तावुभौ पतितौ विप्रौ स्वाध्यायक्रयविक्रयात् ।।' इति सामान्यतो हेमाद्रौ देवलस्मरथाच्च। अथैवंविधस्य ज्यौतिःशास्त्रस्याध्येतुर्माहात्म्यमाह मांडव्यः—'एवंविधस्य श्रुतिनेत्रशास्त्रस्वरूपभर्तुः खलु दर्शनं वै। निहंत्यशेषं कलुषं जनानां षडब्दजं धर्मसुखास्पदं स्यात् ।।' इति। अत्र ज्ञानविशेषेण ज्योतिर्विदः पूज्यतातारतम्यं जीर्णैरभ्यधायि—'दशदिनकृतपापं हंति सिद्धांतवेत्ता त्रिदिनजनितदोषं तंत्रविज्ञः स एव। करणभगणवेत्ता हंत्यहोरात्रदोषं जनयति घनमंहश्चात्र नक्षत्रसूची ।।' नक्षत्रसूची दैवज्ञो घनं बहु अंहः पापं जनयति। तल्लक्षणं वाराहसंहितायाम्—'अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते। स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ।।' अन्यच्च—'तित्थुत्पत्तिं न जानंति ग्रहाणां नैव साधनम्। परवाक्येन वर्तंते ते वै नक्षत्रसूचकाः ।।' इति। व्युत्पत्तिस्तु—गृहे गृहे गत्वाऽपृष्ट एव नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि शुभाशुभफलसूचकानि सूचयतीति नक्षत्रसूची। वराहः—'नक्षत्रसूचकोद्दिमुपवासं करोति यः। स व्रजत्यंधतामिस्रं सार्धमृक्षविडंबिना। नक्षत्रसूचकं पापं भिषजं शुल्कजीविनम्। तादृक्पौराणिकादींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्।'' अत एव वसिष्ठः—'त्रिस्कंधपारंगम एव पूज्यः श्राद्धे सदा भूसुरवृंदमध्ये। नक्षत्रसूची खलु पापरूपो हेयः सदा सर्वसुधर्मकृत्ये ।।' वराहोऽपि—ग्रन्थतश्चातश्चैव कृत्स्नं जानाति यो द्विजः। अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पंक्तिपावनः ।। नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता। चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ।। मुहूर्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायनानि च। सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात्सांवत्सरो यदि ।।' अत एव यद्धर्मशास्त्रे सुमन्तुः—तस्करकितवेत्यादिना महता गद्येन सांवत्सरिकोऽपांक्तेय इत्याह। महाभारतेऽपि—'केतवो भ्रूणहा लक्ष्मी' इत्यादिपद्यषट्कमध्ये—'कुशीलवो देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति। एतानिह विजानीयाद् ब्राह्मणान् पंक्तिदूषकान्।'' इत्युक्तं, तन्नक्षत्रसूचकज्यौतिर्विद्विषयम्। यदाह कश्यपः—'दार्त्विग्भ्रूणहंतृश्चं व्यंगान्नक्षत्रसूचकान्। वर्जयेद्ब्राह्मणानेतान्सर्वकर्मसु यत्नतः। इति। 'नक्षत्रसूचकश्चैव पर्वकारश्च गर्हितः' इति ब्रह्मपुराणेऽप्युक्तेः, अपृष्ट इति वाक्यशेषोऽत्राध्याहार्यः। अत एव मनुः—'तिथिं पक्षस्य न ब्रूयान्न नक्षत्राणि निर्दिशेत्' इत्याह स्म यमोऽपि—'नक्षत्रतिथिपुण्याहान्मुहूर्तान्मंगलानि च। न निर्दिशंति ये विप्रास्तैर्भुक्तं ह्यक्षयं भवेत् ।।' इति।

वसिष्ठवाक्यं तु प्रागभिहितम् । महाप्रयोजनं त्वेतच्छास्त्रस्य सम्यग्ज्ञानाद्ब्रह्मसायुज्यमिति । तदुक्तं गर्गेण—'ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम् । ज्योतिर्ज्ञानं च यो वेद स याति परमां गतिम् ।। परमां गतिं = ब्रह्मसायुज्यमिति । सूयसिद्धान्तेऽपि—'दिव्यं चक्षुर्ग्रहर्क्षाणां दर्शितं ज्ञान-मुत्तमम् । विज्ञायार्कादिलोकेषु स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् ।।' वराहसंहितायामपि—'न सांवत्सर-पाठी च नरके परिपच्यते । ब्रह्मलोकं प्रतिष्ठां च लभते दैवचिंतकः ।।' इति । संवत्सरं वर्षमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः सांवत्सरः । 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' इत्यण् । आदिवृद्धिः तं । पठितुं शीलमस्य स सांवत्सरपाठी ज्योतिर्विदुच्यते । वसिष्ठेन त्वैहिकामुष्मिकरूपं फलद्वयमप्युक्तं प्राक्—'एतद्बुद्धा सम्यगाप्नोति नूनं धर्मं चार्थं मोक्षमग्र्यं यशश्च ।।' इति । तस्माज्ज्योतिःशास्त्र-मवश्यमध्येतव्यमिति स्थितं । ननु ज्योतिःशास्त्राध्ययनं न्यायशास्त्रादिवत् किं वादमात्रफलम्, उत चिकित्साशास्त्रवत्प्रत्यक्षदृश्यफलम् ? उच्यते,—दृष्टे संभवत्यदृष्टकल्पना न न्याय्येति दृष्टार्थ ताप्यस्य शास्त्रस्य । वादरूपं तु फलं सर्वेष्वपि शास्त्रेषु तुल्यम् । उक्तं च–'अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं न किंचिदेषां भुवि दृष्टमस्ति । चिकित्सितज्यौतिषमन्त्रवादाः पदे पदे प्रत्ययमाव-हन्ति ।।' प्रत्ययं = विश्वासं संवादरूपम् । नन्वस्मिन् शास्त्रे के वा प्रत्यया इति चेत्पृच्छसि, तर्हि शृणु सूर्यचंद्रयोर्ग्रहणं जगतीतले आबालवृद्धेभ्यो महान् प्रत्ययः । उक्तं च–'अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम् । प्रत्यक्षं ज्यौतिषं शास्त्रं चंद्रार्कौ यत्र साक्षिणौ ।।' अथान्येऽपि प्रत्ययाः चंद्रशृंगोन्नतिर्ग्रहयुतिश्च सूर्यादीनां ग्रहाणां च्छाया गणितागता यद्यपि भौमादीनां छाया दृग्गोचरा नास्ति तथापि नलिकादियंत्रवेधेन यस्मिन्समये सुषिरमध्ये ग्रह आगच्छति तत्समयसंवा-दादर्थापत्तिप्रमाणसिद्धा छायापि प्रत्ययः । शुक्रस्य तु महामंडलत्वे छाया दृग्गोचरापि भवति । ग्रहाणां चंद्रादीनां द्विविधा अप्यस्तोदयाः । एके सूर्यासन्नवशेन, अपरे प्रत्यहं क्षितिजसंबंधवशात् । ततोऽस्ति सूर्यासन्नवशतो भौमगुरुशनीनां प्राच्यामेवोदयः; प्रतीच्या मेवास्तः । अथायुर्दायस्येयत्ता । यात्रायां शुभशकुने शुभफलम् अशुभशकुनेऽशुभफलम् । यज्ञोपवीत विवाहादिमंगलकृत्येषु शुभलग्ना-नुष्ठितेषूक्तफलावाप्तिः । यत्र क्वचिद्व्यभिचारः स जन्मकालीनसदसद्ग्रहवशेन । एवमादयोऽपि प्रत्यया ऊह्याः । सर्वेषामपि शास्त्राणामध्ययने मोक्षाद्यदृष्टरूपं फलं तु वाचनिकमेव, तदस्मिन्नपि शास्त्रे तुल्यमित्यलमतिप्रसक्तानुप्रसक्तेनेति शिवम् ।। २ ।।

पीताम्बरा—गर्भाधान, पुंसवन सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, जलपूजा, दोलारोहण, शिशु ताम्बूल भक्षण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, भूम्युपवेशन, कर्णवेध, चूडाकरण, अक्षरारम्भ, विद्यारम्भ, व्रतबन्धन, ब्रह्मौदन, केशान्त, समावर्तन, विवाह, अग्न्याधानान्त प्रेत कृत्यादि अनेक संस्कारों के शुभ मूहूर्त, यज्ञ याग, यात्रा, गृह निर्माण, प्रवेश, आभूषण निर्माण, सेवक स्वामी सेवा, ऋण ग्रहण, हल चलाने, बीज बपन, धान्यच्छेदन प्रभृति अनेक लोक प्रसिद्ध मुहूर्तों के अच्छी तरह से ज्ञान के लिये, गूढ़ अर्थ से विलसित होते हुए भी बहुत कम शब्दों में वास्तविक तत्त्व रूप अर्थ को प्रकट करने वाले इस मुहूर्त्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ की रचना "अनन्त" दैवज्ञ के सुपुत्र विख्यात दैवज्ञ शिरोमणि श्री "रामाचार्य" जी से की जा रही है ।

ग्रन्थ का अध्ययन गुरुमुख से ही स्पष्ट होता है, स्वयं से उपार्जित (विना गुरु का ज्ञान) अपूर्ण है । इस ग्रन्थ में ग्रन्थ निर्माता आचार्य ने कम शब्दों में अधिक अर्थबोध की अपनी बड़ी

वैदुष्यपूर्ण शैली का परिचय दिया है कि सुयोग्यगुरु से अध्ययन करते हुए गुरु मुख से सुनने के पहिले ही ग्रंथ के बहुत से आशय सुयोग्य छात्र के मन में जाग्रत हो जाते हैं। इसीलिये, ग्रन्थ का सार्थक नाम भी मुहूर्त चिन्तामणि रखा गया है, जिस नाम मात्र से सर्वसाधारण को पता लग जाता है कि शास्त्र और लोक व्यवहार में प्रचलित ज्यौतिष मुहूर्तों के ज्ञान के उत्तम ग्रन्थ का नाम मुहूर्त्त-चिन्तामणि है।

पीयूष धारा में—सिद्धान्त संहिता और होरा रूप त्रिस्कन्ध ज्यौतिष को वेदभगवान् का स्वच्छ नेत्र कहते हुए श्रौतस्मार्त कर्माचरण के लिए ज्योतिषज्ञान अत्यन्त आवश्यक बताया है। संसार के कल्याण के लिए "ब्रह्मा" ने उक्त शास्त्र की रचना की, और द्विज मात्र ने अवश्य इस ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए''''इत्यादि वर्णाश्रम व्यवस्था आदि अनेक शास्त्रार्थों का समावेश भी किया है।

इस प्रसंग में पीयूषधाराकार का मत है कि यह ज्ञान विनीत, शीलवान, शिष्ट विद्यार्थी को ही देना चाहिए, कृतघ्न, आचरण हीन और दुर्विचार के व्यक्ति के लिये यह ज्ञान हितावह नहीं होगा।

ज्यौतिश्शास्त्र के अध्ययन का मुख्य फल "मोक्ष प्राप्त करना है, ज्यौतिष ज्ञान से मानव ब्रह्म सायुज्य प्राप्त करता है"—इत्यादि मत गर्ग, सूर्य सिद्धान्त, वाराह, वशिष्ठ आदिकों ने भी व्यक्त करते हुए यह भी स्पष्ट किया है कि न्याय व्याकरणादि सभी शास्त्र विनोदमात्र या वादमात्र हैं, किन्तु (१) ज्यौतिष (२) आयुर्वेद और (३) तन्त्र शास्त्र तो पदे-पदे प्रत्यक्ष फल देते हैं। जैसे—सूर्य चन्द्र के ग्रहण, चन्द्रमा की श्रृंगोण्नति, ग्रहों की युति, गुरु शुक्र का उदय अस्त, ग्रहों की तनु धन सहज सुख...लाभ व्ययादि द्वादशभावों का ग्रहों को स्थिति वश सही भविष्यज्ञान, शुभ शकुन की यात्रा में शुभ, अशुभ शकुन की यात्रा में अशुभ फल, जनेऊ विवाह आदि संस्कारों के अच्छे मुहूर्तों से संस्कार्य वटु या वर कन्या के शुभ भविष्य, अशुभ महूर्तों के जन्मकालीन ग्रहों कीं स्थिति वश जीवन में अनेक शुभाशुभ इत्यादि ये सब ज्योतिष शास्त्र की प्रत्यक्ष देनें हैं। तथा सब शास्त्रों के अध्ययन का वाचनिक जो मोक्षादि अदृष्ट फल कहा गया है वह सब तो इस शास्त्र के अध्ययन से भी तो होता ही है। इसलिए मोक्षादि अदृष्ट फल प्राप्ति में ज्यौतिष शास्त्र की सब शास्त्रों से तुल्यता होते हुए भी ऐहिक प्रत्यक्षता से सब शास्त्रों में ज्यौतिष शास्त्र की गरिमा के लिए यह अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है॥ २॥

अथ मुहूर्तचिंतामणिनामकग्रंथप्रकरणप्रतिज्ञामभिधायेदानीं सामान्यतो मुहूर्तविचारार्थमुत्सर्गापवादरूपा गुणा दोषाश्च तावद्वक्तव्याः, तेषां च तिथ्याद्यधीनत्वादादौ तिथयो वक्तव्याः, तासां तु लोकप्रसिद्धत्वादेवावक्तव्यतायां सिद्धायां तत्स्वामिन एवानुष्टुप्छंदसाभिदधाति—

तिथीशा वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः।
शिवो दुर्गांतको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी॥ ३॥

पीयूषधारा—तिथीशा इति॥ एते पंचदश तिथिनां क्रमेणेशाः स्वामिस्तानाहवह्निकावित्यादि। वह्निश्च कश्च वह्निकौ। वह्निः अग्निः, को ब्रह्मा। अत्र 'देवताद्वंद्वे च' इत्यानङ् न

भवति । एकहविर्भाक्त्वेन प्रसिद्धसाहचर्याभावात् । नन्वेवं 'अल्पाच्तरं' इति द्वंद्वे कशब्दस्य पूर्वनिपातप्राप्तिः । 'ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ' इति ज्ञापकेन पूर्वनिपातप्रकरणमनित्यमित्यनित्यत्वात्क्रमस्य विवक्षितत्वाच्च न भवति । एवं सति प्रतिपदो वह्निर्द्वितीयाया ब्रह्मा स्वामीत्ययमर्थः सिद्धो भवति । अथवा 'तिथीशोऽग्निर्विधिर्गौरी' इत्यसंदेहार्थमेवं पठितव्यम् । 'ईश ऐश्वर्ये' इति धातुः कर्त्रर्थक्विबंतस्तस्माद्बहुवचनं जस् । ईशते इतीशाः, तिथीनामीशास्तिथीशाः तिथिस्वामिन इत्यर्थः । अथवा 'तिथीशा रो विधिर्गौरी' इति व्यक्तं पठनीयम् । ईशशब्दोऽकारांतः । रशब्देनाग्निरुच्यते । 'रः पावके च तीक्ष्णांशौ' इति विश्वः । रश्च कालेऽनले सूर्ये, इत्येकाक्षरनिघंटुः । रोऽग्निः, विधिर्ब्रह्मा, गौरी पार्वती, गणेशः प्रसिद्धः, अहिः सर्पः, गुहः, स्वामिकार्तिकेयः, रविः, सूर्यः, शिवो महादेवः, दुर्गा जगदंबा, अंतको यमः, विश्वे विश्वेदेवाः, हरिर्विष्णुः, कामो मदनः शिवः स एव, शशी चंद्रः । तदाह वसिष्ठः—'वह्निर्विधाताऽद्रिसुता गणेशः सर्पो विशाखो दिनपो महेशः । दुर्गा यमो विश्वहरी च कामः शर्वो निशेशश्च पुराणदृष्टा ।" इति । स्वानिन इति शेषः । प्रयोजनं तु तत्तद्देवताप्रतिष्ठा पूजादि । तथा च वराहसंहितायामुक्तम्—'यत्कार्यं नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु तत्कार्यम् । करणमुहूर्तेष्वपितत्सिद्धिकरं देवतानां च ।।' इति । नारदोऽप्याह 'यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः ।' अग्निपुराणेऽपि—'प्रतिपद्यग्निपूजा स्याद्द्वितीयाया च वेधसः । दशाम्यामंतकस्यापि षष्ठ्यां पूजा गुहस्य च ।। चतुर्थ्यां गणनाथस्य गौर्यास्तित्पूर्ववासरे । सरस्वत्या नवम्यां च सप्तम्यां भास्करस्य च ।। अष्टम्यांच चतुर्दश्यामेकादश्यां शिवस्य च । द्वादश्यां च त्रयोदश्यां हरेश्च मदनस्य च ।। शेषादीनां फणीशानां पंचम्यां पूजनं भवेत् । पर्वणींदोस्तिथिष्वासु पक्षद्वयगतास्वपि ।।' इति । रत्नमालायामपि—'अथामरस्थापनमुत्तरायणे स्वदेववारर्क्ष तिथिक्षणादिषु' इति । अथ प्रत्येकं तिथिकृत्यानि ग्रंथकृदनुक्तान्यप्यस्माभि लिख्यंते लोकोपयोगित्वात् तान्याह वसिष्ठः—'नोद्वाहयात्रोपनयप्रतिष्ठासीमन्तचौलाखिलवास्तुकर्म । गृहप्रवेशाखिलमंगलाद्यं कार्यं हि मासाद्यातिथौ कदाचित् ।। १ ।।' मासाद्यतिथौ = शुक्लपक्षप्रतिपदि अत एव कृष्णपक्षप्रतिपद्येतानि कर्माणि सुखेन भवन्तीत्यर्थः । यद्येषोऽभिप्रायोऽसंमतः स्यात्तदा पक्षाद्यतिथाविति ब्रूयात् । 'सप्तांगचिह्नानि नृपस्य वास्तुव्रतप्रतिष्ठाखिलमंगलानि । यात्राविवाहाखिलभूषणाद्यं कार्यं द्वितीयादिवसे सदैव ।। २ ।। संगीतविद्याखिलशिल्पकर्मसीमन्तचौलान्नगृहप्रवेशम् । कार्यं द्वितीयादिवसे यदुक्तं सदा तृतीयादिदिवसेऽपि कार्यम् ।। ३ ।। रिक्तासु विद्युद्वधबधबन्धशस्त्रविषाग्निघातादि च याति सिद्धिम् । यन्मंगलं तासु कृतं च मूढैर्विनाशमायातितदाशु नूनम् ।। ४ ।।' रिक्तासु = चतुर्थीनवमीचतुर्दशीषु । 'शुभानि कार्याणि चरस्थिराणि चोक्तान्यनुक्तान्यपि यानि तानि । सिद्धिं प्रयांत्याशु ऋणप्रदानं बिना सदा नागतिथौ विधेयम् ।। ५ ।। अभ्यंगयात्रापितृकर्म दन्तकाष्ठं विना पौष्टिकमंगलानि । षष्ठ्यां विधेयानि रणोपयोग्यशिल्पानि बास्त्वंबरभूषणानि ।। ६ ।। द्वितीयायां तृतीयायां पंचम्यां कथितान्यपि । तानि सिध्यंति कार्याणि सप्तम्यां निखिलान्यपि ।। ७ ।। संग्रामयोग्याखिलवास्तुशिल्प नृत्यप्रमोदाखिललेखनानि । स्त्रीरत्नकार्याखिलभूषणानि कार्याणि कार्याणि महे शतिथ्याम् ।। ८ ।। द्वितीयायां तृतीयायां पंचम्यां सप्तमीतिथौ । उक्तानि यानि सिध्यन्ति दशम्यां तानि सर्वदा ।। ९ ।। व्रतोपवासाखिलधर्मकृत्य सुरोत्सवाद्याखिलवास्तुकर्म । संग्रामयोग्याखिल-

वास्तु कर्म विश्वेतिथौ सिध्यति शिल्पकर्म ।। १० ।। पृथिव्यां यानि कर्माणि धर्मपुष्टिशुभानि च । चरस्थिराणि द्वादश्या यात्राऽन्नग्रहणं विना ।। ११ ।। विधातृ गौरीभुजगभान्वन्तकदिनेषु च । उक्तानि तानि सिध्यन्ति त्रयोदश्यां विशेषतः ।। १२ ।। यज्ञक्रियापौष्टिकमंगलानि संग्राम-योग्याखिलवास्तुकर्म । उद्वाहशिल्पाखिलभूषणाद्यं कार्यं प्रतिष्ठा खलु पौर्णमास्यम् ।। १३ ।। सदैव दर्शे पितृकर्म मुक्त्वा नान्यद्विधेयं शुभपौष्टिकाद्यम् मूढैः कृतं तत्र शुभोत्सवाद्यं विनाशमाया-त्यचिराद्भृशं तत् ।। १४ ।।' इति । ननु रत्नमालादिग्रन्थेष्वादौ संवत्सरप्रकरणमुक्तम् । तदत्र किमित्युत्प्रेक्षितमिति चेत् । उच्यते,—मुहूर्तचिंतामणिरिति नामधेयान्मुहूर्ता एवात्रोच्यंते । तेतु प्रतिक्षणंविचारार्हाः, तत्र संवत्सराणां वर्षव्यापित्वात् सदसत्फलोक्तावपि विवाहादिकृत्यानि भवंत्येव । कुतः सिंहराशिस्थितगुरु-गुरुशुक्रास्तादिष्विव विवाहादि-विशेषकृत्यानां प्रतिषेधसत्त्वं, तथा संवत्सरसदसत्फलेषु नेति । किंच सिंहगतगुरौ शुक्रास्तादावपि नित्यानां वस्त्रपरिधानादीनां नैमित्तिकानांच पुंसवनजातकर्मनाम-कर्मान्नप्राशनादिकर्मणां विहितत्वान्मुहूर्तविचारोऽस्त्येवेत्यतो-ऽकथनं संवत्सरप्रकरणस्य । अमुमेवाशयं मनस्यभिसंधाय मुहूर्तग्रन्थं परित्यज्य स्थलांतरे गुरुचारे वसिष्ठेन फलमुक्तम् ।। ३ ।।

पीताम्बरा—प्रतिपद-द्वितीया आदि से लेकर शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा और कृष्ण पक्ष की अमावस्या तक १५ तिथियों के स्वामी बताये जाते हैं । यथा—

प्रतिपद के स्वामी अग्नि देवता, द्वितीया के ब्रह्मा, तृतीया की पार्वती, चतुर्थी के गणेश, पञ्चमी के सर्प, षष्ठी के कार्तिकेय, सप्तमी के सूर्य, अष्टमी के भगवान् शङ्कर (शिव), नवमी की (जगदम्बा) श्रीदुर्गा, दशमी के यमराज, एकादशी के विश्वेदेव, द्वादशी के भगवान् विष्णु, त्रयोदशी के कामदेव, चतुर्दशी के पुनः शिव, पञ्चदशी तिथि अर्थात् शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा, कृष्ण पक्ष की अमावस्या के स्वामी चन्द्रमा होते हैं । अमावास्या तिथि के स्वामी पितर भी कहे गये हैं ।

यहाँ पर अग्नि नाम की तिथि का यदि कहीं उल्लेख हो तो उसे प्रतिपद् तिथि, ब्रह्मा से द्वितीया तिथि इत्यादि सर्वत्र समझना चाहिए । इन तिथियों के अधिपति देवताओं का, ग्रन्थ में आगे स्थल-स्थल पर प्रयोजन आवेगा जैसे—किसी देवी-देवता की स्थापना कब किस तिथि में करनी चाहिए ? ऐसी शंका होने पर "स्वर्क्ष तिथिक्षणे वा" से जिस देवता की जो तिथि है उस तिथि में उस देवता की स्थापना शुभ होती हैं । जैसे यदि गणेश भगवान् की स्थापना करनी हो तो इनकी स्थापना के लिए चतुर्थी तिथि उत्तम होगी । यहाँ पर चतुर्थी तिथि रिक्ता तिथि होने से सदोष होते हुए भी गणेश देव की स्थापना के लिए यह निर्दोष है और उत्तम है ।

पन्द्रह तिथियों के क्रमशः स्वामी कहे गये हैं । मूल श्लोक की हिन्दी की ही तरह पीयूषधारा में भी मूल श्लोक की व्याख्या की गई है । साथ ही जिस नक्षत्र में जो कार्य करने को कहे गये हैं वह कार्य उस तिथि के देवता की तिथि में भी करने चाहिए । करण मूहूर्त्तों में भी ये कार्य सिद्धिकर होते हैं । जिस देवता का जो दिन है उस दिन में उस देवता की स्थापना शुभ है । नारद का मत है कि प्रतिपद में अग्निपूजा, द्वितीया में ब्रह्मा पूजा····दशमी मे यम पूजन, चतुर्थी में गणेश···इत्यादि की पूजा एवं प्रतिष्ठा होनी चाहिए ।

ग्रन्थ में प्रत्येक तिथि का कार्य विस्तार से नहीं है अतः पीयूषधारा ने उसे स्पष्ट किया है। जैसे—

१—प्रतिपद् तिथि में—विवाह, यात्रा, उपनयन, प्रतिष्ठा, सीमन्त, चौल और वास्तु-कर्म गृहप्रवेशादिक मंगल कार्य नहीं करने चाहिए।

२—द्वितीया में यात्रा विवाह भूषण, संगीत विद्या शिल्प आदिक कर्म करने चाहिए।

३—तृतीया में भी द्वितीया के कथित कार्य करने चाहिए।

४—चतुर्थी में विद्युत्कर्म, बध, बन्धन शस्त्र विष अग्निघातादि कार्य सिद्ध होते हैं।

५—पञ्चमी में द्वितीया तृतीया की तरह अनेक शुभ कर्म करने चाहिए।

६—षष्ठी में अभ्यंग, यात्रा, पितृ कर्म और दन्त काष्ठादि सञ्चय न करें।

७—द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी के सभी शुभ कार्य सप्तमी में भी करने चाहिए।

८—संग्राम (युद्ध) वास्तु, शिल्प, राजप्रमोद, लेखन स्त्री रत्न, अखिल आभूषण····ये सब अष्टमी तिथि के कृत्य हैं।

९—नवमी में चतुर्थी की तरह।

१०—दशमी में द्वितीया, पञ्चमी, तृतीया, सप्तमी में कहे गये कार्य होने चाहिए।

११—व्रत उपवास, अनेक धर्मकृत्य, देवोत्सव उद्यापन कथा आदिक एकादशी में करने चाहिए।

१२—यात्रादिक को छोड़कर पुष्टिकारक अनेक सभी धर्म शुभ कार्य द्वादशी तिथि में भी करने चाहिए।

१३—द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी के कथित कार्य त्रयोदशी तिथि में भी करने चाहिए।

१४—चतुर्थी के कार्य चतुर्दशी में करने चाहिए।

१५—विवाह, शिल्प पौष्टिक, मंगल संग्राम, वास्तुकर्म, यज्ञ क्रिया, प्रतिष्ठा आदिक कार्य पौर्णमासी तिथि में करने चाहिए।

१६—अमावास्या में सदा पितृकर्म ही उचित होता है। अमावास्या के दिन किए गये शुभ कर्म सभी विनष्ट हो जाते हैं ॥३॥

अथ तिथीनां नंदादिसंज्ञाः सफला उपजातिकयाह—

नंदा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्योऽशुभमध्यशस्ताः।
सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः ॥ ४ ॥

नंदा चेति ॥ नंदाभद्राजयारिक्तापूर्णासंज्ञाः प्रतिपदादिपंचतिथयः स्वनामसदृशफलदाः स्युरित्येवंप्रकारेण सर्वा॰ षष्ठ्यादय एकादश्यादयश्च तिथयो ज्ञेयाः। ताः सिते शुक्लपक्षे अशुभ मध्यशुभफलदाः स्युः। असिते कृष्णपक्षे शुभमध्यमाधमफलदाः स्युः। यदाह **नारदः**:—'नंदा-भद्राजयारिक्ता पूर्णाः स्युस्तिथयः पुनः। पर्यायत्वेन विज्ञेया नेष्टमध्येष्टदाः सिते ॥ कृष्णपक्षे-

ऽपीष्टमध्यनेष्टदाःक्रमशः स्मृताः' इति । अनिष्टमिति वक्तव्ये नेष्ट इति प्रयोगो निषेधवाचकं न शब्दमाश्रित्य नैकधेत्यादिवत् साध्यः । अथ मूले 'अशुभमध्यशस्ताः' इति कथं प्रयोगः ? यावता 'तिथयो द्वयोः' इत्यभिधानात् स्त्रीपुंसयोरस्ति तिथिशब्दः, तथापि तिथ्य इति 'कृदिकारादक्तिनः' इति कृतङीषस्तिथीशब्दस्य स्त्रीलिंग एव वृत्तिः । ततस्तिथ्य इति बहुवचनान्तस्याशुभमध्यशस्ता इति विशेषणे अशुभाश्चमध्याश्च द्वंद्वे 'स्त्रियाः पुंवत्' इति वा 'पुंवत् कर्मधारयजातीय–' इति वा समानाधिकरणोत्तरपदाभावात्पुंवद्भावाभावे चिंत्यताप्रसक्तेः । एवं चेत् कथं तर्हि रत्नमालायां 'कनिष्ठमध्येष्टफलाश्च शुक्ले' इति ? यावता कनिष्ठाश्च मध्याश्चेष्टफलाश्चेति द्वंद्वेऽपि । 'नंदा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति सर्वास्तिथयः' क्रमात्स्युः' इति सर्वापदविशेषणसामर्थ्यात्स्त्रीलिंग एवेत्युक्तदोषप्रसंगः । मैवं वोचः । नात्र द्वंद्वः । किं तर्हि ? कनिष्ठं च मध्यं चेष्टं च कनिष्ठमध्येष्टानि, तादृशानि फलानि यासां ता इति द्वंद्वगर्भबहुव्रीह्याश्रयणादुक्तदोषाप्रसंगः । ननु यद्यप्येवमत्र समाहितं तथापि—'कृष्णे भवंत्युत्तममध्यहीनाः' इति चतुर्थचरणे कथं समाधिः ? यतः फलपदाश्रवणाद्द्वंद्वगर्भबहुव्रीह्यभावाच्छुद्धो द्वंद्व एव समासः । सर्वापदसमभिव्याहृतस्तिथिशब्दोऽपि स्त्रीलिंग एवेत्युक्तो दोषो वज्रायितः । उच्यते—यथा 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' इति पाणिनिसूत्रस्थे द्व्येकयोरिति पदे संख्यावाचिनोद्व्येकशब्दयोर्द्वन्द्वे बहुवचनप्रसंगः, अतो भावप्रधानो निर्देश इत्यभियुक्तस्मरणात् बहुधा काव्येषु दृष्टत्वाच्चाशुभमध्यशस्ता इत्येवमादीनां भावप्रधानत्वादशुभत्वमध्यत्वशस्ताभिधानात्तादृशानां शब्दानां द्वंद्वं विधायाशुभमध्यशस्तानि विद्यंते यासां ता इति बहुव्रीहिणा सिद्धमिष्टम् । बहुव्रीहिणा गतार्थत्वान्मतुपन भवति, 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इत्युक्तेः । अथवा 'तुष्यतु दुर्जनः' इति न्यायमाश्रित्य मतुपो बाधकः 'अर्शआदिभ्योऽच्' ईत्यर्शआदेराकृतिगणत्वान्मत्वर्थेऽच् कार्यः । एतच्च समाधानं शस्तसमाधमा इत्यत्रापि द्रष्टव्यम् । एंवं च सति 'कृष्णे भवंत्युत्तममध्यहीनाः' इत्यपि सिद्धम् । अत एव **नैषधीये** सप्तमसर्गे 'येयं भवद्भाविपुरंध्रिसृष्टिः' इति प्रयुक्तम् । 'द्रुतमध्यविलंबितासु वृत्तिषु' इति महाभाष्यकारो जगाद । अतोऽनेनैवाशयेन–'उभयेऽधममध्यमपूजिता द्रेष्काणैश्चरभेषु चेत्क्रमात् । अशुभेष्टसमाः स्थिरे क्रमाद्धोरायाः परिकल्पिता दश ।' इति वराहमिहिरोऽपि प्रायुंक्त । तथा–सूर्यसूनुदिवसे स्थिरप्रदम्' इति वसिष्ठोऽपि प्रायुंक्त । स्थिरप्रदमित्यत्र स्थैर्यप्रदमित्यर्थो विवक्षित इत्यलमतिप्रसंगेन । अथ चतुर्थचरणेन सिद्धियोगादाह—सितेति । ताः कृतसंज्ञा नंदादितिथ्यः शुक्रबुधमंगलशनिगुरुवारेषु सिद्धाः सिद्धिकराः स्युः । यथा–नंदा शुक्रे सिद्धियोगः, एवं भद्रा बुधे, जया भौमे, रिक्ता शनौ, पूर्णा गुरौ । यदाह कश्यपः–'नंदा तिथिः शुक्रवारे सौम्ये भद्रा कुजे जया । रिक्ता मंदे गुरोर्वारे पूर्णा सिद्धाह्वया तिथिः ।' इति वसिष्ठोऽपि—'शुक्रज्ञगुरुमंदेज्या वारा नंदादिषु क्रमात् । सिद्धा तिथिः सिद्धिदा स्यात्सर्वकार्येषु सर्वदा ।' इति । अस्याः फलस्तुतिमाह वसिष्ठ एव—'सिद्धा तिथिर्हंति समस्तदोषान् यामासशून्यानपि मासदग्धान् । दिनप्रदग्धानपि चान्वदोषानेकादशी यद्वदशेषपापान् इति ।।४।।

पीताम्बरा—कृष्ण एवं शुक्ल दोनों पक्षों में पन्द्रहों तिथियों में, प्रतिपत् षष्ठी एकादशी (१।६।११) इन तीनों तिथियों का एक नाम नन्दा है । इस प्रकार द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी (२।७।१२) का नाम भद्रा, तथा तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी (३।८।१३) का नाम जया तथा

चतुर्थी नवमी चतुर्दशी (४।९।१४) का नाम रिक्ता एवं पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा, या अमावास्या (५।१०।१५ या ५।१०।३०) का नाम पूर्णा है।

इन तिथियों का जैसा नाम है उसी अर्थ में इनका फल भी होता है। जैसे रिक्ता तिथियों (४।९।१४) में शुभ कार्य शुभफलद नहीं होते और पूर्णा नामक तिथियों (५।१०।१५ या ३०) में शुभ कार्य करने से पूर्ण शुभफल होता है।

शुक्ल पक्ष में ये तिथियाँ प्रतिपद् से पञ्चमी तक अशुभ कही गई हैं। इसलिए कि अमावास्या के दिन चन्द्रमा (अस्त) लुप्त होकर शुक्ल पक्ष द्वितीया के दिन सायं थोड़ा सा सूर्यास्त के बाद दिखाई देते हुए धीरे-धीरे शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तक कुछ अधिक दिखाई देता है, अतः शुक्ल पक्ष पञ्चमी तक चन्द्रमा की कलाएँ क्षीण रहने से शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् द्वितीया तृतीया चतुर्थी और पञ्चमी तिथियाँ अशुभ-सी कही जाती हैं।

पुनः शुक्ल पक्ष की षष्ठी से दशमी तक चन्द्रमा की कलाएँ ज्यों-ज्यों बढ़ती हैं त्यों-त्यों ये षष्ठी सप्तमी अष्टमी नवमी और दशमी तिथियाँ अशुभ न होकर पूर्ण शुभ भी नहीं हैं। अर्थात् मध्यम श्रेणी की शुभफलद कही जाती हैं।

तदनन्तर शुक्ल पक्ष की एकादशी द्वादशी त्रयोदशी चतुर्दशी और पौर्णमासी को चन्द्रमा पूर्ण कलाओं से युक्त रहता है अतः शुक्ल पक्ष की एकादशी से पूर्णिमा तक की ये पाँच तिथियाँ उत्तम शुभफलद कही जाती हैं।

इसी प्रकार कृष्णपक्ष प्रतिपद से कृष्णपक्ष पञ्चमी तक चन्द्रमा की अपनी अधिक कलाओं से दृष्ट होने से ये पाचों तिथियाँ भी उत्तम शुभ फल देनेवाली कही गई हैं।

फिर चन्द्रमा षष्ठी से क्षीण होने लगता है इसलिए कृष्णपक्ष की क्षीण षष्ठी सप्तमी, अष्टमी, नवमी और दशमी ये तिथियाँ मध्यम फल देने वाली तथा कृष्णपक्ष एकादशी से कृष्णपक्ष अमावास्या तक की पाँचों तिथियाँ चन्द्रमा के पूर्ण क्षीण हो जाने से अधम (अशुभ-फलद) कही गई हैं।

अर्थात् सामान्यतः शुक्ल पक्ष पञ्चमी से कृष्ण पक्ष चतुर्थी तक की १५ तिथियाँ शुभ, कृष्ण पक्ष पञ्चमी से शुक्ल पक्ष चतुर्थी तक की १५ तिथियाँ प्रायः मध्यम फल की समझी जानी चाहिए।

शुक्रवार के दिन नन्दा तिथियाँ १।६।११, बुधवार के दिन भद्रा तिथियाँ २।७।१२, मंगल वार के दिन जया तिथियाँ ३।८।१३-शनिवार को रिक्ता तिथियाँ ४।९।१४—और गुरुवार को पूर्णा तिथियाँ ५।१०।१५ हों तो उस दिन सिद्धि योग होता है।

यहाँ पर तिथि और वार के सम्बन्ध से अशुभ तिथियाँ और भी शुभ हो जाती है। जैसे शनिवार पापग्रह का अशुभ फलद वार तथा रिक्ता तिथि जैसे चतुर्थी—अशुभ फलदा है लेकिन शनिवार के दिन की रिक्ता तिथि से सिद्ध योग की उत्पति शुभ फलद होती है पीयूष-धारा में यही आशय बशिष्ठ मुनि ने भी स्पष्ट किया है।

इस सिद्ध तिथि का फल भी "वशिष्ठ" ने बताया है—

अर्थात् जिस प्रकार एकादशी तिथि व्रत उपवास दान पूजा व्रत कथा उद्यापन आदि

शुभ कर्माचरण से समस्त पापों का क्षय करती है वैसे ही उक्त सिद्ध तिथियाँ मासशून्य, मासदग्ध, आदि लग्नदोषों तक को दूर कर शुभ फल देती है॥ ४॥

अथ रव्यादिवारेषु यथाक्रमं निषिद्धतिथीन्निषिद्धनक्षत्राणि च शालिन्याह––

नंदा भद्रा नंदिकाख्या जया च रिक्ता भद्रा चैव पूर्णा मृतार्कात्।
याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवं धनिष्ठार्यम्णं ज्येष्ठांत्यं रवेर्दग्धभं स्यात्॥ ५॥

पीयूषधारा—नन्देति॥ यथाक्रममर्कात् 'ल्यब्लोपे पंचमी' इति अर्कमारभ्य वारेषु नंदा-तिथिर्मृताधमफला स्यात्। तथा सूर्ये नंदा मृता, तथा सोमे भद्रा, भौमे, नन्दा बुधे जया, गुरौ रिक्ता, शुक्रे भद्रा, शनौ पूर्णा मृतेत्यर्थः॥ उक्तं च नारदेन––'आदित्यभौमयोर्नंदा भद्रा शुक्रशशांकयोः, जया सौम्ये गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा मृतिप्रदा॥' इति। अत्र बहुषु नारदसंहिता-पुस्तकेषु 'मृतिप्रद' इति पाठमाश्रित्य मृतेति पदं प्रायोजि ग्रंथकृता। तथैवास्माभिर्व्याकृतं च सकलदेशीयशिष्टासंमतत्वादापामरं तथैव व्यवहारदर्शनाच्च। वस्तुतस्तु 'पूर्णा मृतार्कात्' इत्यत्र अकारं प्रश्लिष्य अमृतेति पदं विधेयम्। तत्रामृता अमृतफलदा स्यात्। यथा-नंदा रवावमृता, एवं सोमवारादिष्वपि व्याख्येयं पूर्ववत्। अत्र संमतिरूपे जीर्णपुस्तकस्थनारदवाक्ये––'शनौ पूर्णाऽमृताह्वया' इत्यकारादिराकारांतः पाठ साधीयान्। अमृतेत्याह्वयं नाम यस्याः सा अमृता-ह्वयेत्यर्थः। इममर्थ सफलमाह वसिष्ठः—'नंदा भौमार्कयोर्भद्रा शुक्रेंद्वोश्च जया बुधे। शुभयोगा गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णाऽमृताह्वया।'' इति। इदं वचनं वसिष्ठेन गुणीरूपणाध्याये निरूपितमित्य-तोऽपि शुभत्वप्रतिपादकम्। कश्यपोऽपि तथैवाह—'आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशांकयोः। जया सौम्ये गुरौ रिक्ता पूर्णाऽऽर्कावमृता शुभा॥' इति। आर्कौ=शनौ। एवं सत्यपि शुभत्वे शिष्टाचारे व्यवस्था ज्ञेया। अथोत्तरार्धेन निद्यनक्षत्राण्युच्यन्ते––याम्यमिति। रविवारादिषु याम्यं भरणी तदादीनि नक्षत्राणि यथाक्रमं दग्धनक्षत्राणि स्युः। तथा रवौ भरणी दग्धा, सोमे चित्रा, भौमे उत्तराषाढ़ा, बुधे धनिष्ठा, गुरावुत्तराफल्गुनी, शुक्रे ज्येष्ठा, शनौ रेवती। यदाह नारदः––'यमर्क्षमर्कवारेऽब्जे चित्रा भौमे तु विश्वभम्। बुधे श्रविष्ठर्यम्कैर्क्षं गुरौ ज्येष्ठा भृगोर्दिने॥ रेवती शनिवारे तु दग्धयोगा भवंत्यमी॥' इति लल्लः––'याम्यं चित्रोत्तराषाढ़ा धनिष्ठोत्तरफाल्गुनी। ज्येष्ठा च रेवती चैव जन्मर्क्षं भानुतः क्रमात्॥ जन्मर्क्षग्रहसंयोगे न कुर्याच्छोभनं नरः। पाणिग्रहणयात्रादिविनाशमुपयात्यतः॥'' इति॥ ५॥

पीताम्बरा—सूर्यादिक वारों में अमृत और दग्ध संज्ञक तिथियों को बताया जा रहा है। जैसे—

रविवार के दिन नन्दातिथियाँ, चन्द्रवार के दिन भद्रा, मंगल को नन्दा, बुध के दिन जया, वृहस्पति के दिन रिक्ता, शुक्र के दिन भद्रा तिथियाँ और शनिवार के दिन पूर्णा तिथियाँ अमृत तिथि योग बनाती हैं।

तथा रविवार को भरणी नक्षत्र, सोमवार को चित्रा, मंगल में उत्तराषाढ़ा, बुध को धनिष्ठा, वृहस्पतिवार के दिन उत्तराफाल्गुनी, शुक्र को ज्येष्ठा और शनिवार के दिन रेवती नक्षत्र होने से दग्धनक्षत्र संज्ञक योग होता है।

अर्थात् सूर्यादिवार के दिन, कथित तिथियों के सम्बन्ध से शुभ अमृत तिथि योग तथा सूर्यादिवार के दिन, उक्त कथित नक्षत्र योग से अशुभ दग्ध नक्षत्र योग होता है।

पीयूषधारा में "नारद" के "सूर्ये नन्दा तथा सोमे भद्रा भौमे नन्दा बुधे जया, गुरौ रिक्ता, शुक्रे भद्रा, शनौ पूर्णामृतेत्यर्थः" इस वचन से इस सही अमृतयोग को कुछ लोग मृतयोग बताने की अनुचित चेष्टा करते हैं। शनौ पूर्णामृतेत्यर्थः में सही पाठ नहीं समझ कर गलत अर्थ करते हैं। पूर्णामृतेत्यर्थः में पूर्णा-अमृत इत्यर्थः, सन्धि से स्पष्ट अर्थ अमृत तिथियोग ही होता है। इस सही अमृत योग के लिए प्रमाणीभूत पीयूष के कश्यप वाक्य से भी अत्यन्त पुष्टि होती है कि उक्त तिथि-वार सम्बन्ध से अमृतयोग ही होता है न कि मृतयोग। ऐसे सुन्दर स्पष्ट प्रमाणवाक्यों की सम्यगुपलब्धि होते हुए भी उक्त अमृतयोग को जो मृतयोग कहते हैं तो उन्हें ज्ञानमृत ही समझा जावेगा। कश्यप वाक्य—

यथा—आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः।
जया सौम्ये गुरौ रिक्ता पूर्णार्काविमृता शुभा" ॥

यहाँ पर व्याकरण शास्त्र के सन्धि नियम से पूर्णार्काविमृता से—"पूर्णा-आर्कौ-अमृता" अर्थात् अर्क पुत्र अर्थात् आर्कि शनिवार के दिन पूर्णा तिथि होने से अमृतयोग ही होता है, अति स्पष्ट है ॥ ५ ॥

अथ क्रकचादिनिंद्ययोगाननुष्टुभाह—

षष्ठ्यादितिथयो मन्दाद्विलोमं प्रतिपद्बुधे।
सप्तम्यर्केऽधमाः षष्ट्याद्यामाश्च रदधावने ॥ ६ ॥

पीयूषधारा—षष्ठ्यादीति।—षष्ठीसप्तम्यष्टमीनवमीदशम्येकादशीद्वादश्यस्तिथयो मन्दाच्छनैश्चराद्विलोम विपरीतवारगणनयाऽधमाः स्युः। यथा—शनौ षष्ठ्यधमा, शुक्रे सप्तमी, गुरावष्टमी, बुधे नवमी, भौमे दशमी, सोमे एकादशी, रवौ द्वादशी। एते योगाः क्रकचाख्या ज्ञेयाः। यदाह नारदः—'त्रयोदश स्युर्मिलने संख्यायास्तिथिवारयोः। क्रकचो नाम योगोऽयं मङ्गलेष्वतिगर्हितः ॥' इति। अथ बुधे प्रतिपत्तिथिस्तथा सूर्यवारे सप्तमी संवर्तयोगाख्याऽधमा। उक्तं च नारदेन—'सप्तम्यामर्कवारश्चेत्प्रतिपत्सौम्यवासरे। संवर्तयोगो विज्ञेयः शुभकर्मविनाशकृत् ॥' इति। अथ षष्ठी, आद्या प्रतिपत्, अमा अमावास्या एतास्तिथयो रदधावने निम्बकाष्ठादिभिर्दन्तमलनिराकरणेऽधमा निषिद्धाः स्युः। उक्तं च रत्नमालायाम्—'नष्टेन्दुषष्ठी प्रतिपत्सु धीमान्न जातु दन्तोत्कषणं विदध्यात्। कुर्वन्नवाप्नोति तदाशु नूनं लक्ष्मीकुलज्ञातिजनोपघातम् ॥' इति। क्वचिन्नवमीरविवासरेऽपि निषिद्धा। उक्तं च काशीखण्डे पञ्चत्रिंशाध्याये—'प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां रविवासरे। दन्तानां काष्ठसंयोगो दहेदासप्तमं कुलम् ॥' इति ॥६॥

पीताम्बरा—क्रकच आदिक निन्दितयोग बताए जा रहे हैं—

शनिवार को षष्ठी तथा शनिवार से विपरीत वार शुक्र, बृहस्पति, बुध, मंगल, सोम, और रवि दोनों पक्षों की तथा षष्ठी से आगे की सप्तमी, अष्टमी इत्यादि अर्थात् बुधवार को नवमी, मंगल को दशमी, सोम को एकादशी और रविवार को द्वादशी इस प्रकार की इन वार और तिथियों के सम्बन्ध से अधमयोग होता है। तथा पीयूषधारा में इस योग का नाम "क्रकच" योग भी कहा गया है। बुधवार के दिन की प्रतिपदा और रविवार के दिन की सप्तमी से भी अधमयोग होता है। इसे "पीयूष" में संवर्तकयोग भी कहा है।

नित्य दन्तधावन (दतौन) करने का नियम होते हुए भी षष्ठी, प्रतिपदा और अमावास्या में दन्तधावन (दतौन) करने का निषेध है।

उक्त तिथियों में दतौन करने के लिए नीम आदि लकड़ी के दतौन का निषेध कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि उक्त तिथियों में मञ्जन आदि से तो दांत साफ करना ही चाहिए।

यह विषय प्रायः लकड़ी संग्रह से भी सम्बन्ध रखता है। काशीखण्ड के ३५ वें अध्याय में प्रतिपद्, अमावास्या, षष्ठी और नवमी तिथियों एवं रविवार के दिन काष्ठ-संयोग (लकड़ी संचय) करने से सात कुल तक के लिये भयंकर भय की सूचना दी गई है। "पीयूष" में ये विषय स्पष्ट किए गए हैं ॥ ६ ॥

अथ कृत्यविशेषेषु निषिद्धतिथीनिन्द्रवंशाछन्दसाह—

षष्ठ्यष्टमीभूतविधुक्षयेषु नो सेवेत ना तैलपले क्षुरं रतम्।
नाभ्यञ्जनं विश्वदशद्विके तिथौ धात्रीफलैः स्नानममाद्रिगोष्वसत् ॥ ७ ॥

पीयूषधारा—षष्ठ्यष्टमीत्यादि। षष्ठी, अष्टमी च प्रसिद्धा भूतश्चतुर्दशी, विधुक्षयोऽमावास्या एतासु तिथिषु क्रमेण ना पुरुषः तैलं, पलं मांसं, क्षुरं रतं मैथुनं, यथाक्रमं न सेवेत। यथा षष्ठ्या तैलं, अष्टम्यां मांसं, चतुर्दश्यां क्षौरं, अमावास्यायां मैथुनं, नो सेवेतेत्यर्थः। 'षेवृ सेवने' आत्मनेपदी। नृशब्दो मनुष्यजात्युपलक्षकस्तेन स्त्रीणामप्ययं निषेधः। उक्तं च नारदेन—'षष्ठ्यां तैलं तथाऽष्टम्यां मांसं क्षौरं तिथौ कलेः। पूर्णिमादर्शयोर्नारीसेवनं परिवर्जयेत् ॥' इति। कलेस्तिथौ चतुर्दश्याम्। रत्नमालायां च—'षष्ठीषु तैलं पलमष्टमीषु क्षुरक्रिया चैव चतुर्दशीषु। स्त्रीसेवनं नष्टकलासु पुंसामायुःक्षयार्थं मुनयो वदन्ति ॥' अत्र वचने नष्टकलास्विति वचनमाश्रित्य विधुक्षयेष्वित्युक्ता वयं तु विधुक्षयशब्दः पक्षसर्वपर्वोपलक्षक इति व्याकुर्मः। तथा सति पञ्चपर्वसु मैथुनं न कार्यमित्यर्थः। उक्तं च वसिष्ठसंहितायाम्—'स्त्रीसेवनं पर्वसु पक्षमध्ये पलं च षष्ठीषु च सर्वतैलम्। नृणां विनाशाय चतुर्दशीषु क्षुरक्रिया स्यादसकृत्तदाशु ॥' इति। पक्षमध्येऽष्टम्यां क्वचित्संक्रात्यादावपि तैलाभ्यङ्गो निषिद्धः। यदाह नारदः—'व्यतीपाते च संक्रान्तावेकादश्यां च पर्वसु। अर्कभौमदिने विष्ट्यां नाभ्यङ्गं न च वैधृतौ ॥' इति। पर्वाणि तु वसिष्ठेनोक्तानि—'चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा त्वमावास्या च पूर्णिमा। पुण्यानि पञ्च पर्वाणि संक्रान्तिदिनपस्य च ॥' इति। अत्र निषिद्धकर्मसु तात्कालिक्यस्तिथयो ग्राह्याः। तथा च स्मृतिः—'स्नाने चाभ्यञ्जने चैव दन्तधावनमैथुने। तिथिस्तात्कालिकी ग्राह्या तथा मरणजन्मनोः ॥' इति। अथ विश्वदशद्विके तिथौ त्रयोदशीदशमीद्वितीयास्वभ्यञ्जनं न तैलाभ्यङ्गो न कार्य इत्यर्थः तदुक्तं रत्नमालायाम्—स्नातुर्जनस्य दशमी तनयांस्त्रयोदश्यर्थं निहन्त्युभयमेतदपि द्वितीया' इति। अयं च शरीरमलनिराकरणार्थं निषेधो नित्यनैमित्तिककाम्यांव्यतिरिक्तविषयः। निर्णयामृते द्वितीयातिथिनिर्णये भट्टभास्कर इत्युक्त्वा पठितम्—'स्नातुस्तनूजान् दशमी त्रयोदश्यर्थं द्वितीया द्वितयं निहन्ति। मलापहस्नाननिषेधो एव न नित्य नैमित्तिक काम्य बाधः एतादृशोपि मलापहस्नान निषेधो ब्राह्मणव्यतिरिक्तवर्णत्रयस्यैव। उक्तं च भट्टभास्करेण—'त्रयोदश्यां द्वितीयायां दशम्यां च विशेषतः। शूद्रविट्क्षत्रियाः स्नानं नाचरेयुः कथञ्चन।' इति। अर्थात् ब्राह्मणस्य नायं निषेध इत्यर्थः। अथ धात्रीफलैरामलकैः स्नानममाद्रिगोष्वमत् अमावास्या सप्तमी नवमीषुसत्तन्निषिद्धमित्यर्थः।

उक्तं च रत्नमालायाम्—'सप्तम्यनिदुनवमीषु च सम्पदिच्छुः स्नायात्कदाचिदपि नामलकैर्मनुष्यः ।' अत्र केचिद्दामलकैः स्नातुर्दशमी तनयान्निहन्ति । एवं सर्वत्र व्याख्येयम् । एवं सति दशमीद्वितीयात्रयोदशीसप्तम्यनिदुनवमीष्वामलकस्नाननिषेधोऽस्ति तत्कथं भिन्नवाक्यतामादाय ? स्वपद्ये स्पष्टैव भिन्नवाक्यता कृता । अत्राहुः—स्नातुस्तनूजानन्दशमीति वचनांतरातो धाद्भिन्न वाक्यता स्पष्टैव । तथा च आमलकस्नाननिषेधो दीपिका टीकायां स एव भट्टभास्करः—'सप्तम्यचन्द्रानवमीषु देहश्रीसन्ततीरामलकैर्नरस्य । स्नानं निहन्त्यन्यदिने तु धत्ते तिलैः प्रियं पुण्यकरं सदैव ॥' इत्याहऽस्म। अपरे पुनराहुः सर्वास्वपि तिथिष्वामलकस्नानस्यैव निषेधो नाभ्यंगस्य । यदाह वसिष्ठः—'कामदुर्गान्तकविधिनष्टेन्द्वर्कदिनेषु च । सकृदामलकस्नानं सम्पत्पुत्रविनाशनम् ॥' कामस्त्रयोदशी, दुर्गा नवमी, अन्तको दशमी, विधिर्द्वितीया, नष्टेंदुरमावास्या[1] अर्कदिनं सप्तमी । कश्यपोऽपि—'षष्ठयां दर्शप्रतिपदि द्वादश्यां च दिनक्षये । कुर्यादामलकस्नानं दशम्यां मूढधीर्नरः ॥' पुत्रनाशो भवेत्तस्य त्रयोदश्यां धनक्षयः । सम्पत्पुत्रक्षयस्तस्य द्वितीयायामसंशयम् ॥ सप्तम्यां च नवम्यां च अमायां कुलनाशनम्' इति । दर्शानन्तरं प्रतिपद्दर्शप्रतिपच्छुक्लप्रतिपदित्यर्थः ॥ ७ ॥

पीताम्बरा—स्त्री और पुरुष दोनों के लिए ये नियम हैं कि उन्हें षष्ठी तिथि को तेल, अष्टमी में मांस, चतुर्दशी के दिन क्षौर क्रिया, (हजामत, बाल कटवाना दाढ़ी वनवाना आदि) अमावास्या तिथि में मैथुन (स्त्रीसंगम) नहीं करना चाहिए ।

तथा द्वितीया दशमी और त्रयोदशी तिथियों में उबटन नहीं लगाना चाहिए ।

तथा सप्तमी, और अमावास्या को आंवले के उबटन आदि से स्नान नहीं करना चाहिए ।

कही-कहीं पर व्यतीपात, संक्रान्ति, एकादशी में, पर्व-दिनों में, भद्रा और वैधृतियोग के दिन भी तैलाभ्यङ्ग का निषेध कहा गया है । कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, शुक्ल पूर्णिमा और सूर्यसंक्रान्ति इन पांच दिनों की पर्व संज्ञा है ।

यहाँ पर मान लीजिए षष्ठी तिथि किसी दिन प्रातः सूर्योदय से १ ही घण्टा (२ घटी ३० पल) है उसके वाद सप्तमी लग जाती है तो सप्तमी में तेल मालिश आदि के वाद स्नान किया जा सकता है । क्योंकि स्नान; अभ्यञ्जन, दन्तधावन, मैथुन, जन्म और मरण के समय के लिए तात्कालिक तिथि ही ग्रहण करनी चाहिए । औदयिक (उदयकालिक) तिथि का प्रयोजन इन जगहों पर नहीं है ॥७॥

अथ सूर्यादिवारेषु दग्धादियोगचतुष्टयमिन्द्रवज्रोपजातिकाभ्यामाह—

सूर्येशपञ्चाग्निरसाष्टनन्दा वेदाङ्गसप्ताश्विगजाङ्कशैलाः ।
सूर्याङ्गसप्तोरगगोदिगीशा दग्धा विषाख्याश्च हुताशनाश्च ॥ ८ ॥
सूर्यादिवारे तिथयो भवन्ति मघाविशाखाशिवमूलवह्निः ।
ब्राह्मं करोऽर्काद्यमघण्टकाश्च शुभे विवर्ज्या गमने त्ववश्यम् ॥ ९ ॥

पीयूषधारा—सूर्येशेति । सूर्यो द्वादश लक्षणया यावत्संख्या द्वादश्युच्यते । एवमीशादिशब्देष्वपि व्याख्येयम् । तत्र सूर्यो द्वादशी, ईशा एकादशी, पञ्च पञ्चमी, अग्नयस्तृतीया, रसाः षष्ठी, अष्ट अष्टमी, नन्दा नवमी, सूर्यादिवारेष्वेतास्तिथयो दग्धा भवन्ति । यथा—रवौ द्वादशी दग्धा,

सोमे एकादशी दग्धा, भौमे पञ्चमी, बुधे तृतीया, गुरौ षष्ठी, शुक्रे अष्टमी, नवमी शनौ, शनिरिक्त-सिद्धियोगास्त्वतुर्थीचतुर्दश्योश्चरितार्थः[१]। उक्तं च नारदेनोपग्रहाध्याये-'एकादशी चेन्दुवारे द्वादशी चार्कवासरे। षष्ठी बृहस्पतेर्वारे तृतीया बुधवासरे ॥ अष्टमी शुक्रवारे च नवमी शनिवासरे। पंचमी भौमवारे च दग्धयोगाः प्रकीर्तिताः' ॥ वसिष्ठोपि-'द्वादश्येकादशीनागगौरीस्कन्दवसुष्वपि। नवम्यां दग्धयोगाख्या भानुवारादितः क्रमात्' ॥

विषयोगाः—

अथ विषयोगाः। वेदेति। वेदाश्चतुर्थी, अङ्गानि षष्ठी, 'सप्त-सप्तमी, अश्विनौ द्वितीया, गजा अष्टमी, अङ्का नवमी, शैलाः सप्तमी एतास्तिथयः सूर्यादिवारेषु विषाख्या भवन्ति। यथा–रवौ चतुर्थी विषाख्या, चद्रे षष्ठी, भौमे सप्तमी, बुधे द्वितीया। बुधे भद्रारूपः। सिद्धियोगास्तु सप्तमीद्वादश्योश्चरितार्थः। गुरावष्टमी, शुक्रे नवमी, शनौ सप्तमी। यदाह बृहस्पतिः-- 'षष्ठी शशांके नवमी च शुक्रे बुधे द्वितीया तपने चतुर्थी। जीवेऽष्टमी सौरिकुजेऽह्नि सप्तमी योगा विषाख्या कुलनाशनाः स्युः ॥' वसिष्ठोऽपि–'कुजार्क्योः सप्तमी षष्ठी चन्द्रे भानौ चतुर्थिका। द्वितीया ज्ञेऽष्टमी जीवे नवमी शुक्रवासरे ॥ अचिकित्स्या गदा योगा मङ्गलेष्वेव निन्दिताः'।

हुताशनयोगाः—

अथ हुताशनयोगाः। सूर्येति। सूर्याः द्वादशी, अङ्गानि षष्ठी, सप्त सप्तमी, उरगा अष्टमी, गावो नवमी, दिशो दशमी, ईशा एकादशी। एतास्तिथयो रविवारादिषु हुताशानाख्या ज्ञेयाः। यथा रवौ द्वादशी, सोमे षष्ठी, भौमे सप्तमी, बुधेऽष्टमी, गुरौ नवमी, शुक्रे दशमी, शनौ एकादशी हुताशनाः। यथा हुताशनो निक्षिप्तं वस्तु दहति तथायमुक्तो वारतिथियोगोऽपीत्यर्थः। यदाह गुरुः–'षष्ठ्यादितिथयः सप्त चन्द्रवारादिभिर्युता। क्रमात्पक्षद्वयेऽपि स्युः सप्तयोगा हुताशनाः ॥' इति। वसिष्ठोपि—'सप्तषष्ठ्यादितिथयः सोमवारादिभिर्युताः। अग्निजिह्वाः सप्त योगा मङ्गले कुल-नाशनाः ॥' इति।

यमघण्टयोगा—

अथ यमघण्टः—मघा, विशाखा, शिव आर्द्रा, मूलं, वह्निः कृत्तिका। समाहार द्वंद्वः। ब्राह्मं रोहिणी, करो हस्तः एतानि नक्षत्राण्यर्कात्सूर्यादिवारेषु यमघण्टाः स्युः। यथ-रवौ मघा यमघण्टः, सोमे विशाखा, भौमे आर्द्रा, बुधे मूलं, गुरौ कृत्तिका, शुके रोहिणी, शनौ हस्तः। उक्तं च दैवज्ञमनोहरे गर्गेण—'मघाविशाखा चार्द्रा च मूलमृक्षं च कृत्तिका। रोहिणी हस्त इत्येवं यमघण्टाः क्रमाद्रवेः ॥' इति। अयं पाठः साधीयान्। प्राक्पाठे हि कतिचिन्नक्षत्राणि पूर्वार्धे द्वे तूत्तरार्ध इत्यसामञ्जस्यात्। एते दग्धादियोगाः शुभे शुभकार्ये विवर्ज्यास्त्याज्याः। तुर्विशेषे। गमने यात्रायां त्ववश्यं वर्ज्याः। यदाह मार्तण्डः—नात्र यात्रा प्रकर्तव्या कार्यान्तरमथापि वा। यमघण्टादियोगोऽयमनर्हः सर्व-कर्मसु ॥' इति।

१—'सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भव–' दित्युक्तत्वात्।

दुर्योगापवादः—

आवश्यकत्वेन यमघण्टपरिहारमाह गर्गः।—'विन्ध्यस्योत्तरभागे तु यावदातुहिमाचलम् । यमघण्टकदोषोस्ति नान्यदेशे कदाचन ।।' इति । अन्यच्च-'लग्नाच्छुभग्रहः केन्द्रे त्रिकोणेऽवस्थितो यदि । चन्द्रो वापि न दोषः स्याद्यमघण्टकसम्भवः ।।' इति । कैश्चिदष्टौ घटिकास्त्याज्या इत्युक्तम् । तदुक्तं दीपिकायाम्–'यमघण्टे त्यजेदष्टौ मृत्यौ द्वादश नाडिका' इति । अत्रैषां पापयोगानामपवादो वसिष्ठेनोक्तः—'दिवा मृत्युप्रदाः पापा दोषास्त्वेतेन न रात्रिषु । शुभकार्य-प्रसूतौ च सर्वदा परिवर्जयेत् ।।' ।। ८ ।। ९ ।।

पीताम्बरा—सूर्यादिक वारों में दग्ध, विष और हुताशन योग बताये जाते हैं—

सूर्यवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मङ्गल को पञ्चमी, बुध को तृतीया, बृहस्पतिवार को षष्ठी, शुक्रवार को अष्टमी और शनिवार को नवमी होने से दग्धयोग होता है।

तथा रवि को चतुर्थी, सोम को षष्ठी, मंगल को सप्तमी, बुध को द्वितीया, गुरुवार को अष्टमी, शुक्रवार को नवमी और शनिवार को सप्तमी होने से विषयोग होता है ।

एवं रविवार की द्वादशी, चन्द्रवार की षष्ठी, मंगल की सप्तमी, बुध की अष्टमी, बृहस्पतिवार की नवमी, शुक्र की दशमी और शनिवार की एकादशी तिथि में हुताशनयोगहोता है।

साधारण शुभ में वर्जित किन्तु यात्रा में तो अवश्य वर्जित करने के लिए यमघण्टयोग बताया जाता है, जो वारों और नक्षत्रों के सम्बन्ध से होता है । जैसे—रवि को मघा, सोम को विशाखा, मंगल को आर्द्रा, बुध को मूल, गुरु को कृतिका, शुक्र के दिन रोहिणी और शनिवार को हस्त नक्षत्र होने से यमघण्टयोग होता है ।

उक्त तीनों प्रकार के योग मङ्गल कार्यों में वर्जित करने चाहिए। दग्धयोग, विषाख्य-योग तो नाम से ही अनिष्टप्रद है। जैसे अग्नि में डाली गई कोई वस्तु उस वस्तु को अग्नि भस्म करती है तद्वत् उक्त तिथिवार से उत्पन्न हुताशनयोग भी मंगल कर्म में अति विघ्न करता है।

यमघण्टयोग सभी कर्मों में त्याज्य है । यात्रा में विशेष त्याज्य है ।

पीयूष में 'गर्गाचार्य' के मत से विन्ध्य से उत्तर हिमालय तक यमघण्ट का दोष होता है, इनसे अतिरिक्त (अन्य) देशों में यमघण्ट का दोष नहीं होता ।

लग्न से शुभ ग्रह या चन्द्रमा यदि केन्द्रत्रिकोण में हो तो यमघण्टक दोष नहीं होता ।

यमघण्टयोग की ८ घड़ी, मृत्युयोग की १२ घड़ी वर्जित करने पर शेष घटिकायें शुभकार्यानुकूल हो सकती हैं । शुभकार्य में उक्त दोष वर्जित ही करने चाहिए । अत्या-वश्यक होने पर ये दोष दिन में जितने अनिष्टप्रद होते हैं उतने रात्रि में दोषप्रद नहीं होते हैं ।। ८ ।। ९ ।।

अथ चैत्रादिमासे शून्यास्तिथीः शार्दूलविक्रीडितेनानुष्टुप्पूर्वार्द्धेन चाह—

भाद्रे चन्द्रदृशौ नभस्यनलनेत्रे माधवे द्वादशी
पौषे वेदशरा इषे दशशिवा मार्गेऽद्रिनागा मधौ ।
गोऽष्टौ चोभयपक्षगाश्च तिथयः शून्या बुधैः कीर्तिता
ऊर्जाषाढतपस्यशुक्रतपसां कृष्णे शराङ्गाब्धयः ।। १० ।।
शक्राः पञ्च सिते शक्राद्याग्निविश्वरसाः क्रमात् ।

पीयूषधारा—भाद्र इति। भाद्रशब्देन भाद्रपद उच्यते। 'स्युर्नभस्यः प्रौष्ठपदभाद्रभाद्रपदाः समाः' इत्यमरः। भाद्रे भाद्रपदे मास्युभयपक्षगे शुक्लकृष्णसाधारणे, चंद्रदृशौ प्रतिपद्द्वितीये तिथी शून्ये। तथा नभसि श्रावणे मासि। अनलनेत्रे तृतीयाद्वितीये उभयपक्षगे शून्ये। माधवे वैशाखे द्वादशी तिथिः शून्या, पौषे वेदशराः चतुर्थीपञ्चम्यौ शून्ये। इषे आश्विने दशशिवाः दशम्येकादश्यौ शून्ये। मार्गे मार्गशीर्षेऽद्रिनागाः शून्ये। मधौ चैत्रे गोष्टो नवम्यष्टम्यौ शून्ये। एषु मासेषु। एतास्तिथयः पक्षद्वयगाः शून्या बुधैः कीर्तिताः। अथानुक्तमासानामूर्जाषाढतपस्यशुक्रतपसां कार्तिकाषाढफाल्गुनज्येष्ठमाघानां कृष्णपक्षे क्रमेण शरांगाब्धयः शक्राः पञ्च पञ्चतिथयः शून्याख्याः। यथा—कार्तिककृष्णपक्षे पञ्चमी शून्या। आषाढकृष्णपक्षे षष्ठी शून्या। फाल्गुनकृष्णपक्षे चतुर्थी शून्या। ज्येष्ठकृष्णपक्षे चतुर्दशी शून्या। माघकृष्णपक्षे पञ्चमी शून्या। अथैषामेव मासानां सिते शुक्लपक्षे शक्रादचग्निविश्वरसाः क्रमाच्छून्याः। यथा कार्तिकशुक्लपक्षे चतुर्दशी शून्या। आषाढशुक्ले सप्तमी शून्या। फाल्गुनशुक्ले तृतीया शून्या। ज्येष्ठशुक्ले त्रयोदशी शून्या। माघशुक्ले षष्ठी शून्येत्यर्थः। यदाह वसिष्ठः—'अष्टमी-नवमी चैत्रे पक्षयोरुभयोरपि। माधवे द्वादशी त्याज्या पक्षयोरुभयोरपि॥ ज्येष्ठे त्रयोदशी निंद्या सिते कृष्णे चतुर्दशी। आषाढे कृष्णपक्षस्य षष्ठी.शुक्ले तु सप्तमी॥ द्वितीया च तृतीया च श्रावणे सितकृष्णयोः। प्रथमा च द्वितीया च नभस्ये मासि निंदिते॥ दशम्येकादशी निंद्या मासांषे शुक्ल कृष्णयोः। ऊर्जे चतुर्दशी शुक्ले कृष्णपक्षे तु पञ्चमी॥ सप्तमी चाष्टमी सौम्ये पक्षयोरुभयोरपि। पौषे पक्षद्वये चैव चतुर्थी पञ्चमी तथा॥ माघे तु पञ्चमी षष्ठी कृष्णे शुक्ले यथाक्रमम्। तृतीया च चतुर्थी च फाल्गुने सितकृष्णयोः॥ तिथयो मासशून्याख्या वंशवित्त-विनाशदाः। आसु श्राद्धं प्रकुर्वीत नैव मङ्गलमाचरेत्' इति॥ १०॥

पीताम्बरा—दोनों पक्षों की शून्य तिथियाँ—भाद्र में प्रतिपद्, द्वितीया, श्रावण में तृतीया, द्वितीया, वैशाख की द्वादशी, पौष की चतुर्थी, पञ्चमी, आश्विन में दशमी, एकादशी, मार्गशीर्ष में सप्तमी, अष्टमी, चैत्र में अष्टमी, नवमी—ये शून्य तिथियाँ कही गई हैं।

कार्तिकमास कृष्णपक्ष की पञ्चमी, शुक्ल की चतुर्दशी, आषाढकृष्ण की षष्ठी, शुक्ल की सप्तमी, फाल्गुनकृष्ण की चतुर्थी, शुक्ल की द्वितीया, ज्येष्ठकृष्ण की चतुर्दशी, शुक्ल की त्रयोदशी, माघकृष्ण की पञ्चमी और शुक्ल की षष्ठी तिथियाँ भी शून्य तिथियाँ कही गई हैं।

मास शून्य तिथियों में शुभ कर्म करने से वंशवित्त क्षय होता है। इन शून्य तिथियों में श्राद्ध किया जाना चाहिए किन्तु मंगल कर्म नहीं करने चाहिए॥ १०॥

अथ तिथिनक्षत्रसम्बन्धिदोषान्सार्द्धानुष्टुब्द्वयेनाह—

तथा निन्द्यं शुभे सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिमे॥ ११॥
अनुराधा द्वितीयायां पञ्चम्यां पित्र्यभं तथा।
त्र्युत्तराश्च तृतीयायामेकादश्यां च रोहिणी॥ १२॥
स्वातीचित्रे त्रयोदश्यां सप्तम्यां हस्तराक्षसे।
नवम्यां कृत्तिकाष्टाम्यां पूभा षष्ठ्यां च रोहिणी॥ १३॥

पीयूषधारा—तथा निंद्यमिति । शुभकृत्ये द्वादश्यां सार्पमाश्लेषा निंद्यं, आदिमे तिथौ प्रतिपदि वैश्वमुत्तराषाढा निंद्या, द्वितीयायामनुराधा, पञ्चम्यां पितृभं मघा, तृतीयायां त्र्युत्तराः उत्तराफाल्गुन्युत्तराषाढोत्तराभाद्रपदा, निंद्या, एकादश्यां रोहिणी, त्रयोदश्यां स्वातीचित्रे; सप्तम्यां हस्तराक्षसे हस्तमूले, नवम्यां कृत्तिका, अष्टम्यां पूभा पूर्वाभाद्रपदेत्यर्थः । यदाह चतुर्भुजमिश्र-निबन्धे लल्लः—'द्वितीयया चानुराधा त्र्युत्तराश्च तृतीयया । पञ्चमी च मघायुक्ता चित्रा स्वात्या त्रयोदशी ।। एषु कार्यं कृतं चेत्स्यात्षण्मासान्मरणं ध्रुवम् । प्रतिपद्युत्तराषाढा नवम्यां कृत्तिका यदि ।। पूर्वाभाद्रपदाष्टम्यामेकादश्या च रोहिणी । द्वादश्यां च यदाश्लेषा त्रयोदश्यां मघा यदि ।।' इति ।।११।।१२।।१३।।

पीताम्बरा—और भी तिथिनक्षत्र से उत्पन्न दोष कहे जा रहे हैं—द्वादशी तिथि में श्लेषा, प्रतिपदा में उत्तराषाढ़ा; द्वितीया में अनुराधा, पञ्चमी को मघा, तृतीया को तीनों उत्तरा, एकादशी को रोहिणी, त्रयोदशी में स्वाती और चित्रा, सप्तमी को हस्त और मूल, नवमी में कृतिका, अष्टमी में पूर्वाभाद्रपद तथा षष्ठी के दिन रोहिणी भी शुभ कार्यों में वर्जित हैं । शुभ कर्म में ये निन्द्य हैं ।

चतुर्भुज मिश्र निबन्ध में—"उक्त निन्द्य तिथियों में शुभ कार्य करने वाले का, ६ महीने के भीतर निधन हो जाता है ।" कहा है ।। ११ ।। १२ ।। १३ ।।

अथ चैत्रादिमासेषु क्रमाच्छून्यनक्षत्राण्यनुष्टुब्द्वयेनाह—

कदास्रभे त्वाष्ट्रवायू विश्वेज्यौ भगवासवौ ।
वैश्वश्रुती पाशिपौष्णे अजपादग्निपित्र्यभे ।। १४ ।।
चित्राद्वीशौ शिवाश्व्यर्काः श्रुतिमूले यमेन्द्रभे ।
चैत्रादिमासे शून्याख्यास्तारा वित्तविनाशदाः ।। १५ ।।

पीयूषधारा—कदास्रभ इति । चैत्रमासे कदास्रभे रोहिण्यश्विन्यौ, वैशाखे त्वाष्ट्रवायू चित्रास्वात्यौ, ज्येष्ठमासि विश्वेज्यौ उत्तराषाढापुष्यौ, आषाढमासे भगवासवौ पूर्वाफल्गुनीधनिष्ठे श्रावणे विश्वश्रुती उत्तराषाढाश्रवणौ, भाद्रपदे पाशिपौष्णे, पाशी वरुणः शततारकारेवत्यौ, आश्विने अजपात्पूर्वाभाद्रपदा, कार्तिके अग्निपित्र्यभे कृत्तिकामघे, अत्र पाशिपौष्णे अजपादित्यत्र 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' इति प्रगृह्यत्वात् 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इति प्रकृतिभावेन संध्य-भावः । मार्गशीर्षे चित्राद्वीशौ चित्राविशाखे, पौषे शिवाश्व्यर्काः आर्द्राश्विनीहस्ताः, माघे श्रुति-मूले, फाल्गुनमासे यमेन्द्रभे भरणीज्येष्ठे एतास्ताराः क्रमाच्चैत्रादिमासेषु शून्यसंज्ञा ज्ञेयाः । कीदृश्यस्ताराः वित्तविनाशदा धननाशकरा इत्यर्थः । उक्तं च वसिष्ठसंहितायाम्—'अश्विनी रोहिणी चैत्रे शून्यभे परिकीर्तिते । चित्रा स्वाती च वैशाखे ज्येष्ठे विश्वेज्यतारके ।। भगवासव-माषाढे श्रावणे हरिविश्वभे । नभस्ये वारुणांत्यर्क्षमजपादश्वयुज्यपि ।। कार्तिके पितृवह्न्यृक्षे मार्गे चित्राद्विदैवते । पौषे दस्रकरार्द्राः स्युर्माघे मूलं च विष्णुभम् ।। तपस्ये शक्रभरणी शून्याभान्याहुर-ग्रजाः । एषु यत्तु कर्म धनैः सह विनश्यति' ।। इति ।। १४ ।। १५ ।।

पीताम्बरा—चैत्रादि मासों में शून्य नक्षत्र—चैत्र में रोहिणी-अश्विनी, वैशाख में चित्रा-स्वाती, ज्येष्ठ में उत्तराषाढ़ा-पुष्य, आषाढ़ में पूर्वाफाल्गुनी-धनिष्ठा, श्रावण में उत्तरा-

षाढ़ा-श्रवण, भाद्र में शतभिषा-रेवती, आश्विन में पूर्वाभाद्रपद, कार्तिक में कृतिका मघा, मार्गशीर्ष में चित्रा-विशाखा, पौष में आर्द्रा-अश्विनी हस्त, माघ में श्रवण-मूल और फाल्गुनमास में भरणी ज्येष्ठा ये नक्षत्र शून्य होते हैं। ऐसे शून्य नक्षत्रों में किया गया शुभ कार्य, धनक्षय कारक होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ चैत्रादिमासेषु शून्यराशीननुष्टुभाह—

घटो झषो गौर्मिथुनं मेषकन्यालितौलिनः ।
धनुः कर्को मृगः सिंहश्चैत्रादौ शून्यरशयः ॥ १६ ॥

पीयूषधारा—घट इति । चैत्रे घटः कुम्भः, वैशाखे झषो मीनः, ज्येष्ठे गौर्वृषः, आषाढे मिथुनं, श्रावणे मेषः, भाद्रपदे कन्या, आश्विनेऽलिर्वृश्चिकः कार्तिके तौलिस्तुला, मार्गशीर्षे धनुः, पौषे कर्कः, माघे मृगो मकरः, फाल्गुने सिंहः, एते राशयः क्रमेण चैत्रमासादिषु शून्यसंज्ञका इत्यर्थः । उक्तं च वसिष्ठेन—'घटमत्स्यवृषायुग्ममेषकन्याः सवृश्चिकाः । तुलाचापकुलीराख्यमृगसिंहाश्च राशयः ॥ चैत्रादौ मासशून्याख्या वंशवित्तविनाशदाः । तस्मात्तान्संपरित्यज्य शोभनं कारयेत्सुधीः ॥ १६ ॥

पीताम्बरा—चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष माघ और फाल्गुन इन बारहों मासों में क्रमशः कुम्भ, मीन, वृष, मिथुन, मेष, कन्या, वृश्चिक, तुला, धनु, कर्क, मकर और सिंह राशियाँ शून्य राशियाँ होती हैं।

उक्त मासों की उक्त शून्य राशियों में शुभ कार्य नही करने चाहिए। इन शून्य राशियों में शुभ कार्य करने से वंश व वित्त का विनाश होता है ॥ १६ ॥

अथ विषमतिथिषु दग्धलग्नानीद्रवज्रयाह—

पक्षादितस्त्वोजतिथौ घटेणौ मृगेन्द्रनक्रौ मिथुनाङ्गने च ।
चापेन्दुभे कर्कहरी हयान्त्यौ गोऽन्त्यौ च नेष्टे तिथिशून्यलग्ने ॥ १७ ॥

पीयूषधारा—पक्षादित इति ॥ शुक्लकृष्णसाधारण्येन पक्षमङ्गीकृत्य ओजतिथौ विषमतिथिषु प्रतिपत्तृतीयादिषु घटस्तुला, एणो मकर इत्यादीनि लग्नानि क्रमेण दिनदग्धानि ज्ञेयानि! यथा प्रतिपदि तुलामकरौ, तृतीयायां मृगेन्द्रनक्रौ सिंहमकरौ, पञ्चम्यां मिथुनकन्ये, सप्तम्यां धनुःकर्कौ, नवम्यां कर्कसिंहौ, एकादश्यां धनुर्मीनौ, त्रयोदश्यां वृषमीनौ तस्यां तस्यां तिथौ एते एते लग्ने नेष्टे अनिष्टे इत्यर्थः । उक्तं च वसिष्ठसंहितायाम्—'मृगसिंहौ तृतीयायां प्रथमायां तुलामृगौ । पञ्चम्यां बुधराशी द्वौ सप्तम्यां चापचन्द्रभे ॥ नवम्यां सिंहकीटाख्यावेकादश्यां गुरोर्गृहे । वृषमीनौ त्रयोदश्यां दग्धसंज्ञास्त्वमी गृहाः ॥ दग्धसद्मनि यत्कर्म कृतं सर्वं विनश्यति । तस्माद्दग्धगृहास्त्याज्याः शोभनेष्वखिलेष्वपि ॥' इति ॥ १७ ॥

पीताम्बरा—दोनों कृष्ण-शुक्ल पक्षों में प्रतिपद से विषम तिथियों में अर्थात् प्रतिपद् में तुला और मकर, तृतीया में सिंह-मकर, पञ्चमी में मिथुन-कन्या, सप्तमी के दिन धनु-कर्क, नवमी में कर्क-सिंह, एकादशी में धनु-मीन और त्रयोदशी में वृष-मीन ये लग्न राशियाँ शुभ कर्म के लिए अच्छी नहीं हैं क्योंकि उनका नाम दग्ध लग्न होता है ॥ १७ ॥

अथैषां दुष्टयोगानां शुभकृत्यावश्यकत्वे सति परिहारं नारदवचनेनैवाह—

तिथयो मासशून्याश्च शून्यलग्नानि यान्यपि।
मध्यदेशे विवर्ज्यानि न दूष्याणीतरेषु तु ॥ १८ ॥

[1]पङ्ग्वन्धकाणलग्नानि मासशून्याश्च राशयः[2]।
गौडमालवयोस्त्याज्या अन्यदेशे न गर्हिता ॥ १९ ॥

पीयूषधारा—तिथय इति। स्पष्टार्थमिदं पद्यद्वयम्। पंग्वंधकाणाद्याख्यानि लग्नानि विवाहप्रकरणे वक्ष्यन्ते। मध्यदेशो वराहसंहितायामुक्तः—'मद्रारिमेदमांडव्यशाल्वनीपोज्जिहानसंख्यानाः। मरुवत्सघोषयामनसारस्वतमत्स्यमाध्यमिकाः॥ माथुरकोपज्योतिषधर्मारण्यानि शूरसेनाश्च। गौरग्रीवौदैहिकपञ्चगुडाश्वत्थपाञ्चालाः। साकेतकङ्ककुरुकालकोटि कुकुराश्च पारियात्रनगः। औदुम्बरकापिष्ठकगजाह्वयाश्चेति मध्यमिदम्॥' इति। जगन्मोहनेऽपि—'केन्द्रे चैव त्रिकोणे च शुभो ह्युपचयेपि वा। एकोऽपि बलवांश्चापि शून्यतिथ्युडुनाशकः॥' इति॥ अयं देशाचारमनुसृत्य व्यवहारः कर्तव्यः॥ १८॥ १९॥

पीताम्बरा—पहिले के श्लोक ९, १० में मासशून्य तिथियाँ तथा श्लोक १७ में, कथित शून्य लग्नों को मध्यदेश में ही वर्जित करना चाहिए, अन्य देशों में इनमें भी शुभ कर्म हो सकते हैं। केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रहों की स्थिति से उक्त दोषों से हानि नहीं होती।

वाराहीसंहिता में—मद्रारिमेदमाण्डव्यशाल्वनीपोज्जिहानसं ख्यान..............मध्यदेश के देशों की स्पष्टता की है। आगे विवाह प्रकरण में पंगु, अन्ध और काण लग्नों का उल्लेख है। ये पंगु, अन्ध और काण नामक लग्न और मासशून्य राशियाँ गौड और मालव देश में ही वर्जित करनी चाहिए॥ १८॥ १९॥

अथ समस्तशुभकार्येषु सिद्धिदानपि हस्तार्कादियोगांस्तिथिविशेषेणातिनिंद्याननुष्टुब्द्वयेनाह—

वर्जयेत्सर्वकार्येषु हस्तार्कं पञ्चमीतिथौ।
भौमाश्विनीं च सप्तम्यां षष्ठ्यां चन्द्रैन्दवं तथा॥ २०॥

बुधानुराधामष्टम्यां दशम्यां भृगुरेवतीम्।
नवम्यां गुरुपुष्यं चैकादश्यां शनिरोहिणीम्॥ २१॥

पीयूषधारा—वर्जयेदिति। सर्वशुभकृत्येषु पञ्चम्यां हस्तनक्षत्रं सूर्यवारं च युगपद्वर्जयेत्। एवं सप्तम्यां भौमाश्विनीमपि, षष्ठ्यां सोममृगनक्षत्रे, अष्टम्यां बुधानुराधां, दशम्यां भृगुरेवतीं, नवम्यां गुरुपुष्यम्, एकादश्यां शनिरोहिणीं वर्जयेदित्यर्थः। हस्तार्कादीन् सिद्धियोगानाह नारदः—'हस्तर्क्ष सूर्यवारेन्दाविदुभं प्रथम कुजे। सोम्ये मित्रभमाचार्ये पुष्यं पौष्णं भृगोः सुते। रोहिणी मन्दवारे तु सिद्धियोगाह्वया अमी॥' इति। तत्र त्रितयनिषेधो दैवज्ञमनोहरे—आदित्ये पञ्चमोहस्तौ सोमे षष्ठी च चन्द्रभम्। भौमाश्विन्यौ च सप्तम्यामनुराधां बुधाष्टमीम्॥ गुरुपुष्यं नवम्यां च दशम्यां भृगुरेवतीम्। एकादश्यां शनिब्राह्मे विषयोगाः प्रकीर्तिताः॥'

इति । अन्यत्रापि—'अर्के हस्तं पञ्चमां च सोमे षष्ठीं च चन्द्रभम् । अश्विनीं सप्तमी सोमे बुधे मैत्रं तथाष्टमीम् ।। गुरौ पुष्यं च नवमीं रेवतीं दशमीं भृगौ । एकादशीं शनौ ब्राह्मं वर्जयेत्सर्वदा बुधः ।।' इति । वशिष्ठेन त्वन्यदेव त्रितयं निषिद्धमुक्तम्—'अर्कवारेऽग्निपञ्चम्यौ सोमे चित्रा द्वितीयया । कुजे पूर्णेन्दुरोहिण्योः सप्तमीयाम्ययोर्बुधे ।। गुरौ मित्रत्रयोदश्योः षष्ठीश्रवणयोः सिते । पौष्णाष्टम्योः शनावेते योगा हालाहलाह्वयाः । एषु योगेषु कर्तव्यं शत्रूच्चाटनमारणम् । विवाहादिषु कार्येषु नियतं निधनप्रदम् ।।' इति । अग्निः कृत्तिका । पूर्णेन्दुः पूर्णिमा ।। २०–२१ ।।

पीताम्बरा—रविवार के साथ पञ्चमी और हस्त नक्षत्र, मंगलवार की सप्तमी अश्विनी नक्षत्र के साथ, सोमवार षष्ठी और मृगशिरा, बुधवार अष्टमी और अनुराधा, शुक्रवार की दशमी रेवती के साथ, गुरुवार नवमी पुष्य, और शनिवार एकादशी रोहिणी—इन तिथि वार नक्षत्रों का सम्बन्ध शुभ कर्म में वर्जित हैं । यद्यपि गुरुवार के दिन पुष्य सब कार्यों के लिए सिद्ध है किन्तु नवमी तिथि सम्बन्ध से निन्दनीय हो जाता है । ऐसे ही सर्वत्र समझना चाहिए ।। २० ।। २१ ।।

अथ भौमाश्विनीत्यादिकान् सिद्धियोगान् कार्यविशेषऽतिनिंद्यानानुष्टुभाह—

गृहप्रवेशे यात्रायां विवाहे च यथाक्रमम् ।
भौमाश्विनीं शनौ ब्राह्मं गुरौ पुष्यं[1] विवर्जयेत् ।। २२ ।।

पीयुषधारा—गृहेति ।। नूतनगृहप्रवेशेऽतिसिद्धिदामपि भौमाश्विनीं वर्जयेत् । यात्रायां शनौ रोहिणीं वर्जयेत् । विवाहे गुरुपुष्यं विवर्जयेत् । राजमार्तण्डः—'भौमाश्विनीं प्रवेशे च प्रयाणे शनिरोहिणीम् । गुरुपुष्यं विवाहे च सर्वथा परिवर्जयेत् ।।' इति । ननु भौमाश्विनी तु प्रवेशे निषिद्धास्ति । कथम् । 'व्यर्कारवारे तिथिषु रिक्तामावर्जितासु च । दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मंगलप्रदः ।।' इति नारदोक्तेर्भौमो निषिद्धः । अश्विनीक्षिप्रसंज्ञकनक्षत्रं तेन 'क्षिप्रैश्चरैः स्यात्पुनरेव यात्रा' इति फलम् । ततः सापि निषिद्धा । एवं रोहिणी यात्रायामविहिता पश्चिमायां चातिशयेन निषिद्धैव । एवं शनिवारोपि सामान्यतो नवम्यादियोगे सुतरां निषिद्ध एव । एव पुष्योऽपि विवाहे निषिद्धः । गुरुवारस्तूत्तम एव । अनयोर्योगस्तु वाय्यग्निवत्सुतरां निषिद्धस्तत्कथमिदमपवादवचनं, प्राप्तिपूर्वकत्वात्प्रतिषेधस्य इति । उच्यते 'हस्तर्क्ष-

---

(१) विवाहे गुरुदिनमतीव शस्तम्, किंच पुष्येण सहावस्थितया 'मधुसर्पिर्यथा विषम्' तथैवायमपि जायते योगः । पुरा किल पुष्याभिजित्पूर्वफल्गुनीनक्षत्राणि विवाहे प्रसिद्धानि तत्प्रासङ्गिकं पद्यद्वयं यथा ज्योतिर्विदाभरणे—

' समस्तकर्मोचितकालपुष्यो दुष्टो विवाहे मदमूर्छितत्वात् ।
सहस्रपत्रप्रसवेन तस्मादिहापि मुक्तो भुवि लोकसंघैः ।। १ ।।
भगोडुबाल्मीकिरिहाह सौम्यं सीता सिषेवे न सुखं तदूढा ।
भैमी तथैवाभिजिदृक्षमत्रिस्तच्छापमापोडु तदीयमस्मात् ।। २ ।।"

मर्कवारे' इत्यादिवचनाद्भौमाश्विनीत्यादेर्वा नक्षत्रयुतेः कार्यमात्रे प्रशस्ततमत्वमस्ति यदाह राजमार्तण्डः—'यदि विष्टिर्व्यतीपातो दिनं वाप्यशुभं भवेत् । हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा ।। हंत्यमृताख्यो योगः सर्वाण्यशुभानि लीलया नियतम् । न भवति पुनरिह शद्धौ वैधृति-विष्टिव्यतीपाते ।।' इति सामान्यतः कार्यमात्रप्राशस्त्यप्राप्तावपवादवचनं युक्तमेव । अत्र पितृ-चरणाः । इयं च प्रशंशाऽमृतयोगकारकनक्षत्रवारोक्तकर्मविशेषगतविशिष्टफलाभिधायिकावगतव्या न तु निषिद्धकर्मानुविधायिनी । अतएव पठन्ति—'भौमाश्विनीं प्रवेशे च प्रयाणे शनिरोहिणीम् । गुरुपुष्यं विवाहे च सर्वथा परिवर्जयेत् ।।' इत्याहुः । अत्र समाधिः । अन्यशुभदिवसासम्भवे कृत्यस्य चावश्यकत्वे भौमाश्विन्यादौ निषिद्धेऽपि कार्यं कार्यमन्यथा नेति ।। २२ ।।

पीताम्बरा—गृहप्रवेश के लिए मंगलवार के दिन की अश्विनी, यात्रा के लिए शनि के दिन की रोहिणी और विवाह के लिए गुरुवार के दिन का पुष्य नक्षत्र वर्जित है ।

आवश्यकतावश अन्य शुभ दिन नहीं मिल रहा हो, कार्य आवश्यक हो तो मंगल की अश्विनी इत्यादि जो निषिद्ध काल कहा गया है उसमें शुभ कार्य किये जा सकते हैं ।

गुरुवार का दिन यद्यपि विवाह आदि के लिए अत्यन्त उत्तम है, किन्तु जैसे मधु और घी का योग विष उत्पन्न करता है और जैसे वायु से अग्नि अधिक दीप्त होती है वैसे ही गुरु-पुष्य के योग का विवाह भी निषिद्ध ही कहा गया है ।। २२ ।।

अथानन्दादीनष्टाविंशतियोगान् शालिन्युपजातिभ्यामाह—

आनन्दाख्यः कालदण्डश्च धूम्रो धाता सौम्यो ध्वांक्षकेतू क्रमेण ।
श्रीवत्साख्यो वज्रकं मुद्गरश्च छत्रं मित्रं मानसं पद्मलुम्बौ ।। २३ ।।
उत्पातमृत्यू किल काणसिद्धी शुभोऽमृताख्यो मुसलो गदश्च ।
मातङ्गरक्षश्चरसुस्थिराख्यप्रवर्धमानाः फलदाः स्वनाम्ना ।। २४ ।।

पीयूषधारा—आनन्देति । स्पष्टार्थं पद्यद्वयम् । यदाह नारदः—"आनन्दः कालदण्डोऽथ धूम्रो धाता शुभाह्वयः । ध्वांक्षो ध्वजाख्यःश्रीवत्सवज्रमुद्गरछत्रकाः ।। मित्रमानसपद्माख्यलुम्बकोत्पातमृत्यवः । काणः सिद्धिः शुभामृत मुसलातङ्क कुंजराः । राक्षसाख्यश्चरस्थैर्यवर्धमानाः क्रमादमी । योगाः स्वसंज्ञाफलदास्त्वष्टाविंशतिसंख्यकाः ।।' इति ।। २३–२४ ।।

पीताम्बरा—जिन योगों के नाम शुभ हैं वे शुभ फल, जो अशुभ नाम के हैं वे अशुभ फल देने वाले ये २८ आनन्दादि योग हैं । जो क्रमशः १–आनन्द, २–कालदण्ड, ३–धूम्र, ४–धाता, ५–सौम्य, ६–ध्वाङ्क्ष, ७–केतु, ८–श्रीवत्स, ९–वज्र, १०–मुद्गर, ११–छत्र, १२–मित्र, १३–मानस, १४–पद्म, १५–लुम्ब, १६–उत्पात, १७–मृत्यु, १८–काण, १९–सिद्धि २०–शुभ, २१–अमृत, २२–मुशल, २३–गद, २४–मातङ्ग, २५–रक्ष, २६–चर, २७–सुस्थिर और २८–प्रवर्धमान नाम के हैं ।

इन २८ योगों में २; ३, ६, ७, ९, १०, १५, १६, १७, १८, २२; २३, २५ ये तेरह अशुभ और शेष १५ शुभ हैं ।। २३ ।। २४ ।।

अथैते योगाः कथं ज्ञेया इत्यनुष्टुमाह—

दास्रादर्के मृगादिन्दौ सार्पाद्भौमे करादबुधे ।
मैत्राद्गुरो भृगौ वैश्वाद्गण्या मन्दे च वारुणात् ।। २५ ।।

पीयूषधारा—दास्रादिति । अत्र नक्षत्राणां साभिजितां गणना कार्या । यतोऽष्टाविंशतिरेते योगाः सम्भवन्ति । तथा सत्येकैकवारे दास्रादश्विनीनक्षत्रात्साभिजिद्दिननक्षत्रं गणनीयं । तद्यत्संख्याकं स्यात्तत्संख्याको योग आनन्दादिर्भवति। यथा दिननक्षत्रं श्रवणः तदाश्विनीतः साभिजिद्गणनया त्रयोविंशतिसंख्यमस्ति । तथासत्यानन्दादियोगेषु त्रयोविंशतिसंख्यो गदयोगो जातः। एवमिन्दौ सोमवारे मृगशीर्षात्पूर्ववद्गणनया आनन्दादियोगा ज्ञेया इत्यर्थः । एवं सर्वत्र व्याख्येयम् । सार्पमाश्लेषा, कर हस्तनक्षत्रं, मैत्रमनुराधा, वैश्वमुत्तराषाढा, वरुणं शततारका । यदाह नारदः—'रविवारक्रमादेते दास्रभादिदुभाद्विधौ । सार्पाद्भौमे बुधे हस्तान्मैत्रभाद्देवमंत्रिणि' ।। वैश्वदेवाद्भृगुसुते वारुणाद्भास्करात्मजे ।। इति ।। २५ ।।

पीताम्बरा—आनन्दादियोग ज्ञान—

आनन्दादि योग पञ्चाङ्गों में दिये रहते हैं । उन्हें स्वयं अपनी बुद्धि से जानने के लिए जैसे सं० २०२७ चैत्रकृष्ण अमावस्या शुक्रवार को पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र ११ दण्ड २५ पल तक हैं तो शुक्रवार को उत्तराषाढ़ से गिनकर अभिजित सहित छठा नक्षत्र पूर्वा भाद्रपद होने से इस दिन ११ दण्ड २५ पल तक छठा योग ध्वाङ्क्ष पञ्चाङ्ग में लिखा है। इसी प्रकार रविवार के दिन अश्विनी से चन्द्रवार के दिन मृगशीर्ष से मङ्गलवार को अश्लेषा से, बुध को हस्त से, गुरुवार के दिन अनुराधा, से शुक्रवार के दिन उत्तराषाढ़ा से, शनिवार के दिन शतिभिषा नक्षत्र से (अभिजित को भी लेकर) इष्ट दिन के नक्षत्र तक गिनती करने से जो संख्या मिलेगी, उतनी ही संख्या का वह आनन्दादि योग उस दिन होगा । जितने समय तक वह नक्षत्र पञ्चाङ्ग में लिखा हो उसके आगे दूसरे नक्षत्र के लग जाने से योग भी उसके आगे का होगा ।। २५ ।।

अथानन्दादिषु ये दुष्टयोगास्तेषां कियतां सत्यावश्यकत्वे परिहार इति शालिन्याह—

ध्वांक्षे वज्रे मुद्गरे चेषुनाड्यो वर्ज्या वेदाः पद्मलुम्बे गदेऽश्वाः ।
धूम्रे काणे मौसले भूद्वयं द्वे रक्षोमृत्यूत्पातकालाश्च सर्वे ।। २६ ।।

पीयूषधारा—ध्वांक्ष इति । ध्वांक्षवज्रमुद्गरयोगेषु आद्या इषुनाड्यः पञ्च घट्यो वर्ज्याः । पद्मलुम्बयोगयोर्वेदाश्चतस्रो घटिका वर्ज्याः । एवं गदे अश्वाः सप्त घटिका; धूम्रे भूरेकैव घटिका; काणे घटिकाद्वयं, मुसलयोगे घटिके द्वे, राक्षसमृत्यूत्पातकालाः षष्टिघटिकात्मकाः सर्वेऽपि वर्ज्याः । अत्र श्लोके अनुक्तेऽपि चरयोगे घटिकात्रयं वर्ज्यम् । उक्त च ज्योतिःसारसागरे—'ध्वांक्षेन्द्रायुधमुद्गरेषु घटिकास्त्याज्यास्तु पञ्चादितः पद्मालुंबकयोश्चतस्र उदिता धूम्रे सदैका पुनः । द्वे काणे मुसलाह्वयेऽपि च गदे सप्तैव तिस्रश्चरे मृत्यूत्पातकरक्षसां दिनगतास्ताः कालदण्डे तथा ।।' अत्र दिनशब्देनाहोरात्रमुच्यते । पद्मालुंबकयोरित्यत्राङ्प्रश्लेषश्छन्दोऽनुरोधार्थः ।। २६ ।।

पीताम्बरा—योगों की वर्ज्य घटिका ज्ञान—

ध्वांक्ष, वज्र और मुद्गर योग में (कार्य आवश्यक हो तो) आदि की ५ घटी, पद्मलुम्ब में ४, गद की ७, धूम्र में एक मुशल-काण की आदि की दो घटी त्याग देनी चाहिए । किन्तु राक्षस मृत्यु उत्पात और कालयोगों का समग्र समय वर्जित कहा है ।। २६ ।।

अथ दोषापवादभूतान् रवियोगाननुष्टुभाह

सूर्यभाद्वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसम्मिते ।
चन्द्रर्क्षे रवियोगाः स्युर्दोषसङ्घविनाशकाः ॥ २७ ॥

पीयूषधारा—सूर्यभादिति । सूर्यो यस्मिन्नक्षत्रेऽस्ति ततश्चन्द्रर्क्ष यद्दिने । तस्मिन् चतुर्नवषट्दशत्रयोदशविंशतिसंख्याके सति रवियोगाः स्युः । कीदृशः दोषाणां संघः समूहस्तस्य विनाशका इत्यर्थ । उक्तं च वसिष्ठेन—'सूर्याच्चतुर्थे दशमे च षष्ठे विश्वर्क्षके विंशतिमे नवर्क्षे । भवन्ति षड् भानुमहर्क्षयोगाः कुयोगविध्वंसकराः शुभेषु' ॥ इति ॥ २७ ॥

पीताम्बरा—रवियोग—सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनती करने से यदि सूर्य से चन्द्रमा का नक्षत्र, ४, ६, ९, १०, १३, २० इन संख्याओं में पड़े तो उस दिन रवियोग होगा जो समग्र दोषों को अच्छी प्रकार दूर करता है ।

जैसे—जिस दिन कृतिका में सूर्य है और आर्द्रा में चन्द्रमा है तो उस दिन पञ्चाङ्गों में रवियोग अवश्य दिया होगा । न भी दिया हो तो ज्योतिषी स्वयं समझ लेगा कि आज रवियोग है ॥ २७ ॥

अथ सूर्यादिवारेषु नक्षत्रविशेषैः सिद्धियोगानिद्रवज्रोपजातिभ्यामाह—

सूर्येऽर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रं चन्द्रे श्रुतिब्राह्मशशीज्यमैत्रम् ।
भौमेऽश्व्यहिर्बुध्न्यकृशानुसार्पं ज्ञे ब्राह्ममैत्रार्ककृशानुचान्द्रम् ॥ २८ ॥
जीवेऽन्त्यमैत्राश्व्यदितीज्यधिष्ण्यं शुक्रेऽन्त्यमैत्राश्व्यदितिश्रवोभम् ।
शनौ श्रुतिब्राह्मसमीरभानि सर्वार्थसिद्ध्यै कथितानि पूर्वैः ॥ २९ ॥

पीयूषधारा—सूर्यति । रविवारे हस्तमूलत्र्युत्तरापुष्याश्विन्यो नक्षत्राणि सिद्धियोगाः स्युः । एवं चन्द्रे श्रवणरोहिणीमृगशिरः पुष्यानुराधाः सिद्धियोगाः । एवं भौमेऽश्विन्युत्तराभाद्रपदाकृत्तिकाश्लेषाः ज्ञे बुधे रोहिण्यनुराधाहस्तकृत्तिकाश्लेषाः गुरौ रेवत्यनुराधाश्विनीपुनर्वसुपुष्याः । शुक्रे रेवती पूर्व फल्गुन्य श्विनीपूनर्वसुश्रवणाः । शनौ श्रवणरोहिणीस्वात्यो नक्षत्राणि सर्वार्थसिद्धयै पूर्वैराचार्यैः कथितान्युक्तानि । अत्रैते सिद्धियोगाः 'दास्रादर्के मृगादिदौ' इत्यादिप्रकारेणानन्दादिसमीचीनयोगसम्बन्धिनक्षत्रैरुपनिबद्धाः । अत एवानयोरार्षमूलाभावः । अमुमेवाशयं मनस्यभिसंधाय जगन्मोहनज्योतिःसारसागरादिनिबन्धेषु स्वेच्छया न्यूनाधिकनक्षत्रैः सिद्धियोगा उक्ताः । तत्र भीमपराक्रमः—'मूलं रवौ पुष्यकरोत्तराणि बेधा मृगांकः श्रवणं च सोमे । कृशानुपुष्योत्तरभानि भौमे बुधेऽनुराधा वरुणः कृशानुः ॥ वृहस्पतौ पुष्यपुनर्वसू च भगोश्विनी च श्रवणं च शुक्रे । शनैश्चरे स्वातिपितामहौ च योगाः किलैते शुभदायिनः स्युः' इति ॥ दीपिकायां च—'ध्रुवगुरुकरमूलं पौष्णभंचार्कवारे' इत्यादिभिर्नक्षत्रैः सिद्धियोगाभिधानं युक्तमेव । 'हस्तर्क्षमर्कवारेन्दाविन्दुभं प्रथमं कुजे । सौम्ये मित्रभमाचार्ये पुष्यं पौष्णं भृगोः सुते रोहिणी मन्दवारे तु सिद्धियोगाह्वया अमी' इति । नारदोक्तवचनार्थेऽस्मिन्पद्ये, उक्ता एवेति स्वयं पुनर्नोक्ताः ॥ २८ ॥ २९ ॥

पीताम्बरा—सर्वार्थसिद्धियोग—रविवार के दिन हस्त, मूल, तीनों उत्तरा, पुष्य और अश्विनी, चन्द्रवार को श्रवण, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य और अनुराधा, मंगल को अश्विनी, उत्तराभाद्र, कृतिका और आश्लेषा, बुधवार के दिन रोहिणी, अनुराधा, हस्त, कृतिका और मृगशिरा, बृहस्पति के दिन रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु और पुष्य, शुक्रवार के दिन रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु और श्रवण, शनिवार के दिन श्रवण, रोहिणी और स्वाती हो तो ऐसे दिन में सर्वार्थसिद्धियोग होता है। ऐसे योग सब कार्यों में सिद्धि देते हैं ॥२८॥२९॥

१. दिन नक्षत्र से सर्वार्थसिद्धियोग जानने का चक्र—

दिनानि	नक्षत्राणि—					नक्षत्र-संख्या
र.	हस्तः	मूलं	उत्तरात्रयम्	पुष्यः	अश्विनी	७
चं.	श्रवणः	रोहिणी	मृगशिरः	पुष्य	अनुराधा	५
मं.	अश्विनी	उत्तराभा०	कृत्तिका	आश्लेषा		४
बु.	रोहिणी	अनुराधा	हस्त	कृत्तिका	मृगशिरः	५
बृ.	रेवती	अनुराधा	अश्विनी	पुनर्वसुः	पुष्यः	५
शु.	रेवती	अनुराधा	अश्विनी	पुनर्वसुः	श्रवणः	५
श.	श्रवणः	रोहिणी	स्वाती			३

अथोत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगान् शालिन्याह—

द्वीशात्तोयाद्वासवात्पौष्णभाच्च ब्राह्मात्पुष्यादर्यमर्क्षाद्युगर्क्षैः[1] ।
स्यादुत्पातो मृत्युकाणौ च सिद्धिर्वारेऽर्काद्ये तत्फलं नामतुल्यम्[2] ॥ ३० ॥

पीयूषधारा—द्वीशादिति । आदित्यवारादिषु क्रमाद्द्वीशाद्विशाखातः, तोयभात्पूर्वाषाढ़ातः, वासवाद्धनिष्ठातः, पौष्णभाद्रेवतीतः, ब्राह्माद्रोहिणीतः, पुष्यात् अर्यमर्क्षादुत्तराफल्गुनीत आरभ्य युगर्क्षैश्चतुर्भिर्नक्षत्रैः क्रमादुत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगाः स्युः । यथा रवौ विशाखा उत्पातः मैत्रं मृत्युः, ज्येष्ठा काणः, मूलं सिद्धिः । एवं सोमे पूर्वाषाढा उत्पातः, उत्तराषाढा मृत्युः, अभिजित्काणः, श्रवणं सिद्धिः । भौमे धनिष्ठोत्पातः, शततारका मृत्युः, पूर्वाभाद्रपदा काणः, उत्तराभाद्रपदा सिद्धिः । बुधे रेवत्युत्पातः, अश्विनी मृत्युः, भरणी काणः, कृत्तिका सिद्धिः ।

(१) "ब्राह्मात्पुष्यादर्यमर्क्षाच्चितुर्भैः" अयमपि पाठः क्वचित् पुस्तके समुपलभ्यते ।
(२) अथ दिननक्षत्रवशेनोत्पातादियोगचतुष्टयज्ञापकचक्रम्—

गुरो रोहिण्युत्पातः, मृगो मृत्युः, आर्द्राकाणः, पुनर्वसुः सिद्धः। शुक्रे पुष्य उत्पातः, आश्लेषा मृत्युः, मघा काणः, पूर्वाफल्गुनी सिद्धिः। शनावुत्तरफल्गुन्युत्पातः, हस्तो मृत्युः चित्रा काणः, स्वाती सिद्धियोग इत्यर्थः। तदुक्तं 'विशाखादिचतुर्वर्गमर्कवारादिषु क्रमात्। उत्पातमृत्युकाणाख्या योगाश्चामृतसंयुताः ॥' अमृतं सिद्धिः। ननु चायं पुनरुक्तः श्लोकार्थः। आदित्यवारादिषु हि— 'दास्रादर्के मृगार्दिदौ' इत्यादि क्रमेणानन्दादियोगगणनया उत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगा एव सम्भवन्ति नान्ये। किं च—'सूर्येर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रम्' इति मूलादीनामेव सिद्धियोगाभिधानात्पुनरुक्तिश्चोच्यते। बालानां शीघ्रबोधनार्थं तथोक्तिः। अथवावश्यं वर्ज्या एते उत्पातमृत्युकाणाः सिद्धियोगोऽप्यतिप्रशस्त इत्येतदर्थं तथोक्तिः। ननु तर्हि देशभेदेन परिहारो वक्ष्यमाणोऽनुपपन्नः। सत्यं। कार्यस्यावश्यकर्तव्यत्वे समीचीनदिनांतराप्राप्तावपवादप्रवृत्तिरिति युक्तमुत्पश्यामः। तत्फलमिति। तेषामुत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगानां फलं नामतुल्यम्। यस्य योगस्य यादृशं नाम तद्योगसत्वे प्रारब्धकार्यफलमपि तादृशमेवेत्यर्थः उक्तं च नारदेन—'योगाश्चसंज्ञाफलदास्त्वष्टाविंशतिसंज्ञकाः' इति ॥ ३० ॥

पीताम्बरा—उत्पातमृत्यु काण और सिद्धियोग—

रविवार के दिन विशाखा से, सोमवार के दिन पूर्वाषाढ़ा से, मंगलवार के दिन धनिष्ठा से, बुधवार के दिन रेवती से, गुरुवार के दिन रोहिणी से, शुक्रवार को पुष्य से और शनिवार के दिन उत्तराफाल्गुनी से चार-चार नक्षत्रों में क्रमशः उत्पात, मृत्यु, काण और सिद्धियोग होते हैं।

यद्यपि पूर्व श्लोक में इनकी गणना व्यवस्था स्पष्ट कर दी है फिर भी शिष्यों की शीघ्र स्मृति के लिए पुनः इस श्लोक में इनका निर्देश किया गया है।

स्पष्ट समझने के लिए चक्र दिया जा रहा है ॥ ३० ॥

वार	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
उत्पात	विशा	पू. षा.	धनि.	रे.	रो;	पुष्य	उ. फा.
मृत्यु	अनु	उ. षा.	श.	अश्वि.	मृ.	श्ले.	ह.
काण	ज्ये.	अभि.	पू. भा.	भ.	आ..	म.	चि.
सिद्धिः	मू.	श्र.	उ. भा.	कृ.	पुन.	पू. फा.	स्वा.

अथ दुष्टयोगानां देशभेदेन परिहारमनुष्टुभाह—

कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः ।
हूणवङ्गखशेष्वेव वर्ज्यास्त्रितयजास्तथा ।। ३१ ।।

पीयूषधारा–कुयोगा इति। तिथिवारोत्थाः कुयोगाः दुष्टयोगाःक्रकचादयः, तिथिभोत्थाः, 'अनुराधा द्वितीयायाम्' इत्यादयः, भवारजाः 'याम्यं त्वाष्टं वैश्वदेवम्' इत्यादयः तथा त्रितयजा- तिथिवारनक्षत्रजाः । 'वर्जयेत्सर्वकार्येषु हस्तार्कं पञ्चमीतिथौ' इत्येवमादयस्ते सर्वे दुष्टयोगा हूणवंगखशेष्वेव । हूणवङ्गौ प्राच्यदेशौ । खशो देश उत्तरस्यां दिशि प्रसिद्धस्तत्रैव ते वर्ज्याः । अन्यदेशेषु निषिद्धा न भवन्तीत्यर्थसिद्धमेव । उक्तं च नारदेन—''तिथिवारोद्भवा नेष्टा योगा वारर्क्षसम्भवाः । हूणवङ्गखशेभ्योऽन्यदेशेष्वेते शुभप्रदाः' ।। अत्र तिथिवारयोर्वारर्क्षयोश्च युतेरुपलक्षणत्वादन्ययुतावपि परिहारो ज्ञेयः ।। ३१ ।।

पीताम्बरा—दुष्ट योगों के वर्ज्य देश—

तिथि और वार से, तिथि और नक्षत्र से, नक्षत्र और वार से, उत्पन्न और तिथि-वार- नक्षत्र इन तीनों से उत्पन्न जो कुयोग हैं उन्हें हूण बंग और खश देशों में ही वर्जित करना चाहिए ।

हूण, वंग क्रमशः भारत के उत्तर पूर्व के देश हैं । खश देश उत्तर में हैं । हूण देश ५० अक्षांश उत्तर मंगोलिया आदि को कहा जा सकता है । बंग देश प्रसिद्ध वंगाल है । खश देश हिमालय के पर्वतीय आवास को कहा जा सकता है ।। ३१ ।।

अथ समस्तशुभकृत्ये वर्ज्यपदार्थान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

सर्वस्मिन्विधुपापयुक्तनुलवावर्धे निशाह्नोर्घटी-
त्र्यंशं वै कुनवांशकं ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयम् ।
उत्पातग्रहतोऽद्रयहांश्च शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनं
षण्मासं ग्रहभिन्नभं त्यज शुभे यौद्धं तथोत्पातभम् ।। ३२ ।।

पीयूषधारा—सर्वस्मिन्निति । हे पंडित ! सर्वस्मिन् शुभे कार्ये एतानि वस्तूनि निश्चयेन त्यज परिहरेत्यर्थः । कानीत्यत्राह–विध्विति । विधुश्चंद्रः पापाः क्षीणचंद्रसूर्यभौम- शनयः । 'क्षीर्णेद्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः' इति **वराहोक्तेः** । राहुकेत्वोरपि पापत्वं **दीपिकायामुक्तम्**–'अधीर्नेद्वर्कसोराराः पापाश्च स्तैर्युतो बुधः । शुभाः पापौ तमःकेतू विष्णु- धर्मोत्तरोदितौ ।।' इति । वशिष्ठेनापि—सूर्यभौमशनिराहुकेतवः पापसंज्ञखचराः क्षीणचंद्रः । पूर्णचन्द्रशुक्रसोमजाः सर्वकर्मसु हि सौम्य खेचराः ।।' इति । तत्र विधुना पापेन वा पापैर्वा युक्तौ तनुलवौ लग्नवांशौ त्यज । 'पूर्णो क्षीणोऽपि वा चन्द्रो लग्ने सर्वत्र गर्हितः' इति कश्य- पोक्तेः । श्रीपतिश्च—'सर्वार्थसिद्धिषु शशी न शुभो विलग्ने ।' इति । दैवज्ञमनोहरे गुरुः— 'पापेन्दुलग्नगौ त्याज्यौ सर्वेषु शुभकर्मसु । अक्षीणं कर्किगोजस्थं केप्याहुर्लग्नगं शुभम् ।।'

इति। अथ निशाह्नोरर्धे रात्र्यर्धे दिनार्द्धे च घटीत्र्यंशं विंशतिपानि दश पूर्वं दश पश्चाच्च पलानि त्यज। उक्तं च **शार्ङ्गीये**—**मूलः** कालो निवसति महानिशायां दिने दले यस्मात्। दश पूर्वे दश परतस्तस्माद्वर्ज्यानि च पलानि ॥' इति। अथो कुनवांशकं पापग्रहनवांशं त्यज। यदाह नारदः—'क्रूरोगांशा न च ग्राह्या न शस्तास्ते नवांशकाः। कुनवांशकलग्नं यत्त्याज्यं सर्वगुणान्वितम् ॥' इति क्रूरैंक्रूरग्रहैरुग्रा भयजनका अंशा नवांशा न ग्राह्या इत्यर्थः। अथ ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयं त्यज। ग्रहणतः सूर्यचंद्रग्रहणदिनात्प्रथमं दिवसत्रयं त्याज्यम्। यदाह गर्गः—'चन्द्रसूर्योपरागेषु त्र्यहं प्रागशुभं भवेत्। सप्ताहमशुभं पश्चात्स्मृतं ग्रहणशूलकम् ॥' इति। उपरागो ग्रहणम्। 'उपरागो ग्रहो राहुग्रस्ते त्विंदौ च पूष्णि' इत्यमरोक्तेः। अथ उत्पातग्रहतोद्र्यहांश्च, उत्पातो नाम स्वभावतो वैपरीत्यम्। यदाह **वराहः**—'तेषां संक्षेपोयं प्रकृतेरन्यथात्वमुत्पातः' इति। ते चोत्पातास्त्रिविधाः। दिव्या आन्तरिक्षा भौमाश्च। तत्र दिव्यः केत्वादिः आन्तरिक्षो गन्धर्वनगरादिः भौमो भूमिकम्पादिः एतदप्याह वराहः–'अपचारेण नराणामुपसर्गः पापसञ्चयाद्भवति। संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्त उत्पाताः ॥ दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमुल्कानिर्घातपवनपरिवेषाः। गन्धर्वपुरपुरन्दरचापादि यदान्तरिक्षं तत् ॥ भौमं चरस्थिरभवं तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति' इति। ते ह्युत्पाता यस्मिन् दिने स्युस्तद्दिनमारभ्याद्र्यहान् सप्त दिनानि त्यज। **यदाह नारदः**—'उत्पातग्रहणादूर्ध्वं सप्ताहं निखिलग्रहे' इति। **दीपिकायां च**—'अनिष्टे त्रिविधोत्पाते सिंहकासूनुदर्शने। सप्तरात्रं न कुर्वीत यात्रोद्वाहादिमङ्गलम् ॥' इति। अनिष्टे अकालवृष्टयादिदूषिते काले इति तट्टीकाकारो व्याख्यात्। अद्र्यहानीति अद्रयश्च तान्यहानि चेति कर्मधारयसमासे 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' इति समासांते टचि कृते 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे च 'रात्राह्नाः पुंसि' इति पुलिङ्गत्वम्। अत एव 'ववहाः प्रदेया अविशुद्धशुद्धौ' इत्यादयः प्रयोगा उपपद्यन्ते। तथा ग्रहणतो ग्रहणत ऊर्ध्वं सप्त दिनानि त्यज। अत्र ग्रहणशब्देन सर्वग्रहणं विवक्षितम्। ततो न्यूनत्वे त्रैराशिकम्। **यदाह वशिष्ठः**—'सर्वग्रासे दिनान्यष्टौ सर्वकार्येषु वर्जयेत्। षट् दिनानि त्रिभागोने अर्धग्रासे चतुर्दिनम् ॥ चतुर्थांशे त्रिरात्रस्याद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥' **इति नारदोऽपि**—'निःशेषे सप्त सप्त च' इत्याह। एतच्च यद्यप्यविशेषेणोक्तं तथापि ग्रहानन्तरमेव ज्ञेयम्। 'उत्पातग्रहणादूर्ध्वं सप्ताह निखिलग्रहे' इति तस्यवोक्तेः। **अंगिरा** अपि 'सर्वग्रासे तु सप्ताहमर्धग्रासे दिनत्रयम्। त्रिद्व्येकाङ्गुलतो ग्रासे दिनमेकन्तु बर्जयेत् ॥' इति। अनयोर्वाक्ययोर्विषयव्यवस्थादेशभेदेनाचरभेदादवगन्तव्या। क्वचित्सामान्यतो दिनसप्तकमुक्तम्। यदाह गर्गः—'सूर्यचन्द्रोपरागौ द्वौ महादोषाह्वयावुभौ। सप्तरात्रं तयोरूर्ध्वं सर्वशोभननाशनम् ॥' इति। एतदपि सर्वग्रासपरतया योज्यम्। **शार्ङ्गीयविवाहपटले**–चन्द्रस्य सर्वग्रासे उभयतो दिनसप्तकं त्याज्यमित्युक्तम्—'कृत्स्नचन्द्रग्रहे त्याज्यं प्राक् पश्चाद्दिनसप्तकम्' इति। उत्पातविशेषे ग्रहणे च बहूनि दिनानि वर्ज्यान्याहुः। यदाह चण्डेश्वरः—'ग्रहे रवींद्वोरवनिप्रकंपे केतूद्गमोल्कापतनादिदोषे। व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ॥' इति। ग्रहे कार्यस्यावश्यकत्वविशेषे परिहार उक्तो ज्योतिर्निबन्धे—'पञ्च दिनानि वशिष्ठस्त्रिदिनं गर्गस्तु कौशिकस्त्वेकम्। यवनाचार्यस्य मतं पञ्च मुहूर्तांश्च दूषयति राहुः ॥' इति।

नित्यनैमित्तिकयोरयं दोषो न—

अयं च ग्रहणयोर्निषेधो नित्यनैमित्तिकादिकृत्यव्यतिरिक्तविषयः। यदाह गुरुः—नित्ये नैमित्तिके काम्ये जपहोमक्रियासु च। उपकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते ॥' इति। ग्रहो ग्रहणम्। अथ शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनं त्यज, शुभं कल्याणं ददति लोकेभ्य इति शुभदा एतादृशा ये उत्पाता वसंताद्यृतुपुरस्कारेणोत्पातविशेषाः शुभा इत्युक्तम्। तादृशैरुत्पातैर्दुष्टं दूषितं दिनं द्वित्वातिरिक्तसंख्याविशेषानवगमादेकत्वस्य च प्रतीतेरेकं दिनं त्याज्यमित्यर्थः। अत्र हेतुः शुभदत्वमुत्पातानाम्।

शुभदा उत्पातयोगाः—

शुभदोत्पातानाह ऋषिपुत्रकृतैः श्लोकैर्वराहः

'वज्राशनिमहीकंपाः सन्ध्यानिर्घातनिःस्वनाः। परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमनोदयाः ॥ १ ॥
द्रुमेभ्योऽतरसः स्नेहमधुपुष्पफलोद्गमाः। गोपक्षिमधुवृद्धिश्च शिवाय मधुमाधवे ॥ २ ॥
तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम्। अनग्निज्वलनास्फोटधूमरेखानिलाकुलम् ॥ ३ ॥
रक्तपद्मारुणं सान्ध्यं नमः क्षुब्धार्णवोपभम्। सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं भवेत्॥४॥
शक्रायुधपरीवेपविद्युच्छुष्कविरोहणम्। कम्पोद्वर्तनवकृत्यं रसनं दारणं क्षितेः ॥ ५ ॥
यद्युदपानसरसां वृद्धचूर्ध्वतरणप्लवाः। शीरणं चाद्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम् ॥ ६ ॥
दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम्। ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं च दिवाम्बरे ॥ ७ ॥
गीतवादित्रनिर्घोषो वनपर्वतसानुषु। सस्यवृद्धिरपां हानिरपापाः शरदिस्मृताः ॥ ८ ॥
शीतानिल षारत्वं दर्शनं मृगपक्षिणाम्। रक्षो यक्षादिसत्त्वानां दर्शनं वागभानुषी ॥ ९ ॥
दिशोधूमान्धकाराश्च सनभोवनपर्वताः। उच्चैः सूर्योदयेऽस्ते च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः ॥१०॥
हिमपाताऽनिलोत्पातविरूपाद्भुतदर्शनम्। कृष्णञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिजरम् ॥११॥
चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोजाश्वमृगपक्षिषु। पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥१२॥
ऋतुस्वभावजा ह्येते दृष्टाः स्वर्तौ शुभप्रदाः।
ऋतोरन्यत्र चोत्पाता दृष्टास्ते भृशदारुणाः ॥ १३ ॥ इति।

अथ ग्रहभिन्नभं ग्रहैर्भौमादिभिः पञ्चभिर्भिन्नं सिद्धान्तोक्तरीत्या भेदयोगं प्राप्तमेतादृशं भं नक्षत्रं त्यज। तथा योद्धं यन्नक्षत्रं भौमादि पञ्चग्रहयुद्धमध्यपतितं सदृश्यन्ते तत्त्यज। तत्र क्रूरयोगादेव दोषसत्त्वे युद्धोपघातस्तु दोषाधिक्यसूचनार्थः। सौम्यग्रहयुद्धे तु स एव दोषः। अत्र केचित् यस्मिन् दिननक्षत्रे भौमादीनां युद्धं जातं तन्नक्षत्रं त्याज्यमित्याहुस्तन्न, **प्रमाणाभावात्**। तथोत्पातभमुत्पातैर्दिव्यान्तरिक्षभौमैर्दूषितं भं त्यज। अयमर्थः। भौमान्तरिक्षयोरुत्पातयोग्रहयुद्ध चेत्प्रत्यक्षदृश्यनक्षत्राभावाद्दिननक्षत्रमेव त्याज्यम्। दिव्योत्पाते तु केत्वादिनां प्रत्यक्षतो यन्नक्षत्र-माक्रान्तं तत्त्याज्यम्। भौमान्तरिक्षोत्पातसाहचर्याद्दिननक्षत्रमपि त्याज्यम्। एवं नक्षत्रचतुष्टयं षण्मासम्। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया। षण्मासमभिव्याप्येत्यर्थः। यदुक्तं शार्ङ्गीय-विवाहपटले—'क्रूरैर्भुक्तं युक्तं भोग्यं च तथैव च खेटयुद्धगतम्। ग्रहभिन्नकेतुहतभं त्यजेन्महोत्पता-दुष्टं यत् ॥ यद्राहुसंदर्शनदुष्टमृक्षं शीतांशुयुक्तं च विवाहलग्ने। आमासषट्कं विदधीत तस्मिन्वि-वाहयात्रादिशुभं न चैव ॥' इति नारदोपि—'ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मङ्गलेषु ऋतुत्रयम्' इति।

मङ्गलेषु 'ऋतुत्रयमित्यत्र' 'ऋत्यक' इति प्रकृतिभावः। गुरुरपि—'उत्पातैः पीडितास्तारा: षण्मासं प्रकृति ययुः। राहुकेतुविभुक्तं यदृक्षचक्रं निपीडितम् ॥ वत्सरार्धेन शुध्येत ग्रहयुद्धगतं च भम्। नक्षत्रग्रहयोगेन यदुक्तं दोषसंच यम् ॥ तदिदं सर्वकार्येषु शुभेषु परिवर्जयेत्' इति।

ग्रहयुद्धे चत्वारो भेदाः—

ग्रहयुद्धे भेदाश्चत्वारः। भेदः, उल्लेखः, अंशुविमर्दनम्, अपसव्यं चेति। यथा वराहः—'आसन्न क्रमयोगाद्भेदोल्लेखांशुमर्दनाऽसव्यैः। युद्धं चतुःप्रकारं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तम् ॥' इति ॥ तल्लक्षणानि सूर्यसिद्धांते—'उल्लेखस्तारकास्पर्शाद्भेदे भेदः प्रकीर्त्यते। युद्धमंशुविमर्दाख्यमंशुयोगे परस्परम् ॥ अंशादूनेऽपसव्यं स्याद्युद्धमेकोऽत्र चेदनुः' इति। ननु ग्रहयुद्धादिकं सिद्धान्तविरुद्धम्। यतः 'कक्षाः सर्वा अपि दिविषदां चक्रलिप्तांकितास्ता वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ताः। तस्मादेते शशिजभृगुजादित्यभौमेज्यमन्दा मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्भान्ति यान्तः क्रमेण ॥' इति भास्कराचार्योक्तेर्महान्तरोर्ध्वाधोभावेनावस्थितानां ग्रहाणां युद्धासम्भव एव। लोके हि समीपवर्तिनोः पुंसोर्युद्धादि दृश्यते तत्कथमियमत्र शास्त्रे ग्रहयुद्धोक्तिः। सत्यम्। अत्र युक्तिपुरःसरं वराह एव समादधातिस्म—'वियतिचरग्रहाणामुपर्युपर्यात्ममार्गसंस्थानाम्। अतिदूरादृग्विषये समतामिव सम्प्रयतानाम् ।। आसन्नक्रमयोगाद्भेदोल्लेखांश्च मर्दनाऽसव्यैः। युद्धं चतुःप्रकारं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तम् ॥' इति। तेन भूवर्तिनां राज्ञामन्येषां वा शुभाशुभफलसूचानर्थं युद्धसमागमाद्युक्तिः। उक्तं च सूर्यसिद्धान्ते—'भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता। स्वमार्गतः प्रयान्त्येते दूरमन्योन्यमार्गतः ॥' इति। ननु यथा ग्रहणं तिथिसंधौ भवति तथा नक्षत्रद्वयसंधौ जायमानं किं नक्षत्रं दूषयति किं परं किं पूर्वं किमुभयमिति। अविशेषादुभयमिति वयं ब्रूमः। यदुक्तं शार्ङ्गीयविवाहपटले—'यस्मिन् विधुं राहुरिनं च धिष्ण्ये गृहणाति तत्त्याज्यमृतुत्रयं स्यात्। पाणिग्रहेपुरणं विश्रत्ते द्वयोर्भयोश्चैतद्वयमेव जह्यात् ॥' इति। अयासन्नपक्षद्वयग्रहणे किं द्वयोस्त्यागः षण्मासमुत कस्यचित्कश्चिद्विशेषः। अयमपि निर्णयस्तत्रैवाभ्यधायि 'पक्षांतरेण ग्रहणद्वयं च यदा तदादिग्रहणोपगर्भम् पक्षाद्विशुद्धं भवति द्वितीयं पाणिग्रहे शुद्धचति भोगषट्कात् ॥ इत्यलमतिप्रसंगेन ॥ ३२ ॥

पीताम्बरा—शुभ कार्य में वर्ज्य—चन्द्रमा, तथा पापग्रहों, (मंगल, शनि, राहु, केतु, सूर्य और क्षीण चन्द्रमा तथा पापग्रहों से युक्त होने पर बुध भी पापग्रह है) से युक्त लग्न तथा नवमांश, मध्यान्ह और मध्यरात्रि से १० पल = ४ मिनट पहिले और पश्चात, पापग्रह का नवमांश, जिस दिन ग्रहण लगता है उससे तीन दिन पहिले और तीन दिन पश्चात् उत्पात, भूकम्प आदि के बाद ७ दिन, तथा शुभद उत्पात जिस दिन हो उससे दूषित सारे दिन को शुभ कर्मों में वर्जित करना चाहिए।

तथा ग्रहों से भेदित नक्षत्र, ग्रहों का जिस नक्षत्र में युद्ध हुआ हो वे नक्षत्र, तथा जिस नक्षत्र में उत्पात हुआ है उस नक्षत्र में भी ६ महीने तक शुभ कार्य नहीं करने चाहिए।

स्वभावतः प्रकृति में प्रतिकूलता जब कभी आ जाती है तो उसे उत्पात कहते हैं। यह उत्पात तीन प्रकार के होते हैं—(१) दिव्य उत्पात—केतु, पुच्छलतारा आदि दर्शनः (२)

आन्तरिक्ष—अकस्मात् कोई गन्धर्व नगर इन्द्रधनुष आदि का दिखाई देना, (३) भौम उत्पात —भूमिकम्प आदि। उक्त उत्पातादि जिस दिन जिन नक्षत्रों में होते हैं वे दिन शुभ कर्म में त्याज्य हैं।

रविचन्द्र ग्रहण में—नित्यनैमित्तिक कार्यों में दोष नहीं कहा गया है। नित्यनैमित्तिक काम्य जप होम आदि क्रियाओं में ग्रहण का वेध नहीं माना जाता है।

ऋतुओं के स्वभाव के अनुसार देखे गये, फलफूल-कुसुम अन्न आदि शुभ कहे गये हैं। ऋतुओं के स्वभाव के प्रतिकूल देखी गई प्रकृति को उत्पात कहा गया है।

जैसे चन्द्रसूर्य ग्रहण का मध्यकाल तो तिथि सन्धि (पूर्णान्त में चन्द्रग्रहण और लम्बन संस्कृत भूगर्भीय दर्शान्त में सूर्यग्रहण होता है) में होता है, ऐसे ही यदि ग्रहण नक्षत्र सन्धि में भी हो सकता है तो शुभ कर्म में पूर्व या पर या दोनों किस नक्षत्र को वर्जित किया जाय? कोई विशेष वाक्य नहीं मिलने से "पीयूष" के मत से पूर्व और पर के दोनों नक्षत्रों को शुभ कार्य में कथित समय की अवधि तक वर्जित करना चाहिए।

क्रमशः प्रथमपक्ष की पूर्णिमामें चन्द्रग्रहण दूसरेपक्ष की अमामें सूर्यग्रहण यदि हो तो अर्थात् आसन्न पक्षद्वय में दोनों के ग्रहण हों तो दोनों ग्रहणों की दोनों नक्षत्रों को ६ मास तक शुभ कर्म के लिए वर्जित किया जाना चाहिए या क्या होना चाहिए? "पीयूष" ने इसका भी समाधान स्पष्ट रूप से दिया है कि पूर्वपक्ष का ग्रहण द्वितीयपक्ष के ग्रहण में गतार्थ हो जाता है। इसलिए दूसरे पक्ष के ग्रहण के ही नक्षत्र को ६ महीने की अवधि तक शुभ कर्म में वर्जित करना चाहिए ॥ ३२ ॥

अथ ग्रासभेदेन कियत्संख्याकेषु ग्रहणीयनक्षत्रनिषेध तथा प्रागादिदिवसांश्च निषिद्धानि-**द्रवज्रा छन्दसाह—**

नेष्टं ग्रहर्क्षं सकलार्धपादग्रासे क्रमात्तर्कगुणेन्दुमासान्।
पूर्वं परस्तादुभयोस्त्रिघस्त्रग्रस्तेऽस्तगे वाप्युदितेऽर्धखण्डे ॥ ३३ ॥

पीयूषधारा-नेष्टमिति। ग्रहर्क्षं ग्रहणनक्षत्रं क्रमात्संपूर्णार्धचतुर्थांशग्रासे सति षट्त्र्येकमासान् नेष्टम्। तथा-ग्रहणभं सर्वग्रासे मासषट्कं, अर्धग्रासे मासत्रयं, चतुर्थांशग्रासे मासमेकं त्यजेदित्यर्थः यदाह गुरुः-'सर्वग्रासे तु षण्मासांस्त्रीन्मासांश्च दलग्रहे। आपादग्रहणे धिष्ण्यं मासमेकं विवर्जयेत् ॥' इति अथ पूर्वमिति क्रमादित्यनुवर्तत एव। अत्रापि ग्रस्तेऽस्तगे ग्रस्तास्ते पूर्वं त्रिघस्रास्त्रिदिनं नेष्टम्। पूर्वं न सम्यक् त्रिदिनमित्यर्थः। अर्थादग्रेतनानि दिनानि समीचीनानि। तथा ग्रस्तेऽभ्युदिते ग्रस्तोदये परस्तात्पश्चात्त्रिदिनं नेष्टं पूर्वं सम्यक् त्रिदिनमित्यर्थः। तथा अर्द्धखण्डे ग्रस्तोदयग्रस्तास्तयोरभावेपि अर्धग्रासे बिबमानादर्धग्रासे उभयोः कालयोः प्राक्पश्चात्त्रिदिनं नेष्टम्। यदाह गुरुः—'ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वे पश्चाद्ग्रस्तोदये तथा। खण्डग्रासे त्रित्रिदिनं निःशेषे सप्त सप्त च ॥' इति। कश्यपोऽपि-'ग्रस्तोदये परो दोषो ग्रस्तास्तेऽर्वाक् शनीनयोः। द्युनिशार्घे तूभयं स्यात्खंडिखंडव्यवस्थयोः ॥" इति। वसिष्ठोऽपि-'ग्रस्तोदये चोर्ध्वमनिष्टमादौ ग्रस्तास्तमानेप्युडुमासषट्कम् ॥' इति। अतः खण्डग्रहणादिसद्भावेऽपि ग्रस्तोदयग्रस्तास्तत्वप्रभावात्पूर्वं पश्चाच्चोक्तदिनानि वर्ज्यानीति सर्वत्र विषयविवेकः ॥३३॥

पीताम्बरा—वर्जित समय की अवधि—सूर्य चन्द्रमा का सम्पूर्ण खग्रास ग्रहण जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र में ६ महीने तक शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार अद्र्ध ग्रहण के नक्षण को तीन मास तक, चतुर्थांश ग्रहण के नक्षत्र को १ महीने तक शुभ कार्य में वर्जित करना चाहिए।

ग्रहण लगे हुए सूर्य या चन्द्रमा का अस्त हो तो ग्रहण के पहिले के तीन दिन, यदि ग्रहण लगे सूर्य चन्द्रमा का उदय हो तो ग्रहण दिन के पश्चात् के ३ दिन तथा उदयास्त भिन्न समय में खण्डग्रास हो तो ३ दिन पीछे भी शुभ कार्यों में नेष्ट हैं ॥ ३३ ॥

अथ सामान्यतोऽवश्यं वर्ज्यानि पंचांगदूषणादीनि वसन्ततिलकयानुष्टुभा चाह। जन्मर्क्षमास तिथिप्रभृतयः पदार्थाः सर्वेषु कर्मसु वर्ज्या इति द्वितीयश्लोकेनान्वयः। तान् पदार्थानाह—

जन्मर्क्षमासतिथयो व्यतिपातभद्रा वैधृत्यमापितृदिनानि तिथिक्षयर्द्धी।
न्यूनाधिमासकुलिकप्रहरार्धपाता विष्कम्भवज्रघटिकात्रयमेव वर्ज्यम् ॥ ३४ ॥
परिघार्धं पञ्च शूले षट् च गण्डातिगण्डयोः।
व्याघाते नव नाड्यश्च वर्ज्याः सर्वेषु कर्मसु ॥ ३५ ॥

पीयूषधारा—जन्मर्क्षेति। यस्मिन्नक्षत्रे जन्म भवेत्तज्जन्मर्क्षं, यस्मिन् मासे जन्म भवेत्स-जन्ममासः, यस्यां तिथौ जन्म भवेत्सा जन्मतिथिः एते वर्ज्याः। तदाह वशिष्ठः—'स्वजन्ममा-सर्क्षतिथिक्षणेषु वैनाशकाद्यृक्षगणेषु भेषु। नोद्वाहमात्माभ्युदयाभिलाषी नैवाद्यगर्भद्वितयं कदाचित् ॥' अयं च जन्मनक्षत्रमासतिथिनिषेधः आद्यगर्भस्यैव। यदाह नारदः—'जन्ममासे न जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि वा। आद्यगर्भसुतस्यापि दुहितुर्वा करग्रहः ॥' इति अनेनाद्यगर्भव्यतिरिक्तिकन्या-यास्तादृशवरस्य जन्मर्क्षमासतिथिषु शुभफलत्वमुक्तं भवति। अत एवाह च्यवनः—'जन्मर्क्षे जन्ममासे वा तारायामथ जन्मनि। जन्मलग्ने भवेदूढा पुत्राढ्या पतिवल्लभा ॥' इति।

जन्ममासलक्षणम्—

अथ जन्ममासलक्षणम् जगन्मोहने वृद्धगर्गः—'आरभ्य जन्मदिवसं यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत्। स जन्ममासो विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥' इति अस्यापि विशेषस्तत्रैव—'जातं दिनं दूषयते वसिष्ठः पंचैव गर्गस्त्रिदिनं तथात्रिः। तज्जन्मपक्षं किल भागुरिश्च व्रते विवाहे गमने क्षुरे च ॥' इति। वस्तुतस्तु यस्मिश्चांद्रमासे चैत्रादौ जन्माभूत्स चांद्रमासो जन्ममासतया त्याज्य इति युक्तमुत्पश्यामः। 'इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः सः प्रकीर्तितः। अग्नीषोमौ स्थितौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ ॥' इति हारीतवचनात्। उपवासव्रतोद्वाहयात्राक्षौरोपनायनम्। तिथिवर्षा-दिनिखिलं चांद्रमानेन गृह्यते ॥' इति कश्यपोक्तेश्च। अथात्र तिथिशब्दो वसिष्ठवाक्यस्वर-सादुक्तः। अत एव नारदसंहितायां रत्नमालादिग्रन्थेषु च दिवसपदं तिथिपरं व्याख्येयम्। अन्यथा जन्मवारेऽप्यतिप्रसङ्ग स्यात्। अथ व्यतीपातो वर्ज्यः सप्तविंशतियोगेषु व्यतीपातो नाम योगः स्पष्टसूर्यचन्द्रयोगजन्मा सप्तदशसंख्याको निन्द्यः। उक्तं च वसिष्ठेन—'स वैधृतो यो व्यतिपातयोगः सर्वोप्यनिष्टः परिघार्धमाद्यम्।' इति। तथा भद्रा वर्ज्या भद्रा सप्तमं करणं वर्ज्यम्। यदाह वसिष्ठः—'न कुर्यान्मङ्गलं विष्टयां जीवितार्थी कदाचन। कुर्वन्नज्ञस्तदा क्षिप्रं

तत्सर्वं नाशतां व्रजेत् ।।' इति । भद्राप्रवृत्तिरङ्गविभागकल्पनं च विशेषतोऽग्रे वक्ष्यते । तथा वैधृतिः पूर्वलक्षणलक्षितः सप्तविंशतिसंख्याको योगो निंद्यः । अत्र सम्मतिः पूर्वमुक्ता । अथ 'नामैकदेशे नामग्रहणम्' इतिन्यायमनुसृत्य भीमो भीमसेन इत्यादिवदमा अमावस्या निंद्या । 'सदैव दर्शे पितृकर्म चैव नान्यद्विधेयं शुभपौष्टिकाद्यम् । मूढैः कृतं यच्च शुभोत्सवाद्यं विनाशमायात्यचिराद्भृशं यत् ।।' इति वसिष्ठोक्तेः । अथ पितृदिनं माता च पिता च पितरौ 'पुमान् स्त्रिया' इत्येकशेषः । पित्रोर्दिनं मातापित्रोर्मरणदिनं । श्राद्धदिनमिति यावत् तदपि निषिद्धम् । यदाह शार्ङ्गधरः—'भद्रार्धयामाकुलिकं व्यतिपातं वैधृतिं च परिधार्धम् । क्रान्तिसमत्वं जह्यात्संक्रांतिं क्षयदिनं पित्रोः ।।' इति । अथ तिथिक्षयर्द्धी वर्ज्ये क्षयश्च ऋद्धिश्च क्षयर्द्धी तिथेः क्षयर्द्धी तिथिक्षयर्द्धी तिथिक्षयस्तिथिवृद्धिश्चैते वर्ज्ये । अनयोः प्रसिद्धत्वाल्लक्षणंनोक्तम् ।

तिथिक्षयवृद्धिस्वरूपादि—

तत्र तिथिक्षयलक्षणं तत्र यो वारस्तिथिद्वयान्तं स्पृष्ट्वा तृतीयतिथेः कंचिदादिमभागमपि स्पृशति तत्र वारे मध्यमा तिथिक्षयसंज्ञा । यथा नवमी रवौ घटिकाद्वयं पुनर्दशमीरवौ षट्पंचाशद्घटिकाः ५६ एकादश्याश्च घटिकाद्वयं रविवारेण सह संबद्धमिति दशमी तिथिः क्षयसंज्ञिता अवमसंज्ञितेत्यपि चाहुः । अथ तिथिवृद्धिलक्षणं यत्र या तिथिर्वारद्वयांतं स्पृष्ट्वा तृतीयवारस्यादिमं कंचिद्भागं स्पृशति तत्र सा तिथिर्वृद्धिसंज्ञा त्रिद्युस्पृगित्यपि चेत्याहुः । यथा तृतीया रवौ अष्टपंचाशद्घटिकाः ५८ ततश्चतुर्थी सोमे षष्टिघटिकाः ६० ततो भौमवासरे चतुर्थी घटिकात्रयं ३ अतश्चतुर्थी वारत्रयसंबद्धा तिथिर्वृद्धिसंज्ञा । यदाह वसिष्ठः—'स्युस्तिस्रस्तिथयो वारे एकस्मिन्नवमा तिथिः । तिथिर्वारत्रयं चैका त्रिद्युस्पृक्द्वेतिनिंदिते ।। कृतं यन्मङ्गलं तत्र त्रिद्युस्पृगवमे दिने । भस्मीभवति तत्क्षिप्रमग्नौ सम्यग्यथेन्धनम् ।। इति ।

आवश्यके तिथिक्षयादीनां दोषापवादः—

अथ शुभकृत्यावश्यकत्वे तिथिक्षयतिथिवृद्ध्योः परिहारमाह दोषापवादाध्याये वसिष्ठः—'अवमाख्यं तिथेर्दोषं केन्द्रगो देवपूजितः । हन्ति यद्वत्पापचयं व्रतं द्वैवार्षिकं यथा ।। त्रिद्युस्पृगाह्वयं दोषं सौम्यः केन्द्रगतः सदा । हन्ति यद्वत्पापचयमशून्यशयनव्रतम् ।।' इति । अथ न्यूनाधिमासौ क्षयमासाधिकमासौ वर्ज्यौ । 'असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद्द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्' इति । द्वयोरपि लक्षणं सिद्धान्तशिरोमणावभिहितम् । ग्रन्थकृदपि संक्रान्तिप्रकरणे—'स्पष्टार्कसंक्रातिविहीन उक्तो मासोऽधिमासः क्षयमासकस्तु । द्विसंक्रमः' इति वक्ष्यति । एतच्च तत्रैव सम्यग्व्याख्यास्यते । तदुक्तं वसिष्ठसंहितायाम्—'यस्मिन्दर्शस्यान्तावर्गेवापरं दर्शम् । उल्लंघ्य भवति भानोः संक्रान्तिः सोऽधिमासः स्यात् ।। आद्यन्तदर्शयोर्मध्ये भानोरेव कदाचन । संक्रान्तिद्वितयं स्याच्चेन्न्यूनमासः स उच्यते ।। मासप्रधानाखिलमेव कर्म मुक्त्वाऽखिलं कर्म न कार्यमत्र । यज्ञोपवासव्रततीर्थयात्राविवाहकर्मादि । विनाशमेति ।।' इति । अथ कुलिकः वारसम्बन्धी मुहूर्तदोषो वर्ज्यः । तथा प्रहरार्धं वारसम्बन्धेनार्धयामा वर्ज्याः । यदाह वसिष्ठः—निधनं प्रहरार्धे तु निःस्वत्वं यमघण्टके । कुलिके सर्वनाशः स्याद्रात्रावेते न दोषदाः ।।' इति । कुलिकादीन् दोषान् ग्रन्थकृदग्रे वक्ष्यति । अथ पातो महापातो महागणित साध्यो व्यतीपातनामको वैधृतिनामकश्च वर्ज्यः । यदाह नारदः—'यस्मिन्दिने

महापातस्तद्दिनं वर्जयेच्छुभे। अपि सर्वगुणोपेतं दम्पत्योर्मरणप्रदम् ॥' इति। कश्यपोऽपि—'महावैधृतिपाताभ्यां दूषितं लग्नमुत्तमम्। राजावधूतं पुरुषं यद्वत्तत्संपरित्यजेत् ॥' इति। पातो व्यतीपातः। महाशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। महावैधृतिर्महाव्यतीपातश्च ताभ्यामित्यर्थः। महापातो नाम रवीन्दुक्रान्तिसाम्यम्। तदानयनं तु गणितग्रन्थेभ्यः सूर्यसिद्धान्तादिभ्यो ज्ञेयम्। ततो महापातकालं निर्णीय यत्तत्कालस्यातिसूक्ष्मत्वात्कस्मिन्काले मङ्गलकृत्यं निषिद्धमित्याशङ्क्य महापातस्थितिकालानयनमप्युक्तं तत्रैव। तत्प्रयोजनं सूर्यसिद्धान्ते—'आद्यन्तकालयोर्मध्ये कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः। प्रज्वलज्ज्वलनाकारसर्वकर्मसु गर्हितः ॥ स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मसु। प्राप्यते। सुमहच्छ्रेयस्तत्कालज्ञानतस्तथा ॥' इति आद्यन्तकालौ स्पर्शमोक्षस्थितिरूपौ। सिद्धान्तशिरोमणावप्युक्तम्। 'पातस्थितिकालान्तर्मङ्गलकृत्यं न शस्यते तज्ज्ञैः। स्नानजपहोमदानादिकमत्रोपैति खलु वृद्धिम् ॥' इति। यत्तु वसिष्ठेनोक्तम्—'महापातो वैधृतिश्च उपरागसमस्तदा। तस्माद्दिनत्रयं त्याज्यं मध्यपूर्वापराभिधम् ॥' इति। वराहेणापि वृहद्यात्रायामुक्तम्—'एष्यो धनं क्षपयति व्यतिपातयोगो मृत्युं ददाति न चिरादपि वर्तमानः। सन्तापशोकगदविघ्नभयान्यतीतस्तस्माद्दिनत्रयमपि प्रजहीत विद्वान्। तदेव वचनद्वयमपि महापातोपयोगिगणिताशक्त्या कदा महापातः स्यादिति सूक्ष्ममहापातस्थितिकालज्ञानाद्विवाहप्रकरणे 'पञ्चास्याजौ' इति वक्ष्यमाणरीत्या महापातसम्भावनापरया पातदिवसं निर्णीय पूर्वापरवर्तमानदिनानां त्यागपरमिति प्रतिभाति। 'यस्मिन्दिने महापातस्तद्दिनं वर्जयेच्छुभे' इति। नारदवाक्यमप्येवमेव व्याख्येयम्। यदा तु महापातस्य स्थितिरूपसूक्ष्मकालज्ञानं स्यात्तदा 'स्थूलात्सूक्ष्मं ज्यायः' इति न्यायेन स एव पातमध्यकालो विवाहादिमङ्गलकृत्येषु त्याज्योऽन्यथा गणितग्रन्थेषु पातस्थितिकालानयनस्य वैयर्थ्यप्रसङ्ग इति निष्कृष्टोऽर्थः। विष्कम्भेति। विष्कम्भवज्रयोगयोः प्रथमातिक्रमे कारणाभावादादिनं घटिकात्रयमेव वर्ज्यम्। तथा परिघस्य परिघाख्ययोगस्य घटिकानामाद्यमर्धं त्रिंशद्घटिकात्मकं त्याज्यम्। शूले पञ्चादिमा घट्यो वर्ज्याः। गण्डातिगण्डयोगयोरादिमाः षड् नाड्यो वर्ज्याः। व्याघातयोगे नवादिमा नाड्यो वर्ज्याः। यदाह श्रीपतिः—'परिघस्य चार्धम्। तिस्रस्तु योगे प्रथमे सवज्रे व्याघातसंज्ञे नव पञ्च शूले। गण्डेतिगण्डे च षडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः ॥' इति। ननु सवज्रे इदं कस्य विशेषणं प्रथमयोगस्य वा व्याघातयोगस्य वा भिन्नभिन्नघटिकानिर्देशादुभयोस्तद्विशेषणमयुक्तम्। अत्र ब्रूमः। प्रथमस्यैव विशेषणं वज्रयोगसहिते प्रथमयोगे विष्कम्भयोगे तिस्रो नड्यो वर्ज्या इत्यर्थः। किमत्र प्रमाणमिति चेच्छृणु। कश्यपादिवाक्यस्वरसात्। यदाह कश्यपः—'विष्कम्भवज्रयोस्तिस्रः षट् च गण्डातिगण्डयोः। व्याघाते नव शूले तु पञ्च नाड्यस्तु गर्हिताः ॥' इति नारदोऽप्येवमेव। अनेन—'विष्कम्भादिघटीत्रयं च नवकं व्याघातवज्रोद्भवम्' इति वदन्महेश्वरः प्रत्याख्यातो भवति। एवं च—'विष्कम्भाद्यत्रिनाडी शुभकृतिषु च षट् गण्डयोः पञ्च शूले व्याघाते वज्रकेऽशङ्काः' इति गणेशज्योतिर्विदुक्तिरपि चिन्त्या ॥ ३४–३५ ॥

पीताम्बरा—जन्मनक्षत्रादि विचार—जिस वटु-कन्या का उपनयन विवाहादिक शुभ संस्कार करने हों, उनके जन्मनक्षत्र, जन्ममास और जन्मतिथि में शुभ संस्कार नहीं करने चाहिए। इसी प्रकार व्यतिपात योग, भद्रा, करण, वैधृति योग, अमावास्या तिथि, माता और पिता की मृत्यु की (श्राद्ध तिथि) तिथि, तिथिक्षय (जिसका मान दो सूर्योदय के मध्य में न हो)।

तिथिवृद्धि (जो तिथि दोनों सूर्योदयों तक रहती है ।) क्षयमास (जिस चान्द्रमास में सूर्य की दो संक्रान्तियाँ आ जाती हैं) । अधिकमास (जिस चान्द्रमास में सूर्य की कोई संक्रान्ति न पड़ती हो) कुलिक नामक मुहूर्त, अर्धयाम, पातकाल ये सब शुभ कर्म में त्याज्य हैं। विष्कम्भ और वज्र योग की आवश्यकता समझ कर तीन घटी त्याग कर शेष समय में शुभ कार्य किया जा सकता है।

जिस नक्षत्र में जन्म हो उसे जन्मनक्षत्र, इसी प्रकार जिस चान्द्रमास में जन्म हो उसे जन्ममास, जिस तिथि में जन्म हुआ है उसे जन्मतिथि समझना चाहिए। आद्य गर्भ (प्रथम गर्भ) से उत्पन्न वटु-कन्या के लिए जन्ममास आदि में उनका यज्ञोपवीत विवाहादिक संस्कार का निषेध किया गया है। द्वितीयादि गर्भ से उत्पन्न संस्कार्यों के जन्ममास नक्षत्रादिकों में उनके संस्कार किये जाने से शुभ फल की ही प्राप्ति होती है ।

यदि प्रथम गर्भ से उत्पन्न पुत्र या कन्या की अत्यन्त अल्पायुष्य हो या वे गर्भ में ही नष्ट हो गये हों अथवा प्रसव के अनन्तर सद्यः निधन हो गया हो तदुपरि कालान्तर में उत्पन्न दीर्घायुष्य पुत्र या कन्या की ही लोक में ज्येष्ठ सन्तान की संज्ञा होगी तो उन सन्तानों का जन्ममास नक्षत्रादिकों में चूडा-उपनयन-विवाहादि अच्छी तरह हो सकते हैं। क्योंकि उनका जन्म आद्य गर्भ न होकर द्वितीय गर्भ से है। तथा ज्येष्ठ सन्तान का ज्येष्ठ मास में जो संस्कार निषेध किया गया है, ऐसे द्वितीय गर्भ से उत्पन्न ज्येष्ठ सन्तानों के लिए ज्येष्ठ मास में संस्कारों का निषेध नहीं होता है ऐसे द्वितीय गर्भ के वर-कन्याओं का विवाह यज्ञोपवीत ज्येष्ठमास में भी अच्छी तरह किया जाना चाहिए।

केन्द्र-कोणग शुभग्रह की स्थितियोंवश आवश्यकता होने पर तिथिक्षयादि दोष नही होता है।

परिध योग की पूर्वार्ध घटी, शूलयोग के अदि की ५ घटी, गण्ड और अतिगण्ड योग की आदि की ६ घटी तथा व्याघात योग के आदि की ९ घटी सभी शुभ कार्यों में वर्जित करनी चाहिए ॥ ३३–३५ ॥

अथ पक्षरन्ध्रतिथीरावश्यकत्वे सति तन्निष्ठवर्ज्यघटीश्चानुष्टुभाह—

वेदाङ्गाष्टनवार्केन्द्रपक्षरन्ध्रतिथौ त्यजेत् ।
वस्वङ्कमनुतत्त्वाशाशरा नाडीः पराः शुभाः ॥ ३६ ॥

पीयूषधारा—वेदाङ्गेति । चतुर्थी षष्ठी अष्टमी नवमी द्वादशी चतुर्दशी एताः पक्षरन्ध्रसंज्ञास्तिथयो ज्ञेयाः । आसु शुभकृत्यावश्यकत्वे सति क्रमादादिमा वस्वङ्कमनुतत्त्वाशाशरानाडीस्त्यजेत् । यथा चतुर्थ्यामादिमा अष्टघटिकास्त्याज्या इत्यर्थः । अथ परा उर्वरिता नाड्यः शुभकृत्ये शुभा ज्ञेयाः । यदाह दोषनिरूपणाध्याये वसिष्ठः—

'चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा । षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राह्वया इमाः ॥ क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः । भूताष्टमनुतत्त्वाङ्कदशशेषास्तु शोभनाः ॥ दोषनाडीषु यत्कर्म शुभं सर्वं विनश्यति । विवाहे विधवा नारी व्रात्यः स्याच्चोपनायने ॥ सीमन्ते गर्भनाशः स्यात्प्राशने मरणं ध्रुवम् । अग्निना दह्यते क्षिप्रं गृहारम्भे विशेषतः ॥ राजराष्ट्रविनाशः स्यात्प्रतिष्ठायां विशेषतः । किमत्र बहुयोक्तेन कृतं कर्म विनश्यति ॥' इति ।

कश्यपस्तु सर्वसाधारण्येन 'दशैव घटिकास्त्याज्या' इत्याह—'अष्टमी द्वादशी **षष्ठी** पक्षरन्ध्रास्तु तासु च । मङ्गले सर्वदा त्याज्या नूनं हि दश नाडिकाः ॥' इत्यनेन **एतस्यैव**

तिथिवारनक्षत्रयोगकरणात्मकस्य पञ्चाङ्गस्य शुद्धिः पञ्चाङ्गशुद्धिरित्युक्तम्। नारदेन— 'तिथिवारर्क्षयोगानां करणस्य च मेलनम्। पञ्चाङ्गमस्य शुद्धिः पञ्चाङ्गशुद्धिरुदाहृता॥ यस्मिन् पञ्चाङ्गदोषोऽस्ति तस्मिल्लग्नं निरर्थकम्॥' इति॥ ३६॥

पीताम्बरा—पक्षों की रन्ध्रतिथियाँ—दोनों पक्षों (कृष्ण और शुक्ल) की रन्ध्र (छिद्र) तिथियाँ और उनमें विशेष अनिष्टसूचक घट्यात्मक समय बताया जा रहा है कि—

चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुर्दशी की प्रारम्भ की क्रमशः ८, ९, १४, २५, १० और ५ घटी शुभ कार्यों में त्याग कर शेष घटियों में शुभ कार्य किये जा सकते हैं। (भद्रा आदि वर्ज्यकाल को ध्यान में रखना चाहिए)। कहीं-कहीं शास्त्रों में अमावस्या को भी पक्षरन्ध्र तिथि कहा गया है॥ ३६॥

अथ कुलिककालवेलायमघण्टकण्टकदोषाननुष्टुभाह—

कुलिकः कालवेला च यमघण्टश्च कण्टकः।
वाराद्विघ्ने क्रमान्मन्दे बुधे जीवे कुजे क्षणः॥ ३७॥

पीयूषधारा—कुलिक इति। वारात् वर्तमानवारात् मन्दे शनैश्चरे गणिते सतियोऽङ्को भवेत्तस्मिन् द्विगुणे योऽङ्कस्तत्संख्यः क्षणो मुहूर्तः कुलिको भवति। एवं वर्तमानवारात् बुधे, जीवे, कुजे, गणिते ततो द्विगुणिते सति योऽङ्कः स क्रमात्कालवेलायमघण्टकण्टकसंज्ञकाः दुष्टमुहूर्ताः स्युः। यथा रवितः शनिः सप्तसंख्याकः स द्विगुणश्चतुर्दश जाता अतस्तत्संख्याको मुहूर्तः कुलिकसंज्ञो रविवारे भवति। एवं रवावष्टमो मुहूर्तः कालवेला तथा रवौ दशमो मुहूर्तो यमघण्टः तथा रवौ षष्ठो मुहूर्तः कण्टकसंज्ञ इत्यर्थः। एवं सोमवारादावपि कलिककालवेलायमघण्टकण्टका; स्युरित्यर्थः। यदाह कश्यपः—"शैलाक्षवेदा—७,५,४, स्तर्काब्धिनगाः ६,४,७, पञ्चाग्निबाहवः ५,३,२। येदाक्षिबाणा ४,२,५ लौकेकेभा ३,१,८, स्त्वक्षिगिरिवह्नयः २,७,३,॥ चन्द्रर्तुतर्काः १,६,६, कुलिकयमघण्टार्धयामकाः। प्रहरार्धप्रमाणास्ते भानुवारादितः क्रमात्॥' इति। अत्रार्धयामः सम्पूर्णस्त्याज्योऽन्वर्थत्वात्। कुलिकयमघण्टयोस्तूत्तरार्धं त्याज्यम्। उक्तं च दैवज्ञमनोहरे = 'अहनि निशि गजांशः स्वे दिनेशादिकानां भवति तु गुरुभौमज्ञार्किकालक्रमेण। प्रभवति यमघण्टः कण्टकः कालवेला कुलिक इति विरुद्धस्तत्परार्धं निषिद्धम्।' इति। गजांशोऽर्धप्रहरः एते मुहूर्तदोषा दिनषोडशांशत्वेन ज्ञेयाः। गजांश इत्युक्त्वा तत्परार्धनिपिद्धमित्युक्तेः।

एतेषां दोषफलानि—

दोषफलमाह वसिष्ठः—'निधनं प्रहरार्धे तु निःस्वत्वं यमघण्टके। कुलिके सर्वनाशः स्याद्रात्रावेते न दोषदाः॥' इति। कण्टकालवेलयोरन्वर्थत्वादत्र फलं नोक्तम्।

एते रात्रौ न दोषदाः—

'रात्रावेते न दोषदाः' इत्यस्यार्थवादो रत्नकोशे—'तमस्विनीगन्धमुपेत्य वारदोषास्तथा शक्तिमनाप्नुवन्तः। अन्धं समासाद्य विलासिनीनां कटाक्षबाणा इव निष्फलाः स्युः॥ इति। तथा च न 'न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ देवेज्यदैत्येज्यदिवाकराणाम्। दिवा शशाङ्कार्कजभूसुतानां सर्वत्र निन्द्यो बुधवारदोषः॥' इति ज्योतिर्निबन्धकृदुक्तिः सङ्गच्छते।

देशभेदेन यमघण्टकादिदोषापवादः—

अथ शुभकृत्यावश्यकत्वे देशभेदेन यमघण्टकण्टकादिदोषपरिहारमाह गर्गः—

'विन्ध्यस्योत्तरकूले तु यावदातुहिनाचलम् ।
यमघण्टकदोषोस्ति नान्यदेशेषु विद्यते ॥
मत्स्याङ्गमगधान्ध्रेषु यमघण्टस्तु दोषकृत् ।
काश्मीर कुलिकं दुष्टमर्धयामस्तु सर्वतः ॥' इति ॥ ३७ ॥

पीताम्बरा—कुलिकादि गणना—वर्तमान वार से शनिवार तक गिनती करने से जो अङ्क आवे उसे द्विगुणित करने से जो अङ्क आवे उस अङ्कसंख्यातुल्य उस वर्तमान वार में कुलिक मुहूर्त्त होता है। जैसे बुधवार को कुलिक नामक मुहूर्त की संख्या क्या होगी ? ऐसे प्रश्न के उत्तर के लिए बुधवार से शनिवार तक चौथी संख्या को दूना करने से ८ होता है अतः बुधवार के दिन आठवाँ मुहूर्त कुलिक संज्ञक होगा।

इसी प्रकार वर्तमान वार से बुधवार तक की संख्या को द्विगुणित करने से जो संख्या प्राप्त हो तत्संख्यक मुहूर्त का नाम का कालवेला होता है ।

तथा वर्तमान वार से बृहस्पतिवार तक की द्विगुणित संख्या के तुल्य मुहूर्त का नाम यमघण्ट एवं वर्तमान वार से मंगलवार तक की द्विगुणित संख्या तुल्य मुहूर्त का नाम कण्टक नामक मुहूर्त होता है। स्पष्ट समझने के लिए नीचे सारिणी दी जा रही है कि किस वार को कौन-कौन से मुहूर्तों के नाम कुलिक, कालवेला, यमघण्ट और कण्टक होंगे ।

स्पष्ट ज्ञानार्थ चक्रम्—

वार	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
कुलिक	१४	१२	१०	८	६	४	२
कालवेला	८	६	४	२	१४	१२	१०
यमघण्ट	१०	८	६	४	२	१४	१२
कण्टक	६	४	२	१४	१२	१०	८
अर्धयाम							

उक्त कुलिकादि मुहूर्तों में यात्रा करने से मृत्यु, विवाह करने से कन्या विधवा और व्रतबन्ध में ब्रह्मवध अर्थात् वेदशास्त्र-ज्ञान-शून्यता होती है।

"वसिष्ठ" के मत से ये कुलिकादि मुहूर्त रात्रि में दोषप्रद नहीं होते हैं।

इसी प्रसंग पर 'रत्नकोष' के मत से, दिशाशूल = वारदोष में जैसे पूर्व दिशा की सोम-शनि को, बृहस्पतिवार को दक्षिण दिशा की, सूर्य और शुक्रवार को पश्चिम की और मङ्गल-बुधवार को उत्तर दिशा की यात्रा नहीं करनी चाहिए। यह सामान्य वचन कहते हुए विशेष मत भी कहा है कि—रात्रि में सूर्य, बृहस्पति और शुक्रवारों का वारदोष तथा दिन में सोम, मंगल और शनिवार का वारदोष नहीं होता है। किन्तु बुधवार का दोष यात्रा के लिए दिन और रात्रि दोनों समयों में होता है। वारों का यह परिहार यात्रा आवश्यक होने पर ही चरितार्थ करना चाहिए।

कुलिकादिक उक्त दुष्ट मुहूर्तों में यमघण्टक दोष विन्ध्य और हिमालय के बीच के देशों में ही विशेष दोषयुक्त हैं। इस सम्बन्ध में "रविवारादि शन्यतं गुलिकादि निरूप्यते" इत्यादि विस्तार जैमिनिसूत्र प्रभृति गुरुकृत टीका से भी समझना चाहिए ॥३७॥

अथ सूर्यादिवारेषु शिष्याणां सद्य एव दोषज्ञानार्थ दुर्मुहूर्तादिनामकान् मुहूर्तान् शार्दूलविक्रीडितवसन्ततिलकाभ्यामाह—

सूर्ये षट्स्वरनागदिङ्मनुमिताश्चन्द्रेऽब्धिषट्कुञ्जरा-
ङ्कार्कविश्वपुरन्दराः क्षितिसुते त्र्यब्ध्यग्नितर्का दिशः।
सौम्ये त्र्यब्धिगजाङ्कदिङ्मनुमिता जीवे द्विषड्भास्कराः
शक्राख्यास्तिथयः कलाश्च भृगुजे वेदेषुतर्कग्रहाः ॥३८॥

दिग्भास्करा मनुमिताश्च शनौ शशिद्वि-
नागा दिशो भवदिवाकरसम्मिताश्च।
दुष्टः क्षणः कुलिककण्टककालवेलाः
स्युश्चार्धयामयमघण्टगताः कलांशाः ॥३९॥

पीयूषधारा—सूर्ये इति। दिगिति। रविवारे षष्ठसप्तमाष्टमदशमचतुर्दशसंख्या मुहूर्ता निन्द्याः। सोमवारे चतुर्थषष्ठाष्टमनवमद्वादशत्रयोदशचतुर्दशमुहूर्ता निन्द्याः। भौमे द्वित्रिचतुःषड् दशसंख्या मुहूर्ता निन्द्याः। बुधे द्विचतुरष्टनवदशचतुर्दशसंख्या मुहूर्ता निन्द्याः। गुरौ विषड्द्वादशचतुर्दशपञ्चदशषोडशसंख्या मुहूर्ता निन्द्याः। शुक्रे चतुःपञ्चषण्नवदशद्वादशचतुर्दशसंख्या मुहूर्ता निन्द्याः। शनौ एकद्विवसुदशैकादशद्वादशसंख्यका मुहूर्ता निन्द्याः। एषु मुहूर्तेषु केषुचित् दुष्टक्षणो दुर्मुहूर्तो ज्ञेयः। केषुचित्कुलिककण्टककालवेलाः स्युः केषुचिदर्धयामयमघण्टाः स्युः। तत्प्रमाणमाह—कलांशा इति। कलांशा षोडशांशाः। दिनस्येति शेषः। यस्मिन्दिने कुलिकादिजिज्ञासा तद्दिने यद्दिनमान तत्षोडशभिर्भाज्यं यल्लब्धं घटीपलात्मकं तन्मुहूर्तपरिमाणं तेषु मुहूर्तेषु यथासम्भवं दुमुहूर्तादयो दोषा ज्ञातव्याः। तथा हि रवौ चतुर्दशसंख्यो मुहूर्तो दुर्मुहूर्तः कुलिकश्च षष्ठः कण्टकसंज्ञः सप्तमाष्टमावर्धयामाख्यौ। तत्राष्टमः कालवेलाख्यश्च दशमो यमघण्टाख्यः। एवं सोमवारादिष्वपि बोद्धव्यम्। तत्र कुलिककण्टककालवेलायमघण्टज्ञानं पूर्व-

श्लोकेऽभ्यधायि । दुमुहूर्तार्धयामान्विवाहप्रकरणे 'रवावर्यम' इत्यादिना वक्ष्यति ननु दुर्मुहूर्तकुलिकादेर्वाचनिकस्यार्थस्य 'सूर्ये पट्स्वर' इत्यादिलघुप्रकारेणाभिधानात्पूर्वं परस्ताच्च पुनर्ग्रन्थोक्तप्रकाराभिधानमुक्तं प्रतिभाति । केचिद्दृष्टान्तार्थमिदमभिधानम् । तथा हि ग्रन्थेषु दुर्मुहूर्तकुलिककण्टककालवेलार्धयामयमघण्टानां श्लोकषट्केनाभिधानात् व्याख्यानगम्यार्थत्वाच्चेति गौरवम् । अत्र तु सर्वमप्यर्थं शब्दतः सङ्क्षिप्य श्लोकद्वयेन व्याख्यानानपेक्षमभिधानमिति लाघवमिति दृष्टान्तदर्शनद्वारा सर्वत्र लाघवप्रकरणसूचनार्थं शिष्याणामत्र ग्रन्थपठनादरातिशयार्थं च पुनरुक्तिः । ॥३८-३९॥

पीताम्बरा—कुलिकादि ज्ञान प्रकार—जिस दिन दुर्मुहूर्त (कुलिकादिकों को जानने के लिए) ज्ञान करना अपेक्षित है, उस दिन के दिनमान में १६ का भाग देकर लब्ध घटी-पल एक मुहूर्त का मान होता है । जैसे रविवार को १४वाँ मुहूर्त कुलिक होता है । इसलिए इसका समय जानना हो तो शुभ संवत् २०२८ चैत्रशुक्ल द्वितीया रविवार के दिन काशी में दिनमान ३०।२६ दिया है । ३० घटी २६ पल में १६ का भाग देने से—

```
१६ ) ३०।२६ ( १              १६ ) ८६६ ( ५४
     १६                          ८०
     ---------                   ------
     १४ × ६०                      ६६
        = ८४०                     ६४
           २६                    ---------
        ------                     २ × ६०
          ८६६                      १२० ( ७
                                   ११२
                                   ----
                                     ८
```

अर्थात् १ घटी ५४ पल एक मुहूर्त का मान हुआ । इसलिए १।५४।७ × १४ = २६।३७ अर्थात् सूर्योदय से तेरहवें मुहूर्त की समाप्ति २४ घटी ४२ पल से २६ घटी ३७····पल तक कुलिक नामक मुहूर्त रविवार के दिन सिद्ध होता है । दिनमान में ८ का भाग देकर वारेश से गणना करते हुए आठवाँ भाग निरीग होता है और शनि का भाग गुलिक होता है । गुलिक और कुलिक एक ही अर्थ के द्योतक हैं । जैसे दिनमान ३०।२६ ÷ ८ = ३।४८।१५ यह दो मुहूर्त का मान होता है । रविवार से शनिवार तक की संख्या ७ होती है । इसलिए सूर्योदय से ३।४८।१५ × ७ = २६।३७····घटी तक गुलिक का मान हुआ । ३।४८।१५ ÷ २ = १ मुहूर्तमान = १।५४।७····होता है । इसलिए सूर्योदय से २६।३७ – १।५४···· = २४ घटी ४२ पल से २६ घटी ३७ पल तक पूर्व तुल्य कुलिक मुहूर्तमान के तुल्य गुलिक का इष्टकाल स्पष्ट सिद्ध होने से प्राचीन आचार्यों की गुलिक संज्ञा कुलिक शब्द से समान अर्थ में सिद्ध होती है ।

प्रसंगागत विचार से अलम् । आगे यहाँ पर

रविवार के दिन ६, ७, ८, १०, १४ वें

सोमवार के दिन ४, ६, ८, ९, १२, १३ वें

मंगलवार के दिन १, ३, ४, ६, १० वें
बुधवार के दिन २, ४, ८, ९, १०, १४, वें
गुरुवार के दिन २, ६, १२, १४, १५. १६ वें
शुक्रवार के दिन ४, ५, ६, ९, १०, १२, १४ वें
शनिवार के दिन १, २, ८, १०, ११, १२ वें

दिनमान के ये उक्त कलांश दिनमान के १६ वें विभाग, दुष्टक्षण—कुलिक, कण्टक, कालवेला, अर्धयाम, यमघण्ट, अदिक दुर्मुहूर्त शुभ कर्म में त्याज्य हैं।

सर्वत्र लाघव के लिए उदाहरण द्वारा शिष्यों की स्मृति में विषयज्ञान स्पष्ट स्थिर रखने के अभिप्राय से उक्त मुहूर्त परिगणित किए गए हैं, अतः यहां पर पुनरुक्ति दोष नहीं समझना चाहिए ॥३८-३०॥

अथ विवाहादिशुभकृत्ये होलिकाष्टकनिषेधमनुष्टुभाह—

विपाशैरावतीतीरे शुतुद्र्याश्च त्रिपुष्करे।
विवाहादिशुभे नेष्टं होलिकाप्राग्दिनाष्टकम् ॥४०॥

पीयूषधारा—विपाशेति। विपाशा नदी इरावती चैते नद्यौ पश्चिमदेशे प्रसिद्धे। एतयोर्नद्यो-स्तीरवर्तिदेशेषु तथा त्रिपुष्कराख्ये च होलिका फाल्गुनपौर्णमास्यामग्निदाहः ततः प्राक्‌दिनाष्टकं विवाहादिशुभकृत्ये नेष्टं निषिद्धमित्यर्थः। अत्र तावद्धोलिकाष्टकनिषेधः शीघ्रबोधे —'शुक्लाष्टमीं समारभ्य फाल्गुनस्य दिनाष्टकम्। पूर्णिमावधिकं त्याज्यं होलाष्टकमिदं शुभे ॥'[१] इति।

एतद्दोषापवादः—

अस्यापवादोऽपि तत्रैव—'शुतुद्र्वां च पिपाशायामैरावत्यां त्रिपुष्करे। होलाष्टकं विवाहादौ त्याज्यमन्यत्र शोभनम् ॥' इति ४०॥

पीताम्बरा—होलाष्टकादि दोष—विपाशा (व्यास) इरावती, शतद्रु (सतलज) नदियों के तीरवर्ती देशों तथा त्रिपुष्कर देश (अजमेर आदि) में, होलिकाष्टक दोष, फाल्गुन शुक्ल पूर्णमा (होलिका दहन-तिथि) से पहिले के आठ दिन विवाह आदिक शुभ कर्म में वर्जित हैं।

ये नदियाँ पञ्जाब प्रान्त की हैं। इनमें व्यास, रावी और सतलज····आदि नदियों के समीप के, धवलपुर, लुधियाना, शिमला, फिरोजपुर, गुरुदासपुर, होशियारपुर, कांगड़ा कपूरथला आदिक नगर या देशों में होलिकाष्टक दोष प्रायः विवाहादि शुभ कार्यों में ही वर्जित हैं ॥४०॥

अथ मृत्युयोगादिदुष्टयोगपरिहारमाह—

मृत्युक्रकचदग्धादीनिन्दौ शस्ते शुभाञ्जगुः।
केचिद्यामोत्तरं चान्ये यात्रायामेव निन्दितान् ॥४१॥

पीयूषधारा—मृत्य्विति। मृत्युवो मृत्युयोगा आनन्दादिष्वष्टाविंशतियोगेषु 'दास्रादर्क' इत्यादिना प्रागुक्ताः। क्रकचः—'षष्ठ्यादितिथो मन्दाद्विलोमम्' इत्युक्तः। दग्धयोगः—सूर्येशप-ञ्चाग्निरसाष्टनन्दा' इत्युक्तः। आदिशब्देन विषयोगाश्च गृह्यन्ते। चन्द्रे शस्ते समीचीने सति।

समीचीनत्वं गोचरप्रकरणे वक्ष्यते। मृत्युक्रकचदग्धादीन् शुभाननिष्टफलमपास्य शुभफलदान् जगुरूचुः। यदाह राजमार्तण्डः—'क्रकची मृत्युयोगाख्यो दिनं दग्धं तथैव च। चन्द्रे शुभे क्षयं यान्ति वृक्षा वज्रहता इव॥'[1] इति। अथ केचिदाचार्या यामोत्तरं मृत्युक्रकचदग्धादीन् शुभाञ्जगुः। तथा च दीपिकायां राजमार्तण्डः—'उत्पाते यमघण्टे च काणे च क्रकचे तथा। तिथौ दग्धे च काले च प्राग्यामात्परतः शुभम्॥' इति।

अथान्ये आचार्या मृत्युक्रकचदग्धादीन् यात्रायामेव निन्दितान् जगुः विवाहादीनि तु प्रतिषेधा- भावादवश्यं कार्याणि। यदाह लल्लः—'वारर्क्षतिथियोगेषु यात्रामेव विवर्जयेत्। विवाहादीनि कुर्वीत गर्गादीनामिदं वचः॥' इति। वारर्क्षतिथियोगेषु निन्द्येष्वितिशेषः॥४१॥

पीताम्बरा—चन्द्र शुद्धि की महत्व—गोचर प्रकरण में वर्णित चन्द्रमा की शुद्धि यदि हो तो मृत्यु क्रकच दग्ध आदि पद से विषयोग और हुताशन योगों का अनिष्ट फल दूर हो जाता है। चन्द्रमा की शुभ स्थिति वश उक्त योग शुभफलद हो जाता है।

कुछ आचार्यों का मत है कि उक्त योगों का एक प्रहर समय बीत जाने पर शेष समय शुभ ही होता है। कुछ आचार्य उक्त योगों का अनिष्ट फल मात्र "यात्रा में ही होता है", ऐसा निर्देश करते हैं॥४१॥

अथ पुनरप्यपवादं भुजङ्गप्रयातेनाह—

अयोगे सुयगोऽपि चेत्स्यात्तदानीमयोगं निहत्यैष सिद्धिं तनोति।
परे लग्नशुद्धया कुयोगादिनाशं दिनार्धोत्तरं विष्टिपूर्वं च शस्तम्॥४२॥

पीयूषधारा—अयोग इति। अयोगे क्रकचादौ सति सुयोगः सिद्धियोगोऽपि चेत्स्यात्तदा एष सिद्धियोगः अयोगं अयोगफलं निहत्य सिद्धि कार्यसिद्धि तनोति निष्पादयति। यदाह राजमार्तण्डः—'अयोगः सिद्धियोगश्च द्वावेतौ भवतो यदि। अयोगो हन्यते तत्र सिद्धियोगः प्रवर्तते॥'[1] इति। अन्यच्च—'हन्त्यमृताख्यो योगः सर्वाण्यशुभानि लीलया नियतम्। न भवति पुनरिह शक्तो वैधृति-विष्टिव्यतीपाते' इति। यत्तु दीपिकाकारवचनम्—'यदि विष्टिर्व्यतीपातो दिनं वाप्यशुभं भवेत्। हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा॥' इति। तदमृतयोगस्यातिप्राश- स्त्यसूचनार्थं न तु भद्राव्यती-पातादिदोषापवादकं। 'हन्त्यमृताख्यो योग' इत्येकवाक्यताबलात्। अथ परे आचार्या लग्नशुद्धया समीचीनलग्नबलेन कुयोगानां मृत्युक्रकचादीनां नाशं वदन्तीति- शेषः। यदाह स एव—'यत्र लग्न विना कर्म क्रियते शुभसंज्ञकम्। तत्र तेषामयोगानां प्रभावाज्जा यते फलम्॥' अथावश्यकशुभकृत्ये कालान्तरप्रतीक्षऽयोग्यतायां परिहारमाह। विष्टिपूर्वे विष्टि- र्भद्रा तत्पूर्वं तदादिव्यतोपातादिकं दिनार्धो-त्तरं मध्याह्नादनन्तरं शस्तं प्राहुः। अर्थान्मध्याह्नं यावत्कालो निषिद्धः। 'विष्टिरङ्गारकश्चैव व्यती-पातश्च वैधृतिः। प्रत्यरं जन्मनक्षत्रं मध्याह्नात्परतः शुभम्॥' इति तेनैवोक्तत्वात्॥४२॥

पीता०—सिद्धियोग का माहात्म्य—क्रकच-दग्ध-विषाख्य दुष्टयोगों के दिन यदि सिद्धि- योग भी आ जाय तो दुष्टयोगों के दुष्टफलों का सम्यक् उच्छेद कर सिद्धि आदिक योग शुभ ही फल देते हैं।

उक्त दुष्ट योगों के परिहार के लिए दूसरा भी पक्ष है। जब कि शुभ कार्यों में लग्नादि द्वादश भावों में ग्रहों की सुन्दर समीचीन संस्थिति हो तो शुभ कार्यों में अशुभ फल देनेवाले उक्त दुष्टयोग अशुभ फल देने में प्रभावशून्य हो जाते हैं।

भद्रा (विष्टि) व्यतिपात आदिक जिस दिन हों उस दिन का मध्याह्न से आगे का समय शुभ कार्यों में ग्रहण किया जा सकता है। भद्रा सम्बन्धी दिन का पूर्वार्द्ध (मध्याह्न से पहले का समय) तो शुभ कार्य में अग्राह्य ही होता है ॥ ४२ ॥

अथ भद्रानिषिद्धेति पूर्वमुक्तं तदधुना प्रस्तावात्तन्निषिद्धकालं शालिनीछन्दसाह—

शुक्ले पूर्वार्धेऽष्टमीपञ्चदश्योर्भद्रैकादश्यां चतुर्थ्यां परार्धे ।
कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात्तृतीयादशम्योः पूर्वे भागे सप्तमीशम्भुतिथ्योः ॥ ४३ ॥

पी० धा०—**शुक्ल इति** ॥ शुक्लपक्षेऽष्टम्यां च पूर्णिमायां च पूर्वार्धे भद्रा भवति, एकादश्यां चतुर्थ्यां चोत्तरार्धे भद्रा। अथ कृष्णे कृष्णपक्षे तृतीयायां दशम्या चान्त्यार्धे भद्रा स्यात्। सप्तम्यां शंभुतिथौ चतुर्दश्यां च पूर्वभागे पूवार्धे भद्रा स्यात्। पूर्वे इति। 'पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा' इत्यस्मिनभावपक्षे रूपं। अष्टम्यादीनां तिथीनां गतभोग्यघटिकायोगार्धं भद्राप्रमाणमिति यावत्। 'तिथेर्गतैष्यैक्यदलं तन्मानं करणं भवेत्' इति वोपदेवोक्तेः। 'तिथ्यर्धभागं सर्वेषां करणानां प्रकल्पयेत्' इति सूर्यसिद्धान्तोक्तेश्च। उक्तं च दीपिकायाम्—'तृतीयदशमीशेषे तत्पञ्चम्योस्तु पूर्वतः। कृष्णे विष्टिः सिते तद्वत्तासां परतिथिष्वपि ॥' इति। बृहस्पतिना तु स्पष्टमुक्तम्—'सिते चतुर्थ्यामन्त्यार्धमष्टम्याद्यार्धमेव च। एकादश्यां परार्धे तु पूर्वार्धे पूर्ण शीतगौ ॥ कृष्णे तृतीयान्त्यार्धं हि सप्तम्याद्यार्धमेव च। दशम्यामुत्तरार्धे तु चतुर्दश्यर्धमादितः ॥ विष्टयाख्योयं महादोषः कथितोऽत्र समस्तगः। तदानीं कृत्सकर्म कर्त्रा सह विनश्यति ॥' इति। पूर्णशितगौ पूर्णिमायाम्।

भद्रानामानि तत्स्वरूपञ्च रत्नकोशे प्रत्येकं भद्रानामानि—हंसो नन्दीन्यपि च त्रिशिराः सुमुखी करालिकाश्चैव। वैकृति रौद्रमुखी च चतुर्मुखी विष्टयः क्रमशः ॥' चतुर्थ्यादितिथिसम्बन्धिभद्रानामाभिधानं नाम सादृश्येन फलतारतम्यसूचनार्थम्। भद्रास्वरूपं रत्नमालायाम्—'उद्बद्धोद्भटतरपीडिताऽतिकृष्णा दंष्ट्रोग्रापृथुहनुगण्डदीर्घनासा। कार्यघ्नी हुतवहनं समुद्गिरन्ती विश्वान्तः पतति समन्ततोऽत्र विष्टिः ॥' इति ॥४३॥

पीता०—**भद्रा ज्ञान**—शुक्लपक्ष की अष्टमी और पूर्णिमा के पूर्वार्ध तथा चतुर्थी और एकादशी के उत्तरार्ध में भद्रा (विष्टि) करण होता है। कृष्णपक्ष की तृतीया दशमी के पूर्वार्ध में तथा सप्तमी और चतुर्दशी के पूर्वार्ध में भद्रा होती है। तिथि का पूरा मान निकालकर उसमें दो का भाग देने से आधा पूर्वार्ध और आधा उत्तरार्ध होता है। जैसे यदि अष्टमी तिथि का पूरा मान ६४ घटी हो तो जिस समय सप्तमी समाप्त हो रही हो उस समय से अष्टमी तिथि के पूर्वार्ध की ३२ घटी तक भद्रा समझनी चाहिए।

"रत्नकोश" ग्रन्थ में भद्रा के नाम और नाम सदृश फल भी बताया गया है। ये नाम क्रमशः (१) हंसी (२) नन्दीनि, (३) त्रिशिरा, (४) सुमुखी, (५) करालिका, (६) वैकृति, (७) रौद्रमुखी, (८) चतुर्मुखी।

(१) हंसी, (२) नन्दिनी, (३) त्रिशिरा, (४) सुमुखी, (५) करालिका, (६) वैकृति, (७) रौद्रमुखी, (८) चतुर्मुखी। अर्थात् श्लोक में कथित तिथियों के पूर्वार्ध व परार्ध में क्रमशः भद्रा के उक्त नाम समझने चाहिए। जैसे शुक्लपक्ष अष्टमी पूर्वार्घ की भद्रा का नाम हंसी पूर्णिमा के पूर्वार्घ की भद्रा का नाम नन्दिनि इत्यादि क्रम से भद्रा के नाम भी समझने चाहिए ॥४३॥

अथ चतुर्थ्यादितिथिभद्रायां मुखपुच्छविभागादिकं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

पञ्चद्व्यद्रिकृताष्टरामरसभूयामादिघट्यः शरा
विष्टेरास्यमसद्गजेन्दुरसरामाद्र्यश्विबाणाब्धिषु।
यामेष्वन्त्यघटीत्रयं शुभकरं पुच्छं तथा वासरे
विष्टिस्तिथ्यपरार्धजा शुभकरी रात्रौ तु पूर्वार्धजा ॥४४॥

पीयूषधारा पञ्चेति। चतुर्थ्यादितिथिनां क्रमशः पञ्चादिप्रहरेषु शराः पञ्च नाडयः आदिमा विष्टेर्भद्राया आस्यं सुखं। यथा चतुर्थ्याः पञ्चमप्रहर आदिभूताः पञ्च घट्यो भद्रामुखम्। एवमष्टम्या द्वितीयप्रहरे एकादश्याः सप्तमप्रहरे पौर्णमास्याश्चतुर्थप्रहरे, तृतीयाया अष्टमप्रहरे, सप्तम्यास्तृतीयप्रहरे, चतुर्दश्याः प्रथमप्रहरे, भद्रामुखमित्यर्थः। तद्भद्राया मुखमसदशुभमित्यर्थः। अथ पुनश्चतुर्थ्यादितिथीनां क्रमेण गजादिप्रहरेषु अन्त्यं अन्ते भवमन्त्यम्। 'दिगादिभ्यो यत्' इति यत्। घटीत्रयं पुच्छं पुच्छ संज्ञं तच्छुभकरं समस्तकार्येष्वित्यर्थः। यथा चतुर्थ्या अष्टमप्रहरस्यान्त्यघटीत्रयं भद्रापुच्छं एवमष्टम्याः प्रथमहरस्य एकादश्याः षष्ठप्रहरस्य पूर्णिमायास्तृतीयप्रहरस्य तृतीयायाः सप्तमप्रहरस्य सप्तम्याद्वितीयप्रहरस्य दशम्याः पञ्चमप्रहरस्य चतुर्दश्याश्चतुर्थप्रहरस्यान्त्याघटीत्रयं भद्रापुच्छमित्यर्थः। यदाह गुरुः—'भूतदस्रस्वरांभोधिवसुवन्ह्यङ्गरूपकाः। यामेष्वेषु क्रमादास्यं भवेत्तिथ्यर्धविष्टिषु ॥' इति। व्यवहारसमुच्चये—'दशम्यामष्टम्यां प्रथमघटिकापंचकपरं हरिद्युः सप्तम्या द्विदश १२ घटिकान्ते त्रिघटिकम्। तृतीया राकायां खयम २० घटिकाभ्यः परभवं शुभं विष्टेः पुच्छं शिवतिथिचतुर्थ्योस्तु विरमे ॥' इति। हरिद्युरेकादशी राकापूर्णिमा। ननु भद्रा देवतेत्यभिधीयते तस्याः पुच्छकथनात्तु पशुत्वसिद्धिदृश्यते देवता च कथं पशुर्भवितुमर्हतीति। सत्यम्। दैत्येन्द्रैर्देवेषु पराजितेषु रुद्रस्य ज्वालामालाकुलनेत्रालोकितशरीराद्देवी भद्रासंज्ञा मुखपुच्छादिमत्युत्पन्ना सती दैत्याञ्जघान। यदुक्तं श्रीपतिना—

'दैत्येन्द्रैः समरेऽमरेषु विजितेष्वीशः क्रुधा दृष्टवान्
स्वं कार्यं किल निर्गता खरमुखी लाङ्गूलिनी च त्रिपात्।
विष्टिः सप्तभुजा मृगेन्द्रगलका क्षामोदरी प्रेतगा
दैत्यघ्नी मुदितैः सुरैस्तु करणप्रान्ते नियुक्ता सदा ॥' इति।

चलकरणानि तत्र भद्रा—

करणान्याह गर्गः—'बवं च बालवं चैवं कौलवं तैतिलं गरम्। वणिजं विष्टिमित्याहुः करणानि चराणि तु ॥' इति। विष्टिर्भद्रा। 'अन्ते कृष्णचतुर्दश्याः शकुनिर्दर्शभागयोः।

नागभं किंस्तुघ्नं प्रतिपद्दले ॥' इति । अतस्तिथ्यर्धभोगः करणमित्युक्तेः प्रतिपत्पूर्वार्धे स्थिरकरणं किंस्तुघ्नं ततो ववकरणं प्रतिपद्द्वितीयार्ध । बालवकौलवकरणे द्वितीयायाः पूर्वोत्तरार्धयोः । तैतिलगरकरणे तृतीयापूर्वोत्तरार्धयोः । चतुर्थीपूर्वार्धे वणिक् उत्तरार्धे तु भद्रा । एवं पञ्चमीषष्ठीसप्तमीषु ववबालवकौलवतैतिलगरवणिक्करणानि भवन्ति । ततोऽष्टम्याद्यर्धे भद्रा भवति । एवं पुनः पुनरावृत्तावुक्ततिथिषु भद्रा ज्ञेयाऽत एवोक्तम् 'शुक्ले पूर्वार्धेऽष्टमीपञ्चदश्योः' इत्यादि । एवं चतुर्दश्याः पूर्वार्धे भद्रा । उत्तरार्धादारभ्य शकुन्यादीनि स्थिरकरणानि चत्वारि ।

भद्राकृत्यम्—

भद्राकृत्यमाह वसिष्ठः—वधबन्धविषाग्न्यस्त्रच्छेदनोच्चाटनादि यत् । तुरङ्गमहिषोष्ट्रादिकर्म विष्टयां तु सिद्ध्यति ॥ न कुर्यान्मङ्गलं विष्ट्यां जीवितार्थी कदाचन । कुर्वन्नज्ञस्तदा क्षिप्रं तत्सर्वं नाशतां व्रजेत् ॥' इति ।

भद्राङ्गविभागः फलञ्च—

तत्राङ्गविभागः फलं च कश्यपसंहितायाम्—'मुखे पञ्च गले त्वेका वक्ष्यस्येकादश स्मृताः । नाभौ चतस्रः षट् कट्यां तिस्रः पुच्छे तु नाडिकाः ॥ कार्यहानिर्मुखे मृत्युर्गले वक्षसि निःस्वता । कट्यामुन्मत्तता नाभौ च्युतिः पुच्छे ध्रुवो जयः ॥' इति ।

तत्र नाडीभेदे विशेषः—

अयं च भद्राङ्गविभागो नाडीनां त्रिंशतोक्तः । त्रिंशतो न्यूनाधिकत्वे तु त्रैराशिकेन मुखादीनामङ्गानां विभागज्ञानम् । यथा यदि नाडीत्रिंशता इदमुक्तमङ्गपरिमाणं तदेष्टपरिमाणेन किमिति त्रैराशिकं । एवं सति उक्ताङ्गपरिमाणं भद्राभोगमितघटीभिः संगुण्यं त्रिंशता भाज्यं लब्धं समोऽङ्गविभागः त्रैराशिकस्वरूपं लीलावत्यामुक्तम्—'प्रमाणमिच्छा च समानजाती आद्यन्तयोस्तत्फलमन्यजाति । मध्ये तदिच्छाहतमाद्यहृत्स्यादिच्छाफलं व्यस्तविधिर्विलोमे ॥' इति ।

भद्रामुखादिकालः—

तत्र मुखादिकालो रत्नमालायाम्—'जलशिखिशशिरक्षःशर्वकीनाशवायुत्रिदशपतिककुप्सु प्रोक्तमास्यं हि विष्टेः । नियतमृषिभिराशासंख्ययामक्रमेण स्फुटमिह परिहार्यं मङ्गलेष्वेतदेव ॥' इति । जलं वरुणः कीनाशो यमः । शुक्लचतुर्थ्या उत्तरार्धे पश्चिमदिशि भद्रामुखं तच्चाशासंख्यया क्रमेण पञ्चमे प्रहरे भवति । अर्थादेव भद्रायाः प्रहरचतुष्टयाधिकस्थितिभावादान्ते एव घटिकात्रयं पुच्छम् । ततोऽष्टम्यां द्वितीयप्रहरे तेन प्रकारेण आग्नेय्यां दिशि मुखम् । मुखाच्च प्राक् पुच्छमिति प्रथमप्रहरान्त एव पुच्छघटिकामित्येवं सर्वास्वपि भद्रातिथिष्ववगंतव्यम् ।

तत्प्रयोजनम्—

प्रयोजनपि तत्रैव 'मनुवसुमुनितिथियुगदशशिवगुणसंख्यासु तिथिषु पूर्वस्याः । आयाति विष्टिरेषा पृष्ठे शुभदा पुरस्त्वशुभा ॥' इति । तदेतदात्ययिककार्यसम्भवे सति मुखदिक्सम्मुखयात्रानिषेधकमवधेयम् । ग्रन्थान्तरे अन्यदप्युक्तम्—'असिते सर्पिणी ज्ञेया सिते विष्टिस्तु वृश्चिकी । सर्पिण्यास्तु मुखं त्याज्यं वृश्चिक्याः पुच्छमेव च ॥' इति ।

परिहारः—

अथ परिहारमाह—तथेति । विष्टिस्तिथ्यपरार्धजा तिथ्युत्तरार्धे सम्भूता वासरे दिवसे यदि स्याद्भद्रा तदा शुभकरी । तेनैव प्रकारेण तिथिपूर्वार्धजा रात्रौ भद्रा चेत्स्यात्तदा शुभा शुभकरी स्यात् । उक्तं च—'रात्रिभद्रा यदाऽह्नि स्याद्दिवाभद्रा यदा निशि । न तत्र भद्रादोषः स्यात्सा भद्रा भद्रदायिनी ।।' इति । रात्रिभद्रा तिथ्युत्तरार्धोद्भवा, दिवाभद्रा तिथिपूर्वार्धोद्भवा' । अमुमर्थं स्पष्टमाह गुरुः—'निशि पूर्वार्धजा विष्टिर्दिवा चापरतः शुभा । क्रमागता तु या विष्टिः सैव हालाहलोपमा ।।' इति । लल्लोऽपि—'दिवा परार्धजा विष्टिः पूर्वार्धोत्था यदा निशि । तदा विष्टिः शुभायेति कमलासनभाषितम् ।।' ब्रह्मसिद्धान्तेऽपि—'दिवापरार्धजा विष्टिर्विष्टिरेव दिवानिशोः । सा त्याज्या त्वन्यथा विष्टिः सर्वकर्मशुभप्रदा ।।' इति । ननु यत्तु नारदकश्यपादिभिरुक्तम्—'करणानि बवादीनि शुभसंज्ञानि षट् क्रमात् । क्रमायाताक्रमायाता विष्टिर्नेष्टा तु मङ्गले ।।' इति । अत्र क्रमायाता दिवारात्रिक्रमायात दिवाभद्रा रात्रौ रात्रिभद्रा च दिवेत्यर्थः । एवं सति द्विविधाया अपि भद्राया दोषवत्त्वोक्तेः पूर्वोक्तपरिहाराभिधानमयुक्तम् । उच्यते । इदमेव क्रमायातेति वचनं ज्ञापकमुक्तार्थस्य । अन्यथा सामान्यतो भद्रा दुष्टेत्युक्ते द्विविधभद्राया दोषवत्त्वसिद्धेरनर्थकमिदं स्यात् । तस्माच्छुभकार्याणां भद्रारूपदुष्टदिनव्यतिरिक्तकालप्रतीक्षायोग्यत्वे तदेव कार्यं न दुष्टदिने । 'अबाधेनोपपत्तौ बाधो न न्याय्यः' इति न्यायाद्वचनस्य निषेध एव तात्पर्याच्च । अवश्यकर्तव्यस्य तु शुभकर्मणः कालान्तरप्रतीक्षामसहमानस्य इति परिहारमाश्रित्य दुष्टदिने कृतिरुचितैव । 'विष्टिरङ्गारकश्चैव' इत्यपि परिहार एतत्पर एवेत्यलं पल्लवितेन ।।४४।।

पीताम्बरा–भद्रा मुख और पुच्छ—चतुर्थी आदिक तिथियों में "भद्रा का मुख और पुच्छ किन-किन प्रहरों में होता है" उन प्रहरों का उल्लेख किया जा रहा है । जैसे, शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि की पाँचवीं प्रहर के आदि की ५ घटी में भद्रा का मुख होता है । इस प्रकार अष्टमी के दूसरे प्रहर में, एकादशी के सातवें प्रहर में, पौर्णमासी के चतुर्थ प्रहर और कृष्णपक्ष की तृतीया में आठवें प्रहर, सप्तमी के तीसरे प्रहर, दशमी के छठे प्रहर और चतुर्दशी के प्रथम प्रहर की आदि की ५ घटियों में भद्रा का मुख होता है, जो शुभ कार्यों में अशुभ होता है ।

शुक्लपक्ष की पुनः चतुर्थी तिथि के अष्टम प्रहर की अन्त्य की, अष्टमी के प्रथम प्रहर के, एकादशी के छठे प्रहर की, पूर्णिमा के तीसरे प्रहर की और कृष्णपक्ष की तृतीया के सप्तम प्रहर की, सप्तमी के द्वितीय प्रहर की, दशमी के पांचवें प्रहर की और चतुर्दशी के चौथे प्रहर के अन्त्य की ३ घटियों में भद्रा का पुच्छ होता है जो शुभ कहा गया है । तिथि के सम्पूर्ण मान (भोग घटी) में आठ से विभक्त लब्धि का मान गत प्रहर होता है ।

$$\text{तिथिभोग} \div 8 = \text{लब्धि} + \frac{\text{शेष}}{8} \quad \text{गत प्रहर । गत्त प्रहर} + 1 = \text{वर्तमान प्रहर ।}$$

दिन की भद्रा यदि तिथि के उत्तरार्ध की हो (कृष्णपक्ष की तृतीया, दशमी और शुक्लपक्ष में एकादशी, चतुर्थी इत्यादि में भद्रा उत्तरार्ध (परार्ध) में होती है) और रात की भद्रा तिथि के पूर्वार्ध की हो (जैसे कृष्णपक्ष की सप्तमी, चतुर्दशी; शुक्लपक्ष की अष्टमी, पूर्णिमा में भद्रा पूर्वार्ध में होती है) तो वह शुभ मानी जाती है ।

ग्रन्थान्तरों में, कृष्णपक्ष की भद्रा का नाम सर्पिणी और शुक्लपक्ष की भद्रा का नाम वृश्चिकी है।

भद्रा तो देवता कही गई है, किन्तु भद्रा का पुच्छ कहने से भद्रा पशु है क्या ? क्योंकि पूँछ तो पशुओं की होती है, इस प्रकार की शंकाओं का समाधान है कि, दैत्यों से पराजित देवताओं की आराधना से रुद्र के ज्वालामालाकुलनेत्रालोकित शरीर से मुख और पूँछवाली भद्रा नाम को देवी का आविर्भाव हुआ जिसने दैत्यों का वध किया, इत्यादि वर्णन पौराणिक कथाओं से स्पष्ट है।

शुक्लपक्ष में क्रमशः ४, ८, ११, १५ और कृष्णपक्ष में क्रमशः ३, ७, १०, १४ तिथियों में भद्रा होती है। नीचे भद्राज्ञान की एक सारिणी दी जा रही है जिससे भद्रा, का मुख, पुच्छ कब कितना है सब स्पष्ट हो जाता है ॥ ४४ ॥

	क्रमशः शुक्लपक्ष की भद्रा तिथियाँ				क्रमशः कृष्णपक्ष की भद्रा तिथियाँ			
परार्ध पूर्वार्ध क्रम से तिथियाँ और भद्रा	परार्ध ४	पूर्वार्ध ८	परार्ध ११	पूर्वार्ध १५	परार्ध ३	पूर्वार्ध ७	परार्ध १०	पूर्वार्ध १४
उन प्रहरों की संख्या जिनके आदि की ५ घटियों में मुख होता है	५	२	७	४	८	३	६	१
उन प्रहरों की संख्या जिनमें अन्त्य की ३ घटियों में पुच्छ होता है	८	१	६	३	७	२	५	४

अथ भद्रानिवासं तत्फलं चानुष्टुभाह—

कुम्भकर्कद्वये मर्त्ये स्वर्गेऽब्जेऽजात्त्रयेऽलिगे।
स्त्रीधनुर्जूकनक्रेऽधो भद्रा तत्रैव तत्फलम् ॥ ४५ ॥

पीयूषधारा—कुम्भेति। अब्जे चन्द्रमसि कुम्भद्वये कुम्भमीनस्थे कर्कद्वये कर्कसिंहराशिस्थिते सति भद्रा मर्त्ये मनुष्यलोके तिष्ठति। अथ मेषादित्रये मेषवृषमिथुनस्थितेऽलिगे वृश्चिकस्थिते चन्द्र स्वर्गे भद्रा तिष्ठति। कन्याधनुस्तुलामकरराशिस्थितेऽधः पाताललोके भद्रा तिष्ठति ॥ अथ भद्रा तत्रैव मर्त्यस्वर्गपातालेषु फलं स्वोक्तशुभाशुभफलं ददातीत्यपवादद्वारा प्रयोजनमुक्तं भवति। उक्तं—'मेषोक्षकौर्प्यमिथुने घटसिंहमीनकर्केषु चापमृगतौलिसुतासु चन्द्रे। स्वर्मर्त्यनागनगरीः क्रमशः प्रयाति विष्टिः फलान्यपि ददाति हि तत्र देशे ॥' इति। भूपालवल्लभे—'कन्यातुलामकरधन्विषु नागलोके मेषालिवैणिकवृषेषु सुरालये स्यात्। पाठीनसिंहघटकर्कटकेषु मर्त्ये चन्द्रे वदन्ति मुनयस्त्रिविधां हि विष्टिम् ॥' इति। पाठीनो मीनः ॥४५॥

पीताम्बरा-भद्रा निवास—कुम्भ और मीन राशि तथा कर्क और सिंह राशि में जब चन्द्रमा रहता है तब भद्रा मनुष्यलोक में वास करती है। अतः मनुष्यलोक में ही उसका अधिक अशुभ फल होता है।

मेष, वृषभ, मिथुन और वृश्चिक इन चार राशियों के चन्द्रमा में भद्रा स्वर्गलोक में रहती है, इसलिए ऐसी स्थिति मे मनुष्यलोक में भद्रा का अधिक अनिष्ट फल नही होगा ।

कन्या, तुला, धनु और मकर राशियों के चन्द्रमा में भद्रा पाताललोक में रहती है वहीं उसका फल भी होता है ।

जिस दिन कार्य आवश्यक हो और उस दिन भद्रा से कार्य में बाधा पड़ रही हो और यदि उस दिन भद्रा स्वर्ग या पाताल लोक में हो तो आवश्यक कार्य किया जा सकता है । एक प्रकार से यह भद्रा दोष का लघु परिहार है ॥४५॥

एवं महता ग्रन्थसन्दर्भेण पञ्चाङ्गदूषणान्युक्तान्यधुना कालाशुद्धौ निषेध्यवस्तूनि शार्दूलविक्रीडिताभ्यामाह—

वाप्यारामतडागकूपभवनारम्भप्रतिष्ठे व्रता-
रंभोत्सर्गवधूप्रवेशनमहादानानि सोमाष्टके ।
गोदानाग्रयणप्रपाप्रथमकोपाकर्मवेदव्रतं
नीलोद्वाहमथातिपन्नशिशुसंस्कारान् सुरस्थापनम् ॥४६॥
दीक्षामौञ्जिविवाहमुण्डनमपूर्वं देवतीर्थेक्षणं
संन्यासाग्निपरिग्रहौ नृपतिसंन्दर्शाभिषेकौ गमम् ।
चातुर्मास्यसमावृती श्रवणयोर्वेधं परीक्षां त्यजेद्-
वृद्धत्वास्तशिशुत्व इज्यसितयोर्न्यूनाधिमासे तथा ॥४७॥

पीयूष धारा—वाप्यारामेति—दीक्षेति। वापी दीर्घिका, आराम उपवनं, तडागः पुष्करिणी, कूपः प्रसिद्धः, भवनं गृहं एतेषामारंभप्रतिष्ठे आरम्भो निर्माणं, प्रतिष्ठा उत्सर्गः तत्र गृहप्रतिष्ठा गृहप्रवेशो ।ज्ञेयः व्रतारम्भोत्सर्गौ व्रतानामनन्तशिवरात्रिव्रतादीनामारम्भः। उत्सर्गोऽन्नतव्रतादीनामुद्यापनं । महादानानि षोडशमहादानानि, सोमः सोमयागः, अष्टका अष्टकाश्राद्धं, गोदानं केशान्तसंज्ञं कर्म, आग्रयणं नवान्नेष्टिः, प्रपा जलशाला, 'प्रपा पानीयशालिका' इत्यभिधानात् । महाराष्ट्राः षट्के इति वदन्ति । पहुआ इति कान्यकुब्जाः । प्रथमारभ्यमाणं श्रावणीकर्म, वेदव्रतं महानाम्न्यादित्रयम् । उपनिषद्व्रतं, महानाम्नीव्रतं, वेदव्रतं च । नीलोद्वाहः नीलशब्दवाच्यः काम्यो वृषोत्सर्गः । न त्वेकादशाहे क्रियमाणः तस्य तदैव विहितत्वान्मुहूर्तविचारानुन्मेषः। अतिपन्नशिशुसंस्काराः अतिपन्ना अतिक्रान्ता जातकर्मनामकर्मादयःशिशूनां संस्काराः । दीक्षा मन्त्रग्रहणादिकाः । मुण्डनं चौलं, अपूर्व देवेक्षणं तीर्थेक्षणं च । अग्निपरिग्रहोऽग्निहोत्रमग्न्याधानं; चातुर्मास्यं चातुर्मास्याख्यो यागः, समावर्तनं समावृतिः मौञ्जीमोक्षः, श्रवणयोर्वेधः, परीक्षा तप्तमाषादिरूपा दिव्य मितियावत्। अन्यानि कर्माणि नामतः स्पष्टानि। एतानि सर्वाणि कर्माणि त्यजेन्न कुर्यात् । इज्यसितयोर्बृहस्पतिशुक्रयोर्वृद्धत्वे शिशुत्वे बाल्यं च तथा न्यूनाधिमासे अधिकमासे च न कुर्यात् । अयं च निषेधः प्रथमोपक्रान्तकृत्येषु । न तु नित्यवदारब्धवार्षिकयात्रादौ । अत्र मूलवचानानि लिख्यन्ते । तत्र शुक्रास्तादिषु ज्योतिःसारसागरे कश्योच्चयः—'वापीकूपतडागपानगमनं क्षौरं प्रतिष्ठाव्रतं विद्यामंदिरकर्णवेधनमहादानं वनं सेवनम् । तीर्थस्नानविवाहदेवभवनं

मन्त्रादिदेवेक्षणं दूरेणैव जिजीविषुः परिहसेदस्तङ्गते भार्गवे ।। बाले शुक्रे वृद्धे जीवे वृद्धे शुक्रे जीवे बाले । जीवे सिंहे सिंहादित्ये जीवादित्ये नष्टे जीवे ।। तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्ये तथास्तगे । वापीकूपतडागादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत् ।।' इति । वनमारामादि । सेवनं राजादीनां । नष्टे जीवे नष्टबले नीचस्थिते गुरावित्यर्थः । लल्लः—'उपनयनं गोदानपरिणयनगृहप्रवेशगमनानि । अस्तमितेषु न कुर्यात्सुरगुरुभृगुपुत्रचन्द्रेषु ।।' इति शातातपः—'अस्तङ्गते गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे । उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत् ।।' अस्तमयादिफलमाह बादरायणः—'गुरोरस्ते पतिं हन्याच्छुक्रास्ते चैव कन्यकाम् । चन्द्रे नष्टे उभौ हन्यात्तस्मादस्तं विवर्जयेत् ।।' इति । विवाह इति शेषः । 'बालभावे स्त्रियं हन्याद्वृद्धभावे नरं तथा । तस्माद्बाले च वृद्धे च विवाहं नैव कारयेत् ।।' उपलक्षणमेतत् । एवं व्रतबन्धादिष्वपि कर्तुः मरणं ज्ञेयम् । 'एकत्र निर्णीतः शास्त्रार्थोऽपरत्रापि विनियुज्यते' इति न्यायात् । उक्तं च शार्गीयविवाहपटले—'विवाहो व्रतबन्धो वा यात्रा वा गृहकर्म च । गुरावस्तमिते शुक्रे ध्रुवं मृत्युं विनिर्दिशेत् ।।' इति । अथाधिमासक्षयमासवर्ज्यानि । तत्र गृह्यपरिशिष्टे—'सोमयागादिकर्माणि नित्यान्यपि मलिम्लुचे । तथैवाग्रयणाधानचातुर्मास्यादिकान्यपि ।।' महालयाष्टकाश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत् । स्पष्टमासविशेषाख्यविहितं वर्जयेन्मले ।।' इति । गर्गबृहस्पती अपि 'अग्न्याधानं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च । वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ।। माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् ।। मरीचिः—'गृहप्रवेशगोदानस्थानाश्रममहोत्सवम् । न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पेऽस्पतौ तथा ।।' इति । यदा क्षयमासो भवति तदा पूर्वोत्तरावधिमासौ भवतः । तत्र पूर्वः संसर्पः । द्वितीयोऽहस्पतिः । एतान्यधिकमासक्षय, मासवर्ज्यानि । गुरुशुक्रयोरस्तादावपि वर्ज्यानि । यदाह वृद्धगार्ग्यः—'बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वास्तङ्गते गुरौ । मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् ।।' इति । अत्र देवदर्शनमपूर्वं विवक्षितम् । यदाह गर्गः—अपूर्वदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे । मलमासेष्वनावृत्ततीर्थयात्रां परित्यज्येत् ।।' इति । अनावृत्ततीर्थयात्रामपूर्वतीर्थयात्राम् । दीपिका—'नो शुक्रास्तेऽष्टमेऽर्के गुरुसहितरवौ जन्ममासेष्टमेन्दौ विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ । नाडीनक्षत्रहीने सुरगुरुरजनीनाथताराविशुद्धौ प्रातः कार्या परीक्षा द्वितनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने ।।' इति । गुरुसहितरवौ गुर्वादित्ये इत्यर्थः । इदं सिंहस्थितमकरस्थितास्तमितगुरूणामुपलक्षणम् । उक्तं च व्यवहारोच्चये—'सिंहस्थे मकरस्थे च जीवे चाऽस्तमिते तथा । मलमासे न कर्तव्या परीक्षा जयकाङ्क्षिणा ।।' इति । मलमासग्रहणं क्षयमासस्याप्युपलक्षणम् । नाडीनक्षत्राणि वैनाशिकनक्षत्राणि । परीक्षा दिव्यम् । अयमत्र तात्पर्यार्थः । अनियतकालविहितानि चूडाकरणवाप्यारामादिशुभकृत्यानि गुर्वादेरस्तादिषु सर्वथा न कार्याणि । यानि तु नियतकालानि सीमन्तनामकरणादीनि तानि गुर्वादेरस्तादिसत्त्वेऽपि स्वोक्तकाल एव भवन्ति । 'चतुर्थे गर्भमासे स्यात्सीमन्तोन्नयनक्रिया । षष्टेऽष्टमे वा कुर्वीत सूत्रानन्तरविधानतः ।।' इति शौनकादिमुनिवचनेभ्यः कालस्यापि नियामकत्वावगतेः । अत एवाह बृहस्पतिः—'मासप्रयुक्तकार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः । न दोषकृन्मलो मासो गुर्वादित्यादिकं तथा ।।' इति । यमोऽपि—'चन्द्रसूर्यग्रहे स्नानं श्राद्धदानजपादिकम् । कार्याणि मलमासेऽपि नित्यं नैमित्तिकं तथा ।।' इति । अन्यत्रापि 'सीमन्तजातकादीनि प्राशनान्तानि यानि वै । न दोषो मलमासस्य मौढ्यस्य गुरुशुक्रयोः ।।' इति । एवं सति प्रतिबन्धव-

शादतिक्रान्तकालेषु जातकर्मादिषु सत्सु गौणकालस्य तुल्यत्वात् । उक्तं च वसिष्ठेन—'अतीतकालान्यखिलानि तानि कार्याणि सौम्यायनगे दिनेशे । सिते गुरौ चाप्यथ दृश्यमाने तदुक्तपञ्चाङ्गदिनेऽप्यखण्डे ॥' इति । अत एवोक्तं अतिपन्नशिशुसंस्कारानिति ॥४६-४७॥

पीताम्बरा—गुरु-शुक्र के अस्तादि समयों में त्याज्य कर्म—वापी (बावली, दीर्घिका) उपवन (बगीचा) पोखरा, कुवाँ और घर (मकान) का निर्माण और उत्सर्ग (प्रतिष्ठा) या गृहप्रवेश, एकादशी, प्रदोष, अनन्त, शिवरात्रि आदिक व्रतों का आरम्भ और उनका उद्यापन, वधूप्रवेश, षोडश महादान, सोमयाग अष्टका श्राद्ध, गोदान (केशान्त कर्म), नवान्न-इष्टि, जलशाला, उपनयन के पश्चात् सर्वप्रथम प्रारम्भ किया जाने वाला श्रावणीकर्म, वेदव्रत, (उपनिषद् व्रत महानाम्नी व्रत) काम्य वृषोत्सर्ग (प्रेत क्रिया में, एकादशाह का वृषोत्सर्ग तो एकादशाह में ही होगा) समय पर नहीं हुए बालकों के जातकर्म, नामकर्मादि संस्कार, देव स्थापन, मन्त्र ग्रहण, मुण्डन (चौल), उपनयन, विवाह, सर्वप्रथम किसी देव या तीर्थ का दर्शन, संन्यास ग्रहण, अग्निहोत्र (अग्न्याधान), राजदर्शन, राज्याभिषेक, प्रथमा यात्रा, चातुर्मास याग समावर्तन (मौञ्जी मोक्षः) कर्णवेध और परीक्षा, (तप्तमाषादिरूपा दिव्य परीक्षा) ये सब कार्य बृहस्पति और शुक्र के बाल, वृद्ध और अस्तंगत की स्थितियों तथा क्षय और अधिक मास में त्याज्य हैं ।

जिस वर्ष में क्षयमास होता है उसी वर्ष में क्षयमास के पूर्व और पर मासों में दो अधिक मास होते हैं । क्षयमास के पूर्व मास का नाम संसर्प और पर मास का नाम अहस्पति होता है । ऐसी स्थितियों में भी पूर्वोक्त कार्य वर्ज्य हैं ।

सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशनादिक कर्म, गुरु-शुक्र के अस्तादि में भी किये जाने चाहिए । क्योंकि नियतकालीन संस्कारों में उक्त अस्तादि दोष विचारणीय नहीं होता है ॥४६-४७॥

कुछ आचार्यों का मत है कि गुरु के अस्त में जो कार्य वर्ज्य हैं वे बृहस्पति के वक्र और अतिचार में भी वर्जित हैं ॥४६-४७॥

अथ सिंहस्थगुर्वादिदोषान् शालिन्याह—

अस्ते वर्ज्यं सिंहनक्रस्थजीवे वर्ज्यं केचिद्वक्रगे चातिचारे ।
गुर्वादित्ये विश्वघस्रेऽपि पक्षे प्रोचुस्तद्वद्दन्तरत्नादिभूषाम् ॥४८॥

पीयूषधारा—अस्ते वर्ज्यमिति । यदस्ते गुर्वादेरस्ते वर्ज्यमुक्तं तत् सिंहनक्रस्थजीवे सिंहस्थगुरौ मकरस्थगुरौ च वर्ज्यं निषिद्धम् । यदाह वराहः—'उद्यानचूडाव्रतबन्धदीक्षाविवाहयात्रादिवधूप्रवेशः । तडागकूपत्रिदशप्रतिष्ठा बृहस्पतौ सिंहगते न कुर्यात् ॥' इति । देवीपुराणेऽपि—सिंहसंस्थे गुरौ यत्नात्सर्वारम्भान् विवर्जयेत् । प्रारब्धं न च सिध्येत महाभयकरं भवेत् ॥ पुत्रभ्रातृकलत्राणि हन्याच्छीघ्रं न संशयः । कारको व्रजते नाशं सन्तानं म्रियतेऽचिरात् ॥ देवारामतडागश्च प्रपोद्यान-गृहाणि च । विवाहयज्ञोपनयचूडादि च न सिध्यति ॥ यथा सिंहस्थितो जीवस्तथैव मकरस्थितः' इति । त्रिस्थलीसेतौ—'गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे शुक्रे वास्तमुपागते । त्यजेद्यानं महादानं व्रतं देवविलोकनम् ॥' इति । लल्लोऽपि—'नीचस्थे वक्रसंस्थेप्यतिचिरणगते बालवृद्धे-

स्तगे वा संन्यासो देवयात्रा व्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तु दीक्षा । मौञ्जीबन्धो गणानां परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा वर्ज्याः सद्भिः प्रयत्नात्त्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते वा ॥' इति । अयमपि निषेधो नियतकालविहितानां न भवति । उक्तं च शार्ङ्गीये-'सीमन्तजातकादीनि प्राशनान्तानि यानि वै । कर्तव्यानि न दोषोऽस्ति पञ्चाननगते गुरौ ॥' इति । उपलक्षणमेतत् । एवं मकरस्थेऽपि कार्याणि शुभानि । क्वचिदपूर्वतीर्थयात्रायां मौढ्यादिदोषाभावोऽभिहितः । त्रिस्थलीसेतौ—'गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये । सुरासुरगुरूणां च मौढ्यदोषो न विद्यते ॥' वायुपुराणे—'गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विधानतः । अधिमासे जन्मदिने ह्यस्ते च गुरुशुक्रयोः ॥ न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ ॥' इति । अत्र श्राद्धस्य यात्रापूर्वकत्वाद् गयायात्रापि न निषिद्धेति ज्योतिर्निबन्धे व्याख्यातम् । गुर्वादिस्तस्योपलक्षणत्वात्सिंहस्थगुरावपि गोदावरीयात्रा न निषिद्धेत्याहुः । अन्यच्च—'अधिमासे सिंहगुरावस्ते च गुरुशुक्रयोः । तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना ॥' इति । अत्राधिमासे च जन्मर्क्ष इति पठन्ति तत्र यात्रायां जन्मनक्षत्रस्यातिनिषिद्धत्वाद्गोदावरीगयायात्रयोरपवादो युक्त एव । तथा ग्रहणार्कोदयकपिलाषष्ठीसंक्रान्त्युद्देशेनापूर्वतीर्थयात्रायां कर्तव्यायां शुक्रास्तादिमहादोषो नास्तीत्युक्तम् । त्रिस्थलीसेतौ लल्लेन–उपप्लवे शीतलभानुभान्वोरर्धोदये वा कपिलाख्यषष्ठ्याम् । सुरासुरेज्यास्तमयेऽपि तीर्थयात्राविधिः संक्रमणेऽपि शस्तः ॥' इत्यलमियता । अथ गुर्वादिस्ते यद्वर्ज्यमुक्तं तद्वक्रगे गुरावथवातिचारगे गुरौ वर्ज्यम् । यदाह वात्स्यः—'यात्रोद्वाहौ प्रतिष्ठां च गृहचूडाव्रतादिकम् । वर्जयेद्यत्नतश्चैव जीवे वक्रातिचारगे ॥ कीर्तिभङ्गः प्रतिष्ठायां चौरभीतिस्तथाध्वनि । तथोद्वाहे भवेन्मृत्युर्व्रते हानिर्भयं गृहे ॥' इति । क्वचिदस्यापवादोऽभिहितः राजमार्तण्डे—'वक्रातिचारगे जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम् । व्रतोद्वाहादिचूडायामष्टाविंशतिवासरान् ।।' इति । मुक्तावल्या त्वतिचारस्यैवापवादः—'अतिचारे सूरपूज्यो भवनाद्भवनान्तरं यदा याति । अष्टाविंशति दिवसान् विवर्जयेत्परिणयं प्रयत्नेन ॥' इति । परिणय इत्युपलक्षणम् । अस्यापवादो दीपिकायां–'त्रिकोणजायाधनलाभराशौ वक्रातिचारेण गुरुः प्रयातः । यदा तदा प्राह शुभं विलग्नं हिताय पाणिग्रहणं वसिष्ठः ॥' इति । अत एव लल्लः—'प्रतिषिद्धो नोद्वाहो वक्रिणि जीवे तथातिचारगते । गोचरबलं प्रधानं लग्नं च पराशरः प्राह ॥' इति । विवाहे एव कर्तव्येऽयमपवाद इति केचित् । न तु यज्ञोपवीतादौ लग्नं च पराशरः प्राहेति सामान्योक्तेः । सर्वस्यापि कर्मणोऽपवाद इत्यन्ये । विशेषमाह लल्लः—'यद्यप्यनुपचयस्थो जीवः कन्याति कालमावहित । गुणवद्वरोपलब्धौ तथापि पाणिग्रहः कार्यः ॥' इति । अथ केचिद्गुर्वादित्ये गुरुसहिते आदित्ये सूर्ये एकराशिगतौ गुरुसूर्याविति यावत् । स गुर्वादित्यस्तस्मिन्नपि सर्वमतोक्तं शुभकर्म वर्ज्यम् । यदाह शौनकः—'एकराशिगतौ सूर्यजीवौ स्यातां यदा पुनः । व्रतबन्धविवाहादिशुभकर्माखिलं त्यजेत् ॥ इति । यत्तु गुरुवचनम् । गुरुक्षेत्रगतो भानुर्भानुक्षेत्रगतो गुरुः । गुर्वादित्यः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥' इति । तदविचारितरमणीयम् । तथाहि-गुरुक्षेत्रे धनुर्मीनौ तत्र भानुः सूर्ये गुर्वादित्यस्तदसत् । धनुरर्कस्य दक्षिणायनत्वादेव निषेधसिद्धेः । मीनार्कस्य तु यज्ञोपवीतव्यतिरिक्तकार्यमात्रनिषेधसिद्धेः । तथा भानुक्षेत्रं सिंहस्तत्र गतो गुरुर्गुर्वादित्य इति चेन्न । तत्र सिंहस्थगुरुत्वादेव निषेधसिद्धेः । अतो गणितवशेन यस्मिन्नेव क्षेत्रे भानुस्तस्मिन्नेव राशौ गुरुः स गुर्वादित्य इति तन्न । सम्भवत्येकवाक्यताकरणे भिन्नवाक्यताकरणस्य वैयर्थ्यापत्तेः । ननु गुरोर्बाल्यवृद्धत्वास्तमयानां

पृथक्निषेधोऽनर्थकः गुर्वादित्यनिषेधेनैव सिद्धत्वादिति चेन्मैवं वोचः । राश्यादौ सूर्यः तद्राशेरेवान्तेऽष्टाविंशत्यंशे गुरुः तत्राष्टाविंशत्यंशानां व्यवधानात्तावद्गुरोरस्ताभावः । कालांशाश्च गुरोरेकादश ११ तदन्तरे ह्यस्तमयत्वोक्तेः । सप्तदशांशान्तरितत्वाच्च वार्धकमपि नास्ति । यतो बाल्यं वार्धकं च परमं पक्ष १५ मात्रं नारदादिभिरुक्तम् । तत्र दिनद्वयमधिकमवशिष्यते । येषां तु दश वा सप्त वा दिनानि बाल्यं वार्धकं चेति पक्षस्तेषामपि सप्त वा दश वा दिनानि बाल्यवार्धकरहितान्यवशिष्यन्ते । तत्र गुर्वादित्यप्रयुक्तोऽपि दोषो यथा स्यादिति वचनारम्भष्टः । एवं बाल्येऽपि द्रष्टव्यम् । नन्वेवं गुर्वादित्य एव तर्हि वक्तव्यो गुरोर्बाल्यवार्धकास्तानां पार्थक्येन दोषाभिधानमनर्थकमिति चेन्न । यदा यत्र राशौ सूर्यस्ततः प्राग्राशौ गुरोरुदयस्तत्र बाल्यदोषः सावकाशः । यदोत्तरराशौ गुरुस्तदा वार्धकदोषः सावकाशः बह्वंशान्तरत्वादस्तमयसम्भावनापि नास्ति । तत्र गुर्वादित्यदोषेण बाल्यवार्धकास्तमयदोषाणां कथं निरासः कर्तुं शक्यः । न हि भिन्नराशिस्थयोरपि गुर्वादित्ययोर्गुर्वादित्यदोषाभिधानं कैश्चिदुक्तम् । तस्मात्प्रागुक्तविषय एव गुर्वादित्यदोषः । यदा त्वेकराशिस्थितत्वं तदा यदि बाल्यवार्धकास्तमयदोषाणां सम्भवस्तदा दोषस्याधिक्यन्यूनतातरतमभावो ध्येयः । तथा हि बृहस्पतेः खलु पञ्चावस्थाः सम्भवन्ति । पूर्वं गुर्वादित्यसंज्ञा साल्पदोषा । ततो यथायथा रविसामीप्यं तथातथा क्षीणताधिक्याद्वार्धकव्यपदेशो गुर्वादित्यव्यपदेशाद्दुष्टफलः । ततः सूर्यातिसान्निध्येनास्तङ्गतत्वेस्तमयाख्यो व्यपदेशः सोऽत्यन्तं दुष्टफलः । ततः पुनरपि कालांशातिक्रमेण रविविप्रकर्षादुदये सति बाल्यत्वव्यपदेशः । प्राक्फलात् किञ्चिन्न्यूनदोषकरः । ततः पुनरपि राश्यन्ते गुर्वादित्यव्यपदेशः । सोऽल्पदोष इति । एवं गुरोर्बाल्यवार्धकदिनानामपि बहुत्वाल्पयोरपि व्यवस्था ध्येया । तथा हि । यदास्तोदयाभ्यां प्राक् पश्चाच्च वार्धकं बाल्यं च पक्षमभिहितं तदा पक्षान्तिमदिनपञ्चकमल्पदोषदम् । यदा तु दशदिनानीति पक्षस्तदा तदन्तिमं दिनत्रयं मध्यमदोषम् । यदा तु सप्तदिनानीति पक्षस्तदा तु महादोष एव । एवं धीमद्भिरत्रापि व्यवस्थाविरोधे सति महादोषाल्पदोषजनिकावश्यकानावश्यकविषयिणी ध्येयेत्यलमतिप्रसङ्गेन । अथ—केचिद्विश्वघस्रेऽपि पक्षे त्रयोदशदिने पक्षे यस्मिन् पक्षे तिथिद्वयह्रासः स त्रयोदशदिनात्मकः पक्षोऽतिनिन्द्यः । तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे—'पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेतां तदा भवेद्रौरवकालयोगः । पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टमित्याहुराचार्यवराः समस्ताः ॥' ईति । तथा 'त्रयोदशदिने पक्षे तदा संहरते जगत् । अपि वर्षसहस्रेण कालयोगः प्रकीर्तितः ॥' इति । एवंविधे काले सर्वे गुर्वाद्यस्तोक्तं शुभकर्म वर्ज्यं प्रोचुः । तदुक्तं व्यवहारचण्डेश्वरे—'त्रयोदशदिने पक्षे विवाहादि न कारयेत् । गर्गादिमुनयः प्राहुः कृते मृत्युस्तदा भवेत् ॥' इति । विवाहे दम्पत्योश्चौलोपनयनादौ च शिशोर्मृत्युरित्यवधातव्यम् । संस्कार्यतया प्राधान्यात् । ज्योतिर्निबन्धेऽपि 'उपनयनं परिणयनं वेश्मारम्भादिकर्माणि । यात्रां द्विक्षयपक्षे कुर्यान्न जिजीविषुः पुरुषः ॥' इति । अथ प्रसङ्गात्त्रयोदशदिनात्मकपक्षः कथं सम्भवति कथं न सम्भवतीति विचारः प्रस्तूयते । कस्मिंश्चिच्छककाले कस्मिंश्चित्पक्षे प्रतिपत्सोमवारे घटिकैका दशपलाधिका १।१० ततो द्वितीय क्षयोन्मुखत्वात्पक्षस्य सोमवार एवान्तर्हितात् एवावमाख्या जाता घट्यः ५७ पलानि ६, ततः पुनरपचयक्रमेण तिथीनां चतुर्दश्यपि क्षयं गतावमाख्या शुक्रवार एव । ततः शनिवारे पूर्णिमा क्षयोन्मुखी चतुर्दशीतुल्या वा एतादृशः पक्षस्त्रयोदशदिनात्मकः सम्भवति । यद्यपि 'पक्षपरिग्रहे' इत्यस्माद्धातोः 'पचाद्यचि' पक्ष-

शब्दो निष्पन्नो नानार्थश्चास्ति । तथापि ज्योतिःशास्त्रे प्रतिपदाद्यक्षणमारभ्य पञ्चदश्यन्तिमक्षणपर्यन्तं पञ्चदशतिथ्यात्मके काले रूढः शिष्टपरिगृहीतत्वाद्गृह्यते । दिनशब्दोऽप्यत्र त्रयोदशपदसमभिव्याहारादहोरात्रवाचको 'दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते' इत्यादावह शब्दवत् । तत्र दिवसस्तु 'यत्कृच्छ्सूतकचिकित्सितवासराद्यं तत्सावनाच्च घटिकादिकमार्क्षमानात्' इति भास्करोक्तेः । सावन एवात्र ग्राह्यः । स च सूर्योदयमारभ्यापरसूर्योदयं यावत् तावत्कालो रविवाराद्यपरपर्यायः सकललोकप्रसिद्धो गृह्यते । तत्र 'त्रयोदशदिने पक्षे नूनं संहरते जगत्' इति वचनादेतादृशस्य त्रयोदशदिनात्मकस्य पक्षस्य दोषवत्ता स्मर्यते । कथमस्य पक्षस्य त्रयोदशदिनात्मकत्वम् । उच्यते । त्रयोदशसंख्याकानि दिनानि यस्मिन्स त्रयोदशदिनस्तादृशे पक्ष इति व्युत्पत्त्या पक्षस्यान्यपदार्थकत्वात्तस्य पञ्चदशतिथ्यात्मकस्य त्रयोदशाहोरात्रसम्बन्धोऽभिहितो भवति । प्रस्तुतोदाहरणे तावत्प्रतिपदन्तिमघटीसम्बन्धः प्रातःकाले सोमवारस्य जातः । ततो द्वितीयादितिथिसम्बन्धः सोमवारमारभ्यैव जातः । ततः क्रमेण पञ्चदश्याः शनिवारसम्बन्धोऽभूदिति पक्षस्य त्रयोदशदिनात्मकत्वमजनिष्ट । यदि प्राग्लक्षणलक्षितस्य पक्षस्य त्रयोदशाहोरात्रसम्बन्धो विवक्ष्यते, तदा पक्षस्य त्रयोदशदिनात्मकता खपुष्पतुल्यैव भवेत् । यतोऽपचयाभिमुखत्वात्तिथीनां मध्ये एकस्या एव तिथेः क्षयः स्यान्न द्वयोस्तिथ्योस्तदा पक्षस्य चतुर्दशदिनात्मकता सम्भवति । पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेतां तदा भवेद्रौरवकालयोगः । पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टमित्याहुराचार्यवराः समस्ताः ॥' इतिवाक्याद्द्वयोस्तिथ्योरेव क्षयपक्षस्य त्रयोदशदिनात्मकता सम्भवेत् । सा चाल्पावशिष्टप्रतिपत्सम्भवेदिति निष्कृष्टोऽर्थः । अत्रैवं विधमन्यदप्युदाहरणम् । विंशत्युत्तरपञ्चदशशती १५२० मिते शककाले कार्तिकशुक्लपक्षे जातमस्ति तदेवं विधेयम् । एवं च यदा कदाचिच्छककाले पञ्चदशी तिथिगुरुवारे घटिकैका १ पुनस्तस्मिन्नेव वारे प्रतिपत् ५९ क्षयगता ततस्तस्मिन्नेव वारे पुनर्द्वितीया संलग्ना पुनः प्रातरारभ्य शुक्रवारसम्बन्धेन द्वितीया सम्पूर्णाभूत्पुनः क्षयाभिमुखत्वात्तिथीनां चतुर्दश्याः पञ्चदश्याः वा क्षयः संवृत्तस्तदा पञ्चदशी तिथिर्गुरुवार एव समभूत्तदा चतुर्दशदिनात्मक एव पक्षो भवति । यतः प्रतिपत्सम्बन्धः शुक्रवारे एकपलात्मकोऽपि नाभूत्किन्तु गुरुवारेणैव । ननु 'पक्षस्य मध्ये द्वितिथि पतेताम्' इति लक्षणात् त्रयोदशदिनात्मकः पक्षो भविष्यतीति चेन्न । यतोऽत्र मध्यशब्दः पठ्यते स यद्यष्टमीतिथिमुत पष्ठ्यादितिथिपञ्चकात्मकविभागमाक्षिपति तथापि द्वितिथी पतेतामिति वाक्यार्थासम्भव एव स्यात् । सम्भवस्तु वाक्यार्थे लक्षणयोपयुज्यते । अतो यदा हि पक्षे इति सप्तम्यन्तपदे वक्तव्ये मध्यपदोच्चारणसामर्थ्यादाक्षिप्तयोराद्यन्तयोस्तिथ्योर्निवृत्तिमाह । स इति वाक्यार्थोऽवगम्यते । एवं सति प्रतिपत्पञ्चदश्योर्युगपत्क्षये दोषवत्ता नैव भवति । किन्तु द्वितीयामारभ्य चतुर्दश्यन्तं तिथिद्वयह्रासे त्रयोदशदिनात्मकः पक्षोऽतिदोषावहो भवति । यद्येवं द्वितीयापञ्चदश्योः क्षयेतिदोषवत्ता न स्यादिष्यते च तत्रापि । सत्यम् । नहीदमेव वचोतिनिर्णयिकं किन्तु त्रयोदशशदिने पक्ष इत्यनेनैकवाक्यतामापन्नं सत् । 'सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदो हि दूषणम्' इत्युक्तेः । कथं तिथिद्वयक्षयवान् त्रयोदशाऽहोरात्रसम्बन्धवान्पक्षस्त्रयोदशदिनः पक्ष इत्यनुगतलक्षणं क्रियते । अतो नात्र व्याप्तिरित्यस्त्यतिदोषवत्ता । यत्र चतुर्दशदिनात्मकः पक्ष इति प्रसिद्धिस्तत्र पञ्चदशतिथीनां त्रयोदशाहोरात्रसम्बन्धात्पक्षस्य त्रयोदशदिनात्मकता स्यात्सा मा भूदिति तिथिक्षयद्वयवानित्युक्तम् । अतः प्रतिपत्तिथेश्चतुर्दशीपञ्चदश्योरन्यतरतिथेश्च युगपत्क्षये त्रयोदशदिनात्मक-

पक्षत्वं नास्त्येवेति सिद्धान्तः। अत एव भीष्मपर्वणि कुरुपाण्डवसैन्यनिमित्तभूतमुत्पातमाह दुर्योधनं प्रति भीष्मः—'चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम्। इमां त्वमभिजानेहममावास्यां त्रयोदशीम् ॥' इति। अस्यार्थः। पूर्वं हि पञ्चाङ्गगणनया प्रतिपदमारभ्यामावास्यां तिथिं चतुर्दशीं चतुर्दशाहोरात्रे निष्पन्ना भूतपूर्वां पूर्वभूतामहमभिजाने। पक्षस्यैकतिथिक्षयसद्भावात्। तथामावास्यां पञ्चदशीं पञ्चदशाहोरात्रे पूर्वजातामहमभिजाने। पक्षस्यैकतिथिक्षयवृद्धिराहित्यात्। तथामावास्यां षोडशीं षोडशहोरात्रे पूर्वं जातामहमभिजाने। पक्षस्यैकतिथिक्षयवृद्धिसद्भावात्। पक्षमध्ये तिथिक्षयवृद्धिस्तु खपुष्पतुल्यैव। भूतपूर्वामित्यनेन, गणितसाध्यपञ्चाङ्गेष्वनेकशो दृष्टत्वादाश्चर्याभावोऽभिहितः अतः फलमप्यस्य वराहेण सामान्यत उक्तम्—'शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धिं प्रयाते ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च। हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन ॥' इति। व्यत्ययस्तु शुक्लपक्षापेक्षया। अत्रातिदुष्टफलाश्रवणान्नोत्पातरूपत्वमस्य पक्षस्य परमस्मिन्नवसरे त्विमां पञ्चाङ्गे मयादृष्टाममावास्यां त्रयोदशीं प्रतिपत्तिथिमारभ्य त्रयोदशाहोरात्रे तिथिद्वयह्रासाज्जातां कदाप्यननुभूतां नाहमभिजाने इति महानुत्पातो मया दृष्टोऽतो युद्धान्निवर्तस्वेति वाक्यतात्पर्यार्थः। ननु प्रकृतेरन्यत्वमुत्पात इत्युत्पातलक्षणानाक्रान्तत्वमत्रास्ति गणितज्ञानसाध्यत्वाच्छुक्रास्तादिरुत्पातः केनाप्यङ्गीक्रियते। सत्यम्। यद्यपि पक्षद्वयमध्ये तिथीनां क्षयगामित्वात्तिथिद्वयह्रासो दृश्यते बहुधा गणितसाध्यत्वात्तथाप्यस्मिन् कालेप्यस्मिन्नेवैकस्मिन्पक्षे प्रतिपदमारभ्य तिथिद्वयह्राससद्भावाद्बहुभिर्वर्षैरमावास्या त्रयोदशी जाता दृष्टा तादृशी च मया कदापि नानुभूतेति महोत्पातरूपत्वमस्य युक्तमेव सम्पन्नमिति। 'ज्योतिर्विन्नीलकण्ठस्य गोविन्देन तनुभूवा। त्रयोदशाहपक्षस्य तत्त्वं सम्यक् प्रकाशितम् ॥' इति। अथ तद्वत्तेन प्रकारेण दन्तरत्नादिभूषां दन्ता हस्तिदन्तास्तत्सम्बन्धिनीं भूषां रत्नसम्बन्धिनीं भूषां तथादिशब्दात्सुवर्णमणिसम्बन्धिनीं भूषामपि वर्ज्या प्रोचुः। सर्वस्मिन्निषिद्धे काले इत्यर्थः। यदाह राजमार्तण्डः—'यात्रां चूडां विवाहं श्रुतिविवरविधिं शंखसद्मप्रवेशं प्रासादोद्यानहर्म्यं सुरनरभवनारम्भविद्याविधानम्। मौञ्जीबन्धं प्रतिष्ठां मणिकनकरदा धारणं कुर्वतो ये मृत्युः सिंहस्थितेज्ये गुरुदिनकरयोरेकराशिस्थयोश्च ॥' इति। सिंहस्थगुरोरुपलक्षणत्वाद्गुर्वस्तादावपि प्रथमकर्तव्यसुवर्णादिधारणं वर्ज्यमित्यर्थः ॥४८॥

पीताम्बरा—सिंह-मकर-गुरु में त्याज्य कर्म—गुरु-शुक्र के अस्त में जिन कार्यों को वर्जित किया गया है वे कार्य सिंह और मकर राशि गत बृहस्पति के समयों में भी नहीं करने चाहिए। तथैव सूर्य और बृहस्पति जितने समय तक एक ही राशि पर रहें उस गुर्वादित्य काल में भी ४६, ४७ श्लोक में कहे गये कार्य नहीं करने चाहिए।

इसी प्रकार जिस मास के जिस पक्ष में तेरह ही दिन (त्रयोदशदिनात्मक पक्ष) हों उस पक्ष में भी उक्त कार्य नहीं करने चाहिए। उक्त कथित अशुभ समय में हाथी-दाँत और रत्नों से युक्त आभूषणों के बनाना और धारण करना भी निषिद्ध है।

सिंह-मकर के बृहस्पति में सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशनादि कार्यों के लिए निषेध नहीं है।

उक्त दोषयुक्त समय में यात्रा का भी निषेध बताया गया है। किन्तु "गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता" जबतक अपने पितरों का गया श्राद्ध नहीं किया जाता तबतक

पुत्र में पुत्रत्व नहीं। शास्त्रों की इस ऊँची धर्ममर्यादा के लिए उक्त गुरु-शुक्र आदिक दोषों में गया और गोदावरी की तीर्थयात्रा में दोष नहीं कहा गया है।

त्रयोदश दिनात्मक पक्ष—जिस पक्ष में दो तिथियों की हानि (क्षय) होती है वह पक्ष तेरह दिन का होता है। **अधिक मास-क्षय मास** की समग्र स्थितियाँ-ग्रहगणित सिद्धान्त ग्रन्थों में उदाहरण सहित विशद रूप में वर्णित हैं ही अतः इस स्थल पर अधिक मासादिकों का गणित विवेचन ग्रन्थ गौरवभय से नहीं दिया जा रहा है॥ ४८॥

अथ सिंहस्थगुरोः प्रकारत्रयेण परिहारमिन्द्रवज्रयाह—

सिंहे गुरौ सिंहलवे विवाहो नेष्टोऽथ गोदोत्तरतश्च यावत्।
भागीरथीयाम्यतटे हि दोषो नान्यत्र देशे तपनेऽपि मेषे॥ ४९॥

पीयूष धारा—सिंह इति। अथ प्रथममंशभेदेन परिहार उच्यते। गुरौ सिंहस्थिते सत्यपि सिंहांशे तृतीयांशसहितत्रयदशांशकेभ्योनन्तरं १३।२० तृतीयांशसहितांशत्रयं ३।२० पञ्चमो नवांशः सिंहांशस्तत्र गुरौ सति विवाहो नेष्टो निषिद्धः। उक्तं ज्योतिर्निबन्धे राजमार्तण्डेन—'सिंहराशौ तु सिंहांशे यदा भवति वाक्पतिः। सर्वदेशेष्वयं त्याज्यो दम्पत्योर्निधनप्रदः॥' इति। विशेषमाह वसिष्ठः—'सिंहे सिंहांशके जीवे कलिङ्गे गौडगुर्जरे। कालमृत्युरयं योगो दम्पत्योर्निधनप्रदः॥' इति। अतोऽवशिष्टेष्वंशेषु विवाहादि शुभं भवतीत्यर्थः। 'सिंहेऽपि भगदैवत्ये गुरौ पुत्रवती भवेत्॥ अत्यन्तसुभगा साध्वी धनधान्यसमन्विता॥' इति। राजमार्तण्डोक्तेः। अथ देशभेदेन द्वितीयः परिहार उच्यते। अथ गोदावरी नदी तस्या उत्तरदिशि भागीरथी गङ्गा तस्या याम्यतटं दक्षिणकूलं यावन्मर्यादीकृत्यगोदावरीगंगान्तरालवर्ती यो देशस्तत्र सिंहस्थगुरुर्वर्ज्यो नाऽन्यत्र। अन्यदेशेषु न सिंहस्थगुरुदोषः। तदाह लल्लः—'गोदावर्युत्तरतो यावद्भागीरथीतटं याम्यम्। तत्र विवाहो नेष्टः सिंहस्थे देवपतिपूज्ये॥' इति। अर्थाद्गोदावरीदक्षिणे देशे भागीरथ्युत्तरे देशे च सिंहस्थगुरुदोषो नास्ति। यदाह वसिष्ठः—भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तटे। विवाहो व्रतबन्धो वा सिंहस्थेज्ये न दुष्यति॥ मृगेन्द्रसंस्थिते जीवे मध्यदेशे करग्रहः। मृत्युयोगो मृत्युदः स्याद्दम्पत्योः पञ्चवर्षतः॥' इति। अत्र विवाहव्रतबन्धावेव निषिद्धौ। आभ्यामन्यानि शुभकर्माण्यनिषिद्धान्येव। अपवादस्य सङ्कोचाश्रयत्वादुपलक्षणत्वायोगात्। अथ सूर्यराशिवशेन तृतीयः परिहार उच्यते—तपनेऽपि मेषे, सूर्ये मेषराशौ विद्यमाने सति वा सिंहस्थगुरोर्दोषो नास्ति। "मङ्गलानीह कुर्वीत सिंहस्थो वाक्पतिर्यदा। भानौ मेषगते सम्यगित्याहुः शौनकादयः॥" इति ज्योतिर्निबन्धोक्तेः। अन्यच्च तत्रैव "सिंहगते सुरमन्त्रिणि कन्या मेषगते तपने परिणीता। भूषणरत्नयुता च सुशीला सत्यवती सुखकीर्त्तिसमेता॥ इति॥ ४९॥

पीताम्बरा—सिंह में सिंहांश त्याज्य—सिंह राशि के बृहस्पति, सिंह राशि के नवांश में ही जिस समय से जितने समय तक रहते हैं उतने समय तक विवाहादि संस्कार नहीं करना चाहिए।

गङ्गा से दक्षिण, गोदावरी से उत्तर में जितने देश आते हैं उन-उन देशों में सिंह के बृहस्पति में विवाहादिक शुभ कार्य त्याज्य हैं। (भौगोलिक स्थितिवश—राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र का कुछ उत्तरी भाग, उड़ीसा (कलिंग), उत्तरप्रदेश और बिहार के

कुछ दक्षिणी भाग, गङ्गागोदावरी के बीच में आते हैं) गङ्गा-गोदावरी के बीच के देशों के अतिरिक्त अन्य देशों में सिंहस्थ गुरु का विवाहादि के लिए निषेध नहीं है।

सिंह राशि के बृहस्पति हों और यदि सूर्य मेष राशि में हो तो सर्वत्र सब देशों में उपनयन और विवाहादिक मङ्गलोत्सव किये जा सकते हैं बृहस्पति की स्पष्ट राश्यादि जिस समय ४।०।०।० से ४।२९°।२९'।५९''....तक गणित से होगी तबतक सिंहस्थ गुरु कहा जाता है तथा ४।१०°।०'।०'' से ४।१३°।२०'।० तक बृहस्पति सिंह राशि के सिंह नवांश पर रहता है।

"ज्योतिर्निबन्ध" में—मेष के सूर्य और सिंह के बृहस्पति में विवाहित कन्या, सुशीला, सत्यवती, भूषण रत्नों से और सुखकीर्ति से युक्त होती है" कहा है ॥ ४९ ॥

अथ सिंहराशिगतगुरु निषेधवाक्यानां प्रतिप्रसववाक्यानां च निर्गलितार्थमनुष्टुब्द्वयेनाह—

मघादिपञ्चपादेषु गुरुः सर्वत्र निन्दितः।
गङ्गागोदान्तरं हित्वा शेषाङ्घ्रिषु न दोषकृत् ॥
मेषेऽर्के सन् व्रतोद्वाहौ गङ्गागोदान्तरेऽपि च।
सर्वः सिंहगुरुर्वर्ज्यः कलिङ्गे गौडगुर्जरे ॥ ५१ ॥

पीयूष धारा—मघादिपञ्चेति। मेषेर्क इत्यादि च। श्लोकद्वयं स्पष्टार्थम् ॥५०॥५१॥

पीताम्बरा—मघादि पञ्चपाद गुरु—मघा नक्षत्र के चारों चरण तथा पूर्वाफाल्गुनी का एक चरण (अर्थात् ४।०।०........से ४।१६°।४०'।० तक) इस प्रकार मघादि पञ्चपाद गुरु जितने मास तक रहे उतने मासो (वैवाहिक मासों) में विवाहादिक सब शुभ कर्म सब देशों में त्याज्य हैं। शेष (४।१३°।२० से ४।२९।५९ तक....) पूर्वाफाल्गुनी के तीन और उत्तराफाल्गुनी का १ चरण अर्थात् इन ४ चरणों में गङ्गा-गोदावरी के अन्तरालीय देशों को छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र विवाहादिक शुभ कार्यों में दोष नहीं है। मेष राशि के सूर्य में जैसा पूर्व श्लोक में कहा गया है कि सिंहस्थ बृहस्पति में गङ्गा गोदावरी के बीच के देशों में भी विवाहादि होने ही चाहिए।

किन्तु कलिंग गौड (मध्य बंगाल और उड़ीसा का कुछ उत्तरी भाग) और गुजरात में समग्र सिंह राशि गत गुरु वर्जित हैं।

विशेष—(१) सिंह राशि का सिंहांश गुरु सर्वदेशों में त्याज्य है।

(२) गंगा नदी के उत्तर और गोदावरी के दक्षिण में जो देश हैं उन देशों में सिंह के बृहस्पति में विवाहादि शुभ कार्य होने चाहिए।

(३) मेष राशि के सूर्य में सिंह और सिंहांश गत गुरु भी सभी देशों मे विवाहादि शुभ कार्यों में गृहीत हैं।

(४) मघा नक्षत्र युक्त माघमासीय पौर्णमासी जिस वर्ष में हो उस वर्ष में सिंहगत गुरु का दोष उसी वर्ष में होता है ॥ ५०–५१ ॥

अथ मकरस्थितगुरोः प्रकारद्वयेन परिहारं शालिन्याह—

रेवापूर्वे गण्डकीपश्चिमे च शोणस्योदग्दक्षिणे नीच ईज्यः।
वर्ज्यो नायं कौङ्कणे मागधे च गौडे सिन्धौ वर्जनीयः शुभेषु ॥ ५२ ॥

पीयूष धारा—रेवापूर्वे इति । रेवा नर्मदा नदी तस्याः पूर्वे भागे, गण्डकी नदी तस्याः पश्चिमे भागे शोणस्योत्तरे दक्षिणे च भागे नीच ईज्यः मकरस्थगुरुर्न वर्ज्यः । एषु देशेषु मकरस्थगुरोर्दोषो नास्ति । तदुक्तं लल्लेन—"नर्मदापूर्वभागे तु शोणस्योत्तरदक्षिणे । गण्डक्याः पश्चिमे भागे मकरस्थो न दोषभाक् ।।" अर्थादन्येषु देशेषु निषिद्ध एव । तद्देशज्ञानार्थं द्वितीयः परिहारः अयं मकरस्थितगुरुः कौङ्कणे देशे मागधे देशे च गौडदेशे कटकाख्यनगराधस्तात् । सिन्धुर्नाम नदोऽस्ति । तत्पारे । शुभेषु शुभकृत्येषु वर्ज्यो निषिद्धः । उक्तञ्च दैवज्ञमनोहरे—"मागधे गौडदेशे च सिन्धुदेशे च कौङ्कणे । व्रतं चूड़ां विवाहं च वर्जयेन्मकरे गुरौ ।।" इति । अतोऽन्येषु देशेषु मङ्गलं कार्यमेवेत्यर्थतः सिद्धम् । व्यवहारचण्डेश्वरे तु विशेषः—"नीचराशिगतो जीवः प्रशस्तः सर्वकर्मसु । नीचांशकगतस्त्याज्यो यस्मादंशेषु नीचता ।।' इति । अत एव वामनपुराणे—"वापीकूपतडागादि निषिद्धं सिंहगे गुरौ । मकरस्थेऽपि तत्कार्यं न दोषः काललोपतः ।।" इति । काललोपो नाम कालनिषेधः सः इह नास्ति । निषेधवाक्यस्य देशपरत्वादंशपरत्वाच्चेति भावः । गरुडपुराणेऽपि—"यदा सिंहगतो जीवो नैव कल्याणमाचरेत् । मकरस्थेऽपि कर्तव्यं नात्र कार्या विचारणा ।।" इत्यत्रापि पूर्वोक्त एवाशयः ।। ५२ ।।

पीताम्बरा—देशविशेष में शुभ कर्म त्याज्य—बृहस्पति की (३।५°) कर्क राशि के ५ अंश में परमोच्च होने से (९।५°) मकर राशि के ५ अंशो में परम नीच होता है । सामान्यतः इसीलिए बृहस्पति की नीच राशि मकर है । नर्मदा नदी का पूर्वभाग, गण्डकी नदी का पश्चिम भाग और शोण (सोन) नदी के ऊत्तर और दक्षिण के बीच के देशों में नीच राशि (मकर राशि) गत वृहस्पति विवाहादिक शुभ कार्यों में त्याज्य नहीं है । किन्तु कौंकण, मागध, गौड और सिन्धु देशों में मकर का बृहस्पति शुभ कार्यों में वर्जित है ।

यहाँ भी "समग्र मकर राशि के गुरु को शुभ कार्यों में वर्जित नहीं करना चाहिए । केवल नीच राशि के नीच अंश में (५° पाचवाँ अंश) गया हुआ बृहस्पति ही शुभ कार्यों में उक्त देशों में त्याज्य करना चाहिए । "व्यवहार चण्डेश्वर" में स्पष्ट है ।। ५२ ।।

अथ लुप्तसंवत्सरदोषापवादं वंशस्थवृत्तेनाह—

गोऽजान्त्यकुम्भेतरभेऽतिचारगो नो पूर्वराशिं गुरुरेति वक्रितः ।
तदा विलुप्ताब्द इहातिनिन्दितः शुभेषु रेवासुरनिम्नगान्तरे ।।५३।।

पीयूष धारा—गोऽजान्त्येति । गौर्वृषः, अन्त्यो मीनः, कुम्भ एतदितरभे यस्मिन् कस्मिश्चिद्राशौ स्थितो गुरुराक्रान्तराशेः सकाशादग्रिमराशौ महातिचारेण समागतः सन् पश्चात्कियद्भिर्दिनैर्वक्रितो यदा पूर्वराशिं भुक्तराशिं नो एति तदा विलुप्ताब्दः लुप्तसंवत्सर उच्यते । स विलुप्ताब्दः इह शुभकृत्येषु अतिनिन्दितः निषिद्ध इत्यर्थः । तदुक्तं व्यवहारोच्चये—"अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नैति चेत्पुनः । लुप्तसंवत्सरो ज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ।" यदा तु गोजान्त्यकुम्भेषु पूर्वराशेः सकाशात् महातिचारेणायाति पूर्वराशिं च नैति तदा न लुप्तसंवत्सरदोषः । यदाह गुरुः—"मेषे वृषे झषे कुम्भे यद्यतीचारगे गुरौ । न तत्र कालदोषः स्यादित्याह भगवा-

न्यमः ।।" इति । यदि तु दशैकादश वा मासान्भुक्त्वा यस्मिन्कस्मिश्चिद्राशावतिचारेण गुरुः समायाति पूर्वं राशिं च न गच्छति तदा लुप्तसंवत्सर एव नास्ति । यदाह च्यवनः—"मासान् दशैकादश वा प्रयुज्य राशेर्यदा राशिमुपैति जीवः । भुङ्क्ते न पूर्वं च पुनस्तथापि न लुप्तसंवत्सरमाहुरार्याः ।।" इति । अथ पूर्वराशिभेदेन परिहारमुक्त्वेदानीं देशभेदेन परिहारमाह-रेवेति । लुप्तसंवत्सरो रेवा नर्मदा सुरनिम्नगा गंगा तयोर्नद्योरन्तरे मध्ये निषिद्धः । उक्तं च—"लुप्ताब्ददोषोऽत्रिमतेन मध्ये सोमोद्भवायाः सुरनिम्नगायाः ।। इति । केषुचिद्राशिषु लुप्तसंवत्सरदोषातिशयोऽस्तीत्युक्तं सारसागरे—"अतिचारगते जीवे धनुःकर्कटमीनगे । लुप्तसंवत्सरो ज्ञेयो विवर्ज्यः सर्वकर्मसु ।।"

समसप्तकाख्यो दोषः—

अन्यैर्विवाहादिनिषेधकं समसप्तकाख्यं दोषान्तरमप्युक्तम् । यदाह नारदः—"समगृष्टिर्गुरुः शुक्रस्तन्मासे तु प्रयत्नतः । विवाहादि न कुर्वीत नर्मदातीर उत्तरे ।।' इति । गुरुरपि—"यदा जीवसितौ चक्रे परस्परनिरीक्षितौ । सप्तमस्थौ तदा दोषो मूढत्वादतिरिच्यते" इति । वसिष्ठोऽपि—"समसप्तकयोर्जीवशुक्रयोश्च परस्परम् । तदा मूढसमो दोषः शुभकार्यविनाशदः ।।" इति ।। ५३ ।।

पीताम्बरा—सदोष लुप्त संवत्सर वर्ष—मेष, वृषभ, कुम्भ और मीन राशियों से अतिरिक्त शेष आठ राशियों में अतिचार गतिक वृहस्पति वक्री होकर यदि पूर्व (पहले) की राशि में नहीं आता है तो उस वर्ष लुप्त संवत्सरदोष होता है । गंगा और रेवा नदी के बीच के देशों में, लुप्त संवत्सर का दोष होता है । स्पष्टतया उक्त राशियों के अतिरिक्त आक्रान्त राशि से महातिचार से अग्रिम राशि में प्राप्त होते हुए पुनः कुछ दिन में वक्री होकर जब वृहस्पति भुक्त पूर्व राशि में नहीं आवेगा तो विलुप्ताब्द दोष होगा ।

यदि दश या ग्यारह महीने तक जिस किसी भी राशि में अतिचार गति से बृहस्पति आकर और तब पूर्व राशि में नहीं आवेगा तो लुप्त संवत्सर दोष नही होगा ।

"नारद" के कथन से—जिस मास में गुरु और शुक्र की परस्पर सम दृष्टि होती है उसमें (सम सप्तक में) समसप्तक दोष होने से भी उस मास में विवाहादिक कर्म त्याज्य हैं । वसिष्ठ के मत से इस दोष का नाम मूढदोष है ।। ५३ ।।

अथ ग्रहाणां होरां वक्ष्यति सा च वारप्रवृत्त्यधीना । तदर्थे वारप्रवृत्तिमुपजात्याह—

पादोनरेखापरपूर्वयोजनैः पलैर्युतोनास्तिथयो दिनार्द्धतः ।
ऊनाधिकास्तद्विवरोद्भवैः पलैरूर्ध्वं तथाऽधो दिनपप्रवेशनम् ।। ५४ ।।

मध्यरेखा—

पीयूषधारा—पादोनेति । रेखा भूमध्यरेखा "पुरी रक्षसां देवकन्याथ काञ्ची सितः पर्वतः पर्यलीवत्सगुलमम् । पुरी चोज्जयिन्याह्वया गर्गराटं कुरुक्षेत्रमेरू भुवो मध्यरेखा ।।" इति भास्करेणोक्ता । उपलक्षणं चैतत् । लंकात आरभ्य सुमेरुपर्यन्तं यत्तं सूत्रं तदधोवर्तिनो ये देशास्ते मध्यरेखा उच्यते । तदुक्तं तेनैव—"यल्लंकोज्जयिनीपुरोपरिकुरुक्षेत्रादिदेशान्स्पृशत् सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः" इति । यस्मिन्देशे वारप्रवृत्तिश्चिकीर्षिता स देशो यदि मध्य-

रेखातः प्राक्पश्चाद्वा यावंति योजनानि भवन्ति तानि स्वदेशचतुर्थांशोनानि कृत्वा तावद्भिः पलैस्तिथयः पञ्चदश युतोनाः कार्याः। यदि मध्यरेखातः प्रत्यग्योजनानि तदा युताः, यदा तु प्राग्योजनानि तदोनाः कार्या इत्यर्थः। अथ यद्दिने वारप्रवृत्तिरिष्टा तद्दिने—"चरपलयुतहीना नाडिकाः पञ्चचन्द्राद्द्विदलमथ निशार्धं याम्यगोले विलोमे" इति भास्करोक्तरीत्या दिनार्द्धं साध्यम्। तस्माद्दिनार्द्धात्संस्कारविशिष्टाः पञ्चदशोनाधिकाश्चेद्भवन्ति तद्विवरोद्भवैः पलैर्दिनार्धस्य संस्कारविशिष्टपञ्चदशानां च यद्विवरमन्तरं तत्सम्बन्धेनोत्थैरुत्पन्नैः पलैरूर्ध्वं तथाधो दिनपस्य वारस्य प्रवेशनं वारप्रवृत्तिः स्यात्। यदा दिनार्द्धात्संस्कारविशिष्टा पञ्चदश चेदूनाः स्युस्तदा सूर्योदयादूर्ध्वं वारप्रवेशनम्। यदा ह्यधिकास्तदा सूर्योदयात्प्राग्वारप्रवृत्तिरित्यर्थः। यथा वाराणसीप्राङ्मध्यरेखाभिधानात् कुरुक्षेत्रात् त्रिषष्टियोजनानि ६३ पादोनानि ४७।१५ प्राग्योजनत्वादेतैः पलैः ४७ ऊनाः पञ्चदश १५ जाताः १४।१३ दिनार्द्धं १७।२ अस्मात् न्यूना इति विवरं २।४९ सूर्योदयादूर्ध्वं वारप्रवृत्तिः।

अयमर्थो ग्रन्थकृता लाघवायोपनिबद्धः। राजमार्गस्तु वसिष्ठसंहितायां—"प्रभाकरस्योद्गमनात्पुरे स्याद्वारप्रवृत्तिर्दशकन्धरस्य। चरार्धदेशान्तरनाडिकाभिरूर्ध्वं तथाधोऽथ परत्र तस्मात्' इति। श्रीपतिरपि—"चरार्धदेशान्तरयोर्वियोगयोगोत्थपानीयपलैश्च सम्यक्। सूर्योदयादूर्ध्वमृणे धनेधो वारप्रवृत्ति मुनयो वदन्ति॥" इति तत्र चरमुत्तरदक्षिणगोलवशादृणं धनं च 'अस्वं स्वं चरगोलयोः स्यात्' इति भास्करोक्तेः—देशान्तरमपि पूर्वापरयोजनवशादृणं धनं च। तत्र "योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोर्वा धनर्णयोरन्तरमेव योगः॥" इत्युक्तेः ऋणयोर्देशान्तरचरयोर्योगे सूर्योदयादधो धनर्णयोर्योगेऽन्तरं कार्यम्। तद्यदृणं धनं च तदा सूर्योदयादूर्ध्वमधश्च वारप्रवृत्तिः। ग्रन्थकृता तु चरसंस्कारो मध्याह्नस्य तद्विशिष्टत्वान्न कृतः। देशान्तरसंस्कारोऽवशिष्यते स लङ्कादिनार्धे पञ्चदशघटीमिते कार्यः। तथा कृते सति यदुभयोरन्तरं तावत्सूर्योदयादूर्ध्वमधश्च वारप्रवृत्तिः॥५४॥

पीताम्बरा—७, ग्रहों की होरा का ज्ञान—पृथ्वी (दीर्घवृत्ताकार) गोली है। पृथ्वी में जो उत्तर-दक्षिण ध्रुव स्थान हैं, उन दोनों में मिलाई गई रेखा से उसके पूर्वार्ध और परार्ध रूप में दो भाग होंगे, तथा दोनों ध्रुवों से ९० अंश की दूरी पर जो रेखा होती है उससे भी पृथ्वी के दो विभाग उत्तरगोलार्ध और दक्षिण गोलार्ध रूप के होते हैं।

प्राचीन आचार्य याम्योत्तर रेखा को जो (लंका, उज्जैन, कुरुक्षेत्र और ध्रुवों तक गई हुई रेखा को) याम्योत्तर भूमध्य रेखा मानते हैं तथा उज्जैन नगर के सूर्योदय से ग्रहगणित का साधन करते हैं और उज्जैन, कुरुक्षेत्र आदि नगरों को रेखादेशीय नगर कहते हैं और जिनमें देशान्तर अंश शून्य माना गया है। जैसे आजकल ग्रीन्विच को पृथ्वी की याम्योत्तर रूप भूमध्य रेखा में मानने से वहाँ का देशान्तर शून्य माना गया है।

रेखादेशीय नगरों से अन्य देशीय नगर रेखादेश से पूर्व या पश्चिम में जितने देशान्तर अंशों में पड़ते हैं उतने देशान्तर अंशों से उत्पन्न समय को देशान्तर समय या देशान्तर काल कहा जाता है।

धर्मशास्त्रीय विवेचना से—रेखादेश में जिस वार को सूर्योदय जिस समय होगा उस वार में रेखादेश से पूर्व और पश्चिम के नगरों में सूर्योदय क्रमशः पहिले और पश्चात् ही होगा।

पहले के आचार्य रेखादेशीय स्थानों से पूर्व पश्चिम के (स्थानों) नगरों के बीच के

अन्तर को योजनों के मान से मापते थे। (पहले का प्रायः ५ मील = १ योजन)।

काशी (वाराणसी) सदा से विद्या की राजधानी रहने से इस ग्रन्थ के निर्माता आचार्य ने काशी का उल्लेख कर उज्जैन से काशी की दूरी योजन संख्या से ६३ योजन कही है।

अतः रेखादेशीय नगरों से जितने योजन पश्चिम में वार प्रवेश का समय जानना हो उन योजनों के चतुर्थांश तुल्य पलों को १५ में जोड़कर तथा रेखादेश के पूर्व देश में जितने योजन हों उन योजनों का भी चतुर्थांश तुल्य पल १५ घटी में जोड़ना चाहिए। १५ घटी में जोड़ने और घटाने से उत्पन्न समय दिनार्ध से कम और जितने अन्तर से कम हो उतने ही घटी, पल के अनन्तर तथा यही उत्पन्न समय दिनार्ध से अधिक और जितने अनन्तर से अधिक हो उतने ही घटी-पल सूर्योदय से पूर्वस्थ नगर में उस दिन उस वार का प्रवेश होता है।

उदाहरण से प्राचीनों ने उज्जैन से काशी ६३ योजन पूर्व मानी है। ६३ ÷ ४ = १५।४५ को ६३ में (काशी पूर्व होने से) घटाया ६३–१५।४५ = ४७।१५ शेष रहा। इन शेष पलों को १५ में घटाने से १५।०–०।४७ = १४।१३ यह घटी-पल हुआ। सं० २०२८ चैत्रशुक्ल प्रतिपदि शनिवार (ता० २७-३-७१) को काशी का दिनमान ३०।२२ है अतः दिनार्ध १५।११ हुआ। उक्त घटी पल १४।१३ ये इस दिन के काशी के दिनार्ध से १५।११–१४।१३ = ०।५८ पल कम होने से सूर्योदय के पश्चात् काशी में वार प्रवेश (शनि का) होगा।

खगोल की दृष्टि से रेखादेशीय और अपने देशीय याम्योत्तर वृत्तों का अन्तर (यदि ये दोनों देश एक ही भूपरिधि में हो तो) देशान्तर अंशादि से परिणत कालादि समय जो होता है उसी को देशान्तर काल कहा गया है।

प्राचीनों (सूर्यसिद्धान्त की सारिणीकार मकरन्द ने) ने उज्जैन से काशी का देशान्तर काल ० घटी ४७ पल पूर्व माना है जो लगभग १८ मिनट ४८ सेकेण्ड होता है। प्राचीनों का यह देशान्तर काल स्थूल है, अतः इस स्थूल देशान्तर तथा अन्य स्थूल कारणों से देशान्तर संस्कृत ग्रहों में स्थूलतावश पञ्चाङ्गों के तिथ्यादिकमानों में स्थूलता होती है और सही देशान्तर आदिकों का संस्कार नहीं करने से तिथि, नक्षत्रों और लग्नों की सन्धिकालों में उत्पन्न मानवों की जन्मपत्रिकाएँ भी एक विधि की तो नहीं ही बन सकतीं तथा प्रति वर्ष के तिथ्युत्सव, श्राद्धतिथि तथा अन्यान्य अर्थशास्त्रीय तिथि आदिक निर्णयों में एक शोचनीय समस्या उत्पन्न हो गई है। सन्तोष की बात है कि सूर्यसिद्धान्त मत के पचाङ्गों ने उक्त प्राचीन स्थूल देशान्तर की उपेक्षा कर सही देशान्तर अपनाना प्रारम्भ कर दिया है।

पृथ्वी परिधि में ३६० अंशों की प्रति दिन की प्रवह की गति २४ घण्टे या ६० घटी में पूरी हो जाने से अनुपात से ३६० ÷ २४ = १५^0 एक घण्टे या २$\frac{१}{२}$ घटी में १५ अंश की गति सिद्ध होती है। अतः १५ अंश को दो देशों के अन्तर में १ घण्टा या ६० मिनिट लगता है तो १ अंश के अन्तर में $\frac{६०}{१५}$ = ४ मिनिट समय लगेगा। आधुनिक भौगोलिक मानचित्रों के निर्माण से प्राचीनों की स्थूलता भी सूक्ष्म में आ गई है, यह उपलब्धि प्राचीन सिद्धान्तों की ही कही जानी चाहिए, क्योंकि उस युग में उक्त गणितों की उपलब्धियाँ स्थूल या सूक्ष्म रीति से उन्होंने सम्यक् ज्ञात कर ली थी। काशी और उज्जैन क्रमशः ग्रीन्विच से ८३-७६ अंश पूर्व हैं। काशी के देशान्तर में उज्जैन का देशान्तर ८३-७६ कम कर देने से उज्जैन से काशी

७ अंश पूर्व होने से ७ × ४=२८ मि० × $\frac{५}{२}$=७० पल=१ घटी १० पल रेखादेश अर्थात् उज्जैन से काशी का देशान्तर काल होता है। अति सूक्ष्मतया से यह समय १ घटी ६ पल ही होता है।

इसी प्रसंग में—रेखादेशीय और स्वदेशीय याम्योत्तर वृत्तों का अन्तर विषुवद्वृत्त या उसके समानान्तर अहोरात्रवृत्त में कलात्मक देशान्तर होता है। पृथ्वी की सबसे बड़ी परिधि विषुवद्वृत्त में और सबसे कम परिधि ध्रुव के समीपीय प्रदेशों में होती है। विषुवद्वृत्तीय परिधि को मध्यमभूपरिधि कह कर जिसका जो देश है उस देश की उस परिधि का नाम स्पष्ट भूपरिधि का ज्ञान सूर्य-सिद्धान्त के "लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटः भूपरिधिः स्वकः" से किया गया है।

मध्यम भूपरिधि में प्राचीनों की ४८०० योजन में (लगभग ८००० मील) यदि ६० × ६० = ३६०० पल मिलते हैं तो अभीष्ट देशान्तर योजना में

$$\frac{३६०० \times \text{देशान्तर योजन}}{४८००} = \frac{३ \times \text{देशान्तर योजन}}{४}$$

= देशान्तरकाल। समीकरण की युक्ति से $\frac{३ \times \text{देशान्तर योजन}}{४} = \frac{(४-१)\ \text{देशान्तर योजन}}{४}$

= देशान्तर योजन − $\frac{\text{देशान्तर योजन}}{४}$ = देशान्तर पल होते हैं। देशान्तर योजन में योजन का चतुर्थांश कम करना चाहिए गणित गोल से यही सिद्ध होता है।

विचारने की बात यहाँ पर यह है कि यदि काशी और उज्जैन का देशान्तर काल १ घटी १० पल या (२८ मिनट) जो पहिले दिखाया गया है इस सही मान को ग्रहण कर विलोम गणित से काशी और उज्जैन के सही योजनों को ज्ञात करना समीचीन होगा।

यदि ६३ = $\frac{६३}{४}$ = ६३ − १५।४५ = ४७।१५ ∴ ४७।१५ + १५।४५ = ६३ योजन इसी प्रकार की जगह १।१० मान रखा जाय तो ७० + $\frac{७०}{४}$ = ७० + १७।३० = ८७$\frac{१}{२}$ योजन के मान से उज्जैन से काशी पूर्व में सिद्ध होती है। इस प्रकार प्राचीनों की ही गणित सारणि से प्राचीनों को ४८०० योजन मान की मूल भू परिधि की स्थूलता को भी सूक्ष्मता में परिणत किया जा सकता है।

४७।१५ देशान्तर में भूपरिधि = ४८०० तो ७० दे० अं० में $\frac{४८०० \times ७०}{४७।१५}$ = ७१११ $\frac{३१५}{२८३५}$ लगभग ७१११ योजन भूपरिधि प्राचीनों ने माननी चाहिए थी।

निरक्ष (अक्षांश रहित देश) देशीय क्षितिज से निरक्ष देशीय याम्योत्तर वृत्त तक १५ घटी = ६ घण्टा में पूर्व आनीत देशान्तर पल कम करने से निरक्ष देशीय क्षितिज से अपने देशीय याम्योत्तर वृत्त तक १५ घण्टा− $\frac{३\ \text{दे. यो. प.}}{४}$ होता है। इस फल को अपने दिनार्ध में कम करने से निरक्ष और अपने देशीय क्षितिजों का अन्तर होगा। अतः रेखादेश से पूर्व के देशों में उक्त पलों के तुल्य काल में ही निरक्ष देशों में सूर्योदय होगा। इसी प्रकार रेखा

से पश्चिम के देशों में आनीत देशान्तर पलों के तुल्य काल पहिले अपने देश के सूर्योदय से निरक्ष देश में सूर्योदय होगा। तभी वार की प्रवृत्ति भी होगी।

प्राचीन आचार्यों ने लंका का अक्षांश शून्य माना है वास्तव में लंका प्रदेश विषुवद्वृत्त से ५ अंश से १० अंश तक में है। तात्पर्य जब निरक्ष क्षितिज में सूर्योदय होता है तभी वार की प्रवृत्ति माननी चाहिए। ('लंका नगर्यामुदयाच्च भानोः' इत्यादि) है। इसलिए अक्षांश शून्यता लंका में नहीं कही ·जानी चाहिए। अपि च उत्तरी अमेरिका का उत्तरी भाग Quito, Mexiana तथा सुमात्रा बोर्नियो द्वीपों के मध्य में "गिनी" आदि में विषुवद्वृत्त जाता है (इसलिए लङ्का नहीं) ये देश निरक्ष देश कहे जा सकते थे। भूल से प्राचीनों ने लङ्का को विषुवद्वृत्त में माना है॥ ५४॥

अथ वारप्रवृत्तिप्रयोजनपुरःसरां होरामनुष्टुभाह—

वारादेर्घटिका द्विघ्नाः स्वाक्षहृच्छेषवर्जिताः।
सैकास्तष्टा नगैः कालहोरेशा दिनपात्क्रमात्॥ ५५॥

पी० धा०—वारादेरिति। वारप्रवृत्तिप्रकारेण यस्मिन् क्षणे वारप्रवृत्तिर्जाता तत इष्टघटयो द्विगुणाः कार्याः। ता द्विस्थाने स्थाप्याः। तत्र पञ्चभिर्भक्ते यल्लब्धं तत् त्याज्यम्। यच्छेषं तत् द्विगुणघटीमध्ये वर्जितं कार्यम्॥ एवंविधा घट्यः सैका एकयुक्ताः कार्याः। ततो नगैः सप्तभिस्तष्टा भक्ता अवशिष्टाः कालहोराः स्युः। तद्दिनपाद्वारात् क्रमाद्गणनीयाः। यथा रविवारे इष्टघटिकाः षट् ६ द्विगुणाः १२ पृथगक्षाप्तशेष २ वर्जिताः १०। नगैः ७ तष्टाः शेषं ३ सैकम् ४ रविवारक्रमगणनया चतुर्थो बुधस्तस्य होरा। अत्र वासना। तत्र वसिष्ठः— "वारप्रवृत्तेर्गदिता दिनेशात्कालाख्यहोरापतयः क्रमेण। साचैव नाडीद्वितयेन तष्टः षष्ठश्च षष्ठश्च पुनः पुनः स्यात्" इति। तत्र कृतेऽहोरात्रे चतुर्विंशतिः कालहोरा भवन्ति॥ अत्रानुपातः—यदि घटिकानां षष्ठया ६० चतुर्विंशतिः २४ होरा लभ्यन्ते तदैकया किमिति। अत्रैकेन गुणे विशेषाभावाच्चतुर्विंशतेः छेदः षष्ठिर्जातः। उभयोर्द्वादशापवर्ते इष्टघटीका द्विगुणाः पञ्चभक्ताः कालहोराः स्युरिति॥ तथा चोक्तं रत्नमालायां "वारप्रवृत्तेर्घटिका द्विनिघ्नाः कालाख्यहोरापतय शराप्ताः। दिनाधिपाद्या रविशुक्रसौम्यशशाङ्कसौरेज्यकुजाः क्रमेण॥" अथ ग्रन्थकृदुक्ता वासनासार्धघटीद्वयेनैकहोरा द्विगुणिताः सार्धद्विघट्यः पञ्च भवन्ति। अत एवोक्तं—वारादेर्घटिका द्विघ्ना' इति। एकयोगे षट् जाता। एवं रविवारे क्रमेण गणनया द्वितीया शुक्रस्य कालहोरा प्रवृत्ता। अत उक्तं 'सैका' इति। भवन्मतेऽपि सूर्यात्षष्ठः शुक्रस्तस्यैव होरा। इयं च शुक्रहोरा पञ्चघटीपर्यन्तम्। स्वमते इष्टघटिका ४ द्विगुणाः ८ अत्र पञ्चभ्यआधिक्यमनुचितमिति द्वितीयस्थाने स्थापयित्वा पञ्चभक्तावशिष्टत्रयेणोनाः पञ्चजाताः। अत उक्तं— 'स्वाक्षहृच्छेषवर्जिता, इति। एकयोगे षट्। एवं सति पुनः सैव होरा। एवमिष्टघटीभिः कालहोरानयनं सुगमम्। वाराणां सप्तसंख्यात्वात्तदाधिक्यमनुचितमिति—'नगैस्तष्टा, इत्युक्तम्। क्रमगणनायां त्वियं युक्तिः द्वयोर्होरास्वामिनोरन्तरं पञ्चकं सम्भवति। एकयोगस्तु वर्तमानकालहोराज्ञानार्थम्। अतः षष्ठिक्रमगणनया भवद्विवक्षिता सैव होरा भवति॥

अथ वारप्रवृत्तिरुदयात्तत्पूर्वं वेति।

विवाहवृन्दावने तु उदयमारभ्योक्ताः कालहोराः। यथा—"तत्कालार्कन्यूनलग्नांश-

पिण्डा भक्ताः पञ्चक्षोणिभिर्भुक्तहोराः । भास्वच्छुकज्ञेन्दुसौरेज्यभौमाः संख्यायेरन्वारतस्ते तदीशाः ॥' इति । अनयोर्विषयविभागो वसिष्ठसंहितायां–"वारप्रवृत्तेर्विज्ञानं क्षणवारार्थमेव हि । अखिलेष्वन्यकार्येषु दिनादिरुदयाद्भवेत् ॥' इति । क्षणवारः कालहोरारूप; । तदर्थं वारप्रवृत्तिः। अन्यकार्येषु दिक्छूलादिषु तिथिवारप्रयुक्तेषु नक्षत्रवार प्रयुक्तेषु चायोगेषु च सूर्योदयादेव वारा ग्राह्याः ॥ ५५ ॥

पीताम्बरा—वार प्रवृत्ति समय का ज्ञान—वार प्रवृत्ति समय से इष्टकाल की घटिकाओं को द्विगुणित कर गुणनफल को दो जगह स्थापित करना चाहिए । एक जगह दिगुणित इष्ट घटिकाओं में ५ का भाग देकर शेष को दूसरी जगह द्विगुणित घटिकाओं में घटा देने से उसमें और १ जोड़ देने से काल होरा होती हैं । ये काल होरा ७ से अधिक हों तो ७ से भाग देकर शेष अंक के तुल्य दिन पति से क्रमशः गणना कर एकादि सात तक शेष में, रवि चन्द्र····शनि की (जिस दिन काल होरा का विचार किया जा रहा है उसी दिन से) काल होरा होती है।

जैसे बुधवार के दिन इष्ट घटी ८ × २=१६, १६ ÷ ५, शेष=१ अतः १६ − १ = १५ वीं होरा हुई। किन्तु वार सात ही होने से १५ ÷ ७ = शेष = १ गत होरा हुई उसमें एकजोड़ने से दूसरी होरा बुधवार के दिन ८ वीं घटी इष्टकाल में बुध से दूसरी बृहस्पति की होरा हुई ।

कालहोरा ज्ञान का सरल दूसरा प्रकार—६० घटियों में ढाई घटी (५/२ घटी = १ होरा one hour) की एक होरा के क्रम से २४ होराएँ प्रत्येक वार को होती हैं । जैसे रविवार को प्रथम होरा रवि की ही होती है । दूसरी होरा के लिए इष्ट २।३१ × २ = ५।२ ÷ ५।० = शेष = ५।२−० = ५।२ ÷ ७ = शेष ५, शेष + १ = ५ + १ = ६ छठीं होरा रविवार को दूसरी होरा रविवार से छटी शुक्र की सिद्धि होती है । इसी प्रकार यदि रविवार को इष्ट = ६ घटी तो, ६ × २ = १२ ÷ ५, शेष = २, १२ − २ = १०, १० ÷ ७, शेष = ३, शेष + १ = ३ + १ = ४ रविवार को तीसरी होरा बुध की सिद्ध होती है जो कि रविवार की दूसरी होरा शुक्र से छठीं बुध की, एवं रविवार को चौथी होरा ज्ञात करनी हो तो बुध से छठीं सोम की, एवं पाँचवीं सोम से छठीं शनि की, पुनः रविवार को छठीं, होरा शनि से छठीं बृहस्पति इस प्रकार ६० घटी इष्टकाल में $\frac{६० \times २}{५}$ = २४, २४−० + २४ ÷ ७ = शेष ३, ३ + १ = ४ रविवार को अन्तिम २४ वीं होरा रवि से चौथी बुध की या उक्त छठीं से छठीं के क्रम से रविवार की २३ वीं होरा शुक्र से छठीं बुध की ही स्पष्ट सिद्ध होती है । इसलिए सूर्योदय से इष्टकाल तक जितने घण्टे मिनट हों उतने घण्टे मिनटों में १ से २४ तक घण्टों को समझ कर, वार के आरम्भ से छठें-छठें वार की इष्ट घण्टों तक गणना से होराएँ ज्ञात हो जाती हैं । जैसे किसी बुधवार को सूर्योदय ६ बजे हुआ । रात्रि १२ बजे के इष्ट में ६ वजे सूर्योदय से रात्रि के १२ बजे तक १८ घण्टों में अठारहवीं होरा बीत कर १९ वीं बुधवार को बुध से पहिली बुध की बुधवार को दूसरी बुध से छठें सोम की, पुनः बुध को तीसरी होरा सोम से छठीं शनि की, चौथी शनि से छठीं बृहस्पति की तथा इसी क्रम से बुधवार को १९ वीं होरा मंगल की ही होगी । क्योंकि इष्टकाल १८ घण्टा = ४५ घटी, ४५ × २ = ९० ÷ ५ = १८, शेष = ०, ९०−० = ९० ÷ ७ शेष = ६ शेष + १ = ६ + १ = ७ अतः पूर्व प्रकार से बुधवार के दिन बुध से शेष ७ तुल्य मंगल ही होता है ।

इसलिए घण्टों के माप के इष्टकाल से गत और अग्रिम होरा समझ कर वारेश से छठे, छठे गणना से वार होगा प्रधान वार में वही वार होरेश होगा। इस प्रकार एक सारिणी भी सुविधा के लिए बनाकर रखी जानी चाहिए ॥ ५५ ॥

अथ कालहोरा प्रयोजनौचित्यं शालिन्याह—

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेऽस्य !
कुर्याद्दिक्छूलादिचिन्त्यं क्षणेषु नैवोल्लङ्घ्यः परिघश्चापि दण्डः ॥

पीयूषधारा—वारे प्रोक्तमिति । यत्कर्म यस्मिन् वारे प्रोक्तं तद्दिनस्य सदोषत्वादत्यावश्यकक्रत्ये तस्य कालहोरायां कर्तव्यम् । यदाह नारदः—'यस्य खेटस्य यत्कर्म वारे प्रोक्तं विधीयते । ग्रहस्य क्षणवारेऽपि तस्य तत्कर्म सर्वदा ॥' इति ॥

होराफलानि—

अत्र केचित् । यस्य वारे यत्कर्म प्रोक्तं तस्य बलिनो नवांशे सूर्यश्चन्द्रो वा चेतिष्ठेत् तदा तत्कर्म कार्यमित्याहुः उक्तं च "यस्य ग्रहदिने कर्म यत्किञ्चिदभिधीयते । तस्यांशे संस्थिते सूर्ये चन्द्रे वा तद्विधीयते ॥" इति । कैश्चित्प्रत्येकं होराफलान्युक्तानि—"भानुहोरा मृतिं कुर्याच्चन्द्रहोरा स्थिरासनम् । कारावन्धं भौमहोरा बुधहोरा च पुत्रदा ॥ वस्त्रालङ्कारदा जीवहोरा शौक्री विवाहदा । जडत्वं शनिहोरायां सप्तहोराफलं त्विदम् ॥ प्रश्नकाले तु या होरा तस्याः फलमवाप्नुयात् ॥' इति ।

उदयाद्धोरानयनप्रयोजनम्

उदयादारभ्य होरानयनप्रयोजनं तु—"पादः स्ववर्षे च दलं स्वमासे दिने स्वकीये चरणोनरूपम् । रूपं स्वहोरास्विति कालवीर्यमुक्तं हि होरानिपुणैः पुराणैः ॥' इति । युक्तं चैतत् । वर्षेशादीनामुदयादितः प्रवृत्तानां साहचर्याद्वारेशा अप्युदयादेव गणनीयाः । अथ प्रसङ्गान्नक्षत्रप्रयुक्तानां कर्मणामनुष्ठाने प्राप्तेऽपवादमाह—धिष्ण्य इति । यस्मिन् धिष्ण्ये नक्षत्रे यत्कर्म वस्त्रपरिधानादिकमुक्तं तत्सत्यावश्यकत्वे अस्यधिष्ण्यस्य स्वामितिथ्यंशके स्वामिमुहूर्ते कुर्यात् । उक्तं च नारदेन—"यस्मिन्नृक्षे तु यत्कर्म निखिलं कथितं च यत् । तद्दैवत्ये तन्मुहूर्ते कार्यं यात्रादिकं तथा ॥" इति । मुहूर्तस्वामिनो विवाहप्रकरणे वक्ष्यति । अत्रापि स्वामितिथ्यंशे इदमवश्यं चिन्त्यं विचारणीयम् । किम् दिक्शूलाद्यं नक्षत्रशूलं च । आदिशब्देन लालाटिकयोगोऽपि । क्षणेषु मुहूर्तेषु इदमवश्यं चिन्त्यं विचारणीयम् । एवं परिघो दण्डः क्षणेषु नैवोल्लङ्घ्यः । यदाह वसिष्ठः—"यत्कर्म कथितमृक्षे यस्मिंस्तत्कर्म तत्क्षणे कार्यम् । दिक्छूलादिकमखिलं परिघदण्डादिविज्ञेयम् ॥" इति । विज्ञेयमवश्यं विचारणीयम् । दिक्छूलादिकं तु यात्राप्रकरणे वक्ष्यति ॥५६॥

पीताम्बरा—वारके कृत्य कालहोरा में—जिस वार में जिस कर्म को करने की विधि कही गई है, वह वार यदि कथित कर्म के लिए उपयुक्त नहीं है और कार्य आवश्यक है तो उस वार में कथित कर्म के उपयुक्त की कालहोरा नामक वार के समय में आवश्यक कार्य किया जा सकता है। २४ घंटे का एक वार और १, १ घंटे क्रम का एक-एक क्षणिक वार पूर्व श्लोक से स्पष्ट है।

यदि किसी रविवार के दिन पश्चिम दिशा की यात्रा करनी हो तो दिशाशूल होने से पश्चिम की यात्रा का निषेध कहा जावेगा। किन्तु रविवार ही को पश्चिम जाना अत्यन्त आवश्यक है

तो रविवार के दिन सोम, बुध, गुरु, आदि (शुक्र को होरा छोड़ कर) की होराओं में पश्चिम दिशा की यात्रा की जा सकती है। तथा उक्त अभिप्राय से जिस कार्य के लिए सोमवार को शुभ कहा गया है, उस कार्य को सोमवार की सोम की काल होरा में करने से विशेष शुभ फल भी होता है।

इसी प्रकार जिस नक्षत्र में जिस कार्य के करने की विधि दी गई है वह कार्य उस नक्षत्र के अधिपति के पन्द्रहवें विभाग के समय में करने से वह कार्य सफल होता है। (स्वामी तिथ्यंश विवाह प्रकरण में)

मूहूर्त, होरा आदिको में भी दिशाशूल आदिकों का विचार करना चाहिए।

यात्रा प्रकरण में वर्णित परिघ-दण्ड आदि का तो नक्षत्र और नक्षत्र स्वामी मुहूर्त में भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए ॥ ५६ ॥

अथ कार्यमात्रनिषिद्धान्मन्वादीन्युगादींश्च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मन्वाद्यास्त्रितिथी मधौ तिथिरवी ऊर्जे शुचौ दिक्तिथी
ज्येष्ठेऽन्त्ये च तिथिस्त्विषे नव तपस्यश्वाः सहस्ये शिवाः।
भाद्रेऽग्निश्च सिते त्वमाष्ट नभसः कृष्णे युगाद्याः सिते
गोऽग्नी बाहुलराधयोर्मदनदर्शौ भाद्रमाघासिते ॥ ५७ ॥

इति दैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामज्योतिर्विद्विरचिते मुहूर्तचिन्तामणौ शुभाशुभप्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥ १ ॥

पीयूषधारा—मन्वाद्या इति। एते चतुर्दश मन्वाद्या ज्ञेयाः। सिते इति वक्ष्यमाणं पदमनुकृष्य चैत्रादिमासेष्वपि सम्बध्यते। मधौ चैत्रमासे सिते शुक्लपक्षे त्रितिथी तृतीयापूर्णिमे। ऊर्जे कार्तिके शुक्लेपक्षे तिथिरवी पूर्णिमाद्वादश्यौ। शुचावाषाढमासे शुक्लपक्षे दिक्तिथी दशमीपूर्णिमे। ज्येष्ठे अन्त्ये फाल्गुने च तिथिः पूर्णिमा। इषे आश्विने शुक्लपक्षे नव नवमी। तपसि मासे माघे मासि शुक्लपक्षे अश्वाः सप्तमी। सहस्ये पौषे शुक्लपक्षे शिवा एकादशी। भाद्रपदमासे शुक्लपक्षेऽग्निस्तृतीया। नभसः श्रावणस्य कृष्णपक्षे अमा अमावास्या अष्ट अष्टमी। अत्राष्टमी जन्माष्टमी तदनन्तरभाविनी अमावास्या च गृह्यते। यदाह नारदः—"द्वादश्यूर्जे शुक्लसंज्ञिता ॥ एकादशी सिता पौषेप्याषाढे दशमी सिता। माघे च सप्तमो शुक्ला नमस्येष्यसिताष्टमी ॥ श्रावणे मास्यमावास्या फाल्गुने मासि पूर्णिमा। आषाढे कार्तिके मासि चैत्री ज्येष्ठस्य पूर्णिमा। मन्वादयः स्नानदानश्राद्धेष्वानन्त्य पुण्यदा ॥' इति। मत्स्यपुराणेऽपि—"आश्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी तथा। तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ श्रावणस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी तथा। अषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥ श्रावणस्याऽष्टमी कृष्णा आषाढस्यापि पूर्णिमा कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पञ्चदशी सिता ॥ मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः।" इति अत्र नारदवाक्ये 'नभस्येप्यसिताष्टमी इति। तत् कृष्णादिमासाभिप्रायेण। मत्स्यपुराणवचनं तु 'श्रावणस्याष्टमी कृष्णा' इति। तच्छुक्लादिमासाभिप्रायेण ॥ एवं सति जन्माष्टमी सिद्धा उभयमते। अमावास्या शुक्लादिमासाभिप्रायेण जन्माष्टम्यनन्तरभाविनी गृह्यते ॥

युगादयः—

अथ युगाद्याः युगादयश्चत्वार उच्यन्ते । बाहुलः कार्तिकः, राधो वैशाखः गोघ्नी नवमी-तृतीये यथासंख्यं ज्ञेये । सिते शुक्लपक्षे कार्तिके शुक्लपक्षे नवमी । वैशाखे शुक्लपक्षे तृतीया । भाद्रमाघासिते यथासंख्यं मदनदर्शौ भाद्रपदकृष्णपक्षत्रयोदशी माघकृष्णाऽमावस्या । एते युगादयश्चत्वारः । यदाह नारदः—"कार्तिके शुक्लनवमी चादिः कृतयुगस्य सा । त्रेतादिर्माधवे शुक्ला तृतीया पुण्यसंमिता ।।कृष्णा पञ्चदशी माघे द्वापरादिरुदीरिता । कल्पादि; स्यात्कृष्णपक्षे नभस्ये च त्रयोदशी ।" शुक्लादिमासाभिप्रायेण श्राद्धपक्षत्रयोदशी प्रसिद्ध शिवरात्र्यनन्तरा-भाविन्यमावास्या च गृह्यते ।।

अनध्यायास्तु—

उशनाः—"अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः । अनध्यायं प्रकुर्वीत मन्वादिषु युगादिषु ।।" इति । याज्ञवल्क्यस्त्वष्टत्रिंशत्तात्कालिकाननध्यायानाह—

"सन्ध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातने । समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ।।
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके। ऋतुसन्धिषु भुक्त्वा च श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ।।
पसुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः । कृतेन्तरे त्वहोरात्रं शुक्रपाते तथोच्छ्ये ।।
खरोष्ट्रगर्दभोलूकसामवाणार्तनिःस्वने । अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तके ।।
देशेऽशुचावात्मनि च विद्युत्स्तनितसम्प्लवे । भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोभिरर्द्धरात्रेतिमारुते ।।
पांशुवर्षे दिशां दाहे सन्ध्यानीहारभीतिषु । धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ।।
खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणिरोहणे । अष्टविंशदनध्यायानेतास्तात्कालिकाञ्जगुः ।।' इति ।

अन्यच्च—"अहन्येते ह्यनध्यायाः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये मृते ।।" एवमादयोऽन्येप्यनध्याया धर्मशास्त्रोक्ता अनुसन्धेयाः ते च व्रतबन्धे विद्यारम्भे व्रताविसर्गादौ नित्याध्ययने च यथायोग्यं वर्जनीयाः । सोपपदादीननध्यायान् ग्रन्थकृत् व्रतबन्धप्रकरणे वक्ष्यतीति शिवम् ।।५७।।

शुभाशुभप्रकरणोपसंहारः—

शुभाशुभप्रकरणं गद्येनोपासंहरति--इति श्रीदैवज्ञेति । "इति हेतुप्रकरणप्रकारादि-समाप्तिषु" इत्यमरः । श्रीशब्दो वाक्यालङ्कारे । शुभं सिद्धियोगादि । अशुभं सिंहस्थादिः । तयोः प्रकरणानिरूपणम् । अन्यत्स्पष्टम् ।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा
पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे
व्याख्यानं हि शुभाशुभप्रकरणं पूर्णत्वमध्यागमत् ।।१।।

इति श्रीविद्वरदैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां
मुहूर्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां शुभाशुभ-
प्रकरणं समाप्तम् ।। १ ।।

पीताम्बरा—अनध्याय के लिए मनु आदि और युगादि की आरम्भतिथियों का उल्लेख किया जा रहा है—चैत्रमास शुक्लपक्ष की तृतीया-पूर्णिमा, कार्तिकशुक्ल की पूर्णिमा द्वादशी, आषाढ़शुक्ल में दशमी, पूर्णिमा, ज्येष्ठ और फाल्गुनशुक्ल की पूर्णिमा, आश्विनशुक्लपक्ष की नवमी, माघशुक्ल की सप्तमी, पौषशुक्ल की एकादशी, भाद्रशुक्ल की तृतीया, श्रावणकृष्ण की अमावास्या और अष्टमी (शुक्लपक्षारम्भ से मासारम्भ के अभिप्राय से श्रावणकृष्ण अष्टमी का जन्माष्टमी से अभिप्राय है "नभस्येप्यसिताष्टमी") इन तिथियों में स्वायंभुव स्वारोचिष आदिक चौदह मनुओं का आरम्भ होने से ये तिथियाँ मन्वादि कही गयी हैं ।

तथा कार्तिकशुक्ल की नवमी वैशाखशुक्ल की तृतीया, भाद्र और माघकृष्णपक्ष में क्रमशः त्रयोदशी और अमावास्या ये युग की आदिम दिन की तिथियाँ हैं । अर्थात् कार्तिक-शुक्ल नवमी को सत्ययुग, वैशाखशुक्ल तृतीया को त्रेतायुग, भाद्रकृष्ण त्रयोदशी को द्वापर युग और माघकृष्ण अमावस्या को कलियुग का प्रारम्भ हुआ था ।

अल्मोड़ा मण्डलान्तर्गत जुनायल ग्रामस्थ स्व० १०८ श्री पं० हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज
पर्वतीय श्री केदारदत्त जोशी कृत मुहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थ के प्रथम शुभाशुभ
प्रकरण की पीयूषधारा टीका की पीताम्बरा नाम की हिन्दी व्याख्या सम्पन्न ।

●

अथ नक्षत्रप्रकरणं द्वितीयम् ।

शर्वाणीतनयमवाब्धिदावमीशं नत्वा श्रीगुरुपदभक्तिलब्धविद्यः ।
गोविन्दो विबुधवरप्रहर्षिणीं तां नक्षत्रप्रकरणटिप्पणी तनोति ॥

अथ नक्षत्रप्रकरणं व्याख्यायते । तत्रादौ नक्षत्राणां प्रसिद्धत्वादेवावक्तव्यतायां सिद्धायां तत्स्वामिनः शार्दूलविक्रीडितेनाह—

नासत्यान्तकवह्निधातृशशभृद्रुद्रादितीज्योरगा
ऋक्षेशाः पितरो भगोऽर्यमरवी त्वष्टाशुगाश्च क्रमात् ।
शक्राग्नी खलुमित्रशक्रनिऋतिक्षीराणि विश्वे विधि–
र्गोविन्दो वसुतोयपाजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥ १ ॥

पीयूषधारा—नासत्यान्तकेति । एते क्रमादृक्षेशा नक्षत्राधीशा ज्ञेयाः । यथा–अश्विन्या नासत्यावश्विनीकुमारौ । भरण्या अन्तको यमः । कृत्तिकाया वह्निरग्निः । रोहिण्या धाता ब्रह्मा । मृगस्य शशभृच्चन्द्रः । आर्द्राया रुद्रो महादेवः । पुनर्वसोरदितिर्देवमाता । पुष्यस्येज्यो बृहस्पतिः । आश्लेषाया उरगः सर्पः । मघायाः पितरः । पूर्वफल्गुन्या भगः सूर्यविशेषः । उत्तर-फल्गुन्या अर्यया सूर्यविशेषः । हस्तस्य रविः सूर्यः । चित्रायास्त्वष्टा विश्वकर्मा । स्वात्या आशुगो वायुः । विशाखायाः शक्राग्नी इन्द्राग्नी । अत्र समुदितयोर्देवतात्वम् । अनुराधायाः मित्रः सूर्यविशेषः । ज्येष्ठायाः शक्र इन्द्रः । मूलस्य निऋती राक्षसः । पूर्वाषाढायाः क्षीरमुदकम् ।

उत्तराषाढाया विश्वे विश्वदेवाः । अभिजितो विधिः । श्रवणस्य गोविन्दो विष्णुः । धनिष्ठाया वसवोऽष्टौ देवताविशेषाः । शततारकायास्तोयपो वरुणः । पूर्वाभाद्रपदाया अज-चरणः सूर्यविशेषः । उत्तराभाद्रपदाया अहिर्बुध्न्यः सूर्यविशेषः । रेवत्याः पूषा सूर्यविशेषः । यदाह नारदः "नक्षत्रेशाः क्रमाद्दस्रयमवह्निपितामहाः । चन्द्रेशादितिजीवाहिपितरो भगसंज्ञिताः ।। अर्यमार्कस्त्वष्ट्रमरुच्छक्राग्निमित्रवासवाः । निर्ऋत्युदकविश्वेजगोविन्दो वसवोऽम्बुपः ।। ततोऽजपादहिर्बुध्न्यः पूषा चेति प्रकीर्तिताः ।।" इति । प्रयोजनं तु तिथिप्रकरणे प्रोक्तमस्माभिः ।

अथ तेषां व्यासज्यवृत्तित्वमित्यादयः—

अत्र वसव इति बहुवचनान्तत्वाद्बहूनामेव व्यासज्यवृत्तिदेवतात्वं प्रतीयते । "धनिष्ठानक्षत्र वसवो देवताः" इति श्रुत्युक्तेश्च । एवं सति केचिद्दीपिकाकारादयो बहुत्वमविवक्षितमिति मत्वा वसुशब्दं च द्रव्यवाचकं मत्वा स्वं धतं द्रव्यमित्यादिशब्दं धनिष्ठानक्षवाचकं मन्यन्ते -चिन्त्योक्तयो वेदितव्याः ।।

प्रत्येकनक्षत्रकृत्यानि—

अत्र प्रसङ्गात्प्रत्येकं नक्षत्रकृत्यानि ग्रन्थकृदनुक्तान्यप्युच्यन्ते । तान्याह नारदः—

"वस्त्रोपनयनक्षौरसीमन्ताभरणक्रिया । स्थापनाश्वेभयानस्त्रीकृषिविद्यादयोऽश्विगे ।। १ ।।
वापीकूपतडागादिविषशस्त्रोग्रदारुणाः । विलप्रवेशगणितनिःक्षेपा याम्यभे शुभाः ।। २ ।।
अग्न्याधानास्त्रशस्त्रोग्रसन्धिविग्रहदारुणाः । संग्रामौषधवादित्रक्रियाः शस्ताश्च वह्निभे ।। ३ ।।
सीमन्तोन्नयनोद्वाहवस्त्रभूषास्थिरक्रियाः । हयस्त्यभिषेकाश्च प्रतिष्ठा ब्रह्मभे शुभा ।। ४ ।
प्रतिष्ठाभूषणोद्वाहसीमन्तोन्नयनक्रियाः । क्षौरवास्तुगजोष्ट्राश्वयात्राः शस्ताश्च चन्द्रभे ।। ५ ।।
ध्वजतोरणसंग्रामप्राकारास्त्रक्रिया शुभाः । सन्धिविग्रहवैराणि रसाद्याः शर्वभे शुभाः ।। ६ ।।
प्रतिष्ठायानसीमन्तवस्त्रवास्तूपनायनम् । क्षौराश्वकर्मादितिभे विधेयं धान्यभूषणम् ।। ७ ।।
यात्राप्रतिष्ठा सीमन्तव्रतबन्धप्रवेशनम् । करग्रहं विना सर्वं कर्ण देवेज्यभे शुभम् ।। ८ ।।
अनृतं व्यसनं द्यूतं धातुवादौषधाहवम् । विवादरसवाणिज्यं कर्म कद्रजभे शुभम् ।। ९ ।।
कद्रूजः सर्पः ।
कृषिवाणिज्यगोधान्यरणोपकरणादिकम् । विवाहनृत्यगीताद्यं निखिलं कर्म पितृभे ।।१०।।
विवादविशस्त्राग्निदारुणो ग्रहवादिकम् । पूर्वात्रयेऽखिलं कर्म कर्त्तव्यं मांसविक्रयः ।।११।।
प्रतिष्ठोद्वाहसीमन्ताभिषेकव्रतबन्धनम् । प्रवेशस्थापनाश्वेभवास्तुकर्म्मोत्तरात्रये ।।१२।।
प्रतिष्ठोद्वाहसीमन्तयानवस्त्रोपनायनम् । क्षौरवास्त्वभिषेकाश्च भूषणं कर्म भानुभे ।।१३।।
प्रवेशवस्त्रसीमन्तप्रतिष्ठाव्रतबन्धनम् । त्वाष्ट्रभे वास्तुविद्याश्च क्षौरभूषणकर्म यत् ।।१४।।
प्रतिष्ठोपनयोद्वाहवस्त्रसीमन्तभूषणम् । विवादश्चेभकृष्यादिक्षौरकर्म समीरभे ।।१५।।
वस्त्रभूषणवाणिज्यरसधान्यादिसंग्रहम् । इन्द्राग्निभे नृत्यगीतशिल्पलेखनकर्म्म यत् ।।१६।।
प्रवेशस्थापनोद्वाहव्रतबन्धाष्टमङ्गलम् । वस्त्रभूषणवास्तुश्च मैत्रभे सन्धिविग्रहम् ।।१७।।
क्रूरोग्रशस्त्रवाणिज्यगोमहिष्यम्बुकर्म च । इन्द्रभे नृत्यवादित्रशिल्पलोहाश्मलेखनम् ।।१८।।
विवाहकृषिवाणिज्यदारुणाहवभेषजम् । निर्ऋतिभे नृत्यशिल्पसन्धिविग्रहलेखनम् ।।१९।।
इति पूर्वाषाढोत्तराषाढयोः कृत्यमुक्तम् ।

"प्रतिष्ठाक्षौरसीमन्तयानोपनयनौषधम् । पुरग्रामगृहारम्भा विष्णुभे पट्टवन्धनम् ।।२०।।
वस्रोपनयनक्षौरप्रतिष्ठायानभूषणम् । वसुभे वास्तुसीमन्तप्रवेशास्त्रविभूषणम् ।।२१।।
प्रवेशास्थापनक्षौरमौञ्जीबन्धनभेषजम् । अश्वारोहणसीमन्त वास्तुकर्म जलेशभे ।।२२।।
इति पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदयोः कृत्यमुक्तं पूर्वम् ।
विवाहव्रतबन्धाश्चप्रतिष्टायानभूषणम् । प्रवेशवस्त्रसीमन्तक्षौरभेषजमन्त्यभे ।।२३।।"इति।।१।।

पीताम्बरा–अश्विनी से लेकर रेवती तक २८ अठाईस नक्षत्रों के (अधिपतियों) देवताओं का निर्देश किया जा रहा है–चूँकि नक्षत्र २७ ही हैं, किन्तु उत्तराषाढ़ा के चतुर्थ चरण और श्रवण नक्षत्र के मान के पन्द्रहवें विभाग के समय को अभिजित नक्षत्र की संज्ञा दी जाने से मुख्य २७ नक्षत्रों से ही अठाईस नक्षत्र कहे गए हैं । अभिजित नाम का स्वतन्त्र नक्षत्र नहीं है । नक्षत्र के स्वामी के नाम से नक्षत्र का बोध होता है । जैसे अश्विनी, और भरणी ही समझे जावेंगे । अतः २८ नक्षत्रों के स्वामी देवता निम्न भांति हैं—

अश्विनी नक्षत्र का स्वामी नासत्य (अश्विनीकुमार), भरणी का अन्तक (यम), कृतिका का अग्नि, रोहिणी का धाता (ब्रह्मा), मृगशीर्ष का शशभृत् (चन्द्रमा), आर्द्रा का रुद्र (महादेव) पुनर्वसु का अदिति, (देवमाता) पुष्य का इज्य (बृहस्पति), अश्लेषा का उरग (सर्प), मघा के पितर, पूर्वाफाल्गुनी का भग (सूर्यविशेष), उत्तराफाल्गुनी का अर्यमा (सूर्यविशेष), विषाखा के शक्र और अग्नि (इन्द्राग्नी) दो देवता होने से विषाखा का नाम द्वीष भी है, अनुराधा का मित्र (सूर्यविशेष) ज्येष्ठा का शक्र (इन्द्र) मूल का निर्ऋती (राक्षस), पूर्वाषाढ़ा का क्षीर (जल) उत्तराषाढ़ा के विश्वेदेव, अभिजित का विधि (ब्रह्मा) श्रवण का गोविन्द (विष्णु), धनिष्ठा का, वसु (आठ वसु देवता) शतभिषा का तोयप (वरुण) पूर्वाभाद्रपदा का अजचरण (सूर्यविशेष) उत्तराभाद्रपदा का अहिर्बुध्न्य (सूर्यविशेष) और रेवती के पूषा (सूर्यविशेष) स्वामी होते हैं ।

पीयूष में—प्रत्येक नक्षत्र में किए जानेवाले कार्यों का निर्देश भी दिया गया है जिसे विस्तार भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है, इसलिए कि मूल ग्रन्थ में आगे सभी नक्षत्रों में किए जानेवाले कार्यों का समीचीन विवरण सुस्पष्ट है ।।१।।

अथ ध्रुवगणं तत्कृत्यं चानुष्टुभाह—

उत्तरात्रयरोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम् ।
तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादि सिद्धये ।।२।।

पीयूषधारा—उत्तरात्रयेति—उत्तरात्रयम् उत्तरफल्गुन्युत्तराषाढ़ाउत्तराभाद्रपदास्तिस्र उत्तराः रोहिणी च एतानि नक्षत्राणि ध्रुवसञ्ज्ञकानि स्थिरसंज्ञानि चेति संज्ञाद्वयम् । तत्र ध्रुवनक्षत्रेषु स्थिरं कर्म कार्यम् । तथा बीजं यवादि, गेहं गृहम्; शान्त्यादि विनायकशान्त्यादि, आरामो नगरोपकण्ठवर्तिवनम्-आदिशब्दान्मृदुनक्षत्रोक्तमपि कर्म सिद्धये भवति । तदुक्तं वसिष्ठेन-"स्थिरसञ्ज्ञं भचतुष्टयमंबुजस्यर्क्षमुत्तरात्रितयम् । नरपतिपत्तनसदनप्रवेशबीजादि सिद्धयते तत्र । मृदुवृन्दे कथितान्यपि स्थिरवृन्दे तानि कार्याणि ।।" इति। संज्ञाद्वये प्रमाणमुच्यते-"ध्रुवमचलं क्षिप्रं लघु चरं चलं मैत्र मृदुसंज्ञं साधारणमिश्राख्यं क्रूरोग्रं तीक्ष्णदारुणं तुल्यम् ।।" इति

वसिष्ठोक्तम् । एवं भास्करो रविरपि स्थिरः । यदाह वसिष्ठः–"सूर्यः स्थिरः शीतकरश्चरात्मा धराज उग्रः शशिजो विमिश्रः । देवेन्द्र पूज्यो लघुरिन्द्रशत्रुः पूज्यो मृदुस्तीक्ष्णतनुश्च सौरिः ॥" इति । अत्रापि सामान्यतः स्थिर कृत्यं कार्यं मूलश्लोकोक्तम् । अन्यदपि वारोक्तकर्म कार्यमभिधानात् । यदाह नारदः–"नृपाभिषेकमांगल्यसेवायानास्त्रकर्मयत् । औषधाहवधात्वादि विधेयं भानुवासरे ॥" इति ॥ २ ॥

पीताम्बरा—ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों के नाम और कृत्य बताए जा रहे हैं—तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढ़ा उत्तराभाद्र) और रोहिणी तथा रविवार ये ध्रुव और स्थिर-संज्ञक कहे गए हैं । इनमें स्थिर कर्म जैसे बीज बोना, घर बनाना विनायक शान्ति वाटिकादि निर्माणों के साथ-साथ मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में कथित कार्य भी सिद्ध (सफल) होते हैं ॥ २ ॥

अथ चरगणं तत्कृत्यं चानुष्टुभाह—

स्वात्यादित्ये श्रुतेस्त्रीणि चन्द्रश्चापि चरं चलम् ।
तस्मिन् गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम् ॥ ३ ॥

पीयूषधारा—**स्वात्यादित्य इति** । स्वाती आदित्यं अदितिर्देवतास्य आदित्यम् । "दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः" इति ण्यः । आदिवृद्धिः । "यस्येति च" इतिकारलोपः । आदित्यं पुनर्वसुः । श्रुतेः श्रवणमारभ्य त्रीणि श्रवणधनिष्ठाशततारका सोमवारश्च चरसंज्ञाश्चलसंज्ञाश्चैते ज्ञेयाः तस्मिंश्चरनक्षत्रे गजो हस्ती तदादयोऽश्वादयःतेषामारोहो वाटिका आरामस्तत्र गमनं यात्रा आदिशब्दाल्लघुनक्षत्रोक्तमपि कर्म सिध्यतीतिशेषः । तदाह वसिष्ठः–"अदितिः श्रुतिभात्रितयं चरसंज्ञं पञ्चकं मरुद्भं च । बाहनकर्मविभूषणचरकार्योद्यानमन्त्रसिद्धयै तत् । कथितान्यपि लघुवृन्दे चरसंज्ञे तानि कार्याणि । मणिमुक्ताफलहेमसद्रजतत्रपुसीसकर्माणि ॥" इति । नारदः—"शंखमुक्ताम्बुरजतवृक्षेक्षुस्त्रीविभूषणम् । पुष्पगीतक्रतुक्षीरकृषिकर्म्मेन्दुवासरे ॥" इति ॥ ३ ॥

पीताम्बरा—चरसंज्ञक वार नक्षत्र और उनके कृत्य बताये जा रहे हैं—स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण से क्रमशः तीन नक्षत्र अर्थात् श्रवण घनिष्ठा, शततारा तथा सोमवार ये चर और चल संज्ञक कहे गए हैं । इन चल संज्ञक नक्षत्र और वार में, हाथी घोड़े आदि सवारी पर चढ़ना बाग-बगीचा यात्रा, आदि पद से लघु संज्ञक नक्षत्रों में कहे गये कार्य भी शुभ होते हैं ॥३॥

अथोग्रगणमनुष्टुभाह—

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा ।
तस्मिन् घाताग्निशाठ्यानि विषशस्त्रादि सिद्ध्यति ॥४॥

पीयूषधारा—पूर्वात्रयमिति । पूर्वात्रियं पूर्वाफाल्गुनीपूर्वाषाढापूर्वाभाद्रपदारूपं नक्षत्रत्रयं याम्यं भरणी मघा च तथा कुजो भौमश्च उग्रसंज्ञः च क्रूरसंज्ञश्च । तस्मिन्नुग्रनक्षत्रे घातो हननमग्निरग्निदाहः, शाठ्यं खलत्वं, विषं विषभक्षणादि, शस्त्रं शस्त्रमारणादि आदिशब्दादन्यदपि अरिष्टकृत्यं दारुणनक्षत्रोक्तं सिध्यति निष्पद्यते । उक्तं च वसिष्ठेन—"पूर्वात्रितयं पित्र्यभमुग्रसंज्ञं च पञ्चकं याम्यम् । मारणभेदनबन्धनविषहनन पञ्चभे कार्यम् ॥ याद्दरुणभे चोक्तं तत्कर्म

त्वथोग्रधे कार्यम् ।।" इति । नारदः–"विषाग्निबन्धनस्तेयसंधिविग्रहमासनम् । धात्वाकरप्रवाल-स्त्रीकर्मभूमिजवासरे" ।। ४ ।।

पीताम्बरा—उग्रसंज्ञक नक्षत्र और उनके कृत्य बताए जा रहे हैं—तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद) भरणी, मघा तथा मङ्गलवार की उग्र और क्रूर संज्ञा है। इनमें घात (मारण) अग्निदाह, खलता, विषभक्षण आदि कार्य सिद्ध होते हैं। तथा दारुण संज्ञक नक्षत्रों के भी कार्य उग्र संज्ञकों में सिद्ध होते हैं ।। ४ ।।

अथ मिश्रगणमनुष्टुभाह—

विशाखाग्नेयभे सौम्यो मिश्रं साधारणं स्मृतम् ।
तत्राग्निकार्यं मिश्रं च वृषोत्सर्गादि सिद्धये ।। ५ ।।

पीयूषधारा—विशाखेति । विशाखा, आग्नेयं कृत्तिका, सौम्या बुधश्च एतस्त्रयं मिश्र-संज्ञं साधारणसंज्ञं च । तत्र मिश्रसंज्ञेषु नक्षत्रेषु अग्निकार्यमग्निहोत्रं मिश्रं नक्षत्रान्तोक्तं कर्म, वृषोत्सर्गः काम्यः । आदिशब्दादुग्रमपि कर्म सिद्धये भवति । तदाह वसिष्ठः—"भद्वितयं श्वसन-सखं सेद्राग्निभकं हि मिश्रसंज्ञं स्यात् । निखिलानि च साधारणकार्याण्युग्राणि तत्र कार्याणि" इति ।। नारदः—"नृत्यशिल्पकलागीतलिपिभूरससंग्रहम् विवाहधान्यसंग्राहकर्म सौम्यस्य वासरे इति ।। ५ ।।

पीताम्बरा—मिश्रसंज्ञक नक्षत्रों के कृत्य कहे जा रहे हैं—विषाखा, कृतिका और बुधवार की मिश्र और साधारण संज्ञा है। इनमें अग्निहोत्र, काम्य बृषोत्सर्ग तथा उग्र संज्ञक नक्षत्रों के भी कार्य सिद्ध होते हैं ।। ५ ।।

अथ लघुगणमनुष्टुभाह—

हस्ताश्विपुष्याभिजितः क्षिप्रं लघु गुरुस्तथा ।
तस्मिन् पण्यरतिज्ञानं भूषाशिल्पकलादिकम् ।। ६ ।।

पीयूष धारा–हस्ताश्वीति । पूर्वार्द्धं स्पष्टम् । तस्मिन् लघुनक्षत्रे पण्यं विक्रेयवस्तु, रतिः स्त्रीभोगः ज्ञानं शास्त्रादे; भूषा आभरणं, शिल्पं कलाश्चतुः षष्टिकला नृत्यादिकाः—आदि-शब्दाच्चरनक्षत्रोक्तमपि कार्यम् । तदाह वसिष्ठः—"सुरसचिवाश्विनिहस्तास्ताराः स्युः क्षिप्रसंज्ञ-कास्तासु । औषधपण्यविभूषणशिल्पकलाज्ञानकर्मसिद्धिः स्यात् ।। चरधिष्ण्ये कथितान्यपि कार्या-ण्यखिलानि लघुगणे नूनम् ।।" इति । नारदोऽपि—'क्षिप्रं सूर्याश्वि पुष्यभम्" । इत्याह । अत्राभिजिन्नोक्तः दैवज्ञमनोहरे 'अर्ष्टिषेण' इत्युक्त्वा पठितं "लघुक्षिप्रं करस्तिष्योभिजिद्दास्त्रं बृहस्पतिः" इति । अत एवोक्तं श्रीपतिना—"अश्विनी गुरुभमर्कदैवतं साभिजिल्लघुचतुष्टयं स्मृतम्" इति । वसिष्ठादिभिस्तु प्रत्येकं नक्षत्रकृत्येषु अभिजितोऽनुक्तेरित्यत्राऽप्यनुक्तिः वारकृत्ये नारदः—"यज्ञपौष्टिककमांगल्यस्वर्णवस्त्रादिभूषणम् । वृक्षगुल्मलतायान कर्मदेवेज्यवासरे ।।" इति ।। ६ ।।

पीताम्बरा—लघुसंज्ञक नक्षत्र और उनके कृत्य बताए जा रहे हैं—हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित नक्षत्र और गुरुवार की क्षिप्र तथा लघुसंज्ञा है इनमें वस्तु विक्रय, स्त्री सम्भोग

शास्त्रादिकों का ज्ञान, आभरण, गीतनृत्यादिक ६४ कला तथा चर नक्षत्रोक्त कार्य भी सिद्ध होते हैं ॥ ६ ॥

अथ मृदुगणमनुष्टुभाह—

मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षं मृदु मैत्रं भृगुस्तथा ।
तत्र गीताम्बरक्रीडामित्र कार्यं विभूषणम् ॥ ७ ॥

पीयूषधारा—मृगान्त्येति । मृगः, अन्त्यं रेवती, चित्रा मित्रर्क्षमनुराधा, मृगुः शुक्रः मृदुसंज्ञमित्र संज्ञं च । तत्र गीतम्, अंबरं वस्त्रम्, क्रीडा स्त्रिया सह क्रीडा मित्रस्येष्टस्य कार्य विभूषणमलंकार एतत्सिघ्यति । यदाह वसिष्ठः—"मृदुवृन्दं भचतुष्टयमन्त्यत्वाष्ट्राख्यसौम्यमित्रर्क्षम् । मंगलवनिताभूषणमंदिरगीतानि सिध्यन्ति" इति । तत्र नारदः—"नृत्यवादित्रगीतादि-स्वर्णस्त्रीरत्नभूषणम् । भूपण्योत्सवगोधान्यकर्म भार्गववासरे ॥" इति ॥ ७ ॥

पीताम्बरा—मृदुसंज्ञक नक्षत्र और कृत्य—मृगशीर्ष, रेवती, चित्रा, अनुराधा तथा शुक्रवार की मृदु और मैत्रसंज्ञा है । इसमें संगीत, वस्त्र परिधान स्त्री के साथ क्रीडा अपने मित्र के कार्य, और अलंकार धारणादि कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ७ ॥

अथ तीक्ष्णगणमनुष्टुभाह—

मूलेन्द्रार्द्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारुणसंज्ञकम् ।
तत्राभिचारघातोग्रभेदाः पशुदमादिकम् ॥ ८ ॥

पीयूषधारा—मूलेन्द्रेति । मूलम्, ऐंद्रं ज्येष्ठा, आर्द्रा, अहिभमाश्लेषा, सौरिः शनैश्चरः तीक्ष्णसंज्ञ दारुणसंज्ञं च । तत्र तीक्ष्णनक्षत्रे अभिचारकर्माणि उग्रं भयंकरकृत्यं मारणादि, भेदः अत्यन्तमित्रयोः कलहोत्पादनादि, पशूनांहस्त्यादीनां दमः शिक्षा, आदिशब्दात् बंधनादीनि । यदाह वसिष्ठः—"दारुणभानि पुरन्दरकोणपशिवसर्पदैवानि । दारुणवन्धनदहनप्रहरणकर्माणि सिद्धिमायांति ॥" इति । नारदः—"त्रपुसीसायसाश्मास्त्रविषयनासवानृतम् । स्थिरकर्माखिलं वास्तुसंग्रहं सौरिवासरे ॥" इति ॥ ८ ॥

अथ ध्रुवादिसंज्ञाज्ञापकचक्रम्—

संज्ञाः	नक्षत्राणि	दिवसाः
ध्रुवं, स्थिरं	रो. उ. फा. उ. षा. उ. भा.	रविः
चरं, चलं	स्वा. पुन. श्र. ध. श.	चन्द्रः
उग्रं, क्रूरं	पू. फा. पू. षा. पू. भा. भ. म.	भौमः
मिश्रं, साधारण	वि. कृ.	बुधः
क्षिप्रं, लघु	ह. अश्वि. पुष्य. अभि.	गुरुः
मृदु, मैत्रं	मृ. रे. चित्रा. अनु.	शुक्रः
तीक्ष्ण, दारुणं	मू. ज्ये. आर्द्रा. आश्ले.	शनिः

पीताम्बरा—तीक्ष्णसंज्ञक नक्षत्र और कृत्य—मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा और शनिवार की तीक्ष्ण और दारुण संज्ञा है। इनमें उग्र, भयंकर कर्म, मारणादि अत्यन्त पाप कर्म मित्रों में भेद पैदा कर देना, पशु हाथी घोड़े बैल, आदिकों की शिक्षा तथा आदि शब्द से दारुण बन्धन दहन, प्रहरण कर्म भी सिद्ध होते हैं ॥ ८ ॥

अथाधोमुखोर्ध्वतिर्यङ्मुखनक्षत्राणींद्रवंशयाह—

मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेदूर्ध्वास्यमार्द्रेज्यहरित्रयंध्रुवम् ।
तिर्यङ्मुखं मैत्रकरानिलादिति–ज्येष्ठाश्विभानीदृशकृत्यमेषु सत् ॥ ९ ॥

पीयूषधारा—मूलेति । मूलम्, अहिराश्लेषा, मिश्रं कृत्तिकाविशाखे, उग्रं पूर्वात्रयमघाभरण्यः एतानि नवनक्षत्राण्यधोमुखानि ज्ञेयानि । एषु ईदृशकृत्यमधोमुखकृत्यं वापिकूपादि तत्समीचीनमुक्तम् । तदुक्तं गरुडपुराणे—"भरणीकृत्तिकाश्लेषामघामूलविशाखिकाः । तिस्रः पूर्वास्तथा चैव अधोवक्त्राः प्रकीर्तिताः ॥" एषु 'वापीकूपतडागादिखननं च तृणादि' कम् । देवतागारखननं निधानखननं तथा ॥ गणितंज्यौतिषारम्भं खनीबिलप्रवेशनम् । कुर्यादधोगतान्येव कार्याणि वृषभध्वज ॥" इति । अथार्द्रा, इज्यः पुष्यः, हरित्रयं श्रवणधनिष्ठाशततारकाः, ध्रुवमुत्तरात्रयरोहिण्यः एतन्नक्षत्रनवकमूर्ध्वास्यमूर्ध्वमुखं भवेत् । अत्राप्येतादृशकृत्यं प्रासादादि सत्स्यात् तदुक्तं गरुडपुराणे—'रोहिण्यार्द्रा तथा पुष्यो धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् । वारुणं श्रवणं चैत्र नवचोर्ध्वमुखाः स्मृताः । एषु राज्याभिषेकं च पट्टबन्धं च कारयेत् ॥" इति । ऊर्ध्वमुखानि उच्छ्रितानि सर्वाणि एषु च कारयेत् । अथ मैत्रं मृदुनक्षत्रं मृगरेवतीचित्रानुराधाः, करो हस्तः, अनिलःस्वाती, अदितिः पुनर्वसुः ज्येष्ठा, आश्विनम् अश्विनी एतन्नक्षत्रनवकं तिर्यङ्मुखं भवेत् । अत्रापि तादृशमेव कृत्यं चक्ररथहलादिकं भवेत् । तदुक्तं गरुडपुराणे—

"रेवती चाश्विनी चित्रा स्वाती हस्तः पुनर्वसुः । अनुराधा मृगो ज्येष्ठा एताः पार्श्वमुखाः स्मृताः ॥
गजोष्ट्राश्ववलीवर्ददमनं महिषस्य च । बीजानां वपनं कुर्याद्गमनागमनादिकम् ॥
चक्रयंत्ररथादीनां नावादीनां प्रवाहणम् । पार्श्वेषु यानि कर्माणि कुर्यादेतेषु तानि च ॥" इति

ननु सर्वेषामेव कर्मणां प्रार्थक्येन नक्षत्राभिधानादिदं पुनरुक्तं किमर्थमुक्तमिति चेन्न । विशेषनक्षत्रविहितानां कर्मणावश्यककर्त्तव्यत्वे सति कतिपयदिनमध्यमुहूर्तालब्धौ सत्यां कर्मण आकारमधोमुखादिकं विदित्वा तत्तन्नक्षत्रेषु तानि तानि कर्माणि कार्याणि । यानि सर्वथा विशेषतोऽनुक्तान्येवाबिलप्रवेशनिधिखननचक्रयन्त्रहलपरिखाद्यूतक्रीडामेषगर्दभगर्त्तादीनि तेषामेष्वेव नक्षत्रेषु कृतिरुचिता । एवमन्येषामप्यप्रसिद्धानां कर्मणां तिर्यङ्मुखाद्याकारज्ञाने सत्येषु नक्षत्रेषुकर्त्तव्यतौचित्यात् । सामान्येन विशेषभावेन च सुदिनलब्धिः 'द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति' इति न्यायादत्युक्तमेव । सद्यः कालपक्षे तु—'धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेस्य' इति । वचनान्मुहूर्ते कार्यमित्यलमियता ९ ॥

पीताम्बरा—ऊर्ध्व, अधो और तिर्यङ् मुख नक्षत्र बताये जा रहे हैं—मूल, आश्लेषा, मिश्र संज्ञक और उग्र संज्ञक नक्षत्रों का मुख नीचे की ओर होने से ये अधोमुख नक्षत्र कहे जाते हैं । अतः अधोमुख नक्षत्रों में वापी, कूप, देवागार, निधिखनन आदिके अधोमुख कार्यों के प्रारम्भ का मुहूर्त उत्तम होता है ।

आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शततारा, ध्रुव संज्ञक तीनों उत्तरा और रोहिणी, इन नक्षत्रों का मुख, ऊर्ध्व की ओर होने से ये ऊर्ध्वमुख कहे गए हैं।

ऊर्ध्व मुख नक्षत्रों में प्रासाद, राज्याभिषेक पट्टबन्ध और (उच्छ्रिति) ऊँचाई सम्बन्धी निर्माण कार्य शुभ होते हैं।

तथा मृदुसंज्ञक नक्षत्र जैसे—अनुराधा, मृगशीर्ष, रेवती, चित्रा, और हस्त, स्वाती पुनर्वसु, ज्येष्ठा और अश्विनी ये ९ नक्षत्र तिर्यङ्मुख (पार्श्वमुख, सम्मुखमुख, समीपमुख) संज्ञक कहे गए हैं। इनमें सड़क बाँध, यन्त्रादि विस्तार, रथ, नाव आदिकों का प्रारम्भ प्रचलन तथा बीज वपनादि भी शुभ होता है ॥ ९ ॥

अथ प्रवालदन्तशंखसुवर्णवस्त्रपरिधानमुहूर्तं वसन्ततिलकेनाह—

पौष्णध्रुवाश्विकरपञ्चकवासवेज्यादित्येप्रवालरदशङ्खसुवर्णवस्त्रम् ।
धार्यं विरिक्तशनिचन्द्रकुजेऽह्नि न रक्तंभौमे ध्रुवादितियुगे सुभगा न दध्यात् ॥१०॥

पीयूषधारा—पौष्णेति । पौष्णं रेवती, ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरास्तिस्रः, अश्विनी, करपञ्चकं हस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधाः, वासवं धनिष्ठा, इज्यः पुष्यः; आदित्यः पुनर्वसुः, अयं समाहारद्वन्दः—तत्र प्रवालं विद्रुमम् । पवलेति महाराष्ट्रभाषाज्ञाः । 'मूंगा' इति कान्यकुब्जाः । रदा हस्तिदन्ता अर्थाद्वलयादि, शंखः शंखवलयं सुवर्णं वस्त्रं श्वेतम् । एतानि वस्तूनि धार्याणि । तानि रिक्तातिथिशनिचन्द्रभौमरहितेऽह्निदिने धार्याणि । यदाह श्रीपतिः—"रोहिणीषु करपञ्चकेश्विभेत्रुत्तरेपि च पुनर्वसुद्वये । रेवतीषु वसुदैवते शुभे नव्यवस्त्रपरिधानमिष्यते ।।" इति । प्रवालादीनां तु विशेषस्तेनैवोक्तः—करादिपञ्केऽशुभेसपौष्णवासरे स्मृता । धृतिश्च शंखकांचनप्रवालरक्तवाससाम् ।।" इति ।

तत्र दिनानि—

वारानप्याह—"जीर्णं रवौ सततमम्बुभिरार्द्रमिंदौ भौमे शुचे बुधदिने च भवेद्धनाय । ज्ञानाय मन्त्रिणी भृगौ प्रियसंगमाय मन्दे मलाय च नवाम्बरधारणं स्यात् ।।" इति । अतः परिशेषात्सूर्यभौमशनयो निषिद्धाः ।

वर्णभेदेन वस्त्रधारणम्—

रक्तं कौसुम्भादिरङ्गेण रक्तं वस्त्रं भौमे धार्यम् । "मांजिष्ठकौसुम्भकरागयोश्च महीसुतः कांचन भूषणेषु" इति तेनवोक्तत्वात् । "नासत्यपौष्णवसुभैः करपञ्चकेन मार्तण्डभौमगुरुदानवमन्त्रिवारैः । मुक्तासुवर्णमणिविद्रुमशंखदन्तरक्ताम्बराणि विधृतानि भवन्ति सिद्धौ ।।" इति दैवज्ञवल्लभोक्तेश्च ।

अथ स्त्रीणां विशेषः । ध्रुवादितियुगे उत्तरात्रयरोहिणीपुनर्वसुपुष्येषु सुभगा सभर्तृका स्त्री प्रवालादिकं न दध्यात् । उक्तं च दीपिकायां—"पुष्टेंदौ समये शुभे ध्रुवसुराचार्यादितीशेंऽगना नो रत्नं विभृयात्प्रवालकर्माणि शंखेभदन्तौ तथा ।।". इति ।

स्नानादौ च स्त्रीणां निषेधादिः—

क्वचित्तुशततारानक्षत्रे स्त्रीणां स्नानमपि निषिद्धम् । उक्तं च—"रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे या विभर्ति नववस्त्रभूषणम् । सा न योषिदवलम्बते पतिं स्नानमाचरति वारुणेपि या ।।" इति ।

चण्डेश्व रोपि—"स्नानं कुर्वंति यी नार्यश्चन्द्रे शतभिषान्विते। सप्तजन्मभवेद्वन्ध्या विधवा दुर्भगा भृषम् ॥ प्रमादाच्छतभे स्नानं नारीणां यदि जायते । पूजयेत्स्वामिनं तत्र ह्यात्मना च धनेन च ॥' इति । विशेषो राजमार्तण्डे—"अस्तंगते भृगुसुते शयने च विष्णोर्जन्माद्यचापझषगे दिनपे न दध्यात् । रक्तेन्दुभानुदिवसेंशकवर्जिते च शंखं च रक्तपटकं युवतिः कथंचित् ॥" दिनपः सूर्यः । रक्तः भौम इत्याहुः ॥१०॥

पीताम्बरा—(मूगा) प्रवाल, हस्तिदन्त, शंख, सुवर्ण और वस्त्र धारण के शुभ मुहूर्त्त बताए जा रहे हैं—वारों में शनि मङ्गल और सोमवार और तिथियों में रिक्ता तिथि (४। ९। १४) को छोडकर शेष वारों और तिथियों में तथा रेवती, ध्रुवसंज्ञक, अश्विनी, हस्त और उसके आगे के और चार नक्षत्र चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा तथा धनिष्ठा, पुष्य, पुनर्वसु; नक्षत्रों में मूगा, हाथी दांत, शंख, सुवर्ण और नवीन वस्त्र धारण करने चाहिए ।

लालवस्त्र के धारण के लिए मंगलवार शुभ माना गया है । सौभाग्यवती स्त्रियों को, ध्रुवसंज्ञक पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्रों में नूतन वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए ।

शतभिषा नक्षत्र में चन्द्रमा की स्थिति जिस दिन हो उस दिन स्त्रियों के लिए विशेषतः स्नान कर्म भी निषिद्ध है ॥ १० ॥

अथ वस्त्रस्य नवधाविभक्तस्य दग्धादिदोषे शुभाशुभ फलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वस्त्राणां नवभागकेषु च चतुष्कोणेऽमरा राक्षसा–
मध्यत्र्यंशगता नरास्तु सदशे पाशे च मध्यांशयोः ।
दग्धे वास्फुटितेऽम्बरे नवतरे पङ्कादिलिप्ते न स–
द्रक्षोंऽशे नृसुरांशयोः शुभमसत्सर्वांशके प्रान्ततः ॥११॥

पीयूषधारा—वस्त्राणमिति । वस्त्राणां नवभागाः कार्याः । कोणचतुष्टये अमरा देवाः स्थाप्याः । राक्षसा मध्यभूतांशत्रयगता ज्ञेयाः । नराः सदशे दशा सहिते पाशे च पुनर्मध्ययोरंशयोः स्थाप्याः । एतदुपलक्षणं–शयनासनपादुकास्वप्ययं विचारः । तत्र चेद्रक्षोंशे नवतरे अतिनूतने अंबरे वस्त्रे दैवाद्दग्धे स्फुटिते पाषाणधात्वादिभिर्निहते पङ्केन कर्दमेन आदिशब्दाग्दोमयादिभिर्लिप्ते उपहते सति तद्वस्त्रं न सत् शुभफलजनकं न भवति किन्तु मरणं विदधातीत्यर्थः । अथ नृसुरांशयोरेवं वस्त्रस्य दाहादिके सति शुभं कल्याणं स्यात् मनुष्यांशे पुत्रप्राप्तिरित्यर्थः । सर्वांशके राक्षसमनुष्यदेवांशेषु प्रांततः प्रांतभागेऽनिष्टमशुभफलजनकम् ॥

शय्यादावप्येवमेव—

एतत्फलं शय्यासनपादुकास्वपि ध्येयम् । तदुक्तं श्रीपतिना—

"कर्दमकज्जलगोमयलिप्ते वाससि दग्धवति स्फुटिते वा ।
चिंत्यमिदं नवधाभिहितेस्मिन्निष्टमनिष्टफलं च सुधीभिः ॥
निवसंत्यमरा हि वस्त्रकोणे मनुजाः पाशदशांतमध्ययोश्च ।
अपरेपि च रक्षसां त्रयोंशाः शयने चासनपादुकासु चैवम् ॥

भोगप्राप्तिर्देवतांशे नरांशे पुत्राप्तिः स्याद्राक्षसांशे च मृत्युः ।
प्रांते सर्वांशेष्वनिष्टं फलं स्यात्प्लुष्टे वस्त्रे नूतने साध्वसाधु ।।''

तत्र शुभाशुभांशभागे विशेषोऽपि—

अथ राक्षसांशे छत्रध्वजादिसदृशी छेदाकृतिः शुभफलेति विशेषो ध्येयः । देवांशेपि काकोलूकसदृशी छेदाकृतिः शुभफलदेत्यपि विशेषो ज्ञेयः । तदुक्तं तेनैव—'छत्रध्वजस्वस्तिकवर्द्धमानश्रीवत्सकुम्भाम्बुजतोरणानाम् । छेदाकृतिर्नैऋंशुभागगापि पुंसां विधत्ते न चिरेण लक्ष्मी ।। कंकप्लवोलूककपोतकाकक्रव्यादगोमायुखरोष्ट्रसर्पाः । शुष्कद्रुमप्रेतसमा न शस्ताच्छेदाकृतिर्दैवतभागगापि ।।'' इति । अत एव कश्यपः—

''नवांशुकं समं कृत्वा चिंतयेच्च शुभाशुभम् । वसंति देवताः कोणे चांत्यमध्यद्वये नराः ।।
मध्यांशत्रितये दैत्याश्चैवं शय्यासनादिषु । अर्थप्राप्तिर्देवतांशे पुत्रवृद्धिर्नरांशके ।।
हानिः पीडा पिशाचांशे सर्वप्रांतेष्वशोभनम् । शंखचक्राबुजच्छत्रध्वजतोरणसन्निभाः ।।
श्रीवत्ससर्वतोभद्रनंद्यावर्त्तगृहोपमाः । वर्द्धमानः स्वस्तिकेन मृगकूर्मझषाकृतिः ।।
छेदाकृतिर्दैत्यभागेप्यायुरर्थप्रदा नृणाम् । खरोष्ट्रोलूककाकाहिजम्बुकश्चवृकोपमाः ।।
त्रिकोणसूर्याकृतयो देवभागेऽप्यशोभनाः । निन्दितं वसनं दद्याद्द्विजेभ्यः स्वर्णसंयुतम् ।।
आशिषो वाचनं कृत्वा त्वन्यद्वस्त्रं च धारयेत् ।।'' इति ।। ११ ।।

पीताम्बरा—धारित नवीन वस्त्र का कोई अंग संयोग से अग्निदग्ध या, कीचड़ आदि से लिप्त होने से उसका शुभाशुभ फल विचारा जा रहा है—उस वस्त्र के ९ विभाग नीचे दी गई सारिणी क्रम से करने चाहिए । उस वस्त्र के चारों कोणों में देवताओं की स्थापना करनी चाहिए । मध्य के तीन भागों में राक्षसों की स्थापना तथा शेष पास के दो विभागों में नरों की स्थापना करनो चाहिए । इस प्रसंग में यह विचार शय्या, आसन, खड़ाऊं आदि यदि अग्नि से दग्ध आदि हो जांय तो उपरोक्त ९ विभाग की तरह यहाँ पर भी त्याज्य (अशुभ) या ग्रहीत (शुभ) है विचार पूर्वक उपयोग करना चाहिए ।

राक्षस के अंश में, दग्ध, गोबर, पंकज आदि से लिप्त किसी प्रकार धातु आदिक से कर्तित वस्त्र शुभ फलद नहीं होता है । ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति का आसन्न भविष्य अशुभ की ओर समझा जायगा । पीयूष के मत से ऐसी स्थिति में मृत्यु शब्द तक का प्रयोग हुआ है ।

देवता और मनुष्यों के अंश (विभाग) में दग्ध पंक लिप्तादिक वस्त्र से भविष्य की शुभ सूचना समझनी चाहिए ।

देव मनुष्य और राक्षस सभी के विभागों में प्रान्त अर्थात् वस्त्र की सीमा के अन्तिम छोरों (किनारे-किनारे) में जलन आदिक से भी अनिष्ट भविष्य की सूचना समझनी चाहिए ।। ११ ।।

स्पष्टतया समझने के लिए

देवता	नर	देवता
राक्षस	राक्षस	राक्षस
देवता	नर	देवता

अथ क्वचिद्दुष्टदिनेऽपि वस्त्रपरिधानमनुष्टुभाह—

विप्राज्ञया तथोद्वाहे राज्ञा प्रीत्यार्पितं च यत्।
निन्द्येऽपि धिष्ण्ये-वारादौ वस्त्रं धार्यं जगुर्बुधाः ॥ १२ ॥

पीयूषधारा—विप्रेति। धिष्ण्ये नक्षत्रे वारादौ वारतिथियोगादौ व्यतीपातभद्रादौ दुष्टयोगैर्निन्द्योपि दुष्टेऽपि यद्वस्त्रं ब्राह्मणानुज्ञया तथोद्वाहे राज्ञा सन्तोषेणार्पितं दत्तं तद् वस्त्रं धार्यमिति बुधा जगुः। उक्तं च रत्नमालायां—"विप्रादेशात्तथोद्वाहे क्ष्मापालेन समर्पितम्। निन्द्येपि धिष्ण्ये वारादौ वस्त्रं धार्यं जगुर्बुधाः॥ काश्यपेनापि—प्रीत्या क्ष्मापालदत्तं यद्विप्रादेशात्करग्रहे। निन्द्येपि धिष्ण्ये वारादौ धारयेच्च नवांबरम्॥" इति। इदं चोपलक्षणं-तुल्यन्यायत्वाद्राज्ञा तथा ब्राह्मणादिभिस्तथा विवाहादिशुभकृत्ये हस्त्यश्वद्रव्यादिकं तद्भद्रादिदुष्टदिनेऽपि ग्राह्यमित्यन्ये ॥१२॥

पीताम्बरा—आवश्यकता पड़ने पर कहीं-कहीं अशुभ दिन में भी नवीन वस्त्रधारण की व्यवस्था दी जा रही है—वस्त्रधारण में निन्दित नक्षत्र वारादि को भी, विवाह के समय तथा राजा से प्रीतिपूवक प्राप्त वस्त्र को ब्राह्मणों की आज्ञा से धारण कर लेना चाहिए। ऐसी स्थितियों में वस्त्रधारण मुहूर्त देखने की आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रसंग पर राजा से प्राप्त, विवाहादि शुभ कृत्य में हाथी-घोड़ा द्रव्य आदि को भद्रा आदिक दुष्ट दिन में भी धारण किया जा सकता है ॥१२॥

अथ लतापादपारोपणराजदर्शनमद्यगोक्रयविक्रयमुहूर्त्तान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

राधामूलमृदुध्रुवर्क्षवरुणक्षिप्रैर्लतापादपा—
रोपोऽथो नृपदर्शनं ध्रुवमृदुक्षिप्रश्रवोवासवैः।
तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषु मद्यमुदितं क्षिप्रांत्यवह्नींदुभा—
दित्येन्द्राम्बुपवासवेषु हि गवां शस्तः क्रयो विक्रयः ॥१३॥

पीयूषधारा–राधामूलेति। राधा विशाखा, मूलं, मृदु चित्रानुराधामृगरेवत्यः ध्रुवर्क्ष रोहिणी उत्तरास्तिस्रः, वरुणः शततारका, क्षिप्रम् अश्विनीपुष्याभिजितः। अत्राभिजित उत्तराषाढायामंतर्भावात् पृथगुक्तिर्न भवतीति ज्ञेयम्। कुतः। अश्विनीपुष्यहस्तानां लाघवात् मृदुत्वेनाभिधानादभिजिदुक्तिरप्यर्थाक्षिप्ता। एवं चतुर्दश भानि। एतैर्नक्षत्रैर्लतानां पादपानां वृक्षाणां च रोपो वापनं कार्यम्। उक्तं च वाराहेण-"ध्रुवमृदुमूलाविशाखागुरुभं श्रवणं तथाश्विनं हस्तम। शस्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि॥" इति। यत्तु वसिष्ठवचनं-"द्विदैववारीशशशांकमूलध्रुवेषु तिष्यार्कभपौष्णभेषु। वनौषधीगुल्मलतादिकानामारोपणं तूत्तममत्र शस्तम्॥" इति। तत्पादपव्यतिरिक्तवनाद्यारोपणविषयम्। यतः पादपारोपणे चतुर्दशनक्षत्राणि तद्व्यतिरिक्तलताद्यारोपणे एकादश भानि उक्तानि। ननु "सावित्रतिष्याश्विनवारुणानि मूलं विशाखा च मृदुध्रुवाणि। लतौषधीपादपरोपणेषु शभानि भानिप्रतिपादितानि॥" इति श्रीपतिवचनं कथं संगच्छेत? उच्यते। वराहपद्यस्थपादपग्रहणं लतादीनामुपलक्षणमिति मत्वा तदुक्तिः। अनेनैवाशयेन ग्रंथकृदुक्तिरपि।

राजदर्शनमुहूर्तः–

अथ राजदर्शनमुहूर्तः—तत्र ध्रुवमृदुक्षिप्रश्रवोवासवैः उत्तरात्रयरोहिणीचित्रानुराधामृगरेवत्यश्विनी पुष्यहस्तश्रवणधनिष्ठाभिस्त्रयोदशनक्षत्रै र्नृपदर्शनं राजदर्शनं कुर्यात्। उक्तं च रत्नमालायां-सौम्याश्विपुष्यश्रवणधनिष्ठाहस्तध्रुवत्वाष्ट्रभपूषभानि। मैत्रेययुक्तानि नरेश्वराणां विलोकने भानि शुभप्रदानि ।।" इति ।

मद्यारम्भमुहूर्तः–

अथ मद्यारम्भमुहूर्तः—तत्र तीक्ष्णोग्रांबुपभेषु मूलज्येष्ठार्द्राश्लेषापूर्वात्रयमघाभरणीशततारकासु मद्यं मद्यप्रारंभ उदितः। तदाह श्रीपतिः–"रौद्रे पित्र्ये वारुणे पौरुहूते याम्ये सार्पे नैर्ऋते चैव धिष्ण्ये। पूर्वाख्येषु त्रिष्वपि श्रेष्ठ उक्तो मद्यारम्भः कालविद्भिः पुराणैः ।।" इति ।।

गवां क्रयविक्रयमुहूर्तः–

अथ गोक्रयविक्रयमुहूर्तः–तत्र क्षिप्रान्त्यवह्नीन्द्रभदित्येन्द्राम्बुपवासवेषु अश्विनीपुष्यहस्तरेवती विशाखापुनर्वसुज्येष्ठाशततारकाधनिष्ठासु गवां क्रयो मूल्येन परस्माद्ग्रहणं विक्रयो मूल्यग्रहणपूर्वकं दानं सः शस्तः। उक्तं च रत्नमालायाम्—'शाक्रवासवकरेषु विशाखापुष्यवारुणपुनर्वसुभेषु। अश्विपूषभयुतेषु विधेयो विक्रयः क्रयविधिः सुरभीणाम् ।।" इति। एतानि नवभानि। भौमपराक्रमेण तु पञ्चदश भान्यभिहितानि—"हस्तेऽनुराधात्रितये सपौष्णे मृगे च पूर्वाश्विविशाखभेषु। पुष्ये धनिष्ठाद्वितयेऽदितीशे गवां क्रयं विक्रयमामनन्ति ।।" इति। अत्र श्रीपतिवाक्याद्यान्यधिकानि नक्षत्राणि तान्यात्ययिकविषयाणि ।।१३।।

पीताम्बरा—लतावृक्षरोपण, राजदर्शन, मद्य गोक्रय विक्रयमुहूर्त बताये जा रहे हैं— विशाखा, मूल, मृदु और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र शतभिषक् क्षिप्रसंज्ञक इस प्रकार इन चौदह नक्षत्रों में, लताओं और वृक्षों का रोपण करना चाहिए।

ध्रुव, मृदु क्षिप्रसंज्ञक, श्रवण और धनिष्ठा इन तेरहों नक्षत्रों में किसी एक में राजा का दर्शन करना शुभ होता है। (अर्थात् राजा के अतिरिक्त सन्त साधु विद्वान् सदाचारी, तपस्वी आदि महात्माओं के दर्शन भी उक्त मुहूर्त में किये जा सकते हैं।)

तीक्ष्ण उग्र और शततारा इन नक्षत्रों में मद्य निर्माण (आसव-अरिष्ट) शुभ कहा गया है। क्षिप्रसंज्ञक, रेवती, विशाखा, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, धनिष्ठा और शतभिषा, इन ९नक्षत्रों में गाय का मूल्य देकर दूसरे से ग्रहण करना तथा मूल्य लेकर दूसरे को देने का मुहूर्त शुभ कहा गया है ।।१३।।

अथ पशूनां रक्षामुहूर्तं स्थितिनिवेशयानमुहूर्तं चेन्द्रवंशेनाह—

लग्ने शुभे चाष्टमशुद्धिसंयुते रक्षा पशूनां निजयोनिभे चरे।
रिक्ताष्टमीदर्शकुजश्रवोध्रुवत्वाष्ट्रेषु यानं स्थितिवेशनं न सत् ।।१४।।

पीयूषाधरा—लग्ने इति। शुभे शुभस्वामिके लग्नेष्टमशुद्धिसंयुते शुभपापाक्रान्ताष्टमभावरहिते सति स्वीययोनिनक्षत्रे पशूनां रक्षां शस्ता। यदाह श्रीपतिः-"शुभग्रहोदये शुद्धे नैधने स्वर्क्षयोनिषु। रक्षाविधिक्रिया शस्ता पशूनां मुनिभिः स्मृता ।।" इति। स्वीययोनिनक्षत्राणि

विवाहप्रकरणे 'अश्विन्यंबुपयोर्हयः' इत्यादिना वक्ष्यति । चरे चरनक्षत्रेष्वपि रक्षा पशूनां विधेया । "तीक्ष्णे पशूनां दमनं चरे स्यात्पशुपोषणम्" इति भीमपराक्रमोक्ते । रिक्ताश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः, अष्टमी, दर्शोऽमावास्याः कुजो मङ्गलः, श्रवणः, ध्रुवाणि उत्तरात्रयरोहिण्यः, त्वाष्ट्रं चित्रा । एषु भेषु पशूनां यानं गृहाद्बहिर्निस्सारणं स्थितिर्गोष्ठादौ वेशनं प्रवेशनं च न सत् सत्फलजनकं न भवतीत्यर्थः । उक्तं वसिष्ठेन—"त्वाष्ट्रध्रुवश्रीपतिभेषु रिक्ता दर्शाष्टमी भौमादिने पशूनाम् । यात्रा प्रवेशं न कदाचिदेव कुर्याच्च तेषामभिवृद्धिकांक्षी ।।" इति । चशब्दात्स्थितिमपि न कुर्यात् । व्यवहारतत्त्वे तु वाराधिक्यमुक्तम् "स्वयोनिधिष्ण्ये विकुजे पशूनां कर्माथ कुर्यादबुधेंदुमन्दे । यानं प्रवेशं च तिथावशैव-चित्रोत्तरावैष्णवभान्यभेषु ।।" अशैवे चतुर्दशीरहिते ।। उपलक्षणत्वादमावास्यादिरहिते । व्यवहारोच्चये—"पूर्वात्रये धनिष्ठेंद्रपौष्णे सौम्यविशाखयोः । आश्लेषायामथाश्विन्यां यात्रासिद्धिश्चतुष्पदाम् ।।" इति ।। १४ ।।

पीताम्बरा—पशुओं का रक्षादिक मुहूर्त कहा जा रहा है—शुभ स्वामिक लग्नों में जिनसे अष्टम घर में शुभ और पाप ग्रह कोई न बैठा हो तथा अपनी योनि के नक्षत्रों में (घोड़ा, भैंस, व्याघ्र आदि योनियाँ विवाह प्रकरण) तथा चरसंज्ञक नक्षत्रों में भी पशुओं की रक्षा का मुहूर्त शुभ होता है ।

रिक्ता (४।९।१४) अष्टमी, अमावास्या तिथियाँ मंगलवार, श्रवण, ध्रुवसंज्ञक और चित्रा नक्षत्रों में पशुओं को घर से बाहर ले जाना तथा (गोष्ठ) गोशाला में प्रवेश कराना शुभ नहीं होता । चन्द्र, बुध और शनिवारों में स्थिति वेशन शुभ होता है ।। १४ ।।

अथौषधसूच्योर्मुहूर्तं मन्दाक्रान्ताच्छन्दसाह—

भैषज्यं सल्लघुमृदुचरे मूलभे द्व्यङ्गलग्ने
शुक्रेन्द्वीज्ये विदि च दिवसे चापि तेषां रवेश्च ।
शुद्धे रिःफद्युनमृतिगृहे सत्तिथौ नौ जनेर्भे
सूचीकर्माप्यदितिवसुभे तक्षमैत्राश्विधिष्ण्ये ।। १५ ।।

पीयूषधारा—भैषज्यमिति । लघुमृदुचरे अश्विनीपुष्यहस्तचित्रामृगानुराधारेवतीश्रवणधनिष्ठाशततारकास्वातीपुनर्वसुभेषु मूले च भैषज्यम् औषधं प्रारब्धं वा सत् शुभफलदं भवतीत्यर्थः । तथा चाह श्रीपतिः—'पौष्णद्वये चादितिभद्वये च हस्तत्रये च श्रवणत्रये च । मैत्रे च मूले च मृगे च शस्तं भैषज्यकर्मप्रवदन्ति संतः ।।" इति । वसिष्ठोपि—"हस्तत्रये पुष्य पुनर्वसौ च विष्णुत्रये चाश्विनि पौष्णभेषु । मित्रेन्दुमूलेषु च सूर्यवारे भैषज्यमुक्तं शुभवासरेऽपि ।।" इति । द्व्यङ्गलग्ने द्विस्वभावराशिषु मिथुनकन्याधनुर्मीनेषु सत्सु शुक्रेंद्विज्ये विदि च शुक्रचन्द्रबृहस्पतिबुधेषु द्विस्वभावलग्नस्थेषु सत्सु च पुनस्तेषां शुक्रेंद्विज्यबुधानां रवेश्च दिवसे वारे सत्तिथौ रिक्तामारहिते दिने भैषज्य सत् । उक्तं च दीपिकाया—"द्व्यङ्गोदये गुरुबुन्धेन्दुसितेषु तेषां वारे रवेश्च सुविधौ सुतिथौ सुयोगे ।।" इति । रिःफद्युनमृतिगृहे लग्नाद्द्वादशसप्तमाष्टमगृहेषु शुद्धेषु शुभपापरहितेषु सत्सु भैषज्यं सत् । तत्र वर्षफलप्रश्नादिना सत्यायुर्दाययोगे औषधसेवनं हितमित्ययं विशेषो ध्येयः । तदुक्तं श्रीपतिना "द्यूनशत्रुनिधनव्ययशुद्धौ सद्ग्रहेषु नितरां

बलवत्सु । आयुषश्च हितकारिणि योगे कीर्तिता नियतमौषधसेवा ।।'' इति । कश्यपोऽपि—''षट्सप्ताष्टान्त्यशुद्धौ च बालिनः शुभखेचराः । आयुर्दायकरे योगे कर्त्तव्या ह्यौषधक्रिया ।।'' इति । जनेर्भे जन्मनक्षत्रे नो भैषज्यं सत् । तदुक्तं दीपिकायां—''जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु । क्षौरभेषजवादाध्वकर्त्तनेषु च वर्जयेत्'' इति ।।

सूचीकर्ममुहूर्तः—

सूचीकर्ममुहूर्तः—अदितिवसुभत्वाष्ट्रमित्राश्विधिष्ण्ये पुनर्वसुधनिष्ठाचित्रानुराधाश्विनीषु सूचीकर्म सूच्याः सम्बन्धिघटनसीवनादि सकलं कर्म अपिशब्दात्मकवचनमपि कुर्यात् । उक्तं च व्यवहारोच्चये–''अदितिर्वासवं त्वाष्ट्रमैत्रमेदववाजिनः । सूचीकर्मतनुत्राणमेभिर्ऋक्षैः प्रशस्यते ।।'' इति । तनुत्राणं कवचम् ।। १५ ।।

पीताम्बरा—औषध सेवन और सुई से कपड़ा आदि सिलाई के मुहूर्त बताये जा रहे हैं—लघु मृदु और चरसंज्ञक नक्षत्रों और मूल में भी तथा द्विस्वभाव लग्नों (मिथुन, कन्या; धनु और मीन) में रोगी को औषधि की प्रथम मात्रा देनी चाहिए । औषधि ग्रहण में शुक्र, चन्द्रमा, बुध और रविवार भी शुभ कहे गये हैं । जिस लग्न मे १२, ७ और ८ वें घर में शुभ या अशुभ कोई ग्रह न रहे, ऐसे लग्न तथा शुभ तिथियाँ होनी चाहिए । पर जन्म की तिथि नहीं होनी चाहिए । प्रथम औषधि भक्षण मुहूर्त के लिए उक्त मुहूर्त देना चाहिए ।

पुनर्वसु, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा और अश्विनी में सुई से सम्बन्धित कार्य कपड़ा सिलना तथा कवच धारण (शरीर रक्षा कवच) आदि कार्य शुभ होते हैं ।। १५ ।।

अथ क्रयविक्रयनक्षत्रेषु परस्परनिषेधं वदन् क्रयविक्रयनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

क्रयर्क्षे विक्रयो नेष्टो विक्रयर्क्षे क्रयोऽपि न ।
पौष्णाम्बुपाश्विनीवातश्रवश्चित्राः क्रये शुभाः ।। १६ ।।

पीयूषधारा—क्रयर्क्षे इति । वक्ष्यमाणक्रयनक्षत्रे विक्रयो न कार्यः । तथा विक्रयर्क्षे क्रयोपि न कार्यः । नन्विदमयुक्तं विक्रयो नाम मूल्यं गृहीत्वा वस्तुदानम् । क्रयो नाम मूल्यं दत्त्वा वस्तुग्रहणम् । यदा येन क्रयः कर्तव्यः तदान्येन विक्रयोऽपि कर्त्तव्यः । तत्र क्रयविक्रयनक्षत्राणां महाभेदादुभयविधमुहूर्तानुपपत्तिः । उच्यते—विक्रेत्रा यदा मुहूर्तो विक्रयार्थं गृह्यते तदा क्रयिणोऽनुज्ञां लब्ध्वा यावदिष्टं वस्तु स्वगृहात्पृथक् क्रियते तत्कर्म विक्रयशब्दवाच्यम् । यदा तु क्रयिणाक्रयमुहूर्त्तः प्राप्यते तदा विक्रेत्रे मूल्यं द्रव्यं दत्त्वा पृथक् कृत विक्रीतं वस्तु गृह्यते तत्कर्म क्रयशब्दवाच्यमिति मत्वात्र समाधिः । अथवा क्रयिविक्रेत्रोरन्तरस्य क्रयिणः कदाचिन्मुहूर्तासम्भवे ज्ञेयः अनावश्यकत्वात् । आवश्यकत्वे तु मुहूर्त्तगवेषणायां कालविलम्बनिष्पत्तावन्येन तृतीयमुहूर्त्तविचारमनङ्गीकृत्य समवस्तुप्राप्त्या वस्तुग्रहणसिद्धिसम्भवात् तदा क्रेतुरेव मुहूर्त्तविचारः । एवं च क्रेतुरप्यवश्यविक्रेतव्यस्य वस्तुनो यदा ग्रहीता सम्भवेत्तदैव मुहूर्त्तमनालोच्य वस्तुदानमावश्यकम् । मुहूर्त्तविचारतः कालविलम्बे तावद्द्रव्यानुपपत्तेः तदा तु क्रयण एवं मुहूर्त्तविचारः । नन्वेवमपि क्रयविक्रयनक्षत्राणां पार्थक्येनाभिधानात्तयोः परस्परगतनिषेधो न युज्यते । तथा राजदर्शनविहिता

नक्षत्रेभ्योऽन्यनक्षत्रेषु राजदर्शनं निषिद्धमित्यर्थाद्गम्यते 'सर्वं वाक्यं सावधारणं भवति' इति न्यायात् । उच्यते क्रयनक्षत्रे क्रयः कार्य इत्युक्ते विक्रयस्य स्वतन्त्रकर्मत्वात्तत्र क्रयर्क्षे निषेधाभावः । एवं विक्रयर्क्षेष्वपि क्रयनिषेधाभावः । तत्र निषेधे सत्यन्यनक्षत्राणामायमध्यमत्वावगतेः । कदाचित्क्रयनक्षत्राणां मध्यमत्वमङ्गीकृत्य विक्रयस्य विहितमुहूर्त्तानुपलब्धौ तत्र मुहूर्त्तो मध्यमोपि ग्राह्यः । तदर्थमपि वाचनिकस्तन्निषेधः अतः क्रयविक्रयनक्षत्रेभ्यो भिन्ननक्षत्रेषु क्रयविक्रयौ मध्यमावित्यनुमिमीमः । निषेधस्य वाचनिकत्वमुक्तं दीपिकायां "यमादिशक्रादिहुताशपूर्वा नेष्टाः क्रये विक्रयणेऽतिशस्ताः । पौष्णाश्विचित्राश्विनिविष्णुवाताः शस्ताः क्रये विक्रयणे निषिद्धाः ।।" इति ।।

अथ क्रयमुहूर्तः—

अथ क्रयमुहूर्त उच्यते—तत्र पौष्णं रेवती, अंबुपः, शततारका । अश्विनी, वातः स्वाती, श्रवः श्रवणः, चित्रा । एतानि भानि क्रये शुभानि । विक्रयणे निषिद्धानि च । सम्मतिरत्रोक्तैव ।। १६ ।।

पीताम्बरा—क्रय-विक्रय मुहूर्त बताये जाते हैं—मूल्य देकर वस्तु खरीदने ग्रहण करने का नाम क्रय है । मूल्य लेकर वस्तु (पदार्थ) देने का नाम विक्रय है ।

क्रय के नक्षत्रों में विक्रय एवं विक्रय के नक्षत्रों में क्रय नहीं करना चाहिए । यहाँ एक सहज शंका हो जाती है कि क्रय के नक्षत्रों में विक्रय निन्द्य है, तो जिस समय कोई बेचेगा उस समय दूसरा खरीद न करे तो कैसे कोई खरीदेगा या बेचेगा ?

अतः व्यक्ति विशेष ने क्रय मुहूर्त में दूकान में रखी वस्तु को मोल लेना और विक्रय के मुहूर्त में बेचने वाली चीज को बाजार में रखना चाहिए ।। १६ ।।

अथ विक्रयविपण्योर्मुहूर्त्तौ शार्दूलविक्रीडितेनाह—

पूर्वाद्वीशकृशानुसार्पयमभे केन्द्रत्रिकोणे शुभैः
षट्त्र्यायेष्वशुभैर्विना घटतनुं सन्विक्रयः सत्तिथौ ।
रिक्ताभौमघटान्विना च विपणिर्मैत्रध्रुवक्षिप्रभै-
र्लग्ने चन्द्रसिते व्ययाष्टरहितैः पापैः शुभैर्द्व्यायखे ।। १७ ।।

पीयूषधारा—पूर्वेति । पूर्वास्तिस्रः । द्वीशं विशाखा, कृशानुः कृत्तिका, सार्पमाश्लेषा, यमभं भरणी समाहारद्वन्द्वः । एषु नक्षत्रेषु विक्रयः सन् शुभो ज्ञेयः । क्रयो निषिद्धश्च । उक्तेवात्रापिसम्मतिः । अथ केन्द्रे प्रथमचतुर्थसप्तमदशमस्थानेषु त्रिकोणे च शुभैः शुभग्रहस्थितैः षट्त्र्यायेषु षष्ठतृतीयैकादशस्थानेषु स्थितैः अशुभैः पापग्रहैः करणे—"दशमैकादशे लग्ने वित्तकेंद्रत्रिकोणगैः । शुभं पुण्यस्य कर्मोक्तं वर्जयित्वा घटोदयम् ।।" इति । केन्द्रसंज्ञा बृहज्जातके—"कंटककेन्द्रचतुष्टयसंज्ञाः सप्तमलग्नचतुर्थखभानाम् ।।" इति ।।

विपणिमुहूर्तः—

अथ विपणिः—रिक्ताश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः, भौमो मंगलवारः, घटः कुंभलग्नम्, एतान्विना वर्जयित्वेत्यर्थः । अन्येषु तिथिवारलग्नेषु विपणिः हट्टे स्थित्वा क्रयविक्रयाख्यं कर्म

तच्छुभम् । तथा मित्रध्रुवक्षिप्रभैश्चित्रानुराधामृगरेवतीरोहिण्युत्तरात्रयाश्विनी पुष्यहस्तैर्विपणिः । लग्ने चन्द्रसिते मूर्तौ चन्द्र शुक्रे च सतीत्यर्थः । व्ययाष्टरहितैः पापैः क्रूरग्रहैर्द्व्यायखे द्वितीयैकादशदशमे शुभैः शुभग्रहैः । उक्तं च रत्नमालायां–"कुंभराशिमपहाय साधुषु द्रव्यकर्मभवमूर्तिवर्तिषु अव्ययेष्वशुभदायिषूद्गमे भार्गवे विपणिरिन्दुसंयुते ।।" इति ।। १७ ।।

पीताम्बरा—विक्रय करने और बाजार में दूकान खोलने आदि का मुहूर्त कहा जाता है—विशाखा कृतिका, आश्लेषा और भरणी नक्षत्रों में विक्रय (बेचना) शुभ है और खरीदना शुभ नहीं है ।

केन्द्र (१।४।७।१०) त्रिकोण (९।५) स्थानों में शुभ ग्रह रहें । (त्रिषडाय ३।६।११) तीसरे छठे और ग्यारहवें स्थानों में अशुभ ग्रह रहें, कुम्भ लग्न न दी जाय, तथा शुभ तिथियों में बेचना शुभ है ।

तिथियों में रिक्ता तिथियाँ, वारों में मंगलवार, लग्नों में कुम्भ लग्न को त्याग कर अन्य तिथि वार और लग्नों व नक्षत्रों में मिश्र ध्रुव और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रों में, जिस लग्न से शुक्र और चन्द्रमा लग्न में हों, ८ वें, १२ वें स्थानों में पापग्रह न रहें और शुभ ग्रह दूसरे दशवें और ग्यारहवें बैठे हों तो बाजार में बैठकर दुकान का कार्य खरीद-बेच आदि शुभ कहा गया है ।। १७ ।।

अथाश्वहस्तिमुहूर्त्तानिन्द्रवज्रयाह—

क्षिप्रान्त्यवस्विन्दुमरूज्जलेशा–दित्येष्वरिक्तारदिने प्रशस्तम् ।
स्याद्वाजिकृत्यं त्वथ हस्तिकार्यं कुर्यान्मृदुक्षिप्रचरेषु विद्वान् ।। १८ ।।

पीयूषधारा—क्षिप्रांत्येति । क्षिप्रमश्विनीपुष्यहस्ताः, अंत्यं रेवती, वसुर्धनिष्ठा, इंदुर्मृगः । मरुत्स्वाती । जलेशः शततारका । आदित्यं पुनर्वसुः । एषु भेषु वाजिकृत्यमश्वसंबंधि क्रयविक्रयादिकृत्यं कार्यम् । तदुक्तं रत्नमालायां–"पुष्यश्रविष्ठाश्विनिसौम्यभेषु पौष्णानिलादित्यकराव्ययेषु । सवासवर्क्षेषु बुधैः स्मृतानि सर्वाणि कार्याणि तुरंगमाणाम् ।" इति ।। १८ ।।

अत्राश्चवचक्रं दैवज्ञमनोहरे—

"अश्वाकारं लिखेच्चक्रं साभिजिद्भानि विन्यसेत् ।
स्कंधे च सूर्यभात्पंच पृष्ठे च दश भानि च ।। पुच्छे द्वे स्थापयेत्प्राज्ञश्चतुः पादे चतुष्टयम् ।
उदरे विन्यसेत्पंच सखे द्वे तुरगस्य च ।। अर्थलाभो मुखे सम्यग्वाजी नश्यति चोदरे ।
चरणस्थे रणे भंगः पुच्छे पत्नी विनश्यति ।। अर्थसिद्धिर्भवेत्पृष्ठे स्कंधे लक्ष्मीपतिर्भवेत् ।।" इति ।।

इदमश्वारोहणे विचार्यं न ग्रहणे । तथारिक्तारदिने रिक्ताश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः, आरो भौमः । "आरो वक्रःक्रूरदृक् चावनेयः" इति वराहोक्तेश्च । रिक्ताभौमान्वर्जयित्वान्यदिने वाजिकृत्यं प्रशस्तम् । अत्र सामान्य एव निषेध उपनिबद्धो न विशेषतः ।। अथेति । अथ विद्वान् ज्ञाता । मृदूनि चित्रानुराधामृगरेवत्यः, क्षिप्राणि अश्विनीपुष्यहस्ताः, चराणि श्रवणधनिष्ठाशततारकापुनर्वसुस्वात्यः । एषु द्वादशनक्षत्रेषु हस्तिकार्यं कुर्यात् । तदाह वसिष्ठः–"हस्तत्रये सौम्यहरित्रये च पौष्णद्वये पुष्यपुनर्वसौ च । मैत्रेपि सर्वाण्यपि कुंजराणां कर्माणि शस्तान्यखिलानि यानि ।।" इति ।।

हस्तिष्वंकुशार्पणमुहूर्तः—

अथ हस्तिष्वंकुशार्पणमुहूर्तौ व्यवहारोच्चये–"शुभतारे शुभलग्ने शुभांशे शोभने तिथौ। अंकुशाः करिणां योज्याः शनिलग्ने शनेर्दिने" इति ॥

अश्वगजाद्यारोहणमुहूर्तः—

अथाश्वगजाद्यारोहणमुहूर्तोपि तत्रैव–पौष्णाश्विनीवरुणमारुतशीतरश्मिचित्रादितिश्रवणपाणिसुरेज्यवित्तैः। वारेषु जीवशशि सितेन्दुजानामारोहण गजतुरंगरथेषु शस्तम्।।" इति। पाणिर्हस्तः, वित्तं धनिष्ठा ॥ १८ ॥

पीताम्बरा—हाथी घोड़ों की शिक्षा (अंकुश-चाबुक आदि) का मुहूर्त बताया जा रहा है—क्षिप्रसंज्ञक, रेवती, धनिष्ठा, मृगशीर्ष, स्वाती, शततारा, पुनर्वसु, नक्षत्रों तथा रिक्ता तिथि और मंगलवार को छोड़कर शेष तिथि वारों में घोड़े से सम्बन्धित सभी कार्य (क्रय-विक्रय) शुभ कहे गये हैं।

इसी प्रकार विद्वान् ज्योतिषी, मृदुसंज्ञक क्षिप्रसंज्ञक और चरसंज्ञक इन १२ नक्षत्रों में हाथी सम्बन्धी सभी कार्यों के मुहूर्त देते हैं। (अंकुश चलाना आदिक कार्य भी) ॥ १८ ॥

अथ भूषाघटनादिमुहूर्त शार्दूलविक्रीडितेनाह—

स्याद्भूषाघटनं त्रिपुष्करचरक्षिप्रध्रुवे रत्नयुक्
तत्तीक्ष्णोग्रविहीनभे रविकुजे मेषालिसिंहे तनौ।
तन्मुक्तासहितं चरध्रुवमृदुक्षिप्रे शुभे सत्तनौ
तीक्ष्णोग्राश्विमृगे द्विदैवदहने शस्त्रं शुभं घट्टितम् ॥ १९ ॥

पीयूषधारा—स्याद्भूषेति। त्रिपुष्करलक्षणं—'भद्रातिथि रविज–' इत्यादिना वक्ष्यति एवं विधे त्रिपुष्करदिवसे चरक्षिप्रध्रुवे श्रवणधनिष्ठाशततारकापुनर्वसुस्वातीपुष्याश्विनीहस्तरोहिण्युत्तरात्रितयेषु भेषु भूषाघटनम् आभरणघटनं शुभं स्यात्। यदाह वसिष्ठः–'क्षिप्रचलाचलऋक्षे रिक्तामावर्जितेषु दिवसेषु निखिलेषु वासरेष्वपि त्रिपुष्करे भूषणं कार्यम् ॥" इति।

रत्नयुतभूषाघटनम्—

अथ तद्भूषाघटनं रत्नयुतं माणिक्यहीरकादिरत्नयुतं चेच्चिकीर्षितं तदा तीक्ष्णोग्रविहीनभे मूलज्येष्ठार्द्राश्लेशापूर्वात्रयभरणीमघास्त्यक्त्वान्येष्वष्टादशनक्षत्रेषु कार्यम्। तथा रविभौमावारे कार्यम्। तथा मेषालिसिंहे मेषवृश्चिकसिंहलग्ने कार्यम्। तदुक्तंवसिष्ठेन–"स्थिरसाधारणचरभे लघुमैत्रेष्वर्ककुजवारे। तेषामेव विलग्ने माणिक्यमयं विभूषणं कार्यम् ॥" इति। माणिक्यग्रहणमुपलक्षणं रत्नादेः।

मुक्तासहितभूषाघटनम्—

चरध्रुवमृदुक्षिप्रसंज्ञेषु नक्षत्रेषु तद्भूषणघटनम् मुक्तासहितंशुभं भवति। मुक्ताफलग्रहणं रजतादेरुपलक्षणम्। अत्र चन्द्रशुक्रयोर्वारे कर्कवृषतुलालग्नेषु कार्यमित्यपि विशेषो ध्येयः। तदुक्तम् वसिष्ठेन "क्षिप्रमृदुध्रुवचरभे शशिसितयोर्वासरेषु तल्लग्ने। मुक्ताफलरजतमयं भूषणमखिलं सवज्रकं कार्यम् ॥" इति।

धारणमेषामेषु मुहूर्तेष्विति कस्यचिन्मतम्—

केचिदिदं निष्पन्नमेवाभरणमस्मिन्नेव मुहूर्ते धार्यमित्याहुः। अथ तीक्ष्णानि चत्वारि भानि, उग्राणि पञ्च भानि, अश्विनी, मृगः, द्विदैव, विशाखा, दहनः कृत्तिका एषु नक्षत्रेषु घट्टितं शस्त्रं शुभं स्यात्। 'घट्ट चलने' संयोगान्तश्चुरादिर्धातुस्ततः स्वार्थण्यन्तान्निष्ठा क्तः। "आर्द्ध-धातुकस्येड्वलादेः" इतीट्। "निष्ठायां सेटि" इति णिलोपः। उक्तं च ज्योतिःसागरे—"कृत्ति-कासु विशाखासु भौमार्कशनिवासरे। तद्दिने घट्टितं शस्त्रं नृपाणां जयदायकम्॥" इति। दीपिकायां—"मूलेन्दुपूर्वात्रययाम्यपित्र्यशक्राश्विसर्पानलशूलिनश्च। खड्गादिसाधारणकर्म कुर्या-त्तिथौ विलग्ने च शुभे शुभाह्ने॥" इति। साधारणं घट्टनोज्जवलीकरणादिकम्॥

रौप्यसुवर्णादिभाजने भोजनमुहूर्तः—

अथ सुवर्णरूप्यादिभाजने भोजनमुहूर्तोऽपि प्रसङ्गादुच्यते। तत्र वसिष्ठः—"लघुमैत्रध्रुव-मृदुभे सितेन्दुबुधजीववारेषु। हेमरजतादिभाजने भोजनमारोग्यममृतयोगेषु"॥ इति। आरोग्यं नीरोगत्वं भोजनकर्तुः स्यादित्यर्थः॥ १९॥

पीताम्बरा—आभूषण हथियार बनाने के मुहूर्त बताए जा रहे हैं—त्रिपुष्कर योग के दिन (त्रिपुष्कर योग इसी प्रकरण के पचासवें श्लोक में) चरक्षिप्र और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों में आभूषण बनवाना शुभ है।

यदि आभूषणों में मोती, हीरा, माणिक्य आदि का रत्न जड़ित करने हों तो तीक्ष्ण और उग्र संज्ञक नक्षत्रों (मूल ज्येष्ठा आर्द्रा आश्लेषा तीनों पूर्वा भरणी और मघा ये ९ नक्षत्रों) को छोड़कर शेष १८ नक्षत्रों, में सूर्य और मंगलवारों और मेष वृश्चिक और सिंह लग्नों में रत्न जड़ित आभूषण बनाने चाहिए।

चर, क्षिप्र, ध्रुव और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में चन्द्रशुक्रवारों, कर्क वृषतुलादिक शुभ दिनों व लग्नों में मोती से जड़ित आभूषणों का निर्माण शुभ कहा गया है।

तीक्ष्ण, उग्रसंज्ञक तथा अश्विनी मृगशीर्ष, विशाखा, और कृत्तिका इन नक्षत्रों में राजाओं की विजय के लिए शस्त्र (आयुध खड्ग, बम, गोली बारूद आदि) बनाने चाहिए॥१९॥

अथ मुद्रापातनवस्त्रक्षालनमुहूर्तं स्रग्धराच्छन्दसाह—

मुद्राणां पातनं सद्ध्रुवमृदुचरक्षिप्रभैर्वीन्दुसौरे
घस्रे पूर्णाजयाख्ये न च गुरुभृगुजास्ते विलग्ने शुभैःस्यात्।
वस्त्राणां क्षालनं सद्वसुहयदिनकृत्पञ्चकादित्यपुष्ये
नो रिक्तापर्वषष्ठीपितृदिनरविजज्ञेषु कार्यं कदापि॥ २०॥

पीयूषधारा—मुद्राणामिति। ध्रुवमृदुक्षिप्रसंज्ञकैर्नक्षत्रैः राजमुद्राङ्कितसुवर्णरूप्यानिष्पादनं मुद्रापातनमित्युच्यते। 'टंकसाल' इति यवनभाषयाहुः। तत् सत् शुभमित्यर्थः। तथा वींदुसौरे सोमशनिरहिते दिवसे तथा पूर्णजयाख्ये पञ्चमीदशमीपूर्णिमातृतीयाष्टमीत्रयोदश्यः, एतत्संज्ञके घस्त्र दिवसे एतत्संज्ञितासु तिथिषु शुभम्। तथा गुरुशुक्रास्तयोर्मुद्रापातनम् न कार्यम्। तत्र विलग्ने शुभैः

लग्ने शुभग्रहैः सद्भिरित्यर्थः । उक्तं च सारमुच्चये–"मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु योगे प्रशस्ते शनिचन्द्रवर्ज्ये । वारे तिथौ पूर्णजयाख्ययोश्च मुद्राप्रतिष्ठा शुभदा नराणाम् ॥ गुर्वस्ते वा सितास्ते वा मुद्राया घट्टनं क्वचित् । क्रूरग्रहर्क्षांशलग्ने न कार्यं भूतिमिच्छाता ॥" इति । अथ वसुर्धनिष्ठा, हयोऽश्विनो, दिनकृत्पञ्चकानि हस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधाः, आदित्यं पुनर्वसुः, पुष्यः एषु नक्षत्रेषु वस्त्राणांक्षालनं स्वतः शक्तौ स्वयं क्षालनं कार्यम्, नोचेद्रजकाय धावनार्थं देयमित्यर्थः–" रिक्तेति । रिक्ताः प्रसिद्धाः पर्वाणि प्राक् मयोक्तानि । षष्ठी, पितृदिनममावास्या, रविजज्ञेषु शनैश्चरबुधदिवसेषु कदापि वस्त्रधावनं नो कार्यम् । उक्तं च गणेशदैवज्ञैः–"पौष्णादित्यादिपञ्चाश्विवसुषु च भवेद्वाससां क्षालनाद्यं हित्वा षष्ठीं, च पर्वाब्जसुतशनिदिनं श्राद्धवस्त्रंशुभं स्यात् ।" इति । अदितिः पुनर्वसुः आदिरादित्यः । क्वचिद्भौमशनिवारो संक्रान्त्यादिकं निंद्यम् । यदाह चण्डेश्वरः–"शनौ भूमिसुने श्राद्धे षष्ठ्यमावास्ययोस्तथा । वस्त्रक्षालनजो दोषो दहत्यासप्तमं कुलम् । संक्रान्त्यां पञ्चदश्यां च द्वादश्यां च रवेर्दिने । वस्त्रं निष्पीडयेन्नैव क्षारेणापि न योजयेत् ॥" इति ॥ २० ॥

पीता०—सिक्का रुपया पैसा आदि ढालने और वस्त्र धोने के मुहूर्त कहे जा रहे हैं– गुरु और शुक्र का उदय होना चाहिए, ध्रुवक्षिप्रचर और मृदु नक्षत्रों में, सोम शनि रहित शेष ५ वारों में, पूर्णा ५–१०–१५ जया ३–८–१३ तिथियों में, शुभग्रहों से युक्त दृष्ट शुभ लग्नों में मुद्रा पातन (टकसाल में सिक्का निर्माण) शुभ कहा गया है । घनिष्ठा, अश्विनी, हस्त, चित्रा; स्वाती, विषाखा, अनुराधा, पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्रों में (कपड़ों) वस्त्रों को धुलवाना शुभ होता है ।

ध्यान में रखना चाहिए कि कपड़ा धुलवाने के लिए रिक्ता, पर्व और षष्ठी तिथियों के साथ-साथ माता-पिता की श्राद्ध तिथियाँ, शनि और बुधवार कदापि नहीं होने चाहिए ।

आचार्य चण्डेश्वर ने शनि मंगल रविवार और संक्रांति पौर्णमासी द्वादशी तिथियों को वर्ज्य कहा है ॥ २० ॥

अथ खड्गादिधारणं शय्याद्युपभोगं च स्रग्धरयाह—

सन्धार्याः कुन्तवर्मेष्वसनशरकृपाणासिपुत्र्यो विरक्ते
शुक्रेज्यार्केऽह्नि मैत्रध्रुवलघुसहितादित्यशाक्रद्विदैवे ।
स्युर्लग्ने हि स्थिराख्ये शशिनि च शुभदृष्टे शुभैः केन्द्रगैः स्या-
द्भोगः शय्यासनादेर्ध्रुवमृदुलघुहर्यन्त्यकादित्य इष्टः ॥ २१ ॥

पीयूषधारा—सन्धार्या इति । विरक्ते रिक्तावर्जिते शुक्रबृहस्पतिरविवारे तथा मैत्रध्रुवलघुसंज्ञभससहिते पुनर्वसुज्येष्ठाविशाखानक्षत्रेषु कुन्तादयो धार्याः स्युः । कुन्तः । प्रासस्तु कुन्तः" इत्यमरः । वर्म कवचम्, इषवो बाणा अस्यन्ते क्षिप्यंतेऽनेनेतीष्वसनं धनुः, शरो बाण, कृपाणः खड्गः । असिपुत्री छुरिका । सन्नाहोपीति केचित् । तथा स्थिराख्ये वृषसिंहवृश्चिककुम्भानायन्यतमे राशौ लग्ने स्थिते सति शशिनि च समीचीनस्थानस्थिते शुभदृष्टे शुभग्रहदृष्टे शुभग्रहैः केन्द्रगैः सद्भिः कुन्तादयो धार्याः स्युः । तदुक्तं व्यवहारोच्चये–"पुष्येचादितिचित्रपद्मतनये शक्रोत्तरारेवती वाजीहस्तविशाखमित्रसहिते भानौ गुरौ भार्गवे । कुम्भे कीटगृहे वृषे मृगपतौ चन्द्रे शुभैर्वीक्षिते सन्नाहः शरखड्गकुन्तछुरिका धार्या नृपाणां हिताः ॥" इति ॥

खट्वापादुकाद्युपभोगमुहूर्ताः—

अथ ध्रुवमृदुलघुनक्षत्रेषू—हरौ श्रवणे अन्तकं भरणी आदित्ये पुनर्वसावेषु शय्यासनादेः—शय्या खट्वादिरूपा। आसनमौर्णपीठमृगत्वगादि। आदिशब्दात्पादुकाः। एषामुपभोग इष्टो हितः उक्तं च दीपिकायां—"मैत्रेंदुपुष्ययमभादितिवाजिचित्रहस्तोत्तरात्रयहरीज्यविधातृभानि। एतेष्वतीव शयनासनपादुकानां सम्भोगकार्यमुदितं मुनिभिः शुभाहे॥" इति। शुभाहे शुभग्रहवारे॥ २१॥

पीता०—खडग (छुरी तलवार आदि) शस्त्र धारण तथा शय्या और आसन आदिकों के उपभोग मुहूर्त बताए जा रहे हैं—रिक्ता रहित शुक्र बृहस्पतिवार और रविवार के दिनों में मैत्र ध्रुव लघुसंज्ञक पुनर्वसु ज्येष्ठा और विशाखा नक्षत्रों में शुभस्थान गत चन्द्रमा पर शुभग्रहों की संस्थिति हो तो एसे मुहूर्तो मे कुन्त, वाण, खड्ग-छुरिका आदि हथियार ग्रहण करने चाहिए। ये प्राचीन हथियार हैं। किन्तु युग के अनुकूल आधुनिक हथियार ग्रहण करने के लिये भी यही मुहूर्त ठीक समझे जाने चाहिए।

ध्रुव मृदु लघुसंज्ञक श्रवण रेवती पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्रों में शय्या और आसन, पादुका आदि के उपयोग का आरम्भ, शुभ दिन शुभ लग्न में करना चाहिए॥ २१॥

अथांधकादिनक्षत्राणि शार्दूलविक्रीडितेनाह—

अन्धाक्षं वसुपुष्यधातृजलभद्वीशार्यमान्त्याभिधं
मन्दाक्षं रविविश्वमैत्रजलपाश्लेषाश्विचान्द्रं भवेत्।
मध्याक्षं शिवपित्रजैकचरणत्वाष्ट्रेन्द्रविध्यन्तकं
स्वक्षं स्वात्यदितिश्रवोदहनभाहिर्बुध्न्यरक्षोभगम्॥ २२॥

पीयूष धारा—अन्धाक्षमिति। अन्धाक्षमिति जात्यभिप्रायेणैकवचनम्। एवं मन्दाक्षमित्यादावपि।

तेष्वन्धनक्षत्राणि—

वसुर्धनिष्ठा, पुष्यः, धाता रोहिणी, जलभं पूर्वाषाढा, द्वीशं विशाखा, अर्यमा उत्तरा फाल्गुनी, अन्त्यं रेवती एतान्यंधनक्षत्राणि।

मन्दाक्षनक्षत्राणि—

रविर्हस्तः, विश्वे उत्तराषाढा, मैत्रमनुराधा, जलपं शततारका, आश्लेषा, अश्विनी, चन्द्रं मृगः, एतानि मन्दाक्षनक्षत्राणि।

मध्याक्षनक्षत्राणि—

शिव अर्द्रा, पितरो मघा, अजैकचरणः पूर्वभाद्रपदा, त्वाष्ट्रं चित्रा, ऐन्द्रं ज्येष्ठा, विधिरभिजित्, अन्तकं भरणी एतानि मध्याक्षनक्षत्राणि।

सुलोचननक्षत्राणि—

स्वाती, अदितिः पुनर्वसुः, श्रवः श्रवणं, दहनभ कृत्तिका, अहिर्बुध्न्यमुत्तराभाद्रपदा, रक्षो मूलम्, भगं पूर्वाफाल्गुनी सुलोचननक्षाणि। यदाह बसिष्ठः—"अन्धकमथ मन्दाक्षं मध्यमसंज्ञं सुलोचनं पश्चात्। पर्यायेण च गणयेच्चतुर्विधं ब्रह्मधिष्ण्यात्॥ इति।

धिष्ण्याशब्दः स्त्रीलिंगे आर्षः। ब्रह्मधिष्ण्या रोहिणी ततश्चतुर्द्धा पुनः पुनः उक्तान्येव नक्षत्राणि भवन्ति। ननु लाघवार्थं ग्रन्थकृत् प्रवृत्तोऽतो वसिष्ठवचनवल्लघुपद्येनैव तदर्थसिद्धेः प्रत्येकं नक्षत्रगणनारूप गौरव व्यर्थ कृतमिति चेन्न। यद्यपि तत्र शब्दलाघवमस्ति तथापि पुनः पुनर्गणनया प्रमादादन्यथापि गणनया मन्दाक्षादिनक्षत्राणां विपर्याससिद्धौ गौरवमर्थतोऽस्त्येव। प्रस्तुते पद्येऽपि शब्दबाहुल्यम्। तथाप्यर्थस्य निःसंदेहोपनिबन्धादतीव लाघवमस्तीत्यस्मिन्पाठे महागुणः॥ २२॥

पीताम्बरा—चौरी से चली गई या खोई (लुप्त) हुई वस्तु ज्ञान के लिए नक्षत्रों की अन्धाक्ष, मन्दाक्ष, मध्याक्ष और सुलोचन संज्ञाएँ बताई जा रही हैं—धनिष्ठा, पुष्य, रोहिणी पूर्वाषाढ़ा, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी और रेवती–इन सात नक्षत्रों की अन्धाक्ष संज्ञा है।

हस्त, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा, शततारा, आश्लेषा, अश्विनी और मृगशीर्ष इन सातों की संज्ञा मन्दाक्ष है।

आर्द्रा, मघा, पूर्वाभाद्रपद, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित्, और भरणी इन सात नक्षत्रों की संज्ञा मध्याक्ष हैं।

स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, कृतिका, उत्तराभाद्रपदा, मूल और पूर्वाफाल्गुनी इन सात नक्षत्रों की सुलोचन संज्ञा हैं॥ २२॥

अथांधादिनक्षत्राणां फलान्यनुष्टुप्छन्दसाह—

विनष्टार्थस्य लाभोऽन्धे शीघ्रं मन्दे प्रयत्नतः।
स्याद्दूरे श्रवणं मध्ये श्रुत्याप्ती न सुलोचने॥ २३॥

पीयूष धारा—विनष्टार्थस्येति। अन्धनक्षत्रेषु विनष्टस्यापहृतस्यार्थस्य शीघ्रं लाभः प्राप्तिर्भवति। मन्दाक्षनणत्रेषु विनष्टार्थस्य प्रयत्नतो लाभो भवति। मध्ये मध्याक्षनक्षत्रेषु विनष्टार्थस्य दूरे स्वनगरादतीव दूरे भूगागे श्रवणं त्वदीयं द्रव्यममुकेन हृतममुकस्मिन् स्थले तिष्ठति इति लोकश्रुतिर्भवति लब्धिस्तु नास्त्येव। सुलोचननक्षत्रेषु श्रुत्याप्ती न श्रवणमपि न लब्धिरपि नेत्यर्थः। उक्तं च रत्नमालायां—"लाभोऽन्धके निकट एव हृतस्य चौरैर्द्रव्यस्य लब्धिरिह केकरभे प्रयत्नात्। दूरश्रुतिश्चिपिटभेषु कथञ्चिदेव न प्राप्तिरुत्तमविलोचनभे कदाचित्॥" इति। केकरभे मन्दाक्षनक्षत्रे। चिपिटभे मध्यनक्षत्रे॥ २३॥

पीताम्बरा—अन्धाक्षादि नक्षत्रों में धन सम्पति आदि की **चोरी** आदि का **फल बताया जा रहा है कि**—यदि अन्धाक्ष नक्षत्रों में धन की चोरी आदि हो तो शीघ्र उस धन आदि का लाभ हो जाता है।

मन्दाक्ष में नष्ट होने पर प्रयत्न करनं से विनष्ट हुआ धन (चोरी आदि से) प्राप्त हो जाता है।

मध्याक्ष संज्ञक नक्षत्रों में चोरी गये धन का पता बहुत दीर्घ समय में और बहुत दूर मे सुनाई पड़ता है।

किन्तु सुलोचन संज्ञक नक्षत्रों में विनष्ट धन की न तो प्राप्ति ही होती है और न चोर आदि का ही पता लगता है॥ २३॥

अथ धनप्रयोगे निषिद्धनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

तीक्ष्णमिश्रध्रुवोग्रैर्यद्द्रव्यं दत्तं निवेशितम् ।
प्रयुक्तं च विनष्टं च विष्टयां पाते न चाप्यते ॥ २४ ॥

पीयूष धारा—तीक्ष्णेति । तीक्ष्णमिश्रध्रुवोग्रसंज्ञकैर्नक्षत्रैर्यद्द्रव्यं सुवर्णादि दत्तं कालान्तरं विनैवदत्तं न तु स्वसत्तापरित्यागेन दत्तमित्युच्यते । निवेशितं स्वेष्टसमीपे प्रत्ययार्थं स्थापितं प्रयुक्तं कालान्तरे रीतिपुरः सरोत्तमर्णाधमर्णव्यवहारेण कस्मैचिद्दत्तं विनष्टं चौरादिना हृतं स्वयमेव वा क्वचित्यक्त तद्द्रव्य निश्चयेन कदाचिदपि नाप्यते तथा विष्टयां भद्रायां पाते व्यतीपाते महापाते वा हृतं द्रव्यं न प्राप्यते । चकराद्ग्रहणेपि न देयमिति व्याख्येयम् । वसिष्ठवाक्यस्वारस्यात् । उक्तं च वसिष्ठेन—"ध्रुवोग्रसाधारणदारुणर्क्षे निक्षिप्तमर्थं त्वथवा प्रनष्टम् । चौरैर्हृतं दत्तमुपप्लवे वा विष्टयां च पाते नच लभ्यते तत्" इति । उपप्लवे ग्रहणे । यत्तु केचिद्व्यांकुर्वते । निश्चयेन चौरहृतस्य द्रव्यस्य प्राप्त्यप्राप्तिविचारोंऽधकादिनक्षत्रैरेव वा । 'लाभोंधके निकट एव हृतस्य चौरैः' इत्युक्तत्वात् । चौरानिर्णये त्वनेनैव विचार इति । तच्चिन्त्यम् । वशिष्ठवाक्येपि चौरैर्हृतमिति साक्षाच्चौरपदोपादानाद्येन केनापि विचारः कर्तव्य इति युक्तमुत्पश्यामः । एवं चौरानिर्णयेपि स्वेच्छया विचारः तत्रोभयैक्ये प्राप्त्यप्राप्तिनिश्चय एव । उभयैक्याभावे तु प्रयत्नेनेति ॥ २४ ॥

पीताम्बरा—धन व्यवहार के लिए निषिद्ध नक्षत्र बताये जा रहे हैं कि—तीक्ष्ण, मिश्र, ध्रुव और उग्रसंज्ञक नक्षत्रों में, जो द्रव्य, (रुपया, सुवर्ण रत्न आदिक) किसी निश्चित समय की अवधि न देकर दिया गया हो और जिसमें अपनी सत्ता का भी परित्याग न किया गया हो, अथवा वह धन अपने समीप में किसी जगह पर स्थापित किया गया हो जिसे समय पर ले लिया जायेगा, अथवा धनव्यवहार करने की रीति परम्पराओं (लेखा-जोखा आदि) के अनुसार किसी को दिया गया हो, अथवा ऐसा धन जो अपने से ही कहीं छूट गया हो या चोर आदि से जिसका अपहरण किया गया हो तथा भद्रा, व्यतीपात, महापात आदिक योगों में भी जो धन नष्ट हो गया हो उस धन की प्राप्ति कदापि नहीं होती है ॥ २४ ॥

अथ जलाशयखनननृत्यारम्भयोर्मुहूर्त्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मित्रार्कध्रुववासवाम्बुपमघातोयान्त्यपुष्येन्दुभिः
पापैर्हीनबलैस्तनौ सुरगुरौ ज्ञे वा भृगौ खे विधौ ।
आप्ये सर्वजलाशयस्य खननं व्यम्भोमघैः सेन्द्रभै-
स्तैर्नृत्यं हिबुके शुभैस्तनुगृहे ज्ञेऽब्जे ज्ञराशौ शुभम् ॥ २५ ॥

पीयूष धारा—मित्रार्केति । मित्रोऽनुराधा, अर्को हस्तः ध्रुवं रोहिण्युत्तरात्रयम् । वासवं धनिष्ठा, अम्बुपः शततारका, तोयं पूर्वाषाढा, अन्त्यं रेवती; पुष्यः, इन्दुर्मृगः, एतैर्नक्षत्रैस्त्रयोदशभिस्सर्वेषां जलाशयानां वापीकूपतडागनाम्नां तोयाधाराणां खननं शुभमुक्तम् । उक्तं च व्यवहारतत्त्वे—'आप्याम्बुपान्त्यपितृमित्रवसूत्तरार्कर्क्षेद्विज्यभेषु खननं सलिलाश्रयाणाम्' ॥ इति ।

जलाशयखनने लग्नविचारः—

जलाशयखनने लग्नविचारः । पापैः पापग्रहैर्बलरहितैः सद्भिः तन्नौ लग्ने सुरगुरौ बृहस्पतौ ज्ञे

बुधे स्थिते सतीत्यर्थः । लग्नात्खे दशमस्थाने भृगौ, आप्ये जलचरराशौ विधौ सति जलाशयखननं हितम् । उक्तं च रत्नमालायाम्–'लग्ने जीवे ज्ञेऽथवा दुर्बलैश्च क्रूरैः शुक्रे चापि मेयूरणस्थे । आप्ये चन्द्रे सर्वतोयाश्रयाणामारम्भाः स्युः सिद्धये निर्विकल्पम् ॥' इति । कश्यपेनाप्युक्तम्—'गुरौ ज्ञे वा लग्नगते शुक्रे कर्मगते विधौ । आप्यभे जलकार्याणामारम्भः सिद्धिदः स्मृतः ॥' । दीपिकायां तु विशेषः—'पुष्ये मित्रकरोत्तरस्ववरुणब्रह्मांबु पित्र्येन्दुभिः शस्तेक शुभवारयोग तिथिषु क्रूरेष्ववीर्येषु च । पुष्टेन्दौ जलराशिगे दशमगे शुक्रे शुभांशोदये प्रारम्भः सलिलाशस्य शुभदो जीवेन्दुपुत्रोदये ॥' इति । स्वच्छनिष्ठा । ग्रन्थे तु वापीकूपतडागाः नामाकृतिभेदात्प्रत्येकं भिन्नानि नक्षत्राण्युक्तानि । तत्र वापीखननमाह ऋक्षोच्चयः-स्वात्यश्विपुष्यहस्तेषु सर्वदा च पुनर्वसौ । रेवत्यां वारुणे चैव वापीकर्म प्रशस्यते ॥' इति ।

कूपारम्भमुहूर्तः—

अथ कूपारम्भमाह श्रीपतिः—हस्तः पुष्यो वासवं वारुणं च मैत्रं पित्र्यं त्रीणि चैवोत्तराणि । प्राजापत्यं चापि नक्षत्रमाहुः कूपारम्भे श्रेष्ठमाद्या मुनीन्द्राः ॥' इति ॥

तडागारम्भमुहूर्तः—

तडागारम्भमाह वसिष्ठः—मैत्रेन्दुपौष्णोत्तररोहिणीषु देवेज्यवारीश्वरवारिभेषु । प्रारम्भणं सर्वजलाशयानां कार्यं सितेन्द्वंशकवारलग्ने ॥' इति । अत्र वापीकूपनक्षत्राणां पार्थक्येनाभिधानात् तडागारम्भार्थमिदं वचनमवसीयते । बहुवचनमाश्रयाभिप्रायेण । सर्वशब्दोपादानं छंदः परिपूरणार्थम् । तत्र कूपतडागनक्षत्रेषु सदृशनक्षत्रत्यागावशिष्टानां मेलने त्रयोदश नक्षत्राणि भवन्ति । तत्र संक्षेप्तुकामेन व्यवहारतत्त्वकर्त्रा सर्वजलाशयानामारम्भे सामान्यतो जलाश्रयत्वसाधर्म्यादेतानि त्रयोदश भान्युक्तानि तान्येव च ग्रन्थकर्त्रोक्तानि । तत्र वापीकूपतडागानां भेदो लोकप्रसिद्ध एव ।

जीर्णोद्धारकूपादौ मुहूर्तः—

यत्तु पुनर्वसिष्ठेनोक्तम्—'शशांकतोयांशकरार्यमित्रध्रुवांबुपित्र्ये वसुरेवतीषु । उद्यानवाप्यादितडागकूपकार्याणि सिध्यन्ति जलं ध्रुवं स्यात् ॥' इति तज्जीर्णोद्धारविषयम् । प्रागुक्तवाक्यं प्रारम्भणपदोपादानान्नूतनखननविषयमिति पुनरुक्तिपरिहारः ।

नृत्यारम्भमुहूर्तः—

अथ नृत्यारम्भः । तैः प्रागुक्तनक्षत्रैर्व्यभोमघैः पूर्वाषाढामघारहितैः सेंद्रभैर्ज्येष्ठासहितैः मित्रार्कध्रुववासवांबुपांत्यपुष्येंदुनक्षत्रैर्नृत्यं शुभं नृत्यारम्भः शुभ इत्यर्थः । नृत्यं नर्त्तनम् । यदाह वसिष्ठः—'तिस्रोत्तरामित्रगुरुश्रविष्ठाहस्तेन्द्रवारीश्वरपौष्णभेषु । संगीतनृत्यादिसमस्तकर्म कार्यं बिभौमार्कजवासरेषु ॥' इति । श्रीपतिरपि—'हस्तः पुष्यो वासवं चानुराधा ज्येष्ठा पौष्णं वारुणं चोत्तराश्च । पूर्वाचार्यैः कीर्तितश्चन्द्रवर्त्ती नृत्यारम्भे शोभनोऽयं भवर्गः ॥' इति । अथ लग्नशुद्धिः—तत्र हिबुके लग्नाच्चतुर्थस्थाने स्थितैः शुभग्रहैः । वीक्षिते इत्यध्याहारः। कश्यपवाक्यानुरोधात् । तनुगृहे लग्ने बुधसहिते सति अब्जे चन्द्रे ज्ञराशौ मिथुनकन्यास्थे चतुर्थस्थैः शुभग्रहैर्वीक्षिते सति नृत्यारम्भः । यदाह कश्यपः—'लग्नसंस्थे बुधे चन्द्रे बुधराशौ तु वीक्षिते । शुभ-

ग्रहैश्चतुर्थस्थैर्नाट्यारम्भः प्रशस्यते ।।' इति । अत एव रत्नमालायामपि—'बुधे विलग्ने शशिनि ज्ञराशौ शुभवीक्षिते । हिबुकस्थैः शुभैर्नाट्यप्रारम्भः सद्भिरिष्यते ।।' इति । इदं पद्यमेव व्याख्येयम् ।। २५ ।।

पीताम्बरा—जलाशय खनने और नृत्य आरम्भ करने के मुहूर्त कहे जा रहे हैं—अनुराधा, हस्त, ध्रुवसंज्ञक, धनिष्ठा, शततारा, मघा, पूर्वाषाढा, रेवती, पुष्य और मृगशीर्ष इन तेरह नक्षत्रों में किसी भी नक्षत्र के दिन जिस लग्न में बुध अथवा बृहस्पति हो, पापग्रह बलहीन हों, लग्न से दशम मे शुक्र ग्रह की स्थिति किसी जलचर राशि में (कर्क, मकर, कुम्भ और मीन) हो तो ऐसे शुभ मुहूर्त में जलाशय खोदने का कार्य प्रारम्भ करना चाहिए । श्लोक में इनका उल्लेख नहीं है तब भी शुभ तिथि वार योग तो होने ही चाहिए ।

आज के युग में उक्त मुहूर्तों का उपयोगनलकूप, जल-कल आदि कार्यों के आरम्भ में करना चाहिए ।

पूर्वोक्त नक्षत्रों में पूर्वाषाढ़ा और मघा को छोड़कर शेष ११ नक्षत्रों में ज्येष्ठा नक्षत्र को भी मिलाकर इस प्रकार उक्त १२ नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में, जिस लग्न से चतुर्थ स्थान में शुभग्रह हों, बुध लग्न में हो चन्द्रमा बुध की राशि (मिथुन और कन्या किसी एक में) में हों और शुभ तिथि वारों मे नृत्य के प्रथम आरम्भ का शुभ मुहूर्त होता है ।। २५ ।।

अथ सेवकस्य स्वामिसेवायां मुहूर्तं शालिन्याह—

क्षिप्रे मैत्रे वित्सितार्केज्यवारे सौम्ये लग्नेऽर्के कुजे वा खलाभे ।
योनेर्मैत्र्यां राशिपोश्चापि मैत्र्यां सेवा कार्या स्वामिनः सेवकेन ।। २६ ।।

पीयूषधारा—क्षिप्रे मैत्रे इति । क्षिप्रे मैत्रे अश्विनीपुष्यहस्तचित्रानुराधामृगरेवतीनक्षत्रेषु वित्सितार्केज्यवारे बुधशुक्रसूर्यगुरुवारेषु तथा सौम्यग्रहे लग्नसंस्थे सति अर्के सूर्ये वाऽथवा कुजे भौमे वा खलाभे दशमैकादशस्थे सति सेवकेन भृत्येन स्वामिनो राजादेः सेवा कार्या । राजादिदर्शनं प्रागुक्तं । वेतनग्रहणकार्याद्यंगीकाररूपा सेवास्मिन् मुहूर्ते कार्या । तत्रापि स्वामिसेवकयोर्योनिमैत्र्यां सत्याम् । च पुनः राशिपोः स्वामिसेवकयोर्यौ जन्मराशी तयोर्यावधिपति तयोरपि मैत्र्यां प्रीतौ सत्यां कार्या । उक्तं च श्रीपतिना—'शुभे विलग्ने दशमायगे च रवौ कुजे वाथ वशेन योनेः । विद्यायुधाभ्यासरतेन कार्यः समाश्रयः स्वामिनि सेवकेन ।।' इति । कश्यपोऽपि—'दशमैकादशे सूर्ये कुजे वा शुभलग्नगे । विद्यायुधाभ्यासयुक्तसेवाकर्मापि सिद्धयति ।। 'इति । राशिमैत्रोसाहित्यं तु—'वभ्रूरगं श्वैणमिभेन्द्रसिंहमोत्वाखुसंज्ञं त्वजवानरं च । गोव्याघ्रमश्वोत्तरमाहिषं च वैरं नृनार्योर्नृपभृत्ययोश्च ।।' इति । वसिष्ठोक्तिमंगीकृत्य तुल्यन्यायत्वादत्राप्युक्तं गंथकृता । योनिमैत्री राशिमैत्री च विवाहप्रकरणे 'अश्विन्यंबुपयोः' इति 'मित्राणि द्युमणेः' इति च वक्ष्यति ।।२६।।

पीताम्बरा—नौकर रखने का शुभ मुहूर्त कहा जा रहा है—क्षिप्रसंत्रक मित्रसंज्ञक, नक्षत्रों, रवि, बुध, बृहस्पति और शुक्रवार, शुभ लग्न में, सूर्य किम्वा मंगल दशवें या ११ वें हों, स्वामी और सेवक के नामों की राशियों और योनियों में मैत्री हो तो उक्त समय में स्वामी सेवक के नामों से मिलान कर स्वामी ने उस नौकर को अपनी सेवा के लिए नियुक्त करना चाहिए । वेतन ग्रहण कार्यादि स्वीकृति रूप सेवा उक्त मुहूर्त में प्रारम्भ करनी चाहिए। (राशि और योनि मैत्री आदि विवाह प्रकरण में ही है) ।।२६।।

अथ द्रव्यप्रयोगऋणग्रहणमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

स्वात्यादित्यमृदुद्विदैवगुरुभे कर्णत्रयाश्वे चरे
लग्ने धर्मसुताष्टशुद्धिसहिते द्रव्यप्रयोगः शुभः ।
नारे ग्राह्यमृणं तु संक्रमदिने वृद्धौ करेऽर्केऽह्नि य–
त्तद्वंशेषु भवेदृणं न च बुधे देयं कदाचिद्धनम् ।। २७ ।।

पीयूषधारा—स्वात्यादित्येति । स्वातीपुनर्वसुचित्रानुराधामृगरेवतीविशाखापुष्यश्रवणधनिष्ठाशततारकाश्विनीष्वेकादशनक्षत्रेषु द्रव्यप्रयोगः शुभः । द्रव्यं परस्मै ऋणत्वेन देयम् । यदाह भीमपराक्रमः—'मृदुपुष्याश्विनीं चैव विशाखाश्रवणत्रयम् । पुनर्वसौ च शंसन्ति धनादिनिधिवर्त्तनम् ।।' इति । वर्त्तनमृणादिरूपेण दानम् । मिश्रनक्षत्रत्वाद्विशाखानिषेधे प्राप्ते ऋणदाने एव निषेध इति विशेषः । हृतनष्टादौ तु निषिद्धैव । अथ लग्ने चरे मेषतुलामकराणामन्यतमे । धर्मो नवमम्, सुतः पञ्चमम्, अष्टशब्देन लक्षणयाऽष्टमस्थानमुच्यते तेषां शुद्धिः नवमपञ्चमस्थानयोः शुभग्रहसत्त्वं पापग्रहराहित्यं च । अष्टमे तूभयराहित्यमित्यर्थः । एवंरूपया शुद्धया सहिते लग्ने ऋणं देयम् । उक्तं च रत्नमालायां—'शुद्धेषु धर्मात्मजनैधनेषु चरे विलग्ने द्रविणप्रयोगः' इति । आरे मङ्गलवारे ऋणं न ग्राह्यम् । तदुक्तं ज्योतिःप्रकाशे—'ऋणं भौमे न गृह्णीयान्न देयं बुधवासरे । ऋणच्छेदं कुजे कुर्यात्सञ्चयं सोमनन्दने ।।' इति । ऋतुविशेषसंक्रमः संक्रान्तिः । तद्दिवसे वृद्धौ वृद्धियोगे करर्केऽह्नि हस्तनक्षत्रसहिते रविवारे । हस्तार्के इति यावत् । तत्रापि ऋणं न ग्राह्यमिति प्रत्येकं सम्बन्धः । ननु कुतो न ग्राह्यमित्यत आह—यदिति । यद्यस्माद्धेतोस्तदृणंतद्वंशेषु ऋणग्रहीतृकुलेषु भवेत् । तदृणं तत्पुत्रपौत्रादिभिरपिपरिहर्तुमशक्यमित्यर्थः । अर्थादेषु भौमसंक्रात्यादिदिनेषु ऋणमवश्यं परिहर्त्तव्यमिति निष्कृष्टोऽर्थः । 'हस्तेऽर्कवारे संक्रान्तौ यदृणं स्यात्कुलेषु तत् । वृद्धियोगे तथा ज्ञेयमृणच्छेदं तु कारयेत् ।।' इति ज्योतिःप्रकाशकारोक्तेश्च। अथ बुधे बुधवारे कदाचिदपिऋणं न देयम। 'न देयं बुधवासरे' इत्यधुनैवोक्तत्वात् ।।२७।।

पीताम्बरा–द्रव्य (धन) प्रयोग ऋण ग्रहण मुहूर्त बताया जाता है—स्वाती, पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक, विशाखा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और अश्विनी इन ११ नक्षत्रों में, चर लग्न (१।४।७।१०) जिस लग्न से पञ्चम-अष्टम और नवम घरों में कोई भी ग्रह न हो तो ऋण देना शुभ होता है ।

मंगलवार के दिन भूलकर भी ऋण (कर्जा) नहीं लेना चाहिए तथा संक्रान्ति दिन, वृद्धि योग और हस्त नक्षत्रयुक्त रविवार के दिन भी ऋण ग्रहण करने से वह ऋण उसके (ऋणी के) वंश तक चला जाता है, उसके पुत्र पौत्र भी उस ऋण से मुक्त नहीं हो सकते । इसी प्रकार ऋण देनेवाले को भी बुधवार को भूल से भी ऋण नहीं देना चाहिए । यदि धनी पुरुष ज्योतिष पर विश्वास न करता हो या नहीं मानता तब तो अर्थात् बुधवार के दिन ऋण लेनेवाला ही अच्छा रहेगा ।।२७।।

अथ हलप्रवहणमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मूलद्वीशमघाचरध्रुवमृदुक्षिप्रैर्विनार्कं शनिं
पापैर्हीनबलैर्विधौ जललवे शुक्रे विधौ मांसले ।

लग्ने देवगुरौ हलप्रवहणं शस्तं न सिंहे घटे
कर्काजेणघटे तनौ क्षयकरं रिक्तासु षष्ठ्यां तथा ॥२८॥

पीयूषधारा—मूलेति । मूलविशाखामघाभिश्चरध्रुवमृदुक्षिप्रैश्च एकोनविंशतिनक्षत्रैः हलप्रवहणं हलप्रवृत्तिं कुर्यात् । यदाह नारदः । 'मृदुध्रुवक्षिप्रचरविशाखापितृभेषु च । हलप्रवाहं प्रथमं विदध्यान्मूलभे वृषः' इति । विशेषमाह श्रीपतिः—'मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु मूले मघाविशाखासहितेषु भेषु । हलप्रवाहं प्रथमं विदध्यान्नीरोगमुष्कान्वितसौरभेयैः ।' इति । नीरोगाः पीडारहिता ये मुष्का वृषणास्तैरन्विता ये सौरभेया वृषास्तैर्विदध्यादित्यर्थः युक्तं चैतत् । वृषाणां वृषणास्तु फलरूपा अतस्तादृशैर्वृषैः कृतं कर्षणं सफलं स्यात् । चूर्णितवृषणैर्वृषैः कृतं कर्षणं निष्फलमेव भवती । तथार्कं सूर्यवारं शनिवारं च त्यक्त्वा अन्यवारेषु चन्द्रमङ्गलबुधबृहस्पतिशुक्रवारेषु हलप्रवहणं शुभम् । 'पृथग्विनानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्' इति विनायोगे द्वितीया । उक्तं च व्यवहारतत्त्वे—'पूर्वाद्वीशयमाग्निभेर्कयमयोरिक्तासु नेष्टा कृषिः ।।' इति ।

सामान्यतो लग्नशुद्धिः—

अथ सामान्यतो लग्नशुद्धिः । तत्र पापग्रहैर्हीनबलैरुपलक्षिते लग्ने विधौ चन्द्रे शुक्रे मांसले बलिनि पुष्टे उदित इत्यर्थः । तत्र विधौ चन्द्रे जलगृहे जलराशिस्थिते सति देवगुरौ लग्नस्थे च सति हलप्रवहणं शुभम् । उक्तं च रत्नमालायांशक्तिशालिनि सितेथ शीतगौ दुर्बलैरसितभौमभास्करैः । आश्रिते शशिनि वारिजोदये लग्नवर्तिनि गुरो कृषिक्रिया ।।' इति । कश्यपोपि—'गुरौ लग्नगते शुक्रे बलिन्यापोदये विधौ । शस्ता कृषिक्रिया तत्र दुर्बलैः क्रूरखेचरैः ।।' इति ।।

विशेषतो लग्नशुद्धिः—

अथ विशेषतो लग्नशुद्धिः । तत्र सिंहे, घटे कुम्भे, कर्के, अजे मेषे, एणे मकरे, घटे तुलायामेषु लग्नेषु कृषिकर्म न शस्तम् । यतस्तत्क्षयकरं पीडाकरम् । तथा रिक्तासु चतुर्थीनवमीचतुर्दशीषु षष्ठ्यां च क्षयकरम् । तथाशब्दोनुक्तसमुच्चयार्थः । तेनाष्टम्यामपि न शस्तं कृषिकर्म । उक्तं च ज्योतिःसारसागरे—'मेषलग्ने पशून् हन्ति कर्कटे जलजं भयम् । सिंहे सस्यभयं ज्ञेयं ज्ञेयं तुलायां हलसंक्षयः । मकरे शस्यनाशः स्यात्कुम्भे चौरभयं तथा ।। हन्त्यष्टमी बलीवर्दान्नवमी सस्यघातिनी । षष्टी च कीटजननी पशून्हन्ति चतुर्दशी ।।' इति । चतुर्थ्यामपीदं फलं ध्येयम् ।।२८।।

पीताम्बरा—कृषि कर्म में, मुख्य हल चलाने का मुहूर्त बताया जा रहा है—मूल; विशाखा, मघा, चर, क्षिप्र, ध्रुव और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों, शनि और रविवार को छोड़कर शेष वारों में, पाप (अशुभग्रह) ग्रह बलहीन हों, जलचर राशि के नवांश में चन्द्रमा की संस्थिति हो, शुक्र और चन्द्रमा बलवान् (पूर्ण, अपनी उच्च आदिक राशियों में) हों, लग्न में वृहस्पति हों तो ऐसे शुभ समय में खेती के कार्यों में प्रारम्भिक हल जोतना शुभ है । हल चलाते समय मेष, कर्क, सिंह, तुला और कुम्भ लग्न वर्ज्य हैं ।

नीरोग, पीडारहित बैलों द्वारा चलाये गये हल की खेती से नीरोग पीडा रहित परिपक्व बीजयुक्त दानों के अन्नों की उपज होती है ।।२८ ।।

अथ बीजोप्तिमुहूर्तफणिचक्रहलचक्राणि शार्दूलविक्रीडितेनाह—

एतेषु श्रुतिवारुणादितिविशाखोडूनि भौमं विना
बीजोप्तिर्गदिता शुभा त्वगुभतोऽष्टागनीन्दुरामेन्दवः।
रामेन्द्वग्नियुगान्यसच्छुभकराण्युप्तौ हलेऽर्कोज्झिता–
द्रुद्रास्याष्टनवाष्टभानि मुनिभिः प्रोक्तान्यसत्सन्ति च ॥ २९ ॥

पीयूषधारा—एतेष्विति । श्रुतिः श्रवणः, वारुणं शततारका, अदितिः पुनर्वसुः, विशाखा प्रसिद्धा, एतैरुडुभिर्नक्षत्रैर्विनेतेषु पूर्वोक्तनक्षत्रेषु मूलमघाध्रुवमृदुक्षिप्रधनिष्ठास्वातीषु पञ्चदश-नक्षत्रेषु बीजोप्तिर्बीजवपनं शुभम्। उक्तं च रत्नमालायां–'हस्ताश्विपुष्योत्तररोहिणीषु चित्रानुराधामृगरेवतीषु । स्वातौ धनिष्ठासु मघासु मूले बीजोप्तिरुत्कृष्टफला प्रदिष्टा ॥' इति । वसिष्ठेनाप्येतावन्त्येव नक्षत्राण्युक्तानि—'धातृद्वये कौणपपित्र्यपुष्ये हस्तत्रये त्र्युत्तरमैत्रभेषु । पौष्णे धनिष्ठास्वथवाश्विनीषु बीजोप्तिरुत्कृष्टफलप्रदा स्यात्' इति । कौणपो मूलम् । नारदेनाप्युक्तानि–'मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु पितृवायुवसूडुषु । समूलभेषु बीजोप्तिरत्युत्कृष्टफलप्रदा ॥' इति । कश्यपेनापि–'वसुवायुजनैऋत्यक्षिप्रध्रुवमृदूडुषु । सीतां स्मृत्वाथ बीजोप्तिस्त्युत्कृष्टफलप्रदा ॥' इति । अत्र मघा नोक्ता । भौमो मंगलवारो निषिद्धः । अर्थात् सूर्यचंद्रबुधगुरुशुक्रशनीनां वारेषु बीजोप्तिः शुभा । अत्र विनायोगे द्वितीया । 'एष्वैंद्रश्रुतिवारुणेषु च कुजे बीजोप्तिः' इति व्यवहारतत्त्वे उक्तत्वात् । 'नेष्टा कृषिः' इत्यतो नशब्दोऽत्रानुवर्त्तते । तेन बीजोप्तिर्नेष्टेत्यर्थः अत्र कालविशेष-निषेधो राजमार्तण्डे—'रवौ रौद्राद्यपादस्थे भूमेः संजायते रजः । तस्माद्दिवमेतत्तु बीजवापे परित्यजेत् ॥" इति ॥

बीजोप्तौ फणिचक्रम्—

अथ बीजोप्तौ फणिचक्रमुच्यते । अगुभतो न विद्यंते गावः किरण यस्यासावगुः । यस्य स्वरूपो भावः तस्य कुतस्तरां किरणाः तादृशोऽगूराहुस्तस्य भं नक्षत्रं तस्मादित्यर्थः। राह्वधिष्ठितन-क्षत्रादष्टौ भानि असदसमीचीनानि । ततस्त्रीणि शुभानि । तत एकमशुभम् । ततस्त्रीणि शुभानि । ततोप्येकमशुभम् । ततस्त्रीणि शुभानि । ततोप्येकमशुभम् । ततस्त्रीणि शुभानि । ततश्चत्वार्य-शुभानि । एवं बीजोप्तौ सप्तविंशतिनक्षत्राणां शुभाशुभत्वम् । उक्तं च नारदेन—'भवेद्भत्रितयं मूर्ध्नि धान्यनाशाय राहुभात् । गले त्रयं कज्जलाय वृद्ध्यै द्वादश चोदरे ॥ निस्तंडुलत्वं लांगूले भचतुष्टयमीरितम् । नाशो बहिः पंचके स्याद्बीजोप्ताविति चिंतयेत् ॥' इति ॥ राहुर्यस्मिन्नृक्षेऽस्ति तस्मान्नक्षत्रत्रयं मूर्ध्नि मस्तके स्थाप्यं धान्यनाशकरं भवति । ततस्त्रयं गले स्थाप्यं कज्जलाय श्यामिकासंपादनाय स्यात् । ततो द्वादश भानि बहिर्नक्षत्ररहितानि उदरे स्थाप्यानि । तानि धान्यवृद्धये स्युः । ततो नक्षत्रचतुष्टयं पुच्छे निस्तण्डुलत्वकरं स्यात् । ततो-ऽवशिष्टं बहिर्नक्षत्रपंचकं धान्यनाशकरं स्यात् । रत्नमालायामपि—'मूर्ध्नि त्रीणि गले त्रयं च जठरे धिष्ण्यानि च द्वादश । स्यात्पुच्छे च चतुष्टयं बहिरतो भानं स्थितं पंचकम् । क्ष्वेडं कज्जलमन्नवृद्धिरधिका निस्तण्डुलत्वं क्रमात्स्यादीतिप्रभवं भयं च फणिभाद्बीजोप्तिकाले स्फुटम् ॥ इति अत्र केचित्फणिभात्सूर्यनक्षत्रादिति व्याचख्युः । तत्र युक्तिः—सूर्यभादुरगः स्थाप्यः' इति स्वरोदयवाक्यैकवाक्यतालाभात् । तत्र नारदवाक्ये साक्षाद्राहुभादित्युक्तत्वात् ।

राहुधिष्ण्यात्समारभ्य धिष्ण्येष्वष्टसु निष्फलम्' इति कश्यपोक्तेश्च । बीजवापने लग्नशुद्धिमाह वसिष्ठः—'भवरिपुसहजे पापैस्त्रिकोणकेंद्रस्थितैश्च शुभैः । कथितेषु च धिष्ण्येष्वपि शुभलग्ने बीजवापनं कार्यम् ॥ इति ॥

हलप्रवहणचक्रम्—

अथ हलप्रवहणे चक्रमुच्यते—हले इति । हले हलचक्रेऽर्कोज्झितात्सूर्यभुक्तान्नक्षत्रात्क्रमेण त्रीणि नक्षत्राणि असंति अशुभफलानि । ततोऽष्टभानि संति शुभफलदानि । ततो नवभान्यसति । ततोऽष्टौ भानि सन्ति यथा सूर्य आर्द्रायां भुक्तभं मृगः । तत आरभ्य त्रीणि मृगार्द्रापुनर्वसु-भान्यशुभानि । ततः पुष्यश्लेषामघापूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनीहस्तचित्रास्वातीनक्षत्राणि शुभानि । ततो विशाखानुराधाज्येष्ठामूलपूर्वाषाढोत्तराषाढाभिजिच्छ्रवणधनिष्ठानक्षत्राणि अशुभानि । ततः शततारका पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदारेवत्यश्विनीभरणीकृत्तिकारोहिणीनक्षत्राणि शुभानि । एव-मष्टाविंशति भानि भवन्ति । यदाह वसिष्ठः—'अर्कगतागतसंस्थं भत्रितयं नेष्टमुभयतस्त्विष्टम् । षोडशधिष्ण्यं नवकं शिष्टमनिष्टं च लांगले चक्रे ॥' इति अर्केण गतं भुक्तम् । आगतं भोग्यम् । संस्थमाक्रांतम् । एतद्भत्रितयं नेष्टम् । तत उभयतः षोडशधिष्ण्यम् इष्टम् । यथा सूर्यभुक्तभात्प्राक्तनान्यष्टौ शुभानि सूर्यभोग्यभादग्रेतनानि शुभानि स्युरित्यर्थः । शिष्टमुर्वरितं मध्यगतनक्षत्रनवकमनिष्टम् । एवमत्राप्यष्टविंशति भानि । नारदोऽपि—'हलादौ वृषनाशाय भत्रयं सूर्यभुक्तभात् । अग्रे ऋक्षत्रयं लक्ष्म्यै स्यात् । तदग्रे पार्श्वनक्षत्रपंचकं सौख्याय स्यात् । तदग्रे शूलत्रयगतं नक्षत्रनवकं मरणाय स्यात् । तदग्रेन्यत्पार्श्वपंचकं श्रियै स्यात् । तदग्रे पुच्छगतं नक्षत्रत्रयं श्रेष्ठं शुभफलदमिति । अनेनापि प्रकारेण मृगादीनि तान्येव शुभाशुभानि सम्भवन्ति ।

हलचक्राकृतिः—

तत्र हलचक्राकृतिर्लिख्यते । कश्यपोपि—'त्रिष्वष्टसु नवर्क्षेषु सप्तस्वर्कविमुक्तभात् । हानिवृद्धि कर्तृमृत्युर्लक्ष्मीश्चैव यथाक्रमम् ॥' इति हलनक्षत्रोक्त्यनंतरमुक्तवान् ॥ अस्याय-मर्थः—अर्कतिमुक्तभावत्रित्र भेषु हानिः, ततो नवसु भेषु कर्तुर्नाशः, ततः सप्तसु भेषु लक्ष्मी-प्राप्तिरिति यथाक्रमं फलं ज्ञेयम् । अत्र सप्तविंशतिनक्षत्रोक्तेरभिजिद्गणना नास्ति एवं बहुमुनि-संवादे सति 'इनप्रोज्झितर्क्षात्त्रिवह्नित्रिषुत्रिषुत्रिरामाण्यशुभदशुभदानि (३ । ३ । ३ । ५ । ३ । ५ । ३ । ३) क्रमांल्लांगलाख्ये ॥' इति तदुक्तं केववदैवज्ञैर्मुहूर्ततत्त्वे—तच्चिन्त्यम् । ऋषि-वाक्यमूलाभावात् । नन्विदम् 'अर्काक्रांतगतागतान्यनडुहां नाशाय भान्यग्रतो वृद्ध्यै भत्रितयं ततश्च कृषिकृद्घाताय शूलत्रये । धिष्ण्यानां नवकं तदन्तरगते स्यातां श्रियै पंचके यच्चान्यत्त्रि पतयं तदत्र कथितं चक्रे शुभं लांगले ॥' इति श्रीपतिवाक्यालोचनेनोक्तम् । तथाहि । अर्काक्रांत-गतागतानि भान्यनडुहां नाशाय स्युः । तदग्रतो भत्रयं वृद्ध्यै । ततः शूलत्रये धिष्ण्यानां नवकं लेख्यं कृषिकृद्घाताय स्यात् । शूलत्रयमध्यगते पञ्चके नक्षत्रदशकमित्यर्थः । श्रियै स्याताम् । यच्चान्यत्त्रितयं नक्षत्रत्रयं शुभं स्यादिति । एवं सति चक्रन्यासः । अनेन प्रकारेणेनप्रोज्झितर्क्षा-त्त्रीणीत्यादीनि शुभाशुभानि भानि सम्भवन्तीति चेत् । तदेतदविचारितरमणीयम् । नायं श्रीपतिवाक्ये शब्दार्थ उच्यते किन्तु मूलवाक्यादर्शनाबोधपुरस्सरस्वाज्ञानप्रकाशकः ।

शब्दार्थस्त्वयम् । अर्काक्रान्तगतागतानि त्रीणि भानि वृषनाशकराणि स्युः हलमध्यमभागप्रान्ते ततस्त्रीणि वृद्ध्यै हलदण्डाधोभागे ततः पञ्चनक्षत्राण्यपास्याग्रिमाणि नवभानि शूलत्रये त्रिकं त्रिकं कृतिकृद्घाताय स्थाप्यानि । नन्वत्र पञ्चनक्षत्रत्यागे को हेतुरित्यत आह—तदन्तर्गत इति । तच्छब्देन हलोर्ध्वदण्डशूलोर्ध्वदण्डावुच्येते । तयोरन्तरगते मध्ये विद्यमाने पञ्चकं-पञ्चकं च पञ्चके श्रियै स्थाप्ये । नक्षत्रदशकमिति यावत् तच्चान्यद्भत्रितयं हलदण्डोर्ध्वभागे शुभफलदं लेख्यम् । एवं सति ऋषिवाक्यैः सहास्यैकार्थता सम्पद्यते । यत्तु महेश्वरः—'सूर्याधिष्ठितभ-त्त्रिवेदविषयार्कीशेशविश्वार्ककैस्तुल्यान्वेवगतानि भानि मुनिभिः प्रोक्तानि शस्तानि च । आद्ये लांगलयोजने' इत्युवाच—तदपि चिन्त्यमेव । यत्त्वेवमेव टोडरानंदे—'अर्काक्रान्ते' इत्यादि-पद्यव्याख्यानं पितृचरणकृतं, तदपि स्पष्टार्थवसिष्ठाद्यृषिवाक्यविशेषादर्शनकृतं प्रतिभाति । विशेषवाक्यादर्शने तु सामान्यवाक्यस्य नानाविधोऽर्थो व्यातुं शक्यते । विशेषदर्शने तु सामान्य-वाक्यस्य विशेष एवं पर्यवसानमित्यलमतिप्रसक्तानुसक्तेन । अत्र हलचक्रे बीजोप्तिचक्रे वा विहितनक्षत्राणामिष्टफलदस्थानपातसत्त्वे च परिग्रहो न्याय्यः, अन्यथात्वे त्यागः । निषिद्धानां तु सर्वथैव त्याग इति निकृष्टोऽर्थः ॥२९॥

पीताम्बरा—बीज बोने का मुहूर्त बताया जा रहा है—हल चलाने में कहे गये नक्षत्रों में श्रवण, शतभिषा, पुनर्वसु और विशाखा नक्षत्र और मंगलवार को छोड़कर शेष में बीज बोना शुभ होता है ।

राहु युक्त नक्षत्र से बीज बोने के दिन के नक्षत्र तक गिनती करने से ८ संख्या यदि हो तो क्रमशः आठ नक्षत्र अशुभ, पुनः ३ शुभ, पुनः १ अशुभ, पुनः ३ शुभ, ततः १ अशुभ, पुनः ३ शुभ, ततः १ अशुभ, पुनः ३ शुभ, ततः ४ अशुभ होते हैं ।

इसी प्रकार हल चक्र में सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र (दिन नक्षत्र) तक क्रमशः ३, व ९ और ८ वाँ नक्षत्र शुभ और अशुभ समझनी चाहिये । जैसे, सूर्य भरणी में तो अश्विनी में सूर्य गत नक्षत्र, चन्द्रमा पुष्य में, तो भरणी से रोहिणी तक ३ अशुभ नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी तक ८ नक्षत्र शुभ, उत्तराषाढ़ा तक अशुभ, अन्तिम श्रवण से रेवती तक चन्द्रमा के ये ८ नक्षत्र अशुभ समझने चाहिए ॥२९॥

अथ शिरोमोक्षणविरेकादिधर्मक्रियामुहूर्तान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

त्वाष्ट्रान्मित्रकभाद्द्वयेऽम्बुपलघुश्रोत्रे शिरामोक्षणं
भौमार्केज्यदिने विरेकवमनाद्यं स्याद्बुधार्कौ विना ।
मित्रक्षिप्रचरध्रुवे रविशुभाहे लग्नवर्गे विदो
जीवस्यापि तनौ गुरौ निगदिता धर्मक्रिया तद्बले ॥३०॥

पीयूषधारा—त्वाष्ट्राविति । त्वाष्ट्राद्द्वयं चित्रास्वाती, मित्राद्द्वयमनुराधा, ज्येष्ठा, कभाद्द्वयं रोहिणीमृगौ, अंबुपः शततारका, लघूनि अश्विनीपुष्यहस्ताभिजितः, श्रोत्रं श्रवणः, एषु नक्षत्रेषु तथा भौमार्केज्यदिने मंगलगुरुरविवासरेषु शिरामोक्षणं रुधिरवाहिनी नाडी शिरा तस्या मोक्षणं सूक्ष्मशस्त्रघातेन शिरातो रक्तमोक्षणं कुर्यादित्यर्थः । उक्तं च ज्योतिःसारसागरे —'चित्रायुगे विधियुगे मित्रयुगे लघुषु वारुणे विष्णौ । वस्तिविरेचनमेधाः शुभदिनतिथि चन्द्रलग्नेषु ॥' इति । वारे संमत्यभावः । बुधार्की बुधशनैश्चरावपास्यान्यवारेषु पूर्वोक्तनक्षत्रेषु

च विरेकं वमनाद्यम् । औषधेन सुखप्रवृत्तिर्विरेकः वमनं प्रसिद्धमेव । तदाद्यं कर्म कार्यमुक्तम् अथ मित्रक्षिप्रचरध्रुवेषु त्रयोदशनक्षत्रेषु तथा रवौ रविवारे शुभाहे चंद्रबुधगुरुशुक्रवारेषु धर्मक्रिया कोटिहोमरुद्रानुष्ठानादिका कार्या । उक्तं च दीपिकायां—'शुभग्रहार्कवारेषु मृदुक्षिप्रध्रुवोडुषु । शुभराशिविलग्नेषु शुभं शांतिकपौष्टिकम् ।।' इति । शांतिकं धर्मकृत्यं कोटिहोमादिकम् ।। अथ विदो बुधस्य जीवस्य गुरोर्लग्नवर्गे यस्मिन् कस्मिंश्चिल्लग्ने गुरुबुधयोः षड्वर्गे सति तनौ लग्ने च गुरौ सति कर्तुश्च गुरुबले च सति धर्मक्रिया हिता निगदिता । उक्तं च रत्नमालायां–हिबुकेऽर्के गुरौ लग्ने धर्मारम्भो रवेर्दिने ।।' इति । अन्यच्च श्रुतिस्मृतिपुराणादि प्रोक्तानां धर्मकर्मणाम् गुरुज्ञलग्नवर्गेषु प्रारम्भस्तद्बले सति ।।' षड्वर्गज्ञानं विवाहप्रकरणे ग्रन्थकर्तैव वक्ष्यति ।।३० ।।

पीताम्बरा—रक्तवाहिनी नाड़ी से सूक्ष्म छिद्र से रक्त निकालने, जुलाब (उदर मल निकालने) लेने, वमन करने और धर्मक्रिया अनुष्ठान आदि के मुहूर्त बताये जा रहे हैं—रोहिणी मृगशिरा, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, शतभिषा, श्रवण और लघुसंज्ञक नक्षत्रों में मंगल रवि और गुरुवार को रक्तवाहिनो नाड़ी से सूक्ष्म छेद द्वारा रक्तस्राव कराना शुभ है ।

इन्हीं उक्त नक्षत्रों में बुध और शनिवार को छोड़कर शेष वारों में जुलाब (पेट साफ कराना) और वमन (उल्टी) कराना शुभ कहे गये हैं ।

ध्रुव और मित्र संज्ञक नक्षत्रों, शुभ ग्रहों के वारों के साथ रविवार को जिस लग्न में बुध और बृहस्पति का षड्वर्ग हो, बृहस्पति बली हो और लग्न में हो तो ऐसे उत्तम शुभ मुहूर्त में धर्मकृत्य कोटिहोम महारुद्रादिक पूजा अनुष्ठान आदि कार्य सफल होते हैं ।।३०।।

अथ धान्यच्छेदमुहूर्त्तं वसंततिलकेनाह—

तीक्ष्णाजपादकरवह्निवसुश्रुतीन्दु—
स्वातीमघोत्तरजलान्तकतक्षपुष्ये ।
मन्दाररिक्तरहिते दिवसेऽतिशस्ता
धान्यच्छिदा निगदिता स्थिरभे विलग्ने ।।३१।।

पीयूषधारा—तीक्ष्णाजपादेति । तीक्ष्णसंज्ञानि मूलज्येष्ठार्द्राश्लेषाः अजपादः पूर्वाभाद्रपदा अन्यानि प्रसिद्धानि । तथा चित्रा पुष्यश्च । एतेष्वेकोनविंशतिनक्षत्रेषु तथा मंदः शनिः, आरो मंगलः, रिक्तातिथयः प्रसिद्धाः एतेषां समाहारः मंदारिक्तं तेन रहिते विहीने दिवसे तथा स्थिरभे स्थिरराशौ लग्ने सति धान्यच्छेदनम्—'षिद्भिदादिभ्योङ्' इत्यङ् स्त्रियां टाप् । धान्यानां यवादीनां छिदा निगदितोक्ता । निष्पन्नधान्यानां छेदनं कार्यमित्यर्थः । यदाह राजमार्त्तंडः-'रौद्रेपित्र्ये तथा सौम्ये हस्ते पुष्येऽनिले तथा । सस्यच्छेदं प्रशंसन्ति मूलश्रवणवासवे ।।' इति । दीपिकायां तु–'याम्याजपादहिधनानलतोयशक्रचित्रोत्तरोडुषु कुजार्कजवारवर्ज्यम् । शस्तेंदुयोगकरणेषु तिथावरिक्ते धान्यच्छिदा स्थिरनरस्वगृहोदयेषु ।।' इति ।। अहिराश्लेषा । अत्र पूर्ववाक्ये नवनक्षत्राणि युक्तानि । द्वितीयवाक्ये एकादशभानि । वाक्यद्वयं धनिष्ठोपादानात्तत्यागे एकोनविंशतिभान्येव संपद्यन्ते । तानि वचनद्वयप्रामाण्याद्ग्रन्थकर्त्रोपनिबद्धानि । व्यवहारतत्त्वे तु वारावुक्तौ 'धान्यानां लवनं कुर्याद्गुरौ शुक्रे च सर्वदा ।' इति ।।३१।।

पीताम्बरा—धान काटने का मुहूर्त कहा जा रहा है—शनि-मंगलवार रिक्ता तिथियों को छोड़ कर शेष तिथिवारों में तीक्ष्ण संज्ञक कृतिका मृगशिरा तीनों उत्तरा, पूर्वाभाद्रपदा, हस्त, धनिष्ठा, श्रवण, स्वाती, पूर्वाषाढ़ा, भरणी, चित्रा और पुष्य इन १९ नक्षत्रों के किसी एक में, स्थिर लग्नों (२।५।८।११) में धान का काटना शुभ कहा गया है ॥ ३१ ॥

अथ कणमर्दनसस्यरोपणमुहूर्तौ वसन्ततिलकेनाह—

भाग्यार्यमश्रुतिमघेन्द्रविधातृमूल—
मैत्रान्त्यभेषु कथितं कणमर्दनं सत् ।
द्वीशाजपान्निर्ऋतिधातृशतार्यमर्क्षे
सस्यस्य रोपणमिहार्किकुजौ विना सत् ॥ ३२ ॥

पीयूषधारा—भाग्येति । भाग्यं पूर्वफल्गुनी, विधाता रोहिणी, अन्यान्यतिप्रसिद्धानि । एषु नवनक्षत्रेषु कणाश्चणकादयस्तेषां मर्दनं यष्टयाद्याघातादिना वितुषीकरणं समीचीनमित्यर्थः । तदुक्तं व्यवहारोच्चये—'फल्गुन्यौ श्रवणश्चैव मघा मूलं तथा मता । अनुराधा तथा ज्येष्ठा रेवती धान्यमर्दने ॥ केवले सिंहलग्ने वा गुरुशुक्रोदयेऽथवा ।' इति । एवमत्राष्टौ भान्युक्तानि । 'रोहिण्यां मर्दनं कुर्यात्' इति राजमार्तण्डोक्तेः रोहिण्युपादानं च तद्वाक्यविदां—'हस्ते च वापयेद्बीजं संग्रहं वैश्वदैवते । रोहिण्यां मर्दनं कुर्यादुत्तरासु प्रवेशयेत् ॥' इति । अत्र कर्मविशेषेणैकस्यैव नक्षत्रस्योपादानमतिमुख्यतासूचनार्थं न त्वितरनिषेधार्थम् ॥ कुतः वाक्यान्तराणां वैयर्थ्यापत्तेरिति । अथ द्वीशं विशाखा, अजपात्पूर्वाभाद्रपदा निर्ऋतिर्मूलम्, धाता रोहिणी, शतं शततारका, अर्यमर्क्षं उत्तरफल्गुनी, एषु षट्सु भेषु सस्यस्य धान्यस्य रोपणं पूर्ववापितस्थानात्स्थलांतरे आरोपणं सच्छुभम् । इह सस्यरोपणे । आर्किकुजौ शनिभौमौ विना त्यक्त्वान्यवारेषु सूर्यचन्द्रबुधगुरुशुक्रवारेषु कार्यं सस्यस्य रोपणम् । उक्तं च राजमार्तण्डे-'पूर्वाभाद्रपदामूलरोहिण्युत्तरफल्गुनी । विशाखा वारुणं चैव धान्यानां रोपणे वराः ॥' इति ॥ ३२ ॥

पीताम्बरा—चना, मटर, मसूरी आदिकों का मर्दन लकड़ी आदि से पीटकर दाना निकालने (कण मर्दन) और धान्य रोपण (पहिले बोये गए स्थान से दूसरी जगह रोपण) मुहूर्त बताए जा रहे हैं—पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, श्रवण, मघा, ज्येष्ठा, रोहिणी, मूल, अनुराधा और रेवती इन नौ नक्षत्रों में चना आदि का दाना निकालने का प्रारम्भ मुहूर्त शुभ है ।

विशाखा, पूर्वाभाद्रपद, मूल, रोहिणी, शतभिषा और उत्तराफाल्गुनी इन छः नक्षत्रों में धानों को पहिले बोए स्थान से अन्यत्र स्थान में रोपण (रोपाई) करने का शुभ मुहूर्त है ॥३२॥

अथ धान्यस्थितिधान्यवृद्धिमुहूर्तौ वसन्ततिलकेनाह—

मिश्रोग्ररौद्रभुजगेन्द्रविभिन्नभेषु
कर्काजतौलिरहिते च तनौ शुभाहे ।
धान्यस्थितिः शुभकरी गदिता ध्रुवेज्य-
द्वीशेन्द्रदस्रचरभेषु च धान्यवृद्धिः ॥ ३३ ॥

पीयूषधारा—मिश्रोग्रेति । मिश्रं विशाखाकृत्तिके, उग्रं पूर्वात्रयभरणीमघाः, रौद्रमार्द्रा, भुजग आश्लेषा, इंद्रो ज्येष्ठा, एभ्यो दशभ्यो विभिन्नेष्वन्येषु सप्तदशसु भेषु नक्षत्रेषु तथा कर्कः,

अजो मेषः, तौलीस्तुला, एतैर्विहीनतनौ मकरे स्थिरे द्विस्वभावे राशौ लग्नेषु तथा शुभाह्ने शुभग्रहाणां वारे धान्यस्थितिरेकत्र राशीकरणं नाम सनिगदिता । उक्तं च दीपिकायां—'याम्याग्निरुद्राहिविशाखपूर्वामहेन्द्रपित्र्येतरभैः शुभाह्ने । धान्यादिसंस्थापनमेषु शस्तं मृगस्थिरद्व्यंगगृहोदयेषु ॥' इति ध्रुवाणि प्रसिद्धानि । इज्यः पुष्यः, द्वीशं विशाखा, इंद्रो ज्येष्ठा, दस्रावश्विनी, चराणि प्रसिद्धानि । एषु धान्यवृद्धिः—त्वं मह्यं तावत् धान्यं देहि ततोहं मासद्वयेन तुभ्यं सपादं सार्धं वा दास्यामीत्येवंरूपा सा निगदिता । उक्तं च दीपिकायां—'श्रवणत्रय विशाखा ध्रुवपुष्यपुनर्वसूनि वायुश्च । अश्विन्यथ च ज्येष्ठा धनधान्यविवर्द्धने शस्ताः ॥' इति ॥ ३३ ॥

पीताम्बरा—धानों को इकट्ठा करना और सवाया ड्यौढ़ा पर देने का मुहूर्त बताया जा रहा है—मिश्र, उग्र, आर्द्रा, आश्लेषा और ज्येष्ठा इन १० नक्षत्रों को छोड़कर शेष १७ नक्षत्रों, मेष, कर्क, और तुला छोड़ शेष ९ लग्न राशियों में (स्थिर द्विस्वभाव और मकर लग्नों में) तथा शुभग्रहों के शुभ वारों में धान्यों को एक जगह इकट्ठा करना (राशिकरण) शुभ कहा गया हैं ।

तथा ध्रुवसंज्ञक पुष्य, विशाखा, ज्येष्ठा, अश्विनी और चरसंज्ञक नक्षत्रों में धान्य वृद्धि करने के शुभ मुहूर्त हैं । प्राकृतिक धान्य लब्धि को अन्य जनता को सवा, ड्योढ़ा आदि पर उधार लेना धान्यवृद्धि कही जावेगी । जैसे आप मुझे १ क्विण्टल धान उधार दीजिए तो मैं आपको दो महीने में सवा क्विण्टल दूंगा यहां पर यही धान्यवृद्धि कही गई है ।

अथ शान्तिकपौष्टिकादिकृत्येषु मुहूर्तं वसन्ततिलकेनाह—

क्षिप्रध्रुवान्त्यचरमैत्रमघासु शस्तं
स्याच्छान्तिकं च सह मङ्गलपौष्टिकाभ्याम् ।
खेऽर्के विधौ सुखगते तनुगे गुरौ नो
मौढ्यादिदुष्टसमये शुभदं निमित्ते ॥ ३४ ॥

पीयूषधारा—क्षिप्रेति । क्षिप्रादीनि मघान्तानि प्रसिद्धानि । तेषु पौष्टिकं पुष्टिकामकं मंगलं विनायकशान्त्यादि शान्तिकं दुष्टफलदमूलनक्षत्राद्युत्पन्नशान्त्यादि एतानि कर्माणि कार्याणि । उक्तं च दीपिकायां—'मित्रादित्यमघोत्तराशतभिषक्स्वातीविरंच्याच्युतस्वर्गाधीश्वरपूज्यपौष्णरविषु स्फीते तुषारत्विषि । रिक्तापर्व विहाय सौम्यदिवसे शस्ते नृणां भूतये सर्वैः शान्तिकपौष्टिकं निगदितं गर्गादिभिर्निश्चयात् ॥' इति ॥ ३४ ॥

लग्नशुद्धिः—

अथ लग्नशुद्धिः । तत्रार्के सूर्ये खे दशमे सति विधौ चन्द्रे सुखगते चतुर्थस्थे गुरौ तनुगे लग्नस्थे सति शान्त्यादिकं कर्म कार्यम् । उक्तं च रत्नमालायां—'पूर्णे चन्द्रे वेश्मगेकेंबरस्थे लग्ने जीवे वाक्पतेर्वासरे च ॥ श्रीमत्यायुष्याणि कर्माणि कार्याणि ॥' इति तच्छांतिकादिमौढ्ये गुरुशुक्रयोरस्तादिके बाल्यवार्द्धक्यसिंहस्थगुर्वादिरूपे दुष्टसमयेऽपि शुभदम् । तथा निमित्ते केरवाद्युत्पातदर्शने सति शुभदम् । उक्तं च दीपिकायां—'शांतिकर्माणि कुर्वीत रोगे नैमित्तिके तथा । गुरुभार्गवमौढ्येपि दोषस्तत्र न विद्यते ॥' इति । उक्तं चैतत्—यतोऽस्तीदं

शांतिकं नैमित्तिकम्। अनिमित्तिकृता शान्तिर्निमित्तायोपजायते' इति स्मरणात्। तत्र निमित्ते रोगरूपे केत्वाद्युत्पातान्तरदर्शनरूपे च भवति नैमित्तिकम्। तच्च बहुदिनव्यापके गुरु-शुक्रास्तादिदोषेष्वप्यवश्यं विधेयम्। ततो जन्मांतरीयदुरदृष्टसूचकमिदं निमित्तमुत्पन्नं तस्य शांत्या निराशादशुभादृष्टस्यापि निरासः। बहुदिनप्राप्ये निर्दूषणे काले क्रियमाणं शान्तिकं किंचिद्दुर-दृष्टशामकं यद्यपि भवति। तथापि तावद्भिर्दिने दुरदृष्टस्य प्राबल्याद्दुःखप्राप्तिः। यथाऽल्पो-प्यग्निरल्पेनैव जलेन शांतो भवति। तथा शकलनगरदाहको मनुष्यैर्बहुभिर्युगपदगृहीतजलपूर्ण-घटैरेकदा निर्वापितोपि सकलोग्निर्न निर्वाप्यते इत्यर्थतः सर्वथा मौढ्यादिदोषं विनैव यथा कथंचित्कथितं तत्प्रकारेण दिनशुद्धिमंगीकृत्य शान्तिकाद्यवश्यं विधेयम् ॥३४॥

पीताम्बरा—पुष्टि कामना का मंगल कृत्य यथा विनायक शांति आदि, मूल गन्डान्त त्रिक प्रसवजनन, ग्रहणजनन, एकनक्षत्रजनन आदिक शान्ति कर्म मुहूर्त कहे जा रहे हैं—क्षिप्र, ध्रुव, रेवती, चरसंज्ञक अनुराधा और मघा नक्षत्रों में, लग्न से सूर्य दशम, चन्द्रमा चतुर्थ स्थान तथा बृहस्पति लग्न में हो तो ऐसे समय में पौष्टिक ग्रहशान्ति प्रभृति विनायकादि शान्ति कर्म शुभ कहे गए हैं। ये शान्तिकर्म गुरु और शुक्र के अस्त तथा बाल्यादि दोष के समयों में नहीं करने चाहिए। किन्तु किसी निमित्त के उपस्थित होने पर जैसे केतु आदि उत्पात दर्शन से उक्त शान्तियाँ गुरु-शुक्र के अस्तादि समयों में भी की जा सकती हैं ॥३४॥

अथ होमाहुतेः शुद्धमुहूर्तमनुष्टुप्छंदसाह—

सूर्यभात्त्रित्रिभे चान्द्रे सूर्यविच्छुक्रपङ्गवः।
चन्द्रारेज्यागुशिखिनो नेष्टा होमाहुतिः खले ॥३५॥

पीयूषधारा—**सूर्यभादिति**। सूर्यः स्पष्टमानेन यन्नक्षत्रेऽस्ति तस्मात्त्रित्रिभे आदितो भत्रयमेकत्रिकमेवं सप्तविंशतिभेषु नवत्रिकानि भवन्ति। तत्र सूर्यनक्षत्रादारभ्य प्रथमद्वितीयादि-त्रिकस्थे चन्द्रे सति क्रमाद्देवमुखे आहुतिः पतति। यथा प्रथमत्रिके सूर्यस्य ततो बुधस्य ततः शुक्रस्य ततः पंगोः शनेस्ततश्चंद्रस्य ततः—आरस्य भौमस्य ततः इज्यस्य गुरस्ततोऽगो राहोः ततः शिखिनः केतोः। एवं सति यद्दिने पापग्रहमुखे होमाहुतिः पतति सा नेष्टा न शुभदा। अर्थादेव शुभग्रहमुखे आहुतिपातः शुभफलदः। उक्तं च कश्यपेन—

'नक्षत्रे यत्र भानुः स्यात्तदाद्यं भत्रिकं त्रिकम्। सूर्यज्ञशुक्रसौरीणामिन्दुभौमबृहस्पतेः ॥
राहोः केतोश्च निर्दिष्टं वदनादौ शुभाशुभम्। सौख्यार्थनाशः सूर्ये स्यादिंदौ जलमयी कृषिः ॥
भौमेग्निदाहो राष्ट्रस्य बुधे बुद्धिविवर्द्धनम्। गुरौ लब्धिरभीष्टस्य राज्यं सौभाग्यनंदितम् ॥
भार्गवे कार्यसंपत्तिरैहिकामुष्मिकी भवेत्। शनेर्मुखाहुतौ ज्ञेयो राज्यभंगो धनक्षयः ॥
राहोर्मुखाहुतौ हानिःसर्वस्य परिकीर्तिता। केतोः मुखाहुतौ ज्ञेयं दुर्भिक्षं देशविप्लवम् ॥
मरणं प्राणिनां चैव राज्यभंगस्तथैव च। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ग्रहनक्षत्रसंगमे ॥
दुष्टे न कुर्याद्धवनमित्याहुर्भार्गवादयः ॥' इति।

तदयमत्र निष्कृष्टोऽर्थः। सूर्याक्रांतनक्षत्राच्चंद्रनक्षत्रस्थत्रिकत्रिकगणनया पापमुखे आहुति-र्निन्द्या। शुभग्रहमुखे समीचीना। अत एव पितृचरणैरप्युक्तं—'विवस्वदृक्षात्त्रिकमेकमेवंविधे स्थितेर्कज्ञसितार्कजानाम्। चन्द्रारजीवागुशिखावदास्ये होमाहुतिः पापमुखे निषिद्धा ॥' इति। गुर्जरदेशे प्रसिद्धमिदम्।

पापग्रहमुखे हवने शांतिः—

अथ दैवात्कृतस्य पापग्रहमुखे हवनस्य शांतिरुक्ता विष्णुधर्मोत्तरे—'क्रूरग्रहमुखे चैव संजाते हवने शुभे । शांतिं विधाय गां दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।। आयसीं प्रतिमां कृत्वा निःक्षिपेत्तामधोमुखीम् । गोमूत्रमधुगंधाद्यैरर्चितां प्रतिमां ततः ।। कुण्डे निधाय संपूज्य तत्र होमो विधीयते ।।' ३५ ।।

पीताम्बरा—"यज्ञ यागों में अग्नि में प्रथम आहुति शुभ ग्रहों की होनी चाहिए ।।" इसका विचार किया जा रहा है—स्पष्ट मान से सूर्य जिस नक्षत्र पर है उस नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक अर्थात् दिन नक्षत्र तक गणना से क्रमशः तीन-तीन नक्षत्रों में २७ ÷ ३ = ९ ये ९ ग्रहों के भाग होते हैं । ९ ग्रहों में प्रथमादि नवम पर्यन्त विभागों के क्रमशः (१) सूर्य, (२) बुध, (३) शुक्र, (४) शनि, (५) चन्द्रमा, (६) मंगल, (७) बृहस्पति, (८) राहु और (९) केतु ये हवन में ग्रहों के मुख कहे गए हैं ।

उदाहरण में जैसे संवत् २०२८ चैत्रशुक्ल नवमी रविवार तदनुसार ता० ४-४-७१ को सूर्य रेवती नक्षत्र में हैं और इस दिन चन्द्रमा पुनर्वसु नक्षत्र में है । रेवती से पुनर्वसु तक संख्या ८ में तीनका भाग देने से ८ ÷ ३=लब्धि २, शेष २ अर्थात् तीसरे ग्रह शुक्र का मुख में अग्नि है। अतः इस दिन किये गए हवन में प्रथम आहुति शुक्र शुभग्रह के मुख में जावेगी । उत्तम शुभफल होगा । पापग्रह के मुख में होम की आहुति नहीं पड़नी चाहिए । उसका फल अशुभ होता है ।

यदि दैवात् भूल से पापग्रह के मुख में आहुति चली गई तो ऐसी स्थिति में शान्ति कर्म के साथ तपस्वी आचार निष्ठ ब्राह्मण को गौ का दान देना चाहिए । शान्ति के अनेक उपाय शास्त्रान्तर में सम्यक् उपलब्ध होते हैं ।।३५।।

अथ यद्दिने होमश्चिकीर्षितस्तद्दिने वह्निवासवशेन शुभाशुभफलमिंद्रवज्रयाह—

सैका तिथिर्वारयुता कृताप्ता शेषे गुणेऽभ्रे भुवि वह्निवासः ।
सौख्याय होमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च ।। ३६ ।।

पीयूषधारा—सैकेति । शुक्लादिमासगणनया वर्त्तमानतिथिर्गण्यैकयुता वर्त्तमानवारयुता चतुर्भक्ता यच्छेषं तद्गुणमितं शून्यमितं च तदा वह्नेर्वासो वसतिस्थानं भुवि वर्त्तते । तत्फलमाह सौख्यायेति । होमदिवसे भुवि वह्निवासः सौख्यजनको भवतीत्यर्थः । अथ शशियुग्मशेषे क्रमेणैक-द्विमिते शेषेऽग्निवासो दिवि स्वर्गे । तत्फलं कर्तुः प्राणनाशो मरणं भवेत् । द्विमिते शेषेग्निवासो भूतले पातालेऽस्ति । तत्फलं कर्तुरर्थनाशो द्रव्यनाशः । उक्तं च—

तिथिवारयुतिः सैका वेदभक्तावशेषकात् । निवासोग्नेर्व्योम्नि रूपे वित्तप्राणविनाशकः ।
पाताले द्विकशेषेण धनसंचयनाशकः । गुणवेदावशेषेण भूमौ विपुलसौख्यदः ।।
संस्कारेषु विचारोऽस्य न कार्यो नापि वैष्णवे ।
नित्ये नैमित्तिके कार्ये नचाब्दे मुनिभिः स्मृतः ।।'इति।।३६।।

पीताम्बरा—होम के दिन अग्नि का वास भूमि में होना चाहिए—शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से कृष्णपक्ष अमा तक ३० तिथियों में वर्तमान तिथि में १ जोड़ कर उसमें वार संख्या (रवि से शनि तक ७) जोड़कर इस जोड़ में ४ का भाग देने से यदि शून्य और तीन (०, ३) शेष बचें तो भूमि में अग्नि का वास होता है भूमि में अग्निवासक तिथि का हवन, उत्तम शुभेष्ट फलद होगा ।

४ का भाग देने से यदि १ शेष बचे तो स्वर्ग में अग्नि की स्थिति में होम करने से प्राणनाश, और २ बचने से अग्नि पाताल में रहने से इस दिन किये गये हवन से धन का नाश होता है। जैसे पूर्व उदाहरण में नवमी ९ + १ = १० + रविवार १ = ११ ÷ ४ = शेष ३ भूमि में ही अग्निवास होने से हवन के लिए उत्तम सिद्ध होता है ॥३६॥

उपनयन विवाहादिक संस्कारों एवं नित्य नैमित्तिक शुभ कार्यों में उक्त अग्निवास विचार की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ॥३६॥

अथ प्रतिवर्षोत्पन्नवान्नभक्षणमुहूर्तमनुष्टुभाह—

नवान्नं स्याच्चरक्षिप्रमृदुभे सत्तनौ शुभम्।
विना नन्दाविषघटीमधुपौषार्किभूमिजान् ॥३७॥

पीयूषधारा।—नवान्नमिति। चरक्षिप्रमृदुसंज्ञकद्वादशभेषु तथा सत्तनौ समीचीनलग्ने शुभग्रहैर्युते दृष्टे चेत्यर्थः। परन्तु नन्दाः प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः विषघटीविवाहप्रकरणे वक्ष्यमाणाः मधुं चैत्रमासं पौषं च आर्कि शनिं भूमिजं मङ्गलवारम् एतान्विना वर्जयित्वा नवान्नभक्षणं शुभं स्यात्। यदाह भुजबलः—'नवान्नभोजनं नृणां मृदुक्षिप्रचरैः शुभम्। शुभेक्षितयुते लग्ने विषनाडीं विवर्जयेत्। नवान्नं न च नन्दायां मासे पौषे मधौ तथा॥' इति ॥३७॥

पीतां०—प्रतिवर्ष उत्पन्न नये अन्नों का सुस्वादु भोजन मुहूर्त—चर, क्षिप्र और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों, शुभग्रहों से युक्त दृष्ट, शुभग्रहों की लग्नोंमें नन्दा (१।६।११) तिथि को छोड़कर शेष तिथियों में, विष घटिकाओं को छोड़कर शेष घटिकाओं में (विवाह प्रकरण में) चैत्र, पौष मास को छोड़कर शेष दशों मासों में, शनि और मंगलवार को छोड़कर शेष वारों में नवीन अन्न का भक्षण मुहूर्त उत्तम होता है ॥३७॥

अथ नौकाघटनमुहूर्तमनुष्टुभाह—

याम्यत्रयविशाखेन्द्रसार्पपित्र्येशभिन्नभे।
भृग्विज्यार्कदिने नौकाघटं सत्तनौ शुभम् ॥३८॥

पीयूषधारा—याम्येति। याम्यत्रयं भरणीकृत्तिकारोहिण्यः, विशाखा इन्द्रो ज्येष्ठा, सार्पमाश्लेषा, पित्र्यं मघा, ईश आर्द्रा एतैर्वर्जिते रहिते अवशिष्टेष्वष्टादशनक्षत्रेषु तथा शुक्रगुरुसूर्यवारे सत्तनौ प्राग्व्याख्यातगुणविशिष्टे लग्ने नौकाघटनं निर्म्माणं शुभम्। उक्तं च दीपिकायां—'नभहरिघटलग्ने शुक्रपित्र्यद्विदैवे त्रिनयनविधियाम्यद्वन्द्वसार्पान्त्यभेषु। सुकरणतिथियोगे शुक्रजीवार्कवारे तरणिघटनमिष्टं चन्द्रताराविशुद्धौ॥' इति। नभे मिथुनकन्ये। हरिः सिंहः तरणिर्नौः।

नौकाया घटनस्थानाच्चालने यात्रायां च मुहूर्ताः—

अथ घटनास्थानान्नौचालनमुहूर्तो मयोच्यते। दीपिकायां—'शुभाहे विष्णुयुग्मेन्दुभगमैत्राश्विपाणिषु। चालनं घटनस्थानान्नावः शुभतिथीन्दुषु॥' इति। दीपिकायां नौकायात्रामुहूर्तोपि—'अश्विकरेज्यसुधानिधिपूर्वामित्रधनाच्युतभे शुभलग्ने। तारकयोगतिथीन्दुविशुद्धौ नौगमनं शुभदं शुभवारे॥' इति ॥३८॥

पीताम्बरा—नौका (नाव) निर्माण और निर्माण स्थान से नाव प्रचलन मुहूर्त—भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, विशाखा, ज्येष्ठा, आश्लेषा, मघा, आर्द्रा इन ९ नक्षत्रों को वर्जित कर शेष

१८ नक्षत्रों में सूर्य गुरु और रविवारों में शुभग्रहों की लग्नों में नौका की रचना का प्रारम्भ शुभ होता है।

शुभग्रह के लग्नों व वारों, तथा श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, अश्विनी, हस्त में नाव को उसके निर्माण स्थान से चलाने का मुहूर्त शुभ है। तथा शुभ तिथिवार योग लग्न के साथ अश्विनी, हस्त, पुष्य, मृगशीर्ष, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, धनिष्ठा और श्रवण नक्षत्रों में नौका यात्रा (समुद्रादि यात्रा उपलक्षण से) शुभद होती है।।३८।।

अथ वीरसाधनाभिचारयोर्मुहूर्त्तमनुष्टुभाह—

मूलार्द्राभरणीपित्र्यमघेसौम्ये घटे तनौ।
सुखे शुक्रेऽष्टमे शुद्धे सिद्धिर्वीराभिचारयोः ॥३९॥

पीयूषधारा—मूलेति। मूलार्द्रादिनक्षत्रपञ्चके तथा घटे तनौ कुम्भलग्ने तत्र स्थिते सौम्ये बुधे सति तथा शुक्रे सुखे चतुर्थस्थे अष्टमे शुद्धे। शुद्धत्वं प्राग्व्याख्यातम्। तादृशे लग्ने वीरस्य वीरसाधनाय अभिचारकर्मणः सिद्धिर्निष्पत्तिः। उक्तं वसिष्ठेन—'शशिनैर्ऋते यमपितृभेष्वष्टमशुद्धौ भृगौ च पाताले। घटलग्नगते शशिजे निखिला वेतालसिद्धिः स्यात्।।' इति। आर्द्राग्रहणं रत्नमालायां—'पित्र्येशयाम्यमूलेन्दुभेषु शुद्धेऽष्टमेपि च। वेतालसिद्धिः पाताले भृगौ ज्ञे घटलग्नगे।।' इति। वेतालो नाम वीरसाधनम्।।३९।।

पीताम्बरा—बेताल सिद्धि आदिक के मुहूर्त—मूल, आर्द्रा, भरणी, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा नक्षत्रों में कुम्भ लग्न में स्थित बुध हो तथा शुक्र चतुर्थ में एवं अष्टम भवन में (कन्या राशि में) दोनों शुभ पाप ग्रहों से रहित हो तो ऐसे समय में वीर साधन (बैतालसिद्धि) और अभिचार प्रयोग (मारण, मोहन, स्तम्भन उच्चाटनादिक) सफल कहे गये हैं।।३९।।

वंशपरम्परा की रक्षा के लिए सद्गृहस्थों को ये प्रयोग न करने चाहिए और न कराने चाहिए। (यह मेरी निजी सम्मति है।) ।।३९।।

अथ रोगनिर्मुक्तस्नानमुहूर्त्तं वसन्ततिलकेनाह—

व्यन्त्यादितिध्रुवमघानिलसार्पधिष्ण्ये, रिक्ते तिथौ चरतनौ विकवीन्दुवारे।
स्नानं रुजा विरहितस्य जनस्य शस्तं, हीने विधौ खलखगैर्भवकेन्द्रकोणे ॥४०॥

पीयूषधारा—व्यन्त्येति। अन्त्यं रेवती, अदित्यादीनि भानि प्रसिद्धानि एतानि विगतानि नवधिष्ण्यानि येषु तान्यवशिष्टान्यष्टादशभानि तेषु तथा रिक्तासंज्ञासु तिथिषु तथा कविः शुक्रः, इन्दुश्चन्द्रः, आभ्यां रहितेषु वारेषु तथा विधौ चन्द्रे हीने निषिद्धस्थानस्थिते। निषिद्धस्थानानि गोचरप्रकरणे वक्ष्यति। तथा भवे एकादशे केन्द्रे प्रथमचतुर्थसप्तमदशमस्थाने कोणे नवमपंचमे एषु स्थानेषु स्थितैः पापग्रहैरुपलक्षिते लग्ने सति रुजा रोगेण विरहितस्य निर्मुक्तस्य जनस्य स्नानं आरोग्यस्नानं शस्तं शुभम्। उक्तं च कश्यपेन—'पितृमारुतसर्पान्त्यस्थिरर्क्षेष्विन्दुशुक्रयोः। न कुर्याद्वारयो रोगमुक्तः स्नानं कदाचन।।' इति। पुनर्वसोरपि निषेधो रत्नमालायां—'इन्दोर्वारे भार्गवे च ध्रुवेषु सार्पादित्यस्वातियुक्तेषु भेषु। पित्र्ये चान्त्ये चैव कुर्यात्कदाचिन्नैव स्नानं रोगमुक्तस्य जन्तोः।। इति। पुष्यशततारकयोर्निषेधो नारदसंहितायां—'स्थिरेज्यादितिसार्पान्त्यपितृवारुणभेषु च। न कुर्याद्रोगमुक्तस्य स्नानं वारेज्यशुक्रयोः।।' इति। अर्थादन्यनक्षत्रेषु कार्यमित्यर्थः।

लग्नादिशुद्धिः—

अथ लग्नादिशुद्धिमाह—श्रीपतिः–लग्ने चरे सूर्यकुजेज्यवारे रिक्ते तिथौ चन्द्रबले च हीने। त्रिकोणकेन्द्रोपगतैश्च पापैः स्नानं हितं रोगविमुक्तकानाम्।।' इति। दीपिकायां तु विशेषः–'व्यादित्येषु चरेषु शक्रदिनकृत्पुष्योग्रचन्द्रेषु च क्रूराहव्यतिपातविष्टिदिवसेष्विदावशस्ते तिथौ। केन्द्रस्थेष्वशुभेष्वकामतिथिषु स्नानं गदान्मुक्तिदं शस्तं नात्र सुशोभना विधिभुजंगर्क्षेन्दुसद्वासराः।।' इति। अकामतिथिषु त्रयोदशीरहितासु तिथिषु।।४०।।

पीताम्बरा—रोग मुक्त होने के अनन्तर प्रथम स्नान का मुहूर्त—२७ नक्षत्रों में–रेवती, पुनर्वसु, ध्रुवसंज्ञक, मघा, स्वाती, और आश्लेषा इन नौ नक्षत्रों को छोड़कर शेष १८ नक्षत्रों में, चन्द्रमा निर्बल हो अर्थात् निषिद्ध स्थानों में हो (गोचर प्रकरण में) शुक्र और चन्द्रमा के वारों को छोड़कर शेष वारों में तथा रिक्ता (४।९।१४) तिथि में चरलग्नों (१।४।७।१०) में, पापग्रह ११, १,४,७, १०, ९, ५ स्थानों में हो तो ऐसे मुहूर्त में रोग मुक्त होने पर रोगी को स्नान करना चाहिए।।४०।।

अथ शिल्पविद्यामुहूर्तमनुष्टुभाह—

मृदुध्रुवक्षिप्रचरे ज्ञे गुरौ वा खलग्नगे।
विधौ ज्ञजीववर्गस्थे शिल्पविद्या प्रशस्यते।।४१।।

पीयूषधारा—मृदुध्रुवेति। मृदुगणध्रुवगणक्षिप्रगणचरगणेषु शिल्पं काष्ठतक्षणपाषाणादिघटननानावर्णनिर्मितमूर्त्यादिकल्पनं तद्विद्यायाः प्रारम्भः प्रशस्यते।

अथ लग्नशुद्धिः

तत्र ज्ञे बुधे खलग्नगे दशमस्थे लग्नस्थे च वा अथवा गुरौ बृहस्पतौ खलग्नगे दशमस्थे लग्नस्थे च सति तथा विधौ चन्द्रे ज्ञजीववर्गस्थे बुधगुरुषड्वर्गस्थे च सति शिल्पविद्या प्रशस्ते। उक्तं च रत्नमालायाम्—"लग्नकर्मगते सौम्ये जीवे वामृतदीधितौ। तयोर्वस्थिते शिल्पविद्यारंभः प्रशस्यते।।' इति। वसिष्ठेन त्वन्यथैवोक्तम्—'शशितनये जीवे वा चन्द्रे वा लग्नबलिनि धर्मे वा। तद्वर्गे लग्नगते शिल्पारंभः प्रशस्यते सततम्।।' इति।।४१।।

पीताम्बर–शिल्पविद्या। (नानाविध कार्यों की कारीगरी) का मुहूर्त बताया जा रहा है—मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चरसंज्ञक नक्षत्रों में शुभग्रहों के लग्नों, जिनसे बुध या बृहस्पति दशम और लग्न में बैठे हों, तथा चन्द्रमा, बुध और बृहस्पति के षड्वर्ग में बैठे हों तो ऐसे शुभ मुहूर्त में, पत्थर, काष्ठ मसाले आदि से बनी हुई अनेकों कारीगरियों से नाना प्रकार की मूर्ति आदि की कल्पना और उनका आरम्भ शुभ होता है।।४१।।

अथ सन्धानमुहूर्त्तमनुष्टभाह—

सुरेज्यमित्रभाग्येषु चाष्टम्यां तैतिले हरौ।
शुक्रदृष्टे तनौ सौम्यवारे सन्धानमिष्यते।।४२।।

पीयूषधारा—सुरेज्येति। सुरेज्यमित्राः प्रसिद्धाः। भाग्यं पूर्वफल्गुनी एषु भेषु तथाष्टम्यां हरौ द्वादश्यां वा तैतिले करणे वा तथा शुक्रदृष्टे शुक्रयुत इत्यपि वक्तव्यम्। तादृशे तनौ लग्ने तथा सौम्यग्रहाणां वारे संधानं मैत्री प्रीतिरिष्यते। उक्तं च रत्नमालायां–'भाग्ये मैत्रे शीतरश्मौ

सपुष्ये द्वादश्यां वा शुक्रदृष्टे च लग्ने । अष्टम्यां वा तैतिलाख्ये प्रदिष्टा पूर्वाचार्यैस्तत्र सन्धानसिद्धिः ॥' अत्र केचिदेवं व्याकुर्वते—पुष्येण सहिते सपुष्ये भाग्ये मैत्रे च एतन्नक्षत्रत्रयसंस्थे शीतरश्मौ चन्द्रे सति सन्धानं कार्यम् । अनेन भाग्यमैत्रपुष्यात्मकं नक्षत्रत्रयमुक्तं भवति । यदाह वसिष्ठः—'सुरगुरुमैत्रे भाग्ये द्वादश्यां वाथ पक्षमध्यतिथौ । सितयुतवीक्षितलग्ने तैतिलकरणे च सन्धिः स्यात् ॥' इति । कश्यपोपि—'भाग्ये पुष्ये समैत्रे च लग्ने शुक्रेक्षिते युते । करणे तैतिलेऽष्टम्यां द्वादश्यां सन्धिरिष्यते ॥' इति । एतदेव रत्नमालापद्यव्याख्यानं ज्यायः । संमतिवाक्ययोरार्षत्वात् । 'भाग्ये मैत्रे शीतरश्मौ' इति वक्रोक्तावाशयं न विद्मः । एवं च मूलपद्ये देवेज्यमित्र भाग्येष्वित्येवं पठनीयम् ॥४२॥

पीताम्बरा—परस्पर मैत्री (सन्धि) मुहूर्त कहा जाता है—पुष्य, अनुराधा, पूर्वाफाल्गुनी इन तीन नक्षत्रों, अष्टमी और द्वादशी तिथियों में, तैतिल करण में, शुक्रग्रह की लग्न पर दृष्टि हो, शुभदिन के वारों में परस्पर मैत्री का सम्बन्ध करना शुभ कहा गया है ॥४२॥

अथ परोक्षामुहूर्त्तं वसंततिलकेनाह—

त्यक्त्वाष्टभूतशनिविष्टिकुजाञ्जनुर्भ-
मासौ मृतौ रविविधू अपि भानिनाड्यः ।
द्व्यङ्गे चरे तनुलवे शशिजीवतारा
शुद्धौ करादितिहरीन्द्रकपे परीक्षा ॥४३॥

पीयूषधारा—त्यक्त्वेति । अष्ट अष्टमी, भूतश्चतुर्दशी, शनिकुजौ वारौ प्रसिद्धौ, विष्टिर्भद्रा, जनुर्भमासौ जननकालीन नक्षत्रं जन्ममासं च, मृतावष्टमस्थाने रविविधू जन्मराशेः सकाशादष्टमं सूर्यं चन्द्रं च तथा नाड्याः भान्यपि नाडीनक्षत्राण्यपि । रविविधू अपीत्यत्र—'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्, इति प्रगृह्यसंज्ञायां 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इति प्रकृतिभावः । एतावत्पदार्थकदंबकं त्यक्त्वा परीक्षा कार्या । परीक्षा नाम सुवर्णस्तेयादिमहापातकाभिशस्तशुद्ध्यशुद्धिविचारात्मिका तप्तभाषादिरूपादिव्यमिति यावत् । सामान्यतो भद्रानिषेधेऽपि पुनर्भद्रानिषेधो, रात्रिभद्रा यदाह्नि स्यात्' इत्यादिपरिहाराणामप्यनवकाशतां सूचयितुमुपात्तः । जन्मभस्य नाडीनक्षत्रत्वादेव निषेधे पुनरुपादानमावश्यकत्वंद्योतयितुम् । जन्ममासस्य तु पुनर्निषेधो नाद्यगर्भविषये यथा स्यादित्येवमर्थम् । सामान्यवाक्यमाद्यगर्भविषयमेव, एतच्चाग्रे निर्णेष्यते । एवं परीक्षायां निषिद्धनिमित्तान्यभिधाय विहितनिमित्तान्याह—द्व्यंग इति । तनुलव इति प्रत्येकं सम्बन्धः । द्व्यंगे द्विस्वभावे मिथुनकन्याधनुर्मीनरूपे तनौ लग्ने अंशे नवांशे च द्विस्वभावे तथा चरे मेषकर्कतुलामकररूपे लग्ने नवांशे च तथा शशिजीवताराशुद्धौ चन्द्रशुद्धौ गुरुशुद्धौ, ताराशुद्धौ च सत्याम् । एषां शुद्धिश्च गोचरप्रकरणेऽभिधास्यते । तथा करादितिहरींद्रकपे करो हस्तः, अदितिः पुनर्वसुः, हरिः श्रवणः इन्द्रो ज्येष्ठा, कपो वरुणः तद्भं शततारका एषु च भेषु परीक्षा स्यादित्यर्थः । अत्रानुक्तोपि प्रातःकालोतिशस्तः । उक्तं च दीपिकायां—'नो शुक्रास्तेऽष्टमार्के गुरुसहितरवौ जन्ममासेष्टमेंदौ विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ । नाडीनक्षत्रहीने सुरगुरुरजनीनाथताराविशुद्धौ प्रातः कार्या परीक्षा द्वितनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने ॥' इति । व्यवहारोच्चयः—'अष्टम्यां च चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणे । न परीक्षाधिवासश्च शनिभौमादिने

भवेत् ।। ज्येष्ठाश्रवणहस्ताश्च तथा ज्ञेयः पुनर्वसुः । तद्वच्छतभिषा प्रोक्तात्वभियुक्त विचारणे ।।' इति । अभियुक्त : सुवर्णस्तेयादिपातकसंभावनावांस्तस्य विचारणे शुद्धचशुद्धिनिर्णये । नाडी-नक्षत्राणि दीपिकायामुक्तानि । 'जन्माद्यं कर्म ततो दशमभं सांघातिकं च षोडशकं । समुदायम-ष्टादशभं विनाशसंज्ञं त्रयोविंशम् ।। 'आद्यात्तु पंचविंशं मानसमेवं नरः षष्ठः । नवनक्षत्रान्नृपतिः स्वजातिदेशाभिषेकर्क्षैः ।।' इति । एतानि नाडीनक्षत्राणीति वाक्यशेषो दीपिकाकृतेऽभिहितः । जातिर्ब्राह्मणादिका तन्नक्षत्राणि—'पूर्वात्रयं सानिलमग्रजानाम्' इति वराहोक्तानि । तद्वाक्यं च मया यात्राप्रकरणे लिखिष्यते । देशोऽर्गलापुरादिकः । तन्नक्षत्राणि शतपदचक्रानुसारेण ज्ञेयानि । तद्वाक्यं च नामकर्मप्रकरणे लिखिष्यते । यस्मिन् पुष्यादिके नक्षत्रेऽभिषिक्तो राजा तदभिषे-कर्क्षम् ।। ४३ ।।

पीताम्बरा—सुवर्ण चोरी आदि महापाप की शुद्धि-अशुद्धि विचार प्रायश्चित्तादि तप्त-माषादिरूप दिव्य परीक्षा का मुहूर्त—अष्टमी चतुर्दशी को छोड़ शेष तिथियों में शनि और मंगल वार को छोड़ शेष वारों में, करणों में भद्रा करण को त्याग कर, जन्मनक्षत्र, जन्ममास और जन्मराशि से अष्टम सूर्य-चन्द्रमा और नाडी के नक्षत्रों को छोड़कर जन्म नक्षत्र, दशमनक्षत्र कर्म, सोलहवीं नक्षत्र सांघातिक, अठारहवीं नक्षत्र समुदाय, और तेईसवी नक्षत्र विनाश, पचीसवीं नक्षत्र मानस ये नाडी नक्षत्र कहे गए हैं । द्विस्वभाव या चर लग्न और इन्हीं के नवांशों में चन्द्रमा-बृहस्पति और तारा शुद्ध हों हस्त, पुनर्वसु, श्रवण, ज्येष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में परीक्षा मुहूर्त (सोना आदिक चोरी को संशयात्मक स्थिति में तप्तमाषादि रूप दिव्य परीक्षा) मुहूर्त शुभ कहा गया है ।। ४३ ।।

अथ सामान्यतः समस्तशुभकार्येषु लग्नशुद्धिमनुष्टुभाह—

व्ययाष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभदृग्युते ।
चन्द्रे त्रिषड्दशायस्थे सर्वारम्भः प्रसिद्धयति ।। ४४ ।।

पीयूषधारा—व्ययेति । व्ययो द्वादशस्थानमष्ट अष्टमस्थानमेतत्स्थानद्वयं शुद्धं शुभपाप-ग्रहसाहित्यदोषरहितं यस्मिन् तादृशे स्वजन्मराशेः स्वजन्मलग्नाद्वोपचयभवने त्रिषडेकादशदशम-स्थाने लग्नगते शुभग्रहैर्दृष्टे युते तथा चन्द्रे त्रिषड्दशमायस्थानस्थिते सति सर्वेषां शुभकार्याणा-मारम्भः प्रसिद्धयति । यदाह वसिष्ठः—उपचयभे लग्नगते व्ययनैधनशुद्धिसंयुते लग्ने । उपचयगे शीतकरे मंगलकर्माणि कार्याणि ।।' ।। ४४ ।।

पीताम्बरा—समग्र शुभ कार्यों में लग्न शुद्धि बताई जा रही है—अपनी जन्मराशि और जन्मलग्न से उपचय भाव की (३ । ६ । १० । ११) तीसरी, छठी, दशवीं और ग्यारहवी राशियों में कोई राशि लग्न में हों जिससे (८ । १२) अष्टम-द्वादश स्थानों में कोई ग्रह नहीं हो, लग्न पर शुभग्रहों की युति और दृष्टि हो चन्द्रमा भी लग्न से उपचय राशियों (३ । ६ । १० । ११) में हो तो ऐसे उत्तम समय में सभी शुभ कार्यों का प्रारम्भ करना उत्तम कहा गया है ।। ४४ ।।

अथ नक्षत्रेषु ज्वरोत्पत्तौ सत्यां तन्निवृत्तौ दिनसंख्यादिकं द्वितीयोपजातिकयोपेन्द्रवज्रया चाह—

स्वातीन्द्रपूर्वाशिवसार्पभे मृतिर्ज्वरेऽन्त्यमैत्रे स्थिरता भवेद्रुजः ।
याम्यश्रवोवारुणतक्षभे शिवा घस्रा हि पक्षौ द्व्यधिपार्कवासवे ।।

मूलाग्निदास्रे नव पित्र्यभे नखा बुध्न्यार्यमेज्यादितिधातृभे नगाः ।
मासोऽब्जवैश्वेऽथ यमाहिमूलभे मिश्रेशपित्र्ये फणिदंशने मृतिः ॥४५-४६॥

पीयूषधारा—स्वातीन्द्रेति । स्वाती, इन्द्रो ज्येष्ठा, पूर्वास्तिस्रः, शिव आर्द्रा, सार्पभमाश्लेषा, एषु भेषु ज्वरे पुंसः स्त्रियो वा ज्वरोत्पत्तौ मृतिरेव स्यात् । उक्तं च वसिष्ठेन—'पूर्वात्रयस्वातिभुजङ्गरौद्रसुरेश्वरर्क्षेषु च यस्य रोगः । स्याद्रक्षितुं देवचिकित्सकोऽपि क्षितावशक्तः खलु रोगिणं च ॥' इति । देवचिकित्सको देववैद्यो धन्वन्तरिः । अथान्त्यमैत्रे रेवत्यनुराधयोर्ज्वरोत्पत्तौ रुजो रोगस्य स्थिरता भवेत् बहुकालेन रोगनिवृत्तिः स्यादित्यर्थः । तथा भरण्यादिनक्षत्रचतुष्के शिवा एकादश घस्रा दिवसाः रोगस्थैर्यं स्यात्तदनन्तरं रोगमुक्तिरिति सर्वत्र व्याख्येयम् 'घस्रो दिनाहनी वा तु' इत्यमरः । द्व्यधिपं विशाखा, अर्को हस्तः, वासवं धनिष्ठा; एषु त्रिषु भेषु पक्षः पंचदशदिवसा रोगस्थैर्यस्य । मूलकृत्तिकाश्विनीषु त्रिषु नव दिवसाः । पित्र्यभे मघायां नखा विंशतिर्दिवसाः । 'नामैकदेशे नामग्रहणम्' इति न्यायेन बुध्न्योऽहिर्बुध्न्य उत्तराभाद्रपदा अर्यमोत्तराफल्गुनी इज्यादितिधातृभानि प्रसिद्धानि एषु पंचभेषु नगाः सप्तदिवसाः । अब्जवैश्वे मृगोत्तराषाढयोर्द्वयोर्मासस्त्रिशद्दिनानि रोगस्थैर्यं ततो रोगनिवृत्तिः यदाह वसिष्ठः—'कृच्छ्रात्स्फुटं प्राणिति मित्रपौष्णधिष्ण्ये च मासाच्छशिविश्वधिष्ण्ये । रोगस्य मुक्तिः पितृदेवधिष्ण्ये वारैर्भवेद्विंशतिभिश्च नूनम् ॥' इति । प्राणिति जीवतीत्यर्थः । 'पक्षाद्वसुद्वीशकरेषु भेषु मूलाश्विनाग्नित्रितये नवाहात् । तोयेशचित्रान्तकविष्णुभेषु नॄरुज्यमेकादशभिर्दिनैश्च ॥ पुष्ये त्वहिर्बुध्न्यपुनर्वसौ च ब्रह्मार्यमर्क्षेषु च सप्तरात्रात् ॥' इति ॥

रोगनिवर्त्तकशान्तिः—

अत्र शीघ्रं रोगविमुक्त्यै संक्षिप्ता शांतिरप्यभिहिता वसिष्ठेन ऋक्षेशरूपं कनकेन कृत्वा तल्लिगमंत्रैश्च सुगन्धिपुष्पैः । वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलधूपदीपनैवेद्यताम्बूलफलैश्च सम्यक् ॥ पूजां च कृत्वाऽऽमयनाशनाय द्विजाय दद्यादतुलं शिवाय ॥' इति । आमयो रोगः । अतुलमपरिमितद्रव्यम् । प्रत्येकनक्षत्रशान्तिर्विशदानक्षत्रशान्त्यध्याये वसिष्ठेनोक्ता । सा तत एव सम्यगवधार्या ।

एषु भेषु सर्पदंशे मृत्युः—

अथ सर्पदंशे नक्षत्राण्याह—अथेति । अथानन्तरं यमाहिमूलभे भरण्याश्लेषामूलेषु तथा मिश्रेशपित्र्ये कृत्तिकाविशाखार्द्रामघासु एवं सप्तसु भेषु यस्य कस्यचित्फणिदंशने सर्पदंशे मृतिर्मरणमेव भवेदित्यर्थः । यदाह वसिष्ठः—'मघाविशाखानलसार्पयाम्यनैर्ऋत्यरौद्रेषु च सर्पदष्टः । संरक्षितो विष्णुरथेन सोऽपि प्राप्नोति कालस्य मुखं मनुष्यः ॥' इति । विष्णुरथेन गरुडेन । अत्र सर्पदंशे यस्यैषु नक्षत्रेषु गोचरवशेन चन्द्रबलं न भवति तस्यैव सर्पदंशेऽवश्यमरणं स्यात् । उक्तं च दीपिकाटीकाकृताच्युतभट्टेन—'यद्यत्र चन्द्रस्तस्यैव गोचरे चाशुभप्रदः । तदा नूनं भवेन्मृत्युः सुधासंसिक्तदेहिनः ॥' इति ॥ ४५-४६ ॥

पीताम्बरा—ज्वर आदिक रोग के आरम्भ दिन के नक्षत्र के आधार से फलादेश तथा सर्प काटने के दिवस नक्षत्र का फलादेश किया जा रहा है—स्वाती, ज्येष्ठा, तीनों पूर्वा, आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्रों में जिस किसी एक नक्षत्र में ज्वर आरम्भ हो तो ऐसी स्थिति में रोगी की मृत्यु होती है । वसिष्ठ के मत से ऐसे रोगी को धन्वन्तरि भी नहीं बचा सकेगा ।

रेवती और अनुराधा में रोग की उत्पति होने से रोग स्थिर हो जाता है ।

भरणी, श्रवण, शतभिषा और चित्रा नक्षत्रों में रोग होने से रोगी ११ दिन तक रुग्ण रहता है।

विशाखा; हस्त और धनिष्ठा नक्षत्रों में रोगी १५ दिनों तक रोग ग्रस्त रहेगा।

मूल, कृत्तिका और अश्विनी नक्षत्रों में रोग होने से ९ दिन तक रोगी रुग्ण रहकर पुनः दशवें दिन स्वस्थ होता है।

मघा नक्षत्र में रोग होने से रोगी २० दिन तक रुग्ण रहता है।

उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी, पुष्य, पुनर्वसु ओर रोहिणी नक्षत्रों में रोगोत्पत्ति से रोगी ७ दिन के पश्चात् स्वस्थ होता है।

मृगशिरा और उत्तराषाढ़ में ज्वरोत्पत्ति होने ३० दिन तक रोग स्थिर रहता है।

तथा भरणी, आश्लेषा, मूल, मिश्रसंज्ञक (कृत्तिका, विशाखा) नक्षत्रों, आर्द्रा और मघा इन सात नक्षत्रों में से जिस किसी नक्षत्र में सर्प काटता है तो उस मनुष्य की मृत्यु ही होती है। गरुड़जी से भी उसकी रक्षा नहीं हो सकती है।

दीपिकाटीकाकार अच्युत भट्ट के मत से सर्प से काटे गये मनुष्य का चन्द्रबल भी क्षीण हो तो मृत्यु ही होगी। तात्पर्य यह भी निकलता है कि चन्द्रबल समीचीन रहने पर सर्प दष्ट्र प्राणी जीवित भी रह सकता है ॥४५-४६॥

अथ शीघ्ररोगमरणे विशिष्टं योगं द्वितीयोपजातिकयाह—

रौद्राहिशाक्राम्बुपयाम्यपूर्वाद्विदैववस्वग्निषु पापवारे।
रिक्ताहरिस्कन्ददिने च रोगे शीघ्रं भवेद्रोगिजनस्य मृत्युः ॥ ४७ ॥

पीयूषधारा—रौद्राहीति। रौद्रादीनि भानि प्रसिद्धानि; पापवाराः सूर्यभौमशनयः, रिक्ताः प्रसिद्धाः, हरिर्द्वादशी, स्कंददिनं षष्ठी एतास्तिथयः एवंविधे विशिष्टयोगे यस्य रोगोत्पत्तिर्भवेत्तस्य रोगीजनस्य शीघ्रं मृत्युर्भवेत्। उक्तं च दैवज्ञमनोहरे—'उरगवरुणरुद्रा वासवेंद्रत्रिपूर्वा यमदहनविशाखाः पापवारेण युक्ताः। तिथिषु नवमीषष्ठी द्वादशी वा चतुर्थी सहजमरणयोगो रोगिणां कालहेतुः ॥ इति। चतुर्थीग्रहणं चतुर्दश्युपलक्षकं मत्वा मूले रिक्ताग्रहणं कृतम्। अतएवाह वसिष्ठः—'आश्लेषार्द्रा त्रिपूर्वायमवरुणामरुच्छक्रतारानलाः स्युर्द्वादश्यां स्कन्दरिक्तातिथिषु च रविजार्कारवारेषु येषाम्। रोगः संजायते ते यमपुरमचिरात्प्राप्नुवन्त्येव चन्द्रे जन्मन्यष्टाख्यबंधुव्ययभवनगते मृत्युलग्ने च राशौ ॥' इति ॥४७॥

पीताम्बरा—रोगी की शीघ्र मृत्युयोग का विचार किया जा रहा है—आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, शततारा भरणी तीनों पूर्वा, विशाखा, धनिष्ठा और कृत्तिका इन ग्यारह नक्षत्रों में, सूर्य मंगल और शनिवारों में, चतुर्थी नवमी और चतुर्दशी षष्ठी और द्वादशी तिथियों में अर्थात् कथित तिथि वार और नक्षत्रों के योग के दिन में, रोग के आरम्भ होने से रोगी की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

श्री वसिष्ठजी के मत से रोगी की जन्मराशि से चन्द्रमा, १, ८, ४ और १२ वाँ होने पर रोगी शीघ्र यमपुर को प्राप्त करता है। अर्थात् चन्द्रमा की अनुकूल स्थिति से मूल श्लोकोक्त फलादेश रोगी के कुछ अनुकूल अर्थ में भी आ सकता है। मृत्यु होगी भी तो शीघ्र नहीं होगी या शास्त्रोक्त मृत्यु परिहारक अनुष्ठानों से जीवन प्राप्त किया जा सकता है ॥४७॥

अथ प्रेतदाहमुहूर्तं प्रेतदाहादिनिषिद्धदिनं चेन्द्रवंशाछंदसाह—

क्षिप्राहिमूलेन्द्रहरीशवायुभे प्रेतक्रिया स्याज्झषकुम्भगे विधौ।
प्रेतस्य दाहं यमदिग्गमं त्यजेच्छय्यावितानं गृहगोपनादि च ॥ ४८ ॥

पीयूषधारा—क्षिप्रेति। अश्विनीपुष्यहस्ताश्लेषामूलज्येष्ठाश्रवणार्द्रास्वाति नक्षत्रेषु प्रेतक्रिया प्रेतानां प्रेतत्वविमुक्तिपूर्वकोत्तमलोकप्राप्तिकारकं श्राद्धादिकर्म क्रियाशब्देनोच्यते। सा यदि कारणवशाच्छवदाहसमये अकृता तदैषु भेषु कार्या स्यात्। उक्तं च हेमाद्रौ ज्योतिः पराशरेण— 'साधारणध्रुवोग्रमैत्रेषु न शस्यते मनुष्याणाम्। प्रेतक्रिया न शस्ता त्रिपुष्करे यमलधिष्ण्ये च ॥ इति। अत्रैतानि निषिद्धानि कृत्तिकाविशाखारोहिण्युत्तरात्रयं पूर्वात्रयं मघाभरणीमृगशिचत्रानुराधारेवती त्येवं पञ्चदशभानि तथा त्रिपुष्करे त्रिपादनक्षत्रे तत्रान्येषु त्रिपादनक्षत्राणां उक्तभेष्वन्तर्भूतत्वात्पुनर्वसुरवशिष्टः। तथा यमलधिष्ण्ये द्विपादनक्षत्रे इति हेमाद्रिणा व्याख्यातम्। तत्र मृगचित्रयोर्मैत्रनक्षत्रेष्वंतर्भावाद्धनिष्ठायमलधिष्ण्ये अत्र गृह्येते। धनिष्ठापञ्चकेनिषेश्चाधुनैव वक्ष्यते। एवमष्टादशभानि प्रेतक्रियायां निषिद्धानि अवशिष्टानि भानि अश्विनीपुष्यहस्ताश्लेषाज्येष्ठामूलश्रवणाद्रास्वातीषु नव ऋक्षेषु प्रेतक्रिया कार्येत्यर्था दुक्तं भवति। अत एव तान्येव ग्रन्थकर्त्रीनिबद्धानि—'क्षिप्रा हि' इत्यादिना। अत एव 'कराश्वहिरुद्र पुष्यस्वातीन्द्र मूलहरिभेषुमृतक्रियेष्टेति व्यवहारतत्त्वकर्त्रोक्तम्। झषकुम्भराशिस्थिते चन्द्रे सति धनष्ठोत्तरार्द्धादारभ्य शततारकापूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदारेवतीषु प्रेतस्य मृतस्य दाहं ज्वलनं त्यजेन्न कुर्यात्। च पुनर्यमदिग्गमं दक्षिणदिशि गमनंयात्रांत्यजेत्। तथा शय्यायाः खट्वाया वितानं वयनं तथा गृहगोपनं गृहाच्छादनमादिशब्देन तृणकाष्ठसंग्रहं च त्यजेत। यदाह वसिष्ठ—'वस्वपरार्धातपञ्चकधिष्ण्ये कार्यं गृहस्य गोपनं नैव। दक्षिणदिङ्मुखगमनं दाहं प्रेतस्य काष्ठसंग्रहणम् ॥' इति। नारदः— 'वस्वन्त्यार्द्धा दिपञ्चर्क्षे संग्रहं तृणकाष्ठयोः। याम्यदिग्गमनं शय्यां न कुर्याद्गृहगोपनम् ॥' इति। श्रीपतिरपि—'वासवोत्तरदलादिपञ्चके याम्यदिग्गमनगेहगोपनम्। प्रेतदाहतृणकाष्ठसंग्रहं छव्यका वितनं चवर्जयेत् ॥' इति। त्रिविक्रमोऽपि—'शय्यावितानं प्रेतादिक्रियां काष्ठतृणार्जनम्। याम्यदिग्गमनं कुर्यान्न चन्द्रे कुम्भमीनगे ॥' इति ननु प्रेतदाहे किं नक्षत्रान्तरे मृतस्य धनिष्ठोत्तरार्द्धादिके दाहो न कार्य इति, उत पञ्चक एव मृतस्य पञ्चके दाहो न कार्य इति, आहोस्विद्यस्मिन्कस्मिश्चिनक्षत्रे पञ्चकातिरिक्ते पञ्चके वा मृतस्य पञ्चके दाहो न कार्य इति त्रयः पक्षाः सम्भवन्ति। तत्र यदि विज्ञायते—नक्षत्रान्तरे मृतस्य पञ्चके दाहो न कार्य इति तर्हि पञ्चके मरणस्य दोषवत्ता न प्राप्नोति। तच्चायुक्तं। यस्मादुक्तं ब्रह्मपुराणे—'कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते। न तस्योर्ध्वगतिर्दृष्टा संततौ न शुभं भवेत् ॥' इति। यदिह विज्ञायते— पञ्चक एव मृतस्य पञ्चके दाहो न कार्यं इति तदपि न। श्रवणे धनिष्ठापूर्वार्धे च मृतस्य पञ्चके दाहनिषेधो न प्राप्नोति किंतु दाहः कर्तव्य इत्येव प्राप्नोति। अस्त्वेवमिति चेन्न। प्रेतस्य दाहं त्यजेदिति दाहस्यैव क्रियाकारकसम्बन्धेन प्राधान्यतो निषेधात्। किं च—'त्रिगुणफलदो वृद्धौ नष्टे हृते च मृतेपि वा' इति 'त्रिपुरुष्करयोगफलवत्पञ्चकमरणनिषेध एव वक्तव्ये दाहनिषेधस्य पृथगुपादानात्कर्तव्यतापत्तिः। तस्माद्यस्मिन्कस्मिश्चिन्नक्षत्रे मृतस्य पञ्चके दाहो न कार्य इति तृतीयः पक्षः साधीयान्। प्राधान्याद्दाहस्यैव निषेध इत्युक्तं प्राक्। अतः पञ्चकात्प्राङ्मरणदोषो नास्ति तथा तत्रैव दाहोपि न दोषाय। यदि क्रियाकरण वशात्कालातिक्रमे सति

पञ्चकप्रवृत्तिस्तदा शान्ति विधाय दाहः कार्यः । पञ्चके तु द्वयमपि निषिद्धं मरणं दाहश्चेति । उक्तं च ब्रह्मपुराणे—'कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते । न तएयोर्ध्वगतिर्दृष्टा संततो न शुभं भवेत् ।। न तस्य दाहः कर्त्तव्यो विनाशः स्वेषु जन्तुषु । पञ्चकानन्तरं कार्यं कार्य दाहादिकं खलु।। अथवा तद्दिने कार्यो दाहस्तु विधिपूर्वकम्।।'' रेवतीप्रान्ते मृतस्य रेवतीमपहाय दाहः कार्य इत्यर्थ । धनिष्ठोत्तरार्द्धादिमृतस्य दाहस्तु सद्य एव । पञ्चकस्य बहुकालव्यापित्वात्पर्युषितदाहनिषेधाच्च । स च दाहः शांतिविधिपूर्वकः कार्यः । स विधिरुक्तो ब्रह्मपुराणे—'दाहदेशे शवं नीत्वा स्वापयेच्च प्रयत्नतः । दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टितः । यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत् । प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिः । प्रेतहर्त्ता पञ्चमश्च नामान्येतानि च क्रमात् ।।'' इति । विशेषस्त्वन्येष्टिपद्धत्यादौ द्रष्टव्यः । नन्वत्र 'त्रिगुण फलदौ वृद्धौ नष्टे हृते च मृतेपि वा' इति मरणनिषेध एव वक्तव्ये किं पुनर्दाहनिषेधेन । उच्यते । दोषाधिक्यसूचनार्थं हि पुनर्दाहनिषेधः । अत एव पञ्चके मृतस्य पुत्तलकविधानं कृत्वा दाहः कार्यः । ततः सूतकान्ते पुत्रादिभिः शान्तिकं च विधेयं । उक्तञ्च गरुणपुराणे—'ततो दाहः प्रकर्त्तव्यस्तैश्च पुत्तलकः सह । सूतकान्ते तदा पुत्रैः कार्य शान्तिकपौष्टिकम् । पञ्चके तु मृतो योऽसौ न गतिं लभते नरः । तिलांश्चैव हिरण्यं च तमुद्दिश्यघृतं दहेत् ।।' इति । अतो नक्षत्रान्तरे मृतस्य पञ्चके दाहप्राप्तौ पुत्तलकविधिरेव भवति । ततः सूतकान्ते शान्तिकं च । एवं पञ्चकान्ते मृतस्याश्विन्यां दाहप्राप्तौ पुत्तलकविधिर्न । किन्तु सूतकान्ते शान्तिकमेव विधेयमित्यलमतिप्रसंगेन । अत्र दीपिकायां—छेदनं संग्रहं चैव काष्ठादीनां न कारयेत् । श्रवणादौ बुधः षट्के न गच्छेद्दक्षिणं दिशम्, इति यदुक्तं तच्चिन्त्यम् आर्षमूलवाक्यानुपलब्धेर्वसिष्ठादिमुनिवाक्यविरोधाच्च । अत एव तट्टीकाकृताच्युतभट्टेनाप्यस्य श्लोकस्य व्याख्यानान्ते कदाचिच्छ्रवणधनिष्ठापूर्वार्द्धयोरेतानि समाचरेत् न जातु धनिष्ठोत्तरार्द्धादिपञ्चके । तथा च रत्नमालायाम्—'वासवोत्तरदलादिपञ्चके' इत्यादिसंमतिवाक्यमुक्तम् । काष्ठादीनामित्यत्रादिशब्देन गृहगोपनं प्रेतदाहं खट्वाया वितनं च न कुर्यादिति व्याख्यातम् ।। ४८ ।।

पीताम्बरा—प्रेतदाह मुहूर्त और प्रेतदाह के लिए निषिद्ध दिन बताए जा रहे हैं— अश्विनी पुष्य, हस्त, आश्लेषा, मूल, ज्येष्ठा, श्रवण, आर्द्रा, और स्वाती इन नौ नक्षत्रों में ही प्रेत क्रिया करनी चाहिए । शेष १८ में नहीं करनी चाहिए ।

उन प्रेतों की प्रेतत्व विमुक्ति पूर्वक उत्तमलोक प्राप्तिप्रद श्राद्धादिक कर्म का नाम प्रेत क्रिया है । यदि जो कारणवश शवदाह के समय प्रेत क्रिया नहीं की जा सकी है तो, ऐसी प्रेत क्रिया उक्त नक्षत्रों में करनी चाहिए ।

कुछ पुस्तकों में क्षिप्रादि मूलेन्दु कह कर प्रेत क्रिया में उक्त ज्येष्ठा नक्षत्र को छोड़ कर द्विपुष्कर मृगशीर्ष नक्षत्रका ग्रहण किया गया है । टीकाकारों का यह सोढव्य भंयकर प्रमाद है । तथा, कुम्भ मीन के चन्द्रमा में अर्थात् धनिष्ठा २ चरण से रेवती ४ चरण तक, प्रेत का दाह, दक्षिण दिशा की यात्रा, खाट का बुनवाना, घर का छावना (फूस का आवरण) घर के लिए लकड़ी आदि का संग्रह नहीं करना चाहिए ।

यहाँ पर पीयूषधारा टीका में हेमाद्रि से लेकर अनेक ऋषियों के अनेक वचनों का उल्लेख करते हुए पीयूषकार ने शास्त्रार्थ की सुन्दरतम व्याख्या प्रदर्शित की है ।

जैसे—पञ्चक (कुम्भ, मीन के चन्द्रमा) धनिष्ठा के उत्तरार्ध से रेवती अन्त तक में शवदाह करने से, उसकी ऊर्ध्व गति नहीं होती और सन्तान का भी हित नहीं होता इत्यादि विषयों पर पर्याप्त विचार किया गया है ।

वास्तव में शास्त्रों के आदेश, अत्यन्त उदार, विशाल और सभी असामञ्जस्यों का सामञ्जस्य करने के लिए ही होते हैं ।

पञ्चक बहुकाल व्यापी (प्रायः ५ दिन) है । तथा शव दाह तो शीघ्र ही करना चाहिए । रेवती में मृत व्यक्ति का दाह रेवती समाप्ति पर एवं धनिष्ठा के उत्तरार्ध में मृत व्यक्ति का दाह संस्कार भी शीघ्र ही कर देना चाहिए । यहाँ पर रेवती समाप्ति से पञ्चक समाप्ति एवं धनिष्ठा उत्तरार्ध की ही पञ्चक संज्ञा है । सम्भवतः धनिष्ठा पूर्वार्ध में मृत की तथा उत्तरार्ध मृत का भी शवदाह धनिष्ठा में किया जा सकेगा यतः धनिष्ठा प्रारम्भ पञ्चक एवं रेवती समाप्ति पञ्चक नक्षत्र हैं अतः उक्त व्यवस्था शीघ्र शवदाह पक्ष से भी समन्वयित हो सकती है ।

रह गए शेष शतिभिषा, पूर्वाभाद्रपद और उत्तरा भाद्रपदा ये तीन मुख्य पञ्चक संज्ञक नक्षत्रों में कुम्भ मीन का चन्द्रमा सर्वतोभावेन रहेगा ही ।

अतः शीघ्रशवदाह रूप मुख्य पक्ष की स्थिरता के लिए पञ्चक शान्ति (पुत्तलदाह) आवश्यक है उसे करने के पश्चात् पञ्चक में शवदाहजनित दोष का दृढ़ परिहार हो जाता है ।

पञ्चक शवदाह के लिए प्रथमतः दाहदेश में शव को रख कर स्नान कराकर कुशों की प्रतिमा को उन सूत्रों से वेष्टित कर, यव पिष्ट से लिप्त कर इन प्रतिमाओं के साथ शव का दाह करना चाहिए । प्रथम पञ्चक से अन्तिम पञ्चक तक—(१) प्रेतवाहः, (२) प्रेतसखः, (३) प्रेतपः, (४) प्रेतभूमिपः, (५) प्रेतहर्ता क्रमशः ये नाम दिये गए हैं ।

अतः पञ्चक मरण में पुत्तलदाह के साथ शवदाह करना चाहिए और सूतक के अन्त अर्थात् अशौच के अन्त में पुत्रादिकों ने पञ्चक शान्ति कर्म भी अवश्य करना चाहिए ।

यहाँ पर, पञ्चकनक्षत्रातिरिक्त नक्षत्रान्तर में मरण के अनन्तर पञ्चक में यदि शवदाह समय प्राप्त हो जाय तब भी पञ्चक शान्ति आदि कर्म आवश्यक होंगे ।

तथा पञ्चक के अन्त (रेवती के अन्तिम) में मृत्यु के अनन्तर यदि अश्विनी में शव-दाह होता है तो ऐसी स्थिति में पन्चक शान्ति आवश्यक नहीं है कि मरण की अपेक्षा पञ्चक में दाह का विशेष अनिष्ट फल मालूम पड़ रहा है । इस विषय पर अन्य विशेष शास्त्रार्थ ग्रन्थान्तर से ज्ञात करने चाहिए यहाँ पर उक्त दिग्दर्शन पर्याप्त होगा ।।४८।।

अथ काष्ठ-गोमयपिण्डादीनां संग्रहमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडीतेनाह—

सूर्यर्क्षाद्रसभैरधःस्थलगतैः पाको रसैः संयुतः
शीर्षे युग्ममितैः शवस्य दहनं मध्ये युगैः सर्पभीः ।
प्रागाशादिषु वेदभैः स्वसुहृदां स्यात्सङ्गमो रोगभीः
क्वाथादेः करणं सुखं च गदितं काष्ठादिसंस्थापने ।।४९।।

पीयूषधारा—सूर्यर्क्षादिति । स्पष्टार्थम् ॥४९॥

पीता०—लकड़ी, गोहरी (सूखे गोमय पिण्ड) आदिकों के संग्रह के लिए शुभाशुभ मुहूर्त बताए जा रहे हैं—सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा के प्रथम ६ नक्षत्र अधःस्थलगत हैं इनमें लकड़ी आदि की स्थापना से रसयुक्त रसोई बनती है। पुनः ७, ८ शीर्षगत नक्षत्रों में किये गये काष्ठ संग्रह से शवदाह होता है। फिर मध्य ९, १०, ११ और १२ संख्यक नक्षत्रों में काष्ठ संग्रह से सर्प भय होता है। पुनः १३, १४, १५, १६ पूर्वगत नक्षत्रों में मित्रों का समागम, फिर १७, १८, १९, २० दक्षिणगत नक्षत्रों से रोगभय, पुनः २१, २२, २३, २४ पश्चिमदिग्गत नक्षत्रों में काढ़ा आदि (आयुर्वेद औषधिविशेष) बनाने तथा २५, २६, २७, २८ उत्तरगत नक्षत्रों में काष्ठादि स्थापना से सुख होता है ॥४९॥

अथ त्रित्रिपुष्करयोगं सफलं वसन्ततिलकयाह—

भद्रातिथौ रविजभूतनयार्कवारे द्वीशार्यमाजचरणादितिवह्निवैश्वे ।
त्रैपुष्करो भवति मृत्युविनाशवृद्धौ त्रैगुण्यदो द्विगुणकृद्वसुतक्षचान्द्रे ॥५०॥

पीयूषधारा—भद्रेति । भद्रासंज्ञिका तिथिः, द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी । अत्र 'रोरि' इति रेफलोपे 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' इति पूर्वस्याणो दीर्घः । तथा शनिभौमयोर्वारे तथा विशाखा, अर्यमोत्तराफल्गुनी, अजचरणः पूर्वाभाद्रपदा, अदितिः पुनर्वसुः, वह्निः कृत्तिका, विश्वमुत्तराषाढा, एषु षट्सु नक्षत्रेषु उक्ततिथिवारनक्षत्ररूपविशिष्टयोगे सति त्रिपुष्करः । त्रिपुष्करः एव त्रैपुष्करः। 'प्रज्ञादिभ्यश्च' इति स्वार्थेऽण्। त्रिपुष्करयोगो भवतीत्यर्थः । कीदृशः, मृत्युविनाशवृद्धौ त्रैगुण्यदः । तद्दिने यदि कश्चिन्म्रियेत तदा तदीयास्तत्सहितास्त्रयो म्रियेरन् । यदि किञ्चिद्वस्तु विनष्टं तदा तस्य वस्तुत्रयनाशः । तथा किञ्चिद्वस्तु लब्धं तदा त्रिगुणतद्वस्तुलाभ इत्यर्थः । उक्तं च वसिष्ठेन—'रविरविजभौमवारे भद्रायां विषमपादमृक्षं चेत् । त्रैपुष्कराख्ययोगस्त्रिगुणफलो यमलभैर्द्विगुणः ॥' इति नारदेनापि—अर्कार्किभौमवारे चेद्भद्रायां विषमांघ्रिभम् । त्रिपुष्करस्त्रिगुणदो द्विगुणो यमलांघ्रिभे' इति । अत्र यस्मिन्नक्षत्रे प्रथमपादान्ते तृतीयपादान्ते वा राशिसमाप्तिस्तद्विषमपादमृक्षमुच्यते । तदेव स्पष्टं 'द्वीशार्यमा' इत्यादिनोपनिबद्धम् । अथ वासवो धनिष्ठा, तक्षा चित्रा, चान्द्रं मृगः, एतानि भानि भद्रास्तिथयो रविजभूतनयार्कवाराश्च । अत्रापि विशिष्टयोगे सति द्विपुष्करनामा योगो भवति । तत्फलं—मृत्युविनाशवृद्धौ द्वैगुण्यकृत् । मृते नष्टे वृद्धौ द्विगुणतां करोतीत्यर्थः । 'द्विगुणो यमलाङ्घ्रिभे' इत्युक्तेः । यन्नक्षत्रे द्वितीयचरणान्ते राशिसमाप्तिस्तद्यमलांघ्रिभम् । तच्च मृगाचित्राधनिष्ठारूपमेव ।

त्रिपुष्करादावेव मरणे शान्तिः, गुरुवारयोगेऽपि त्रिपुष्करयोगश्च—

अथ दैवात्त्रिपुष्करादिके तिथिवारनक्षत्रात्मके विशिष्टयोगे सति कस्यचिन्मरणसंभवस्तदा तद्दोषशान्त्यर्थं दानं विधेयम् । यदाह वसिष्ठः—'त्रितयं गवां हि दद्याद्दोषस्यापनुत्तये विद्वान् । द्वितीयं द्विपुष्करेऽपि च तिलपिष्टैर्विप्रमुख्येभ्यः ॥' इति । त्रितयं गवामिति शेषः । अत्र तिथिवारयोरभावे केवलं विषमांघ्रिभे यमलांघ्रिभे वा मरणसंभवे दोषो नास्तीत्यर्थः । अमुमर्थं स्पष्टमाह नारदः—'दद्यात्तद्दोषनाशाय गोत्रयम्मूल्यमेव वा । द्विपुष्करे द्वयं दद्यान्न दोषस्त्वर्क्षमात्रतः ॥' इति । अत्र त्रिपुष्करयोगे क्वचिद्बृहस्पतिवारोऽप्युक्तः । यदाह कश्यपः—

'भद्रातिथिशनीज्यारवारेचेद्विषमांघ्रिभम् । त्रिपुष्करं त्रिगुणदं द्विगुणं द्वयंघ्रिभे मृतौ' इति इदमेव। दृष्ट्वा श्रीपतिनाप्युक्तं—'विषमचरणं धिष्ण्यं भद्रातिथिर्यदि जायते सुरगुरुशनिक्ष्मापुत्राणां कथंचन वासरे । मुनिभिरुदितः सोयं योगस्त्रिपुष्करसंज्ञितस्त्रिगुणफलदो वृद्धौ नष्टे हृते च मृतेपि वा ।।' इति । अस्य पूर्वोक्तवाक्यस्य चैकवाक्यतां देवाः कर्त्तुमर्हन्ति । कश्यपवाक्ये मृताविति पदोपादानान्मरण एवायं बिचारो नतु नष्टे वृद्धौ च । तदुक्तं ब्रह्मपुराणेपि—'धनिष्ठापंचके जीवो मृतो यदि कथंचन । त्रिपुष्करे याम्यभे च कुलजान्मारयेद्ध्रुवम् ।। तदनिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीरयेत् ।' इति । ग्रंथकर्त्रा तु श्रीपत्युक्तिमंगीकृत्य मृत्युविनाशवृद्धावित्युक्तम् । वसिष्ठनारदवाक्ययोः सामान्यतोऽभिधानं दानं च मृतावेवेति विषयविवेकः ।।५०।।

पीताम्बरा—त्रिपुष्कर व द्विपुष्कर योग बताए जा रहे हैं—सामान्यतः जिन नक्षत्रों का तीन चरण एक राशि में, जैसे कृतिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा ये ६ नक्षत्र त्रिपुष्कर एवं जिन नक्षत्रों का दो चरण एक राशि में, जैसे मृगशीर्ष चित्रा, धनिष्ठा ये द्विपुष्कर नक्षत्र हैं ।

भद्रातिथियाँ, शनि-मंगल और रविवार के दिन यदि त्रिपुष्कर नक्षत्रों की स्थिति आती है तो त्रिपुष्कर योग तथा उक्त भद्रातिथि शनि-मंगल-रविवार और द्विपुष्कर नक्षत्र के मिलन (योग) से द्विपुष्कर योग बनती हैं ।

त्रिपुष्कर योग में, मृत्यु, विनाश और वृद्धि होने से त्रिगुणित मृत्यु, विनाश और वृद्धि होती हैं । तथा द्विपुष्कर योग में द्विगुणित होती है ।

जैसे त्रिपुष्कर योग में किसी की मृत्यु होती है तो उसके सहित तीन व्यक्तियों की मृत्यु, यदि इस योग में किसी वस्तु की क्षति हो जाय तो तीन वस्तुओं का विनाश और इस त्रिपुष्कर योग में किसी का जन्म या किसी पदार्थ की प्राप्ति हो तो त्रिगुणित जन्म या पदार्थों का लाभ होगा । इसी प्रकार द्विपुष्कर में द्विगुणित मृत्यु विनाश और वृद्धि समझनी चाहिए । ।।५०।।

अथ शवप्रतिकृतिदाहे निषिद्धकालं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

शुक्रारार्किषु दर्शभूतमदने नन्दासु तीक्ष्णोग्रभे
पौष्णे वारुणभे त्रिपुष्करदिने न्यूनाधिमासेऽयने ।
याम्येऽब्दात्परतश्च पातपरिघे देवेज्यशुक्रास्तके
भद्रावैधृतयोः शवप्रतिकृतेर्दाहो न पक्षे सिते ।।५१।।

पीयूषधारा—शुक्रारेति । एवंविधे दिने शवस्य मृतस्य प्रतिकृतिः पर्णशरादिना सावयवत्वकल्पनं तस्य दाहो न कार्यः । कुतः । यतो द्विविधः प्रेतसस्कारः प्रत्यक्षशरीरस्यैकः । प्रतिकृतेरन्यः । तत्र प्रत्यक्षशरीरसंस्कृतौ शुभाशुभदिनविचाराभावः । यदाह गार्ग्यः—

प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत् ।' इति ।

प्रतिकृतिसंस्कारस्य हि कालत्रयं—अशौचमध्ये वर्षमध्ये वर्षानंतरं चेति । अत्राशौचमध्ये यदि प्रतिकृतिसंस्कारश्चिकीर्षितस्तदा यथासंभवं दिनशुद्धिर्विचार्या । वर्षमध्ये वर्षानंतरं वा

प्रतिकृतिसंस्कारस्तदा अवश्यं कालशुद्धिर्विचार्या। एतदप्याह गार्ग्य एव—'आशौचमध्ये क्रियते पुनः संस्कारकर्म चेत् । शोधनीयं दिनं तत्र यथासंभवमेव तु ।। आशौचविनिवृत्तौ चेत्पुनः संस्क्रियते मृतः । संशोध्यैव दिनं ग्राह्यमूर्ध्वं संवत्सराद्यदि ।। प्रेतकार्याणि कुर्वीत' इति । अत एवोक्तम् 'आशौचात्परतो विचार्यमखिलं मध्ये यथासम्भवम्' इति एतद्वाक्यमत्रैव स्पष्टं व्याख्यास्यते । तत्र दिनशुद्धिरुच्यते । शुक्रारेत्यादिना । शुक्रः प्रसिद्धः, आरो मंगलः, आर्किः, शनिः, एषां बारे प्रतिकृतेर्दाहो नेति प्रत्येकं संबंधः । तथा दर्शोऽमावास्या, भूतश्चतुर्दशी, मदनस्त्रयोदशी, नन्दाः प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः, आसु तिथिषु दाहो न कार्यः । यदाह मरीचिः—'नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिपुष्करे । पितृश्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् । एकादश्यां तु नंदायां सिनीवाल्यां भृगोर्दिने । नभस्ये च चतुर्दश्यां कृत्तिकासु त्रिपुष्करे ।।'

इति—द्वितीयवाक्यमतिदुष्टताकथनार्थम्। सिनीवाल्याममावास्यायां भृगोर्दिने शुक्रवारे इति सम्बन्धो व्याख्येयः । अत्र श्राद्धं न कुर्वीतेत्यनुषङ्गः । श्राद्धशब्देनात्र प्रेतक्रिया विवक्षिता । तथा तीक्ष्णोग्रभे—मूलज्येष्ठार्द्राश्लेषास्तीक्ष्णानि, उग्राणि पूर्वात्रयभरणीमघाः, पौष्णे रेवत्याम्, वारुणभे शततारकासु त्रिपुष्करदिने—भद्रातिथयः सूर्यभौमशनिवाराः, कृत्तिकापुनर्वसूत्तराफाल्गुनीविशाखोत्तराषाढापूर्वाभद्रापदाः, एतत्त्रितयसंहतिरूपदिने, प्रतिकृतेर्दाहो न कार्य इति केचिद्व्याकुर्वते । तन्न पूर्वपद्येनैव निषेधसत्त्वात् । ननु प्रत्यक्षमृतौ स निषेधो नतु प्रतिकृतिदाहे । एवं तर्हि सम्मतिवाक्याभावान्नायमर्थ इति ब्रूमः । तदुक्तं ज्योतिःपराशरेण—'साधारणे ध्रुवोऽग्रे मैत्रे नो शस्यते मनुष्याणाम् । प्रेतक्रिया कथंचित्त्रिपुष्कर यमलधिष्ण्ये वा ।।' इति त्रिपुष्करशब्देन विशिष्टो योगो विवक्षित इति चेत्, अत्र ब्रूमः—त्रिचरणनक्षत्राण्येव त्रिपुष्करे पदेनोच्यन्ते । अतो हेमाद्रिणापि कृत्तिकादीन्येव त्रिचरणानि भानि त्रिपुष्करशब्देन व्याख्यातानि । अत एवाह कश्यपः—'भरण्यार्द्रामघाश्लेषामूलं त्रिचरणानि च । प्रेतक्रियातिदुष्टानि धनिष्ठाद्यं च पञ्चकम् ।।' इति । पराशरवाक्ये बहूनि प्रेतकृत्ये सामान्यतो निषिद्धानि । कश्यपवाक्येऽन्यान्यपि दुष्टान्युक्तानि । इदमेवाभिप्रेत्य ग्रन्थकृतोक्तानि । तत्र धनिष्ठायाः अग्रहणं मध्यमेषु भेषु ग्रहणस्य वक्ष्यमाणत्वात् ।

अथ न्यूनाधिमासे, क्षयमासे, अधिमासे च शवप्रतिदाहो न कार्यः । उक्तं च ज्योतिर्निबन्धे गरुडपुराणे—'न कुर्याद्गुरुशुक्रास्ते पौषे स्वापे मलिम्लुचे । विलम्बितं प्रेतकार्यं गयां गोदावरीं विना ।।' इति मेधातिथिः—,अस्तङ्गते गुरौ शुक्रे पौषाढाधिमासके । प्रेतकार्यं न कुर्वीत गयां गोदावरीं विना ।।' इति । अधिमासस्योपलक्षणत्वात् क्षयमासेऽपि न कार्यं प्रेतकार्यमित्यर्थः । अत एव मूल न्यूनासनिषेधः । अथाब्दादेकस्माद्वर्षात्परतः उर्ध्वं याम्यायने दक्षिणायने कर्कादिषड्राशिस्थिते सूर्ये न दाहः कार्यः । अर्थादुत्तरायणं सम्यक् । उपलक्षणत्वादवमदिनमपि निषिद्धम् । उक्तं च गार्ग्येण 'उर्ध्वं संवत्सराद्यदि । प्रेतकार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम् । कृष्णपक्षश्च तत्रापि वर्जयेत्तु दिनक्षयम् ।' इति । गरुडपुराणेपि–'न कुर्याद्द्गुरुशुक्रास्ते पौषे स्वापे मलिम्लुचे । बिलम्बितं प्रेतकार्यं गयां गोदावरीं बिना ।।' इति । यदत्र वाक्ये पौषस्वापयोर्निषिद्धत्वान्मार्गशीर्षस्य मध्यमत्वं प्रतीयते तदावश्यकविषयम् । प्रथमवर्षे तु दक्षिणायनमपि शुभमेव । पातपरिघे व्यतीपाताख्ये योगे गणितागते । व्यतीपाताख्ये महापात इत्यपि केचित् । परिघाख्ये योगे तथा देवेज्यशुक्रास्तके । गुरुशुक्रयोरस्ते । अत्र स्वार्थेकः । तथा भद्रावैधृतयोः प्रसिद्धौ, गणितसाध्ये

महापाते इत्यपि केचित् । तथा सिते पक्षे शुक्लपक्षे शवप्रतिकृतेर्दाहो न कार्यः । तदुक्तं नारदेन श्राद्धलक्षणाध्याये–'चतुर्दशी तिथिं नन्दां शुक्रभौमार्किवासरम् । सितेज्ययोरस्तमयंद्वंघ्रिभं विषमांघ्रिभम् ।। शुक्लपक्षं च सन्त्यज्य पुनर्दहनमुच्यते ।' इति अन्यत्रापि—नन्दामदनभूतायां पातवैधृतिविशिष्टिषु । शुक्रार्किभौमपरिवध्रुवमिश्रोग्रमैत्रभे । कर्तुश्चन्द्रेष्टवेदान्त्ये जन्मप्रत्यरितारके। त्रिपादभे सिते पक्षेऽयने याम्येऽब्दतः परम् । शवप्रतिकृतेर्दाहः शुक्रेऽस्ताधिकमासके । नेष्टो मध्यो द्विपान्मैत्रद्वीशादितिभगध्रुवे ।।' इति ।।५१।।

पीताम्बरा—पूर्वोक्त पुत्तलदाह (शव प्रतिकृति) के लिए आचार्य निषिद्ध समय बता रहे हैं—प्रेत संस्कार दो प्रकार का होता है । (१) प्रत्यक्ष शरीर का दाह। (२) जो विदेश में मर गया हो या जलादि में डूब कर जिसका शरीर लुप्त हो गया हो ।

प्रत्यक्ष शरीर दाह के लिए शुभाशुभ दिन विचार की आवश्यकता नहीं है । लुप्त शरीर का पलाश कुश यव-पिष्टादि के पुत्तल रूप शरीर दाह के लिए शुभाशुभ दिन विचार की आवश्यकता होती है । मंगल, शुक्र और शनिवार, अमावाष्या, चतुर्दशी, त्रयोदशी और नन्दा (१।६।११) तिथियों में, तीक्ष्ण, उग्र रेवती और शतभिषा नक्षत्रों में त्रिपुष्कर योग (पूर्वश्लोक में वर्णित) क्षयमास, अधिकमास, एक वर्ष के पश्चात (मृतक का समाचार) दक्षिणायन, (कर्क संक्रान्ति प्रारम्भ से धनु संक्रान्ति समाप्ति तक) व्यतीपात और परिघयोग, गुरुशुक्र के अस्तकाल में भद्रा वैघृति और शुक्लपक्ष में पुत्तल दाह शुभ नहीं है । नहीं करना चाहिए ।

आशौच मध्य में भी पुत्तलदाह के लिए दिन शुद्धि देखनी चाहिए । १ वर्ष के भीतर या १ वर्ष के अनन्तर मृत्यु का समाचार मिलने पर तो दिन शुद्धि अवश्य ही देखनी चाहिए । आशोच मध्य में १० दिन के भीतर समाचार मिलने से पञ्चकादि दिन वर्जित कर पुत्तलदाह नवें, दशवें दिन में किया जा सकता है ऐसी ध्वनि उक्त निर्णयों से मिलती है । यहाँ पर अधिक समय तक की गुरु-शुक्रास्तादि दोष की विचारणा भी आवश्यक नहीं है ।।५१।।

अन्यदपि शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जन्मप्रत्यरितारयोर्मृतिसुखान्त्येऽब्जे च कर्तुर्नसन्—
मध्यो मैत्रभगादितिध्रुवविशाखाद्वयङ्घ्रिभेऽह्नेऽपि ।
श्रेष्ठोऽर्केज्यविधोर्दिने श्रुतिकरस्वात्यश्विपुष्ये तथा
त्वाशौचात्परतो विचार्यमखिलं मध्ये यथासम्भवम् ।।५२।।

पीयूषधारा—जन्मप्रत्यरितारयो रिति । तथा कर्त्तुः प्रेतश्राद्धाद्यधिकरिणो जन्मप्रत्यरितारयोः जन्मतारा उत्पत्तिनक्षत्रं दशममेकोनविंशं चेति । प्रत्यरितारा जन्मभात्पंचमं चतुर्दशं त्रयोविंशं चेति तेषु । तथा कर्त्तुर्मृतिसुखान्त्येऽब्जे स्वजन्मराशेरष्टमचतुर्थद्वादशस्थे चन्द्रे सति दाहो न सत् न प्रशस्तः। तदुक्तं वाराहपुराणे चतुर्थाष्टमे चन्द्रे द्वादशे च विवर्जयेत् । प्रेतकृत्यं व्यतीपाते वैधृतौ परिघे तथा। करणे विष्टिसंज्ञे च शनैश्चरदिने तथा ।।' इति । विष्टिसंज्ञं करणं भद्रा । महाभारते—'नक्षत्रे न कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः । न प्रौष्ठपदयोः कार्यं तथाग्नेयेऽपि भारत ।। दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यरिं च विवर्जयेत् ।।' इति । प्रौष्ठपदयोः पूर्वाभाद्र-

पदोत्तराभाद्रपदयोः । आग्नेये कृत्तिकायाम् । कालविशेषादिकं नारदेनोक्तम्—'दिनोत्तरार्द्धे तत्कर्तुश्चंद्रताराबलान्विते । पापग्रहे बलयुते शुक्रलग्नांशवर्जिते ।। तत्पुनर्दहनं प्रोक्तम्' इति ।।

प्रतिकृतिदाहे मध्यमनक्षत्राणि—

अथ शवप्रतिकृतिदाहे मध्यमनक्षत्राण्युच्यन्ते । मैत्रमनुराधा भगः पूर्वाफल्गुनी, अदितिध्रुवविशाखाः प्रसिद्धा, द्वयंत्रिभं मृगचित्राधनिष्ठाः, एषु भेऽपि बुधवारेपि शवप्रतिकृतिदाहो मध्यमः । न शुभफलदो नाप्यनिष्टफलद इत्यर्थः । उक्तं च कश्यपेन—'फल्गुनीद्वितयं रोहिण्यनुराधा पुनर्वसुः द्वे आषाढे विशाखा च भानि द्विचरणानि च ।। एतानि किंचिद्दुष्टानि वर्जयेत्सति संभवे ।।' इति । 'नेष्टो मध्यो द्विपान्मैत्रद्वीशादितिभगध्रुवे' इति चेत्युक्तेर्बुधे समत्वभावः । अर्केज्यविधौऽर्केज्याभ्यां सहितो विधुरिति मध्यपदलोपी समासः । सूर्यगुरुचन्द्राणां दिने वारे दाहः श्रेष्ठः । तथा केन कारणेन श्रुतिकरस्वात्यश्विपुष्ये एषु निषिद्धनक्षत्रगणादुर्वरितेषु पञ्चसु भेषु शवप्रतिकृतेर्दाहः श्रेष्ठोऽनुष्ठीयमानः शुभफलद इत्यर्थः । आशौचात्परत इत्यादि-व्याख्यातार्थम् । ननु प्रतिकृतिसंस्कार किंनिमित्तः । उच्यते, दैवान्मानुषाद्वापराधान्मृतस्य विधिद्दाहो नाभूत्किन्तु काष्ठवद्दाहो जातोऽथवापरदेशगतस्य चौरदंष्ट्र्यादिहतस्य तद्भीतेरेव केनचित्काष्ठवद्दाहोपि न कृतोथवैकाकित्वात्र जातस्तदा प्रतिकृतिदाहो विधेयः । उक्तं च ब्रह्मपुराणे—'अनाहिताग्नेर्देहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना द्विजैः । तदभावे पलाशोत्थैः पत्रैः कार्यः पुमानपि ।। सुपिष्टैर्जलसंमिश्रैर्दग्धव्यश्च तथाग्निना । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा सबान्धवैः । एवं पर्णशवं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।।' इति । तदभावे देहाभावे तथाग्निना गृह्याग्निना । अपि शब्दात् स्त्री मरणे तद्देहाभावे स्त्र्यपि पलाशोत्थैः पत्रैः कार्येत्यर्थः ।।

आहिताग्निमरणविषये तु निर्णयस्त्रिधा—

आहिताग्नेस्तु श्रौतसूत्रोक्ताविधिमाहापस्तम्बः—'यद्याहिताग्निः प्रोषितः प्रमीतो न प्रज्ञायेत स यां दिशमभिप्रस्थितस्तां दिशमस्याग्निभिः कक्षं दहेयुरपि वा वाजसनेयकमिति त्रीणि षष्ठिशत्यापि पलाशवृन्तानि तैः कृष्णाजिने पुरुषाकृति कृत्वा तामस्याग्निभिर्दहेयुः' इति वा अत्र पक्षद्वयम् । यथा—प्रवासगतो यदि न प्रज्ञायेत प्रमीत इति अतो मृत इत्येवमनिर्णये (१) स यां दिशं प्रति प्रस्थितो भवेत्तस्यां दिशि यः कक्षोऽकृष्टोभूमिप्रदेशस्तृणवांस्तं देशमस्य मृतस्य प्रतिकृतिभावनया श्रौताग्निभिस्तूष्णीं दहेयुर्बान्धवाः पितृमेधविधिना । अयमेकः पक्षः । (२) अपि वा अथवा त्रीणि षष्ठ्युत्तराणि शतानि ३६० पलाशवृन्तानि पलाशानि पर्णानि यत्र तिष्ठन्ति तादृशानि वृन्तानि संपाद्यतैर्वृन्तैः पलाशवृक्षीयस्त्रिपत्रैर्वृन्तैः कृष्णाजिने पुरुषाकृति कृत्वा तामाकृतिमस्याग्निभिः पितृमेधविधिना दहेयुरिति वाजसनेयिनां मतमिति द्वितीयः पक्षः । (३) पराशरेण तु—'कुशैः प्रतिकृतिः कार्या' इत्युक्त्वा—'कृष्णाजिनेसमास्तीर्य कुशैस्तु पुरुषाकृतिम्' इत्युक्तम् । कुर्यादिति शेषः । अत्र पलाशवृन्तकुशविध्योरन्यतरेणानुष्ठानम्, व्रीहियवचत्तुल्यवलत्वात् । शवप्रतिकृतिदाहानुष्ठानविधिस्तु शौनकाद्युक्तादिशा ज्ञेया । नात्रा-प्रस्तुतत्वाल्लिख्यते ।

तत्र प्रतिकृतिविधिहेतुश्च—

अयं च पलाशवृन्तादिभिः प्रतिकृतिविधिरस्थ्यलाभे । यदा तु मृतास्थ्नां लाभस्तदा तैरेव प्रतिकृतिः कार्या । तदुक्तं छंदोगसूत्रे—'अथातः पुनर्दाहविधिं व्याख्यास्यामो यदि शरीरं

नश्येदस्थोन्यादायास्थीनि क्षीरोदेकेन प्रक्षाल्यास्थिभिः कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा पूर्ववद्दहेत्तेषामलाभे पलाशवृन्तैः कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कृत्वा चत्वारिंशता शिरो दशभिर्ग्रीवां विंशत्योरस्त्रिंशतोदरं पञ्चाशता पंचाशता बाहू तयोरेव पंचभिः पंचभिरंगुलीः सप्तत्या सप्तत्या पादौ तथैवाङ्गुलीरष्टाभिः शिश्नं द्वादशभिर्वृषणम् । तां कुशैर्वेष्टयित्वा तस्मिन्नेव पूर्ववद्दहेत्' इति । अस्यार्थः—चत्वारिंशत्पलाशवृन्तैः शिरः संपाद्य दशभिर्ग्रीवां विंशत्योरस्त्रिंशता जठरं पञ्चाशतैकबाहुं तथैव पञ्चाशतापरबाहुं पञ्चभिः पञ्चभिरङ्गुलीस्तथा सप्तत्या सप्तत्या पादद्वयं तत एव पंचभिः पञ्चाभिरङ्गुलीरेवं पञ्चसप्तत्येकः पादः । अष्टाभिः शिश्नं द्वादशभिर्वृषणद्वयम् । एवञ्च षष्ट्यधिकत्रिशता पलाशवृन्तैरवयकल्पना भवति । तां प्रतिकृतिम् तस्मिन्नेव कृष्णाजिने च पूर्ववदिति पितृमेधविधिना दहेदित्यर्थः । एतादृशे विषये कालनियमः— 'शुक्राराकिषु ।' इत्यादिनोक्तः । यतः 'यथातः सम्प्रवक्ष्यामि यत्पुनर्दहनं नृणाम्' इत्यादिना पद्यसमुदायेन कालशुद्धिमुक्त्वा 'अतीतविषये काम्ये न्यूने श्राद्धे महालये । एतत्सर्वं विचिन्त्याशु कुर्याच्छ्राद्धमतन्द्रितः ॥' इतिकश्यपेन कालातीतविषयत्वेनाभिधानात् ।

आशौचारम्भकालनिर्णयः—

तत्राधिकारी पुत्रादिर्यस्मिन्नेव क्षणे पित्रादिमरणं श्रृणुयात्तद्दिनमारभ्यैव यथोक्ताशौचाधिकारी भवति । तदाह पैठीनसिः—'पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ॥' अन्येषां तु देशान्तरमरणे विशेषमाह वृद्धवसिष्ठः—'मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मासात्पक्षिणी तथा । अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति ॥' इति । पक्षिणी सार्द्धं दिनम् । 'आगामिवर्त्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी' इत्यमरोक्तेः अत्र श्रुत्वेत्युक्तेर्मरणश्रवणमेवाशौचनिमित्तम् । 'निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा' इतिमनूक्तेश्च । दशाहेभ्यो बहिरित्यर्थः । दशाहपदं स्वस्ववर्णाशौचोपलक्षणम् । षट्त्रिंशन्मतेऽपि—'उभाभ्यामपरिज्ञाते सूतकं नैव दोषकृत्। एकेनापि परिज्ञाते भोक्तुर्दोषमुपावहेत्' इति । यदि तु दशाहमध्ये श्रृणुयात्तदा शेषाहोभिरेवाशौचं तस्य स्यात् । उक्तं च मिताक्षरायां—'विगतं तु विदेशस्थं श्रृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्' इति । दशरात्रस्येत्युपलक्षणम् । वर्णापेक्षया वयोवस्थापेक्षया यस्य यावानाशौचकाल उक्तस्तन्मध्ये एव विदेशगतमरणश्रवणे सत्याशौचावशिष्टैरेवाहोभिर्विशुध्यतीत्यर्थः । अत एव 'जनने मरणे नित्यमाशोचमनुधावति । सपिण्डांश्चैव बन्धूंश्च यत्र क्वचन गच्छति' इत्याद्येवंविधानि देवलादिमुनिवाक्यानि श्रवणनिमित्ताशौचपराणि व्याख्येयानि ।

अथ वर्णानामाशौचानुष्ठानदिनसंख्याः—

तत्र वर्णाशौचदिनसंख्यामाह दक्षः—'शुद्धयेद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धयति' इति ॥

प्रतिकृतिदाहे यथासम्भवं शुद्धिकालविषयौ—

तत्र यदा मरणदिनादारभ्य यथोक्ताशौचदिनमध्ये एव चेन्मरणं श्रृणुयात्तदावशिष्टाशौचदिनमध्ये अथवा स्वस्ववर्णोक्ताशौचदिवसातिक्रमानन्तरं चेन्मरणं श्रृणुयात्तदा तद्दिनादारभ्य यथोक्ताशौचदिनमध्ये प्रतिकृतिसंस्कारश्चिकीर्षितः तदा यथा संभवं दिनशुद्धिर्विचार्या ।

अत एवोक्तं गर्गेण--'आशौचमध्ये क्रियते' इत्यादि। भद्राभरणीधनिष्ठापञ्चकादिदोषराहित्यमपेक्षितम्, नैव बहुकालव्यापिशुक्रास्तादिदोषराहित्यापेक्षा कार्येति गर्गवाक्ये यथासम्भवपदस्यार्थः सर्वथात्वाशौचदिनेषु दुष्टेषु दोषतारतम्येन महादोषत्यागोऽल्पदोषाङ्गीकारो यथा लोकप्रसिद्धिः, तादृशे दिने शवप्रतिकृतिदाहो विधेयः। सर्वथा दोषरहिते दिने तूत्तम एव सः।

प्रतिकृतिदाहनिर्णयः—

अथ यदि मरणश्रवणानन्तराशौचदिनानां राजिकदैविकब्राह्मणाद्यलाभरूपप्रतिबन्धादतिक्रमणभूत्तदाशौचमस्ति न वेति विचारः। राजिकदैविकसम्भावनायां सत्यां सद्य एव शौचं स्यान्न त्वाशौचम्। यदाह पराशरः–'दुर्भिक्षे राष्ट्रसन्तापे आपदां च समुद्भवे उपसर्गमृते चैव सद्यः शौचं विधीयते इति।' यमबृहस्पती—'दैवे भये समुत्पन्ने प्रधानांशे विनाशिते। सद्यः शौचं समाख्यातं कांतारापदि संयति' इति। पैठीनसिरपि—'विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि। न तत्र सूतकं तद्वत्कर्म यज्ञादि कारयेत्' इति। कालांतरालभ्यायां गयादियात्रायां तादृश एव तीर्थकर्मणि तीर्थस्नानदानादिकर्मणि तादृशे विषये आशौचग्रहाभावादेव शवप्रतिकृतिदाहाभावः। यदा तु ब्राह्मणाद्यलाभस्तदाशौचपरिग्रहः स्यादेव। परं त्वाशौचदिनानंतरं वर्षमध्ये दिनशुद्धिमपेक्ष्यैव शवप्रतिकृतिदाहो विधेयः। 'आशौचस्य निवृत्तौ चेत्पुनः संस्क्रियते मृतः। संशोध्यैव दिनं ग्राह्यम्' इति गर्गेणैवकारसहितदिनपदोक्तेः। अयमर्थः—अत्रापि भद्राभरणीपञ्चकादिदोषः कतिपयदिनव्यापी त्याज्य एव नतु शुक्रास्तादिबहुकालव्यापिदोषप्रतीक्षा। तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे पितृखण्डे—'शुक्रस्यास्तमने चैव देवेज्यस्य तथैव च। प्रेतकार्यं प्रदुष्येत प्रथमं वत्सरं विना॥' इति।

वर्षमध्ये दैविकादिप्रतिबन्धनिवृत्तौ तत्र निर्णयः—

अथ यदि वर्षमध्ये राजिकदैविकाद्युपद्रवः संपन्नस्तदा वर्षोत्तरं निषिद्धदक्षिणायनशुक्रास्तादिमहादोषरहिते भद्राभरणीपंचकादिदोषरहिते च काले शवप्रतिकृतिदाहः कार्यः। उक्तं च गार्ग्येण—'ऊर्ध्वं संवत्सराद्यदि। प्रेतकार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम्' इत्यादीनि मूलवाक्यानि प्रागभिहितानि। अत एव मूलपद्येप्यब्दात्परतो याम्येऽयने तथा देवेज्यशुक्रास्तके शवप्रतिकृतिदाहो न कार्य इति व्याख्येयम्। प्रथमे वर्षे तु नायं दोषः।

सर्वत्रापि गयागोदावर्य्योस्तीर्थयोः प्राप्तयोः सतोरयं शुक्रेज्यास्तदक्षिणायनादिमहादोषविचारः कोऽपि नास्ति। तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे प्रेतमंजर्याम्—'प्रेतकार्याणि सर्वाणि व्रतस्नानजपादिकम्। वर्ज्यं शुक्रेज्ययोरस्ते गयां गोदावरीं विना' इति। अन्यानि तु गयागोदावरीविषयाणि वचांसि प्रागुक्तानीत्यलमतिप्रसंगेन॥ ५२॥

पीताम्बरा—पुत्तलदाह कर्ता के लिए भी शुभाशुभकाल का विचार किया जा रहा है— प्रेतक्रिया कर्त्ता की जन्म और प्रत्यरि तारा (गोचर प्रकरण में) तथा प्रेतक्रिया कर्त्ता की जन्म राशि से ४, ८, १२ वें चन्द्रमा भी नहीं होने चाहिए।

अनुराधा, पूर्वाफाल्गुनी, पुनर्वसु, ध्रुवसंज्ञक, विशाखा तथा मृगशीर्ष, चित्रा, धनिष्ठा इन द्विचरण राशिक नक्षत्र और बुधवार में प्रेतक्रिया कर्म मध्यम फलद होता है।

रवि, सोम, बृहस्पति, श्रवण हस्त स्वाती, अश्विनी पुष्य इन नक्षत्र वारों में प्रेत-क्रिया, कर्त्ता के लिए शुभ हैं।

अशौच के अनन्तर ही उक्त विचार आवश्यक है। अशौच मध्य में पुत्तल दाह के लिए यथा सम्भव स्थिति के अनुसार क्रिया कर्म करना चाहिए ।। ५२ ।।

अथ नक्षत्रसम्बन्धेन मुहूर्त्तानुक्त्वा नक्षत्रप्रसंगान्नक्षत्रविशेषोत्पन्नस्याभुक्तमूलदोषमनेकविधमुपजातिकयाह—

अभुक्तमूलं घटिकाचतुष्टयं ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं हि नारदः।
वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ बृहस्पतिस्त्वेकघटीप्रमाणकम् ।। ५३ ।।

पीयूषधारा—अभुक्तमूलमिति । अत्राभुक्तमूलस्यानेके भेदाः । १–तत्रैकस्तावदयं भेदः । ज्येष्ठानक्षत्रांते भवं ज्येष्ठांत्यं, मूलादौ भवं मूलादिभवं, ज्येष्ठांत्यजातं घटीचतुष्टयं मूलादिजातं घटींचतुष्टयं मिलित्वाष्टौ घटिकाः । प्रहर इति यावत् । तावान्कालोऽभुक्तमूलाख्य इति नारदमतम्, २–उपलक्षणत्वादाश्लेषातिघटीचतुष्टयं मघादिघटीचतुष्टयं चाभुक्तमूलाख्यः कालः । यदाह नारदः—'यो ज्येष्ठामूलयोरन्तरालप्रहरजः शिशुः । अभुक्तमूलजः सार्पमघानक्षत्रयोरपि' इति । ३–तथापरो भेदः । एकेति । ज्येष्ठांते एकघटीमितं मूलादौ घटीद्वयमितमेवं मिलित्वा त्रिघटिकमभुक्तमूलं स्यादिति वसिष्ठो मुनिर्जगौ । यदाहवसिष्ठः—'ज्येष्ठांत्यपादघटिकामितमेव केचिन्मूलं अभुक्तमपरे पुनरामनन्ति । मूलाद्यपादघटिका द्वितयेन सार्द्धमष्टौ समाः परिहरेदिह जन्मभाजम्' इति । समा वर्षाणि । ४–अथान्यो भेदः । एकेति । ज्येष्ठान्त्यार्द्धघटिकामूलाद्यर्द्धघटिकेति मिलित्वा एकघटीप्रमाणमस्य तदेकघटीप्रमाणकम् । 'शेषाद्विभाषा' इति कप् । तादृशमभुक्तमूलं स्यादिति बृहस्पतिजगौ । यदाह गुरुः—'ज्येष्ठांत्यघटिकार्द्धं च मूलादौ घटिकार्द्धकम् । तयोरन्तर्गता नाडी ह्यभुक्तं मूलमुच्यते' इति ।। ५३ ।।

पीताम्बरा—अभुक्तमूल का समय बताया जा रहा है—मानव के जन्म और मरण का निर्णीत कोई समय अवश्य है जिसे अध्यात्मविद्या से युक्त युञ्जान योगी ही जान सकते हैं। २७ नक्षत्रों में नक्षत्रों के कुछ समय ऐसे हैं जिनमें जन्म लेने से बालक और उसके माता-पिता के भविष्य आदि पर कुछ (अनिष्टफल) दुष्परिणाम हो सकता है। मूल नक्षत्र का अधिपति निर्ऋति नामक राक्षस है। अतः राक्षस के नक्षत्र मे उत्पन्न बालक (बालिका) पर राक्षसी प्रवृत्तियों का दुष्प्रभाव पड़ सकता है। तत्रापि समग्र मूल नक्षत्र का सारा समय सदोष नहीं है उसका प्रारम्भ का कुछ समय तथा उसके पूर्ववर्ती नक्षत्र का अवसान समय का नाम अभुक्तमूल कहा गया है। आचार्यों के विभिन्न मतों से अभुक्तमूल के समयों में मतान्तर भी है।

"नारद" जी के मत से ज्येष्ठा नक्षत्र की अन्तिम ४ घटी (१ घण्टा ३६ मि०) और मूल नक्षत्र के प्रारम्भ की भी ४ घटी एवं पूर्वा पर ज्येष्ठा मूल नक्षत्रों की अन्तिम और आदि की मिलाकर ८ घटियाँ (३ घण्टा १२ मि०) सदोष अर्थात् अभुक्तमूल संज्ञक हैं।

आचार्य वसिष्ठ के मत से ज्येष्ठा की अन्तिम १ और मूलादि की २ घटिकाएँ मिलाकर तीन घटिका अभुक्तमूल कही जानी चाहिए।

आचार्य बृहस्पति के मत से ज्येष्ठा की अन्तिम ½ घटी = १२ मि० और मूलादि की आधी घटी मिलाकर १ घटी = २४ मि० अभुक्तमूल है ॥ ५३ ॥

अथान्यदपि सफलमुपजातिकयाह—

अथोचुरन्ये प्रथमाष्टघटयो मूलस्य शाक्रान्तिमपञ्चनाडयः ।
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याष्टसमा न पश्येत् ॥ ५४ ॥

पीयूषधारा—अथोचुरन्य इति । अथशब्दः पादपूरणे । मूलनक्षत्रस्य प्रथमा आदिमा अष्टघटिकाः, शाक्रस्य ज्येष्ठाया अंतिमाः पंच नाड्यो घटिका एवमुभयोर्ज्येष्ठामूलयोरन्तरालवर्तिन्यस्त्रयोदशघटिका अभुक्तमूलमिति लोका ऊचुः । 'ज्येष्ठाऽन्त्यघटिकाः पञ्चमूलाद्या वसुनाडिकाः । अभुक्तमूलमित्युक्तं तत्र जातं शिशुंत्यजेत्' इति स्मरणात् ॥

अभुक्तमूलेषु नारदोक्तस्य महादुष्टत्वम्—

एवमभुक्तमूलस्यानेकभेदसम्भवे कः साधीयान् पक्ष इति चेत्—उच्यते—नारदोक्तः पक्ष एव साधोयान् किमत्र प्रमाणमिति चेत्, श्रृणु । बहुमुनिसम्वाद एवात्र प्रमाणम् । तदाह कश्यपः—'ज्येष्ठान्त्यमूलयोरन्तरालयामोद्भवः शिशुः । अभुक्तमूलजः सोप्याश्लेषापितृभयोरपि ॥' इति । वसिष्ठोऽपि—'भुजङ्गपौरन्दरपौष्णभानां तदग्रभानां च यदन्तरालम् । अभुक्तमूलं प्रहरप्रमाणं त्यजेत्सुतं तत्र भवां सुतां च' इति । अत एव पूर्वमुक्तं वसिष्ठवाक्यं केचिन्मताभिप्रायेण । यतस्तद्वाक्ये 'केचिदिति अपरे' इति चेत्युक्तिरस्ति । यद्येवं घटीन्यूनाधिकभावाभिधायिनां प्रागुक्तवाक्यानां का गतिरिति चेत् । उच्यते—दोषस्याधिक्यात्पत्वसूचनमेव गतिः ।

अभुक्तमूलजातस्यापत्यस्य त्याग एव श्रेयः—

अथाभुक्तमूलसंज्ञाकथनस्य प्रयोजनमाह—जातमिति । तत्राभुक्तमूलाख्ये काले जातं शिशु बालकम्, उपलक्षणत्वात्तत्र जातां कन्यां वा पिता परित्यजेन्निष्कासयेत् । 'त्यजेत्सुतं तत्रभवां सुतां च' इति वसिष्ठोक्तेः ।

त्यागाशक्यत्वे तद्दोषनिरसनोपायाः—

यद्यशक्यं निष्कासनं स्यात्तदा किं कार्यमित्यत आह—वेति । वा अथवा पूर्वपक्षकर्तव्यताशक्तौ पिताऽस्य शिशोः कन्याया वा मुखमष्टसमाः अष्टौ वर्षाणि 'सम्वत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः' इत्यमरः । तावत्कालं न पश्येत् ॥' इति । च्यवनोऽपि—'अभुक्तमूलभे भवं परित्यजेच्च बालकं समाष्टकं पिताथवा न तन्मुखं विलोकयेत्' इति । गण्डान्तदोषस्तु विवाहप्रकरणे वक्ष्यत इति कृत्वात्र नोक्तः ॥ ५४ ॥

पीताम्बरा—अभुक्तमूल काल के लिए अन्य मत भी कहे जा रहे हैं—अन्य आचार्यों के मत से ज्येष्ठा नक्षत्र की अन्तिम ८ घटी = ३ घण्टा १२ मिनट, तथा मूल नक्षत्र की आदि की ५ घटी = २ घण्टा मिलाकर ८ + ५ = १३ घटी = ५ घण्टा १२ मिनट तक अभुक्तमूल कहा जाता है ।

अभुक्तमूल में उत्पन्न बालक का त्याग करना चाहिए । (किसी दूसरे को दे देना चाहिए जो असन्तान हो या गोद लेना चाहता हो इत्यादि……………।)

अभुक्तमूल जन्मा बालक का यदि त्याग न कर सकें तो पिता को चाहिए कि ८ वर्ष तक उसका मुख ही न देखै। यहाँ पर पिता ८ वर्ष तक मुख तभी नहीं देख सकेगा जब वह घर छोड़कर ८ वर्ष तक स्थानान्तर में निवास करै बुद्धि इसे स्वयं समझ सकती है ? ।।५४।।

अथ प्रसङ्गान्मूलाश्लेषाजातस्य बालस्य चरणवशेन शुभाशुभफलमुपजात्याह—

आद्ये पिता नाशमुपैति मूल पादे द्वितीये जननी तृतीये।
धनं चतुर्थोऽस्य शुभोऽथ शान्त्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम् ।। ५५ ।।

पीयूषधारा—आद्ये इति। मूलनक्षत्रस्याद्यपादे प्रथमे चरणे चतुर्थांशे इति यावत्। तत्र जातस्य शिशोः कन्याया वा पिता नाशं मरणमुपैति प्राप्नोति तथा मूलद्वितीयपादे जननी माता नाशमुपैति। तथा तृतीयमूलपादे धनं द्रव्यं नाशमुपैति। चतुर्थो मूलपादोऽस्य शिशोः शुभः शुभफलदः। उक्तं च ब्रह्मपुराणे—'मूलाद्येऽशे पितुर्नाशो द्वितीये मातुरेव च। तृतीये धनधान्यादिनाशस्तुर्ये धनागमः।।' इति। तुर्ये चतुर्थे। रत्नमालायाम्—तदाद्यपादके पिता विपद्यते जनन्यथ। तृतीयके धनक्षयश्चतुर्थकः शुभावहः।।' इति।

अत्र मातृपदेन सापत्नमातृग्रहणविचारः—

अत्र पितुर्बहुस्त्रीत्वेऽपि स्वमातुरेव नाशो वाच्यो न सापत्नमातुः। यदाह कश्यपः—मूलाद्यपादजो हन्ति पितरं तु द्वितीयजः। मातरं स्वां तृतीयोऽर्थान्सुहृदश्च तुरीयधः।।' इति। अन्येऽत्र स्वमातुरिव सापत्नमातुरपि नाशो वाच्यः यतो मातृशब्दः सापत्नमातुरपि वाचकः। यदाह गौतमः—'पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भ्रातरो मातुलास्तदपत्यानि मातुलेयानि' इति। स्पष्टार्थमेव कश्यपवाक्ये स्वामितिपदोपादानम्।

दिनरात्रिभेदे मूलजातविषये दोषपरिहारः—

अत्र विशेषो वसिष्ठसंहितायाम्—

'मूलाद्यपादो दिवसे यदि स्यात्तज्जः पितुर्नाशनकारणं स्यात्।
द्वितीयपादो यदि रात्रिभागे तदुद्भवोमातृविनाशकः स्यात्।।
मूलाद्यपादो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पुनर्विनाशः।
द्वितीयपादो दिनगो यदि स्यान्न मातुरल्पोऽपि तदास्ति दोषः।।' इति।

नारदसंहितायां च—

'दिवा जातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा।
आत्मानं सन्ध्ययोर्हन्ति ततो गण्डं विवर्जयेत्।।' इति।
एतदेव मातापितृगण्डमितिजीर्णा व्यवहरन्ति।।

अभुक्तमूलजन्मदोषनिवृत्तिस्तदृक्षशान्त्यै उपायः—

अथ दोषसत्त्वे किं कार्यमत आह—अथेति। अथानन्तरं शान्त्या मूलाश्लेषाशान्त्या स्वनुष्ठितया सर्वत्र चरणचतुष्टयेऽपि शुभमनिष्टफलनाशकं कल्याणकरं स्यात्। उक्तं च वसिष्ठेन नैर्ऋत्यभौजङ्गमगण्डदोषनिवारणायाभ्युदयाय नूनम्। पितामहोक्तां रुचिरां च शान्तिं प्रवच्मि

लोकस्यहिताय सम्यक् ।। शास्त्रोक्तरीत्या खलु सूतकान्ते मासे तृतीयेप्यथ वत्सरान्ते ।।' इति । नैर्ऋत्यं मूलं तद्दोषः । भौजङ्गमाश्लेषा तद्दोषः । गण्डो वक्ष्यमाणस्तद्दोषश्च । 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इति न्यायात् । तद्दोषाणां निवारणाय तदर्थम् । अत एव कश्यपेन— 'तद्दोषशमनार्थं हि शान्ति कुर्यात्प्रयत्नतः' इति सामान्यत उक्तम् ।

अत्र वशिष्ठवाक्ये कालत्रयकथनं सामर्थ्यासामर्थ्यकृतं ध्येयम् । तथापि—यदि मातुः शीतोदकस्नानेऽसामर्थ्यस्यात्तदा सूतकान्त एव शान्तिः । तत्राप्यशक्तौ तृतीये मासि शान्तिः । दीर्घरोगादिना तदाप्यशक्तिश्चेत्तर्हि वर्षसमाप्तिदिवसे शान्तिः ।

मातृगण्डे जन्मनि शान्तिकालः—

मातृगण्डे तु विशेषस्तेनैवोक्तः—'मातृगण्डे सुते जाते सूतकान्ते विचक्षणः । कुर्याच्छान्ति तदृक्षे वातद्दोषस्यापनुत्तये ।।' इति ।

शिष्टाचारानुविद्धः शान्तिकालस्त्वत्र सर्वत्र तदृक्ष एव

शिष्टास्तु सर्वत्र यस्मिन्नक्षत्रे जन्म तन्नक्षत्र एव शान्तिरिति व्यवहरन्ति । ननु मूलपादचतुष्टयेऽपि शान्तिः कर्तव्येत्युक्तम् । तत्र चतुर्थचरणस्य शुभफलत्वात्—शान्ति रयुक्तेति प्रतिभाति । 'अनिमित्तकृता शान्तिर्निमित्तायोपजायते' इति स्मरणात् । उच्यते—यद्यपि चतुर्थचरणे धनागमरूपं शुभफलमभिहितम्, तथापि कश्यपेन—'सुहृदश्च तुरीयजः' इति सुहृन्नाशरूपफलस्यानिष्टस्योक्तेस्तदपाकरणार्थमवश्यं कर्त्तव्या शान्तिः । नहि कस्यचिद्वैरिनाशवन्मातुलाद्यनेकसुहृन्नाश इष्टः । किंच मूलवृक्षविचारेऽपि चतुर्थपादे पुरुषकन्ययोरशुभफलकथनाच्च । मूलवृक्षस्तु समनंतरमेव मया वक्ष्यते ।

उक्तशान्त्यकरणे-महान्प्रत्यवायः—

यदि मूलाश्लेषादिदोषसंभवे शांतिर्न क्रियते तदानिष्टं भवत्येवेत्याह नारदः—

'वात्सरात्पितरं हन्ति मातरं तु त्रिवर्षतः । द्युम्नं वर्षद्वयेनैव श्वसुरं नववर्षतः ।।
जातं बालं वत्सरेण वर्षैः पञ्चभिरग्रजम् । श्यालकं चाष्टभिर्वर्षैरनुक्तान् हन्ति सप्तभिः ।।
तस्माच्छांतिं प्रकुर्वीत प्रयत्नाद्विधिपूर्वकम् ।।' इति । द्युम्नं धनम् ।
तस्मादवश्यं चरणचतुष्टयेऽपि शान्तिर्विधेयेति ।।

आश्लेषायां जन्मनि फलं मूलजन्मफलतो विलोमम्—

अहिभे विलोममिति। अहिभे आश्लेषायामुक्तं फलं विलोमं विपरीतं ज्ञेयम् । तद्यथामूलस्य प्रथमे पादे पितृनाश इति फलमुक्तम् । तत्फलमाश्लेषाचतुर्थपादोत्पन्नस्य स्यात् । मूलस्य द्वितीयपादे मातृनाश इत्युक्तं फलं तदाश्लेषातृतीयचरणोत्पन्नस्य स्यात् । मूलस्य तृतीयचरणे धननाश इत्युक्तं फलं तदाश्लेषाद्वितीयचरणोत्पन्नस्य स्यात् । मूलस्य चतुर्थपादः शुभ इत्युक्तं फलं तदाश्लेषाप्रथमचरणोत्पन्नस्यस्यादित्यर्थः । तदाह कश्यपः—'फलं तदेवं सार्पर्क्षे प्रतीपं त्वन्त्यपादतः ।' इति वसिष्ठोऽपि 'मूलादिपादजनितः पितरं निहन्ति द्वैतीयजः स्वजननीं त्रिपदेऽर्थवृन्दम् । तौरीयजः शुभकरः फलमेतदेव वैलोमतो भुजगधिष्ण्यभवस्य सर्वम्' इति । द्वितीय एव द्वैतीयः । 'प्रज्ञादेराकृतिगणत्वात्स्वार्थेऽण्' । एवं तौरीयवैलोमशब्दौ साध्यौ । अयमर्थः स्पष्ट-

मुक्तो भास्करव्यवहारे 'सार्पांशे प्रथमे राज्यं द्वितीये तु धनक्षयः तृतीये जननीनाशश्चतुर्थे मरणं पितुः' इति । अंशश्चरणः । अत्र लग्नदौष्टये सति दुष्टं फलमविकलं भवतीत्याह बादरायणः—'मूलसार्पादिजं दौष्टचं स्यात्सम्पूर्णं तु लग्नपे । सक्रूरेऽब्जे च विबले शुभदृष्टिविवर्जिते ।।' इति । अत आश्लेषादौष्टचेऽपि शान्तिकं विधेयम् । तथाश्लेषान्त्यमघादिस्थान्तरालप्रहरात्मको भुक्तमूलाख्यकालो विहितः तत्रोत्पन्नस्यापि शान्तिकं विधेयम् । अत्र संमतिवाक्यं प्रागभिहितम् । तत्र मूलशान्तिराश्लेषाशान्तिश्च 'गण्डान्तेन्द्रभ' इति पद्यव्याख्यानानन्तरं लिख्यते ।

मूलवृक्षः—

अत्र प्रसङ्गान्मूलवृक्षविचारोऽभिधीयते जयार्णवे—

मूलं स्तम्भस्त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा ।
मुनयोऽष्टौ दिशो रुद्राः सूर्याः पञ्चाब्धयोऽग्नयः ।।
मूले तु ७ मूलनाशः स्यात्स्तम्भे ८ वंशविनाशनम् ।
त्वचि १० मातुर्भवेत्क्लेशः शाखायां ११ मातुलस्य च ।।
पत्रे १२ राज्यं विजानीयात्पुष्पे ५ मन्त्रिपदं स्मृतम् ।
फले च ४ विपुला लक्ष्मीः शिखाया ३ मल्पजीवितम् ।।' इति ।

मूलाख्यपुरुषस्याङ्गेषु घटीविन्यासः—

अस्य मूलाख्यस्य पुरुषस्याङ्गेषु घटीविन्यासस्तत्रैव—

'मूलस्य घटिकान्यासो मूर्ध्निपञ्च ५ नृपो भवेत् ।
मुखे सप्त ७ मृतिः पित्रोः स्कन्धे वेदा ४ महाबलः ।।
बाह्वोरष्टौ ८ बली ३ पाण्योस्तिस्रो ३ हस्तान्वितो भवेत् ।
हृदि खेटा ९ भूपमन्त्री नाभौ द्वौ ब्रह्मविद्भवेत् ।।
गुह्ये दशा १० तिकामी स्याज्जानुनोः षण् ६ महामतिः ।
पादयोः षण् ६ मतिस्तस्येत्युक्तवान् कमलासनः ।।' इति ।।

मूलांगविभागः फलं च कन्याजन्मनि—

अथ मूलोद्भूतायाः कन्यायाः फलार्थे मूलांगविभागस्तत्रैव—

'चतस्रो ४ नाडिकाः शीर्षे कुर्वन्ति पशुनासनम् । मुखे षड् ६ धनहानिश्च कण्ठे पञ्च ५ धनागमः ।।
कौटिल्यं हृदये पञ्च ५ बाह्वोर्वित्तागमं च तत् । वेदाः ४ पाण्योर्दयाधर्म्म वेदा ४ गुह्येऽतिकामिनि ।।
ज्येष्ठमातुलनाशश्च जंघयोर्युग ४ नाडिकाः । ज्येष्ठभ्रातृविनाशश्च चतस्रो ४ जानुयुग्मके ।।
पादयोर्दशनाडयश्च १० तत्र वैश्वव्यमादिशेत् । इति मूलजकन्यायाः फलमीरितमीदृशम् ।।'इति ।

अस्यार्थः—शीर्षे चतस्रो ४ घटिकाः मुखे षट् ६ कण्ठे पञ्च ५ हृदये पञ्च ५ बाह्वोर्बाहुद्वये पञ्च पञ्चेति ५ । ५ कल्प्यावीप्सा । पाण्योर्मणिबन्धादधोभागयोश्चतस्र इत्यत्रापि वीप्साकल्प्या । गुह्ये चतस्रः ४ जंघयोर्जंघाद्वये द्वे द्वे २ । २ एवं चतस्रः जानुद्वये द्वे द्वे २ । २ एवं चतस्रः पादयोः पादद्वये पञ्चपञ्चेत्येवं दश १० एवं मिलित्वा षष्टिघटिका ६० भवन्ति ।।

आश्लेषाजातयोः स्त्रीपुंसयोः फलम्—

आश्लेषाजातयोः पुत्रकन्ययोरङ्गविभागेन फलं तत्रैवोक्तं—

'मूर्ध्नि पञ्च ५ सुपुत्रा (राज्या) त्रिर्मुखे सप्त ७ पितृक्षयः । नेत्रे द्वे २ जननीनाशो ग्रीवायां लम्पटस्त्रिषु ।। स्कन्धे वेदा ४ गुरौ भक्तिर्हस्तेऽष्टौ च ८ बली भवेत् । हृद्येकादशभि ११ श्चात्मघाती संजायते नरः ।। श्रीमान्नाभौ भ्रमः ६ षड्भिर्गुदेनन्दै ९ स्तपोधनः । पादे पञ्च ५ धनं हन्ति सार्पादितत्फलं क्रमात् ।।' इति ।

आश्लेषावृक्षः—

आश्लेषावृक्षोऽपि तत्रैवोक्तः—फलंपुष्पं दलं शाखात्वग्लताकन्द एव च ।

सार्पवल्यां दशा १० क्षा ५ क ९ स्वर ७ विश्वा १३ र्क १२ सागराः ४ ।।

नाडिकास्तद्भये बाले फलं ज्ञेयं यथाक्रमम् ।

श्रीः श्री राजभयं हानिर्मातृपित्रात्मसंक्षयः ।। इति ।

भस्यात्र ६० घटिकाधिक्ये त्रैराशिकम्—

अयं च विभागो नक्षत्रस्य ६० षष्टिघटिकात्मकत्वे ज्ञेयः न्यूनाधिकत्वे तु त्रैराशिकमूह्यम् ।

चित्राद्यन्यतमनक्षत्रे जन्मनि दोषस्तत्परिहारश्च—

वसिष्ठेनान्येष्वपि कियत्सु नक्षत्रेषु जातस्यारिष्टमुक्तं—

'चित्राद्यर्द्धे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये ।'

जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विधत्ते मातापित्रोर्भ्रातरं चात्मनाशम् ।।

द्विमासस्योत्तरादोषः पुष्ये चैव त्रिमासकः ।

पूर्वाषाढाष्टमे मासि चित्रा षाण्मासिकं फलम् ।।' इति ।

अत्रोत्तराशब्देनोत्तराषाढा गृह्यते । पूर्वाषाढासाहचर्यात् । अत एष्वपि नक्षत्रेषु यथाशक्ति मूलवच्छांतिकं दोषपरिहारार्थं विधेयम् । परन्त्वत्र देवताभेद एवं केवलं ध्येयः । सच तत्स्वामिकृतः, तत्तन्मन्त्राश्च देवादेवावगन्तव्यास्तच्छान्तिकं च तिथिगण्डान्तशान्तावस्माभिर्वक्ष्यत इत्यलमतिप्रसंगेन ।। ५५ ।।

पीतम्बरा—मूल और आश्लेषा नक्षत्र चरणों के अनुसार शुभाशुभ फल विचार कहा जा रहा है—मूल के प्रथम चरण में उत्पन्न बालक या कन्या पिता की मृत्यु कारक, द्वितीय चरण में मातृनाश, तृतीयचरण में उत्पन्न से धन का नाश और चतुर्थचरण में उत्पन्न पुत्र या कन्या धन सुखद होते हैं ।

मूल के प्रथम से चतुर्थ चरणों तक का फलादेश आश्लेषा के चतुर्थ से प्रथमचरणों तक के लिए मूल के विलोम की तरह समझना चाहिए । जैसे आश्लेषा चतुर्थचरण से पितृ, तृतीयचरण से मातृ द्वितीयचरण से धन और आश्लेषा के प्रथम चरणोत्पन्न पुत्र-कन्या से धनसुख या धन वृद्धि होती है ।

त्याग करना कठिन है लेकिन शास्त्रों में विस्तारपूर्वक कही गई मूलशान्ति प्रयोग द्वारा मूलशान्ति कराने से मूल और आश्लेषा में उत्पन्न पुत्र-कन्याओं से माता-पिता आदि के अनिष्ट सूचक फलों का सम्यक् निराकरण हो जाता है ।। ५५ ।।

अथ मूलनिवासं सफलमिंद्रवज्राच्छन्दसाह—

स्वर्गे शुचिप्रोष्ठपदेषमाघे भूमौ नभः कार्त्तिकचैत्रपौषे ।

मूलं ह्यधस्तात्तु तपस्यमार्गवैशाखशुक्रेष्वशुभं च तत्र ।। ५६ ।।

पीयूषधारा—स्वर्गे इति। शुचिराषढः, प्रौष्ठपदो भाद्रपदः, इष आश्विनः, माघः प्रसिद्धः, एषु मासेषु मूलं मूलनक्षत्रं स्वर्गेऽस्ति। स्वर्गे निवासस्तस्य। नभः श्रावणः, अन्ये प्रसिद्धाः श्रावणकार्त्तिकचैत्रपोषेषु भूमौ मूलन्तिष्ठति। तपस्यः फाल्गुनः, शुक्रो ज्येष्ठः, अन्यौ प्रसिद्धौ। फाल्गुनमार्गशीर्षवैशाखज्येष्ठेष्वधस्तात्पाताले मूलन्तिष्ठति॥ एष मूलनिवास उक्तः।

एवं वासस्य फलं शान्तिसौकर्यार्थंव—

एतत्फलं च मूलनक्षत्रं यदा यस्मिन्मासे यत्र वसति तत्रैव स्वर्गभूमिपातालेष्वेव स्वोक्त-शुभाशुभफलं ददाति। अयमत्र तात्पर्यार्थः। द्रव्याद्यभावेन शान्तिकं कर्त्तुमशक्नुवतः पुंसः स्वर्ग-पातालनिवासित्वेन मूलस्यारिष्टदोषस्तथा न प्रभवेत्। यदा तु भूमावेव निवासस्तदा दोषनिवा-रणं नैव स्यादित्यशक्तेनापि शान्तिकं विधेयम्। नैतावता प्रागुक्ते विषये शान्त्यभाव एव किन्तु यथाशक्ति तत्रापि शान्तिकं विधेयम्। शक्तेन तु सर्वत्रैव विधेयम्! तदुक्तं ज्यौतिषार्णवे—

'मार्गफाल्गुनवैशाखज्येष्ठे मूलं रसातले। माघाश्विननभस्येषु शुचौ मूलं सुरालये॥
पौषश्रावणचैत्रेषु कार्त्तिके भूमिसंस्थितम्। भूमिष्ठं दोषबहुलं स्वल्पमन्यत्र संश्रितम्॥' इति।

मूलस्य संक्रमरीत्या वासस्थानम्—

क्वचित्संक्रान्तिपरत्वे मूलनिवासोऽभिहितः—

'वृषालिसिंहेषु घटे च मूलं दिविस्थितं युग्मतुलाङ्गनान्त्ये।
पातालगं मेषधनुःकुलीरनक्रेषु मृत्याविति संस्मरन्ति॥
स्वर्गे मूले भवेद्राज्यं पाताले च धनागमः।
मृत्युलोके यदा मूलं तदा शून्यं समादिशेत्॥' इति ज्योतिषरत्नेभिहितत्वात्॥ ५६॥

पीताम्बरा—स्वर्ग, भूमि और पाताल में मूल की स्थिति बताकर अनिष्ट परिहार बताया जा रहा है—आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन और माघ मासों में मूलनक्षत्र स्वर्ग में तथा कार्तिक, चैत्र, पौष और श्रावण महीनों में भूमि में एवं फाल्गुन, मार्गशीर्ष, वैशाख और ज्येष्ठ महीनों में मूलनक्षत्र पाताल में रहते हैं। मूलनक्षत्र जहाँ रहता है वहीं उसका शुभ फल होता है।

धन की कमी परिवार की दुर्बलता आदिक परिस्थितियों से मूल—आश्लेषा शान्ति करने की सामर्थ्य नहीं होने से उक्त विचार से स्वर्ग और पाताल स्थित मूलाश्लेषा नक्षत्रों का दोष परिहार हो जावेगा।

किन्तु अभुक्तमूल (या मूल के प्रथमादि तीनचरणों में जन्म हो) भूमि में ही हो तो अशक्त पुरुष को भी यथाशक्ति शान्ति करनी ही चाहिए।

सशक्त व्यक्ति को तो मूल नक्षत्र में जन्म होने मात्र की शान्ति अवश्य ही करनी चाहिए।

कहीं-कहीं संक्रान्ति सम्बन्धी मासों से भी मूल की स्वर्ग-पातालादि स्थिति कही गई है। यह गौण पक्ष है। प्रायः देखा और सुना भी गया है कि आश्लेषा मूल और रेवती नक्षत्रों में समुत्पन्न पुत्र कन्या बहुत अच्छे भाग्यवान् और धनवान् होते हैं ऐसी जनश्रुति भी है॥ ५६॥

अथ मूलप्रसंगाद्दुष्टेषु गण्डान्तादिनिमित्तेषु सत्सु जातस्यारिष्टं सपरिहारं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

गण्डान्तेन्द्रभशूलपातपरिघव्याघातगण्डावमे
सङ्क्रान्तिव्यतिपातवैधृतिसिनीवालीकुहूदर्शके ।
वज्रे कृष्ण चतुर्दशीषु यमघण्टे दग्धयोगे मृतौ
विष्टौ सोदरभे जनिर्न पितृभे शस्ता शुभा शान्तितः ॥५७॥

पीयूषधारा—गण्डान्तेन्द्रेति। एतेषु पदार्थेषु सत्सु जनिः शिशोरुत्पत्तिर्न शस्ता दुष्टफलदा। गण्डान्तः सन्धिविशेषः । स त्रिविधो नक्षत्रतिथिलग्नभेदेन । तल्लक्षणं—'ज्येष्ठापौष्णभ' इत्यादिना वक्ष्यति । इंद्रभं ज्येष्ठानक्षत्रम्, शूलः शूलाख्यो दुष्टयोगः, पातो महापातो गणितसाध्यो व्यतीपाताख्यो वैधृताख्यश्च । परिघव्याघातगण्डा अपि दुष्टा योगाः । अवमस्तिथिक्षयः । सङ्क्रान्तिः सूर्यस्य राश्यन्तरसङ्क्रमपुण्यकालः । व्यतीपातवैधृती सप्तदशसप्तविंशतितमौ दुष्टयोगौ । १–सिनीवाली दृष्टेन्दुरमावास्या २–कुहूर्नष्टेन्दुरमावास्या । 'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः' इत्यभिधानात् । ३–दर्शश्चन्द्रदर्शनरहितामावास्या । एतच्चाग्रे सम्यक् प्रतिपादयिष्यते । वज्रे दुष्टयोगे कृष्णे कृष्णपक्षे चतुर्दशीषु । बहुवचनमावृत्यभिप्रायम् यमघण्टे 'मघा विशाखा' इत्युक्ते दुष्टयोगे । दग्धयोगे—'सूर्येशपञ्चाग्निरसाष्टनन्दा' इत्युक्ते दुष्टयोगे । केचित्तु—'चापान्त्यगे गोघटगे पतङ्गे' इति वक्ष्यमाणो दुष्टयोग इति व्याचख्युः । मृतौ 'द्वीशात्तोयात्' इत्यादिनोक्ते मृत्युयोगे, विष्टौ भद्रायाम्, सोदरस्य भ्रातुर्भगिन्या वा भे नक्षत्रे, पितृभे माता च पितरौ तयोर्मे मातृभे पितृभे च । एषु निमित्तेषु सुतस्य सुताया वा जन्म चेत्स्यात्तदानिष्टकृत्स्यादित्यर्थः ।

उपरागजन्म—त्रीतरजन्माप्यनिष्टम्—

दुष्टनिमित्तस्योपलक्षणत्वात्सूर्यचन्द्रग्रहणजन्मत्रीतरजन्माप्यनिष्टम् । सजातीयापत्यत्रयप्रसवानन्तरं विजातीयापत्यप्रसवस्त्रीतरः । यथा पुत्रत्रयप्रसवानन्तरम् कन्याया जननम् । कन्यात्रयप्रसवानन्तरम् पुत्रस्य जननम् । अत एव त्रिभ्यः सजातीयेभ्य इतरो विजातीयः स्त्रीतरः, स्त्री च त्रीतरेति । व्युत्पत्तिश्च त्रीतरा च त्रीतरो त्रीतरौ । 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः ।

तच्छान्तिरपि—

परिहारोप्युच्यते—सा जनिः शान्तितो वसिष्ठाद्यृषिप्रोक्तायाः शान्त्याः स्वनुष्ठितायाः शुभा परिणामे सुखदायिनी शारीरक्लेशानुभवपूर्वकनीरोगदीर्घायुष्य शिशोः स्यादित्यर्थः ।

मूलजातस्य शान्तिः कार्येति विधिरुपायान्तरं च—

अत्र मूलवाक्यानि सशान्तिकानि लिख्यन्ते । तत्र प्राक्पद्यप्रतिज्ञातसकलशान्तिसामान्यभूता औपयिकी च मूलशान्तिस्तावदुच्यते । शौनक उवाच—

'अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मूलजातहिताय च । मातापित्रोर्धनस्यापि कुले शान्ति हिताय च ॥
त्यागो वा मूलजातस्य स्यादष्टाब्दात्प्रदर्शनम् । अभुक्तमूलजातानां परित्यागो विधीयते ॥
अदर्शने वापि पितुः स तु तिष्ठेत्समाष्टकम् । एवं च दुहितुर्ज्ञेयं मूलजातफलं बुधैः ॥
मुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शान्तिहोमस्य यत्नतः । जातस्य द्वादशाहे तु जन्मर्क्षे वा शुभे दिने ॥

समाष्टके वा मतिमान्कुर्याद्वै शान्तिमादरात् । यदैव शान्तिकं कुर्यात्कर्म तत्र प्रचक्ष्महे ॥
सुसमे पुण्यदेशे तु मण्डपं कारयेद्बुधः ।' इति ।

कुण्डमण्डपौ—

मण्डपपरिमाणं च वसिष्ठेनोक्तम्—
'ईशान्यामथवा प्राच्यामुदीच्यां दिशि कल्पयेत् । मण्डपं त्वष्टभिर्हस्तैश्चतुर्भिर्वा समन्ततः ॥
चतुर्द्वारसमायुक्त तोरणाद्यैरलंकृतम् । कदलीस्तम्भसंयुक्तमाम्रपल्लवराजितम् ॥
पुष्पमालायुतं सम्यक् तूर्यघोषनिनादितम् । पिष्टेन कल्पयेत्सर्वं तथा गोमयमण्डले ॥
कुण्डं च तद्वहिः कुर्याद्ग्रहयज्ञोक्तमार्गतः ।' इति ।

मूलशान्तिप्रकारः तत्र जातदोषपरिहारार्थः—

शौनकः—रुद्रकुम्भस्थापनम्—

'पुण्यर्ग्भिमंत्रितैस्तोयैः प्रोक्षितायां क्षितौ ततः । तत्रोदकुम्भं सुश्लक्ष्णं रक्तं व्रणविवर्जितम् ॥
अकृष्णमूलनिर्णिक्तं पूरयेन्निर्मलाम्भसा । वस्त्रावगुण्ठितं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा ॥
कूर्चहेमसमायुक्तं नूतनपल्लवसंयुतम् । स्वस्तिकोपरि विन्यस्य क्षीरिद्रुमसुपल्लवैः ॥
द्रोणव्रीहींश्च निक्षिप्य ऐशाने च निधापयेत् । पञ्चरत्नानि निक्षिप्य सर्वौषधिसमन्वितम् ॥
अर्चितं गन्धपुष्पाद्यैः श्रीरुद्रं स्थापयेत्ततः । तत्रप्रतिरथं १ सूक्तं शत २ रुद्रानुवाककम् ॥
रक्षामन्त्रं तथा पुण्यं रक्षोघ्नं च स्पृशञ्जपेत् । त्रियम्बकं जपेत्सम्यगष्टोत्तरसहस्रकम् ॥
एकैकवारं जापीच पावमानीः स्पृशञ्जपेत् । जपस्य पञ्च कुम्भांश्च द्वयं वा तदलाभतः ॥
श्रीरुद्रस्यैककुम्भश्च सर्वसूक्तानि तत्र तु ।

ततो देवताप्रतिष्ठा—अग्निस्थापनं च
अथान्यं पञ्चमं कुम्भं पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम् । चतुःप्रस्रवणं कुर्यात्पञ्चवक्त्रञ्च तद्भवेत् ॥
वस्त्रावगुण्ठितं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा । पञ्चरत्नसमायुक्तमाम्रपल्लवसंयुतम् ॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्ध्रदगं कुलात् । राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥
कुम्भस्य नैर्ऋते देशे होमदेशं प्रकल्पयेत् । गोमयालेपिते देशे कुर्यात्स्थण्डिलमुत्तमम् ॥
कृत्वाग्निसुखपर्यन्तमुल्लेखादिस्वशाखतः । पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा पूजां समारभेत् ॥
नक्षत्रदेवतारूपं सुवर्णेन प्रयत्नतः । निष्कमानेन चार्द्धेन पादेनापि स्वशक्तितः ॥
प्रतिमां लक्षणेनैकां कारयित्वा विचक्षणः । यद्वा मूल्यं सुवर्णस्य स्थापयित्वा प्रपूजयेत् ॥
सुवर्णं सर्वदैवत्यं सर्वदेवात्मकोऽनलः । सर्वदेवात्मको विप्रः सर्वदेवमयो हरिः ॥
संस्मरेन्निर्ऋतिं १९ श्यामं सुमुखं नरवाहनम् । रक्षोऽधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरणभूषितम् ॥
प्रतिमापूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं प्रकल्पयेत् । पङ्कजं कारयेद्भूमौ रक्ताभैर्व्रीहितण्डुलैः ॥
चतुर्विंशद्दलोपेत शुक्लैर्वा कर्णिकान्वितम् । तस्योपरि न्यसेत्पात्रं स्वर्णं वा रौप्यमृण्मयम् ॥
शुद्धवस्त्रेण संच्छाद्य तत्र मूलानि निःक्षिपेत् ।

मूलानि शतमूलानि । तदलाभे—

विष्णुक्रान्ता सहदेवी तुलसी तु शतावरी । मूलानीमानि गृह्णीयाच्छतालाभे विशेषतः ॥
स्थापयेत्कर्णिकामध्ये वस्त्रगन्धाद्यलंकृतम् ॥

कूर्चहेमकलोपेतं कुङ्कुमौषधिसंयुतम् । कुम्भोपरि न्यसेद्विद्वान्मूलनक्षत्रदैवतम् ॥
अधिप्रत्यधिदेवौ च दक्षिणोत्तरदेशयोः । अधिदेवं जपेदादौ ज्येष्ठानक्षत्रदैवतम् ॥'

पूर्वाषाढायां जलम् । उत्तराषाढा २१ ऋक्षे विश्वेदेवाः । विष्णुः २२ वसवः २३ वरुणः २४ अजैकपात् २५ अहिर्बुध्न्यः २६ पूषा २७ अश्विनौ १ यमः २ अग्निः ३ प्रजापतिः ४ सोमः ५ रुद्रः ६ अदितिः ७ बृहस्पतिः ८ सर्पाः ९ पितरः ० भगः ११ अर्यमा १२ सविता १३ त्वष्टा १४ वायुः १५ इन्द्राग्नी १६ मित्रः १७ इत्याद्यनुराधान्मर्च्चयेत् । ततः पूजा—

ऐन्द्रादीशानपर्यन्तं पूजयेत्स्वस्वनामतः । स्वलिङ्गोक्तैश्च मन्त्रैश्च प्रधानादीन्प्रपूजयेत् ॥
पञ्चामृतेन संस्नाप्य आवाह्याथ समर्च्चयेत् । उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पञ्चोपचारकैः ॥
रक्तचन्दनगन्धाढ्यैः पुष्पैः कृष्णसितादिभिः । मेषशृङ्गादिधूपैश्च घृतदीपैस्तथैव च ॥
सुरापौलिकमासाद्यैर्नैवेद्यैर्भोजनादिभिः । मत्स्यमांससुरादीनि ब्राह्मणानां विवर्जयेत् ॥
सुरास्थाने प्रदातव्यं क्षीरं सैन्धवमिश्रितम् । पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत् ॥
उक्तगन्धाद्यलाभे तु यथालाभं समर्पयेत् ।

ततो होमः—

पुष्पान्तं तु समभ्यर्च्य होमं कुर्याद्यथोदितम् । निर्वापप्रोक्षणादीनि चरोः कुर्याद्यथाविधि ॥
हविर्गृहीत्वा विधिवन्नैर्ऋत्यां च ऋचा हुनेत् । मोषुणः परापरेति यत्तदेवेति वा पुनः ॥
पायसं घृतसम्मिश्रं हुनेदष्टोत्तरं शतम् । समिदाज्यचरून्पश्चाच्छक्तितः संख्यया हुनेत् ॥
अधिदैवतयोश्चैव जुहुयात्स्वस्वमन्त्रतः । चतुर्थ्यन्तैर्नमोऽन्तैश्च स्वाहान्तैः स्वस्वमन्त्रकैः ॥
नक्षत्रदेवताभ्यश्च पायसेन तु होमयेत् । कृणुष्वेति पञ्चदशभिर्जुहुयात्कृसरं ततः ॥
'गायत्र्या जातवेदे'—ति 'त्रियम्बक' मिति क्रमात् । सीरायुंजन्ति तामग्निं वास्तोष्पत्यग्निमेव च ॥
तामग्निवर्णां तपासा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् । दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसितरसे नमः ॥

क्षेत्रस्य पतिना गृणानाग्निं दूतं तथैव च । श्रीसूक्तेन तथा विद्वान् समिदाज्यचरून् क्रमात् ॥
अष्टोत्तरशतैर्वापि अष्टाविंशतिभिः क्रमात् । अष्टाष्टसंख्यया वापि जुहुयाच्छक्तितो बुधः ॥
त्वं नः सोमेन पायसं जुहुयात्तु त्रयोदश । चतुर्गृहीतमाज्ये च या ते रुद्रेति मन्त्रतः ॥
स्रुवेण जुहुयादाज्यं महाव्याहृतिभिः क्रमात् । हुत्वा स्विष्टकृतं पश्चात्प्रायश्चित्ताहुतीर्हुनेत् ॥
आचार्यो यजमानो वा अग्नौ पूर्णाहुतीं हुनेत् । होमशेषं समाप्याथ वह्निमारोपयेद् बुधः ॥
कुम्भाभिमन्त्रणं कुर्याद्दक्षिणेनाभिमन्त्रयेत् । मृत्युप्रशमनार्थाय जपेत्त्रैयम्बकं शतम् ॥
रुद्रकुम्भोक्तमार्गेण रुद्रमन्त्रं स्पृशञ्जपेत् । धूपं दीपं च नैवेद्यं कुम्भयुग्मे निवेदयेत् ॥
प्रसादयेत्ततो देवमभिषेकार्थमादरात् । तस्मिन् काले ग्रहातिथ्यं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥
पृथक्प्रशस्तं तच्चैव नक्षत्रेष्टया सहैव च ।

ततोऽभिषेकः—

अभिषेकविधिं वक्ष्ये सर्वाचार्यैरुदीरितम् । भद्रासनोपविष्टस्य यजमानस्य ऋत्विजः ॥
दारपुत्रसमेतस्य कुर्युस्तस्याभिषेचनम् ।अक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिरेव च ॥
आपोहिष्ठेति नवभिराप इद्रा द्वयेन च । सहस्राक्षत्र्यृचेनापि देवस्य त्वेति मन्त्रकैः ॥

शिवसङ्कल्पमन्त्रेण वक्ष्यमाणैश्च मन्त्रकैः । योऽसौ वज्रधरो देवो महेन्द्रो गजवाहनः ॥
मूलजातशिशोर्दोषं मातापित्रोर्व्यपोहतु । योऽसौ शक्तिधरो देवो हुतभुग्मेषवाहनः ॥
सप्तजिह्वश्च देवोऽग्निर्मूलदोषं व्यपोहतु । योऽसौ दण्डधरो देवो धर्मो महिषवाहनः ॥
मूलजातशिशोर्दोषं व्यपोहतु यमो मम । योऽसौ खड्गधरो देवो निर्ऋतीराक्षसाधिपः ।
प्रशामयतु मूलोत्थदोषं गण्डान्तसम्भवम् । योऽसौ पाशधरो देवो वरुणश्च जलेश्वरः ॥
नक्रवाहः प्रचेताह्वो मूलोत्थाघं व्यपोहतु । योऽसौ देवो जगत्प्राणो मारुतो मृगवाहनः ॥
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं बालकशान्तिदः । योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गभृद्वाजिवाहनः ॥
मातापित्रोः शिशोश्चैव मूलदोषं व्यपोहतु । योऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी वृषवाहनः ॥
आश्लेषामूलगण्डान्तदोषमाशु व्यपोहतु । विघ्नेशः क्षेत्रपो दुर्गा लोकपाला नवग्रहाः ॥
सर्वदोषप्रशमनं सर्वे कुर्वन्तु शान्तिदाः । तच्छन्दयोरभिषेकं तु सर्वदोषोपशान्तिदम् ॥
सर्वकामप्रदं दिव्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् । स्वस्त्रान्तरितकुम्भाभ्यां पश्चात्तु स्नापयेत्ततः ॥

ततः ऋत्विगादिभ्यो दक्षिणा तारतम्येन

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । यजमानो दक्षिणाभिस्तोषयेदृत्विगादिकान् ॥
धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय सवत्सकाम् । निर्ऋतिप्रतिमां वस्त्रकुम्भहेमादि दापयेत् ॥
श्रीरुद्रजापिने देयः कृष्णोऽनड्वात् प्रयत्नतः । तत्कुम्भवस्त्रप्रतिमास्तस्मै दद्यात्प्रयत्नतः ॥
इतरेभ्योऽपि विप्रेभ्यो दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् । उक्तालाभे ततो दद्यादाचार्यब्रह्मऋत्विजाम् ॥
तन्मूल्यं च प्रदातव्यं शक्त्या वापि प्रदापयेत् । आचार्याय च यद्दत्तं तदर्द्धं ब्राह्मणे भवेत् ॥
सदस्याय ब्रह्मणोऽर्द्धमृत्विग्भ्यश्च तदर्द्धकम् । आशीश्च तेभ्यो गृह्णीयात्प्रणम्याथ क्षमापयेत् ॥

ब्राह्मणभोजनम्—

दद्यादन्नं पायसादि ब्राह्मणान् भोजयेच्छतम् । अलाभे सति पञ्चाशद्दशकं तदभावतः ॥
सर्वशान्तेश्च पठनं ब्राह्मणैराशिषस्तथा । गृही क्षमापयेद्विद्वान् निर्ऋतिः प्रीयतामिति ॥
विधाने चरितेऽभिस्तु ततः शान्तिर्भवेद्ध्रुवम् । गण्डान्तेऽपि तथा कार्यं पुष्यार्थे तद्वदेव तु ॥
समाष्टके द्वादशाहे कुर्याद्वा शान्तिमादरात् । इत्युक्तं मनुना सम्यङ्मूलजातहिताय च ॥
मातापित्रोर्धनस्यापि बन्धोः शोकोपशान्तये ।' इति ॥

इति श्रीशौनकप्रोक्तो मूलजननशान्तिविधिः समाप्तः ।

अथाश्लेषाजन्मशान्तिविधिर्मनूक्तः—

'आश्लेषायां तु जातानां शान्तिं वक्ष्याम्यतः परम् । जातस्य द्वादशाहे च शान्तिहोमं समाचरेत् ॥
असम्भवे तु जन्मर्क्षमन्यस्मिन्वा शुभे दिने । स्नातोऽभ्यङ्गादिभिस्तस्मिन्वरयेत्तु द्विजोत्तमान् ॥
विभवे पञ्चकुम्भांस्तु त्रयं वा तदलाभतः । देवतास्थापने चैकमेकं रुद्राभिमन्त्रणे ॥
मूलर्क्षोक्तप्रकारेण कुम्भे निक्षिप्य पूजयेत् । गोमयालेपिते देशे धात्वाद्यैः परिशोभिते ॥
पङ्कजं कारयेत्तत्र चतुर्विंशतिपत्रकैः । तण्डुलैः कारयेद्वा रक्तपीतसितासितैः ॥
कर्णिकायां न्यसेद् व्रीहीन्स्थापयेत्तेषु कुम्भकम् । आकलशेष्विरयनया कलशस्थापनं शुभम् ॥

'इमं मे' इति मन्त्रेण पूरयेत्तीर्थवारिणा । कुम्भं सुवस्त्रगन्धाद्यैस्तत्तन्मंत्रैश्च पूजयेत् ।।
याः फलिनीरित्यनया क्षिपेद्रत्नौषधादिकान् ।।

ततः पूजा—

कुम्भोपरिस्थपात्रे तु आश्लेषाप्रतिमां यजेत् । निष्कनिष्कार्द्धपादैर्वा कारयित्वा स्वशक्तितः ।।
तत्पूर्वोत्तरनक्षत्रे दक्षिणोत्तरयोर्यजेत् । ऐन्द्रादीशानपर्यन्तमितरर्क्षाणि पूजयेत् ।।
मूलोक्तेन विधानेन कुम्भयोरभिमन्त्रणम् । रुद्राच्चर्चा रुद्रकुम्भे तु पूर्ववच्छेषमाचरेत् ।।
'नमोस्तु सर्पेभ्य' इति पूजामन्त्र इहोदितः । सर्पो रक्तस्त्रिनेत्रश्च द्विभुजः पीतवस्त्रकः ।।
फलकासिधरस्तीक्ष्णो दिव्याभरणभूषितः ।

ततो होमः—

एवं ध्यात्वा ततोऽभ्यर्च्य होमकर्म समाचरेत् । कर्त्तुः शाखोक्तमार्गेण आचार्यस्याथवाचरेत् ।।
मुखान्तं कर्म निर्माय हविरादाय शास्त्रतः । 'इदं सर्पेभ्यो' जुहुयात्साधिप्रत्यधिदैवतम् ।।
अष्टोत्तरशतं वाऽथ अष्टाविंशतिमेव च । मूलनक्षत्रवच्छेषहोमं तत्र समापयेत् ।।
पूर्णाहुत्यन्तकर्माणि कृत्वा सम्पातकं तथा ।।

ततोऽभिषेकः—

कुम्भाज्जलं तु प्रक्षिप्य त्वभिषेकमथाचरेत् । दारपुत्रसमेतस्य यजमानस्य पूर्ववत् ।।
अभिषिंचेत्तदाऽऽचार्य ऋत्विग्भिः सहितस्ततः ।
अभिमन्त्रितकुम्भाद्भिरभिषेचनमाचरेत् । तथा पौराणमन्त्रैश्च पल्लवैरभिषेचयेत् ।।
आश्लेषाऋक्षजातस्य मातापित्रोर्धनस्य च ।।
भ्रातृज्ञातिकुलस्थानां दोषं सर्वं व्यपोहतु । योऽसौ वागीश्वरो नाम चाधिदेवो बृहस्पतिः ।।
मातापित्रोः शिशोश्चैव गण्डान्त च व्यपोहतु । त्रातारः सर्वभूतानां रक्षन्तु पितरः सदा ।।
सर्पनक्षत्रजातस्य वित्तं च ज्ञातिबान्धवान् । एवं कृतेऽभिषेके तु सर्पशान्तिर्भवेद् ध्रुवम् ।।

तत ऋत्विगादिदक्षिणादानम्—

ततः शुक्लाम्बरधरो यजमानः सुभूषितः । दक्षिणाभिस्ततो विप्रान्मूलवच्च प्रतोषयेत् ।।
भुक्तवद्भ्यश्च विप्रेभ्यः स्वीकुर्यादाशिषं गृही । इत्युक्तेन विधानेन सर्वारिष्टं व्यपोहति ।।
सर्वे कामाश्च सिद्ध्यन्ति वेदोक्तायुर्भविष्यति । इत्युक्तं सर्पशान्त्यर्थं सारभागमचोदितम् ।।
मानवानां हितार्थाय मनुना सार्वकामिकम् । सर्पाधीश ! नमस्तुभ्यं नागानां च गणाधिप ! ।।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वारिष्टप्रशान्तये ।। इत्यर्घमन्त्रः । मूलनक्षत्रवत्कुर्यात्सर्पगण्डे स्वनामतः' ।
इति श्रीमानवसंहितायामाश्लेषाजननशान्तिविधिः समाप्तः।

विवाहे मूलाश्लेषोत्पन्नवधूवरयोरपि शान्तिः—

एतच्च मूलाश्लेषाशान्तिद्वयं विवाहे उपस्थिते श्वशुरस्य श्वश्र्वाश्च सत्त्वे मूलाश्लेषोत्पन्नयोरपि वधूवरयोस्तत्तदनिष्टनिवृत्त्यर्थं विधेयम् । उपलक्षणत्वाच्च ज्येष्ठाविशाखयोरुत्पन्नाया वध्वास्तत्रोत्पन्नवरस्य ज्येष्ठबन्धुकनिष्ठबन्धुपीडाशान्तये च । यदाह वसिष्ठः —नैर्ऋत्यभोद्भूतसुतः सुता वा क्षिप्रं त्ववश्यं श्वशुरं निहन्ति । तदन्त्यपादे जनिता निहन्ति नैवोत्क्रमेणाहिभवः

कलत्रम्' इति। अहिराश्लेषा। अहिभव इति पुंस्त्वमविवक्षितम्। तदाह—'सुरेशताराजनिता धवाग्रजं द्विदैवताराजनिता तु देवरम्' इति। नारदोपि—'मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा च तदङ्गनम्। ऐन्द्री पत्यग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदेवजा॥ शान्तिर्वा पुष्कला चेत्स्यात्तर्हि दोषो न कश्चन' इति॥

अथान्याः शान्तयः श्लोकक्रमेणोच्यन्ते।

तत्र तावन्नक्षत्रगण्डान्तशान्तिविधिरुच्यते—

गण्डशान्तिं प्रवक्ष्यामि सोममन्त्रेण भक्तिमान्। कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिर्नवम्॥
अष्टभिश्च चतुर्भिर्वा द्वाभ्यां वा शोभनं तथा। तन्मध्ये पायसं शङ्खे नवनीतेन पूरिते॥
राजतं चन्द्रमर्चेत्तु सितपुष्पसहस्रकैः। दैवज्ञः क्षौमवासाश्च शुक्लमाल्याम्बरार्चितः॥
सोमोऽहमिति सञ्चिन्त्य पूजां कुर्यादतन्द्रितः। जपेत्साहस्रकं मन्त्रं श्रद्दधानः समाहितः॥
आप्यायस्वेति मन्त्रेण पूजां कुर्यात्समाहितः। दद्याद्वै दक्षिणामिष्टां गण्डदोषप्रशान्तये॥
शुक्लं वागीश्वरं चैव ताम्रपात्रसमन्वितम्। गण्डदोषोपशान्त्यर्थं दद्याद्वेदविदे शुचिः॥

इति श्रीमानवसंहितायां नक्षत्रगण्डान्तजननशांतिविधिः॥

नक्षत्रगण्डान्तलक्षणमन्यैर्मुनिभिरेवमुक्तम्—

अश्विनीमघमूलादौ त्रिषट्कनवनाडिकाः। रेवतीसार्पशाक्रान्ते मासाश्च ऋतुसायकाः॥
अश्विनीमघमूलादौ नाडिकाद्वितयं तथा। रेवतीसार्पशाक्रान्ते नाडिकाद्वितयं तथा॥
अश्विनीमघमूलानां पूर्वार्द्धे बाध्यते पिता। पूषाहिशक्रपश्चार्द्धे जननी बाध्यते शिशोः॥
पितृहा तु दिवाजातो रात्रिजातस्तु मातृहा। आत्मध्रुक् सन्ध्ययोर्जातो नास्ति गण्डो निरामयः॥
सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते। वर्जयेद्दर्शनं तावत्तच्च षाण्मासिकं भवेत्॥' इति।

तिथिलग्नगण्डान्तशान्तिविधिरुच्यते

अभुक्तेतरजातस्य सूतकान्त्यदिने पिता। शांतिं शुभेऽह्नि वा कुर्यात्तावत्पुत्रं न लोकयेत्॥
तिथिगण्डे त्वनड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते। काञ्चनं लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति॥
आद्यभागे पितुर्गण्डं त्रयाणामभिषेचनम्। इतरत्र शिशोर्मातुरभिषेकं च कारयेत्॥
उत्तरे तिलपात्रं स्यात्तिष्ये गोदानमुच्यते। अजाप्रदानं त्वाष्ट्रे च पूर्वाषाढे च कांचनम्॥
उत्तरातिष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च। कुर्याच्छांतिं प्रयत्नेन नक्षत्राकारजा बुधः॥
सुवर्णेन तदर्द्धेन यथावित्तानुसारतः। नक्षत्राधिपते रूपं कृत्वा वस्त्रद्वयान्वितम्॥
वरुणस्यार्चनं कार्यं स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। शतौषधानि रत्नानि मृत्त्वक्पल्लवसंयुतान्॥
पूजान्ते समिदन्नाज्यैर्होमं तिलयवैस्तथा। ततः पूर्णाहुतिं हुत्वा वेदाध्यायिकुटुम्बिने॥
उत्तराप्रथमे पादे तिलपात्रं तथैव च। तिष्ये तु गां सवत्सां च सुशीलां च पयस्विनीम्॥
अजां चित्रासु वै दद्यात्पूर्वाषाढे तु काञ्चनम्। यवांश्च व्रीहिमाषांश्च तिलमुद्गांश्च दापयेत्॥
यथावित्तानुसारेण कारयेद्विप्रभोजनम्। पितुरायुष्यवृद्ध्यर्थं शान्तिरत्र विधीयते॥
एवं यः कुरुते सम्यक्शान्तिकर्म समाहितः। न दोषैर्लिप्यते नूनं पद्मपत्रमिवाम्भसा॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं सम्प्राप्नोति दिनेदिने। धनधान्यसमृद्धिं च पुत्रपौत्रसमृद्धिमान्॥'

इत्युत्तरगार्ग्योक्ततिथ्यादिगण्डान्तजननशान्तिविधिः॥

अथ ज्येष्ठाजननशान्तिः—

ज्येष्ठाशांतिविधिरुच्यते तत्र जन्मनि फलम्—तत्र प्रत्येकं घटिकाषट्कस्य फलान्याह भारद्वाजः–

'ज्येष्ठादौ मातृजननीं मातामहं द्वितीयके। तृतीये मातुलं हन्ति मातरं तु चतुर्थके ॥
आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत्। सप्तमे कुलनाशः स्यादष्टमे ज्येष्ठसोदरम् ॥
नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वस्वं दशमे तथा।' इति।

सुखासीनमृषिश्रेष्ठं गर्गं मुनिगणान्वितम्। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा पप्रच्छ किल शौनकः ॥

शौनक उवाच

ज्येष्ठानक्षत्रसम्भूतगण्डदोषविनिर्णयम्। तस्य शान्तिविधानं च वद मे मुनिसत्तम ॥
शौनकस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महामुनिः। शृणु शौनकयत्नेन गण्डदोषविनिर्णयम् ॥
तस्य शान्तिविधानं च यथावत्कथयाम्यहम्। घटिकैका च मैत्रान्ते ज्येष्ठादौ घटिकाद्वयम् ॥
तयोः संधिरिति ज्ञेयं शिशुगण्डं समीरितम्। प्रथमे च द्वितीये च ज्येष्ठर्क्षे च तृतीयके ॥
पादत्रये जातनरः श्रेष्ठोप्यत्र प्रजायते। ज्येष्ठान्त्यपादजातस्तु पितुः स्वस्य विनाशनः ॥
जायते नात्र संदेहो दशाहाभ्यन्तरे तथा। ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हन्ति शीघ्रं धवाग्रजम् ॥

शान्तिकालः–

तच्छान्तिं तस्य वक्ष्यामि गण्डदोषप्रशान्तये। सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते ॥
सूतकान्ते तथा कुर्याज्ज्येष्ठाशान्तिं विधानतः।

कलशप्रतिष्ठा

वज्राङ्कुशधरं देवमैरावतगजान्वितम्। कुर्याच्छचीपतिं रम्यं देवेन्द्रं सुरनायकम् ॥
कर्षमात्रसुवर्णेन कर्षार्द्धेनाथ पादतः। यथाविधि प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥

ततः पूजा—

शालितण्डुलसंपूर्णकुंभस्योपरि पूजयेत् ॥
इन्द्रायेंदोमरुत्वते इति मन्त्रेण वाग्यतः। गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्नानाभक्ष्यनिवेदनैः ॥
पूजयेद्विधिना विप्रो लोकपालान् गणान्वितान्। पुण्योदकसमायुक्तान्वस्त्रयुग्मेन वेष्टितान् ॥
कुम्भेषु विन्यसेद्धीमान्पञ्चगव्यं समन्त्रकम्। पञ्चवृक्षकषायांश्च पञ्चपल्लवकांस्तथा ॥
सुवर्णकुशदूर्वांश्च निक्षिपेच्छतमोषधीः। पूजयेद्वारुणैर्मन्त्रैः कुम्भान्धीमान्प्रयत्नतः ॥
त्व नो अग्ने जपेदादौ सत्वं नोपि द्वितीयकम्। समुद्रज्येष्ठा इति चेमम्मे गङ्गे चतुर्थकम् ॥
पूजयेद्वस्त्रयुग्माद्यैश्चतुरः कलशानपि। जपं कुर्युः प्रयत्नेन मंत्रैरेभिर्द्विजोत्तमाः ॥
आनोभद्राजपं चादौ भद्रा अग्नेर्द्वितीयकम्। इन्द्रसूक्तं रुद्रजाप्यं जपं मृत्युञ्जयं ततः ॥
इत्थं सम्पूज्य देवेशं वरुणं कुम्भसंस्थितम्।

ततो होमः—

सुसंकल्पविधानेन होमकर्म ततश्चरेत्। समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षस्य शतमष्टोत्तरं तथा ॥
सर्पिषा चरुणा चैव मूलमन्त्रेण वाग्यतः। हुनेज्जाप्यं च तेनैव यत इन्द्रभयेति च ॥
तिलान्व्याहृतिभिर्हुत्वा शतमष्टोत्तरं पृथक्। भार्याशिशुसमोपेतं यजमानं विशेषतः ॥

अभिषेकं प्रकुर्वीत सूक्तैर्वारुणसंज्ञितैः। समुद्रज्येष्ठादिभिर्मन्त्रैरिमं मे वरुणस्तथा ।।

ततोऽभिषेकः

द्यौः शान्तिरित्यादिभिर्मन्त्रैरभिषेकं समाचरेत्। अभिषेकनिवृत्तौ तु यजमानः समाहितः ।।
शुक्लाम्बराणि धृत्वा च कुर्यादाज्यावलोकनम्। रूपं रूपेति मन्त्रेण चित्र तच्चक्षुरेव च ।।
देवतापुरतः स्थित्वा धूपदीपनिवेदनम्। दद्यादाचमनं सम्यक्ताम्बूलार्थं तथैव च ।।
नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गण्डदोषप्रशान्तये ।।
कार्यं तत्पूजकादीनां कर्मणा यत्फलं शुभम्। लब्ध्वा तु तत्फलं सर्वं देवेन्द्राय समर्पयेत् ।।

ततो दक्षिणा—

आचार्याय च गां दद्यात्सुशीलां च पयस्विनीम्। रक्तवर्णां वत्सयुतां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।।
वस्त्रयुग्मपिधानां च यथाविभवसारतः। यक्षगन्धर्वसिद्धैश्च पूजितोऽसि शचीपते ।।
दानेनानेन देवेश गण्डदोषं विनाशय। अष्टोत्तरशतं सद्यः कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।।
तेभ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत्। ज्येष्ठाशान्तिमिमां कृत्वा यथाविध्युक्तमार्गतः ।।
गण्डदोषं विनिर्जित्य आयुष्माञ्जायते नरः। इत्युक्तं वृद्धगार्ग्येण शौनकाय विशेषतः ।।
ज्येष्ठानक्षत्रसंभूतगण्डदोषप्रशान्तये। अज्ञानाद्वाथवा ज्ञानाद्वैकल्याद्वा धनस्य च ।।

यन्न्यूनमतिरिक्तं च तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि।'

इति श्रीवृद्धगार्ग्यसंहितायां ज्येष्ठानक्षत्रप्रसूतिशान्तिः ।।

शूलयोगादिषु द्वादशसु जन्मनि शान्तिः—

शूलयोगस्य गणितसाध्ययोर्वैधृतिव्यतीपाताख्ययोः पातयोश्च परिघव्याघातगण्डावमानाञ्च भद्रायाश्च वज्रस्य यमघण्टस्य मृत्युयोगदग्धयोगयोश्च शान्तिविधिरभिधीयते—

'अथातः संप्रवक्ष्यामि जन्मकाले विशेषतः। गण्डान्तानां च नामानि महादोषकराणि च ।।
दिनक्षये व्यतीपाते व्याघाते विष्टिवैधृतौ। शूले गण्डे च परिघे वज्रे च यमघण्टके ।।
कालगण्डे मृत्युयोगे दग्धयोगे सुदारुणे। तस्मिन्गण्डदिने प्राप्ते प्रसूतिर्यदि जायते ।।
अतिदोषकारी प्रोक्ता तत्र पापयुते सति। विचार्य तत्र दैवज्ञं शान्तिं कुर्याद्यथाविधि ।।
यजनं देवतानां च ग्रहाणां चैव पूजनम्। दीपं शिवालये भक्त्या घृतेन परिदापयेत् ।।
अभिषेकं शंकराय चाश्वत्थस्य प्रदक्षिणम्। आयुर्वृद्धिकरं जाप्यं सर्वारिष्टविनाशनम् ॥
गुरुदैवतविप्राणां पूजनं गोत्रवर्द्धनम्। पुष्ट्यायुस्तुष्टिशान्त्यर्थमभीष्टफलसिद्धये ॥
सर्वारिष्टपरिहारार्थाय यज्ञं समाचरेत्। शिवाय विधिवद्भक्त्या दीपदानं करोति यः ।।
अखण्डगोघृतेनैव स वै मृत्युञ्जयेन्नरः। विष्णुमूर्तिं महापुण्यमश्वत्थं श्रीकरं सदा ।।
प्रदक्षिणं नरो भक्त्या कृत्वा मृत्युञ्जयं जपेत्। सर्वसम्पत्समृद्ध्यर्थं नित्यं कल्याणवृद्धये ।।
अभीष्टफलसिद्ध्यर्थं कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्। अभिषेकं शिवं शान्तिं कृत्वा भक्त्या नरोत्तमः ।।
अकालमृत्युं निर्जित्य दीर्घायुर्जायते नरः। गाणपत्यं पुरुषसूक्तं सौरं मृत्युञ्जयं शुभम् ।।

शान्तिजाप्यं पुनश्चैव कृत्वा मृत्युञ्जयी भवेत्।

मूले वा सार्पगण्डे वा कुर्यादेतानि यत्नतः । आयुर्वृद्धिफलार्थाय गण्डदोषप्रशान्तये ॥

इति श्रीउत्तरगार्ग्यप्रोक्तशूलादिदुष्टयोगजननशान्तिविधिः ।

अथ सूर्यसङ्क्रान्ति–व्यतीपात–वैधृति–योगेषु जन्मनि शान्तिः—

सूर्यसङ्क्रान्तिव्यतीपातवैधृतियोगानां शान्तिरभिधीयते—

गार्ग्य उवाच—

'अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जन्मकाले विशेषतः । वैधृतौ च व्यतीपाते महादोषोऽभिजायते ॥
कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः । सङ्क्रान्तिश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्र्यकारकः ॥
दरिद्राणां महद्दुःखं व्याधिपीडा महद्भयम् । अश्रियं मृत्युमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥
स्त्रीणां च शोको दुःखं च सर्वनाशकरं भवेत् । शान्तिर्वा पुष्कला चेत्स्यात्तत्र दोषो न कश्चन ॥
गोमुखप्रसवं कुर्याच्छान्ति कुर्यात्प्रयत्नतः । जपाभिषेकदानैश्च होमादपि विशेषतः ॥
नवग्रहमखं कुर्यात्तस्य दोषोपशान्तये । प्रथमं गोमुखाज्जन्म ततः शान्ति समाचरेत् ॥
गृहस्य पूर्वदिग्भागे गोमयेनानुलिप्य च । अलङ्कृतं स्वदेशे तु व्रीहिराशिं प्रकल्पयेत् ॥
पञ्चद्रोणमितं धान्यं तदर्द्धं तण्डुलेन च । तदर्द्धं तु तिलैः कुर्यादन्योऽन्योपरि कल्पयेत् ॥
तृतीयराशौ द्रव्यस्य चाष्टपत्रं लिखेद्बुधः । पुण्याहं वाचयित्वा तु आचार्यं वृणुयात्पुरा ॥
आचारवन्तं धर्मज्ञं कुलीनं च कटुम्बिनम् । मन्त्रतत्त्वार्थतत्त्वज्ञं शान्तिकर्मणि कोविदम् ॥
पञ्चाङ्गभूषणं दद्यात्पट्टवस्त्राङ्गुलीयकम् । राशौ प्रतिष्ठितं कुम्भमव्रणं सुमनोहरम् ॥
तीर्थोदकेन सम्पूर्य समृदोषधिपल्लवम् । पञ्चगव्यं पञ्चरत्नं वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं सूक्ष्मवस्त्रेण संयुतम् । प्रतिमां स्थापयेद्धीमान्साधिप्रत्यधिदेवताम् ॥
चन्द्रादित्याकृती पार्श्वे मध्ये वैधृतिमर्चयेत् । एवमेव व्यतीपातशान्तौ सङ्क्रमणस्य च ॥
भानोरुत्तरतो रुद्रमग्निदक्षिणतो यजेत् । निष्कमात्रेण चार्द्धेन पादेनापि स्वशक्तितः ॥
प्रतिमाः कारयेद्धीमांस्तत्तल्लक्षणलक्षिताः । प्रतिमापूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं निवेदयेत् ॥
अधिदैवं भवेत्सूर्यश्चन्द्रः प्रत्यधिदैवतम् । तत्तद्व्याहृतिपूर्वेण तत्तन्मन्त्रेण पूजयेत् ॥
त्रैयम्बकेण मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां यजेत् । उत्सूर्य इति मन्त्रेण सूर्यपूजां समाचरेत् ॥
आप्यायस्वेति मन्त्रेण सोमपूजां समाचरेत् । उपचारैः षोडशिभिर्यद्वा पञ्चोपचारकैः ॥
अर्चितं गन्धपुष्पाद्यैर्गुडनैवेद्यमर्पयेत् । मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां स्पृशन् ॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा । अष्टाविंशति वा चाथ प्रजप्याथ स्वशक्तितः ॥
सर्वसौरं प्रजप्याथ सोमार्थ सोममन्त्रतः । आनोभद्रेति सूक्तं च भद्रा अग्नेश्चसूक्तकम् ॥
जपेच्च पौरुषं सूक्तं त्रैयम्बकमतः परम् । कुम्भं स्पृष्ट्वा चतुर्दिक्षु जपं कुर्युस्त्वथर्त्विजः ॥
कुम्भस्य पश्चिमे देशे स्थण्डिलेऽग्नि प्रकल्पयेत् । स्वगृह्योक्तविधानेन कारयेत्संस्कृतानलम् ॥
त्रैयम्बकेण मन्त्रेण समिदाज्यचरून्हुनेत् । अष्टोत्तरसहस्रं वा त्वष्टोत्तरशतं तु वा ॥
अष्टाविंशतिहोमं वा स्वस्वशक्त्यनुसारतः । मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण तिलहोमं समाचरेत् ॥
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा ह्यभिषेकं चकारयेत् । समुद्रज्येष्ठाः सूक्तेन चापोहिष्ठा त्र्यृचेन च ॥
अक्षिभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिरेव च । त्रैयम्बकेण उत्सूर्य आप्यायस्वेति मन्त्रतः ॥

सुरास्त्वामिति मन्त्रेण त्वभिषेकं समाचरेत् । अभिषेकाप्लुतं वस्त्रमाचार्याय प्रदापयेत् ॥
श्वेतवस्त्रधरो भूत्वा भूषणाद्यैरलंकृतः । यजमानः स्त्रिया युक्त आज्यावेक्षणमाचरेत् ॥
आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रहेमांगुलीयकैः । गोदानं वस्त्रदानं च स्वर्णदानं विशेषतः ॥
तद्दोषशमनार्थाय आचार्याय प्रदापयेत् । प्रच्छादनपटं दद्यात्ततः शान्तिर्भविष्यति ॥
ब्राह्मणाञ्छतसंख्याकान्मिष्टान्नैर्भोजयेच्च तान् ॥
बन्धुभिः सह भुञ्जीत यथाविभवसारतः । एवं यः कुरुते मर्त्यो नैवदुःखमवाप्नुयात् ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं मातापित्रोः शिशोरपि । सर्वदुःखनिवृत्त्यर्थं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ॥

सर्वान्कामानवाप्नोति शान्ति कुर्वन्हि मानवः ॥

इति श्रीउत्तर गार्ग्योक्तव्यतीपातवैधृतिसंक्रान्तियोगजन्मशांतिविधिः ॥

कूहूसिनीवालीदर्शशान्तिरुच्यते । तत्रेयमुपपत्तिः यथा त्रिविधो दर्शः (१) कूहूरूपः, (२) सिनीवालीरूपः, (३) उभयलक्षणव्यतिरिक्तश्चेति । यतो द्विविधामास्या । 'अमावास्या त्वमावास्या दर्शः सूर्येन्दु संगमः । सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कूहूः ॥' इत्यमरोक्तेः । निशि चन्द्रवती या तु पूर्णिमा सानुमतिः । सा दिवा चन्द्रवती राका । तद्वदेव द्विधाऽमा । 'सिनीवाली चन्द्रवती नष्टचन्द्रा कुहूर्मता' इति कश्यपोक्तेश्चामावास्याया द्विविधत्वमेवावसीयते । युक्तञ्चैतत् दृष्टचन्द्रात्वं नष्टचन्द्रात्वममावास्यायाः सम्भवति न पुनरुभयभावेन तृतीयामावास्येति। नन्विदमप्ययुक्तम् । यतो रवेर्द्वादशांशविप्रकर्षे चन्द्रदर्शनं कालांशवशेनोक्तम् । तदाह भास्करः— 'दस्रेंदवः शैलभुवश्च शक्रा रुद्राः खचन्द्रास्तिथयः क्रमेण । चन्द्रादितः काललवा निरुक्ता ज्ञशुक्रयोर्वक्रगयोर्द्विहीनाः ॥' इति । द्वादशांशमितेन चान्तरेणामावास्यालक्षणस्य तिथेर्निष्पत्तिः । उक्तं च सूर्यसिद्धान्ते—'अर्काद्विनिःसृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी । तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेयो द्वादशभिस्तिथिः ॥' इति । एवं च कथं दृष्टचन्द्रा सिनीवालीत्युक्तं, कथं च नष्टचन्द्रा कुहूः, कथं चानयोर्भेद इति । विना प्रयोजनं चैकस्य वस्तुनोऽनेकसंज्ञाकरणं न युक्तमिति चेत्, उच्यते नहि कालांशवशेन ग्रहाणामस्तोदयौ । किं तर्हि ? क्षेत्रांशवशेन । तदुक्तं सूर्यसिद्धान्ते—'अष्टादश-शताभ्यस्ता दृश्यांशाः स्वोदयासुभिः । विभज्य लब्धं क्षेत्रांशास्तैर्दृश्यादृश्यता मता ॥' इति । तथा च—'सूर्यास्तकालिकौ पश्चात्प्राच्यामुदयकालिकौ । दिवाकरग्रहौ कुर्याद्दृक्कर्मार्थं ग्रहस्य तु' इत्यादिना प्रकारेण द्विविधदृक्कर्मसंस्कृताच्चंद्रादे राश्युदयवैषम्येण देशभेदेन च नियतत्वात्कदाचिदमावास्यायामपि सार्धैर्दशभिरंशैरंतरितश्चन्द्रो दर्शनगोचरो भवति। कदाचित्षोडशाशान्तरितो द्वितीयायामपि चन्द्रो दृग्गोचरो भवति । एवमेव कदाचिच्चतुर्दशीशेषे च न दृश्यते । कदाचिदल्पावशिष्टायां प्रतिपद्यपि दृश्यते ।

प्रतिपच्चन्द्रदर्शने फलविशेषः—

अत एव गर्गेण प्रतिपदुदितस्य चन्द्रस्य फलविशेषोऽभिहितः । यथा च गर्गसंहितायाम्— 'यदा चन्द्रः प्रतिपदि नौसंस्थाय प्रदृश्यते । उत्तरोज्ज्वलश्रृङ्गः स्यात्स्निग्धश्चातिमनोहरः ॥ क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सर्वभूतेषु निदिशेत् ।' इति । अत एव भारविणापि—'प्रणमन्त्यनपायमुत्थितं प्रतिपच्चन्द्रमिव प्रजा नृपम्' इति किरातार्जुनीये प्रयुक्तम् । अत्रैतस्य टीकाकाराः—प्रतिपच्छब्देन

प्रतिपत्सहचरिता द्वितीया गृह्यते। प्रतिपदि चन्द्रदर्शनाभावादिति व्याचख्युः—ते चिंत्योक्तयो ध्येयाः। ननु प्रतिपदि चन्द्रोदय उत्पातः, तद्दर्शनमशुभफलमिति चेन्न। गणितविसम्वादि-बुधादिदर्शनं गणितज्ञानाशक्यमेव। केत्वादिदर्शनं चोत्पात इति। तल्लक्षणं प्रागुक्तं मया। चन्द्रोदयस्तु कदापि गणितं न व्यभिचरति, प्रत्यक्षदर्शनात्। प्रतिपदुदितचन्द्रस्य गर्गेण प्रशस्त फलाभिधानाच्च। न ह्युत्पातानां समीचीनं फलं कुत्राप्युक्तं स्वर्तुजानुत्पातान्विहाय वचनात्, येन प्रतिपदि चन्द्रोदय उत्पात् इत्युच्यते तेन चतुर्दशीशेषे प्रातश्चन्द्रोदयाभावो ह्युत्पातो वाच्य इति, तच्चायुक्तं। उक्तादेव हेतोः। तस्मात् क्षेत्रांशवशेनैव ग्रहाणामस्तोदयौ भवतः। कालां-शोक्तिस्तु क्षेत्रांशनिदानभूतत्वाय सामान्यत उदयास्तज्ञानसिद्धैव। तदेतत्पितृचरणैष्टोडरानन्दे चन्द्राचारविलासे सम्यक् प्रतिपादितम्। तस्माद्दृक्कर्मसंस्कारवशेन चतुर्दशीशेषे प्रातश्चन्द्रोदयो दृश्यते न दृश्यते च। एवं च प्रातरमावास्यायमपि चन्द्रोदयो न दृश्यते, दृश्यते च। तस्मात्सु-ष्ठूक्तं—'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः' इति तद्वदेव द्विधा ह्यमा। 'सिनीवाली चन्द्रवती नष्टचन्द्राकुहूर्मता' इति। कश्यपोऽपि 'द्विधैवामावास्य' इत्याह स्म। युक्तमेव—यद्य-मावास्यायां चन्द्रो दृश्यते तदामावास्या सिनीवाली, यदा चन्द्रोऽमावास्यायां न दृश्यते तदा कुहूरिति। परन्त्विदमयुक्तम्। यदुभयराहित्येनामावास्यान्तरमप्यस्तीति। अस्यासम्भवात्। अत्र समाधिं वावदूकाग्तावदाहुः। यस्याः कस्याश्चिदमावास्याया अष्टौ विभागान्कृत्वा प्रथमविभागे चन्द्रदर्शनमस्ति नवेति विचार्यं। यदा चन्द्रदर्शनं तदा सिनीवाली, यदा चन्द्रादर्शनं तदामावास्या सकलचन्द्रक्षये कुहूरिति। तदेतदुक्तं छन्दोगपरिशिष्टे 'इन्दुक्षयकालः श्राद्धकालः' इति प्रस्तुत्येन्दु-लयकालपरिमाणमुक्तम्—'अष्टमेंऽशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः। अमावास्याष्टमे भागे पुनः किल भवेदणुः' इति। 'आग्रहायण्यमावास्या तथा ज्येष्ठस्य या भवेत् विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः॥ अत्रेन्दुराद्ये प्रथमेऽवतिष्ठते चतुर्थभागोनकलावशिष्ट। तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्न एवं ज्योतिश्चक्रविज्ञा वदन्ति' इति। आभ्यामिति ल्यब्लोपे पञ्चमी। एते। अमावास्ये प्रकृत्येत्यर्थः। एतत्कारिकात्रयं तद्भाष्यकारेण व्याख्यातं—'प्रहरनवात्मकश्चन्द्रक्षयकालः' इति। तत्रामायाः सप्तमाष्टमयामौ कृत्स्नक्षयकालः चतुर्द्दशीशेषयामदर्शादियामौ चन्द्रसूक्ष्मताकाल इति। पुनः किलशब्दाभ्यामयमर्थो द्योत्यते चतुर्द्दश्याः क्षैण्यं सूक्ष्ममामान्त्यभागे कृत्स्नक्षयकाल इति। अमावास्याविशेषे ज्येष्ठादावमाद्ययामे चन्द्रो दृश्यत इत्यर्थः। ज्योतिश्चक्रविज्ञा इत्यस्यार्थः पितृचरणैरभिहितः। तेन देशकालगणनाकुशला यथा यथा गणयन्ति तदेवाङ्गीकार्यमिति सूच्यते। ततश्च ज्येष्ठादिकालभिन्नकालेप्येवंविधोपलम्भ। ज्येष्ठादौ च नोपलम्भो देशकालभेदेन सम्भव-तीति। तदयमत्र विवेकः—यस्याममावास्यायां प्रथमे प्रहरे शास्त्रात्प्रत्यक्षतो वा चन्द्रदर्शनं स्यात्सा सिनीवाली सर्ववादिसिद्धा। तत्रोत्पन्नस्य सिनीवालीजननफलमादेश्यं सिनीवालीप्रयुक्ता शान्तिश्च विधेया। अथ यस्याममावास्यायां यदा नष्टेन्दुकलात्वं स्यात्तदा कुहूरिति। तत्रै-कस्याश्चन्द्रकलायाः किञ्चिन्नाशो वा अखिलनाशो वेति सन्देहे विनिगमनाविरहात्कृत्स्नकलाक्षय एव विवक्षितः, मुख्यत्वात्। यत्किञ्चिन्नाशस्त्वपचीयमानत्वाद्गौणः। 'गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्य-सम्प्रत्ययः' इति न्यायान्मुख्यस्यैव ग्रहणं युक्तम्। स च कृत्स्नक्षयकालोऽमावास्यान्तिमक्षण एव। यस्य चातिसूक्ष्मत्वाददुर्ज्ञानत्वात्सप्तमाष्टमप्रहरात्मकः कालः कुहूशब्दवाच्यः, तत्रोत्पन्नस्य कुहू-जननफलं तच्छान्तिश्चादेश्या। पुनस्तस्यामेवामावास्यायां प्रथमप्रहरानन्तरम् सप्तमप्रहरादर्वाक्

प्रहरपञ्चकात्मकः कालो दर्शशब्दवाच्यः इति । तत्रोत्पन्नस्य दर्शजननफलं तच्छान्तिश्चादेश्या । एवमेकस्यामेवामावास्यायां कालभेदेन त्रयं सम्भवति । अत्र केचित्सिनीवाल्यां विशेषमाहुः । चतुर्दशीशेषे सूर्योदयात्प्राक् चन्द्रदर्शने जाते सति परदिने याऽमावास्या सा सिनीवाली । तथा च जगन्मोहने बौधायन इत्युक्त्वा पठितं—'मध्याह्न समयं यावच्चतुर्दश्यनुवर्त्तते । सिनीवालीति सा त्वेषा पितृकर्मणि शस्यते ॥' इति । धर्मशास्त्रेऽप्येतादृशानि भूयांसि वचनानि सन्ति । तेषामिदं श्राद्धकालनिर्णयोपयोगिपारिभाषिकं सिनीवालीत्वं, न पुनर्जननादौ । कुतः निरुक्तिविरोधात् । तथाहि, 'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली' इत्यादिवाक्येषु दृष्टश्चन्द्रो यस्यां सा सिनीवालीति बहुव्रीहिः । स च 'अनेकमन्यपदार्थे' इति विहितः । तत्रान्यपदार्थतयोपस्थितामावास्यैव गृह्यते, प्रकरणात् । न चैवं सति चतुर्दश्यां चन्द्रोदये सिनीवालीत्वं स्यात् । 'दृष्टचन्द्रा सिनीवाली' इत्येतावतैव लक्षणेन सर्वासामपि दृष्टेनदुत्वात्सिनीवालीति तच्छान्तिकोक्तिरनर्थिका स्यात् । ननु दृष्टश्चन्द्रो यस्यामित्यन्यपदार्थे सप्तमी सामीप्यपरेति व्याख्यायते इति चेत्, न । तस्याः सामीप्यसप्तम्यागौणाधारपरत्वात् । मुख्यासम्भवे हि गौणग्रहणं युक्तम् । अत्र तु मुख्य एवाधारः अमावास्यारूपः सम्भवतीति गृह्यते । गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः' इति न्यायात् । ननु दृष्टेश्चन्द्रो यस्या इति षष्ठ्यर्थेऽन्यपदार्थे बहुव्रीहौ सम्बन्धमात्रं मुख्य एव षष्ठ्यर्थ इति सामीप्यसम्बन्धवत्षष्ठ्यन्तेऽन्यदार्थे बहुव्रीहिरयं भविष्यतीति चेत्' न । सामीप्यसम्बन्धे मत्वर्थीयः प्रत्ययो बहुव्रीहिर्वा न कैरपि वैयाकरणैरिष्यते । तदेतत् 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप' इत्यत्र महाभाष्यकारेण प्रत्यपादि । न चैवमपि 'कुहूः सिनीवाल्यपि नष्टदृष्टचन्द्रे स्मृते चासितपञ्चदश्यौ' इत्यादिवाक्येषु बहुव्रीहिनिर्देशो मतुब्निर्देशो वा नास्ति । तत्र कृष्णचतुर्दश्यामपि चन्द्रोदयस्य दृष्टत्वादमावास्यायाः सिनीवालीति संज्ञा स्यादिति चेत्, न, 'सम्भवति सामानाधिकरण्ये वैयधिकरण्ये वैयधिकरण्यस्यान्याय्यत्वात्' इति न्यायाच्चन्द्रोदयसमानाधिकरणामावास्याग्रहणस्यैव युक्तवात् । किञ्च सिनीपदेन श्वेतचन्द्रोकलोच्यते । सितशब्दः श्वेतवर्णवाची । तस्मात् स्त्रियां 'वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः' इति ङीप्नकारौ सिनी । तां वलते प्राप्नोतीति सिनीवालीति व्युत्पत्तेश्चतुर्द्दश्युदितं चन्द्राश्रयाममावास्यायां न युज्यते 'कृत्तद्धितसमासानाभिधानं नियामकम्' इति भाष्यकारस्मरणादिति । तस्मात्—दृष्टेन्दुः सिनीवालीत्यमावास्यैवाभिधीयत इति यत्प्रागुक्तं तदेव ज्यायः । एवमेकस्यामेवामावास्यायां सिनीवाली कुहूदर्शरूपं भेदत्रयं युक्तम् । अथ सिद्धान्तविदोऽन्यथा समादधुः । तत्र 'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः इत्यादिषु हि दर्शनशब्देन चाक्षुषं दर्शनं विविक्षतम् । तच्चोदयास्ताधिकाररीत्या दर्शनयोग्यत्वे सति पूर्वक्षितिजक्रान्तिवृत्तसम्बन्धवत्वं ग्रहादेर्दर्शनशब्दवाच्यम् । मेघाद्यावरणे हि शास्त्रीये दर्शने दृशिर्वर्तते आत्मा द्रष्टव्य इत्यादिवत् । अत्रार्थे 'पश्यार्थैश्चानालोचने' इति पाणिनिरप्यनुकूलः । अतो भास्करेणाप्युक्तं—'निजनिजोदयलग्नसमुद्गमे समुदयोपि भवेद्धनभःसदाम्' इति तयैव रीत्या दर्शनायोग्यत्वे । पूर्वक्षितिजक्रान्तिवृत्तसम्बन्धवत्त्वमदर्शनशब्दवाच्यम् । यत्तु 'भवति चास्तविलग्नसमुद्गमे प्रतिदिनेऽस्तमयः प्रवहभ्रमात्' इति भास्करेणोक्तं तद्धनभःसदां क्रान्तिवृत्तपश्चिमक्षितिजसन्निधिवशेनास्तलक्षणमुक्तं न तु पूर्वक्षितिजदर्शनाभावलक्षणमिति मयोक्तं दर्शनाभाव-लक्षणम्, अतो दर्शनलक्षणवत्यमावास्या सिनीवाली नामादर्शनलक्षणवत्यमावास्या कुहूर्नाम, लक्षणद्वयानाक्रान्तामावास्या दर्शशब्दवाच्येति ।

अथ सिनीवालीकुहूदर्शानां तच्छान्तीनां च व्यवस्था—

यदा खल्वमावास्या सूर्योदयात्प्राग्घटिकात्रयवती तदा दृक्कर्मसंस्कारवशेन चन्द्रस्य दृश्यत्वमागतं चेत् तदा सा सम्पूर्णामावास्या सिनीवाली नाम । तादृश्याममायां द्वितीयसूर्योदयावधिकायामुत्पन्नस्यारिष्टशान्तये सिनीवाली शान्तिस्तत्फलं चादेश्यम् । अतिवृद्धौ वा तस्या अमावास्याया द्वितीयसूर्योदयान्तरमवशिष्टामावास्याघटीषूत्पन्नस्य कुहूशान्तिरेव चन्द्रदर्शनलक्षणसत्त्वात् । यदि सैवामावास्या सूर्योदयात्प्राग्घटिकाचतुष्टयं वा प्रतिपत्सम्बद्धा तदा सिनीवाल्येव । अथ तादृश्यामेव न्यूनायामधिकायां वामावास्यायां तु दृक्कर्मसंस्कारवशेन चन्द्रस्यादृश्यत्वमागतं सामावास्या सम्पूर्णा कुहूर्नाम, चन्द्रादर्शनलक्षणत्वात् । तत्र कुहूजननफलं सा शान्तिश्चादेश्या । यदा तु सूर्योदयानन्तरं कियतीषु घटीष्वतिक्रान्तास्वमावास्याप्रवृत्तिस्ततः पूर्वं चतुर्दश्येत्रावस्थिता तस्यामुषसि दृक्कर्मवशतश्चन्द्रो दृष्टोऽमा वादर्शि । तस्याममावास्यायां चन्द्रदर्शनादशनलक्षणानाक्रान्तत्वात्सामावास्या सम्पूर्णा दर्शो नाम । तत्र दर्शजननफलं शान्तिश्च विधेयेति । एवममावास्याभेदेन सिनीवालीकुहूदर्शरूपसञ्ज्ञात्रयं सावकाशमित्यस्मन्मतम् ।

अन्यथापि भेदत्रयम्—

तत्र सिनीवाली सर्ववादिसिद्धा सैव । कुहूस्तु प्रकारान्तरेण पारिभाषिकी । यदाह वसिष्ठः—'नक्षत्रे यस्य दर्शान्तो विषनाड्यां भवेद्यदि । कुहूयोग इति ख्यातो व्याधिमृत्युभयादिकृत् ॥' इति । अयमर्थः । यस्मिन्नक्षत्रे या विषनाड्य उक्तास्तस्मिन्काले यदि दर्शस्य समाप्तिर्दर्शचरमनाड़ी भवेत् तन्नक्षत्रं यस्य पुरुषस्य जन्मर्क्षं जन्मकाले कालान्तरे वा स्यात्तस्य पुंसो व्याधिमृत्युभयकृत्कुहूः, योगो ध्येयस्तत्र कुहूजननफलं शान्तिश्च स्यात्, कालान्तरेऽपि कुहूयोगसम्भवे शान्तिविधेया । अत्र कुहूयोगे विशेषमाह स एव 'जन्मांशे यदि कुहूस्यात्षण्मासान्मृत्युमाप्नुयात् । जन्मलग्नेऽथ जन्मांशे मृत्युर्मासत्रयाद्भवेत् ।' इति पूर्वोक्तकुहूयोगकाले यदि जन्मनवांशे चन्द्रस्तदा षण्मासमध्ये मृत्युः । यदि जन्मलग्नं तस्मिन्काले जन्मांशगश्चन्द्रश्चेत्युभयसम्भवे मासत्रयेण मृतिरिति भावः । अत एवोक्तं जगन्मोहने वसिष्ठः='यस्य जन्मर्क्षगश्चन्द्रो विषनाड्यां कुहूर्भवेत् । अभिचारेण किं तस्य स्वयमेव मरिष्यति ॥' इति । अतो विषघटिकातः पूर्वकालो दर्शशब्दवाच्य इति । एवमस्माभिः प्रकारत्रयेण सिनीवालीकुहूदर्शानां भेद उपपादितः । तत्र यथासम्प्रदायं व्यवस्थेत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

ज्योतिःशास्त्रमहोदन्वदवगाहनिविष्टधीः । नीलकण्ठांशगोविन्दहनूमान्केन गीर्यताम् ॥

सिनीवालीकुह्वोर्जन्मनि शान्तिः—

प्राक्प्रतिज्ञाता सिनीवालीकुहूशान्तिस्तावदुच्यते, गार्ग्यः—

'सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा । गवाश्वं महिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरत् ॥
ये च सन्ति द्विजाश्चान्ये स्वप्रसादोपजीविन । वर्जयेत्तानशेषांस्तु पशुपक्षिमृगादिकान् ॥
कुहूप्रसूतिरत्यर्थं सर्वदोषकरी नृणाम् । यस्य प्रसूतिरत्र स्यात्तस्यायुर्धननाशनम् ॥
सर्वगण्डसमस्तत्र दोषस्तु प्रबलो भवेत् । नारीं विना विशेषाणां परित्यागो विधीयते ॥

गोमहिष्यादीनां सिनीवालीकुह्वोः जातानां त्यागो न तु नारीणामिति भावः ।

'परित्यागात्तत्र शान्तिं कुर्याद्धीमान्विचक्षणः । तत्फलं तत्क्षणार्द्धेन पुनरेव विलीयते ॥
न त्यजेत्पण्डितो मोहदर्थादज्ञानतोपि वा । तद्योगं नाशयेदाशु स्वयं वा नाशमृच्छति ॥

कल्पोक्तशान्तिः कर्तव्या शीघ्रं दोषानुपत्तये । रुद्रः शक्रश्च पितरः पूज्याः स्युर्देवताः क्रमात् ॥
कर्षमात्रसुवर्णेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः । अथ वा शक्तितः कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥
प्रतिमां कारयेच्छम्भोश्चतुर्भुजसमन्विताम् । त्रिशूलखड्गवरदाभयहस्तां यथाक्रमात् ॥
श्वेतवर्णां श्वेतपुष्पां श्वेताम्बरवृषस्थिताम् । त्रैयम्बकेण मन्त्रेण पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥
इन्द्रश्चतुर्भुजो वज्रान्कुशचापसुसायकी । रक्तवर्णो गजारूढो यत इन्द्रेति मन्त्रतः ॥
पितरः कृष्णवर्णाश्च चतुर्हस्ता विमानगाः । यष्टयक्षसूत्रकमण्डलवभयानां च धारिणः ॥
ये सत्या इति मन्त्रेण पूजां कुर्यादनन्तरम् । आग्नेयीं दिशमारभ्य कुम्भान्कोणेषु विन्यसेत् ॥
तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतच्छिद्रसमन्वितम् । तेष्वेव पञ्चगव्यादींस्तत्तन्मन्त्रैश्च निःक्षिपेत् ॥
कल्पोक्तशान्तिः कर्त्तव्या शीघ्रमेव प्रयत्नतः । गोदानं वस्त्रदानं च सुवर्णं चौर्णकं शुभम् ॥
दश दानानि चोक्तानि क्षीरमाज्यं गुण्डन्तया । आज्यावेक्षणमेतानि तत्तन्मन्त्रैश्च कारयेत् ॥
समिदाज्यचरोर्होमं तिलमाषैश्च सर्षपैः । अश्वत्थप्लक्षपालाशमिद्भिः खदिरैः शुभैः ॥
अष्टोत्तरशतं मुख्यं प्रत्येकं जुहुयाद्द्विजः । त्रैयम्बकेण मन्त्रेण तिलान्व्याहृतिभिः पुनः ॥
चतुर्भिः कलशैर्युक्तं बृहत्कुम्भसमन्वितम् । शान्तिवत्कलशैः कार्यमभिषेकं च मन्त्रतः ॥
पितृमातृशिशूनां च अभिषिञ्चेत्तु वारुणैः । शंकरस्याभिषेकं च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥
अन्येषां चैव सर्वेषां ब्राह्मणानां च तर्पणम् । यथाशक्ति तदा कार्यं द्विजवाचनकं तथा ॥

इत्युत्तरगार्ग्योक्तसिनीवालीकुहूशान्तिविधिः ।

अथ नारदोक्ता दर्शजन्मशान्तिः—

'अथातो दर्शजातानां मातापित्रोर्दरिद्रता । तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिं वक्ष्यामि नारदः ॥
पुण्याहं वाचयित्वादौ क्रतुसङ्कल्पपूर्वकम् । कुण्डं च मण्डपं कुर्यात्तद्देशे स्थापयेद्घटम् ॥
तत्कुम्भे निःक्षिपेद्द्रव्यं दधिक्षीरघृतादिकम् । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थाः सचूता निम्बकास्तथा ॥
एतेषां वृक्षमूलानां त्वगादीन्पल्लवांस्तथा । पञ्चरत्नानि निःक्षिप्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदानदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥
आपोहिष्ठात्र्यृचेनाथ कयानश्चित्र इत्यृचा । यत्किंचेदमृचा चैव समुद्रज्येष्ठा इत्यृचा ॥
अभिमन्त्र्योदकं पश्चादग्नेः पूर्वप्रदेशके । उदकमभिमन्त्र्य पश्चाद्दर्शदेवताः स्थापयेदित्यर्थः ॥

मण्डलं कुर्यादिति यदुक्तं तत्—

'हारिद्रं रक्तकं चैव कृष्णं श्वेतं च नीलकम् । एतेषां तण्डुलैश्चैव सर्वतोभद्रमुद्धरेत् ॥
दर्शस्य देवतायाश्च सोमसूर्यस्वरूपकाः । प्रतिमाः स्वर्णजा नित्यं राजतीस्ताम्रजास्तथा ॥
दर्शदेवतारूपां सोमसूर्यस्वरूपप्रतिमां स्थापयेदित्यभेदेनान्वयः । कुहूमपि, तत्रापीदम् ॥
'सर्वतोभद्रमध्ये च स्थापयेद्दर्शदैवतम् । ग्रहवर्णं वस्त्रयुग्मं तद्वर्णं गन्धपुष्पकम् ॥
आप्यायस्वेति मन्त्रेण सविता पश्चात्तमेव च । उपचारैः समाराध्य ततो होमं समाचरेत् ॥
कृत्वा वह्निं प्रतिष्ठाप्य क्रतुसंकल्पमीदृशम् । आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं सर्वारिष्टप्रशान्तये ॥
पुत्रस्य दर्शजननदोषनिर्हरणाय च । मातापित्रोः कुमारस्य सर्वारिष्टप्रशान्तये ॥
तेषामायुःश्रियं लब्धुं शान्तिहोमं करोम्यहम् । समिधश्च च तद्द्रव्यं क्रमेण जुहुयाद्गृही ॥

हुनेत्सवितृमन्त्रेण सोमो धेनुं च मन्त्रतः। एतैर्मन्त्रैश्च प्रत्येकं हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥
दर्शस्य देवताहोममष्टाविंशतिसंख्यया। होममेवं तु कृत्वाथ विद्याचाराभिषेचनम् ॥
श्रीसूक्तमायुष्यसूक्तं समुद्रज्येष्ठपङ्क्त्चा। एतैर्मन्त्रैरभिषेकं मात्रापित्रोः शिशोस्तथा ॥
ततः स्विष्टकृदादि स्याद्धोमशेषं समापयेत्। हिरण्यं रजतं चैव कृष्णा धेनुश्चदक्षिणा ॥
अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति दातव्या दक्षिणा तथा। ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र कारयेत्स्वस्तिवाचनम् ॥

इति श्रीनारदोक्तो दर्शजननशान्तिविधिः।

अथ कृष्णचतुर्दशीशान्तिविधिः—

मन्दरस्थं सुखासीनं गर्गं मुनिवरं शुभम्। नमस्कृत्वाऽथ पप्रच्छ शौनको मुनिपुंगवः ॥
शान्तिकर्माणि सर्वाणि त्वत्तो जानाम्यहं पुरा। अधुना श्रोतुमिच्छामि कृष्णपक्षचतुर्दशीम् ॥
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रसूतेः किं फलं वद।

गर्ग उवाच—

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधं फलम्। चतुर्दशीं च षड्भागां कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् ॥
द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरं तथा। चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम् ॥
षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्याद्विधानतः ॥
आचार्यं वरयेद्धीमान्पुत्रदारसमन्वितम्। स्वकर्मनिरतं शान्तं श्रोत्रियं वेदपारगम् ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ब्राह्मणानृत्विजश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥
रुद्रोऽधिदेवता तस्याः कर्षमात्र सुवर्णतः। तदर्द्धेन च वा कुर्याद्वित्तशाठ्येन वर्जितः ॥
प्रतिमां कारयेच्छम्भोः सर्वलक्षणसंयुताम्। वृषभे च समासीनं वरदाभयपाणिकम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं श्वेतमाल्याम्बरान्वितम्। त्रैयंबकेण मंत्रेण पूजां कुर्याद्विधानतः ॥
स्थापयेच्चतुरः कुम्भांश्चतुर्दिक्षु यथाक्रमम्। पुण्यतीर्थजलोपेतान्धान्यस्योपरि विन्यसेत् ॥
शतौषधानि निःक्षिप्य श्वेतवस्त्रैश्च वेष्टयेत्। शुभानि चैव पुष्पाणि श्वेतानि परिवेदयेत् ॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदानदाः। आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥
आवाह्य वारुणैर्मन्त्रैरनेन च विधानतः। इमं मे वरुणेत्यनया तत्त्वायामीत्यृचा तथा ॥
'त्वन्नो अग्ने' इत्यनया सत्वन्न इति मन्त्रतः। आग्नेयकुम्भमारभ्य पूजां कुर्याद्यथाक्रमम् ॥
आनोभद्राख्यसूक्तेन भद्रा अग्नेश्च सूक्तकम्। जप्त्वा पुरुषसूक्त च कद्रुद्रं तु क्रमाज्जपेत् ॥
ईश्वरस्याभिषेकं च ग्रहपूजां च कारयेत्। पूजाकर्म सुनिर्वर्त्य होमं कुर्याद्विधानतः ॥
गेहस्येशानदिग्भागे कुण्डं कुर्याद्विधानतः। कुण्ठकण्ठं परित्यज्य समंतादङ्गुलिक्रमात् ॥
मेखलोच्छ्रायविस्तारे चतुस्त्रिद्वयङ्गुलक्रमात्। पश्चिमे मध्यभागे तु योनिं कुर्याद्विधानतः ॥
योनिं षडङ्गुलां तिर्यग्द्वादशाङ्गुलदैर्घ्यकाम्। अश्वत्थदलसङ्काशां किञ्चिन्निम्नायतां शुभाम् ॥
कुर्यादाधारपर्यन्तं स्वगृह्योक्तविधानतः। समिदाज्यचरूंश्चैव तिलमाषांश्च सर्षपैः ॥
अश्वत्थप्लक्षपालाशसमिद्भिः खदिरैः शुभैः। अष्टोत्तरसहस्रं वा ह्यष्टोत्तरशतं तु वा ॥
अष्टाविंशतिमेतैश्च होमं कुर्यात्पृथक्पृथक्। त्रैयम्बकेण मन्त्रेण तिलाव्याहृतिभिः क्रमात् ॥
ग्रहा एवं च होतव्या अस्मदुक्तविधानतः। एवं क्रमेण होतव्यं होमशेषं समापयेत् ॥

सर्वालङ्कारयुक्तानां त्रयाणामभिषेचनम् । चतुर्भिः कलशैरद्भिर्बृहत्कुम्भसमन्वितम् ॥
धौताम्बराणि धृत्वाथ कुर्यादाज्यावलोकनम् । पूर्णाहुतिं च जुहुयाद्यजमानः समाहितः ॥
तत्सर्वं परया भक्त्या ईश्वराय निवेदयेत् । सर्वालङ्कारसंयुक्तां सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥
प्रतिमां वस्त्रयुग्मं च आचार्याय निवेदयेत् । अन्येषां चैव सर्वेषां कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥
तस्मादनेन विधिना वित्तशाठ्यविवर्जितः । एवं यः कुरुते शान्तिं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति चिरञ्जीवी सुखी भवेत् ।' इत्युत्तरगार्ग्योक्ता कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः ॥

अथैकनक्षत्रजातानां शान्तिविधिरुच्यते—

'एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः । प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चयः ॥

तद्दोषनाशाय तदा प्रशस्तां शान्तिं च कुर्यादभिषेचनं च ।
संपूज्य ऋक्षप्रतिमां तदग्रे दानं च कुर्याद्विभवानुरूपम् ॥

तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि सर्वाचार्यमतेन तु । शुभर्क्षेशुभवारे च चन्द्रताराबलान्विते ॥
रिक्ताविष्टिविवर्ज्ये तु प्रारभेद्दिवसे सुधीः । आचार्यं वरयेत्पूर्वं चतुरोऽथ द्विजोत्तमान् ॥
पुण्याहं वाचयित्वा तु शान्तिकर्म समाचरेत् । अग्नेयीशानदिग्भागे नक्षत्रप्रतिमां ततः ॥
तन्नक्षत्रोक्तमन्त्रेण चार्चयेत्कलशोपरि । रक्तवस्त्रेण सञ्छाद्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥
स्वशाखोक्तेन मार्गेण कुर्यादग्निमुखं ततः । अनेनैव तु मन्त्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥
प्रत्येकं समिदन्नाज्यैः प्रायश्चित्तान्तमेव च । अभिषेकं ततः कुर्यादाचार्यः पितृपुत्रयोः ॥
वस्त्रालङ्कारगोदानैराचार्यं पूजयेत्पुनः । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यान्माषत्रयसुवर्णकम् ॥
देवताप्रतिमादानं धान्यवस्त्रादिभिः सह । यानशय्यासनादींश्च दद्यात्तद्दोषशान्तये ॥
भोजयेद्ब्राह्मणान्सर्वान्वित्तशाठ्य विवर्जितः ।'

इति गार्ग्योक्तैकनक्षत्रजननशान्तिविधिः । अथैकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोरिति गर्गवाक्ये भ्रात्रोरितिपदे किं भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ 'भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम्' इत्येकशेषः उत भ्राता च भ्रातरौ 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' इत्येकशेषः । तत्र प्रथमपक्षे सोदरयोर्भ्रातृभगिन्योरेवैकनक्षत्रजननिषेधःस्यान्न तु पुम्भ्रात्रोः । द्वितीयपक्षे तु सोदरयोः पुम्भ्रात्रोरेव निषेधः स्यान्न तु भ्रातृभगिन्योः । इष्यते च द्वयोरपि भ्रात्रोर्निषेधः । न च भ्रातरौ च भ्रातरौ चेति द्वन्द्वे सत्येकशेषेण सिद्धमिति वाच्यम्, तथा सति तेषां चतुष्टवाद्भ्रातृणामिति पाठ्यं स्यात् । एवं पितृपुत्रयोरित्यत्रापि पिता च पुत्रश्चेति द्वन्द्वे पितापुत्रयोरेकनक्षत्रजननिषेधः स्यात् । तथा पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ 'भ्रातृपुत्रौ' इत्यादिनैकशेषः पितरौ च पुत्रौ चेति द्वन्द्वे मातापित्रोःपुत्रस्य कन्यायाश्चैकनक्षत्रजननिषेधः स्यादितिवाच्यम् । यतः प्रथमपक्षे पितृपुत्राणामिति बहुवचनान्तं पदं पाठ्यं स्यात् । द्वितीयपक्षेतु स दोषोऽस्त्येव । परन्तु यथासंख्यमपि लगति । यथा मातापुत्रयोरेव पितादुहित्रोरेव चैकनक्षत्रजननिषेधः स्यान्न तु मातादुहित्रोः पिता पुत्रयोश्चेति । इष्यते चानयोरपि निषेध इत्यतो नैतद्वचनं निर्णयपदवीमवगाहते । सत्यम्, गर्गवाक्यस्य त्वेतावानेवार्थः । परन्तु वचनान्तरानुरोधादिष्टविषयोऽपि संगृहीतो भवति । यदाह वसिष्ठः—'पित्रोस्तु जन्मकर्मर्क्षे जातस्तु पितृमातृहा । जन्मर्क्षांशे च तल्लग्ने जातः सद्यो मृतिप्रदः ॥' इति । देवकीर्तिः—

'यद्येकस्मिन्धिष्ण्ये जायन्ते दुहितरोऽथवा पुत्राः ।। पितुरन्तकरा ह्येते यद्यपरे प्रीतिरतुला स्यात् ।।' इति । अपरे अन्यनक्षत्रे 'पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा' इत्यस्मिन् भावपक्षे रूपम् । गर्गसंहितायामपि—'यस्यैव जन्मनक्षत्रे जायेद्भ्राता सुतोऽपि वा । सजातीयः स्वजात्या वा सोऽस्य प्राणान्प्रसाधयेत् ।।' इति । यस्येति पुंस्त्वमविवक्षितम् । तेन मातुरपि निषेधो वसिष्ठवाक्यस्वरसात् ।

अथोपरागे जन्मनि शान्तिः—

अथ मूलश्लोके दुष्टनिमित्तस्योपलक्षणत्वेन व्याख्यानात् सूर्यचन्द्रग्रहणसमयजननशान्तिविधिरुच्यते । शौनक उवाच—

ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते । व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ।।
इत्थं संजायते यस्तु तस्य मृत्युर्न संशयः । व्याधिपीडा च दारिद्र्यं शोकश्च कलहो भवेत् ।।
शान्ति तेषां प्रवक्ष्यामि नराणां हितकाम्यया । यस्मिन्नृक्षे विशेषेण ग्रहणं संप्रजायते ।।
तदृक्षाधिपते रूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् । यथाशक्त्यनुसारेण वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।।
सूर्यग्रहे सूर्यरूपं सुवर्णेन स्वशक्तितः । चन्द्रं चन्द्रग्रहे धीमान् रजतेन विशेषतः ।।
राहुरूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विचक्षणः । शुचौ देशे प्रयत्नेन गोमयेन प्रलेपयेत् ।।
तस्योपरि न्यसेद्धीमान्नववस्त्रं सुशोभनम् । त्रयाणां चैव रूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत् ।।
रक्ताक्षता रक्तगन्धा रक्तपुष्पाम्बराणि च । सूर्यग्रहे प्रदातव्यं सूर्यप्रीतिकरं च यत् ।।
श्वेनवस्त्रं श्वेतमाल्यं श्वेतगन्धाक्षतादिभिः । चन्द्रग्रहे प्रदातव्यं चन्द्रप्रीतिकरं च यत् ।।
राहवे चैव दातव्यं कृष्णपुष्पाम्बराणि च । दद्यान्नक्षत्रनाथाय श्वेतगन्धानुलेपनम् ।।
सूर्यं सम्पूजयेद्धीमानाकृष्णेति च मन्त्रतः । चन्द्रग्रहे च पालाशैः समिद्भिर्जुहुयान्नरः ।।
दूर्वाभिर्जुहुयाद्धीमान्राहोः सम्प्रीणनाय च । समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षोत्थैर्भेशाय जुहुयाद्बुधः ।।
(भानां नक्षत्राणामीशस्तस्मै भेशाय, नक्षत्राधिपतये)
आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः । पञ्चगव्यैः पञ्चरत्नैः पञ्चत्वक्पञ्चपल्लवैः ।।
जलैरौषधकल्कैश्च सहितैः कलशोदकैः । अभिषेकं प्रकुर्वीत यजमाने प्रयत्नतः ।।
मन्त्रैर्वारुणदैवत्यैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः । इमं मे गङ्गे पितरस्तत्त्वायामीति मन्त्रकैः ।।
अभिषेके निर्वृत्ते तु यजमानः समाहितः । आचार्यं पूजयेत्पश्चात्सुशान्तो विजितेन्द्रियः ।।
तस्मै दद्यात्प्रयत्नेन भक्त्या प्रतिकृतित्रयम् । दक्षिणाभिश्च संयुक्तं यथाशक्त्यनुसारतः ।।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु प्रणिपत्य क्षमापयेत् । तेभ्योऽपि दक्षिणां दद्याद्यजमानः समाहितः ।।
अनेन विधिना शान्ति कृत्वा सम्यग्विशेषतः । अकालमृत्युं शोकं च व्याधिपीडां न चाप्नुयात् ।।
सौख्यं सौमनसं नित्यं सौभाग्यं लभते नरः । इत्थं ग्रहणजातानां सर्वारिष्टविनाशनम् ।।
कथितं भार्गवेणेदं शौनकाय महात्मने ।'

इति श्रीशौनकविरचितः सूर्यचन्द्रग्रहणसमयजननशान्तिविधिः समाप्तः ।

अथ त्र्युत्तरं विजातीयस्य जन्मनि शान्तिः—

त्रीतरशान्तिरप्युच्यते । सा च शान्तिसर्वस्वेऽभिहिता—
'सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्त्रये वा सुतो यदि । मातापित्रोः कुलस्यापि तदारिष्टं महद्भवेत् ।।

ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःख वा सुमहद्भवेत् । तत्र शान्ति प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥
जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने । आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥
सह वा ग्रहयज्ञः स्याद्यथावित्तानुसारतः । ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रप्रतिमाःस्वर्णतःकृताः ॥
पूजयेद्धान्यराशिस्थकलशोपरि शक्तितः । पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसंख्यया ॥
रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः । द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिसमाहितः ॥
आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलांश्चरुम् । अष्टोत्तरसहस्त्रं वा शतं वा विंशतिं तु वा ॥
देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् । ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्रभयामहे ॥
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः । अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाचार्यं प्रपूजयेत् ॥
हिरण्यं धेनुरेकां च ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा ततः । प्रतिमा गुरवे देया उपस्कारसमन्विता ॥
कांस्याज्यवीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत् । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत् ॥
एवं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं प्रलीयते ॥'

इति शान्तिसर्वस्वोक्तस्त्रीतरशान्तिविधिः समाप्तः । आलोक्यार्षान्पौरुषांश्च ग्रन्थान्मूलादिशान्तयः नीलकण्ठतनूजेन गोविन्देनोदिताः क्रमात् ॥ ५७ ॥

पीताम्बरा—मूल आश्लेषा के अतिरिक्त अन्य अनिष्ट समयों में शिशु के जन्म का अनिष्टफल बताया जा रहा है—(१) गण्डान्त का नाम सन्धिकाल है। जैसे दिन-रात्रि की सन्धि। ऐसे ही यहाँ पर (१) तिथियों, (२) नक्षत्रों और (३) राशिलग्नों की सन्धियों से अभिप्राय है।

(१) तिथि गण्डान्त (सन्धि) (१।६।११) नन्दातिथियों का आदिम और (५।१०।१५) पूर्णातिथियों की समाप्ति काल जैसे—पूर्णिमा की समाप्वि प्रतिपद तिथि का प्रारम्भ, पञ्चमी की समाप्ति षष्ठी तिथि का प्रारम्भ, दशमी तिथि की समाप्ति एकादशी तिथि का प्रारम्भ काल की तिथि सन्धि या तिथि गण्डान्त संज्ञा है।

(२) नक्षत्र गण्डान्त—आश्लेषा और मघा, ज्येष्ठा और मूल, रेवती और अश्विनी नक्षत्रों की सन्धिकाल का नाम नक्षत्र गण्डान्त है। इन ६ नक्षत्रों को लोक व्यवहार में मूल शब्द से भी उच्चारित किया जाता है।

(३) क्रमशः कर्क-सिंह, वृश्चिक-धनु और मीन-मेष राशि लग्नों के आदि और अन्त समयों का नाम राशि-गण्डान्त या राशि-सन्धि होती है।

अतः गण्डान्त, ज्येष्ठा, शूलयोग, महापात, परिघ, व्याघात, गण्डयोग, तिथिक्षय, संक्रान्ति, व्यतीपात, वैधृति, सिनीवाली और कुहू नामकी अमावास्या, वज्रयोग, कृष्णपक्ष की चतुर्दशी यमघण्टयोग, दग्धयोग, मृत्युयोग, भद्राकरण और अपने भाई और बहिन के जन्म नक्षत्र का जन्म, माता-पिता के नक्षत्रों में जन्म, उक्त इन समयों का जन्म भी शुभ नहीं माना जाता है। शान्ति कर्म से ही उक्त अनिष्ट योगों का परिहार होता है।

जिस अमावास्या में कभी चन्द्रदर्शन होता है तो उसे सिनीवाली और जिस अमावास्या में चन्द्रदर्शन न हो उसे "कुहू" कहते हैं।

इसी प्रसंग पर, सूर्य-चन्द्र ग्रहणों का और त्रीतर का जन्म (जैसे तीन पुत्रों के जन्म के पश्चात् कन्या जन्म या तीन कन्याओं के जन्म के पश्चात् पुत्र का जन्म) भी अशुभ माना गया है ऐसी स्थितियों में भी शान्ति कर्म आवश्यक होता है ।। ५७ ।।

अथ नक्षत्रप्रसङ्गादेवाश्विन्यादिभानां तारकामानमुपजातिकयाह—

त्रित्र्यङ्गपञ्चाग्निकुवेदवह्नयः शरेषुनेत्राश्विशरेन्दुभूकृताः ।
वेदाग्निरुद्राश्वियमाग्निवह्नयोऽब्धयः शतं द्विद्विरदा भतारकाः ।। ५८ ।।

पीयूषधारा—त्रीति । अश्विन्यादीनां भानां तारकाः क्रमतो ज्ञेयाः । यथा—अश्विन्यास्तारकास्तिस्रः ३ । भरण्यास्तिस्रः ३ । कृत्तिकायाः षट् ६ । रोहिण्याः पञ्च ५ । मृगस्य तिस्रः ३ । आर्द्राया एका १ । पुनर्वसोश्चतस्रः ४ । पुष्यस्य तिस्रः ३ । आश्लेषायाः पञ्च ५ । मघायाः पञ्च ५ । पूर्वाफल्गुन्या द्वे २ । उत्तराफल्गुन्या द्वे २ । हस्तस्य पञ्च ५ । चित्राया एका १ । स्वात्या एका १ । विशाखायाश्चतस्रः ४ । अनुराधायाश्चतस्रः ४ । ज्येष्ठायास्तिस्रः ३ । मूलस्यैकादश ११ । पूर्वाषाढाया द्वे २ । उत्तराषाढाया द्वे २ । अभिजितस्तिस्रः ३ । श्रवणस्य तिस्रः ३ । धनिष्ठायाश्चतस्रः ४ । शततारकायाः शतम् १०० । पूर्वाभाद्रपदाया द्वे २ । उत्तराभाद्रपदाया द्वे २ । रेवत्या द्वात्रिंशत्तारकाः ३२ । एतावतीभिस्तारकाभिरश्विन्यादीनां स्वरूपं ज्ञेयम् । उक्तं च रत्नमालायाम्—'वह्नित्रिऋतुविषुगुणेन्दुकृताग्निभूतबाणाश्विनेत्रशरभूकुयुगाब्धिरामाः । रुद्राब्धिरामगुणवेदशतद्वियुग्मं दन्ता बुधैर्निगदिताः क्रमशो भताराः ।।' इति । नन्वस्मिन् श्रीपतिवाक्ये सप्तविंशतिभानि प्रतीयन्ते । ग्रन्थकृद्वाक्येऽष्टाविंशतिरिति विरोधः । अत्र समाधिः । उत्तरार्द्धे रुद्राब्धीत्यत्र चतस्रस्ताराः पूर्वाषाढोत्तराषाढयोः । तत्र द्वे पूर्वाषाढायाः । द्वे उत्तराषाढाया इत्यर्थः । एवमष्टाविंशतिनक्षत्राणि । नारदेनापि द्वयोराषाढयोर्द्वितारकत्वमुक्तम् ।

'रामाग्निऋतुबाणाग्निभूवेदाग्निशरेषवः । नेत्रबाहुशरद्वीन्दुयुगवेदाग्निशङ्कराः ।।
वाहुनेत्राग्न्यब्धिशतं बाहुनेत्ररदाः क्रमात् । भानां सङ्ख्या च विज्ञेया दस्रादीनां पृथक्पृथक् ।।' इति ।

अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम् । 'तुरगमुखसदृशम्' इत्यादिनाष्टाविंशतिनक्षत्राणामाकृतिकथनात्सप्तविंशतिनक्षत्राणां च तारागणत्वोक्तेरिति पूर्वापरविरोधः न शक्यः ।

अश्विन्यादितारकासङ्ख्याज्ञानफलम्

तारकामानोक्तेः प्रयोजनं विवाहे नक्षत्रतारकातुल्यैर्वर्षैस्तु सदसत्फलमित्यादि । तदुक्तं वराहेण 'नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकामितैः सदसत् । दिवसैर्ज्वरस्य नाशो व्याधिश्चान्यस्य वै वाच्यम्' इति । तद्यथा शौनकेन विवाहे प्रत्येकं नक्षत्रफलान्यभिहितानि । तत्र 'प्रजापत्ये सुभगा भोगयुतातिप्रिया भर्त्तुः । पुत्रधनानि च लभते सा कन्या पञ्चमे वर्षे ।।' इति । रोहिण्यामुद्वाहफलमुक्तं तद्रोहिण्यास्ताराः पञ्च तावद्वर्षैर्भवति ।। 'अब्दात्प्राणवियोगं त्वाष्ट्रे प्राप्नोति भूतसंसर्गात् । त्यक्त्वा स्वज्ञातिकुलं कामपरा याति वेश्यात्वम् ।।' इति । चित्राया असत्फलं तच्चित्रातारैका तर्हि एकेन वर्षेण भवति । एवं ज्वराद्युत्पत्तावपि तारकामानदिवसैर्ज्वरस्य व्याधे रोगस्य वा नाशो वाच्य इत्याद्यूह्यम् । ननु नक्षत्रभेदेन पूर्वमपि ज्वरनाशका दिवसाः । अत्र तु तारकामितसङ्ख्या दिवसा उक्ता इति ग्रन्थविरोध इति चेन्न, चरणभेदान्न विरोध इति वयं ब्रूमः ।। ५८ ।।

पीताम्बरा—क्रमशः अश्विनी आदिक नक्षत्रों की संख्याएँ बताई जा रही हैं—वेध से आकाश में ग्रह नक्षत्रों की स्थिति देखकर और समझकर नक्षत्रों की अनन्त संख्याओं में भवृत (क्रान्ति वृत्त के द्वादशविभाग = १२ राशियों में $\frac{३६०^\circ}{१२}$ = ३० अंश की राशि में $\frac{३६०}{२७}$ = १३°।२० कला का एक नक्षत्र एवं २६°।४० कला में दूसरा नक्षत्र, अतः तीसरे नक्षत्र का चतुर्थांश ३°।२० कला जोड़ने से ३०° = की एक राशि में सवा दो नक्षत्र होते हैं ।) में प्रधान २७ नक्षत्रों में प्रत्येक नक्षत्र के जितने तारे हैं वे बताए जा रहे हैं ।

यतः नक्षत्र अनेक हैं किन्तु सृष्टि के आरम्भ दिन में नाड़ी क्रान्ति वृत्त सम्पात पर देखे गये नक्षत्रों में क्रान्तिवृत्त के प्रथम २७वें विभाग में देखे गए ३ नक्षत्रों में विशेष प्रकाशमान मुख्य नक्षत्र अश्विनी देखा गया है । जिसका स्वरूप आगे के श्लोक में वर्णित है । इस प्रकार अभिजित सहित अश्विनी से रेवती तक २८ नक्षत्रों की प्रत्येक की संख्या जो देखी गई है—वह निम्न भांति बताई जा रही है—अश्विनी की ३, भरणी के ३, कृत्तिका के ६, रोहिणी के ३, मृग के ३, आर्द्रा का १, पुनर्वसु के ४, पुष्य के ३, आश्लेषा के ५, मघा के ५, पूर्वाफाल्गुनी के २, उत्तराफाल्गुनी के २, हस्त के ५, चित्रा का १, स्वाती का १, विशाखा के ४, अनुराधा के ४, ज्येष्ठा के ३, मूल के ११, पूर्वाषाढ़ा के १, उत्तराषाढ़ा के २, अभिजित के ३, श्रवण के ३, धनिष्ठा के ४, शततारा के १०० (अतएव शततारा नाम भी सार्थक है) पूर्वाभाद्रपदा के २, उत्तराभाद्रपद के २, और रेवती के ३२ तारा प्राचीनों को दृष्टिगोचर हुए थे ।

फलित ज्यौतिष में अश्विनी आदिक रेवती पर्यन्त की नक्षत्रों की संख्या ज्ञान का प्रयोजन भी "वाराह" और शौनक आचार्यों ने बताया है ।

जिस नक्षत्र में विवाह किया गया है, उस नक्षत्र की तारा संख्या तुल्य वर्षों में विवाह का शुभ या अशुभ फल होता है ।

ज्वर और अन्य प्रकार की व्याधियाँ जिस नक्षत्र में प्रारम्भ होती हैं उस नक्षत्र की तारा संख्या तुल्य दिनों तक व्याधि से क्लेश होता है । इत्यादि प्रयोजन "पीयूष" में स्पष्ट है ॥ ५८ ॥

अथाश्विन्यादीनामाकृतिमुपजात्या रथोद्धतया चाह—

अश्व्यादिरूपं तुरगास्ययोनिक्षुरोऽन एणास्यमणिर्गृहं च ।
पृषत्कचक्रे भवनं च मञ्चः शय्याकरो मौक्तिकविद्रुमं च ॥ ५९ ॥
तोरणं बलिनिभं च कुण्डलं सिंहपुच्छगजदन्तमञ्चकः ।
त्र्यस्त्रि च त्रिचरणाभमर्दलो वृत्तमञ्चयमलाभमर्दलाः ॥ ६० ॥

पीयूषधारा—अश्व्यादिरूपमिति । तोरणमिति । अश्विन्यादीनां नक्षत्राणां रूपमाकृतिरुच्यते । (१) तत्राश्विन्यास्तुरगास्यमश्वमुखसदृशं रूपम् (२) भरण्या योनिर्भगस्तद्वद्रूपम् । (३) कृत्तिकाया नापितक्षुराकृतिः । (४) रोहिण्या अनः शकटरूपम् । (५) मृगस्य एणास्य हरिणमुखसदृशम् । (६) आर्द्राया मणिसदृशम् । (७) पुनर्वसोर्गृहतुल्यम् । (८) पुष्यस्य पृषत्को बाणस्तत्सदृशम् । (९) आश्लेषायाश्चक्राकारम् । (१०) मघाया भवनं गृहसदृशम् । (११) पूर्वाफाल्गुन्या मंचः खट्वा, तदाकारम् । (१२) उत्तराफल्गुन्याः

शय्याकारम् । (१३) हस्तस्य हस्ताकारम् । (१४) चित्राया मौक्तिकारम् । (१५) स्वात्याः प्रवालौपम्यम्(१६) विशाखायास्तोरणाकारम् । (१७) अनुराधाया बलिर्भक्तपुंजस्तद्वाकाकारम् । (१८) जेष्ठायाःकुण्डलाकृतिः । (१९) मूलस्य सिंहपुच्छाकारम् । (२०) पूर्वाषाढाया गजदन्तसदृशम् । (२१)उत्तराषाढाया मंचकसदृशम् । (२२) अभिजितस्त्रिकोणाकारम् । (२३) श्रवणस्य त्रिविक्रमस्त्रिचरणो वामनस्तस्वरूपम्। (२४) धनिष्ठाया मर्दलसदृशम् । (२५) शततारकाया वृत्तं वर्तुलम् । (२६) पूर्वाभाद्रपदाया मंचसदृशम् । (२७) उत्तराभाद्रपदाया यमलाभम् । (२८) रेवत्या मर्दला-कारम् । एषामेवं स्वरूपमित्यर्थः । उक्तं च रत्नमालायाम्—

'तुरगमुखसदृशं योनिरूपं क्षुराभं शकटसममथैणस्योत्तमाङ्गेन तुल्यम् ।
मणिगृहशरचक्राभानि शालोपमाभं शयनसदृशमन्याच्चात्र पर्यंकतुल्यम् ॥
हस्ताकारमतश्च मौक्तिकसमं चान्यत्प्रवालोपमं धिष्ण्यं तोरणावस्थित बलिनिभं सत्कुण्डलाभं परम् । क्रुध्यत्केसरिणः क्रमेण सदृशं शय्यासमानं परं चान्यद्दंतिविषाणवत्स्थितमतः शृङ्गाटकव्यक्ति च ॥
त्रिविक्रमाभं च मृदङ्गरूपं वृत्तं ततोऽन्यद्यमलद्वयाभम् ।
पर्यङ्करूपं मुरजानुकारि चेत्येवमश्व्यादिभचक्ररूपम् ॥' इति ॥५५-६०॥

पीताम्बरा—आकाश में अश्विनी आदिक नक्षत्रों का स्वरूप जैसा दिखाई देता है वह इस प्रकार का बताया जा रहा है—अश्विनी का स्वरूप घोड़े के मुख के सदृश है। भरणी की आकृति भगाकार, कृत्तिका की आकृति छुरे की तरह, रोहिणी की गाड़ी की, मृगशीर्ष हरिण के मुख की ,आर्द्रा का मणि, पुनर्वसु का घर के सदृश, पुष्य का बाण, आश्लेषा की चक्र, मघा की भवन, पूर्वाफाल्गुनी का मंच, खट्वा, उत्तराफाल्गुनी का शय्या के आकार, हस्त का हाथ के आकार का, चित्रा का मौक्तिकाकार, स्वाती का मूंगा सदृश, विशाखा का तोरणाकार, अनुराधा का (वलिभुक्त पुंज) भात की तरह, ज्येष्ठा की कुण्डलाकृति, मूल की सिंह पुच्छाकार, पूर्वाषाढ़ा की हाथीदांत सदृश, उत्तराषाढ़ा की मंच सदृश, अभिजित् का त्रिकोणाकार, श्रवण का त्रिचरण वामनपुरुष, घनिष्ठा का मृदंग सदृश, शततारा का वृत्ताकार, पूर्वाभाद्रपदा का मंच सदृश, उत्तराभाद्रपदा का जुड़े हुए दो आदमियों की तरह और रेवती का मृदंग के सदृश का आकार है ॥५९॥६०॥

अथ जलाशयारामदेवप्रतिष्ठामुहूर्त्तं सपादोपजातिकया तत्र च सामान्यतो लग्नशुद्धि देवताविशेषाणां लग्नविशेषं च पादोनोपजातिकाभ्यामाह—

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा सौम्यायने जीवशशाङ्कशुक्रे ।
दृश्ये मृदुक्षिप्रचरध्रुवे स्यात् पक्षे सिते स्वर्क्षतिथिक्षणे वा ॥६१॥
रिक्तारवर्जे दिवसेऽतिशस्ता शशाङ्कपापैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैः ।
व्यष्टान्त्यगैः सत्खचरैर्मृगेन्द्रे सूर्यो घटे को युवतौ च विष्णुः ॥६२॥
शिवो नृयुग्मे द्वितनौ च देव्यः क्षुद्राश्चरे सर्व इमे स्थिरर्क्षे ।
पुष्ये ग्रहा विघ्नपयक्षसर्प-भूतादयोऽन्त्ये श्रवणे जिनश्च ॥६३॥

इति दैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्तचिन्तामणौ
नक्षत्रप्रकरणं समाप्तम् ॥२॥

पीयूष धारा—जलाशयेति । जलाशयोत्सर्गः आरामोत्सर्गश्च देवानां विष्णवादीनां प्रतिष्ठा वक्ष्यमाणप्रकारेणोच्यते । तत्र त्रयाणामपि सामान्यतो दिनशुद्धिरियं विचार्या । यथा— सौम्यायने उत्तरायणे मकरादिषड्राशिस्थिते सूर्ये सति तथा जीवशशांकशुक्रेषु दृश्यमानेषु सत्सु तथा मृदुगणक्षिप्रगणचगणध्रुवगणनक्षत्रेषु तथा सिते शुक्ले पक्षे स्वर्क्षतिथिक्षणे यस्य देवस्य प्रतिष्ठा कर्त्तुमिष्टा तस्य तत्स्वामिके नक्षत्रे तिथौ वा क्षणे मुहूर्ते वा । तथा रिक्तारवर्जे रिक्ताः पूर्वमुक्तास्तिथयः, आरो भौमः, एतान्वर्जयित्वान्यतिथिषु अन्यवारेषु च एवंविधेषु दिनेषु । जलाशयस्तडागादिः, आराम उपवनम्, सुरा देवास्तेषां प्रतिष्ठा क्रमेण कर्मार्हत्वोपभोगयोग्यत्व-पूजायोग्यत्वरूपातिप्रशस्ता विहितास्ति । तत्र दक्षिणायनगुर्वस्तशुक्रास्तचन्द्रास्तानां सामान्यतः शुभकार्येषु निषेधात् परिशेषतो गुरुशुक्रचन्द्रोदयोत्तरायणानि । दक्षिणायननिषेधः श्चौले वक्ष्यते । तत्र जलप्रतिष्ठायां दीपिका—

'मार्तण्डेन्दूडुशुद्धौ मुरजिदशयने माघषट्कस्य शुक्रे मूलाषाढोत्तराश्विश्रवणगुरुकरे पौष्णशक्राजचान्द्रे । मैत्रं ब्राह्मे च पूर्णामदनरवितिथौ सद्वितीमातृतीये कार्या तोयप्रतिष्ठा ज्ञगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने ॥'

इति । मुरजिद्विष्णुस्तस्याशयनं शयनाभावः विष्णुशयनव्यतिरिक्ते काले इत्यर्थः । 'देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठामुत्तरायणे । माघादिपंचमासेषु कृष्णेप्यापंचमीदिनम् ॥ दक्षिणे त्वयने कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात् ॥' इति । अत्र चोत्तरायणे जलं जलाशये स्थास्यतीत्येवं निश्चिते निषेधः । मत्स्यपुराणेऽपि–'चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माघवेऽपि वा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥ प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे ।" देवानामित्युप-लक्षणम् । तेन देवारामवाप्यादिप्रतिष्ठा शुभदेत्यर्थः । मकरसंक्रमण उत्तरायणपदेनोपलक्ष्यते । अतो मकरसंक्रमोत्तरः कालः शुभ उच्यते अन्यथा माघादिपंचक साक्षाद्विहितम्, उत्तरायणातिक्रमे हि दक्षिणायनसंग्रह इति तन्निषेधे उत्तरायणपदवैयर्थ्यान्यथानुपपत्त्यासर्वकालसंग्रहे वर्ज्याभावा-त्कालोपदेशानर्थक्यमापद्यते । उपलक्षणं च 'भविष्यत्ययने पुण्यमतीते चोत्तरायणे' इत्यर्थ दृश्यते यदा तु दक्षिणायन एव जलस्थितिसंभवस्तदा न कालनियमः । 'तत्र प्रमाणं सलिलं यत्' इति भविष्यत्पुराणोक्तेः । तत्रापि कार्त्तिकमासे शुभफलदसंक्रान्तौ वा शुभतिथौ मेषधनुः सिंहवर्जिते लग्ने वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठेति ध्येयम् । उक्तं च भविष्यत्पुराणे-—'तस्मिन् सलिलसम्पूर्णे कार्त्तिके च विशेषतः । तडागस्य विधिः कार्यः स्थिरनक्षत्रयोगतः' इति ।

अथ वापीकूपतडागारामप्रतिष्ठायां संक्रान्तिभेदेन फलानि—

अग्निपुराणे संक्रान्तिभेदेन फलभेदोऽभ्यधायि—

'वापीकूपतडागानां तस्मिन्काले विधिः स्मृतः । सुदिने शुभनक्षत्रे प्रतिष्ठा शुभदा स्मृता ॥ कर्कटे पुत्रलाभश्च सौख्यं तु मकरे भवेत् । मीने यशोऽर्थलाभश्च कुम्भे च सुबहूदकम् ॥ वृषे च मिथुने वृद्धिर्वृश्चिके च जलं भवेत् । पितृतृप्तिश्च कन्यायां तुलायां शाश्वती गतिः ॥ सिंहे मेषे धनुर्लग्ने लक्ष्मीश्च द्विज ! गच्छति ।' इति ।

देवप्रतिष्ठायां तु विशेष—

तत्र वसिष्ठः—'अथ प्रतिष्ठां कथयामि सम्यक्शिवस्य विष्णोरत्वथ वा परेषाम् ।सौम्यायने देवगरौ च शुक्रे संदृश्यमाने परिचारकाणाम् ॥' इति । शिवविष्णुग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम् ।

उग्रदेवानां दक्षिणायनेऽपि भवति—

अत्र सौम्यप्रकृतीनां देवानामुत्तरायणे स्थापनमुक्तम् । उग्रप्रकृतीनां तु दक्षिणायनेऽपि स्थापनं कार्यम्। तदुक्तं वैखानससंहितायाम्–'मातृभैरववाराहनारसिंहत्रिविक्रमाः। महिषासुरहन्त्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने ।।' इति । शैवसिद्धान्तशेखरे तु—श्रेष्ठोत्तरे-प्रतिष्ठा स्यादयने मुक्तिमिच्छताम् । दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः ।।' इत्युक्तम् । अत्र दक्षिणे तु मुमुक्षूणामित्यपि मातृभैरवेत्यादिपरतया योज्यम् । अन्यथा प्रतिपदं मासगणना वसिष्ठादिषु न युज्येत । यदाह वसिष्ठः—'मासे तपस्ये तपसि प्रतिष्ठा धनायुरारोग्यकरी च कर्तुः । चैत्रे महारुग्भयदा च शुक्रे समाधवे पुत्रधनाप्तये स्यात् ।।' इति । नारदोऽपि—'विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पञ्चसु इति । वसिष्ठः—

'आषाढमासादिचतुष्टयेऽपि कलत्रसन्तानविनाशदा स्यात् ।
ऊर्ज्जे च कर्तुर्निधनप्रदा च सौम्ये सपौषेऽखिलदुःखदा स्यात् ।।
वलक्षपक्षः शुभदः समस्तः सदैव तत्राद्यदिनं विहाय ।
अन्त्यत्रिभागं परिहृत्य कृष्णपक्षोऽपि शस्तः खलु पक्षयोश्च ।।
रिक्तावमत्यक्त दिनेष्वनिन्द्ययोगेषु वैनाशकवर्जितेषु ।
दिने महादोषविवर्जिते च शशाङ्कताराबलसंयुते च ।।' इति ।

नाशिकनक्षत्राणिसर्वत्रवर्ज्यानि

वैनाशिकनक्षत्राणि नारदेनोक्तानि—'जन्मभाद्दशमं कर्म सङ्घातर्क्षं च षोडशम् । अष्टादशः सामुदायं त्रयोविंशं विनाशभम् । मानसं पञ्चविंशर्क्षं नाचरेच्छुभमेषु तु' इति ।

प्रतिष्ठायां तिथयोऽपि—

तिथीनाह नारदः—'यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः। द्वितीयादिद्वयोः पञ्चम्यादितस्तिसृषु क्रमात् ।। दशम्यादिचतसृषु पौर्णमास्यां विशेषतः ।।' इति । मुख्यतिथ्यसम्भवे उक्ततिथौ स्थापनं कार्यमित्यर्थः ।

प्रतिष्ठायां दिनानि

वारानाह नारदः—'कुजवर्जितवारेषु कर्त्तुः सूर्ये बलप्रदे । चन्द्रताराबलोपेते पूर्वाह्णे शोभने दिने ।।' इति । प्रत्येकं वारफलमाह वसिष्ठः—'कीर्त्तिप्रदं क्षेमकरं कृशानुभयप्रदं वृद्धिकरं दृढं च । लक्ष्मीकरं सुस्थिरदं त्विनादिवारेषु संस्थापनमामनन्ति ।।' इति तत्र विवेकः । तत्र जलप्रतिष्ठार्थं दीपिकायामुक्तानि नक्षत्राणि अधुना आरामप्रतिष्ठार्थं नक्षत्राणि । देवप्रतिष्ठनक्षत्राणि–हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु । स्यादुत्तराधातृशशाङ्कभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं तत् ।।' इति । अथ षोडशभानि ध्रुवमृदुक्षिप्रलघुरूपाण्येवोक्तानि, तत्र ग्रन्थकर्त्रा जलशयारामसुरप्रतिष्ठानक्षत्राण्येव बहुधा तुल्यत्वादुक्तानि, द्वित्रीणि तु भिन्नानि तान्युक्तविशेषवचनेभ्योऽवसेयानीति । तत्र जलाशयारामयोर्निमित्यर्थं तन्मुहूर्त्तः प्रागुक्तः । देवताघटनमुहूर्त्तस्तु उच्यते मया । तत्र दीपिका—'ध्रुवलघुमृदुवर्गे वारुणे विष्णु दैवे मरुददितिधनिष्ठे शोभने वासरे च । त्रिदशमदनजन्मैकादशे (३ । १० । ७ । १ । ११)शीतरश्मौ विबुधसुकृतिरिष्टा नाडिनक्षत्रहीने ।' इति । नाडीनक्षत्राणि वैनाशिकनक्षत्राणि ।

अथ शशाङ्कपापैरिति—

जलाशयप्रतिष्ठायारामप्रतिष्ठायां च सुलग्नमात्रं विचार्यम्। देवप्रतिष्ठायां शशाङ्कश्चन्द्रः पापाः सूर्यभौमशनिराहुकेतवस्तैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैस्तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थितैरुपलक्षिते लग्ने तथा सत्खचरः सोमबुधगुरुशुक्रैर्व्ययष्टान्त्यगैरष्टमद्वादशव्यतिरिक्ताखिलस्थानस्थैः सद्भिर्देवप्रतिष्ठाति शस्ता। तदुक्तं रत्नमालायाम्–'केंद्रत्रिकोणभवमूर्तिषु सद्ग्रहेषु चन्द्रार्कभौमशनिषु त्रिषडायगेषु। सान्निध्यमेति नियतं प्रतिमासु देवः कर्त्तुः सुखार्थसुतसम्पदरोगता च। सौम्या लग्नाद्याश्रिता मूर्तिपूर्वा तावद्वीर्यैरुत्कटा वर्द्धयन्ति। षष्ठं हित्वा भावमेते हि तत्र शत्रुध्वस्तिं कर्त्तुरुत्पादयन्ति।।' इति। शनिग्रहणं राहुकेत्वोरप्युपलक्षणम्। यदाह वसिष्ठः—सूर्येन्दुभौमार्क्यहिकेतवश्च लग्नस्थिता नैधनदाश्च भर्त्तुः। सौम्यग्रहा लग्नगतास्तदैव ह्यायुर्बलारोग्यकराश्च नूनम्।।' इति। अन्यच्च तत्रैव—'सर्वे ग्रहा नैधनदास्त्वजस्रं सौम्या असौम्याः खलु मृत्युमंस्थाः' इति।

प्रसङ्गतो नवांशविचारः—

प्रसङ्गान्नवांशविचारः। तत्र स्थिरद्विस्वभावनवांशा ग्राह्या न चरांशाः। तत्रापि तुलांगः साधीयान्। यदाह वसिष्ठः—पञ्चेष्टके जीवशशाङ्कसूर्यमुख्यग्रहैः सौम्यनवांशयुक्तैः। लग्ने स्थिरे चोभयराशियुक्ते नवांशके चोभयगे स्थिरे वा' (उभयगे द्विस्वभावगे) 'चरोदये लग्नगते न कार्यं संस्थापनं नैष चरांशकेऽपि। चरोऽपि मुख्यः सकलांशकश्च सदा मृदुत्वात्सुर-सन्निवेशे।।' इति। मृदुत्वाच्छुभस्वामित्वात्। नारदोऽपि—'शुभलग्ने शुभांशे च कर्त्तुस्ते निधनोदये। राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः।।' इति।

वसिष्ठोक्तो लग्नदोषापवादः—

लग्नद्रौष्टयेऽपवादो वसिष्ठेनोक्तः—'एकोऽपि जीवो बलवांस्तनुस्थः सितोऽपि सोम्यो-प्यथवा बली चेत्। दोषानशेषान्विनिहन्ति सद्यः स्कन्दो यथा तारकदैत्यवर्गम्' इति। नारदः—'गुणाधिकतरे लग्ने दोषेऽत्यल्पतरे यदि। सुराणां स्थापनं तत्र कर्त्तुरिष्टार्थसिद्धिदम्' इति। मृगेन्द्र इति सूर्यो मृगेन्द्रे सिंहलग्ने स्थाप्यः, तथा को ब्रह्मा घटे कुम्भलग्ने, विष्णुर्युवतौ कन्या-लग्ने, शिवो महादेवो नृयुग्मे मिथुनलग्ने च, पुनर्द्वितनौ मिथुनकन्याधनुर्मीनलग्नेषु देव्यो दुर्गादक्षिणामूर्त्त्यादयः, चरे मेषकर्कतुलामकरलग्नेषु क्षुद्रा देव्यश्चतुःषष्टियोगिनीप्रभृतयः, सर्व इमे उक्ता अनुक्ताश्च देवा इत्यर्थः। उक्ता महादेवादयः, अनुक्ता इन्द्रादय, ते स्थिरर्क्षे वृषसिंहवृश्चिककुम्भलग्नेषु स्थाप्याः। यदाह श्रीपतिः—'सिंहोदये दिनकरो मिथुने महेशो नारायणश्च युवतौ घटभे विधाता। देव्यो द्विमूर्तिभवने च निवेशनीयाः क्षुद्राश्चरे स्थिरगृहे निखिलाश्च देवाः।।' इति। पुष्ये ग्रहा इति। ग्रहाश्चन्द्रादयोऽष्टौ पुष्यनक्षत्रे स्थाप्या इत्यर्थः। उपलक्षणं चैतत्। तत्र सूर्यस्य हस्तनक्षत्रे स्थापनं, महादेवब्रह्मणोः पुष्यश्रवणाभिजित्सु स्थापनं कुबेरस्कन्दयोरनुराधायाम्, दुर्गाप्रभृतीनां मूले स्थापनं, सप्तर्षीणां स्वाधिष्ठितनक्षत्रे, लक्ष्मीव्यास-वाल्मीक्यगस्त्यानामपि सप्तर्ष्याधिष्ठितनक्षत्रे स्थापनम्। उक्तं च रत्नमालायाम्—'पुष्यश्रुत्य-भिजित्सुरेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कन्दयोर्मैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम्।।' को ब्राह्म, तथा—

'सप्तर्षयो यत्र चरन्ति धिष्ण्ये कार्या प्रतिष्ठा खलु तत्र तेषाम् ।
श्रीव्यासवाल्मीकिघटोद्भवानां तथा स्मृता वाक्पतिभे ग्रहाणाम् ॥' इति ।

सप्तर्षयस्तु—कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥'

इति स्मृतेस्ते यस्मिन् नक्षत्रे सञ्चरन्तो दृश्यन्ते तस्मिन्नक्षत्रे तेषां स्थापनम् । श्रीव्यासवाल्मीकिघटोद्भवानां तथा सप्तर्ष्यधिष्ठितनक्षत्रे, ग्रहाणां वाक्पतिभे पुष्ये घटोद्भवोऽगस्त्यः । विघ्नपो गणेशः, यक्षो देवयोनिः, सर्पा वासुक्यादयः, भूतो देवयोनिः ।

'विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः। पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥'

इत्यभिधानात् । आदिशब्देन राक्षसासुरमथनसरस्वतीप्रभृतयो गृह्यन्ते । ते रेवत्यां स्थाप्याः तथा च श्रवणे श्रवणनक्षत्रे जिनो बुद्धः स्थायः । उपलक्षणं चैतत् । इन्द्रकुबेरवर्जितानां लोकपालानां धनिष्ठायां स्थापनम्। इतोऽवशिष्टानां देवानां त्र्युत्तरारोहिणीषु स्थापनं स्यादित्यर्थः। एतदप्युक्तं रत्नमालायाम्—

'गणपरिवृढरक्षोयक्षभूतासुराणां प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे ।
श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमखिलानां स्थापनं हि स्थिरेषु ॥' इति ।

परिवृढः स्वामी । प्रभौ परिवृढः, इति साधुः गणपरिवृढो गणेशः' । प्रमथा महादेवस्य परिषदाः । श्रवसि श्रवणनक्षत्रे । सुगतो बुद्धः । 'सर्वज्ञः सुगतो बुद्धः' इत्यमरः । स्थिरेषु रोहिण्युत्तरास्वित्यर्थः ॥ ६१–६२–६३ ॥

नक्षत्रप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—इति श्रीदैवज्ञानन्तेति । इदं पूर्ववद्व्याख्येयम् ।
ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे व्याख्याने तिथिवारभप्रकरणं सम्पूर्णतामध्यगात् ।१।

इति श्रीविद्वद्दैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां मुहूर्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां तिथिवारनक्षत्रप्रकरणं समाप्तम् ॥२॥

■

पीताम्बरा—जलाशय, तालाब, तडाग, वापी, कूप, पोखरा, डेम आदिक उद्यान (उपवन) और देवताओं की प्रतिष्ठा के शुभ समय बताए जा रहे हैं—उत्तरायण सूर्य (मकरादि से मिथुनान्त तक) में, वृहस्पति, शुक्र और चन्द्रमा दिखाई देते हों (अस्त न हों), मृदु, क्षिप्र, चर और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों के साथ शुक्लपक्ष में, रिक्ता तिथि और मंगल वार को छोड़ कर शेष तिथिवारों में चन्द्रमा और पापग्रह ३–६–११ वें स्थानों में हों, अष्टम और द्वादश रहित शुभ ग्रहों की स्थिति के समय जलाशय उपवन और देव प्रतिष्ठा के मुहूर्त उत्तम कहे गए हैं ।

जिस देवता की स्थापना करनी हो उस देवता की उसकी तिथि, उसके नक्षत्र और उसके मुहूर्त में भी स्थापना की जा सकती है । जैसे–शिव की स्थापना, शिव की तिथि चतु-

दशी में भी हो सकती है। उग्रप्रकृतिक देवताओं की स्थापना दक्षिणायन में भी की जा सकती हैं जैसे भैरव, वाराह, नरसिंह आदिक।

सिंह लग्न में सूर्य की, ब्रह्मा की स्थापना कुम्भ लग्न में, कन्या लग्न में विष्णु, मिथुन लग्न में भगवान् इष्टदेव श्री साम्बशिव, मिथुन, कन्या, धनु और मीन लग्नों में श्रीइष्टदेवी दुर्गा, दक्षिणामूर्ति आदिक, चरलग्न में (क्षुद्र देवता चतुःषष्टि योगिनी आदिक उक्त अनुक्त देवताओं को भी) स्थापित करना चाहिए।

चन्द्रादिक आठ ग्रहों की स्थापना पुष्य नक्षत्र में करनी चाहिए। तथा विद्याधर, अप्सरा, यक्ष राक्षस गन्धर्व किन्नर पिशाच गुह्यक सिद्ध भूत आदिक देवयोनियों की स्थापना रेवती नक्षत्र में करनी चाहिए।

श्रवण नक्षत्र में 'जिन' देवता की स्थापना करनी चाहिए। "जिनो बुद्धः" से पीयूषकार ने अमरकोष का प्रमाण देकर (सर्वज्ञः सुगतो बुद्धः, इत्यमरः।) जिन शब्द का अर्थ बुद्ध किया है। जैनों के देवता का नाम भी वस्तुतः जिन देवता हैं। जिन शब्द का अर्थ ज्योतिष में अंक संख्या ज्ञान के लिए २४ कहा गया है। १४४२ शकाब्द में ग्रहलाघवकार श्रीगणशदैवज्ञ ने, "लिप्ता जिनाश्च", तथा पूर्ववर्ती आचार्यों में भास्कराचार्य प्रभृतियों ने "जिनाधिकाक्ष देशे" इत्यादि कथन से जिन शब्द का अंकबोधक अर्थ २४ ही माना है। इसलिए कि जैन सम्प्रदाय में आज तक पार्श्वनाथ प्रभृतिक २४ महापुरुष (देवता) अवतरित हुए हैं। वास्तव में जैन और बौद्ध ये दोनों भिन्न सम्प्रदाय हैं। भगवान् बुद्ध प्रवर्तित बौद्ध दर्शन और भगवान् महावीर आदि प्रवर्तित जैन दर्शन का भारतीय संस्कृति में उल्लेखनीय महत्व का अपना एक विशिष्ट स्थान है। ॥ ६१–६२–६३ ॥

इति श्री पीयूषधारा सहित मुहूर्तचिन्तामणि की, "जुनायल" ग्रामस्थ पर्वतीय श्री पं० हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज श्री केदारदत्त जोशी (श्री काशी) कृत हिन्दी "पीताम्बरा" व्याख्या का तिथि-वार-नक्षत्र प्रकरण सम्पन्न ॥ २ ॥

■

अथ संक्रान्तिप्रकरणम्–३

गौरीनन्दनमिष्टसिद्धिसदनं विघ्नावलीभेदनं,
नत्वा ज्योतिषिकाख्यरामरचिते मौहूर्त्तचिन्तामणौ।
गोविन्दो बुधनीलकण्ठविधिवित्सूनुः सतामग्रणी-
र्वह्वर्थं खलु सङ्क्रमप्रकरणं व्याख्याति विद्वन्मुदे॥

सङ्क्रान्तिप्रकरणं व्याख्यायते। तत्र ग्रहाणां प्राग्राशितोऽपरराशौ सङ्क्रमणं सङ्क्रान्तिरिति संक्रान्तिलक्षणम्। सा च द्विविधा मध्यमा स्पष्टा च। षट्कर्मसंस्कृतो मध्यमग्रहो राश्यन्तरं यदा सङ्क्रामति सा मध्या सङ्क्रातिरुच्यते। यदा तु स्पष्टीकृतसंस्कारविशिष्टो ग्रहो राश्यन्तरं गच्छेत्सा स्पष्टसङ्क्रान्तिरुच्यते। मध्यममानस्य स्पष्टीकरणार्थकत्वादेव तज्जनितसंस्कारानुपयोगादत्र तत्त्यागे स्पष्टसङ्क्रान्तिरेव गृह्यते सापि द्विविधा—सायनांशा निरयनांशा

चेति । तत्र यदा सिद्धान्तगणनागतायनांशसंस्कृता ग्रहा राश्यन्तरगमनमुररीकुर्वते सा सायनांशा
सङ्क्रान्तिरुच्यते, यदा त्वयनांशसंस्कारहिता ग्रहा राश्यंतरगास्तदा निरयनांशा सङ्क्रान्तिरुच्यते ।

तत्रान्यासां चन्द्रादिसङ्क्रान्तीनां तु 'देवद्वयं कर्तवोष्टाष्टौ नाड्योंकाः खनृपाः क्रमात् ।
वर्ज्याः सङ्क्रामणेऽर्कादेः प्रायोऽऽर्कस्यातिनिन्दिताः ॥' इति वर्ज्यघटीत्वमेव विवाहप्रकरणे
वक्ष्यति । न फलकथने आसां सङ्क्रान्तीनां कश्चिदुपयोगः । सूर्यसङ्क्रान्तीनां तु नक्षत्रवारसमय-
भेदेन ववादिकरणभेदेन च शुभाशुभफलकथनयोग्यता पुण्यकालता सङ्क्रान्तिविशेषे वर्ज्यघटी-
न्यूनाधिकभावश्चास्तीत्यतो बहुवक्तव्यत्वात्स्वतन्त्रमेव सूर्यसङ्क्रान्तिप्रकरणमारिप्सुर्नक्षत्रवारभेदेन
फलं तावत्सार्धवसन्ततिलकयाह—

घोरार्कसङ्क्रमणमुग्ररवौ हि शूद्रान् ध्वाङ्क्षी विशो लघुविधौ च चरर्क्षभौमे ।
चौरान् महोदरयुता नृपतीन् ज्ञमैत्रे मन्दाकिनी स्थिरगुरौ सुखयेच्च मन्दा ॥१॥
विप्रांश्च मिश्रभभृगौ तु पशूंश्च मिश्रतीक्ष्णार्कजेऽन्त्यजसुखा खलु राक्षसी च ।

पीयूषधारा—घोरेति । अर्कस्य सूर्यस्य सङ्क्रमणनिरयनांशा सङ्क्रान्तिरुग्ररवावुग्रसञ्ज्ञ-
कनक्षत्रे रविवारे स्यात्तदा घोरेति नाम्नी, सा शूद्रान्सुखयेत्सुखमुत्पादयेत्तेषाम् । अत्रार्कसङ्क्र-
मणमिति पदोपादानसामर्थ्यात्सूर्यसङ्क्रान्तिष्वेवायं विचारो नाखिलग्रहसङ्क्रान्तिष्विति फलि-
तोऽर्थः । ननूग्ररवावित्यत्र सप्तम्यन्ते द्वन्द्वसमासोऽस्ति । स किमितरेतरयोगद्वन्द्वः समाहारद्वन्द्वो
वा । नाद्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वस्योद्भूतावयवत्वाद्द्विवचनान्तता स्यात्तथासत्युग्ररव्योरिति
भवितव्यम् । उग्रनक्षत्राणां बहुत्वादुग्ररविष्विति बहुवचनान्तता च स्यादिति केचिदाहुः । उभय-
थापि पाठे छन्दोभङ्गदोषः प्राप्नोति । न द्वितीयः । समाहारद्वन्द्वस्य 'सर्वो द्वन्द्वो विभाषैकव-
द्भवति इत्येकवद्भावविधानात् । 'स नपुंसकम्' इति नपुंसकलिङ्गतायां सत्यां समाहारस्यैकत्वा-
देकवचनं ङिस्तस्मिन्परतः 'इकोऽचि विभक्तौ' इति नुमागमे उग्ररविणीति स्यात् । तादृशपाठेऽपि
छन्दोभङ्गदूषणम् । अत्र समाधिः—इतरेतरयोगद्वन्द्वोऽत्र न कार्यः, किन्तु समाहारद्वन्द्वः कार्यः ।
तथाहि 'स्तोश्चुना श्चुः' इत्यत्र सूत्रे स्तोरिति ज्ञापकादागमशासनस्यानित्यत्वावगतेर्नुमभावे
'अच्च घेः' इत्यौत्वे अत्वे च सिद्धमुग्ररवाविति । अथवोग्रैः सहितो रविरुग्ररविरिति । शाक-
पार्थिवादेराकृतिगणत्वान्मध्यमपदलोपी तत्पुरुषः समासः । ततः सप्तम्येकवचने पूर्ववत्सिद्धमि-
ष्टम् । अतश्छन्दोभङ्गाभावोऽपि सिद्धः । एवं लघुविधावित्यादावपि समाधेयम् । अनेनैवाशयेन
'मर्यादाभिविधौ च यः, इति काशिकाप्रयोगोपपत्तिरित्यलमतिप्रसङ्गेन । लघुनक्षत्रे विधौ चन्द्र-
वारे वा सूर्यसङ्क्रान्तिर्ध्वाङ्क्षीनाम्नीविशो वैश्यान्सुखयेत्, चरर्क्षे चरनक्षत्रे भौमे मङ्गलवारे वारे
वा संक्रान्तिर्महोदरयुता महोदरानाम्नी चौरान्सुखयेत्, ज्ञे मैत्रे बुधे मैत्रसञ्ज्ञकनक्षत्रे वा संक्रा-
न्तिर्मन्दाकिनीनाम्नी नृपतीन् राज्ञः सुखयेत्, स्थिरनक्षत्रे गुरुवारे वा संक्रान्तिर्मन्दानाम्नी विप्रा-
न्सुखयेत्, मिश्रनक्षत्रे भृगुवारे वा संक्रान्तिर्मिश्रानाम्नी पशून् सुखयेत्, तीक्ष्णनक्षत्रे अर्कजे
शनिवारे वा संक्रान्तिः खलु निश्चयेन राक्षसीनाम्नी अन्त्यजांश्चाण्डालान् सुखयतीत्यन्त्यजमुखा
स्यादित्यर्थः । यदाह कश्यपः—

घोराध्वांक्षीमहोदर्यो मन्दा मन्दाकिनी तथा । मिश्रा राक्षसिका सूर्यसंक्रान्तिश्चार्कवासरात् ॥

वसिष्ठः—"घोरोग्रर्क्षे ध्वांक्षी लघुभे चरभे महोदरी मृदुभे ।
मन्दाकिनी चरर्क्षे मन्दा मिश्रे च राक्षसी तीक्ष्णे ॥'

अत्र छन्दोभङ्गस्त्वार्षः । देवीपुराणे—'मन्दा ध्रुवेषु विज्ञेया मृदौ मन्दाकिनी तथा । क्षिप्रे ध्वाक्षी विजानीयादुग्रे घोरा प्रकीर्त्तिता ।। चरैर्महोदरी ज्ञेया क्रूरैरुग्रैस्तु राक्षसी । मिश्रिता चैव विज्ञेया मिश्रैर्ऋक्षैस्तु संक्रमे ।।' इति । रत्नमालायाम्—'उग्रक्षिप्रचरमित्रध्रुवमिश्राख्य-दारुणैः ऋक्षैः संक्रान्तिरर्कस्य घोराद्या क्रमशो भवेत् ।। नारदकश्यपौ—शूद्रतस्करवैश्यक्ष्मादेव-भूपगवां क्रमात् । अनुक्तानां च सर्वेषां घोराद्याः सुखदाः स्मृताः ।।' क्ष्मादेवाः ब्राह्मणाः, अनुक्तानां चाण्डालादीनाम् । ननूक्तं वक्ष्यमाणं वा शुभाशुभफलं सायनांशसंक्रान्तितः कुतो न विचार्यत इति चेत्, उच्यते, सायनांशसंक्रान्तेः स्नानदानजपादावेव कार्यं न सर्वत्र । यदाह पुलस्त्यः—'स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मसु । सुकृतं चलसंक्रान्तावक्षयं पुरुषोऽश्नुते ।।' इति । चलसंक्रमः सायनांशसंक्रान्तिः अतश्चलसंक्रान्तेः परिगणितस्नानादिकविषयत्वादेव कृत्यान्तरेषु विवाहादिशुभकर्मसु संक्रान्तिमासाङ्गीकारे शुभाशुभफलकथने च नास्या उपयोग इति युक्तमुत्पश्यामः । इदं चाग्रे सम्यक्तया निर्णेष्यते ।। १ ।।

पीताम्बरा—नक्षत्र, बार, करण और समय, भेद से, संक्रान्तियों का शुभाशुभ फल और स्नानदान जप आदिक के लिए पुण्यकाल बताये जा रहे हैं—कुछ ध्यान देने योग्य आवश्यक विचार है कि–ग्रहों का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश समय का नाम संक्राति काल है । इस प्रकार सभी ग्रहों की १२ संक्रान्तियाँ होती हैं । सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि की संक्रान्तियों में क्रमशः संक्रान्ति समय से पूर्व और पर की ३१, २, ९,६, ८८, ९ और १६० घटिकाएँ शुभकार्य में वर्जित कही गई हैं । सूर्य-संक्रान्ति की पूर्वापरकी क्रमशः १६।०० घटिकाएँ शुभ कार्यों में विशेष वर्जित हैं । यह विषय सभी ग्रहों की संक्रान्तियों के लिए साधारण रूप से वर्जित है । किन्तु यहाँ पर संक्रान्ति प्रकरण में सूर्य की ग्रह की ही बारहों संक्रान्तियों का मुख्यतया विशेष विवेचन किया गया है । क्योंकि सौर मास सूर्य संक्रान्तिवश होता है, तदनुसार वर्ष, ऋतु, अयन, कुम्भमकरादिक पर्व सब सूर्यसंक्रान्ति से सम्बन्ध रखते हैं तथा प्रत्येक सूर्य की संक्रान्ति में स्नान दान पुण्यकाल आदिक मुख्यकाल का विवेचन धर्मशास्त्र में सूर्य संक्रान्ति का ही मिलता है । इसलिए इस प्रकरण में सूर्य संक्रान्तियों के शुभाशुभ विचार और पुण्यकाल का विवेचन आचार्य ने किया है ।

संक्रान्तियाँ दो प्रकार की होती हैं । एक सायन और दूसरी निरयण । अयनांशयुक्त स्पष्ट सूर्य की संक्रान्ति को सायन सूर्य संक्रान्ति या दृश्य संक्रान्ति कहते हैं । अभी तक धर्मशास्त्र और फलित ज्योतिष निरयण सूर्य संक्रान्ति को ही मान्यता देते आ रहे हैं ।

गणित स्कन्ध में उपपत्तिमान को ही आगम कहा गया है । प्रायः ४४४ शकाब्द में अयनांश का मान शून्य था । तब से आज सं० २०२८ चैत्रशुक्ल पूर्णिमा तक अयनांश का सही मान २२°।२६'।२४" यही दृश्य गणित से आता है । प्राचीनों को अयनांश का ज्ञान था जो ईसवी ५.६ शतक में विशेष हुआ था । उस समय अयनांश की परमाल्पता थी । तत्पश्चात् के आचार्यों ने इसपर प्रकाश डालना प्रारम्भ किया । सूर्य सिद्धान्त के मत से अयनांश सर्वाधिक २७° पूर्व-चलित होकर पुनः धीरे-धीरे कम होता पुनः लौटकर सृष्टि के आरम्भ सम्पात विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्त के सम्पात पर आकर शून्य हो जाता है । फिर गुरुत्वाकर्षण पश्चिम की तरफ २७° परम चलकर पुनः लौट कर स्थिर सम्पात पर आ जाता है इस। एककार ०····२७° + २७°···· ०····०°····२७° + २७°····० = १०८ अंश चलन से अयनांश का भगण १०८° का होता है ।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार सं० २०२५ चैत्र शुक्ल पूर्णिमा शनिवार तक (ता० १३ अप्रैल, १९६८ को सृष्टि के आरम्भ दिन से ७१४४०४१४८१२२ दिन होते हैं। तदनुसार सूर्य सिद्धान्त ग्रन्थ की प्रणाली से $\frac{\text{६००।।७१४४०४१४८१२२}}{\text{१५७७९१७८२८}}$ = अयनांश के भगण = २७१६५० पूरे होकर राश्यादिक भगण शेष ८।१३।२६।५९ होता है। इस राश्यादिक भगणशेष अयनांश का भुज = २।१३।२६।५९। अयनांश गणित सिद्धान्त से $\frac{\text{भुज} \times \text{२७}}{\text{९०}} = \frac{\text{भुज} \times \text{३}}{\text{१०}}$ = अयन

भाग = $\frac{(\text{२।१३।२६।५९}) \times \text{३}}{\text{१०}} = \text{२२}^\circ\text{।२}'\text{।५७}''$ यह होता है।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार प्रतिवर्ष की अयनांश गति ५४'' (चौवन) विकला और आधुनिक गणित से सूक्ष्म गति से ५०''·२ (पचास दशमलव दो) विकला ग्रहलाघवादि ग्रन्थों से १' एक कलाय ५८'' विकला इत्यादि है। किन्तु सूर्यसिद्धान्त मत के पञ्चांगों में उस दिन अयनांश २३।१८।१७ कैसे दिया होगा ?

नवीन गणितज्ञों के अनुसार—अयनांश प्रतिवर्ष एक ही दिशा पश्चिम में चल कर प्रायः २६००० वर्षों में पुनः अपनी जगह पर स्थिर सम्पात में आता है। निःसन्देह इस समय यही अयनांश प्रामाणिक हो गया है और सभी पंचांगकारों से सम्मति भी पा चुका है। २७°—२३° = ४° = २४० कला का समय ग्रहलाघव के स्थूल मत से एक वर्ष में अयनांश गति १ कला मान कर २४० वर्ष आगे लगभग विक्रम संवत् २०२८ + २४० = २२६८ सं० से भी आगे सूक्ष्म गणित से २०८० विक्रम संवत् या ईसवी सन् २०१० में सूर्यसिद्धान्त का आन्दोलन पक्ष गलत सिद्ध होगा या जो भी होगा उस समय ही अयनांश के सही निर्णय में भारतीय प्राचीन परम्परा के ग्रहगणितज्ञों को अवश्य सुविधा होगी। अवश्य उस समय सही बात सामने आवेगी और विवाद समाप्त होगा।

इस समय निरयण पद्धति से ही फलित ज्योतिष को मान्यता दी जा रही है अतः ग्रहगणित में सही अयनांश को त्याग देने से तो कदापि कार्य नहीं चलेगा, सही पचांङ्ग नहीं बनेंगे। ज्यौतिष फलित की मूलभिति क्रान्ति दिनमान चर, लग्न आदिकों का साधन तो सही अयनांशवश ही सभी करते आ रहे हैं जो सर्वथा गणित सम्मत है।

सही अयनांश से साधित सायन स्पष्ट लग्न सहित सूर्यादि ग्रह स्पष्टों में इस समय अयनांश कम कर निरयण लग्न और निरयण ग्रहों से फलित और धर्मशास्त्र का समन्वय किया जा रहा है—

तदनुसार—उग्रसंज्ञक नक्षत्रों या रविवार के दिन सूर्य की संक्रान्ति हो उसका नाम घोरा होता है यह संक्रान्ति शूद्रवर्ण के मानवों के लिए सुखद होती है।

लघुसंज्ञक नक्षत्रों, सोमवार की संक्रान्ति का नाम ध्वांक्षी और वैश्यों को सुखद होती है।

चरनक्षत्रों और मंगलवार की संक्रान्ति का नाम महोदरी है जो चोरों के हित में होती है।

मैत्रसंज्ञक नक्षत्रों बुधवार की सक्रान्ति का नाम मन्दाकिनी क्षत्रियों के लिए सुखद होती है।

स्थिर संज्ञक नक्षत्रों और गुरुवार के दिन की संक्रान्ति मन्दा नाम की ब्राह्मणों के लिए हिताय होती है।

मिश्रसंज्ञक नक्षत्र और शुक्रवार की संक्रान्ति का मिश्रा नाम पशुओं के लिए और तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्रों शनिवार की संक्रान्ति का नाम राक्षसी जो चाण्डालों के हित में होती है।

यहाँ पीयूषधारा में संशय के साथ साथ उसका निराकरण करते हुए कहा है "कि संक्रान्ति के आधार पर किया गया शुभाशुभफल सायन संक्रान्ति से ही क्यों नहीं विचारा जाय ? शंका का समाधान भी किया है कि सायन संक्रान्ति का मुख्य प्रयोजन स्नान दान और जपादि में ही किया जा सकता है धर्म कृत्य में सायन संक्रान्ति सर्वत्र अग्राह्य है।

यहाँ पर पुलस्त्य के वचन का भी उल्लेख किया गया है "कि स्नानदानजपश्राद्धव्रत होमादि कार्यों में किए गए सायन संक्रान्ति का व्यवहार अक्षय पुण्य लाभाय होता है।" इत्यादि से चल या सायन संक्रान्ति में उक्त परिगणित धर्म कार्यों के अतिरिक्त उपनयन, विवाहादिक शुभ कर्मों में निरयण संक्रान्ति ही गृहीत होती है। यह विषय आगे और स्पष्ट होगा ॥१॥

अथ दिनरात्रिविभागेन संक्रांत्यशुभफलमुत्तरायणदक्षिणायनसंज्ञां च सार्द्धवसंततिलकयाह—

त्र्यंशे दिनस्य नृपतीन् प्रथमे निहन्ति मध्ये द्विजानपि विशोऽपरके च शूद्रान् ॥२॥
अस्ते निशाप्रहरकेषु पिशाचकादीन् नक्तंचरानपि नटान् पशुपालकांश्च ।
सूर्योदये सकललिङ्गिजनं च सौम्ययाम्यायनं मकरकर्कटयोर्निरुक्तम् ॥३॥

पीयूष धारा—त्र्यंश इति। अत्रार्कसंक्रमणमित्यनुवर्त्तते। दिनप्रमाणं त्रिभिर्भक्तं घटचात्मकस्तृतीयांशो भवति। तत्र दिनस्य प्रथमत्र्यंशेऽर्कसंक्रमणं नृपतीन् हन्ति; मध्ये द्वितीयत्र्यंशे द्विजान् ब्राह्मणान् हन्ति, अपरके तृतीयत्र्यंशे वैश्यान् हन्त्येवं सर्वत्र व्याख्येयम्। अस्ते सूर्यास्तसमयेऽर्कसंक्रमणं शूद्रान्। अथ रात्रिसंक्रान्तिफलम्। तत्र रात्रिप्रथमप्रहरे पिशाचकादीन्, आदिशब्देन भूतादीन्, द्वितीयप्रहरे नक्तंचरान् राक्षसान्। तृतीयपहरे नटान् नर्त्तकान्, चतुर्थप्रहरे पशुपालकान् आभीरान्, सूर्योदयसमयेऽर्कसंक्रमणं सकललिङ्गिजनं पाखण्डादिकं हन्तीत्यर्थः। 'पाखण्डाः सर्वलिङ्गिनः' इत्यभिधानात्। यदाहतुर्नारदकश्यपौ—

'पूर्वाह्णे नृपतीन्हन्ति विप्रान्मध्यदिने विशिः। अपराह्णेऽस्तगे शूद्रान्प्रदोषे च पिशाचकान् ॥
निशि रात्रिचरान्नाटचकारानपररात्रके। गोचारिणश्च सन्ध्यायां लिङ्गिनं रविसंक्रमे ॥' इति।

संक्रान्तिफलं क्रूरसौम्यवारभेदेन—

संक्रान्तेः क्रूरसौम्यवारपरत्वेन फलविशेषमाह वसिष्ठः—

'रविरविजभौमवारे संक्रान्तौ दिनकरस्य तन्मासे।
पित्तकफानिलजामयनरपतिकलहं त्ववृष्टिश्च ॥
वुधगुरुसितचन्द्राह्वे सति संक्रान्तावनामयं नृणाम्।
क्षितिपतिनिकरक्षेमं सस्यविवृद्धिर्विधर्मिणां पीडा ॥' इति।

नक्षत्रभेदेन मेषसंक्रान्तिफलम्—

अत्र मेषसंक्रान्तौ विशेषमाह कश्यपः—

'यदा मेषगतः सूर्यो भरण्यादिचतुष्टये। सस्यवृद्धिर्भवेत्तस्य वृद्धिरार्द्राचतुष्टये ॥
मघादिदशके हानिः क्षेमं चानुक्तभेषु च ॥'

अस्यार्थः—यस्मिन्दिने मेषसंक्रमस्तद्दिने चन्द्रो यदि भरण्यादिनक्षत्रचतुष्टये स्यात्तदा सस्यवृद्धिः एवमग्रेऽपि व्याख्येयम्।

अथ जन्मनक्षत्रे संक्रान्तिफलम्—

जन्मनक्षत्रे संक्रान्तिफलं दीपिकायाम्—

'यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसङ्क्रमणं भवेत्। तन्मासाद्यन्तरे तस्य रोगः क्लेशो धनक्षयः ॥'इति।

तत्र शान्तिकर्मापि दीपिकायामुक्तम्—

'तगरसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः ।
स्नानञ्जन्मन्यृक्षे रविसंक्रान्तौ नृणां शुभदम् ॥

अथ वारनक्षत्रवशेन संक्रान्तिनामानि

वाराः	नक्षत्राणि	नामानि	फलानि—
रविः	पूफा, पूषा, पूभा, भ, म	घोरा	शूद्रान्सुखयेत् ।
चन्द्रः	अश्वि, पुष्य, अभि, ह,	ध्वांक्षी	वैश्यान् सुखयेत् ।
भौमः	स्वा, पुन, श्र, ध, श,	महोदरी	चौरान् सुखयेत् ।
बुधः	मृ, चि, अनु, रे,	मन्दाकिनी	नृपतीन् सुखयेत् ।
गुरुः	उफा, उषा, रो,	मन्दा	विप्रान् सुखयेत् ।
शुक्रः	विशाखा, कृत्तिका,	मिश्रा	पशून् सुखयेत् ।
शनिः	आर्द्रा, आश्ले, ज्ये, मू,	राक्षसी	अंत्यजान् सुखयेत् ।

कालविभागेन फलम्	अह्नः	प्रथमभागे	नृपतीन् हन्ति
		द्वितीयभागे	द्विजान्हन्ति
		तृतीयभागे	वैश्यान् हन्ति
		प्रथमयामे	पिशाचान् हन्ति
	रात्रेः	द्वितीययामे	राक्षसान् हन्ति
		तृतीययामे	नटान् हन्ति
		चतुर्थयामे	पशुपालकान् हन्ति
	अस्तकाले प्रवेशे		शूद्रान् हन्ति
	उदयकाले संक्रमणप्रवेशे		पाखण्डादीन् हन्ति

संक्रान्तिषु वृष्टौ फलम्—

सङ्क्रान्तिषु वृष्टौ जातायां फलमुक्तं वसिष्ठेन—'अजकन्याझषकर्किणि सङ्क्रान्तौ यदि भवेद्वर्षम् । अतुलं क्षेमसुभिक्षं नृपसज्जनगोकुलक्षेमम् । घटचापसिंहमिथुनसङ्क्रान्तौ यदि भवेद्वर्षम् । आमयडामरभूभृद्युद्धमनर्थं त्ववृष्टिश्च ।। वृषवृश्चिकतुलमकरे वृष्टिः स्यात्सङ्क्रमे समये । विस्फोटामयतस्करपीडा वृष्टिः कृशानुभयम् ।।' इति । सौम्येति । मकरकर्कटयोः सङ्क्रान्तिश्चेत्तदा क्रमेण सौम्ययाम्यायनं निरुक्तं कथितम् । मकरे उत्तरायणं, कर्कटे याम्यायनं स्यादित्यर्थः । यदाह नारदः—'सौम्ययाम्यायने नूनं भवतो मृगकर्किणी ।।' इति ।। २-३ ।।

पीताम्बरा–उत्तरायण दक्षिणायन संज्ञक संक्रान्तियों के साथ दिन रात्रि विभागों के अनुसार संक्रान्ति का अशुभ फल बताया जा रहा है—दिनमान में ३ का भाग देने से घटचात्मक दिन का तृतीयांश होता है । दिन के प्रथम तृतीयांश की संक्रान्ति क्षत्रियों को, दूसरे तृतीयांश की ब्राह्मणों को, तीसरे तृतीयांश की वैश्यों को और सूर्यास्त समय की संक्रान्ति शूद्रों के लिए दुखदायिनी होती है ।

तथा रात्रि के चार विभागों में, प्रथम प्रहर की संक्रान्ति पिशाच आदि को, दूसरे प्रहर की राक्षसों को, तीसरे प्रहर की नटनर्तकों को, और चौथे प्रहर की संक्रान्ति पशुपालकों (अहीर यादवों को) तथा सूर्योदय में होने वाली संक्रान्ति सभी पाखण्डी जनों के विनाश के लिए होती है ।

मकरादि से मिथुनान्त तक की ६ संक्रान्तियाँ उत्तरायण संक्रान्तियाँ होती है अतः मकर संक्रान्ति का नाम उत्तरायण संक्रान्ति है । तथा कर्कादि से धनू राशि के अन्त तक की ६ संक्रान्तियाँ दक्षिणायन की होती हैं अतः कर्क संक्रान्ति को दक्षिणायन संक्रान्ति कहते हैं ।

शुभपाप वार क्रम से संक्रान्ति फल–सूर्य, शनि और मंगल वारों की सूर्य संक्रान्तियाँ जनता के लिए वातपित्तकफादिजन्य रोगों के साथ अवर्षण और राजाओं में कलह उत्पन्न करती है ।

बुध-गुरु-शुक्र और चन्द्रवार की संक्रान्तियाँ जनता को नीरोगी, राजाओं में सद्भाव, और अच्छी उपज करती हैं । तथा विधर्मियों के लिए दुखद भी होती हैं । नक्षत्रभेद से मेष संक्रान्ति फल–भरणी कृतिका रोहिणी मृगशिरा नक्षत्रों की मेष संक्रान्ति में देश में शस्य समृद्धि, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, और आश्लेषा नक्षत्रों की संक्रान्तियों में शस्य समृद्धि की वृद्धि, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, मूल, और पूर्वाषाढ़ नक्षत्रों की रवि संक्रान्ति में राष्ट्र में विशेष क्षतियाँ तथा उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वाभाद्र, उत्तराभाद्र, रेवती और अश्विनी इन दिवस नक्षत्रों में किसी में रवि संक्रमण होगा तो राष्ट्र का (क्षेम) कल्याण होता है ।

जन्मनक्षत्र में होने वाली संक्रान्ति का अशुभ फल होता है । जैसे जिसका जिस दिन जन्म नक्षत्र ही चन्द्र नक्षत्र हो उस दिन रवि संक्रान्ति हो तो दूसरी संक्रान्ति आरम्भ तक के बीच पूरे सौर मास में उस व्यक्ति को रोग और धनक्षति आदि से क्लेश होता है ।

जन्म नक्षत्र में संक्रान्ति हो तो तगरसरोरुह पत्रों के साथ रजनी सर्षप लोध्र सम्मिश्रित जल से स्नान करने से अशुभफल दूर होता है ।

संक्रान्तियों में वृष्टि का फल—मेष, कर्क, कन्या और मीन की संक्रान्तियों में वृष्टि होने से अच्छी उपज और सुभिक्ष तथा गोधन वृद्धि के साथ राजाओं में परस्पर सुख होता है।

मिथुन, सिंह, धनु और कुम्भ की संक्रान्तियों में वृष्टि होने से रोगों की वृद्धि, राजाओं में युद्ध, वृष्टि का अभाव आदि अनर्थ होते हैं। वृष, तुला, वृश्चिक और मकर की संक्रान्तियों में यदि वृष्टि हो तो बड़े-बड़े विस्फोट, चोर पीड़ा, वृष्टि, अग्निभय आदि उपद्रव होते हैं ॥२-३॥

अथावशिष्टतादृशसंक्रान्तीनां षडशीतिमुखाः संज्ञा अनुष्टुभाह—

षडशीत्याननं चापनृयुक्कन्याझषे भवेत्।
तुलाजौ विषुवं विष्णुपदं सिंहालिगोघटे ॥ ४ ॥

पीयूषधारा—षडशीत्येति। धनुर्मिथुनकन्यामीनेषु सङ्क्रान्तिश्चेत्तदा षडशीतिमुखानाम्नी संङ्क्रान्तिः। तुलामेषयोः सङ्क्रान्तिर्विषुवनाम्नी, सिंहवृश्चिकवृषकुम्भेषु सङ्क्रान्तिर्विष्णुपदाख्या। उक्तं च नारदेन—'स्थिरभेष्वर्कसङ्क्रान्तिर्ज्ञेया विष्णुपदाह्वया। षडशीतिमुखं ज्ञेयं द्विस्वभावेषु राशिषु। तुलाधराजयोर्ज्ञेयं विषुवं सूर्यसङ्क्रमे ॥'

तासां संज्ञानां फलानि, तत्र स्नानदानादि च—

सञ्ज्ञाप्रयोजनं च—'याम्यायने विष्णुपदे चाद्या मध्यास्तुलाजयोः। षडशीत्यानने सौम्ये परा नाड्योऽतिपुण्यदाः ॥ इति ग्रन्थकृदग्रे वक्ष्यति। अत्र मनुः—संक्रान्तौ यानि दत्तानि हव्यकव्यानि दातृभिः। तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥' इति। 'रविसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यदि मानवः। सप्तजन्मसु रोगी स्याद्दुःखभागी हि जायते ॥' इति शातातपोक्तेः। स्नानदानश्राद्धादिकृत्य संक्रान्तिकालेऽवश्यकर्त्तव्यता प्रतीयते। तत्र श्राद्धादेरनेकक्षणसाध्यत्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यमापद्यते। संक्रान्तिकालस्यातिसूक्ष्मत्वात्। तदुक्तं देवीपुराणे—'सुस्थे नरे सुखासीने यावत्स्पन्दति लोचनम्। तस्य त्रिंशत्तमो भागस्तत्परः परिकीर्त्तितः ॥ तस्माच्छततमो भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते। त्रुटेः सहस्रभागो यः स कालो रविसंक्रमे ॥' इति। देवलोऽपि—'संक्रान्तिसमयः सूक्ष्मो दुर्ज्ञेयः पिशितेक्षणैः ॥' इति। पिशितेक्षणैः मनुष्यैः। अतो मुख्यकालानुपलब्धौ गौणकालेऽपि कार्यम्। वचनप्रामाण्यात् ॥ ४ ॥

पीताम्बरा—अयन संक्रान्तियाँ कही जा चुकी हैं अवशिष्ट १० संक्रान्तियों की संज्ञाएँ बताई जा रही हैं—मिथुन, कन्या, और धनु, मीन (द्विस्वभाव) राशियों की संक्रान्तियों का नाम षडशीतिमुखा है। मेष और तुला (चर) राशियों की संक्रान्तियों का नाम विषुव है। (चर राशियों में कर्क मकर की अयन) स्थिर राशियों की वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ राशियों की संक्रान्तियों का नाम विष्णुपदा है।

संक्रान्ति के सूक्ष्म समय का ज्ञान कठिन होता है। एक त्रुटि का भी सूक्ष्मादपि सूक्ष्म हजारवाँ भाग जो हो उतना ससय संक्रमणकाल गणितगोल से सिद्ध होता है। सूक्ष्मकाल का उपयोग कठिन है, अतः (गौणकाल) स्थूल संक्रान्तिकाल में दान अवश्य देना चाहिये। स्नान अवश्य करना चाहिए और पितृ-श्राद्ध भी अवश्य करना चाहिए। दान देने से दानदाता के जन्मान्तर

में भगवान् सूर्य उसे सम्पत्ति देते हैं। स्नान करने से शरीर नीरोग रहता है और पितृतर्पण श्राद्ध से पितृलोक में पितर आह्लादित होते हैं ॥ ४ ॥

स च गौणकालः प्रतिनिधिरित्यतो गौणकालमुपजातिकाछंदःपूर्वार्द्धेनाह—

संक्रान्तिकालादुभयत्र नाडिकाः पुण्या मताः षोडशषोडशोष्णगोः ।
निशीथतोऽर्वागपरत्र सङ्क्रमे पूर्वापराहान्तिमपूर्वभागयोः ॥ ५ ॥

पीयूष धारा—संक्रान्तीति। गणितमार्गेण यः उष्णगोः सूर्यस्य संक्रान्तिकाल आगतस्तत उभयत्र पूर्वतोपरतश्च षोडश नाड्यः पुण्यसम्पादकत्वात्पुण्या मताः सम्मताः। सूर्यसंक्रान्तेः समयात्पूर्वं षोडश पश्चाच्च षोडश घटिकाः पुण्यकाल इति द्वात्रिंशद्घटिका भवंतीत्यर्थः। तदाह वसिष्ठः—

'दिनपतिसंक्रमणात्प्राक्षोडश नाड्यश्च पुण्यकालः सः।
परतः षोडश नाड्यः सर्वत्र स्नानदानकार्येषु ॥'

ब्रह्मसिद्धान्ते

'संक्रान्तेः प्राक्परस्ताच्च सार्द्धाः षोडश नाडिकाः।
त्रयस्त्रिंशत्संक्रमस्य पुण्याः सर्वस्य नाडिकाः ॥

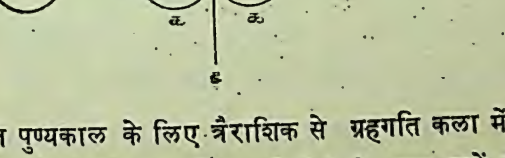
अनेन 'संक्रान्तेः पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कलाः' इति वाक्ये यैः पूर्वतः परतश्चाष्टावष्टौ घटिकाः पुण्यकाल इत्येवं षोडशेति व्याख्यातं तदपाकृतं भवति। किञ्चायमर्थो वासनासिद्धः सूर्यसिद्धांतेऽभिहितः—'अर्कमानकलाः षष्ट्या गुणिता भुक्तिभाजिताः। तदर्द्धनाड्यः संक्रान्तेरर्वाक्पुण्यं तथापरे ॥' सिद्धांतशिरोमणावपि—षष्टिघ्नबिंबं ग्रहभुक्तिभक्तं संक्रान्तिनाड्योऽखिलधर्मकृत्ते। रवेस्तु ताः पुण्यतमा ग्रहः स्वसंक्रान्तिगो मिश्रफलं विधत्ते ॥' इति। वासना चेयं—'यदि ग्रहस्पष्टगतितुल्याभिरहोरात्रमानरूपाः षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा ग्रहबिम्बकलाभिः किम्' इति त्रैराशिकेन ग्रहे बिम्बकलानां षष्टिर्गुणको ग्रहभुक्तिर्भाजको निष्पन्न इत्यर्थः। एवं सर्वग्रहाणामपि संक्रान्तिः स्यात्। तदुक्तं सिद्धान्त एव। अत्र तु विस्तरभयादनुपयुक्तत्वाच्च नास्माभिरलेखि। अत एवं त्रिंशदेकत्रिंशत्सार्द्धद्वात्रिंशत् त्रयस्त्रिंशदादिभेदेन स्मृतिषु पुण्यघटिकाभिधानं स्पष्टीकृत्याभेदसम्भवाद्भिन्नम्। तदेवं सामान्यतः संक्रान्तिषु द्वात्रिंशद्घटिकारूपः पुण्यकालो निर्णीतः। देवीपुराणे मन्दादिसंज्ञाभेदात्पुण्यकालविशेष एवोक्तः—'द्विचतुष्पञ्चसप्ताष्ट नव द्वादश चैव हि। क्रमेण घटिका ह्येतास्तत्पुण्यं पारमार्थिकम् ॥' इति। अस्यार्थः—मन्दायामन्तरालवर्तिघटिकाद्वयं मन्दाकिन्या चतस्रो घटिकाः, ध्वांक्ष्यां पञ्च, घोरायां सप्त, महोदर्यामष्टौ, राक्षस्यां नव, मिश्रायां दश। प्रागभिहितदेवीपुराणोक्तमन्दादिसंज्ञावाक्यान्न नक्षत्रजनितसंज्ञासु मन्दादिष्वयं विचारो न वारप्रयुक्तासु, अवचनात्, ।एवं संक्रान्तौ विशेषमुपजात्युत्तरार्द्धेनाह—निशीथत इति। निशीथमर्धरात्रन्तस्मादर्वाक्पूर्वत्र, अपरत्र पश्चाच्च संक्रमे संक्रांतिकाले सति पूर्वापरयोरह्नोः क्रमेणान्तिमपूर्वभागौ पुण्यौ स्याताम्। भागकाविति स्वार्थे कः। यद्यर्द्धरात्रात्प्राक् संक्रान्तिस्तदा पूर्वदिनस्योत्तरार्द्धं पुण्यम्। यद्यर्द्धरात्रादुपरि संक्रान्तिस्तदोत्तरदिनस्य पूर्वार्द्धमेव पुण्यमित्यर्थः। उक्तं च ब्रह्मसिद्धांते भवनान्तं बिम्बमध्यं रात्र्यर्द्धात्प्रागुदेति चेत्। स्नानदानादिमध्याह्नात्कुर्यादूर्ध्वं गते दिने ॥ रात्र्यर्द्धादुपरि

क्षेत्रं याति चेदन्यथार्यमा। अन्यगामिनि मध्याह्नात्पूर्वं स्नानादि पुण्यदम् ।।' स्वनराशिः बिम्बमध्यं रवेः क्षेत्रं राशिः। वृद्धवसिष्ठोऽपि—'अह्नि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम्। रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्द्धं स्नानदानयोः ।। अर्द्धरात्रादधस्तस्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया। ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम् ।।' इति। ननु रात्रौ दिनसंक्रान्तौ रात्रावपि पुण्यकालसत्त्वात्तदा स्नानादि कुतो न क्रियते, यदर्थमयमुद्यत आरब्धः। उच्यते, 'रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः' इति सुमन्तुवाक्याद्रात्रौ स्नानाद्यधिकारासत्त्वात्। यत्तु नैमित्तिकं ग्रहणादिप्रयुक्तं तद्भवत्येव। 'नैमित्तिकं कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु।' इति सुमन्तुवाक्यशेषात् ।। ५ ।।

पीताम्बरा—संक्रान्ति के सूक्ष्मकाल की अपेक्षा संक्रान्ति का स्थूलकाल ही (गौणकाल) संक्रान्ति पुण्यकाल का प्रतिनिधि बताया जा रहा है—यह सिद्धान्त गणितरीति से साधित संक्रान्ति काल से पहिले और पीछे की (१६-१६) सोलह-सोलह घटिकाएँ पुण्यकाल की होती है। इस प्रकार ३२ घटीमान का संक्रान्ति का पुण्यकाल होता हैं। ब्रह्म सिद्धान्त के मत से १६$\frac{१}{२}$ और १६$\frac{१}{२}$ पूर्वापर घटिकाएँ एवं ३३ घटिका पुण्यकाल की कही गई है। कुछ आचार्यों ने ८ घटी पूर्वापर की पुण्यकाल की उभयतः पृथक्-पृथक् ८ घटी एवं १६ घटिका मात्र सूर्य संक्रमण का पुण्यकाल कहा है। यह मत गणितगोल उपपत्ति से सही नहीं है।

जैसे यदि ग्रह अपनी गति से अग्रिम राशि पर सम्यक् चलता है तो संक्रान्ति होती है। ग्रहों की बिम्बाकृति होने से पहले ग्रहबिम्ब का अग्र भाग, पुनः ग्रहबिम्ब का मध्य भाग ततः ग्रहबिम्ब का अन्तिम विभाग का मुख्यतया संक्रमण होता है। तब शंका होती है कि ग्रह के किस भाग के प्रचलन को संक्रान्ति काल माना जाय? इसलिए बिम्ब के अग्रिम भाग के संक्रमण के आरम्भ से बिम्ब के अन्तिम भाग के संक्रमण तक का नाम संक्रमण या संक्रान्ति काल और इसी काल का नाम पुण्यकाल भी है क्योंकि दो राशियों से सम्बन्धित काल पुण्यकाल होता है।

बिम्ब के मध्य भाग के संक्रमण काल का नाम स्पष्ट संक्रान्ति है। जैसे कल्पना करिए कि इस क्षेत्र में अ इ=मेष राशि का मान है। इ उ=वृष राशि का मान। इ = दोनों राशियों की सन्धि। इ क च=रवि बिम्ब, जिसका इ अग्रिम प्रदेश जब सन्धि गत होगा तो बिम्बाभिप्राय से संक्रान्ति होगी। पुनश्च जब च बिम्बान्त प्रदेश सन्धि में आवेगा तो बिम्बान्ताभिप्रायिक संक्रान्ति और उसका पुण्यकाल होगा। इसके आगे राशिद्वय सम्बन्ध का अभाव होने से पुण्यकाल का भी अभाव होगा।



सूर्य संक्रान्ति पुण्यकाल के लिए त्रैराशिक से ग्रहगति कला में, ६० घटिका मिलती हैं तो यह बिम्ब कला मान में कितनी घटिका मिलेंगी? अन्य ग्रहों की संक्रान्तियों के लिए अन्य ग्रहों की बिम्ब कला लेनी चाहिए। सभी ग्रहों की संक्रान्तियों का फलादेश है।

मुख्यतया यहाँ पर सूर्य संक्रान्तियों के लिए सूर्यबिम्ब कला का मान वेध से भी ३२ कला आता है अतः

$$\frac{\text{६० घटिका} \times \text{३२}'}{\text{स्पष्ट गतिकला मध्यम मानीय ६०}'}$$

= ३२ घटिका पूर्वापर की उपपन्न होती हैं। सर्व सम्मत गणित सिद्ध पक्ष से सूर्य संक्रान्ति का पुण्यकाल ३२ घटिका ही समोचीन है।

यदि अर्द्धरात्रि से पहिले संक्रान्ति लगती हो तो पूर्व दिन के परार्ध में, और यदि अर्द्धरात्रि के पश्चात् सूर्य संक्रान्ति लगती हो तो पर दिन के पूर्वार्ध में स्नान दान जप हवन श्राद्धादि के लिए पुण्यकाल कहा गया है।

यदि रात्रि में संक्रान्ति लगतो हो तो पुण्यकाल भी रात्रि में ही क्यों न माना जाय ? धर्मशास्त्र के विचारों से रात्रि में स्नानदानादिक निषेध है। ग्रहणादि अशौच में निमित्त प्राप्त होने पर रात्रि में भी स्नानदानादिक किया जाता हैं ॥ ५ ॥

अर्द्धरात्रसमये संक्रमणे मकरकर्कटयोश्च विशेषमुपजातिकयाह—

पूर्णे निशीथे यदि संक्रमः स्याद्दिनद्वयं पुण्यमथोदयास्तात् ।
पूर्वं परस्ताद्यदि याम्यसौम्यायने दिने पूर्वपरे तु पुण्ये ॥ ६ ॥

पीयूषधारा—पूर्ण इति। 'अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ द्वौ यामप्रहरौ समौ, इत्यभिधानादर्द्धरात्रं निशीथशब्दवाच्यम् तस्मिन्निशीथे पूर्णे रात्रिद्वितीयप्रहरान्तिमपलावच्छिन्ने यदि संक्रमः स्यात्तदा प्रागपरदिनद्वयं पुण्यमुक्तम्। उक्तं च वृद्धवसिष्ठेन—'पूर्णे चेदर्द्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः। प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ॥' इति। ब्रह्मसिद्धान्तेऽपि—'यद्यर्द्धरात्र एव स्यात्सम्पूर्णे संक्रमो रवेः। तदा दिनद्वयं पुण्यं स्नानदानदिकर्मसु ॥'

निशीथे अन्यथा वा मकरकर्कटयोर्विशेषः—

'अथ मुक्त्वा मकरकर्कटौ' इत्युक्तं, तत्र मकरकर्कटयोस्तु कथमित्यत आह। अथानन्तरमुदयास्तात्सूर्योदयास्ताच्च पूर्वं परस्ताच्च यदि याम्ये सौम्यायने कर्कमकरसंक्राती भवतस्तदा पूर्वपरदिने पुण्ये स्याताम्। यदि सूर्योदयात्पूर्व कर्कसंक्रमणं स्यात्तदा पूर्वदिने एव पुण्यकालो न परदिने। तदाह वृद्धगार्ग्यः—'यदास्तमयवेलायां मकरे याति भास्करः। प्रदोषे चार्द्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि ॥ अर्द्धरात्रे तदूर्ध्वं वा सक्रान्तौ दक्षिणायने। पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥ अस्तमयवेलाया इति पञ्चम्यन्तं पदम्। वाशब्द इवार्थे। भविष्योत्तरपुराणेऽपि—'कार्मुकन्तु परित्यज्य मृगं संक्रमते रविः। प्रदोपे चार्द्धरात्रे वा कुर्यादहनि पूर्वतः ॥' इति। प्रदोषलक्षणं स्कन्दपुराणे—'त्रिमुहूर्त्तः प्रदोपः स्याद्रवावस्तङ्गते सति' इति ॥ ६ ॥

पीताम्बरा—अर्द्ध रात्रि में संक्रमण और मकर कर्क की संक्रान्तियों पर विशेष वक्तव्य दिया जा रहा है—अर्द्धरात्रि काल का अर्थ निशीथ काल भी होता है। पूर्ण निशीथ (द्वितीय प्रहर के अन्तिम पलव्याप्त काल) में यदि संक्रमण हो तो संक्रमण के पहिले दिन मध्यान्ह से

सूर्यास्त तक तथा संक्रमण समय के दूसरे दिन सूर्योदय से मध्याह्न तक स्नान दानादि कार्यों में पूर्णकाल होता है।

किन्तु यह नियम मेषादि द्वादश संक्रान्तियों की १० (दस) संक्रान्तियों मे ही लगेगा कर्क और मकर की संक्रान्तियों में उक्त नियम चरितार्थ नहीं होगा।

क्योंकि दक्षिणायन समाप्तिकाल की अपेक्षा उत्तरायण संक्रान्ति विशेष महत्व की होने से सूर्यास्त के अनन्तर रात्रि में किसी समय भी मकर संक्रान्तिहोने से उसका पुण्य काल पर दिन (दूसरे दिन) एवं सूर्योदय से पहिले रात्रि में कर्क संक्रम के लिए पहिला दिन ही पुण्य लाभाय होता है। वृद्धगर्ग के मत से भी सूर्यास्त समय में भी लगने वाली मकर संक्रान्ति का पुण्य काल दूसरे दिन ही होता हैं। तथा अर्द्धरात्रि या उसके पश्चात् सूर्योदय से पहिले की कर्क संक्रान्ति का पुण्य काल पूर्व दिन ही होता है ॥ ६ ॥

अथार्द्धोदयास्तादिति वचनस्यापवादमिन्द्रवज्राछन्दसाह—

सन्ध्या त्रिनाडीप्रमितार्कबिम्बा दर्द्धोदितास्तादध ऊर्ध्वमत्र।
चेद्याम्यसौम्ये अयने क्रमात्स्तः पुण्यौ तदानीं परपूर्वघस्रौ ॥ ७ ॥

पीयूषधारा—सन्ध्येति। अर्द्धोदितादर्द्धास्ताच्चाध ऊर्ध्वं च क्रमात् त्रिघटिकास्ताभिः प्रमिता सन्ध्यासन्ध्याकालः स्यात्। अर्द्धोदितादर्कबिम्बात्पूर्व त्रिघटीप्रमिता प्रातः सन्ध्या, तदार्द्धास्तादर्कबिम्बादुपरि त्रिनाडीप्रमिता सायंसन्ध्येत्यर्थः। तदाह वराहः—'अर्द्धास्तमितानुदितात्सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत्। तावन्सन्ध्याकालश्चिह्नैरेतैः फलं ब्रूयात् ॥' इति।

द्वयोः सन्ध्ययोर्लक्षणान्तरे—

तत्प्रमाणमाह नारदः—'अर्द्धास्तमनसन्ध्या हि घटिकात्रयसम्मिता। तथैवादर्धोदयात्प्रातर्घटिकात्रयसम्मिता ॥' इति। स्कन्दपुराणेऽपि—'उदयात्प्राक्तनी सन्ध्या घटिकात्रयमुच्यते। सायंसन्ध्या त्रिघटिका ह्यस्तादुपरि भास्वतः ॥' इति। अत्र सन्ध्यालक्षणे, अर्द्धास्तमितानुदितवाक्यस्य स्कन्दपुराणीय वाक्यस्य च व्रीहियववद्विकल्पः।

सन्ध्ययोरयने पुण्यकालाः—

सन्ध्यालक्षणप्रयोजनमाह—अत्रेति। अत्र सन्ध्यायां प्रातःसन्ध्यायां सायंसन्ध्यायां च क्रमाच्चेद्याम्यसौम्ये अयने दक्षिणोत्तरायणे तदानीं परपूर्वौ घस्रौ दिवसौ पुण्यौ। याम्यसौम्ये अयने इत्यत्र 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' इति प्रगृह्यत्वात् 'प्लुतप्रगृह्या अचि' इति प्रकृतिभावः। यदि प्रातःसन्ध्यायां दक्षिणायनप्रवृत्तिस्तदा सूर्योदयानन्तरं सम्पूर्णमहः पुण्यम्। तथा यदि सायंसन्ध्यायामुत्तरायणप्रवृत्तिस्तदा सूर्यास्तात्पूर्वं संपूर्णमहः पुण्यं स्यादित्यर्थः। यदाह नारदः 'सूर्यस्योदयसन्ध्यायां यदि याम्यायनं भवेत्। तदोदयादहः पुण्यं पूर्वाह्णः पूर्वतो यदि ॥ सूर्यास्तमनसन्ध्यायां यदि सौम्यायनं भवेत्। तदहः पुण्यकालः स्यात्परतश्चोत्तरेऽहनि ॥' इति।

कर्कसंक्रमे उदयसन्ध्यातः प्राक्मकरसंक्रमे सायंसन्ध्योत्तरं जाते पुण्यकालाः—

अत्र यद्युदयसन्ध्यातः प्राक्कर्कसंक्रमस्तदा प्राग्दिन एव पुण्यकालो नोत्तरदिने। तथा

यद्यस्तसन्ध्यामतिक्रम्य मकरसङ्क्रान्तिस्तदोत्तरदिन एवं पुण्यकालो न तु प्राग्दिने इति निष्कृष्टोऽर्थः । अतो वृद्धगार्ग्यादिवाक्यनारदवाक्ययोः प्रदोषसन्ध्यापदोपादाने सामान्यविशेषभावोऽवगन्तव्यः । यत्तु हेमाद्रौ स्कन्दपुराणीयं वाक्यम्—'धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं ततः । पूर्वापरविभागेन रात्रौ सङ्क्रमते यदा ।। दिनान्ते पञ्चनाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः । उदये च तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।। इति तदपि सन्ध्याविषयकमेवेत्याहुरभियुक्ताः विषुवे तु यथाश्रुतमेवेति । अन्यदपि सन्ध्यालक्षणप्रयोजनं 'प्राक्सन्ध्यागर्जित' इत्यादिषु वक्ष्यति । ननु नायमयनपुण्यकालोक्त्युद्यमः सफलः, शास्त्रान्तरविरुद्धत्वात् । तथाहि—'अह्नि सङ्क्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्त्तितम् । रात्रौ सङ्क्रमणे भानोर्दिनार्द्धं स्नानदानयोः ।। अर्धरात्रादधस्तस्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया । ऊर्ध्वं सङ्क्रमणं चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम् । पूर्णे चेदर्धरात्रे तु यदा सङ्क्रमते रविः । प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ।।' इति । वृद्धवसिष्ठेनायनव्यतिरिक्तेषु दशसु सङ्क्रमेषु रात्रिगतेषु 'या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः' इति कश्यपोक्तसामान्यवाक्याद्रात्रावेवानुष्ठानं प्रसक्तम् 'अहः सङ्क्रम' इत्यादिनाप्येतदेवानुष्ठानं विहितं तस्यापि पर्युदासः क्रियते 'मुक्त्वा मकरकर्कटौ' इति । तस्मान्मकरकर्कटयोः संक्रमणे रात्रावेवानुष्ठानं कर्त्तव्यमित्युक्तं भवति । अत एवाह याज्ञवल्क्यः—'राहुदर्शनसंक्रांतिविवाहात्ययवृद्धिषु । स्नानदानादिकं कार्यं निशि काम्यव्रतेषु च ।।' इति । वसिष्ठोऽपि—सुतजनने संक्रान्तावुपरागे चन्द्रसूर्ययोर्नियतम् । रात्रावपि कर्त्तव्यं स्नानं दानं विशेषतो नृणाम् ।।' इति । सुमन्तुश्च—'ग्रहणोद्वाहसंक्रांतियात्रार्तिप्रसवेषु च । श्रवणे चेतिहासस्य रात्रौ दानं प्रशस्यते ।।' इति एषु वाक्येषु सामान्यवाचिनोऽपि संक्रांतिपदस्य मकरकर्कटसङ्क्रांतिपरत्वमवसीयते । यस्तु—'रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः ।' इति निषेधः स सङ्क्रांत्यन्तरे व्यवतिष्ठते । अत एवोक्तं कश्यपेन—'स्नानं दानं ग्रहणवत्सौम्ययाम्यायनद्वये' इति । तस्मादयनसङ्क्रमे रात्रौ सत्यां तत्रैव स्नानदानाद्यनुष्ठातव्यमिति । अत्राहुः शास्त्रद्वयेन तुल्यबलत्वाद्विकल्पसिद्धौ तत्तद्देशप्रसिद्धस्पष्टाचारेण व्यवस्था द्रष्टव्या । तत्र गुर्जरास्तु कश्यपादिवाक्यमभ्युपेत्य रात्रावयनसम्भवे सति रात्रावेव स्नानदानादिकं कुर्वन्तीत्यर्थः । दाक्षिणात्यास्तु वृद्धगार्ग्यादिवाक्यमङ्गीकृत्य दिवस एव स्नानदानादि कुर्वन्तीत्यलमतिप्रसङ्गेन । यदा तु दिने कर्कमकरसङ्क्रमस्तदा क्रमेण पूर्वोत्तरघटिकानियममाह वृद्धवसिष्ठः—'अतीतानागते पुण्ये द्वे तूदग्दक्षिणायने । त्रिंशत्कर्कटे नाड्यो मकरे विंशतिः स्मृताः ।।' इति । उत्तरायणमतीतं सत्पुण्यं कर्कटायनमागामि पुण्यम् । तत्र कर्कटसङ्क्रांतेः प्राक् त्रिंशद्घटिकाः पुण्याः, मकरे तूत्तरा विंशतिघटिकाः पुण्या इत्यर्थः । अत्र वाक्ये यद्यपि दिनपदानुपादानम्, तथापि । यदास्तमयवेलायामिति रात्रिपरविशेषवाक्यालोचनादिदं दिनपरं प्रतिभाति । तथा सति केनापि हेतुना समीपघटीषु श्राद्धाद्यनुष्ठानासम्भवे परमावधित्वेन त्रिंशदाद्यघटिका अत्रानुज्ञायन्ते । यदा तु प्रतिबन्धस्तदा 'या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः' इति कश्यपोक्तेः समीपघटिकास्वेव श्राद्धादि विधेयम् । 'सन्निहितपरित्यागे कारणाभावात्' इति न्यायाच्च ।। ७ ।।

पीताम्बरा—सन्ध्याकाल बताते हुए मकर कर्क संक्रान्तियों के पुण्यकाल बताये जा रहे हैं—अर्धउदित सूर्य बिम्ब समय के पहले ३ घटिका (१ घण्टा १२ मि०) प्रातःकालीन सन्ध्या, तथा अर्द्ध अस्त सूर्य बिम्ब के आगे ३ घटिका प्रमाण की सायं सन्ध्या होती है ।

प्रातः और सायं सन्ध्या कालों में क्रमशः यदि दक्षिणायन (कर्क) की और उत्तरायण (मकर) की संक्रान्ति हो तो पर (आगे) दिन और पूर्व (पहिले) के दिन पुण्यकाल क्रमशः होता है।

अर्थात् प्रातः सन्ध्या समय दक्षिणायन प्रवृत्ति (कर्क) होने से (सूर्योदय से सूर्यास्त तक) सम्पूर्ण दिन पुण्यकाल, तथा सायं सन्ध्या समय उत्तरायण (मकर) प्रवृत्ति होने से सूर्यास्त के पहिले का सम्पूर्ण दिन (सूर्यास्त से पहिले सूर्योदय तक) सम्पूर्ण दिन पुण्यकाल होता है।

यहाँ पर स्पष्टतया यह भी फलित हो रहा है कि यदि प्रातः सन्ध्या (३ घटी) से पहिले कर्क संक्रमण तो पहिले दिन पुण्यकाल, तथा अस्तकालीन सन्ध्याकाल (३ घटी) के अनन्तर मकर संक्रान्ति हो तो उत्तर दिन आगे के दिन ही पुण्यकाल होता है। ऐसी स्थितियों में श्लोक ६ का ही नियम चरितार्थ होगा। श्लोक ६ के नियम का विशेष अपवाद श्लोक ७ से सन्ध्या समय की संक्रान्तियों (कर्क मकर) का यही अर्थ स्पष्ट होता है।

संक्रान्ति समय के समीप-समीप की घटिकाएँ पुण्यप्रद होती हैं इत्यादि "कश्यप" वचन से ग्रहण की तरह तथा वसिष्ठ" वचन से, रात्रि में भी स्नानदानादिक करने की बात कही गई है। ऐसी स्थितियों में दोनों नियमों (१) पुण्यकाल दिन में स्नानदान और (२) संक्राति (कर्क मकर) में भी रात्रि का स्नानदान समान बली होते हैं, ऐसी स्थिति में देशाचार नियम से रात्रि में भी मकर कर्क संक्रान्तियों का ग्रहण की तरह पुण्यकाल मान लिया जाता है।

गुर्जर समाज रात्रि के कर्क मकर संक्रान्तियों में रात्रि में ही और दाक्षिणात्य समाज दिन ही स्नानदानादिक धर्मकृत्य लाभ का फल मानते हैं।

प्रायः मकर संक्रान्ति के लिए संक्रान्ति समय से पर की २० घटिका एवं कर्क संक्रान्ति के लिए संक्रमण काल से पूर्व की ३० घटिका भी पुण्यकाल की कही गई हैं। उक्त विवेचनों के तारतम्य से पञ्चाङ्गों में सही पुण्यकाल दिया जाता है।

प्रसंगागत विचार से सन्ध्या का मान जो ३ घटिका वताया गया है वह शून्य अक्षांशीय देशों अर्थात् विषुवत रेखा धरातलीय भूपृष्ठीय देशों में, उदय अस्त क्षितिजों में, इष्टकालीन दृग्मण्डल ही तद्देशीय पूर्वापर सिद्ध (विषुवद्वृत्त) होता है। उस समय प्रातः सन्ध्या के समय उदय क्षितिज और सायं सन्ध्या समय अस्तक्षितिज से नीचे १८° अंश की दूरी पर सूर्य मण्डल के रहने से लोम दर्शन (शरीर में) होने लगता है। विषुवद्वृत्त में ६० घटी में ३६०° तो में $\frac{३६०^{\circ}}{६०} = ६^{\circ}$ पुनः ६° में १ घटी तो शरीरगत लोम दर्शन योग्य सूर्य प्रकाश कालीन १८° में $\frac{१८^{\circ}}{६} \times १ = ३$ घटी सन्ध्या मान गोल गणित से निरक्ष देशों में समीचीन होता है। यह समय विषुवद्वृत्त में तो सही है किन्तु विषुवद्वृत्त से उत्तर या दक्षिण के अक्षांश धरातलीय मान के भूपृष्ठ देशों में जैसे दिनमानादि विभिन्न होते हैं तथैव सन्ध्यामान भी ३ घटी से न्यूनाधिक हो सकते हैं। यहाँ पर प्रसंगागत दिग्दर्शन मात्र पर्याप्त होगा। इसीलिए गणित गोलज्ञ विद्वान् दैवज्ञ समय-समय पर दिग्देश भेद से काल का आदेश करते हैं उन्हीं का आदेश प्रामाणिक भी है॥ ७॥

अथ पूर्वापर षोडश घटिकाः पुण्या इति पूर्वं सामान्येनोक्तम्। इदानीं विष्णुपदादि संक्रमेषु विशेषमनुष्टुभाह—

याम्यायने विष्णुपदे चाद्या मध्यास्तुलाजयोः ।
षडशीत्यानने सौम्ये परा नाड्योऽतिपुण्यदाः ॥

पीयूषधारा—याम्येति । याम्यायने कर्कसंक्रान्तौ तथा विष्णुपदे वृषसिंहवृश्चिककुम्भसंक्रान्तिषु संक्रान्तिकालादाद्याः नाड्यः प्रथमाः षोडश घटिकाः अतिपुण्यदाः स्नानदानादावनन्तफलदा ज्ञेयाः अग्रिमास्तु न तथेति निष्कृष्टोऽर्थः । तुलाजयोस्तुलामेषयोः मध्या उभयतः षोडश षोडश घटिकाः पुण्याः । अथवा षोडशैव घटिकाः पुण्याः । षडशीत्यानने मिथुनकन्याधनुर्मीनसंक्रान्तिषु तथा सौम्ये मकरसंक्रान्तौ संक्रान्तिकालात्परा अग्रिमाः षोडश घटिकाः अतिपुण्यदाः, प्रथमास्तु न तथेति निष्कृष्टोऽर्थः । यदाह श्रीपतिः—'याम्यायने विष्णुपदे तथादौ दानाद्यनन्तं विषुवे च मध्ये । वदन्त्यतीते षडशीतिवक्त्रे महर्षयः खल्वयने च सौम्ये ॥' तत्र कर्के प्रागेव मकरसंक्रान्तौ पश्चादेव पुण्यकाल इति तु प्राङ्निरणायि । विष्णुपदे तु अग्रिमादिघटीनां पुण्यकाले तरतमभावः । पुण्यायां विष्णुपद्यायां च—'प्राक्पश्चादपि षोडश' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः । विषुवे सामान्यनिर्णय एवेति केचित् । दीपिकाटीकाकारस्त्वेवमाह—'मेषे तुलायां च संक्रान्तिकालात्पूर्वमष्टौ घटिकाः पुण्याः परतश्चाष्टौ घटिकाः पुण्यकालः' इति । युक्तं चैतत् । विषुवे च मध्यपदोपादानान्मध्ये षोडश घटिकाः पुण्याः इत्युच्यते । कस्मात्कालान्मध्य इत्यपेक्षायां संक्रान्तिकालादेवेत्यतः पूर्वमष्टौ पश्चाच्चाष्टौ घटिकाः पुण्या इत्यर्थः । यदुक्तं बृहस्पतिना—'वर्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश' इति । तुलामेषसंक्रान्तिकालात्प्राक् पश्चाच्च पञ्च पञ्च घट्यः पुण्या इति । यदप्युक्तमाद्यन्तसापेक्षत्वान्मध्यशब्दस्य गणितागतपुण्यकालघटिकानां मध्ये त्रिभागः स्थूलदृशा दशघटिकात्मको भवतीति । 'या याः सन्निहिता नाड्यः' इति कश्यपोक्तेः । षडशीतिमुखेष्वाद्याग्रिमघटीनां पुण्यकाले तरतमभावः । यदपि 'षडशीत्यां व्यतीतायां षष्टिस्तुल्यास्तु नाडिकाः' इति वृद्धिवसिष्ठवाक्यम्, तदपि प्राग्घटीषु प्रतिबन्धवशात् श्राद्धादेरसम्भवे सत्यन्तिमघटीषु श्राद्धादिक्रियाभ्यनुज्ञायाः परमावधिकालेयत्तार्थम् । इदं सर्वं दिनसक्रान्तिविषयं वेदितव्यम् । 'अह्नि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्त्तितम्' इति सामान्यवाक्यस्य सौम्यायने विष्णुपदे इत्यस्य च विशेषवाक्यस्यैकवाक्यता । अत एव 'रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः ।' इति रात्रिपरविशेषस्य सत्त्वाच्च । एवं निर्णीते पुण्यकाले स्नानदानाद्यवश्यं विधेयमिति फलितोऽर्थः ।

पुण्यकाले स्नानदानाद्यकरणे दोषः

तत्र स्नानदानाद्यकुर्वतश्च प्रत्यवायमाह वसिष्ठः—

'इति सञ्चित्य विनिर्णयमादेष्टव्यं सदैव दैवज्ञैः । विषुवत्ययने ग्रहणे संक्रान्तौ पुण्यदिवसेऽपि ॥ पितृतृप्तिं न करोति हि दत्वा शापं व्रजति तस्य पिता । आगतगतसमयेऽपि च करोति यद्दानजपहोमाद्यम् ॥

ऊषरवापितबीजं तद्वत्तद्वच्च निष्फलं भवति ॥'

अयने अयनप्रवृत्त्याख्ये चलसंक्रमणस्य आगमसमये निर्णीते पुण्यकालातिक्रमसमये स्नानादिनिष्फलमित्यर्थः ।

संक्रान्तिषु स्नानादिफलम्—

संक्रांतिषु स्नानदानादेः फलमाह भारद्वाजः—'षडशीत्यां तु यद्दानं विषुवद्वितये तथा । दृश्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव दृश्यते ॥' वृद्धवसिष्ठोऽपि—'अयने कोटिपुण्यां च सहस्रं विषुवे

फलम् । षडशीत्यां सहस्रं तु फलं विष्णुपदेषु च ॥' इत्यलमतिप्रसङ्गेन । इतिसूर्यसंक्रान्तिपुण्यकालादिनिर्णयः ।

चन्द्रादिसंक्रमे पुण्यकालनिर्णयः—

अथ नायं केवलं सूर्यसंक्रमण एवं पुण्यकालः किन्तु चन्द्रादीनां ग्रहाणां नक्षत्रसंक्रमे च राशिसंक्रमे पुण्यकालो भवति सोऽपि सोपपत्तिकः प्रसंगतः प्रोच्यतेऽस्माभिः । यदाह जैमिनिः—

'नक्षत्रराश्यो रविसंक्रमे स्युरर्वाक्परत्रापि रसेन्दुनाड्याः ।
पुण्यस्तथेंदोस्त्रिधरापलैर्युग्युगैकनाडी मुनिभिः शुभोक्ता ॥ १ ॥
नाड्यश्चतस्रः सपलाः कुजस्य बुधस्य तिस्रो मनवः पलानि ।
अब्ध्यब्धिनाड्यः पलसप्तयुक्ता गुरौ च शुक्रे सपलाश्चतस्रः ॥ २ ॥
द्विनागनाड्यः पलसप्तयुक्ताः शनैश्चरस्याभिहिताः सुपुण्याः ।
आद्यन्तमध्ये जपदानहोमं कुर्वन्नवाप्नोति सुरेन्द्रधाम ॥ ३ ॥

अस्यार्थः—सूर्यस्य नक्षत्रसंक्रमे राशिसंक्रमे च प्राक् परतश्च षोडश घटिकाः पुण्याः । एवं चन्द्रस्यैकघटी त्रयोदश पलानि, भौमस्य चतस्रो घटिका एकं पलम्, बुधस्य तिस्रो घटिकाश्चतुर्दश पलानि, गुरोश्चतुश्चत्वारिंशद्घटिकाः सप्त पलानि । शुक्रस्य चतस्रो घटिकाः पलमेकम् । शनेर्द्व्यशीतिघटिकाः सप्त पलानि चोभयतः पुण्यकाल इति । अत्रोपपत्तिः—'भानोर्गतिः स्वदशभागयुतार्द्धिता वा बिम्बं विधोस्त्रिगुणिता युगशैल—७४ भक्ता । तिथ्यद्रि—७१५ हीनशशिभुक्तिरिषुद्वि—२५ भक्ता नन्दाक्षि—२९ युग्भवति वा विधुर्बिंबमेवम् ॥' इति सिद्धान्तशिरोमण्युक्तप्रकारेण रविचन्द्रयोर्मानकला आनेयाः । 'त्र्यंघ्रीषवः सचरणा ऋतवस्त्रिभागयुक्ताद्रयो नव च सत्रिलवेषवश्च । स्युर्मध्यमास्तनुकलाः क्षितिजादिकानां त्रिज्याशुकर्णविवरेण पृथग् विनिघ्न्यः ॥' इति तत्रैवोक्ता भौमादीनां मानकलाः तत्र क्रमेण मानकलाः 'षष्टिघ्नबिंबं ग्रहभुक्तिभक्तं संक्रान्तिनाड्योऽखिलधर्मकृत्ये । रवेस्तु ताः पुण्यतमा ग्रहः स्वसङ्क्रान्तिगो मिश्रफलं विधत्ते ॥" इति भास्करोक्तदिशा संस्कृताः सङ्क्रान्तिनाड्यः स्युः ।

तत्र ग्रहभुक्तयस्तेनैवोक्ताः—

'नन्दाक्षा भुजगा रवेः शशिगतिः खाङ्काद्रयोऽक्षाग्नय-
स्तुंगस्यांगकलाः कुवेदविकलाः पातस्य रामा भवाः ।
माहेयस्य महीगुणा रसकरा ज्ञस्येषुसिद्धा रदाः
पञ्चेज्यस्य सितस्य षण्णसमिता अष्टौ शनेर्द्वे कले ॥' इति ।

बुधशुक्रयोस्तु संक्रान्तिघटिकानयने सूर्यगतिरेव हारः कल्प्यः । तद्गतितुल्यत्वात्तयोः । वासनाभाष्ये हि—'बुधशुक्रौ तु रवेरासन्नावेव कदाचित्पृष्ठतस्तस्यानुचराविव सदा व्रजन्तौ दृश्येते । ततस्तयोरपि रविभगणतुल्या एव भगणा इत्युपपन्नम्' इति भास्करेणाभिहितत्वात् पठ्यमानानुगतिस्तच्छीघ्रयोः शीघ्रफलानयनार्थं वासना सिद्धजीर्णैः कल्पिता । तदेवं ग्रहणगतय इमास्त्रिप्रकारेण साधिताः पुण्यकालघटिकाः । सूर्यस्य यथा त्रिंशद्घटिकाः, एवं चन्द्रस्य द्वे घटिके षड्विंशतिः पलानि, भौमस्य नव घटिकाश्चत्वारिंशत् पलानि, ४० बुधस्य षट्घटिका; विंशतिः

सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
अ.	अ.	४	६	७	८	५
३१	१	५	८	२०	२०	२०

पलानि, गुरोरष्टाशीतिर्घटचः, एवं शुक्रस्य नव घटिकाः अष्टौ पलानि, शनैः षष्टचधिकं शतं घटिकाः, पूर्वापरकाली मिलित्वा पुण्यकाल इत्यर्थः। यथात्र वासना प्रागुक्ता। एता अर्द्धा नाडचः प्राक्परतश्च पुण्याः। अत्र गणितागतघटीपलेषु लिखितजैमिनिवाक्ये च क्वचित्किञ्चित्पलभेदो घटिकाभेदश्च सगतिस्पष्टक्रतिवशतः। युक्तं चैतत्। आकाशे हि वेधादिना स्पष्टा एव खगा दृश्यन्ते, न मध्यमाः। 'दिनद्वयस्पष्टखगान्तरालकालः स्फुटस्तु स्फुटभुक्तिबिम्बैः' इति स्पष्टगत्यैव बिंबसंक्रान्तिघटचानयनमुचितम्।

सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ग्र.
५८	१८०	३१	५८	५	५८	२	हा
८	३५	३६	८	०	०	८	कला

उक्तं च केशवार्केण—'कुजादिकानामपि बिम्बलिप्ताः षष्टचा गुणाः स्वस्वजवेन भक्ताः। नाडचादिकः संक्रमणान्तरालकालः स्फुटस्तु स्फुटभुक्तिबिम्बैः॥' इति। अपिशब्दात्सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहणम्। तथा सति मध्यमापेक्षयास्पष्टगतिबिम्बयोरुपचयापचयाभ्यां साम्यैस्तत्तद्घटिकानामप्युपचया साम्यातिक्रमेणापतन्ति। तेषां चानियत्वात्पद्ये उपनिबन्धायोगात् जीर्णैर्नियतमध्यगत्या सूर्यादीनां ग्रहाणां पुण्यकालघटीरानीयोपनिबन्धः कृतः।

र.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	र.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
६	१	८	३	४४	४	८०	३२	२	८	६	८८	९	१६
३०	१३	३२	१०	२४	३४	०	११	२६	४०	२०	७	८	०

सर्वग्रहसंक्रान्तिषु पुण्यकालनिर्णयसंग्रहः, मतान्तरखण्डनं च—

अत्र मत्कृतं पद्यम्—'नाडचो रामगुणा ३३ रवेरथ विधोः षड्दोः पलैर्युग्द्वयं २६ भौमस्याब्धिपलैर्युता नव ४९ विदो युक्ताः पलैः खाश्विभिः २०। षण्नाडचोऽ ६ ष्टगजा ८८ गुरोरथ भृगोर्नन्दाः ९ पलैरष्टभि पुण्याः स्युः खनृपाः शने–१६० रुभयतो राश्यक्षयोः संक्रमे।' अतो

जैमिनिवाक्ये सार्धोश्रितस्रः पलसयुक्ता गुरोः' इति पाठो माधवादिभिरपाठि, तथा हेमाद्रिणापि द्विनागनाड्यः' इति पदे नागा अष्टौ द्विरावृत्ता नागा द्विनागाः षोडश नाडिकाः शनैश्चरसंक्रान्तौ पुण्यकाल इति यद्व्याख्यातं तदुभयमपाकृतं भवति । तथा च रामचन्द्राचार्या अपि कालनिर्णय-दीपिकायां हेमाद्र्यादिमूलकममुमर्थं स्वपद्येनोपनिबध्नन्ति । अतश्चिन्त्योक्त्यो ज्ञेयाः । तस्मात्स-र्वग्रहाणां राशिनक्षत्रयोः संक्रान्तिषु पुण्यकालोऽप्यस्ति । भास्करोऽपि—'रवेस्तु ताः पुण्यतमा' इति वदंश्चन्द्रादिसंक्रान्तिषु नाड्यः पुण्या इत्यसूचयत् । 'अतिशायने तमविष्ठिनौ' इति पाणि-निवचनात् । ग्रहः स्वसंक्रान्तिगो मिश्रफलं विधत्ते इति सूर्यादिसंक्रान्तिसाधारणम् । तत्र सकल-संक्रान्तिषु दिनरात्रिविष्णुपदादिभेदेन सूर्यसंक्रमवन्निर्णयो ध्येयः । एतत्संक्रान्तिमान्यता हि गुर्जर देशेऽस्तीत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्तेन । इति सकलग्रहसंक्रांतिपुण्यकालनिर्णयः ॥ ८ ॥

पीताम्बरा—संक्रमण से पूर्वापर की पुण्यकाल की घटिकाएं बताई जा रही हैं—कर्क वृष सिंह, वृश्चिक और कुम्भ की संक्रान्तियों में संक्रमण काल से पहिले की (पीछे की नहीं) १६ घटिकाएँ (६ घण्टा २४ मिनिट) अत्यन्त पुण्यप्रद होती हैं । स्नानदान करने से अत्यन्त फलद होती हैं । तुला मेष संक्रान्तियों में मध्य से दोनों तरफ १६ घटिका पुण्यकाल की होती हैं । (मध्य से ८ घटी पूर्व और ८ घटी पीछे की) ।

मिथुन, कन्या, धनु और मीन तथा मकर राशियों के संक्रमण की पीछे की १६ घटी पुण्यप्रद होती हैं ।

संक्रान्ति स्नान नहीं करने से धार्मिक अपराध होता है । इसलिए स्नानदान पितृश्रा-द्धादिक धर्मकृत्य संक्रान्ति समय में अवश्य करने चाहिए ।

सूर्य संक्रान्ति की तरह चन्द्र मंगल आदिक ग्रहों की संक्रान्तियों में भी पुण्यकाल का उल्लेख जैमिनि ने किया है, जो नीचे के चक्र से स्पष्ट है ।

सू.	चं.	मं	बु.	बृ.	शु.	श.	ग्रहाः
१६	१	४	३	४४	४	८२	घटी
०	१३	१	१४	७	१	७	पल

अर्थात् शनि की संक्रान्तियाँ बड़े लम्बे समय २।। वर्ष में होती हैं तदनुसार १ दिन २२ घ० ७ पल में शनि की संक्रान्ति का पुण्यकाल होता है ।

पीयूष में ग्रहों की गति आदिक चक्र दिये गए हैं । ग्रहगणित विषय के आधार पर विवेचन भी किया है ॥ ८ ॥

अथ रविरयनांशसंक्रांतिकालमभिधायेदानीं सायनांशसंक्रांतिषु पुण्यकालमुपजातिकयाह

तथायनांशाः खरसाहताश्च स्पष्टार्कगत्या विहृता दिनाद्यैः ।
मेषादितः प्राक्चलसंक्रमाः स्युर्दाने जपादौ बहुपुण्यदास्ते ॥ ९ ॥

पीयूषधारा—तथायनांशा इति । यथा राशिसंक्रमाः बहुपुण्यदास्तथा चलसंक्रमा अपीति व्यवथितस्तथाशब्द : अयनांशाः षष्ट्या गुण्याः स्पष्टसूर्यगत्या विहृता लब्धैः दिनाद्यैः दिनघटीपलैः कृत्वा मेषादिद्वादशराशिसंक्रान्तिकालात्प्राक् चलसंक्रमः स्युः । ते चलसंक्रमा दाने ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणादाने जपादौ जपश्राद्धहोमादौ बहुपुण्यदा भवन्ति । तदुक्तं वसिष्ठसिद्धान्ते—'चलसंस्कृततिग्मांशोः संक्रमो यः सुसंक्रमः । अजागलस्तन इव राशिसंक्रान्तिरुच्यते ॥' इति । पुलस्त्यः—'अयनांशयुतो भानुर्गोले चरति सर्वदा । अमुख्या राशिसंक्रान्तिस्तुल्यकालविधिस्तयोः ॥ स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मभिः । सुकृतं चलसंक्रान्तावक्षयं पुरुषोऽश्नुते ॥' इति । जाबालिरपि— 'संक्रान्तिषु यथाकालस्तदयेप्ययने तथा । अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः पराः ॥' इति । अयने चलसंक्रमे अत्र चलसंक्रमाख्ये मकरायणे पूर्वा विंशतिघटिकाः । मकरसंक्रान्तौ तु परा विंशतिघटिकाः पुण्यकालाः । मकरव्यतिरिक्तैकादशचलसंक्रमेषु तत्तत्संक्रमवत्पुण्यकालो ज्ञेय इत्यर्थः इति माधवो व्याख्यत् । अयनांशानयनं तु सूर्यसिद्धान्ते—

'त्रिंशत्कृत्वो युगे भानां चक्रं प्राक्परिलम्बते । तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ताद्द्युगणाद्यदवाप्यते ॥
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः । तत्संस्कृताद्गताल्क्रांतिच्छायाचरदलादिकम् ॥
स्फुटं दृक्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्द्वये । प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात्करणागते ॥
अन्तरांशैरथावृत्य पश्चाच्छेषैस्तथाधिके ।' इति च ।

सांप्रतं सार्धषोडशायनांशा धनं गताः सन्ति । छायार्कात्करणागतस्य सूर्यस्याल्पत्वात् । अत एव प्रागित्युक्तं ग्रन्थकर्त्रा । अत्र प्रागित्युपलक्षणम् । कदाचित्संक्रान्तिकालात्परतोप्ययनांशवशेन च संक्रमसम्भवात् । तथ च 'पश्चाच्छेषैस्तथाधिक' इत्युक्तम् । वेदांगज्योतिषेऽपि—'प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसामुदक् । सार्पार्द्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा ॥' इति । तत्र मेषादिसंक्रान्तिकालस्य सौरसावनघटिकात्मकस्य अयनांशानां च सौम्यायनतुल्यजातीयत्वाद्योगवियोगौ न स्तः इत्ययनांशादीनां करणायानुपातः । यदि सूर्यस्पष्टगतिकलाभिः षष्टिघटिकात्मकं दिनं लभ्यते तदायनांशैः किमिति । तत्रायननांशानां षष्टिगुणकः सूर्यस्पष्टगतिर्भाजक इति उपपन्नम् । लब्धानि सौरसावनदिनानि घटीपलानि । अतस्तुल्यजात्योर्योगो वियोगो वा कार्यः ।

ननु चैकस्यैव सूर्यस्यैकस्मिन्नेव राशौ राशिसंक्रमणं चलसंक्रमणं च कथं भवति, कुतः, स्वकक्षास्थितांशभागस्य द्वादशधा विभक्तस्य राशिरिति संज्ञा, तत्र रविमंडलस्य तत्तद्राश्यादिप्रदेशस्य स्पर्शो राशिसंक्रमणमित्युच्यते । तस्मिन्नेव राशौ चलसंक्रमस्तु कीदृश इति चेत्, शृणु । ईश्वरेच्छालोकादृष्टवशतस्तद्राश्यादिभागस्य सूर्यतेजः सम्पर्कश्चलसंक्रमो मण्डलमध्यसम्पर्कश्च राशिसङ्क्रम इति विवेकः तद्यथा रथ्यां प्राक्पश्चाच्चानीयमानस्य दीपस्याग्रे दीपप्रभा यस्मिन् प्रदेशे गच्छति तस्मिन्नेव प्रदेशे क्षणान्तरे दीपोऽपि गच्छति । एवं सर्वेषां ग्रहाणां चलसङ्क्रमा द्रष्टव्याः । एवं चलसङ्क्रमस्य मुख्यत्वमुक्तं शिरोमणिसिद्धान्ते—'दिनरात्रिप्रमाणानां निर्णयो न न भसङ्क्रमात् । यतः सकलकर्माणि पुण्यतश्चलसङ्क्रमः ॥'

अथ सायनसङ्क्रमणस्य सर्वत्र नोपयोगः—

नन्वेवमयनसङ्क्रमस्य मुख्यत्वे तेन मानेन पञ्चाङ्गगणना स्यात्। चन्द्रादीनामप्ययनचलनदर्शनात्। न च सायनांशाभ्यां निरयणांशाभ्यां वा सूर्यचन्द्रमोभ्यां तिथेस्तुल्यत्वादस्तु पञ्चाङ्गगणनेति वाच्यम्। अश्विन्यादिभानां विष्कम्भादियोगानां च विसंवादात्। किं च सायनसङ्क्रमरहितस्य चान्द्रमासस्याधिमासत्वव्यवहारप्रसङ्गः। तथा तादृक्सङ्क्रान्तिद्वययुतस्य क्षयमासत्वव्यवहारप्रसङ्गः, विवाहादौ च सौरमासगणनाप्यनेनापि मानेन स्यादिति चेत्, उच्यते सायनसङ्क्रमस्तु पुण्यकालार्थमेवोपयुज्यते न सर्वत्र स्नानदानजपश्राद्ध इति परिगणितविषयकपुलस्त्यवाक्यालोचनात्। तेन पञ्चाङ्गगणना न्यूनाधिमाससौरमासादिकमप्यनेन मानेन भवति। तथा सति यात्रादिमुहूर्तेषु भरणीव्यतीपातादिदुष्टयोगानां गुरुपुष्यादिदुष्टयोगानां च व्यवहारो निरयणेनैवोपपद्यते, न सायनेन। सायनगणनया सर्वथा ग्रहणविसंवादः। तद्यथा षोडशोत्तरपञ्चदश—१५१६ मिते शालिवाहनशककाले वैशाखशुक्लपूर्णिमायां। पञ्चत्रिंशन्नाडीमितायामिन्दूपराग उपलब्धः। तत्र चन्द्रः ६। २६। २८ राहुः १३।५८ अत्र निरयणगणनया शराङ्गुलानि १२, मानैक्यखण्डम् २०, ग्रासाङ्गुलानि ८। यद्यत्रायनांशाश्चन्द्रे योजयित्वा शरआनीयेत तदा शराङ्गुलादि ३० अस्य मानैक्यखण्डाधिक्याद्ग्रहणं नायातीति सर्वजनप्रत्यक्षविसम्वादः। सायनगणनया त्वयोग्येऽपि काले ग्रहणोपलम्भः स्यात्। अन्यच्च स्पष्टीकरणेन साधितो भौमादिग्रहो यन्नक्षत्रे गणितेनागतस्तन्नक्षत्रसमीप एवोपलभ्यते प्रत्यक्षतः। सायनत्वे हि ग्रहः कदाचिदेकनक्षत्रे द्वयातरे वा प्रलीयते। सूर्यचन्द्रयोस्तु तेजोबाहुल्यान्नक्षत्र तेजः परिभवात्तन्नक्षत्रसन्निधौ उपलम्भाभावो यद्यपि तथापि कदाचित्क्षीणचन्द्रस्याप्युपालम्भो दृश्यते। एवं संहितासु मीनशनैश्चरादिविषयकदुष्टफलानि चैकराश्यवस्थितग्रहयोगफलानि च निरयणेनैव। तदा वृद्धवसिष्ठसंहितायाम्—'षट्पौष्णभाद्द्वादश रौद्रधिष्ण्यासुराधिसङ्घानि नव क्रमेण। पूर्वार्धमध्यापरमातदूर्ध्वं भुंक्तेऽखिलव्योमचरास्तथैव ॥' इति ग्रहाणां पूर्वार्द्धमध्यापरभागयोग्यत्वमपि निरयणेनैवोपलभ्यते तस्मान्निरयणगणनयैव सर्वोऽपि व्यवहारो युक्तः। ननु सायनगणना दत्ततिलाञ्जलिरिति चेत्, उच्यते। सायनगणना हि नियतविषया। उक्तं—'अयनांशाः प्रदातव्या लग्ने क्रान्तौ चरागमे। सत्रिभे वित्रिभे पाते तथा दृक्कर्मपातयोः ॥' इति। सूर्यसिद्धान्तेऽपि—'तत्संस्कृताद्ग्रहात्क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम्। स्फुटं तत्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्वये ॥' इति। आदिशब्देन लग्नम्। अतोऽयनांशानां वासनासिद्धनियतविषयत्वाद्द्वयोरपि मानयोरसङ्कीर्णो व्यवहार इति सर्वमनाकुलम्। पुण्यकालस्तूभयविधसङ्क्रमेऽपि ज्ञेयः। पूर्वलिखितवसिष्ठादिवाक्यस्वरसात्। यत्तु वसिष्ठसिद्धान्ते—'पुण्यदां राशिसङ्क्रान्तिं केचिदाहुर्मनीषिणः। नैतन्मम मतं यस्मान्न स्पृशेत्क्रान्तिकक्षया ॥' इति। तदयनसङ्क्रमपुण्यकालातिस्तुतिपरं न तु राशिसङ्क्रान्ति पुण्यकालनिराकरणार्थम्। अन्यथा—'दिनपतिसङ्क्रमात्प्राक्षोडश नाड्यश्च पुण्यकालः। परतः षोडश नाड्यः सर्वत्र स्नानदानकार्येषु ॥' इति स्वसंहितोक्तराशिसङ्क्रमणपुण्यकालप्रतिपादकवचनस्यानेन सह विरोधो दुष्परिहारः स्यादित्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ९ ॥

पीताम्बरा—निरयण संक्रान्तियों के पुण्यकाल कथन के अनन्तर सायनसंक्रान्तियों का पुण्यकाल बताया जा रहा है—अयनांश को ६० से गुणा कर स्पष्ट रविगति से भाग देकर

लब्धि दिन घटी के तुल्य मेषादि निरयण संक्रान्ति के पहिले मेषादि सायन संक्रान्तियाँ होती हैं। ग्रन्थकार के मत से ये सायन संक्रान्तियाँ दान और जप के लिए बहुत पुण्यप्रद होती हैं।

सायन और निरयण विषय पर इस प्रकरण के प्रारम्भ में ही विचार किया गया है। आधुनिक ग्रहगणित के विकसित युग में उक्त ९ श्लोक के गणित से सायन संक्रान्तियों के ज्ञान की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती क्योंकि पञ्चाङ्गों के प्रत्येक पक्षों में दैनिक नहीं तो साप्ताहिक अयनांश तथा बारहों (दृश्य) सायन संक्रान्तियों का भी समय दिया रहता है।

ग्रन्थकार के "बहुपुण्यदास्ते" वाक्य से गन्थकार दृश्य पञ्चागों का समर्थक हैं ऐसा मेरा अनुमान हैं।

उक्त पीयूषधारा टीका में टीकाकार के गणित गोलज्ञान में सन्देह होता है। जैसे उसने अपने एक उदाहरण से बताया है कि १५१६ शक में वैशाख शुक्ल पूर्णिमा ३५ घटी में चन्द्रग्रहण उपलब्ध हुआ। वहाँ चन्द्रमा = ६। २६। २८ राहु = १३। ५८ यहाँ निरयण गणना से शरांगुल = १२ मानैक्य खण्ड = २०, ग्रासमान = ८ आता है। यदि चन्द्रमा में अयनांश जोड़कर शर साधन किया जाता है तो शर = ३० आता है जो मानैक्य खण्ड से २० से अधिक शर में चन्द्रग्रहण की असम्भव स्थिति का ज्ञापक है और जो गणित प्रत्यक्ष देखे गए ग्रहण का विरोध भी प्रत्यक्ष है।

पीयूष टीकाकार आचार्य ने जिस प्रकार चन्द्रमा को सायन किया उसी प्रकार राहु को भी अयनांश संस्कृत करना चाहिए था, क्योंकि स्थिर सम्पातीय ग्रहों से जो उपलब्धि होती है ठीक वही उपलब्धि चल सम्पातीय ग्रहों से भी होगी। स्पष्ट है कि टीकाकार को गणित गोलज्ञान को देखने से उसके ऐसे कथन से आचार्य को बुद्धि भ्रम हो गया था।

या, "पीयूषकार" की इस स्थल की उक्त त्रुटि से विदित होता हैं कि ग्रहगणित गोल विषय में उसकी प्रगति किसी लघु सीमा तक ही सीमित थी।

गुरूणां गुरु-गणकचक्रचूडामणि महामहोपाध्याय श्री पं० सुधाकर द्विवेदी ने भी स्वरचित गणक तरङ्गिणी में पीयूषधारा टीकाकार के उक्त दोष की सम्यक चर्चा की है।

(मेरे परम आराध्य त्रिस्कन्ध ज्यौतिषमर्मज्ञ पूज्यपाद श्री १०८ गुरुवार श्री पं० बलदेव जी पाठक के गुरुदेव श्री सुधाकर द्विवेदी थे। सुधाकर द्विवेदी के १७१ ग्रन्थ आज भी विश्व के गणितज्ञों में समादरित हैं वे स्वयं गुरूणां गुरु हो चुके, अतः पीताम्बरा टीकाकार, पं० सुधाकर जी के लिए गुरूणां गुरु शब्द का प्रयोग करना यथार्थ समझता है,) ॥ ९ ॥

अथ संक्रान्त्युपयोगित्वाज्जघन्यबृहत्समनक्षत्राण्युपजातिकयाह—

समं मृदुक्षिप्रवसुश्रवोऽग्निमघात्रिपूर्वास्रपभं बृहत्स्यात्।
ध्रुवद्विदैवादितिभं जघन्यं सार्पाम्बुपार्द्रानिलशाक्रयाम्यम् ॥ १० ॥

पीयूषधारा—सममिति। मृदूनि मृगरेवत्यनुराधाचित्राः, क्षिप्राणि अश्विन्यभिजित्पुष्यहस्ताः, वसुर्धनिष्ठा, श्रवः श्रवणम्, अग्निः कृत्तिका, मघा प्रसिद्धा, त्रिपूर्वाः पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढापूर्वाभाद्रपदाः, अस्रपो राक्षसः 'राक्षसः कौणपः क्रव्यात् क्रव्यादोऽस्रप आशरः।' इत्यमरः। तस्य भंमूलम्, अत्र समाहारद्वंद्वः। एतानि पञ्चदश भानि समसंज्ञानि, ध्रुवाणि रोहिणी,

त्र्युत्तराः, द्विदैवं विशाखा, अदितिभं पुनर्वसुः, एतानि षड्भानि, बृहत्संज्ञानि, । सार्पमाश्लेषा, अम्बुपः शततारका, आर्द्रा प्रसिद्धाः अनिलः स्वाती, शाक्रं ज्येष्ठा, याम्यं भरणी एतानि षड्भानि जघन्यसंज्ञानि । उक्तं च नारदेन—'तारा जघन्या सार्पेंद्रा वातार्द्रांतकतोयपाः । ध्रुवादितिदैवत्यं बृहत्ताराः पराः समाः ॥' इति । वसिष्ठेनापि—'जघन्यधिष्ण्यानि जलेशसर्प्परौद्रेन्द्रयाम्यानिलदैवतानि । अध्यर्द्धधिष्ण्यान्यदितिद्विदेव स्थिराणि शेषर्क्षसमाह्वयानि ॥' इति ॥ १० ॥

पीताम्बरा—संक्रान्ति फलोपयोग के लिए नक्षत्रों की जघन्य, बृहत् और समसंज्ञा बताई जा रही है—मृदुसंज्ञक, क्षिप्रसंज्ञक, धनिष्ठा, श्रवण, कृतिका, मघा, तीनों पूर्वा और मूल इन १५ नक्षत्रों की सम संज्ञा है । ध्रुवसंख्यक विशाखा और पुनर्वसु इन ६ नक्षत्रों की बृहत्संज्ञा है । भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाती, ज्येष्ठा और शतभिषा इन ६ नक्षत्रों की जघन्य संज्ञा है ॥१०॥

अथ संज्ञाप्रयोजनमुपेंद्रवज्रयाह—

जघन्यभे संक्रमणे मुहूर्ताः शरेन्दवो १५ बाणकृता ४५ बृहत्सु ।
खराम ३० सङ्ख्याः समभे महर्घसमर्घसाम्यं विधुदर्शनेऽपि ॥ ११ ॥

पीयूषधारा—जघन्यभ इति । जघन्यनक्षत्रे यदि संक्रमणं तदा शरेन्दवः पञ्चदश मुहूर्त्ता ज्ञेयाः । बृहन्नक्षत्रे संक्रमणे सति बाणकृताः पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता ज्ञेयाः । समनक्षत्रे संक्रमणे सति खरामसङ्ख्यास्त्रिशन्मुहूर्त्ता ज्ञेयाः । उक्तं च नारदेन—'तासां प्रमाणं घटिकास्त्रिशन्नवतिषष्टयः' इति । अतएव त्रिशद्घटिकाः पन्चदश मुहूर्त्ता नवति घटिकाः पन्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः स्युरित्यर्थः । अस्य फलमुच्यते । महर्घसमर्घसाम्यमिति । यदा पन्चदश मुहूर्त्ता संक्रान्तिस्तदा सर्वमन्नं महर्घं दुर्लभं भवति । पन्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः संक्रान्तिस्तदा समर्घं सुलभमन्नम् । यदा तु त्रिशन्मुहूर्त्ता संक्रान्तिस्तदा साम्यं न महर्घं समर्घमपि न किन्तु यथास्थितमित्यर्थः । इदं तु मुहूर्तानां न्यूनाधिकसमभावाज्जायते । उक्तं च संवित्प्रकाशे—'मुहूर्त्ताः पन्चभूतुल्या जघन्यानां पराभिधाः । बृहतां पन्चवेदास्ते समानां ते खवह्नयः ॥ पन्चेन्दुषु मुहूर्तेषु दुर्भिक्षं रविसंक्रमे । पंचाब्धिषु समर्घं स्यात्त्रिशत्सु समता मता ॥' इति । विधुदर्शनेऽपीति । चन्द्रदर्शने प्यवमेव फलं अयमर्थः । यदि जघन्यनक्षत्रे चन्द्रोदयस्तदा महर्घम् । बृहन्नक्षत्रे यदि चन्द्रोदयस्तदा समर्घम् । वाच्यम् । समनक्षत्रे चन्द्रोदयस्तदा साम्यमन्नस्य । उक्तं च रत्नमालायाम्—'बृहत्सु धान्यं कुरुते समर्घं जघन्यधिष्ण्याभ्युदितो महर्घम् । समेषु धिष्ण्येषु समं हिमांशुर्वदन्त्यसंदिग्धमिदं महान्तः ।' वसिष्ठोऽपि—'ज्ञात्वैवमेवं मणिजीवधातुमूलोर्णकर्पूररसादिकानाम् । अर्घं वदेज्ज्यौतिषकः प्रजानां समर्घवस्तूत्तमसंग्रहार्थम् ॥' इति ॥ ११ ॥

पीताम्बरा—**जघन्यादिक संज्ञाफल**—जघन्यसंज्ञक नक्षत्रों में संक्रान्ति होने से १५ मुहूर्त की संक्रान्ति समझनी चाहिए । ऐसे १५ मुहूर्त की संक्रान्ति के मास में अन्न आदिक की प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है अर्थात् अन्न बहुत मँहगे हो जाते हैं ।

यदि बृहत्संज्ञक नक्षत्रों में रवि संक्रान्ति होती है तो मुहूर्त संख्या ४५ होने से अन्न सस्ते और सुलभ होते हैं ।

और समसङ्ज्ञक नक्षत्रों की संक्रान्ति के ३० मुहूर्तों में बाजार में अन्न सामान्य (न

सस्ते न मँहगे) रहते हैं। नक्षत्र सम्बन्ध से संक्रान्ति के अन्नों की दुर्लभ, सुलभ, और सामान्य स्थितियाँ सही घटती हैं। अन्नों की तेजी मन्दी की यह पूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

क्रान्ति वृत्त के $\frac{३६०}{२७}$ = १३°।२०′ में एक नक्षत्र का मान होता है। नक्षत्र बिम्बोपरिगत कदम्बप्रोत बृत्त का क्रान्ति वृत्त के साथ जहाँ सम्पात होता है मेषादि से उस बिन्दु तक उस नक्षत्र का राश्यादिक ध्रुवक होता है। इस प्रकार आसन्न दो नक्षत्रों का राश्यादिक अन्तर उस-उस नक्षत्र का भोग होगा। उक्त पद्य में कथित समसंज्ञक नक्षत्रों का भोग मान प्रायः चन्द्रमा की गति के तुल्य होने से उक्त नक्षत्रों की समसंज्ञक चन्द्रगति से अधिक भोग होने से ध्रुव संज्ञक विशाखा····आदि की बृहत्संज्ञा तथा आश्लेषार्द्रा····नक्षत्रों का मान प्रायः चन्द्रगति के आधे तक से कम होने से इन नक्षत्रों की जघन्य (अधम) संज्ञायुक्ति युक्त कही गई है।

अतः चन्द्रगतिकला तुल्य भोग नक्षत्र = समसंज्ञक नक्षत्र।

$$\text{चंद्रगतिकला से अधिकभोग नक्षत्र} = \frac{३ \times \text{चंद्रगति कला}}{२} = \text{बृहत्संज्ञक नक्षत्र}$$

$$\text{तथा चंद्रगति कला से कम भोग नक्षत्र} = \frac{\text{चंद्रगति कला}}{२} = \text{जघन्य संज्ञक नक्षत्र}$$

त्रैराशिक से चन्द्रगतिकला में ६० धटिका की उपलब्धियों में ३० मुहूर्तों की उपलब्धि होती है तो सम बृहत् और जधन्य संज्ञक नक्षत्रों के भोग कलाओं में क्रमशः—

$$\frac{३० \times \text{चंद्रगतिकला}}{\text{चंद्रगतिकला}} = ३० \text{ मुहूर्त} \quad \Big| \quad \frac{३० \times \text{चंद्रगतिकला } ३}{\text{चंद्रगतिकला} \times २} = ४५ \text{ मुहूर्त} \quad \Big| \quad \frac{३० \times \text{चंद्रगतिकला}}{२ \times \text{चंद्रगतिकला}} = १५ \text{ मुहूर्त}$$

"मुहूर्तो घटिका द्वयमिति" दो घटी का एक मुहूर्त होता है अतः भोग घटी मान में दो से भाग देने से मुहूर्तमान होते हैं। अतः समसंज्ञक नक्षत्रों में ३०, बृहत्संज्ञक नक्षत्रों में ४५, जघन्य संज्ञक नक्षत्रों की संक्रान्ति में १५ मुहूर्त उक्तविधि से स्पष्ट है ॥ ११ ॥

अथ प्रसङ्गात्कर्कसंक्रान्तावब्दविंशोपकाननुष्टुभाह—

अर्कादिवारे सङ्क्रान्तौ कर्कस्याब्दविंशोपकाः।
दिशो नखा गजाः सूर्या धृत्योऽष्टादश सायकाः ॥ १२ ॥

पीयूषधारा—अर्कादिवारे इति। कर्कसंक्रान्तौ सूर्यादिवारे सत्यामेते वक्ष्यमाणा अब्दविंशोपका ज्ञेयाः। तद्यथाः रविवारे दश, सोमवारे विंशतिः, बुधे द्वादश, गुरौ धृत्यौऽष्टादश, शुक्रेऽप्यष्टादश, शनिवारे कर्कसंक्रान्तौ सत्यामब्दविंशोपकाः सायकाः पञ्चेत्यर्थः ॥ १२ ॥

पीताम्बरा—कर्क संक्रान्ति में ७ वारों के अनुसार बर्ष विंशोपक बताए जा रहे हैं— विंशोपक शब्द् पूर्ण बल से तात्पर्य रखता है। लग्न आदि के पूर्ण बली होने पर २० संख्या से उसका उद्बोधन होता है न्यूनाधिक होने से लग्नहीन वल मध्यबल आदि शब्दों से उच्चरित किया जाता है। ऐसे ही यहाँ पर सात वारों में प्रत्येक वार की संक्रान्ति का बल विंशोपक शब्द से समझाया जा रहा है।

रविवार के दिन सूर्य संक्रान्ति होने से विंशोपक १०, सोमवार में २०, मंगल में ८, बुध में १२, बृहस्पति में १८, शुक्र में १८, और शनिवार की रवि संक्रान्ति में विंशोपक ५ ही होता है।

फलतः सोम, बुध, बृहस्पति, और शुक्रवार की कर्क संक्रांतियों में वर्ष में सुभिक्ष, रविवार को कर्क संक्रान्ति में साधारण स्थिति, मंगल और शनिवार की कर्क संक्रान्तियों में वर्ष विशेष शुभद नहीं होगा ॥ १२ ॥

अथ कीदृशस्य रवेः संक्रमो जातस्तत्फलमिद्रवज्रयाह—

स्यात्तैतिले नागचतुष्पदे रविः सुप्तो निविष्टस्तु गरादिपञ्चके।
किंस्तुघ्न ऊर्ध्वः शकुनौ सकौलवे नेष्टः समः श्रेष्ठ इहार्घवर्षणे ॥ १३ ॥

पीयूषधारा–स्यादिति—करणानि व्याख्याने मयोक्तानि तत्र रविः तैतिल–नाग–चतुष्पदाख्यकरणेषु सुप्तः सन् संक्रमितः स्यात्। गरादिपञ्चके गर–वणिज–भद्रा–बवबालवाख्यकरणेषु निविष्टः उपविष्टः सन् संक्रमितः स्यात्। किंस्तुघ्नशकुनिकौलवाख्यकरणेषु ऊर्ध्वमूर्ध्वस्थितः सन् संक्रमितः स्यात्। इह करणाधिकरणसंक्रान्तौ रविः अर्घवर्षणे अर्घे मूल्ये वर्षणे वृष्टौ अनयोरुपलक्षणत्वाद्धान्येऽपि क्रमान्नेष्टः समः श्रेष्ठश्च स्यात्। अयमर्थः–सुप्तरविसंक्रमोऽर्घवर्षणधान्येष्वनिष्टः महर्घवृष्टयभावाद्धान्याभावकारको भवति। एवं निविष्टरविसंक्रमोऽर्घवर्षणधान्येष्वनिष्टः समो न शुभो नाप्यशुभः। तथोर्ध्वरविसंक्रमार्घवर्षणधान्येषु श्रेष्ठः। समर्घवृष्टिबाहुल्यकारक इति उक्तं च नारदेन।

'निविष्टो वणिजे विष्टयां बालवे च बवे गरे। कौलवे शकुनौ भानुः किंस्तुघ्ने चोर्ध्वसंस्थितः ॥
चतुष्पात्तैतिले नागे सुप्तः कान्ति करोति सः। धान्यार्घवृष्टिषु समं श्रेष्ठं हीनं भवेत्क्रमात् ॥

चतुष्पदे तैतिलनागयोश्च सुप्तो रविः संक्रमणं करोति।
विष्टयां बवाख्ये च गराह्वये च सबालवाख्ये वणिजे निविष्टः ॥
किंस्तुघ्ननाम्नि शकुनावपि कौलवाख्ये चोर्ध्वस्थितस्य खलु संक्रमणं रवेः स्यात्।
धान्यार्घवृष्टिषु भवेत्क्रमशस्त्वनिष्टमध्येष्टतेति मुनयः प्रवदन्ति पूर्वे ॥' इति।
अस्यान्यदपि फलमग्रे वक्ष्यति ॥ १३ ॥

पीताम्बरा—करणों के सम्बन्ध की संक्रान्तियों का शुभ फल कहा जा रहा है— यदि सूर्य सङ्क्रमण तैतिल नाग और चतुष्पद करणों में हो तो सूर्य सुप्त होता है उस मास में अन्न महंगे और वृष्टि की भी कमी या बाहुल्य से हानि होती है।

यदि सूर्य संक्रमण गर-वणिज, भद्रा, बव और बालव करणों में हो तो सूर्य उपविष्ट बैठा होता है उस मास में न समता और न महंगा साधारण स्थिति (वृष्टि की भी) होती है।

तथा यदि सूर्य सङ्क्रमण-किंस्तुघ्न शकुनि और कौलव करणों में हो तो सूर्य ऊर्ध्वस्थिति उठा हुआ होता है उस मास में वृष्टि के साथ-साथ खेती भी अच्छी होती है। धान्यवृद्धि होती है ॥ १३ ॥

अथ रविसंक्रान्तेः करणपरत्वेन वाहनवस्त्रायुधभक्ष्यलेपनजातिपुष्पाणि सफलानि शार्दूलविक्रीडितत्रयेणोपजातिकया चाह—

सिंहव्याघ्रवराहरासभगजा वाहद्विषद्घोटकाः
श्वाऽजो गौश्चरणायुधश्च बवतो वाहा रवेः संक्रमे ।
वस्त्रं श्वेतसुपीतहारितकपाण्डवारक्तकालासितं
चित्रं कम्बलदिग्घनाभमथ शस्त्रं स्याद्भुशुण्डी गदा ।। १४ ।।
खड्गो दण्डशरासतोमरमथो कुन्तश्च पाशोऽङ्कुशो-
ऽस्त्रं बाणस्त्वथ भक्ष्यमन्नपरमान्नं भक्षपक्वान्नकम् ।
दुग्धं दध्यपि चित्रितान्नगुडमध्वाज्यं तथा शर्करा-
थो लेपो मृगनाभिकुङ्कुममथो पाटीरमृद्रोचनम् ।। १५ ।।
यावश्चोतुमदो निशाञ्जनमथो कालागुरुश्चन्द्रको
जातिर्दैवतभूतसर्पविहगाः पश्वेणविप्रास्ततः ।
क्षत्रो वैश्यकशूद्रसङ्करभवाः पुष्पं च पुंनागकं
जातीबाकुलकेतकानि च तथा बिल्वार्कदूर्वाम्बुजम् ।। १६ ।।
स्यान्मल्लिका पाटलिका जपा च
सङ्क्रान्तिवस्त्राशनवाहनादेः ।
नाशश्च तद्वृत्त्युपजीविनां च
स्थितोपविष्टस्वपतां च नाशः ।। १७ ।।

पीयूषधारा—सिंहेति—बवतो ल्यब्लोपे पञ्चमी । बवमारभ्य सप्त चरकरणानि । स्थिराणि चत्वारि शकुन्यादीनि । एतेष्वेकादशसु करणेषु क्रमेण वाहनानि वस्त्राणि तथाऽयुधानि भक्ष्याणि लेपनानि जातयः पुष्पाणि च ज्ञेयानीत्यर्थः ।

वाहनानि तावत्—

तत्र वाहनानि—सिंहव्याघ्रौ प्रसिद्धौ, वराहः सूकरः रासभो गर्दभः, गजो हस्ती, वाहद्विषत् महिषः, लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः । घोटकोऽश्वः, श्वा कुक्कुरः, अजो मेषः, गौः वृषः, चरणायुधः कुक्कुटः, एतान्येकादशकरणेषु वाहनानि । एवं वस्त्रादीन्यपि व्याख्येयानि । तदाह कश्यपः—'सिंहशार्दूलवाराहकुञ्जरा महिषस्तथा । तुरगश्चाजवृषभकुक्कुटाश्च बवादिषु । तिथ्यर्धजेषु संक्रान्तिवाहनानि यथाक्रमात् ।' तिथ्यर्धकरणे नारदेन तु विशेषोऽभिहितः—'खशबाह्लीकवङ्गेषु संक्रान्तेर्धिष्ण्यवाहनम् । अन्यदेशेषु तिथ्यर्द्धवाहनं स्युर्बवादयः ।।' इति । यदि संक्रान्तिरश्विन्यां तदाश्विन्या योनिरश्वस्तद्वाहनं स्यात् । खशबाह्लीकवङ्गदेशेषु । एवं सर्वनक्षत्रेषु ध्येयम् । अमुमर्थं स्पष्टमाह कश्यपः—'भयोनिवाहनं वङ्गबाह्लीकविषये खशे' इति । अतोऽन्यदेशेषु करणैरेव वाहननिर्णय इत्यर्थः ।

वस्त्रमुच्यते—

श्वेतं शुभ्रं सुपीतं प्रसिद्धं, हारितकं नीलवर्णं, पाण्डुरम् अरुणवर्णम्, आरक्तमलक्तकवर्णं, कालं श्यामवर्णम्, असितं कज्जलवर्णं, चित्रमनेकवर्णं, कम्बलः प्रसिद्धः, दिग्वस्त्राभावो नग्नत्वमित्यर्थः । घनाभं घनवर्णम् । उक्तञ्च—'श्वेतपीतहरितपाण्डुकरक्तश्यामवणमसितं बहुवर्णम् । कम्बलो विवसनाम्बुदवर्णान्यंशुकानि च रवेः करणेषु ।।'

शस्त्रमुच्यते—

तत्र भुशुण्डयादीन्येकादशायुधानि प्रसिद्धानि, शरासो धनुः, यदाहतुर्नारदकश्यपौ—भुशुण्डीभिन्दिपालासिदण्डकोदण्डतोमरान् । कुन्तपाशाङ्कुशास्त्रेषून्बिभर्त्ति करणेष्विनः' भिन्दिपालं गदा, इषुर्बाणः ।

भक्ष्यमुच्यते—

तत्रान्नं मोदकादि, परमान्नं पायसं, भैक्षं भिक्षाणां समूहो भैक्षम्, 'भिक्षादिभ्योऽण् । संन्यासिवद्गृहे गृहे गत्वा यत्किंचिदन्नं प्राप्यते तद्भैक्षमुच्यते, पक्वान्नकं अपूपादि, दुग्धं दधि च प्रसिद्धमेव, चित्रितान्नम् बहुभिस्तण्डुलमुद्गमसूरिकाहरिद्रादिभिः पक्वमन्नम्, गुडमध्वाज्यशर्कराः प्रसिद्धाः । उक्तं च नारदेन—'अन्नं च पायसं भैक्षमपूपञ्च च पयो दधि । चित्रान्नगुडमध्वाज्यशर्करा च बवाद्रविः' ।

लेपः—

लेपो विलेपनमुच्यते । तत्र मृगनाभिः कस्तूरी, कुंकुमं प्रसिद्धम्, पाटीरं रक्तचन्दनम्, मृत्प्रसिद्धा, रोचनं गोरोचनम्, यावोऽलक्तकः, आतुमदो मार्जारधर्मः; दक्षिणदेशभाषया जव्वादीत्युच्यते । निशा हरिद्रा, अञ्जनं स्रोतोञ्जनं, सुरमेति भाषायाम् । कालागुरुः अगरुविशेषः, चन्द्रकः कर्पूरः, उक्तं च—कस्तूरिकाकुंकुमचन्दनं मृद्गोरोचनं यावक ओतुधर्म्मः । निशांजनं चागुरुरिन्दुरेभिर्विलेपनं सङ्क्रमणो ववात्स्यात् ।

अथ जातिरुच्यते—

दैवतादयो दश प्रसिद्धाः, संकरभवाः अनुलोमजाः प्रतिलोमजाश्च । उक्तं च—'देवभूताहिविहगाः पशवो मृग एव च । ब्राह्मणक्षत्रियौ वैश्या शूद्रा मिश्रा बवादिषु ।। तज्जातीया विनश्यन्ति षण्मासाभ्यन्तरे ध्रुवम् ।' इति ।

पुष्पाणि वयश्च—

पुष्पाण्युच्यन्ते । पुन्नागकं नागकेसरवृक्षस्य पुष्पं जात्यादीन्यम्बुजातानि प्रसिद्धानि, मल्लिका वेलिः, पाटलिका पाडलिः, जपा ओंड्रपुष्पम् । उक्तं च—'पुन्नागजातिर्बहुला सुकेतकी बिल्वार्कदूर्वाशतपत्रमल्लिकाः । ततो भवेत्पाटलिका जपा ततः पुष्पाणि सूर्यस्य बवादिषु क्रमात् ।।' शतपत्रं कमलम् । क्वचिद्वयोऽप्युक्तम्—

'शिशुः कुमारश्च गतालका युवा प्रौढा प्रगल्भा च ततश्च वृद्धा ।
वन्ध्यातिवन्ध्या च सुतार्थिनी च प्रव्राजिका चेति बवादिकानाम् ।।
यद्यद्वयोऽनुरूपं स्यात्तस्य तस्य महद्भयम् ।।' इति ।

अवस्थाः—क्वचिदवस्था अप्युक्ताः 'पन्थाश्च भोगो रतिहास्यदुर्मुखी ज्वरान्विता भुक्तसुकम्पिता मता । ध्यानस्थिता कर्कशवृद्धरूपा बवाद्यवस्थाः कथिता मुनीन्द्रैः ।

संक्रान्तेरुक्तद्रव्यनाशः—

एवं च सङ्क्रमकाले यानि वस्त्राशनवाहनादीन्यभिहितानि । आदिशब्देनायुधलेपनजातिपुष्पाणि तेषां नाशो भवेत् । च पुनस्तद्वृत्त्युपजीविनां नाशो भवेत् स्थितोपविष्टस्वपतां च स्यात्तैतिले इत्यादिना सुप्तत्वादीन्युक्तानि यानि तद्गुणविशिष्टानां नाशः स्यादित्यर्थः । उक्तं च नारदेन—'आयुधं वाहनाहारो यज्जातीयं धनं च यत् । सुप्तोपविष्टतिष्ठंतस्ते लोकाः क्षयमाप्नुयुः ।।' इति ।। १४–१७ ।।

	शुक्लपक्षतिथय		कृष्णपक्षतिथय											
	पूर्वदलं	परदलं	पूर्वदलं	परदलं	करणानि	स्थितिः	वाहनं	वस्त्रं	आयु०	भक्ष्यं	लेपनं	जातिः	पुष्पं	वयः
चलकरणानि	५ १२	१८ १५	४ ११	७ ०	बव	उपविष्टः	सिंहः	श्वेतं	भुशुं०	अन्नं	कस्तू	दैवतं	पुन्ना०	बाला
	२ ९	५ १२	१ ८	४ ११	बालव	उपविष्टः	व्याघ्र	पीतं	गदा	पाय०	कुकुम	भूतः	जाती	कु०
	६ १३	२ ९	५ १०	१ ८	कौलव	ऊर्ध्वः	वराहः	नीलं	खड्गः	भैक्षं	रक्त०	सर्पः	बकुल	गदा
	३ १०	६ १३	२ ९	५ १२	तैतिल	सुप्तः	गर्दभः	अरुणं	दंडः	पक्वा०	मृद्	पक्षी	केतकं	युवा
	७ २४	३ १०	६ १३	२ ९	गर	उपवि०	गजः	आर०	धनुः	दुग्धं	गौरो०	पशुः	बिल्वः	प्रौढा
	४ ११	७ १४	३ १०	६ १३	वणिज	उपवि०	महिष	श्यामं	तोमर	दधि	अल०	मृगः	अर्क०	प्रग०
	८ १५	४ ११	७ १४	३ १०	भद्रा	उपविष्टः	अश्वः	कृष्णं	कुन्तः	चि०	ओतु०	विप्रः	दूर्वा	वृद्धा
स्थिरकणानि	०	०	०	१४	शकुनि	ऊर्ध्वः	श्वा	चित्रं	पाशः	गुडः	हरिद्रा	क्षत्रिय	कमलं	बंध्या
	०	०	३०	०	चतुष्पदः	सुप्तः	मेषः	कंबलं	अंकुश	मधुः	अञ्जनं	वैश्यः	मल्लि०	अति०
	०	०	०	३०	नाग	सुप्तः	वृषः	नग्ना	अस्त्रं	आज्यं	अगरु	शूद्र	पाट०	सुता०
	१	०	०	०	किंस्तुघ्न	ऊर्ध्वः	कु०	श्यामं	बाणः	शर्करा	कर्पूर	सङ्कर	जपा	प्रव्रा०

पीताम्बरा—करण के आधार से संक्रान्तियों के सफल वाहन, वस्त्र, आयुध, भक्ष्य, लेपन, जाति और पुष्प बताये जा रहे हैं—तिथि वार नक्षत्र योग और करण फलादेश के ये मुख्य पांच अंग, पञ्चङ्ग कहे जाते हैं। स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमा, तथा स्पष्ट सूर्य चन्द्रमा की गतियों के ज्ञान के अनन्तर तिथि नक्षत्र और योग का ज्ञान होता है। तिथियों के ज्ञान के अनन्तर तिथि की भोग तुल्य घटिकाओं का आधा करण होता है। करणों में ७ करण चल और ४ करण स्थिर होते हैं। (१) बव (२) बालव (३) कौलव (४) तैतिल (५) गर (६) वणिज और (७) विष्टि या भद्रा ये सात चल करणों के तथा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध में (१) शकुनि, अमावस्या के पूर्वार्ध में (२) चतुष्पद, अमावस्या के उत्तरार्ध में (३) नाग एवं शुक्लपक्ष प्रतिपदा के पूर्वार्ध में (४) किंस्तुघ्ननामक ये ४ स्थिर करण कहे गये हैं।

१२ संक्रान्तियों में प्रत्येक संक्रान्ति जिन अभीष्ट समयों में होती हैं उन अभीष्ट समयों में उक्त चर, स्थिर करणों मे जो करण हो तदनुसार संक्रान्ति का शुभाशुभ वाहन वस्त्र........ आदि का विचार किया जाता है।

बव आदिक ११ करणों में संक्रान्ति के वाहन क्रमशः—(१) सिंह, (२) व्याघ्र, (३) वराह, (४) गर्दभ, (५) हाथी, (६) भैंसा, (७) घोड़ा, (८) कुत्ता, (९) बकरी (मेढा) (१०) वृषभ, (११) कुकुट (मुर्गा) होते हैं।

बवादिक करणों में संक्रान्ति के, (१) श्वेत, (२) पीला, (३) हरा, (४) पाण्डुवर्ण, (५) लाल, (६) काला, (७) कज्जल वर्ण, (८) अनेक रङ्ग का, (९) कम्बल, (१०) दिग्वस्त्र (११) मेघ वर्ण के वस्त्र होते हैं।

बवादिक ११ करणों में संक्रान्ति के—(१) भुशुण्डी, (२)गदा, (३) खड्ग, (४) दण्ड, (५) धनुष, (६) तोमर, (७) कुन्त, (८) पाश, (९) अंकुश, (१०) अस्त्र, (११) बाण ये संक्रान्तियों के शस्त्र (आयुध) होते हैं।

बवादिक ११ करणों में—(१) अन्न, (२) श्रेष्ठ अन्न, (३) भिक्षा का अन्न, (४) पक्वान्न, (५) दूध, (६) दही, (७) चित्रान्न, (८) गुड़, (९) शहद, (१०) घी, (११) शर्करा (चीनी) संक्रान्तियों के अन्न होते हैं।

बवादिक ११ करणों में—(१) कस्तूरी, (२) कुंकुम, (३) चन्दन, (४) मट्टी, (५) गोरोचन, (६) महावर, (७) मार्जार धर्म, (८) हल्दी, (९) काजल, (१०) काला गुरु और (११) कपूर ये संक्रान्तियों के लेप होते हैं।

बवादिक ११ करणों में—(१) देवता, (२) भूत, (३) सर्प, (४) पक्षी, (५) पशु, (६) मृग, (७) विप्र, (८) क्षत्रिय, (९) वैश्य, (१०) शूद्र, (११) वर्ण संकर, ये संक्रान्तियों की जातियाँ होती हैं।

बवादिक ११ करणों में—(१) पुन्नाग नागकेसर का फूल (२) जाती, (३) बकुल, (४) केतकी, (५) विल्व, (६) अर्क, (७) दूर्वा, (८) कमल, (९) मल्लिका, (१०) पाटली, (११) ओढूल ये संक्रान्तियों के पुष्प कहे गये हैं।

प्रयोजन—इस प्रकार संक्रमण काल में संक्रान्ति के जो-जो वस्त्र, भोजन, वाहन-शस्त्र, लेप, जाति और पुष्प कहे गये हैं उन सबकी क्षति (नाश) होती है। अथवा उक्त वस्त्रभोजन वाहन शस्त्र लेप जाति से आजीविका करने वाले प्राणियों की हानि होती है।

तथा बैठी हुई संक्रान्तियों में बैठे हुए मनुष्यों, खड़ी हुई संक्रान्ति में उत्थित मानवों, तथा सुप्त संक्रान्ति में सोते हुये मनुष्यों की स्थिति अशुभ होती है। स्पष्ट समझने के लिए ऊपर संक्रान्ति चक्र दिया गया है ॥ १७ ॥

अथ संक्रान्तिवशेन प्रतिमनुष्यं शुभाशुभफलमुपजात्याह—

सङ्क्रान्तिधिष्ण्याधरधिष्ण्यतस्त्रिभे स्वभे निरुक्तं गमनं ततोऽङ्गभे।
सुखं त्रिभे पीडनमङ्गभेंऽशुकं त्रिभेऽर्थहानी रसभे धनागमः ॥ १८ ॥

पीयूषधारा—सङ्क्रान्ति। सङ्क्रान्तिर्यस्मिन्धिष्ण्ये नक्षत्रे स्यात्ततोऽधरधिष्ण्यं पूर्वनक्षत्र तस्मात्स्वजन्मनक्षत्रं गण्यं तच्चेत्प्रथमे त्रिभे भवति तदा गमनं यात्रा स्यात्। ततः प्रथमत्रिकादनन्तरमङ्गभेषु षण्नक्षत्रेषु यदि स्वभं तदा सुखं स्यात्, ततस्त्रिभे स्वभे पीडनं शरीरपीडा, पुनरङ्गभे स्वभे अंशुकं वस्त्रादिप्राप्तिः स्यात्। ततस्त्रिभे स्वभेऽर्थहानिः द्रव्यनाशः, ततो रसभे षण्नक्षत्रे स्वभे धनागमो द्रव्यप्राप्तिः स्यादित्यर्थः। उक्तं च नारदेन—'सङ्क्रान्तौ ग्रहणर्क्षे वा जन्मन्युभयपार्श्वयोः। नेष्टं त्रयं षट् शुभदं पर्यायाच्च पुनः पुनः ॥ हानिर्वृद्धिः स्थानहानिस्तथा प्राप्तिरिति क्रमात्।' सङ्क्रान्तेर्यन्नक्षत्रं ग्रहणनक्षत्रं वा यदि जन्मभं भवेदथवा ताभ्यामुभयपार्श्वगतं जन्मभं भवेत्तदा अनिष्टमेव नक्षत्रत्रयं निषिद्धम्। ततो नक्षत्रषट्कं शुभं, ततस्त्रिकेऽर्थहानिस्ततः षट्के वृद्धिः, ततस्त्रिके स्थानहानिः, ततः, षट्सु वृद्धिः, षट्सु स्थानप्राप्तिरिति। अत एव पठन्ति दाक्षिणात्याः—'संक्रान्त्यधरनक्षत्राद्गणयेज्जन्मभावधि। त्रिकं षट्कं त्रिकं षटकं त्रिकं षट्कमिति क्रमात् ॥ पन्था भोगो व्यथा वस्त्रं हानिश्च विपुलं धनम् ॥' इति। त्रिकं शुभं षट्कमिशुभमति फलितोऽर्थः।

अशुभदसङ्क्रान्तौ दानम्—

अत्राशुभफलदायां सङ्क्रान्तौ सत्यां दानमाह नारदः—'तिलोपरि लिखेच्चक्रं त्रिशूलं च त्रिकोणकम्। तत्र हेमं विनिःक्षिप्य दद्याद्दोषापनुत्तये' इति। अत्र चक्राकृतिरियम्। एवं संङ्क्रान्तिसम्बन्धिफलमभिहितम् ॥ १८ ॥

पीताम्बरा—संक्रान्ति नक्षत्र से अपने जन्म नक्षत्र के सम्बन्ध से उस संक्रांतिक मास में शुभाशुभ विचारा जा रहा है—संक्रान्ति नक्षत्र के पहिले नक्षत्र से ३ संख्यक नक्षत्रों में अपना जन्म नक्षत्र हो तो उस मास में गमन यात्रा, पुनः ६ नक्षत्रों में जन्म नक्षत्र हो तो सुख, फिर ३ में दुःख, तदुपरि ६ में वस्त्र लाभ, पुनः ३ में धन हानि, अन्तिम ६ में जन्म नक्षत्र हो तो उस मास में उसे धनलाभ होता है। उदाहरणः जैसे सं० २०२८ वैशाख कृष्ण चतुर्थी अनुराधा नक्षत्र (रात्रि १२।३१ बजे तक) में सूर्य की मेष में संक्रान्ति हुई है। श्री विश्वनाथ प्रसाद का जन्म नक्षत्र कृतिका है। संक्रान्ति का पूर्व नक्षत्र विशाखा से कृतिका की १५ संख्या है अतः ता० १४–४–७१ से १४–५–७१ तक विश्वनाथ प्रसाद को वस्त्र लाभ होगा ॥१८॥

स्पष्ट समझने के लिए चक्र

३	६	३	६	३	६
यात्रा	सुख	पीड़ा	वस्त्र लाभ	अर्थ हानिः	धन लाभ

अथ कार्यविशेषे बलं सामान्यतः संक्रममाणग्रहबलं चोपजात्याह—

नृपेक्षणं सर्वकृतिश्च सङ्गरः शास्त्रं विवाहो गमदीक्षणे रवेः।
वीर्येऽथ ताराबलतः शुभो विधुर्विधोर्बलेऽर्कोऽर्कबले कुजादयः॥ १९॥

पीयूषधारा—नृपेक्षणमिति। रवेरिति ल्यब्लोपे पञ्चमी, रविमारभ्येत्यर्थः। रवेः सूर्यस्य वीर्ये बले सति सूर्यवारे वा नृपेक्षणं राजदर्शनं विधेयम्! एवं चन्द्रादावपि व्याख्येयम्। ततश्चन्द्रे सर्वकृतिः सर्वकृत्यानि, भौमे सङ्गरो युद्धं, बुधे शास्त्रमध्येतव्यमध्याप्यं वा, गुरौ विवाहः शुक्रे गमो गमनं, शनौ दीक्षणं यागादिदीक्षा विधेयेत्यर्थः। उक्तंच श्रीपतिना—

'रविर्नृपविलोकने सुरगुरुर्विवाहोत्सवे रणे धरणिनन्दनो भृगुसुतः प्रयाणे बली।
शनिश्च मखदीक्षणे सकलशास्त्रबोधे बुधः शशी सकलकर्मसु ध्रुवमुदाहृतः सूरिभिः॥

वसिष्ठेनापि—

राजालोकनसमये रविरार्यः करतलग्रहे सुबली।
रणसमये धरणिसुतः प्रयाणसमये सितोऽतिबली॥
दीक्षणसमयेऽर्कसुतः शशितनयो ज्ञानशिल्पविधौ।
निखिलेष्वपि कार्येषु च चन्द्रबलं मुख्यमखिलनृणाम्॥' इति।

एतान्यपि कार्याणि सबलग्रहवारे क्रियमाणानि सिध्यन्तीत्याह वसिष्ठः—'बलप्रदस्य ग्रहवासरे यद्यच्चोपदिष्टं समुपैति सिद्धिम्। सुदुर्बलस्य ग्रहवासरे तत्प्रयत्नपूर्वं त्वपि नैव साध्यम्' इति। ग्रहेति लुप्तषष्ठीकं पृथक्पदं ग्रहस्येत्यर्थः बलप्रदत्वदुर्बलत्वे गोचरप्रकरणोक्तविहितायुक्त-स्थानवशेन ज्ञेये। तदाह श्रीपति—'वारे ग्रहस्योपचयावहस्य कार्यं यथोद्दिष्टमुपैति सिद्धिम्। भवेत्तदेवापचयावहस्य प्रयत्नतो निर्मितमप्यसाध्यम्॥' इति। अथेति। ताराबलतो विधुः शुभो ज्ञेयः। यदा चन्द्रसंक्रमणं स्यात्तत्र ताराबलं चेत्स्यात्तदा सपाददिनद्वयं चन्द्रोऽशुभोऽपि शुभः। तारादौष्ट्ये तु शुभोऽपि अशुभ इत्यर्थः। एवं च विधोर्बलाद्रविः संक्रमणेऽशुभोऽपि मासपर्यंतं शुभः' शुभस्तु सुतरा समीचीन एवं चन्द्रदौष्ट्ये तु शुभोप्यशुभ इत्यर्थः। परे भौमादयः सङ्क्रा-न्तिचिकीर्षवास्तत्तद्बलता सूर्यबलादशुभा अपि शुभा ज्ञेयाः। स्वराशिभोगकालावधि रविदौष्ट्ये तु शुभा अप्यशुभा इत्यर्थः यदाह कश्यपः—

'ताराबलेन शीतांशुर्बलवांस्तद्वशाद्रविः।
बली संक्रममाणस्य वशात्खेटा बलाधिकाः॥
यादृशेनेन्दुना भानोः सङ्क्रान्तिस्तादृशं फलम्।
नरः प्राप्नोति तद्राशेः शीतांशोः साध्वसाधुतः॥' इति।

संक्रममाणस्य रवेरित्यध्याहारः। यत्तु दीपिकायाम्—'यादृशेन शशांकेन ग्रहः सञ्चरते नृणाम्। तादृशं फलमाप्नोति शुभं वा यदिवाऽशुभम्॥' इति। चन्द्रवशेनैवाखिलग्रहसम्बन्धि

शुभाशुभत्वमुक्तम् । तत्र ग्रह इत्येकवचननिर्देशाल्लिखितकश्यपवाक्यस्वरसाच्च सूर्य एव ग्राह्यो नान्य इति तद्दीपिकाकारो व्याख्यत् । अन्यथा 'सञ्चरेयुर्ग्रहा नृणाम्' इत्यवक्ष्यत् ।। १९ ।।

पीताम्बरा—संक्रान्ति प्रसंग से ग्रह बल विचारपूर्वक व्यावहारिक कार्य बताये जा रहे हैं—यदि सूर्य बली हो तो रविवार के दिन राजदर्शन, चन्द्रमा बलवान् हो तो सभी प्रकार के शुभ कार्य, मंगल ग्रह के बली होने पर मंगलवार के दिन युद्ध कार्य, बुध के बली होने पर शास्त्रों का अध्ययन, बृहस्पति के बली होने पर विवाह कार्य, शुक्र के बली होने पर यात्रा कार्य, और शनि ग्रह के बली होने पर शनिवार के दिन यागादिक दीक्षा (मन्त्र ग्रहणादि) ग्रहण करनी चाहिए । पीयूष में बली ग्रह के वार के दिन में राजदर्शनादि का संकेत किया है । असंभव स्थिति में अभीष्ट कार्य सिद्धि कारक बलवान् ग्रह के अभाव में दूसरे दुर्बल ग्रह के वार में भी उक्त कार्य यदि किए जाँय तो प्रयत्न करने पर भी सफलता में सन्देह होता है ।

जन्म-संपत्-विपत् आदि ९ ताराओं में यदि तारा शुभ हो तो चन्द्रमा भी शुभ होता है । तात्पर्य चन्द्र संक्रान्ति के समय यदि तारा शुभ है तो सवा दो दिन तक चन्द्रमा जिस राशि पर है वह राशि कार्य कर्ता की जन्म राशि से अशुभ स्थान में हो तो ऐसा अशुभ चन्द्रमा भी शुभ फलद हो जाता है ।

तथैव दुष्ट तारा की चन्द्र संक्रमण स्थिति का गोचर का शुभ चन्द्रमा भी अशुभ कहा जाता है ।

इस प्रकार चन्द्रमा के वल विचार से रविसंक्रमणकालीन अशुभ रवि भी शुभ फलद और शुभ रवि तो मास पर्यन्त अत्यन्त शुभ फलद हो जाता है ।

तथा अशुभ चन्द्र सम्बन्धी रवि सङ्क्रमण समय के शुभ रवि में समग्रमास अशुभ, अशुभ रवि में तो समग्र मास विशेष अशुभ कहा जावेगा ।

इसी प्रकार शुभ और अशुभ रवि सङ्क्रमणकालीन अशुभाशुभ भौमादि सङ्क्रमण में भी भौमादिक ग्रहों को भी निर्बल और सबल समझना चाहिए ।। १९ ।।

अथाधिमासक्षयमासयोः संक्रान्त्यधीनत्वात्तयोर्निर्णयः प्रस्तूयते तत्र तल्लक्षणमुपजात्याह—

स्पष्टार्कसङ्क्रान्तिविहीनचांद्रो मासोऽधिमासः क्षयमासकस्तु ।
द्विसङ्क्रमस्तत्र विभागयोस्तस्तिथेर्हि मासौ प्रथमान्त्यसञ्ज्ञौ ।। २० ।।

इति श्रीदैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्तचिन्तामणौ
संक्रान्तिप्रकरणं समाप्तम् ।। ३ ।।

पीयूषधारा—स्पष्टार्केति । शुक्लपक्षप्रतिपदादिदर्शान्तश्चान्द्रो मासः । स चेत्स्पष्टसूर्यसङ्क्रान्त्या विहीनो भवेत्तदाधिकमास उक्तः । उक्तं च ब्राह्मसिद्धान्ते—'चान्द्रो मासोह्यसङ्क्रान्तो मलमासः प्रकीर्त्तितः, इति । तुर्विशेषे कदाचिच्छब्दापरपर्याये । कदाचित्स चान्द्रो मासो द्विसङ्क्रमः द्वौ संक्रमौ सूर्यसंङ्क्रमौ यस्मिन्नसौ द्विसङ्क्रमः स्पष्टसूर्यसङ्क्रान्तिद्वययुतः क्षयमास उक्तः । यदाह वसिष्ठः—यस्मिन्दर्शस्यान्तादर्वागेवापरं दर्शम् । उल्लंघ्य भवति भानोः सङ्क्रान्तिः सोऽधिमासः स्यात् ।। आद्यान्तदर्शयोर्मध्ये भानोरेव तयोर्यदि । संक्रान्तिद्वितयं स्याच्चेन्न्यूनमासः स उच्यते ।।' एतौ चाधिमासक्षयमासौ स्पष्टमानेनैव ज्ञेयौ । तदाह कश्यपः—

'यस्मिन्मासेर्कसङ्क्रान्तिर्दर्शनात्प्राक्पुरःसरम् । दर्शमुल्लंघ्य भवति स संसर्पोऽधिमासकः ॥ आरभ्य शुक्लप्रतिपत्प्रवेशात्सङ्क्रमद्वयम् । आगामीन्दुक्षयस्यान्तात्प्राङ्न्यूनाख्यस्त्वहर्पतिः ॥ स्फुटार्कसङ्क्रमाद्विद्यान्न्यूनमासाधिमासकौ । मासौ न्यूनाधिकौ तौ तु सर्वकर्मबहिष्कृतौ॥'इति ।

सिद्धान्तशिरोमणावपि—'असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद्द्विसङ्क्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्' इति । स्फुटः स्फुटेंदुमासः, स्फुटत्वमपि तत्रैव—'स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽप्यलब्धो यदा यदा वापतितोऽपि लब्धः । सैकैर्निरेकैः क्रमशोऽधिमासैस्तदा दिनौघः सुधिया प्रसाध्य ॥' इति । इदमग्रे स्पष्टं व्याख्यास्यते । अत्राधिमासक्षयमासलक्षणप्रयोजनं नोक्तम् । आद्यप्रकरणे—

'वृद्धत्वास्तशिशुत्व इज्यसितयोर्न्यूनाधिमासे तथा' इत्यादिनोक्तत्वात् ।

पक्षद्वयभेदेन सञ्ज्ञाद्वयफलानि क्षयमासे—

क्षयमासपरः कश्चिद्विशेषो वक्तव्योऽस्ति, सोऽत्रैवाभिधातुमुचित इत्याह—तत्रेति । तत्र क्षये मासे मासद्वयसञ्ज्ञाशुक्लकृष्णपक्षभेदेन । तस्याः सप्रयोजनविषयकल्पनोच्यते विभागयोरिति । तत्र क्षयमासे जातानां वर्द्धापने मृतानां श्राद्धे च तिथेर्विभागयोः पूर्वोत्तरदलयोः सम्बन्धेन प्रथमांत्यसञ्ज्ञौ मासौ स्तः स्याताम् । तिथिपूर्वार्धजातानां मृतानां च पूर्वमासे वर्द्धापनं श्राद्धं च विधेयम् । तिथेरुत्तरार्द्धे जातानां मृतानां चोत्तरमासे वर्द्धापनं श्राद्ध च विधेयम् । तदुक्तम्— 'तिथ्यर्द्धे प्रथमे पूर्वोऽपरस्मिन्नपरस्तथा । मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥' इति । एवं यथाश्रुतोऽर्थो व्याख्यातः । अस्य विशेषविवेकस्तु इह ग्रन्थगौरवभयात् प्रस्तुतविचारानर्हत्वाच्चनास्माभिरुक्त इति शिवम् ॥ २० ॥ सङ्क्रान्तिप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—इति श्रीदैवज्ञानन्तेति । स्पष्टार्थम् ।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा
पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे ।
व्याख्याने खलु सङ्क्रमप्रकरणं सम्पूर्णतामभ्यगात् ॥१॥

इति सङ्क्रान्तिप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

पीताम्बरा—संक्रांतियों से सम्बन्धित अधिक-क्षय मासों के निर्णय के साथ लक्षण भी बताये जा रहे हैं—शुक्लपक्ष प्रतिपदा से कृष्णपक्ष अमावास्या के अन्त तक चन्द्र मास, तथा पूर्व रवि-सङ्क्रमण से अग्रिम राशि रवि-संक्रमण तक सौर मास होता है । सूर्य संक्रान्ति रहित चान्द्रमास का नाम अधिक मास, तथा दो सूर्य संक्रान्तियों के बीच के चान्द्रमास का नाम क्षय मास होता है ।

क्षय मास में जन्म और मरण की स्थितियों में यदि क्षयमासीय तिथि के पूर्वार्ध में जन्म मरण हो तो वर्धापन, तिथ्युत्सव या श्राद्धादि के लिए पूर्व शुद्ध मास और उत्तरार्ध में जन्म मरण पर तिथ्युत्सवादि के लिए क्षयाधिमास का उत्तरवर्त्ती चान्द्रमास ग्रहण करना चाहिए।

यहाँ पर प्रसंगागत विचार से सं० २०२० शकाब्द १८८५ के अधिक-क्षय मासों की गणितागत मीमांसा निम्न भांति सरलता से बुद्धिगत होने के लिए बताई जा रही है ॥ २० ॥

द्वापर युग के अन्त कलियुग प्रवेश के ३१७९ वर्ष तक धर्मराज युधिष्ठिर शक चला

था, बाद में शक नृप का शकाब्द प्रचलित हुआ। १३ अप्रैल सन् १९६३ में मेष संक्रमण काल में शक नृप के १८८५ वर्ष बीतेंगे। अतः कलियुगादि से अप्रैल १९६३ तक ३१७९ + १८८५ =५०६४ वर्ष युधिष्ठिर के हो जायेंगे। सृष्टि के आरम्भ से द्वापर के अन्त तक और तत्पश्चात् शकाब्द १८५५ तक (सन् १९६३) १९५५८८०००० + ३१७९ + १८८५=१९५५८८५०६४ सौर वर्ष बीत जावेंगे। इस गणना को सही मानने का आधार प्रति वर्ष की ग्रह स्थिति की नियमितता है कि सभी ग्रह हमें आकाश में अपने निश्चित स्थान पर दीखते हैं और सूर्य चन्द्र आदि के ग्रहण भी निश्चित तिथि पर ही लगते हैं। अतः सृष्टि से आज तक के व्यतीत वर्षों के आंकड़ों का कोई ठोस प्रमाण न होने पर भी हम अपनी पारस्परिक ज्योतिष गणना की यथार्थता में दृढ़ विश्वास करते हैं। इस गणना के अनुसार सं० २०२० में (सन् १९६३) भाद्रपद मास अधिक मास पड़ा है।

वेदों (तैतिरीय संहिता) (१।४।१८) में अधिक मास का नाम संसर्प और इसके आगे (५।६।७) १३ महीनों का भी उल्लेख मिलता है। वाजसनेय संहिता में अधिक मास को अंहस्पति (७।३०) और मलिम्लुच (२२:३०) कहा गया है। व्याकरण शास्त्र के पण्डित भी मलिम्लुच शब्द से मलिमुक मलमास बनाते हैं। मुहूर्त्तचिन्तामणि प्रभृति फलित ज्योतिष ग्रंथों में 'वृद्धत्वास्तशिशुत्व इज्यसितयोर्न्यूनाधिमासे तथा' अन्यच्च, न्यूनाधिमासकुलिका'' 'इत्यादि से अधिक और क्षय मासों में धर्मकृत्यों पर कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विशेष उल्लेख किया है, पीयूष टीका में, जिस वर्ष क्षय मास आता है उसी वर्ष दो अधिक मास आवेंगे जिनमें एक तो क्षय मास के पहिले वाला अधिक मास संसर्प मास और क्षय के बाद का अधिक मास अंहस्पति मास कहा जावेगा। वीर मित्रोदय, कालमाधव, धर्मसिन्धु प्रभृति ग्रन्थों में तो इस विषय पर बहुत ही विवेचन किया गया है।

यहाँ पर एक विशेष जानने योग्य बात यह है कि अमान्त मास मान से ही अधिक मास का सम्भव है। पूर्णान्त मान से नहीं। अर्थात् कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को पहिला दिन मान कर पूर्णिमा को महीना पूरा मानने की स्थिति में अधिक मास नहीं आ सकेगा। शुक्ल प्रतिपदा को पहिला दिन मान कर पूर्णिमा को महीने का अन्त माने तभी अधिक मास आ सकता है। अमान्त मास के मान २ से पूरे १ महीने में कोई संक्रान्ति न पड़ने से सं० २०२० में भाद्रपद मास अधिक मास होगा। वह गणित सब स्पष्ट मान से ही प्रचलित है न कि मध्यम मान से।

अधिक मास कैसे ?

सूर्य चन्द्रमा की गति परम्परा से सौर वर्ष, सौर मास एवं चान्द्र वर्ष चान्द्र मास का होना कहा गया है। भास्कराचार्य ने स्पष्ट कहा है—"रवेश्चक्रभोगोऽर्कवर्ष प्रदिष्टम्"....। वर्ष शब्द जहाँ भी शास्त्रों में मिला है प्रायः वह सौर वर्ष का ही ज्ञापक है। एवं मास शब्द भी प्रायः चान्द्रमास की प्रसिद्धि का ज्ञापक है। जैसे—"वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्मासांस्तथाच-तिथयेस्तुहिनांशुमानात्"—इन्हीं सौरमास और चान्द्रमासों का विनिगमक सावन काल है उससे मानने से सौरचान्द्र मासों का अन्तर ही अधिक मास होता है।

सूर्य की एक संक्रान्ति के जितनी देर बाद दूसरी संक्रान्ति होती है वह १ सौर मास कहा जाता है। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के काल को सावन दिन कहते हैं। मध्य

मान से एक सौर मास में ३० दिन १० घण्टा और ३० मिनट होते हैं। इस प्रकार सूर्य चन्द्रमा का आकाश में भूपृष्ठ दृष्टिगत जब योग होगा उसे अमान्त काल कहेंगे। "दर्शः सूर्येन्दु-संगमः" इसी तरह एक अमान्त से दूसरी अमान्त तक एक चान्द्रमास भी होगा। एक चान्द्र-मास में २९ दिन १३ घण्टा ४४ मिनिट होते हैं। यहाँ पर सौर मास की दिनादि संख्या से चान्द्रमास की दिनादि संख्या प्रत्यक्ष कम है—अब एक सौरमास के दिनादि में ३० दिन १० घं० ३० मि० में एक चान्द्रमास के दिनादि मान २९ दि० १२ घं० ४४ मि० को कम करने से दिन २१ घं० ४६ मिनिट या ५४ घटी २५ पल यह सौर चान्द्रमासों का सावन दिनात्मक अन्तर है। इसे हम प्रत्येक मास सम्बन्धी अधिक मास शेष कह सकते हैं।

सृष्टयादि के एक ही क्षण में सौर चान्द्रमास की प्रवृत्ति हुई थी फिर एक चान्द्रमास की पूर्ति अमावास्या को हुई उसके २१ घण्टा ४६ मिनिट बाद वृष की संक्रान्ति हुई थी। इसी प्रकार तीसरी अमावास्या के २ × २१ घण्टा ४६ मि० में मिथुन संक्रान्ति एवं २१ घं० ४६ मि० × १, २, ३····१२· ·में ही अमावास्या के बाद सूर्य की संक्रान्तियाँ हुआ करेंगी। यह अमावास्या से वर्धमान अग्रिम संक्रमण काल जिस समय एक चान्द्रमास २९ दिन १२ घं० ४४ मिनिट के तुल्य हो जावेगा उस समय अमावास्या के बाद फिर अमावास्या ही हो कर रहेगी तत्पश्चात् सूर्य का संक्रमण होगा जब हमें मालूम पड़ेगा कि सूर्य संक्रान्ति रहित उक्त चान्द्रमास की संख्या सूर्य मास से अवश्य एक अधिक हो गई है। संक्रान्ति रहित चान्द्रमास ही अधिक मास होता है। जैसा भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि के मध्यमाधिकार के अधिमास निर्णयाध्याय में लिखा है—

"असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्यात् द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्
क्षयः कार्त्तिकादित्रये नान्यतः स्यात् तदा वर्षमध्येऽधिमास द्वयञ्च ॥"

त्रैराशिक गणित से हम यह बात भी अच्छी तरह जान सकते हैं कि प्रत्येक सौर-चान्द्रमासों के सावनात्मक अन्तर २१ घण्टे ४६ मिनट मे जब हम एक सौर मास पाते हैं यह अन्तर चान्द्रमास पूर्त्ति सावन काल जो २९ दिन १३ घण्टा ४६ मिनट इतने के बराबर है उसमें हम कितने सौर मास पावेंगे।

$$\frac{\text{२९ दिन १३ घण्टा}\cdots \times \text{१ सौर मास}}{\text{२१ घण्टा ४६ मि०}} = \text{३२ महीना १६ दिन}\cdots \text{।}$$

अतः जिस समय सौर मास ३२$\frac{१}{२}$ लगभग होंगे उस समय चान्द्र मास भी लगभग ३३$\frac{१}{२}$ के तुल्य बीतेंगे। इस प्रकार सृष्टि के आरम्भ से या युगादि से आज तक कितने अधिक मास हो गये—इन आँकड़ों को भी हम सुखेन ला सकते हैं। इसे १३ अप्रैल १९६३ तक १९५५८८५०६४ सौर वर्ष × १२ = २३५७०६२०७६८ सौर मासों में एक कल्प या एक युग के अधिक मास मिलते हैं। यहाँ पर

$$\text{महायुगीय अनुपात से}\quad \frac{\text{१५९३३३६३} \times \text{२३५७०६२०७६८}}{\text{५१८४००००}} = \text{३२}$$

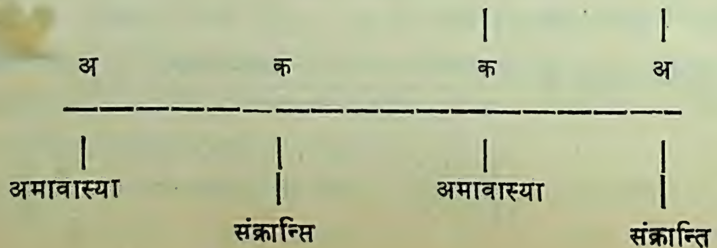
$$= \text{७२१३७४७४१} + \frac{\text{३२१९८४}}{\text{५१८४००००}} \times \text{इसे हम अधिक मास} + \frac{\text{अ. शे.}}{\text{यु. सौ. मा.}}$$

ऐसा सुविधा के लिए लिखते हैं। कल्पना से आज तक के व्यतीत अधिक मासों के ये आँकड़े हैं। इसी तरह हम जब चाहें तब तो सौर, सावन, चान्द्र, क्षय आदि काल अवयवों का ज्ञान अच्छी तरह कर सकते हैं और इसी क्रम से अविच्छिन्न धारा से आज तक प्रचलित हमारी पञ्चांग-पद्धति सबके सामने है।

संक्रान्ति रहित चान्द्र मास को अधिक मास तथा दो संक्रान्ति वाले चान्द्र मास को क्षय मास कहा गया है, इसी पर ध्यान देना है। स्पष्ट मान की संक्रान्ति से स्पष्ट एवं मध्य-मान की संक्रान्ति वश मध्यम अधिक मास होगा यह भी ध्यान देने की बात है। इसी प्रकार जिस चान्द्र मास में सूर्य की दो संक्रान्तियाँ होंगी उसे क्षय मास कहा जायेगा। मध्यम सौर मास तो मध्यम चान्द्र मास से अधिक ही होगा इसीलिए ऐसे चान्द्र मास में दो संक्रान्तियों का होना संभव नहीं हैं। अतः मध्यम मान से कथित लक्षण से लक्षित क्षय मास का होना सम्भव नहीं है।

स्फुटरवि की गति, नीचासन्न में तुला वृश्चिक धनु उभयतः कार्तिक मार्गशीर्ष और पौष में अधिक और परं अधिक हो जाने से एक राशि का भोग कम दिनों में हो जावेगा। अतएव उस समय सूर्य की मास पूर्ति के दिनों की संख्या से चन्द्रमा के मास पूर्ति के दिन संख्या कम हो सकने से, एक अमान्त के कुछ क्षण बाद संक्रान्ति होकर दूसरी अमावास्या के कुछ पहिले दूसरी संक्रान्ति अवश्य हो सकती है। इसलिए संक्रान्ति द्वययुक्त चान्द्र मास यह लक्षण घटित होने से यह मास क्षय मास कहा जावेगा। इस समय रवि का मन्दोच्च २°।१८' में है। जिसे आषाढ़ सौर उच्च मास, एवं उच्च से नीच ६ राशि की दूरी पर रहने से २°।१८ + ६ रा० = ८।१८ अर्थात् सौर पौष मास नीच मास कह सकते हैं। इसलिए कार्तिक से गति की अधिकता होते-होते पौष तक लगभग २ जनवरी तक सूर्य की (आधुनिक मत से पृथ्वी की) गति अधिक होगी—इसलिये कार्तिक मार्गशीर्ष या पौष में ही क्षय मास हुआ करेगा।

'दर्शाग्रतः संक्रमकालतः प्राक् सदैव तिष्ठत्यधिमासशेषम्' अमावास्या और संक्रान्ति के के बीच अधिक शेष (अधिक मास शेष) रहता है। दो संक्रान्तियों के बीच वाले क्षय चान्द्र मास में, अमावास्या हुई फिर संक्रान्ति हुई तब अमावास्या हुई तो, यहाँ पर अधिक मास शेष, (पूर्व अमावास्या से प्रथम संक्रान्ति तक पहिला, पूर्व अमावास्या से द्वितीय संक्रान्ति तक दूसरा), एवं अधिशे + अधिक मास शेष यह संख्या चान्द्र मास के तुल्य होने की सम्भावना बताती है। जैसे—



अ बिन्दु पर अमावास्या हुई, थोड़े ममय बाद क बिन्दु पर संक्रान्ति हो गयी। अतः अ क= अधि शेष। क बिन्दु पर पुनः अमावास्या हुई और द्वितीय अ बिन्दु पर संक्रान्ति (द्वितीय) हुई तो अ क + अ क = अधिशे + अधिशे = यहाँ पर यह योग चान्द्र मास की तुल्यता का सम्भव निश्चित कराता है।

अर्थात् जब सूर्य की गति लगभग ६१ एकसठ कला के तुल्य होगी, तब $२९\frac{१}{२}$ में (३० अंश = एक राशि) संक्रान्ति होगी, इस समय चान्द्रमास से सौरमास छोटा होगा, इस प्रकार रवि मास की परम अल्पता प्रायः $२९\frac{१}{३}$ दिन तक होने की होने से सौर मार्गशीर्ष, पौष, माघ में चान्द्र मास संख्या बड़ी होने से (मार्गशीर्ष से पूर्व) कार्तिक मार्गशीर्ष और पौष मासों में किसी एक में तक (माघ से पहिले) दो संक्रान्तियाँ होंगी। जैसे–माना पहले भाद्रपद अधिक

मास हुआ, सूर्य गति की अधिकता से मार्गशीर्ष मास का क्षय हुआ, फिर भी गति की अल्पता के काथ उपचीयमानता से अधि + अधिशे के चान्द्रमास के तुल्य की स्थिति से फाल्गुन चैत्र मास भी अधिक मास होगा इसलिए कहना चाहिए तब क्षय मास वाले १ ही वर्ष में एक क्षय मास और दो अधिकमास होंगे। "तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयञ्च" भास्कराचार्य का सिद्धान्त यहाँ पर उपपन्न होता है।

एक वर्ष सम्बन्धि अधिमास के अवयव को

जो $\frac{१५९३३००००००}{४३२००००००००} = \frac{५३११}{१४४००}$ है, इसका

(कल्प कुदिन में कल्पाधिमास तो १ वर्ष में क्या इसका अनुपात से)

$\frac{५३११}{१४४००}$ आसन्नमान ग्रहण करने से

$$० + \cfrac{१}{२ + \cfrac{३७७८}{५३११}} = ० + \cfrac{१}{२ + \cfrac{१}{\cfrac{१}{१ + \cfrac{१५३३}{१३७८.}}}}$$

$$= ० + \cfrac{१}{२ + \cfrac{१}{१ + \cfrac{१}{२ + \cfrac{७२१}{१५३३}}}} = ...$$

$$= ० + \cfrac{१}{२ + \cfrac{१}{१ + \cfrac{१}{२ + \cfrac{१}{६ + \cfrac{१}{१ + \cfrac{१}{७ + \cfrac{१}{३ + \cfrac{१}{२}}}}}}}}$$

लब्धियाँ क्रमशः ०, २, १, २, २, ६, १, १, ७, ३, २

आसन्नमान	०	१	१	३	७	४५	५१	९७	७६१	२२९०	५३११
	१,	२,	३,	८,	१९,	१२२,	१४१,	२६३,	१९८२,	६२०९,	१४४००

इत्यादि।

उक्त गणित से हम, १, २, ३, ८, १९, इन-इन वर्षों में एक क्षय मास के बाद दूसरा क्षय मास होगा ऐसा कह सकते हैं। भास्कराचार्य ने १४१, १९ में ही दो वर्ष सम्भव कहते हुए कदाचित् संभव वर्ष भी कहा है। उक्त आसन्नमान में १४१ वर्ष, १९ वर्ष भास्कराचार्य के कथन से ठीक है। बीच में १२२ वें वर्ष में क्षय मास का सम्भव हो सकता है ऐसा भी भास्कराचार्य को कहना चाहिए था।

जैसे—आज से पूर्व १४१ शकाब्द में क्षय मास हुआ था। इस शकाब्द में मार्गशीर्ष मास का क्षय था। इसके पूर्व में (२ मास) आश्विन पश्चात् (३ मास के) चैत्र अधिक मास हुआ था। १७४४—१४१ = १६०३ शकाब्द में भी उक्त क्षय और अधिक मास उक्त क्रम से ही हुए थे, पुरुषार्थ चिन्तामणि धर्मशास्त्र ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया हुआ है। मेष के सूर्य में जो अमावास्या उसे चैत्रादि क्रम देने से सं० २०२० शके १८८५ सन् १९९३ में मार्ग शीर्ष मास का ही क्षय होने से मार्गशीर्ष मास क्षय मास होगा।

यह विचार धर्मशास्त्र ग्रन्थों के प्रमुख ग्रन्थ 'पुरुषार्थचिन्तामणि' और 'धर्मसिन्धुकार' का भी है। यह पक्ष सूर्य सिद्धान्त मत से साधित पञ्चांगों में होगा और होना भी चाहिए।

मीनादिक सूर्य से चैत्रादि चान्द्र पद्धति मानने वाले आचार्यों के मत से पौष मास का क्षय (सं० २०२० शक १८८५ सन् १९६३) होने से पौष मास का क्षय मास होगा ('निर्णय सिन्धु टीकाकार कृष्णभट्ट का मत' है)।

श्री गणेश दैवज्ञ प्रपौत्र श्री गणेश विरचित "शिरोमणि" टीका में भी "पौष क्षय मास" शके १८८५ दिया है। दृग् गणित सिद्ध पचांगों में यही द्वितीय पक्ष (पौष क्षय) सम्भवतः मान्य होगा।

बृहद्दैवज्ञरञ्जनग्रन्थ में आज से पूर्व और पश्चात् सैकड़ों वर्षों में होने वाले अधिक और क्षय मासों की एक सारिणी दी हैं।

वर्त्तमान उपलब्ध सौर सिद्धांत में—

भवन्ति शशिनो मासाः सूर्येन्दुभगणान्तरम् ।
रवि मासोनितास्तेषु शेषा स्युरधिमासकाः ॥'

सूर्य चन्द्रमा के कल्प भगणों के अन्तर के तुल्य चान्द्र मास होते हैं संख्या में चान्द्रमास अधिक होंगे क्योंकि जैसे $\frac{३०}{५} < \frac{३०}{४}$ किसी निर्दिष्ट संख्या में छोटी से भाग देने से लब्धि अधिक होगी अपेक्षा बड़ी संख्या से भाग देने से। तो यहाँ पर चान्द्रमास का छोटा माप है जिसे कह आये हैं अतः चान्द्रमास में सौर मास घटा देने से शेष के तुल्य अधिक मास होते हैं अधिक होने से अधिक मास नाम सार्थक है। यहाँ क्षय मास के सम्बन्ध में शिरोमणि की तरह विशेष चर्चा नहीं देखी गई। स्थूल मान से ३२ सौर मास में ३३ अधिक मास हो जाते हैं। इसीलिए अधिक मास माहात्म्य में ३३ देवताओं का पूजन पाठ भी कहा गया है। अधिक मास ज्ञान की पद्धति का जो भी इतिहास हो सम्भवतः ज्योतिषशास्त्र में देव शब्द से ३३ संख्या का उद्बोधन अति प्राचीन कहना चाहिए।

सौर और चान्द्र मासों की विकृति का नाम भी अधिक मास कह सकते हैं। या सौर चान्द्र का मल भी कह सकने से इसे मलमास भी कहा गया है। संक्रान्ति से राहित्य अर्थात् कालात्मक सूर्य, मन चन्द्रमा के जो सञ्जीवन तत्त्व हैं उनसे रहित काल, लोक कल्याणाय नहीं होगा इसीलिये इस मलमास में विवाह यज्ञोपवीत, यज्ञ, देवपूजन प्रतिष्ठादि शुभ कर्म निषेध किया है। क्योंकि सौर तत्त्व ही सब तत्त्वों का अधिपति है, सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा भी और चराचर सकल विश्व ही नहीं सकल ब्रह्माण्ड भी प्रकाशित होता है। अतः धर्म-अर्थ-काम मोक्षादि पुरुषार्थ चतुष्टय के लिये मुख्यतः सूर्यतत्त्व की अपेक्षा है न कि उपेक्षा—जहाँ सूर्य नहीं वहाँ अन्धकार है उसे निशा कहा है, निशा ही भय है—

तथा— क्षयमासो भवेद्यस्मिन् तस्मिन्वर्षेऽति विग्रहम् ।
दुर्भिक्षं वाऽथवा पीडा छत्रभंगं करोति वा ॥
पक्षस्य मध्ये द्वितीथी विनष्टे महाहवौ रौरव-विग्रहश्च ।
पक्षे विनष्टे नृपतिर्विनष्टः मासक्षयश्चेत्क्षयतीति वसुन्धरा ॥

इस तरह के बृहद्दैवज्ञरञ्जन में क्षयमास से होने वाले वर्ष में संसार में युद्ध, दुर्भिक्ष, पीड़ा छत्र-भंग आदि अनिष्ट फल होते हैं। और भी सन् ६२ के योग ग्रह तथा सन् ६३ के क्षय और दो अधिक मास तथा और ग्रहस्थितियों को देख कर सन् ६२-८५ तक का समय विश्व को क्लेशप्रद मालूम पड़ता है।

भास्कराचार्य के क्षय मास विचार पर "कमलाकर भट्ट" ने बड़ा ही खण्डन लिख दिया। जैसे यतः स्थूल रवि मन्दोच्च इस समय २।१८ है। वह चलित हैं। हजारों वर्षों में २।१९.... ३।१०....३।१५° ११।२०° ऐसा भी हो सकेगा तो उच्च से नीच भी ६ राशि की दूरी पर रहने से चलित होगा नीच की राश्यादि भी ८।१९ ९।१ १०।१५ ५।२० इत्यादि हो जाने से कार्त्तिकादि तीन मास में होने वाले क्षय मास की भी स्थिति बारहों मास में सम्भव हो जावेगी। शास्त्र तो एक देशीय और एक कालीन न होकर सर्वकालीन और सर्व देशीय होते हैं अतः

कार्त्तिकादि तीन महीना कहना सर्वथा युक्ति शून्य हैं इत्यादि, जैसे—सिद्धान्त तत्त्वविवेक कमलाकर भट्ट का कथन है कि—

असंक्रान्ति मासो हि चान्द्रोऽधिमासो, द्विसंक्रातिमासः क्षयाख्यस्तदानीम् ।
क्षयाख्यः कदाचित्ततः प्राक् च पश्चादवश्यं हि तत्राधिमासद्वयञ्च ।
स्फुटैर्लक्षणैर्येरयं'''सुयुक्ता न मुन्युक्तिरन्यत्र शास्त्रे ।
भवेत्कार्यवर्यस्य या दृग्विरुद्धा इत्यादि ।

इसलिये धर्मशास्त्रों में जहां भी कार्तिकादि तीन मासों में क्षय मास होता है वह बात गंभीर है और अवश्य ही विचारणीय है ।

हमारे श्रेष्ठ ज्यौतिष शास्त्र के आधार से निर्मित पञ्चाङ्गों के आधार से ही तिथि आदि पर्व निर्णय धर्म शास्त्रों से किया जाता है । इसलिये व्यापक पांडित्य के विना उक्त विषमता का हल कैसे किया जावेगा ?

श्रुत परम्परा से महाकवि कालिदास विरचित प्रसिद्ध ज्योतिर्विदाभरण (फलित ज्योतिष) ग्रन्थ में भी क्षय मास का स्पष्ट उल्लेख है—

सौराद्यदा चान्द्रमसो गरीयान्मासो हि संक्रांतिरसौ क्षयाख्यः ।
स यस्तदा स्यात्क्षितिवेदरूपैरब्दैर्मितैर्वा क्वचिदेकचन्द्रैः ॥ (प. प्र. ५१)
ऊर्जादि मासत्रय ऊन मासकः ,, ५२

उक्त कथन से ईसा की प्रायः चौथी शताब्दी में भी क्षय मास का उल्लेख स्पष्ट है । और कदाचित् १४१ वर्ष या १९ वर्ष में क्षय मास होता है यह बात भी भास्कराचार्य के कथन से मिल रही है ।

"वर्षैः सिन्दुरदर्शनाम्बरगुणैः ३०६८ र्यति कलौ संमिते
मासे माधवमंज्ञिके च विहितो ग्रन्थ-क्रियोपक्रमः" ॥

अर्थात् ३०६८ वर्ष कलियुग बीतते वैशाख में प्रारम्भ कर कार्तिक मास में मैंने यह ज्यौतिर्विदाभरण ग्रन्थ समाप्त किया है यह भी उल्लेख मिल रहा है ।

"त्रिखेन्दुभिर्विक्रम भूपतेर्मिते शाके''''क्षयमासको भवेत्" ।

अर्थात् "विक्रम राज के १०३ शक वर्ष बीतने पर १४१ वर्ष पूरे हुए थे तब क्षय मास हुआ था" ऐसा उल्लेख मिल रहा है । इससे शकारम्भ के पूर्व ३८ वें वर्ष में क्षय मास हुआ था ऐसा उल्लेख मिलता है जिससे हमें क्षय मास की अति प्राचीनता का स्पष्ट उल्लेख मिल रहा है । और वाराहमिहिर सम कालीन कालिदास के इस ग्रन्थ में वराहाचार्य की पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्य सिद्धान्त हो या अन्य कोई सूर्य सिद्धान्त हो उसका भी स्पष्ट उल्लेख क्षय मास साधन गणित में कहा है—श्री सूर्यसिद्धान्त मतोदभवार्क्कात् साध्यौ तदा तावधिकक्षयाख्यौ । भावरत्न-कृत—टीका में भी श्री वाराहमिहिर कृत सिद्धान्त गणित सूर्यात्–ऐसा स्पष्ट उल्लेख है ॥२०॥

इति पर्वतीय अल्मोडामण्डल के जुनालयग्रामज श्री पं० हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज
श्री केदारदत्त जोशी (श्री काशीस्थ) कृत मुहूर्त्तचिन्तामणि की "पीताम्बरा" हिन्दी व्याख्या से
तृतीय सङ्क्रान्ति प्रकरण सम्पन्न ॥३॥

अथ गोचरप्रकरणम् ॥ ४ ॥

विघ्नराजमभिवन्द्य सिद्धिदं नीलकण्ठतनयेन धीमता ।
शिष्यमोहविनिवृत्तिकारणं गोचरप्रकरणं विविच्यते ॥

अथ गोचरप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र जन्मराशितः प्रोक्तनिषिद्धस्थानस्थितेदानीन्तनग्रहवशेन शुभाशुभनिरूपणं गोचर इत्युच्यते । तत्र ग्रहाणां गोचरफलं शुभाशुभरूपमुपजातिकाद्वयेनेन्द्रवज्रयोपजातिकापूर्वार्द्धेन चाह—

सूर्यो रसान्त्ये खयुगेऽग्निनन्दे शिवाक्षयोर्भौमशनी तमश्च ।
रसाङ्कयोर्लाभशरे गुणान्त्ये चन्द्रोऽम्बराब्धौ गुणनन्दयोश्च ॥ १ ॥
लाभाष्टमे चाद्यशरे रसान्त्ये नागद्वये ज्ञो द्विशरेऽब्धिरामे ।
रसाङ्कयोर्नागविधौ खनागे लाभव्यये देवगुरुः शराब्धौ ॥ २ ॥
द्व्यन्त्ये नवांऽऽशे त्रिगुणे शिवाष्टौ शुक्रः कुनागे द्विनगेऽग्निरूपे ।
वेदाम्बरे पञ्चनिधौ गजेषौ नन्देशयोर्भानुरसे शिवाग्नौ ॥ ३ ॥
क्रमाच्छुभो विद्ध इति ग्रहः स्यात् पितुः सुतस्यात्र न वेधमाहुः ।
दुष्टोऽपि खेटो विपरीतवेधाच्छुभो द्विकोणे शुभदः सितेऽजः ॥ ४ ॥

पीयूषधारा—सूर्य इति । सूर्यो रसांत्ये इत्यादौ 'सर्वो द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवति' इति । समाहारद्वन्द्वे एकवचनान्तः । शिवाक्षयोरित्यादावितरेतरयोगद्वन्द्वः । अम्बराब्धावित्यादिषु त्वनित्यमागमशासनमिति नुमभावो ज्ञेयः । एवं सर्वत्र व्याख्येयम् । अस्य चतुर्थश्लोकेनान्वयः । स्वजन्मराशेरिति पञ्चमश्लोकस्य पदमत्राध्याहार्यम् । तत्र सूर्यो ग्रहः स्वजन्मराशेः रसांत्ये क्रमाच्छुभो विद्धश्च स्यात् । सूर्यः स्वजन्मराशेः सकाशाद्यदि षष्ठस्थाने तदा शुभः । अतः जन्मराशेर्द्वादशस्थानस्थिताश्चेदन्ये ग्रहाः स्युस्तदा विद्धः । शुभोऽप्यशुभफलदाता ।

रविशन्योर्न परस्परं वेधः—

अत्र शनैश्चरस्य सूर्यपुत्रत्वात्तद्वेधो नाङ्गीकार्यः । यतः पितुर्जनकस्य सुतसम्बन्धिनं वेधं नाहुः । सुतस्यापि पितृसम्बन्धिनं वेधं नाहुः । तथा खयुगे जन्मराशेर्दशमे सूर्यः शुभश्चतुर्थस्थानस्थिताश्चेदन्ये ग्रहाः शनिवर्जिताश्च स्युः तदा विद्ध इत्येवं श्लोकत्रयं सम्यग्व्याख्येयम् । तथा अग्निनन्दे तृतीयनवमयोः, शिवाक्षयोरेकादशपञ्चमयोः सूर्यः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । उक्तं च नारदेन 'शुभोऽर्को जन्मतस्त्र्यायदशषष्ठस्तु विद्यते। जन्मतो नवपञ्चाम्बुव्ययगैर्व्यार्किभिस्तदा ॥' भौमेति । भौमशनी तमो राहुश्चैते ग्रहाः स्वजन्मराशितः रसाङ्कयोः षण्णवस्थानयोः क्रमाच्छुभा विद्धाश्चेत्यर्थः । परन्तु शनेः सूर्यवेधो नास्तीत्युक्तमेवेति । यदाह वसिष्ठः—'त्रिषडेकादशसहितो धरासुतो रिःफधर्मसुतसंस्थैः । दिनकरतनयोऽपि शुभो न विध्यते खेचरैर्विनोष्णकरम् ॥' इति । शनिवद्राहुर्ज्ञेय इति वचनाद्राहोरप्येवमेवैष विचारः । राहोरुपलक्षणत्वात्केतोरपि । उक्तं च शार्ङ्गधरेण । 'राहुकेतुफलं सर्वं मन्दवत्कथितं बुधैः । वेधोऽपि तद्वदेवोह्यो वामवेधस्तथैव च ॥'

अथ चन्द्र इति । जन्मराशितः अम्बराब्धौ दशमचतुर्थयोः, स्थानयोः, गुणनन्दयोस्तृतीयनवमयोः, लाभाष्टमे एकादशाष्टमयोः, आद्यशरे प्रथमपञ्चमयोः, रसान्त्ये षष्ठद्वादशस्थानयोः नगद्वये सप्तमद्वितीययोः स्थानयोश्चन्द्रः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः ।

ज्ञशशिनोः परस्परं वेधो न—

चन्द्रस्य बुधवेधो नास्ति । उक्तं च नारदेन—'विध्यते जन्मतो नेंदुर्द्यूनाद्यायारिखत्रिषु। स्वेष्वष्टान्त्यम्बुधर्मस्थैर्विबुधैर्जन्मतः शुभः ॥' इति । ज्ञ इति । जन्मराशेः द्विशरे द्विपञ्चमयोः, अब्धिरामे चतुर्थतृतीययोः, रसांकयोः षष्ठनवमयोः नागविधौ अष्टमप्रथमयोः खनागे दशमाष्टमयोः, लाभव्यये एकादशद्वादशयोः स्थानयोः ज्ञो बुधः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । परं त्वत्र चन्द्रवेधो नास्ति । यदाह नारदः—'ज्ञ स्वाब्ध्यर्यष्टखायेषु जन्मतश्चेन्न विध्यते । सुतत्र्यंकाद्यष्टमांत्यसंस्थितैरिन्दुजः शुभः ॥' इति । देवगुरुरिति । जन्मराशितः शराब्धौ पञ्चमचतुर्थयोः, द्व्यन्त्ये द्वितीयद्वादशस्थानयोः, नवांऽशे नवमदशमयोः स्थानयोः, द्विगुणे द्वितीयतृतीययोः, शिवाग्नौ एकादशतृतीययोः, देवगुरुर्बृहस्पतिः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । उक्तं च नारदेन—'जन्मतः स्वायगोक्षाद्रिष्वन्त्याष्टखजलत्रिगैः । जन्मराशेर्गुरुः श्रेष्ठो ग्रहैर्यदि न विध्यते ॥' इति । शुक्र इति । जन्मराशेः कुनागे प्रथमाष्टमयोः, द्विनगे द्विसप्तमयोः, अग्निरूपे तृतीयप्रथमयोः, वेदाम्बरे चतुर्थदशमयोः, पञ्चनिधौ पञ्चमनवमयोः, गजेषौ अष्टपञ्चमयोः, नन्देशयोर्नवमदशमयोः भानुरसे द्वादशषष्ठयोः, शिवाग्नौ एकादशतृतीययोः स्थानयोः शुक्रोः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । यदाह नारदः—'जन्मभादासुताष्टाङ्कान्त्यायेष्विष्टो न विध्यते । भार्गवो मृत्युसप्ताद्यस्याङ्केष्वांशारिरामगैः ॥' इति । आसुतेत्यभिविधावाङ् । स तेनान्त्याभिविधिरिति । तेन प्रथमद्वितीयतृतीयपञ्चमानां ग्रहाणामित्यर्थः । इदमत्राकूतम् । 'सूर्यो रसान्त्य' इत्यादौ प्राक्पठितेषु स्थानेषु विद्यमानः स ग्रहः शुभदः । शुभस्थानव्यतिरिक्ताखिलस्थानेषु विद्यमानः स ग्रहोऽशुभफलदाता । अत एवाह श्रीपतिः—'सर्वे लाभ गृहस्थिताश्च खरिपुष्वर्कः कुजार्की त्रिषट्प्राप्तौ साद्यखमन्मथारिषु शशोखास्तारिवर्ज्यं भृगुः । धीधमांस्तधनेषु वाक्पतिरिति स्वाष्टाम्बुखस्थो बुधः श्रेष्ठो जन्मग्रहाद्विगोचरविधः विद्धो न चेत्स्याद्ग्रहैः ॥' इति । अर्थादेवानुक्तस्थानेष्वशुभः स स ग्रहः ।

अत्र ग्रहाणां विहित निषिद्धस्थानफलानि विधिरत्ने—

तत्र रविः—

'स्थानं जन्मनि नाशयेद्दिनकरः कुर्याद्द्वितीये भयं, दुश्चिक्ये श्रियमातनोति हिबुके मान क्षयंयच्छति।
दैन्यं पञ्चमगः करोति रिपुहा षष्ठोऽर्थहा सप्तमे, पीडामष्टमगः करोति पुरुषे कांतिक्षयं धर्मगः ॥

कर्मसिद्धिजनकस्तु कर्मगो वित्तलाभकृदथायसंस्थितः ।
द्रव्यनाशजनितां महापदं यच्छति व्ययगतो दिवाकरः ॥

चन्द्रः—

'जन्मन्यन्नं दिशति हिमगुर्वित्तनाशं द्वितीये दद्याद्द्रव्यं सहजभवने कुक्षिरोगं चतुर्थे ।
कार्ये नाशं तनयगृहगो वित्तलाभं च षष्ठे द्यूने द्रव्यं युवतिमहितं मृत्युसंस्थोऽपमृत्युम् ॥

नृपभयं कुरुते नवमः शशी दशमधामगतस्तु महत्सुखम् ।
विविधमायगतः कुरुते धनं व्ययगतस्तु रुजं धनसंक्षयम् ॥'

भौमः—

'प्रथमगृहगतः क्षोणीसूनुः करोत्यरिजं भयं क्षपयति धनं वित्तस्थाने तृतीयगतोऽर्थगः ।

अरिभयमतः पातालेऽर्थान्क्षिणोति हि पञ्चमो रिपुगृहगतः कुर्याद्वित्तं रुज मदनस्थितः ॥
जनयति निधनस्थः शत्रुबाधां धराजो दिशति नवमसंस्थः कायपीडामतीव ।
शुभमपि दशमस्थो लाभगो भूरि लाभं व्ययभवनगतोऽसौ व्याध्यनर्थार्थनाशान् ॥'

बुधः—

'बुधः प्रथमगो भयं दिशति बन्धमर्थे धने घनं रिपुभयान्वितं सहजगश्चतुर्थोऽर्थगः ।
अनिवृतिकरो भवेत्तनयगोऽरिगः स्थानदः करोति मदनस्थितो बहुविधां शरीरव्ययाम् ॥

अष्टमे शशिसुते धनवृद्धि धर्मगस्तु महतीं तनुपीडाम् ।
कर्मगः सुखमथायगतोऽथ द्वादशे भवति वित्तविनाशः ॥'

गुरुः—

'भयं जन्मन्यार्यो जनयति धनस्थोऽर्थमतुलं तृतीयेंऽगक्लेशं दिशति च चतुर्थेऽर्थविलयम् ।
सुखं पुत्रस्थाने रुजमपि च कुर्यादरिगृहे गुरुर्द्यूने पूजां धननिचयनाशं न निधने ॥

धर्मगतो धनवृद्धिकरः स्याद्वित्तहरो दशमेऽमरपूज्यः ।
स्थानधनानि ददाति स चाये द्वादशगस्तनुमानसपीडाम् ॥'

शुक्रः—

'जन्मन्यरिक्षयकरो भृगुजोऽर्थदोऽर्थे दुश्चिक्यगः सुखकरो धनदश्चतुर्थः ।
स्यात्पुत्रगस्तनयगोऽरिगतोऽरिवृद्धि शोकप्रदो मदनगो निधनेऽर्थदाता ॥
जनयति विविधाम्बराणि धर्मे न सुखकरो दशमस्थितस्तु शुक्रः ।
धननिचयकरः स लाभसंस्थो व्ययभवनेऽपि धनागमं करोति ॥'

शनिः—

'वित्तभ्रंशं रुगाप्ति दिनकरतनये जन्मराशिप्रपन्ने वित्तक्लेशं द्वितीये धनहरणकृति वित्तलाभं तृतीये।
पाताले शत्रुवृद्धि सुतभवनगतः पुत्रभृत्यार्थनाशं षष्ठे स्थानेऽर्थलाभं जनयति मदने दोषसङ्घातमार्किः॥

शरीरपीडां निधने च धर्मे धनक्षयं कर्मणि दौर्मनस्यम् ।
उपान्त्यगो वित्तमनर्थमन्त्ये शनिर्ददातीत्यवदद्वसिष्ठः ॥'

राहु-केतु—

'राहुर्जन्मगतो भयं च कलहं सौभाग्यस्नानक्षयं वित्तभ्रंशमहासुखं नृपभयं चार्थक्षयं यच्छति ।
सन्तापं कलहं च वित्तमाधिकं शीघ्रं विनाशं नृणां केतोस्तत्फलमेव राशिषु वदेच्छंसंति गर्गादयः॥'

ऋक्षराशिधिष्ण्यस्था वक्रिणश्चक्रमेणैष्यप्राग्राशिफलदाः—

एतच्च शुभाशुभफलं ग्रहा ऋक्षसन्धिगतास्तथा राशिसन्धिगता एष्यराशेः फलं ददाति, वक्रिणस्तु प्राग्राशेरित्याह कमलासनः—'ऋक्षसन्धिगताःखेटा राशिसन्धिगता ग्रहाः । एष्यराशेः फलं दद्युर्वक्री तद्विपरीतकम् ॥' इति । राशिग्रहणं नक्षत्रस्याप्युपलक्षणम् । वसिष्ठोऽपि— 'भवनान्त्यगतास्वधिष्ण्यं यदन्तगताश्च गगनचराः । दद्युः परभवनफलं प्राग्भवनफलं च वक्रिता-

श्चैते' इति । अस्यार्थः—ऋक्षं नक्षत्रं तस्य सन्धिः । एकस्मान्निर्गत्यापरत्र संक्रमणं सन्धिः । एवं राशिसन्धिश्च । तत्र सन्धिज्ञानं—'देवद्व्यर्कर्तवोऽष्टाष्टौ नाड्योऽङ्काः खनृपाः क्रमात् । वर्ज्याः संक्रमणेऽर्कादेः प्रायोऽर्कस्यातिनिन्दिताः ॥' इति विवाहप्रकरणे वक्ष्यति ग्रन्थकृत् । संक्रमणकाल एव सन्धिकालः सर्वेषां ग्रहाणाम् । 'षष्टिघ्नबिम्बं ग्रहभुक्तिभक्तम्' इत्यादिना भास्करेणोक्तत्वात् । तदेतदस्माभिः संक्रान्तिप्रकरणे सप्रपञ्चं निरूपितं तत एवावधार्यताम् । तत्र सूर्यादिग्रहाः 'देवद्व्यर्क्क'—ति पद्योक्तार्धघटिकोपलक्षिते नक्षत्रादौ राश्यादौ वा स्थिता भुक्तस्य नक्षत्रस्य राशेर्वा फलं ददति ।

अथ वक्रातिचारयोः फलदानदिनसंख्या—

तत्र भौमाद्याः ग्रहाः वक्रातिचारयोःप्राग्राशिफलं कियन्ति दिनानि प्रयच्छन्तीत्याह वसिष्ठः—'दशदिवसं पञ्चदिनं त्रिपक्षमतिचारवक्रयोर्दद्युः । भौमाद्या पञ्चदिनं प्राग्राशिफलं च पञ्चमासांश्च ॥' इति । भौमाद्याः स्वगत्या यावता कालेन राशिं जहति न ततोऽल्पे न्यूनाधिकभावेन स चारः । यदा चारसमये राशिं जहति सोऽतिचारः । वक्रं प्रसिद्धमेव ।

वेधविचारः—

अथ वामवेधं शुक्लपक्षे चन्द्रबलं चोपजात्युत्तरार्द्धेनाह—दुष्टोऽपीति । दुष्टोऽपि स्वजन्म राशेः सकाशादनिष्टस्थानस्थितोऽपि खेटो विपरीतवेधात् वामवेधाच्छुभः शुभफलदाता । अयमर्थः—तेषु षष्ठदशमतृतीयैकादशेषु स्थितः सूर्यः शुभफलदाता । तद्भिन्नावष्टौ स्थानान्यशुभान्येव । तत्र द्वादशचतुर्थनवमपञ्चमाख्येष्वनिष्टस्थानेषु स्थितः सूर्यस्तथैवानिष्टफलदः स्यात् । यदा तु विद्धस्तदा शुभफलदोऽपि षष्ठादिस्थाने शुभदो नैव स्यात् । अन्येषु स्थानेषु प्रथमद्वितीयसप्तमाष्टमेषु स्थितः सूर्यो निष्फलदो नैव । एवं चन्द्रबुधयोः षडेव विरुद्धस्थानानीति क्रमवेधवामवेधौ स्याताम् । भौमस्य तु त्रीण्येव तृतीयदशमैकादशस्थानानि शुभतराणि । अन्यान्यशुभान्येव तत्र नवमपञ्चमद्वादशस्थानस्थितभौमस्याशुभस्य क्रमेण षष्ठैकादशतृतीयस्थानस्थैर्ग्रहैर्वामवेधेन शुभत्वमेव । अन्येष्वशुभस्थानस्थितेष्वशुभ एव भौमः । एवं शनिराहुकेतवो ध्येयाः । गुरोरप्येवमेव । तत्र तु प्रथमषष्ठस्थानस्थो गुरुः शुभ एव । शुक्रस्य तु नवस्थानानां शुभत्वात्तद्व्यतिरिक्तानि त्रीणि षष्ठसप्तमदशमस्थानान्यशुभानि । तेषामेव क्रमेण द्वादशद्वितीयचतुर्थस्थानस्थग्रहजनितवामवेधेन शुभत्वमेव । अन्येषां तूत्तरपठितस्थानानां शुभत्वादेव न वामवेधविचारार्हत्वमिति परिच्छिन्नोऽर्थः । यदाह कश्यपः—अपविद्धो ग्रहः कश्चिन्न ददाति शुभं फलम् । वामवेधविधानेन त्वशुभोऽपि शुभप्रदः ॥ अतस्तद्द्विविधं मूलं विचार्यैव फलं वदेत् ॥' वसिष्ठोऽपि—'वेधसमन्वित खचराणां प्रदिशन्त्यसत्फलं किञ्चित् । व्यत्ययवेधविधानादपि शुभदास्तेऽशुभप्रदाः सततम् ॥'' इति । व्यत्ययवेधो वामवेधः । द्विकोण इति । सिते शुक्लपक्षेऽब्जश्चन्द्रो द्विकोणे द्वितीयनवमपञ्चमस्थानेषु स्थितः शुभदः । अत्रापि क्रमेण षष्ठाष्टमश्चतुर्थस्थानस्थितैर्बुधवर्जितैर्ग्रहैर्यदि न विद्धः इत्यपि ध्येयम् । उक्तं च नारदेन—'शुक्लपक्षे शुभश्चन्द्रो द्वितीयनवपञ्चगैः । रिपुमृत्यम्बुसंस्थैर्नं विद्धो हि गगनेचरैः ॥' इति । यदि विध्यते तदाशुभफलद एव ॥ १—४ ॥

वेधकोष्ठकानि ।

	रविः				चन्द्रः						मं. श. रा. के.		
शु.	३	११	१०	६	७	१	११	६	१०	३	३	६	११
वे.	९	५	४	१२	२	५	८	१२	४	९	१२	९	५

बुधः						गुरुः					शुक्रः								
२	४	६	८	१०	११	२	११	९	५	७	१	२	३	४	५	८	९	१२	११
५	३	९	१	८	१२	१२	८	१०	४	३	८	७	१	१०	९	५	११	६	३

शुक्लपक्षे चन्द्रस्य विशेषः—			
शुभः	२	९	५
वेधितः	६	८	४

पीताम्बरा—अपनी जन्म राशि से निषिद्ध स्थानों में स्थित तत्कालीन ग्रहों का शुभाशुभ फल निरूपण का नाम "गोचर" कहा जाता है। यहाँ ग्रहों का शुभाशुभ गोचर फल बताया जा रहा है—गोचर से छठा सूर्य ग्रह, शुभ फलद होता है और गोचर से १२ वाँ स्थान स्थित ग्रह में विद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि अपनी जन्म राशि से सूर्यादिक ग्रहों के शुभ फलद स्थान बताते हुए यह भी बताया गया है कि शुभ स्थान स्थित ग्रह तभी शुभ फलद होंगे जब कि उनके वेध स्थान में कोई अन्य ग्रह न हों। इस प्रकार जन्म राशि से ६, १, १०, ११ वें स्थान में सूर्य ग्रह शुभ होता है जब कि क्रमशः १२, ४, ९, ५ स्थान में कोई अन्य ग्रह नहीं है। जैसे—**चि० नवीन चन्द्र** की वृश्चिक राशि से (१३ अप्रैल से १३ मई १९७१ तक) मेष राशि का सूर्य छठा होने से उत्तम है, यदि इस बीच वृश्चिक राशि से १२ वीं (तुला राशि में) कोई ग्रह नहीं हो तो वेध रहित छठा सूर्य उत्तम हुआ। और भी उदाहरण से **श्रीमती 'हीरा देवी'** की कर्क राशि से मेष का दशवाँ सूर्य उत्तम है क्योंकि उक्त समय में कर्क राशि से सूर्य के शुभ फल को वेध कर अशुभ फल देने वाले चतुर्थ तुला में कोई ग्रह नहीं है।

इसी प्रकार मंगल-शनि और राहु ६, ११, ३, तब शुभ हैं जब क्रमशः ९, ५, १२ मे अन्य कोई ग्रह न हों।

चन्द्रमा—१०, ३, ११, १, ६, ७ स्थानों में शुभ होता है जब कि क्रमशः ४, ९, ८, ५, १२, २ स्थानों में कोई ग्रह न हो।

अपनी जन्म राशि से बुध २, ४, ६, ८, १०, ११ स्थानों में शुभ हैं जब क्रमशः ५, ३, ९, १, ८, १२ स्थानों में अन्य कोई ग्रह न हो।

अपनी जन्म राशि से बृहस्पति ग्रह ५, २, ९, ७, ११ स्थानों में शुभ है जब क्रमशः ४, १२, १०, ३, ८ स्थानों में कोई ग्रह न हो।

अपनी जन्म राशि से शुक्र ग्रह १, २, ३, ४, ५, ८, ९, १२, ११ स्थानों में शुभ है यदि क्रमशः ८, ७, १, १०, ९, ५, ११, ६, ३ स्थानों में कोई अन्य ग्रह नहीं हो।

पं० जयदत्त की वृश्चिक राशि में ५ वाँ मीन राशि का वृहस्पति उत्तम कहा जायेगा जब कि पं० जयदत्त की वृश्चिक राशि से चौथे कुम्भ में अन्य कोई ग्रह न हो। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये।

विशेष—पिता और पुत्र ग्रहों (सूर्य पिता, शनि पुत्र, चन्द्रमा पिता, बुध पुत्र) के वेध का अशुभ फल नहीं होता जैसे जन्मराशि से छठे शुभ सूर्य को जन्म राशि के १२ वें सभी ग्रह वेध से अशुभ फल कर देते हैं तो ऐसी जगह शनि के वेध से सूर्य अशुभ न होकर शुभफलद ही होगा।

तथा वेध स्थान में कोई ग्रह हो और शुभ स्थान में भी कोई ग्रह बैठे तो भी विपरीत वेध होने से शुभ फल अन्यथा अशुभ फल समझना चाहिए।

जैसे १२ वाँ सूर्य का छठे स्थानीय ग्रह से विपरीत वेध होने से अशुभ सूर्य भी शुभ फलद हो जाता है।

शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा, २, ९, ५ स्थानों में शुभ जब क्रमशः ६, ८, ४ स्थानों में बुध वर्जित ग्रहों से विद्ध न हो ॥ १–२–३–४ ॥

अथ द्विविधवेधे मतद्वयमुपजात्याह—

स्वजन्मराशेरिह वेधमाहुरन्ये ग्रहाधिष्ठितराशितः सः।
हिमाद्रिविन्ध्यान्तर एव वेधो न सर्वदेशेष्विति काश्यपोक्तिः ॥५॥

पीयूषधारा—स्वजन्मेति। इह द्विविधविधावन्ये नारदादयः स्वजन्मराशेः सकाशाद् द्विविधं वेधं क्रमिकं वेधं वामवेधं चाहुः। तथा चोभयत्रापि नारदेन 'जन्मत' इत्युक्तम्। अथ कश्यपादिमतमुच्यते–स पुनर्द्विविधोऽपि वेधो ग्रहाधिष्ठितराशितो ज्ञेयः। यथा सूर्यो जन्मराशेः सकाशात्पष्ठस्थितः शुभः। स सूर्यः स्वक्रान्तराशितो द्वादशस्थानस्थितैः शनिवर्जितैर्ग्रहैर्न विद्धः। तथा सूर्यो जन्मराशिद्वादशस्थोऽपि नेष्टः सः सूर्यसङ्क्रान्तराशितः षष्ठस्थितैश्शनिवर्जितैर्ग्रहैर्विद्धश्चेत्तदा शुभफलद इत्यर्थः।

कश्यपमते हिमाद्रिविन्ध्यान्तर एव द्वावपि वेधौ—

एतस्यैव द्विविधवेधस्य देशविशेषविषयत्वमुच्यते। हिमाद्रिविन्ध्यनामानौ पर्वतौ प्रदेश-

विशेषावस्थित्या प्रसिद्धौ । तयोरन्तरालवर्तिन्येव देशे स द्विविधोऽपि वेधो ज्ञेयः, न सर्वदेशेषु । हिमारिविन्ध्यातरालबहिर्भूतसर्वदेशेषु द्विविधोऽपि वेधदोषो नास्तीति कश्यपस्य मुनेरुक्तिर्वचनमस्ति । यदाह कश्यपः—ज्ञातव्यं जन्मराशेस्तु निखिलं यद्बलाबलम् । हिमाद्रिविन्ध्ययोर्मध्ये वेधजं तद्ग्रहालयात् ॥' इति । वयं तु 'सूर्यो रसान्त्य' इति क्रमिको वेधो जन्मराशित एव ज्ञेयः । वामवेधस्तु अधिष्ठितराशित इति ब्रूमः । तदाह गुरुः—'जन्मतः क्रमवेधः स्याद्वामवेधो ग्रहालयात्' इदमपि हिमाद्रिविन्ध्यान्तरविषयमेव । एतज्ज्ञानं दुर्घटमित्याहतुर्नारदकश्यपौ —'अज्ञात्वा द्विविधं वेधं यो ग्रहज्ञो बलं वदेत् । स मृषावचनाभाषी हास्यं याति जनैः सदा ॥' इति ।

ग्रहदौष्ट्ये यात्रादिकं न कार्यम्—

एवं प्रकारेण गोचरबलं ज्ञात्वा ग्रहदौष्ट्ये यात्रादिकं न कार्यम् । तदुक्तं श्रीपतिना—

'अकालचर्यामृगयां च साहसं सुदूरयानं गजवाजिवाहनम् ।
गृहे परेषां गमनं विवर्जयेद्ग्रहेषु राज्ञा विषमस्थितेषु हि ॥'

ग्रहदौष्ट्ये शान्तिः करणीयैव—

अत एव तत्र ग्रहशान्तिर्विधेया । यदाह नारदः—'ग्रहेषु विषमस्थेषु शान्तिं यत्नात्समाचरेत् । हानिवृद्धी ग्रहाधीने तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥' इति । विपर्यये चानिष्टमित्याह वसिष्ठः—'ग्रहेषु विषमस्थेषु यः शान्तिं न करोति सः । अर्थहानिं च मरणं चाश्नुते सर्वसङ्कटम् ॥' इति ।

शान्तिप्रकारस्तत्समयश्च—

स च शान्तिर्वसिष्ठसंहितोक्तप्रकारेण मत्स्यपुराणोक्तप्रकारेण वाऽनुष्ठेया । तत्र शान्तिकालमाह वसिष्ठः 'मासि मास्ययने चैव चंद्रसूर्यग्रहेऽपि वा । विषुवत्रिकसंक्रान्तौ व्यतीपाते दिनक्षये ॥' इति । 'सौम्येक्षितेऽनिष्टफलः शुभदः पापवीक्षितः । निष्फलौ तौ ग्रहौ स्वेन शत्रुणा चावलोकितः । नीचराशिगतः स्वस्य शत्रुक्षेत्रगतोऽपि वा । शुभाशुभफलं नैव दद्यादस्तङ्गतोऽपि वा ॥' इत्येतादृशस्थले दुष्टत्वाभावादेव शान्त्यभाव इति फलितं भवति ॥ ५ ॥

पीताम्बरा—दो प्रकार के वेध के लिए आचार्यों के दो प्रकार के मत बताये जा रहे हैं— नारदादिक ऋषियों के कथनानुसार क्रमिक वेध और वाम वेध का विचार अपनी जन्म राशि से करना चाहिये ।

किन्तु काश्यपादिक मुनियों के कथनानुसार उक्त दो प्रकार का भी वेध, ग्रह जिस राशि पर है उस राशि से अपनी जन्म राशि तक के क्रम से होता है ।

जैसे अपनी जन्म राशि से छठा सूर्य शुभ है किन्तु छठा सूर्य, जिस राशि पर है उससे १२ वें स्थान स्थित शनि वर्जित ग्रह से जब वेधित न हो ।

तथा अपनी जन्म राशि से १२ वाँ सूर्य नेष्ट है जबकि ऐसा सूर्य अपनी आक्रान्त राशि से छठे में शनि वर्जित अन्य ग्रहों से वेधित हो तो शुभ फलद होता है ।

नारदादिक ऋषियों का मत समीचीन मुख्य और कश्यपादिक महर्षियों का कथन गौण-सा मालूम पड़ता है ।

उक्त दो प्रकार का वेध, हिमाद्रि और विन्ध्य पर्वत के मध्यवर्ती देशों में प्रसिद्ध हैं। उक्त विचार सार्वदेशिक नहीं है।

"हिमालय और विन्ध्य के मध्यवर्ती देशों से बहिर्भूत सब देशों में उक्त द्विविध वेध दोष नहीं होता है" ऐसा कश्यप मुनि का कथन है।

कुछ आचार्य क्रमिक वेध जन्म राशि से और वाम वेध ग्रहाधिष्ठित राशि से समीचीन मानते हैं।

गोचर से ग्रह की अनिष्ट स्थिति वश यात्रा भी वर्जित कही गई हैं। शान्ति कर्म पुरस्सर आवश्यक कार्य किए जा सकते हैं॥ ५॥

अथ गोचप्रस्तावात् ग्रहणनक्षत्रफलं ग्रहणीयराहुगोचरफलं ग्रहाणामशुभप्रतीकारं च दुष्टग्रहणदर्शननिषेधं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जन्मर्क्षे निधनं ग्रहे जनिभतो घातः क्षतिः श्रीर्व्यथा
चिन्ता सौख्यकलत्रदौस्थ्यमृतयः स्युर्माननाशः सुखम्।
लाभोऽपाय इति क्रमात्तदशुभध्वस्त्यै जपः स्वर्णगो-
दानं शान्तिरथो ग्रहं त्वशुभदं नो वीक्ष्यमाहुः परे॥ ६॥

पीयूष धारा—जन्मर्क्षे इति। जन्मनक्षत्रे ग्रहणे सति निधनं मृतिः स्यात्। यदाह वसिष्ठः यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ। तज्जातानां भवेत्पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः॥' भार्गवीये विशेषोऽपि—'यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते। राज्यभङ्गं सुहृन्नाशं मरणं चात्र निर्दिशेत्॥' इति राज्यस्य नक्षत्रे अभिषेकनक्षत्रे यदा कदाचिद्राहुभुज्यमाननक्षत्रोपरागनक्षत्रमेकमेव तदाऽसन्दिग्धफलनिर्देशः। यदा तु नक्षत्रभेदस्तदीयरज्यमाननक्षत्रेष्वेव फलनिर्देशः। एवं राशिभेदेषूपरज्यमानराशितः। अस्य मते राहोर्दिग्देशकालावरणादिभेदाद्ग्रहणत्वमेव नास्ति। तदुक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ—'दिग्देशकालावरणादिभेदान्न बाधको राहुरिति ब्रुवन्ति' एतदुपपत्तिर्भास्करेण स्वपद्यैरेव निरूपिता। पितृचरणैश्च टोडरानन्दे राहुचारविलासे प्रपञ्चेनाभ्यधायि। परन्तु राहुसाहित्यं विना ग्रहणानयनस्य शरसंस्कृतिमानैक्यखण्डाद्यानयनविशिष्टस्यासुकरत्वादिति साहित्यविवक्षयैव राहोरुपरक्तत्वमुच्यते। अत एवोक्तं वाराहेण—'तस्मिन्काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहुः। याम्योत्तरा शशिगतिर्गणिते ह्युपचर्यते तेन॥' इति।

जन्मराश्यादेः सूर्यचन्द्रोपरागयोः फलानि—

राशिफलमुच्यते। जनिभत इति। पञ्चम्यास्तसिल्। जन्मराशेरारभ्य द्वादशसु राशिषु ग्रहणे सति क्रमादनुक्रमेण घातादि फलं भवति। तथा जन्मराशौ ग्रहणे सति घातः शरीरपीडा, द्वितीयराशौ क्षतिः द्रव्यनाशः, तृतीयराशौ श्रीः, चतुर्थराशौ शरीरपीडा, पञ्चमराशौ चिन्ता पुत्रादीनां, षष्ठराशौ सौख्यम्, सप्तमराशौ कलत्रदौस्थ्यं स्त्रीमरणम्, अष्टमराशौ मृत्युर्मरणम्, नवमराशौ माननाशः, दशमराशौ सुखम्, एकादशराशौ लाभः, द्वादशराशौ मृत्युः। आत्मन इति केचित्। द्रव्यस्येत्यपरे। इदं च फलं षण्मासपर्यन्तमनुक्तमपि ध्येयम्। तदुत्तरं हि ग्रहणान्तरसम्भवात्। उक्तं दैवज्ञमनोहरे—'घातं हानिमथ श्रियं जननभाद्व्यस्ति च चिन्तां क्रमात्सौख्यं दारवियोजनं च कुरुते

व्याधिं च मानक्षयम् । सिद्धिं लाभमपायमर्कशशिनोः षण्मासमध्ये ग्रहः ।। इति क्वचित्तु स्थानान्त्य एव शुभमध्यमाधमा इत्युक्तमपि दैवज्ञमनोहरे एतदुक्तं—'ग्रासात्तृतीयाष्टमगश्चतुर्थस्यायसंस्थः शुभदः स्वराशिः । नवांशधीसप्तमगश्च मध्ये पूज्यो द्विषट्को दशमाद्यसंस्थः ।।' इति । अत्र वाक्ये ग्रासराशेर्गणनोक्ता । क्वचित् स्वराशेरपि, तद्वाक्यम्—'त्रिषड्दशायोपगते नराणां शुभप्रदं स्याद्ग्रहणं रवीन्द्वोः । द्विसप्तनन्देषु च मध्यमं स्याच्छेशेष्वनिष्टं मुनयो वदन्ति' इति । अत्रावश्यपेक्षया स्वजन्मराशेरित्यध्याहार्यमेव । अत्र ग्रहणीयराशेर्देशविशेषेण शुभफलानि वराहसंहितायामभिहितानि । तथा च फलं कूर्मोपदेशाद्वदेति वराहोक्तग्रहणीयनक्षत्रशुभफलानि स्वरोदयाभिहितकूर्मचक्रे पराशरसंहितायां चाभिहितानि । तथा मण्डलभेदेनाप्यशुभफलानि गर्गसंहितायामभिहितानि तानि सर्वाण्यपि पितृचरणकृतटोडरानन्दे राहुचारविलासतोऽवधार्याणि नात्राप्रस्तुतं लिख्यतेऽस्माभिः ।

सूर्यचन्द्रोपरागयोररिष्टनिवृत्तये दानम्—

अशुभसूचकग्रहणप्रतीकारमाह—तदशुभमिति । तत्र सूर्यचन्द्रयोर्ग्रहणस्य सम्बन्धि यदशुभं दुष्टफलं तस्य ध्वस्त्यै नाशाय जपः स्वर्णगोदानं जपो गायत्र्यादीनां मन्त्राणाम् । स्वर्णं प्रसिद्धम्, गौः प्रसिद्धा भूमिर्वा । उपलक्षणत्वादन्येषां रूप्यादीनां यथाशक्ति दानं कार्यमिति शेषः । उक्तं च दैवज्ञमनोहरे—'इन्दौ सूर्ये यदि विधिवशात्संहिकेयावमर्दस्तद्राश्यानां भवति नियतं ग्रामपुंसां विनाशः । तस्माच्छान्तिं मुनिभिरुदितां तत्तदालोकपूर्वां कुर्याद्दानादिभिरिह नृणां नाशमायात्यरिष्टम् ।।' इति । दानमपि तत्रैव—'सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं ताम्रभाजनम् । सदक्षिणं सवस्त्रं च श्रोत्रियाय निवेदयेत् ।। सौवर्णं राजतं वापि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तितः । उपरागोद्भवक्लेशच्छिदे विप्राय कल्पयेत् ।' दानमन्त्रश्च—'तमोमय ! महाभीम सोमसूर्यविमर्दन । हेमनागप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव ।।' स्कन्दपुराणे—'गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं विशेषतः । ग्रहणे क्लेशनाशाय दैवज्ञाय निवेदयेत् ।।' इति । किं चात्र देशविशेषः पात्रविशेषो द्रव्यविशेषश्च नापेक्षित इत्याह व्यासः—'सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः । सर्वभूमिः कुरुक्षेत्रं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।।' इति । तत्र स्नानदानादिकं कस्मिन्काले कर्त्तव्यमित्याह—ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते । मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते ।। इति । तस्मिन्काले जपादिकमपि विधेयम् । 'सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्' इति शिवरहस्योक्तेः । आदिशब्दात्सुरार्चनमपि ।

अत्र जन्मनक्षत्रजन्मराश्योर्ग्रहणे शान्तिमाह वसिष्ठः—

'यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ । तस्य व्याधिभयं घोरं जन्मराशौ धनक्षयः ।।
द्रव्यमन्त्रविधानेन तस्य दोषापनुत्तये । उपरागस्नानविधिं सम्यग्वक्ष्ये समासतः ।।
मण्डलं चतुरस्रं तु गोमयेन विलेपयेत् । गृहस्येशानदिग्भागे वर्णकैः समलङ्कृते ।।
स्थापयेच्चतुरः कुम्भांस्तत्र तान्सागरात्मकान् । सर्ववेदात्मकान् स्मृत्वा सर्वतीर्थात्मकाञ्छुभान् ।।
पल्लवोशीरसायुज्यशतौषधिसमन्वितान् । मृत्तिकाहेमरत्नेन दन्तगुग्गुलचन्दनैः ।।
पञ्चगव्यामृतभ्राजत्स्फटिकैः सर्षपाम्बरैः । शङ्खकुङ्कुमतीर्थाम्बुरोचनैः पद्मकैर्युतान् ।।

चत्वारः प्राङ्मुखा विप्राः प्रार्थयेयुः पृथक् पृथक् । अब्लिङ्गैर्वारुणैः सूक्तैः स्वस्तिवाचनपूर्वकैः ॥
तिलहोमं व्याहृतिभिः सहस्रं चाष्टसंयुतम् । एवं कृत्वा प्रयत्नेन स्नानकर्म समाचरेत् ॥
आमन्त्र्य नवभिर्मन्त्रैः कुम्भान्सङ्कल्पपूर्वकाम् । एतानेव ततो मन्त्रान्स्वर्णपट्टे च संलिखेत् ॥
कर्त्तुः शिरसि तं वध्वा चाब्लिङ्गैर्वेदमन्त्रकैः । सुमन्त्रितैः कुम्भजलैः स्नाप्य नीराजयेत्ततः ॥
दध्याज्यं प्रददेदेभ्यः शुक्लमाल्याम्बरः शुचिः । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याच्छिष्टेभ्यश्च स्वशक्तितः ॥
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रनयनश्चन्द्रग्रहपीडां व्यपोहतु ॥
मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः । चन्द्रोपरागसम्भतामग्निः पीडां व्यपोहतु ॥
यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः । यमश्चन्द्रोपरागस्ये ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥
रक्षोगणाधिपः साक्षात्प्रलयानलसन्निभिः । खड्गव्यग्रोऽतिकायश्च रक्षःपीडां व्यपोहतु ॥
प्राणरूपो हि लोकानां वायुः कृष्णमृगप्रियः । वायुश्चन्द्रोपरागस्य पीडामत्र व्यपोहतु ॥
योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः । चन्द्रोपरागकलुषान्पीडां चापि व्यपोहतु ॥
योऽसाविन्दुधरो रुद्रः पिनाकी वृषवाहनः । चन्द्रोपरागपापानि नाशयत्वथ शङ्करः ॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि चराणि स्थावराणि च । ब्रह्मविष्णवर्कयुक्तानि तानि पापं दहन्तु मे ॥
आमन्त्रणे लेखने चाप्येते पूजनमन्त्रकाः । अर्चयित्वा पितॄन्देवान् गोभूस्वर्णवरादिभिः ॥
अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत् । न तस्य ग्रहपीडा स्याद्यानबन्धुधनक्षयः ॥
परमा सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् । सूर्यग्रहेप्येवमेव सूर्यनाम्ना विधीयते ॥

इति । वृद्धवसिष्ठप्रोक्ता ग्रहणशान्तिः समाप्ता । अत्र यद्यपि जन्मराशौ धनक्षय इत्युक्तम् । तत्र च दोषाल्पताप्रतिपादनेन शान्त्यकर्तव्यता प्रतीयते । तथापि प्राग्विलिखितवहुवचस्सु विरुद्धफलाभिधानादेवास्य जन्मशशिन्यपि ग्रहणे शान्तिर्विधेया । उभयानुवादेन शान्त्यभिधानात् । उक्तं च मत्स्यपुराणे—'यस्य राशिं समासाद्य भवेद्ग्रहणसम्भवः । तस्य शान्तिं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिविधानतः ॥' इति । अतो जन्मनक्षत्रजन्मराशिव्यतिरिक्ते विरुद्धे ग्रहणे शान्तिर्न विधेया, वचनाभावात् । किन्तु स्वविभवानुरूपं दानादि विधेयमिति तात्पर्यार्थः सूर्यग्रहेप्येवमेवेति 'योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रकिरणः सूर्यो ग्रहपीडां व्यपोहतु' इत्युक्तदिशा चन्द्रपदस्थाने सूर्यपदं पूर्वमन्त्रश्लोकेषु प्रयोज्यमित्यर्थः ।

दृष्ट एव सूर्यस्य शशिनश्चोपरागोऽरिष्टजनक इति—

अथेदं ग्रहणं स्थानविशेषेणानिष्टजनकमित्युक्तम् । तत्र किं ग्रहणं दृष्टमदृष्टमित्याह । अथो इति उक्तं च 'जन्मसप्ताष्टरिःफाङ्कदशमस्थे निशाकरे । दुष्टेऽनिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधनेऽपि च ॥' इति । जन्मर्क्षे जन्मनक्षत्रे, निधनं वधतारा सप्तमी, अत्र दुष्ट इति पदश्रवणाद्-दुष्टस्थानावस्थितो राहुः पुंसां दोषजनकः । यदा तु मेघाद्यावरणेन गृहमध्यावस्थितस्याचक्षुष्मतोऽपि पुंसो राहुदर्शनाभावे सत्यप्यरिष्टेऽरिष्टं नास्ति । एवं चान्धस्य यत्र कुत्राप्यवस्थितस्य गृहाद्बहिर्गन्तुमशक्नुवतो वृद्धातुरादेश्च सर्वारिष्टं स्नानादि वा नास्ति इति तेषामाशयः ।

स्नानप्रयोजकत्वम्—

अत्रेदं कथ्यते । किमिदं ग्रहणं दृष्टमेव स्नानाद्यधिकारसम्पादकमुत मेघाद्यावरणेना-

दृष्टमपि, कुतः । उभयथा वचनोपलब्धेः । तथा हि वृद्धवसिष्ठः—'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं विवर्जयेत् ॥' इति । षट्त्रिंशन्मते—'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत श्रृतमन्नं विवर्जयेत् ॥' इति । श्रृतं पक्वम्, 'श्रृतं पाके' इति निपातनात् । यद्यपि तस्मिन् सूत्रे क्षीरहविषोरेवेति महाभाष्यकृतोक्तम्, तथापि महामुनिप्रयोगादन्यस्मिन्नपि द्रव्य ओदनादौ पाकसामान्यवद्वृत्तिः । विष्णुः—'राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाचन्द्रतारकम्' इति । शातातपः—'स्नानदानतपःश्राद्धमनन्तं राहुदर्शने' इति । एवमादीनि वचांसि दर्शनपदसहितान्युपलभ्यन्ते । अन्यथापि वसिष्ठः—ग्रहणे सङ्क्रमे वापि न स्नायाद्यदि मानवः । सप्तजन्मसु कुष्ठी स्याद्दुःखभागी च जायते ॥' इति । लिंगपुराणेऽपि—'चन्द्रसूर्यग्रहे स्नायात्सूतके मृतकेऽपि च । अस्नायी मृत्युमाप्नोति स्नायी पापं न विन्दति ॥' इति । एवमादीनि दर्शनपदानाक्रान्तानि वचांस्युपलभ्यन्ते । तत्र दर्शनवादिन आहुः दर्शनपदानाक्रान्तेषु वचस्सु ग्रहणस्य निमित्तत्वं च प्रतिपद्यते । 'ग्रहणे संक्रमे वापि' इति निमित्तसप्तम्युपलम्भात् । ज्ञातमेव च ग्रहणं स्नानदानादिकं प्रति निमित्तं भवति । तज्ज्ञानापेक्षायां च राहुदर्शनपदोपेतवचनालोचनेन चाक्षुषे ज्ञानस्यैव निमित्तत्वम् । इतश्चाक्षुष एव ज्ञाने दर्शनस्य मुख्यत्वं ज्योतिःशास्त्रीयज्ञाने तु लक्षणाप्रसक्तिः । एवं सति मेघाच्छन्नग्रहणदिवसजातचन्द्रग्रहणरात्रिभवसूर्यग्रहणेषु न स्नानदानादावधिकारः । तस्माद्ग्रहणं दृष्ट्वा स्नानदानादिकं विधेयमित्यर्थः सम्पन्नो भवति । नैतत्सहृदयङ्गमम् । यतो वचनेषु राहुदर्शनग्रहपदयोः समानार्थकता नास्ति, कथम् । अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्त्तयो भगणाश्रिताः । शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः ॥' इति सूर्यसिद्धान्ते चन्द्रादिग्रहपातानामदृश्यतोक्ता । पातो राहुश्च पर्यायः । उक्तं च तत्रैव—'दक्षिणोत्तरयोरेव पातो राहुश्च रंहसा । विक्षेपत्येष विक्षेपञ्चन्द्रादीनामपक्रमात् ॥' इति । केशवार्केणाप्युक्तम्—'पर्यायेण तु राहुपातयोर्नामनी विदधुरेव तान्त्रिकाः' इति । अतो राहुदर्शनमेव गगनकुसुमायमानम् । ननु ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोश्छादको राहुर्दृश्यत एव । अत एव 'राहुग्रस्ते निशाकरे' इत्यादिपुराणोक्तिः साधीयसीति चेन्न । 'भानोर्भार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपि वा । शशाङ्कपाते ग्रहणं क्रियद्भागधिकोनके ॥' इत्युपक्रम्य 'छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत् । भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥' इति असौ भूच्छायास्य चन्द्रस्य छादको भवेदित्यर्थः । इति सूर्यसिद्धान्तोक्तः स्पष्ट एव छाद्यच्छादकभावोऽभिहितः ।

पौराणिकोक्तिविरोधपरिहारः—

पुराणेन सह विरोधपरिहारस्तु—'दिग्देशकालावरणादिभेदान्नच्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति । यन्मानिनः केवलगोलविद्यास्तत्संहितावेदपुराणबाह्यम् ॥' इति पूर्वपक्षं विधाय ततो 'राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कम्' इत्यादिना तमोमयः शम्भुवरप्रदानात्सर्वागमानामविरुद्धमेतत्'—इत्यन्तेन भास्कराचार्यैरेवोक्तः । तस्मिन्काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहुरिति वराहेण चोक्तम् । तस्माद्राहुदर्शनं तु नास्त्येव । भवन्मते दर्शनं चाक्षुषमेवोच्यते नान्यत् । एवं सति राहोर्दर्शन राहुदर्शनमिति तत्पुरुषोऽनुपपन्नः । अथ तु समीपलक्षकदर्शनशब्दमङ्गीकृत्य तदर्थः क्रियते । तदापि यस्य स्वरूपमेवानुपपन्नं तस्य सामीप्यं तु सुतरामिति बालैरप्येतद्बुध्यते । तस्माद्दर्शनशब्देन नोपरागो लक्ष्यते राहूपरागस्तस्मिन् राहुदर्शने इति । अयमर्थः । राहुर्नाम पातः, तस्य सम्बन्धेन दर्शनमुपराग इति । न च राहुरेव लक्षणयोपरागपरः तस्य दर्शनमिति

पूर्वपक्षाभिमतार्थसिद्धिरिति वाच्यम् । लक्षणा त्वर्थान्तरासम्भवे सति वक्तव्या । 'अत्यन्तादर्शनं राहोस्तथा चात्यन्तदर्शने । प्रजापीडा विनिर्देश्या व्याधिदुर्भिक्षतस्करैः ॥' इति विष्णुधर्मोत्तरादिवाक्येषु पदान्तरासन्निधानाद्राहुदर्शनेनोपरागो लक्ष्यते । इदं च राहोः पातनामकं ग्रहगतिरूपमर्थान्तरमस्तीत्यतो राहुदर्शनग्रहपातयोः समानार्थकतास्तीत्येवं च सिद्धमिति प्रागुक्तानां सर्ववचसां ग्रहणे स्नायादित्येव वाक्यार्थः फलितो भवति । किं च ग्रहणे चाक्षुषमेव दर्शनं विवक्षितं चेत्तदा 'नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कथञ्चन । न परक्तं नो वारिस्थं न मध्यं क्रमशो गतम् ।' इत्युक्तोपरक्तसूर्यदर्शननिषेधो नोपपद्येत । नन्वयं निषेधः सूर्योपरागदर्शन एव न चन्द्रोपराग इति चेन्न । 'नाशुन्त्री राहुतारकम्' इत्यत्र राहुमात्रग्रहणाद्रविचन्द्रोपरागद्वयविषयकोपसंहारस्य युक्तत्वात् । अशुचेरजस्वलापतितादेर्ग्रहणं तु दोषाधिक्यसूचनार्थम् । यथा श्राद्धे कुलीनानां ब्राह्मणानामामन्त्रणे उक्ते अन्येषां निषिद्धत्वादेव कुण्डगोलकब्राह्मणानामामन्त्रणेऽसिद्धे पुनर्निषेधो दोषाधिक्यार्थमेव । 'भास्करालोकनाश्लीलपरिवादं विवर्जयेत्' इति स्मृतिवाक्यस्य तूद्यदस्तगाम्यादित्यदर्शनपरतया व्याख्यानस्य युक्तत्वात् । केचित्तु दर्शनादर्शनविषयकयोर्विध्योस्तुल्यबलत्वात्सकृद्दृष्ट्वा स्नायादिति व्याचख्युः । तच्चिन्त्यम् । 'जन्मसप्ताष्टरिःफाङ्कं' इत्यादिना सामान्यतो निषिद्धस्योपरक्तदर्शनस्य पुनर्निषेधात्प्रागुक्तदिशा राहुदर्शनपदस्य राहूपरागलक्षकत्वेन तुल्यबलत्वाभावाच्च । तस्मादुपरक्तयोः सूर्याचन्द्रमसोर्यस्य कस्यापि दर्शननिषेधसत्त्वात् ग्रहणे च स्नानदानाद्युक्तेस्तज्ज्ञानं च ज्योतिःशास्त्रैकदेशगणितग्रन्थेभ्यो बुध्वा तस्मिन्काले स्नानदानादि विधेयमिति सिद्धान्तः । अत एव मेघाद्यावृतेऽप्युपरागे स्नानादिकं विधेयमेव ।

दिवा चन्द्रस्य रात्रौ रवेश्च ग्रहणे न स्नानादि—

ननु गणितग्रन्थाधीनमुपरागज्ञानमेव चेत्स्नानादिप्रयोजकं तदा रात्रौ सूर्यग्रहणस्य दिवा चन्द्रग्रहणस्य जायमानत्वात्तदापि स्नानादिकं स्यात् । सत्यमेवैतत् । वचनात्तथा न क्रियते तदुक्तं निगमे—'सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहो यदि । तत्र स्नानं न कुर्वति दद्याद्दानं न च क्वचित्' इति । अत एव तादृशे ग्रहणे दृष्टेऽपि दौष्ट्यं नास्तीत्यपि सूच्यते । न चैतदभावे प्रतिषेधादित्यधिकरणे न पृथिव्यामग्निश्चेतव्यो नान्तरिक्षे न दिवीत्युदाहृतवाक्यवन्नित्यानुवाद इति वाच्यम् । विधिशेषत्वाभात् । यथा पृथिव्यामग्निर्न चेतव्य इति निषेधविधिरस्ति नान्तरिक्षे न दिवीति दृष्टान्तो निषेधविधेः शेषस्तथात्र सूर्यग्रहो यदा रात्रावित्येतद्वाक्यस्य विधेः शेष इति । किं चैवं ब्रुवतस्तव मतेऽनर्थकमेव वाक्यं स्यात् । न चैतद्युक्तम् । अत एवाह जाबालिः—सङ्क्रान्तेः पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कलाः । चन्द्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरः ॥' इति । ग्रस्तस्यास्तमनपर्यन्तं दर्शनगोचरत्वात्तावान् कालः पुण्यकालो भवतीति माधवो व्याचख्यौ । तदुक्तं विश्वरूपनिर्णये—'दिवा चन्द्रग्रहो रात्रौ सूर्यपर्व न पुण्यदम् । सन्धिस्थं पुण्यवज्ज्ञेयं यावद्दर्शनगोचरम्'—इति । अन्ये तु मेघावृते तदनावृते चोपरागे गणितागतस्थितिघटिकाः पुण्यकाल इत्याहुः । दर्शने त्वेवंविधे निर्णये भुजवृत्तादुपरिस्थितत्वमेव विवक्षितम् । तदाह वसिष्ठः स्वसिद्धान्ते—'सूर्यस्यादर्शनं रात्रिदिनं तद्दर्शनात्मकम् । भुजवृत्तादुपरि च स्थितोऽर्को दर्शनं स्मृतम् ॥' इति । अर्क इत्युपलक्षणं चन्द्रादिग्रहनक्षत्राणाम् । आकाशप्रदेशः समन्ताद्भूसंलग्न इव यत्र भाति स प्रदेशो भुजशब्दवाच्यः । अत एव

विष्णुधर्मोत्तरे—'अहोरात्रं न भोक्तव्यं सूर्यचन्द्रग्रहो यदा। मुक्ति दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्' इति। ग्रस्तास्ते भृगुः—'ग्रस्तगौ वास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि। तयोः परेद्युरुदये स्नात्वाभ्यवहरेन्नरः ॥' इत्यनयोर्वाक्ययोर्दर्शनोदयशब्दौ भुजवृत्तोपरि स्थितत्वोपलक्षकौ। अन्यथा मेघाद्यावरणेन परदिवसेऽपि दर्शनाभावे उपवासः प्रसज्येत्। तथा च यत्र स्पर्शकाले ग्रहणं दृष्ट्वा स्नानं विहितं तत्रान्तरा मेघावरणात्सूर्यचन्द्रयोर्दर्शनाभावो दिवसद्वयं त्रयं वा स्यात्तत्राप्युपवासप्रसङ्गः। न च सर्वे शिष्टास्तथाचरन्ति। तस्माद्दर्शनार्थमभ्युपेत्य-शास्त्रीयज्ञानपरतयैव व्यवस्था कर्तव्या। तस्यां च सत्यां पूर्वोक्तरीत्या च मेघानावृतेप्युपरागे तमदृष्ट्वैव प्रशस्तचक्षुषा अन्धेन च गन्तुमशक्नुवद्भिर्वृद्धातुरैश्च स्नानदानादिकं विधेयमिति फलितोऽर्थः। अत एव भागवते रविग्रहे कुरुक्षेत्रे स्नानाद्यर्थं मिलितानां पाण्डवीयलोकानां मध्ये धृतराष्ट्रोऽपि परिगणित इति शिष्टाचारोऽप्यस्ति। एवं च सत्यरिष्टजनकत्वाभावेऽपि ग्रहण-दर्शननिषेधः किं पुनरनिष्टजनकत्वे। तस्माज्जन्मशशाङ्केत्यादिपद्यम् निर्मूलत्वाद्युक्त्यसहत्वाच्चो-पेक्ष्यम्। किं च प्रत्यक्षोपलभ्यमानवसिष्ठमत्स्यपुराणादिवाक्येषु दर्शनपदाभावाच्च। अत एव मूले परे इति पदं प्रयुक्तम्। शान्तिस्तु दर्शनाभावेऽपि विप्रातुमुचिता। यतोऽरिष्टयोगानां स्व-रूपवत्तामेवारिष्टजनकत्वमस्ति। अन्यथा ग्रहवेषस्योत्पातादिसूचितारिष्टनिवृत्तिहेतुः शान्ति-दर्शनाभावे न विधीयेत इत्यलमतिप्रसक्तानुप्रसक्तेन ॥ ६ ॥

पीताम्बरा—सूर्य और चन्द्र ग्रहण के नक्षत्र का शुभाशुभ फलादि के साथ दुष्टग्रहण दर्शन निषेध, अनिष्ट फलद ग्रहणों में दानादिक भी बताए जा रहे हैं—जिसके जन्मनक्षत्र में सूर्य या चन्द्रमा का ग्रहण लगता है तो ये ग्रहण उसकी आयुष्य में संकट पैदा करते हैं।

जन्मराशि से ग्रहण की राशि तक १२ बारहों राशियों का शुभाशुभ फल निम्न भाँति होता है।

यदि जन्मराशि में ग्रहण लगे तो शरीर पीड़ा, जन्मराशि से ग्रहण की राशि दूसरी हो तो क्षति द्रव्यनाश, तीसरी में लक्ष्मीलाभ, चौथी में शरीर पीड़ा, पाचवीं में पुत्रादिकों की चिन्ता, छठी राशि में सुख, सातवीं में स्त्रीमरण, आठवीं में अपना मरण, नवम राशि में मान-नाश, दशम राशि में सुख, एकादश राशि में लाभ और द्वादश राशि में मृत्यु होती है या किन्हीं आचार्यों के मत से द्रव्य हानि होती है।

उक्त फल ग्रहण दिन से ६ छै महीने आगे तक हो सकते हैं। यतः ६ महीने के पश्चात् द्वितीय ग्रहण का संभव होता है।

सूर्य चन्द्र ग्रहण सम्बन्धी अशुभ फल की निवृत्ति के लिए स्वर्ण, गौ, और भूमि का दान के साथ गायत्री आदिक मन्त्रों का जप करना चाहिए। सुवर्ण के अभाव में चाँदी या यथा वित्त दान करना चाहिए। वैभव सम्पन्न को सुवर्ण निर्मित नाग और दक्षिणा के साथ सतिल ताम्रपात्र, वेद शास्त्रज्ञ यज्ञयाग रत ब्राह्मण को दान स्वरूप में देना चाहिए। अथवा—अशुभ ग्रहण से उत्पन्न क्लेश निवारण के लिए ज्योतिर्वेत्ता ब्राह्मण को गौ, भूमि और सुवर्ण आदिक देना चाहिए।

पीयूष में जन्म नक्षत्र और जन्मराशि पर लगे हुए सूर्य चन्द्र ग्रहणों की शान्ति का विधान वृद्ध वसिष्ठ पद्धति के अनुसार विस्तृत रूप में वर्णित किया गया है।

ग्रहण के ग्रस्यमान समय में स्नान, ग्रस्तकाल में होम, और (मोक्ष) मुक्ति के समीप में दान और ग्रहण मोक्ष काल में स्नान करना चाहिए।

ग्रहणारम्भ से ग्रहण समाप्ति पर्यन्त काल तक जप और देवार्चन प्रभृति अनुष्ठान भी किये जाने चाहिए।

यदि आकाश मेघाच्छादित हो तो ऐसी स्थिति में सूर्य चन्द्र ग्रहण दर्शन ही नही होगा तथा चक्षुहीन (अन्ध) को तो स्वच्छ आकाश में लगा हुआ ग्रहण भी नहीं दिखाई देगा– तो ग्रहण पर्व होते हुए भी नहीं देखे जाने वाले ग्रहण पर स्नान की आवश्यकता भी नहीं होनी चाहिए–ऐसी अनेक प्रकार की शंकाओं का पीयूष में शास्त्रार्थ के साथ-साथ विस्तृत विवरण दिया है। ग्रहगणित पद्धति से सिद्ध ग्रहण पर्व सही है। प्रशस्त नेत्रवान या अन्धादिक को मेघाच्छादित होने से ग्रहण दर्शन नहीं भी हो तथापि स्नानदानादिक अवश्य ही कर्त्तव्य हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से भी प्रतिक्षण प्राप्त होने वाले सूर्य चन्द्र किरणों के अग्नि सोम रसों का, ग्रहणकालीन अवरोध, मानव जीवन के सञ्जीवन तत्वों पर दुष्परिणाम का हेतु होता है। अतः ऐसे समय (ग्रहण) स्नान क्रिया से ग्रहणकालीन सञ्जीवन के अवरोध से क्षति की पूर्ति जल तत्व द्वारा ही की जानी चाहिए।

ग्रहणाशौच में भोजनादि के निषेध के लिये भी समय कहे गये हैं। बालक वृद्ध और रोगी के लिए सुविधाएँ भी दी गई हैं ॥ ६ ॥

अथ चन्द्रबले विशेषमनुष्टुभाह—

पापान्तः पापयुग्द्यूने पापाच्चन्द्रः शुभोऽप्यसत्।
शुभांशे वाधिमित्रांशे गुरुदृष्टोऽशुभोऽपि सन् ॥ ७ ॥

पीयूषधारा—पापान्त इति। चन्द्रः शुभोऽपि शुभफलदोऽपि पापान्तः पापयुग्द्यूने पाप-द्वयमध्यवर्ती पापग्रहयुक्तः पापः द्यूने सप्तमस्थाने वर्तमानश्चेत् स्यात्तदा असदशुभ एव। यदा त्वशुभोऽप्यशुभफलदातापि चन्द्रः शुभांशे सौम्यग्रहनवांशे स्यादथवाधिमित्रस्य नवांशे स्यात्तथा गुरुणा बृहस्पतिना दुष्टः सन् शुभफलदाता भवेत्। यदाह राजमार्तण्डः—'पापग्रहेण संयुक्तः पापजामित्रसंस्थितः। पापद्वयमध्यगतः शुभोप्यशुभदः शशी ॥ अनिष्टस्थानसंस्थोऽपि भवेच्छुभ-करः शशी। सौम्यभागेऽधिमित्रांशे गुरुणा वापि वीक्षिते' इति ॥ ७ ॥

पीताम्बरा—गोचर से शुभाशुभ चन्द्रमा को अन्य ग्रहों के सम्बन्ध विशेष से अशुभ-शुभ बताया जा रहा है—अपनी जन्मराशि से शुभ स्थानों में होते हुए भी चन्द्रमा यदि पाप-ग्रहों के मध्य में हो, पापग्रह से युक्त हो, अथवा पापग्रह से सप्तम स्थान में हो तो अशुभ फलद होता है।

तथा गोचर से अशुभ स्थानीय चन्द्रमा यदि शुभग्रह या अपने अधिमित्र ग्रह के नवांश में हो और बृहस्पति से दृष्ट हो तो शुभ फलद होता है।

अधिमित्र ग्रह नैसर्गिक मैत्री चक्र (विवाह प्रकरण श्लोक २७-२८) से मित्र तात्कालिक मैत्री चक्र से भी मित्र होने से वह ग्रह अधिमित्र ग्रह होता है। तात्कालिक मित्र ग्रह किसी ग्रह से २, ३, ४, १०, ११, १२, स्थानों में रहने वाला ग्रह उस ग्रह का तात्कालिक मित्र ग्रह हो जाता है ॥ ७ ॥

अथ चन्द्रबलस्य विधानान्तरमनुष्टुभाह—

सितासितादौ सद्दृष्टे चन्द्रे पक्षौ शुभावुभौ ।
व्यत्यासे चाशुभौ प्रोक्तौ सङ्कटेऽब्जबलं त्विदम् ॥ ८ ॥

पीयूषधारा—सितेति । सितादौ शुक्लपक्षप्रतिपदि समीचीने चन्द्रे सति सम्पूर्णः शुक्लपक्षः शुभः । असितादौ कृष्णपक्षप्रतिपदि चन्द्रेऽसमीचीने सति सम्पूर्णः कृष्णपक्षः शुभः । व्यत्यासे च पूर्वोक्तादर्थाद्वैपरीत्ये द्वावपि पक्षावनिष्टौ यदा शुक्लपक्षप्रतिपदि चन्द्रो दुष्टः तदा सकलः शुक्लपक्षोऽनिष्टः । यदा कृष्णपक्षप्रतिपदि चंद्रः शुभस्तदा सम्पूर्णः कृष्णपक्षोऽनिष्टः इति । उक्तं च रत्नमालायाम्—'बलक्षपक्षादिगते हिमांशौ शुभे शुभं पक्षमुदाहरन्ति । सितेतरादावशुभे शुभे च पक्षावनिष्टौ भवतोऽन्यथा तौ ॥' कश्यपोऽपि—'मासादीन्दुः शुभो यस्य तत्पक्षस्तस्य शोभनः । कृष्णादीन्दौ त्वशुभदे शुभं तद्व्यत्ययेऽन्यथा ॥' इति । इदमेतादृशमब्जबलं चन्द्रबलं तु संकटे विवाहयात्रादावश्यकर्त्तव्ये तात्कालिकचन्द्रबलाभावे ग्राह्यम् नान्यथेत्यर्थः ॥ ८ ॥

पीताम्बरा—संकट काल में चन्द्रबल के लिए विशेष युक्ति बताई जा रही है—शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि में यदि गोचर से चन्द्रमा शुभ है तो सम्पूर्ण शुक्लपक्ष तक चन्द्रमा शुभ ही कहा जाता है । तथा कृष्णपक्ष की प्रतिपदा का अशुभ चन्द्रमा भी सम्पूर्ण कृष्णपक्ष के लिए शुभ ही कहा जावेगा ।

तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में चन्द्रमा के अशुभ होने पर और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को चन्द्रमा शुभ होने पर दोनों सम्पूर्ण शुक्ल और कृष्णपक्ष अनिष्ट ही होते हैं ।

तात्कालिक चन्द्रबल के अभाव में (संकट काल में) विवाह यात्रा आदि आवश्यक कार्यों में उक्त प्रकार से चन्द्रमा का बल ग्रहण करना चाहिए ॥ ८ ॥

अथ ग्रहाणां दौष्टयपरिहारपूर्वकं तुष्टिसंपादनार्थं नवरत्नसमुदायधारणं शालिन्याह—

वज्रं शुक्रेऽब्जे सुमुक्ता प्रवालं भौमेऽगौ गोमेदमार्कौ सुनीलम् ।
केतौ वैदूर्यं गुरौ पुष्पकं ज्ञे पाचिः प्राङ्माणिक्यमर्के तु मध्ये ॥ ९ ॥

पीयूषधारा—वज्रं शुक्र इति । अत्रैकां सुवर्णमुद्रिकां कृत्वा तत्र दशभागे वर्तुलाकारे नवधा विभक्ते प्रागादिक्रमेण नवरत्नानि दृढं निधेयानि । तत्र प्रागिति पञ्चम्यन्तमव्ययम् । पञ्चमी चेयं ल्यब्लोपे । अतः प्रागादिदिशो लक्ष्यीकृत्येत्ययमर्थो जातः । तत्र शुक्रप्रीतये पूर्वस्यां दिशि वज्रकं हीरकं निधेयम्, एवं चन्द्रप्रीत्यर्थं शोभनं मुक्ताफलमाग्नेय्याम्, भौमप्रीत्यर्थं प्रवालं दक्षिणस्याम्, अगौ राहो तत्प्रीत्यर्थं गोमेदं नैर्ऋत्याम्, आर्कौ शनिप्रीतये शोभनं नीलं पश्चिमायाम्, केतुप्रीतये वैदूर्यं वायव्याम्, गुरुप्रीतये पुष्पकं पुष्परागं उत्तरस्याम् । बुधप्रीतये पाचिः ऐशान्याम्, सूर्यप्रीतये माणिक्यं मध्यमकोष्ठे इति ॥ ९ ॥

पीताम्बरा—अनिष्ट ग्रहों के दुष्परिणाम के परिहार पूर्वक उनकी संतुष्टि के लिए प्रत्येक ग्रह के रत्न बताये जा रहे हैं—सुवर्ण की वृत्ताकार मुद्रिका (अंगूठी) में अष्टदल बनवा कर उसके पूर्वदल में शुक्र की प्रीति के लिए हीरा, चन्द्र प्रीति के लिए अग्निदिशा में मोती, भौम के लिए दक्षिणदल में प्रवाल, राहु के लिए नैर्ऋत में गोमेद, शनि की प्रीति के लिए

पश्चिम दल में नीलम, केतु के लिए वायव्य में वैंदूर्य, गुरु की प्रीति के लिए उत्तर दल में पुष्प-राग, (पुखराज) बुध प्रीति के लिए ईशान में पाचि, (पन्ना) सूर्य प्रीति के लिये मध्यम कोष्ठ में माणिक्य रख कर नौ विभागों में उक्त नौ धातु की शुभ मुद्रिका शुभ दिन के शुभ मुहूर्त्त में धारण करनी चाहिए ।। ९ ।।

अथ सति द्रव्यसामर्थ्ये नवरत्नसमुदायधारणस्य शक्यत्वात्तदुक्त्वेदानीमसति द्रव्यसामर्थ्ये यद्ग्रहकृतं दौष्टचं तद्ग्रहरत्नधारणमिन्द्रवज्रयाह—

माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मकं पुष्पकवज्रनीलम् ।
गोमेदवैदूर्यकमर्कतः स्यू रत्नान्यथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णम् ।। १० ।।

पीयूषधारा—माणिक्येति । सूर्यप्रीत्यर्थं माणिक्यं धार्यम्, एवं चन्द्रस्य मुक्ताफलं, भौमस्य विद्रुमं, बुधस्य गारुत्मकं गरुडपाचिः, गुरोः पुष्पकं पुष्परागः, शुक्रस्य वज्रं, शनेर्नीलम्। 'लहसुनिया' इति कान्यकुब्जभाषयाहुः । राहोर्गोमेदं केतौ वैदूर्यमित्येवमर्कतोऽर्कादीनां ग्रहाणां रत्नानि धार्याणि स्युः । तत्र यद्ग्रहकृतं दौष्टचं तस्य ग्रहस्य तुष्टचै तद्रत्नं धार्यमित्यर्थः । यदाह कश्यपः—'सूर्यादीनां च सन्तुष्टचै माणिक्यं मौक्तिकं तथा । सुविद्रुमं मारकतं पुष्परागं च वज्रकम् । नीलगोमेदवैदूर्यं धार्यम् स्वस्वदृढक्रमात्' अथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णमित्यग्रिमश्लोकेन सम्बन्धः ।। १० ।।

पीताम्बरा—श्लोक ९ में वर्णित मुद्रिका धारण के लिए यदि वित्त में असमर्थता हो तो विशेष अनिष्ट ग्रह का ही रत्न धारण करना चाहिए—सूर्य प्रीत्यर्थ माणिक्य, चन्द्रमा के लिए मोती, मंगल के लिए प्रवाल (मूँगा) बुध के लिए (गरुडपाचि) पन्ना, गुरु के लिए पुख-राज (मरकत) शुक्र के लिए हीरा, शनि के लिए नीलम (लहसुनियाँ) राहु के लिए गोमेदक और केतु के लिए वैदूर्य नामक रत्न धारण करना चाहिए ।

बुध की प्रसन्नता के लिये सुवर्ण भी धारण करना चाहिये ।। १० ।।

अथ महामूल्यरत्नधारणे यस्य सामर्थ्याभावस्तदर्थमल्पमूल्यानि रत्नानि ताराबलं च शालिन्याह—

धार्यं लाजावर्त्तकं राहुकेत्वो रौप्यं शुक्रेन्द्वोश्च मुक्ता गुरोस्तु ।
लौहं मन्दस्यारभान्वोः प्रवालं तारा जन्मर्क्षात्त्रिरावृत्तितः स्यात् ।। ११ ।।

पीयूषधारा—धार्यमिति । अथो ज्ञस्य बुधस्य मुदे सन्तोषार्थं सुवर्णं यथाशक्ति धार्यम् । राहुकेत्वोः प्रीत्यै लाजावर्त्तकं मणिविशेषो धार्यः, एवं शुक्रेन्द्वोस्तुष्टचै रौप्यम्, गुरोस्तुष्टचै मुक्ता, मन्दस्य शनेस्तुष्टचै लौहम्, आरभान्वोर्मङ्गलसूर्ययोः प्रीत्यै प्रवालं धार्यम्, उक्तं च श्रीपतिना—'धार्यं तुष्टचै विद्रुम भौमभान्वो रूप्यं शुक्रेन्द्वोश्च हेमेन्दुजस्य । मुक्ता सूरेर्लौह-मर्कात्मजस्य लाजावर्त्तः कीर्त्तितः शेषयोश्च ।। इति । सूरेः सुरगुरोः, शेषयोः राहुकेत्वोः ।

ग्रहदोषे औषधमूलानि धार्याणि—

दीपिकाकारस्तु औषधमूलानि धार्याणीत्याह—'मूले धार्यं त्रिशूल्याः सवितरि विगुण-क्षीरिकामूलमिन्दो जिह्वाहेर्भूमिपुत्रे रजनिकरसुते वृद्धदारोश्च मूलम् । भार्ङ्गी जीवेऽथ शुक्रे भवति शुभकरं सिंहपुच्छस्य मूलं विच्छोलं चार्कपुत्रे तमसि मलयजं केतुदोषेऽश्वगन्धम् ।।' इति ।

त्रिशूली बिल्वः, क्षीरिकाक्षीरिणी जिह्वाहिर्नागजिह्वा वृद्धदारुर्विधारः भाङ्गी प्रसिद्धा, सिंहपुच्छं वा घोटं चरिवारेति मध्यदेशभाषया प्रसिद्धन्, मलयजं चन्दनम्, अश्वगन्धं प्रसिद्धम्, एतदौषध-मूलधारण सर्वथा रत्नधारणाशक्तौ वेवितव्यम् ।

तारावलम्—

तारेति । यद्दिने तारावलमस्ति वा नवेति, विचारश्चिकीर्षितस्तद्दिने या तारा सा जन्मर्क्षात् जन्मनक्षत्रात्त्रिरावृत्तितः आवृत्तित्रयेण गणनीया स्यात् । त्रिरिति 'द्वि त्रिचतुर्भ्यः सुच्' इति सुजन्तमध्यम् । स्वजन्मनक्षत्राद्दिननक्षत्रे गणिते नवभिर्भक्ते तिस्र आवृत्तयो भवन्ति । अवशिष्टतारायाः शुभाशुभं वाच्यमिति फलितोऽर्थः ।। ११ ।।

पीताम्बरा—अधिक मूल्यवान् रत्न धारण की असमर्थता पर अल्प मूल्यवान् रत्न भी धारण किए जा सकते हैं तथा इसी श्लोक में ताराबल का विचार भी किया जा रहा है— राहु केतु की तुष्टि के लिए लाजावर्त, चन्द्रमा और शुक्र की प्रीति के लिए चांदी, गुरु के लिए मोती, शनि तोषाय लोहा, सूर्य और मंगल दोनों की प्रीति के लिए प्रवाल (मूंगा) भी धारण किया जा सकता है।

दीपिकाकार का कथन है कि अनिष्ट ग्रह दोष परिहार के लिए औषधियों की जड़ (मूल) धारण करने से भी अनिष्ट ग्रह दोष निवारण हो जाता है—क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु के लिए—विल्व, क्षीरिणी (खीरी) नागजिह्वा, विधार, भाङ्गी, सिंह पुच्छ (घोट, चरिवार), विच्छोल, मलयचन्दन और अश्वगंध की जड़े धारण करनी चाहिए ।

तारा–अपने जन्म नक्षत्र से दिवस नक्षत्र तक गिनती कर उसमें ९ का भाग देने से शेष अंक की संख्या तुल्य उस दिन अपनी तारा होती है। नक्षत्र २७ और तारा ९ हैं इसलिए २७ नक्षत्रों में ताराओं की तीन आवृत्तियाँ होती हैं ।

जैसे **सुरेशचन्द्र जोशी** नामक बालक की कुम्भ राशि और शतभिषक् नक्षत्र है । अतः सं० २०२८ वैशाख शुक्ल सप्तमी शनिवार (ता० १-५-७१) को पुनर्वसु नक्षत्र का मान घटी ११।५४ प० (११-२४ बजे) दिन तक है जिसकी संख्या शतभिषा से गणनता ११ आती है । इसमें ९ का भाग देने से शेष २ होता है, इसलिए सुरेश नामक बालक को इस दिन ११-२४ बजे दिन या ११-२४ a. m. तक दूसरी सम्पत् तारा शुभफलद होगी । उसके बाद दुखद विपत् तारा प्रारम्भ होगी ।। ११ ।।

अथ शेषक्रमेण सकलास्तारा संज्ञा अनुष्टुभाह—

जन्माख्यसम्पद्विपदः क्षेमप्रत्यरिसाधकाः ।
वध मैत्रातिमैत्राः स्युस्तारा नामसदृक्फलाः ।। १२ ।।

पीयूषधारा—जन्माख्येति । स्पष्टार्थमिदं पद्यम् । यदाह नारदः—'जन्मसम्पद्विपत्क्षेम-प्रत्यरिः साधको वधः । मित्रं परममित्रं तु जन्मभाच्च पुनः पुनः ।।' इति । एवं तारा गणनीया इति शेषः तत्र तृतीयापञ्चमीसप्तम्यस्तारा निषिद्धाः । अनिष्टफलश्रवणात् । अर्थादन्याः समीचीनाः । समीचीनफलश्रवणात् । उक्तं च–'जन्मतारा द्वितीया च षष्ठी चैव चतुर्थिका । अष्टमी नवमी चैव षट् तु तारा शुभावहाः ।।' इति । जन्मनक्षत्रं विशेपण गृहीतं प्रतिषिद्धं च तच्चाग्रे निर्णेष्यते ।

तदिदं ताराबलं कृष्णपक्षविषयं न तूभयपक्षसाधारणम् । तदाह नारदः—'कृष्णे बलवती तारा शुक्लपक्षे बली शशी' इति । उक्तं चैतत् । यतोऽत्रार्थवादो रत्नमालायाम्—

न खलु बहुलपक्षे शीतरश्मे प्रभावः कथितमिह हि तारावीर्यमार्यैः प्रधानम् ।
अतिविकलशरीरे प्रेयसि प्रोषिते वा प्रभवति खलु-कर्तुं सर्वकार्याणि योषा ।
शुक्ले पक्षे शीतरश्मिर्बलीयो न प्राधान्यं तारकायास्तु तत्र ।
शक्त्या युक्ते विद्यमानेऽपि कान्ते न स्वातन्त्र्यं योषितः क्वापि दृष्टम्' ॥१२॥

पीताम्बरा—नौ ताराओं के नाम और फल कहे जा रहे हैं—(१) जन्म, (२) सम्पत्, (३) विपत्, (४) क्षेम, (५) प्रत्यरि, (६) साधक, (७) वध, (८) मैत्र, और (९) अति मैत्र ।

तारा का जैसा शुभ या अशुभ नाम है वैसे ही शुभाशुभ फल होता है । इन नौ ताराओं में तीसरी पांचवी और सातवीं तारा विशेष अनिष्ट फल सूचक है । शेष ६ शुभ हैं । प्रायः जन्म तारा भी शुभ नहीं कही गई है ।

नारदाचार्य के मत से कृष्णपक्ष में तारा का बल विशेष है, शुक्लपक्ष में चन्द्रबल का प्राधान्य है । जैसे पति के विदेश में रहने से दुर्बल पत्नी को सभी कार्य देखने पड़ते हैं तद्वत् शुक्लपक्ष की अपेक्षा कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की क्षीणता से तारा का बल अधिक महत्त्व का होता है ॥ १२ ॥

अथावश्यकृत्ये दुष्टताराणां प्रकारद्वयेन परिहारं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मृत्यौ स्वर्णतिलान्विपद्यपि गुडं शाकं त्रिजन्मस्वथो
दद्यात्प्रत्यरितारकासु लवणं सर्वो विपत्प्रत्यरिः ।
मृत्युश्चादिमपर्यये न शुभदोऽथैषां द्वितीयऽशका
नादिप्रान्त्यतृतीयका अथ शुभाः सर्वे तृतीये स्मृताः ॥ १३ ॥

पीयूषधारा—मृत्यौ स्वर्णतिलानिति । मृत्यौ सप्तम्यां वधतारायां स्वर्णतिलान् यथाशक्ति सुवर्णयुक्तांस्तिलान् ब्राह्मणाय दद्यात् । विपद्यपि विपत्सञ्ज्ञायां तृतीयतारायां गुडमिक्षुविकारं दद्यात् । त्रिजन्मसु तिसृषु जन्मतारासु शाकं प्रसिद्धं वृन्ताकादि दद्यात् । अथो प्रत्यरितारकासु पञ्चम्यां तारायां लवणं दद्यात् । तदाह नारदः—'जन्मत्रिपञ्चसप्ताख्यास्तारा नेष्टफलप्रदाः । अनिष्टपरिहाराय दद्याद्दानं द्विजातये । शाकं गुडं च लवणं सतिलं काञ्चनं क्रमात् ।' इति । अत्र सतिलमिति विशेषणं काञ्चनपदस्य, न लवणपदस्य । तेन वधतारायां सतिलं काञ्चन देयम् । उक्तं च दीपिकायाम्—'प्रत्यरौ लवणं दद्याच्छाकं दद्यात्त्रिजन्मसु । विपत्तारे गुडं दद्यान्निधने तिलकाञ्चनम् ॥' इति द्वितीयः परिहार उच्यते । तत्रादिमपर्यये प्रथमावृत्तौ विपत्प्रत्यरिमृत्युश्च तृतीयपञ्चमीसप्तम्यस्ताराः अपि सामान्यतः षष्टिघटिकात्मिका अपि न शुभदाः स्युः । अथ द्वितीये पर्यये द्वितीयावृत्तौ विपत्प्रत्यरिमृत्यूनामादिप्रान्त्यतृतीयका अंशा न शुभदाः । विपत्तारायां प्रथमा विंशतिर्घटिकास्त्याज्याः इतराश्चत्वारिंशच्छुभाः । प्रत्यरितारायां मध्यमा विंशतिर्घटिकास्त्याज्या तदुभयतो विंशतिर्विंशतिर्घटिकाः शुभाः । वधतारायामन्तिमा विंशतिर्घटिकास्त्याज्या आद्याश्चत्वारिंशच्छुभा इति नवीना व्याकुर्वते । जीर्णास्त्वंशब्देन नक्षत्रचतुर्थांशमाहुः । तथा सति

आदिप्रान्त्यतृतीयकाश्चरणाः निषिद्धाः इतरे शुभाः । अथ तृतीये पर्यये तृतीयावृत्तौ विपत्प्रत्यरिमृत्यवश्चैते सर्वे षष्टिघटिका अपि शुभाः शोभनफलदाः स्मृताः । तथा च जगन्मोहने गुरुरित्युक्त्वा पठितम्—'पर्यये प्रथमे वर्ज्या विपत्प्रत्यरिनैधनाः । द्वितीये त्वंशका वर्ज्यास्तृतीये त्वखिलाः शुभाः ॥' इति । द्वितीये पर्यये अंशकानाह स एव—'आद्यांशे विपदि त्याज्यः प्रत्यरौ चरमोऽशुभः । वधे त्याज्यस्तृतीयोंऽशः शेषा अंशास्तु शोभनाः ।' इति । अत्रांशो नक्षत्रचतुर्थांश उच्यते । किमत्र प्रमाणमिति चेत्, उच्यते । 'जन्मर्क्षाद्दशमं कर्म सङ्घातर्क्षं तु षोडशम् । अष्टादशं सामुदयं त्रयोविंशं विनाशनम् ॥ मानसं पञ्चविंशर्क्षं नाचरेच्छुभमेषु तु ।' इति नारदोक्तेविनाशिकाख्यस्य त्रयोविंशस्य भस्य दुष्टत्वम् ।

तस्यापवादः

तदपवादमाह च्यवनः—'वैनाशकाख्ये नक्षत्रे अष्टाशीत्यंशकं विना । शेषांषाः शुभदा ज्ञेया जन्मनीन्दुगतांशकाः ॥' इति अत्र वैनाशिकं प्रत्यरिसंज्ञं तस्य चरमांशस्यानिष्टता प्राप्ता साष्टाशीत्यंशकं विनेत्यनेन बाध्यते इति । अत 'एकत्र दृष्टः शास्त्रार्थोपरत्रापि विनियुज्यते इति न्यायादत्रापि सैव व्याख्येति न नवीमतं ज्यायः । अप्रमाणत्वात् ॥ १३ ॥

पीताम्बरा—आवश्यक कार्यों में अनिष्ट ताराओं का प्रथम परिहार—वध नामक सातवीं तारा में यथाशक्ति सुवर्ण युक्त तिलों को ब्राह्मण को दान स्वरूप देने चाहिए । गुड़ के दान से तीसरी विपत नामक तारा का परिहार हो जाता है । तीनों आवृत्तियों में जन्म तारा का अनिष्ट फल शाक (वृन्ताकादि) दान से ठीक होता है । लवण (नमक) दान से प्रत्यरि नामक दुष्टफलद पञ्चम तारा का अनिष्ट फल दूर होता है ।

प्रथमावृत्ति की सम्पूर्ण मान की विपत् प्रत्यरि और मृत्यु तारा (मध्यम मानीय ६० घटिका भोगात्मक, स्पष्ट मान से नक्षत्र का मान अधिक से अधिक ६५····और कम से कम ५४····दृश्य मत से अधिक से अधिक ६६, कम से कम ५० घटिका होता है । प्रायः शुभद नहीं होती हैं । नवीन दैवज्ञों के मत—

द्वितीयावृत्ति में विपत् तारा की प्रथम २० घटिका त्याज्य हैं शेष ४० घटिका शुभ होती हैं ।

प्रत्यरि तारा की मध्य की २० घटिका त्याज्य हैं तथा ०—से २० घटी और ४१—से ६० घटी शुभ कही गई हैं ।

वध तारा की अन्तिम २० घटिका त्याज्य होने से आदि की ० से ४० घटिकाएँ शुभ होती हैं । यहाँ पर नक्षत्र का मध्यम मान ६० मानकर ६० ÷ ३ = २० घटिका तृतीयांश कहा गया है । वास्तव में यदि नक्षत्र का मान ६६ घटी या ५४ घटी होगा तो तृतीयांश भी क्रमशः २१ घटिका या १८ घटिका आदि होगा । इस प्रकार नक्षत्र के सम्पूर्ण मान का तृतीयांश जान कर तारतम्य से ताराओं का अनिष्ट काल वर्जित करना चाहिए । प्राचीन दैवज्ञ द्वितीयावृत्ति की विपत् तारा का प्रथम चरण, प्रत्यरि का चतुर्थ चरण और मृत्यु तारा का तृतीय चरण यात्रादिक शुभ कर्मों में त्याज्य मानते हैं ।

तीसरी आवृत्ति में विपत् प्रत्यरि और मृत्यु तीनों ताराओं का सम्पूर्ण भोग मान (६० घटिका या न्यूनाधिक जो हो) शुभावह होता है ।

उत्तरप्रदेश के कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद विवाहादिक शुभ कर्मों में मुख्यतः "वैनाशिक" दोष को त्याज्य करते हैं। वैनाशिक का तात्पर्य प्रत्यरि तारा से है।

पीयूषकार ने—जन्म नक्षत्र से दशवें नक्षत्र का नाम कर्म, (१० ÷ ९, शेष = १ = जन्म तारा) तथा १६ वें का नाम सङ्घात, (१६ ÷ ९, शेष = ७ = वध तारा) १८ वें का नाम सामुदाय, (१८ ÷ ९ = , शेष ९ या ०, = अतिमैत्र तारा) २३ वें नक्षत्र का नाम विनाशक, (विनाशक ही वैनाशिक), (२३ ÷ ९, = शेष ५ = प्रत्यरि तारा) और जन्म नक्षत्र से २५ वें नक्षत्र का नाम मानस, (२५ ÷ ९ = शेष = ७ = वध तारा) बताया है।

वध तारा के दो नाम सङ्घात और मानस कहे हैं। तृतीयावृत्ति की तीनों अशुभ तारा शुभद कही गयी हैं। तृतीयावृत्ति की तीनों अशुभ तारा शुभद कही गई हैं इसलिए तीसरी आवृत्ति की वध तारा का "मानस" नाम, नाम सदृश शुभ फलद से आचार्य का तात्पर्य हो सकता है॥ १३॥

अथ चन्द्रावस्था वक्ष्यति, तद्गणनोपायमनुष्टुभाह—

षष्टिघ्नं गतभं भुक्तघघटीयुक्तं युगाहतम्।
शराब्धिहृल्लब्धतोऽर्कशेषेऽवस्थाः क्रियाद्विधोः॥ १४॥

पीयूषधारा।—षष्टिघ्नमिति। अत्र चन्द्रस्य राशौ राशौ द्वादश द्वादश अवस्थाः सन्ति। यदाह नारदः—'चन्द्रस्य द्वादशावस्था राशौ राशौ यथाक्रमात्। यात्रोद्वाहादिके कार्ये संज्ञातुल्यफलप्रदाः॥' तत्राश्विनीमारभ्य गतभानि षष्ट्या ६० गुण्यानि वर्तमाननक्षत्रभुक्तानि कार्याणि तानि पुनर्युगैश्चतुर्भिराहनानि शराब्धिहृत्पञ्चचत्वारिंशता भाज्यानि। यल्लब्धमागतं गतावस्थास्ताः। शेषं वर्तमानावस्थाः। तत्र लब्धाङ्कस्यापि द्वादशाधिक्ये द्वादशभिर्भागे प्रवासाद्यवस्थाश्चन्द्रस्य गताः स्युः। ता अवस्था मेषराशेः पुंसः प्रवासादिसंज्ञाः स्युः। वृषराशिस्थे चन्द्रे नाशादिसंज्ञाः स्युः। एवं मिथुनादिदशराशिषु मृतादिसंज्ञा ह्यवस्थाः क्रमेण भवन्तीत्यर्थः। यदाह नारदः—'षष्टिघ्नं चन्द्रनक्षत्रं तत्कालघटिकान्वितम्। वेदघ्नमिषुवेदाप्तमवस्था भानुभाजिताः॥' इति। अत्रोपपत्तिः—एकैकस्मिन् राशौ द्वादश द्वादशावस्थाः सन्ति। सामान्यतो नक्षत्रभोगः षष्टिघटिकात्मक इत्येवं सति राशिभोगघटिकाः पञ्चत्रिंशदधिकशतं भवन्ति। तत्र त्रैराशिकं यद्येताभिः–१३५ घटीभिर्द्वादशावस्था लभ्यन्ते तत्रेष्टघटीभिः किमिति। तत्रैकघटचा गुणनायां विकारानापत्तेर्द्वादशानामयमङ्को १३५ भाजको जातः। यथा १२ अत्रानयोर्गुणकभाजयोस्त्रिभिरपवर्तने गुणकाश्चत्वारः ४, भाजकाः पञ्चचत्वारिंशत् ४५, तत्कालघटीयोगस्तु न्यायप्राप्त एव। तथा द्वादशभागोऽपि। तदाधिक्यस्य निष्प्रयोजनत्वात्। अत्रेदमवधेयम्, यद्यपि नक्षत्राणां घटीन्यूनाधिकभावः सम्भवति तथापि षष्टिघटिकात्मकेन व्यवहारः कार्यः। विद्यमाननक्षत्रं भुक्तं तु स्वभोगं ज्ञात्वा षष्टिघटिकात्मकं कृत्वा तत्र योज्यम्। यथा यदि स्वभोगेन षष्टिघटिकाः लभ्यन्ते तदेष्टघटीभिः किमिति त्रैराशिकेनेष्टघटीनां षष्टीर्गुणको नक्षत्रभोगो भाजक इति॥ १४॥

पीताम्बरा—प्रत्येक राशि में चन्द्रमा की १२ अवस्था साधन—अश्विनी से आरम्भ कर इष्टकालीन नक्षत्र के पूर्व के (गत नक्षत्र) नक्षत्र को ६० से गुणा कर गुणनफल में

वर्तमान नक्षत्र की भुक्त घटी (भयात) जोड़नी चाहिए, पुनः योग को ४ से गुणा कर ४५ से भाग देना चाहिए, लब्धि संख्या से चन्द्रमा की गत अवस्था समझ कर लब्धि में १ जोड़ने से १ से १२ तक जो अंक हों वही मेषादि राशि क्रम से (प्रवास नाश.........अग्रिम श्लोक में कथित चन्द्रमा की) चन्द्रमा की अवस्था होती है। यदि ४५ से भाग देने पर लब्धि १२ से अधिक हो तो पुनः लब्धि में १२ का भाग देकर वर्तमान अवस्था ज्ञान के लिए शेष में एक और जोड़ना चाहिए।

यहाँ पर गणित ज्ञान का थोड़ा सा सहयोग आवश्यक होगा जिससे चन्द्रमा की द्वादश अवस्था साधन की गणितीय पद्धति से विशेष रूप से विषय बुद्धिगत होगा।

नीलकण्ठ आचार्य ने इष्ट काल में चन्द्रस्पष्ट साधन के लिए सिद्धान्त बताया है कि—

$$\text{अंशात्मक चन्द्र स्पष्ट} = \frac{२\left(६० \times \text{गतनक्षत्र संख्या} + \frac{६० \times \text{भयातघटिका}}{\text{भभोग घटिका}}\right)}{९} \text{ का राश्यादिक मान होता है।}$$

आगे–यदि एक राशि के ३० अंशों के तुल्य चन्द्रमा में चन्द्रमा की १२ अवस्था होती हैं तो उक्त चन्द्रस्पष्ट (राशि × ३०) अंशों में चन्द्रमा की अवस्था क्या होगी ? त्रैराशिक से—

$$\frac{१२ \times २\left(६० \times \text{गतनक्षत्र संख्य} + \frac{६० \times \text{भयात घटी}}{\text{भभोग घटी}}\right)}{३० \times ९}$$

$$= \frac{२ \times २\left(६० \times \text{गतनक्षत्र संख्या} + \frac{६० \times \text{भयात घटी}}{\text{भभोग घटी}}\right)}{५ \times ९}$$

$$= \frac{४\left(६० \times \text{गतनक्षत्र संख्या} + \frac{६० \times \text{भयात घटी}}{\text{भभोग घटी}}\right)}{४५}$$

यहाँ पर—

$$\frac{६० \times \text{भयात घटी}}{\text{भभोग घटी}} = \text{भुक्त घटिका}$$

$$\text{अतः}– \frac{४\left(६० \times \text{गतनक्षत्र संख्या} + \text{भुक्त घटिका}\right)}{४५} = \text{चन्द्रमा की अवस्था संख्या होती}$$

है। लब्धि यदि १२ से अधिक हो तो लब्धि में पुनः १२ का भाग देकर आगत लब्धि में वर्तमान अवस्था के लिए १ और जोड़ना चाहिए।

६० घटी में परिणत विद्यमान नक्षत्र के भयात भभोग का नाम भुक्त घटी कहा गया है।

उदाहरणतः—समझाया जाता है, जैसे प्रश्न है कि इस समय सुदूरवासी किसी प्रवासी की अवस्था (स्थिति) कैसी है ?

मूल में आचार्य ने तथा पीयूष में टीकाकार ने अवस्था ज्ञान साधन का द्रविड़ प्राणायाम बताया है—तथा भयात की वास्तविक घटियों को ६० घटी के भभोग मान में परिणत किया है।

वस्तुतः—१२ अवस्था ज्ञान का सीधा उपाय—

एक राशि के ३०° अंशों या ९ नवांशों या २$\frac{१}{४}$ सवादो नक्षत्रों में १२ अवस्थाएँ कहीं गई हैं, अर्थात् एक राशि की १८०० कलाओं में १२ अवस्था प्राप्त होती हैं तो $\frac{१८००}{१२}$=१५०' =२°।३०' = १ अवस्था का मान २ अंश ३० कला स्पष्ट है।

इस प्रकार कल्पना करिये के स्पष्ट चन्द्रमा ८।१६।२५।३० है तो ८ राशियों की ९६ अवस्थाओं का प्रयोजना भाव है, नवीं धनू राशि के चन्द्रमा के ७ वीं अवस्था, आचार्य के गणित प्रकार के बिना भी सुखेन ज्ञात हो जाती है।

अथवा १६°।२५ के कला ९८५ होती हैं तो उक्त मेरी बताई प्रक्रिया के अनुसार—

$$\frac{१२ \times ९८५}{१८००} = \frac{१९५}{३०} = \frac{३७}{६} =$$ छटी अवस्था बीतकर ७ सातवीं अवस्था स्पष्ट हो रही है।

अथवा गत नक्षत्र हस्त की संख्या १३ चित्रा की भुक्त घटी १०।० स्पष्ट है कि चन्द्रमा कन्या राशि के २३°।२०' से २६'।४० पर है जो लगभग २५° में है तो $\frac{२५ \times ६० \times १२}{१८००} =$

$\frac{५०}{५}$ = १० वर्तमान १०वीं अवस्था स्पष्ट है।

आचार्य ने १३ × ६० + १० = ७९० × ४ = ३१६० ÷ ४५ लब्धि ७० ÷ १२ = शेष १० वीं बीत कर ११वीं ही अवस्था होती है। आचार्य की साधनिका क्लिष्ट है।

अथवा, प्रत्येक राशि के ९ नवांशों में १२ अवस्था तो १ नवांश में $\frac{१२}{९} = \frac{४}{३}$ दूसरी अवस्था, २ नवांशों में $\frac{८}{३}$ तीसरी, तीन नवांशों में $\frac{१२}{३}$ = ४ अवस्थाएँ बीतती हैं। एवं ६ नवांशों में ८; और ९ नवांशों में १२ अवस्था सुखेन ज्ञात हो जाती है। स्पष्ट चन्द्रमा की प्रयोजनाभाव राशि को छोड़ कर नवांश से ही १२ अवस्था ज्ञान सुगम है।

ग्रहलाघवीय पञ्चाङ्गों से वैशाखशुक्ल सप्तमी शनिवार (ता० १–५–७१) इष्टकाल सायं ५ बजे, (सूर्योदय ५।२४) ११ घण्टा ३६ मिनिट × $\frac{५}{२}$ = २९ घटी है। पुनर्वसु गतनक्षत्र संख्या ७ का मान १५ घटी ५७ पल है, अतः पुष्य में २९।०–१५।५७ = १३ घटी ३ पल भयात घटिका हुई। तथा पुष्य का भभोग का मान ६०–१५।५७ = ४४।३ + रविवार को (२–५–७१) पुष्य का मान १९।२४ = ६३।२७ हुआ।

$$\frac{६० \times १३।४}{६३।२७}$$ = भुक्तघटिका १२।२०

७ × ६० = ४२० + १२।२०=४३२।२० × ४=१७२९।२० ÷ ४५   ४५)१७२९(३८
गत अवस्था ३८, में वर्तमान अवस्था ज्ञान के लिए १ जोडकर १२ से भाग देने   १३५
पर ३९ ÷ १२ शेष = ३ तीसरी अवस्था प्राप्त होती है।   ३७९
३६०
१९

अतः तीसरी अवस्था अच्छी नहीं है सुदूरवासी की स्थिति मृदुभाषया विशेष चिन्तनीय है। अथवा द्वादशांश ज्ञान की भाँति द्वादशांश संख्या तुल्य स्पष्ट चन्द्र राशि से गणना न कर मेषादि गणनया अवस्था ज्ञान सुबोध है ॥ १४ ॥

अथ द्वादशावस्थानामानि सफलान्युपजात्याह—

प्रवासनाशौ मरणं जयश्च हास्यारतिक्रीडितसुप्तभुक्ताः।
ज्वराख्यकम्पस्थिरता ह्यवस्था मेषात्क्रमान्नामसदृक्फला स्युः ॥ १५ ॥

पीयूषधारा—प्रवासनाशाविति। स्पष्टार्थमिदं पद्यम्। उक्तं च कश्यपेन—'प्रवासनष्टे च मृता जया हास्या रतिर्मुदा। सुप्ता भुक्ता ज्वरा कम्पा सुस्थितिर्नामसन्निभाः ॥' इति। मुदा—'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' ततष्टाप ॥ १५ ॥

पीताम्बरा—साधित १२ अवस्थाओं के नाम—(१) प्रवास, (२) नाश, (३) मरण, (४) जय, (५) हास्य, (६) रतिः, (७) क्रीडित, (८) सुप्त, (९) भुक्त, (१०) ज्वर, (११) कम्प, और (१२) वीं अवस्था का नाम स्थिर है। मेषादि गणनया उक्त अवस्थाओं का नाम सदृश शुभ या अशुभ फल कहना चाहिए ॥ १५ ॥

अथ ग्रहाणां वैकृतपरिहारार्थं सौषधजलस्नानं दक्षिणाश्च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

लाजाकुष्ठबलाप्रियङ्गुघनसिद्धार्थैर्निशादारुभिः
पुङ्खालोध्रयुतैर्जलैर्निगदितं स्नानं ग्रहोत्थाघहृत्।
धेनुः कम्बुवरुणो वृषश्च कनकं पीताम्बरं घोटकः
श्वेतो गौरसिता महासिरज इत्येता रवेर्दक्षिणाः ॥ १६ ॥

पीयूषधारा—लाजाकुष्ठमिति। लाजाः भृष्टशालयः इति केचित्, वस्तुतस्तु औषधसाहचर्याल्लाजाशब्देन लज्जावती गृह्यते, कुष्ठं प्रसिद्धम्, बला 'वरिया' इति कान्यकुब्जभाषाया माहुः, प्रियङ्गुः फलिनी, घनो मुस्ता, सिद्धार्थाः सर्षपाः 'शिरसा' इति महाराष्ट्राः, सरिष इति कान्यकुब्जाः। निशे हरिद्राद्रयम्, दारुः देवदारुः, पुङ्खा शरपुङ्खा, लोध्रं प्रसिद्धम्, एतैरौषधैर्युतानि गङ्गादिजलानि तैः स्नानं दुष्टग्रहसूचितारिष्टनाशकं स्यात्। उक्तं च दीपिकायाम्—सिद्धार्थलोध्ररजनीद्वयमुस्तधान्यं लामज्जकं सफलिनी सवचा च मांसी। स्नानं कुरु ग्रहगणप्रशमाय नित्यं सर्वे रविप्रभृतयः सुमुखीभवन्ति ॥' दैवज्ञमनोहरेऽपि—'सप्रियङ्गुरजनीद्वयमांसीकुष्ठलाजसितसर्षपखण्डैः। वारिभिः सह वचैः सह लोध्रैःस्नानमत्ति निखिलग्रहपीडाम् ॥' इति। वारिभिस्तीर्थोदकैः।

तत्रौषधस्नानानि ग्रहभेदेन—

रत्नमालायां तु प्रत्येकग्रहाणामौषधस्नानमुक्तम् । यथा रवेः—

'मनः शिलैलासुरदारुकुङ्कुमैरुशीरयष्टीमधुपद्मकान्वितैः ।
सताम्रपुष्पैर्विषमे स्थिते रवौ शुभावहं स्नानमुदाहृतं बुधैः ॥

चन्द्रस्य—

पञ्चगव्यगजदानविमिश्रैः शङ्खशुक्तिकुमुदस्फटिकैश्च ।
शीतरश्मिकृतवैकृतहन्तृ स्नानमेतदुदितं नृपतीनाम् ॥

कुजस्य—

बिल्वचम्पकबलारुणपुष्पैर्हिङ्गुकल्कफलिनीबकुलैश्च ।
स्नानमद्भिरिह मांसियुताभिर्भौमदौस्थ्यविनिवारणमाह ॥

बुधस्य—

गोमयाक्षतफलैः ससरोजैः क्षौद्रशुक्तिनवमूलहेमभिः ।
स्नानमुक्तमिदमत्र भूभृतां बोधनाशुभविनाशनं बुधैः ॥

गुरोः—

मालतीकुसुमयुक्तसर्षपैः पल्लवैश्च मदयन्तिकोद्भवैः ।
क्षिप्रमम्बुमधुकेन च स्फुटं वैकृतं गुरुकृतं विनिहन्ति ॥

शुक्रस्य—

एलया च शिलया समन्वितैर्वारिभिः सकलमूलकुङ्कुमैः ।
स्नानतो भृगुसुतोपपादितं दुःखमेति विलयं न संशयः ॥

शनेः—

असिततिलाञ्जनलोध्रबलाभिः शतकुसुमान्वितलाजयुताभिः ।
रवितनये कथितं विषमस्थे दुरितहृदाप्लवनं मुनिमुख्यैः ॥

राहुकेत्वोः—

लोध्रगर्भतिलपत्रकमुक्ताहस्तिदानमृगनाभिपयोभिः ।
स्नानमार्त्तिमिह कृन्तति राहोः साजमूत्रमिदमेव च केतोः ॥

राहुकथितद्रव्यमजमूत्रसहितं केत्वर्थं स्यात् । अत एवोक्त दीपिकायाम्—'प्रयोज्यमौषधस्नान ग्रहविप्रसुरार्चनम् । ग्रहानुद्दिश्य होमो वा ग्रहाणां प्रीतिमिच्छता ॥' तत्र ग्रहपूजाहोमौ वसिष्ठसंहितायां महता प्रबन्धेक्तौ तत एवावगन्याावित्यलमतिविस्तरेण ।

दक्षिणाः—

अथ रवेतिति । रविमारभ्य दक्षिणा उच्यन्ते । तत्र सूर्यप्रीत्यर्थ धेनुः, चन्द्रप्रीत्यर्थं कम्बु शङ्खः, कम्बु इति नपुंसकलिङ्गं पृथक्पदम् 'शङ्खः स्यात्कम्बुरस्त्रियाम्' इत्यमरोक्तेः । मङ्गलप्रीत्यर्थमरुण आरक्तो वृषः, बुधप्रीत्यर्थ कनकं सुवर्णम्, गुरुप्रीत्यर्थम् पीताम्बरम्, तच्च यथाविभवं कार्पासं कोशजं च, शुक्रप्रीत्यर्थम् श्वेतो घोटकः, शनिप्रीत्यर्थंमसिता श्यामवर्णा गौः, राहुप्रीत्यर्थम् महाऽसिर्बहुमूल्यखड्गः, केतुप्रीत्यर्थमजः छागः, एवमेषां दक्षिणेत्यर्थः । यदाह वसिष्ठः—'धेनुं शङ्खं रक्तवृषं हेम पीताम्बरद्वयम् । श्वेताश्वं कृष्णधेनुं च कृष्णलौहमजं क्रमात् ॥ स्वर्णेन वाससीकृत्य दातव्या दक्षिणा ततः । आचार्यार्थं जापकेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽथ शक्तितः । इति ।

तत्र दानान्तराण्यपि—

अत्र प्रत्येकं दानमन्त्रास्तत्रैवोक्ताः ग्रन्थभूयस्त्वभयान्न लिख्यन्ते ।

'एवं यः कुरुते सम्यग्ग्रहयज्ञं नृपोत्तमः । सर्वान् कामानवाप्नोति शुभस्थानफलं लभेत् ।।

नृपोत्तम इत्युपलक्षणम्, तेन यः कश्चिद्गृहस्थोऽपि कुर्यात् । तत्र स्वविभवानुरूपाणि ग्रहदानानि प्रोक्तानि कैश्चिद्यथा रवेः—

'कौसुम्भवस्त्रं गुडहेमताम्रं माणिक्यगोधूमसुवर्णवस्त्रम् ।
सवत्सगोदानमिति प्रणीतं दुष्टार्यमार्त्तिघ्नमसूरिकाश्च ।।'

चन्द्रस्य—

'घृतकलशं सितवस्त्रं दधिशङ्खौ चैव मौक्तिकसुवर्णे । रजतं च सम्प्रदद्याच्चन्द्रारिष्टोपशमनाय ।।'

भौमस्य—

प्रवालगोधूममसूरिकाश्च वृषश्च ताम्रः करवीरपुष्पम् ।
आरक्तवस्त्रं गुडहेमताम्रं दुष्टाय भौमाय सचन्दनं हि ।।'

बुधस्य—

'नीलं वस्त्रं मुद्गदानं बुधाय रत्नं पाची दासिका हेम सर्पिः ।
कांस्यं दन्तः कुञ्जरश्चाथ मेषो रौप्यं सर्वं पुष्पजात्यादिकं च ।।'

गुरोः—

'अश्वः सुवर्णं शुकपीतवस्त्रं सपीतधान्यं लवणं सपुष्पम् ।
सशर्करं तद्रजनीप्रयुक्तं दुष्टाय शान्त्यै गुरवे प्रदेयम् ।।'

शुक्रस्य—

'चित्रवस्त्रमपि दानमर्चिते दुष्टगे मुनिवरैः परिगीतम् ।
तण्डुलं घृतसुवर्णरूप्यकं वज्रकं परिमलो धवलोऽश्वः ।।'

शनेः—

नीलकं महिषं कृष्णं वस्त्रं लौहं सदक्षिणम् । दद्याच्च दक्षिणायुक्तंशनिदौष्ट्यप्रशान्तये ।।'

राहोः—

राहोर्दानमिदं मेषो गोमेदं लौहकम्बलौ । सुवर्णं नागरूप्यं च सतिलं ताम्रभाजनम् ।।'

केतोः—

'केतो वैदूर्यममलं तैलं मृगमदस्तथा । ऊर्णास्तिलाश्च संयुक्ता दद्यात्क्लेशानुपत्तये ।।'

अन्यच्च संहिताप्रदीपे—

''भानुस्ताम्बूलदानादपहरति नृणां वैकृतं वासरोत्थं
सोमः श्रीखण्डदानादवनिवरसुतो भोजनात्पुष्पदानात् ।

सौम्यः शक्रस्य मन्त्री हरिहरनमनाद्भार्गवः शुभ्रवस्त्रै-
स्तैलस्नानात्प्रभाते दिनकरतनयो ब्रह्मानुत्या परौ च ॥' इति ।

ब्रह्म ब्राह्मणः, परौ राहुकेतू ॥ १६ ॥

पीताम्बरा—ग्रहदोष निवारण के लिए औषधियों के क्वाथ से स्नान के साथ ग्रहों की दक्षिणा भी कही जा रही है—भुना हुआ धान, कुष्ठ पौधे का नाम कूढ़, वरियार, काउनी (एकलता) मोथा, सरसों, हल्दी, देवदारु, सराफोंका लोधिया इन औषधियों को गङ्गाजल या अन्य पवित्र जल में मिलाकर स्नान करने से दुष्टग्रह जनित अनिष्ट फल का विनाश होता है।

ग्रहों के अनिष्ट फल निवारण के लिए, आचार्य, जापक, और अनुष्ठान कर्ता ब्राह्मण को सूर्य की प्रीति के लिए गौ, चन्द्र का शंख, मंगल की····रक्त बैल-बुध की····सोना, बृहस्पति की········पीला कपड़ा, शुक्र की········सफेद घोड़ा, शनि की····काली गाय, राहु की······तलवार और केतु की प्रीति के लिए बकरा का दान करना चाहिए। नवग्रहों की उक्त दक्षिणा-दान में कही गई हैं।

संहिता प्रदीप में दुष्टवार दोष शान्ति के लिए—

सूर्यवार के दिन ताम्बूल दान, चन्द्रवार के दिन श्री खण्ड दान, मंगल के दिन भोजन दान, बुध के दिन पुष्पदान, बृहस्पति के दिन ब्रह्मा विष्णु को नमस्कारात्मक दान, शुक्रवार के दिन सुन्दर वस्त्रदान और शनिवार के दिन प्रातः तैल स्नान, तथा राहु-केतु विकार निवारण के लिए ब्राह्मण को नमस्कार करने से ग्रहदोष दूर होते हैं ॥ १६ ॥

अथ सूर्यादयो ग्रहा गन्तव्यराशेः प्राक् कियद्भिर्दिनैः फलं दद्युरित्येतदुपजात्याह—

सूर्यारसौम्यास्फुजितोऽक्षनागसप्ताद्रिघस्रान्विधुरग्निनाडीः ।
तमोयमेज्यास्त्रिरसाश्विमासान् गन्तव्यराशेः फलदाः पुरस्तात् ॥ १७ ॥

पीयूषधारा—सूर्यारसौम्येति । सूर्योदयो ग्रहा गन्तव्यराशेर्जिगमिषितराशेः पुरस्तात् पूर्वमेवैतत्संख्याकदिवसघटीमासान् । अत्र 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया । ततो नैरन्तर्येण तावन्तं कालं फलदाः स्युः । तद्यथा—सूर्यो गन्तव्यराशेः प्राक् अक्षघस्रान् पञ्च-दिवसान् फलदः, एवमारो भौमोऽष्टदिवसान् पूर्वं फलदः, बुधः सप्तदिवसान्, शुक्रोऽपि सप्त-दिवसान्, विधुश्चन्द्रः अग्निनाडीर्घटिकात्रयमेव प्राक् फलदः, राहुर्गन्तव्यराशेः प्राक् त्रिमासं फलदः, एवं शनिः षण्मासान्, गुरुर्द्विमासान् पूर्वं फलद इत्यर्थः । उक्तं च—'सूर्यः पञ्चदिनं शशी त्रिघटिकं भौमोऽष्ट वै वासरान्सप्ताहानि भृगुः ससोमतनयो मासद्वयं वै गुरुः । षण्मा-सान्पुरतोऽपि सूर्यतनयो राहुश्च मात्रसयं केतुश्चैव ददाति भावि सकलं गन्तव्यराशेः फलम् ॥' इति । जगन्मोहने त्वेवमुक्तम्—'आदित्यादिग्रहा दद्युर्लग्ने वा गोचरेऽपि वा । सप्तविंशतिमा-सोर्ध्वं परराशिफलं खलु ॥' इति ॥ १७ ॥

पीताम्बरा—सूर्यादिक ग्रहों का अग्रिम राशि में गमन के पूर्व ही निर्दिष्ट समयों में शुभाशुभ फल—सूर्य अग्रिम राशि संक्रमण के पहिले के ५ दिनों में, मंगल ८ दिन, बुध, और शुक्र ७ दिन, चन्द्रमा ३ घटी, राहु ३ मास, शनि ६ मास, और बृहस्पति २ मास पहिले से ही अग्रिम राशियों के फल देने लगते हैं ॥ १७ ॥

अथ प्रसङ्गादावश्यकमङ्गलयात्राकृत्येषु कर्त्तव्येषु सत्सु तिथ्यादिविषयकदुष्टयोगसद्भावे तद्दोषनिवारणार्थं दानं शालिन्याह—

दुष्टे योगे हेम चन्द्रे च शङ्खं धान्यं तिथ्यर्द्धे तिथौ तण्डुलांश्च ।
वारे रत्नं भे च गां हेम नाड्यां दद्यात्सिन्धूत्थं च तारासु राजा ॥१८॥

पीयूषधारा—दुष्ट इति । दुष्टे व्यतीपातादिरूपे योगे सति हेम सुवर्णं यथाशक्ति राजा दद्यात् । च पुनश्चन्द्रे दुष्टे विहितान्यस्थानस्थिते शङ्खं दद्यात् । तिथ्यर्द्धे करणे भद्राख्ये दुष्टे धान्यं दद्यात् । तिथौ दुष्टे चतुर्थ्यादिरूपे तण्डुलान् । वारे दुष्टेऽनुपचयरूपे रत्नं प्रवालमुक्तादि दद्यात् । भे राशौ दुष्टे क्रूरग्रहाधिष्ठितत्वादिदोषसहिते सति गां दद्यात् । नाड्यां घटिकायां दुर्मुहर्तादिना दुष्टायां सत्यां हेम सुवर्ण दद्यात् । च पुनस्तारासु दुष्टासु विपत्प्रत्यरिवधरूपासु सिन्धूत्थं लवणं दद्यात् । पूर्वं दुष्टतारासु प्रत्येकं विशिष्य दानमुक्तम् । इदानीं तदशक्तौ लवणमेव देयमिति पुनरुक्तिपरिहारः । उक्तं च दीपिकायाम्—'योगस्य हेम करणस्य च धान्यमिन्दोः शङ्खं च तण्डुलमणी तिथिवारयोश्च । तारावलाय लवणान्यथ गां च राशेर्दद्याद्द्विजाय कनकं शुचि नाडिकायाम् ॥' इति ॥१८॥

पीताम्बरा—दुष्ट तिथिवार नक्षत्र योगादिकों में दान—ग्रन्थकार ने राजा के लिए दान का जो निर्देश किया है वह उपलक्षण है, दान सभी को करना चाहिए । जिस दिन व्यतीपातादि दुष्ट योग हो तो सुवर्णदान, चन्द्रमा अशुभ हो तो शंख, करण (भद्रादिक) दुष्ट हो तो धान्य, तिथि रिक्ता आदि अशुभ हो तो चावल, वार शनि मंगल दुष्ट हो तो रत्न, राशि पर कूरग्रह होने से दुष्ट हो तो गौ (गाय) नाडी (दुर्मुहूर्तादि घटिका) अशुभ हो तो सुवर्ण तथा तारा (विपत् प्रत्यरि और वध) अशुभ होने पर सेंधा नमक, सेंधा नमक के अभाव में साधारण नमक का भी दान करना चाहिए ।

अनिष्ट तारा परिहार के उपाय पूर्व में कहे गये हैं उनकी असमर्थता से लवण दान से भी तारा का अनिष्ट फल दूर हो जाता है इस अर्थ की यह पुनरुक्ति है वह गणाय ॥१८॥

अथात्र गोचरप्रसङ्गात्सूर्यादयो ग्रहाः राश्यन्तरगताः संतः कदा शुभाशुभफलदातारो भवन्ति तथा चन्द्रमासाधिकरणकरविवासरादौ स्वजन्मनक्षत्रप्रवेशे सति फलविशेषं च वसन्ततिलकावृत्तेनाह—

राश्यादिगौ रविकुजौ फलदौ सितेज्यौ
मध्ये सदा शशिसुतश्चरमेऽब्जमन्दौ
अध्वान्नवह्निभयसन्मतिवस्त्रसौख्य-
दुःखानि मासिजनिभे रविवासरादौ ॥ १९ ॥

इति दैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्त्तचिन्तामणौ गोचरप्रकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

पीयूषधारा—राश्यादिगाविति । रविकुजौ सूर्यमङ्गलौ राश्यादिगौ राशिप्रथमदशांशमध्यस्थितौ सन्तौ फलदौ निखिलफलदातारौ । अवशिष्टांशेष्वीषत्फलदौ । एवं सितेज्यौ शुक्रबृहस्पती मध्ये मध्यगतांशदशके निखिलफलदातारौ अन्यत्रेषत् । शशिसुतो बुधः सदा त्रिंशदंशेषु निखिलफलदाता । अब्जमन्दौ चन्द्रशनैश्चरौ चरमदशके निखिलफलदातारावन्यत्रेषत् । उक्तं च वसिष्ठेन—'भवनाधिगतौ फलदौ रविभौमौ मध्यगौ च गुरुशुक्रौ । अन्त्यगतौ शशिरविजौसदैव-

फलदः शशाङ्कसुतः ॥' वराहेणापि—'दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले गुरुभृगुजौ भवनस्य मध्ययातौ। रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ शशितनयः फलदस्तु सर्वकालम् ॥' इति। रुधिरो भौमः।

वारभेदेन मासि मासि जन्मनक्षत्रफलम्—

अध्वेति। यस्मिन्मासे स्वीयजन्मनक्षत्रप्रवेशे सूर्यादिवाराश्चेत्स्युस्तदा तस्मिन्मासेऽध्वादीनि फलानि वाच्यानि, तद्यथा—रविवारे जन्मनक्षत्रप्रवेशे सति तस्मिन् मासे अध्वा मार्गोऽटनमिति यावत्, फलं तस्य पुंसो भवेत्। एवं चन्द्रवारे जन्म नक्षत्रप्रवेशे अन्नं भक्ष्यं तत्प्राप्तिः स्यादित्यर्थः। एवं भौमवारे वह्निभयं भवेत्; बुधवारे सन्मतिः सती समीचीना धर्मयुक्ता बुद्धिर्भवेत्, गुरुवारे वस्त्रप्राप्तिर्भवेत्, भृगुवारे सौख्यं भवेत्, शनिवारे दुःखप्राप्तिः स्यादित्यर्थः। उक्तं च ज्योतिषरत्नसंग्रहें वामनेन—'अध्वा भोजनमग्निभिः सुमतिता वस्त्रं सुखं चासुखं मासे मासि फलं भवेज्जननभे सूर्यादिवारे स्थिते ॥' इति। अत्र—'मासास्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात्' इति भास्कराचार्यवाक्याच्चान्द्रः शुक्लप्रतिपदा दिदर्शान्तो मासो गृह्यत इति शिवम् ॥१९॥

अथ गोचरप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—इति श्रीदैवज्ञेति।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा
पुत्रेणाहिगवी प्रसारितधिया मौहूर्त्तचिन्तामणेः।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे
व्याख्याने ग्रहगोचरप्रकरणं सम्पूर्णतामध्यगात् ॥ १ ॥

इति श्रीमद्दैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्विद्विरचितायां
मुहूर्त्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां
ग्रहगोचरप्रकरणं समाप्तम्।

पीतम्बरा—अभीष्ट राशियों में स्थित सूर्यादिग्रहों का शुभाशुभ फल समय तथा चान्द्रमास में रविवासरादि निमित्त जन्म नक्षत्र प्रवेश का विशेष फल—सूर्य और मंगल राशि के प्रथम दश अंश के भीतर अपना शुभाशुभ विशिष्ट फल देते हैं। शेष अंशों में कुछ फल देते है।

इस प्रकार शुक्र और बृहस्पति मध्यवर्ती १० अंशों में अपना विशिष्ट फल देते हैं।

बुध सदा सभी ३० अंशों में अपना विशिष्ट फल देता है।

चन्द्र और शनि अन्तिम दशक में अपना विशिष्ट फल अन्यत्र साधारण कम शुभाशुभ फल देते हैं।

रविवार के दिन चान्द्रमास में अपना जन्म नक्षत्र प्रवेश हो तो उस मास में यात्रा, चन्द्रवार में अन्न प्राप्ति, मंगलवार में अग्निभय, बुधवार में सन्मति, (समीचीन धर्मबुद्धि) गुरुवार में वस्त्र प्राप्ति, भृगुवार में सुख प्राप्ति और शनिवार के दिन अपना नक्षत्र प्रवेश होने से उस मास पर्यन्त दुःख प्राप्ति होती है।

शुक्लपक्ष प्रतिपदा से प्रारम्भ कर अमान्त पर्यन्त चान्द्रमास में उक्त विचार करने चाहिए ॥ १९ ॥

श्री दैवज्ञवर्य पं० हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज जुनायलग्रामोत्पन्न श्री काशीस्थ पर्वतीय श्री केदारदत्त जोशी कृत मुहूर्त्तचिन्तामणि ग्रन्थ के गोचर प्रकरण की पीयूषधारा टीका की पीताम्बरा हिन्दी-व्याख्या सुसम्पन्ना ॥४॥

अथ संस्कारप्रकरणम्—५

शर्वाणीतनयमथाब्धिदावमीशं नत्वा श्रीगुरुपदभक्तिलब्धविद्यः ।
गोविन्दो विबुधजनप्रहर्षिणीं तां संस्कारप्रकरणटिप्पणीं तनोति ।।

अथ संस्कारप्रकरणं व्याख्यायते तत्र संस्क्रियतेऽनेन श्रौतेन कर्मणा स्मार्तेन वा पुरुष इति संस्कारः । स्वीयस्वीयजातौ सामान्यविशेषविहितवैदिकस्मार्तकर्मानुष्ठानद्वाराऽदृष्टविशेषाधायक इति यावत् । लक्षणया तदर्थोक्तदिनशुद्धयादिकं संस्कारशब्देनोच्यते । तस्य प्रकरणमुपक्रमः ।

अष्टचत्वारिंशत्संस्कारनामानि सफलानि—

ते च संस्काराः अष्टचत्वारिंशत् । यदाह गौतमः—'गर्भाजानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं जातकर्म नामकरणान्नप्राशनचौलोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः पञ्चानां यज्ञानामनुष्ठानमष्टकापार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणी चैत्री आश्वियुजीति सप्तपाकसंस्था अग्न्याधानमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यान्यग्रयणेष्टिनिरूढपशुबन्धः सौत्रामणीति सप्तहविर्यज्ञसंस्था अग्निष्टोम उक्तः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्रोप्तोर्याम इति सप्त सोमयज्ञसंस्था इत्येते चत्वारिंशत्संस्काराः । आष्टावात्मगुणाः—दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूयाशौचमनायासो माङ्गल्यमकार्पण्यमस्पृहेति । यस्यैते चत्वारिंशत्संस्कारा अष्टावात्मगुणाश्च स ब्राह्मणः सायुज्यमाप्नोति' इति । तत्रैते पुंसः संस्काराः समीचीनदिवसेष्वनुष्ठिताः संतोऽभिहितफलदातारो भवन्ति । तत्र प्रथमं गर्भाधानाख्यः संस्कारोऽभिहितः । स च रजस्वलास्त्र्यधीनः । उक्तं च भरद्वाजसंहितायाम्—'रजस्वला यदा नारी योग्या स्याद्गर्भधारणे । ततः कुर्वीत तत्सङ्गं गर्भार्थं बुद्धिमान्नरः ।।'

पुत्रोत्पादनाकरणे प्रत्यवाय इत्यादिरीत्या पुत्रप्रशंसा—

तत्रापि पुत्रोत्पत्त्यर्थमवश्यं सङ्गः कार्यः, अन्यथा परलोकाभावः । उक्तं च श्रुतौ—'नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति तत्सर्वे पशवो विदुः' इति । पशवो देवाः । अत एव पुन्नाम्नो नरकात् त्रायत इति पुत्र इत्यन्वर्थता प्रतीयते । तदुक्तं महाभारते आदिपर्वणिशाकुन्तले—

'यदागमवतः पुंसो यदपत्यं प्रजायते । तत्तारयति संतत्या पूर्वप्रेतान्पितामहान् ।।
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायसे सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।। इति।

अनेनामुष्मिकं फलमुक्तं सन्ततेः । ऐहिकमपि फलमुक्तं भारते—

'इष्टं दत्तमधीतं च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः । सर्वमेतदपत्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।।
व्रतोपवासैर्बहुभिः कृतं भवति भीष्म यत् । सर्वं तदनपत्यस्य मोघं भवति निश्चितम् ।।'

अतो गर्भाधानमवश्यं कर्त्तव्यम् ।

रजोदर्शनात्प्राक् स्त्रीसङ्गो न करणीयः—

तच्च रजोदर्शनतः प्राक् न विधेयम् । तदुक्तं भविष्यपुराणे—'रजोदर्शनतः पूर्वं न स्त्रीसंसर्गमाचरेत् । संसर्गं यदि कुर्वीत नरके परिपच्यते ।।' युक्तं चैतत्, रजो हि पुष्यरूपम्, तद्विना फलरूपसन्तानानुपपत्तेः । ननु क्वचिद्रजोदर्शनं विनापि गर्भसम्भवो दृश्यते क्वचित्तु सत्यपि रजसि गर्भानुपलम्भ इति, नैष दोषः । गर्भधारणं हि रजो विना न भवतीत्येपाभ्यासिः ।

तच्च क्वचित्प्रकटं क्वचिदप्रकटमन्तरेव तिष्ठति। तत्राप्रकटेऽपि रजस्यन्तर्गतरजः सत्त्वाद्गर्भधारणसम्भवः। अतः प्रागुक्तदोषाभावः। उक्तं च कश्यपसंहितायाम्—वर्षद्वादशकादूर्ध्वं यदि पुष्पं बहिर्नहि। अन्तःपुष्पं भवत्येव पनसोदुम्बरादिवत्। अतस्तु तत्र कुर्वीत तत्सङ्गं बुद्धिमान्नरः॥' इति। यत्र तु सत्यपि रजसि गर्भधारणं न दृश्यते तत्र पुष्पबीजक्षेत्रादिदोषा द्रष्टव्याः। तस्मात्स्थितमेतद्रजोदर्शनानन्तरं स्त्रीसङ्गः कार्य इति। तत्र—'प्रथमरजोदर्शनतः शुभाशुभं भवति सर्ववनितानाम्' इति वसिष्ठोक्तेः। तत्र शुभफलसूचकं प्रथमरजोदर्शनमनुष्टुभाह—

आद्यं रजः शुभं माघमार्गराधेषफाल्गुने।
ज्येष्ठश्रावणयोः शुक्ले सद्वारे सत्तनौ दिवा॥ १॥

पीयूषधारा—आद्यमिति। राधो वशाखः, इष आश्विनः, शेषं स्पष्टम्। आद्यं प्रथमोद्भवं रजः स्त्रीधर्मो माघमार्गशीर्षवैशाखाश्विनफाल्गुनमासेषु तथा ज्येष्ठश्रावणमासयोश्चेत्तदा शुभं भविष्यच्छुभसूचकम्।

तत्राशुभमासाः—

अर्थाच्चैत्राषाढभाद्रपदकार्त्तिकपौषमासा अशुभाः। उक्तं च स्मृतिचन्द्रिकायाम्—
चैत्रे स्यात्प्रथमर्तौ तु नारी वैधव्यभागिनी। वैशाखे धनपुत्राढ्या ज्येष्ठे रोगान्विता तथा॥
शुचौ मृतप्रजा प्रोक्ता श्रावणे धनधान्यदा। नभस्ये दुर्भगा क्लिष्टा आश्विने च तपस्विनी॥
ऊर्जेप्यायुष्मती नारी मार्गशीर्षे बहुप्रजा। पौषे तु पुंश्चली नारी माघे पुत्रसुखान्विता॥
फाल्गुने श्रीमती साध्वी क्रमान्मासफलं स्मृतम्।' इति।

तथा शुक्ले शुक्लपक्षे सत्। अर्थात्कृष्णपक्षे रजोदर्शनं दुष्टम्। तदुक्तं स्मृतिचन्द्रिकायाम्—'शुक्लपक्षे सुशीला स्यात्कृष्णे सा कुलटा भवेत्। कृष्णस्य दशमीं यावन्मध्यमं फलमादिशेत्॥' अतः कृष्णपक्षदशम्युत्तरं कुलटात्वं स्यादित्यर्थः।

तत्र वारफलानि—

सद्वारे सतां चन्द्रबुधगुरुशुक्राणां वारे आद्यं रजः शुभमर्थादन्यवारेषु दुष्टफलम्। यदाह कश्यपः—

'रोगिणी रविवारे तु सोमवारे पतिव्रता। दुःखिता भौमवारे तु बुधे सौभाग्यसंयुता॥
श्रीसंयुता गुरोर्वारे पतिभक्ता भृगोर्दिने। मलिना मन्दवारे तु रात्रावपि तथैव च॥'
वसिष्ठोऽपि—'सदा गदार्त्ता सुपतिव्रता सा वन्ध्या प्रजावत्यतुलार्थयुक्ता।
आनन्दकर्त्री त्वसती च पुष्पवती क्रमाद्भास्करवासरेषु॥'

भास्करवासरेष्विस्यत्र—'अर्धर्चाः पुंसि च' इत्यादिना बहुवचनाद्यर्थोऽवगम्यते। तेन भास्करवासरादिष्वित्यर्थः फलितः।

लग्नफलानि—

सत्तनौ समीचीनलग्ने शुभस्वामिकराशावित्यर्थ इति केचित्। तत्र शुभफलमाद्यं रजः। यदाह नारदः—'कुलीरवृषचापान्त्यनृयुक्कन्यातुलाधराः। राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्त्तवे॥' केचित्तु सत्तनौ सद्भिर्दृष्टे तनौ युते वा इति व्याख्यां कुर्वते। तदुक्तं दैवज्ञमनोहरे—

मेषे सव्यभिचारा स्याद्वृषभे परभोगिनी। मिथुने धनभोगाढ्या कर्कटे व्यभिचारिणी ॥
पुत्राढ्या सिंहराशौ तु कन्यायां श्रीमती भवेत्। विचक्षणा तुलायां च वृश्चिके तु पतिव्रता ॥
दुश्चारिणी धनुःपूर्वे अपरे च पतिव्रता। मकरे मानहीना च कुम्भे निर्धनबन्धुता ॥
मीने विलक्षणा लग्ने ग्रहसंस्था विवाहवत्।'

अशुभपुष्पापवादः

अत्र शुभफलापवादमाह वसिष्ठः—अशुभमपि समस्तं चार्त्तवं सम्प्रभूतं सुरगुरुसितयुक्ते वीक्षिते वाथ लग्ने। तिमिरमित्र कठोरज्योतिरुत्पत्तिकाले क्षयमथ समुपैति प्राप्नुयादीप्सितानि।' कठोरज्योतिः सूर्यः।

तत्र प्रातः सायङ्कालावेव श्रेष्ठौ—

दिवा दिवसे आद्यं रजः शुभं—'मलिनी मन्दवारे तु रात्रावपि तथैव च' इति नारदोक्तेः। दिवा रजोदर्शनं शुभमित्यर्थः। स्मृत्यन्तरेऽपि विशेष उक्तः—'प्रातःकाले तु सधना सायाह्ने सर्वभोगिनी। मध्याह्ने च भवेद्वेश्या निशीथे विधवा भवेत् ॥' इति ॥ १ ॥

पीताम्बरा—षोडश संस्कारों के नाम और मुहूर्त—श्रुति और स्मृतियों में कथित जिन कर्मों से मानव को संस्कृत किया जाता है वे संस्कार शब्द से कहे जाते हैं। अपनी अपनी जातियों में सामान्य और विशेष विहित वैदिक स्मार्त कर्मों के अनुष्ठानों द्वारा अदृष्ट विशेष प्रतिपादक कर्म का नाम संस्कार कहा जाता है। इस प्रकरण में योग अदृष्ट विशेष अर्थात् वार नक्षत्र शुद्धि आदिक को संस्कार शब्द से कहा गया है। मानव जाति के लिये अपनी अपनी जातियों के अनुसार संस्कार आवश्यक होते हैं। सुवर्ण, रजत आदिक खनिजों में विशेष वैज्ञानिक संस्कारों से जैसे सुवर्णादिक रत्न स्वच्छ सुन्दर दर्शनीय और विभिन्न प्रयोगों व लोकव्यवहारों में आभूषण रूप धारण करते हैं, तद्वत् जन्मजात मानव भी अनेक शुभ संस्कारों से सुसंस्कृत होने पर संसार के भी समाजों का मानव मानव रत्न की संज्ञा प्राप्त करता है।

मानव के मुख्य संस्कार ४८ हैं। तत्रापि ४८ संस्कारों में १६ सोलह संस्कार तो विशेष आचरणीय हैं। प्राक्काल में मानव ४८ संस्कारों से संस्कृत होता था किन्तु वर्तमान युग में तो सोलह संस्कार भी लुप्त प्राय होते जा रहे हैं। तब भी धर्मप्राण देश के लिये प्रमुख षोडश संस्कारों के नाम और उनके शुभ मुहूर्त इस प्रकरण में बताए जा रहे हैं। जिनके किये जाने से मनुष्य सभी क्रियाकर्म करने का अधिकारी होता है।

षोडश संस्कारों के नाम—

१—गर्भाधान, २—पुंसवन, ३—सीमन्त, ४—जातकर्म, ५—नामकर्म, ६—निष्क्रमण, ७—अन्नप्राशन, ८—वपन, ९—कर्णवेध, १०—व्रतादेश, ११—वेदारम्भ, १२—केशान्त, १३—स्नान (विद्या स्नान, व्रतस्नान), १४—विवाह, १५—अग्निपरिग्रह और १६—त्रेताग्नि संग्रह।

पुन्नामक नरक से पिता की रक्षा (उद्धार) आत्मज के द्वारा होने के कारण आत्मज का अपर नाम पुत्र होता है। अतः प्रत्येक मानव को पुत्रवान् अवश्य होना चाहिए। रजोदर्शन के पहिले स्त्री सङ्गमन अनुचित होता है। क्योंकि रज पुष्प रूप होता है जिस प्रकार बिना पुष्प

के फल नहीं पैदा होते उसी प्रकार पुष्प रूप रज के बिना सन्तान रूप फल की प्राप्ति नहीं हो सकती ! कहीं पर रजोदर्शन बिना भी गर्भ का सम्भव देखा गया है और कहीं पर रजोदर्शन के अनन्तर स्त्री प्रसंग होने पर भी फल रूप सन्तान की प्राप्ति नही देखी जाती है। यह सर्वत्र व्याप्ति है कि बिना रजोदर्शन के गर्भ धारण नहीं हो सकता।

कहीं पर रजोदर्शन प्रत्यक्ष और कहीं पर अप्रत्यक्ष अर्थात् रज भीतर ही रहता है दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः अप्रत्यक्ष रजोदर्शन में भी गर्भ धारण हो जाता है।

१० वर्ष की अवस्था के ऊपर यदि रज बहिर्गत नहीं देखा जाता है तो समझना चाहिए कि भीतर में ही रजोऽन्तर्गतरजोदर्शन हो गया है जैसे कटहल और औदुम्बर वृक्षों में बिना पुष्प दर्शन के ही फल दर्शन प्रत्यक्ष होते हैं।

जहाँ पर रजोदर्शन होते हुए भी फल रूप सन्तान की उपलब्धि नहीं होती वहाँ पर रक्त वीर्य आदिक सन्तानबाधक दोषों को समझ कर, शास्त्रीय पूजा अनुष्ठान उपायों तथा शास्त्रीय चिकित्सा पद्धतियों के आश्रय से उन दोषों को दूर कर जैसे हो अवश्य सन्तान प्राप्ति करनी चाहिए।

अतः शुभ सूचक प्रथम रजोदर्शन काल बताया जा रहा है—माघ, मार्गशीर्ष, वैशाख, आश्विन, फाल्गुन, ज्येष्ठ और श्रावण मासों में, शुक्लपक्ष, शुभ ग्रहों के दिनों, और शुभ ग्रहों के लग्नों तथा दिन में प्रथम रजोदर्शन (स्त्री का प्रथम मासिक धर्म) शुभ भविष्य सूचक होता है।

चैत्र आषाढ़ भाद्रपद कार्तिक और पौष मासों में प्रथम रजोदर्शन अशुभ है। प्रातः और सायंकाल का प्रथम रजोदर्शन विशेष शुभ है। मध्याह्न और अर्द्धरात्रि का प्रथम रजोदर्शन अशुभ भविष्य का सूचक कहा गया है ॥ १ ॥

अथ प्रथमे रजोदर्शनं शुभनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वातौ सिताम्बरे।
मध्यं च मूलादितिभे पितृमिश्रे परेष्वसत् ॥ २ ॥

पीयूषधारा—श्रुतित्रयेति। श्रुतित्रयं श्रवणधनिष्ठाशतभिषाः, मृदुक्षिप्रध्रुवाणि चित्रानुराधामृगरेवत्यश्विनीपुष्यहस्तरोहिण्युत्तरात्रयस्वातीषु भेषु आद्यं रजः शुभमिति पूर्वेण सम्बन्धः। अत्र समाहारद्वन्दः आगमशासनस्यानित्यत्वान्नुमभावः। मूलेति। मूलपुनर्वसुमघाविशाखाकृत्तिकासु मध्यं मध्यमफलम्। परेषु भरणीज्येष्ठार्द्राश्लेषापूर्वात्रयेषु असदनिष्टफलम्।

नक्षत्रानुरोधेन फलानि रजोदर्शने—

उक्तं च गर्गेण—

'सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता। धर्मयुक्ता व्रतनी च परसन्तानमोदिनी ॥ सुपुत्रा चैव दुष्पुत्रा पितृवेश्मरता सदा। दीना प्रज्ञावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥ साध्वी पतिव्रता नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी। स्वकर्मनिरता हिंस्रा पुत्रपौत्रादिसंयुता ॥ नित्यं धनकथासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता। मूर्खार्थाढ्या गुणवतीं दस्रर्क्षादेः क्रमात्फलम् ॥' इति

व्यवहारनिबन्धे श्रीपतिनापि—

'करादिपञ्चोत्तरमूलपूषविष्णुत्रयाश्वीज्यविधीन्दुभेषु ।
आद्यं रजः सौख्यसुतायुरर्थसौभाग्यवृद्धि कुरुतेऽङ्गनानाम् ।
मघेशयोः शोकमथादितेर्भे सा वन्धकीन्द्रेप्यनले दरिद्रा ।
पूर्वात्रये याम्यभुजङ्गधिष्ण्ये वैधव्यमस्या भवतीति नूनम् ॥'

अत्र यद्यपि लिखितयोर्द्वयोरपि सम्मतिवाक्ययोरेकार्थ्यम् । तथापि ग्रन्थकृता विशाखामूलयोर्मध्यत्वाभिधानं वसिष्ठवाक्यस्यानुरोधात्कृतम् । उक्तं च वसिष्ठेन—'द्विदैवभे पुष्पवती प्रमत्ता कृत्यैव मोघामयवैरिसंधा । मूले प्रकामाधिकहीनसत्त्वा स्यात्सर्वभक्षोद्धतदोषचित्ता ॥' इति ।

तदाधृतवस्त्रवर्णन शुभाशुभफलानि ।

सिताम्बरे श्वेतवस्त्रे आद्यं रजः शुभमिति पूर्वेण सम्बन्धः । उपलक्षणं चैतत्क्षौमनूतनवस्त्रयोः । अर्थादन्येषु दुष्टेषु वस्त्रेषु रजोदर्शनं निन्द्यमित्यर्थः तदाह वसिष्ठः—

'सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद्दृढवस्त्रा पतिव्रता । क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यान्नववस्त्रा सुखान्विता ॥
दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद्रोगिणी रक्तवाससा । नीलाम्बरधरा नारी विधवा पुष्पिता यदि ॥
मलिनाम्बरतो नारी दरिद्रा स्याद्रजस्वला ।'

क्षौमवस्त्रं पट्टवस्त्रम् । क्वचिद्रक्तबिन्दुभिः फलमुक्तम्—'वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात् । समाश्चेत्कन्यका चेति फलं स्यात्प्रथमार्त्तवे ॥' इति वसिष्ठोक्तेः । अन्यच्च—'सम्मार्जनी काष्ठतृणाग्निशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात् । तल्पोपभोगैः रहसि स्थिता चेद्दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात्' ॥ २ ॥

पीताम्बरा—प्रथम रजोदर्शन में श्रेष्ठ, मध्यम और अधम नक्षत्र—श्रवण धनिष्ठा, शतभिषा, मृदु, क्षिप्र, ध्रुव संज्ञक और स्वाती नक्षत्रों में श्वेतवस्त्र धारिणी पत्नी का प्रथम रजोदर्शन उत्तम फल सूचक, मूल पुनर्वसु मघा और मिश्र संज्ञक नक्षत्रों में मध्यम फल, इनसे अतिरिक्त अन्य नक्षत्रों तथा मलिन वस्त्रादि धारण स्थिति का प्रथम रजोदर्शन अशुभ भविष्य का सूचक कहा गया है ॥२॥

अथ निन्द्यरजोदर्शनं शालिन्याह—

**भद्रानिद्रासंक्रमे दर्शरिक्तासन्ध्याषष्ठीद्वादशीवैधृतेषु ।
रोगेऽष्टम्यां चन्द्रसूर्योपरागे पाते चाद्यं नो रजोदर्शनं सत् ॥३॥**

पीयूषधारा—भद्रेति । भद्रा प्रसिद्धैव, निद्रा स्वापः, संक्रमः, संक्रान्तिः, दर्शोऽमावास्या, रिक्ताः प्रसिद्धाः, सन्ध्याः प्रातःसन्ध्या मध्याह्नसन्ध्या सायंसन्ध्या च, षष्ठीद्वादश्यौ प्रसिद्धे, वैधृताख्यः सप्तविंशतिमो योगः, रोगो ज्वरादिः प्रदरादिश्च, अष्टमी, चन्द्रसूर्योपरागो ग्रहणम्, पातो व्यतिपातः सप्तदशो योगो महापातश्च, एषु दुष्टयोगेष्वाद्यं रजोदर्शनं नो सत्, अनिष्टफलदमित्यर्थः । यदाह कश्यपः—अष्टमीषष्ठ्यमा रिक्ता द्वादशी संक्रमेऽपि वा । वैधृतौ व्यतिपाते च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ विष्टयां सन्ध्यासु निद्रायां दुर्भगा प्रथमार्त्तवे ॥' नारदेन तु प्रतिपत्तिथिः परिघपूर्वार्द्धं च निषिद्धम्—'अमारिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि । परिघस्य तु पूर्वार्द्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ सन्ध्यासूपप्लवे षष्ठ्यामशुभं प्रथमार्त्तवम् ॥' रोगे सम्मतिर्नास्ति ।

वसिष्ठेन तु स्थलभेदेन फलविशेषोऽभिहितः—

'ग्रामाद्बहिः परग्रामे वा चेत्स्याद्व्यभिचारिणी । पतिव्रता पतिस्थाने सुशीला गृहमध्यमे ।।
ग्राममध्ये च वृद्धिश्च विधवा च दिगम्बरा । उपरागे च दुःशीला आयुष्यं जलसन्निधौ ।।
धनमध्ये तु कन्याया धनधान्यसमृद्धिदा ।।'

प्रथमार्त्तवे स्यादिति पूर्वेण सम्बन्धः ।

तत्र मातृप्रश्नलग्नात्फलानि—

अत्र रजस्वलायाः कन्यायाः मात्रादिकृतप्रश्नलग्नाच्छुभाशुभविशेषो भूयान् वशिष्ठेनोक्तः । सोऽस्माभिर्ग्रन्थबाहुल्यभयान्नालेखि । स तत एवावधार्यः ।।३।।

पीताम्बरा—प्रथम रजोदर्शन का अशुभ समय—भद्रा करण, सुप्त अवस्था, संक्रांति के दिन; अमावस्या और अष्टमी षष्ठी द्वादशी तथा रिक्ता तिथियों, प्रातः मध्यान्ह और सायं सन्ध्या के समयों, वैधृति योग, रोग अवस्था (ज्वर प्रदर आदिक) सूर्यचन्द्र ग्रहणों और व्यतीपात योग में, प्रथम रजोदर्शन अनिष्ट फलद होता है ।

अपने निवास (ग्राम आदि) स्थान से दूसरे स्थान पर का प्रथम रजोदर्शन भी अशुभ सूचक है ।।३।।

अथ प्रथमरजस्वलायाः स्नानमुहूर्तं वसन्ततिलकयाह—

हस्तानिलाश्विमृगमैत्रवसुध्रुवाख्यैः शक्रान्वितैः शुभतिथौ शुभवासरे च ।
स्नायाद्यथार्तववती मृगपौष्णवायुः हस्ताश्विधातृभिररं लभते च गर्भम् ।।४।।

पीयूष धारा—हस्तेति । हस्तस्वात्यश्विनीमृगानुराधाधनिष्ठारोहिण्युत्तरात्रयज्येष्ठाभिः शुभतिथौ भद्रानिद्रासङ्क्रमे इत्याद्यनिष्टदिनव्यतिरिक्तदिवसे शुभवारे शुभानां चन्द्रबुधगुरुशुक्राणां वासरे च । आर्तववती ऋतुरेवार्तवम् । प्रज्ञादित्वात्स्वार्थेऽण् । तद्विद्यते यस्याः सा तथोक्ता सा रजोवती स्नायात् । उक्तं च दैवज्ञवल्लभे—'ब्रह्मानुराधाश्विनिसोमभेषु हस्तानिलाखण्डलवासवेषु । विश्वार्यमर्क्षोत्तरभाद्रभेषु वराङ्गनास्नानविधिः प्रदिष्टः ।।' आखण्डलो ज्येष्ठा वासवं घनिष्ठेत्यपुनरुक्तिः ।

वारफलानि प्रथमरजस्वलास्नाने—

वारफलमपि तत्रैव—'सरुक्पतिव्रता दीना पुत्रिणी भोगभागिनी । पतिव्रता क्लेशयुक्ता ऋतुस्नानेऽर्कवारतः ।।' इति ।

प्रसूतास्नानफलं प्रसङ्गात्

केचित्त्वन्यथा वारफलं वदन्ति—'काकीव वन्ध्या भवतीव शुक्रनष्टप्रजा स्नानविधौ बुधे च । सौरे च मृत्युः पयसोऽल्पतेन्दौ भौमार्कजीवे बहुपुत्रलाभः ।।' इति । एतत्प्रसूतास्नानविषयम् । तदुक्तं दैवज्ञवल्लभे—'स्नाता प्रसूताप्यसुता बुधेन स्नाता च वन्ध्या भृगुनन्दनेन । सौरे मृतिः क्षीरहृतिस्तु सोमे पुत्रार्थलाभो रविजीवभौमे ।।' इति ।

प्रथमरजस्वलास्नाने नक्षत्रविशेषः—

विशेषमाह—मृगेति । मृगरेवतीस्वातीहस्ताश्विनीरोहिणीभिर्नक्षत्रैः स्नातार्त्तववती अरं शीघ्रं

गर्भं लभते। तदुक्तं दैवज्ञमनोहरे—'वायुः पूषा च सौम्यश्च करो ब्रह्मा तथाश्विनी। एभिः स्नाने तु नारीणां गर्भः सम्पद्यते पुनः॥' इति। अत्रैकादशनक्षत्राणि स्नानविधावुक्तानि। तत्रापि षट्सु भेषु शीघ्रं गर्भोत्पत्तिर्भवेत्। अन्येषु किञ्चिद्विलम्बेनेत्यर्थः। सर्वथा विहितभिन्नेषु स्नानं न कार्यमिति निष्कृष्टोऽर्थः। उक्तं च—'कृत्तिका भरणी मूलमार्द्रा पुष्यः पुनर्वसुः। मघा चित्रा विशाखा च श्रवणो दशमस्तथा। एताः प्राणहरास्तारास्तासु स्नानं न कारयेत्। यदि स्नानं प्रकुर्वीत पुनः सूतिर्न विद्यते॥' इति। अर्थाच्छततराश्लेषापूर्वात्रयेषु मध्यममिति। इयं च देशाचारतो व्यवस्थानुसन्धेया। शिष्टाचारस्यापि स्मृतिवत्प्रामाण्यात्। दाक्षिणात्यास्तु चतुर्थ एव दिवसे स्नानमाहुः। चतुर्थेऽहनि शुध्यति' इति। 'भर्त्तुः स्पृश्या चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला' इति स्मृतिवचनात्॥ ४॥

पीताम्बरा—रजस्वला का स्नान मुहूर्त—हस्त, स्वाती, अश्विनी, मृगशिरा, अनुराधा धनिष्ठा, ध्रुवसंज्ञक और ज्येष्ठा नक्षत्रों में, (भद्रानिद्रा संक्रम इत्यादि वर्जित अशुभ समय) शुभग्रहों के वारों में, रजस्वला का स्नान मुहूर्त शुभ कहा गया है। शीघ्र गर्भधारण के लिए मूल, रेवती, स्वाती, हस्त, अश्विनी और रोहिणी नक्षत्रों के दिन में रजस्वला स्नान के लिए मुहूर्त उत्तम हैं॥ ४॥

गर्भाधानमुहूर्त्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

गण्डान्तं त्रिविधं त्यजेन्निधनजन्मर्क्षे च मूलान्तकं
दास्रं पौष्णमथोपरागदिवसं पातं तथा वैधृतिम्।
पित्रोः श्राद्धदिनं दिवा च परिघाद्यर्धं स्वपत्नीगमे
भान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम्॥ ५॥

पीयूषधारा—गण्डान्तमिति। तत्र स्वपत्नीगमे स्वपत्नीगमने एतान्दोषान् त्यजेदिति सर्वत्र सम्बन्धः। एतान्कान्। त्रिविधं गण्डातम्, गण्डान्तलक्षणं रत्नमालायाम्—'नक्षत्रतिथि-लग्नानां गण्डान्तं त्रिविधं स्मृतम्। नवपञ्चचतुर्थानां ह्येकार्द्धघटिकामितम्॥' इति। निधनं जन्मर्क्षात् सप्तमं वधतारां जन्मनक्षत्रं मूलमन्तकं भरणीं दास्रमश्विनीं पौष्णं रेवतीं मघाम् उपरागदिवसं ग्रहणदिनं पातं व्यतीपातं महापातं च वैधृतियोगं पित्रोः मातापित्रोः श्राद्धदिनं दिवा सूर्यावच्छिन्नकालं परिघयोगस्य पूर्वार्द्धं तथोत्पातैर्दिव्यान्तरिक्षभौमैस्त्रिविधैरुत्पातैर्हतं दूषितं जन्मर्क्षतः जन्मलग्नाज्जन्मराशेर्वा मृत्युभवनमष्टमं लग्नं पापभं पापग्रहयुक्तभं नक्षत्रं लग्नं वा इति।

दुष्टतिथ्यादौ रजोदर्शने शान्तिः रजोऽन्तरप्रतीक्षा च—

अत्र यदि दुष्टफलतिथ्यादिषु रजोदर्शनमभूत् तत्र चतुर्थदिनानन्तरं शान्तिकं विधेयम्। यदाह वसिष्ठः—

'प्रभूतदोषं यदि दृश्यते तत्पुष्पं ततः शान्तिककर्म कार्यम्।
विवर्जयेदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमन्यघस्रे॥
ईशानतो गोमयमण्डलेन परिस्तृतेऽग्नौ जुहुयात्सदूर्वाम्।
युग्मां घृताक्तां च समित्प्रमाणां गायत्रिकां साष्टसहस्रसंख्याम्॥
शतप्रमाणामथवाघहन्त्रीं शुभैर्यवैर्व्याहृतिभिस्तिलैश्च।

ततः सुरान् भूमिसुरान् पितॄंश्च सन्तर्पयेदन्नसुवर्णवस्त्रैः ॥' इति । शान्तिकप्रकारस्तु शान्तिपद्धत्यादौ द्रष्टव्यः । एवं शान्तिकं विधाय गर्भाधानं विधेयम् ॥ ५ ॥

पीताम्बरा—रजोदर्शन स्नान के अनतर गर्भाधान मुहूर्त—अपनी धर्मपत्नी के साथ सन्तान प्राप्ति की इच्छा से स्त्री प्रसंग में तीन प्रकार के गण्डान्त (विवाह प्रकरण) सातवीं वधतारा, जन्मनक्षत्र, मूल,भरणी, अश्विनी, रेवती, मघा नक्षत्र, ग्रहण का दिन, व्यतीपात और वैधृति योग, माता पिता का श्राद्ध दिन, सूर्योदयात्सूर्यास्त तक दिन में (सन्ध्याकाल और मध्य रात्रि भी) परिघ योग का पूर्वार्ध, दिव्यान्तरिक्षभौम से उत्पन्न त्रिविध उत्पातों से (आहत) दूषित दिन, जन्मलग्न और जन्मराशि से अष्टम राशि लग्न और पापग्रह से युक्त राशि या नक्षत्र का परित्याग करना चाहिए ।

अशुभ तिथ्यादि में रजोदर्शन की शान्ति रजोदर्शन के चौथे दिन के पश्चात् ही अशुभ निवृत्यर्थ करनी चाहिए । शान्ति पद्धतियों में शान्ति के प्रकार सुलभ हैं ।

अन्यदपि शालिन्याह—

भद्राषष्ठीपर्वरिक्ताश्च सन्ध्याभौमार्कार्कीनाद्यरात्रीश्चतस्रः ।
गर्भाधानं त्र्युत्तरेन्द्वर्कमैत्रब्राह्मस्वातीविष्णुवस्वम्बुपे सत् ॥ ६ ॥

पीयूषधारा—भद्रेति । भद्रा प्रसिद्धा, षष्ठी तिथिश्च, पर्वाणि चतुर्दश्यष्टम्यमावास्या-पूर्णिमासंक्रमणानि । उक्तं च विष्णुपुराणे—'चतुर्दश्यष्टमी चैव ह्यमावास्या च पूर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसङ्क्रान्तिरेव च ॥' इति । रिक्ताश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः, सन्ध्यां प्रातःसन्ध्यां सायंसन्ध्यां च, भौमं मङ्गलवारम्, अर्कमादित्यवारम्, आर्किम् शनैश्चरवारं, चतस्रः आद्यरात्री रजोदर्शनदिनमारभ्य दिनचतुष्टयं च तत्र त्यजेदित्यर्थः ।

तदनन्तरमपि पुत्रार्थी रजोदर्शनतो विषमदिवसं त्यजेत् । उक्तं च गर्भाधानाध्याये वसिष्ठेन निषेधजातं—

'पौष्णद्वये पित्र्यभयाम्यसार्पविष्णुद्वये नैधनजन्मभेषु ।
उत्पातपापग्रहदूषितेषु न कार्यमाधानमनिष्टलग्ने ॥
उपप्लवे वैधृतपातयोश्च विष्टयां दिवा पारिघपूर्वभागे ।
सन्ध्यासु पर्वस्वपि मातृपित्रोर्मृतेह्नि पत्नीगमनं विवर्ज्यम् ॥
दिनेषु युग्मेषु च वक्ष्यमाणयोगैः सुतार्थी स्वसतीमुपेयात् ।
दिनेष्वयुग्मेषु च कन्यकार्थी हित्वा च गण्डांस्थितितिथिलग्नभानाम् ॥' इति ।

वक्ष्यमाणयोगैः पुंयोगैः स्त्रीयोगैश्च । अत्र ग्रन्थकृता श्रवणधनिष्ठयोर्न निषेधः कृतः । बार्हस्पत्यसहितायां तयोर्विशेषतो विहितत्वात् । तद्वचनमधुनैव वक्ष्यते । ननु षोडशीग्रहणवद्वि-हितप्रतिषिद्धत्वाद्विकल्पः कस्मान्न भवति, सत्यम् । बहूनामनुरोधो न्याय्य इति विधिरेवोचितः । अत एवोक्तं नारदेन—'शुचिर्भूत्वा युग्मतिथावनग्नां कामयेत्प्रियाम् । पुत्रार्थी पुरुषस्त्यक्त्वा पौष्णमूलाहिपित्र्यभम् ॥' इति । 'त्यक्त्वा पर्वतिथिं मूलमाश्लेषापितृभं त्विति ॥' इति काश्यपोक्तेः ।

तिथ्यादयो गर्भाधाने—

अत एव बृहस्पतिसंहितायाम्—'शेषाण्यृक्षाणि दुष्टानि स्युर्निषेकाख्यकर्मणि, इत्युक्तम् ।

तिथ्यादयः कश्यपेन कालविधाने उक्ताः—षष्ट्यष्टमीं पञ्चदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा। शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशाङ्काऽऽर्यसितेन्दुजानाम् ॥' इति। अत्र वाक्ये चन्द्रबुधगुरुशुक्रवारा निषेककार्ये शुभा उक्ताः। अर्थादन्ये सूर्यभौमशनिवारा निषिद्धाः। उक्तं च कालनिर्णये—'रिक्ता पर्वाष्टमी षष्ठी दिवा जन्मत्रयं तथा। पापग्रहाणां वाराश्च त्याज्याश्चैवानृतौ गतिः। सोमज्ञगुरुशुक्राणां वारवर्गोदयाः शुभाः। तेषां च दृष्टयश्चैव नेतरेषां कदाचन ॥' इति। अत्र केचिन्निषेके पुंवारा उत्तमाः स्त्रीवारौ मध्यमौ नपुंसकवारौ निषिद्धौ। उक्तं च व्यासेन—'पुरुषग्रहवाराः स्युः शुभाः सीमन्तकर्मणि। मध्यौ स्त्रीग्रहवारौ तु वर्ज्जयेत्तु नपुंसकौ ॥' इति। अत्र सीमन्तग्रहणनुपलक्षणं गर्भाधानस्येत्याहुः।

तत्र वारविषये विशेषः—

युक्तं चैतत् पुंस्त्रीवारेषु स्त्रीगमने पुरुषाः स्त्रियो वोत्पद्यन्ते इति तावदिष्टम्। नपुंसकवारगमने तु नपुंसकस्योत्पत्तिः स्यात्। नहि सा कस्यचिदिष्टा भवेदिति नपुंसकबुधवारनिषेध एवोचितः। शनिनिषेधस्तूभयवादिसिद्ध एव, दाक्षिणात्यशिष्टसमाचाराच्च। अतो बुधशन्योरेव निषेधोऽन्येषां ग्रहणमिति प्रतीमः। प्राच्यास्तु नैतत्सहन्ते। तन्मते तु सूर्यभौमशनीनामेव निषेधः। नारदः—'रजोदर्शनतोऽस्पृश्या नार्यो दिनचतुष्टयम्। ततः शुद्धाः क्रियास्त्वेताः सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥'

रजस्वला-शुद्धिकालः—

अत्रार्थवादमाह भरद्वाजः—'प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातकी। तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति ॥' धर्मशास्त्रेऽपि—'भर्त्तुः स्पृश्या चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला। पञ्चमेऽहनि योग्या स्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥ तस्मादेतावतो दोषान्त्यक्त्वा स्त्रीगमनं हितम् ॥' इति।

गर्भाधानकालावधिः—

ऋतुकालावधिमाह याज्ञवल्क्यः—'षोडशर्त्तुनिशाः स्त्रीणा तस्मिन्युग्मासु संविशेत्। युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥' अतः षोडशदिनमध्ये गर्भाधानं विधेयम्। तत्रैव गर्भसम्भवात्। तत्र वाराः समीचीनाः प्रागुक्ता एव।

गर्भाधाने नक्षत्राणिः—

अधुना नक्षत्राण्याह—गर्भाधानमिति। उत्तरात्रयमृगहस्तानुराधारोहिणीस्वातिश्रवणधनिष्ठाशततारकासु गर्भाधानं सत् शुभदम्। उक्तं च बार्हस्पत्यसंहितायाम्—'हरिहस्तानुराधाश्च स्वातीवारुणवासवम्। उत्तरात्रितयं सौम्यं रोहिणी च शुभाः स्मृताः॥ आधाने मूलसार्पान्त्यमशुभं समन्यभम् ॥' इति। एवं विहितनक्षत्रे सति चन्द्रबले गर्भाधानार्थं सकृदेव पत्नीगमनं कार्यमित्याह याज्ञवल्क्यः—'एवं गच्छेत्स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत्। सुस्थिरेन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ॥' चकाराद्रेवतीम्। भीमपराक्रमोऽपि—

'पित्र्य पौष्णं नैऋतं चापि धिष्ण्यं त्यक्त्वा नारी सुप्रसन्नः प्रसन्नाम्।
पुष्टः क्षामां पुत्रकामोऽभिगच्छन् सल्लक्षण्यं पुत्रमाप्नोति पुण्यम् ॥' इति।

मन्त्रपूर्वकमेव कार्यः स्त्रिया सङ्गमः—

तच्च गमनं मन्त्रपूर्वकम्। तदुक्तं विष्णुपुराणे—'ऋतावुपगमः शस्तः स्वपत्न्यां मन्त्रतो

द्विज ।' इत्युक्तेरिदं त्रैवर्णिकविषयं प्रतीयते मन्त्रास्तु विष्णुर्योनिं कल्पयत्वित्येवमादयः । एतैर्मन्त्रैर्दक्षिणेन पाणिनोपस्थमभिमृशेदिति गोभिलोक्तेः ।। ६ ।।

पीताम्बरा—गर्भाधान मुहूर्त के सम्बन्ध में और ज्ञातव्य—भद्रा, षष्ठी, पर्व के दिन (चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या और पूर्णिमा) रिक्ता तिथियाँ, प्रातः और सायं सन्ध्या, भौम सूर्य और शनिवार रजोदर्शन दिन से आगे तक के चार दिन, ये सब गर्भाधान में त्याज्य हैं। पुत्रार्थी के लिए रजोदर्शन से आगे के विषम दिन भी गर्भाधान के लिये त्याज्य हैं ।

तीनों उत्तरा, मृगशिरा, हस्त, अनुराधा रोहिणी, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में गर्भाधान शुभ कहा गया है ।

गर्भाधान में पुत्रार्थी के लिए पुरुष ग्रह के (सूर्य भौम गुरु) और कन्यार्थी के लिए स्त्री ग्रह के वार शुभ कहे गए हैं। नपुंसक वार के दिन के गर्भाधान से सन्तान नपुंसक होती है अतः गर्भाधान में बुध और शनि वार (नपुंसक वार) का भी अर्थात् निषेध प्रतीत होता है । अशुभ ग्रहों में सूर्य भौम भी गृहीत मालूम पड़ते हैं ।

रजस्वला स्त्री का स्वरूप प्रथम दिन में चाण्डाली, द्वितीय दिन में ब्रह्मघातिनी, तृतीय दिन में रजकी कही जानी से वह चौथे दिन ही गृहस्थी में पति के लिए (जल स्पर्शादि) शुद्ध कही गयी है । दैव और पितृ कार्यों में पाँचवें दिन से शुद्ध एवं शुभ मानी जाती है ।

रजोदर्शन के पश्चात् १६ दिनों के भीतर के समदिनों का गर्भाधान पुत्र प्राप्ति प्रद और विषम दिनों का गर्भाधान कन्या प्राप्ति के लिए कहा गया है । उसके पश्चात् द्वितीय रजोदर्शन तक स्त्री प्रसंग अहैतुक अर्थात् काम तृप्त्यर्थ ही होता है । आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों का भी यही मूल सिद्धान्त है ।

गर्भाधान संस्कार का मुहूर्त सूक्ष्म होता है और वैदिक मन्त्रों के विधान पूर्वक गर्भाधान संस्कार करना चाहिए । वैदिक मन्त्र कर्मकाण्डीय संस्कार पद्धतियों में प्रसिद्ध हैं ।। ६ ।।

अथ गर्भाधाने लग्नबलमिन्द्रवज्रयाह—

केन्द्रत्रिकोणेषु शुभैश्च पापैस्त्र्यायारिगैः पुंग्रहदृष्टलग्ने ।
ओजांशगेऽब्जेऽपि च युग्मरात्रौ चित्रादितीज्याश्विषु मध्यमं स्यात् ।। ७ ।।

पीयूषधारा—केन्द्रेति । अथ सामान्यतः शुभलग्नानि वसिष्ठोक्तानि—वृषमिथुनकर्कसिंहकन्यातुलाधरचापझषाः शुभा भवन्ति । यदि शुभफलशालिनोऽनुकूला निधनविशुद्धियुता निषेककाले ।।' इति । तत्र केन्द्रत्रिकोणेषु लग्नचतुर्थसप्तमदशमपञ्चमनवमस्थानस्थितैः शुभग्रहैस्तथा त्र्यायारिगैस्तृतीयैकादशषष्ठस्थानस्थितैः पापग्रहैरुपलक्षिते पुङ्ग्रहैः सूर्यभौमगुरुभिर्दृष्टे लग्ने तथौजांशगे इन्दौ, विषमराशिर्मेषमिथुनाद्रिरंश ओजादिरेव । तत्र स्थिते चन्द्रे सति युग्मरात्रौ गर्भाधानं कार्यम् । यदाह जगन्मोहने वसिष्ठः—केन्द्राग्निकोणेषु शुभस्थितेषु लग्ने शशाङ्के च शुभैः समेते । पापैस्त्रिलाभारिगतैश्च यायात्पुञ्जन्मयोगेषु च सम्प्रयोगम् ।।' नारदः—'ओजराश्यंशगे चन्द्रे लग्ने पुङ्ग्रहवीक्षिते । शुचिर्भूत्वा युग्मतिथौ ह्यनग्नां कामयेत्प्रियाम् ।।' इति । पुङ्ग्रहानाह नारदः—'पुङ्ग्रहाः सूर्यजीववाराः स्त्रीग्रहौ शशिभार्गवौ । नपुंसकौ सौम्यसौरी शिरोमात्रं विधुन्तुदः ।।' इति ।

पुन्नपुंसकयोगः—

अत्र पुन्नपुंसकयोगा वसिष्ठेनोक्ताः—

'आधानलग्ने विषमांशराशौ जीवेन्दुजाभ्यां युतवीक्षिते वा ।
नान्यैः सपुत्रस्त्वथ पापखेटैः पापी च मिश्रैर्बलिभिश्च मिश्रः ॥
ओजर्क्षांशे लग्नगे वीर्ययुक्ते जीवेन्द्वर्केरोजराश्यंशसंस्थैः ।
पुञ्जन्म स्याद्व्यत्यये कन्यका स्यान्मिश्रैः षंढो द्व्यङ्गगैर्द्वित्रिजन्म ॥
ओजांशकर्क्षाद्विषमर्क्षसंस्थः पुञ्जन्मकारी रविसूनुरेकः ।
विचार्य वीर्यं पुरुषग्रहाणां वाच्योऽथ पुत्रस्त्वथ पुत्रिका वा ॥

पापैश्च शेषं सुविचिन्त्य वाच्यम्' इति ।

एवमन्येऽपि पुञ्जन्मादियोगा जातके द्रष्टव्याः । एषु यस्मिन्कस्मिन्पुञ्जन्मयोगे पुत्रार्थी युग्मरात्रौ पत्नीं गच्छेत् इति फलितोऽर्थः ।

गर्भाधाने मध्यमनक्षत्राणि—

गर्भाधाने विहितनक्षत्राप्राप्तौ मध्यमनक्षत्राण्याह—चित्रेति । चित्रापुनर्वसुपुष्याश्विनीषु तद्गर्भाधानं मध्यमं मध्यमफलदमित्यर्थः । यदाह बृहस्पतिः—'चित्रादित्ये तथा तिष्यतुरगौ चेति मध्यमाः । शेषाण्यृक्षाणि दुष्टानि स्युर्निषेकाख्यकर्मणि ॥' इति ।

तत्र विहितषोडशदिनातिक्रमेषु न तत्कालप्रतीक्षा कार्या—

तत्र केचित्—दैवान्मानुषाद्वा प्रतिबन्धाद्भर्त्तुरसन्निधाने अनेकेषु ऋतुषु व्यतीतेषु गर्भाधानाख्यः संस्कारो नाभूत्तदानीं दैवान्मध्ये भर्त्ता समागतश्चेत्तदा दक्षिणायनशुक्रगुर्वस्तन्यूनाधिमासादिमहादोषसद्भावे गर्भाधानं नैव भवतीत्याहुः । अतीतकालत्वात्, यथा कालातीतेषु जातकर्मनामकर्मान्नप्राशनचौलादिसंस्काराः पूर्वोक्तदोषसद्भावे नैव भवन्ति । उक्तं च वसिष्ठेन—'अतीतकालान्यखिलानि यानि कार्याणि सौम्यायनगे दिनेशे । गुरौ भृगौ वाप्यथ दृश्यमाने तदुक्तपञ्चाङ्ग दिनेप्यखण्डे ॥' इति । सत्यपि नृणामतिक्रमे—'निमित्तानन्तरमेवानैमित्तिकम्, इति न्यायेन—'षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेत्, इति याज्ञवल्क्यवचसा षोडशादिनातिक्रमें ऋत्वन्तरमपेक्ष्य प्रागुक्तदिशा कालशुद्धिं विचार्य कार्यमेव । तदा बहुकालव्यापिनी कालशुद्धिरुपेक्ष्यैव । यतो विज्ञानेश्वरेण—'तस्मिन्युग्मासु संविशेत्, इति व्याख्यावसरे किमयं विधिर्नियमः परिसंख्या वेति त्रयः पक्षा उपन्यस्ताः । तत्र स्त्री गमने आगत एव प्रवृत्ते नियम एवायमिति सिद्धान्तितम् । अतो 'गच्छेदेव' इति यमस्मरणात् 'ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषेधवर्ज्यम्' इति गौतमस्मरणात् ।

ऋतुस्नातायां सङ्गमाकरणे—

ऋत्वगमने प्रत्यवायोऽपि स्मर्यते—'ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥' इति शातातपोक्तेः । अत एवैतद्दूषणभयादेवाधिकारिणा पित्रादिना कन्या गुणवते वरायावश्यं देयेत्याह याज्ञवल्क्यः—'पिता पितामहो भ्राता कुल्यो वा जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः । अप्रयच्छन्नवाप्नोति भ्रूणह-

त्यामृतावृतौ ।।' इति । विशेषोक्तिः कैमुतिकन्याय सूचनार्थम् । तत्र पित्रादेरदातुश्चेदयं दोषस्तदा भर्तुरयं दोषो भवत्येवेति किं वाच्यमित्यर्थः । भ्रूणो गर्भः ।

गर्भाधानानन्तरकर्तव्यम्—

गर्भाधानं विधाय पुंसा निद्रासमये किं कार्यमित्याह विष्णुः—

'निद्रासमयमासाद्य ताम्बूलं वदनात्यजेत् । पर्यङ्कात्प्रमदां मालां पुण्ड्रं पुष्पाणि मस्तकात् ।।' इति ।

गर्भधारणज्ञानविचारे समाधानमन्यत्र—

अथानया गर्भो धृतो नवेति प्रश्ने गर्भधारणयोगा जातके द्रष्टव्याः । प्रस्तुतेऽप्रसङ्गान्न लिख्यतेऽस्माभिः ।। ७ ।।

(इति गर्भाधानं समाप्तम्)

पीताम्बरा—गर्भाधान में लग्न शुद्धि—(१।४।७।१०।५।९) केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह हों, ३, ६, ११ में पाप ग्रह हों पुरुष ग्रह (सूर्य मंगल और बृहस्पति) लग्न को देखते हों ऐसे लग्नों के विषम राशि के नवांश में चन्द्रमा की जब स्थिति हो रजोदर्शन में समरात्रियों (६, ८, १०, १२, १४ और १६) में चित्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्विनी में कोई भी नक्षत्र हो तो गर्भाधान शुभतम होता है ।

ऋतुस्नाता स्त्री के साथ प्रसंग न करने से अनेक दोष उत्पन्न होते हैं । इसलिए रजोदर्शन के अनन्तर शुद्धि होने पर अवश्य स्त्रीप्रसंग होना चाहिए ।

धर्मपत्नी ने पुरुष बीज धारण किया कि नही ऐसी शंकाओं का समाधान जातक शास्त्रों से समझना चाहिए ।। ७ ।।

अथ प्रसिद्धे गर्भे सीमन्तोन्नयनाख्यसंस्कारमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जीवार्कारदिने मृगेज्यनिर्ऋतिश्रोत्रादितिब्रध्नभै-
रिक्तामार्करसाष्टवर्ज्यतिथिभिर्मासाधिपे पीवरे ।
सीमन्तोऽष्टमषष्ठमासि शुभदैः केन्द्रत्रिकोणे खलै-
र्लाभारित्रिषु वा ध्रुवान्त्यसदहे लग्ने च पुंभांशके ।। ८ ।।

पीयूषधारा—जीवार्केति । जीवो बृहस्पतिः, अर्कः सूर्यः, आरो मङ्गलः, एषां वारे । तथा ब्रध्नः सूर्यः । 'भास्कराहस्करब्रध्न' इत्यभिधानात् । तस्य भं हस्तः, अन्यत्स्पष्टं नामत एव । एवं मृगपुष्यमूलश्रवणपुनर्वसुहस्तनक्षत्रैः सीमन्तोन्नयनाख्यः संस्कारः कार्यः । सीमन्त उन्नीयते यस्मिन्कर्मणि तत्सीमन्तोन्नयनमिति शब्दव्युत्पत्तिः । सीमन्तः केशभागः । उक्तं च सीमन्ताध्याये कश्यपेन—'शुक्लपक्षादिदिवसं रिक्तां पर्वस्य मध्यमम् । तिथिं त्यक्त्वार्कभूसूनुसुरेज्यानां च वासरे ।। इति । रत्नमालायाम्—'श्रवणः सकरः पुनर्वसुर्निर्ऋतिभं च सपुष्यको मृगः । रविभूसुतजीववासराः कथिताः पुंसवनादिकर्मसु' । आदिशब्देन सीमन्तोन्नयनादिः । व्यासः—'पुरुषग्रहवाराः स्युः शुभा सीमन्तकर्मणि । मध्यौ स्त्रीग्रहवारौ तु वर्जयेत्तु नपुंसकौ' इति । यत्र तिथयो निषिद्धा उच्यन्ते । रिक्तेति । रिक्ताः प्रसिद्धाः, अमा अमावास्या, अर्कः द्वादशी, रसाः षष्ठी, अष्टमी एताभिस्तिथिभिर्वर्ज्या न्यूना अवशिष्टा यास्तिथयस्ताभिरुपलक्षिते दिने । यदाह गुरुः—

'पक्षच्छिद्रां च रिक्तां च विना पञ्चदशीं शुभाः । चतुर्दशी चतुर्थी च कदाचित्तु शुभप्रदे ॥ शुभसंस्थे निशानाथे चतुर्थी च चतुर्दशीम् । पौर्णमासीं प्रशंसन्ति केचित्सीमन्तकर्मणि ॥' इति । किं च मासाधिपे मासेश इत्यग्रिमश्लोकेन ज्ञाते गर्भमासस्वामिनि पीवरे पुष्टे उदिते सतीत्यर्थः । यदाह नारदः––'चतुर्थे मासि षष्ठे वाप्यष्टमे वा तदीश्वरे । बलोपपन्ने दम्पत्योश्चन्द्रताराबलान्विते ॥' कश्यपोऽपि––'मासेश्वरे बलोपेते नास्तगे न पराजिते' इति । यदि मासाधिपो निर्बलस्तदा दोष इत्याह गर्गः–'यस्य मासाधिपो रिक्ता नीचो वास्तङ्गतोऽपि वा । तस्मिन्मासे क्षयं याति प्रसवो वा भविष्यति' ।

तत्र षष्ठाष्टमादिमासाः—

स च सीमन्तो गर्भधारणसमयादष्टमषष्ठमासि अष्टममासि षष्ठमासि वा कार्यः । अयं चेच्छयो विकल्पः 'षष्ठेऽष्टमे वा मासि' इति याज्ञवल्क्योक्तेः । नारदीये चतुर्थोऽपि मासोऽभ्यधायि तद्वाक्यं प्रदर्शितं शौनकेनापि––चतुर्थे गर्भमासे स्यात्सीमन्तोन्नयनक्रिया । षष्ठेऽष्टमे वा कुर्वीत सूत्रान्तरविधानतः ॥' सूत्रान्तरं स्वस्वगृह्यसूत्रम् । एवं स्वेच्छयोक्तमासे एव विधेयम् ।

शुक्लपक्षे पूर्वाह्ने सीमन्तः—

तच्च शुद्धपक्षे पूर्वाह्ने एव नापराह्ने । यदाह नारदः––'शुक्ले पक्षे च पूर्वाह्ने सीमन्ताख्यो विधिः स्मृतः' इति । बृहस्पतिरपि––'पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना । पूर्वाह्ने एव तत्रापि नापराह्ने कथञ्चन ॥' इति ।

तत्र लग्नम्—

लग्नमुच्यते––केन्द्रेति केन्द्रत्रिकोणस्थानेषु १ । ४ । ७ । १० । ९ । ५ । शुभदैः सौम्यग्रहैस्तथा लाभारित्रिषु ११ । ६ । ३ । खलैः पापग्रहैरुपलक्षिते लग्ने तत्रापि च पुनः पुम्भांशके पुरुषराशिलग्ने पुरुषनवांशके च कार्यः । यदाह वसिष्ठः—केन्द्रत्रिकोणोपगतैश्च सौम्यैर्दुश्चिक्य लाभारि गतैश्च पापैः । षडष्टलग्नान्त्यवर्जितेन्दौ सीमन्तकार्यं शुभदं तथैव ॥' इति । रत्नमालायाम्—षष्ठे मास्यथवाष्टमे तदधिपे वीर्योपपन्ने विधौ चेष्टैर्दृष्टतनौ नृनामभवने पुंल्लग्नभागेषु च । धीधर्माख्यचतुष्टयेऽपि च गुरौ पापैश्च तद्वाह्यगैर्मृत्युद्वादशवर्जितैश्च मुनिभिः सीमन्तकर्म स्मृतम्' । अत्र विशेषमाह कश्यपः—

'चन्द्रोऽपि शुभदो ज्ञेयस्त्यक्त्वा षष्ठाष्टमव्ययान्' सीमन्तलग्नादेकोऽपि क्रूरः पञ्चाष्टरिःफगः ॥

हन्ति सीमन्तिनीं सोऽपि तद्गर्भं वा न संशयः ॥'

अत्रापि जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यामष्टमलग्नभवनमिष्टलग्नादष्टमलग्नं च शुद्धं ग्राह्यम् । यदाह सीमान्ताध्याये कश्यपः—

न नैधने तयोर्लग्ने नैधने शुद्धिसंयुते । पञ्चभिश्च चतुर्भिर्वा सूर्येन्दुगुरुपूर्वकैः ॥

ग्रहैरिष्टैः शुभे लग्ने राशावपि च नैधने ।' सीमन्तोन्नयनमित्यनुषंगः । तयोः स्त्रीपुंसयोः ।

तत्रापवादः क्वचित्—

अस्यापवादः प्रयोगपारिजाते नृसिंहोक्तः—'लग्नादष्टमराशीशः केन्द्रगः शुभवीक्षितः । यद्यप्यष्टमभस्योक्तं दोषमाशु व्यपोहति ।' अपिशब्दो भिन्नक्रमोऽष्टमभस्येत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः । स च कैमुतिकन्यायेनान्यदोषनिवारणार्थोऽपि सम्पन्नः । क्वचित्सत्यपि ग्रहबले सिंहवृश्चिकलग्ने

निन्दितं अभिहिते इत्ययमप्यत्र विशेषो ध्येयः। यदाह गुरुः—'मूलर्क्षे केचिदिच्छन्ति सीमन्तं शुभदं बुधाः। सिंहालि वर्जयेल्लग्नं ग्रहैरष्टमवर्जितम्॥' ग्रहैः क्रूरग्रहैः। क्वचिद्राशित्रयं निषिद्धम्। यदाह गर्गः—'सीमन्तोन्नयनं कार्यं शुभांशे शुभलग्नगे। कुलीरमृगकन्याश्च वर्ज्याः शेषाश्च शोभनाः॥' इति।

नक्षत्राणि वाराश्च मतान्तरेण सीमन्ते—

मतान्तरेण नक्षत्राणि वारांश्चाह—ध्रुवेति। ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयम्, अन्त्यं रेवती तदा सदहे सतां शुभग्रहाणां चन्द्रबुधगुरुशुक्राणामह्नि वासरे ध्रुवान्त्यनक्षत्रेषु प्रागुक्तनक्षत्रेषु वा कार्यम्। एवं शुभग्रहवारे वा कार्यमित्यर्थः। यदाह गुरुः—'रोहिण्यैन्दवमादित्यं पुष्यहस्तोत्तरात्रयम्। पौष्णं वैष्णवभं चैवं सीमन्तादिषु संमतम्॥' इति। श्रीधरः—'सौम्यानां वारवर्गाः स्युः सीमन्तादिषु शोभनाः' इति। अत्र जन्मनक्षत्रं यदि विहितमपि सम्भवेत्तदा तदपि वर्ज्यमित्याह वसिष्ठः—'बालान्नभुक्तौ व्रतबन्धने च राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम्। शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहसीमन्तयात्रादिषु मङ्गलेषु॥'

सीमन्ते शुक्रास्तमलमासादिदोषो नास्त्यस्ति च—

एवं निर्णीते सीमन्तोन्नयनमुहूर्ते शुक्रास्तादिदोषविचारो नास्ति, नियतमासविहितत्वात्। तदाह गुरुः—'मासप्रयुक्तकार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः। न दोषकृन्मलो मासो गुर्वादित्यादिकं तथा॥' इति। अयमत्र तात्पर्यार्थः। यत्र नियतकाल एव कालो विहितो यथा तृतीये मासि पुंसवनं तत्र शुक्रास्तादिदोषाभाव एव। यत्र तु सीमन्तादौ चतुर्थषष्ठाष्टममासरूपं कालत्रय विधानं तत्र शुक्रास्तादिदोषरहितः कालो ग्राह्यः सम्भवात्। स क्वचित्तु कुलाचारवशात्सीमन्तादौ नियत एव कालो विवक्षितो भवेत्तदा न दोषः। कुलाचारवशादेव तदतिरिक्तो नियत एव कालः स्यात्तदापि न दोषः। यत्र बहुकालविधानेऽपि बहुदिनव्यापकत्वसिंहस्थगुर्वादिदोषसद्भावस्तत्रानन्यगतिकत्वान्नैष दोषः। एवं नामकर्मान्नप्राशनादिष्वपि द्रष्टव्यम्। उक्तं च—सीमन्तजातकादीनि प्राशनान्तानि यानि वै। न दोषो मलमासस्य मौढ्यस्य गुरुशुक्रयोः' इति मौढ्यस्येत्यादि दोषोपलक्षणम्। एवं च कालप्रतीक्षायोग्येषु चूडाकरणादिषु मलमासादिदोषो विचारणीय एवेति।

सीमन्तस्य गर्भसंस्कारकत्वक्षेत्रसंस्कारकत्वयोर्व्यवस्था—

अथैते गर्भाधानादयः संस्काराः किं गर्भसंस्कारकत्वात्प्रतिगर्भमावर्तते, उत सकृदेव कार्या इति तत्रेदृशं भृगुवाक्यं—'प्राप्ते तृतीयमासे स्फुरदिन्दुकलापक्षे च। पुंसवनं पुत्रेप्सुर्गर्भे गर्भे प्रकुर्वीत, इति पुंसवनमुपलक्षणं सर्वगर्भसंस्काराणाम्। गर्भे गर्भे इति वीप्साग्रहणात्प्रतिगर्भमावृत्तिरिति। केचिदाहुः। अपरे च सकृदेव कार्या इत्याहुः। यदाह हारीतः—सकृच्च कृतसंस्काराः सीमन्तेन द्विजस्त्रियः। यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत्' इति। एतेन क्षेत्रसंस्कारकत्वमुक्तं भवति। यथा भूरेकवारं दाहाद्यनेकसंस्कारवती सर्वकाले कर्षणयोग्या भवति तद्वदत्रापीत्यर्थः। केचित्तु कोंकणदेशादौ प्रतिवर्षं दाहादिसंस्कारं विधाय कर्षणं क्रियते इत्येव पक्षद्वयसम्भवे देशाचारतो व्यवस्था ध्येया। ननु तृतीयमासविहितत्वादादौ पुंसवनमुहूर्तो विचारणीयः। ततश्चतुर्थषष्ठाष्टममासविहितः सीमन्तमुहूर्तो विचार्यः वैपरीत्योक्तौ किं बीजमिति। उच्यते—सीमन्ते विहितस्य तिथिनक्षत्रवारलग्नादिसमुदायस्य पुंसवनेऽप्युपयोगात्सर्व-

देशप्रसिद्धसीमन्तानुष्ठानाचारदर्शनाच्चादौ सीमन्तस्योक्तिः । पुंसवनं स्वतन्त्रकर्त्तव्यत्वेनोक्तमपि शिष्टाः सीमन्तेन सहैव कुर्वन्ति । यदाह जातुकर्ण्यः—'सीमन्तेन सहाथवा' इति । नृसिंहोऽपि—'सीमन्तोन्नयनस्योक्ततिथिवासरराशिषु । पुंसव कारयेद्विद्वान्सहैवैकदिनेऽथवा' इति । अत एवानवलोभनाख्यं कर्मास्मिन्नेव दिने क्रियत इति शिष्टाचारोप्यत्रार्थे प्रमाणम् ॥ ८ ॥ इति सीमन्तविचारः ।

पीताम्बरा—गर्भ में पुरुष बीज से सन्तान वृक्ष का आरोपण हो जाने के अनन्तर सीमन्त नामक संस्कार का मुहूर्त—बृहस्पति सूर्य और मङ्गलवार, मृगशिरा पुष्य मूल श्रवण पुनर्वसु हस्त नक्षत्रों, अमावास्या द्वादशी षष्ठी और अष्टमी रहित शुभ तिथियों, मास के अधिपति की बलशालीनता, गर्भाधान से छठे या आठवें मास में शुभग्रहों की केन्द्र त्रिकोण स्थितियों और पापग्रहों की ३, ६, ११ की स्थितियों और पुरुष ग्रह के लग्न तथा नवांश में सीमन्त संस्कार उत्तम होता है ।

ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों और रेवती तथा शुभ ग्रहों के वारों में भी सीमन्त संस्कार शुभ कहा गया है ।

कहीं-कहीं पर कर्क मकर और कन्या लग्नों में सीमन्त कर्म का निषेध भी कहा गया है ।

मतान्तर से चन्द्र, बुध, गुरु, और शुक्रवारों में सीमन्त कर्म कहा गया है ।

सीमन्त कर्म जन्म नक्षत्र में विहित होते हुए भी सति सम्भवे वर्जित करना चाहिए ।

सीमन्त कर्म में शुक्रास्तमलमासादि दोष नहीं लिए जाते । नियत समय होने से ।

कुछ आचार्य सीमन्त संस्कार को प्रत्येक गर्भ में आवश्यक बताते हैं तो कुछ आचार्य प्रथम गर्भ में ही । जैसे पृथ्वी में एक ही वार दाहादि अनेक संस्कारों के करने से वह सभी समयों में कर्षण (खेती) योग्य हो जाती है तद्वत् प्रथम गर्भ का सीमन्त संस्कार भी सभी गर्भों का उपयोगी हो जाता है । कौंकण आदि देशों में प्रतिवर्ष भूमि को दाहादि संस्कार से जैसे खेती के उपयुक्त बना लेते हैं अतः सीमन्त संस्कार भी प्रत्येक गर्भ में किया जा सकता है । पीयूष ने ऐसा उदाहरण दिया हैं ।

यहाँ पर—पुंसवन संस्कार का विधान तीसरे महीने में है और तदुपरि ४-६-८ महीनों में सीमन्त संस्कार करने की व्यवस्था कही जाती हुई भी पुंसवन संस्कार के मुहूर्त्त के आदेश के अनन्तर ही सीमन्त संस्कार का मुहूर्त आचार्य ने बताना चाहिए था, किन्तु ग्रन्थ में उक्त दोनों मुहूर्तों के ज्ञान में क्रम व्यत्यय क्यों ? सीमन्त में विहित मुहूर्त सदृश पुंसवन में भी तिथिनक्षत्रादिक समान है तथा पुंसवन की अपेक्षा सीमन्त संस्कार लोक में अधिक प्रसिद्ध भी है अतः पूर्वापर क्रम व्यत्यय दोष नहीं आता ॥ ८ ॥

अथ प्रसङ्गेन मासेश्वरान् स्त्रीणां चन्द्रबलं च वसन्ततिलकयाह—

मासेश्वराः सितकुजेज्यरवीन्दुसौरिचन्द्रात्मजास्तनुपचन्द्रदिवाकराः स्युः ।
स्त्रीणां विधोर्बलमुशन्ति विवाहगर्भसंस्कारयोरितरकर्मसु भर्त्तुरेव ॥ ९ ॥

पीयूषधारा—मासेश्वरा इति । गर्भप्रथममासादारभ्य दशमप्रसूतिमासपर्यन्तं सितादयो मासेश्वरा ज्ञेयाः । यथा प्रथममासेश्वरः शुक्रः, द्वितीये मङ्गलः, तृतीये गुरुः, चतुर्थे रविः, पञ्चमे चन्द्रः, षष्ठे शनिः, सप्तमे बुधः, अष्टमे आधानलग्नाधिपतिः, नवमे चन्द्रः दशमे सूर्यः ।

गर्भावस्था—

अत्र प्रथममासादारभ्य दशममासं यावत् गर्भस्य कललादिरूपावस्था भवतीत्यपि विशेषो ध्येयः। तदाह वराहः—'कललघनाङ्कुरास्थिचर्माङ्गजचेतनाद्याः। क्रमशो गदिता भवन्ति शुभाशुभं च मासाधिपतेः सदृशम्' इति। शुक्रशोणितसन्निपातः कललम्। अङ्गजानि लोमानि। वसिष्ठोऽपि—'सितावनेयामरपूज्यसूर्यचन्द्रार्किसौम्योदयपेन्दुसूर्याः। मासाधिपाः स्युः क्रमशो दशैते निपीडितो नाशयति स्वमासि।'

चन्द्रबलं कर्मभेदेन स्त्रिया एव पुंस एव वा—

स्त्रीणामिति। गोचरप्रकरणे यद्यप्युभयोः स्त्रीपुंसयोः सामान्यतो ग्रहबलमुक्तम्, तथाप्यत्र स्त्रीणांमपि चन्द्रबले विशेषोऽभिधीयते। विवाहे गर्भसंस्कारे गर्भाधानपुंसवनसीमन्तादिरूपं स्त्रीणामपि बलं ग्राह्यम्। इतरकर्मसु वस्त्रपरीधानालङ्कारधारणादिषु कृत्येषु भर्तुर्धवस्यैव चंद्रबलं ग्राह्यं न तु स्त्रीणाम्। यदा तु भर्ता मृतस्तदा स्त्रीणामेव चन्द्रबलं ग्राह्यमित्यर्थसिद्धम्। उक्तं च 'पाणिपीडनविधेरनन्तरं भर्तुरेव बलमैन्दवादिकम्। चिन्तनीयमिह योषितां क्वचिन्नष्टमङ्गलमृते मनीषिभिः॥ इति। राजमार्त्तण्डः—'विवाहकार्यं गर्भप्रतिष्ठा कुसुमप्रतिष्ठा वनिताविशुद्धौ। अन्यानि कार्याणि धवस्य शुद्धौ पत्यौ विहीने प्रमदात्मशुद्ध्या॥' कुसुमप्रतिष्ठा गर्भाधानम्, गर्भप्रतिष्ठा सीमन्तादिः॥ ९॥

पीताम्बरा—गर्भस्थ बालक के प्रत्येक मास के अधिपति ग्रह-तथा स्त्रियों के लिए चन्द्र-बल विचार—गर्भाधान के प्रथम मास से दशम प्रसव मास तक क्रमशः (१) शुक्र (२) भौम (३) बृहस्पति, (४) सूर्य, (५) चन्द्रमा, (६) शनि, (७) बुध, (८) लग्नेश, (९) चन्द्रमा और (१०) दसम मास का स्वामी सूर्य होता है।

विवाह गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्त संस्कारों में दोनों पतिपत्नियों का चन्द्रबल विचार में असुविधा हो तो विशेषतः स्त्री का ही चन्द्रबल ग्रहण करना चाहिए।

अन्य कर्मों में वस्त्रपरिधान अलंकार (आभूषण) धारण में पति का ही चन्द्रबल विचारणीय होता है॥ ९॥

अथ येषामाचारः पृथगेव पुंसवनं विधेयमिति तदर्थम् पुंसवनमुहूर्त्तम् विष्णुपूजामुहूर्तं चेन्द्रवज्रयाह—

पूर्वोदितैः पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा।
मासेऽष्टमे विष्णुविधातृजीवैर्लग्ने शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे॥ १०॥

पीयूषधारा—पूर्वोदितैरिति। पूर्वं सीमन्तोन्नयने उदितैः प्रोक्तैस्तिथिवारनक्षत्रलग्नैरुपलक्षिते तृतीये मासि पुंसवनं विधेयमिति तदर्थं पुंसवनाख्यं कर्म विधेयम्। पुमान् सूयतेऽनेन कर्मणेति व्युत्पत्त्या पुंसवनकर्मणा पुंस्त्वहेतुना। यदाह शौनकः—'व्यक्ते गर्भे तृतीये तु मासे पुंसववं भवेत्। गर्भे व्यक्ते तृतीये चेच्चतुर्थे मासि वा भवेत्॥' नृसिंहः—'सीमन्तोन्नयनस्योक्त-तिथिवासरराशिषु। 'पुंसवं कारयेद्विद्वान्सहैवैकदिनेऽथवा॥' इति। विशेषमाह वसिष्ठः—'कुर्यात्पुंसवनं प्रसिद्धविषये गर्भे तृतीयेऽथवा मासि स्फीततनौ तुषारकिरणे पुष्येथवा वैष्णवे। हित्वा कर्कटकं नृयुग्ममबलामन्येष्वरिक्तातिथौ शुद्धे नैधनधाम्नि शुक्रशशभृद्विन्मत्रिणां वासरे॥' नैधनधाम्नि अष्टमस्थाने सर्वग्रहरहिते। यदाह वसिष्ठः—'अष्टमस्था ग्रहाः सर्वे नेष्टाः स्युस्ते शुभावहाः। एवं

सम्यक्परीक्ष्यैव कुर्यात्पुंसवनक्रियाम् ॥' इति वारास्त्वत्र सौम्यग्रहाणामुक्ताः बृहस्पतिरप्यत्र विशेषमाह—'गुरुशुक्रबुधेन्दूनां द्रेष्काणदिवसांशकाः। तेषामुदयहोराश्च पुंसवेऽतिशुभावहाः ॥' इति। अन्यैस्तु श्रीपत्यादिभिः पुंवारा एव प्रशस्ता अभिहिताः, तत्फलान्याह गर्गः—'सौम्ये मृतप्रजा मन्दे मृत्युर्वन्ध्या च भार्गवे। सोमे दुग्धविहीना स्याच्छेषाः सर्वार्थसिद्धिदाः ॥' इति। अत्र वचनद्वयप्रामाण्याद्विकल्पः। केचित्तु यदा तृतीये मासि पुंसवनं चिकीर्षितं तदा सौम्यवारा एव ग्राह्याः यदा चतुर्थे मासि गर्भस्य व्यक्तत्वात्पुंसवनं चिकीर्षितं तदा पुंवारा एव ग्राह्या इत्याहुः।

तत्र नक्षत्राणि—

नक्षत्राणि ह्यत्र पुन्नामानि ग्राह्याणि। तानि श्रवणः सकर इति श्रीपतिनोक्तानि। वसिष्ठेन तु पुन्नामान्यभिहितानि यथा—'पुन्नाम श्रवणं तिष्यः स्वाती हस्तः पुनर्वसुः। मूलं प्रोष्ठपदं चानुराधा मृगशिरोऽश्विनी ॥' विशेषमाह ऋक्षोच्चयः—

'हस्तार्द्रातिष्यमूलानि सौम्यो विष्णुः पुनर्वसुः। प्रोष्ठपदाद्वयं प्रोक्तमाषाढद्वयमेव च ॥
श्रेष्ठानि कथितान्येव धिष्ण्यान्येकादशैव तु। स्वातौ तथा मघायां च रेवत्यां फाल्गुनीद्वये ॥
अश्विन्यां चैव नक्षत्रे यदा पुंसवनं भवेत्। नरः सम्पद्यते दैवाद्यदा स्याद् गुरुतल्पगः ॥
लुब्धो ह्रस्वतनुः क्रूरो नारी चेत्कुलटा भवेत्। शेषाणि दश धिष्ण्यानि निन्दितानि विशेषतः ॥'

तदेतयोर्विरुद्धार्थयोर्वाक्ययोर्देशाचारतो व्यवस्था। तत्र वसिष्ठवाक्येन दाक्षिणात्या व्यवहरन्ति। प्राच्यास्तु ऋक्षोच्चयवाक्येन।

तत्र लग्नशुद्धिः—

लग्नशुद्धिमाह ऋक्षोच्चयः—

'मीनवृश्चिककुम्भेषु चापगो सिंहकन्यकाः। उक्ताः पुंसवनाद्येषु सुखपुत्रादिवाञ्छया ॥
केन्द्रत्रिकोणभवनेषु शुभस्थितेषु पापेषु षट्त्रिदशलाभगृहस्थितेषु।
जीवेन्दुभानुभृगुभूमिजमन्दिरेषु लग्नेषु लग्नपरिशुद्धशुभांशकेषु ॥'

अत्रापि स्त्रीपुंसयोश्चन्द्रबलमावश्यकमित्याह नृसिंहः—

अपि पुंसवनं कार्यं दम्पत्योरनुकूलभे। जन्मादि वर्जयेद्राशिं चांशकं विपदादिषु ॥'

विष्णुबलिमुहूर्तस्तत्र—

अथ गर्भरक्षार्थं विष्णुपूजामुहूर्त्तमुच्यते—अथेति। सीमन्तानन्तरमष्टमे मासि विष्णु-विधातृजीवैः श्रवणरोहिणीपुष्यैरुपलक्षिते दिवसे तथा लग्ने शुभे शुभस्वामिके शुभयुक्ते वा सति तथा मृत्युगृहेऽष्टमस्थाने शुभे सर्वग्रहरहिते च सति विष्णुपूजा कार्या। यदाह प्रयोगपारिजाते वसिष्ठः—

'मास्यष्टमे च गर्भस्य कुर्याद्विष्णुबलिक्रियाम्। श्रवणे चैव रोहिण्यां पुष्ये चैव प्रशस्यते ॥
द्वितीया सप्तमी चैव द्वादशी च शुभा तिथिः। शुभग्रहोदयाः शस्तास्तेषां च दिवसा अपि ॥
पापास्त्र्यायारिगाः श्रेष्ठा नेष्टाः सर्वेऽष्टमे स्थिताः। इति।

अष्टमग्रहदोषापवादः—

अष्टमग्रहदोषापवादमाह गुरुः—'रन्ध्रेशः स्वांशगः स्वोच्चे स्वक्षेत्रोपचयर्क्षगः। अष्टम-

स्थस्य दोषोऽयं विनश्यति न संशयः' इति । नारदोऽपि—'लग्नाष्टमेशयोर्मैत्रे लग्नेशे बलसंयुते । अस्तगे निधनेशे च निधनेऽपि शुभग्रहे' इति । वसिष्ठसंहितायां तु संक्षिप्योक्तम्—'रोहिण्यां वा वैष्णवे पूर्वपक्षे द्वादश्यां वा सप्तमे वा तिथौ वा । मध्ये चाह्नः पूर्वभागेऽनुकूले विष्णोः पूजां कारयेद्गर्भपुष्ट्यै ।

विष्णुपूजाप्रकारस्तत्र—

तत्र पूजाप्रकारस्तेनैवोक्तः—

'पीताम्बरं कृष्णवर्णं शंखचक्रगदाम्बुजम् । वैकुण्ठवासिनं विष्णुं मृत्कुम्भे स्थापयेत्ततः ।

विष्णोः स्वरूपं कनकेन कृत्वा तल्लिङ्गमन्त्रैरथ गन्धधूपैः ।
वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलुधूपदीपैर्नैवेद्यताम्बूलफलैश्च सम्यक् ॥

कृत्वा च देवतापूजां गर्भाणां रक्षणाय च । ब्राह्मणाय प्रदातव्या प्रतिमा वस्त्रसंयुता ॥ १० ॥

(इति गर्भरक्षार्थं विष्णुबलिः)

पीताम्बरा—पुंसवन और विष्णुपूजा मुहूर्त—गर्भाधान से तीसरे महीने में सीमन्त संस्कार में कहे गये तिथि–वार नक्षत्र और लग्नों में पुंसवन संस्कार करना चाहिए । कुछ आचार्यों के मत से चतुर्थ मास में पुरुष ग्रहों के वारों में पुंसवन कर्म शुभ, तथा तीसरे मास में किये जाने वाले पुंसवन संस्कार में शुभ ग्रहों के ही वार शुभ कहे गए हैं ।

गर्भ रक्षा के लिए—आठवें महीने के श्रवण, रोहिणी और पुष्य नक्षत्रों में शुभ ग्रह की राशि या शुभग्रह से युक्त अष्टम शुद्ध लग्न में विष्णु पूजा करनी चाहिए ।। १० ।।

अथ जातकर्मनामकरणयोर्मुहूर्त्तमुपजात्याह—

तज्जातकर्मादि शिशोर्विधेयं पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेऽह्नि ।
एकादशे द्वादशकेऽपि घस्रे मृदुध्रुवक्षिप्रचरोडुषु स्यात् ॥ ११ ॥

पीयूषधारा—तज्जातकर्मेति । नन्विदमयुक्तं यज्जातकर्म्म शुभदिने कार्यमिति कुतः । जातस्योत्पन्नस्य कर्म वैदिकः संस्कारविशेषः यः स जातकर्मशब्देनोच्यते । तच्च शब्दप्रवृत्योत्पन्नलक्षण एव विधेयम् । यदाह वसिष्ठः—'यस्मिन्मुहूर्ते जनितः कुमारस्तस्मिन्विधेयं खलु जातकर्म । सन्तर्प्य देवान्सपितॄन्द्विजांश्च सुवर्णगोभूतिलकांस्यवस्त्रैः' इति । विष्णुरपि—'जातकर्म ततः कुर्यात्पुत्रे जाते यथोदितम्' इति । यथोदितं स्वस्वगृह्यानुसारेणेत्यर्थः । तच्च श्रवणानन्तरं सचैलं स्नानं विधाय कार्यम् । उक्तं च ज्योतिःसागरे वसिष्ठेन—'श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचलं स्नानमाचरेत् । उत्तराभिमुखो भूत्वा नद्यां वा देवखातके' इति । तदपि नालच्छेदनात्प्रागेव कार्यम् । उक्तं च मनुना—'प्राङ्नाभिवर्द्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते' इति । वर्द्धनं छेदनम् । 'वृधु छेदने' इति धात्वर्थानुसारात् । अत्र हेतुमाह जैमिनिः—'यावन्नोच्छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते' इति । तस्माज्जातकर्ममुहूर्तोऽनुपपन्न इति, उच्यते । सङ्क्रान्त्यादिदुष्टकालेषु शुभकर्माचरणं नास्ति । यदाह गर्गः—'व्यतीपाते च सङ्क्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि । श्राद्धं विना शुभं कर्म प्राप्तकालेऽपि नाचरेत्' । अन्यच्च—'अमासङ्क्रान्तिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत् ।' किं च मूलज्येष्ठगण्डान्तादिषु जन्मसम्भवे

शान्तिविधानात्। अथवा पिता देशान्तरगतो राजगृहादौ निरुद्धो वा जातकर्मादि कर्तुमशक्नुवन्पश्चात्प्रतिबन्धापवादेन गृहमागतोऽपि सन्नेव करोति। तदैव जन्माभावात्सूतकप्रवृत्तेश्च। तदाह बैजवापः—'जन्मतोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि। दैवादतीतः कालश्चेदतीते सूतके भवेत्॥' इति। अत एव कालविकल्पोऽभिहितो नारदसंहितायाम्—'तस्मिन् जन्ममुहूर्त्ते तु सूतकान्ते तथा शिशोः। जातकर्म च कर्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम्॥' इति। इदं च तुल्यन्यायान्नामकर्मण्यपि ध्येयम्। तस्मादतिक्रान्तकालेऽपि अवश्यं जातकर्मादिमुहूर्त्तो विचार्य इत्यलमतिप्रसङ्गेन।

तज्जातकर्मादीति। पर्वाण्युक्तानि मया। रिक्ताः चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः, ताभिरूने वर्जिते तिथौ। जात्यभिप्रायेणैकवचनम्। शुभेऽह्नि व्यतीपातादिदोषरहिते दिवसे शुभग्रहवासरे च तथैकादशे द्वादशे वा घस्रे दिने तथा मृदुध्रुवक्षिप्रचरभानि प्रसिद्धानि तेषु च शिशोर्बालकस्य तज्जन्मसमयातिक्रान्तं जातकर्मादि। आदिशब्देन नामकर्माप्युच्यते। तद्विधेयं कर्तव्यं स्यात्। उक्तं च वसिष्ठेन—मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु सूनोर्विधेयं खलु जातकर्म। गुरौ भृगौ वापि चतुष्टयस्थे सन्तः प्रशंसन्ति च नामधेयम्॥' चतुष्टयं केन्द्रम्।

अथ जातकर्मफलम्—

जातकर्मप्रयोजनमाह भृगुः—जातकर्मक्रियां कुर्यात्पुत्रायुःश्रीविवृद्धये। ग्रहदोषविनाशाय सूतिकाऽशुभविच्छिदे॥ कुमारग्रहनाशाय पुंसां सत्त्वविवृद्धये।' इति।

नामकर्मणि कालविशेषः—

अथ नामकर्मणि विशेषविचारः। नारदः—'सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम्' इति। तत्र नक्षत्रादिनियमाभावः, नियतकालविहितत्वात्। तदुक्तं सारसंग्रहे—'एकादशेऽह्नि विप्राणां क्षत्रियाणां त्रयोदशे। वैश्यानां षोडशे नाम मासान्ते शूद्रजन्मनाम्॥' इति। मनुस्तु—'नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां चास्य कारयेत्। पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते॥' दशम्यामतीतायामेकादशे दिवसे इत्यर्थः। एतच्च ब्राह्मणविषयम्। पूर्वोदीरितवाक्यस्वरसात्। अत्र नामकर्मणोऽपि विहितकालातिक्रमे शुक्रास्तादिदोषरहिते शुभकाले तत्कार्यम्। यदाह कश्यपः—

उक्तकाले प्रकर्त्तव्या द्विजानामखिलाः क्रियाः। अतीतेषु च कालेषु कर्त्तव्याश्चोत्तरायणे॥
सुरेज्येऽस्यसुरेज्ये वा नास्तगे न च वार्द्धके। शुभलग्ने शुभांशे च शुभेऽह्नि शुभवासरे॥
चन्द्रताराबलोपेते नैधनोदयवर्जिते। पूर्वाह्णे क्षिप्रनक्षत्रचरस्थिरमृदूडुषु॥
नाममङ्गलघोषैश्च रहस्यं दक्षिणश्रुतौ।' इति।

बृहस्पतिः—

'पूर्वाह्णः श्रेष्ठ इत्युक्तो मध्याह्नो मध्यमः स्मृतः। अपराह्णं च रात्रिं च वर्ज्जयेन्नामकर्मणि॥'

तथा जगन्मोहने गुरुः—

पक्षच्छिद्रां च नवमीं हित्वा पञ्चदशीं तथा। शेषाः स्युस्तिथयः सर्वा नामकर्मणि पूजिताः॥
भास्करार्कजभौमानां वर्जयेदंशकोदयौ। धनकर्मसुतभ्रातृनवमस्थः शुभः शशी॥

शुद्धव्ययेऽष्टमे लग्ने पापाश्च व्यरिलाभगाः । शुभेषु शेषसंस्थेषु नामकर्म शुभावहम् ।। इति ।

नामकरणप्रयोजनम्—

प्रयोजनं च स्मर्यते—'नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः ।
नाम्नैव कीर्त्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म ।।' इति ।

चूचेचोला अश्विनित्यादि शतपद चक्रं तदक्षरादिकमेव नाम कार्यम्—

तच्च नाम जन्मनक्षत्रचरणलक्षितस्वरोदयाभिहितशतपदचक्रान्तर्गताक्षरादिकमेव कार्यम्। उक्तं च गृह्यपरिशिष्टे—'तदक्षरादिकं नाम यस्मिन्धिष्ण्ये तदक्षरम् ।।' शतपदचक्रसारोद्धारो ज्यौतिषार्केऽभिहितो तथा—

'चूचेचोला पदेष्वाद्ये लोलूलेलो यमस्य भे । आईऊएइमेऽग्नेर्भेओवावीवू तथार्कभे ।।
वेवोकाकी मृगे स्याताःकुघङच्छास्तु रौद्रभे । केकोहाही त्वदितिभे हूहेहोडा च पुष्यभे ।।
डीडूडेडो इमे सार्पे मामीमूमे मघाभिधे । मोटाटीटू तथा भाग्ये टेटोपाप्यर्यमर्क्षभे ।।
पूषणाठा तथा हस्ते पेपोरारीति चित्रभे । रूरेरोता तथा स्वातौ तीतूतेतो द्विदैवते ।।
नानीनूने क्रमान्मैत्रे नोयायीयू इतीन्द्रभे । येयोभाभीति मूलाख्ये भूधाफाडा जलस्य भे ।।
भेभोजाजीति विश्वर्क्षे जूजेजोखाभिजिद्भवेत् । खीखूखेखो श्रुतौ ज्ञेया गागीगूगे च वासवे ।।
गोसासीसू जलेशर्क्षे सेसोदादीत्यजाङ्घ्रिभे । दूथझञा तथोपान्त्ये देदोचाचीति पौष्णभे ।।
इति प्रोक्ता इमे पद्ये वर्णानामादिजाः फुटाः । ज्ञेया मेषादिराशीनां नवभिर्नवभिः पदैः ।।'

एतैरादिमाक्षरैश्चूडामणिरित्यादिनामानि स्थाप्यानि, तदुक्तं शङ्खेन—'कुलदेवतानक्षत्रादिमाससंबद्धं नाम पिता वा कुर्यादन्योऽपि वा कुलवृद्धः' इति ।

चतुर्विधनामसु जन्मनाम गोप्यम्—

अत्र केचित् 'जन्मनाम तु गोपयेत्' इति स्मरणाज्जन्मनक्षत्रसम्बन्धिनाम गुप्तं संस्थाप्य व्यवहारार्थमन्यनाम कुर्यात् इत्याहुः ।

कर्तव्यनामस्वरूपम्—

तच्च नाम कीदृशं कार्यमित्याह वसिष्ठः—'तद्द्व्यक्षरं वा चतुरक्षरं वा यथेप्सितं चान्तलकारयुक्तम् । विवर्ज्य नामादिकमेव कार्यं स्फुटं वदेद्दक्षिणकर्णरन्ध्रे ।।' इति । याज्ञिका अपि पठन्ति—'घोषवदाद्यन्तरंतःस्थं त्रिपुरुषानुकूलमनरिप्रतिष्ठितं तद्धि प्रतिष्ठिततमं भवति द्व्यक्षरं वा नाम कृतं कुर्यान्न तद्धितम्' इति । कृतं कृदन्तं तद्धितान्तम् । घोषवदादीनां कृदन्ततद्धितानां च ज्ञानं व्याकरणशास्त्राज्ज्ञेयम् । विश्वप्रकाशपद्धतौ तु विशेषः—'कुमार्या अप्ययुजाक्षरेण नाम दधताम्' इति ।

मासनामानि वसिष्ठेनोक्तानि—

'चैत्रादिमासनामानि वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः । उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्त्रिविक्रमः ।।
योगीशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णोऽनन्तोऽच्युतस्तथा । चक्रधारीति चैतानि क्रमादाहुर्मनीषिणः' ।। इति

कुलदेवतास्तु वंशपरम्परया प्रसिद्धाः अत्रान्यो नामप्रयुक्तो विशेषः स्मृतिभ्योऽनुसन्धेयः ।। ११ ।। इति नामकर्म ।

अथ बालावबोधार्थमुपरिप्रदर्शितनियमानुसारेण चक्रन्यासः—

अ	व	क	ह	ड	म	ट	प	र	त
इ	वि	कि	हि	डि	मि	टि	पि	रि	ति
उ	वु	कु घङछ	हु	डु	मु	टु	पू षणठ	रु	तु
ए	वे	के	हे	डे	मे	टे	पे	रे	ते
ओ	वो	को	हो	डो	मो	टो	पो	रो	तो
न	य	भ	ज	ख	ग	स	द	च	ल
नि	यि	भि	जि	खि	गि	सि	दि	चि	लि
नु	यु	भु धफढ	जू	खु	गु	सु	दु थझञ	चु	लु
ने	ये	भे	जे	खे	गे	से	दे	चे	ले
नो	यो	भो	जो	खो	गो	सो	दो	चो	लो

पीताम्बरा—जातकर्म और नामकरण मुहूर्त—पर्व और रिक्ता रहित तिथियों, शुभग्रह के वारों, व्यतीपातादिक दोष रहित दिनों, जन्म के ११वें या १२वें दिन, मृदु ध्रुव क्षिप्र और चर नक्षत्रों में शिशु का नामकरण मुहूर्त शुभ होता है। दैवात् जन्म समय जातकर्म संस्कार नहीं किया जा सका तो नामकरण समय में पहिले जातकर्म कर तब नामकरण होना चाहिए।

नाल छेदन के पहिले जातकर्म करना चाहिए। जिस समय शिशु उत्पन्न होता है उसी समय जातकर्म करने का विधान धर्मशास्त्र ने बताया है तो पार्थक्येन जातकर्म मुहूर्त के उल्लेख की आवश्यकता क्या ? परिस्थितियों वश शिशु की उत्पत्ति काल में जातकर्म नहीं हो सका तो नामकरण मुहूर्त में ही जातकर्म मुहूर्त गतार्थ हो जाता है अतः जातकर्मादि मुहूर्त शीर्षक उचित है।

नामकरण भी विहित समय में नहीं हो सका तो वह सुविधा से किसी शुभ दिन में भी किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में शुक्रास्तादि दोष विचारणीय नहीं है।

नामकरण यथाशक्ति पूर्वाह्न में शुभ तथा मध्याह्न में मध्यम होता है। नामकरण अपराह्न और रात्रि में नहीं करना चाहिए।

शतपद चक्रानुसार जन्म नक्षत्र के चरणों के अक्षरों के अनुसार नाम का आदि वर्ण होना चाहिए। वही राशि नाम होता है। जन्म नाम गुप्त रख कर व्यवहार में रुचिकर नाम जो हो रखा जा सकता है, ऐसा कुछ आचार्यों का मत है ।।११।।

अथ बालजन्मानन्तरं प्राच्यशिष्टाचारप्राप्तप्रसूतास्नानमुहूर्तं वसन्ततिलकयाऽऽह—

पौष्णध्रुवेन्दुकरवातहयेषु सूती-स्नानं समित्रभरवीज्यकुजेषु शस्तम्।
नार्द्रात्रयश्रुतिमघान्तकमिश्रमूलत्वाष्ट्रे ज्ञसौरिवसुषड्विरिक्ततिथ्याम् ।।१२।।

पीयूषधारा—पौष्णेति। पौष्णं रेवती, ध्रुवाणि प्रसिद्धानि, इन्दुर्मृगः, करो हस्तः, वातः स्वाती, हयोऽश्विनी, एषु समित्रभरवीज्यकुजेषु अनुराधानक्षत्रसूर्यगुरुभौमवारसहितेषु सूत्याः प्रसूतायाः स्नानं प्रशस्तमुक्तमफलदम्। तदुक्तं दैवज्ञवल्लभे—'उत्तरात्रयरोहिण्यः सौम्यः पवन-रेवती। प्रसूता वनिता स्नायाद्धस्तमैत्राश्विनीषु च ।। स्नाता प्रसूताऽप्यसुता बुधेन स्नाता च वन्ध्या भृगुनन्दनेन। सौरौ मृतिः क्षीरहतिश्च सोमे पुत्रार्थलाभो रविजीवभौमे। अन्ये तु पूर्वाफाल्गुनीज्येष्ठाधनिष्ठास्वपि सूतीस्नानं वदन्ति। 'करेन्द्रभाग्यानिलवासवान्त्यमैत्रैन्दवाश्विध्रुवभेऽह्नि पुंसाम्। तिथावरिक्ते शुभमामनन्ति प्रसूतिकास्नानविधिं मुनीन्द्राः ।।' इति।

निषिद्धर्क्षाणि प्राच्यममतेन—

निषिद्धनक्षत्राण्युच्यन्ते। आर्द्रात्रयमार्द्रापुनर्वसुपुष्याः, श्रुतिमघान्तकमिश्रमूलत्वाष्ट्राणि प्रसिद्धानि, द्वन्द्वैकवद्भावः। एषु दशसु नक्षत्रेषु सूतीस्नानं न शस्तम्। पुनः सूतेरभावादिति तात्पर्यार्थः। तथा ज्ञो बुधः, सौरिः शनिः; तथा वसुः अष्टमी षट् षष्ठी, रविर्द्वादशी, रिक्ताः ४।९।१४। बुधशनिवारयोरेतासु तिथिषु च न शस्तम्। तदप्युक्तं दैवज्ञमनोहरे—'भरणी कृत्तिका मूलमार्द्रा पुष्यः पुनर्वसुः। मघा चित्रा विशाखा च श्रवणो दशमस्तथा। एषु मन्दे बुधे वारे सूतीस्नानं न कारयेत्। यदि स्नानं प्रकुर्वीत पुनः सूतिर्न विद्यते' एतच्च दाक्षिणात्या नानुमन्यन्ते। यत्तु सूतिकास्नानं वदन्प्राच्य इत्थं द्रष्टव्यः किं सूतकमध्ये सूतिकास्नानं सूतकाद् बहिर्वा। नाद्यः कल्पः। यदि सूतकमध्ये षष्ठिकापूजार्थे क्रियमाणमपि स्नानं चाण्डालधृतहस्तपुष्पवन्निष्फलमेव, शुद्ध्यभावात्। नापि द्वितीयः। सूतकानन्तरमेव शुद्ध्यापादकस्नानस्य विहितत्वात्, यदपि दैवज्ञवल्लभवाक्यम्, तदाचारमूलकं न स्मृतिमूलकमिति मत्वा सन्तोष्टव्यम्। इति सूतीस्नानम्।

स्तन्यपानमुहूर्तः प्राच्यमतेनैव—

प्राच्यमतेनैव जन्मान्तरं बालस्य स्तन्यपानमुहूर्त उच्यतेऽस्माभिः—'रिक्तां भौमं परित्यज्य विष्टिं पातं सवैधृतिम्। मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु स्तन्यपानं हितं शिशोः' इति दैवज्ञवल्लभोक्तेः ।। १२ ।।

पीताम्बरा—बालक के जन्म के अनन्तर प्रसववती स्त्री के लिए स्नान मुहूर्त--रेवती, ध्रुवसंज्ञक, मृगशिरा हस्त, स्वाती, अश्विनी और अनुराधा नक्षत्रों, रवि भौम और बृहस्पति के दिनों में प्रसूति स्नान मुहूर्त उत्तम कहा गया है।

आर्द्रा पुनर्वसु और पुष्य श्रवण मघा, भरणी मिश्र संज्ञक मूल और चित्रा नक्षत्रों, बुध शनिवारों, ८।६।१२।४।९।१४ तिथियों में प्रसववती का स्नान अशुभ सूचक होता है। सूतक मध्य का स्नान मात्र से शुद्धि नहीं होती। अतः नामकरण में स्नान षष्ठी पूजन कर्म में आवश्यक है सूतक मध्य स्नान के अनन्तर पञ्चगव्यपान से शुद्धि के साथ नामकरण संस्कार में पत्नी पति स्पृश्या होती है।

पीयूष आदि टीकाकारों ने सूतकान्त में प्रसववती स्नानमुहूर्तोपयोगी काल की अनुपलब्धि पर स्नान व्यवस्था की चर्चा तक नहीं की। प्रसव स्नान से शुद्धि प्राप्त कर ११वें दिन नामकरण कर्म में पत्नी, पति आसन के वाम भाग में गणेशादि देवों की पुष्पादि नाम मन्त्रों से पूजा करती है। अग्नि परिक्रमा भी होती है। यदि नामकरण के दिन प्रसूती स्नान मुहूर्त की अनुपलब्धि भी हो तब भी मुख्य नामकर्म के लिए शुभ लग्नादि समयों में स्नान करना ही होगा। नामकरण मुहूर्त में कथित मुहूर्त व्यवस्था के अन्तर्गत सूतीस्नान मुहूर्त भी सम्भवतः बन जायगा या गतार्थ होगा। सूतक के अनन्तर में शुद्धि स्नान होना ही चाहिए। यह विषय श्रुतिमूलक न भी हो तो आचारमूलक आवश्यक है।

ग्रन्थकार ने रिक्ता मंगलवार भद्राव्यतीपातादिदोष वर्जित शेष तिथिवारों में मृदु ध्रुव क्षिप्र नक्षत्रों में शिशु के लिए सर्वप्रथम मातृ स्तनपान मुहूर्त शुभ कहा है ॥१२॥

अथ प्रसङ्गतः संस्कारानन्तरं गर्भगतमपि प्रथमादिमासोत्पन्नदन्तफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मासे चेत्प्रथमे भवेत्सदशनो बालो विनश्येत्स्वयं
हन्यात्स क्रमतोऽनुजातभगिनीमात्रग्रजान् द्व्यादिके।
षष्ठादौ लभते हि भोगमतुलं तातात्सुखं पुष्टतां
लक्ष्मीं सौख्यमथो जनौ सदशनो बोध्यं स्वपित्रादिहा॥ १३॥

पीयूषधारा—मासे चेदिति। बालकश्चेज्जन्मानन्तरं प्रथमे मासे सदशनो दन्तयुक्तो भवेत्स्यात्तदा स्वयं विनश्येत्। ततो द्व्यादिके द्वितीयादिके मासे स बालको दन्तयुक्तो भवेत्तदाऽनुजातभगिनीमात्रग्रजान् हन्ति, यथा द्वितीयमासेऽनुजातं कनिष्ठभ्रातरं हन्ति, तृतीयमासे भगिनीं हन्ति, चतुर्थमासे मातरं हन्ति, पञ्चमे मासि अग्रजं ज्येष्ठभ्रातरं हन्ति, षष्ठादिमासेषु दन्तजन्म समीचीनफलम्। यथा षष्ठे अतुलं बहुलं भोगं लभते, सप्तमे तातात्पितृतः सुखं लभते, अष्टमे पुष्टताम्, नवमे लक्ष्मीम्, दशमे सौख्यम्, एतच्चोपलक्षणम्। एकादशे मासे सुखबाहुल्यं लभते इत्यर्थः। यदाह चण्डेश्वरः—

'प्रथमे दन्तजननात्स्वयमेव विनश्यति। द्वितीये भ्रातरं हन्ति तृतीये भगिनीं तथा॥
चतुर्थे मातरं हन्ति पञ्चमे स्वात्मनोऽग्रजम्। षष्ठे च मन्त्रजीवी स्यात्सप्तमे पितृसौख्यदः॥
अष्टमे पुष्टिजनको नवमे लभते धनम्। लभते दशमे मासि सौख्यमेकादशेऽपि वा॥
द्वादशे धनसम्पत्तिर्दन्तानां जनने फलम्।' इति।

अथो जनौ जन्मकाल एव सदशनो दन्तयुक्तः स्यात्तदा स्वपित्रादिहा स्वमात्मानं पितरं च आदिशब्देन मातरं च हन्ति नाशयतीति स्वपित्रादिहा। केचिदादिशब्देन भ्रात्रादीनपि नाशं

व्याचक्षते । वोर्ध्वमिति । वा अथवा ऊर्ध्वम् ऊर्ध्वपङ्क्तौ स्वजन्मानन्तरं निषिधेऽविहितेऽपि वा काले सदशनश्चेत् स्यात्तदापि स्वपित्रादिहा आत्मपितृमातृनाशक इत्यर्थः । उक्तं च पद्मपुराणे विष्णुधर्मोत्तरे परशुरामं प्रत्याह पुष्करः—दन्तजन्मनि बालानां लक्षणं तन्निबोध मे । उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशोर्द्विजाः ॥ उपर्युपरिपङ्क्तौ । द्विजा दन्ताः, 'दन्तविप्राण्डजा द्विजाः' इत्यभिधानात् । 'तैर्वा सह च यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम । मातरं पितरं वाथ खादेदात्मानमेव च ॥' इति ।

एवं संविधे दन्तजनने शान्तिरप्युक्ता तत्रैव—

'तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु । गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्थापयेद् द्विज ॥
तदभावे तु धर्मज्ञ काञ्चने तु वरासने । सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्बीजैः पुष्पैः फलैस्तथा ॥
पञ्चगव्येन रत्नैश्च मृत्तिकाभिश्च भार्गव । स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम् ॥
सप्ताहं चात्र कर्त्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनम् । अष्टमेऽहनि विप्राणां तथा देया च दक्षिणा ॥
काञ्चनं रजतं गाश्च भुवं चासनमेव च । दन्तजन्मनि सामान्ये शृणु स्नानमतः परम् ॥
भद्रासने निवेश्यैनं मृद्भिर्मूलफलैस्तथा । सर्वौषधैः सर्वबीजैः सर्वगन्धैस्तथैव च ॥
स्नापयेत्पूजयेच्चात्र वह्निहोमं समीरितम् । प्रथमं स्थापयेत्तत्र देवदेवं च केशवम् ॥
एतेषामेव जुहुयाद्घृतमग्नौ यथाविधि । ब्राह्मणानां तु दातव्या यथाशक्ति च दक्षिणा ॥
ततः स्वलङ्कृतं बालमासने तूपवेशयेत् । आसने छत्रमूर्द्धानं बीजैः सुस्नापयेत्तथा ॥
सुस्त्रीभिर्बालिकानां च तथा कार्यं च पूजनम् । पूज्याश्च विधवा नार्यो ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा ॥'
इत्येवं पद्मपुराणोक्ता दन्तजननशान्तिर्विधेया । ततोऽशुभफलनाशः, शुभफलावाप्तिर्भवतीति ॥१३॥

इति प्रथमादिमासे दन्तजननफलानि शान्तिश्च ।

पीताम्बरा—गर्भगत तथा प्रथमादि मासों में उत्पन्न दाँतों का शुभाशुभ फल—यदि जन्म के अनन्तर प्रथम मास में दाँतों की उत्पत्ति हो तो स्वयं बालक मृत हो जाता है । द्वितीय मास में, अपने छोटे भाई, तीसरे महीने में बहिन, चौथे मास में माता, पाँचवे महीने में दाँतों की उत्पत्ति होने से बालक अपने बड़े भाई का हनन करता है ।

छठें महीने में अतुल भोग, सातवें में पिता से सुख, आठवें में अपने शरीर की पुष्टि, नवम मास में लक्ष्मी और दशम मास में दाँतों की उत्पत्ति से बालक विशेष सुख प्राप्त करता है । इसी उपलक्षण से ११ वें मासादि में धन सम्पत्ति लाभादिक सुखबाहुल्य भी समझना चाहिए । बालक यदि जन्म काल में ही दाँत युक्त उत्पन्न हो तो स्वयं अपने और अपने पिता, आदि शब्देन माता के लिए भी मृत्यु सूचक होता है ।

जन्म के अनन्तर ऊपर की दाँत पंक्ति यदि निषिद्ध समय में (सदशन्) दाँत सहित हो तब भी अपना, पिता, व माता के विनाश का सूचक होता है ।

पद्मपुराण में, ऊर्ध्वपंक्ति से प्रथम दन्तोत्पत्ति या सदशन ऊर्ध्वपंक्ति जन्म वाला बालक माता पिता तथा स्वयं का भी भक्षण करता है । इस प्रकार अनिष्ट दन्तोत्पत्ति का शान्ति विधान से अनिष्ट फल परिहार करना चाहिए जिससे अशुभ फल विनाश के साथ शुभ फल प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥

अथ दोलारोहणमुहूर्त्तं विवक्षुस्तत्सम्बन्धिशुभाशुभफलदातृदोलाचक्रमनुष्टुभाऽऽह—

दोलारोहेऽर्कभात्पञ्चशरपञ्चेषुसप्तभैः ।
नैरुज्यं मरणं कार्श्यं व्याधिः सौख्यं क्रमाच्छिशोः ॥ १४ ॥

पीयूषधारा—दोलारोहे इति। काष्ठलोहाद्याधारोपनिबद्धः परुषाघातवशादन्तरिक्षे गतागतं कुर्वन्नल्पो बालकयोग्यः पर्यङ्कविशेषो दोलाशब्देनोच्यते। तत्र शिशोर्बालकस्य दोलारोहे दोलास्थापने चिकीर्षिते सति अर्कभात् सूर्यनक्षत्रात् पञ्चनक्षत्रैः नैरुज्यं नीरोगता स्यात् तदग्रिमेषुभिः नक्षत्रैः मरणम्, तदग्रिमपञ्चनक्षत्रैः कार्श्यं। देहे कृशत्वं स्यात्, तदग्रिमैरिषुभिः पञ्चनक्षत्रैर्व्याधिः स्यात् तदग्रिमसप्त नक्षत्रैः सौख्यं स्यादिति यथासंख्यं योजयेत्। फलं चेदं शिशोरेव, संस्कारत्वात्। उक्तं च—

'सूर्यभाच्चन्द्रभं यावत्पञ्च पञ्चचतुर्दिशम्। मध्ये तु सप्त देयानि दोलिकाचक्र उत्तमे ॥
पूर्वभागे निरोगत्वं दक्षिणे मरणं ध्रुवम्। पश्चिमे तु कृशो बाल उत्तरे व्याधिसम्भवः ॥
शेषेषु सप्तधिष्ण्येषु बालकस्य सुखं भवेत्।' इति ॥ १४ ॥

पीताम्बरा—दोलारोहण फल के लिए दोला चक्र—बालकों के पर्यङ्क विशेष का नाम दोला है। बालक को प्रथम पर्यङ्क में स्थापन के समय सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा के ५ नाम नीरोग के, पुनः छठे नक्षत्र से १० वें तक, बालक की मृत्यु सूचक, ११ वें से १५ वें तक शरीर में कृशता, १६ वें से २० वें तक शरीर में व्याधि के और सूर्य नक्षत्र से दोलारोहण दिवस के २१ वें से २७ वें संख्यक चन्द्र नक्षत्र (दिन नक्षत्र) तक बालक के शुभ भविष्य के सुख सूचक होते हैं ॥ १४ ॥

अथावसरप्राप्तं दोलारोहणमुहूर्तं वसन्ततिलकायाः पूर्वार्द्धेनोत्तरार्धेन निष्क्रमणमुहूर्त्तं चाह—

दन्तार्कभूपधृतिदिङ्मितवासरे स्याद्वारे शुभे मृदुलघुध्रुवभैः शिशूनाम्।
दोलाधिरूढिरथ निष्क्रमणं चतुर्थमासे गमोक्तसमयेऽर्कमितेऽह्नि वा स्यात् ॥१५॥

पीयूषधारा—दन्तार्केति। दन्ता द्वात्रिंशत्, अर्काः द्वादश, भूपाः षोडश, धृतयोऽष्टादश, दिशो दश, एतन्मितदिवसेषु तथा शुभे वारे सोमबुधगुरुशुक्राणां वारे तथा मृदुगणलघुगणध्रुवगणनक्षत्रैरुपलक्षिते शिशूनां बालकानां दोलाधिरूढिः दोलायामधिरूढिरारोहः स्यात्। यदाह प्रयोगपारिजाते गुरुः—'दोलारोहस्तु कर्त्तव्यो दशमे द्वादशेऽपि वा। षोडशे दिवसे वापि द्वात्रिंशद्दिवसेऽपि वा ॥' इति। भविष्यत्पुराणे—'अभीष्टे पुण्यदिवसे चन्द्रतारासमन्विते। मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु माता वा कुलयोषितः ॥ योगशायिं हरिं स्मृत्वा प्राक्छीर्षं विन्यसेच्छिशुम्' इति।

अथ प्रसङ्गतोऽन्येषामपि दोलारोहणमुहूर्तः प्रोच्यते। तत्र दीपिका—'उग्रैन्द्रमूलाहिशिवाग्निवर्ज्यं शस्तेन्दुना युक्तिथिलग्नयोगे। विष्टिक्षमापुत्रयमाह्वर्ज्यमान्दोलिकारोहणमत्र शस्तम् ॥' इति। यमः शनिः। अथ निष्क्रमणमुहूर्त्तः। तत्र चतुर्थमासे गमोक्तसमये यात्राभिहितसमीचीनतिथिवारनक्षत्रादिसहिते काले शिशूनां निष्क्रमणं निष्क्रमणाख्यसंस्कारं पूर्वं गृहाद् बहिर्गमनं कुर्यात्। वा अथवाऽर्कमितेऽह्नि द्वादशे दिवसे निष्क्रमणं कुर्यात्। यदाह मनुः—'चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहाद्' गुरुरपि—'गृहान्निष्क्रमणं सूनोश्चतुर्थे मासि कारयेत्। यात्रोक्ते समये मासि तृतीये द्वादशेऽहनि ॥' अत्र तृतीयमासोऽप्युक्तः। राजमार्त्तण्डेनापि—

'मासे तृतीये शशिवृद्धिपक्षे क्षपाकरे शोभनगोचरस्थे।
उत्पातपापग्रहवर्जिते भे निष्क्रामणं सौख्यकरं शिशूनाम्।।
तदेतयोः पक्षयोर्यथागृह्यं व्यवस्था।

मुहूर्तसंग्रहे तु विशिष्य तिथ्याद्युक्तं निष्क्रमणे—

'पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना। रिक्ता षष्ठ्यष्टमीदर्शद्वादशीश्च विवर्जयेत्।।
चत्वार्यर्म्णस्ततस्त्रीणि वैश्वात् त्रीणि च बुध्न्यभात्' बुध्न्यभादुत्तराभाद्रपदात् त्रीणि भानि च।।
'मैत्रमादित्यपुष्यौ च रोहिणी च शुभावहाः। झषालिमेषा वर्ज्याः स्युस्तथैवाधोमुखानि च।।
सतां तु वारवर्गाश्च शुभदास्तूदयास्तथा। केन्द्रत्रिकोणगाः सौम्याः पापाः षष्ठत्रिलाभगाः।।
उपनिष्क्रमणे शस्ता मातुलो वाहयेच्छिशुम्। चतुर्थे मासि कर्त्तव्यमग्नेश्चन्द्रस्य दर्शनम्।।' इति।

अधोमुखानि 'मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेत्' इत्युक्तानि, उदयाः लग्नानि, एवंविधे सुलग्ने क्रियमाणस्य शिशुनिष्क्रमणकर्मणः फलमाह बृहस्पतिः—

'अथ निष्क्रमणं नाम गृहात्प्रथमनिर्गमः। अकृतायां क्रियायां स्यादायुः श्रीनाशनं शिशोः।।
कृते सम्पद्विवृद्धिः स्यादायुर्वर्द्धनमेव च।।' इति।

अत्र विशेषमाह यमः—

'तृतीये मासि कर्त्तव्यं शिशोः सूर्यस्य दर्शनम्।। इति।। १५।।

(इति निष्क्रमणादिमुहूर्ताः)

पीताम्बरा—दोलारोहण (झूलापर प्रथम प्रवेश और निष्क्रमण का (घर से बहिर्गमन) मुहूर्त—जन्म दिन से १०, १२, १६, १८ और ३२ दिनों में किसी दिन शुभ ग्रहों के वारों, मृदु लघु और ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में बालकों को झूले (पलने) पर बैठांना शुभ होता है। भगवान् योगशायी हरि का स्मरण कर पूर्व की ओर शिर करते हुए झूले पर बालक को सुलाना चाहिए।

जन्म से १२ वें दिन अथवा चौथे मास में यात्राप्रकरण में बताये गए तिथि-वार-नक्षत्रादिक में बालक का सर्वप्रथम घर से बहिर्गमन (घर से बाहर लाना) शुभ होता है। राजमार्तण्ड ने तीसरे मास में भी बहिर्गमन मुहूर्त कहा है। मुहूर्त संग्रह में, विशेष तिथियों के साथ, शुभ ग्रहस्थिति का उल्लेख भी मिलता है।। १५।।

अथ सूतिकाया जलपूजामुहूर्त्तं भुजङ्गप्रयातेनाह—

कवीज्यास्तचैत्राधिमासे न पौषे जलं पूजयेत्सूतिकामासपूर्त्तौ।
बुधेन्द्विज्यवारे विरिक्ते तिथौ हि श्रुतिज्यादितीन्द्वर्कनैर्ऋत्यमैत्रैः।। १६।।

पीयूषधारा—कवीज्येति। कवि शुक्रः, इज्यो गुरुः, अनयोरस्ते, चैत्रमासे तथाऽधिकमासे तथा पौषमासे सूतिका जनयित्री मासपूर्त्तौ सत्यां जलं नद्यादेरम्बु न मृजयेत्। तथा बुधेन्द्विज्यवारे बुधगुरुचन्द्रवारेषु, तथा विरिक्ते रिक्तारहिते तिथौ, हि निश्चितम्, तथा श्रुतिः श्रवणः, इज्यः पुष्यः, अदितिः पुनर्वसुः, इन्दुर्मृगः, अर्को हस्तः, नैर्ऋत्यं मूलम्, मैत्रमनुराधा, एतैर्नक्षत्रैः सहिते दिने सूतिका जनयित्री मासपूर्त्तौ सत्यां नद्यादेर्जलं पूजयेत्। अत्र मूलानुपलम्भः।

नन्वयं मुहूर्तो निष्क्रमणात्प्राङ्नामकरणानन्तरं वक्तव्यः, प्राप्तकालत्वात्, व्युत्क्रमे कारणं न पश्यामः इति चेत्, शृणु । क्रमस्त्वत्र शास्त्रीयोऽविवक्षितः । जलपूजा ह्याचारप्राप्ता लौकिकीति क्रमानपेक्षा। अतः कालान्तरेऽपि केचिज्जलपूजामाहुः । अथ मासान्तरं विहितो गवादिदुग्धपानविधिः । तन्मुहूर्त्तः प्राच्यमतेन मयोच्यते । श्रीधरीये—'एकत्रिंशे वासरे वा द्वितीये जन्मर्क्षे वा शुद्धलग्नेऽनुकूले । शङ्खे क्षीरं सन्निदध्याच्छिशूनां वक्त्रे धात्री पूज्यपूजां विधाय ।' नृसिंहोऽपि—'एकत्रिंशद्दिने चैव पयः शङ्खेन पाययेत् । अन्नप्राशननक्षत्रदिवसोदयराशिषु ।' वक्ष्यमाणान्नप्राशनोक्तशुभदिवसे एकत्रिंशत्तमे धात्र्युपमाता गवादिक्षीरं शङ्खे निधाय मान्यपूजां च विधाय शिशुमुखे क्षीरं निदध्यादित्यर्थः । १६ ॥

पीताम्बरा—सूतिका स्त्री के लिए जलपूजा मुहूर्त—प्रसव दिन से एक मास की पूर्ति होने पर भी गुरु शुक्र की अस्तंगत स्थितियों, चैत्र पौष और अधिकमास की स्थितियों में नदी आदि पवित्र स्थानों में प्रसववती की जलपूजा नहीं कराई जानी चाहिए ।

बुध चन्द्र गुरु वासरों, रिक्ता रहित तिथियों, श्रवण, पुष्य पुनर्वसु, मृगशीर्ष, हस्त, मूल और अनुराधा में किसी एक नक्षत्र के दिन एक मास की पूर्ति के अनन्तर प्रसूतिका स्त्री को नदी आदिक या शुभ जलाशय स्थानों में जल की पूजा करनी चाहिये । इस मुहूर्त का उल्लेख निष्क्रमण के पहिले नामकरण के पूर्व में होना चाहिए था ? ऐसी शंका का समाधान जलपूजा आचार प्राप्त और भी लौकिक है अतः इस सन्दर्भ में उक्त श्लोक इसी जगह या आगे-पीछे भी लिखा जा सकता था जैसा ग्रन्थकार ने ि या ।

एक मास के पश्चात् बालक को शंख से प्रथम गोदुग्ध पान कराना चाहिये । (शुभ तिथि लग्न वारों में) ॥ १६ ॥

अथान्नप्राशनमुहूर्त्तं स्रग्धरयाऽऽह—

रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारा-
ल्लग्नं जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च ।
हित्वा षष्ठात्समे मास्यथ हि मृगदृशां पञ्चमादोजमासे
नक्षत्रैः स्यात्स्थिराख्यैः समृदुलघुचरैर्बालकान्नाशनं सत् ॥ १७॥

पीयूषधारा—रिक्तेति । अथो शब्दो मध्ये पठितोऽपि पद्यादौ ज्ञेयः । अथो अनन्तरं निष्क्रमणानन्तरमेवंविधे काले बालानामन्नप्राशनं प्रथमभोजनं सत्, शुभफलदायि स्यादित्यन्वयः । तत्रैते वर्ज्यपदार्थाः—रिक्ताः ४ । ९ । १४, नन्दाः १ । ६ । ११, अष्ट ८, दर्श ३०, हरिदिवसं द्वादशी १२ एतास्तिथीर्हित्वा । उपलक्षणत्वात्तिथिक्षयं च तथा सौरिभौमार्कवारांश्च हित्वेत्यर्थः । यदाह नारदः—रिक्तां तिथिक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीमपि । त्यक्त्वान्यतिथयः श्रेष्ठाः प्राशने शुभवासराः' इति कश्यपोऽपि—द्वादशीमष्टमीं रिक्तां नन्दां चैव दिनक्षयम् । सूर्यार्कि-भौमवारांश्च त्यक्त्वान्यशुभवासरे' च नवान्नप्राशनमित्यनुवर्त्तते । अत एवोक्तं जीर्णैः—'द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा । त्रयोदशी च दशमी—प्राशने तिथयः शुभाः' । क्वचित्सूर्य-बुधगुरुवाराः प्रशस्ता उक्ताः, अन्ये निषिद्धाः । उक्तं च—शशिशुक्रे च मन्दाग्निः शनौ भौमे

बलक्षयः । बुधार्कगुरुवारेषु प्राशनं हि शुभावहम्' इति । तदेतन्निर्मूलत्वादुपेक्ष्यम् । दोषान्तरमप्युक्तं नारदेन—'न वैधृतौ व्यतीपाते विष्टयां गण्डातिगण्डयोः । शूले वज्रे न परिघे बालान्नप्राशनं हितम्' । अत्रैषां दोषाणां सामान्यतो निषेधे सिद्धे पुनर्वचनं 'विष्टिरङ्गारकश्चैव' 'वज्रविष्कम्भयोस्तिस्रः, इत्यनयोरप्यपवादार्थम् । तेन स्वीयभोगपर्यन्तं निषेधः ।

अन्नप्राशने लग्नं मासाश्च—

लग्नमिति । लग्ने जन्मराशिजन्मलग्ने ताभ्यामष्टगृहमष्टलवोऽष्टमनवांशश्च तौ गच्छति प्राप्नोत्येवंविधं लग्नं हित्वा जन्मराशिलग्नाभ्यामष्टमनवांशं च त्यजेदित्यर्थः । उक्तं च कश्यपेन 'जन्मराशिविलग्नाभ्यां नैधनेशे च वर्जयेत्' इति । तथा मीनमेषालिकं च—मीनमेषवृश्चिकलग्नानि हित्वा । यदाह जगन्मोहने कश्यपः—'गोश्वकुम्भतुलाकन्यासिंहकर्कनृयुग्मगाः । शुभदा राशयश्चैते न मेषझषवृश्चिकाः' इति । नृयुक् मिथुनम् । मृगो मकरः षष्ठादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी। षष्ठमासमारभ्य सममासे षष्ठाष्टमदशमद्वादशमासेषु बालानां अन्नप्राशनम् । पुम्बालविषयमेतत् ।

स्त्रीशिशुषु विशेषः—

अथानन्तरं हि निश्चयेन मृगदृशां कन्यकानां पञ्चमादोजमासे विषममासे पञ्चमसप्तमनवमैकादशमासेषु अन्नप्राशनं सत् । उक्तं च वसिष्ठेन—'युग्मेषु च षष्ठमासात्संवत्सरे वा नियतं शिशूनाम् । अयुग्ममासेषु च कन्याकानां नवान्नसम्प्राशनमिष्टमेतत् ॥' अत्रायुग्ममासत्वं पञ्चममासादिति ज्ञेयम् । यदाह नारदः—'षष्ठे' मास्यष्टमे वाथ पुंसां स्त्रीणां च पञ्चमे । सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम्' । मनुस्तु 'षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि' इत्याह ।

फलितार्थः—

एवमनेककालाभिधाने कस्मिन्काले अन्नप्राशनं विधेयमिति सन्देहः—किं समबलत्वात्सर्वेऽपि मुख्या एव कालाः, उत कश्चिन्मुख्यगौणभाव इति । अत्र ब्रूमः—स्वस्वगृह्यो विशिष्य कालोन्नप्राशने उक्तः स मुख्यः । तत्र गुरुशुक्रास्तादिविचारो नैवेति ध्येयम् । इतरेषु गौणकालेषु विहितकालाननुष्ठाने सति निर्दोषकाले हि विधेयम् । तत्र स्वगृह्ये क्वचिद्विशिष्य कालो नाभिहितः यत्र सर्वेषां साहितिककालानां तुल्यबलत्वाद्विकल्पो भवति । तत्रापि सदोषं कालं विहाय निर्दोषकालेऽन्नप्राशनं विधेयमिति फलितोऽर्थः ।

शुक्लपक्षपूर्वाह्णनक्षत्रविशेषा अन्नप्राशने—

तत्रापि शुक्लपक्षे पूर्वाह्णे विधेयम् । 'शुक्लपक्षे पूर्वाह्णे' इति नारदोक्तेः । नक्षत्रैरिति । मृदुगण-लघुगणचरगणयुतैः स्थिराख्यैर्नक्षत्रैर्बालकान्नप्राशनं स्यात्—'चर स्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रेषु शुभे दिने' इति कश्यपोक्तेः । जगन्मोहने वसिष्ठोऽपि—'विष्णुरुष्णकिरणो हिमरश्मिर्वायुभिन्नवरुणादितिचित्राः । अश्वितिष्यवसुपौष्णभरोहिण्युत्तराश्च शिशुभोजनताराः' इति ।

तत्र जन्मनक्षत्रं श्रेयः—

अत्र विहितनक्षत्रेषु जन्मनक्षत्रं प्रशस्तमुक्तं नारदेन—पट्टबन्धनचौलान्नप्राशने चोपनायने । शुभद जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि' इति । बालान्नभुक्तौ व्रतबन्धनेऽपि राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम् । शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहसीमन्तयात्रादिषु मङ्गलेषु' इति वसिष्ठोक्तेश्च ।

यत्तु गुरुवचनं—'जन्मर्क्षकर्मनक्षत्रे आधानर्क्षे च वर्जयेत् । कर्णवेधं तथा यानं क्षुरकर्मान्नभोजनम्' इति । एषां लक्षणमुक्तं हि मुहूर्त्तसङ्ग्रहे—'जन्मभं जन्मनक्षत्रं दशमं कर्मसंज्ञितम् । एकोनविंशमाधानं त्रयोविंशं विनाशभम्' इति । त्रयोविंशव्यतिरिक्तानां सर्वेषां जन्मनक्षत्रत्वमस्तीति तद्वार्षिकनवान्नभोजनविषयकम् । अत एव लोकेऽन्नभोजनान्नप्राशनशब्दयोः साधारणत्वेन व्यवहारः, उपलम्भात् । जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु । क्षौरभैषज्यवादाध्वकर्त्तनेषु च वर्जयेत्' दीपिकायां निषेधानुपलम्भाच्च तस्मात्प्रथमदशमैकोनविंशेषु जन्मनक्षत्रेषु बालान्नप्राशनं प्रशस्ततरमिति वयं ब्रूमः । यदपि लल्लवाक्यं—'हित्वैकं जन्मर्क्षं द्वे तारे जन्मसंज्ञिते शुभदे । उद्वाहे चोपनये यात्रायामन्नभोजने क्षौरे' इति । 'यन्नक्षत्रे जन्म तज्जन्मनक्षत्रं दशमैकोनविंशं च जन्मतारेत्युच्यते लोकैः, इति । एतदपि प्रागुक्तविषयमेवेत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

विद्धनक्षत्रं त्याज्यमेव–

तत्रापि विद्धनक्षत्रं सर्वथा निषिद्धमेव । तदुक्तं दीपिकायाम्—'कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा । प्राशने चाद्यचूडायां विद्धमृक्षं परित्यजेत्' बेधप्रकारो हि विवाहप्रकरणे वक्ष्यते ॥ १७ ॥

पीताम्बरा—बालकों का प्रथम अन्नप्राशन (भोजन) मुहूर्त—रिक्ता नन्दा, अष्टमी अमावास्या और द्वादशी तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में, (उपलक्षण से तिथिक्षय भी वर्जित है) सूर्य, शनि और मंगलवारों को छोड़कर शेष शुभ वारों में, जन्म लग्न और जन्म राशि से आठवीं राशि और अष्टम नवांश को त्याग कर शेष राशि लग्नों में भी मीन, मेष और वृश्चिक लग्न को छोड़कर शेष लग्नों में बालकों का छठे मास से सम मासों (६, ८, १०, १२) में और कन्याओं का पाँचवें से विषम (५, ७, ९, ११) मासों में प्रथम अन्नप्राशन (भोजन) मुहूर्त शुभ कहा गया है ।

नारद मत से शुक्लपक्ष का पूर्वाह्न अन्नप्राशन के लिए विशेष शुभ कहा गया है । अन्नप्राशन में जन्मनक्षत्र भी शुभ होता है । विद्ध नक्षत्र अन्नप्राशन में भी त्याज्य है ॥ १७ ॥

अन्यद्वसन्ततिलकयाह—

केन्द्रत्रिकोणसहजेषु शुभैः खशुद्धे लग्ने त्रिलाभरिपुगैश्च वदन्ति पापैः ।
लग्नाष्टषष्ठरहितं शशिनं प्रशस्तं मैत्राम्बुपानिलजनुर्भमसच्च केचित् ॥ १८ ॥

पीयूषधारा—केन्द्रेति । अत्र यद्यपि केन्द्रशब्देन दशममपि स्थानमुच्यते । तथापि न गृह्यते 'खशुद्धे लग्ने' इति वक्ष्यमाणत्वात् । एवं सति केन्द्राणि १।४।७ त्रिकोणं ९।५ सहजं ३, एषु स्थानेषु स्थितैः शुभग्रहैः, तथा त्रि–३ लाभ–११ रिपु–६ गैः पापग्रहैश्चोपलक्षिते लग्ने खशुद्धे दशमशुद्धिसहिते सर्वग्रहरहिते इति यावत् । एवंविधे लग्ने लग्नाष्टषष्ठस्थानरहितमर्थादन्यस्थानस्थितं शशिनं प्रशस्तं वदन्ति मुनय इति शेषः । यदाह कश्यपः—त्रिकोणकेन्द्रत्र्यायेषु शुभैस्त्र्यायारिगैः परैः । अलग्ननिधनान्त्यारिस्थानस्थेन हिमांशुना ॥ अन्नप्राशनं कुर्यादित्यनुवर्त्तते । अत्र लग्नस्थ चन्द्रनिषेधः क्षीणचन्द्रविषयः । नारदोऽपि—

'दशमे शुद्धिसंयुक्ते शुभलग्ने शुभांशके । शुक्लपक्षे पूर्वाह्णे सौम्ययुक्तनिरीक्षिते ॥
त्रिषष्ठलाभगैः पापैः केन्द्रधीधर्मगैः शुभैः । व्यन्त्यारिनिधनस्थेन चन्द्रेण प्राशनं शुभम् ॥'

इति ।

अत्र दशमशुद्धिः सर्वग्रहराहित्यम् । दशमस्थानातिरिक्तकेन्द्रं केन्द्रशब्देन विवक्षितम् । यदाह प्रयोगपारिजातेऽर्णवः—'दशमस्थानगान्सर्वान्विवर्जयेन्मतिमान्नरः । अन्नप्राशनकृत्येषु मृत्युक्लेशभयावहान् ॥' अत्र लग्नस्थचन्द्रः प्रशस्तः, पूर्णचन्द्रविषयत्वात् । एतच्चाग्रिमपद्ये वक्ष्यते । विशेषमाह अत्र गुरुः—शुक्रारज्ञाः क्रमाद्याताः सप्तमाष्टमधर्मभे । भोज्यभोक्तृनवत्वे तु सर्वथा मरणप्रदा ॥' इति । शुक्रः सप्तमः, भौमोऽष्टमः, बुधो नवमश्च, भोज्यमन्नं गोधूमादि, तस्य नवत्वे नवान्नत्वे भक्षणीयत्वे सति भोक्तुरन्नप्राशनकर्त्तुर्बालकस्य नवत्वे सति वा एते ग्रहा मरणप्रदा इत्यर्थः । मैत्रेति । मैत्राम्बुपानिलाः अनुराधाशततारकास्वात्योऽसत्यो निषिद्धा इति केचिदाहुरिति परमतेनोपन्यासः । यथोक्तं श्रीपतिना—'रेवतीश्रुतिपुनर्वसुहस्ता ब्राह्मतः पृथगपि द्वितीये च । त्र्युत्तरं च गदितं पृथुकानां प्राशनं हि स नवान्नविधानम् ॥' अस्यार्थः रेवत्यादिभ्यः पञ्चभ्यो द्वितीयेऽपि नक्षत्रे । कोऽर्थः रेवत्यश्विनी च श्रवणं धनिष्ठा च पुनर्वसुः पुष्यश्च हस्तश्चित्रा च रोहिणी मृगश्च उत्तरात्रयमेवेत्येवं त्रयोदशर्क्षेषु पृथुकानां बालानामन्नप्राशनं वार्षिकं नवान्नविधानं च गदितमिति । नारदादिभिस्तु चरस्थिरक्षिप्रमृदुनक्षत्रेषु इति षोडश नक्षत्राणामभिधानात् । तत्र त्रयाणामनुराधाशततारकास्वातीनामाधिक्यादतः श्रीपतिमतमाश्रित्यैषां भानां निषिद्धत्वमुक्तम् । ग्रन्थकृता च पुनर्जनुर्भं जन्मनक्षत्र चासादिति केचिदित्युक्तम् । यदाह गुरुः—'जन्मर्क्षे कर्मनक्षत्रे आधानर्क्षे च वर्जयेत् । कर्णवेधं तथा यानं क्षुरकर्मान्नभोजनम् ॥' इति । विशेषानवधारणं जनानां मतभेदात् । वस्तुतस्तु अन्नस्य भोजनं अन्नभोजनमिति व्युत्पत्त्या वार्षिकनवान्नभोजनविषयकमेवेतदित्युक्तमस्माभिः पूर्वपद्ये ॥ १८ ॥

पीताम्बरा—अन्नप्राशन में ग्रह स्थिति—जिस लग्न से, दशम रहित केन्द्र में (१,४,७) त्रिकोण (९, ५) और तृतीय में शुभ ग्रह हों, दशम में कोई ग्रह न हो, ३, ६, ११ में अशुभ ग्रहों की स्थिति हो, लग्न अष्टम और षष्ठ स्थान रहित चन्द्रमा हो, ऐसी ग्रह स्थिति का अन्नप्राशन शुभ होता है ।

आचार्यों के मत से पूर्ण चन्द्रमा लग्न में शुभ माना गया है । क्षीण चन्द्रमा लग्न में निषिद्ध हैं ॥ १८ ॥

अथ ग्रहाणा स्थानवशात्फलान्यनुष्टुप्छन्दोभ्यामाह—

क्षीणेन्दुपूर्णचन्द्रेज्यज्ञभौमार्कार्किभार्गवैः ।
त्रिकोणव्ययकेन्द्राष्टस्थितैरुक्तं फलं ग्रहैः ॥ १९ ॥
भिक्षाशी यज्ञकृद्दीर्घजीवी ज्ञानी च पित्तरुक् ।
कुष्ठी चान्नक्लेशवातव्याधिमान् भोगभागिति ॥ २० ॥

पीयूषधारा—क्षीणेंद्वित्यादि । त्रिकोणे ९ । ५, व्यये १२, केन्द्राणि १।४।७, दशमरहितानि, अष्ट ८ । एषु स्थानेषु स्थितैः क्षीणेंद्वादिभिरष्टभिर्ग्रहैर्भिक्षाशीत्यादिकं फलं यथासंख्येनोक्तम् । मुनिभिरिति शेषः यथा एषु स्थानेषु स्थितः क्षीणचन्द्रश्चेत्तदान्नप्राशनकृद्बालो भिक्षाशी दरिद्रः स्यात् तथा पूर्णचन्द्रः एतत्स्थाने स्थितश्चेत्तदाज्योतिष्टोमयज्ञकृत् एवमिज्यो गुरुश्चेद्दीर्घजीवी ज्ञो बुधश्चेत् ज्ञानी स्यात्, भौमश्चेत्पित्तरुक् पित्तकृता रुग् यस्यासौ पित्तरुक्, अर्कश्चेत्कुष्ठी स्यात्,

आर्किः शनिश्चेत्तदान्नाभावसम्बन्धी क्लेशोऽन्नक्लेशः, वातप्रधानो व्याधिर्वातव्याधिः एतौ विद्येते यस्यासौ अन्नक्लेशवातव्याधिमान् स्यात् । उपलक्षणत्वाद्राहुकेत्वोरप्येतत्फलं द्रष्टव्यम् । भार्गवः शुक्रश्चेत्तर्हि भोगभाग् स्यादित्यर्थः, उक्तञ्च रत्नमालायाम्—'रवौ लग्ने कुष्ठी धरणितनये पित्तगदभाक्छनौ वातव्याधिः कृशशशिनि भिक्षाशनरतः । बुधे ज्ञानी भोगी ह्युशनसि चिरायुः सुरगुरौ विधौ पूर्णे यज्वा भवति च नरः सत्रद इह ।। कण्टकान्त्यनिधनत्रिकोण-गास्तत्फलं ददति यत्नतो ग्रहाः । षष्ठ इन्दुरशुभस्तथाष्टमः केन्द्रकोणगत ऐनिरन्नहृत् ।।' इनः सूर्यस्तस्यापत्यमैनिः शनिः । अत्र लग्नस्थितानामेव ग्रहाणां फलाभिधानादन्यकेन्द्रादिषु तदतिदेशाफलेऽपि महत्त्वाल्पत्वकृतो विशेषो ध्येय इति निकृष्टोऽर्थः । अन्यथा सर्वकेन्द्राद्यनुवादेन कुष्ठ्यादिफलमेव स्यात् । अत एव वसिष्ठेन लग्नस्थितानामेव फलमुक्तं—'कुष्ठीलग्नगते सूर्ये क्षीणचन्द्रे च भिक्षुकः । सत्रदः पूर्णचन्द्रे स्यात्कुजे पित्तरुजादितः । बुधे ज्ञानी गुरौ भोगी दीर्घायुर्भाग्यवान्सिते । वातरोगी शनौ राहौ केतौ चान्नविवर्जितः ।।' इति । नारदादिभिरप्येव-मुक्तम् । लग्नं विहायान्यकेन्द्रस्थितानां ग्रहाणां तु सामान्यत एव फलं शुभाशुभमुक्तम् । तद्वाक्यं प्रागभिहितमस्माभिः । ग्रन्थकर्त्रा तु लाघवात् रत्नमाला पदार्थमनुसृत्येदमुक्तमित्यदोषः । पूर्णचन्द्रक्षीणचन्द्रयोर्लक्षणमन्नप्राशनप्रकरणे उक्तं वसिष्ठेन—'संपूर्णेन्दूभयाष्टम्योर्मध्येन्दुः पूर्ण-संज्ञकः । विनष्टेन्दूभयाष्टम्योर्मध्येऽसौ क्षीणसंज्ञकः ।।' इति । संपूर्णेन्दुः पूर्णिमामध्येन्दुरित्यत्र छान्दसः । समासः । कुतः—समर्थः पदविधिः' इति सापेक्षमसमर्थं भवतीति च स्मरणात् । अथवा मध्ये इन्दुरिति पदच्छेदः । तत्रायादेशे यलोपे च—'सर्वत्रासिद्धम्' इत्यसिद्धत्वमाद्गुणे कर्त्तव्ये न भवति 'न मुने' इत्यत्र नेतियोगविभागात्तस्य चेष्टसिद्धिविषयत्वात् । विनष्टेन्दुर-मावास्या, असाविति कृतपदच्छेदमध्येन्दुशब्दस्येन्दुशब्दवाच्यः ।। १९–२० ।।

(इति अन्नप्राशनम्)

पीताम्बरा—ग्रहों के स्थान वश बालक का भविष्य जीवन संकेत—क्षीणचन्द्र, पूर्ण-चन्द्र, गुरु, बुध, मंगल, सूर्य, शनि और शुक्र ग्रहों में जो ग्रह ५, ९, १२, १, ४, ७ और अष्टम स्थान में हो तदनुसार क्षीण चन्द्रमा से बालक भिखारी, पूर्णचन्द्रमा से यज्ञकर्ता बृहस्पति से दीर्घायुष्य, बुध से ज्ञानी, मंगल से पित्तरोगी, सूर्य से कुष्ठी और शनि (तथा राहु केतु में भी) से अन्नाभाव सम्बन्धो क्लेश और वातव्याधि और उक्त किसी स्थान में शुक्र ग्रह की स्थिति से बालक अनेक भोग भागी (भाग्यवान्) होता है ।। १९–२० ।।

अथ भूम्युपवेशनमुहूर्त्तं वसन्ततिलकयाह—

पृथ्वीवराहमभिपूज्य कुजे विशुद्धेऽरिक्ते तिथौ व्रजति पञ्चममासि बालम् ।
बद्ध्वा शुभेऽह्नि कटिसूत्रमथ ध्रुवेन्दुज्येष्ठर्क्षमैत्रलघुभैरुपवेशयेत्कौ ।। २१ ।।

पीयूषधारा—पृथ्वीति । पृथ्वी च वराहश्चानयोः समाहारद्वन्द्वः । पृथ्वीं वराहं चाभि-पूज्य कुजे विशुद्धे भौमबले सतीत्यर्थः । अरिक्ते रिक्तारहिते तिथौ सति तथा पञ्चममासि व्रजति लग्ने सति तथा शुभेऽह्नि शुभग्रहवारेषु तथा ध्रुवेन्दुज्येष्ठर्क्षमैत्रलघुभैः रोहिण्युत्तरात्रय-मृगज्येष्ठानुराधाश्विनीपुष्यहस्तैर्दशनक्षत्रैः उपलक्षिते काले बाल कटिसूत्रं पट्टसूत्रादिनिर्मितं कटिस्थले बद्ध्वा कौ पृथिव्यामुपवेशयेन्मन्त्रपाठपूर्वकमुपवेशनाख्यं संस्कारं कुर्यात् । उक्तं च पद्मपुराणे—'पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत् । तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौमो राम-

विशेषतः ॥ तिथिं च वर्जयेद्रिक्तां शस्तानि शृणु भानि मे। उत्तरात्रितयं सौम्यं पुष्यर्क्षं शक्रदैवतम् ॥ प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रभम् । वराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा ग्रहान् ॥'

मन्त्रा अपि तत्रैवोक्तास्ते लिख्यन्तेऽस्माभिः—

'रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शुभे। आयुःप्रमाणं निखिलं निःक्षिपस्व हरिप्रिये ॥
अचिरादायुषस्तस्य ये केचित्परिपन्थिनः। जीवितारोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान् ॥
धारिण्यशेषभूतान मातस्त्वमधिक ह्यसि। कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यताम् ॥
तस्योपवेशनं कृत्वा भूमौ ब्राह्मणभोजनम्। ततः कृत्वा ततः कार्यमुत्सवं पूर्ववद्द्विज ॥' इति

उत्सवो नीराजनादिः। यद्यपि ग्रन्थकर्त्रा पञ्चमासि कर्त्तव्यं भूम्युपवेशनमन्नप्राशनतः प्राक् त्रवक्तव्यम्। तथापि ज्योतिःशास्त्रकर्तृवसिष्ठाद्यनुक्तत्वात् क्रमवाधमङ्गीकृत्योक्तम्। साम्प्रतं बालाना त्वन्नप्राशनसमय एव भूम्युपवेशनकाल इति ॥ २१ ॥

पीताम्बरा—बालक को भूमि में बिठाने का मुहूर्त—गोचर से मंगल ग्रह को बली होना चाहिए। पृथ्वी माता और वराह भगवान् की पूजा कर रिक्तारहित तिथियों, शुभ ग्रहों के वारों, चर लग्न, पाँचवें महीने में बालक के कमरे में कटिसूत्र बाँध कर, ध्रुवसंज्ञक ज्येष्ठा, अनुराधा और लघुसंज्ञक नक्षत्रों में बालक को सर्वप्रथम जमीन में बैठाना चाहिए। अन्नप्राशन के पहिले ही भूमि में बैठने का मुहूर्त होना चाहिए था। यहाँ पर क्रम बाधक दोष इसलिए नहीं है कि सम्प्रदाय में नामकरण समय या अन्नप्राशन समय में भी भूमि उपवेशन प्रचलित है ॥ २१ ॥

अथ जीविकापरीक्षां शालिन्याह—

तस्मिन् काले स्थापयेत्तत्पुरस्ताद्वस्त्रं शस्त्रं पुस्तकं लेखनीं च।
स्वर्णं रौप्यं यच्च गृह्णाति बालस्तैराजीवैस्तस्य वृत्तिः प्रदिष्टा ॥ २२ ॥

पीयूषधारा—तस्मिन् काल इति। स्पष्टार्थं पद्यम्। आजीवैर्जीविकाभिः। 'आजीवो जीविका वार्त्ता' इत्यभिधानात्। यदाह मार्कण्डेयः—'अग्रतोऽथ प्रविन्यस्य शिलामाण्डानि सर्वशः। शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥ प्रथमं यत्स्पृशेद् बालो रिङ्गमाणः स्वयं तदा। जीविका तस्य बालस्य तेरैव तु भविष्यति ॥' इति। बहुधा तु जीविकापरीक्षामन्नप्राशनसमय एव कुर्वन्तीति शिष्टाचारः। इदं पद्यं ग्रन्थकर्तुः मुहूर्तविचारार्थं प्रवृत्तस्य हि वक्तुमनुचितम्। मुहूर्त्तविचारस्यात्र प्रतिपादनीयत्वात्। किन्तु धर्मशास्त्रकर्तृणामुचितोऽयं विचारः। यतस्ते संस्कारादिनिर्णयार्थं प्रवृत्ता इति ॥ २२ ॥

पीताम्बरा—अन्नप्राशन समय की प्राकृतिकतावश बालक की आजीविकाविक भविष्य ज्ञान—अन्नप्राशन के समय बालक को भूमि पर बैठा कर उसके सामने विविध प्रकार के वस्त्र, शस्त्र, ग्रन्थ, लेखनी (कलम) सुवर्ण, चाँदी (और उपलब्ध अनेक जीविका साधन प्रतीक) उपस्थित करने चाहिए। उस समय बालक अपनी स्वाभाविक रुचि से जिस वस्तु को प्रसन्नता से स्पर्श करता है उसी से बालक की आजीवन की आजोविका कहनी चाहिए ॥ २२ ॥

अथ शिशोस्ताम्बूलभक्षणमुहूर्त्तं स्रग्धरयाऽऽह—

वारे भौमार्किहीने ध्रुवमृदुलघुभैर्विष्णुमूलादितीन्द्र-
स्वातीवस्वभ्युपेतैर्मिथुनमृगसुताकुम्भगोमीनलग्ने ।
सौम्यैः केन्द्रत्रिकोणैरशुभगगनगैः शत्रुलाभत्रिसंस्थै-
स्ताम्बूलं सार्द्धमासद्वयमितसमये प्रोक्तमन्नाशने वा ॥ २३ ॥

पीयूषधारा—वारे इति । भौमार्किभ्यां हीने रहिते वासरे सति श्रवणमूलपुनर्वसु-ज्येष्ठास्वातीधनिष्ठायुक्तैः ध्रुवमृदुलघुनक्षत्रैः उपलक्षिते काले तथा मिथुनं, मृगो मकरः, सुता कन्या, कुम्भः, गौर्वृषः, मीनः एषामन्यतमे लग्ने सौम्यैः सौम्यग्रहैः केन्द्रत्रिकोणगतैः अशुभ-गगनगैः पापग्रहैः शत्रुलाभत्रिसंस्थैः षष्ठैकादशतृतीयस्थानस्थितैः सहिते सति बालकस्य ताम्बूलं लक्षणया ताम्बूलभक्षणं प्रोक्तमित्यर्थः । यदाह दीपिकाकारः—'मूलादितिद्रविणतिष्यकरोत्तरासु पौष्णाश्विविष्णुरजनीकरशक्रभेषु । वारेषु सूर्यशशिजीवसितेन्दुजानां ताम्बूलभक्षणविधिः कथितः शिशूनाम् ॥ दुश्चिक्यलाभभवनारिगताश्च पापाः सौम्यग्रहाः नवमपञ्चमकण्टकस्थाः । आरोग्यशान्तिशुभभाग्यसुखोपभुक्त्यै ताम्बूलभक्षणविधौ मुनिभिः प्रदिष्टाः ॥ इति । द्रविणं धनिष्ठा, चित्रानुराधयोर्ग्रहणं राजमार्त्तण्डवचनात् । 'दिनकरचन्द्रसमीरणमैत्रं पुष्यपुनर्वसुरेवति-चित्रम् । घटमृगमिथुनं कन्यकलग्नं पूगफलाशनमेभिरिहेष्टम् ॥' पूगग्रहणं फलताम्बूलोपलक्षणम् । रोहिणीस्वात्योर्ग्रहणे मूलं नास्ति । मीनवृषयोर्ग्रहणे च मूलं नास्ति । एतच्च कस्मिन्काले कार्यमित्यत आह—सार्द्धेति । जन्मकालात्सार्धमासद्वयमितसमये ताम्बूलदानं प्रोक्तम् । यदाह चण्डेश्वरः—'सार्द्धे मासद्वये पूगं ताम्बूलं वा शिशोर्हितम् । षड्भिरन्नभुजो मासैर्भोगभागी भवेन्नरः ॥' वा अथवा अन्नप्राशने अन्नप्राशनसमये वा प्रोक्तम् । एतच्च शिष्टाचारदर्शना-दुक्तम् । तदा मुहूर्त्तविचारानुन्मेषः । यदा सार्धे मासद्वये ताम्बूलभक्षणं विहितं तदा मुहूर्त्त-विचारो युक्त एव ।

ताम्बूलभक्षणमुहूर्तोऽन्येषामपि—

अथ प्रसङ्गतोऽन्येषामपि ताम्बूलभक्षणमूहूर्त्तः प्रोच्यतेऽस्माभिः । तदुक्तं दीपिकायाम्—'मूलाश्विमैत्रवरतिष्यहरीन्दुभेषु पौष्णे तथा मृगशिरोदितिवासवेषु । अर्केन्दुजीवभृगुबोधनवासरेषु ताम्बूलनूतनदलाद्यशनं शुभाय' दलानि पर्णानि । विशेषः स्मृतिभ्योऽनुसन्धेयः ।

ताम्बूलदाने फलव्यवस्था—

ताम्बूलं सुष्ठु यो दद्याद् ब्राह्मणेभ्योऽतिभक्तितः । मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनाभश्च जायते ॥
फलेन तृप्यते ब्रह्मा पत्रेण भगवान् हरिः । चूर्णमीश्वरतृप्त्यै स्यात्ताम्बूलाशनदानतः ॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिः पूगैः फलानि च । लाभालाभौ सुखं दुःखमायुर्मरणमेव च ॥
पर्णमूले भवेद्व्याधिः पर्णाग्रे धनसंक्षयः । चूर्णपर्णं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥
पर्णाग्रं पर्णपृष्ठं वा चूर्णपर्णं द्विपर्णकम् । रात्रौ खदिरताम्बूलं शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥
अशास्त्रविधिना पर्णपूगं खादति यो नरः ।
सप्तजन्मदरिद्रः स्यादन्ते विष्णुं न संस्मरेत् ॥' इति ॥ २३ ॥

पीताम्बरा—बालक का प्रथम ताम्बूल चर्वण मुहूर्त—मंगल और शनिवार रहित शेष वारों, ध्रुव मृदु और लघुसंज्ञक श्रवण, मूल, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, स्वाती और धनिष्ठा नक्षत्रों में (मिथुन, मकर, कन्या, कुम्भ और मीन) लग्नों में केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रहों की स्थिति और पापग्रहों की स्थिति ३, ६, ११ स्थानों की जिस लग्न से हो उक्त उस लग्न में बालक ढाई मास की अवस्था अथवा अन्नप्राशन के ही समय में बालक के मुख में सर्वप्रथम ताम्बूल रखना चाहिए।

बालक को यदि ताम्बूल भक्षण ढाई महीने में कराना अभीष्ट हो तभी उक्त ताम्बूल भक्षण मुहूर्त की आवश्यकता होती है। नहीं तो अन्नप्राशन के मुहूर्त में ही ताम्बूल भक्षण भी कराना चाहिए ॥ २३ ॥

अथ कर्णवेधमुहूर्त स्रग्धरयाह—

हित्वैतांश्चैत्रपौषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां
युग्माब्दं जन्मताराम्रृतुमुनिवसुभिः संमिते मास्यथो वा।
जन्माहात्सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारे
ऽथौजाब्दे विष्णुयुग्मादितिमृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः ॥२४॥

पीयूषधारा—हित्वेति। अत्रैतान्पदार्थान् हित्वा कर्णवेधः प्रशस्त इत्यन्वयः। एतान् कान्, तत्र चैत्रं पौषमासं च, अवमं दिनक्षयम्।

लक्षणलक्षितजन्ममासादिनिषेधः—

'आरभ्य जन्मदिवसं यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत्। जन्ममासः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु' इति लक्षणलक्षितं जन्ममासम्। रिक्तातिथिं ४। ९। १४। युग्माब्दं सप्तवर्षं द्वितीयचतुर्थादिकं, जन्मतारां प्रथमदशमैकोनविंशतिकात्मिकां हित्वा। उक्तं च व्यवहारोच्चये—'न जन्ममासे न च चैत्रपौषे न जन्मतारासु हरौ प्रसुप्ते। तिथावरिक्ते न च विष्टिदुष्टे कर्णस्य वेधो न समानवर्षे।' इति। अत्र चैत्रस्य निषेधो मीनार्कविषयः, पौषनिषेधो धनुरर्कविषयः, अन्यथा—'कार्त्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेऽपि वा। कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्ले पक्षे शुभेऽहनि' इति व्यासवचनमसङ्गतं स्यात्। अत्र कार्त्तिकशुक्लपक्षैकादशीतः कार्त्तिकः प्रशस्तः। पूर्वस्य देवशयनसत्त्वान्निषेधः।

जन्ममासेऽन्यान्यपि वर्ज्यानि—

अत्र जन्ममासे वर्ज्यान्तराण्यप्याह प्रयोगपारिजाते व्यासः—'यो जन्ममासे क्षुरकर्म यात्रां कर्णस्य वेधं कुरुते हि मोहात्। मूढः स रोगी धनपुत्रनाशं प्राप्नोति गूढं निधनं तदाशु ॥' इति। विहितकालमाह—ऋत्विति। ऋतवः षट्, मुनयः सप्त, वसवोऽष्टौ, एतैः संमिते गणिते मासि षष्ठे मासे सप्तमे मासेऽष्टमे मासे अथो वा जन्माहात्सूर्यभूपैर्द्वादशभिर्वा परिमिते गणिते दिवसे सौरसावने कर्णवेधः प्रशस्त उक्तः। यदाह जगन्मोहने वसिष्ठः—'मासे षष्ठे सप्तमे वाऽष्टमे वा वेध्यौ कर्णौ द्वादशे षोडशेऽह्नि। मध्ये चाह्नः पूर्वभागे न रात्रौ' इति।

षष्ठमासे कर्णवेधे तिथयः—

यदा तु षष्ठमासादौ कर्णवेधश्चिकीर्षितः, तदा तिथीनाह जगन्मोहने वसिष्ठः—'द्वितीया

दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी । द्वादशी पञ्चमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने' इति । ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारेषु इति । बुधबृहस्पतिशुक्रचन्द्रवारेषु प्रशस्तः कर्णवेधः । यदाह जगन्मोहने वसिष्ठः—'भूमिजार्कात्मजार्कानां वरन् संवर्जयेत्सुधीः । जीवेन्दुजेन्दुशुक्राणां दिवसाः परिपूजिताः' इति । अथौजेति ओजाब्दे विषमवर्षे वा कर्णवेधः प्रशस्तः । सूर्यबले सतीत्यपि ध्येयम्, यदाह राजमार्त्तण्डः—'अर्केऽनुकूले शशिनि प्रशस्ते ताराबले चन्द्रविवृद्धिपक्षे । अयुग्मवर्षे शुभदं शिशूनां कर्णस्य वेधं मुनयो वदन्ति ।' अत्र कर्णस्येत्येकवचनं ग्रहैकत्वाधिकरणन्यायेनाविवक्षितम् । तेन द्वयोरपि कर्णयोर्वेधः ।

नक्षत्राणि कर्णवेधे—

विष्णिवति । श्रवणधनिष्ठापुनर्वसुचित्रानुराधामृगरेवत्यश्विनीपुष्यहस्तनक्षत्रैर्दशभिरुपलक्षिते काले कर्णवेधः प्रशस्तः । उक्तं हि श्रीपतिना—'पौष्णवैष्णवकराश्विनचित्रापुष्यवासवपुनर्वसुमैत्रैः । सेन्दवैः श्रवणवेधविधानं निर्दिशन्ति मुनयो हि शिशूनाम्' नारदेनापि—'चित्रादित्याश्विविष्णवन्त्यरविमित्रवसूडुषु । समृगेज्येषु बालानां कर्णवेधक्रिया हिता ।' इति । गर्गेणोत्तरात्रयमप्युक्तम्—'पुष्ये धनिष्ठास्वदितौ हरीन्दुत्वाष्ट्रे करेऽन्त्ये तितृषुत्तरासु । दस्रे समैत्रेऽप्यथ कर्णवेधे नेष्टाश्च सर्वेऽष्टमराशिसंस्थाः' इति । अत्रैच्छिको विकल्पः ।

जन्मनक्षत्रे कर्णवेधो न कार्यः—

अत्र जन्मनक्षत्रनिषेधः सर्ववादिसिद्धः । तदुक्तं दीपिकायाम्—'जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रसस्तः सर्वकर्मसु । क्षौरभैषज्यवादाध्वकर्त्तनेषु विवर्जयेत् ।।' इति धात्वर्थानुसारात्कर्त्तनशब्देन कर्णवेधो विवक्षितः । तथा च स्मर्यते—'जन्मनि मासि विवाहः शुभदो जन्मर्क्षजन्मराश्योश्च । अशुभं वदन्ति गर्गाः श्रुतिवेधक्षौरयात्रासु' इति ।। २४ ।।

पीताम्बरा—कर्णवेध (कर्ण छेदन) मुहूर्त—जन्म दिन से ३० वें दिन तक जन्म मास कहा जाता है । चैत्र पौष, तिथिक्षय, जन्ममास, रिक्तातिथि सम वर्ष, जन्म तारा और हरिशयन (आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल दशमी तक) को छोड़कर ६, ७, ८, वें मासों अथवा जन्म से १२ वें १६ वें ही दिनों में बुध गुरु शुक्र और सोमवार के किसी दिन में विषम वर्षों में श्रवण धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृदु और लघुसंज्ञक नक्षत्रों में कर्णवेध (दोनों कान छेदन) मुहूर्त उत्तम है।। २४ ।।

अथ कर्णवेधे लग्नशुद्धिं प्रहर्षिण्याऽऽह—

संशुद्धे मृतिभवने त्रिकोणकेन्द्रत्र्यायस्थैः शुभखचरैः कवीज्यलग्ने ।
पापाख्यैररिसहजायगेहसंस्थैर्लग्नस्थे त्रिदशगुरौ शुभावहः स्यात् ।।२५।।

पीयूषधारा—संशुद्ध इति । मृतिभवनेऽष्टमस्थाने संशुद्धे सर्वग्रहवर्जिते सति । यदाह जगन्मोहने वसिष्ठः—'न कश्चिदिष्टोऽष्टमराशिसंस्थस्तिथिद्वयं चावमसञ्ज्ञकं च' इति । अत्र विहितलग्नादि प्रयोगपारिजाते नारदेनोक्तानि—

'वृषभे मिथुने मीने कुलीरे कन्यकासु च । तुलाचापे न कुर्वीत कर्णवेधं शुभद्वये ।।
मेषश्च मकरश्चैव मध्यमौ गुरुणोदितौ । सिंहवृश्चिककुम्भाश्च ह्यधमत्वाद्विवर्जिताः'इति ।

अत एवोक्तं वराहसंहितायाम्—'लाभे तृतीये च शुभैः समेतैः क्रूरैर्विहीने शुभराशिलग्ने वेध्यौ तु कर्णौ त्रिदशेज्यलग्ने' इति शुभाश्चन्द्रबुधगुरुशुक्राः तेषां राशयः कर्कमिथुनकन्यावृषतुलाधनुर्मीनास्तेषामन्यतमे लग्ने क्रूरैर्विहीने सतीत्यर्थः। ग्रन्थकृद्दीपिकाकारमतमाश्रित्याह—कवीति। कवीज्ययोर्लग्ने वृषतुलाधनुर्मीनानामन्यतमे लग्ने सति त्रिकोण-९।५ केन्द्र १।४।७।१० त्र्याय-३। ११ स्थितैः शुभग्रहैस्तथा पापाख्यैर्ग्रहैररिसहजायगेहसंस्थैः षष्ठतृतीयैकादशस्थानस्थितैरुपलक्षिते तथा केन्द्रसंस्थे त्रिदशगुरौ सति कर्णवेधः शुभावहः शुभकारकः स्यात्। उक्तं च दीपिकायाम्—'सौम्यैस्त्र्याय त्रिकोण कण्टकगतैः पापैस्त्रिलाभारिगैरोजाब्दे श्रुतिवेध इज्यसितयोर्लग्नेऽनुकूले शुभे ॥' इति। गुरुः—'कर्णवेधादिकार्येषु नेष्टाः सर्वेऽष्टमस्थिताः। कर्णवेधो विनिर्देश्यो लग्नसंस्थे बृहस्पतौ॥ तदभावेऽन्यकेन्द्रस्थे तद्भावे त्रिकोणगे' इति।

कर्णवेधप्रकारः कर्णरन्ध्रविशेषश्च—

अत्र कर्णवेधप्रकारो रत्नमालायाम्—'शिशोरजातदन्तस्य मातुरुत्सङ्गसर्पिणः। सुताया वेधयेत्कर्णौ सूच्या द्विगुणसूत्रया'। कर्णरन्ध्रे विशेषमाह देवलः—'कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः। तं दृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः॥' शालङ्कायनः—'अविद्धकर्णैर्यद्भुक्तं लम्बकर्णैस्तथैव च दग्धकर्णैश्च यद्भुक्तं तद्वै रक्षांसि गच्छति' इति। ब्राह्मणादिवर्णविशेषे तत्सूच्यभिधानं तत्सम्बन्धिविशेषश्च स्मृतिभ्योऽनुसन्धेयः।

अब्दपूर्त्तिमुहूर्तः—

अथ ग्रन्थकारानुक्तोऽप्यवसरप्राप्तोऽब्दपूर्त्तिमुहूर्तः प्रोच्यतेऽस्माभिः। तत्र सौराब्दान्ते यद्दिने जन्मनक्षत्रं तद्दिनेऽब्दपूर्त्तिः कार्या। उक्तं च विधिरत्ने—'अब्देन सौरेण शिशोः समान्ते बालं सुसंस्नाप्य च जन्मधिष्ण्ये। कृत्वाऽऽयुषो वृद्धिकरं च कर्म तं धारयेद्वस्त्रसुवर्णसूत्रम् ॥' नृसिंहोऽपि—'सौरेणाब्दान्तजन्मर्क्षे शिशुं संस्नाप्य शास्त्रतः। आविध्य हेमसूत्रं च राश्यादावनुकूलभे॥ नवक्षोमाम्बरादीनि यथार्ह धारयेत्तदा।

तत्र तिथिनिर्णयः—

अत्र खण्डनक्षत्रादौ निर्णयमाह वृद्धगर्गः—'उदयव्यापिजन्मर्क्षं तस्माद्ग्राह्यं तु जन्मतः। सङ्गव्यापिनि खण्डर्क्षे तत्र जन्मकरं शुभम्।' इति।

प्रत्यब्दमब्दपूर्त्तिकृत्यं कार्यम्—

न केवलं प्रथमवर्ष एव अब्दपूर्तिः किन्तु प्रत्यब्दान्तेऽपि कार्या। यदाह गर्गः—'यस्मिन्दिने सवितरि तन्नक्षत्रदिन भवेत्। प्रत्यब्दान्ते च नक्षत्रे विधिं वक्ष्ये नृणां परम् ॥' इति। दाक्षिणात्यशिष्टाचारस्तु जन्ममासीयजन्मतिथावब्दपूर्त्तिर्भवतीति दृश्यते। इत्यब्दपूर्त्तिः॥ २५॥

पीताम्बरा—दोनों कर्णछेदन की लग्न शुद्धि—लग्न से अष्टम स्थान ग्रह रहित हो, केन्द्र त्रिकोण और ३, ११, में शुभग्रह बैठे हों, लग्न में गुरु शुक्र की राशियाँ (२, ७, ९, और १२) हों, पापग्रह ३,६,११ में हो, लग्न में बृहस्पति हो तो कर्णवेध समय उत्तम कहा जाताा है॥ २५॥

अथ 'चूडावर्षात्' इत्यादिना चौलमुहूर्त्तं विविक्षुस्तन्निषेधकं प्रसङ्गतोऽन्यकर्मनिषेधकं च कालं स्रग्धरयाऽऽह—

गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठापरिणयदहनाधानचौलोपवीत-
क्षोणीपालाभिषेकोदवसितविशनं नैव याम्यायने स्यात् ।
नो वा बाल्यास्तवार्द्धे सुरगुरुसितयोर्नैव केतूदये स्यात्
पक्षं वार्द्धं च केचिज्जहति तमपरे यावदीक्षां तदुग्रे ॥ २६ ॥

पीयूषधारा—गीर्वाणेति । गीर्वाणा देवाः, अम्बु जलं, लक्षणया जलाशयः । तयोः प्रतिष्ठा गीर्वाणप्रतिष्ठा जलाशयप्रतिष्ठा चेत्यर्थः । परिणयो विवाहः, दहनाधानमग्न्याधानम्, चौलं प्रसिद्धम्, उपवीतं व्रतबन्धः, क्षोणीपालाभिषेकोदवसितविशनं क्षोणीपालाभिषेकः राजाभिषेकः, उदवसितविशनं गृहप्रवेशः, गृहगेहोदवसितम्' इत्यमरेणाभिधानात् । अत्र समाहारद्वन्द्वः । एतानि कर्माणि उपलक्षणत्वादन्यान्यप्यनियतकालानि शुभकर्माणि याम्यायने दक्षिणायने नैव स्युः । स्यादित्येकवचनं मूले समाहारद्वन्द्वैकत्वाभिप्रायम् । यदाह महेश्वरः—'चूडाकर्मनृपाभिषेकननिलयाग्न्याधानपाणिग्रहान्देवस्थापनमौञ्जिबन्धनविधीन् कुर्यान्न याम्यायने' इति । किन्तूत्तरायणे कुर्यात् । तदुक्तं रत्नमालायाम्–'गृहप्रवेशत्रिदशप्रतिष्ठाविवाहचौलव्रतबन्धपूर्वम् । सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद्गर्हितं तत्खलु दक्षिणे च ॥' विशनमिति ल्युट् प्रत्ययस्य कित्त्वाद्यभावात् । 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणः प्राप्तः 'संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः' इति अनित्यत्वान्न भवति । ज्ञापकं चात्र 'ओर्गुणः' इति सूत्रम् । यथा 'ओरोत्' इति वक्तव्ये गुणग्रहणं संज्ञापूर्वको विधिरनित्यो यथा स्यात् । तेन स्वायम्भुवमिति सिद्धम् । तथा च महेश्वरेणाप्युक्तम्–'भूपानां मृदुभैर्ध्रुवैः प्रविशनं यात्रानिवृत्तौ शुभम्' इति । अथवा व्यक्तमेव पठितव्यं 'गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठापरिणयदहनाधानगेहप्रवेशाश्चौलं राजाभिषेको व्रतमपि च शुभदं नैव याम्यायने स्यात्' इति । अथ सुरगुरुसितयोर्बृहस्पतिशुक्रयोर्बाल्यास्तवार्द्धक्ये च बालत्वेऽस्ते वार्द्धक्ये एतानि कर्म्माणि नो वा कुर्यात् । इदं प्रागुक्तमपि पुनर्लिखितं तत्स्मरणाविच्छेदार्थम् । मूलवाक्यान्यपि प्रागेवोक्तान्यस्माभिः । वृद्धशब्दस्य गुणवाचित्वात् 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इति ष्यञ् । वार्द्धकमिति तु 'द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च' इति मनोज्ञादेराकृतिगणत्वाद् वुञ् ।

केतूदये कर्तव्यकार्येषु त्याज्यदिनसंख्याविचारः—

केतूदये धूमकेतूदये शुभकर्माणि नैव भवन्ति । तदुक्तं चण्डेश्वरेण—'केतोरस्तदिनादूर्ध्वं सप्ताहं मङ्गलं त्यजेत् । यावत्केतूदयस्तावदशुद्धः समयो हि सः ॥' इति । अत्र केचित्केतूदये जाते सति पक्षं पञ्चदश दिनानि जहति वर्जयन्ति । उक्तं च वराहेण—'दृष्टः षोडशवासरान्न शुभदः कैश्चित्प्रदिष्टः शिखी' इति । शिखी केतुः, दृष्ट इति वचनाद्यावन्न दृष्टस्तावददोष इत्यर्थः । अत्र ग्रंथकृता एकदिनत्यागोऽक्षरबाहुल्यभीतेः कृतः । केचित्तु वा पक्षान्तरे अर्द्धं पक्षार्द्धं सप्त-दिनानि केतूदयानन्तरं जहति । तदप्युक्तं वराहेण—'केतूदये सप्त दिनानि चोर्ध्वं विवाहयात्रादिषु गर्हितानि । दिनानि शेषाणि वदन्ति नूनं शुभानि रैभ्यप्रमुखा मुनीन्द्राः ॥' इति । ननु कैश्चित्केतूदयदर्शनं यावन्मङ्गलकृत्यानि निषिद्धानि । अन्यैस्तु केतूदयानन्तरं षोडशाष्टौ वा दिनानि निषिद्धानि । तत्कथमनयोर्वाक्यतेरयत आह तमिति । अपरे आचार्याः तं केतुं यावदीक्षां

यावद्दर्शनं यज्जहति तदुग्रे केतौ द्वित्रिचूडे तामसकीलकादावतिदुष्टफले द्रष्टव्यम्। तेन भिन्न-
विषयत्वाद्दोषाभावः।

तेषां केतूनां स्वरूपं फलानि च गर्गेणोक्तानि—

'त्रिशिखाश्च त्रिताराश्च रक्ता लोहितरश्मयः। प्रायशस्तूत्तरामाशां सेवन्ते नित्यमेव ते ॥
लोहिताङ्गात्मजा ज्ञेया ग्रहाः षष्टिः समासतः। नामतः कौङ्कुमा ज्ञेया राज्ञां संग्रामकारकाः ॥
कृष्णाभाः कृष्णपर्यन्ताः सङ्कुलाः कृष्णरश्मयः। राहुपुत्रास्त्रयस्त्रिंशत्कीलकाश्चातिदारुणाः ॥'
इत्यादि। वयं तु ब्रूमः। यावद्दर्शनं केतूदयो निषिद्ध इत्युक्तं तदुग्रे ब्रह्मपुत्राख्ये केतौ महा-
दुष्टफले ज्ञेयम् उक्तं च लोमशसंहितायाम्—'चातुर्मास्येऽथ पौषे मधु भवति रवौ ब्रह्मपुत्रोद्गमे
वा दम्पत्योरेव नाशः प्रचुरमुनिगणैः कीर्त्तितो वै विवाहे ॥' इति मधुभं मीनः, ब्रह्मपुत्रः केतुः।

केतुलक्षणं तत्र वर्ज्यानि च—

विवाहस्योपलक्षणत्वादन्यान्यपि शुभकर्माणि निषिद्धानि—'केतोरस्तदिशादूर्ध्वं सप्त
रात्राणि वर्जयेत्। ब्रह्मपुत्रोद्गमे चैव व्रतं यात्रां च मङ्गलम् ॥' इति ज्योतिर्निबन्धकृदुक्तेश्च।
ब्रह्मपुत्रलक्षणं सफलं वसिष्ठेनोक्तम्—'त्रिशिखस्त्रिवर्णयुक्तो ब्रह्मसुतो ब्रह्मदण्डनिभः। अनियत-
दिक्प्रभवोऽसौ कान्तकरो ब्रह्मदण्डाख्यः ॥' को ब्रह्मा, तस्याप्यन्तं करोति तत्रान्येषां का कथे-
त्यर्थः अत एवोक्तं वराहेण—ब्रह्मसुत एक एव त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभिर्युगान्तकरः। अनियत-
दिक्सम्प्रभवो विज्ञेयो ब्रह्मदण्डाख्यः ॥' इति ॥ २६ ॥

पीताम्बरा—चौल (चूडा) मुहूर्त प्रसंग से उसके निषेध के साथ अन्य कर्म निषेध समय भी बताया जा रहा है—देव और जलाशय की प्रतिष्ठा, विवाह, अग्नि आधान, गृहप्रवेश, मुण्डन, राज्याभिषेक और यज्ञोपवीत संस्कार, दक्षिणायन में तथा गुरु शुक्र के बाल्य, ग्रस्त वार्धक्य और केतूदय में भी नहीं किये जाने चाहिए। उपलक्षण से अन्य अनियतकालीन शुभ कर्म भी उक्त समयों में नही होने चाहिए।

कुछ आचार्यों के मत से केतु का उदय एक पक्ष तक मतान्तर से पक्षार्ध भी शुभ कर्म में त्याज्य है।

तथा कई एक आचार्यों के मत से जब तक केतु का उदय देखा जाता है तब तक शुभ कार्य नहीं करने चाहिए।

केतु अनेक भांति के और बड़े लम्बे समय के अनन्तर लम्बे समय तक देखे जाते हैं। अतः पक्ष या पक्षार्ध का त्याज्य मत ही सौविध्यप्रद होगा।

केतुओं के उदयों के सम्बन्ध में प्राचीन ज्योतिष संहिताकारों और आधुनिक खगोल वेत्ताओं ने गणित कौशल के साथ कुछ तथ्य बताये हैं जो ग्रन्थान्तरों में सुलभ है।

अतः यहाँ पर प्रकृत विषय का परिष्कार विशेष अनावश्यक है ॥ २६ ॥

अथ गुरुशुक्रयोर्बाल्ये वार्द्धक्ये च शुभं कर्म त्याज्यम्। तत्रावसरप्राप्तां तदीयदिनसङ्ख्यामनुष्टुभाऽऽह—

पुरः पश्चाद् भृगोर्बाल्यं त्रिदशाहं च वार्द्धकम्।
पक्षं पञ्चदिनं ते द्वे गुरोः पक्षमुदाहृते ॥ २७ ॥

पीयूषधारा—पुरः पश्चादिति । भृगोः शुक्रस्य पुरः पूर्वस्यां दिश्युदितस्य पश्चाद्वा तत्र यथा सङ्ख्य स्यात् । पूर्वस्यां त्रिदिनं पश्चाद्दशाहं बालत्वं शुक्रस्येत्यर्थः । च पुनः भृगोर्वार्द्धक्यं वृद्धत्वं पूर्वस्यां पक्षं पञ्चदश दिनानि पश्चात्पञ्च दिनानि । गुरोरस्ते द्वे बाल्यवार्द्धक्ये पक्षमुदाहृते कथिते । यदाह नारदः—पश्चात्प्रागुदितः शुक्रो दशत्रिदिवसं शिशुः । वृद्धः पञ्चदिनं पक्षं गुरुः पक्षं च सर्वतः ॥' इति ॥ २७ ॥

पीताम्बरा—गुरु शुक्र के बाल्य वार्धक्य के त्याज्य कर्म—गुरु ग्रह के पूर्वोदय के अनन्तर के ३ दिन और पश्चिमोदय के अनन्तर के १० दिन बालत्व दोष रहता है तथा शुक्र के पूर्वास्त होने के पहिले के १५ दिन और पश्चिम में अस्त होने के पहिले ५ दिनों तक शुक्र का वृद्धत्व होता है ।

गुरु के दोनों बाल और बार्द्धक्य ये १५ दिनों का होता है ॥ २७ ॥

परमते बाल्यं वार्द्धक्यं चानुष्टुभाऽऽह—

ते दशाहं द्वयोः प्रोक्ते कैश्चित्सप्तदिनं परैः ।
त्र्यहं त्वात्ययिकेऽप्यन्यैरर्द्धाहं च त्र्यहं विधोः ॥ २८ ॥

पीयूषधारा—ते दशाहमिति । दिङ्नियमं त्यक्त्वा द्वयोर्गुरुशुक्रयोस्ते बाल्यवार्द्धक्ये दशाह दशदिनं प्रोक्ते कैश्चित् । समाप्तदिने बाल्यवार्द्धक्ये गुरुशुक्रयोः प्रोक्ते । तदाह महेश्वरः—
'बालः शुक्रो दिवसदशकं पञ्चकं चैव वृद्धः । पश्चादह्नां त्रितयमुदितः पक्षमैन्द्र्यां क्रमेण ।
जीवो वृद्धः शिशुरपि सदा पक्षमन्यैश्च सूतौ वृद्धौ प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरैः सप्तरात्रम् ॥' इति ।

केशवार्कोऽपि—'क्षिपति सप्तदिनान्युदयास्तयोः सुरगुरुर्भृगुजश्च गतैष्ययोः' इति । अन्यैरपि पुनस्त्र्यहं त्रिदिवसं बाल्यवार्द्धक्यं प्रोक्तम् । उक्तं च गर्गेण—'शेषे तु देशे त्रिदिनं वदन्ति' इति ।

तत्र मतान्तराणां व्यवस्था—

अथैषां वाक्यानां गतिमाह—आत्ययिके इति । अत्ययः कार्यावश्यम्भावः स प्रयोजनं यस्येति 'प्रयोजनम्' इति ठक् लग्नान्तराभावे समयशुद्धयभावे वा अतीतकालस्य वटोः अवश्यं देयायाः कन्यायाः गुणवद्वरोपलब्धौ वा यथासम्भव दश-सप्त-त्रिदिनानां त्याग उदितो नान्यथेत्यर्थः ।

तत्र देशभेदाद् व्यवस्था—

वयं तु देशभेदेनैषां वाक्यानां व्यवस्थां ब्रूमः । तदाह गर्गः—'शुक्रो गुरुः प्राक्परतश्च बालो विन्ध्ये दशावन्तिषु सप्तरात्रम् । वङ्गेषु हूणेषु च षट् च पञ्च शेषे तु देशे त्रिदिनं वदन्ति ॥' इति ।

चन्द्रस्य बाल्यवार्द्धक्यदिनानि—

चन्द्रस्य विशेषमाह–अर्द्धाहमिति । विधोस्तु बाल्यवार्द्धक्ये क्रमेणार्द्धाहं त्र्यहं च भवतः । बाल्यमर्द्धं दिनं वार्द्धक्यं त्रिदिनं चन्द्रस्येत्यर्थः । उक्तं च। अस्ते विधौ मृत्युमुपैति कन्या बालेऽन्यसत्ता विधवा च वृद्धे ॥' ननु त्रिविक्रमेण चन्द्रस्यैकदिनं बाल्यं प्रोक्तमिति तस्य वाक्यस्य का गतिः । न काचित् । किन्तु निर्मलत्वादुपेक्ष्यमेतद्वाक्यं । साक्षाद्वसिष्ठेनापीदमदूषि—'येनोक्तमेकं

दिवसं शिशुत्वमित्येतदिन्दोस्तदयुक्तमेव । महत्त्वशीघ्रत्वसुधाययत्वाद्दिनार्द्धमष्टौ दिननिष्ठितत्वात् ॥'

इति । कश्यपेन तु बालोऽपीन्दुः शुभ एवोक्तः—'वृद्धचन्द्रः स्त्रियं हन्ति पतिं हन्त्यस्तमागतः । यतोऽस्यामृतरश्मित्वाद् बालोऽपि शुभदः शशी ॥' इति । अत एव सम्पूर्णायामपि शुक्लप्रतिपदि द्वितीयादिने द्वितीयायां प्रातर्यज्ञोपवीतादीनि शुभकृत्यानि शिष्टाः समाचरन्ति ॥ २८ ॥

पीताम्बरा—आचार्यों के मतान्तरों से बाल्य और वार्द्धक्य—गुरु शुक्र के उदय-अस्त में बाल्य और वृद्धत्व १०-१० दिन का और किन्हीं आचार्यों के मत से ७ दिन का बताया गया है अत्यन्त आवश्यकता पर ३ दिन का ही बाल-वृद्धत्व भी बताया गया है ।

चन्द्रमा का बाल्य दोष आधे दिन और वार्द्धक्य दोष ३ दिन का कहा गया है ।
अमृत रश्मि होने से बाल चन्द्रमा को भी आचार्यों ने शुभाय कहा है ॥ २८ ॥

अथैवं निषिद्धकालमुक्त्वेदानीं चौलमुहूर्त्तं स्रग्धरारथोद्धतावृत्ताभ्यामाह—

चूडावर्षात्तृतीयात्प्रभवति विषमेऽष्टार्करिक्ताद्यषष्ठी-
पर्वोनाहे विचैत्रोदगयनसमये ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानाम् ।
वारे लग्नांशयोश्चास्वभनिधनतनौ नैधने शुद्धियुक्ते
शाक्रोपेतैर्विमैत्रैर्मृदुचरलघुभैरायषट्त्रिस्थपापैः ॥ २९ ॥

पीयूषधारा—चूडावर्षादिति । तृतीयाद्वर्षादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी । तेन गर्भाधानकालाज्जन्मकालाद्वा तृतीये विषमे वर्षे पञ्चमे वा चूडाकरणं प्रभवति कृतं सच्छुभोदर्कं भवतीत्यर्थः । यदाह वसिष्ठः—'तृतीये पञ्चमेऽब्दे वा स्वकुलाचारतो हितम् । चौलं शिशूनां यत्नेन स्वगृह्योक्तविधानतः ॥ आधानतो जन्मतो वा सप्तमाब्देऽपि कारयेत् ।' स्वकुलाचारत इत्यनेन येषां कुले पार्थक्येन चूडाकरणं तत्र मुहूर्तविचारः । येषां तूपनीत्या सहेष्यते इति पक्षस्तेषामुपनयनमुहूर्त्तेन सिद्धत्वान्न पृथक् मुहूर्त्तविचारोन्मेषः अत एवोक्तं याज्ञवल्क्येन—'चूडा कार्या यथाकुलम्' इति । मनुना प्रथमवर्षे उक्तम्—'चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः । प्रथमेऽब्दे द्वितीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥' एवं बहुकालोक्तौ यथागृह्यं व्यवस्था द्रष्टव्या । स्वगृह्ये विशेषकालानुक्तौ तु समबलत्वात्सर्वेषां विकल्पः । विशेषमाह गुरुः—'तृतीयेऽब्दे शिशोर्गर्भाज्जन्मतो वा विशेषतः । पञ्चमे सप्तमे वापि स्त्रियाः पुंसोऽथवा समम् ॥' इति ।

चौले तिथयः—

अष्टेति । अष्ट अष्टमी, अर्कः द्वादशी, रिक्ताः प्रसिद्धाः, आद्या प्रतिपत्, षष्ठी प्रसिद्धा, पर्वाणि अष्टमीचतुर्दशीपूर्णिमाऽमावास्यासंक्रान्तयः, एतैरूने रहितेऽह्नि । अत्र तत्पुरुषसमासे—'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टच् । 'नस्तद्धिते' इति टिलोपः । अष्टम्यादितिथीस्त्यक्त्वा शेषेषु तिथिषु चूडा स्यादित्यर्थः यदाह गुरुः—'द्वादशीं चाष्टमीं रिक्तां षष्ठीं प्रतिपदं तथा । हित्वा शेषेषु तिथिषु क्षौरकर्म शुभावहम् ॥' कश्यपः—'पञ्चपर्व तिथिं रिक्तां त्यक्त्वाऽन्यदिवसे शुभम्' इति । अत एवाह वसिष्ठः—'पञ्चमी सप्तमी चैव दशम्येकादशी तथा । त्रयोदशी तृतीया च क्षुरकर्मशुभावहा ॥ इति । चकाराद् द्वितीयाऽपि । ननु सप्तमीत्रयोदश्योर्गलग्रहत्वात्कथं तयोर्ग्रहणम् । यदाह गुरुः—विद्यारम्भो व्रतोद्देशः क्षौरं चैव विशेषतः । गलग्रहे न कर्तव्यं

यदीच्छेत्पुत्रजीवितम् ।।' यदि चेत्, उच्यते । वैदिकं मुण्डनं चौलमित्युच्यते । तद्विषयको विधिः । अवैदिकमुण्डनं सुखार्थं यत्क्षौरमुच्यते । क्षुरस्य कर्म क्षौरमिति सामान्यव्युत्पत्तेः अतस्तद्विषयको निषेध इति वयं ब्रूमः । अन्ये देशाचारतो व्यवस्थामाहुः । तदयुक्तं विरोधाभावात् ।

चैत्रे चूडा न कार्या—

विचैत्रेति । चैत्ररहिते उत्तरायणे चूडा स्यात् । शुभाशुभप्रकरणाभिहितो जन्ममासनिषेधोऽत्रापि ध्येयः—तदाह राजमार्त्तण्डः—'उत्तरवर्त्मनि सवितरि चूडाकरणं जगुर्बुधा यवनाः । चैत्रं हित्वा पापग्रहदिवसं जन्ममासं च' इति । ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानां वारे लग्नांशयोश्चेति । सौम्यग्रहवारे सौम्यग्रहाणां लग्ने कर्कमिथुनवृषकन्यातुलाधनुर्मीनानामन्यतमे लग्ने तेषामेव च नवांशे चूडा स्यात् । 'चन्द्रज्ञगुरुशुक्राणां वारलग्नांशकेषु च' इति कश्यपोक्तः । विशेषमाह पराशरः—सितेज्यसौम्यवारेषु क्षौरं पक्षद्वये हितम् । इन्दुवारः सिते पक्षे वाराः शेषा न शोभनाः ।।' इति । प्रयोगपारिजाते पापवाराणामप्यपवादः पठितः—'पापग्रहाणां वारेऽपि विप्राणां तु शुभो रविः । क्षत्रियाणां तु भूसुनुर्विट्शूद्राणां शनिः शुभः' इति । अस्वभनिधनतनाविति । भं लग्नं राशिश्च स्वस्य भे स्वभे स्वभाभ्यां निधनमष्टमलग्नं तत्र विद्यते यस्मिन् तनौ स्वजन्मलग्नजन्मराशिभ्यामष्टमलग्नरहिते लग्ने चूडा स्यादित्यर्थः । तथा नैधने अष्टमस्थाने शुद्धिसंयुक्ते शुद्धिः शुक्रव्यतिरिक्तसर्वग्रहराहित्यं तद्युक्ते सति चूडा स्यात् । उक्तं च कश्यपेन—'नैधने शुद्धिसंयुक्ते लग्नराशौ न नैधने' इति । पराशरः—अष्टमस्था ग्रहाः सर्वे नेष्टाः शुक्रविवर्जिताः । शुक्रश्च निधने क्षौरे सर्वसम्पत्करः शिशोः ।।' इति । शाक्रेति । शाक्रोपेतैर्ज्येष्ठायुक्तैर्विमैत्रैरनुराधारहितैर्मृदुचरलघुभिर्द्वादशनक्षत्रैरुपलक्षिते काले चूडा स्यात् । यदाह वसिष्ठः—'अदितिद्वितये पौष्णद्वितये श्रवणत्रये । हस्ताच्च त्रितये शाक्रे सैन्दवे चौलमीरितम् ।।' कश्यपोऽपि—'दास्रेन्द्वदितिपुष्येन्द्रभेषु हस्तत्रयेऽपि च । विष्णुत्रये च पौष्णर्क्षे चौलकर्म शुभप्रदम्' इति । अविहितनक्षत्रेषु जन्मनक्षत्रं प्रशस्तमित्याह कश्यपः— नवान्नप्राशने चौले व्रतबन्धेऽभिषेचने । शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि ।।' इति । नारदादिवाक्यान्यन्नप्राशनेऽभिहितानि । अत्र केचित् । जन्मनक्षत्रपदं तारापरं ज्ञेयमित्याहुः । तथा चोक्तं लल्लेन—'हित्वैकं जन्मर्क्षं द्वे तारे जन्मसंज्ञिते शुभदे । उद्वाहे चोपनये यात्रायामन्नभोजने क्षुरे कार्ये ।।' इति । तत्र । अवैदिकक्षुरविषयत्वात् । 'जन्मर्क्षे कर्मनक्षत्रे' इति गुरुवचनमपि तद्विषयमेव । वैदिकक्षुरपरं चैतत्कश्यपादिवाक्यमिति समञ्जसम् ।

पापग्रहचन्द्रस्थित्या निमित्तान्तराणि—

अथ लग्नबलमाह—आयेति । एकादशषष्ठतृतीयस्थानस्थितैः पापग्रहैश्चोपलक्षिते काले चूडा स्यात् । 'अषष्ठान्त्यारिगे चन्द्रे पापैस्त्र्यायारिसंस्थितैः' इति कश्यपोक्तेः ।। २९ ।।

पीताम्बरा चौल (मुण्डन) मुहूर्त—गर्भाधान या जन्म समय से तीसरे या विषय वर्षों में मुण्डन संस्कार होता है । कुलाचार से केवल पृथक् चूडाकरण संस्कार के लिए मुहूर्त की आवश्यकता है । उपनयन के समय ही चूडाकरण किया जाय तो चूडाकरण मुहूर्त उपनयन मुहूर्त के अन्तर्गत हो जाता है । मनु वचनो में प्रथम और द्वितीय वर्षों में चूडाकरण व्यवस्था है ।

अष्टमी, द्वादशी, रिक्ता, षष्ठी और पर्वतिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में, चैत्र मास रहित उत्तरायण समय में, बुध, चन्द्र, गुरु और शुक्र वारों में जन्मलग्न-जन्मराशि से अष्टम

राशि का छोड़कर शेष अष्टम शुद्ध लग्न में, जिससे ३, ६, ११ स्थानों में पापग्रह हों, अनुराधा रहित और ज्येष्ठा युक्त मृदु चर और लघु संज्ञक नक्षत्रों में चौल (मुण्डन) मुहूर्त उत्तम कहा गया है। आचार्य कश्यप के मत से उक्त नक्षत्रों के अतिरिक्त जन्म नक्षत्र में भी चूडाकरण (मुण्डन) मुहूर्त की व्यवस्था है ॥२९ ॥

किञ्च—

क्षीणचन्द्रकुजसौरिभास्करैर्मृत्युशस्त्रमृतिपङ्गुताज्वराः ।
स्युः क्रमेण बुधजीवभार्गवैः केन्द्रगैश्च शुभमिष्टतारया ॥ ३० ॥

पीयूषधारा—क्षीणेति । क्षीणचन्द्रः, कुजो मङ्गलः, सौरिः शनिः, भास्करः सूर्यः, एतैः केन्द्रस्थैः क्रमेण यथासंख्यं मृत्युः मरणं, शस्त्रान्मृतिः, पङ्गुता खञ्जता, ज्वरः प्रसिद्धः, एतानि फलानि स्युर्भवेयुः । बुधजीवभार्गवैस्तु केन्द्रस्थैः शुभं कल्याणकारि फलं चूडाकर्त्तुः स्यात् । तदुक्तं रत्नमालायाम्—'क्षौरर्क्षेषु स्वकुलविधिना चौलमाहुर्मुनीन्द्राः केन्द्रं यातैर्गुरुभृगुबुधैस्तत्र सूर्ये ज्वरः स्यात् । शस्त्रान्नाशो धरणितनये पङ्गुता चार्कपुत्रे शीतज्योतिष्यपचिततनौ निश्चितं नाशमेति ।।' केन्द्रव्यतिरिक्तस्थानफलमपि तत्रैव । 'धनव्ययत्रिकोणगैरसद्ग्रहैर्मृतावपि क्षुरक्रिया न शोभना शुभैस्तु पुष्टिकारिणी' इति । मृतौ तु शुक्र एव शस्तो नान्ये शुभग्रहाः । प्रागुक्तपराशरवाक्यस्वरसात् । क्षुरक्रिया चौलम् । इष्टतारयेति । च पुनरिष्टतारया गोचरप्रकारेणोक्तया शुभफलदतारया चूडा स्यात् । उक्तं च राजमार्त्तण्डेन—'रविशुद्धौ गृहकरणं रविगुरुशुद्धौ व्रतोद्वाहौ । क्षौरं ताराशुद्धौ शेषं चन्द्राश्रितं कर्म ।।' इति । ज्योतिर्निवन्धे—'विवाहे सविता शस्तो व्रतवन्धे बृहस्पतिः । क्षौरे ताराविशुद्धिश्च शेषे चन्द्रबलं बलम् ।।' इति ।

सोमबुधवारमात्रे क्षौरम्—

चौलप्रयोजनमाह वसिष्ठः—

'सर्वेषामेव वर्णानां चूडाकर्मविधिः स्मृतः । केशमूलं पिता ज्ञेयः केशाग्रं जननी तथा ।।
चौलेनैवायुषो वृद्धिश्चौलेनैवायुषः क्षयः । तस्माच्चौलं प्रयत्नेन कारयेद् बुद्धिमान्नरः ।।

व्यवहारनिबन्धे चौलारम्भे विशेषमाह श्रीपतिः—केशवमानर्त्तपुरं पाटलिपुत्रं पुरीमहिच्छत्राम् । दितिमदितिं च स्मरतां क्षौरविधौ भवति कल्याणम्' इति । यत्तु कैश्चिदुक्तम्—'चन्द्रशुद्धिर्यदा नास्ति तारायाश्च विशेषतः । अक्षौरभेऽपि कर्त्तव्यं वारेण बुधोसोमयोः' इति तत्सामान्यक्षौरविषयम् ।। ३० ।।

पीताम्बरा—क्षीण चन्द्रमा, मंगल, शनि और सूर्य ग्रह चूडाकरण लग्न से केन्द्र स्थित होने पर क्रमशः मरण, शस्त्रादि से मृति, पंगुता (लंगड़ा) और ज्वर रोग होता है।बुध, बृहस्पति और शुक्र केन्द्रस्थ होने पर कल्याणप्रद शुभ फल होता है। और कर्म में शुभ तारा फलदा होनी चाहिए ।।३० ।।

अथ सगर्भायां स्वमातरि सत्यां शिशोश्चौलार्थं कालमनुष्टुभाऽऽह—

पञ्चमासाधिके मातुर्गर्भे चौलं शिशोर्न सत् ।
पञ्चवर्षाधिकस्येष्टं गर्भिण्यामपि मातरि ॥ ३१ ॥

पीयूषधारा—पञ्चेति । चौलाधिकारिणः शिशोर्मातुर्गर्भे पञ्चमासेभ्योऽधिके सति चौलं न सत् शुभफलदातृ नैव स्यात् । अतः पञ्चमासेभ्यः पूर्वं चौलं कृतं सच्छुभफलमित्यर्थः । तदुक्तं गृह्यपरिशिष्टे—'चूडाकर्म न कर्त्तव्यं यस्य माताऽस्ति गर्भिणी । करोति यदि मन्दात्मा तदा गर्भस्य नाशनम् । पित्रोर्मृति वदन्त्येके चतुरब्दान्तरे स्फुटम्' इति । वशिष्ठः—'पुत्रचूडाकृतौ माता गर्भिणी यदि वा भवेत् । विपद्यते गुरुश्चैव दम्पती शिशुरब्दतः ।। गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म च । पञ्चमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत्' इति ।

पञ्चवर्षातिक्रमे चौले नैष नियमः—

अस्याप्यपवादमाह—पञ्चेति । पञ्चवर्षाधिकस्योल्लङ्घितपञ्चमवर्षस्य शिशोर्मातरि गर्भिण्यामपि सत्यां पञ्चमासादध ऊर्ध्वं विहितकाले चौलमिष्टं कल्याणकारि भवेत् । अतो बालो यावत्पञ्चवर्षो न भवति तावत्पर्यन्तं निषेध इत्यर्थः । तदाह नारदः—सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् । पञ्चमाब्दात् प्रागथोर्ध्वं गर्भिण्यामपि कारयेत्' ।

उपनयनेन सह चौलं मातरि गर्भिण्यां सत्त्यां भवति—

यदा तूपनयनेन सह चौलं चिकीर्षितं तदा विशेषमाह ज्योतिर्नारदः—सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते' इति । अत्र तु पञ्चवर्षाणां न्यूनाधिकभावो नापेक्षितः सर्वापवादकत्वादस्य ।

मातरि गर्भिण्यां मौञ्जी न भवति—

एवं पार्थक्येन मौंज्यपि सगर्भायां सत्यां संस्कार्यमातरि न भवति । तदुक्तम्—सूनोर्मातरि गर्भिण्यां मौञ्जीचूडे न कारयेत् । गते तु पञ्चमे मासे गर्भादीनां मृतिर्भवेत्' ।। ३१ ।।

पीताम्बरा—चौलाधिकारी बालक की गर्भिणी माता के गर्भ की स्थिति ५ मास से अधिक होने पर क्षौर निषेध—मुण्डन किये जाने वाले बालक की माता की ५ महीने तक की गर्भ स्थिति में मुण्डन हो सकता है । ५ महीने से अधिक के गर्भ की स्थिति में मुण्डन का निषेध है । यदि बालक की आयु ५ वर्ष से अधिक की हो गई हो तो ५ महीने से अधिक महीने की गर्भवती माता की स्थिति में भी चौल कर्म का निषेध नहीं है ।। ३१ ।।

अथ चौले ताराबलमावश्यकमित्युक्तम् । तत्र दुष्टायां तारायां सत्यामपवादं शालिन्याऽऽह—

तारादौष्टचेऽब्जे त्रिकोणोच्चगे वा क्षौरं सत्स्यात्सौम्यामित्रस्ववर्गे ।
सौम्ये भेऽब्जे शोभने दुष्टतारा शस्ता ज्ञेया क्षौरयात्रादिकृत्ये ।। ३२ ।।

पीयूषधारा—तारादौष्टचे इति । ताराणां दुष्टत्वं गोचरप्रकरणेऽभिहितं तत्त एवावधार्यम् । तस्मात्तारादौष्टचे सत्यपि क्षौरं चौलं सच्छोभनं स्यात् । कस्मिन् सति । अब्जे चन्द्रे त्रिकोणगे नवमपञ्चमस्थानस्थिते अथवोच्चगे वृषराशिस्थे, अथवा सौम्यानां बुधगुरुशुक्राणां वर्गे षड्वर्गे अथवा स्वस्यैव षड्वर्गे सति । उक्तं च ज्योतिस्तन्त्रे—'सौम्यसुहृन्निजवर्गे चन्द्रे तुङ्गत्रिकोणगे वाऽपि । क्षौरादिकोपकरणे तारादोषो न दूषयति' आदिशब्देन यात्रा । 'विपत्तारे गुडं दद्यात्' इत्यादयोऽपि तारादौष्टयापवादाः प्रागुक्ताः । तेऽप्यत्रोह्याः । शुभतारायां गुणमाह—सौम्ये भे इति । सौम्ये भे विहिते नक्षत्रे सति अब्जे शोभनचन्द्रे गोचरोक्तेऽष्टमस्थानस्थे सति दुष्टताराऽसमीचीनतारापि चेत्स्यात् तदा क्षौरयात्रादिमङ्गलकृत्येषु शस्तातिप्रशस्ता निखिलदोषाण-

वादिका स्यादित्यर्थः । तदप्युक्तं ज्योतिस्तन्त्रे—'ऋक्षं दग्धं तिथी रिक्ता चन्द्रश्चाष्टमगस्तथा । तत्सर्वं नाशयेत्तारा षट् पञ्च नवमी तथा ।। जन्माख्या ह्यष्टमी तारा न शुभा नापि निन्दिता' इति ।। ३२ ।। इति चौलप्रकरणम् ।

पीताम्बरा—ताराबल की आवश्यकता और अनिष्ट तारा का अपवाद—तारा दुष्ट हो (३, ५, ७) किन्तु यदि चन्द्रमा, त्रिकोण, अपने उच्च, शुभग्रह, अपने मित्र या अपने ही षड्वर्ग की राशि में हो तो मुण्डन संस्कार हो सकता है ।

चन्द्रमा शुभग्रह की राशि में गोचर से भी शुभ स्थिति का हो तो दुष्ट तारा (३, ५, ७) भी क्षौर (हजामत) और यात्रा के लिए अहित कारक नहीं होती ।। ३२ ।।

अथ चौलादिकृत्ये कालविशेषनिषेधमनुष्टुभाऽऽह—

ऋतुमत्याः सूतिकायाः सूनोश्चौलादि नाचरेत् ।
ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेऽपि नेष्यते ।। ३३ ।।

पीयूषधारा—ऋतुमत्या इति । ऋतुः स्त्रीधर्मः स यस्या अस्तीति ऋतुमती तस्याः, तथा सूतिकायाः जातापत्ययाः सूनोः पुत्रस्योपलक्षणात्वात्कन्याया वा चौलोपनयनविवाहादिकमुक्तं वक्ष्यमाणं च कृत्यं नाचरेत् न कारयेत् । उक्तं च प्रचेतसा—'यस्य माङ्गलिकं कृत्यं तस्य माता रजस्वला । वैधव्यं जायते तत्र नृनार्योः पाणिपीडने ।।' पाणिपीडने वैधव्यम्, अन्यत्र मृत्युरित्यर्थः ।

सूतिकायाः कर्मानर्हकालावधौ न शुभकृत्यं सर्ववर्णेषु—

सूतिकाया अपि कर्मानर्हकाल उक्तो विष्णुस्मृतौ—'सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्माणि कारयेन्मासेन स्त्रीजननीम्' इति । अस्यार्थं केचिदाहुः—'सर्ववर्णस्त्रीणां पुंप्रसूतानां बालकजन्मदिनाद्विंशतितमदिनं यावदशुचिता ततः शुद्धिः । एवं कन्याप्रसूनां स्त्रीणां कन्यजन्मदिनात्त्रिंशद्दिनं यावदशुचिता, ततः शुद्धिरित्यर्थः । एतदन्ये नानुमन्यन्ते यतः 'शुद्धचेद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शूद्धचति' इति । दक्षेण वर्णपुरस्कारेण शुचिताहान्युक्तानि । एवं पुञ्जनयित्र्याः ब्राह्मण्याः सूतकनिर्गमदिनाद्दशैवाशुचिता दिनान्यवशिष्यन्ते । कन्याजनयित्र्यास्तु तस्यास्तस्मादेव विंशतिदिनानि । क्षत्रियायास्तु पुङ्कन्याजनयित्र्याः क्रमादष्टाष्टदश दिनानि तस्मात्कालादवशिष्यन्ते । वैश्यायास्तु पुंकन्याजनयित्र्याः पञ्चपञ्चदश दिनान्यवशिष्यन्ते । शूद्रायाः पुञ्जनयित्र्याः दश दिनानि सूतककाले न्यूनानि जायन्ते, कन्याजनयित्र्यास्तु दिनसाम्यमेवेति सर्ववर्णानामनुगतमतिप्रसक्तमव्यापकं च लक्षणमापतति । अस्त्विति चेन्न । यद्येषोऽर्थोऽभिप्रेतः स्यात्तदा महतां वाक्येनेममर्थं स्पष्टं निर्दिशेत् । अतोऽनुगतमर्थान्तरमाहुरन्ये—यथा स्वस्ववर्णपुरस्कारेण य अशौचकालोऽभिहितः स सर्वेषां तत्कुलजानां तुल्य एव । तदग्रे सर्वेऽपि शुचयः । पुञ्जनयित्र्यास्तु सूतिकायास्तदग्रे विंशतिदिनान्यशुचिताऽस्तु । कन्याजनयित्र्याः तदग्रे त्रिंशदिनान्यशुचितेत्यर्थः । अत एव सूतिकाया उक्तकालपर्यन्तं कर्मानर्हत्वात्तदपत्यस्यापि मङ्गलकृत्ये निषेध इति ।

द्विज्येष्ठमार्गशीर्षविषये विवाहादिनिषेधः—

ज्येष्ठेति । ज्येष्ठापत्यस्याद्यगर्भस्य पुत्रस्य कन्याया वा व्रतबन्धविवाहादिशुभकृत्यं ज्येष्ठमासे

न भवति । उक्तं च रत्नमालायाम्—'आद्यगर्भदुहितुः सुतस्य वा ज्येष्ठमासि न च जातु मङ्गलम्' इति । कैश्चिदिति । मार्गेऽपि मार्गशीर्षमासेऽपि कैश्चिदाचार्यैराद्यगर्भसुतकन्ययोर्मङ्गलकृत्यं नेष्यते । तदाह वात्स्यः—'मार्गे मासि तथा ज्येष्ठे विवाहं चौलमेव च । ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च न कुर्वीत व्रतं तथा' भरद्वाजोऽपि—'मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम् । आद्यपुत्रदुहित्रोश्च यत्नतः परिवर्जयेत्' अस्मादेव ज्ञापकाद् द्वितीयादिगर्भपुत्रदुहित्रोर्ज्येष्ठे मार्गशीर्षे च मंगलकृत्यानां निषेधः । किन्तु विधिरिति प्रतिभाति । अत्र कश्चिद्विशेषो वक्तव्योऽस्ति, स व्रतबन्धप्रकरणे प्रवक्ष्यते ॥३३॥

पीताम्बरा—बालक की माता रजस्वला अथवा प्रसववती हो तो उसके पुत्र के चौल उपनयन विवाहादिक संस्कार नहीं हो सकते ।

रजस्वला (ऋतुमती) स्त्री के पुत्र का चौल, उपनयन, विवाह (कन्या का भी) आदिक संस्कार अशुद्धि समय (४ दिन तक) नहीं करने चाहिए ।

ज्येष्ठ सन्तान के संस्कार के लिए ज्येष्ठ मास भी निषिद्ध है । कुछ आचार्यों के मत से मार्गशीर्ष भी निषिद्ध है । ज्येष्ठ सन्तान का तात्पर्य प्रथम गर्भीय सन्तान से है । यदि प्रथम गर्भ नष्ट हो गया और द्वितीय गर्भ से उत्पन्न जो चिरञ्जीवी पुत्र या कन्या है उसी को लोक में ज्येष्ठ सन्तान कहा जाता है । वास्तव में यह द्वितीय गर्भीय द्वितीय (कनिष्ठ) सन्तान कही जाती है ॥ ३३ ॥

अथ प्रसङ्गतः सामान्यक्षौरादिमुहूर्त्तं तन्निषिद्धकालं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

दन्तक्षौरनखक्रियाऽत्र विहिता चौलोदिते वारभे
पातङ्ग्यारखीन् विहाय नवमं घस्रं च सन्ध्यां तथा ।
रिक्तां पर्वनिशां निरासनरणग्रामप्रयाणोद्यत—
स्नाताभ्यक्तकृताशनैर्नहि पुनः कार्या हितप्रेप्सुभिः ॥ ३४ ॥

पीयूषधारा—दन्तेति । चौलोदितेषु चौलप्रोक्तेषु वारेषु नक्षत्रेषु उपलक्षणत्वात्तदुक्ते लग्नेऽपि च दन्तक्षौरनखक्रियाऽत्र विहितोक्ता—'येषु येषु प्रशंसन्ति क्षुरकर्म महर्षयः । तेषु तेषु प्रशंसन्ति नखदन्तविलेखनम् इति' । येषु येषु वारनक्षत्रलग्नादिष्वित्यर्थः । अथ क्षौरनिषिद्धकाल उच्यते—पातङ्गीति । 'पतङ्गः पक्षिसूर्ययोः' इत्यभिधानात्पतङ्गः सूर्यस्तस्यापत्यं पातङ्गिः शनिः आररवी प्रसिद्धौ । तेषां वारान् विहाय त्यक्त्वा उपलक्षणत्वादेषां लग्नानि मकरकुम्भमेषवृश्चिककर्सिहाख्यानि अंशकांश्च विहायेत्यर्थः । उक्तं च वसिष्ठेन—'हस्तत्रये पुष्यपुनर्वसौ च शशाङ्कविष्णुत्रितयाश्विनेषु । पौष्णेन्द्रधिष्ण्ये क्षुरकर्म शस्तं व्यर्कारशन्यंशक वारलग्ने' इति । अतः शुभग्रहाणां वारलग्नांशे क्षौरं कार्यमिति फलितोऽर्थः ।

क्षौरे वारलग्नांशानां फलानि—

वारफलानि गर्गोक्तानि—

'भानुरायुः क्षपयति मासं सप्त शनैश्चरः । भौमो मासाष्टकं हन्ति ज्ञो यच्छेत्पञ्चमासकम् ॥ सप्तमासान्ददातीन्दुः सुरेज्यो दशमासकम् । एकादश कविर्दद्यात्कृते तु क्षौरकर्मणि ॥'इति । तुल्यन्यायत्वाल्लग्नानामंशानां चैतानि फलान्यूह्यानि । न केवलमायुर्हानिः । किन्तु शस्त्र-

घातोऽपि पापवारेषु। तदुक्तं वसिष्ठेन—'आदित्यभौमार्किदिनेषु धीमान्न दन्तकाष्ठक्षुरकर्म कार्यम्। कुर्वन्नवाप्नोति फलं समग्रं शस्त्रेण सम्यक्स्वशरीरघातम्।'

क्षौरदिनान्नवमे दिनादौ क्षौरं न कार्यम्—

नवमं घस्रं चेति। तथा नवमं घस्रं च विहाय यद्दिने क्षौरं कृतं ततो नवमदिने पुनः क्षौरं न कार्यम् 'उत्कटे भूषिते चैव यानी नो नवमेऽह्नि' इति नारदोक्तेः। यत्तु नवमे नवम्यामिति व्याकुर्वन्ति तदयुक्तम्, दिनपदोपादानप्रसङ्गात्। दिनपदं तिथिपरमिति चेन्न, रिक्ताया वक्ष्यमाणस्वतन्त्रनिषेधानुपपत्तेः। ननु पृथगुपादानात् नवम्यां सर्वथा क्षौरं निन्द्यमेव चतुर्थीचतुर्दश्योस्तु तथा नेति चेन्न।

'चतुर्थीं चैव षष्ठीं च अष्टमीं च चतुर्दशीम्। तथा पञ्चदशीं चैव ब्रह्मचारी भवेत्सदा॥
श्मश्रुकर्म शिरोभ्यङ्गदन्तधावनमैथुनम्। जन्तुश्चैतानि यः कुर्याल्लक्ष्मीस्तत्र न तिष्ठति॥' इति।

व्यासवचने क्षौरे चतुर्थीचतुर्दश्योः सर्वथा निषेधा भिधानात्। अत एवामुमर्थं स्फुटमाह पराशरः—'क्षौराहान्नवमे त्वह्नि नेष्टमात्ययिकेष्वपि' इति। तथा सन्ध्यां प्रातः सन्ध्यां सायं सन्ध्यां च विहाय एवं रिक्तां (४, ९, १४) विहाय पर्वण्यपि निशां रात्रिमपि विहायेत्यर्थः।

कार्यान्तराणि क्षौरे—

अथाधिकारिणो निरूप्यन्ते। हितप्रेप्सुभिः स्वशुभोदर्कमिच्छद्भिरेतादृशैः क्षौरक्रिया हि निश्चयेन न कार्या। कीदृशैः निरासनैरासनं कम्बलादि तद्रहितैः, रणः संग्रामः, ग्रामो जनपदविशेषः, प्रयाणमर्थयात्रा, एतदर्थमुद्यतैः कृतोद्योगैः। स्नातैरनुष्ठितनित्यनैमित्तिककाम्यस्नानैः। यत्तु क्षौरार्थमेव स्नानं विधीयते प्रायश्चित्तादौ च तत्र नायं निषेधः। तथैव तस्य विधानात्। अभ्यक्तैः कृततैलाभ्यङ्गैः, कृताशनैः कृतभोजनैः, सुवर्णाद्यलङ्कारभूषितैरित्यपि ध्येयम्। यदाह वराहः—

'न स्नातमात्रगमनोत्कटभूषितानामभ्यक्तभुक्तरणकालनिरासनानाम्।
सन्ध्या निशा शनिकुजार्कदिने च रिक्ते क्षौरं हितं न नवमेऽह्नि न चापि विष्ट्याम्॥' इति।

उत्कटानां कुक्कुटासनवदवस्थितानाम्। सन्ध्यालक्षणमपि वराहेणोक्तम्—'अर्धास्तमितादुदितात्सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत्।' वृद्धगर्गः—'शन्याररविवारेषु रात्रौ पाते व्रतेऽहनि। श्राद्धाहे प्रतिपद्रिक्ता भद्राः क्षौरे विवर्जयेत्।' 'षष्ठ्यमा पूर्णिमा पातश्चतुर्दश्यष्टमी तथा। आशु सन्निहितं पापं तैले मांसेक्षुरे भगे' इति॥ ३४॥

पीताम्बरा—सामान्य और (बाल कटवाने) मुहूर्त—दांत निर्माण, नाखून कर्तन और बाल बनवाने के समयों में चौल कर्म में कहे गये नक्षत्र वार तिथि आदिकों का उपयोग करना चाहिए। तथापि साधारण क्षौरकर्म में शनि मंगल और रविवार, प्रथम क्षौर नक्षत्र से द्वितीय क्षौर के लिए नवम दिन, सन्ध्या समय, रिक्ता और पर्व तिथियाँ और रात्रि समय को सदा छोड़ कर शेष समयों में क्षौरकर्म शुभ कहा गया है। जैसे शुभ वारों का क्षौरकर्म आयुवर्द्धक होता है। वैसे ही अशुभ वारों के क्षौरकर्म से आयुष्य की हानि होती है। नवम दिन निषेध से, प्रथम क्षौर तिथि से नवीं क्षौर तिथि न समझ कर नवम दिन का ही ग्रहण किया गया है। जैसे बुधवार को प्रथम क्षौर करते हुए द्वितीय क्षौर के लिए नवम दिन बृहस्पति यद्यपि ग्रहीत

होते हुए भी शुभवार बृहस्पति नवम संख्यक होने पर भी ऐसी स्थितियों में क्षौर के लिए त्याज्य कहा गया है।

क्षौर करते समय कम्बलादिक आसन पर बैठकर ही हजामत बनवानी चाहिए। युद्ध में जाते समय, ग्रामान्तर जाते समय, स्नान करने के पश्चात् शरीर में तेल आदिक उबटन लगाने के तथा भोजन करने के अनन्तर कभी भी क्षौर कार्य नहीं होना चाहिए ॥ ३४ ॥

केषांचिन्निमित्तविशेषं क्षौरस्य विधिनिषेधौ च मञ्जुभाषिणीछन्दसाऽऽह—

क्रतुपाणिपीडमृतिबन्धमोक्षणे क्षुरकर्म च द्विजनृपाज्ञयाचरेत्।
शववाहतीर्थगमसिन्धुमज्जनक्षुरमाचरेन्न खलु गर्भिणीपतिः ॥ ३५ ॥

पीयूषधारा—क्रतुपाणीति। अत्र पूर्वार्द्धे सत्यपि निषिद्धवारादौ एषु कर्मसु क्षुरकर्म क्षौरं सद्यः कार्यमिति वाक्यार्थः। क्व, क्रतौ यज्ञे विप्राज्ञया क्षौरम्, तथा पाणिपीडो विवाहः, लक्षणतया ततः प्राग्भाविनि गोदानकर्मणि। केचित्तु विवाहे श्मश्रुकर्म प्राशस्त्यपरं क्षौरमित्यर्थः। अपरे शाखाविशेषेण विवाहे क्षौरमुक्तमित्यूचुः। तथा च श्रुतिः—'मुण्डयितारः अविष्टायना वधूमूढाम्' इत्यादि। मृतौ मातापित्रोर्मरणे बन्धमोक्षणे कारागृहे बद्धस्य यदा मोचनं भवेत्तदा राजाज्ञया द्विजाज्ञयापीऽति प्राग्व्याख्यातम्। नृपो राजा तस्याज्ञया चौगदेः क्षौरं कार्यमेव। यदाह नारदः—नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्धमोक्षणे। उद्वाहेऽखिलवारर्क्षतिथिषु क्षौरमिष्टदम्' इति। धर्मशास्त्रे—'गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृतेऽहनि। आधाने सोमपाने च षट्सु क्षौरं विधीयते' इति।

गर्भिणीपतेर्निषिद्धाः क्षौरादयः—

शवेति। गर्भिणी गर्भवती तस्याः पतिर्भर्ता शववाहं मृतकवहनं, तीर्थगमनं तीर्थयात्राम्, उपलक्षणत्वाद्विदेशगमनपि, सिन्धुमज्जनं समुद्रस्नानं, क्षुरं क्षुरकर्म, एतानि कर्माणि न आचरेन्न कुर्यात्। यदाह वसिष्ठः—'गृहनिर्माणमुदधिस्नानं चौलं सूतस्य तु। तीर्थयात्रां नखश्मश्रु न कुर्याद्गर्भिणीपतिः'। धर्मशास्त्रे तु विशेषः—सिन्धुस्नानं द्रुमच्छेद स्वपनं प्रेतवाहनम्। विदेशगमनं चैव न कुर्याद्गर्भिणीपतिः।

राजयोगिपुरन्ध्रीगर्भिणीपतीनां च क्षौरं तीर्थेऽपि—

'राजयोगी पुरन्ध्री च मातापित्रोस्तु जीवतोः। मुण्डनं सर्वतीर्थेषु न कुर्याद्गर्भिणीपतिः।'

गर्भिणीपतेरेतन्निषेधः कदा भवतीति—

अयं च क्षौरादिनिषेधो गुर्भिणीपतेः सप्तमासादूर्ध्वं, न प्राक्। तदुक्तं नारदीये—'वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद्गर्भिणीपतिः। श्राद्धं च सप्तमान्मासादूर्ध्वं नान्यत्र वेदवित्।' श्राद्धं श्राद्धभोजनम्। इदमुत्तरार्धं गर्भाधानप्रकरणे वक्तव्यमपि प्रसङ्गादत्रैवोक्तं ग्रंथकृतेति ॥ ३५ ॥

पीताम्बरा—निमित्त विशेष पर क्षौर व्यवस्था—क्षौर के निषेध तिथि वारादिकों में भी ब्राह्मण राजा की आज्ञा से यज्ञक्रिया, विवाह, मातृपितृ मरणकाल और कैदी के कारागार से मुक्ति के अवसर पर भी क्षौरकर्म किया जाता है।

गर्भिणी पति को मृतक वहन (शवदाह), तीर्थयात्रा (उपलक्षण से विदेश गमन भी) समुद्र स्नान और क्षौर कर्मों का त्याग करना चाहिए। उक्त कार्य प्रसव के अनन्तर ही किये जा सकते हैं ॥ ३५ ॥

क्षौरे राज्ञां विशेषं सर्वथा वर्ज्यनक्षत्राणि च भुजङ्गप्रयातेनाह—

नृपाणां हितं क्षौरभे श्मश्रुकर्म दिने पञ्चमेऽस्योदये वा।
षडग्निस्त्रिमैत्रोऽष्टकः पञ्चपित्र्योऽब्दतोऽब्ध्यर्यमा क्षौरकृन्मृत्युमेति ॥३६॥

पीयूष धारा—नृपाणां हितमिति। क्षौरभे क्षौरनक्षत्रे विहिते सति पञ्चमे एव दिने श्मश्रुकर्म मुखशोभाकारि क्षुरकर्म नृपाणां राज्ञां हितं प्रशस्तम्। यदाह वसिष्ठः—'महीभृतां पञ्चमपञ्चमेह्नि क्षौरं च कार्यं हितमुक्तभेषु'। ननु पञ्चमे-पञ्चमे इति वीप्सोक्त्या नियमप्रतीतेः विहितनक्षत्राभावे च सति श्मश्रुकर्म कार्यमिति उक्तं च वसिष्ठेन—'न लभ्यते चेच्च तदुक्तधिष्ण्यं तद्भोदये वा निखिलं विधेयम्' इति। उदयशब्देन मुहूर्त इति ऋजवो व्याकुर्वते। तदाह गर्गः—'क्षौरकर्म महीशानां पञ्चमे पञ्चमेऽहनि। कर्तव्यं क्षौरनक्षत्रेऽप्यथवा तन्मुहूर्तके'। तेषां क्षौरकर्म महीशानां पञ्चमे पञ्चमेऽहनि। कर्तव्यं क्षौरनक्षत्रेऽप्यथवा तन्मुहूर्तके'। तेषां क्षौरनक्षत्राणां ये स्वामिनस्तेषां मुहूर्ते इत्यर्थः। तांश्च मुहूर्तान् विवाहप्रकरणे वक्ष्यतीति चेत् न। अत्र क्षौरपदं श्मश्रुकर्मपरम्। 'राजा योगी पुरन्ध्री च मातापित्रोस्तु जीवतोः। मुण्डनं सर्वतीर्थेषु न कुर्याद्गर्भिणीपतिः' इति राज्ञो मुण्डननिषेधात्। अत एवोक्तं श्रीपतिनाश्मश्रुकर्म पञ्चमे पञ्चमेह्नि भूभृतां क्षौरभस्योदये निन्द्यतारका न चेत्' इति। निन्द्यताराः जन्मत्रिपञ्चसप्तताराः। अन्ये त्वेवं व्याचक्षते। अस्योदये वेति। अस्य क्षौरभस्योदये लग्ने। यथा मेषलग्नं त्रिंशद्भागात्मकं तत्राद्यास्त्रयोदशभागाः सप्तविंशतिलिप्तयः यावता कालेन मेषलग्ने उदयं यान्ति तावदश्विनीनक्षत्रमुदयं यातीत्यर्थः तदनन्तरं तावन्त एवांशा यावता कालेनोदयं यान्ति तावद्भरण्युदय इत्यनेन न्यायेन सर्वेषां नक्षत्राणामुदया ज्ञेयाः। इयं च व्याख्या वराहपद्यव्याख्यावसरे भट्टोत्पलेनाभ्यधायि। पितृचरणास्त्वेवं व्याकुर्वते—यस्मिन्काले अश्विन्या उदयः क्षितिजसम्बन्धः सम्पद्यते त समयमारभ्य यावद्भरण्यामुदयः क्षितिसम्बन्धः तदन्तराले यावान् कालः सोऽश्विन्या उदय उच्यते। एवं सत्युदयलग्नद्वयाशान्तरालाद्गणितमार्गेण यावानिष्टकाल आगच्छेत्स एव तन्नक्षत्रोदय इति निष्कृष्टोऽर्थः। नक्षत्रस्योपलक्षणत्वाच्छुभवारासम्भवेऽपि तद्धोरायां कार्यम्। उक्तं च नारदेन—'यस्य खेटस्य यत्कर्म वारे प्रोक्तं विधीयते। ग्रहस्य क्षणवारेऽपि तस्य तत्कर्म सर्वदा' इति। क्षणम्-वारः कालहोरा।

निषिद्धनक्षत्रवारेष्वपि क्षौरम्—

एवं सति निषिद्धनक्षत्रवारेष्वपि प्रथमश्मश्रुकर्म कार्यमिति युक्तमुत्पश्यामः।

क्षौरे निषिद्धनक्षत्राणि—

षडग्निरिति। अग्निः कृत्तिका क्षौरावृत्त्या षड्वारं कृत्तिका यस्य, एवं त्रीणि मैत्राण्यनुराधा यस्य अष्टौकाः रोहिण्यो यस्य, पञ्च पित्र्याणि मघा यस्य, अब्धयश्चत्वारोऽर्यम्णः उत्तराफाल्गुन्यो यस्य स एतादृशः क्षौरकृत् अब्दतः वर्षानन्तरं मृत्युं मरणमेति प्राप्नोति। यदाह वसिष्ठः—अष्टाब्जऋक्षः पितृपञ्चकश्च षड्वह्निधिष्ण्यश्चतुरर्यमर्क्षैः त्रिमैत्रभः पद्मजनसन्निकोऽपि क्षौरी नरोऽब्दान्निधनं गतः सः' इति। पद्मजो ब्रह्मा, तत्सन्निभस्तादृशः। तदुपादानं कैमुतिकन्यायसूचनार्थम्। ननु रत्नमालापद्ये—'षट्कृत्तिकः पञ्चमघस्त्रिमैत्रो ब्रह्माष्टको यश्चतुरुत्तरश्च। क्षौरी स वर्षं चतुराननोऽपि न प्राणितीति प्रकरः प्रवादः' इत्यत्र सामान्यतः तिसृणामप्युत्तराणां ग्रहणाद्विरोधः इति चेत्। मैवं वोचः। अत्राप्युत्तरापदेन प्रथमोपस्थितिकत्वाद्वसिष्ठवाक्येन सहैक-

वाक्यतानुरोधाच्चोत्तराफाल्गुन्येव गृह्यते नाषाढभाद्रपदे। यत्र तु वचनान्तरविरोधो नास्ति 'पौष्णमारुतमघोत्तरान्वितैः' इत्यादौ तत्र सामान्यतः सर्वासामुत्तराणां ग्रहणं भवति ॥ ३६ ॥

इति सामान्यक्षौरप्रकरणं समाप्तम् ।

पीताम्बरा—राजाओं के लिए क्षौर में वर्ज्य नक्षत्र—राजाओं को एक क्षौरकर्म के पाँचवें पाँचवें दिनों में द्वितीय तृतीयादिक क्षौर कर्म करने चाहिए। पाँचवें-पाँचवें दिन और नक्षत्रादिक के अभाव में उस दिवसीय नक्षत्र में क्षौर नक्षत्रीय आदिक मुहूर्त जिस समय प्राप्त हो उस समय क्षौरकर्म करना चाहिए। क्षौर मुहूर्त के अभाव में क्षौर वासरीय कालहोरादिक-अवयवीय काल में क्षौरकर्म किया जा सकता है।

एक वर्ष में कृतिका में ६ बार, अनुराधा में ३ बार, रोहिणी में ८ बार और मघा में ४ बार उत्तराफाल्गुनी में ४ बार क्षौर करने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है ॥ ३६ ॥

अथ प्राप्तकालत्वादक्षराणामारम्भमुहूर्तं पञ्चचामरेणाह—

गणेशविष्णुवाग्रमाः प्रपूज्य पञ्चमाब्दके
तिथौ शिवार्कदिग्द्विषट्शरत्रिके रवावुदक् ।
लघुश्रवोऽनिलान्त्यभादितीशतक्षमित्रभे
चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रहः सतां दिने ॥ ३७ ॥

पीयूषधारा—गणेशेति। गणेशविष्णू प्रसिद्धौ, वाक् सरस्वती, रमा लक्ष्मीः, एता देवताः प्रपूज्य पञ्चमवर्षे सति, शिव एकादशी, अर्को द्वादशी, दिक् दशमी, द्वौ द्वितीया, षट् षष्ठी, शराः पञ्चमी, त्रयस्तृतीया, एतासामन्यतमतिथौ च सति। रवौ उदक् उत्तरायणस्थिते सति। तथा लघुनक्षत्राणि हस्ताश्विपुष्याः, श्रवः श्रवणः, अनिलान्त्यभादितयः प्रसिद्धाः, ईश आर्द्रा, तक्षा चित्रा, मित्रमनुराधा, अत्र समाहारद्वन्द्वः। एतेषामन्यतमनक्षत्रे सति सतां सोमबुधगुरुशुक्राणां दिने दिवसे तथा चरराशयः मेषकर्कतुलामकरास्तद्रहिते शुभस्वामिके वृषमिथुनकन्याधनुर्मीनानामन्यतमे लग्ने सति शिशोर्लिपिग्रहो नूतनाक्षरलेखनप्रारम्भः कार्यः। उक्तं च वसिष्ठेन—'उदग्गते भास्वति पञ्चमेऽब्दे प्राप्तेऽक्षरस्वीकरणं शिशूनाम्। सरस्वतीं विघ्नविनायकं च गुडौदनाद्यैरभिपूज्य कुर्यात्'। मार्कण्डेयः—

'पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं देवीं चैव सरस्वतीम्। स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वां च विद्यां विशेषतः ॥
प्राप्ते तु पञ्चमे वर्षे ह्यप्रसुप्ते जनार्दने। षष्ठीं प्रतिपदं चैव वर्जयित्वा तथाष्टमीम् ॥
रिक्तां पञ्चदशीं चैव सौरिभौमदिनं तथा। एवं सुनिश्चिते काले विद्यारम्भं तु कारयेत् ॥

अत्र निषिद्धापि षष्ठी ग्रन्थकृता स्वीकृतेति तच्चिन्त्यम्।

'हस्तादित्यसमीरमित्रपुरजित्पौष्णाश्विचित्राच्युतेष्वारार्क्यंश इनोदयादिरहिते लग्ने स्थिरे चोभये।
पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदं रिक्तां विहायाष्टमीं षष्ठीमष्टमशुद्धिभाजि भवने प्रोक्ताक्षरस्वीकृतिः' ॥

पुरजिदार्द्रा, उभये द्विस्वभावराशौ। अत्र वचने पुष्यानुपादानं ग्रन्थकृता लघुपदेन कृतमिति तच्चिन्त्यम् ॥ ३७ ॥

पीताम्बरा—प्राप्त काल में अक्षरारम्भ मुहूर्त—पाँचवें वर्ष में बालक से गणेश, विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मी का पूजन करा कर, एकादशी द्वादशी, दशमी, द्वितीया, षष्ठी, पञ्चमी, और तृतीया तिथियों में, उत्तरायण सूर्य के समयों में, लघु संज्ञक, श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा और अनुराधा नक्षत्रों में, चर लग्नों रहित शुभग्रह के लग्न वारों में बालक को लिपिग्रहण नूतन अक्षर लेखन प्रारम्भ करना चाहिए। मारकण्डेय वाक्य से अक्षरारम्भ संस्कार में षष्ठी तिथि का निषेध है। ग्रन्थकार ने विधिवाक्य में षष्ठी तिथि को कैसे प्रश्रय दिया होगा ? विचारणीय है ।। ३७ ।।

एवमक्षरग्रहणे दृढे सञ्जाते सति विद्यारम्भमुहूर्तं पञ्चचामरेणाह—

मृगात्कराच्छ्रुतेस्त्रयेऽश्विमूलपूर्विकात्रये
गुरुद्वयेऽर्कजीववित्सितेऽह्नि षट्छरत्रिके ।
शिवार्कदिग्द्विके तिथौ ध्रुवान्त्यमित्रभे परैः
शुभैरधीतिरुत्तमा त्रिकोणकेन्द्रगैः स्मृता ।। ३८ ।।

पीयूषधारा—मृगादिति । मृगात् त्रये मृगार्द्रापुनर्वसुषु, करात्रये हस्तचित्रास्वातीषु, श्रुतेः श्रवणात् त्रये श्रवणधनिष्ठाशतभिषासु, अश्विन्यां, मूले, पूर्विकात्रये पूर्वाफाल्गुनीपूर्वाषाढापूर्वाभाद्रपदासु, गुरुद्वये पुष्याश्लेषयोः, तथा सूर्यगुरुशुक्रवाराणां दिने च सति अधीतिर्विद्यानामध्ययनमुत्तमा स्मृता। यदाह श्रीपतिः—'मृगादिपञ्चस्वपि भेषु मूलहस्तादिके च त्रितयेऽश्विनीषु । पूर्वात्रये च श्रवणे च तद्वद्विद्यासमारम्भमुशन्ति सिद्ध्यै' इति । तद्वदिति । श्रवणत्रये इत्यर्थः । तदेतत्स्पष्टमुक्तं महेश्वरेण—'हस्तादित्रितये तथा निर्ऋतिभे पूर्वान्त्यभेष्वश्विनीमित्रर्क्षे च मृगादिपञ्चसु शुभः प्रारम्भ आद्यः स्मृतः । विद्यानां हरिभात्रये च दिवसे सूरेर्भृगोर्वा विदोऽनध्यायाख्यतदाद्यवर्जिततिथौ केन्द्रस्थितैः सद्ग्रहैः' इति । अयमेव च ग्रन्थकृदाशयः । अत एवाह विश्वप्रकाशपद्धतौ गुरुः—'मृगादिपञ्चके हस्तत्रिके विष्णुत्रिकाश्विभे । मैत्रान्त्यमूलपूर्वासु विद्यारम्भः शुभे दिने' इति । वयं तु तद्वदिति पदं विद्यासमारम्भपदेन सम्बद्धमस्तीति व्याकुर्मः । अत एव वसिष्ठः—'पूर्वात्रये मूलमृगादिपञ्चके तथाश्विनीषु त्रितये च हस्तात् । सविष्णुधिष्ण्येष्वथ सर्वविद्याप्रारम्भ इष्टः शुभवासरेषु' । इति । यद्येषोऽभिप्रायो न स्यात् तदा पूर्वात्रये च श्रवणत्रये चेति ब्रूयाच्छ्रीपतिः । अनयोर्वाक्ययोर्यथासम्प्रदायं व्यवस्था । शुभवारेष्विति । अत्र चन्द्रव्यतिरिक्ताः शुभवासरा गृह्यन्ते । यदुक्तं रत्नमालायाम्—

'विद्यारम्भः सुरगुरुसितज्ञेष्वभीष्टार्थदायी कर्तुश्चायुश्चिरमपि करोत्यंशुमान्मध्यमो वा ।
नीहारांशौ भवति जडता पञ्चता भूमिपुत्रे छायासूनावपि च मुनयः कीर्त्तन्यत्येवमाद्याः ।।'

नीहारो हिमम् । यत्तु भोजेनोक्तं 'विद्यारम्भे गुरुः शस्तो मध्यमौ भृगुभास्करौ । मरणं शनिभौमाभ्यामविद्या बुधसोमयोः ।।' इति । अत्राविद्या अनवधारणमन्यथा ज्ञानं वा तदेतद्धनुर्विद्याविषयम् । तद्वाक्यमधुनैव मया वक्ष्यते ।

तत्र तिथयः—

षडिति । षष्ठीपञ्चमीतृतीयैकादशीद्वितीयानामन्यतमतिथावधीतिः कार्या । अनध्यायाख्य-

तदाद्यर्वजिततिथौ' इति महेश्वरोक्तेः। अध्यायांस्तु व्रतबन्धे वक्ष्यति। ध्रुवेति। अत्रापिशब्दाध्याहारेण ग्रन्थो योज्यः। तथासत्यन्यैराचार्यैर्ध्रुवान्त्यमित्रभे रोहिण्युत्तरात्रयरेवत्यनुराधास्वप्यधीतिरुत्तमेत्येतदपि धनुर्विद्याविषयम्। तदुक्तं दीपिकायाम्—

'अदितिगुरुयमार्कस्वातिचित्राग्निपित्र्यध्रुवहरिवसुमूलाश्वीन्दुभाग्यान्त्यभेषु।
विशनिशशिबुधाहे विष्णुबोधेऽपि पौषे सुसमयतिथियोगे चापविद्याप्रदानम्॥' इति।
ग्रन्थेऽनुराधोक्तिस्तु महेश्वरवाक्यालोचनेन।

तत्र लग्नबलम्—

अथ लग्नबलं शुभग्रहैस्त्रिकोणकेन्द्रगैः सद्भिरधीतिरुत्तमा स्मृता। 'केन्द्रस्थितैः सद्ग्रहैः' इत्युक्तेः। केन्द्रग्रहणं त्रिकोणोपलक्षणम्। विशेषमाह नृसिंहः—शुभाः पापाश्च रन्ध्रस्थाः सर्वे नेष्टाः सदा ग्रहाः। भ्रातृषष्ठायकर्मस्थाः पापाः सर्वे शुभावहाः॥ शुभाः केन्द्रत्रिकोणस्था धनभ्रातृगताः शुभाः। सर्वे लाभे प्रशस्ताः स्युरक्षरग्रहणे शिशोः' इति! अक्षरग्रहणं विद्योपलक्षणमिति विद्यारम्भः।

अङ्कुरार्पणे मुहूर्तः सर्वकर्मसाधारणे—

अथ समस्तशुभकर्मभ्यः प्राग्विहिते ङ्कुरार्पणमुहूर्तो ग्रन्थकृदनुक्तोऽप्यस्माभिरुच्यते—तत्र प्राक्तृतीयपञ्चमसप्तमनवमदिवसेषु बीजवापोक्तनक्षत्रेष्वंकुरारोपणं कार्यम्। यदाह नारदः—

'कर्तव्यं मङ्गलस्यादौ मङ्गलायाङ्कुरार्पणम्। नवमे सप्तमे वापि पञ्चमे दिवसेऽपि वा॥
तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये। सम्यग्गृहानलङ्कृत्य वितानध्वजतोरणैः॥
आशिषो वाचनं कार्यं द्विजैः पुण्याङ्गनादिभिः। सह वादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम्॥
तत्र मृत्सिकतं श्लक्ष्णं गृहीत्वा पुनरागतः। मृण्मयेष्वेवाथवा सम्यग्वेणुपात्रेषु पूरयेत्॥
अनेकबीजसंयुक्तं तोयपुष्पोपशोभितम्।

शौनकः—

'आधानं गर्भसंकारं जातकर्म च नाम च। हित्वान्यत्र विधातव्यं मङ्गलाङ्कुरवापणम्॥
प्रदोषकाले कुर्वीत पूर्वाह्णे वा न रात्रिषु। वास्तुकर्मणि काले च स्याद्द्विवैवाङ्कुरार्पणम्॥

गुरुः—

'आत्यन्तिकेषु कार्येषु कार्यं सद्योङ्कुरार्पणम्'।

काश्यपकालविधाने तु विशेषोऽभिहितः—

'हस्तस्वातीविरञ्चासुरपितृमुरजिन्मित्रपौष्णार्यसार्प-
पाथोनाथोत्तरासु क्रिययुवतिधनुर्वृश्चिके कामरिक्ते।
हित्वा पर्वासुरेज्यामरगुरुशशिविद्वारलग्नांशके स्या-
दुक्तर्क्षे बीजवापः शशिनि शुभयुते चाष्टमे शुद्धियुक्ते'॥ इति।

असुरो मूलम्, पाथोनाथः शततारका॥ ३८॥

(इति मुहूर्तचिन्तामणिटीकायामङ्कुरार्पणमुहूर्तः।)

पीताम्बरा—अक्षर ज्ञान की दृढ़ता के अनन्तर विद्यारम्भ मुहूर्त—मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा, पुष्य, आश्लेषा ध्रुव संज्ञक अनुराधा और रेवती नक्षत्रों, (अर्थात् २७ नक्षत्रों में केवल ये पाँच—भरणी, कृतिका मघा तीनों उत्तरा नक्षत्रों को छोड़ कर शेष नक्षत्रों में) रवि, बुध, गुरु और शुक्रवारों, तथा ६, ५, ३, ११, १० और २ तिथियों में जिस लग्न में केन्द्र त्रिकोण में शुभग्रह हों ऐसे उत्तम लग्न में बालक को सभी प्रकार की विद्याओं का प्रारम्भिक अध्ययन कराना चाहिए।

इस प्रसंग में पीयूषकार ने, सभी शुभ कर्मों में बीजाङ्कुर अर्पण का मुहूर्त, प्रदोषकाल या पूर्वाह्ण में हस्त स्वाती रोहिणी मूल, मघा मुरजित् अनुराधा, रेवती, पूर्वाफाल्गुनी आश्लेषा और शततारा नक्षत्रों, मेष कन्या धनु और वृश्चिक लग्नों, पर्व त्रयोदशी और रिक्त। रहित शेष तिथियों में शुक्र बृहस्पति चन्द्रमा और बुध के वार और अष्टम शुभ लग्नों में शुभ बताया हैं ।। ३८ ।।

व्रतबन्ध इति। विंशतिपद्यैः प्रोच्यते इति शेषः। तत्र व्रतबन्धप्रयोजनमाह—'अथातः संप्रवक्ष्यामि चोपनायनमुत्तमम्। द्विजत्वकारणं श्रौतस्मार्त्तकर्मप्रसाधनम् ।। आद्यं सर्वाश्रमाणां च देहसंस्कारकारणम्। अनेन कर्मणा सर्वे संस्कृताः सर्वदेहिनः। तत्संस्कार लग्नवशात्तस्माल्लग्नं प्रवच्मि तत्' इति तस्य कालस्त्रिविधः—नित्यः काम्यो गौणश्च।

तत्र क्रमेण त्रिविधमपि कालं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाष्टमे
वर्षे वाप्यथ पञ्चमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे।
वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद्द्वादशे वत्सरे
कालेऽथ द्विगुणे गते निगदितं गौणं तदाहुर्बुधाः ।। ३९ ।।

पीयूषधारा—विप्राणामिति। अत्र नित्यं काम्यं च तावदुच्यते। विप्राणां ब्राह्मणानां गर्भाष्टमे गर्भदिनमारभ्याष्टमे सौरवर्षेऽथवा जनेरुत्पत्तिदिनात्सौरवर्षेऽष्टमे सति व्रतबन्धनं निगदितम्। इदं नित्यम्। अथ काम्यं—विप्राणामेव पञ्चमे गर्भाज्जनेर्वा वर्षे कार्यम्। एवं क्षितिभुजां क्षत्रियाणां गर्भाज्जनेर्वा षष्ठे वर्षे काम्यमुपनयम्। तथा गर्भाज्जनेर्वा एकादशे सौरवर्षे नित्यमुपनयनम्। वैश्यानां पुनस्तथैवाष्टमे काम्यमथ तथैव द्वादशे वर्षे नित्यमुपनयनम्। यदाह नारदः—'आधानादष्टमे वर्षे जन्मतो वाग्रजन्मनाम्। राज्ञामेकादशे मौञ्जीबन्धनं द्वादशे विशाम्।।' इति। अत्र वेदाधिकरणन्यायेन राजपदं क्षत्रियपरम्, अत्र फलाश्रवणान्नित्यमित्यवसीयते।

काम्योपनयनकालिकं वयः—

अत्र काम्यकालमाह मनुः—'ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोष्टमे' इति। अत्र फलश्रवणात्मकाम्यता। पैठीनसिना गर्भपञ्चमेऽपि व्रतबन्धनमुक्तम्—'गर्भपञ्चमेऽब्दे ब्राह्मणमुपनयेत्' इति। तुल्यन्यायत्वात्क्षत्रियविशोरपि गर्भषष्ठे गर्भाष्टमे त्विति द्रष्टव्यम् यत्तु 'गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भैकादशेषु राजन्यं गर्भद्वादशेषु वैश्यम्' इत्यापस्तम्बगृह्यसूत्रे गर्भाष्टमेष्विति उक्ते तत्र गर्भाष्टमेषु इति बहुत्वान्यथानुपपत्त्या गर्भषष्ठगर्भसप्त-

गर्भाष्टमेषु सौरवर्षेष्विति वृत्तिकृद्व्याख्यानात्त्रयाणामपि नित्यकालता। एवं गर्भैकादशेष्वित्यादावपि व्याख्यानं ध्येयमिति तत्तु तच्छाखाध्यायिविषयम्। केचित्तु पञ्चमवर्षारम्भात्षोडशवर्षपर्यन्तं काम्या काला इत्याहुः। यदाह विश्वप्रकाशपद्धतावापस्तम्बः—'पञ्चमे विद्यापुत्रकामः षष्ठे च धनकामः, सप्तमे ब्रह्मवर्चसकामोऽष्टमे त्वायुष्कामो नवमे तेजस्कामः दशमेऽन्नाद्यकामः एकादशे इन्द्रियकामो द्वादशे पशुकामः त्रयोदशे जयकामश्चतुर्दशे पौरुषकामः पञ्चदशे पूर्णकामः षोडशे राज्यकामः' इति। तदप्यापस्तम्बशाखाध्यायिविषयं द्रष्टव्यम्।

तत्रोपनयने गौणकालः—

गौणकाल उच्यते। निगदिते प्रोक्ते गर्भाज्जनेर्वाष्टमे इत्यादिके काले तस्मिन् द्विगुणिते गन्तुं प्रवृत्ते 'आदिकर्मणि क्तः' तथासति तद्व्रतबन्धने गौणकालमाहुः। यथा स्वस्वोक्तनित्यकालाद्ब्राह्मणस्य षोडशवर्षपर्य्यन्तं, क्षत्रियस्य द्वाविंशतिवर्षपर्यन्तं, वैश्यस्य चतुर्विंशतिवर्षपर्यन्तं, गौणमित्यर्थः। यदाह मनुः—

'आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्त्तते। आद्वाविंशाद्ब्रह्मबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः। सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः॥इति॥
ब्रह्मबन्धोः क्षत्रियस्य।

उपनयने गौणकालस्याप्यतिक्रमे व्रात्यस्तोमः—

गौणकालातिक्रमेऽपि याज्ञवल्क्येन विशेषोऽभिहितः—'अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः। सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः' इति। अत एव 'न ब्राह्मणः पतनमृच्छति' इति गौतमस्मरणमपि सङ्गच्छते। अत्र ब्राह्मणग्रहणं त्रैवर्णिकोपलक्षणम्। अन्यथा सावित्रीपतिता व्रात्या इति बहुवचनमर्थकमापद्येत॥ ३९॥

पीताम्बरा—प्रकरण समाप्ति के आगे के २० श्लोकों में व्रतबन्ध मुहूर्त और व्रतबन्ध के तीन भेद (१) नित्य, (२) काम्य, और (३) गौण बताए जा रहे हैं—श्रौत-स्मार्त कर्म साधन और द्विजत्व प्राप्ति के लिए उपनयन (व्रतबन्ध संस्कार) संस्कार किया जाता है।

ब्राह्मण कुमारों के लिए गर्भ दिन से अथवा जन्म दिन से आरम्भ कर आठवें सौर वर्ष में व्रतबन्ध संस्कार करना चाहिए। यह नित्य व्रतबन्ध है।

ब्राह्मण कुमार का, जन्म या गर्भ से ५ वें वर्ष में किया गया उपनयन काम्य उपनयन है। क्षत्रियों के लिए छठे वर्ष का उपनयन काम्य और ११ वें वर्ष में किया गया नित्य है। वैश्यों के ८ वें में काम्य और ११ वें वर्ष का जनेऊ नित्य कहा है। ब्रह्मवर्चस की कामना के लिये ब्राह्मण वटु का ५ वें, बल की कामना के लिए क्षत्रिय वटु का ६ ठे, और धन की कामना के लिए वैश्य वटु का ८ वें वर्ष में उपनयन संस्कार किया जाना चाहिए।

वर्ण क्रम से अपने-अपने नित्य समयों के द्विगुणित कालों में ब्राह्मण के लिए १६ वाँ क्षत्रिय के लिए २२ वाँ एवं वैश्य के लिए २४ वें वर्ष का उपनयन संस्कार गौणकालीन संस्कार कहा जाता है।

गौण कालों में भी यदि उपनयन संस्कार नहीं किया जावेगा तो ऐसे बटु को सदोष व्रात्यसंज्ञा होती है, वह सावित्री रहित होने से पतित बटु कहलाता है ॥३९॥

अथ व्रतबन्धे नक्षत्रादिकं वसन्ततिलकयाह—

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वा–
रौद्रेऽर्कविद्गुरुसितेन्दुदिने व्रतं सत् ।
द्वित्रीषुरुद्ररविदिक्प्रमिते तिथौ च
कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि न चापराह्णे ॥ ३० ॥

पीयूषधारा—क्षिप्रेति । नन्विदमयुक्तं प्रतिभाति । त्रैवर्णिकस्य त्रिविधमपि कालमभिधायेदानीमेतेषु मासेषु व्रतबन्धः कार्य इति वक्तुमुचितम् । तद्विहायैव नक्षत्राद्युक्तमिति चेत्, उच्यते—अहो देवानां प्रियस्य महदज्ञानविलसितम् । यत् 'गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठा' इत्यादिपद्यमबुद्ध्वा च जागरीतितरामिति । यतो द्विविधः काल उत्तरायणरूपो दक्षिणायनरूपश्चेति । तत्र दक्षिणायने व्रतबन्धनिषेधादुत्तरायणे मासषट्कात्मकं प्रशस्तमित्यर्थाद्गम्यत एव । यथा 'अभक्ष्यो ग्राम्यसूकरः' इत्युक्ते आरण्यः सूकरो भक्ष्य इति गम्यते । शुक्रास्ते न कर्त्तव्यमित्युक्ते शुक्रोदये कर्तव्यमिदि भवद्वचनादेवावसीयते । अत एव व्रतबन्धे नारदेनोक्तं—'दृश्यमाने गुरौ शुक्रे शाखेशे चोत्तरायणे' इति ।

उपनयने मासाः—

एवं सत्यपि किञ्चिद्विशेषावगत्यर्थं मासा उच्यन्तेऽस्माभिः । तत्र वसन्ते ब्राह्मणस्य, ग्रीष्मे राजन्यस्य, शरदि वैश्यस्य मुख्यकालमुपनयनं माघादिपञ्चमासेषु त्रैवर्णिकस्य साधारणकालमिति । यदाह वसिष्ठः—

'विप्राणामुपनयनं वसन्तसमये, धराधिनाथानाम् ग्रीष्मर्तौ
शरदि विशां मासाः साधारणाश्च माघाद्या' । इति

कश्यपोऽपि

'ऋतौ वसन्ते विप्राणां ग्रीष्मे राज्ञां शरद्यथा । विशा मुख्यं च सर्वेषां द्विजानां चोपनायनम् ॥
साधारणं च मासेषु माघादिषु च पञ्चसु' ।

एतेषु मासेषूपनयनफलानि—

एषां मासानां फलान्याह नारदः—

स्वकुलाचारधर्मज्ञो माघमासे तु फाल्गुने । विधिज्ञश्चार्थवांश्चैत्रे वेदवेदाङ्गपारगः ॥
वैशाखे धनवान् वेदशास्त्रविद्याविशारदः । उपनीतः कुलाढ्यः स्याज्ज्येष्ठे विधिविदां वरः इति ।

अथ कैश्चिच्चण्डेश्वराद्यैर्माघादिषण्मासानां फलान्यभिहितानि—

'माघे द्रविणशीलाढ्यः फाल्गुने च दृढव्रतः । चैत्रे भवति मेधावी वैशाखे कोविदो भवेत् ॥
ज्येष्ठे तु गृहनीतिज्ञ आषाढे क्रतुभाग्भवेत् । मार्गशीर्षे भवेद्भ्रष्टः शेषे दुःखमवाप्नुयात्' । इति ।

तत्राषाढमिथुनस्थसूर्यविषये नियमः

अत्राषाढो हरिशयनात्प्रागेवाङ्गीकार्यो न परस्तात्तत्रापि मिथुनस्थिते सूर्ये न कर्कस्थे दक्षिणायनान्तःपातित्वात्तस्येति तदेतदुपेक्ष्यम् । प्रागुक्तार्थवाक्यस्वरसात् । किं च मिथुनस्थितेऽपि

सूर्ये ततः सार्द्धषड्दिवसानन्तरं व्रतबन्धादिनिषेधात् । 'आर्द्रादिके स्वातिविरामकाले नक्षत्रवृन्दे दशके रविश्चेत् । विवाहचौलव्रतबन्धनाद्यं सुरप्रतिष्ठापि न कार्यमेव' इति वसिष्ठादिवचनात् ॥ 'उत्तरायणे' इति नारदवाक्यं तु दक्षिणायननिषेधपरमित्यास्तां प्रसक्तानुप्रसक्तम् । क्षिप्रेति । क्षिप्राणि अश्विनीपुष्यहस्ताः' ध्रुवाणि प्रसिद्धानि, अहिराश्लेषा, चराणि श्रवणघनिष्ठाशतभ-पुनर्वसुस्वात्यः, मूलमृदूनि प्रसिद्धानि, तिस्रः पूर्वा, रौद्रमार्द्रा, एषु द्वाविंशतिभेषु व्रतबन्धनं सत् शुभफलदातृ भवेत् । उक्तं च—प्राजापत्यादिषडृक्षे भगर्क्षादिषु पञ्चसु । मूलादिदशके चैव समैत्रे व्रतबन्धनम्' इति । अर्थाद्भरणीकृत्तिकामघाविशाखाज्येष्ठासु न कार्यमित्यर्थः । एतानि सर्वशाखा-नक्षत्रमेलकाभिप्रायेणोक्तानि ।

मुख्यनक्षत्राण्युपनयने—

मुख्यानि त्वाह वसिष्ठः—हस्तत्रये च श्रवणत्रये च धातृद्वये त्र्युत्तरमैत्रभेषु । पौष्णद्वये चादितिभद्वये च शस्तं द्विजानां खलु मौञ्जिकर्म' इति । द्विजानां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानाम् । कश्यपोऽपि—'मैत्रविष्णुत्रये हस्तत्रयर्क्षे चोत्तरात्रये । धातृद्वयादितीज्यान्त्यदस्रर्क्षेषूपनायनम्' इति । अर्थादार्द्राश्लेषाभरणीकृत्तिकाज्येष्ठाविशाखामघापूर्वात्रयमूलानि निन्द्यानि । तदाह गुरुः—कृत्तिकाभरणीमूलज्येष्ठार्द्रासु विशाखयोः। पूर्वात्रये च सार्पर्क्षे न कुर्यादौपनायनम्, चकारान्मघायाम्

विप्रस्यैव पुनर्वसौ मलमासैकदेशसम्बन्धेऽपि उपनयनमेव न कार्यम्—

ब्राह्मणस्य पुनर्वसौ निषेधमाह राजमार्त्तण्डः—'चन्द्रतारानुकूलेषु ग्रहाब्देषु शुभेष्वपि । पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति' इति । अन्यत्रापि स्मर्यते—'अहः स्पृशि मले मासि शूद्रत्वमधिगच्छति' ऐति । अत्र विप्रः कृत इति पदद्वयोपादानादितरयोः क्षत्रियविशोः पुनर्वसौ व्रतबन्धो ब्राह्मणस्य मेखलामोक्षश्च प्रशस्त इत्यर्थः । केचित्तु केनचिन्निमित्तेन कर्मनाशानदीतर-णाद्यनेकदुष्टकृत्येन पुनः संस्कारप्रसक्तौ सत्यां विप्रः पुनर्वसौ पुनः संस्कारमर्हतीति न व्रतबन्ध-निषेध इत्येवं व्याचक्षते । तच्चिन्त्यम् । यतः—

'जीवार्केन्दूडुशुद्धौ हरिशयनबहिर्भास्करे चोत्तरस्थे स्वाध्यायेवेदवर्णाधिप इह शुभदे क्षौरभेदादितौ च।

शुक्रार्केज्यर्क्षलग्ने रविमदनतिथिं प्रोह्य षष्ठाष्टमेन्दुं
नो जीवास्तातिचारेर्कसितगुरुदिने कालशुद्धौ व्रतं स्यात्' इति ।

दीपिकायां पुनर्वसुनक्षत्रविषयकव्रतबन्धनस्यैव सामान्यतो निषेधोक्तेः विशेषवचनात् ब्राह्मणे एव निषेधः पर्यवसन्नः । एकवाक्यताबलात् । पुनर्वसुनिषेधश्लोकद्वयेऽपि पूर्वार्द्धस्यानन्व-याच्च । अयं चाचारः प्राच्यानाम् । दाक्षिणात्यास्त्वेतन्नाङ्गीकुर्वते देशाचाराभावात् । उक्तं च वराहेण—देशाचारस्तावदादौ विचिन्त्यो देशे देशे या स्थितिः सैव कार्या । लोके दुष्टं पण्डिता वर्ज्जयन्ति दैवज्ञोऽतो लोकमार्गेण यायात् ॥'

सप्तशलाकावेधस्वरूपं तदादिदोषाश्च—

अत्र विहितनक्षत्रेषु वेधादिदोषास्त्याज्याः । तदुक्तं दीपिकायाम्—'कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा । प्राशने चाद्यचूडायां विद्धमृक्षं परित्यजेत्' इति । अत्र वेधः सप्तशलाका चक्रस्थो द्रष्टव्यः । तदाह वसिष्ठः—पञ्चशलाकाचक्रे पाणिग्रहणे भवति च विधिरुक्तः । शस्त शुभभित्रकृतः शसशलाकाज इतरत्र' इति । इतरत्र यज्ञोपवीतचौलान्नप्राशनसीमन्तादिष्वित्यर्थः ।

सप्तशलाकाचक्रम्—

चक्रन्यासः स्वरोदये—तिर्यगूर्ध्वगता रेखाः सप्तसंख्या लिखेद्बुधः। कृत्तिकादीनि भान्यत्र साभिजिन्ति क्रमेण च' इति।

भुक्तभोग्याक्रान्तविद्धनक्षत्राणि शुभकृत्येषु युद्धादिषु च वर्ज्यानि—

'भुक्तं भोग्यं तथाक्रान्तं विद्धं पापग्रहेण च। शुभाशुभेषु कार्येषु वर्जनीयं प्रयत्नतः॥ यस्याभिधाननक्षत्रं विद्धं क्रूरग्रहेण तु। देशो ग्रामः पुरं सैन्यं नरो नारी विनश्यति' इति। अशुभेषु युद्धादिषु। दीपिकायामपि—'कृत्तिकादिचतुः सप्तरेखाराशौ परिभ्रमन्। ग्रहश्चेदेकरेखास्थो वेधः सप्तशलाकजः' इति। ग्रन्थकृता तु विवाहप्रकरणे सप्तशलाकाचक्रोक्ति विनैव परस्परवेधक-नक्षत्रवृन्दं सिद्धवत्कृत्याभिहितम्। नन्वत्रावसरप्रसङ्गात् कुतो नोक्तमिति चेत्। सत्यम्। 'यस्याः शशी सप्तशलाकभिन्नः पापैरपापैरथवा विवाहे। रक्तांशुकेनैव च रोदमाना श्मशानभूमि प्रमदा प्रयाति' इति दीपिकाकारवचनात्। एवं सति विवाहनक्षत्राणामेव वेधज्ञानार्थं पञ्चशलाकाचक्रं विचार्य, सप्तशलाकाचक्रं पुनर्विवाहादौ सकलकर्मविहितनक्षत्रवेधज्ञानार्थं ज्ञेयमित्ययं निष्कृष्टोऽर्थः। अयमेव च विवाहप्रकरणे चक्रोक्तौ ग्रन्थकर्त्तुराशय इत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्तेन।

तत्र युतिलत्तापातादिदोषा अपि त्याज्याः—

वेध इत्युपलक्षणम्। तेन युतिलत्तापातादयो विवाहोक्ता दोषा अपि त्याज्याः। तदुक्तं वसिष्ठेन—'निहितं त्रिविधोत्पातैः क्रूराक्रान्तं च विद्धभं त्वखिलम्। त्याज्यं तच्छुभकर्माणि न पादतः पातधिष्ण्यं च' इति। नारदोऽपि—'वीक्षिते वार्यैकविंशतिमहादोषवर्जिते' इति व्रतबन्ध-प्रकरणे उक्तवान्। वीक्षिते इति पूर्वेण सम्बन्धः। ते च दोषा विवाहप्रकरणे वक्ष्यते ग्रन्थकृता।

वारा उपनयने—

अर्केति। सूर्यबुधगुरुशुक्रचन्द्रदिवसेषु व्रतं सत्स्यात्। अर्थाद्भौमशनी निषिद्धौ। तदाह नारदः—'आचार्यकाव्यसौम्यानां वाराः शस्ताः शशीनयोः। वारौ तौ मध्यफलदौ निन्दिताविततरौ व्रते' इति। आचार्यो गुरुः, शुक्रः, जगन्मोहने गुरुः—'पापग्रहाणां वाराः स्युर्न शुभश्चन्द्रवासरः। सिते पक्षे प्रशस्तः स्यात्कृष्णे वारो विधोर्नहि॥ शुभो बुधो नास्तमितः पापग्रहयुतोऽपि वा' इति रविवारं निषेधति स्म। अत्र सूर्यस्य प्राबल्यदौर्बल्ययोर्व्रतबन्धस्य विधिनिषेधाविति विषयविवेकः।

निषिद्धोऽपि भौमः सामावेदिनामतिप्रशस्तः—

भौमस्तु निषिद्धोऽपि सामवेदिनामतिप्रशस्तः। यदाह नारदः—'शाखाधिपति वारश्च शाखाधिपबलं शिशोः। शाखाधिपतिलग्नं च त्रितयं दुर्लभं व्रते' इति ग्रन्थकृदप्यग्रे वक्ष्यति।

उपनयनतिथयः—

द्वीति। द्वितीयातृतीयापञ्चम्यैकादशीद्वादशमीसंज्ञितासु तिथिषु च व्रतं सत्स्यात्। यदाह नारदः—

'शुक्लपक्षे द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा। त्रयोदशी च दशमी सप्तमी व्रतबन्धने॥
श्रेष्ठास्त्वेकादशी षष्ठी द्वादश्येतास्तु मध्यमाः। एकां चतुर्थीं सन्त्यज्य कृष्णपक्षेऽपि मध्यमाः॥' इति।

उपनयने तिथिफलानि—

तिथिफलान्याह बादरायणः—

'प्रतिपदि मदिरासक्तः श्रुतिधरमेधाधिको द्वितीयायाम्। नीतिज्ञो मेधावी जितसकलारिस्तृतीयायाम्॥
मन्दधिया हृतचित्तोऽधीतश्चपलश्चतुर्थ्यां स्यात् । पञ्चम्यां बहुवित्तः पूर्णायुर्धनपतिर्मतिमान् ॥
षष्ठ्यामशुचिः सततं सप्तम्यां व्याधिसन्तप्तः । अल्पायुरथाष्टम्यां नवमे धनवर्जितः सदा पुरुषः ॥
दशम्यामर्थसम्पत्तिरेकादश्यां गुणान्वितः । द्वादश्यां नीतिशास्त्रज्ञो निधनाय त्रयोदशी ॥
चतुर्दश्यां भवेन्नाशः पञ्चदश्यां क्षयो भवेत् ॥' इति ।

अत्र वाक्ये मध्यमा षष्ठी निषिद्धैव । अत एव ग्रन्थकृता नोक्ता । मध्यमे एकादशीद्वादश्यावतिप्रशस्ते ।

त्रयोदशीतृतीयासप्तमीद्वितीयाविशेषा उपनयनेऽतिप्रशस्ताः—

ननु सप्तमीत्रयोदश्योरनेन वाक्येनानिष्टफलोक्तेर्नारदवाक्ये कथं ग्रहणम् । किं च 'कृष्णपक्षे चतुर्थीति सप्तम्यादिदिनत्रयम् । चतुर्दशी चतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः' इति वसिष्ठोक्तेन गलग्रहोक्तेश्च । उच्यते । वसन्तविषयत्वात्तयोस्तिथ्योः । तदप्युक्तं नारदेनैव—'विनर्तुना वसन्तेन कृष्णापक्षे गलग्रहे । अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति' इति । अथवा माघशुलसप्तमी मन्वादिः । तस्या अपि ग्रहणं यथा स्यात् । अत एव मन्वाद्यापवादमाह वसिष्ठः—'या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघे च सप्तम्यथ फाल्गुनस्य । कृष्णे द्वितीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः ॥' इति । अत्र चैत्रशुक्लतृतीयायुगादिः । माघशुक्मसप्तमी मन्वादिः । वैशाखशुक्लतृतीया युगादिः । फाल्गुनपूर्णिमोत्तरं द्वितीया चातुर्मास्यद्वितीया । आसामनध्यायत्वेऽपि व्रतबन्धे प्राशस्त्यसद्भावं इत्यर्थः । अनध्यायत्वं च सप्रयोजनं 'शुचि शुक्र' इत्यादिपद्यव्याख्यानावसरेऽस्माभिर्वक्ष्यते ।

कृष्णपक्षस्याद्यं त्रिकं श्रेष्ठमुपनयने—

कृष्णादिमेति । विहितमासानां कृष्णपक्षस्यादिमे त्रिके पञ्चमी पर्यन्तं सत् । नारदवाक्ये शुक्लपक्षस्योक्तेः—'आपञ्चम्यास्तिथेः कृष्णः शुक्लवत्परिकीर्तितः' इति वचनेनापवादनोक्तेः । एकां चतुर्थीं सन्त्यज्य कृष्णपक्षेऽपि चोत्तमाः । आपञ्चम्यास्तु तिथयो यदा स्युरभिनिन्दिताः' इति नारदस्याप्युक्तेश्च। वसिष्ठोऽपि—'त्यक्त्वा चतुर्थीमपि कृष्णपक्षे त्वाद्यं त्रिभागं शुभदं व्रते च' इति । न चेति । त्रिधाविभक्तस्य दिवसस्य त्रयो भागाः क्रमेण पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णसंज्ञका भवन्ति । उक्तं च स्कन्दपुराणे—ऊर्ध्वं सूर्योदयात्प्रोक्तं मुहूर्तानां तु पञ्चकम् । पूर्वाह्णः प्रथमः प्रोक्तो मध्याह्नस्तु ततः परम् । अपराह्णस्ततः प्रोक्तो मुहूर्तानां तु पञ्चकम्, इति । तत्रापराह्णभागे च व्रतं न सत् । 'अपराह्णेचोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति, इत्युक्तेः । युक्तं चैतत् । तस्मिन्न्समयेऽपि श्राद्धं कर्तुमुचितं न तु इतरशुभकृत्यम् । यदाह नारदः—'त्रिधा विभज्य दिवसं तत्रादौ कर्म दैविकम् । द्वितीये मानुषं कार्यं तृतीयेंऽशे तु पैतृकम्' इति ।

अपराह्णे सर्वथा गर्हितमुपनयनम्—

एतस्य फलमुक्तं मनुना—'सर्वदेशेषु पूर्वाह्णे मुख्यं स्यादुपनायनम् । मध्याह्ने मध्यम-

प्रोक्तमपराह्णे च गर्हितम्' इति । एवं सति पूर्वाह्णे कदाचिल्लग्नासम्भवे मध्याह्नसमयेऽपि सति सम्भवे लग्नं कार्यम् । अपराह्णे न सर्वथा न कार्यमिति निष्कृष्टोऽर्थः ।। ४० ।।

पीताम्बरा—व्रतबन्ध संस्कार में नक्षत्रादिक—साधारण वचन से उत्तरायण सूर्य में ही उपनयन संस्कार करने चाहिए । विशेष वचनों से ब्राह्मण वटु का उपनयन वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय वटु का ग्रीष्म और वैश्य वटु के लिए शरदृतु के मास ये मुख्य मास होते हैं ।

क्षिप्र ध्रुव संज्ञक, आश्लेषा चरसंज्ञक, मूल, मृदुसंज्ञक, तीनों पूर्वा और आर्द्रा इन २२ नक्षत्रों, रवि, बुध, गुरु, शुक्र और बुध वारो, तथा द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, एकादशी द्वादशी और दशमी तिथियों, दिन के पूर्वाह्ण समय में, कृष्ण पक्ष की पञ्चमी तिथि तक में ही यज्ञोपवीत मुहूर्त शुभ होता है ।

दिन मान में तीन का भाग देकर प्रथम तृतीयांश का नाम पर्वाह्ण, द्वितीय का मध्याह्न और तृतीयांश का मान अपराह्ण होता है । दिन के प्रथम तृतीयांश में दैव, पूर्वाह्ण में मानुष और अपराह्न में पैतृक (श्राद्ध आदिक) कर्म उचित होते हैं ।

उपनयन का मुख्यकाल पूर्वाह्ण है । मध्याह्न काल मध्यम और अपराह्न काल सर्वथा त्याज्य है । पूर्वाह्न में कदाचित् लग्न का यदि अभाव हो तो मध्यान्ह में भी उपनयन किया जा सकता है किन्तु अपराह्न में उपनयन सर्वथा त्याज्य है ।। ४० ।।

अथ व्रतबन्धे सामान्यतो लग्नभङ्गयोगं प्रामाणिकयाह—

कवीज्यचन्द्रलग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमाः ।
व्ययेऽब्जभार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खलाः ।। ४१ ।।

पीयूषधारा—कपीज्येति । अत्र लग्नार्थे राशयः सापवादा वसिष्ठेनोक्ताः—'लग्नायसौम्यग्रहराशयो ये ग्राह्या न पापग्रहराशयो ये । ग्राह्याश्च तेऽपि प्रबलैश्च सौम्यैरधिष्ठिताश्चापि निरीक्षिता वा' । अत एवाह नारदः—'राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः' इति ।

लग्नफलान्युपनयने—

एवं सति जगन्मोहने वसिष्ठेन प्रत्येकं लग्नफलान्युक्तानि—

'मेषे भवति वाक्कुण्ठो वित्तविद्यायुतो वृषे । युग्मे वेदान्तदर्शी स्यात्कुलीरे च षडङ्गवित् ।।
शिल्पकर्मकरः सिंहे षष्ठे भवति पण्डितः । तुलायां स्यात्तु वाणिज्यं काण्डपृष्ठश्चवृश्चिके ।।
सर्वत्र पूजितश्चापे शूद्रवृत्तिर्मृगे तथा । राजप्रेक्षी भवेत्कुम्भे मीने वेदान्तपारगः, इति ।

शुभाशुभग्रहाणां निरीक्षणाद्यभावे योगानुसारि फलम्—

तानि लग्नानां शुभाशुभग्रहाणामुत्तमनिद्याधिष्ठाननिरीक्षणाद्यभावे द्रष्टव्यानि । यदा तत्सम्भवस्तदा—'यथाहि योगादमृतायते विषं विषायते मध्वपि सर्पिषा समम्' इति वचनात्-द्योगजमेव फलं भवति तत्र रिपौ षष्टस्थानो मृतौ अष्टमस्थाने चेच्छुक्रबृहस्पतिचन्द्रलग्नस्वामिनो भवन्ति तदाधमा मरणकारकाः स्युः । अब्जभार्गवौ चन्द्रशुक्रौ व्यये चेद्भवतः तदा मरणकरावित्यर्थः । खलाः पापग्रहा लग्नाष्टमपञ्चमस्थानेषु स्थिताश्चेत्तदा तथा मरणकरा इत्यर्थः ।। ४१ ।।

पीताम्बरा—यज्ञोपवीत में लग्नभंग योग—यज्ञोपवीत कालीन लग्न से छठे आठवें, शुक्र बृहस्पति, चन्द्र और लग्नाधीश, अधम (अशुभ मरणकारक), १२ वें स्थान में चन्द्रमा और शुक्र तथा लग्न, अष्टम और पञ्चम स्थानों में अशुभ ग्रह अशुभ फल देते हैं ॥ ४१ ॥

अथ सामान्यतो लग्नशुद्धिमनुष्टुभाह—

व्रतबन्धेष्टषड्रिष्फवर्जिताः शोभनाः शुभाः ।
त्रिषडाये खलाः पूर्णो गोकर्कस्थो विधुस्तनौ ॥ ४२ ॥

पीयूषधारा—व्रतेति । शुभाः शुभग्रहाः अष्टमषष्ठद्वादशस्थानस्थिताश्चेन्न स्युस्तदा व्रतबन्धे शोभनाः शुभफलदायकाः । खलाः पापाः तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थिता शोभनाः । यदाह नारदः—त्रिषडायगतैः पापैः षडष्टान्त्यविवर्जितैः । शुभैः षष्ठाष्ठलग्नान्त्यवर्जितेन हिमांशुना' । दैवज्ञमनोहरे गुरुः—

'लग्नस्थिते च रन्ध्रे च पापे च मरणं वटोः । सौख्यं स्यात्त्रिषडायेषु जडत्वमितरेषु च ॥
चन्द्रक्रूरास्तनौ नेष्टाः सर्वे रन्ध्रे व्यये कविः । सितेन्दुलग्नपाः षष्ठे मौञ्जीविद्यादिकर्मसु ॥
मौञ्जीबन्धे विशेषेण प्राग्लग्नात्पञ्चमं तथा । क्रूरग्रहैर्विमुक्तं च भृगुराहू तथाष्टमे ॥'

दाक्षिणात्यास्त्वेवमाहुः—'चन्द्रक्रूरास्तनौ नेष्टाः सर्वे रन्ध्रे व्यये कविः । सितेन्दुलग्नपाः षष्ठे वटोः प्राणापहारकाः' इति । अत्र शुक्रस्य मरणरूपफलमुक्तं तदेतत्प्राच्या न सहन्ते। 'व्ययस्थानगताः सर्वे कुर्वन्ति व्ययशीलिनम् । खलं नीचं पापरतं बन्धुहीनं विदेशगम्' इति वसिष्ठादिवचोविरोधात् । नन्वेतादृशदुष्टफलश्रवणाद्द्वादशशुक्रो निषिद्ध एवेति चेन्न । एवं सति द्वादशस्थानानां सर्वेषामपि वर्जनीयत्वमापतेत् । तच्च तवापि न सम्मतम् 'सर्वत्र शुभकृच्छुक्रः षष्ठसप्ताष्टमं विना । इति कश्यपोक्तेश्च ।

उपनयनकालिकरव्यादिग्रहस्थितिफलं स्थानविशेषेण—

विशेषो वसिष्ठेनोक्तः—

'द्वादशस्थं रविं भौमं पश्यन्नाचार्यनेत्रहा । बलिनं बलवान्नूनमचिरान्नात्र संशयः ॥
सर्वे ग्रहाश्चाष्टमगा निधनाः धनशोकदाः । विना स्वतुङ्गस्वर्क्षाधिमित्रगाः शुभवर्गगाः ॥
आचार्यमशुभा घ्नन्ति शिष्यं घ्नन्त्यशुभेतराः ।'

अस्यापवादस्तेनैवोक्तः—

'चन्द्रात्स्मरारिरन्ध्रेषु यद्येकस्मिञ्छुभग्रहे । स्थितेऽधियोगसंज्ञः स्याच्छुभयोगो द्विजन्मनाम् ॥
केन्द्रत्रिकोणगे जीवे भानुः शुक्रोऽथवा व्यये । द्वितीये ज्ञे शुभे योगे द्विजानामुपनायनम्' इति ।

गुरुः—'मेषगो कर्कटाख्यानां भानुशुक्रेन्दवः क्रमात् । यमोदये भवेद्योगे द्विजोपनयने शुभम्' इति । यमोदये मिथुनलग्नोदये । पूर्ण इति । पूर्णः शुक्लपक्षीयो विधुः कर्कस्थो वृषस्थश्च सन् तनौ लग्नस्थितो यदि भवेत् तदैव शुभो नान्यथा । यदाह वसिष्ठः—'प्रालेयरश्मौ यदि लग्नसंस्थे वलक्षपक्षेऽपि भवेत्स रोगी' इति । गुरुश्च—'चन्द्रोदयेऽभिशस्तः स्यात्क्षयरोगी सितेतरे । शुक्लपक्षे भवेद्यज्वा स्वभे तुङ्गे विशेषतः ॥' इति चन्द्रे उदये इति पदच्छेदः । प्रागुक्तमध्येन्दु-

रितिवत्समाधिः । युक्तं चैतत् । उपनयनं हि द्वितीयं जन्म । तत्र हि राशिविशेषेण लग्नस्थ-चन्द्रस्य प्राशस्त्यमभिहितम् । तथा च लघुजातके वराहः—'कर्कवृषाजोपगते लग्ने चन्द्रे धनी सुरूपश्च । विकलाङ्गजडदरिद्रः शेषे तु विशेषतः कृष्णे ।।' इति ।

उच्चस्थो लग्नस्थश्च चन्द्रो निषिद्धः—

कश्यपस्तूच्चस्थं लग्नस्थं च चन्द्रं सदैव न्यषेधीत् । तथा 'वर्द्धमानोऽपि वा चन्द्रः पूर्णो वा यदि तुङ्गगः । निःस्वं करोति व्रतिनं लग्नगः क्षयरोगिणम्' इति । तदेतयोरुच्चस्थितचन्द्र-संबन्धिनोः पक्षयोर्देशाचारतो व्यवस्था । स्वगृहे चन्द्रस्तूत्तम एव द्वयोरिति ।। ४२ ।।

पीताम्बरा—सामान्यतः व्रतबन्ध में लग्नशुद्धि—शुभग्रह, अष्टम षष्ठ और द्वादश स्थान रहित शेष स्थानों में, पापग्रह तृतीय षष्ठ और एकादश स्थानों में शुभ होते हैं ।

वृष और कर्क राशियों का पूर्ण चन्द्रमा लग्न में शुभ होता है । अन्य राशियों में लग्नस्थ चंद्रमा अशुभ होता है ।। ४२ ।।

अथ वर्णेशशाखेशयोः प्रयोजनस्य वक्ष्यमाणत्वाद्वर्णाधीशं च शालिन्याह—

विप्राधीशौ भार्गवेज्यौ कुजार्कौ राजन्यानामोषधीशो विशां च ।
शूद्राणां ज्ञश्चान्त्यजानां शनिः स्याच्छाखेशाः स्युर्जीवशुक्रारसौम्याः ।। ४३ ।।

पीयूषधारा—विप्रेति । विप्राधीशाविति समासान्तर्गतमपि अधीशपदमन्यत्रानुषज्यते । तेन शुक्र-बृहस्पती ब्राह्मणानां स्वामिनौ, भौमसूर्यौ क्षत्रियाणां स्वामिनौ, चन्द्रो वैश्यानां स्वामी, बुधः शूद्राणां स्वामी, शनिरन्त्यजानां चाण्डालादीनां प्रतिलोमजातीनां स्वामी । यदाह वराहः—'विप्रादितः शुक्रगुरू कुजार्कौ शशी बुधश्चेत्यसितोन्त्यजानाम्' इति । स्वामिनाविति पूर्वशेषः । 'ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः' इति वेदक्रमात् जीवशुक्रारसौम्याः शाखेशाः स्युः । ऋग्वेदस्य गुरुः, यजुषः शुक्रः, साम्नो भौमः, अथर्वणस्य बुधः स्वामीत्यर्थः । यदाह नारदः—'वेदानामधिपा जीवशुक्रभौमबुधाः क्रमात्' इति । 'ऋग्यजुःसामशाखेशा गुरुशुक्रधरात्मजाः । अथर्वणस्य वेदस्य शाखेशश्चन्द्रनन्दनः ।।' इति वसिष्ठोक्तेश्च ।। ४३ ।।

पीताम्बरा—ब्राह्मणादिक वर्णों और वेदों के अधिपति ग्रह—ब्राह्मणों के शुक्र और बृहस्पति, क्षत्रियों के सूर्य और भौम, वैश्यों का चन्द्रमा, अन्त्यजों (चाण्डालादि प्रतिलोम जातियों का) के बुध और शनि स्वामी हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के क्रमशः गुरु, शुक्र, भौम और बुध अधिपति होते हैं ।। ४३ ।।

अनयोर्वर्णेशशाखेशयोः प्रयोजनं वसन्ततिलकयाह—

शाखेशवारतनुवीर्यमतीव शस्तं शाखेशसूर्यशशिजीवबले व्रतं सत् ।
जीवे भृगौ रिपुगृहे विजिते च नीचे स्याद्वेदशास्त्रविधिना रहितो व्रतेन ।। ४४ ।।

पीयूषधारा—शाखेशेति । यः स्वशाखाधिपस्तस्यैव वारस्तनुर्लग्नं च वीर्यं च गोचर-प्रकरणे स्वगृहावच्छिन्नत्वेन वा बलत्वं च तद्व्रतेति शस्तम् । यथा गुरुः ऋग्वेदादीनामीशो अतो गुरुवारे गुरुलग्ने धनमीनाख्ये गुरुबले च सत्युपनयनं शुभम्, एवं सर्वत्रापि ध्येयम् ।

तदुक्तं नारदेन—'शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं शिशोः। शाखाधिपतिलग्नं च त्रितयं दुर्लभं व्रते ॥' शाखेशेति। शाखा वेदस्तस्येशः स्वामी तुल्यन्यायत्वाद्वर्णेशोऽपि ग्राह्यः। सूर्यशशिजीवाः प्रसिद्धाः। एषां बले सति व्रतं सत्स्यादन्यथा नेत्यर्थः तदुक्तं च वसिष्ठे—'शाखेशसूर्यवर्णेशगुरूणां बलपूर्वकम्। ततोऽन्येषां गुरुबलं मुख्यमाचार्यशिष्ययोः ॥' राजमार्त्तण्डे विशेषः—'पितुः सूर्यबलं श्रेष्ठ शाखावर्णेशयोर्वटोः। सर्वेषां गुरुचन्द्रार्कबलं श्रेष्ठं व्रतादिषु ॥' इति। रत्नमालायाम् 'वर्णाधिपे बलोपेते उपनीतक्रिया हिता। सर्वेषां वा गुरौ चन्द्रे सूर्ये च बलशालिनि।' इति। भीमपराक्रमः—'विप्राणां गुरुसितयो राज्ञां रविभौमयोर्बलं शस्तम्। इन्दोर्विशां रवीन्दुत्रिदशेज्यबलेऽखिलानां तु ॥' नारदेन तु प्रत्येकं शाखेशादीनां उच्चादिस्थितत्वेन फलमुक्तम्—

'स्वोच्चसंस्थे तदंशे वा स्वराशौ वा तदंशके। शाखेशे वा गुरौ शुक्रे वेदवेदाङ्गपारगः ॥
परमोच्चगते जीवे शाखेशे वाथवा सिते। व्रती शिशुर्धनाढ्यः स्याद्वेदवेदाङ्गपारगः ॥
मित्रराशिगते जीवे तदंशे वा स्वशाखपे। शुक्रे वाचार्यसंयुक्ते तदा तत्र व्रती शिशुः ॥
स्वाधिमित्रगृहस्थे वा तस्योच्चस्थे तदंशके। गुरौ भृगौ वा शाखेशे विद्याधनसमन्वितः ॥'इति।
शाखेश इत्युपलक्षणम्। तेन वर्णाधिपेऽप्येतदेव फलम्। अत्र प्रमाणं रत्नमालायां प्रागुक्तम्।

तेषां निर्बलत्वे फलम्—

शाखेशादीनां निर्बलत्वे फलमाह—जीवेति। जीवे वा भृगौ वा चकाराच्छाखेशे वर्णेशे वा विजिते युद्धे पराजिते वा नीचे स्वनीचराशिस्थिते सति व्रतेनानुष्ठितेन सदा वेदशास्त्रविधिना वेदो वेदाध्ययनं शास्त्रं शास्त्रध्ययनं विधिर्नित्यनैमित्तिकश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानाख्यः, तेषां समाहारद्वन्द्वः, तेन रहितो व्रती स्यात्। तदुक्तं वसिष्ठेन—'नीचर्क्षनीचांशकसंस्थिते वा शाखेश्वरे वा स्फुजिदिन्द्रपूज्ये। व्रती शिशुर्हीनकुलप्रसूतः शास्त्रोपजीवी स्वगृहं विसृज्य ॥' नारदेनापि—

'स्वनीचगे तदंशे वा स्वारिभे वा तदंशके। गुरौ भृगौ वा शाखेशे कुलशीलविवर्जितः ॥
स्वाधिशत्रुगृहस्थे वा तदंशे वा तदा व्रती। शाखेशे वा गुरौ शुक्रे महापातककृद्भवेत् ॥

'शाखेशे इत्युपलक्षणं वर्णाधिपस्यापि। तदुक्तं वसिष्ठेन—

'शाखेशगुरुशुक्राणां मौढ्ये बाल्ये च वार्द्धके। नैवोपनयनं कार्यं वर्णेशे दुर्बले सति ॥'इति।
'शाखेशगुरुशुक्राणामेकस्मिञ्छत्रुनिर्जिते। विद्यावित्तार्थिभिस्तत्र न कार्यं चोपनायनम् ॥'

अत्र नीचाद्यवस्थितत्वेऽपि शाखेशादेः परिहारमाह वसिष्ठ एव—

'शत्रुनीचाधिशत्रुस्थे स्वांशे स्वोच्चभागगे। शाखेशे वा गुरौ शुक्रे न नीचफलमश्नुते ॥'इति।

उच्चादिसंज्ञामाह वराहः—

'अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीराझषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः दश १० शिखि ३ मनुयुक् २८ तिथीं–१५ द्रियांशै–५ स्त्रिनवक–२७ विंशति–२० भिश्च तेऽस्तनीचाः।' स्वगृहादिकं ग्रन्थकृद्विवाहप्रकरणे वक्ष्यति। ननु शुक्रे शत्रुगृहस्थे नीचग्रहस्थे वा वटोरुपनयनं निषिद्धमित्युक्तम्। तदयुक्तम्, शुक्रशत्रू रविचन्द्रौ तद्गृहे सिंहकर्कौ तन्नीचं च कन्या, ततः कर्कसिंहकन्याराशिस्थे शुक्रे वटोरुपनयनं कार्यमिति तु वाक्यार्थः सम्पद्यते। यदा शुक्रस्य कर्कादिराशित्रयावस्थितिस्तदा सामान्यतः सूर्यस्यापि दक्षिणायनगतत्वादेवोपनयननिषेधे सिद्धे पुनर्निषेधो व्यर्थः।

अत्रेयं समाधिसरणिः । यथा यद्यपि सामान्यतः सूर्यस्य दक्षिणायनगतत्वं सम्भवति तथापि विशेषः । कदाचिदसम्भवोऽप्यापतति । यदा स्पष्टीकृतिवशतो हि सूर्यात्प्राक् पश्चाद्वा एकराश्यन्तरितो राशिद्वयान्तरितो वा शुक्रः सम्भवति—तदा कर्कादिराशिस्थे सूर्ये शुक्रस्य स्पष्टीकृत्या कर्कादिराशित्रयावस्थितिः सम्भवतीति उपनयनकालदूषिका व्यर्थैव । दक्षिणायनसद्भावात् । यदा तु वृषमिथुनस्थिते सूर्ये स्पष्टीकृत्या कर्कसिंहराश्यवस्थितिः शुक्रस्य सम्भवति तद विहितकालदूषिकेतिसार्थक एव निषेधः । ननु शत्रुक्षेत्रावस्थितशुक्रनिषेधोऽभिहितरीत्या युक्त एव, नीचराश्यवस्थितशुक्रनिषेधो व्यर्थ एव । यतः स्पष्टीकृत्या जातोऽपि कन्यास्थितः शुक्रः कदाचिदपि दक्षिणायनं न व्यभिचरति । सत्यम् 'शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु व्युत्क्रमात्तु द्विजन्मनाम् । मुख्य साधारणं तेषां व्रतं माघादिपञ्चसु' इति नारदादिवाक्येभ्यः शरत्काले वैश्यानामुपनयनं विहितमित्यवगम्यते । तत्र कदाचिच्छुक्रस्य नीचराशिकन्यावस्थित्योपनयननिषेधेन वचनसार्थक्यात् । यदा तु 'विप्रस्य क्षत्रियस्यापि मौञ्जी स्यादुत्तरायणे । दक्षिणे तु विशां कुर्यान्नानध्याये न सङ्क्रमे' वृद्धवसिष्ठवाक्याद्दक्षिणायनेऽपि वैश्यानां मौञ्जी प्रशस्ता तदा तु सुतरां शुक्रस्य शत्रुगृहनीचगृहस्थितत्वदोषोक्तिः सार्थिकैवेति ।

शत्रुगृहस्थे गुरौ नोपनयनम्—

ननु शत्रुगृहस्थे गुरावत्युपनयनं निषिद्धमित्युक्तम् । तत्र गुरोः शत्रू बुधशुक्रौ, तद्गृहाणि मिथुनकन्यावृषतुलाख्यानि तत्स्थे गुरौ वटोरुपनयननिषेधो नीचस्थितगुरुवच्छिष्टैः कुतो नाङ्गीक्रियत इति । उच्यते, तत्र शत्रुंराशयो यथा गुरोरस्ते सिंहस्थे वा गुरौ समस्तशुभकर्मणामारम्भो निषिद्धस्तथा दोषप्रकरणे पाठात्। तथा स्वनीच इत्यादिवाक्यस्योपनयनप्रकरण एव पाठादनावश्यकता प्रतीयते । आवश्यकत्वे तु दोषप्रकरण एव निषेधो वक्तव्यः स्यात् । न च तत्रोक्तौ सकलशुभकर्मणां निषेधः स्यादिति वाच्यम् । स्वनीचग इत्यस्य वाक्यस्य 'शूले कालशीलविवर्जितः' इति चरणरूपं—'मौञ्जीवन्धनं कार्येत्' इति पठितव्यमपीति तस्यैव निषेधः सेत्स्यति । ननु मौञ्जीबन्धनपदमुपलक्षणत्वेन व्याख्यास्यते यथा—'उपनयनं गोदानं पाणिग्रहणं गृहप्रवेशगमनानि । अस्तमितेषु न कुर्यात्सुरगुरुभृगुपुत्रचन्द्रेषु' इत्यादिषूक्तोपनयनपदमिति । सत्यम् । सर्वत्रोपलक्षणत्वं वाक्यान्तराणि विना व्याख्यातुं दुर्घटम् । अत्र हि—'वापीकूपतडागयागगमनम्' इत्यादि ऋक्षोच्चयादिवाक्यैकवाक्यतावशादुपनयनादिपदानि उपलक्षत्वेन व्याक्रियन्ते न केवलानि । सदृशवाक्यान्तराभावात् ।

वृषमिथुनकन्यातुलास्थे गुरावुपनयनम्—

एवं सति दोषप्रकरण एव निषेधे वक्तव्ये यदुपनयनप्रकरणे दोषाभिधानं तद्वटोः कालान्तरे सम्भवति वृषमिथुनकन्यातुलास्थे गुरावुपनयनं न कार्यमित्येवम्परम् । तदसम्भवे तु भवत्येव, कालान्तराभावात् । नीचस्थितगुरौ तु सर्वथा न भवति । दोषप्रकरणे पाठात् । गुर्वाद्यस्तवन्नीचराशिगतत्वेन निषेधसिद्धे तदंशकनिषेधो राश्यन्तरगेऽपि गुरौ नीचत्वहान्यर्थमित्यलमतिप्रसङ्गेन ।। ४४ ।।

पीता०—ब्राह्मणादिक वर्णों और चारों वेदों के अधिपति ग्रह का प्रयोजन—जिस वटु का जो ब्राह्मणादिक वर्ण और वेद हो तदनुसार उस ग्रह के वार, लग्न और गोचर में कहे गए उस ग्रह का बल उपनयन के लिए विशेष शुभ फलद है ।

शाखेश, सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति की वलवती स्थिति, यज्ञोपवीत के लिए उत्तम होती है। जिस समय वृहस्पति शुक्र, अपनी शत्रु राशियों में, अपनी नीच राशियों में और युद्ध में पराजित हों उस समय का यज्ञोपवीत करने से बटु का भविष्य जीवन वेद-शास्त्र ज्ञान से रहित होता है ।। ४४ ।।

अथ सामान्यतो निषिद्धस्य जन्ममासादेरत्र व्रतबन्धेऽपवादमनुष्टुभाह—

जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती ।
आद्यगर्भेऽपि विप्राणां क्षत्रादीनामनादिमे ।। ४५ ।।

पीयूषधारा—जन्मर्क्षेति। जन्मनक्षत्रे जन्ममासे जन्मलग्ने चादिशब्देन जन्मतिथिः एतेषु सत्स्वपि दोषेषु विप्राणामाद्यगर्भेऽपिशब्दात् द्वितीयगर्भादावपि व्रती बालो व्रते यज्ञोपवीते विद्याधिकः स्यात् । क्षत्रादीनां क्षत्रियवैश्यानां पुनरनादिमे द्वितीयगर्भाद्ये बालके सति जन्मर्क्षमासलग्नादौ विद्याधिको व्रती स्यात् आद्यगर्भे तु तेषा सर्वथा प्रतिषेध एवेति । अत्रायमाशयः । श्रीपतिः—'जन्ममासि न च जन्मभे तथा नैव जन्मदिवसेऽपि कारयेत् । आद्यगर्भदुहितुः सुतस्य वा ज्येष्ठमासि न च जातु मङ्गलम् ।।' इति अत्राद्यगर्भदुहितुः सुतस्यैवेति देहलीदीपन्यायेनोभयत्रापि सम्बध्यते । तेन जन्ममासादावाद्यगर्भस्यैव निषेधः । तथा च—'सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदो हि दूषणम्' इति वाक्यभेदानापत्तेः। अत एव महेश्वरः—'न जन्ममासे न च जन्मधिष्ण्ये न जन्मकालीयदिने विदध्यात् । 'ज्येष्ठे न मासि प्रथमस्य सूनोस्तथा सुताया अपि मङ्गलानि' इति वाक्यान्ते प्रथमस्येत्याद्युक्तवान् । नारदीये—'न जन्ममासे जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि वा । आद्यगर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रहः' इति विशेषाच्च ।

ब्राह्मणविषयेऽपवादो गर्भाष्टमे उपनयने फलविशेषः—

अस्यापवादमाह शौनकः—

'जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मनि जन्मराशौ ।
व्रतेन विप्रो न बहुश्रुतोऽपि प्रज्ञाविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम् ।।
गर्भाष्टमे गर्गपराशराद्यैः फलं यदुक्तं व्रतबन्धने तु ।
ततोऽधिकं जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मनि वाडवानाम् ।।'

वाडवानां ब्राह्मणानाम् । 'द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः' इत्यभिधानात् । प्रथमदशमैकोनविंशतिनक्षत्राणां ग्रहणार्थं जन्मतारकास्वित्युक्तम् । पट्टबन्धने इत्यादिनारदवाक्यं प्रागुक्तमेव । गर्भाष्टमोपनयनफलमाह राजमार्त्तण्डः—

'यज्वा वसन्तसमये बहुवित्तभोगी गर्भाष्टमे विविधशास्त्रविशारदस्तु ।
वेदार्थपालनपरः खलु जन्ममासे ऋक्षोऽपि जन्मनि बहुक्रतुभाजनं स्यात् ।।'

ननु—'विवाहे चोपनयने जन्ममासं च वर्जयेत् ।
विशेषाज्जन्मपक्षं तु वसिष्ठाद्यैरुदाहृतम्' इति जगन्मोहने गर्गवचनं कथं सङ्गच्छेतेति चेत्, सत्यम् । क्षत्रियाणां विशां चाद्यगर्भनिषेधार्थं भविष्यति । तथा सति द्वितीयगर्भादावुपनयनादिमङ्गल कृत्य सुखोदकं स्यात् । विप्राणा तु वाडवानामिति विशेषोक्तेराद्यगर्भानाद्यगर्भसाधा-

रणमुपनयनं जन्ममासादौ कुत इति चेत्, शृणु। यो जन्ममासादौ निषेधः स आद्यगर्भस्यैव सोप्युपनयनवाक्येनापोह्यते द्वितीयगर्भादौ तु निषेध एव नास्ति किं तदपवादेन ॥ ४५ ॥

पीताम्बरा—सामान्यतया जन्ममासादिक में व्रतबन्ध का निषेध कहते हुए पुनः अपवाद (विधि) बताया जा रहा है—प्रथम गर्भीय (ज्येष्ठ सन्तान) के ब्राह्मण बालकों में जिनका जन्मनक्षत्र, जन्ममास, जन्मलग्न और जन्मतिथि में यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है वे विशेष विद्वान् होते हैं।

क्षत्रिय और वैश्य वर्णों के वटुओं के द्वितीय गर्भीय वटुओं का उपनयन संस्कार भी जन्म नक्षत्रादिक में हो सकते हैं और वे विशेष वलवान् और धनी भी होते हैं ॥ ४५ ॥

अथ गुरुबलमनुष्टुभाह—

वटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः।
श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयान्यत्र निन्दितः ॥ ४६ ॥

पीयूषधारा—वटुकन्येति। वटुरुपनयनाधिकारी। उपलक्षणत्वाद्वरोऽपि। तथा कन्या स्त्रीजात्यपत्यम्। तज्जन्मराशेः नवमपञ्चमैकादशद्वितीयसप्तमस्थानस्थितो गुरुः श्रेष्ठः उत्तमः। यदाह श्रीपतिः—'स्वायधर्मतनयद्युनस्थितो नाकनायकपुरोहितः शुभः' इति। केति। दशमषट्तृतीयप्रथमस्थानस्थितो गुरुः पूजया धर्मशास्त्रोक्तपूजाविधानेन स्वनुष्ठितेन श्रेष्ठः। अन्यत्र चतुर्थद्वादशाष्टमाख्यनिन्द्यस्थानस्थितः सन् द्विगुणत्रिगुणादिपूजया स्वनुष्ठितयापि निन्द्यो निषिद्ध इत्यर्थः। उक्तं च वराहेण—

'दुश्चिक्यजन्मारिखमध्यमेषु जन्मर्क्षतो वाञ्छति वज्रपाणेः।
पूजां पुरोधा न स एव कांक्षत्यथाष्टमप्रान्त्यरसातलस्थः' इति।

विवाहोपनयनयोर्गुरुबले विशेषो द्वित्रिपूजाभिः—

वसिष्ठेन तु विशेष उक्तः—'वन्धौ तृतीये रिपुराशिसंस्थे वाञ्छन्ति पूजां दशमे सुरेज्ये। नेच्छन्ति पूजां जनिगे व्ययस्थे पुरातना अष्टमगेऽपि राशौ।' जनिगे जन्मराशिस्थे। चतुर्थजन्मस्थगुरोः पूजानिरपेक्षत्वविषयिणी देशभेदेन व्यवस्था ध्येया। तत्र पूजानिरपेक्षेपि गुरौ गुणवद्वरोपलब्धौ कन्यायाः कालातिक्रमाद्विवाह उचितः। तदप्युक्तं वराहेण—'पूजाभिलाषं प्रति निःस्पृहोपि कुर्याद्गुरौ शुद्धिविवर्जितोऽपि। वरस्य लाभे शुभदं विवाहं वदन्ति गर्गच्यवनादिमुख्याः ॥' इति अत्र चतुर्थद्वादशाष्टमस्थानस्थितत्वेन गुरोर्द्विगुणत्रिगुणादिकां पूजां विधाय विवाहः शुभ इति साम्प्रदायिकार्थः। विवाह इत्युपलक्षणम्। तेन व्रतबन्धोप्येवमेव ध्येयः। तदुक्तं नारदेन—'वालस्य वलहीनोऽपि शान्त्या जीवो बलप्रदः। यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्तेनोपनायनम् ॥' इति। वसिष्टेनापि—'उक्तेऽपि वर्षे न बली गुरुश्चेच्छान्त्या प्रशस्तं व्रतबन्धकर्म। अनुक्तवर्षेऽपि बलप्रदोऽपि नैवं तयोरब्दवलं वलीयः ॥' इति।

गोचरेणैव गुरुबलं न वामवेधेन मौञ्जीबन्धादौ—

अत्र वामवेधेन ये गुरुशुद्धिमाहुस्तान् दूषयति गर्गः—'मौञ्जीबन्धे विवाहे च प्रतिष्ठायां विशेषतः। गोचरेणैव कर्तव्यं वेधादिकमकारणम् ॥' इति।

अष्टकवर्गबलेनैवेति कस्यचिन्मतम्—

प्राच्यास्तु गोचरबलाभावे अष्टकर्गबलेनैव व्रतबन्धादिकमाहुः। यदाह राजमार्त्तण्डः—

अष्टवर्गविशुद्धेषु गुरुशीतांशुभानुपु । व्रतोद्वाहौ च कर्त्तव्यौ गोचरेण कदापि न ॥' इति उपलक्षणमेतत् । यत्र कर्मणि यस्य ग्रहस्य शुद्धिरपेक्षिता तस्याष्टकवर्गशुद्धिर्विचार्या । एतदप्याह स एव–अष्टवर्गेण ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु । सूक्ष्माष्टवर्गसंशुद्धिः स्थूला शुद्धिस्तु गोचरे ॥ अभावतो गोचरशोभनानां शुद्धिं वदेद्वागुरिष्टवर्गात् । वैधव्यकन्याक्षयहेतुयोगे जीवाष्टवर्गस्य वदेत्तु शुद्धिम् ॥' इति ।

गुरोरष्टकवर्गस्तथा रव्यादीनां तत्फलं च—

गुरोरष्टकवर्गो लिख्यते । बृहज्जातके वराहः—

'दिक्स्वाद्यष्टमदायबन्धुषु कुजात्स्वात्सत्रिकेष्वङ्गिराः । सूर्यात्सत्रिनवेषुधीस्वनवदिग्लाभारिगो भार्गवात् । जायायार्थनवात्मजेषु हिमगोर्मन्दत्रिषड्धीव्यये दिग्धीषट्स्वसुखायपूर्वनवगो ज्ञात्संसमरेषूदयात् ॥' इति ।

एवं सत्यामपेक्षायां सूर्यादीनामप्यष्टकवर्गास्त एव ध्येयाः । एवं जन्मकालीनग्रहवशादुक्तस्थाने रेखाः दत्त्वा साम्प्रतं विरुद्धफलदातृग्रहाधिष्ठितराशौ रेखाधिक्ये शुभमन्यथा नेति निष्कृष्टोऽर्थः । उक्तं च लघुजातके—'विफलं गोचरगणितं ह्यष्टकवर्गेण निर्दिशेत्पुंसाम् । रेखाधिक्ये शुभदं विद्वधिके नैव शोभनं प्रायः ॥' अत्र प्रत्येकं रेखाफलमुक्तं यवनाचार्यैः—

'कष्टं स्यादेकरेखायां द्वाभ्यामर्थक्षयो भवेत् । त्रिभिः क्लेशं विजानीयाच्चतुर्भिः समता मता ॥ पञ्चभिः क्षेममारोग्यं षड्भिरर्थागमो भवेत् । सप्तभिः परमानन्दस्त्वष्टाभिः सर्वसम्पदः ॥' इत्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ४६ ॥

पीताम्बरा—बटु और कन्या के उपनयन और विवाह में गुरुबल (बृहस्पति का बल) विचार—बालक और कन्या की जन्मराशि से नवम पञ्चम एकादश द्वितीय सप्तम स्थान स्थित बृहस्पति उपनयन और विवाह के लिए श्रेष्ठ है । तथा जन्मराशि से १०,६,३,१ स्थानों का बृहस्पति उसकी पूजा से उपनयनादि में गृहीत है । अन्य ४-८-१२ स्थानों की गोचर स्थिति पर विवाहादिक कार्य नेष्ट होते हैं ।

अधिक अवस्था प्राप्त कन्या के लिए गुणी वर की उपलब्धि पर ४-८-१२ स्थानीय गुरु भी सदोष नहीं माना गया है ॥४६॥

अथ ग्रन्थकृत्स्वमतेन गुरुदौष्ट्यापवादमनुष्टुभाह—

स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरुः ।
रिःफाष्टतुर्यगोऽपीष्टो नीचारिस्थः शुभोऽप्यसत् ॥४७॥

पीयूषधारा—स्वोच्चे इति । गुरुर्द्वादशाष्टमचतुर्थाख्यनिन्द्यस्थानस्थितोऽपि यदि स्वोच्चस्थाने कर्के स्वभे धनुर्मीनाख्ये स्वमैत्रे स्वमित्रगृहे मेषवृश्चिकाख्ये स्वांशे यस्मिन् कस्मिश्चिद्राशौ धनुर्मीननवांशे वर्गोत्तमे वर्गनवांशे यथा बृषराशौ वृषनवांशे गुरुः वर्गोत्तम इति । वर्गोत्तमलक्षणमुक्तं वराहेण—'वर्गोत्तमाश्चरगृहादिषु पूर्वमध्यपर्यन्तगाः शुभफला नवभागसंज्ञाः ।' इति ।

स्वोच्चादिनवांशेऽन्येष्वपि केषुचित्स्थानेषु शुभो गुरुः—

उपलक्षणत्वात्स्वोच्चादिनवांशेऽपि वा स्थितः स्यात्तदेष्टशुभफलदाता । कैमुतिकन्यायेनाप्यन्येषु स्थानेष्वेतादृशो गुरुः शुभ एव । यदाह भुजबलः—'वर्गोत्तमे स्वभवने भवनेऽथ मैत्रे

मित्रांशके स्वभवनोच्चनवांशके वा। जन्माष्टरिःफरिपुखचित्रचतुर्थगोऽपि जीवः सुखार्थसुतवृद्धिकरो विवाहे ॥' व्यासोऽपि—'मित्रराशिगते जीवे स्वगृहे स्वोच्चगेऽपि वा। उद्वाहिता यदा कन्या भवेत्पुत्रार्थसंयुता ॥' इति तुल्यन्यायत्वाद्व्रतादावपि ज्ञेयम्। ननु गुरोः सूर्यभौमौ मित्रे। एवं सति सिंहकर्कावित्यपि कुतो न व्याख्यातमिति चेन्न। सिंहस्थस्य गुरोः स्वरूपेणैव निषेध इत्युक्तं प्राक्। कर्कस्थो गुरुरुच्चस्थ एवेति पुनरुक्तिः। अतः प्राक्साधीयः प्राग्व्याख्यातम्।

गुरुविषये नीचार्यष्टमादिगैर्विशेषः—

नीचं मकरः अरिस्थः मिथुनकन्यातुलावृषराशिस्थो गुरुः गोचरेण शुभोप्यसत् अनिष्टफलदातेत्यर्थः। तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे—

'उच्चस्थः स्वगृहे सुहृद्भवनगो वाचस्पतिर्नित्यशः,
पूर्णायुर्विविधार्थसौख्यजनको जन्माष्टमस्थोऽपि चेत्।
नीचस्थोऽरिगृहे दिवाकरकरच्छायानुगामी सदाऽ-
पीष्टोऽनिष्टफलं ददाति नियतं वैधव्यदुःखास्पदम् ॥' इति।

अत्राष्टमस्थ इत्यनेन सर्वथाऽनिष्टफले गुरौ 'न चाष्टमं लक्षगुणं प्रपूजयेत्' इति वचनात्पूजामनीहमानेऽप्युपनयनादि शुभं स्यात्। द्वादशचतुर्थस्थानस्थस्य तु द्विगुणपूजामिच्छतस्तथा तृतीयादिस्थानस्थस्य पूजामात्रापेक्षस्य गुरोः शुभफलदातृताऽस्तीति किं वक्तव्यमिति कैमुतिकन्यायसूचनार्थोऽपिशब्दः। नचाष्टममिति वाक्यं शत्रुगृहस्थितगुर्वभिप्रायम्।

गुरुदोषनिवारणसम्भवे गोचराष्टकवर्गेण उपनयनं मीनचैत्रे—

अस्यापवादो रत्नकोशेऽभिहितः—

'गोचराष्टकवर्गाभ्यां यदि शुद्धिर्न लभ्यते। तदोपनयनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ ॥'

'हरौ सिंहांशके जीवे नीचर्क्षे नीचभागगे।
मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥' इति गुरूक्तेश्च ॥४७॥

पीताम्बरा—बृहस्पति १२-८-४ निन्द्य स्थानस्थित हो कर भी यदि अपनी उच्च कर्क राशि में, अपने मित्र के घर मेष वृश्चिक राशियों में, जिस किसी भी राशि में होकर धनु और मीन के नवांशों में, वर्गोत्तम नवांश में (जैसे वृष राशि के वृषांश में) यदि हो तो अपनी उच्चादि नवांश में भी हो तो अनिष्ट फल न देकर इष्टफल ही देता है। यहाँ पर कर्क सिंह भी गुरु की मित्र राशियाँ हैं। उच्चगत गुरु कहने से कर्क राशि का उल्लेख स्वतः हो जाता है। सिंह राशि गुरु की मित्र राशि होते हुए भी पूर्व में सिंह गुरुवर्ज्य कहा जाने से मित्रराशियों में से पारिशेष्यात्—मेष वृश्चिक का ही उल्लेख समीचीन है।

गुरु यदि अपनी नीच मकर राशि का, अपनी शत्रु राशियों अर्थात् मिथुन, कन्या, तुला और वृष राशियों का बृहस्पति हो तो गोचर से शुभ होते हुए भी अशुभ फलप्रद होता है ॥ ४७ ॥

अथ व्रतबन्धे वर्ज्यपदार्थाननुष्टुभाऽऽह—

कृष्णे प्रदोषेऽनध्याये शनौ निश्यपराह्णके।
प्राक्सन्ध्यागर्जिते नेष्टो व्रतबन्धो गलग्रहे ॥४८॥

पीयूषधारा—कृष्णे इति । एषु दुष्टपदार्थेषु सत्सु व्रतबन्धो नेष्ट इति वाक्यार्थः । तत्र कृष्णे प्रथमत्रिभागरहिते कृष्णपक्षे—'आपञ्चम्यास्तु तिथयः पराः स्युरतिनिन्दिताः' इति नारदोक्तेः । तथा प्रदोषे यस्मिन् दिने सन्ध्याकाले प्रदोषो भवेत्तद्दिवसे व्रतबन्धो नेष्टः । प्रदोषलक्षणं स्वयमेव वक्ष्यति । अनध्यायोऽप नेष्टः । अनध्यायानग्रे वक्ष्यति । शनौ नेष्टः । अत्र सम्मतिरुक्ता । रात्रौ नेष्टः । अपराह्णेऽपि नेष्टः । अत्र सम्मतिवाक्यं प्रागलेखि । इयं पुनरुक्तिः स्मरणाविच्छेदार्था । तथा प्राक्सन्ध्या प्रातःसन्ध्या तस्यां गर्जिते मेघध्वनावनध्यायनिमित्ते सति नेष्टः । यदाह वसिष्ठः—'व्रतेऽह्नि पूर्वसन्ध्यायां वारिदो यदि गर्जति । तद्दिने स्यादनध्यायं व्रतं तत्र विवर्जयेत् ।' इति सन्ध्यालक्षणं प्रागुक्तमस्माभिः ।

उपनयनं गलग्रहे न भवति—

तथा गलग्रहे गलग्रहाख्ये दिवसे व्रतबन्धो नेष्टः । गलग्रहानाह गुरुः—त्रयोदश्यादिचत्वारि सप्तम्यादिदिनत्रयम् । चतुर्थी चैकतः प्रोक्ता अष्टावेते गलग्रहाः ॥' यत्तु वसिष्ठेन—कृष्णपक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादिदिनत्रयम् । त्रयोदशीचतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः' इत्यत्र कृष्णपक्षीयचतुर्थीग्रहणं कृतं तद्दोषाधिक्यप्रतिपत्त्यर्थम् । न तु शुक्लपक्षीयचतुर्थ्या ग्रहणार्थम् । कुतः गुरुवाक्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः ।

व्रते वर्ज्या अन्येऽपि कालाः—

अत्र दैवज्ञमनोहरे—'प्रदोषे निश्यनध्याये मन्दे कृष्णे गलग्रहे । मध्यं विनोपनीतस्तु पुनः संस्कारमर्हति । गलग्रहे प्रदोषे च स्वल्पायुरुपजायते ॥' नन्वत्र रात्रिनिषेधो व्यर्थः । यतो दिवसे पूर्वाह्णादयस्त्रयः काला उपनयने श्रेष्ठमध्यमाधमा उक्ताः । यदाह मनुः—'सर्वदेशेषु पूर्वाह्णे मुख्यं स्यादुपनायनम् । मध्याह्ने मध्यमं प्रोक्तमपराह्णे च गर्हितम्' । तत्र 'अपराह्णोपनीतस्तु पुनः संस्कारमर्हति' इत्यपराह्णकालस्यातिनिषिद्धत्वात्कैमुतिकन्यायेन रात्रिरपि निषिद्धेतिवाचनिको रात्रिनिषेधो व्यर्थ इति चेत्, सत्यम् । 'अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च । तीर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥' इति पुनः संस्कारनिमित्तापत्तौ निमित्तान्तरमेव कैमुतिकन्यानेन पुनरुपनयने प्राप्ते यदि रात्रिसद्भावस्तदोपनयनं माभूदिति रात्रिपदोक्तिः । अनयैव रीत्या प्रदोषोक्तिरपि सार्थिका । यतः सायङ्कालीनसमयः प्रदोषशब्दावाच्यः । 'प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमरोक्तेः । वयं तु दोषग्रहणाद्यद्दिने लक्षणविशिष्टः प्रदोषो भवेत्तद्दिनमुपनये त्याज्यमिति ब्रूमः । ननु यत्रापराह्णकालो निन्दितस्तत्र प्रदोषस्तु सुतरां निन्द्यः इति प्रदोषग्रहणसामर्थ्यात् पुनरुपनयननिषेधार्थं प्रदोषग्रहणमिति चेत् रात्रिपदवत्सर्वथा वैयर्थ्यं सत्येवं गतिर्युक्ता न च तदत्र पश्यामः । निबन्धकर्तृभिरुपनयनप्रकरण एव प्रदोषलक्षणवाक्यानां लिखितत्वात् । यद्यपि नानि 'सर्वविद्याविघातकृत्' इति 'ब्रह्म नाधीयते नरैः' इत्यादीनि च सामान्यतो विद्यारम्भविषयकाणि तथापि प्रथमातिक्रमे कारणाभावादक्षरस्वीकार एव तल्लेखनस्य युक्तत्वात् । अत एव शिष्टाः सायं यद्दिने प्रदोषस्तद्दिने गलग्रहरहितेऽप्युपयनं कुर्वन्ति । उक्तं च शाङ्र्गधरीये—'स्वाध्याये पूर्वाह्णे प्रदोषरहिते तथा विरिक्ते च । हित्वा शनिकुजवारौ स्वाध्यायः पूर्वपरदिने च इति । नन्वनध्यायेषु गलग्रहेषु च व्रतबन्धो निषिद्ध इत्युक्तम् । तदयुक्तम्'

विहिततिथ्यभावादेव भविष्यति । विहिताश्च तिथय इमाः द्वितीयातृतीयापञ्चमीषष्ठीदशम्येकादशीद्वादश्यो द्वित्रिष्वित्यादिनोक्ताः । उच्यंते द्विविधा अनध्यायाः—नित्या नैमित्तिकाश्च । नित्या अष्टम्यादयो नैमित्तिका मन्वाद्याः । तत्र मन्वादिराषाढशुक्लदशमीस्वाध्याय एव, सोपपदा अपि स्वाध्याया एव, सङ्क्रान्तिः कदाचित्स्वाध्यायेष्वपि स्यादित्येतासु तिथिषु व्रतबन्धो माभूदिति आसामनध्यायत्वोक्तिः ।

चैत्रवैशाखशुद्धतृतीययोरुपनयनम्—

चैत्रशुद्धवैशाखशुद्धतृतीययोर्मन्दादियुगाद्योस्तु 'या चैत्रवैशाखसिता तृतीया' इत्यादिवसिष्ठवाक्येन वाचनिकं व्रतबन्धविषयत्वम् । अन्यासां मन्वादिस्वाध्यायतिथीनां दक्षिणायनगतमनध्यायत्वे प्रथमवेदारम्भो माभूदिति प्रयोजनम् । 'ब्रह्म नाधीयते नरैः' इति वाक्यान्तेऽभिधानात् । वेदस्योपलक्षणत्वात्सकलविद्यारम्भोऽपि । एतच्च सामान्यतः सर्वासामप्यनध्यायतिथीनां प्रयोजनम् । मन्वादितिथिषु दानादिकमपि प्रयोजनं स्मर्यते मत्स्यपुराणे—मन्वन्तरादयश्चैते दत्तस्याक्षयकारकः ।' इति

चतुर्दश्यादीनामनध्यायत्वोक्तौ हेतुः—

चतुर्दश्यादयो यद्यनध्यायानीच्येरंस्तदा विहितप्रतिषिद्धत्वाभावान्मध्यमत्वावसायस्तिथीनां स्यात् । तत्र तथा स्वशाखीयनक्षत्रालाभे अनिषिद्धान्यन्यान्यपि नक्षत्राणि गृह्यन्ते तथा कदाचिद्विहिततिथ्यलाभे मध्यमतिथिष्वप्युपनयनं स्यात्तन्माभूदित्येतदर्थं चतुर्दश्यादीनामध्यायत्वम् । एतदेव समाधानं तुल्य न्यायत्वाद्गलग्रहेष्वपि ध्येयम् ।

गलग्रहेऽन्यान्यपि कर्माणि न भवन्ति—

किं च— विद्यारम्भो व्रतोद्देशः क्षौरं चैव विशेषतः । गलग्रहे न कर्त्तव्यं यदीच्छेत्पुत्रजीवितम् ॥' इति गुरुणा क्षौरादिनिषेधोक्तेश्च । क्वचिद्बहून्यपि कर्माणि गलग्रहे निषिद्धानि । उक्तञ्च—'चूडाव्रतं तथोद्वाहं कर्णयोरपि वेधनम् । गलग्रहे न कर्त्तव्यं यदीच्छेत्पुत्रजीवितम् ॥' इत्यलमतिप्रसक्तानुप्रसक्तेन ॥ ४८ ॥

पीताम्बरा—व्रतबन्ध में वर्ज्य पदार्थ—प्रथम त्रिभाग रहित शेष समग्र पक्ष में, जिस दिन सन्ध्या समय प्रदोष हो उस दिन, अनध्याय दिन, शनिवार अपराह्ण, जिस दिन प्रातः कालीन सन्ध्या में मेघगर्जन ध्वनि से अनध्याय तन्निमित्त कारण उस दिन, तथा गलग्रह दोष युक्त दिन में उपनयन संस्कार नहीं करना चाहिए । (प्रदोष और अनध्याय आगे वर्णित हैं) ।

त्रयोदशी चतुर्दशी पूर्णिमा प्रतिपत् चतुर्थी सप्तमी अष्टमी और नवमी तिथियाँ गलग्रह कहीं गई हैं ।

रात्रि मुख का नाम प्रदोष है । त्रयोदशी तिथि में सूर्यास्तात् पूर्व या पर आधी धटी जिस दिन त्रयोदशी हो उस तिथि के दिन प्रदोषव्रत किया जाता है । पूर्व पद्यों में त्रयोदशी तिथि उपनयन में अस्वीकृत स्वतः है । इस आशय से प्रदोषकालव्यापिनी द्वितीयादि उपनयनोपयुक्त तिथियों में भी उपनयन निषेध प्राप्त हो रहा है । इस लिए दोष ग्रहण दृष्टि से जिस दिन लक्षण विशिष्ट प्रदोश हो वह दिन उपनयन में त्याज्य होना चाहिए । उपनयन में अपराह्णकाल तो निषिद्ध ही हैं तथा प्रदोष समय तो व्रतबन्ध के लिए स्वतः निन्द्य है । इसलिए

शिष्ट सम्मत मत से, सायंकाल में जिस तिथि में प्रदोष समय आता है, वह तिथि यदि गलग्रह की न हो तो भी उस तिथि में उपनयन किया जा सकता हैं ॥ ४८ ॥

अथ व्रतबन्धलग्ने रव्याद्यंशफलमनुष्टुभाह—

क्रूरो जडो भवेत्पापः पटुः षट्कर्मकृद्बटुः ।
यज्ञार्थभाक् तथा मूर्खो रव्याद्यंशे तनौ क्रमात् ॥ ४९ ॥

पीयूषधारा—क्रूर इति । षट्कर्माणि अध्ययनाध्यापनयजनयाजनदानप्रतिग्रहाः । उक्तञ्च व्यासेन—

'यजनं याजनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ । अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्मा धर्मभाग्द्विजः ॥

अन्यत्स्पष्टार्थम् । तदुक्तं रत्नमालायाम्—'शन्यंशे ह्युदयति मूर्खतार्कभागे क्रूरत्वं भवति च पापधीः कुजांशे । चन्द्रांशे त्वतिजडता बुधे पटुत्वं यज्वत्वं गुरुभृगुभागयोर्गृणन्ति ॥' इति । भीमपराक्रमोऽपि—'भवेत्क्रूरो जडा पापः पटुर्यज्वा मखान्वितः । मूर्खश्चार्कादिकांशेषु क्रमेणोदयवर्तिषु ।' इति ।

बुधगुरुशुक्रस्वामिकराशयो व्रतबन्धे ग्राह्याः—

एवं सति बृधगुरुशुक्रस्वामिकराशीनां नवांशा ग्राह्याः । एतच्च स्पष्टमुक्तं नारदेन—'लग्नेऽथ राशयः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः । शुभा नवांशा न तथा ग्राह्यास्ते शुभराशयः ॥ न कदाचित्कर्कटांशः शुभग्रहयुतोऽपि वा । तस्माद्गोमिथुनान्त्याश्वतुलाकन्यांशकाः शुभाः ॥' इति । अश्वो धनुः । तथा सति वृषमिथुनकन्यातुलाधनुर्मीनांशा ग्राह्या इति निष्कृष्टोऽर्थः ॥ ४९ ॥

पीताम्बरा—व्रतबन्ध लग्न में सूर्यादिक नवांश फल—यज्ञोपवीत संस्कार के लग्न में सूर्य के नवांश से, बालक की बुद्धि क्रूर, चन्द्रमा के नवांश से मूर्ख, मंगल के नवांश से पापी, बुध के नवांश से चतुर, बृहस्पति के नवांश से षट्कर्म करनेवाला [(१) यजन (२) याजन (३) दान देना (४) दान ग्रहण करना (५) अध्ययन करना और (६) अध्यापन करना ये ब्राह्मण के ६ कर्म हैं ।] शुक्र के नवांश से यज्ञ करनेवाला तथा धनी और लग्न में शनि के नवांश से यज्ञोपवीती बालक मूर्ख होता है ।

इसलिए बुध, गुरु और शुक्र स्वामिक नवांशों में व्रतबन्ध संस्कार समीचीन शुभ है । फलतः वृष, मिथुन, कन्या, तुला, धनु और मीन नवांशकों में व्रतबन्ध संस्कार शुभ है ॥४९॥

अथ चन्द्रनवांशफलं सापवादं तोटकेन छन्दसाह—

विद्यानिरतः शुभराशिलवे पापांशगते हि दरिद्रतरः ।
चन्द्रे स्वलवे बहुदुःखयुतः कर्णादितिभे धनवान् स्वलवे ॥ ५० ॥

पीयूषधारा—विद्यानिरत इति । यस्मिन् कस्मिंश्चिद्राशौ चन्द्रो यदि शुभग्रहराशिनवांशे स्यात्तदा व्रती विद्यानिरतो भवेत् । यदि पापग्रहराशिनवांशे चन्द्रस्तदा दरिद्रतरो धनधान्यरहितः स्यात् । यदि स्वलवे कर्कांशे स्यात्तदा बहुदुःखयुतो भवेत् । उक्तञ्च कश्यपेन—**'शुभग्रहांशगे चन्द्रे विद्यावान् धनवान् व्रती । तस्मिन् पापांशसंस्थेति निर्धनोऽखिलदुःखभाक् ॥ स्वांशसंस्थे निशानाथे दरिद्रः खलु दुर्जनः ।' इति ।**

तत्तन्नवांशस्थचन्द्रस्य फलम्—

वसिष्ठेन प्रत्येकं फलमुक्तम्—

'सूर्यांशकगते चन्द्रे महापातककृद्व्रती। पुण्योपसेवी स्वांशस्थे नीचे निःस्वः खलो भवेत्॥
बुधांशकगते चन्द्रे शस्त्रजीवी खलो व्रती। बुधांशकगते चद्रे वेदवेदी भवेत्पटुः॥
जीवांशकगते यज्वा साङ्गवेदविशारदः। शुक्रांशगे धनी दाता विद्यावित्तविशारदः॥
क्षिप्रोद्वाही यज्ञकृत्स्यात्सत्रदो भोगवान्भवेत्। सौरांशकगते चन्द्रे सदा चाण्डालसेवकः॥' इति।

स्वनवमांशस्थितचन्द्रफलमपवादतयाह—

अथ स्वांशस्थितस्य चन्द्रस्यापवादमाह—कर्णेति। यदि कर्णे श्रवणनक्षत्रे अदितौ पुनर्वसुभे चोपनयने सति स्वांशश्चन्द्रस्य नवांशश्चेत्स्यात्तदा व्रती धनवान् स्यात्। तदुक्तं नारदेन—'श्रवणादितिनक्षत्रे कर्कांशस्थे निशाकरे। तदा व्रती वेदशास्त्रधनधान्यसमृद्धिमान्॥' इति।

पीताम्बरा—चन्द्र नवांश फल और परिहार—जिस किसी भी राशि में चन्द्रमा शुभ ग्रह राशि नवांश में हो तो उपनीत बालक विद्याध्ययन रत, पापग्रह राशि नवांश की चन्द्र स्थिति से बालक धनधान्य रहित होता है।

अपनी राशि के नवांश (कर्क) की चन्द्रमा की स्थिति से वटु जीवन में बहुत दुःखों से युक्त होता है।

यदि श्रवण, पुनर्वसु नक्षत्रों के उपनयन संस्कार में, चन्द्रमा अपने नवांश, (श्रवण और पुनर्वसु के चतुर्थ चरण) में स्थित हो तो बालक धनधान्य सम्पन्न होता है॥ ५०॥

अथ केन्द्रस्थानां सूर्यादीनां फलमनुष्टुभाह—

राजसेवी वैश्यवृत्तिः शस्त्रवृत्तिश्च पाठकः।
प्राज्ञोऽर्थवान् म्लेच्छसेवी केन्द्रे सूर्यादिखेचरैः॥ ५१॥

पीयूषधारा—राजसेवीति। केन्द्रे सूर्यादिग्रहैः प्रत्येकं स्थितैः क्रमादिदं फलं ज्ञेयमित्यर्थः। अन्यत्स्पष्टम्। यदाह श्रीपतिः—

'स्वानुष्ठाने रतः स्यात्प्रचुरमतियुतः केन्द्रसंस्थे सुरेज्ये
विद्यासौख्यार्थयुक्तो ह्युशनसि शशिजेऽध्यापकश्च प्रदिष्टः।
सूर्ये राजोपसेवी भवति धरणिजे शस्त्रवृत्तिर्द्विजन्मा
शीतांशौ वैश्यवृत्तिर्दिनकरतनये सेवकश्चान्त्यजानाम्॥'

अन्त्यजानां चाण्डालानाम्। अत्र लग्नस्थं चन्द्रं केन्द्रस्थं च शनिं विना शुभाः पापाश्च शुभफला इत्यवगम्यते।

केन्द्रगतपापा निषिद्धा व्रतबन्धे तत्फलानि च—

मुनिभिस्तु केन्द्रगतपापा निषिद्धा इत्युक्तम्। यदाह नारदः—

'स्फूर्जितं केन्द्रगे भानौ व्रतिनो वंशनाशनम्। कूजितं केन्द्रगे भौमे शिष्याचार्यविनाशनम्॥
करोति रुदितं केन्द्रसंस्थे मन्दे महागदम्। लग्ने केन्द्रगते राहौ रन्ध्रे मातृविनाशनम्॥
उग्रे केन्द्रगते केतौ व्रतिवित्तविनाशनम्।' इति।

तत्र सूर्यस्य सर्वशाखाधिपत्वात्केन्द्रसंस्थत्वमावश्यकविषयं द्रष्टव्यम् । उक्तं च दैवज्ञमनोहरे—'सर्वशाखाधिपं भानुं केचिदूचुर्महर्षयः । तस्माद्गत्यन्तराभावे लग्नस्थोर्कः प्रशस्यते ॥' लग्नग्रहणं केन्द्रोपलक्षणम् । तथा स्वगृहोच्चाद्यदस्थितः पापग्रहः शुभफलदातान्यथा नेत्यर्थः । इति विरुद्धार्थयोर्वचनयोर्विषयविवेकः ॥ ५१ ॥

पीताम्बरा—केन्द्रस्थान स्थित ग्रहों का फल—उपनयन लग्न से केन्द्रगतसूर्य से बटु राजसेवी, चन्द्रमा से व्यापारपटु, मंगल से शस्त्रजीवी, बुध से पाठक, बृहस्पति से विशेष विद्वान्, शुक्र से धनी और शनि से म्लेच्छसेवी होता है ॥ ५१ ॥

अथ चन्द्रगुरुशुक्राणां ग्रहयुतौ फलमनुष्टुभाह—

शुक्रे जीवे तथा चन्द्रे सूर्यभौमार्किसंयुते ।
निर्गुणः क्रूरचेष्टः स्यान्निर्घृणः सद्युते पटुः ॥ ५२ ॥

पीयूषधारा—शुक्रे ति । शुक्रे तथा जीवे गुरौ तथा चन्द्रे च प्रत्येकं सूर्यसंयुते व्रती निर्गुणः स्यात् । एवं भौमसंयुते सति क्रूरचेष्टः क्रूरा हिंसनशीला चेष्टा हस्तादिचापलं यस्य स तादृशः स्यात् । तथार्किः शनिस्तेन संयुते निर्घृणः निर्लज्जो निर्दयो वा स्यात् । तथा तस्मिन्नेव शुक्रे जीवे चन्द्रे वा प्रत्येकं सद्भिः चन्द्रबुधगुरुशुक्रैः युते पटुः सर्वविद्यानिपुणः स्यात् । उक्तं च रत्नमालायाम्—

'सार्के जीवे निगुर्णोऽर्थैर्विहीनः क्रूरः सारे वाक्पटुः सत्समेते ।
भानोः पुत्रेणालसो निर्घृणश्च स्याच्छुक्रेन्दू जीववित्संप्रकल्प्यौ ॥' इति ॥ ५२ ॥

पीताम्बरा—शेष ग्रहयुक्त चन्द्रगुरुशुक्र का फलित—शुक्र, बृहस्पति और चन्द्रमा सूर्य के साथ हों तो व्रती गुणहीन, भौम के साथ से हिंसक (हिंसनशील चेष्टा) और शनि युक्त होने से बालक निर्लज्ज होता है । अथवा यदि शुक्र चन्द्र और बृहस्पति में प्रत्येक चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र युक्त हो तो बटु सर्वविद्या निपुण होता है ।। ५२ ।।

अथ चन्द्रवशेन शुभाशुभयोगौ प्रमाणिकयाह—

विधौ सितांशगे सिते त्रिकोणगे तनौ गुरौ ।
समस्तवेदविद्व्रती यमांशगेऽतिनिर्घृणः ॥ ५३ ॥

पीयूषधारा—विधाविति । विधौ चन्द्रे शुक्रांशगे सति शुक्रे च नवमपञ्चमस्थानस्थिते गुरौ लग्नस्थे च सति व्रती बटुः समस्ताश्चतुरो वेदान्वेत्ति जानाति तादृशः स्यात् । एवं यमांशगे शनिनवांशस्थिते चन्द्रे सति लग्ने गुरौ च सति सिते त्रिकोणगे सत्यप्यतिनिर्घृणः स्यात् । एवं यदाह महेश्वरः—जीवे लग्नमधिष्ठिते भृगुसुते धर्मात्मजस्थे विधौ शुक्रांशेऽखिलवेदविद्व्रविसुते स्वांशे कृतघ्नोऽधमः ॥' इति ।

गुरुशुक्रयुक्तशन्यंशस्थचन्द्रफलम्—

अपरे तु गुरुशुक्रयुक्तेऽपि शन्यंशस्थे चन्द्रे सत्यतिनिर्घृण इति व्याचक्षते । तदुक्तं रत्नमालायाम्—'लग्ने जीवे भार्गवे च त्रिकोणे शुक्रांशस्थे स्याद्विधौ वेदवेदी । सौरांशस्थे सूरिलग्ने सशुक्रे विद्याशीलः प्रोज्झितः स्यात्कृतघ्नः ॥' इति सूरिलग्ने सूरिर्बृहस्पतिस्तद्युक्ते लग्ने । इति व्रतबन्धे लग्नविचारः । ननु व्रतबन्धे बटुराशितोऽष्टमभवत्तादिशुद्धिरुक्ता । यदाह वसिष्ठः—

'न नैधनं नैधनशुद्धिलग्नं न नैधनर्क्षं न च तन्नवांशः। न नैधनेशो न तदशको वा लग्ने प्रशस्तो न च रात्रिनाथः ॥' इति। सा ग्रन्थकृतात्र कुतो नोक्ता। अत्र ग्रन्थकृदाशयं वयं ब्रूमः। 'वीक्षिते वार्थैकविंशन्महादोषविवर्जिते' इति नारदोक्तेस्तेषां दोषाणां च विवाहप्रकरणे वक्ष्यमाणत्वात्तत्रापि दंपत्योरष्टमं लग्नमित्यपि दोषः सलक्षणो वक्ष्यते। तत्र दम्पत्योरिति संकार्योपलक्षणम्। तेन बटोरप्यष्टमभवने शुद्धिरुक्तेवेत्यत्र पुनर्नोक्ता। यत्र एकविंशतिदोषविचारो नास्ति सीमन्तादौ किन्तु कतिपयदोषस्तत्र तु साक्षादष्टमभवनशुद्धिरुक्ता। अग्रेऽपि यात्रादौ वक्ष्यते चेति। एवं चेन्नैधन नवांशशुद्ध्यादि कुतो नोक्तम्' सत्यम् वक्तव्यमेवेति। ब्रूमः। परन्तु नारदाद्यनेकमुनिभिरप्रणीतत्वान्नोक्तमिति ग्रन्थकृदाशयः। एवंविधे व्रतबन्धलग्ने व्रतं कुर्यात्। तदाह नारदः—

'शुभलग्ने शुभांशे वा नैधने शुद्धिसंयुते। लग्ने त्वन्यैः सौम्यखेटैः संयुते वा निरीक्षिते ॥
जीवार्कशुक्रचन्द्राद्यैः पञ्चभिर्बलिभिर्ग्रहैः। स्थानादिबलसम्पन्नैश्चतुर्भिर्वा बलान्वितैः ।
वीक्षिते वार्थैकविंशन्महादोषविवर्जिते।' इति।

सर्वथा निर्दुष्टलग्नांशसम्भवेऽल्पदोषे लग्ने व्रतबंधः—

सर्वथा यदि निर्दूषणं लग्नं न लभ्यते तदा का गतिरिति उच्यते—वेधादिमहादोषराहित्ये सत्यल्पदोषसत्त्वे गुणाधिक्ये च लग्नं न साधोयो भवति। तदुक्तं नारदेन—'लग्नं सर्वगुणोपेतं लभ्यतेऽल्पैर्दिनैर्न तत्। दोषाल्पत्वं गुणाधिक्यं बहुसम्मतमिष्यते ॥ दोषदुष्टोऽय कालो यः सोपमाप्टु न शक्यते।' दोषदुष्टत्वं वसिष्ठेनोक्तं—दोषोप्येको गुणान् हन्ति तद्विरोधो गुणो न चेत्। पञ्चगव्येन यत्पूर्णं कुम्भं मद्यलवो यथा ॥' दोषः पापग्रहवेधादिः।

तवान्येऽपि दोषाः—

अन्येऽपि दोषा अत्र व्रतबन्धे वसिष्ठादिभिरुक्ताः—'ग्रहे रवीन्द्वोरवनिप्रकम्पे केतूद्गमोल्कापतनादिदोषे। व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ॥' श्रीपतिनिबन्धे —पौषादिचतुरो मासान्प्राप्ता वृष्टिरकालजा। व्रतं यात्रां विवाहं च वर्जयेत्सप्तवासरान् ॥' यत्तु गर्गवाक्यं—'बहु वर्षे त्रिरात्रं स्यादल्पवर्षे तु वासरम्। यदि वर्षेदन ायये तेनैव सह गच्छति ॥' इति तद्गर्जे प्रकृत्याभिधानात् न केवलवृष्टौ दोषः। अकालवृष्टौ तु दोष एवेति ॥ ५३ ॥

पीताम्बरा—चन्द्र वश शुभाशुभ योग—व्रतबन्ध लग्न से, चन्द्रमा शुक्र के नवांश में और शुक्र त्रिकोण में तथा बृहस्पति लग्न में हो तो बालक चारो वेदों का ज्ञाता होता है।

इस प्रकार शनि नवांश स्थित चन्द्रमा, लग्न में बृहस्पति और त्रिकोण में शुक्र हो तो व्रती निर्लज्ज होता है ॥ ५३ ॥

अथैवं व्रतबन्धलग्नमभिधायेदानीं दोषवत्त्वे प्रतिज्ञातानन्ध्यायाञ्जधनचपलार्ययाह—

शुचिशुक्रपौषतपसां दिगशिवरुद्रार्कसंख्यसिततिथयः।
भूताविद्वित्रितयाष्टमी संक्रमणं च व्रतेऽनध्यायाः ॥ ५४ ॥

पीयूषधारा—शुचीति। द्विविधा ह्यनध्यायाः नित्या नैमित्तिकाश्च। तत्र आषाढशुक्लदशमी ज्येष्ठशुक्लद्वितीया पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः माघशुक्लद्वादशी एता अनध्यायाः

सोपपदत्वात् । तदुक्तं स्मृतौ—'सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आषाढे दशमी सिता । चतुर्थी द्वादशी माघ एताः सोपपदाः स्मृताः ॥' इति । भूतेति । भूतं चतुर्दशी तदादित्रितयं चतुर्दशीपूर्णिमा-प्रतिपदः । कृष्णपक्षे च अमा अमावास्या च तन्मध्ये तथाष्टमी भूतादित्रितयं चाष्टमी चानयोः समाहारद्वन्द्वे नपुंसकत्वे ह्रस्वत्वं ज्ञेयम् । तथा सङ्क्रमणं सूर्यस्य निरयणसंक्रान्तिदिनं चकारान्मन्वाद्यास्त्रितिथी मधाविति पद्योक्ता मन्वाद्या युगादयश्चानाध्याया ज्ञेयाः । व्रतैष्वितिपद-मावश्यकद्योतनार्थम् । यदाह गौतमः—पक्षद्वये चतुर्दश्योरष्टमीद्वितये तथा । पक्षादावपि पक्षान्ते ब्रह्म नाधीयते नरैः ॥' ब्रह्म वेदः ।

अनध्यायान्तराण्यपि—

हारितेन विशेष उक्तः—'प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्यां पर्वणोर्द्वयोः श्वोनध्यायाशर्वर्यां नाधीयीति कदाचन ॥' इति । श्वोनध्यायाद्यशर्वर्य्यामिति मन्वाद्याद्यनध्यायविषयम् । चतुर्दश्या-दिषु तु पूर्वदिने प्रदोषसद्भावादेवायाध्ययनाभावः । फलं च ज्योतिःसारसागरे—'अष्टमी हन्त्यु-पाध्यायं शिष्यं हन्ति चतुर्दशी । अमावास्योभयं हन्ति प्रतिपत्पाठनाशिनी ॥' इति । वृद्धमनुः—चातुर्मास्यद्वितीयासु मन्वादिषु युगादिषु । अष्टकासु च संक्रान्तौ शयने बोधने हरेः । अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदासु च ।' इति । चतुर्मास्यद्वितीया गर्गेणोक्ताः—'आषाढफाल्गुनोर्जेषु या द्वितीया विधुक्षये । चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति महर्षयः ॥' इति । विधुक्षये कृष्णपक्षे कृष्णादिमासगणनया चैत्रश्रावणमार्गशीर्षमासकृष्णपक्षसम्बन्धिन्यो द्वितीयाश्चातुर्मास्यद्वितीया इत्यर्थः । अत एवोक्तं ज्योतिःसारसागरे—'चातुर्मास्यसमाप्तौ तु या द्वितीया भवेत्तदा । सर्वा-स्वेतास्वनध्यायः पुराणैः परिकीर्त्तितः ॥' इति । चत्वारो मासाश्चातुर्मास्यमिति यौगिकशब्दः । ब्राह्मणादित्वास्वार्थे ष्यञ् । तथा च स्मृत्यर्थसारे—आषाढीकार्त्तिकीफाल्गुनीपूर्णिमाप्रतिपद्द्विती-यासु च इत्यनध्यायप्रकरणेऽभिहितम् । मन्वादयो युगादयश्चाद्यप्रकरणेऽभिहिताः अष्टकास्तूक्ताः सस्मृतौ—

पौषादित्रिषु मासेषु कृष्णे चैवाष्टकात्रयम् । एका ज्ञेयाश्विने मासि हायने चतुरष्टकाः ॥
अष्टका च समुद्दिष्टा सप्तम्यादिदिनत्रयम् । नाधीयीत च शास्त्राणि व्रतबन्धं च वर्जयेत् ॥' इति।

अनध्यायफलान्यावश्यके कृष्णप्रतिपद्युपनयनम्—

अनध्यायप्रयोजनमाह वसिष्ठः—'पापांशकगते चन्द्रे स्वाधिनीचस्थितेऽपि वा । अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥' इति । अत्रानध्याये इत्येतद्विहितानध्यायव्यतिरिक्तानध्याय-विषयम् । अन्यथा—'नैमित्तिकमनध्यायं कृष्णे च प्रतिपद्दिने । मेखलाबन्धने शस्तं चौले वेद-व्रतेष्वपि ॥' इति वसिष्ठवाक्यमनर्थकमापद्येत । नैमित्तिकानध्यायानां तर्हि किं प्रयोजनमिति चेत् । वेदाध्ययननिवृत्तिरित्यवगच्छत । एवं सति 'नार्त्तः कालमपेक्षते' इति लौकिकन्यायादतीत-कालस्य वटोः कालान्तरप्रतीक्षामसहमानस्यावश्यकोपनयनविषयमिति निष्कृष्टोऽर्थः । अत एवोक्तं व्यासेन—'प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे कदाचिच्छुभगे विधौ । चन्द्रे बलयुते लग्ने वर्षाणामतिलङ्घने ॥' इति । प्रतिपदग्रहणं कैमुतिकन्यायसूचनार्थम् । नैमित्तिकानध्यायास्तु अस्माभिर्मन्वाद्य इति पद्य-विवरणावसरे निरूपिताः ॥ ५४ ॥

पीताम्बरा—उपनयन संस्कार में अनध्याय दिन—आषाढशुक्ल दशमी, ज्येष्ठशुक्ल द्वितीया, पौषशुक्ल एकादशी, माघशुक्ल द्वादशी तथा सभी मासों की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमा-

वास्या प्रतिपदा और अष्टमी तिथियाँ और सूर्य-संक्रान्ति दिवस, ये व्रतबन्ध संस्कार में अनध्याय होने से व्रतबन्ध संस्कार में त्याज्य हैं ॥ ५४ ॥

अथ दोषवत्त्वेन प्रतिज्ञातान्प्रदोषाननुष्टुभाह—

अर्कतर्कत्रितिथिषु प्रदोषः स्यात्तदग्निभैः ।
रात्र्यर्धसार्द्धप्रहरयाममध्यस्थितैः क्रमात् ॥ ५५ ॥

पीयूषधारा—अर्केति । अर्कतर्कत्रितिथिषु तदग्निभैर् र्कादितिथिभ्योऽग्निभैस्त्रयोदशी-सप्तमीचतुर्थीतिथिभिः रात्र्यर्द्धसार्धप्रहरयाममध्ये स्थितैरर्कतर्कत्रितिथिषु प्रदोषः स्यात् । यथा द्वादश्यामर्द्धरात्रात्प्राक्त्रयोदशीप्रवृत्तौ प्रदोषः स्यात् । षष्ठ्यां सार्द्धप्रहरमध्ये सप्तमीप्रवृत्तिस्तदा प्रदोषः स्यात् । तथा तृतीयायां प्रहरमध्ये चतुर्थीप्रवेशे प्रदोष इत्यर्थः । उक्तं च—'चतुर्थी प्रथमे यामे सार्धयामे च सप्तमी । यामद्वये त्रयोदश्यां प्रदोषः सर्वघातकः ॥' इति ।

चतुर्थीसप्तमीत्रयोदशीप्रदोषेषु मतभेदः—

इद निर्मूलत्वादुपेक्ष्यम् । दीपिकाटीकायां तूपनयनपद्यव्याख्याने प्रदोषपरिज्ञानं चाह गर्ग इत्युक्त्वोक्तम्—

'चतुर्थीयाममेकं तु सार्द्धयामं तु सप्तमी । अर्द्धरात्रं त्रयोदश्यां प्रदोषो रजनीमुखम् ॥
अत्र नाध्यापयेद्वेदवेदाङ्गानि च सर्वथा । अत्राध्ययनशीलस्य प्रदोषः सर्वघातकः ॥' इति ।

गोभिलेन ह्येवमुक्तम्—

'षष्ठी च द्वादशी चैव अर्द्धरात्रोननाडिका । प्रदोषमिह कुर्वीत तृतीया नवनाडिका ॥' इति ।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—

चतुर्थ्याः पूर्वरात्रे तु नवनाड्यां प्रदर्शने । नाध्येयं पूर्वरात्रे स्यात्सप्तमी च त्रयोदशी ॥
अर्द्धरात्रात्पुरा चेत्स्यान्नाध्येयं पूर्वरात्रिके ॥' इति ।

यदेतयोः पक्षयोर्देशाचारतो व्यवस्थेति । रात्र्यर्द्धमित्यत्र 'अर्द्धं समेंशके' इत्यभिधानात्समांशवाचिनोर्द्धशब्दस्य नपुंसकलिङ्गत्वात् 'अर्द्धं नपुंसकम्, इति समासे 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' इत्यर्द्धशब्दस्योपसर्जनसंज्ञत्वात् । 'उपसर्जनं पूर्वम्' इति पूर्वनिपाते च 'अहः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः' इत्यच्प्रत्यये कृते 'यस्येति च' इतीकारलोपे 'रात्राह्नाहाः पुंसि' इति पुंस्त्वे अर्द्धरात्र इति भवितव्यं न पुनः रात्र्यर्धमिति चेत्; उच्यते, नात्र समांशवाच्यर्द्ध-शब्दः यथा ग्रामार्द्धो नगरार्द्ध इत्यत्र किं तर्हि 'भित्तं शकलखण्डे वा पुंस्यर्द्धोऽर्द्धम्' इत्यभिधानात्केवलविभागवाची । कथं द्वितीयप्रहरस्य चरमघटिका तृतीयप्रहरस्य प्रथमघटिका त्वेवं घटिकाद्वयोपेतः कालो निशीथशब्दवाच्यः । एतच्च जन्माष्टमीनिर्णये—'अर्द्धरात्रादधश्चोर्ध्व-मेकार्द्धघटिकान्विता । रोहिणी चाष्टमी ग्राह्या उपवासव्रतादिषु ॥' इति योगीश्वरपद्य-व्याख्याने व्याख्यातं माधवेन । ततश्च समांशवाचित्वाभावादर्द्धशब्दस्य नैकदेशिसमासः । किं तर्हि षष्ठीत्यनेन षष्ठीसमासे षष्ठ्यंतस्य पूर्वनिपातः । अत्रैव—'रात्रौ यामद्वयादर्वाक् यदि पश्येत्त्रयोदशीम् । प्रदोषः स तु विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥' इति गोभिलवाक्यमप्यनुकूलम् । इदमेवाभिप्रेत्य—'रात्र्यर्द्धपूर्वपरगा जयन्ति कलयापि वा' इति वराहेणापि रात्र्यर्द्धपदं

प्रयुक्तम्। अत्र तु समांशवाचित्वं विवक्षितम्। सिद्धान्तपक्षस्तु परदिनार्द्धान्निशार्द्धात्परतो दिनश्रीरिति विवाहवृन्दावनपद्यादौ तत्र तादृशाः प्रयोगाश्चित्याः ।।५५।।

पीताम्बरा—प्रदोष के विशेष व्याख्यान—द्वादशी तिथि के दिन अर्द्धरात्रि के पूर्व में त्रयोदशी प्रवृत्ति, षष्ठी तिथि के दिन डेढ़ प्रहर पूर्व मे सप्तमी प्रवेश और तृतीया तिथि के दिन १ प्रहर रात्रि बीतने के पहिले ही चतुर्थी का प्रवेश हो तो उक्त तिथियों को भी प्रदोष कहना चाहिए। अर्थात् इस प्रकार से द्वादशी षष्ठी और तृतीया प्रदोष संज्ञक तिथियाँ होती हैं ।।५५।।

अथ व्रतबन्धानन्तरं सायंकाले बह्वृचां ब्रह्मौदनाख्यः संस्कारोऽभिहितः। तत्र विशेषमार्ययाह—

प्राग्ब्रह्मौदनपाकाद्व्रतबन्धानन्तरं यदि चेत्।
उत्पातानध्ययनोत्पत्तावपि शान्तिपूर्वकं तत्स्यात् ।।५६।।

पीयूषधारा—प्रागिति। यदि व्रतबन्धात्प्रागाकालिकाद्यनध्याय उत्पातो वा भवेत्तदा न कार्य एव व्रतबन्धः। दैवान्निर्दिष्टे काले व्रतबन्धो निर्वृत्तः तदुत्तरं सायंकालीनब्रह्मौदनविधेः पूर्वमुत्पातप्रयुक्ताकालशुद्धिरथवानध्यायो वा स्यात्तदानिष्टम्। उक्तं च नृसिंहप्रसादे—'ब्रह्मौदनविधेः पूर्वं प्रदोषे गर्जितं भवेत्। तदा विघ्नकरं ज्ञेयं बटोरध्ययनस्य तत् ।।' अतस्तद्ब्रह्मौदनं शान्तिपूर्वकमादौ शान्तिं विधाय पश्चात्स्यात्।

शान्तिप्रकारस्तु नृसिंहप्रसादे—

'तस्य शान्तिप्रकारं तु वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः। स्वस्तिवाचनपूर्वं तु हवनं कारयेद्बुधः ।।
प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यं शान्तियुजो भवेत्। सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान् पठेद्विद्यासमृद्धये ।।
गायत्री युज्यते मन्त्रः प्रायश्चित्त तु सर्पिषा। धेनुं सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम् ।।
शिलां होमविधेः पश्चात्स्थापयेत्तत्र संसदि। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेत् ।।'इति।

अत्रैतस्य विचारस्य मुहूर्तविचारेऽनुपयोगान्मूलपद्यनिबन्धो यद्यपि स्वयमवक्तव्यस्तथापि सकलजनप्रसिद्ध्यर्थमभिहितः ।।५६।।

पीताम्बरा—ब्रह्मौदन संस्कार—व्रतबन्ध के दिन व्रतबन्ध के अनन्तर सायंकालीन ब्रह्मौदन विधि का विधान होता है।

व्रतबन्ध के पूर्व में अनध्याय अथवा उत्पात होने पर व्रतबन्ध नहीं किया जाता है। संयोग से निर्दिष्ट शुभ समय में यज्ञोपवीत संस्कार से निवृत्त होकर सायंकालीन ब्रह्मौदन विधि के पहिले उत्पात प्रयुक्त दूषित समय अथवा अव्ययन हो तो वटु का अध्ययन विघ्नकर होता है। इसलिए ऐसी स्थिति में पहिले दूषित समय की शान्ति पूर्वक शान्ति कराकर तत्पश्चात् ब्रह्मौदन विधि (ब्रह्मौदन पाक) शुभद है ।।५६।।

अथ पूर्वं द्वाविंशतिनक्षत्राण्यभिहितानि सामान्यतस्तेषां वेदपरत्वेन विशेषं वसन्ततिलकयाह—

वेदक्रमाच्छशिशिवाहिकरत्रिमूलपूर्वासु पौष्णकरमैत्रमृगादितीज्ये।
ध्रौवेषुचाश्विवसुपुष्यकरोत्तरेशकर्णेऽभृगान्त्यलघुमैत्रधनादितौ सत् ।।५७।।

पीयूषधारा—वेदक्रमादिति। मृगार्द्राश्लेषाहस्तचित्रास्वातीमूलपूर्वात्रयेषु ऋग्वेदाध्यायिनाम्, रेवतीहस्तानुराधामृगपुनर्वसुपुष्यरोहिण्युत्तरात्रयेषु यजुर्वेदाध्यायिनाम्, अश्विनीधनिष्ठा-

पुष्यहस्तोत्तरात्रयार्द्राश्रवणेषु सामवेदाध्यायिनाम्, मृगरेवतीपुष्याश्विनीहस्तानुराधाधनिष्ठापुनर्वसुष्वथर्वणवेदाध्यायिनाम्, पूर्वश्लोकानुवृत्ततत्पदपरामृष्टमुपनयनं सत् शुभमित्यर्थः। उक्तं च ज्योतिर्निबन्धे—

'मूले हस्तत्रये सार्पे शैवपूर्वात्रये तथा। ऋग्वेदाध्यायिनां कार्यं मेखलाबन्धनं बुधैः॥
पुष्ये पुनर्वसौ पौष्णे हस्ते मैत्रे शशाङ्कभे। ध्रुवेषु च प्रशस्तं स्याद्यजुषां मौञ्जिबन्धनम्॥
पुष्यवासवहस्ताश्विशिवकर्णोत्तरात्रयम्। प्रशस्तं मेखलाबन्धे बटूनां सामगायिनाम्॥
मृगमैत्राश्विनीहस्तरेवत्यदितिवासवम्। अथर्वपाठिनां शस्तो भगणोऽयं व्रतार्पणे॥' इति॥५७॥

पीताम्बरा—वेदपरत्वेन व्रतबन्ध के नक्षत्र—ऋग्वेदियों के लिए—मृगशिरा, आर्द्रा, आश्लेषा, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल और तीनों पूर्वा, यजुर्वेदियों के लिए—रेवती, हस्त, अनुराधा, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, रोहिणी और तीनों उत्तरा, सामवेदियों के लिए—अश्विनी धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा, आर्द्रा और श्रवण तथा अथर्ववेद के वटुओं के लिए—मृग, रेवती, पुष्य, अश्विनी, हस्त, अनुराधा, धनिष्ठा और पुनर्वसु नक्षत्र यज्ञोपवीत में विशेष शुभ हैं॥५७॥

अथ धर्मशास्त्रीयं विशेषमनुष्टुभाह—

नान्दीश्राद्धोत्तरं मातुः पुष्पे लग्नान्तरे न हि।
शान्त्या चौलं व्रतं पाणिग्रहः कार्योऽन्यथा न सत्॥५८॥

पीयूषधारा—नान्दीश्राद्धोत्तरमिति। बहुघटीसाध्यानां शुभकर्मणां प्रारम्भे सकलशुभाशुभकर्मसाधारणनान्दीश्राद्धाख्यं कर्माभिहितम्। तत्कृत्यानन्तरं यदि संस्कार्यमातुः पुष्पे रजोदर्शने जाते सति लग्नान्तरे विवक्षितलग्नादन्यस्मिन् लग्ने च असति तदावश्यकीं धर्मशास्त्रोक्तां शान्ति विधाय चौलं चौलादिशुभकर्म न सत्। दुष्टफलमित्यर्थः। उक्तं च मेधातिथिना—

'चौले च व्रतबन्धे च विवाहे यज्ञकर्मणि। भार्या रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम्॥
वधूवरान्यन्तरयोर्जननी चेद्रजस्वला। तस्याः शुद्धेः परं कार्यं माङ्गल्यं मनुरब्रवीत्॥'

वृद्धमनुरपि—'विवाहव्रत चूड़ासु यदि माता रजस्वला। तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः॥' बृहस्पतिः—'वैधव्यं च विवाहे स्याज्जडत्वं व्रतबन्धने। चूडायां च शिशोर्मृत्युर्विघ्नं यात्राप्रवेशयोः॥' इति। रजोविषयमेतज्ज्ञेयम् प्रचेताः—'प्राप्य चाभ्युदयश्राद्धं पुत्रसंस्कारकर्मणि। पत्नी रजस्वला जाता न कुर्यात्तत्पिता तदा॥' इति।

उपनयनकर्तारः—

पितेति। नान्दीश्राद्धकर्त्तुरुपलक्षणम्। तथा च वृद्धगर्गेण—'पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः। उपायनेऽधिकारी स्यात् पूर्वाभावे परः परः॥' इत्यादयोऽधिकारिण उपनयनेऽभिहिताः। तस्मात्संस्कार्यमातरि रजस्वलायां लग्नान्तरसद्भावे च न कार्यमेव चौलादि।

उपनयने सुमुहूर्तालाभे श्रीशान्तिप्रकारः—

लग्नान्तराभावे तु शान्तिप्रकारो वाक्यसारे

'अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे ह्युपस्थिते। श्रियं सम्पूज्य विधिवत्ततो मङ्गलमाचरेत्॥
हैमीं माषमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनार्चयेत्। प्रत्यृचं पायसं हुत्वाऽभिषिच्य हितमाचरेत्॥'इति।

श्रीशान्तेरपवाद: अपदादौ—

अस्याप्यपवादस्तत्रैव—'उपवासेन शुध्यन्ति नार्यः सद्यो रजस्वलाः । एकाकिन्यो विवाहादौ देशभङ्गेषु चापदि ॥' इति । एतच्च पद्यं वक्तुमनुचितम् मुहूर्तविचारार्थं प्रवृत्तत्वात् ग्रन्थकर्तुः यतोऽत्र न कश्चिन्मुहूर्तविचारः प्रतिपाद्य इति । परन्तु सकलजनप्रसिद्धः शास्त्रार्थो भवितुं युक्तः ॥ ५८ ॥

इति सपरिकरव्रतबन्धकालादिविचारः समाप्तः ।

पीताम्बरा—धर्मशास्त्रीय वक्तव्य विशेष—प्रत्येक बहुकाल साध्य शुभकर्म के प्रारम्भ में उस कर्म का प्रधान एक अंग नान्दी (मङ्गल सूचक) श्राद्ध किया जाता है ।

नान्दीश्राद्ध की समाप्ति के अनन्तर दैवात् यदि संस्कार्य (पुत्र या कन्या) सन्तान की, यदि माता का रजोदर्शन (मासिक धर्म) हो जाय और इस लग्न के आगे के समय में समीचीन लग्न का अभाव हो, तो ऐसी स्थिति में आवश्यक धर्मशास्त्र प्रतिपादित शान्तिकर्म के अनन्तर बालक का चौल, व्रतबन्ध, विवाह आदिक शुभ कर्म शुभ होते हैं । अन्यथा समीचीन द्वितीय लग्न में चौल आदिक शुभ कर्म शुभद नहीं होते ।

सकल जनव्यवहार में उक्त समस्या उपस्थित होती रहती है । अतः मुहूर्त प्रधान ग्रन्थ में उक्त विषय की आवश्यकता समझ कर यहाँ धर्मशास्त्र विषय समीचीन है ॥ ५८ ॥

अथैवं त्रैवर्णिकानां व्रतबन्धमुक्त्वेदानीं केशान्तकर्मादि वक्ष्यति । तत्र विवाहात्प्राक् क्षत्रियाणां छुरिकाबन्धनं विहितं तन्मुहूर्तमनुष्टभाह—

विचैत्रव्रतमासादौ विभौमास्ते विभूमिजे ।
छुरिकाबन्धनं शस्तं नृपाणां प्राग्विवाहतः ॥ ५९ ॥

पीयूषधारा—विचैत्रेति । चैत्ररहितेषूपनयनमासेषु माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठेष्वित्यर्थः । आदिशब्देन व्रतबन्धनोक्तपक्षतिथिनक्षत्रलग्नादीनां ग्रहणम् । तस्मिन् कीदृशे । विभौमास्ते मंगलास्तरहिते । गुरुशुक्रयोस्त्वस्तवर्जनं सामान्यनिषेधेन सिद्धत्वान्न पृथगुक्तम् । तथा विभूमिजे मंगलवाररहिते सूर्यादिवारे एतादृशे काले नृपाणां क्षत्रियाणां विवाहतः पूर्वं छुरिकाया अल्पशस्त्रविशेषस्य कट्यां बन्धनम् कार्यमिति शेषः । तच्छस्तं हितकारी । उक्तं च नारदेन—

'छुरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात् । विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेऽप्यनस्तगे ।
जीवे शुक्रे च भूपुत्रे चन्द्रताराबलान्विते । मौंजीबन्धनऋक्षेषु भौमवर्जितवासरे ॥
व्रतलग्नोदये कर्त्तुरष्टमोदयवर्जिते । धनत्रिकोणगैः सौम्यैः पापैर्भवरिपुत्रिगैः ॥
छुरिकाबन्धनं कार्यमर्चयित्वा सुरान् पितॄन् ।
अर्चयेच्छुरिकां सद्मदेवतानां च सन्निधौ ।।
ततः सुलग्ने बध्नीयात्कट्यां लक्षणसंयुताम् ॥' इति ।

लक्षणानि नारदवराहाभ्यामुक्तानि ग्रन्थभूयस्त्वभयात्सम्प्रदायव्याख्यागम्यत्वाच्चास्माभिर्नोक्तानि । अत्र 'प्राग्विवाहतः' इत्युक्तेरवधिनिश्चयात्समावर्तनानन्तरं छुरिकाबन्धनं कार्यम् । विवाहभूषणत्वात्तस्याः । यदि यज्ञोपवीतानन्तरमेव चिकीर्षितं स्यात्तदोपनयनानन्तरं कार्यमित्येव ब्रूयात् । ग्रन्थकर्त्रा तु नारदोक्तक्रममङ्गीकृत्यैवमुक्तम् । 'तत्र—'पाठक्रमो बलीयान् ।' इति समाधिः ॥५९॥

पीताम्बरा—क्षत्रियों के कमर में छुरिका बन्धन मुहूर्त—चैत्र रहित जनेऊ में विहित मासों, भौम ग्रह के अस्त कालीन समय तथा भौमवार को त्याग कर शेष वारों में क्षत्रिय वर्ण के लिए विवाह के पूर्व छुरिका धारण मुहूर्त शुभ है। उपनयन के पश्चात् समावर्तन संस्कार कर तत्पश्चात् विवाह समय में विवाह के पूर्व छुरिका धारण होता है ॥ ५९ ॥

अथ केशान्तसमावर्तनमुहूर्तमनुष्टुभाह—

केशान्तं षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे शुभम् ।
व्रतोक्तदिवसादौ हि समावर्तनमिष्यते ॥ ६० ॥
इति दैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्तचिन्तामणौ
पञ्चमं संस्कारप्रकरणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

पी० धा०—**केशान्तमिति**। षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे 'चूडा वर्षात्तृतीयात्प्रभवति' इत्यादिना कथितशुभदिवसे गोदानापरपर्यायं केशान्तसंज्ञं हि कर्म शुभं स्यात् ।

अथ वर्णभेदेन गोदानपदप्रवृत्तिनिमित्तं तत्कालाश्च—

गावः केशा दीयन्ते खण्डचन्ते यस्मिन्निति व्युत्पत्तिः । यदाह—केशान्तं षोडशे वर्षे कुर्याच्चौलोक्तभादिके ।' इति । महेश्वरोऽपि—'कर्म केशान्तसंज्ञं हि वर्षे स्मृतं षोडशे चौलकर्मोक्तधिष्ण्यादिके' इति । षोडश इत्येतद्ब्राह्मणविषयं द्रष्टव्यम् । क्षत्रियविशोस्तु द्वाविंशतिचतुर्विंशतितमवर्षयोः केशान्तमित्यर्थः । तदुक्तं मनुना—'केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते । राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः ॥' इति ।

महानाम्नीमहाव्रतोपनिषद्व्रतगोदानव्रतानि क्रमेण कार्याणि—

अथ गोदानस्य महानाम्न्यादि व्रतपूर्वकत्वात्तानि प्रागनुष्ठाय ततो गोदानं विधेयमिति । यदाहाश्वलायनः—'प्रथमं स्यान्महानाम्नी द्वितीयं च महाव्रतम् । तृतीयं स्यादुपनिषद्गोदानं ततः परम् ॥' इति । अतो जन्मतस्त्रयोदशे वर्षे महानाम्नी, चतुर्दशे महाव्रतं, पञ्चदशे उपनिषद्व्रतं, षोडशे गोदानमिति उक्तम् । एवं क्षत्रियविशोरप्युक्तं गोदानात्प्राक् वर्षचतुष्टयं क्रमेण महानाम्न्यादि भवति । अत्रापि मुहूर्तविचारश्चौलवदेव । तदुक्तं श्रीधरीये—'तिथिनक्षत्रवाराश्च वर्गोदयनिरीक्षणम् । चौलवत्सर्वमाख्यातं सगोदानव्रतेषु च' इति यदाह पुनर्दैवादतीतकालानि महानाम्न्यादिव्रतानि स्युस्तदा समावर्तनेन सह कार्याणि ।

अथ समावर्तनकालः—

व्रतोक्तेति । हि निश्चये, व्रतं यज्ञोपवीतम्, तत्र विहितदिवसे । आदिशब्देन वारनक्षत्रलग्नांशेषु सत्सु समावर्त्तनमिष्यते । यदाह—'गुरुशुद्धिं विना काले व्रतोक्ते व्रतमोक्षणम् ।' इति । महेश्वरोऽपि—'खेन्तरज्ञैर्व्रतानां विसर्गोदितं कर्म तद्व्रतोक्ते च धिष्ण्यादिके' इति । सुरेश्वरोऽपि—'विभौमभानुजे वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते । चन्द्रताराादिशुद्धौ च स्यात्समावर्त्तनक्रिया ॥' इति । यत्तु—'क्षीरोदितर्क्षादिविलग्नयोगे मौञ्जीविमोक्षः शुभदो द्विजानाम् । इति दीपिकारादिभिरुक्तं तत् स्वदेशविषयम् । विशेषो नारदोक्तः—

'अथोत्तरायणे जीवशुक्रयोर्दृश्यमानयोः । द्विजातीनां गुरोर्गेहान्निवृत्तानां यतात्मनाम् ।।
चित्रोत्तरादितीज्येन्दुहरिमित्रविधातृषु । मेषेऽर्केन्दुज्ञार्यशुक्रवारलग्नांशकेष्वपि ।।
अथवा वस्त्रनक्षत्रवारलग्नांशकेष्वपि । प्रतिपत्पर्वरिक्तामामष्टमीं च दिनक्षयम् ।।
हित्वान्यदिवसे कार्यं समावर्तनमुण्डनम् ।'

अत्र कश्यपेन चैत्रो वर्जितः—'चैत्रमासविसृष्टेषु माघादिषु च पञ्चसु ।।' इति । तदुक्तेः ।

गोदानविवाहमध्ये समावर्तनं कार्यम्—

एतच्च गोदानानन्तरं विवाहात्प्राक्कार्यमित्याह वसिष्ठः—'अधीत्यवेदांश्च तदर्थशास्त्राण्यभ्यस्य लब्ध्वा स्वगुरोरनुज्ञाम् । कुर्यात्समावर्त्तनकर्म पश्चाद्गोदानतः पाणिनिपीडनात्प्राक् ।।'

द्वितीयविवाहो द्वितीये वर्षे न—

तत्रापि सत्यावश्यकत्वे द्वितीयवर्षे न कार्यमेव । तदुक्तं ग्रन्थान्तरे—'वधूप्रवेशं व्रतमोचनं च पुंसः पुनर्दारपरिग्रहं च । नाब्दे द्वितीये विदधीत विद्वान् वदन्ति गर्गात्रिवसिष्ठमुख्याः ।।' इति । स्त्रीमरणानन्तरं पुनर्विवाहो द्वितीये वर्षे न भवतीत्यर्थः । पूर्वविवाहानन्तरं द्वितीयविवाहो द्वितीयवर्षे न भवतीति कस्यचिद्व्याख्यानमपाकृतम् । 'प्रमदामृतिवासरादितः पुनरुद्वाहविधिर्वरस्य च । विषमे परिवत्सरे भवेद्युगलं चैव मृतिप्रदं भवेत् ।।' इति संग्रहकारवचनादिति शिवम् ।।६०।।

संस्कारप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—श्रीदैवज्ञेति । स्पष्टार्थम् ।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा ।
पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्त्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे
व्याख्याने खलु संस्कृतिप्रकरणं पूर्णं सदानंददम् ।। १ ।।

इति श्रीदैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां नक्षत्र मुहूर्त आदिक चिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां सपरिकरं संस्कारप्रकरणं समाप्तिमगमत् ।।५।।

पीताम्बरा—केशान्त समावर्तन का मुहूर्त—१६वें वर्ष में, चौल संस्कार में उक्त नक्षत्र मुहूर्त दिवसों में केशान्त संस्कार करना चाहिए ।

ब्राह्मण वर्ण का केशान्त संस्कार १६वें, क्षत्रिय का २२वें और वैश्य का २४वें वर्ष में होना चाहिए ।

महानाम्नी व्रत, महाव्रत, उपनिषद् व्रत और गोदान व्रत के अनन्तर केशान्त संस्कार उचित है ।

ब्राह्मण वर्ण के वेदाध्यायी के जन्म से १३वें वर्ष में महानाम्नी, १४वें में महाव्रत, १५वें में उपनिषद् व्रत और १६वें वर्ष में गोदान (केशान्त) व्रत करना चाहिए । इसी क्रम से क्षत्रिय वैश्य के क्रमशः १९, २०, २१, २२वें, २१, २२, २३ और २४वें वर्षों में उक्त व्रत होंगे । इन चारों व्रतों का भी चौल संस्कार की तरह मुहूर्त विचार करना चाहिए ।

समावर्तन (आधुनिक उपाधि ग्रहण भी एक प्रकार का समावर्तन (कनवोकेशन) है) जो सस्कार यज्ञोपवीत संस्कार में कथित तिथि-वार-नक्षत्र-लग्न नवांश आदिकों में शुभ होता है ।

गुरु के घर में वेद-वेदांग अध्ययन से पवित्रान्तःकरण के संयमी द्विजातियों के सुयोग्य ब्रह्मचारियों को गृहस्थ धर्म धारण करने के पूर्व समावर्तन संस्कार गोदान (केशान्त संस्कार के पश्चात् विवाह के पूर्व) करना चाहिए ।। ६० ।।

अल्मोड़ा मण्डल के जुनायलग्रामस्थ श्री १०८ ज्योतिर्विद् स्व० श्री पं० हरिदत्तात्मज पर्वतीय केदारदत्त जोशी कृत मुहूर्त चिन्तामणि के संस्कारप्रकरण की पीयूषधारा की पीताम्बरा हिन्दी व्याख्या सम्पन्न ।।५।।

—:०:—

अथ विवाहप्रकरणम् ।। ६ ।।

गौरीनन्दनमिष्टसिद्धिसदनं विघ्नावलीभेदनं नत्वा ज्यौतिषिकाग्रचरामरचिते मौहूर्त्तचिन्तामणौ । गोविन्दो बुधनीलकण्ठविधिवित्सूनुः सतामग्रणीर्बह्वर्थं करपीडनप्रकरणं व्याख्याति विद्वन्मुदे ।।१।।

अथ विवाहप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र विवाहशब्देन पाणिग्रहणाख्यः संस्कारविशेष उच्यते—ते च विवाहा अष्टौ । उक्तञ्च मनुना—

'चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान् । अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत ।। ब्राह्मो दैवस्तथा चाऽऽर्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः । गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ।इति

अष्टविधविवाहलक्षणानि—

एषां लक्षणान्याह याज्ञवल्क्यः—

(१) 'ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलङ्कृता । तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ।।
(२) यज्ञस्थऋत्विजे दैव (३) आदायार्षस्तु गोद्वयम् । चतुर्दश प्रथमजःपुनात्युत्तरजश्च षट् ।।
(४) इत्युक्त्वाचरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने । स कायः पावयेत्तज्जः षट् षड्वंश्यान्सहात्मना ।।
(५) आसुरो द्रविणादानाद् (६) गान्धर्वः समयान्मिथः ।
(७) राक्षसो युद्धहरणात् (८) पैशाचः कन्यकाछलात् ।।' इति ।

कायः प्राजापत्यः । छलं वंचना ।

एतेषु कालनियमानियमव्यवस्था—

एषां कालनियममाह नारदः—'प्राजापत्यब्राह्मदैवविवाहा ऋषिसंज्ञकाः । उक्तकालेषु कर्त्तव्याश्चत्वारः फलदायकाः ।। गान्धर्वासुरपैशाच्यराक्षसाख्याश्च सर्वदा ।' इति । अत एव—'सार्वकालमेके विवाहम् ।' इति गृह्यकारवचनं गान्धर्वादिविवाहविषयम् ।

विवाहे उपोद्घातः अनाश्रमबालपुत्रोत्पत्त्यादिरित्यादिरूपः—

स च विवाहः स्त्रीपुरुषद्वयायत्तः । तत्रापि बहुधा पुरुषायत्तः—'अनाश्रमी न तिष्ठेत क्षणमेकमपि द्विजः । आश्रमादाश्रमं गच्छेदेष धर्मः सनातनः ।।' इति च स्मरणादितराश्चमोपजीव्यतया प्राधान्याच्चेति समावर्त्तनानन्तरं पुरुषेणावश्यं विवाहे यतितव्यम् । किञ्च अग्निहोत्रादीनां नित्यानां कर्मणां करणे पत्नीं विना नाधिकार इति स्मृतौ स्मरणात् । 'नापुत्रस्य लोकोऽस्ति' इति श्रुत्या पुत्राभावे परलोके दुर्गतिबोधनाच्च । तत्र पुत्राद्युत्पत्तिस्तु दम्पत्योरानूकूल्यं विना न स्यात् । उक्तञ्च याज्ञवल्क्येन—'यत्रानुकूल्यं दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्द्धते । इति । त्रिवर्गो धर्मार्थकामात्मकः । स च ज्योतिःशास्त्रैकदेशविवाहपटलाधीन इत्येतत्सर्वं मनस्यालोच्य सप्रयोजनं विवाहप्रकरणारम्भं वसन्ततिलकया प्रतिजानीते—

भार्या त्रिवर्गकरणं शुभशीलयुक्ता शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्याः।
तस्माद्विवाहसमयः परिचिन्त्यते हि तन्निघ्नतामुपगता सुतशीलधर्माः ॥ १ ॥

पीयूषधारा भार्येति। शुभं भर्त्रादेरनुकूलं शीलं स्वभावस्तेन युक्ता भार्या त्रिवर्गस्य धर्मार्थकामरूपस्य करणं स्थानमस्ति। अत्र स्त्रीनपुंसकलिङ्गयोः सामानाधिकरण्यं 'वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणम्' इतिवत्साधु अजहल्लिङ्गत्वादस्य। तस्याः सुलग्नवशेन शीलं शुभं भवति। यतः सुतशीलधर्माः तन्निघ्नतां विवाहाधीनताम्—'अधीनो निघ्न आयत्तः' इति 'त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समोक्षकैः' इति चामरः। उपगताः प्राप्ताः। अतो हीति निश्चयेन विवाहसमयः परिचिन्त्यते विचार्यते इति।

विवाहफलम्—

उक्तञ्च कश्यपेन—

'अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहस्थाश्रममुत्तमम्। य आधारोऽन्याश्रमाणां भूतानां प्राणिनां तथा ॥
ऋणत्रयच्छेदकारि धर्मकामार्थसिद्धिदम्। एतत्सर्वं स्थितं स्त्रीषु शीलवृत्तान्वितासु च ॥
तच्छीलवृत्तलब्धिस्तु सुलग्नवशतो भवेत्। तस्मात्सम्यग्लग्नशुद्धिं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥' इति।

ऋणत्रयं—देवऋणं पितृऋणमृषिऋणं च। वशिष्ठोऽपि—

'कश्चिद्गृहाश्रमसमो न परोऽस्ति धर्मः सोऽपि स्थितः सुगुणवृत्तयुताङ्गनासु।
उद्वाहलग्नवशतो गुणवृत्तलब्धिस्तासां तथाविधसुलग्नमतः प्रवच्मि ॥'

तत्तत्कर्मणां सुलग्नेऽनुष्ठाने जन्मकालीनग्रहणजन्यदुरदृष्टनाशो भवति—

ननु जन्मकालीनखेचरावेदितशुभाशुभं दुरतिक्रममिति विवाहलग्नानर्थक्यमिति चेन्न। ज्योतिषस्मृत्यावेदितशुभसमयारब्धविधिजन्यापूर्वजनितशुभफलेन जन्मान्तरीयदुष्टध्वंसो भवतीत्येवमर्थतया सार्थक्यात्। अत एवाह सत्याचार्यः—'शुभक्षणक्रियारम्भजनिताः पूर्वसम्भवाः। सम्पदः सर्वलोकानां ज्योतिस्तत्र प्रयोजनम् ॥ इति। एवं व्रतबन्धादावपि द्रष्टव्यम् ॥ १ ॥

पीताम्बरा— आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं नृणां प्रीताः पितामहाः ॥
आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।
पशून् सुखं धनं धान्यं प्राप्नुयां पितृपूजनात् ॥
(भ्रातृपूजनात् वेति।)

विवाह प्रकरण की व्याख्या—पाणिग्रहण संस्कार विशेष का नाम विवाह है। विवाह आठ प्रकार के होते हैं—(१) ब्राह्म, (२) दैव, (३) आर्ष, (४) प्राजापत्य, (५) आसुर, (६) गन्धर्व, (७) राक्षस और (८) पैशाच।

(१) अलंकारादिकों से वर-कन्या का पूजन कर विचारवान् विवेकी वर को दान स्वरूप में कन्या दान ब्राह्म विवाह है। इससे उत्पन्न प्रजा पूर्वापर की २१ पीढ़ी तक को पवित्र करती है।

(२) ज्योतिष्टोमादि यज्ञ में यथाविधि यज्ञ सम्पन्न कराने वाले ब्राह्मण को अलंकरणों से पूजा कर उसे कन्या दी जाती है, यह दैव विवाह है। इससे उत्पन्न प्रथम सन्तान १४ पीढ़ी तक (अपने पूर्व की) पवित्र करती है।

(३) अर्थ ग्रहण लोभ की भावना रहित भावना से, वाग (वाणी) की सिद्धि के लिए एक या दो जोड़ा गौ (गाय और बैल) वर से लेकर उसे दान में जो कन्या दी जाती है उसे आर्ष विवाह कहते हैं।

(४) पूर्व में अलंकारादिकों से कन्या पूजन कर, 'तुम दोनों आपस में (स्त्री-पुरुष) धर्म स्वीकार करो' इत्यादि आदेश के साथ जो कन्या दान दिया जाता है उसे प्राजापत्य विवाह कहते हैं।

(५) कन्या के सम्बन्धियों तथा कन्या के पिता को यथा शक्ति शास्त्रीय धनपरिमाण-मापक धन देकर किये गये विवाह का नाम आसुर विवाह है।

(६) वरकन्या में अन्योऽन्य परस्पर के अनुराग से उत्पन्न सम्बन्ध का नाम गन्धर्व विवाह है। इसे काम सम्भव विवाह भी कहते हैं।

(७) वलात्कार से कन्या का अपहरण राक्षस विवाह कहलाता है। कन्या पक्षीय समाज को नष्ट कर उनका अंगच्छेद आदिक करते हुए तोड़-फोड़ के साथ 'हे पिता, हे भ्राता, मैं अनाथा हूँ मेरा अपहरण हो रहा है' इत्यादि चिल्लाती हुई अश्रुप्रवाह करती हुई कन्या के अपहरण पूर्वक किए गये विवाह का नाम राक्षस विवाह है।

(८) मद्य मद विह्वल निर्जन देश में शील संरक्षण रहित निद्राऽभिभूत मैथुन मात्र प्रवृत्ति जिस विवाह में हो उसे पैशाच विवाह कहा है।

इस प्रकार उत्तरोत्तर संख्या के विवाह को कम गुण का कहते हुए ब्राह्म विवाह सर्वोत्तम और पैशाच विवाह अत्यन्त निन्द्य हैं।

विवाह में विचारणीय विषय—वर-कन्या का एक गोत्र नहीं होना चाहिए। गोत्र और प्रवरों की संख्या अधिक है। इनसे वंश परम्परा के अवान्तर भेदों से बहुत से कुल उत्पन्न हो गये हैं अतः कहीं-कहीं पर गोत्र और प्रवर की एकता से भी स्थान भेद से गोत्रप्रवर की एकता में संकोच कर भी विवाह सम्बन्ध किये जा सकते हैं।

एक शरीर से उत्पन्न अनेक अवयव सम्बन्ध का नाम सापिण्ड सम्बन्ध है। परम्परा लेने से यह सम्बन्ध अत्यन्त व्यापक रूप लेता है। अतः इसकी कोई सीमा बनानी पड़ेगी। संक्षेपतः यह सीमा माता के मातुल कुल (नैहर ननिहाल) से मूल पुरुष की पञ्चम पीढ़ी तथा मूलपुरुष के सप्तम पीढ़ी आगे पितृकुल तक को छोड़कर शेष के आगे की पीढ़ियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध हो सकता है।

समावर्तन संस्कार के अनन्तर पुरुष के विवाह के लिए अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। वैदिक नित्य कर्म, विना पत्नी के नहीं हो सकते। अतः जीवन का साथी (पुरुष की सहचारिणी स्त्री एवं स्त्री का सहचारी पुरुष) दोनों स्त्री-पुरुषों के सम्मिश्रण ऐहिक और पारलौकिक (अदृष्ट)

अभ्युदय के लिए ग्रहस्थ आश्रम सर्वश्रेष्ठ और सर्वज्येष्ठ आश्रम है। गृहस्थाश्रम से ही ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ और संन्यास जैसे उच्च आश्रमों को प्रश्रय मिलता है। अतः सुन्दर सद्गृहस्थ के लिए इस प्रकरण में सुन्दर गुणशील सतीसाध्वी धर्मपत्नी और सुयोग्य दीर्घायु तेजस्वी उत्तम वर के चयन मुहूर्त्त आदि की विशद चर्चा की जा रही है।

पति के अनुकूल शील स्वभाव से युक्ता भार्या धर्म, अर्थ और काम की कारण होती है। सुन्दर लग्न में किये गये विवाह से स्त्री के शीलसौजन्यादि गुण शुभ होते हैं। क्योंकि सुत शील और धर्म ये तीनों विवाह के अधीन हैं। अतः निश्चय से विवाह का शुभ समय (लग्न) विचारा जाता है ॥ १ ॥

अथ तावत्प्रश्नलग्नाद्विवाहयोगद्वयं स्रग्धरयाह—

आदौ सम्पूज्य रत्नादिभिरथ गणकं वेदयेत्स्वस्थचित्तं
कन्योद्वाहं दिगीशानलहयविशिखे प्रश्नलग्नाद्यदीन्दुः।
दृष्टो जीवेन सद्यः परिणयनकरो गोतुलाकर्कटाख्यं
वा स्यात्प्रश्नस्य लग्नं शुभखचरयुतालोकितं तद्विदध्यात् ॥ २ ॥

पीयूषधारा—आदाविति। अथशब्दो मङ्गलार्थो ग्रन्थमध्यस्थत्वात्। यथोक्तम्—'ओंकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा। कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ॥' इति। आदौ गणकं ज्योतिर्विदं रत्नादिभीरत्नमणिसुवर्णवस्त्रफलादिभिः सम्पूज्य ततः प्रष्टा जनः कन्याया उद्वाहं गणकं वेदयेत् ज्ञापयेत्। 'गतिबुद्धि' इत्यादिना विदेर्बुद्ध्यर्थत्वादणौ कर्त्तुः कर्मत्वम्। कीदृशं गणकम्। स्वस्थचित्तमव्याकुलान्तः करणं 'स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति' इति लोकोक्तेः। रत्नादिग्रहणमप्येतदर्थमेव। यदाह वसिष्ठः—'शुभे दिने दैवविदं त्वभिज्ञं ताम्बूलपुष्पाक्षतपूर्णपाणिः। प्रष्टा च गत्वा प्रणिपत्य पृच्छेन्निवेद्य तस्मै वरकन्ययोर्भे ॥' इति। उत्पलोऽपि—'प्रष्टा मणिकनकयुतैः फलकुसुमै राशिचक्रमभ्यर्च्य। पृच्छेद्यथाभिलषितं भक्त्या विनयान्वितः प्रश्नम् ॥' इति।

तयोः प्रथमो योगः—

तत्रैको विवाहयोग उच्यते—दिगिति। यदि प्रश्नलग्नाद्दशमैकादशतृतीयसप्तमपञ्चमानामन्यतमे स्थितश्चन्द्रो जीवेन गुरुणा दृष्टः तत्र सद्यः शीघ्रं परिणयनकर्त्ता स्यात्। यदाह वसिष्ठः–'लग्नात् त्रिपञ्चास्तदशायगस्तु हिमद्युतिर्जीवनिरीक्षितश्च। तयोस्तु सम्बन्धकरस्तदानीं नार्कांशुलुप्तो न च नीचगश्चेत् ॥' तयोर्वरकन्ययोः। कश्यपोऽपि–'लग्नाद्दुश्चिक्यपुत्रास्तकर्मलाभगतः शशी। गुरुदृष्टस्तयोरेव सम्बन्धं कुरुते सदा ॥' इति। सम्बन्धं विवाहम्।

अथापरो योग—

द्वितीयो योग उच्यते। गोतुलेति। गौर्वृषः वृषतुलाकर्काणामन्यतमं प्रश्नलग्नं वा स्यात् तच्चेत् शुभग्रहैर्युतमवलोकितं वा भवेत्तर्हि तत्परिणयनं विदध्यात्। विलग्नगा गोघटकर्कटाश्च हिमांशुदैत्येज्यसमन्वितास्ते। सवीक्षिता वा यदि कन्यकाया लाभो भवेत्तत्र च पृच्छकस्य ॥' इति वसिष्ठोक्तेः। कश्यपोऽपि–'लग्नस्थाश्चन्द्रशुक्राभ्यां वीक्षिताः संयुताश्च वा। कुर्वन्ति कन्यकालाभं यदि गोघटकर्कटाः।' इति।

योगान्तरेऽपि—

अत्र नारदादिभिः शुक्रचन्द्रयोर्दृष्टियोगश्चाभिहितः। ग्रन्थकर्त्रा तु शुभखचरत्वाद्बुधगुर्वोरपि दृष्टिरुक्ता। सा कन्याया भर्तृप्रश्ने सति तत्प्राप्तिसूचिका ज्ञेया। तुल्यन्यायत्वात्। अथवा—'लग्नं विधुभृगुजयुतालोकितम्' इति पाठः कल्प्यः॥ २॥

पीताम्बरा—प्रश्न लग्न से विवाह योग—कन्या विवाह के लिए सर्वप्रथम रत्न, मणि, सुवर्ण और वस्त्र से ज्योतिर्विद (ज्योतिषी) की पूजा कर प्रश्नकर्ता कन्या पिता (या सम्बन्धी) ने अपनी कन्या के विवाह के प्रयत्न से ज्योतिर्विद को परिचित कराना चाहिए। प्रश्न तभी करना चाहिए जब ज्योतिषी स्वस्थ चित्तपर अपने आसन पर प्रसन्न मुद्रा में बैठा हो।

कन्या विवाह प्रश्न के समय के लग्न से यदि चन्द्रमा १०, ११, ३, ७, ५ स्थानों में किसी एक में हो और बृहस्पति से देखा जाता हो तो ऐसे सुयोग में ज्योतिषी कन्या पिता को "शीघ्र कन्या-विवाह होगा" ऐसा आदेश करेगा।

अथवा प्रश्न लग्न में वृष तुला और कर्क में कोई एक राशि शुभ ग्रह से युक्त या शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो भी विवाह योग शीघ्र होता है॥ २॥

अथान्यद्विवाहयोगद्वयं द्रुतविलम्बितेनाह—

विषमभांशगतौ शशिभार्गवौ तनुगृहं बलिनौ यदि पश्यतः।
रचयतो वरलाभमिमौ यदा युगलभांशगतौ युवतिप्रदौ॥ ३॥

पीयूषधारा—विषमेति। चरणद्वयं स्पष्टार्थम्। अत्रोत्तरार्द्धसम्मतिवाक्योक्तकन्यालाभप्रदयोगाद्वैपरीत्वमिति युक्तितो निबद्धं ग्रन्थकृता। अयमेको विवाहयोगोऽभिहितः।

विवाहे योगान्तरं—

अथापरो विवाहयोगः। यदेमौ शशिभार्गवौ युगलभांशगतौ युग्मराशिगतौ युग्मांशकगतौ च बलिनौ सन्तौ तनुगृहं पश्यतस्तदा कन्याप्रदौ स्याताम्। यदाह नारदः—'शुक्रेन्दु युग्मराशिस्थौ युग्मांशकगतौ यदा। वीक्षिते बलिना लग्ने कन्यालाभो भवेत्तदा॥' इति॥ ३॥

पीताम्बरा—प्रश्न लग्न से वर के लिए कन्या एवं कन्या के लिये वर लाभ के योग—प्रश्न लग्न समय में, विषमराशि के, विषम नवांश में स्थित बलवान् चन्द्रमा और शुक्र लग्न को देखते हों तो कन्या के लिए शीघ्र वर लाभ, यदि समराशि और समराशि नवांश गत बलवान् चन्द्र शुक्र लग्न को देखें तो वर के लिए शीघ्र कन्या लाभाय होते हैं॥ ३॥

अथप्रश्नलग्नाद्वैधव्ययोगत्रयं शालिन्याह—

षष्ठाष्टस्थः प्रश्नलग्नाद्यदीन्दुर्लग्ने क्रूरः सप्तमे वा कुजः स्यात।
मूर्तौविन्दुः सप्तमे तस्य भौमो रण्डा सा स्यादष्टसम्वत्सरेण॥ ४॥

पीयूषधारा—षष्ठेति। यदि प्रश्नलग्नादिन्दुश्चन्द्रः षष्ठाष्टमस्थस्तदा कन्या अष्टसम्वत्सरेण विवाहवर्षादिति शेषः रण्डा भर्तृनाशिका स्यात्। ततः स्वयमपि म्रियेत्। सर्वथा द्वयोरपि मरणमष्टमाब्दानन्तरं स्यादित्यर्थः। सम्मत्यनुरोधात्। यदाह वशिष्ठः—

'प्रष्टुर्विलग्नात्प्रबलः शशाङ्कः शत्रुस्थितो मृत्युगृहस्थितो वा ।
यद्यष्टमाब्दात्परतो विवाहं करोति मृत्युं वरकन्ययोश्च ॥' इति ।

अपरो वैधव्ययोगः—

अथान्यः—वा अथवा लग्ने यः कश्चित्क्रूरग्रहः स्यात्ततः सप्तमे स्थाने कुजो भौमो भवेत्तदाऽष्टवर्षमध्ये रण्डा स्यात् । यदुक्तं नारदेन—'यदि लग्नगतः क्रूरस्तस्मात्सप्तमगः कुजः । विज्ञेयं मरणं पुंसः सप्तमाब्दान्तरे यदि ॥' केचित्सप्तमेऽपि क्रूरग्रहमेवं दिवे प्रश्ने निषेधन्ति । यदाह कश्यपः—'एको लग्नगतः पापः पापोऽन्यः सप्तराशिगः । आसप्तमाब्दान्मरणं पुरुषस्य न संशयः ॥' इति । 'यद्युदयस्थः क्रूरस्तस्माद्यदि सप्तमो भवेत्पापः । सप्तभिरब्दैर्मरणं विज्ञेयं तस्य पुरुषस्य ॥' इति । वसिष्ठोऽपि—'एकोऽपि लग्नोपगतश्च पापः पापस्ततोऽन्यः खलु सप्तमस्थः । इ[illegible]सप्तमाब्दान्निधनं वरस्य बलान्वितौ तौ कुरुतस्त्ववश्यम् ॥' एषां मते 'सप्तमे वा खलः स्यात्' इति पाठः कल्प्यः । अस्मिन् पाठे विशिष्य कुजग्रहणं न कर्त्तव्यं भवति । पापत्वादेव तल्लाभादिति युक्तमुत्पश्यामः ।

वैधव्ययोगान्तरम्—

अथापरः—वा अथवा मूर्तौ लग्ने इन्दुः तस्य सप्तमे स्थाने भौमो भवेत्ततोऽष्टवर्षानन्तरं रण्डा स्यात् । उक्तं च नारदेन—'यदि लग्नगतश्चन्द्रस्तस्मात्सप्तमगः कुजः । विवाहानन्तरं भर्त्ता त्वष्टवर्षं न जीवति ॥' इति ॥ ४ ॥

पीताम्बरा—वैधव्ययोग प्रश्न लग्न से चन्द्रमा छठे आठवें में हो तो वह कन्या ८ वर्ष के भीतर (भर्तृनाशिका, रण्डा) विधवा हो जाती हैं ।

अथवा लग्न में क्रूर ग्रह और सप्तम में मंगल हो तथापि ८ वर्ष के भीतर विधवा हो जाती है ।

अथवा लग्न में चन्द्रमा और चन्द्रमा से सप्तम में (लग्न से सप्तम भी एक ही अर्थ) मंगल हो तो भी ८ वर्ष के भीतर कन्या विधवा हो जाती है ॥ ४ ॥

अथ प्रश्नलग्नात्कुलटामृतवत्सायोगविकल्पं दोधकवृत्तेनाह—

प्रश्नतनोर्यदि पापनभोगः पञ्चमगो रिपुदृष्टशरीरः ।
नीचगतश्च तदा खलु कन्या सा कुलटा त्वथवा मृतवत्सा ॥ ५ ॥

पीयूषधारा—प्रश्नतनोरिति । यदि प्रश्नलग्नात्पापग्रहः पञ्चमस्थानस्थः शत्रुग्रहावलोकितः सन् स्वनीचगतश्च स्यात्तदा खलु निश्चितं सा कन्या कुलटा वेश्या भवेदथवा मृतवत्सा मृतापत्या वा भवेत् । तुः पादपूरणे । यदाह कश्यपः—'स्वनीचगः शत्रुदृष्टः पापः पञ्चमगो यदा । मृतपुत्रां करोत्येव कुलटां वा न संशयः ॥' इति । नारदोऽपि—'लग्नात्पञ्चमगः पापः शत्रुदृष्टः स्वनीचगः । मृतपुत्रा तदा नारी कुलटा वा न संशयः ॥ इति । शत्रुमित्रमध्यग्रहान् 'मित्राणि द्युमणेः' इत्यादिना वक्ष्यत्यत्रैव ॥ ५ ॥

पीताम्बरा—प्रश्न लग्न से कुलटा, मृतवत्सा योग—प्रश्न लग्न से अपने शत्रु ग्रह से अवलोकित पापग्रह, नीच राशि में पञ्चम में स्थित हो तो इस प्रकार के प्रश्न लग्न का आदेश है कि वह कन्या निश्चय रूप से विधवा अथवा मृतापत्या (कोई सन्तान जीवित न रहे) ही होगी ॥ ५ ॥

अथ विवाहभङ्गयोगं पुष्पिताग्रयाह—

यदि भवति सितातिरिक्तपक्षे तनुगृहतः समराशिगः शशाङ्कः।
अशुभखचरवीक्षितोऽरिरन्ध्रे भवति विवाहविनाशकारकोऽयम् ॥ ६ ॥

पीयूषधारा—यदीति। सितातिरिक्तपक्षे कृष्णपक्षे तनुगृहतः यदि शशाङ्कश्चन्द्रः समराशिषु वृषकर्कादिषु गतः सन् तनुगृहतः प्रश्नलग्नराशितोऽरिरन्ध्रे षष्ठेऽष्टमे वा स्थाने स्थितः अशुभखचरैः पापग्रहैरवलोकितो भवति तदायं योगो विवाहस्य विनाशकारको भवति। तदुक्तं नारदेन—'कृष्णपक्षे शशी लग्नाद्युग्मराशिगतो यदि। पापदृष्टो न सम्बन्धं करोत्येवारिरन्ध्रगः ॥' इति। विवाहविनाशकारक इत्यत्र प्रयोगः समासानुपपत्तिरित्यस्य समाधिश्च ग्रन्थान्ते करिष्यते ॥ ६ ॥

पीताम्बरा—विवाह भङ्गयोग—कृष्णपक्ष में प्रश्न लग्न से चन्द्रमा सम राशियों (२, ४, ६, ८, १०, १२) में होकर छठें या आठवें स्थानों में अशुभ ग्रहों से देखा जाता हो तो ऐसे प्रश्नलग्नयोग से विवाह विनाश योग होता है। विवाह सम्बन्ध के समीप की बातचीत सब ठीक होकर भी अकस्मात् किसी दुष्प्रकृतिक से विवाह भंग हो जाता है ॥ ६ ॥

एवं प्रश्नलग्नाद्वन्ध्यामृतापत्यादियोगानभिधायेदानीं जन्मकालीनबालवैधव्ययोगविचारमतिदिशंस्तत्परिहारान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जन्मोत्थं च विलोक्य बालविधवायोगं विधाय व्रतं
सावित्र्या उत पैप्पलं हि सुतया दद्यादिमां वा रहः।
सल्लग्नेऽच्युतमूर्तिपिप्पलघटैः कृत्वा विवाहं स्फुटं
दद्यात्तां चिरजीविनेऽत्र न भवेद्दोषः पुनर्भूभवः ॥ ७ ॥

पीयूषधारा—जन्मोत्थमिति। यथा प्रश्नलग्नाद्विधवायोगो विचारितस्तथा जन्मोत्थं जन्मकालीनं च बालविधवायोगं विलोक्य जातकशास्त्राज्जन्मकालीनलग्नवशतो वैधव्ययोगं विचार्य वक्ष्यमाणव्रतं कारयेदित्यन्वयः। तत्र बालविधवायोगानाह होरामकरन्दे गुणाकरः—

'त्यक्ता धवेनोष्णकरेऽस्तसंस्थे बाल्योऽपि भौमे विधवा प्रदिष्टा।
पापग्रहालोकनवर्गयाते कन्यैव वन्ध्या भवतीति सूतौ ॥
वैधव्यं क्रूरखेटैर्मदनगृहगतैर्मिश्रितैः स्यात्पुनर्भूः
पापैस्तैर्वीर्ययुक्तैर्भवति परिहृता प्रेयसा सौम्यदृष्टे।
अन्योन्यांशस्थयोश्च क्षितिसुतसितयोर्बन्धकी योषिदुक्ता।
चन्द्रोर्वीसूनुशुक्रा यदि मदनगृहे प्रेयसोऽनुज्ञया सा ॥' इति।

अन्यमपि श्लोकं पठन्ति—

'लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजे। कन्या भर्तुर्विनाशाय भर्त्ता कन्याविनाशकः ॥' इति।

अथ वैधव्ययोगपरिहारः—

जातकीयवैधव्ययोगपरिहार उच्यतेऽस्माभिः—'द्यूनाद्वाचां पतिशुभगते रन्ध्रभात्भ्रातृमृत्युर्नीहारांशोरुदयगृहगतस्तद्वपुश्चिन्तनीयम्।' इति गुणाकरेण सप्तमस्थानाद्भर्तृ सौभाग्ये विचार्ये इत्युक्तम्। तत्र—'यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्यास्ति वृद्धिः। पापै-

रेवं तस्य भावस्य हातिर्निर्देष्टव्या पृच्छतां जन्मतो वा ॥' इति भट्टोत्पलोक्तेः स्वस्वामिसौम्ये-रीक्षितं चेत्सप्तमस्थानं भवति यदा तद्भावसुखं वाच्यम् । केचित्तु स्त्रीणां महत्यारिष्टयोगे भर्तुश्च स्वल्पारिष्टयोगे तत्परिहारमाहुः ।

अथ प्रबलवैधव्ययोगे प्रतीकारः—

अथापरिहार्य्ये वैधव्ययोगे प्रतिकारमाह—विधायेति । रह इति वक्ष्यमाणामिहापकृष्टव्यम् । पित्रादिः सुतया कन्यया कृत्वा रह एकान्ते हि निश्चयेन सावित्र्या व्रतं विधाय कारयित्वा उत अथ वा पैप्पलं पिप्पलसम्बन्धि व्रतं एकान्ते विधाय पश्चादिमां कन्यां सुलग्ने चिरजीविने वराय दद्यात् । तदुक्तं व्रतखण्डे—'सावित्र्यादिव्रतादीनि भक्त्या कुर्वन्ति याः स्त्रियः । सौभाग्यं च सुहृत्त्वं च भवेत्तासां सुसन्ततिः ॥' इति । सावित्रीव्रतकरणप्रकारस्तत्रैव प्रसिद्धः । संहितासारे—'अवैधव्यकरैर्योगैर्विवाहपटलोदितैः । वरायायुष्मते देया कन्या वैधव्ययोगजा ॥' इति ।

पिप्पलव्रतमुक्तं ज्ञानभास्करे—

बलवद्विधवायोगे बाल्ये सति मृगीदृशाम् । पिता रहसि कुर्वीत तद्भङ्गं शास्त्रसम्मतम् ॥
सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते । अवैधव्यकरे योगे लग्ने ग्रहबलान्विते ॥
व्रतारंभं प्रकुर्वीत बालवैधव्यनाशनम् । सुस्नाता चित्रवस्त्राढ्या कन्या पितृगृहाद्बहिः ॥
नीत्वाश्वत्थशमीस्थाने यद्वा बदरिकाश्रमे । आलबालं प्रकुर्वीत बिपुलं मृदुकर्षितम् ॥
कुमार्याचार्यनिर्दिष्टं कृत्वा सङ्कल्पमादरात् । करकाम्बुप्रपूर्णेन सिञ्चनं प्रतिवासरम् ॥
चैत्रे चाश्विनमासे च तृतीयासितपक्षतः । यावत्कृष्णतृतीयान्या मासमेकं यथाविधि ॥
ब्राह्मणानां तथा स्त्रीणां पूजनं च समाचरेत् । तदाशिषाप्नुयात्कन्या सौभाग्यं च सुखान्वितम् ॥
प्रतिमां पार्वतीशानीं वैणवे भाजनेऽर्चयेत् । चन्दनाक्षतदूर्वाद्यैर्बिल्वपत्रैर्यथाविधि ॥
उपचारैर्यथाशक्त्या नैवेद्यैः प्रतिवासरम् । एवं व्रतप्रभावेण बालवैधव्यनिष्कृतिः ॥
जायते कन्यकानां च ततः पाणिग्रहक्रिया । इत्यश्वत्थव्रतम् ।

प्रबलवैधव्ययोगपरिहारस्त्रिधा—

अथान्यदपि अपरिहार्यबालवैधव्ययोगापहारकं प्रकारत्रयमाह—वा रह इत्यादि । वा अथवा रह एकान्ते अच्युतमूर्तिः विष्णुप्रतिमा पिप्पलघटौ प्रसिद्धौ एषां मध्ये अन्यतरेण मनोऽभीष्टेन साकं सल्लग्ने वक्ष्यमाणदूषणरहिते सौभाग्यगुणान्विते च विवाहलग्ने विवाहं कारयित्वा पश्चात्तां कन्यां स्फुटं लोकप्रसिद्धं यथा भवति तथा चिरजीविने आयुष्मते वराय दद्यात् पित्रादिरधिकारी । तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—'बालवैधव्ययोगेऽपि कुम्भद्रुप्रतिमादिभिः । कृत्वालग्नं रहः पश्चात्कन्योद्वाह्येति चापरे ॥' इति । कुम्भ इत्युपलक्षणम् । तेन मन्थन्यपि ग्राह्या । द्रुर्वृक्षः । 'पलाशीद्रुद्रुमागमाः' इत्यमरः । स चाश्वत्थ एव मान्यः । प्रतिमा विष्णुप्रतिमा । शिरोभुजाद्यवयवयुता सौवर्णी न शालग्रामशिला । सर्वत्रापि प्रमाणं वक्ष्यते ।

कुम्भविवाहः सूर्यारुणसंवादे—

'विवाहात्पूर्वकाले च चन्द्रताराबले शुभे । विवाहोक्ते च मन्थन्या कुम्भेन सह चोद्वहेत् ॥

पिता च सङ्कल्पवाद्यं विवाहं विधिपूर्वकम् । सूत्रेणावेष्टयेत्पश्चाद्दशतन्तुविधानतः ॥
कुम्भमालङ्कृतं देहं तयोरेकान्तमन्दिरे । ततः कुम्भं च निःसार्य निमज्य सलिलाशये ॥
ततोऽभिषेचनं कुर्यात्पञ्चपल्लववारिभिः । तत्सर्वं वस्त्रपूजाद्यं ब्राह्मणाय निवेद्य च ॥
कन्यालङ्कारवस्त्राद्यं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

कुम्भप्रार्थना च तत्रैव—

'वरुणाङ्गस्वरूपस्त्वं जीवनानां समाश्रय । पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रान् सुखं वरम् ।
देहि विष्णुवराद्देव कन्यां पालय दुःखिताम् ।' इति ।

अश्वत्थविवाहस्तत्रैव—

'सुहृद्द्विजगुरून्नारीं मङ्गलोच्चारणैः समम् । आहूयोद्वाहकाले च रम्यभूमौ सुमण्डपे ॥
गत्वा प्रणम्य गौरीं च गणनाथं च भूरुहम् । भवानीं चैव मन्थानीं पिता मन्त्रमुदीरयेत् ॥
उद्वाहयिष्ये विधिवदश्वत्थेन मनोहराम् । कन्यां सौभाग्यसौख्यार्थहेतवेऽह द्विजोत्तम ॥
नमस्ते विष्णुरूपाय जगदानन्दहेतवे । पितृदेवमनुष्याणामाश्रयाय नमो नमः ॥
वनानां पतये तुभ्यं विष्णुरूपाय भूरुह ! । नमो निखिलपापौघनाशनाय नमो नमः ॥
पूर्वजन्मभवं पापं बालवैधव्यकारकम् । नाशयाशु सुखं देहि कन्याया मम भूरुह ! ॥''
इत्यश्वत्थेन सह विवाहसङ्कल्पप्रार्थने । विवाहस्तु कुम्भविवाहवद्विधेयः । इत्यश्वत्थविवाहः ॥

विष्णुप्रतिमया सह विवाहः—

एवं विष्णुप्रतिमया सौवर्ण्या सह विवाहं विधाय प्रतिमादानं विधेयम् । अथ प्रतिमादानविधिस्तत्रैव—

'शुभे मासि सिते पक्षे सानुकूलग्रहे दिने । ब्राह्मणं साधुमामन्त्र्य सम्पूज्य विविधार्हणैः ॥
तस्मै दद्याद्विधानेन विष्णोर्मूर्त्तिं चतुर्भुजाम् । शुद्धवर्णसुवर्णेन वित्तशक्त्याथवा पुनः ॥
निर्मितां रुचिरां शङ्खगदाचक्राब्जशोभिताम् । दधानां वाससी पीते कुमुदोत्पलमालिनीम् ॥
सदक्षिणां च तां दद्यान्मन्त्रमेतमुदीरयेत् । यन्मया पूर्वजनुषि घ्नन्त्या पतिसमाममम् ॥
विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वातिविरक्तया । प्राप्यमाणं महाघोरं यशःसौख्यधनापहम् ॥
वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशाय सुखलब्धये । बहुसौभाग्यलब्ध्यै महाविष्णोरिमां तनुम् ॥
सौवर्णीं निर्मितां शक्त्या तुभ्यं सम्प्रददे द्विज ! । अनघाद्याहमस्मीति त्रिवारं प्रवदेदिति ॥
एवमस्त्विति विप्राशीर्गृहीत्वा स्वगृहं विशेत् । ततो वैवाहिकं भूयो विधिं कुर्यान्मृगीदृशः ॥
इति प्रतिमादानविधिः । इति विष्णुप्रतिमाविवाहः ।

एवं घटेनाश्वत्थेन वा विष्णुरूपेण वा एकान्ते विवाहं विधाय पश्चाद्वादित्रघोषपुरःसरं पित्रादिः कन्यादानाधिकारी कन्यामायुष्मते वराय दद्यात् ।

अथ कन्यादातारो विवाहे—

कन्यादातॄनाह याज्ञवल्क्यः—'पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥' इति । ननु 'पुनर्भूर्दिधिषूरूढाद्विः' इत्यमरोक्तेर्द्विः परिणीतायाः

कन्यायाः पुनर्भूत्वेन महादोषः सम्भवतीत्यपेक्षायामाह—अत्र न भवेदिति। अत्रैवं विवेयम्। कुम्भादिविवाहानन्तरं कन्यायाः पुनरायुष्मद्वरेण सह विवाहविषये पुनर्भूभवः पुनर्भूसम्भूतदोषो नास्ति। कुतो दोषो नास्तीत्युच्यते विधानखण्डे तथाभिधानात्—

स्वर्णाम्बुपिप्पलानां च प्रतिमा विष्णुरूपिणी। तया सह विवाहे च पुनर्भूत्वं न जायते॥
चकाराद्घटस्यापि।

'लक्ष्मीरूपा सदा कन्या हरिरूपं सदा जलम्। हरेर्दत्तं च यद्दानं दातुः पापहरं सदा॥
लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै या दत्ता कन्यका बुधैः। तारयेत्सकलं दातुः कुलं पूर्वापरं सदा॥
चन्द्रगन्धर्ववह्न्यम्बुशिवसोमस्मरा इमे। पतयः कन्यकानां च वाल्यात्सन्ति सदैव ते॥
तदुद्वाहविधिर्यत्नात्कृतो नो जनयेदघम्। तथालिभुक्तं कमलं देवानां पूजनाय वै॥
अर्हं भवति सर्वत्र तथा कन्या नृणां भवेत्॥' इति।

धर्मशास्त्रेऽपि–'यत्किञ्चित्कथितं शास्त्रे शान्तिकं पतिरक्षणे। तत्पापमपि नो पापं येन धर्मोऽभिरक्ष्यते॥' इति। श्रुतावपि सोमादिभिः सहोद्वाहोऽभिहितः—'सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ सोमोददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोददग्नये। रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्॥' इति। अतो देवभोग्यानां कन्यानां पुरुषविवाहे तथा न दोषः पुनर्भूभवस्तथात्रापि। अत एव हि लोकेऽपि शिष्टाचारो दृश्यते—'मन्थन्या भास्करो यत्नात्कृतवान्दुहितुर्विधिम्। रेणुकोऽपि स्वकन्यायास्तरूद्वाहं चकार सः॥' इति विधानखण्डे उक्तत्वात्। अत एव 'पित्रा मात्रा तथा भ्रात्रा दत्ता या तोयधारया। विप्राग्निसुहृदां साक्ष्यं कृत्वा सोद्वाहिता भवेत्॥' इति। कात्यायनादिभिर्विवाहस्य परिभाषितत्वादेकदा कन्या पुरुषविवाहं निर्वर्त्य पुनर्द्वितीयपुरुषविवाहे जाते सा पुनर्भूरेवेत्यलमियता॥ ७॥

पीताम्बरा—जन्मकालीन बाल वैधव्य योग विचार—प्रश्नकाल से जैसे बाल विधवा योग विचारे गए हैं तैसे ही जातका की जन्म कुण्डली से बाल विधवा योगों की भी गवेषणा करनी चाहिए। इस प्रकार बाल वैधव्य योगों को समझ क्रर कन्या से सावित्री या पिप्पल व्रत कराकर अथवा एकान्त में विष्णु की प्रतिमा, वा पिप्पल या घट (कुम्भ) इनमें से किसी एक के साथ शुभ ग्रह स्थिति के शुभ लग्न में कन्या का विवाह करा कर, पश्चात् उस कन्या का दीर्घायुष्य वर के साथ विवाह कराने से वैधव्य योग समाप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में कन्या का पुनर्विवाह (दूसरे विवाह का) दोष नहीं होता।

कन्या के ग्रह लड़के के ग्रहों से अधिक बली होने से वर की आयुष्य हानि का भय होता है। यदि अन्य वर लाभ में कठिनाइयाँ हों तो कन्या के जोरदार ग्रहों की अनिष्ट शक्ति को क्षीण करने के लिए, अच्युत अनन्त, आयुष्मान् सदा सनातन, शाश्वत नित्य, सर्वोपरि सभी का श्रेष्ठतम एक ही वर, भगवान् विष्णु के साथ विवाह करने के अनन्तर प्राप्त दुर्वल ग्रह वल के वर के साथ कन्या का विवाह कराया जाता है। ऐसी स्थिति में कन्या के अधिक शक्तिशाली ग्रहों की अनिष्ट फलकारिका शक्ति का भगवान् विष्णु में अन्तर्भाव हो जाने से वह कन्या सदा सौभाग्यवती ही रहती है।

विष्णु प्रतिमा कुम्भ और पीपल विवाह की पद्धतियाँ शास्त्रों में सुलभ और लोक प्रसिद्ध भी हैं॥ ७॥

अथास्याः कन्यायाः कीदृशमपत्यं प्रथमं भवितेति प्रश्ने स्रग्विणीछन्दसोत्तरमाह—

प्रश्नलग्नक्षणे यादृशापत्ययुक् स्वेच्छया कामिनी तत्र चेदाव्रजेत् ।
कन्यका वा सुतो वा तदा पण्डितैस्तादृशापत्यमस्या विनिर्दिश्यते ॥ ८ ॥

पीयूषधारा—प्रश्नेति । तत्र ज्योतिर्वित्समीपे यादृशापत्ययुक्यादृशापत्यमेव विवृणुते । कन्यकेत्यादि । शेषं पद्यं स्पष्टार्थम् । यदाह शौनकः—'आलिङ्ग्य शिशुं कन्या पृच्छकमाश्रित्य तिष्ठति प्राक् चेत् । स्त्रीहस्ता स्त्रीजननी पुंहस्ता पुत्रजननी च ॥' इति । कन्या यस्य कस्यापीतिशेषः ॥ ८ ॥

पीताम्बरा—प्रश्न लग्न से, कन्या से प्रथम सन्तान विचार—प्रश्न लग्न के समय कोई सोहागनी स्त्री सन्तान सहित (कन्या वा पुत्र) अपनी इच्छा से दैवात् ज्योतिषी के समीप उपस्थित हो जाय तो शकुन शास्त्रज्ञ ज्योतिर्वेता आदेश करेगा कि प्रथम सन्तान उक्त भाँति की इस कन्या से उत्पन्न होगी । स्त्री (कन्या) हस्त (गोद में) स्त्री दर्शन से कन्या जन्म, एवं पुरुष (पुत्र) हस्त (गोद में) स्त्री दर्शन से पुत्रोत्पत्ति का फलादेश करना चाहिए ॥ ८ ॥

अथ सामान्यतो निमित्तवशेन शुभाशुभप्रश्नं स्रग्विण्याह—

शङ्खभेरीविपञ्चीरवैर्मङ्गलं जायते वैपरीत्यं तदा लक्षयेत् ।
वायसो वा खरः श्वाश्रृगालोऽपि वा प्रश्नलग्नक्षणे रौति नादं यदि ॥ ९ ॥

पीयूषधारा—शङ्खेति । शङ्खः प्रसिद्धः, भेरी वाद्यविशेषस्ताम्रादिनिर्मितः, विपञ्ची वीणा, एतेषां रवैः प्रश्नलग्नक्षणे श्रुतैर्मङ्गलं जायते । उपलणत्वान्मनोह्लादितुरगगजच्छत्रादिसान्निध्येऽपि शुभं द्रष्टव्यम् । यदाह शौनकः—

'वादित्रतूर्यघोषो वीणावेणुप्रगीतशब्दाश्च । शङ्खध्वनिः प्रशस्तः पृच्छाकाले कुमारीणाम् ॥
वृषभो रथो गजो वा शङ्खः पद्मं ध्वजोऽथवा छत्रम् ।
सर्पति पृच्छकदेशे सोत्तमतां व्रजति सर्वलोकस्य ॥' इति ।

सा विवाह्या कन्या ।

प्रश्नसामान्येऽशुभज्ञानोपायः—

अथाशुभयोग उच्यते—वैपरीत्यमिति । वायसः काकः खरो गर्दभः, श्वा कुक्कुरः, शृगालः प्रसिद्धः । यदि प्रश्नलग्नक्षणे वायसादिर्नादं शब्दं रौति तदा वैपरीत्यं अशुभं लक्षयेत् । उपलक्षणत्वादुलूकोष्ट्रमहिषनादोप्यशुभः । उक्तं च शौनकेन—'श्वश्रृगालोलूकरवो महीषोष्ट्रगजाविकप्रलापो वा ।' इति । बृहस्पतिरपि शृगालादिसान्निध्यं निषिद्धमाह—'शृगालमाहिषोष्ट्राश्च शिवा मेषाजकुक्कुटाः । खरकौशिकमार्जारा न प्रशस्ताः समीपगाः ॥' इति ।

अन्येऽपि शुभाशुभज्ञानोपायाः विवाहादिप्रश्ने—

अथ प्रसङ्गादस्माभिः शौनकोक्ता शुभाशुभयोगा लिख्यन्ते । तत्र शुभयोगाः—

'कृकलासवानरोरगगर्दभसंश्लेषणं मिथोऽपि भवेत् । दैवज्ञपृच्छकानां कन्या एकत्र संरमते ॥
(कन्या एकत्रेत्यत्र संहितायां अविवक्ष्यमाणत्वाद्वृद्ध्यभावः) ।
भिद्यति यद्युदकुम्भः शय्यासनपादुकादिभङ्गो वा । प्रश्नसमयेऽपि यस्यास्तस्या वैधव्यमादेश्यम् ॥

उदयात्सप्तम संस्थे रविभृगुतनये शशाङ्के वा। वैधव्यं क्षितितनये सप्तमगे कन्या म्रियते ॥
सप्तमगोऽर्कः कन्यां मृतप्रजां पुंश्चलीं करोत्युदयात्। कथितं तु यथोद्वाहे योज्यं तत्प्रश्नसमयेऽपि ॥'

अथ शुभ अपि—

'पृच्छक-वर्णत्रितयं समोपमाश्रुत्य तिष्ठतिच्छागः। तस्यादेश्यं विदुषा यदा तदा यागभोगित्वम् ॥
यदि पृच्छालग्नस्थौ गुरुसौम्यौ दीर्घजीविनं कुरुतः। पञ्चमसंस्थौ पुत्राज्जामित्रगतौ धनं विपुलम् ॥
सर्प्पन्ति यदि कुमाराः समीपगाःप्रच्छकस्य विगतभयाः।सा कन्या पुत्रवती कथनीया मङ्गलवती च॥
प्रमदात्मकद्रेष्काणे वनितांशो यदि विलग्नमायातः। दृष्टः शुक्रेन्दुभ्यां कन्यालाभं समादिशति ॥
प्रमदाभवननिविष्टाः प्रेक्ष्यन्ते यदि विलग्नमायातः। योषिद्ग्रहैः सुबलिभिः कन्यालाभं तदा ब्रूयात् ॥
एवं कुमारिकाणां पृच्छालग्ने वरोपलब्धिः स्यात्। द्रेष्काणे भवने वा नवांशके नृग्रहैर्बलिभिः ॥'

एवं शुभाशुभग्रहसूचितं निमित्तसम्भूतं च ज्ञात्वा वक्तुर्ज्योतिर्विदो माहात्म्यमाह स एव—
'एवं कुमारिकाणां गुणदोषतश्च कथनीयम्। दौःशीलं निर्धनता वैधव्यं वान्यथात्वं वा ॥
दृष्ट्वा निमित्तवर्गं नीचोच्चविधिं च जामित्रम्। कथयति फलमुद्वाहे तस्य न मिथ्या भवेद्वाणी ॥'इति

एवमन्यानि शुभाशुभनिमित्तानि क्षुतादिकानि च ग्रन्थान्तरेभ्यो ज्ञेयानि। शुभाशुभ-ज्ञानायोपश्रुतिसम्पादनतत्प्रकारौ—

केचन विवाहे उपश्रुतिमपि विचारयन्ति। तदुक्तं विवाहवृन्दावने—
'आरोप्याक्षतपूरिते गणपतिं प्रस्थादिपात्रे शनैः सम्मार्जन्यधिवेष्ठिते युवतयस्तिस्रः सकन्या निशि।
निर्याता रजकादिवेश्मसु करे कृत्वा तमभ्यर्चितं। यां वाचं शृणुयुस्तदर्थसदृशो धोके किलोपश्रुति ॥

तत्रोपश्रुतिमन्त्रः—'उपश्रुतिर्महादेवि चाण्डालगृहवासिनी। यथार्थं ब्रूहि देवि त्वं शक्रराज्यप्रवर्द्धिनि ॥ इत्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ९ ॥

पीताम्बरा—प्रश्न लग्न समय के शुभाशुभ शकुन—प्रश्न लग्न के समय शंख, भेरी (बड़ा ढोल) वीणा आदि शुभ वाद्य विशेष की ध्वनि से कन्या का भविष्यजीवन मंगलमय समझना चाहिए।

प्रश्न लग्न समय काक, गर्दभ, कुत्ता और शृगार (उपलक्षण से उल्लू, ऊँट, भैंसा आदिकों का शब्द) के शब्दों से कन्या का भविष्य जीवन विपरीत (अमंगल सूचक) होता है।

शास्त्रों में कन्या के शुभाशुभ भविष्य ज्ञान के अनेक शकुन सुलभ हैं ॥ ९ ॥

अथ कन्यावरणमुहूर्त्तं मत्तमयूरच्छन्दसाह—

विश्वस्वातीवैष्णवपूर्वात्रयमैत्रैर्वस्वाग्नेयैर्वा करपीडोचितऋक्षैः।
वस्त्रालङ्कारादिसमेतैः फलपुष्पैः सन्तोष्यादौ स्यादनु कन्यावरणं हि ॥१०॥

पीयूषधारा—विश्वेति। उत्तराषाढास्वातीश्रवणपूर्वात्रयानुराधाधनिष्ठाकृत्तिकानक्षत्रैः, अथवा विवाहनक्षत्रैरुपलक्षिते काले वस्त्रालङ्कारादिभिरादिशब्देन खाद्यमधुरवस्तुभिः समेतैः फलपुष्पैरादौ कन्यां संतोष्य अनु पश्चात्कन्यावरणं हि निश्चयेन स्यात्। उचितऋक्षैरित्यत्र 'ऋत्यकः' इति प्रकृतिभावः।

कन्यावरणप्रकारः—

यदाह वराहः—'पूर्वात्रयश्रवणमित्रभवैश्वदेवहोताशवासवमीरणदैवतेषु । द्राक्षाफलेक्षुकुसुमाक्षतपूर्णपाणिरश्रान्तशान्तहृदयो वरयेत्कुमारीम् ॥' इति । फलानि पूगीफलादीनि । कश्यपः—

'पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे चन्द्रताराबलान्विते । विवाहोक्तेषु ऋक्षेषु कुजवर्जितवासरे ।
मासाद्यदिवसं रिक्तामष्टमीं नवमीं तिथिम् । त्यक्त्वान्यदिवसे गन्धस्रक्ताम्बूलफलान्वितैः
सह वृद्धद्विजगणैर्वरयेत्कन्यकां सतीम् ।

अत्र लग्नशुद्धिर्महेश्वरेणोक्ता—'अशुभैस्त्रिषडायसंस्थितैः शुभखेटैः सुतधर्मकेन्द्रगैः । यदि वोपचये गुरौ सिते हरिजस्थे वरयेत्कुमारिकम् ॥' इति । हरिजं लग्नम्, वरणं प्रार्थना ।

वाग्दानप्रकारः—

'वाचा दत्ता त्वया कन्या पुत्रार्थं स्वीकृता मया । वरत्वलोकनविधौ निश्चितस्त्वं सुखी भव ॥' इति । एवंरूपा वाग्दानाख्येति यावत् ।

विवाह्यकन्यायाः योग्यायोग्यस्वरूपादयः—

तत्र विवाह्यकन्यालक्षणमाह मनुः—

'अव्यङ्गांगीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् । तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् । नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम्॥
ऋक्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न विभीषणनामिकाम् ॥' इति ।

अन्त्यश्चाण्डालः । शातातपः—

'ह्रस्वस्वरां मेघवर्णां मधुपिङ्गललोचनाम् । तादृशीं वरयेत्कन्यां गृहस्थः सुखमेधते ॥'

विष्णुपुराणेऽपि—

'न श्मश्रुव्यंजनवतीं न चैव पुरुषाकृतिम् । नातिबद्धेक्षणां तद्वत्कृशाङ्गीं नोद्वहेत्स्त्रियम् ॥
यस्यातिरोमशे जङ्घे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नतौ । गण्डयोः कूपको यस्या हसन्त्याश्चैव जायते ॥
नोद्वहेत्तादृशीं कन्यां याज्ञः कार्यविचक्षणः ॥' इति ।

अतिबद्धेक्षणां निमीलितप्रायनेत्रामित्यादिसामुद्रिकशुभाशुभलक्षणलक्षितां परीक्ष्य कन्यां वरयेदिति । सामुद्रिकलक्षणानि काशीखण्डे वराहसंहितायामप्युक्तानि तत एव ज्ञेयानि ॥ १०॥

पीताम्बरा—कन्यावरण मुहूर्त—उत्तराषाढ़ा स्वाती श्रवण तीनों पूर्वा, अनुराधा, धनिष्ठा कृतिका अथवा विवाह के नक्षत्रों में वस्त्र अलंकार मिष्ठान्न पुष्प फल समेत कन्या की प्रसन्न मुद्रा के अनन्तर कन्या का वरण मुहूर्त शुभ होता है ।

द्राक्षाफल ईख, कुसुम पुष्प अक्षत सुपारी, पान, हल्दी से परिपूर्ण हाथों से श्रमहीन शान्त हृदय से कन्या वरण करना चाहिए । पञ्चाङ्ग शुद्ध दिन चन्द्र तारा बलान्वित मंगलवार वर्जित शेष शुभ वारों में रिक्तादि दुष्ट तिथियों से रहित शुभ लग्न में कन्या वरण होना चाहिए ।

यद्यपि यहाँ मूल पद्य में ये पदार्थ, उक्त नहीं है तथापि अनुक्त ये विषय भी विद्वान् बुद्धिमान ज्योतिषी के बुद्धिस्थ रहने चाहिए ।

पुराण और संहिता ग्रन्थों में सामुद्रिक लक्षणों को देखकर भी कन्या-वरण कहा गया है ॥१०॥

अथ वरवरणमुहूर्तमाह—

धरणिदेवोऽथवा कन्यकासोदरः शुभदिने गीतवाद्यादिभिः संयुतः।
वरवृतिं वस्त्रयज्ञोपवीतादिना ध्रुवयुतैर्वह्निपूर्वात्रयैराचरेत्॥ ११॥

पीयूषधारा—धरणिदेव इति। धरणिदेवो ब्राह्मणः पुरोहितादिः। शेषं स्पष्टार्थं पद्यम्। उक्तं च व्यवहारचण्डेश्वरेण—

'पूर्वात्रितयमाग्नेयमुत्तरात्रितयं तथा। रोहिणी तत्र वरणे भगणः शस्यते सदा॥
उपवीतं फलं पुष्पं वासांसि विविधानि च। देयं वराय वरणे कन्याभ्रात्रा द्विजेन वा॥' इति।

कीदृशाय वराय कन्या देयेत्याह चण्डेश्वरः—

'कुलं च शीलं च सनाथतां च विद्यां च वित्तं च वपुर्वयश्च।
वरे गुणान् सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्॥ इति।

कीदृशाय वराय न देयेत्याह वसिष्ठः—

सितकुष्ठिन्यपस्मारे ब्रह्मघ्ने राजयक्ष्मणि। अन्धे च परिवित्तौ च वधिरे दूरदेशगे॥
व्यसनासक्तचित्ते च न देया कन्यका बुधैः।' इति।

परिवित्तिलक्षणममरसिंहेनोक्तं—

'परिवेत्तानुजो मूढे ज्येष्ठे दारपरिग्रहात्। परिवित्तिस्तु तज्ज्यायान्' इति। व्यसनं द्यूतादि। वसिष्ठोऽपि—

'अत्यासन्ने नातिदूरेप्यत्याढ्येऽप्यतिदुर्बले। वृत्तिहीने च मूर्खे च षट्सु कन्या न दीयते॥
दूरस्थानामविद्यानां मोक्षधर्मानुवर्त्तिनाम्। शूराणां निर्द्धनानां च न देया कन्यका बुधैः॥' इति।

गुणाढ्यायैव वराय कन्या देया—

अत एव मनुः—

'काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि। न त्वेवैनां प्रयच्छेत गुणहीनाय कर्हिचित्॥'

अत्र हीनगुणाय कन्या न देया किन्तु गुणवते देयेत्यत्र तात्पर्यम्। न पुनरसंस्कृतायास्तस्या रजोदर्शनानन्तरमवस्थानं युक्तम्, दोषस्मरणात्।

रजस्वला तु न देया, नोद्वाह्या च—

यदाह वात्स्यः—

'माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च। त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥
यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः। असम्भाष्यो ह्यपांक्तेयः स भवेद्वृषलीपतिः॥' इति।

वृषली रजस्वला। याज्ञवल्क्यः—'अप्रयच्छन्नवाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृत्तौ॥' भ्रूणो बालकः। ऋतू आर्तवं रजः। नारदोऽपि—'यावन्त ऋतवस्तस्याः समतीयुः पतिं विना। तावन्त्यो भ्रूणहत्याः स्युस्तस्य यो न ददाति ताम्॥' इति। अत एवाह वसिष्ठः—'रजो हि दृष्टं यदि कन्यकायाः कुलद्वयं दुर्गतिमेति तस्याः। तस्मान्नितान्तं च तदुक्तकालं नोल्लङ्घ्य पाणिग्रहणं विधेयम्॥' इति॥ ११॥

पीताम्बरा—वर वरण मुहूर्त (तिलक मुहूर्त)—ब्राह्मण अथवा कन्या के सहोदर भाई से गीत, वाद्य, रत्न, फल, पुष्प, श्रीफल, नारियल, मिष्टान्न, वस्त्र, यज्ञोपवीत सुपारी आदि के साथ ध्रुव संज्ञक, कृत्तिका और पूर्वा नक्षत्रों में शुभ समय में वर का वरण कराना चाहिए॥११॥

अथ कन्याविवाहकालं ग्रहशुद्धिं च वसन्तमालिकाछन्दसाह—

गुरुशुद्धिवशेन कन्यकानां समवर्षेषु षडब्दकोपरिष्टात् ।
रविशुद्धिवशाच्छुभो वराणामुभयोश्चन्द्रविशुद्धितो विवाहः ॥ १२ ॥

पीयूषधारा—गुर्विति । कन्यकानां विवाहः षडब्दकोपरिष्टात्षड्वर्षातिक्रमानन्तरं समवर्षेषु युग्मवर्षेषु सत्सु गुरुशुद्धौ सत्यां शुभः । अर्थात्पुरुषाणां विषमवर्षेषु रविशुद्धौ विवाहः शुभः । तदाह च्यवनः—'षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्या वर्षद्वयं यतः । सोमो भुंक्तेऽथ गन्धर्वस्ततः पश्चाद्धुताशनः ॥' इति। इदमस्य व्याख्यानम्, जन्मान्तरं वर्षद्वयं सोमः कन्यां भुङ्क्ते तदनन्तरं द्वे वर्षे गन्धर्वस्तदनन्तरमग्निस्ततो मनुष्याधिकार इति षडब्दतः प्राग्विवाहो न कार्यः । ततः षड्वर्षानन्तरं समवर्षे विवाहः शुभः ।

स्त्रीणां युग्मे पुंसामयुग्मे वयस्येव विवाहः कार्यः—

यदाह नारदः—'युग्मेऽब्दे जन्मतः स्त्रीणां शुभदं पाणिपीडनम् ।
एतत्पुंसामयुग्मेऽब्दे व्यत्यये नाशनं तयोः ॥' इति ।

कश्यपोऽपि—'विवाहो जन्मतः स्त्रीणां युग्मेऽब्दे पुत्रपौत्रदः ।
अयुग्मे श्रीप्रदः पुंसा विपरीते तु मृत्युदः ॥' इति ।

एवं सति स्त्रीणां विवाहोऽष्टमदशमवर्षयोर्भवतीत्यर्थः ।

विवाहे कन्यायाः अष्टमं नवमं दशमं वयः श्रेष्ठम्—

अत एवाह व्यासः—'अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत्कन्या द्वादशे वृषली स्मृता ॥' इति ।

अष्टमनवमदशमवयसि कन्यादाने सुफलमन्यथाऽशुभमिति—

अस्य फलश्रुतिमाह मात्स्यः—'गौरीं ददन्नाकलोकं वैकुण्ठं रोहिणीं ददत् । कन्यां ददद्ब्रह्मलोकमतः परमसद्गतिम् ॥' प्राप्नोतीति विशेषः । 'गौरी विवाहिता सौख्यसम्पन्ना स्यात्पतिव्रता । रोहिणी धनधान्यादिपुत्राढ्या सुभगा भवेत् ॥ कन्या विवाहिता सम्पत्समृद्धा स्वामिपूजिता ।' इति । ननु नवमवर्षाया रोहिण्या अयुग्मवर्षत्वाद्विवाहः सम्भवति । गर्भतो नवमवर्षग्रहणेऽयुग्मवर्षत्वापरिहारात्स दोषस्तदवस्थ एव । ये तु 'अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे च विधवा भवेत्' इति चण्डेश्वरवाक्यमभ्यसन्ति तन्मते सुतरां विवाहाभावः । उच्यते—'युग्मेऽब्दे सम्पदः सौख्यं विद्याधर्मायुषः सदा । भर्त्तुर्दुष्टा भवत्योजे निषेकान्नात्र संशयः ॥' इति पराशरवाक्याद्गर्भग्रहणं यथावसीयते । नारदादिवाक्ये तु जन्मत इत्यपि तत्र षष्ठवर्षानन्तरं जन्मतो विषमवर्षीयमासत्रयानन्तरं नव मासाः शुभाः समवर्षीयमासत्रयं च । इदमेव च मासत्रयं नारदादिमते गृह्यते इति युक्ता व्यवस्थेति युक्तमुत्पश्यामः । एतदेवाभिप्रेत्योक्तं श्रीपतिनिबन्धे—'मासत्रयादूर्ध्वयुग्मवर्षे युग्मे तु मासत्रयमेव यावत् । विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सन्तो वात्स्यादयो गर्गवराहमुख्याः ॥ इति । अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे तु विधवा भवेत् । तस्माद्गर्भान्विते युग्मे विवाहे सा पतिव्रता ॥' इति चण्डेश्वरोक्तिश्च सार्थिका । एवं नवमवर्षस्यायुग्मत्वप्रयुक्तनिषेधोऽष्टमवर्षानन्तरं मासत्रयमेव । तस्मादनन्तरं मासत्रयमेव । तस्मादनन्तरं तु सुखेन विवाह इति व्यासवाक्येनाविरोधः ।

स्त्रीणां गुरोः पुंसां रवेरुभयोश्चन्द्रस्य बलमावश्यकमेव विवाहे—

एवं विहितवर्षे यस्मिन्काले गुरुशुद्धिर्भवेत्तद्वशेन विवाहः कार्यः। गुरुशुद्धिस्तु—'बटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः। श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयाऽन्यत्र निन्दितः।।' इत्युपनयनप्रकरणेऽभिहिता। यदाह गुरुः—'स्त्रीणां गुरुबलेनैव विवाहः शोभनः स्मृतः। वरस्यार्कबलं ग्राह्यमैन्दवं तूभयोरपि' इति। 'सुरगुरुबलमबलानां पुरुषाणां तीक्ष्णरश्मिबलमेव। चन्द्रबलं दम्पत्योरवलोक्य विशोधयेल्लग्नम् ।।' इति वराहोक्तेश्च। एतच्चावश्यकमित्यभिहितम्। यदा द्वयोरपि गुरुबलमिष्टं भवेत्तदा पाणिग्रहः शुभदः।

रविगुरुबलान्यतराभावे विवाहादौ तत्सम्पादनोपायादिः—

द्वयोरन्यतरस्य गुर्वर्कशुद्धयै विवाहकालान्तरासम्भवे च तत्पित्रादिना पूजां कारयेत्। 'रविशुद्धौ गृहकरणं रविगुरुशुद्धौ व्रतोद्वाहौ। क्षौरं ताराशुद्धौ शेषं चन्द्राश्रितं कर्म ।।' इति राजमार्त्तण्डोक्तसामान्यवाक्यालोचनात् वराणां विवाह्यानां पुंसां रविशुद्धिवशेन विवाहः शुभः। उभयोः स्त्रीपुंसयोश्चन्द्रविशुद्धितो विवाहः शुभः स्मृतः। अत्र सम्मतिः प्रागुक्ताः। यदा तु कन्या कालातिक्रान्ता भवति तदा गुरुबलमनावश्यकमित्याह व्यासः—

'दशवर्षव्यतिक्रान्ता कन्या शुद्धिविवर्जिता। तस्यास्तारेन्दुलग्नानां शुद्धौ पाणिग्रहो मतः।।' इति।

प्राप्ते काले गुरुशुद्धयादिविचार इति तत्त्वम्। सा च गुरुरविचन्द्रशुद्धिर्गोचरप्रकरणेऽभिहिता। गोचरबलाभावेऽष्टकवर्गादिबलं ग्राह्यमित्याह नारदः—'गोचरं वेधजं चाष्टवर्गजं रूपजं बलम्। यथोत्तरं बलाधिक्यं स्थूलं गोचरमार्गजम् ।। इति ।। १२ ।।

पीताम्बरा— कन्या विवाह समय और ग्रह शुद्धि—६ वर्ष से आगे सम वर्षों में (६. ८. १०.) कन्या की जन्म राशि से गुरु की शुद्धि वर्ष के तथा वर की विषम वर्षों में रवि शुद्धि मास के और वर कन्या दोनों की चन्द्र शुद्धि दिवस में विवाह सम्बन्ध का लग्न शुभ होता है।

प्राचीन आचार्यों के मत से कन्या के विवाह की वर्ष सीमा १२ वर्ष से कम है। १२ वर्ष से ऊपर की कन्याओं के विवाह में समय (अवस्था) के अतिक्रमण से गुरु शुद्धि आदिक विचार आवश्यक नहीं है।

विवाहे रविचन्द्रगुरुशुद्धिचक्रम्।

रविः	चन्द्रः	गुरुः	ग्रहाः
३।६ १०।११	३।६।७ १०।११	२।५।७ ९।११	शुभ- स्थानानि
१।२।७।५ ९	१।२ ५।९	१।३ १०।६	पूज्य स्थानानि
४ ८।१२	४ ८।१२	४ ८।१२	निन्दित स्थानानि

विवाह के लिए कन्या की अवस्था अधिक से अधिक १० वर्ष बताई गई है। अवस्था की यह अति लघु सीमा है। आजकल के लोक में अवस्था का यह अतिक्रमण स्वाभाविक होकर यह अवस्था बहुत आगे १८…२०…२५…३०… तक पहुँच चुकी है। दुर्भाग्य की बात है कि समाज की अनेक कुप्रथाओं या अन्य अनेक सामाजिक बन्धनों से उक्त दुखद स्थितियाँ जो हो गई हैं वे अत्यन्त शोचनीय हो गई हैं ।।१२।।

अथैवं गुरुशुद्धिमुक्त्वेदानीं विहितमासान्द्रुतविलम्बितेनाह—

मिथुनकुम्भमृगालिवृषाजगे मिथुनगेऽपि रवौ त्रिलवे शुचेः।
अलिमृगाजगते करपीडनं भवति कार्त्तिकपौषमधुष्वपि ॥ १३ ॥

पीयूषधारा—मिथुनेति। मिथुनकुम्भौ प्रसिद्धौ, मृगो मकरः, अलिर्वृश्चिकः, वृषः प्रसिद्ध, अजो मेषः, एतद्राशिगते रवौ सति।

आषाढे शुक्लदशमीपर्यन्तं विवाहो मिथुने रवौ—

तत्रापि मिथुनस्थिते सूर्ये शुचेराषाढस्य त्रिलवे तत्तृतीयांशे आषाढशुद्धप्रतिपदमारभ्य दशमीपर्यन्तं करपीडनं विवाहो भवति।

विवाहे मासविशेषाः—

अर्थादितरराशिगते सूर्य सति आषाढशुक्लदशम्यनन्तरं हरिशयने च सति विवाहो न स्यात् यदाह कश्यपः—

'उत्तरायणगे सूर्ये मीनं चैत्रं च वर्जयेत्। अजगोद्वन्द्वकुम्भालिमृगराशिगते रवौ ॥
मुख्यं करग्रहं त्वन्यराशिगे न कदाचन।' इति।

वसिष्ठः—

'दिनाधिपे मेषवृषालिकुम्भनृयुग्मनक्राख्यघटर्क्षसंस्थे।
माघद्वये माधवशुक्लयोश्च मुख्योऽथवा कार्त्तिकसौम्ययोश्च ॥' इति।

(घटस्तुला, शुक्रो ज्येष्ठः, सौम्यो मार्गशीर्षः, मुख्यः विवाह इति शेषः)

'आर्द्रोदयादूर्ध्वमिनस्य कार्यं नक्षत्रवृन्दे दशके कदाचित्।
मासोक्तकर्मेतरमङ्गलाढ्यं कुर्यान्न सुप्तेऽपि तथा मुरारौ ॥' एतेन हरिशयनात्प्राक्कालः साधीयानित्यभिहितं भवति।

विवाहे उक्तमासेषु सौरचान्द्रमासयोरैक्यं श्रेष्ठमन्यतरस्तु मध्यमः—

अत्र सामान्यतो मासशब्देन चान्द्र एव मासो गृह्यते। 'इन्द्राग्नी यत्र हूयेते' इत्याद्युक्तेः। अत्र तु सौरचान्द्रमासद्वयोपादानादुभयोरैक्ये विवाहफलमविकलं भवति। तदुक्तं केशवार्केण— 'प्रायः सौरं मानमिष्टं विवाहे तत्कि चान्द्रं मानमाहुः फलेन। तस्मात्सम्यक् तत्फलासिस्तदैक्ये सौरो मासः केवलः किञ्चिदूनः ॥' इति। अस्यार्थः कश्यपादिभिः सौरा एव मासा उक्ताः। तेषां च प्राशस्त्यम्। 'विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनो मतः' इति वृद्धगर्गस्मरणात्। नारदादिभिस्तु—'माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः। मध्यमाः कार्त्तिको मार्गशीर्षो वै निन्दिताः परे ॥' इति चान्द्रा एवोक्ताः। एतत्प्राशस्त्यं च वसिष्ठेनोक्तम्—'उद्वाहयज्ञोपनयप्रतिष्ठातिथिव्रतं क्षौरमहोत्सवाद्यम्। पर्वक्रियावास्तुगृहप्रवेशः सर्वं हि चन्द्रेण विगृह्यते तत् ॥' इति। अतो द्वयोः सौरचान्द्रमासयोरैक्ये विवाहादिशुभम्, एकतरपक्षाश्रयेण मध्यममिति निष्कृष्टोऽर्थः। एवं च मकरसङ्क्रान्तौ माघः, कुम्भे फागुनो मेषे वैशाखः, वृषे ज्येष्ठः, मिथुने आषाढतृतीयांशः, तुलायां कार्त्तिको देवोत्थानादुत्तरः, वृश्चिके मार्गशीर्ष शुभ इत्यर्थः। केचित्तु चान्द्रमासं मुख्यमाहुः।

तेनायमर्थः। फाल्गुनोऽपि विहित इति मीनसङ्क्रमणसद्भावेऽपि शुभः। चैत्रो निषिद्ध इति मेषसङ्क्रान्तिसद्भावेप्यशुभः। तदुक्तं विवाहवृन्दावने—'झषो न निन्द्यो यदि फाल्गुने स्यादजस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः। मध्वाश्रितो द्वावपि वर्जनीयावित्यादिवाचामियमेव युक्तिः॥' इति। 'अजस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः' इति तु निर्मूलमेव। नहि मेषसङ्क्रमः क्वचिन्निषिद्धोऽस्ति तदेतदविचारितरमणीयम्। कुतः। यतो यन्मते सौरमासस्यैव मुख्यत्वं तन्मते मेषः प्रशस्त इति चैत्रेऽपि विवाहप्रसङ्ग इति विपरीतस्यापि वक्तुमशक्यत्वात्। उक्तं च चूडारत्ने—'पौषेऽपि मकरस्थेऽर्के चैत्रे मेषगते रवौ। आषाढे मिथुनादित्ये केऽप्याहुः करपीडनम्॥' इति। किं च वशिष्ठवाक्ये—'दिनाधिपे मेषवृषा—' वित्यादौ सौरचान्द्रमासयोरुपादानस्य वैयर्थ्यापातात्। 'तस्माद्द्वयोरैक्ये विवाहः प्रशस्त तत्र माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठा मुख्याः। यत्र तु निषेधानन्तरं प्रतिप्रसवो यथा दक्षिणायने विवाहं निषिद्धच कार्तिकमार्गशीर्षौ विहितौ तत्र मध्यमत्वम्। अत एव कार्त्तिकसौम्ययोश्च वसिष्ठेन पृथगुक्तम्। नारदवाक्ये तु तयोः स्पष्टमेव मध्यमत्वमुक्तम्। अतो विवाहपटले गर्गः—'पुत्रोपेता तु कार्त्तिके। धनधान्यसुतोपेता सौम्ये भर्तृपरायणा' इत्युक्तवान्। तदपि धनुःसंङ्क्रान्तिव्यतिरिक्तविषयं द्रष्टव्यम्। हरिशयनात्प्रागाषाढतृतीयांशश्च मध्यमः हरिस्वापान्तर्गता। आषाढश्रावणभाद्रपदाश्विनकार्त्तिकाः पौषश्चैते निषिद्धाः।

धनुर्गतपौषो विवाहे निषिद्धः—

धनुषि पौषस्त्वत्यन्तं निषिद्धः 'मीने धनुषि सिंहे च स्थिते सप्ततुरङ्गमे। क्षौरमन्नं न कुर्वीत विवाहं गृहकर्म च॥' इति गर्गोक्तेः। अन्नमन्नप्राशनं विहितकालातिक्रान्तं क्षौरं चौलं च स्वतंत्रम्। यत्तूपनयनाङ्गं क्षौरं तस्य न निषेधः 'चैत्रे मीनगते रवौ' इति विहितोपनयनस्य विषयालाभात्। अथोत्तरार्धं व्याख्यायते—अलीति। अलिमृगाजाः प्राग्व्याख्याताः। एतद्राशिगते सूर्ये सति कार्तिकपौषमधुष्वपि करपीडनं भवति। यथा वृश्चिके कार्तिकः, मकरे, पौषः, तथा मीने चैत्रोऽपीत्यर्थः। इदं तु सौरमासग्राहिणां मतम्। अत एवाधुनोक्तचूडारत्नस्थवाक्ये 'केप्याहुः परपीडनम्' इत्युक्तम्। श्रीधरोऽपि—'पौषे च कुर्यान्मकरस्थितेऽर्के चैत्रे भवन्मेषगतो यदा स्यात्। प्रशस्तमाषाढकृतं विवाहं वदन्ति गर्गा मिथुनस्थितेऽर्के॥' इति। तदेतत्प्रागभिहितन्यायादुपेक्ष्यम्।

अत्यन्तातिक्रमेऽयं कालः—

अथ वा केवलमताङ्गीकारेण मध्यमत्वमङ्गीकृत्य कालान्तरानपेक्षिण्यवश्यदेयकन्याविषयम्। अत्र 'गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठा' इत्यादिना मासनिर्णयः सामान्यतः कृतोप्येतादृशविशेषाभिधानार्थं पुनर्ग्रन्थकृतोक्तः॥ १३॥

पीताम्बरा—वैवाहिक मास—सूर्य संक्रमण की, मिथुन, कुम्भ, मकर, वृश्चिक, वृष और मेष राशियों के चान्द्र मासों में विवाह लग्न शुभ होते हैं।

मिथुन राशि गत सूर्य में आषाढ़ शुक्ल प्रतिपद से आषाढ़ शुक्ल दशमी तक, वृश्चिक के सूर्य में कार्तिक मास, मकर के सूर्य मे पौष मास और मेष के सूर्य में चैत्र चान्द्रमास में भी विवाह लग्न होते हैं।

सौर चान्द्रमासों की एकता के मास में विवाह उत्तम है। मास शब्द से सामान्यतः चान्द्रमास ही गृहीत होता है।। १३ ।।

अथ मासप्रसङ्गाज्जन्ममासादिप्रयुक्तनिषेधविधी रथोद्धतावृत्तेनाह—

आद्यगर्भसुतकन्ययोर्द्वयोर्जन्ममासभतिथौ करग्रहः।
नोचितोऽथ विबुधैः प्रशस्यते चेद्द्वितीयजनुषो सुतप्रदः ।। १४ ।।

पीयूषधारा—आद्येति। यस्मिन् चान्द्रे मासे जन्म स जन्ममासः जन्मतिथिमारभ्य त्रिंशत्तिथ्यात्मको. मासो जन्ममासो वेति। उच्यते। द्वयमप्याद्यप्रकरणे 'जन्मर्क्षमासतिथयः' इति पद्यव्याख्यावसरे विविच्य व्याकृतमस्माभिः। यस्मिन् भे नक्षत्रे जन्म तज्जन्मभम्। यस्यां तिथौ जन्म सा जन्मतिथिः। समाहारद्वन्द्वः। आगमानुशासनस्यानित्यत्वान्नुमभावः। उपलक्षणत्वात्तन्मुहूर्तोऽपि। तत्राद्यगर्भसुतकन्ययोर्द्वयोः करग्रहो विवाहो नोचितो निषिद्ध इत्यर्थः। यदाह वसिष्ठः—'स्वजन्ममासर्क्षतिथिक्षणेषु वैनाशिकाद्यृक्षगणेषु चैवम्। नोद्वाहमात्माभ्युदयाभिकाङ्क्षी नैवाद्यगर्भद्वितयं कदाचित् ।।' क्षणो मुहूर्तः। नारदोऽपि—'न जन्ममासे जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि वा। आद्यगर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रहः ।।' इति। जन्मदिवसे जन्मतिथौ।

जन्मदिनादिनिषेधानामपवादः—

आवश्यकत्वेऽपवादो जगन्मोहने—'जातं दिनं दूषयते वसिष्ठः पञ्चैव गर्गस्त्रिदिनं तथात्रिः। तज्जन्मपक्षं किल भागुरिश्च व्रते विवाहे गमने क्षुरे च ।।' इति। अथेति। द्वितीयजनुषोरनाद्यगर्भयोश्चेद्विवाहः तर्हि सुतप्रदो विबुधैः पण्डितैः प्रशस्यते। एतच्च तृतीयगर्भादावपि द्रष्टव्यम्। सर्वथाद्यगर्भराहित्यं विवक्षितम्। केचित्तु 'चेदनाद्यजनुषोः' इति पठन्ति। यदाह च्यवनः—'जन्मर्क्षे जन्ममासे वा तारायामथ जन्मनि। जन्मलग्ने भवेदूढा पुत्राढ्या पतिवल्लभा ।।' इति। चण्डेश्वरः—जन्ममासे तु पुत्राढ्या धनाढ्या जन्मभोदये। जन्मलग्ने भवेदूढा वृद्धा सन्ततिसौख्यभाक् ।।' इति। एतच्चानाद्यगर्भविषयम्। आद्यगर्भे साक्षान्निषेधाभिधानात् ।। १४ ।।

पीताम्बरा—जन्ममास में संस्कारों की विधि और निषेध—जिस चान्द्रमास में जन्म हो वह जन्ममास है। जन्म तिथि से आरम्भ कर ३० वीं तिथि की समाप्तिकालीन तिथि तक विकल्प से चान्द्रमास होता है।

जिस नक्षत्र में जन्म हो वह जन्म नक्षत्र होता है। जिस तिथि में जन्म हो उसे जन्म तिथि कहते हैं।

अतः प्रथम गर्भ के पुत्र और कन्या दोनों का जन्म मास जन्म नक्षत्र और जन्म तिथियों में विवाह सम्बन्ध नहीं करना चाहिए।

द्वितीय गर्भ से जायमान पुत्र कन्या का विवाहादिक जन्म मास में होता है जो सुतप्रद कहा गया है ।। १४ ।।

अथ प्रसङ्गाज्ज्येष्ठमासप्रयुक्तं विशेषं शालिन्याह—

ज्येष्ठद्वन्द्वं मध्यमं संप्रदिष्टं त्रिज्येष्ठं चेन्नैव युक्तं कदापि ।
केचित्सूर्यं वह्निगं प्रोह्य चाहुर्नैवान्योन्यं ज्येष्ठयोः स्याद्विवाहः ॥१५॥

पीयूषधारा—ज्येष्ठद्वन्द्वमिति । पुत्रो ज्येष्ठः, कन्या च ज्येष्ठा, मासोऽपि ज्येष्ठ इत्येतत्-त्रिज्येष्ठं ज्येष्ठात्रयमुच्यते । तत्कदापि नैव युक्तं, नैव प्रशस्तम् । ज्येष्ठे मासे ज्येष्ठवधूवरयोर्नैव विवाहः कार्य इत्यर्थः । यदा त्वेकतरज्येष्ठत्वे ज्येष्ठमास्यपि भवति । यदाह गुरुः—'ज्येष्ठे न ज्येष्ठयोः कार्यं नृनार्योः पाणिपीडनम् । तयोरन्यतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठमासेऽपि कारयेत् ॥' इति । एतच्चान्यतरेण ज्येष्ठत्वं द्विविधं ज्येष्ठमासो ज्येष्ठो वरश्च, ज्येष्ठो मासः कन्या च ज्येष्ठा, एतज्ज्येष्ठद्वन्द्वं मध्यमं सम्प्रदिष्टमतिविषयमित्यर्थः । एको ज्येष्ठोऽन्यद्द्वयमज्येष्ठमुत्तममेव । यदाह वराहः—'द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकज्येष्ठः शुभावहः ॥ ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसम्मतम् ॥' इति । 'पराशरोऽपि—अज्येष्ठा कन्यका यत्र ज्येष्ठः पुत्रो वरो यदि । व्यत्ययो वा तयोस्तत्र ज्येष्ठमासः शुभप्रदः ॥' इति । केचित्तु ज्येष्ठमासाभावेऽपि वरकन्ययोर्ज्येष्ठत्वमपि मध्यममाहुः तदसत् । वधूवरान्यतरज्येष्ठराहित्यं विवक्षितं तद्वाक्यं प्रागुक्तं । किन्तु जन्ममासज्येष्ठ-मासयोरभावेऽपि द्वयोर्वधूवरयोः सर्वथा निषिद्धो विवाहः । यदाह गर्गः—'ज्येष्ठायाः कन्यकायाश्च ज्येष्ठपुत्रस्य वै मिथः । विवाहो नैव कर्त्तव्यो यदि स्यान्निधनं तयोः ॥' इति । तदेतदुक्तं ग्रंथकृता 'नैवान्योन्यं ज्येष्ठयोः स्याद्विवाहः' इति । ज्येष्ठत्रयनिषेधस्त्वतिदोषाधिक्यसूचनार्थः ।

त्रिज्येष्ठमितिशब्दस्य साधनम्—

कथं त्रिज्येष्ठमित्यस्य साधुत्वम् ? यावता ज्येष्ठो मासः ज्येष्ठो वरः ज्येष्ठा कन्येति त्रीणि पदानि तेषां ज्येष्ठा इति द्वन्द्वापवादे 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' इत्येकशेषो न प्राप्नोति सरूपत्वाभावात् । अथोच्यते । ज्येष्ठो मासः ज्येष्ठश्च वरः ज्येष्ठा च कन्येति विग्रहे यद्यपि 'सरूपाणाम्' इत्येकशेषो वैरूप्यान्न प्राप्नोति तथापि 'सरूपाणाम्' इत्यनुवृत्तौ 'पुमान् स्त्रिया' इत्येकशेषे' 'यः शिष्यते स निवर्त्यमानार्थमाचष्टे' इति ज्येष्ठावितिपदं संशोध्य ज्येष्ठश्च ज्येष्ठौ चेति विग्रहे सेत्स्यति । तन्न, असारूप्यादेवात्राप्येकशेषाभावस्य सिद्धेः । अथ मासवाची ज्येष्ठ-शब्दोऽस्ति । 'वैशाखे माधवो राधो ज्येष्ठे शुक्रः शुचिस्त्वयम् । इत्यमरोक्तेः । आदिवृद्धिरहितेन ज्येष्ठमासशब्देन साकमेकशेषो भविष्यति । तदापि अमरोक्तावेव ' येष्ठे शुक्रः शुचिस्त्वयम्' इति आदिवृद्धिसहितस्य पाठानुशासनबलाच्च । तथा हि ज्येष्ठानक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासीत्यत्र 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' इत्यणि सति 'तद्धितेष्वचामादेरित्यादिवृद्धौ 'यस्येति च' इत्यकारलोपे ज्येष्ठ इति सिद्धम् । ततः स्त्रियां 'तिड्ढाणञ्' इति ङीपि पुनः 'यस्येति च' इति लोपे सिद्धं ज्यैष्ठीती । तस्माज्ज्यैष्ठी विद्यतेऽस्मिन्नित्यर्थे 'सास्मिन्पौर्णमासीति संज्ञायाम्' इत्यणि 'यस्येति च' इतीकार-लोपे सिद्धं ज्यैष्ठमिति । अत एवामरसिंहोऽपि—'पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी मासे तु यत्र सा । नाम्ना स पौषो माघाद्यश्चैवमेकादशापरे ॥' इत्यादिवृद्धिसहितानेव पौषादीनूचे । क्वचित्तु ज्यैष्ठमिति पाठः सप्रामादिकः तस्मादेकशेषः सर्वथानुपपन्नः । एवमशुद्धैकशेषाङ्गीकारे सत्यपि त्रिशब्देन साकं त्रयाणां ज्येष्ठानां समाहार इति । 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इति तत्पुरुष-

समासे 'संख्यापूर्वो द्विगुः' इति द्विगुसंज्ञायाम् 'द्विगोः' इति ङीपि त्रिज्येष्ठीति भाव्यं न पुनस्त्रिज्येष्ठमिति दूषणद्वयमस्ति अत्र क्रमेण समाधिः। 'ओर्गुणः' इत्यत्र 'ओरोत्, इति' वक्तव्ये गुणग्रहणं 'संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः' इति परिभाषाज्ञापनार्थम्। तेन 'तद्धितेष्वचामादेः' इत्यादिवृद्धेरनित्यतामङ्गीकृत्य ज्येष्ठमासप्रयोगोपपत्तिः। अतो ज्येष्ठो च ज्येष्ठश्चेति सरूपत्वादेकशेषः सिद्धः। ततस्त्रिशब्देन समासे 'पात्राद्यन्तस्य न' इति। स्त्रीत्वनिषेधात्पात्रादेराकृतिगणत्वान्नपुंसकत्वमङ्गीकार्यमिति सिद्धं त्रिज्येष्ठमिति। अथास्यापवाद उच्यते—केचिदिति। सत्यावश्यकत्वे सूर्यं वह्निगं कृतिकास्थं प्रोह्य त्यक्त्वा ज्येष्ठमासेऽपि ज्येष्ठस्य वरस्य कन्याया वा विवाहः शुभः इति केचिदूचुः।

ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे इत्यत्राप्येतदपवादातिदेशः—

एतच्च तुल्यन्यायत्वाज्ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठ इति सामान्यतो मङ्गलकृत्यनिषेधेऽपि द्रष्टव्यम्। यदाह भरद्वाजः—

'ज्येष्ठ ज्येष्ठस्य कुर्वीत भास्करे चानलस्थिते। नोत्सवादीनि कार्याणि दिग्दिनानि च वर्जयेत् ॥'

अत्र विशेषमाह स एव—

'दशाहं चैव गर्गस्तु त्रिदशाहं बृहस्पति। अर्कभोग्यान्यग्निभयं मुनिः प्राह पराशरः ॥' इति।

तन्त्रान्तरेऽपि—

'कृत्तिकास्थं रविं त्यक्त्वा ज्येष्ठे ज्येष्ठस्य कारयेत्। उत्सवादीनि कार्याणि दिनादि दश वर्जयेत्। व्रतबन्धं विवाहं च चूडां कर्णस्य वेधनम्। ज्येष्ठमासे न कुर्वीत कल्याणं ज्येष्ठपुत्रगम् ॥' इति।

मार्गशीर्षेऽपि ज्येष्ठवच्छुभकृत्यानिषेधः—

अत्र ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोर्ज्येष्ठमासवन्मार्गशीर्षेऽपि मङ्गलकृत्यनिषेधमाह वात्स्यः—'मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे विवाहं चौलमेव च। ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च न कुर्वीत व्रतं तथा ॥' भरद्वाजोऽपि—'मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयव्रतम्। आद्यपुत्रदुहित्रोश्च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥' इति। स्वयं च ग्रन्थकर्त्रा 'ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेऽपि नेष्यते' इत्युक्त प्राक्। कैश्चिद्ग्रहणं शिष्टाचाराभावं सूचयितुं कृतम् ॥१५॥

पीताम्बरा—विवाह में ज्येष्ठ मास का निषेध और परिहार—ज्येष्ठ पुत्र, ज्येष्ठ कन्या और ज्येष्ठ मास इस प्रकार के तीन ज्येष्ठ में विवाह कदापि नहीं करना चाहिए। ज्येष्ठ वर या कन्या और ज्येष्ठ मास ये दो (द्वि) ज्येष्ठ कहे जाते हैं। द्विज्येष्ठ में विवाह हो सकता है। एक ज्येष्ठ अन्य दो अज्येष्ठ, वर कन्या और मासों इन तीनों में एक ही ज्येष्ठ हो तो विवाह उत्तम होता है। जैसे कन्या वर दोनों का जन्म मास ज्येष्ठ नहीं है तो उनके विवाह के लिये ज्येष्ठ मास उत्तम है।

अन्य आचार्यों के मतों से कृतिका नक्षत्र के सूर्य तक के ज्येष्ठ मास को छोड़कर शेष ज्येष्ठ मास में विवाहादिक (त्रिज्येष्ठ) हो सकते हैं। ज्येष्ठ पुत्र और ज्येष्ठ कन्या का परस्पर का विवाह सम्बन्ध, हितावह नहीं होता है। यहाँ प्रथम गर्भीय वर कन्या को ही ज्येष्ठ सन्तान समझना चाहिए। प्रथम गर्भ नष्ट के उपरान्त द्वितीय गर्भ की जीवित सन्तान जो व्यवहारतः ज्येष्ठ है किन्तु शास्त्रतः वह ज्येष्ठ नहीं कही गई है ॥१५॥

अथ निजकुलोत्पन्नानां तथैकोदराणामपि पुत्रकन्यानां विवाहादिमङ्गलकृत्ये कालनियमपुरःसरं पूर्वापरभावनिषेधं विशेषान्तरं च हरिणीच्छन्दसाह—

सुतपरिणयात्षण्मासान्तः सुताकरपीडनं
न च निजकुले तद्वद्वा मण्डनादपि मुण्डनम् ।
न च सहजयोर्देये भ्रात्रोः सहोदरकन्यके
न सहजसुतोद्वाहोऽब्दार्धे शुभे न पितृक्रिया ॥ १६ ॥

पीयूषधारा—सुतपरिणयादिति । देहलीदीपकन्यायेनात्रापि निजकुल इति सम्बध्यते । निजकुले स्ववंशे सुतस्य परिणयाद्विवाहात्परतः षण्मासान्तः सौरमासषट्मध्ये सुतायाः कन्याया विवाहो न स्यात् । उक्तं च वसिष्ठेन—'पुत्रोद्वाहान्नैव पुत्र्याः कदाचिदाषण्मासात्कार्यमुद्वाहकर्म' इति । नारदोऽपि—'पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये । कुर्यान्न व्रतमुद्वाहान्मङ्गले नाप्यमंगलम् ।।' इति । अयं च निषेधः कुलपरो द्रष्टव्यः । यदाह वात्स्यः—'स्त्रीविवाहः कुले निर्गमः कथ्यते पुंविवाहः प्रवेशो वसिष्ठादिभिः । निर्गमादादितो न प्रवेशो हितस्तत्र संवत्सरान्तोऽवधिः कीर्तितः ।।' इति । अब्दभेदे तु नायं कालनियम इति 'चूडाव्रतं च' इत्यत्र ग्रन्थकृद्वक्ष्यति ।

विवाहानन्तरं चौलोपनयनव्रतसमावर्तनानि कार्याणि उक्तकालमध्ये—

निजकुल इति । स्ववंशे पुत्रस्य कन्याया वा मण्डनाद्विवाहान्मुण्डनं चौलमुपनयनं महानाम्न्यादिव्रतचतुष्टयं समावर्त्तनं वा तद्वत्षण्मासान्तर्न कार्यम् । यदाऽऽहात्रिः—'कुले ऋतुत्रयादर्वाङ्मण्डनान्न तु मुण्डनम्' इति । तस्मान्मुण्डनान्मण्डनं कार्यम् । यदाह नारदः—'मुण्डनान्मण्डनं कार्यम् मण्डनान्नैव मुण्डनम्' इति । तथा कन्याविवाहादनन्तरं पुत्रस्य विवाहः कार्यः । वसिष्ठः—'पुत्रीविवाहात्परतः सदैव शुभप्रदं पुत्रविवाहकर्म' इति ।

एकोदरयोस्सहोदरकन्यके न देये—

न चेति । सहजयोः सोदरयोर्भ्रात्रोस्सहोदरकन्यके न देये नोद्वाह्ये । उक्तं च नारदेन—'न चैकजन्मनोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके । नूनं कदाचिदुद्वाह्ये नैकदा मुण्डनद्वयम् ।।' इति । 'एकजन्ये तु कन्ये द्वे पुत्रयोः' इति वसिष्ठोक्तेश्च । अत्र चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः तेनैकस्मै वराय सहोदरकन्याद्वयमपि न देयमित्यर्थः । 'न पुत्रीद्वयमेकस्मै प्रदद्यात्तु कदाचन' इति वसिष्ठोक्तेः ।

प्रत्युद्वाहो न कार्यः—

नारदोऽपि 'प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम्' इति । प्रत्युद्वाहो विनिमयविवाहः मत्पुत्राय चेत्त्वया कन्या दीयते तदा मयापि त्वत्पुत्राय कन्या देयेत्येवं पणबन्धरूपः । कान्यकुब्जभाषया गुरावट् इत्याहुः । एतादृशः पणबन्धो भगिन्यादिदानेऽपि द्रष्टव्यः ।

एकोदरयोः षण्मासाभ्यन्तरे समानसंस्कारौ न विधेयौ—

न सहजसुतोद्वाहोऽब्दार्द्ध इति । सुतश्च सुतश्च सुतौ । 'सरूपाणाम्' इत्येकशेषः । सुता च सुता च सुते । पूर्ववदेकशेषः । सुता च सुतश्च सुतौ । 'पुमान् स्त्रिया' इत्येकशेषः । सुतौ च सुता च इति कृतैकशेषाणां द्वन्द्वः । अत्रापि 'पुमान्स्त्रिये'त्येकशेषः । सहजाश्च ते

सुताश्चेति कर्मधारयः। तेषां सोदरभ्रातॄणां विवाहः अब्दार्धं वर्षार्द्धे सौरषण्मासमध्ये न कार्यः। यदाह नारदः—'विवाहस्त्वेकजन्यानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि। असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत्॥' विवाह इत्युपलक्षणम्। तेन समानसंस्कार एकमातृजयोः पुत्रयोर्वा न कार्य इत्यर्थः। तथा च वृद्धमनुः—'एकमातृजयोरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः। न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते॥' इति। समानक्रिया चूडाकरणादिका एकवर्षमध्ये निषिद्धेत्यर्थः। एकवत्सर इति कालसावकाशद्योतनाय षण्मासमध्ये तु सर्वथैव न कार्या। 'विवाहस्त्वेकजन्यानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि' इत्यनुपदोक्तनारदवाक्यस्वरसात्।

यमलयोः षण्मासाभ्यन्तरेऽपि समानसंस्कारौ न विधेयौ—

यमलजातयोस्त्वपत्ययोर्नियतकालानां जातकर्माद्येककर्मणामेकक्रियात्वेऽपि निषेधाभावः वर्षभेदेन तदसम्भवात्। नन्वत्र पुरुषस्त्रियोरित्युक्ते पुरुषकन्ययोरेव समानक्रियानिषेधोऽवगम्यते न द्वयोः कन्ययोः पुत्रयोर्वेति। न च पुरुषौ च स्त्रियौ चेति द्वन्द्वे कृते द्वयोः पुत्रयोः कन्ययोर्वा निषेधः सेत्स्यतीति वाच्यम्। यतः 'सकृदुच्चरितः शब्दः सकृदेवार्थं गमयति' इति न्यायात् पुत्रकन्ययोरनिषेधः स्यात्। आवृत्त्या विवक्षितार्थसिद्धिश्चेति चेन्न। आवृत्तौ प्रमाणाभावात्। किञ्च पुरुषौ च स्त्रियौ चेति कृतैकशेषयोः पुरुषयोः स्त्रियोश्चेति 'चार्थे द्वन्द्वः' इति द्वन्द्वे चतुष्ट्वापत्तौ द्विवचनानुपपत्तेः। ननु 'युगपदधिकरणवचनो द्वन्द्व' इति वार्तिककारवचनात् धवौ च खदिरौ च धवखदिरावित्यादावन्योन्यसाहित्यप्रतिपत्तये द्विवचनबहुवचनान्तेनैव द्वन्द्वान्तःपतिना सर्वेण पदेन विगृहीतव्यमिति। अत एव द्वन्द्वापवादके एकशेषसूत्रे महाभाष्यकृतापि सहविवक्षायामेकशेष इत्येकः षष्ठः पक्ष उपन्यस्तः। तत्र तेनैवाशङ्क्य समाहितं 'न तर्हीदानीमिदं भवति। वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षौ वृक्षाश्च वृक्षाश्च वृक्षा इति। नैतत्सहविवक्षायां भवति तथापि 'निदर्शयितुं बुद्धिरेव निदर्शयितव्या' इति। अतः कृतसाहित्यप्रतिपादयोः पुरुषयोः स्त्रियोश्च द्विवचनान्तयोर्द्वन्द्वेनैव बहुवचनोपपत्तिः। एवं सति पुत्रकन्ययोः सोदरयोः समानक्रियानिषेधो न तु पुत्रोयोर्द्वयोः स्त्रियोश्चेति। वस्तुतस्तु तत्रैकवचनान्तपदविग्रह एव। साहित्यप्रतिपत्तिस्तु द्वन्द्वतात्पर्यादुपपन्नेति नानेकपदलक्षणादिक्लेशः सोढव्यः इत्येतत्प्रपञ्चितं तन्त्ररत्ने महता व्यासेन। महाभाष्यकृदुक्तिस्तु द्व्यादीनामेव परस्परसाहित्येन द्विवचनाद्यर्थसम्पत्तौ वचनान्तरानवसरप्रतिपादिकेत्यभियुक्ताः। तथा च प्रागुक्तश्चतुष्ट्वापत्तिरूपो दोषः स्यादेवेति। अस्त्विति चेन्न। एकमातृजयोरिति द्विवचनानुपपत्तिः स्यात्। तत्रापि बहुवचनमस्तु। एकमातृजातायामेकवत्सरे पुरुषाणामिति चेन्न। उभयथापि छन्दोभङ्गदोषापत्तेः। किं च यद्ययमर्थो विवक्षितः स्यात्तदा छन्दोभङ्गदूषणमपहाय स्पष्टैरेव पदान्तरैर्नारदादिवाक्यवन्निषेधं कुर्यात्। अत्र ब्रूमः। एकमातृजयोः सोदर्ययोः ययोः कयोश्चित्समानक्रियानिषेध इत्येतावानस्य वचसोऽर्थः। द्विवचनोपादानं तु द्वयोरपि निषेधो यथा स्यात्। तत्र कैमुतिकन्यायेन त्रयाणां सोदराणामर्थाक्षिप्त एव निषेधः। पुरुषस्त्रियोरिति तु पदं दृष्टान्तार्थम्। नारदादिवाक्ये तु बहुवचनोपादानं बहूनामपि सोदराणां संग्रहार्थम्, नतु बहुत्वविवक्षायां बहूनामेव सोदराणां निषेधार्थम्। तेन द्वयोर्बहूनां वा सोदराणां निषेधः सिद्ध्यति। अत एव पराशरोऽपि—'एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्वत्सरे यदि। पाणिग्रहो भवेन्नूनं तत्रैका विधवा भवेत्॥' इति॥

अथैकदा एकोदरयोरुपनयनसंस्कारो न विधेयः—

तुल्यन्यायत्वाद्यज्ञोपवीतसंस्कार्यत्वाद्द्वयोरन्यतरस्य नाश इत्यर्थः। 'नैकदा मुण्डनद्वयम्' इति वसिष्ठोक्तेः। एकदा एकस्मिन्वर्षे मुण्डनं चौलमुपनयनं वा।

सोदरस्त्रिपुंसयोर्विवाहोपनयनयोरिति स्त्रीणामुपनयनं तत्र प्राप्नोतीत्यादिविचारः—

ननु कन्याविवाहकाल एव उपनयनं निर्णीयते। यदाह हारीतः—'द्विविधः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनं वेदाध्ययनं भिक्षाचर्या च। सद्योवधूनां तु उपस्थिते विवाहः कार्यः' एवं सति सोदरकन्याविवाहस्य सोदरपुत्रोपनयनस्य च समानसंस्कारत्वात्तयोरेकवर्षे निषेधः स्यात्। उच्यते 'गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेत् गर्भैकादशेषु राजन्यं गर्भद्वादशेषु वैश्यम्' इति। अन्यच्च—'वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यम्' इति आपस्तम्बादिसूत्रेषु—स्वकुलाचारधर्मज्ञो माघमासे तु फाल्गुने। विधिज्ञश्चार्थवांश्चैत्रे वेदवेदाङ्गपारगः॥ वैशाखे धनवान्वेदशास्त्रविद्याविशारदः। उपनीतः कुलाढ्यः स्याज्ज्येष्ठे विधिविदांवरः॥ इति।

नारदसंहितास्वपि ब्राह्मणादिवर्णत्रयग्रहणात्पुंल्लिङ्गस्याविवक्षितत्वाच्च स्त्रीशूद्राणां व्रतबन्धनिषेधावगमात्। यानि तु—'विप्राणामुपनयनं वसन्तसमये धराधिनाशानान्। ग्रीष्मर्तौ शरदि विशां मासाः साधारणाश्च माघाद्याः॥' इति वसिष्ठादिवाक्यानि पुंस्त्रीसाधारणानि प्रतीयन्ते, तानि नारदवाक्यैकतावलात्पुंविषयकाण्येव। ब्राह्मण्यश्च विप्राश्च विप्रा इति 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषप्रमाणाभावः। अत एव याज्ञवल्क्यः—

'गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात्पुरा। षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तो मास्येते जातकर्म च॥
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः। षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम्॥
एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्।'

इत्युक्त्वा मध्ये चोपनयनं विहाय 'तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः' इत्याह। 'गर्भाऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्। राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम्॥' इत्युपनयनमुवाच। यद्येषोऽभिप्रायोऽनभिमतः स्यात्तदा 'चूडा कार्या यथाकुलम्' इत्यस्याग्रे 'गर्भाष्टमे' इत्येकं पद्यमुक्त्वा 'एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्। तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः' इत्यवक्ष्यत्। अतः स्त्रीणानुपनयनं नास्त्येव। यत्तु प्रागुक्तं हारीतवाक्यं तत्कल्पान्तरविषयम्। यदाह यमः—

'पुरा कल्पे हि नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते। अध्यापनं च वेदानां सावित्रीग्रहणं तथा॥
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्परः। स्वगृहे चैव कन्याया भैक्षचर्या विधीयते॥' इति।

ननु यद्यपि मुख्यमुपनयनं स्त्रीणां नास्ति। तथापि आतिदेशिकमस्ति। यदाह मनुः—'वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः परः। पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थेऽग्निपारक्रिया॥ इति। या तेन समानक्रिया सेत्स्यतीति, सत्यम्। अतिदेशोऽयमुपनयनधर्मप्राप्त्यर्थः। यथा ब्राह्मणादीनामुपनयनात्प्राक् कामचारकामवादकामभक्षाद्याचाराणामदोषतास्ति तदनन्तरं तूपनयनधर्माणां सन्ध्यास्नानादीनां प्रागधर्मनिरसनपूर्वकमनुष्ठानं यथास्ति तथा स्त्रीणामपि

विवाहात्प्राक् कामचारादिधर्मा न दोषं कुर्वन्ति। विवाहस्य तु द्विजत्वसिद्धिकरत्वादनुष्ठिते विवाहे कामचारादिधर्मनिरासपूर्वकं 'पतिसेवा गुरौ वासः' इत्यादिकमनुष्ठानं भवेदिति। नन्वतिदेशेन स्त्रीणामुपनयनधर्मप्रापणमस्तु समानसंस्कारत्वमप्युच्यते, नात्र समानशब्दः सदृशार्थकः। तेन तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वं सादृश्यमिति सादृश्यलक्षणाद्यथाकथञ्चित्सर्वत्र सादृश्यसम्भवेन विजातीयसंस्काराणामपि चौलान्नप्राशनानां सोदरपुम्भ्रातृसम्बन्धिनां निषेधप्रसङ्गात् शिष्टाचारविरोधाच्च। किं त्वेकशब्दपर्यायः सदृशशब्दस्तेनैक जातीयक्रिया निषेधः। उपनयनत्वेन विवाहत्वेन वैकजातीयत्वम्। एवं सर्वेष्वपि कर्मसु एकजातीयत्वं द्रष्टव्यम्। तस्मात् सोदरपुत्रकन्यासम्बन्धिनोर्विवाहोपनयनयोः समानसंस्कारत्वाभाव इत्येव सिद्धान्तः फलितः। अतः षाण्मासिको निषेधस्तयोर्नास्ति। तेनात्र प्रथमं पुत्रोपनयनं विधाय यथावकाशं कन्याविवाहः सुखेन कार्यः। तस्मादेकमातृजयोः पुत्रयोः कन्ययोः पुत्रकन्ययोर्वा विवाहादिरूपः समानक्रियानिषेधः षण्मासमध्येऽस्त्येव।

अथ भिन्नमातृजभ्रातृभगिन्योर्नायं निषेधः—

केचित्तु कन्याविवाहादनन्तरं द्वितीयकन्याविवाहः समनन्तरमेव दोषाभावात्सुखेन कार्य इत्याहुः। यदुक्तं गर्गेण—'पुत्रीपरिणयादूर्ध्वं यावद्दिनचतुष्टयम्। पुत्र्यन्तरस्य कुर्वीत नोद्वाहमिति सूरयः॥' इत्याहुः। तन्न। भिन्नमातृविषयत्वाद्गर्गवाक्यस्य पूर्वोक्तपराशरवाक्यस्वरसात्। 'समानापि क्रिया कार्या मातृभेदे तथैव च। विवाहे दुहितुः कार्यो न विवाहश्चतुर्दिनम्।' इति नारदोक्तेश्च।

एकोदराणां न मङ्गलत्रयं कार्यं पूर्वोक्तकालाभ्यन्तरे—

वसिष्ठेन तु विशेषोऽभिहितः—'एकोदरप्रसूतानां नात्र कार्यत्रयं भवेत्। भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोऽब्रवीत्।' इति। चौलोपनयनविवाहरूपं कार्यत्रयम्। तदुक्तं च्यवनेन—'आदौ चौलं ततो मौञ्जी विवाहश्च शुभप्रदः। मातृभेदे बुधैरुक्तो मातुरैक्ये न कर्हिचित्॥' इति। भिन्नोदरयोरपि भगिनीभ्रात्रोर्मङ्गलद्वये मण्डपाचार्यभेदाद्यावश्यकता—

एवं स्थिते भिन्नोदरमङ्गलं सत्यावश्यकत्वे एकस्मिन्मण्डपे न कार्यम्। किं च गृहभेदादाचार्यभेदाद्वा कार्यम्। यदाह वसिष्ठः—'द्विशोभनं त्वेकगृहेऽपि नेष्टं शुभं तु पश्चान्नवभिर्दिनैश्च। आवश्यकं शोभनमुत्सुको वा द्वारेऽथवाचार्यविभेदतोऽपि॥' इति। द्वारे द्वारभेदे।

यमलविषये मण्डपाचार्यभेदादीनामावश्यकता नास्ति—

यमलजातयोस्त्वयमपि निषेधो नास्ति। 'एकस्मिन्वत्सरे प्राप्ते कुर्याद्यमलजातयोः। क्षौरं चैव विवाहं च मौञ्जीबन्धनमेव च॥' इतिपराशरोक्तेः। क्षौरं चौलम्। भट्टकारिकायां च—'एकस्मिन्वत्सरे चैव वासरे मण्डपे तथा। कर्त्तव्यं मङ्गलं स्वस्रोर्भात्रोर्यमलजातयोः॥' इति।

ज्येठानुक्रमेण संस्कारः यमलविषये ज्येष्ठत्वकनिष्ठत्वनिर्णयश्च—

तत्रापि ज्येष्ठानुक्रमेण—'जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम्। यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता॥' इति मनूक्तेराद्योत्पन्नस्य ज्येष्ठत्वम्। देवलोऽपि—'यस्य जातस्य यमयोः पश्यति प्रथमं मुखम्। सन्तानः प्रथमश्चैव तस्मिञ्जैष्ठ्यं प्रतिष्ठितम्॥' इति। संतानो वंशः।

श्राद्धानन्तरमेव मङ्गलकृत्यं न मङ्गलकृत्यमध्ये श्राद्धम्—

शुभे इति। शुभे विवाहादिमङ्गलकृत्ये पितृक्रिया श्राद्धक्रिया न कार्या। विशेषेणाभिधानात् कुलेऽयं निषेधः। 'मङ्गले नाप्यमङ्गलम्' इति नारदोक्तेः। अमङ्गलं श्राद्धं तु समाप्ते एव मङ्गले कार्यमित्यर्थः। अथवा श्राद्धदिने समीपस्थिते तदनन्तरं लग्नं निर्धार्य्य विवाहादिमङ्गलकृत्यं कार्यमित्यर्थः ॥१६॥

पीताम्बरा—अपने कुल में उत्पन्न सन्तानों, एक उदर में उत्पन्न पुत्र कन्याओं के विवाहादिक मंगल-कृत्यों में समयों के नियम, पूर्वा-पर निषेध विशेषान्तर—अपने वंश (सापिण्ड-त्रिपौरुष) में पुत्र के विवाह के आगे के सौर ६ महीने के भीतर कन्या का विवाह नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार अपने कुल में पुत्र या कन्या के विवाह के अनन्तर ६ महीने तक चौल, उपनयन, महानाम्न्यादिव्रत चतुष्टय और समावर्तन नहीं करने चाहिए। चौल-उपनयनादि के अनन्तर अभीष्ट समय में विवाह हो सकता है किन्तु विवाह से ६ महीने आगे तक मुण्डनादिक नही हो सकते। कन्या विवाह के अनन्तर पुत्र का विवाह भी किया जा सकता है।

दो सहोदर बहिनों से सहोदर भाइयों का भी विवाह सम्बन्ध नहीं होना चाहिए तथा एक ही वर के साथ सहोदर कन्याओं का भी विवाह नहीं होना चाहिए।

विवाह विनिमय—"आप मेरे पुत्र को अपनी कन्या दें तो मैं अपनी कन्या आपके पुत्र को दूँगा' इस प्रकार का आपसी मसविदा का सम्बन्ध भी नेष्ट है।

दो सहोदर भाइयों में एक के विवाह के ६ सौर मास तक दूसरे का विवाह नहीं करना चाहिए। विवाह उपलक्षण है समान क्रिया चौल उपनयनादि एक के संस्कार के अनन्तर ६ महीने तक दूसरे का संस्कार नहीं करना चाहिए।

एक समय में एकोदर उत्पन्न सन्तानों के संस्कार भी नहीं करने चाहिए।

विवाहादिक मंगल कृत्य में श्राद्धादिक एकोदिष्टादि पितृकार्य नहीं करने चाहिए। श्राद्धादिक अमंगल कृत्य के अनन्तर ही विवाहादिक मंगल कार्य करने चाहिए।

मण्डप भेद और आचार्य भेद से त्रिपुरुष में भिन्नोदर दो बटुओं का उपनयनादि संस्कार किया जा सकता है ॥१६॥

अथान्यत् प्रतिकूलदोषमुपजातिकयाह—

वध्वा वरस्यापि कुले त्रिपूरुषे नाशं व्रजेत्कश्चन निश्चयोत्तरम्।
मासोत्तरं तत्र विवाह इष्यते शान्त्याऽथवा सूतकनिर्गमे परैः ॥१७॥

पीयूषधारा—वध्वा इति। निश्चयोत्तरं वाग्दानानन्तरं यदि वध्वाः कन्यायास्तथा वरस्यापि कुले वंशे तत्रापि त्रिपुरुषमध्ये कश्चन सपिण्डो नाशं व्रजेत् प्राप्नुयात्तत्र मासोत्तरं मरणदिनादारभ्य त्रिंशद्दिनं प्रातिकूल्यं ततः शान्त्या स्वनुष्ठितया विवाहः सुखेनेष्यते। उक्तं च स्मृतिचन्द्रिकायाम्—'कृते वाङ्निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति गोत्रिणः। तदा न मङ्गलं कार्यं

नारीवैधव्यदं ध्रुवम् ॥' इति । विशेषमाह मेधातिथिः—'पुरुषत्रयपर्यन्तं प्रतिकूलं सगोत्रिणाम् । प्रवेशनिर्गमौ तद्वत्तथा मुण्डनमण्डने॥ इदं तु पित्रादिभिन्नविषयं द्रष्टव्यम् । उक्तं च माण्डव्येन—'अन्येषां तु सपिण्डानामाशौचं माससम्मितम् । तदन्ते शान्तिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते॥'इति।

प्रातिकूल्यस्य बलवत्ता वर्षषण्मासत्रयैकमासपर्यन्तम्—

पित्रादिमरणे तु विशेषमाह शौनकः—'वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः । एतेषां प्रातिकूल्यं च महाविघ्नप्रदं भवेत् ॥' इति । 'पितापितामहश्चैव माता वापि पितामही । पितृव्यः स्त्री सुतो भ्राता भगिनी वा विवाहिता । एभिरेव विपन्नैश्च प्रातिकूल्यं बुधैः स्मृतम् ॥' इति । 'अन्यैरपि विपन्नैश्च केचिदूचुर्न तद्भवेत् ।' उक्तेभ्योऽन्यैः । प्रातिकूल्यस्य नियतं कालमाह माण्डव्यः—

'वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः । तदा संवत्सरादूर्ध्वं विवाहः शुभदो भवेत् । पितुराशौचमब्दं स्यात्तदर्धं मातुरेव हि । मासत्रयं च भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥'

दैवज्ञमनोहरे विशेषः—

'प्रातिकूल्ये सपिण्डस्य मासमेकं विवर्जयेत् । विवाहस्तु ततः पश्चात्तयोरेव विधीयते ॥ दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा प्राणसंशये । प्रौढायामपि कन्यायां प्रातिकूल्यं न दुष्यति ॥' इति।

मेधातिथिः—

'दीर्घरोगाभिभूतस्य दूरदेशस्थितस्य च । उदासवर्तिनश्चैव प्रतिकूलं न विद्यते ॥ सङ्कटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना । शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत् । अकृत्वा शान्तिकं यस्तु निषेधे सति दारुणे । यः करोति शुभं तावद्विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥' इति ।

आवश्यकत्वे स्वाशौचनिवृत्तौ शान्ति कृत्वा मासमध्येव्युद्वाहः कार्यः—

आवश्यकत्वेऽपवादमाह—अथवेति । स्वस्ववर्णपुरस्कारेणाशौचनिर्गमे मरणाशौचनिर्गमे सति शान्त्या च स्वनुष्ठितया विवाहः कार्य इति परैराचार्यैरिष्यते । यदाह मेधातिथिः—'प्रेतकार्याण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम्' इति । ज्योतिःप्रकाशेऽपि—प्रातिकूल्येऽपि कर्त्तव्यो विवाहो मासमन्तरा । शान्ति विधाय गां दत्त्वा वाग्दानादि चरेद्बुधः ॥' इति । सत्यावश्यकत्वे स्वस्वाशौचादनन्तरं मासमध्येऽपि शान्ति विधाय विवाहः कार्य इत्यर्थः । पुरुष इत्यत्र 'अन्येषामपि दृश्यते' इति दीर्घः पूरुषा नराः' इत्यमरश्च ॥१७॥

पीताम्बरा—कन्या-वर के कुल में किसी की मृत्यु पर विचार—वर या कन्या के तीन पीढ़ी (पुरुषत्रय) के भीतर वाग्दान के पश्चात् यदि किसी की मृत्यु हो जाय तो (अशौच निवृत्ति) १ मास के पश्चात् विवाहादिक करने चाहिए ।

अशौच निवृत्ति अनन्तर भी विवाहादिक किये जा सकते हैं । (आचार्यों के मतान्तर से) अशौच निवृत्ति के समीप दिनों में शान्ति कर्म पूर्वक संस्कार किए जा सकते हैं ।॥ १७ ॥

अथ प्रवेशनिर्गमौ तद्वत्तया मुण्डनमण्डने' इति प्रागुक्तमेधातिथिश्लोकोत्तरार्द्धपदार्थं सापवादमुपजातिकयाह—

चूडाव्रतं चापि विवाहतो व्रताच्चूडा च नेष्टा पुरुषत्रयान्तरे ।
वधूप्रवेशाच्च सुताविनिर्गमः षण्मासतो वाऽब्दविभेदतः शुभः ॥१८॥

पीयूषधारा—चूडेति । चूडा चौलं व्रतमुपनयनं च अपिशब्दान्महानाम्न्यादिसमावर्त्तनं च विवाहात्परतः पुरुषत्रयान्तर एव नेष्टम् । तथा व्रतादुपनयनाच्चूडा पुरुषत्रय पर्यन्तं नेष्टा । तथा वध्वाः स्नुषायाः प्रवेशादनन्तरं कन्यायाः विनिर्गमोऽपि पुरुषत्रयपर्यन्तं नेष्टः । एतन्मूलवाक्यं 'पुरुषत्रयपर्यन्तम्' इत्यादि, 'आदौ चौलं ततो मौञ्जी' इत्यादि च प्राग्लिखितम् । तस्मान्मूलपुरुषस्य चतुर्थत्वादौ नायं दोषः । स चायं दोषः पुरुषत्रये षण्मासपर्यन्तमेव । अतः षण्मासत इति मासषट्कानन्तरमयं व्यत्यस्तोऽपि विवाहादिः सर्वो विधिः शुभः । एतन्मूलवाक्येपि 'कुले ऋतुत्रयादर्वाक्' इत्यादि प्रागुक्तम् ।

अब्दभेदे तु षण्मासाभ्यन्तरेऽपि विवाहः—

अत्रापवाद उच्यते । वाब्देति । वा अथवाऽब्दभेदात् वर्षभेदात् षण्मासमध्येऽपि शुभः । यथा माघे मासि विवाहो वैशाखे चौलं यज्ञोपवीतं वा भवत्येवेत्यर्थः । तदुक्तं संहितासारावल्याम्—'फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने । भेदादब्दस्य कुर्वीत नर्त्तुत्रयविलङ्घनम् ।।' इति । अत्र फाल्गुनपदं प्रागब्दगतमासान्तरस्याप्युपलक्षणम् । चैत्रपदं चोत्तरवर्षगतवैशाखाद्युपलक्षणम् । तत्र कैमुतिकन्यायेन यत्र स्वल्पं कालान्तरं तत्रापि निषेधाभावस्ततोऽधिकव्यवधाने किं वाच्यम् । अब्दभेदस्यैव प्रयोजकत्वात् ।। १८ ।।

पीताम्बरा—विवाह के अनन्तर त्रिपुरुष में मुण्डनादिक निषेध—विवाह के अनन्तर त्रिपुरुष (पिता, पितामह, प्रपितामह) के भीतर ६ महीने में चूडा और व्रतबन्ध तथा महानाम्नी आदिक समावर्तन संस्कार नेष्ट होते हैं । तथा व्रतबन्ध के पश्चात् त्रिपुरुष के भीतर चूडा संस्कार भी नेष्ट है ।

तथा पुत्रवधू के घर में (वधू प्रवेश) प्रवेश के अनन्तरं ६ महीने के भीतर कन्या की विदाई भी नहीं करनी चाहिए ।

मूलपुरुष से चतुर्थ पीढ़ी की सन्तानों के संस्कारों में उक्त विधान लागू नहीं हो सकते । अर्थात् चतुर्थ पुरुष की सन्तानों में विवाह के अनन्तर एक वर्ष के भीतर जब सुविधा हो चूडा, व्रतबन्ध महानाम्नी आदिक संस्कार किये जा सकते हैं ।

वर्ष परिवर्तन, अर्थात् संवत्सर बदलने पर ६ महीने तक रुकावट का नियम नहीं है। यदि फाल्गुन मास में चूडा व्रतबन्ध आदिक त्रिपुरुष के भीतर हो गये हों तो चैत्रशुक्ल प्रतिपदि नये संवत्सर के प्रारम्भ होने पर कथित वैशाखादि मासों में विहित कर्मों को अच्छी प्रकार त्रिपुरुष में भी किया जा सकता है । समाप्ति के पूर्व वर्ष के संवत्सर में किये गये व्रतबन्धादिक संस्कार के अनन्तर आगे शीघ्र प्रारम्भ होने वाले नवीन संवत्सर के वैवाहिकादि मासों में विवाहादिक किए जा सकते हैं । यहाँ त्रिपुरुष में ६ महीने तक की लम्बी अवधि तक द्वितीय सन्तान के संस्कारादिकों में ६ महीने तक संस्कार रोकने का बाधक नियम चरितार्थ नहीं होता ।। १८ ।।

अथ प्रसङ्गान्मूलादिदुष्टनक्षत्रोत्पन्नयोर्वधूवरयोः श्वसुरादिपीडकत्वं वसन्ततिलकयाह—

श्वश्रुविनाशमहिजौ सुतरां विधत्तः कन्यासुतौ निर्ऋतिजौ श्वशुरं हतश्च ।
ज्येष्ठाभजाततनया स्वधवाग्रजं च शक्राग्निजा भवति देवरनाशकर्त्री ॥ १९ ॥

पीयूषधारा—श्वश्रूविनाशमिति । अहिजावाश्लेषोत्पन्नौ कन्यासुतौ श्वश्रूर्वा साक्षाद्भर्तुर्मातुर्विनाशं विधत्तः कुरुतः । यथा निर्ऋतिजौ मूलोत्पन्नौ कन्यासुतौ श्वशुरं हतो मारयतः । उक्तं च वशिष्ठेन—'नैर्ऋत्यभोद्भूतसुतः सुता वा क्षिप्रादवश्यं श्वशुरं निहन्ति । तदन्त्यपादे जनितो निहन्ति नैवोत्क्रमेणाहिभवः कलत्रम् ॥' इति । अहिभव इति पुंस्त्वमविवक्षितम् । सुतः सुताः वेति पूर्वोक्तेः । 'मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा च तदङ्गनाम्' इति नारदोक्तेश्च । तस्य श्वशुराङ्गनां पत्नीम् । वरस्य कन्याया वा साक्षान्मातरं न तु सापत्नमातरं हन्तीत्यर्थः । तदेव स्पष्टमुक्तं वसिष्ठेन—जनकं जननीं हन्ति भर्तुर्मूलाहिधिष्ण्यजा ।' इति । तुल्यन्यायत्वात्कन्याया अपि साक्षान्मातरम् ।

ज्येष्ठाविशाखानक्षत्रजा पत्युर्भ्रातृहन्त्री—

ज्येष्ठेति । ज्येष्ठानक्षत्रोत्पन्ना कन्या स्वधवाग्रजं भर्तुर्ज्येष्ठभ्रातरं हन्ति । शक्राग्निजा विशाखानक्षत्रोत्पन्ना कन्या देवरस्य भर्त्तुः कनिष्ठबन्धोर्नाशकर्त्री भवति । यदाह वसिष्ठः—'सुरेशताराजनिता धवाग्रजं द्विदेवताराजनिता तु देवरम् ।' इति हन्तीत्यनुवर्तते । नारदोऽपि—'ऐन्द्री पत्यग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदैवजा ।' इति ।। १९ ।।

पीताम्बरा—मूलादिक अशुभ नक्षत्रों में उत्पन्न वधूवरों से श्वसुर सास आदिकों के जीवन समाप्ति का भय—आश्लेषा नक्षत्र मे उत्पन्न वर या कन्या सास के लिए मृत्युकारक होती है । मूल नक्षत्र में उत्पन्न वर या कन्या अपने श्वशुर के लिए मृत्युकारक होते हैं । ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न कन्या अपने पति के बड़े भाई (ज्येष्ठ) के लिए और विशाखा में उत्पन्न कन्या अपने देवर (पति के छोटे भाई) के लिए विनाश कारक होती हैं ।। १९ ।।

अथ विशाखामूलाश्लेषोत्पन्नप्रोक्तदोषापवादमनुष्टुभाह—

द्वीशाद्यपादत्रयजा कन्या देवरसौख्यदा ।
मूलान्त्यपादसार्पाद्यपादजातौ तयोः शुभौ ॥ २० ॥

पीयूषधारा—द्वीशेति । द्वीशं विशाखा, अन्यत्पूर्वार्द्धे स्पष्टमेव । यदाह च्यवनः—'विशाखातुलया युक्ता देवरस्य शुभावहा । पिशाखावृश्चिकोद्भूता देवरं हन्त्यसंशयम् ॥' इति । वृद्धनारदोऽपि—'न हन्ति देवरं कन्या तुलामिश्रद्विदैवजा । चतुर्थपादजा त्याज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छवत् ॥' तस्माद्विशाखा चतुर्थपादे निषेधः फलित इत्यर्थ ।

मूलस्य चतुर्थे आश्लेषाया आद्यचरणे उत्पन्नयोर्विषये च न दोषो विवाहे—

मूलेति । तयोः श्वशुरस्वश्रुवोः । मूलचतुर्थचरणोत्पन्नौ तौ कन्यासुतौ श्वशुरयोः सौख्यदौ । आश्लेषाद्यचरणोत्पन्नौ कन्यासुतौ श्वश्र्वोः सौख्यदौ । तदुक्तं नारदेन—'सुतः सुता वा नियतं

श्वशुरं हन्ति मूलजा । तदन्त्यपादजो नैव तथाश्लेपाद्यपादजः ।।' अत्र पुंत्वमविवक्षितम् । हेतुः स एव ।। २० ।।

इति वधूवरयोर्विवाहे सामान्यतो गुणदोषविचारः ।

अथैवं वधूवरयोः सामान्यतो गुणदोषविचारं निरूप्य मेलकसम्बन्धी विचारः प्रस्तूयते । तत्र केचिद्दशकूटान्याहुः । तदाह नारदः—

'दिनं गणं च माहेन्द्रं स्त्रीदीर्घं योनिरेव च । राशिराश्यधिपौ रज्जुर्वश्यं वेधो दश स्मृताः ।।
पुनश्च वर्णकूटं च माहेन्द्रं च ततः परम् । एते द्वादशयोगाश्च प्रीतिभेदाः प्रकीर्तिता । ' इति अन्येऽष्टादशकूटान्याहुः । यदाह गर्गः—

'माहेन्द्रं गणकूटं च दिनकूटं च योनिजम् । स्त्रीदीर्घं रज्जुकूटं च वश्यं वर्णाख्यकूटकम् ।।
राशिराश्यधिपाख्यं च वेधो नाड्याख्यकूटकम् । भूतलिङ्गाख्यकूटं च जात्याख्यं पक्षिकूटकम् ।।
योगिनीगोत्रकूटं च कूटान्यष्टादशैव तु । दम्पत्योर्वृद्धिकारीणि यत्नाच्चिन्त्यानि शास्त्रतः ।।' इति।

पीताम्बरा—विशाखा के प्रथम तीन चरणों में (तुला राशि में) उत्पन्न बालिका देवर के लिए सुखाय होती है । अर्थात् विशाखा के चतुर्थ चरण में उत्पन्न कन्या से देवर की हानि हो सकती है तथा मूल के अन्तिम चरण और आश्लेषा के प्रथम चरणों में ही उत्पन्न वर-कन्या क्रमशः श्वसुर और सास के लिये सुख देने वाले कहे गये हैं ।। २० ।।

तत्र दशकूटानां तत्तद्देशविशेषप्रसिद्धत्वात्तानि विहाय सर्वदेशप्रसिद्धान्यष्टकूटानि सलक्षणानि विवक्षुरादौ तान्यनुष्टुप्छन्दसाह—

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम् ।
गणमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिकाः ।। २१ ।।

पीयूषधारा—वर्ण इति । एते राशिकूटभेदा वर्णादिमैत्र्यां सत्यां गुणाधिका एकादिगुणाधिका स्युः ।

कूटभेदेन गुणभेदाः

यथा वर्णमैत्र्यामेको गुणः, वश्ये द्वौ गुणौ, तारायां त्रयो गुणाः, योनिमैत्र्यां चत्वारः, ग्रहमैत्र्यां पञ्च, गणमैत्र्यां षट्, नाडीभेदेऽष्टावित्यर्थः तदुक्तम्—'वर्णो वश्यं तारायोनिग्रहगणभकूटनाडिकाश्चेति । ज्ञेया यथोत्तरं ते बलिनः स्त्रीपुंसयोर्घटने ।।' इति स्त्रीपुंसयोरिति 'अचतुर' इत्यादिना निपातितः । दैवज्ञमनोहरेऽपि—

'नाडीभेदे गुणा अष्टौ सप्त सद्राशिकूटके । षड्गुणा गणमैत्र्यां च सौहार्दे पञ्च खेटयोः ।।
योनिमैत्र्यां च चत्वारस्त्रयस्तारावले गुणाः । वश्यत्वे द्वौ गुणौ प्रोक्तौ वर्ण एकः प्रकीतितः' ।।' इति ।। २१ ।।

पीताम्बरा—सर्व देशप्रसिद्ध आठ कूटों के लक्षण आदिक—आठ कूटों के नाम (१) वर्ण,

(२) वश्य, (३) तारा, (४) योनि, (५) ग्रहमैत्र, (६) गणमैत्र, (७) भकूट और, (८) नाड़ी ये प्रसिद्ध ८ कूट कहे जाते हैं। प्रत्येक कूट में उत्तरोत्तर (१) एक-एक गुणवृद्धि होती है। जैसे वर्ण कूट का गुण मेलापक १, वश्य २, तारा ३, योनि ४, ग्रहमैत्र ५, गणमैत्र ६, भकूट में ७ और नाड़ी में कूट का गुणमेलापक ८ होता है। इस प्रकार "सैक पदघ्न पदार्धम्" अंकगणित से $\frac{(८+१)८}{२}$ = ३६ सम्पूर्ण गुणैक्य होता है। वर-कन्या के गुणमेलापक संख्या १८ या १८ से उत्तरोत्तर अधिक होने से दोनों का नक्षत्र मेलापक विवाह के योग्य और उत्तरोत्तर गुणाधिक्य से विवाह योग्य मेलापक उत्तम होता है।

"नारद" और "गर्ग" के अनुसार क्रमशः १० और १८ कूट होते हैं। इस प्रकार क्रमशः पूर्ण गुण मेलापक $\frac{(१०+१)१०}{२}$ = ५५, $\frac{(१८+१)१८}{२}$ = १७१ होते हैं। इस प्रकार के मेलापकों का विचार प्रायः असम्भव सा है ॥२१॥

अथ प्रतिज्ञाक्रमेण वर्णकूटं तावत्प्रमाणिकयाह—

द्विजा झषालिकर्कटास्ततो नृपा विशोऽङ्घ्रिजाः।
वरस्य वर्णतोऽधिका वधूर्न शस्यते बुधैः॥ २२॥

पीयूषधारा—द्विजा इति। मीनवृश्चिककार्कराशयो द्विजा ब्राह्मणाः ततोऽनन्तरमन्ये मेषसिंहधनूराशयो नृपाः क्षत्रियाः, वृषकन्यामकरा विशो वैश्याः, मिथुनतुलाकुम्भाः अङ्घ्रिजाः शूद्राः। ततश्च। वधूवरराश्योर्वर्णौ ज्ञात्वा वरस्य वर्णतो ब्राह्मणादिकाद्वधूरधिका ज्येष्ठवर्णा बुधैर्न शस्यते किन्तु समा हीना वा शस्यत इत्यर्थः। यदाह नारदः—

'झषालिकर्कटा विप्रास्तदूर्ध्वाः क्षत्रियादयः। पुंवर्णराशौ स्त्रीराशौ समे हीने तथा शुभम्॥
वर्णजेष्ठा तु या नारी वर्णहीनस्तु यः पुमान्। विवाहं यदि कुर्वीत तस्या भर्त्ता विनश्यति॥'

वर्णकूटे गुणसंख्या—

अत्रैको गुणो वर्णाधिके वरे वर्णहीने तु गुणाभावः। तदुक्तं दैवज्ञमनोहरे—'एको गुणः सदृग्वर्णे तथा वर्णोत्तमे वरे। हीनवर्णे वरे शून्यं केप्याहुः सदृशे दलम्॥' इति। दलमर्द्धम्॥२२॥

पीताम्बरा—सर्वप्रथम वर्णकूट में एक गुण—मीन, वृश्चिक और कर्क राशियाँ ब्राह्मण, मेष, सिंह और धनू राशियाँ क्षत्रिय, वृष, कन्या और मकर राशियाँ वैश्य तथा मिथुन, कुम्भ और मीन राशियाँ शूद्र वर्ण की होती हैं। यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि ब्राह्मण क्षत्रियादिक जाति वर्ण क्रम से ब्राह्मणादिक वर्ण की राशियाँ राशि वर्ण क्रम से शूद्रादिक एवं स्वाभाविक शूद्रादिक वर्ण के मानवों के वर्ण राश्यादिक वर्ण मापक्रम से ब्राह्मणादि। भी हो जाते हैं। अर्थात् राशियों के अनुसार वर्ण व्यवस्था से वैदिक वर्ण व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा कोई प्रश्न ही नहीं उठता, यहां पर वर की राशि क्रम का वर्ण, कन्या के राशि क्रम के वर्ण से हीन नहीं होना चाहिए। कन्या राशि वर्ण उच्च वर्ण होने से वर्ण का गुण १ अन्यथा० समझना चाहिए ॥२२॥

(१) वर्ण गुण जानने का चक्र

	वरवर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
कन्यावर्ण	ब्राह्मण	१	०	०	०
	क्षत्रिय	१	१	०	०
	वैश्य	१	१	१	०
	शूद्र	१	१	१	१

अथ वश्यकूटमिन्द्रवज्रयाह—

हित्वा मृगेन्द्रं नरराशिवश्याः सर्वे तथैषां जलजाश्च भक्ष्याः ।
सर्वेऽपि सिंहस्य वशे विनालिं ज्ञेयं नराणां व्यवहारतोऽन्यत् ।। २३ ।।

पीयूषधारा—हित्वेति । नरराशयो मिथुनकन्यातुला एषां सर्वेऽपि मेषादयः सिंहं त्यक्त्वा वश्याः ननु मनुष्याणां च जलचराः कथं वश्या यत उभयोः सहावस्थानाभाव इत्यत आह—तथेति । येषां नरराशीनां जलजाः कर्कमकरकुम्भमीनास्तु भक्ष्याः किं पुनर्वश्या इति सूचयितुं तुशब्दः । सिंहस्य वशे अलिं वृश्चिकं विना सर्वे राशयो वश्याः । अन्यदनुक्तं चतुष्पदानां, जलचराणां चतुष्पदजलचराणां वा परस्परं वश्यावश्यत्वं नराणां मनुष्याणां व्यवहारतो ज्ञेयम् । यदाह वसिष्ठः—'वश्यास्त्यक्त्वा राशयोऽन्ये नराणां सिंहं तस्याप्येकमन्ये विधेयाः । कीटं त्यक्त्वा लोकतोऽन्यत्प्रसिद्धं वश्यावश्यं नैव तोयालयाश्च ।।' तोयालया जलचराः अलिश्च ते परस्परं वश्या नैव स्युरित्यर्थः ।

अत्र गुणविभागो दैवज्ञमनोहरेऽभिहितः—

'सख्यं वैरं च भक्ष्यं च वश्यमाहुस्त्रिधा बुधाः । वैरे भक्ष्यगुणाभावो द्वयोः सख्ये गुणद्वयम् ।। वश्यवैरे गुणस्त्वेको वश्यभक्ष्ये गुणोऽधिकः ।' इति । यद्यपीदं वधूवरयोः परस्परं तुल्यमेवोक्तम्, तथापि सत्यावश्यकत्वे वरं प्रति भक्ष्यत्वं वश्यत्वं वा स्त्रियोपेक्ष्यं न तु विपरीतम् । 'वर्णज्येष्ठा तु या नारी' इत्यनेन सामानन्यायत्वात् । अन्योन्यवश्यत्वे तूत्तममेव ।। २३ ।।

पीताम्बरा—वश्य कूट—नर राशियों में (मिथुन, कन्या और तुला की) सिंह राशि को छोड़ कर शेष ८ राशियाँ नर राशियों के वश में है, तथा सभी से जलचर राशियाँ (कर्क, मकर, कुम्भ और मीन) नर राशियों की भक्ष होने से वश्य होने का प्रश्न ही नहीं क्या सन्देह? वृश्चिक राशि को छोड़ कर सभी राशियाँ सिंह राशि के वश में हैं और वश्य या भक्ष्य मनुष्यों के व्यवहारों से समझना चाहिए ॥ २३ ॥

(२) वश्य गुण के ज्ञान के लिए

वर की राशियाँ

कन्या की राशियाँ		द्विपद	चतुष्पद	जलचर	कीट
	द्विपद	२	॥	॥	१
	चतुष्पद	॥	२	२	२
	जलचर	॥	२	२	२
	कीट	१	२	२	२

अथ ताराकूटमनुष्टुभाह—

कन्यर्क्षाद्वरभं यावत्कन्याभं वरभादपि।
गणयेन्नवहृच्छेषे त्रीष्वद्रिभमसत्स्मृतम् ॥ २४ ॥

पीयूषधारा—कन्यर्क्षादिति। कन्याजन्मनक्षत्राद्वरनक्षत्रं यावद्गणयेत्। तथा वरनक्षत्रादपि कन्यानक्षत्रं गणयेत्। ततो विशिष्टेऽङ्के नवभिर्भक्ते यदवशिष्टं तच्च त्रिपञ्चसप्तमितं भवेत्तदाऽसत् अशुभदं स्मृतम्, अन्यथा द्विचतुःषडष्टनवमितं चेत्स्यात्तदाशुभमित्यर्थादुक्तं भवति। यदाह नारदः—

'स्त्रीभमारभ्य गणने नव पर्यायतः क्रमात्। जन्मत्रिपञ्चसप्तस्थं पुम्भं स्याद्वरनाशनम् ॥
पुंभमारभ्य गणने स्त्रीभं जन्मादिके स्थले। स्त्रीविनाशो भवेत्तस्माद्दिनकूटं विवर्जयेत् ॥'

दिनकूटं शार्ङ्गीयेऽपि—

'नरर्क्षाद्गणयेद्यावत्कन्यर्क्षं कन्यभादपि। वरभं नवहृच्छेषास्ताराः सन्ति परस्परम्।
त्यक्त्वा त्रिपञ्चसप्ताख्याः शेषोद्वाहे मिथः शुभाः।'

यत्तु कश्यपेन—'गणयेत्कन्यकाधिष्ण्यादावृत्या वरजन्मभम्।

जन्मत्रिपञ्चसप्तर्क्षं हित्वान्यर्क्षं शुभप्रदम् ॥' इति।

कन्यानक्षत्रादेव गणनोक्ता। अत एव—'भीरुभादचलपञ्चतृतीयाः शोकवैरविपदे वरताराः' इति केशवार्केणाप्युक्तमत्यावश्यकद्योतनार्थम्। तथाहि, द्वयोरपि परस्परनक्षत्रगणने

शुभं चेच्छुभमेवाशुभं चेदशुभमेव। तत्रैकस्मादन्यतरनक्षत्रगणनयाऽशुभत्वेऽपि स्त्रीनक्षत्राद्वरनक्षत्रं त्वशुभं नापेक्षितमेवेति भावः।

अत्र गुणविभागः—

अत्र गुणविभागो दैवज्ञमनोहरे—'एकतो लभ्यते तारा शुभा चैवाशुभान्यतः। तदा सार्द्धो गुणश्चैव ताराशुद्ध्या मिथः स्त्रियः।। उभयोर्न शुभा तारा तदा शून्यं समादिशेत्।।' इति। अत्र यद्यपि नारदादिभिर्जन्मतारा निषिद्धेत्युक्तम्। तद्ग्रन्थकृता एकनक्षत्रे तावत् 'राश्यैक्ये चेद्भिन्नमृक्षं द्वयोः स्यान्नक्षत्रैक्ये राशियुग्मं तथैव' इति वक्ष्यमाणत्वान्नोक्तम्। दशमैकोनविंशतितारयोस्तु निषेधो दुष्टभकूटे ज्ञेयः। सद्भकूटे तु दोषाभाव इत्यर्थः।। २४।।

पीताम्बरा—तारा मेलापक—कन्या के जन्म नक्षत्र से वर के जन्म नक्षत्र तक और वर के नक्षत्र से कन्या के जन्म नक्षत्र तक गिनती कर उसमें ९ का भाग देने से यदि ३, ५, ७ शेष बचें तो तारा मेलापक शुभ नहीं होता। २, ४, ६, ८ और ९ शेष में तारा मेलापक

वरस्य

(३) तारा गुण ज्ञान चक्र

कन्यायाः

तारा	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
३	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
४	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

शुभ होता है। दोनों वर-कन्या की तारा उत्तम होने पर ३ गुण, एक की अच्छी और दूसरे के नेष्ट होने से १॥ डेढ़ गुण मिलता है। स्मरण रखना चाहिए तारा का शून्य गुण कभी नहीं होता है।। २४।।

अथ योनिकूटं शार्दूलविक्रीडिताभ्यामाह—

अश्विन्यम्बुपयोर्हयो निगदितः स्वात्यर्कयोः कासरः
सिंहो वस्वजपाद्भयोः समुदितो याम्यान्त्ययोः कुञ्जरः ।
मेषो देवपुरोहितानलभयोः कर्णाम्बुनोर्वानरः
स्याद्वैश्वाभिजितोस्तथैव नकुलश्चान्द्राब्जयोन्योरहिः ॥२५॥
ज्येष्ठामैत्रभयोः कुरङ्ग उदितो मूलार्द्रयोः श्वा तथा
मार्जारोऽदितिसार्पयोरथ मघायोन्योस्तथैवोन्दुरुः ।
व्याघ्रो द्वीशभचित्रयोरपि च गौरर्यम्णबुध्न्यर्क्षयो—
र्योनिः पादगयोः परस्परमहावैरं भयोन्योस्त्यजेत् ॥२६॥

पीयूषधारा—अश्विनीति । ज्येष्ठेति च । अश्विनीशततारकयोर्हयः अश्वो निरुक्तः । स्वातीहस्तयोः कासरो महिषः । 'लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः । वस्वजपाद्भयोर्धनिष्ठापूर्वभाद्रपदयोः सिंहः, याम्यान्त्ययोर्भरणीरेवत्योः कुञ्जरो हस्ती, पुष्यकृत्तिकयोः मेषोऽजः, कर्णाम्बुनोः श्रवणपूर्वाषाढयोर्वानरः स्यात् उत्तराषाढाभिजितोर्नकुलः, चान्द्रं मृगः, अब्जयोनिर्ब्रह्मा, तद्भं रोहिणी तयोरहिः सर्पो योनिः ज्येष्ठानुराधयोः कुरङ्गो हरिण उदितः, मूलार्द्रयोः श्वा कुक्कुरः तथा पुनर्वस्वाश्लेषयोर्मार्जारः । अथ मघापूर्वाफल्गुन्योः उन्दुरुः, विशाखाचित्रयोर्व्याघ्रः, उत्तराफल्गुनी बुध्न्यर्क्षमुत्तराभाद्रपदा तयोर्गौर्योनिः । तथा तथैव चेत्यादयः शब्दाः पादपूरणार्थाः ।

विरुद्धयोर्वैरम्

फलमाह—पादगयोरिति । एकस्मिन् पादे चरणे उक्तनक्षत्रयोन्योः परस्परं महावैरं भवेदन्यथा नेत्यर्थः । यथा अश्विन्यम्बुपयोर्हयो निगदितः स्वात्यर्कयोः कासरः' इति पादः । तत्रोक्तयोर्भयोन्योरश्वमहिषयोर्महावैरं भवेत् । एवं सिंहहस्तिनोरित्यादिष्वपि द्रष्टव्यम् । यदाह वसिष्ठः—अश्वेभमेषभुजगद्वयकुक्कुरौ तु मेषौ तु मूषकमथोन्दुरुगोलुलायाः । शार्दूलमाहिषगवारिमृगद्वयं श्वा कीशोथ बभ्रुयुगकीशगवाश्वसिंहाः ॥ गोकुञ्जराविति यथाक्रममश्विन्यादिभानां भवन्ति खलु कल्पितयोनिरूपाः ।' लुलायो महिषः, गवारिर्व्याघ्रः 'अवङ्स्फोटायनस्य' इत्यवङादेशः । कीशो वानरः । बभ्रुर्नकुलः । बभ्रूरगं श्वैणमिभेन्द्रसिंहमोत्वाखुसंज्ञं त्वजवानरौ च । गोव्याघ्रमश्वोत्तरमाहिषं च वैरं नृनार्योर्नृपभृत्ययोश्च ॥' इति बभ्रूरगमित्यादौ च—'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' इत्येकवद्भावः ।

योनिदोषाणामपवादः फलानि च—

एतत्फलं सापवादमाहात्रिः—

'एकयोनिषु सम्पत्यै दम्पत्योः सङ्गमः सदा । भिन्नयोनिषु मध्या स्यादरिभावो न चेत्तयोः ॥ योनेरभावे नोद्वाहः सतु कार्यो वियोगदः । राशिर्वश्यं च यद्यस्ति कारयेन्नतु दोषभाक् ॥ दोषो वियोगरूपः ।

योनिकूटे गुणविभागः—

अतो गुणविभागो दैवज्ञमनोहरे—

'अष्टाविंशतिताराणां योनयस्तु चतुर्दश । मैत्रं चैवातिमैत्रं च विवाहे नरयोषितोः ।।
महद्वैरे च वैरे च स्वभावे च यथाक्रमम्। मैत्रे चैवातिमैत्रे च खेन्दुद्वित्रिचतुर्गुणाः ।।'इति ।।२५-२६।।

वर (४) योनि के गुण जानने का चक्र

कन्या

योनयः	अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	४	२	३	२	२	३	३	३	१	१	३	२	२	१
गज	२	४	३	२	२	३	३	३	३	२	२	२	२	०
मेष।०	३	३	४	३	२	३	१	३	३	१	३	०	३	१
सर्प	२	२	३	४	२	२	१	१	२	२	२	२	०	२
श्वान	२	२	२	२	४	१	१	२	२	१	०	२	२	१
मार्जार	२	२	३	२	१	४	०	२	२	१	२	२	२	२
मूषक	२	२	२	१	१	०	४	२	२	२	२	२	२	१
गौ	३	२	३	१	२	२	२	४	३	०	३	२	३	१
महिष	१	३	३	२	२	२	२	३	४	१	२	२	२	३
व्याघ्र	१	२	१	२	१	१	२	०	१	४	२	१	२	२
मृग	३	२	३	२	०	२	२	३	२	१	४	२	२	२
वानर	२	३	०	२	२	२	२	२	२	१	२	४	२	३
नकुल	२	२	३	०	२	२	२	३	२	२	२	४	४	२
सिंह	१	०	१	२	१	२	१	१	३	२	२	२	२	४

पीताम्बरा–योनिकूट मेलापक–अश्विनी शतभिषा की अश्व, स्वाती हस्त नक्षत्रों की महिष घनिष्ठा पूर्वभाद्र की सिंह, भरणी रेवती की हाथी, पुष्य कृतिका की मेढ-अज (बकरा) श्रवण

पू० षा० की वानर, उत्तराषाढ़ा अभिजित् की नकुल, मृगशिरा रोहिणी की सर्प, ज्येष्ठा अनुराधा की हरिण, मूलआर्द्रा की श्वान, पुनर्वसु आश्लेषा की बिडाल, मघा पूर्वाफाल्गुनी की मूषक, विशाखा चित्रा की व्याघ्र और उत्तरा फाल्गुनी उत्तराभाद्रपद की गौ, योनि होती है। श्लोक के एक-एक पाद में, एक-एक योनि कही गई है। इस प्रकार श्लोक में ७ × २ = १४ योनियों में प्रत्येक पाद की दो योनियों से परस्पर महावैर है जो विवाह में त्याज्य हैं। जैसे प्रथम पाद के पूर्वार्द्ध में अश्विनी शततारा की अश्व योनि का, प्रथम पाद के उत्तरार्द्ध में स्वाती हस्त की महिष योनि से स्वाभाविक बड़ा वैर होता है। प्रत्यक्ष भी देखा जाता है ॥२५-२६॥

मित्राणि द्युमणेः कुजेज्यशशिनः शुक्रार्कजौ वैरिणौ
सौम्यश्चास्य समो विधोर्बुधरवी मित्रे न चास्य द्विषत् ।
शेषाश्चास्य समाः कुजस्य सुहृदश्चन्द्रेज्यसूर्या बुधः
शत्रुः शुक्रशनी समौ च शशभृत्सूनोः सिताहस्करौ ॥२७॥
मित्रे चास्य रिपुः शशी गुरुशनिक्ष्माजाः समा गीष्पते-
र्मित्राण्यर्ककुजेन्दवो बुधसितौ शत्रू समः सूर्यजः ।
मित्रे सौम्यशनी कवेः शशिरवी शत्रू कुजेज्यौ समौ
मित्रे शुक्रबुधौ शनेः शशिरविक्ष्माजा द्विषोऽन्यः समः ॥२८॥

अथ क्रमप्राप्तां ग्रहमैत्रीं शार्दूलविक्रीडिताभ्यामाह—

पीयूषधारा—मित्राणीति। मित्रेति च। द्युमणेः सूर्यस्य भौमगुरुचन्द्रा मित्राणि, शुक्रशनी वैरिणौ, अस्य सूर्यस्य सौम्यो बुधः समः न शत्रुर्न मित्रम्। एवं सर्वत्र व्याख्येयम्। विधोश्चन्द्रस्य बुधरवी मित्रे, च पुनरस्य विधोर्द्विषत् शत्रुर्नास्ति। किन्तु शेषाः मङ्गलगुरुशुक्रशनयः समा एव। भौमस्य चन्द्रगुरुसूर्याः सुहृदः बुधः शत्रुः, शुक्रशनैश्चरौ समौ। शशभृत्सूनोर्बुधस्य सिताहस्करौ शुक्रसूर्यौ मित्रे, अस्य बुधस्य शशी चन्द्रः शत्रुः, गुरुशनिभौमाः समाः। गीष्पतेर्गुरोः सूर्यभौमचन्द्रा मित्राणि, बुधसितौ शत्रू सूर्यजः शनिः समः। कवेः शुक्रस्य बुधशनी मित्रे, चन्द्रसूर्यौ शत्रू, कुजगुरू समौ। शनेः शुक्रबुधौ मित्रे; रविचन्द्रभौमा द्विषः शत्रवः, अन्यो बृहस्पतिः समः। यदाह कश्यपः—

रवेः समो ज्ञो मित्राणि चन्द्रारेज्याः परावरी। इन्दोर्न शत्रवो मित्रे रविज्ञावितरे समाः॥
समौ कुजस्य शुक्रार्को बुधोऽरिः सुहृदः परे। ज्ञस्य चन्द्रो रिपुर्मित्रे शुक्रार्कौ इतरे समाः॥
गुरोरारेन्दुजा मित्राण्यार्की मध्यः परावरी। भृगोः समाविज्यकुजौ मित्रे ज्ञार्कौ परौ रिपू॥
शनेर्गुरुस्समो मित्रे शुक्रज्ञौ शत्रवः परे।' इति।

एतत्फलं सापवादमाह जगन्मोहने वशिष्ठः—

'अन्योन्यमित्रं शस्तं स्यात्सममित्रं तु मध्यमम्। उदासीनं कनिष्ठं स्यान्मृतिदं शात्रवं स्मृतम्। शत्रुमित्रं च विज्ञेयं दम्पत्योः कलहप्रदम्। अन्योन्यसमशत्रुत्वं दम्पत्योर्विरहप्रदम्॥' विरहो वियोगः।

अस्यापवादस्तत्रैव—

राशिनाथे विरुद्धेऽपि बलवांशकाधिपौ। ग्रहमैत्रेऽपि च कर्तव्यं दम्पत्योः शुभमिच्छता॥

ग्रहमैत्र्यां गुणविभागो देवज्ञमनोहरे—

ग्रहमैत्रं सप्तविधं गुणाः पञ्च प्रकीर्त्तिताः। तत्रैकाधिपतित्वे च मित्रत्वे गुणपञ्चकम् ॥
चत्वारः सममित्रत्वे द्वयोः साम्ये त्रयो गुणाः।
मित्रवैरे गुणाश्चैकः समवैरे गुणार्द्धकम्। परस्परं खेटवैरे गुणशून्यं विनिर्दिशेत् ॥
असङ्के सममित्रादौ व्येका ग्राह्या यथोदिताः।' व्येका यथोदिताश्चत्वार इत्यर्थः ॥

शुक्रार्कजादिशब्दे पूर्वनिपातविचारः—

अत्र शुक्रार्कजौ शुक्ररवीत्यादिषु—'अजाद्यदन्तम्' इति 'द्वन्द्वेषि' इत्यर्कजरविशब्दयोः पूर्वनिपातः पूर्वनिपातप्रकरणस्यानित्यत्वान्न भवति। एवमपि—'देवताद्वन्द्वे च' इत्याङ् प्राप्नोति। सत्यम्, एकहविर्भाक्त्वेन प्रसिद्धसाहचर्ययोरेव द्वन्द्वे आनङ् विधीयते। अत्र तु तदभावान्नानङ्।

अत्र परे इत्यत्र साधुत्वनिर्णयः—

परे इति 'परं दूरान्यमुख्येषु परारिपरमात्मनोः' इति यादवोक्तेः परशब्दो नानार्थः। अत्र परशब्दस्य 'पूर्वपरावर' इत्यादिना व्यवस्थार्थवाचित्वे जसि वैकल्पिकसर्वनामसंज्ञोक्तेः। व्यवस्था नाम स्वाभिधेयापेक्षाऽवधिनियमः। स्वाभिधेयं च दिग्देशकालाः। अत्र तु शत्रुवाचके परशब्दे व्यवस्थार्थाभावाद्वैकल्पिकी सर्वनामसंज्ञा न प्राप्नोति। ततश्च—'जसः शी' इति सर्वनामकार्याभावेऽनुपपन्नः परे इतिप्रयोगः। यद्येवं 'वितेनुरिङ्गालमिवायशः परे' इति नैषधः 'तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः' इति कालिदासः। इत्यादिषु हि शत्रुवाचकपरशब्दस्य भवदुक्तिप्रकारेण सर्वनामसंज्ञाया अप्रवृत्तेः कथं सर्वनामकार्यप्रसङ्गः? उच्यते, गुणरत्नमहोदधिकारादयस्तु चिन्त्य एवंतादृशः प्रयोग इत्येवमाहुः। परे इति शिष्टप्रयोगदर्शनात् परशब्दस्य नानार्थत्वादेवंविधे विषये व्यवस्थावाची परशब्दः। कथम्। स्वस्मात्परः? परदेशावस्थित इति देशवाच्यत्वात्। तच्च परदेशावस्थितत्वं यद्यपि पुत्रमारभ्य शत्रुपर्यन्तं साधारणम्। तथापि वितेनुरिङ्गालमिवायशः परे इत्यादिषु युद्धप्रस्तावाच्च शत्रुपरः परशब्दः। एवमत्रापि पद्ये मित्रसमानां पार्थक्येनाभिधानात् परशब्दस्य वृत्तिरिति ग्रन्थकृदाशयः। अथवा व्यक्तमेव पठितव्यं—'रविशशिक्ष्माजा द्विषोन्यः समः' इत्यलं विस्तरेण ॥ २७–२८ ॥

पीताम्बरा—सूर्यादिक ग्रहों के स्वाभाविक सम शत्रु और मित्र ग्रह—सूर्य के मंगल, बृहस्पति और चन्द्रमा मित्र, शुक्र, शनि शत्रु और बुध सम है। चन्द्रमा के बुध सूर्य मित्र, शत्रु कोई नहीं है और मंगल, गुरु, शुक्र और शनि सम हैं। मंगल के–चन्द्र बृहस्पति सूर्य मित्र, बुध शत्रु और शुक्र शनि सम हैं। बुध के–शुक्र सूर्य मित्र, चन्द्रमा शत्रु, बृहस्पति शनि और मंगल सम हैं। बृहस्पति के–सूर्य चन्द्रमा मंगल मित्र, बुध शुक्र शत्रु और शनि सम हैं। शुक्र के–बुध, शनि मित्र हैं, चन्द्र सूर्य शत्रु और मंगल बृहस्पति सम हैं। शनि के–शुक्र बुध मित्र, सूर्य चन्द्र मंगल शत्रु और बृहस्पति सम हैं। स्पष्ट समझने के लिए ग्रहों के परस्पर मित्र, सम और शत्रु क्रमशः चक्र में दिये जा रहे हैं। ॥२७-२८॥। यथा।

नैसर्गिकग्रहमैत्रीचक्रमिदम्

सूर्यः	चन्द्रः	भौमः	बुधः	बृह.	शुक्रः	शनिः	ग्रहाः
चं.मं. बृ.	सूर्यः बुधः	सू. च. बृ.	सूर्य शुक्रः	सूर्यः मं.चं.	बुधः शनिः	बुधः शुक्रः	मित्राणि
बुधः	म. बृ. शु. श	शुक्रः शनिः	मं. बृ. शनिः	शनिः	भौमः बृह.	गुरुः	समाः
शुक्रः शनिः	*	बुधः	चन्द्रः	बुधः शुक्रः	सूर्य चन्द्रः	सूर्य चं. मं.	शत्रवः

(५) वर-कन्या की राशियों से ग्रहमैत्र गुण ज्ञान चक्र

वरस्य

कन्यायाः

ग्रहाः	सू	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
सू	५	५	५	४	५	०	०
चं.	५	५	४	१	४	॥	॥
मं.	५	४	५	॥	५	३	॥
बु.	४	१	॥	५	॥	५	४
बृ.	५	४	५	॥	५	॥	३
शु.	०	॥	३	५	॥	५	५
श.	०	॥	॥	४	३	५	५

॥२७–२८॥

अथ गणकूटं वसन्ततिलकयाह—

रक्षोनरामरगणाः क्रमतो मघाहिवस्विन्द्रमूलवरुणानलतक्षराधाः ।
पूर्वोत्तरात्रयविधातृयमेशभानि मैत्रादितीन्दुहरिपौष्णमरुल्लघूनि ॥२९॥

पीयूषधारा—रक्ष इति । क्रमतः रक्षोनरामरगणाः वाक्यत्रयेणोच्यन्ते । मघा प्रसिद्धा, अहिराश्लेषाः वसुर्धनिष्ठा, इन्द्रो ज्येष्ठा, मूलं प्रसिद्धम्, वरुणः शततारका, अनलः कृत्तिका, तक्षा चित्रा, राधा विशाखा एतानि भानि रक्षोगणः । पूर्वात्रयमुत्तरा त्रयं चेत्येवं षड्भानि । विधाता रोहिणी, यमो भरणी, ईश आर्द्रा एतानि भानि नरगणो मनुष्यगणः । मैत्रमनुराधा, अदितिः पुनर्वसुः, इन्दुर्मृगः, हरिः श्रवणः, पौष्णं रेवती, मरुत् स्वाती, लघूनि अश्विनी हस्तपुष्याः । एतानि भान्यमरगणो देवगण इति । यदाह नारदः—

'रक्षोगणः पितृत्वाष्ट्रद्विदैवत्येन्द्रतारकाः । वसुवारीशमूलाहिकृत्तिकाभिर्युतास्ततः ।
तिस्रः पूर्वोत्तराधातृयमाहेशतारकाः । इति मर्त्यगणाः ज्ञेयाः स्युरमर्त्यगणाः परे ॥
इत्यादित्यार्कवाय्वन्त्यमित्राश्वीज्येन्दुतारकाः ।' इति ॥ २९ ॥

पीताम्बरा—देव-मनुष्य और राक्षस गणों में प्रत्येक के ९ नक्षत्र—राक्षसगण में—मघा, आश्लेषा धनिष्ठा, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा, कृतिका, चित्रा और विशाखा नक्षत्र हैं ।

मनुष्यगण में—तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा नक्षत्र हैं ।

देवगण में—अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, श्रवण, रेवती, स्वाती और लघु संज्ञक (हस्त अश्विनी पुष्य) नक्षत्र हैं ॥ २९ ॥

एतत्फलं मालिन्याह—

निजनिजगणमध्ये प्रीतिरत्युत्तमा स्यादमरमनुजयोः सा मध्यमा सम्प्रदिष्टा ।
असुरमनुजयोश्चेन्मृत्युरेव प्रदिष्टो दनुजविबुधयोः स्याद्वैरमेकान्ततोऽत्र ॥३०॥

पीयूषधारा—निजनिजगणमध्य इति । स्वस्वगणविद्यमानस्त्रीपुरुषनक्षत्रयोः सतोरत्युत्कटोत्तमा प्रीतिः स्यात् । यथा राक्षसगणयोः स्त्रीपुंसयोस्तथा मनुष्यगणयोस्तथा देवगणयोर्वा परस्परमत्युत्कृष्टा प्रीतिः स्यादित्यर्थः । अमरा देवाः, मनुजा मनुष्याः, देवमनुष्यगणयोः स्त्रीपुंसयोः परस्परं प्रीतिर्मध्यमा नोत्कृष्टा सम्प्रदिष्टा । असुरमनुजयोः राक्षसमनुष्यगणयोः स्त्रीपुंसयोः मृत्युरेव प्रदिष्ट उक्तः । द्वयोर्वान्यतरस्य वेत्याकाङ्क्षायां—'प्रबलेन दुर्बलं बाध्यते' इति न्यायेन मनुष्यगणस्यैव नाशः । दनुजविबुधयो राक्षसदेवगणयोः स्त्रीपुंसयोरेकान्ततोनिश्चयेन परस्परं वैरं स्यात् । अत्र गणकूटे । यदाह नारदः—'दम्पत्योर्जन्मभे चैकगणे प्रीतिरनेकधा । मध्यमा देवमर्त्यानां राक्षसानां तयोर्मृतिः ॥'

कश्यपस्त्वेवमाह—'स्वगणे चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमामरमर्त्ययोः । मर्त्यराक्षसयोर्वैरमसुरासुरयोरपि ॥' इति । अयमर्थः । पुरुषो रक्षोगणः स्त्रीमनुष्यगणा तदा वैरं यदि वैपरीत्यं तदा मृत्युः । तथा पुरुषो रक्षोगणः स्त्री देवगणा तदा वैरं, वैपरीत्ये मृतिः । उक्तं च—
'राक्षसी यदि वा नारी नरो भवति मानुषः । मृत्युस्तत्र न सन्देहो विपरीतः शुभावहः ॥'
शार्ङ्गीये—'रक्षोगणः पुमान् स्याच्चेत्कन्या भवति मानवी । केऽपीच्छन्ति तदोद्वाहं व्यस्तं कोऽपीह नेच्छति ॥' इति । एतत्तुल्यन्यायत्वाद्देवराक्षसयोरपि द्रष्टव्यम् ।

गणकूटे गुणविभागः ।

अत्र गुणविभागो दैवज्ञमनोहरे—

'षड्गुणा गुणसादृश्ये पञ्च स्युः सुरमानुषे । नार्यां देवो नरः पुंसश्चत्वारो वा गुणास्त्रयः ॥ देवराक्षसयोः शून्यं तथैव नररक्षसोः । पुंसो रक्षोगणो यत्र नार्यां देवोऽथवा नरः ॥ गुणौ द्वौ क्रमतश्चैको गुणो ग्राह्योऽन्यथा न हि ॥' इति ।

अस्यापवादमाह गर्गः—

'ग्रहमैत्री च राशिश्च विद्यते नियतं यदि । न गणाभावजनितं दूषणं स्याद्विरोधदम् ॥'
अत्रिरपि—

'राशीशयोः सुहृद्भावो मित्रत्वे वांशनाथयोः । गणादिदौष्ट्येऽप्युद्वाहः पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनः ॥'
अमुं परिहारं ग्रन्थकृदप्यग्रे वक्ष्यति । मनुरपि—

'ग्रहमैत्री च रज्जुश्च यदि नाडी पृथक् तयोः ।
विवाहः शुभदः कन्या राक्षसी वा नरो नरः ॥' इति ॥

रज्जुकूटं तु ग्रन्थकर्त्रा नोक्तम् ॥ ३० ॥

पीताम्बरा—वर कन्या के देव-मनुष्य-राक्षस गणों के समन्वय से फल—दोनो वर कन्या का एक ही गण जैसे (राक्षस-राक्षस, देव-देव या मनुष्य-मनुष्य) परस्पर अत्यन्त प्रीतिप्रद होता है और गण का गुण ६ मिलता है । देवता और मनुष्य दोनों का पृथक्-पृथक् देवता और मनुष्य गण परस्पर मध्यम प्रीतिपद होते हैं । दोनों में एक का राक्षस और दूसरे का मनुष्य गण हो तो मृत्यु-भय, देवता और राक्षस गण में जीवन पर्यन्त परस्पर कलह होता है । तारतम्य से वर-कन्या के गणों से गुण मेलापक चक्र नीचे दिया जाता है—

कन्या के गण	वर का गण (६)		
	द.	म	रा
दे	६	५	१
म.	६	६	०
रा.	०	०	६

पुरुष देव, स्त्री मनुष्य गण में गुण ६, पुरुष मनुष्य स्त्री देव गण में ५, पुरुष राक्षस स्त्री देवता में १ गुण दोनों का ही गण हो तो गुण ६, अन्यथा गण का गुण शून्य होता है । यदि गण मेलापक न बने और दोनों के राशीशों में मैत्री और अंश नाथों में मैत्री बने तो गण का दोष नहीं होता अथवा वश्यादि क्रम से घटित हो जाय तब भी गण का दोष नहीं होता ॥ ३० ॥

अथ राशिकूटमनुष्टुभाह—

मृत्युः षष्ठाष्टके ज्ञेयोऽपत्यहानिर्नवात्मजे ।
द्विर्द्वादशे निर्धनत्वं द्वयोरन्यत्र सौख्यकृत् ॥ ३१ ॥

पीयूषधारा—मृत्युः षष्ठाष्टके इति । स्त्रीपुंसराश्योः परस्परं षष्ठाष्टमराशित्वे सति मृत्युर्ज्ञेयः । यथा मेषकन्ययोः मेषवृश्चिकयोः एवं नवात्मजे नवपञ्चमेऽपत्यानां बालानां हानिर्नाशः स्यात् । यथा सिंहधनुषोः । एवं द्विर्द्वादशे सति निर्धनत्वं दारिद्र्यं स्यात् । तथा मेषवृषयोः अन्यत्र तृतीयैकादशे चतुर्थदशमे समसप्तमे वा सौख्यकृत्पाणिपीडनं स्यात् नारदः—षष्ठाष्टके मृतिर्नन्दनमे त्वनपत्यता । नैःस्वं द्विर्द्वादशेऽन्येषु दम्पत्योः प्रीतिरुत्तमा ॥' इति ।

राशिकूटे विशेषो ज्योतिःप्रकाशे—

'पुंसो गृहात्सुतगृहे सुतहा च कन्या धर्मे स्थिता धनवती पतिवल्लभा च ।
द्विर्द्वादशे धनगृहे धनहा च कन्या रिष्फे स्थिता धनवती पतिवल्लभा च ।।' इति ।

अन्यच्च—

'मृगः कुलीरेण घटेन सिंहो वैरप्रदः स्यात्समसप्तकोऽयम् ।
तुला वृषेणाथ वृषेण सिंहो मेषेण कीटो मिथुनेन मीनः ।।

चापेन कन्या घटभेन चालिर्दौर्भाग्यदैन्ये दशतुर्यकेऽस्मिन्' ।। ३१ ।।

पीताम्बरा—वर कन्या के राशियों का परस्पर का सम्बन्ध—वर-कन्या की परस्पर की छठी आठवीं राशियों में मृत्यु और नवीं पाँचवीं में सन्तान हानि और दूसरी बारहवीं में निर्धनता होती है । शेष राशियों का परस्पर का सम्बन्ध शुभावह होता है ।

दोनों की एक राशि या परस्पर सातवीं या तृतीय एकादश या चतुर्थ दशम हो तो गुण मेलापक ७ अन्यथा शून्य होता है । चक्र से जैसे—

(७) राशिकूटस्य गुणबोधकचक्रम् ।

वरस्य

कन्यायाः

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
राशयः	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
मेष	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०
वृष	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७
मिथुन	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७
कर्क	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०
सिंह	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०
कन्या	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७
तुला	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
वृश्चिक	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
धन	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७
मकर	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७
कुम्भ	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०
मीन	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७

भकूट के न बनने पर कन्या की राशि सम (२-४-६·······) और वर की राशि कन्या की राशि से छठी पड़ती हो जो विषम ही पड़ेगी ऐसी स्थिति में भकूट दोष नहीं होता। जैसे—कर्क राशि कन्या से छठी धनु राशि पुरुष की राशि में सामान्यतः षडष्टक दोष होता है किन्तु उक्त कथन और आगे के श्लोक के विशेष आशय से ऐसी स्थितियों में षडष्टक दोष नहीं होगा ॥ ३१ ॥

अथास्य दुष्टभकूटस्य परिहारं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

प्रोक्ते दुष्टभकूटके परिणयस्त्वेकाधिपत्ये शुभो
ऽथोराशीश्वरसौहृदेऽपि गदितो नाड्यृक्षशुद्धिर्यदि
अन्यर्क्षेंऽशपयोर्बलित्वसखिते नाड्यृक्षशुद्धौ तथा
ताराशुद्धिवशेन राशिवशताभावे निरुक्तो बुधैः ॥ ३२ ॥

पीयूषधारा—प्रोक्त इति। प्रोक्ते दुष्टराशिकूटे सत्यपि चेद्द्वयोः स्त्रीपुरुषराश्योरेकाधिपत्ये एकस्वामित्वे परिणयो विवाहो शुभो गदितः। यथा षष्ठाष्टके मेषवृश्चिकयोस्तुलावृषयोर्वा द्विर्द्वादशे मकरकुम्भयोः नवमपञ्चमे त्वेकाधिपत्याभावः। अथवा राशीश्वरयोः राशिस्वामिनोः सौहृदे मैत्रे परिणयः शुभो गदितः। तथा षष्ठाष्टके मीनसिंहयोरित्यादौ नवपञ्चमे मेषधनुषोरित्यादौ, द्विर्द्वादशे मीनमेषयोरित्यादौ, यदाह वसिष्ठः—'द्विर्द्वादशे वा नवपञ्चमे वा षष्ठाष्टके राक्षसयोषितो वा। एकाधिपत्ये भवनेशमैत्रे शुभाय पाणिग्रहणं विधेयम् ॥' इति। राजमार्तण्डः—'भवे त्रिकोणे बहुपुत्रवित्ताद्द्विर्द्वादशे चार्थमुपैति कन्या। षष्ठाष्टके सौख्यफलं विधत्ते स्त्रीणां विवाहो ग्रहमैत्रभावे ॥' इति। एकाधिपत्येऽपीति शेषः। अत एव ग्रहमैत्रैकाधिपत्याभावे वैरषष्ठाष्टकमित्यादि वदन्ति। यदाह नारदः—'वैरषष्ठाष्टकं मेषकन्ययोर्घटमीनयोः। चापोक्षयोर्नृयुक्कीटभयोः कुम्भकुलीरयोः। पञ्चास्यमृगयोर्जन्मराशेः प्रोक्तोऽशुभप्रदः ॥' इति। उक्षा वृषः। चापोक्षयोरित्यकारान्तनिर्देश आर्षः। एतद्भिन्नं मित्रषष्ठाष्टकमित्याहुः। तदुक्तं जगन्मोहने—'मित्रषष्ठाष्टकं कीटमेषयोर्वृषजूकयोः। कर्किचापभयोर्मीनसिंहयोर्मृगयुग्मयोः। कन्यकाकुम्भयोरन्योरप्रन्यत्नादेव वर्जयेत् ॥' इति। एवं च ग्रहमैत्र्यभावे वैरं नवमपञ्चममित्याहुः। तथा च शार्ङ्गधरीये शुक्रः—'मीनालिभ्यां युते कीटे कुम्भे मिथुनसंयुते। मकरे कन्यकायुक्ते न कुर्यान्नवपञ्चमे ॥' इति। कीटः कर्कटः। एतादृशस्य नवपञ्चमस्य फलान्तरमुक्तं कैश्चित्। तथा ज्योतिर्निबन्धे शार्ङ्गधरः—'वरवध्वोर्मातृपित्रोर्जीवतोस्तद्विनाशकृत्। त्रिकोणमीनकीटाद्यं न स्यादन्यत्र दोषदम् ॥' इति। एतत्फलमनार्षत्वादु.क्ष्यम्। इतोन्यच्च मेषसिंहादिकं नवपञ्चमं ग्रहमैत्रीसत्त्वान्मित्रं नवपञ्चममिति। ननु कर्कादिकमपि त्रिकोणं ग्रहमैत्रींसत्त्वान्मित्रनवपञ्चममिव, कथम्। गुरोश्चन्द्रो मित्रमेव चन्द्रस्य तु गुरुः समोऽपि मित्रमिवापदोषतैव—'विगुणस्य गुणः' इति न्यायात्। तथा सति त्रिकोणदोषोच्छेदापत्तिः स्यादिति चेत्। उच्यते, यत्र ह्येकस्य मित्रत्वमपरस्य समत्वं तत्र दुष्टनवपञ्चममिति व्यवहारः। तादृशं त्रिकोणचतुष्टयमेव सम्भवति। यत्र तूभयोरपि ग्रहमैत्री तत्रैव मेषसिंहादिके मित्रनवपञ्चमिति व्याहृतिः। अयं च परिहारो वरवध्वोर्मातापित्रोरित्यस्यापि दोषान्तरे सत्यसति वा। समूलत्वे नाशको भवति तुल्यन्यायत्वात्। मृतमातापितृकयोस्तु वरवध्योर्नायं दोषोन्मेषः। एवं द्विर्द्वादशेऽपि।

द्विर्द्वादशराशिकूटे विशेषः सुफलः—

तथा जगन्मोहने वसिष्ठकश्यपौ—

'द्विर्द्वादशं शुभं प्रोक्तं मीनादौ युग्मराशिषु ।
मेषादौ युग्मराशौ तु निर्धनत्वं न संशयः ।।
आयुष्यसम्पत्सुतभोगसम्पत्पुत्रार्थसम्पत्पतिसौख्यसम्पत् ।
सौभाग्यसम्पद्धनधान्यसम्पज्झषादियुग्मे क्रमतः फलानि ।।
अजादियुग्मे क्रमतः फलानि वैधव्यमृत्युर्वधबन्धनानि ।
वियोगसन्तापमतीव दुःखं वसिष्ठगर्गप्रमुखैः स्मृतानि ।।' इति ।

तथासत्यपि नाडीदोषः सर्वथा त्याज्य एव—

अथैवंविधेऽपि प्रीतिषष्ठाष्टकादिविषये नाडीदोषः सर्वथा त्याज्य एवेत्याह नाड्यृक्षशुद्धिर्यदीति । 'ज्येष्ठार्यम्णेशनीराधिपभयुगयुगम्' इत्यादिना वक्ष्यमाणानां त्रिविधनाडीनक्षत्राणां शुद्धिः स्त्रीपुरुष-नक्षत्रस्थितिस्तदा तु नैव विवाहः । उक्तं च रत्नमालायां—

भवनपतिसुहृत्त्वं स्यात्तथैकाधिधिपत्यं यदि भवनवशित्वं चैव षष्ठाष्टकेऽपि ।
शुभकृदिह विवाहोऽन्योन्यताराविशुद्धौ । यदि खलु फणिचक्रे स्यान्न नाडीसमाजः ।।' इति ।

अपिशब्दान्नवमपञ्चमद्विर्द्वादशयोरपि अत्र केचित् । षष्ठाष्टकेपीति परिहारः किन्तु निन्दां प्रतिपादयतोऽपिशब्दात्तस्य वाक्यस्याधिपतिमैत्र्यादिगुण शंसाद्वारा नवमपञ्चमद्विर्द्वादशयोरेव दुष्टभकूटयोर्विधानपर्यवसानात्तयोरेवापवादक इति । यथा—'ब्रह्महापि नरः पूज्यो यदि स्याद्विपुलं धनम्' इति ।अत्र वाक्ये धनस्तुतिर्धनवन्नरपूजापरा। न तु धनवद्ब्रह्मघ्ननरपूजापरापीति मैवं वोचः । द्विर्द्वादशे वा नवपञ्चमे वा षष्ठाष्टके इत्यादि वसिष्ठादिवाक्यानि दुष्टभकूटापवादभूतान्यधिपतिमैत्र्यादिविशिष्टषष्ठाष्टकादिविधत्ते 'षष्ठाष्टके मृत्यु' रित्यादीनि निन्दार्थवादवाक्यानि ग्रहवैरग्रस्तषष्ठाष्टकादिविषयाणि । अन्यथा दुष्टफलषष्ठाष्टकनिराकरणस्य नवमप - गस्य द्विर्द्वादशयोरपि तुल्यत्वेनापवादकवाक्यानां विषयालाभात् । दृष्टान्ते तु ब्रह्मघ्नप्रायश्चित्तविधानस्य वैय्यर्थ्यापातात् धनस्तुतिर्धनवत्प्रशंसापरैवेति युक्तमुत्पश्यामः । अथ नाडीसमाजपदस्यायमर्थः । अश्विन्यादित्रिकगणनया त्रिविधानां नाडीनक्षत्राणां वेधो नाडीसमाजः । यदाह श्रीपतिः—

'नाड्यस्तिस्रोन्यस्तनिःशेषधिष्ण्यास्त्रिभ्यश्चादिभ्य एव प्रसूताः ।
सर्पाकारस्तत्र नाडीसमाजो नक्षत्राणामेकनाडीस्पृशां स्यात् ।।' इति ।

एवं च यत्र भकूटादयः सप्त भेदाः शुभा भवन्ति—तत्र नाडीदोषश्चेत्तदा विवाहो न विधेयः । उक्तं च सप्तर्षिमते विवाहपटले—'सदा नाशयत्येकनाडीसमाजो भकूटादिकान् सप्तभेदान्प्रशस्तान्' इति । अत्र केचित् नाडीसमाजशब्दोपादानात् समाजशब्दस्य समुदायवाचित्वात् त्रिचतुःपञ्चपर्वनाडीत्रयसमुदाये स्त्रीपुरुषनक्षत्रयोरेकनाड्या पातस्तदा समस्तवश्यादिगुणसत्त्वेऽपि विवाहो नैव भवेत् । यदा त्रिचतुःपञ्चपर्वनाडीष्वेकैव नाडी स्त्रीपुरुषयोः स्यात्तदा भवत्येव विवाहः । अत एव—'भकूटादिकान् सप्तभेदांश्च ते ताम्' इति विपरीतं वचनमनुकूलम् । अस्या-

यमाशयः ते इति बहुत्वात्सप्त भकूटादयः शुभास्तामित्येकवचनानुरोधादेकामेव नाडीं परिहरेयुः न तु नडीसमाजविद्धमित्याहुः । तच्चिन्त्यम् । अतः 'चतुस्त्रिद्व्यंघ्रि भोत्थायाः' इति वाक्याच्चतुश्चरणनक्षत्रोत्पन्नायाः कन्यायास्त्रिपर्वैव त्रिचरणनक्षत्रोत्पन्नायाः कन्याः द्विपर्वैव द्विनक्षत्रोत्पन्नायाः पञ्चपर्वैवनाडीगणनेति नियमाद्युगपन्नाडीत्रयविचारासम्भव एव । किं च रत्नमालादिवाक्येषु पार्थक्येन नाडीकूटाभिधानात्तत्रत्यसमाजपदं नाडीसंस्थनक्षत्रसमुदायपरम् तथा हि अश्वादिभ्यस्त्रिभ्य एव नक्षत्रेभ्यः प्रसूतान्यस्तनिःशेषधिष्ण्याः सर्पाकारास्तिस्रो नाड्यः स्युः । तत्रैकनाडीस्पृशां नक्षत्राणां समाजो नाडी स्यात् इति । ननु—

'यस्मादनर्थकलहागममृत्यवः स्युः पाणिग्रहादनु तयोः खलु नाडियोगः ।
तस्माच्चतुस्त्रियमलाङ्घ्रिषु भेषु नूनं नाडीसमाज इति चिन्त्यमनुक्रमेण ॥' इति ।

वृद्धगर्गवचनान्नाडीसमाज एव स्थिते दोषः नैकस्यां नाड्यामिति चेत्, उच्यते स्वयमेव 'चतुस्त्रिययमलांघ्रिषु भेषु' इति परिगणितविषयत्वेनाभिधानान्नाडीसंस्थनक्षत्रसमुदायविषयकमिति किञ्चित्रं पर्वचतुःपर्वनाड्योर्देशविशेषविषयत्वेन त्रिनाड्यस्तु सर्वदेशविषयत्वादेतस्या एव निषेधो युक्तः । तानि च देवविशेषवाक्यान्यग्रेऽभिधास्ये । अतो-'भकूटकान् सप्तभेदांश्च ते ताम्' इत्यत्र पाठे प्रशस्तानिति पठन्ति अभियुक्ताः शार्ङ्गधरीयज्योतिर्निबन्धकारादयः । तस्मान्नाडीसमाजपदस्य प्राग्वदेव व्याख्यानं न्याय्यम् । ननु यत्र नाडीनक्षत्रशुद्धिरस्ति तथा भरणीहस्तयोः षष्ठाष्टकं वर्तते ग्रहमैत्र्यपि नास्ति तत्र किं कार्यमत आह अन्यर्क्षेशपयोरिति । अन्यर्क्षे प्रीतिषष्ठाष्टकादिभ्योन्यराशौ, कोऽर्थः । राशिस्वामिनोः परस्परशत्रुत्वे वा षष्ठाष्टकादौ च सति अंशपयोस्तद्राशिनवांशस्वामिनोर्बलित्वसखिते स्याताम् बलित्वं च सखिता च प्रथमाद्विवचनान्तं पदं बलित्वं सबलित्वमुच्चादिस्थितत्वेन सखिता परस्परमैत्री ते उभे चेद्भवतः सखितायामुपलक्षणत्वादेकाधिपत्यमपि तदा विवाहः शुभो निरुक्तः । उक्तं च जगन्मोहने वसिष्ठेन—'राशिनाथे विरुद्धेऽपि सबलावशकाधिपौ । तन्मैत्रेऽपि स कर्त्तव्यं दम्पत्योः सुखमिच्छता ॥' इति । नन्वयं परिहारो राशिनाथे विरुद्धेपीत्यनुवादात्केवलग्रहदौष्ट्यापवादको न तु दुष्टभकूटग्रहवैरस्य । उच्यते । 'खेटारित्वं नाशयेत्सद्भकूटम्' इत्यग्रे ग्रन्थकृद्वक्ष्यति । तत्र—'नभोगारिभावं हरेत्सद्भुकूटम्' । इति सप्तर्षिमतविवाहपटलीयवाक्यसंमतत्वेनास्माभिरभिधास्यते तदेव केवले ग्रहवैरापवादकमस्ति नत्विदमपि । ननु द्वयोर्वाक्ययोर्यथाश्रुतशब्दस्वरसेनार्थे जिज्ञासिते एकस्मिन्नेव ग्रहदौष्ट्यरूपे परिहारद्वयं दृश्यते । अथैकस्मिन्नेव दुष्टभकूटके भवनपतिहृत्त्वमित्यादिनानेकपरिहराभिधानमित्यतोऽत्र वचनेन किञ्चित्तादृशं विषयं पश्यामः । सत्यम् । 'नभोगारिभावं हरेत्सद्भकूटम्' इति तु निःसंदेहं ग्रहवैरस्यापवादत्वम् । परन्तु—'राशिनाथे विरुद्धेऽपि मैत्रत्वे चांशनाथयोः । विवाहं कारयेद्धीमान्दम्पत्योः सौख्यवर्द्धनम् ॥' इति जगन्मोहनस्थवसिष्ठवाक्येन प्रागुक्तवसिष्ठवचः समानार्थकं दुष्टभकूटग्रस्तग्रहवैरापवादकम् । तथाहि न्यूनार्थ एकस्मिन्वाक्ये राशिनाथयोः परस्परविरोधे सति तद्राशिनवांशस्वामिनोः परस्परमैत्री चेच्छुभो विवाह इत्यर्थः । अत्रांशनाथयोःसबलत्वविचासे नास्ति । यत्र त्वंशनाथयोरुच्चादिस्थितत्वेन सबलत्वं परस्परमैत्री-चेति द्वयमस्ति तद्दुष्टभकूटग्रस्तग्रहवैरापवादकमित्यधिकार्थवचनस्यार्थः । नन्वनयोर्वाक्ययोः सामान्यविशेषभावात् न्यूनार्थकवाक्यार्थानुवादे परस्परवाक्यस्य सबलत्वविधानपुरःसरैक-

वाक्यत्वादुपसंहारन्यायेन विशेष एव पर्यवसानं कस्मान्न भवति। यथा—पुरोडासं चतुर्धा करोत्याग्नेयं चतुर्द्धा करोतीति वाक्यद्वये। तत्र हि सामान्यतो यत्किञ्चिद्देवताकस्य पुरोडाशस्य चतुर्धाकरणं प्राप्तमग्निदेवताक एव पुरोडाशे चतुर्द्धाकरणं पर्यवस्यतीति चेत्। उच्यते, वेदे हि कर्तु रस्मरणात्तादृशवैदिकवाक्येषु तथा भिन्नकर्तृकेषु स्मृतिवाक्येष्वप्येवं विधा गतिरुचिता न त्वेककर्तकेषु स्मृतिवाक्येषु। अन्यतरवाक्यानर्थक्यापत्तेः तत्र किमर्थकमित्याकाङ्क्षायामधिकार्थकेन न्यूनार्थकमित्यत्रानयोरेककर्तृ कयोरेकप्रकरणपठितयोश्चावश्यं भिन्नार्थकत्वं वाच्यम्। तत्र कस्य कोऽर्थ इति सन्देहे न्यूनाधिकार्थकं केवलं ग्रहवैरापवादकमेव। नन्वपिशब्दस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वादिष्टविषयो लप्स्यत इति चेन्न, तदर्थकवचनान्तरस्य स्पष्टस्याभावेऽपिशब्दस्य समुच्चयार्थताया दुर्लभत्वात्। एवं च—'नभोगारिभावं हरेत्सद्भकूटम्' इत्यपि वाक्यं ग्रहवैरापवादकम्। तुल्यबलत्वाद्व्रीहियववत्। अंशनाथस्य सवलत्वाभिधायकं तु राशिनाथे विरुद्धेऽपीत्येतद्वाक्यमुभयविरोधपरिहारार्थकम्। तथाहि राशी च नाथौ च एतेषां समाहारो राशिनाथं तस्मिन् राशिनाथ इत्येवं समाहारद्वन्द्व आश्रीयेत्। तथा सत्ययमर्थः। राशि विरुद्धौ षष्ठाष्टकादिना। नाथौ विरुद्धौ। कयोर्नाथावित्याकाङ्क्षायां ययोः षष्ठाष्टकादिविचारस्तयोरेव सन्निहितत्वात्। ग्रहणमिति। तयोः राश्योर्नाथौ विरुद्धौ—'मित्राणि द्युमणेः' इत्यादिना परस्परं शत्रू स्यातां तद्राशिनवांशस्वामिनोः सबलत्वे मित्रत्वे च समुचिते सति विवाहः शुभदः। नन्वतिक्लिष्टे समाहारद्वन्द्वे किं प्रयोजनम्, उच्यते अंशनाथसबलत्वस्याधिकरणमेव। तच्च युगपदुत्पन्नस्य दोषद्वैविध्यस्य राशिविरोधग्रहविरोधरूपमित्यवगम्यते। अत एव ज्योतिःशास्त्राभियुक्ता एवंविधे उभयविरोधे एवंविधं समाधिमाश्रित्य विवाह कारयन्तीत्यास्तां प्रसक्तानुप्रसक्तम्।

नाडीनक्षत्रयोर्वेधाभावे विवाहः—

अस्मिन्नपि पक्षे नाडीशुद्धिरपेक्षितैवेत्याह। नाड्यृक्षशुद्धौ तथेति। प्रागुक्तप्रकारेण नाडीनक्षत्रेषु स्त्रीपुरुषनक्षत्रयोरेकस्यां नाड्यामवस्थित्यभावश्चेत्तदा विवाहः शुभः। यथा भरणीहस्तयोः सत्युभयविधविरोधे राशिनवांशयोः क्रमेण पञ्चभचतुर्थयोर्यौ स्वामिनौ सूर्यभौमो तयोर्मैत्र्यप्यस्ति, स्वनवांशस्थितत्वात्सबलत्वमपि। तत्र विवाहः शुभफलदो निगदितः। यतोऽत्र स्त्रीपुंसनक्षत्रयोरेकनाड्यामवस्थित्यभावः। यदा त्वश्विनीहस्ताख्ये इव द्वयोर्नक्षत्रे स्यातां तदा नाडीनक्षत्रशुद्ध्यभावात्सकलगुणवत्त्वेऽपि विवाहो न भवति किं पुनरेवंविधे विषये इति। 'सदा नाशयत्येकनाडीसमाजो भकूटादिकान् सप्तभेदान्प्रशस्तान्।' इत्युक्तेः।

वधूवरर्क्षयोः परस्परं वश्यत्वे विवाहः—

अथैतत्परिहारसम्भवे परिहारान्तरमाह—ताराशुद्धिवशे इति। अत्रान्यर्क्ष इत्यनुवर्त्तते। प्राग्वदेव व्याख्येयमिदम्। एवंविधे विषये षष्ठाष्टकादौ च सति यदि स्त्रीपुंसनक्षत्रयोः परस्परं ताराशुद्धिवशे 'कन्यर्क्षाद्वरभं यावत्' इत्यादिना ताराशुद्धिरूपे वशे वश्यत्वे द्वितीयचतुर्थषष्ठाष्टमनवमतारासंज्ञके सति बुधैर्विवाहः शुभो निगदितः। अत्रोदाहरणानि बुधैर्ध्येयानि। अत्र सम्मतिः—'अन्योन्यताराविशुद्धौ' इत्युक्ता। राजमार्त्तण्डेनायमर्थः स्पष्टमभिहितः—

मैत्री क्षेत्रपयोर्द्वयोरपि तयोरेकाधिपत्येऽपि चे-
त्तारामित्र-८ सुमित्र-९ जन्म-१ शुभदाक्षेमा च सम्पत्करी ।
षष्ठाष्टे नवपञ्चमे व्ययधने योगेषु पुंयोषितोः
प्रीत्यायुः सुतवृद्धिवित्तजनकः कार्यो विवाहस्तदा ।।' इति ।

चकारात्षष्ठी च । जन्मतारा यद्युत्पत्तितारा तदा राशिभेदे चरण भेदे वा शुभा ध्येया दशमैकोनविंशतितारे शुभे एव । अत्रापि पक्षे नाड़ीशुद्धिरपेक्षितैव । नाडीशुद्ध्यभावे विवाहो नैव भवेत्, उक्तैवात्र सम्मतिः ।

तयोर्मिथो वश्यत्वाभावेऽपि विवाहो भवति—

अथैतस्यापि परिहारस्यासम्भवे परिहारान्तर माह—अथ राशिवशताभाव इति । अत्रापि द्वयोः स्त्रीपुंसयो राशिनाथविरोधादिके विषये षष्ठाष्टकादौ सति—हित्वा मृगेन्द्रं नरराशिवश्याः' इत्यादिना पुरुषराशेः स्त्रीराशिवशताभावसत्त्वे सति विवाहः शुभो निगदितः । 'यदि भवनवशित्वम्' इति श्रीपत्युक्तिश्च अस्मिन्नपि पक्षे नाडीशुद्धिरपेक्षितैवोक्तादेव हेतोः । तदयमत्र निष्कृष्टोऽर्थः । षष्ठाष्टमनवपञ्चमद्विर्द्वादशाख्येषु दुष्टभकूटेषु सत्सु परस्परं ग्रहमैत्र्ये एकः परिहारः, एकाधिपत्यं द्वितीयः, ग्रहवैरेप्यंशपयोः सबलत्वं मैत्री च तृतीयताराशुद्धिश्चतुर्थः, राशिवश्यत्वं पञ्चमः । सर्वेष्वपि परिहारेषु नाडीशुद्धिरपेक्षितैव । नाडीविरोधसत्त्वे तु विवाहो नैव स्यादिति । एवं च ग्रन्थकर्त्रा—'भवनपतिसुहृत्त्वम्' इत्यस्य श्रीपतिश्लोकस्य वाक्यचतुष्टय-मङ्गीकृत्य तावत्परिहाराभिधानं कृतम् । तट्टीकाकृन्महादेवोऽप्येवमेव व्याख्यत् । यत्र हि प्रत्येकं परिहारकत्वं तत्र गुणसमुदायः परिहारकः स्यादिति किं वाच्यम् । वस्तुतस्तु—'मैत्री क्षेत्र-पयोर्द्वयोरपि तयोरेकाधिपत्येपि चेत्तारामित्रसुमित्रजन्मशुभदा क्षेमा च सम्पत्करी' इत्यादि-प्राग्लिखितेन राजमार्तण्डवाक्येन दुष्टे भकूटे ग्रहमैत्र्यया सह तथैकाधिपत्येन सह ताराशुद्धिरेव परिहारिका समुचिता । अर्थादेकस्य मित्रत्वेऽपरस्य समत्वे वश्यत्वापेक्षात्वे । अत एतद्वाक्यं ज्योतिःसारसागरकर्त्रा पितृचरणैश्चैवं विवृतम्—'अत्रान्योन्यमित्रत्वे तुल्याधिपतित्वे वा तारा-शुद्धिरेव चिन्त्या । एकान्तरमित्रतायां तु वशित्वादिगुणान्तरापेक्षा । शत्रुत्वे तु सर्वथात्यागः' इति । अत एवैतस्मिन्पद्ये चेत्पादाभिधानादेकवाक्यतावसायः एवं श्रीपतिवाक्यमपि व्याकर्त्तव्यम् । एकवाक्यताबलात् । तत्र षष्ठाष्टके पुनः 'भवनपतिसुहृत्त्वम्' इति सकलगुणसत्त्वमेव परिहारकम् । अन्ययोर्दुष्टभकूटयोर्द्वयमेव । यदाह ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—'ग्रहमैत्रं शुभा तारा राशिवश्यं त्रिभिः शुभम् । षष्ठाष्टकं बुधा प्राहुर्द्वाभ्यां द्व्यर्क त्रिकोणकम् ।।'' इति । द्व्यर्कं द्विर्द्वादशं 'द्विर्द्वादशे वा नवपञ्चमे वा' इत्यादीनि वसिष्ठवाक्यानि तूपलक्षणपरतया व्याख्येयानि । अत्र यथासम्प्रदाये व्यवस्था ध्येयेत्यलमियता ।

सौहृदशब्दस्य साधुत्वविचारः—

सौहृद इति । सुष्ठु हृदयं यस्यासौ सुहृन्मित्रम् । 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' इति साधुः । सुहृदो भावः सौहृदम् 'हायनान्तयुवादिभ्योण्' इत्यण् । 'तद्धितेष्वचामादेः' इत्यादिवृद्धिः । केचित्तु सुष्ठुहृदयं यस्यासौ सुहृदयः तस्य भावः सौहृदमिति युवादित्वादणि 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' इति हृदादेश इत्याहुः । अपरे तु—स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यभिधानाण्मोवाचो हृच्छब्दः

सुष्ठु हृन्मनो यस्येति सुहृत्तस्य भावः प्राग्वदणिरूपं सिद्धमित्यभिदधुः। तदुभयमपि चिन्त्यं। यतो 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इत्युभयपदवृद्धिः कस्मान्न भवति नहि तत्र कश्चिद्विशेष उपादीयते। उच्यते। 'ओगुर्णः' इत्यत्र ओरोदिति वक्तव्ये गुणग्रहणं 'संज्ञापूर्वको विधिरनित्यो यथा स्यात्' इति ज्ञापकात् 'हृद्भग' इत्यस्यानित्यत्वेनाप्रवर्तमानत्वादादिवृद्धिरेवात्रेति ऋजवः समादधते। परे तु प्रतिपदोक्तहृदयपर्यायस्य हृच्छब्दस्यहृद्भग 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' इति हृदादेशस्यादिवृद्धिर्नेति साधयन्ति तत् 'हृदयस्य हृल्लेख' इत्यादि ग्रन्थविरुद्धम्। तथाहि 'वाशोकष्यञ्रोगेषु' इत्यत्र सौहार्दं सौहृदय्यम् ब्राह्मणादित्वात्ष्यञ्। हृदादेशपक्षे-'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इत्युभयपदवृद्धिरिति काशिकाकारोऽव्याख्यत्। वयं तु ब्रूमः 'हृद्भग' इत्यत्र—'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य' इति परिभाषया हृदयवाचिनो हृदयादेशस्य हृच्छब्दस्यैव ग्रहणम्। तेनात्र-'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' इति निपातितस्य सुहृच्छब्दस्य मित्रवाचित्वेनार्थवत्त्वेऽपि तदवयवो हृच्छब्दस्तदन्तस्योत्तरपदस्य वृद्धिर्न भवति। अवयवस्यानर्थकत्वादित्यादिवृद्धिरेवात्र भवति। अमुमेवाशयं मनसि निधाय—'विनयं विशेषयति सौहृदेन सः' इति माघः। 'सौहृदं हि मनसो न गेहयोः' इति केशवार्कोपि सौहृदशब्दं प्रायुंक्तेति निरवद्यमिति ॥ ३२ ॥

पीताम्बरा—दुष्ट भकूट का परिहार—स्त्री पुरुष दोनों की परस्पर षडष्टक राशियों का अधिपति यदि एक ही ग्रह हो तो दुष्ट भकूट का दोष नहीं होता; जैसे वर की राशि मेष या वृष, कन्या की वृश्चिक या तुला इत्यादि। जैसे द्विर्द्वादश दोष में मकर कुम्भ राशियों का एकाधिपत्य शनि का है अतः मकर कुम्भ राशियों के वर कन्याओं का भी द्विर्द्वादश दोष नहीं होगा। नवम पञ्चम दोष की राशियों में एकाधीशत्व प्राप्त ही नहीं होता।

वर कन्या की षडष्टक, द्विर्द्वादश और नवम पञ्चम राशियों के अधिपति ग्रहों की परस्पर मित्रता होने पर भी उक्त षडष्टकादि दोषों का परिहार हो जाता है। जैसे वर कन्या की मीन मेष, मेष धनुष, मीन मेष आदिकों में क्रमशः षडष्टक, नव पञ्चम और द्विर्द्वादश दोष नहीं होते क्योंकि राशि स्वामियों में परस्पर मित्रता है।

वर कन्या का परस्पर नाड़ीवेध न हो। अर्थात् वर कन्या दोनों के नक्षत्र एक नाड़ी में न पड़ते हों तभी षडष्टकादि उक्त दोषों का परिहार होगा। नाड़ी दोष विद्यमान होने पर षडष्टकादि उक्त कूट दोष परिहार अविचारणीय है।

षडष्टकादि से भिन्न राशियों में भी राशियों के परस्पर के अधिपतियों की शत्रुओं में भी राशियों के नवांशों के स्वामी बली हों अपनी उच्चादिक राशियों में हों और नवांश नाथों की परस्पर मैत्री हो और नाड़ी दोष न हो तो भी वर कन्या का भकूट मेलापक शुभ हो जाता है। दोषावह नहीं रहता। नाड़ी शुद्धि सर्वत्र अपेक्षित है।

तथा वर कन्या के तारा शुद्धि रूप वश्यत्व, द्वितीय चतुर्थ षष्ठ अष्टम और नवम ताराओं की उपलब्धि में नाड़ी दोष रहित षडष्टक में पुरुष राशि से स्त्री राशि की वश्यता के अभाव में भी विवाह सम्बन्ध शुभ होता है।

इस प्रकार षडष्टक, द्विर्द्वादश, नवम पञ्चम कूट दोषों में नाड़ी शुद्धि देखकर (१)

ग्रहों की मैत्री, (२) दोनों की राशियों के राशीश्वर एक ही ग्रह (एकाधिपत्य), (३) राशीश्वर ग्रहों की शत्रुता पर भी नवांश स्वामियों की मैत्री, (४) गण शुद्धि और (५) राशि वश्यत्व इन पांचों परिहारों में नाड़ी शुद्धि सर्वत्र अपेक्षित है । उक्त परिहार नाड़ी वेध न होने पर ही विचारणीय होते हैं ।

ये वचन, षडष्टक दोष के प्रबल परिहारक हैं ।। ३२ ।।

अथ दुष्टानां गणकूटभकूटग्रहकूटानां परिहारं शालिन्याह—

मैत्र्यां राशिस्वामिनोरंशनाथद्वन्द्वस्यापि स्याद्गणानां न दोषः ।
खेटारित्वं नाशयेत्सद्भकूटं खेटप्रीतिश्चापि दुष्टं भकूटम् ।। ३३ ।।

पीयूषधारा—मैत्र्यामिति । स्त्रीपुंसराशिस्वामिनोर्मैत्र्यां सत्यां तथा राशिनवांशयोर्द्वन्द्व-युग्मं तस्यापि मैत्र्यां सत्यां गणानां दुष्टगणानां दोषो न स्यात् । स्त्री रक्षोगणा पुमान्मनुष्यगणो देवगणो वा तदा गणदोषो न स्यादित्यर्थः । यदाहात्रिः—'राशीशयोः सुहृद्भावो मित्रत्वे वांश-नाथयोः । गणादिदौष्टचेप्युद्वाहः पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनः ।।' इति । अथ सद्भकूटं शुभफलदं भकूटं राशि-कूटं तृतीयेकादशाद्विकं खेटारित्वं ग्रहयोः शत्रुतासम्बन्धिनं दोषं नाशयेत् । एवमेव खेटप्रीतिर्ग्रह-मैत्री चापि दुष्टं भकूटं षष्ठाष्टकादिकसम्बन्धिनं दोषं नाशयेदित्यर्थः । तदुक्तं सप्तर्षिमते विवाह-पटले—'नभोगारिभावं हरेत्सद्भकूटं विरुद्धं भकूटं हरेत्खेटमैत्री । सदा नाशयत्येकनाडीसमाजो भकूटादिकान् सप्तभेदांश्च तेषाम् ।।' अत्र चतुर्थचरणः—'प्रोक्ते दुष्टभकूट'—इत्यादिना पुनरु-क्तोऽपि स्मरणाविच्छेदार्थं पठितः । यत्तूक्तं नारदेन—'एकाधीशे मित्रभावे शुभदं पाणिपीडनम् । द्विर्द्वादशे त्रिकोणे च न कदाचित्षडष्टके ।।'

इति—एतन्नाडीदोषे सत्येव द्रष्टव्यम् । अधुनोदितवाक्यस्वरसात् ।
'भवनपतिसुहृत्त्वं स्यात्तथैकाधिपत्यं यदि भवनवशित्वं चैव षष्ठाष्टकेऽपि ।
शुभकृदिह विवाहोऽन्योन्यताराविशुद्धौ । यदि खलु फणिचक्रे स्यान्न नाडीसमाजः ।।'
इति—

श्रीपत्युक्तेश्च । अन्यथा प्रागभिहितवसिष्ठादिवाक्यान्यनर्थकान्यापद्येरन्निति ।। ३३ ।।

पीताम्बरा--गण भकूट और ग्रह कूटों के परिहार—स्त्री पुरुष की राशियों के अधि-पतियों की मैत्री तथा राशियों के नवांशों के अधिपतियों में भी मैत्री होने पर दुष्ट गण (मनुष्य राक्षस, देव राक्षस इत्यादि) का दोष नहीं होता है ।

तथा शुभ फलद भकूट (तृतीय एकादश, चतुर्थ दशम इत्यादिक) ग्रहों की शत्रुता सम्बन्धी दोषों का नाशक होता है ।

तथैव दुष्ट फलद भकूट (षडष्टक द्विर्द्वादशादिक) ग्रहों की परस्पर की मैत्री का भी विनाशक होता है ।

नाड़ीवेध दोष होने पर ये सब विचार करने चाहिए ।।३३।।

अथ क्रमप्राप्तसकलकूटप्रधानं नाडीकूटं स्रग्धरयाह—

ज्येष्ठार्यम्णेशनीराधिपभयुगयुगं दास्रभं चैकनाडी
पुष्येन्दुत्वाष्ट्रमित्रान्तकवसुजलभं योनिबुध्न्ये च मध्या।
वाय्वग्निव्यालविश्वोडुयुगयुगमथो पौष्णभं चापरास्या-
द्दम्पत्योरेकनाड्यां परिणयनमसन्मध्यनाड्यां हि मृत्युः ॥३४॥

पीयूषधारा—ज्येष्ठेति। ज्येष्ठा प्रसिद्धा, अर्यम्णमुत्तराफल्गुनी, ईश आर्द्रा, नीराधिपो वरुणस्तद्भं शततारका, एभ्यो नक्षत्रेभ्यः युगयुगं द्वयं द्वयं ज्येष्ठा मूलं, उत्तराफल्गुनी हस्तश्च, शततारका पूर्वाभाद्रपदा चेत्यर्थः। दास्रभमश्विनी च एतन्नक्षत्रनवकं परस्परमेकनाडीत्युच्यते।

मध्यनाडी—

अथ पुष्यः प्रसिद्धः, इन्दुर्मृगः त्वाष्ट्रं चित्रा, मित्रोऽनुराधा, अन्तकं भरणी, वसुर्धनिष्ठा, जलभं पूर्वाषाढा, योनिः पूर्वाफाल्गुनी, बुध्न्योहिर्बुध्न्यः उत्तराभाद्रपदा। एतन्नक्षत्रनवकं परस्परं मध्यनाडीत्युच्यते।

अन्त्यनाडी—

अथ वायुः स्वाती, अग्निः कृत्तिका, व्याल आश्लेषा, विश्वोडूत्तराषाढा, एभ्यो युगयुगं स्वाती विशाखा च कृत्तिका रोहिणी च आश्लेषा मघा च उत्तराषाढा श्रवणश्चेत्यर्थः। पौष्णभं रेवती च एतन्नक्षत्रनवकमपरा तृतीयनाडीत्युच्यते।

तासां फलानि—

एतत्फलमाह—दम्पत्योः स्त्रीपुंसयोरेकनाड्यां परिणयनमसद्दुष्टफलं स्यात्। मध्य-नाड्यां हि निश्चयेन मृत्युर्द्वयोरपि स्यात्।

'मूलेन्द्रार्कभषाश्वजैकचरणादित्यार्यमेशाश्विभैर्याम्येन्द्वीज्यभमित्रभाग्यवसुभत्वाष्ट्राम्ब्वहिर्बुध्न्यभैः। अन्त्यैर्नाड्य इहैकनाडिनवके स्यातां द्विभे चेन्मृतिर्गोदादक्षिणतः क्वचिन्नृपमुखे पार्श्वैकनाडी हिता॥'

गोदादक्षिणतः सर्ववर्णेषु पार्श्वैकनाडी हिता। क्षत्रियादौ क्वचित्। अन्यकन्याया अलाभे पार्श्वैकनाडी हितेत्यर्थः। यदाह गर्गः—नाडीकूटं तु सङ्ग्राह्यं कूटानां तु शिरोमणिः। ब्रह्मणा कन्यकाकण्ठसूत्रत्वेन विनिर्मितम्॥' इति। वराहः—'आद्यैकनाडी कुरुते वियोगं मध्याख्यनाड्यामुभयोर्विनाशः। अन्त्या च वैधव्यमतीव दुःखं तस्माच्च तिस्रः परिवर्ज-नीयाः॥' इति।

अथ चक्रन्यासौ वसिष्ठेनोक्तः—

'आवृत्तिभिर्भैस्त्रिभिरश्वभाद्यं क्रमोत्क्रमात्सङ्गणयेदुडूनि।
यदेकपर्वण्युभयोश्च धिष्ण्ये नेष्टा नृनार्योर्भृशमेकनाडी॥'

फलेऽपि विशेषमाह वशिष्ठः—

'सा मध्यनाडी पुरुषं निहन्ति तत्पार्श्वनाडी खलु कन्यकां तु।
आसन्नपर्य्यायसमागता चेद्वर्षेण साप्यन्तरिता त्रिवर्षैः॥' इति।

उत्तरार्द्धस्यायमर्थः। आसन्ने समीपस्थिते पर्याये आवृत्तौ चेदेकनाडी समागता यथाऽ

शिवन्यार्द्रयोर्भरणीमृगयोः रोहिण्याश्लेषयोर्वा सा नाडी वर्षेणैकेन स्त्रीपुंसयोरुक्ताशुभफलदात्री स्यात्। यदात्वश्विन्युत्तराफाल्गुन्योरितरक्षतव्यवधाना सा नाडी त्रिभिर्वर्षैरुक्ताशुभफलदात्री स्यात्।

नाडीसंग्रहो गुणाश्च—

अत्र सफले नाडोनक्षत्रे अस्मदुक्तं पद्यद्वयम्—

'दस्रेशादित्ययमार्केन्द्रमूलतोयाधीशाजाङ्घ्रिभान्येकनाडी।
मध्या याम्येन्द्वीज्ययोन्वृक्षचित्रामित्रर्क्षाम्भोवस्वहिर्बुध्न्यभानि॥
वह्निब्राह्मर्क्षाहिपित्र्यानिलर्क्षद्वीशाविश्वेविष्णुपौष्णे परा च।
दम्पत्योर्भे सन्निकृष्टे हि दुःखं वर्षेण स्यात्सान्तराले त्रिवर्षैः॥'

ग्रन्थकर्त्रा तु नाडीदोषस्यतावदवस्थाक्रममनङ्गीकृत्य नाडीनक्षत्राण्येवोक्तानि। अश्विनी-मृगयोरिव नाडीभेदे तु दोषाभाव एव। तेनाष्टौ गुणा इत्यर्थः।

इयं चाश्विन्यादित्रिकगणनां कन्यायाश्चतुश्चरणे जन्मनक्षत्रे सति यदा त्रिचरणं नक्षत्रं तदा कृत्तिकामारभ्य चतुःपर्वगणना साभिजित्। द्विचरणत्वे तु कन्यानक्षत्रस्य मृगशीर्षतः पञ्चपर्वगणना। यदाह नारदः—

'चतुस्त्रिद्वयङ्घ्रिभोत्थायाः कन्यायाः क्रमशोऽश्विभात्। वह्निभादिन्दुभान्नाडी त्रिचतुःपञ्चपर्वसु॥
गणयेत्सङ्ख्यया चैकनाड्यां मृत्युर्न संशयः।'

अमुमर्थं स्पष्टमाह गर्गः—

'चतुःपात्कन्यकाऋक्षं गणयेदश्विभादिकम्। त्रिभं सव्यापसव्येन भिन्नं पर्व सुखावहम्॥
कन्यकर्क्षं त्रिपाच्चेत्स्याद्गणयेत्कृत्तिकादिकम्। चतुर्भिः पर्वभिस्तद्वदभिजित्तारकान्वितम्॥
कन्यकर्क्षं द्विपाच्चेत्स्याद्गणयेत्सौम्यभादिकम्। पञ्चभिस्त्ववरोहे तु पञ्चमाङ्गुलिवर्जिते॥'

एतत्फलमप्याह गर्गः—

'संश्लिष्टा मध्यनाडी तु पुरुषं हन्ति वेगतः। संश्लिष्टा पार्श्वनाडी तु कन्यकां हन्त्यसंशयम्॥' इति।
'आसन्ना त्वेकनाडी स्यादासन्नमृतिदायिनी। दूरस्था चैकनाडी स्याद्दूरानिष्टकारिणी॥' इति।

दूरं बहुकालम्।

जगन्मोहने नारदः—

'एकनाडीविवाहश्च गुणैः सर्वैः समन्वितः। वर्जनोयः प्रयत्नेन दम्पत्योर्निधनं यतः॥' इति।

अथ देशभेदेन नाडीगणनाक्रमभेदानां नियमः—

आसां नाडीनां देशभेदेन व्यवस्थामाह जगन्मोहने नारदः—'चतुर्नाडी त्वहल्यायां पाञ्चाले पञ्चनाडिका। त्रिनाडी सर्वदेशेषु वर्जनीया प्रयत्नतः॥' इति। अहल्यापाञ्चालौ देशविशेषौ। सर्वदेशशब्दः अहल्यापाञ्चालव्यतिरिक्तदेशेषु वर्त्तते। 'विशेषसन्निधाने आम्नातं सामान्यं तद्व्यतिरिक्ते सामान्ये वर्त्तते' इतिन्यायात्। 'ब्राह्मणा आयाता वसिष्ठोऽप्यायात' इतिवत्। ननु—'चतुस्त्रिद्वयङ्घ्रिभोत्थायाः' इति 'चतुर्नाडीं त्वहल्यायाम्' इत्यनयोर्वाक्ययोः सामान्यविशेषभावयोः सभापन्नयोरयमर्थः सम्पन्नः। कन्यर्क्षे चतुःपादे सत्यश्विन्यादित्रिनाड्यहल्यापाञ्चालव्यतिरिक्तसर्वदेशेषु स्यात्। तथा कन्यर्क्षे त्रिपादे

कृत्तिकादिचतुःपर्वनाड्यहल्यायामेव स्यात् । तथा कन्यर्क्षे द्विपादे मृगादिपञ्चपर्वनाडी पाञ्चाल एव स्यात् । एवं देशभेदेन नाडीवैयत्ये सति तद्देशेषु प्रोक्तो नाडीविचारो भिन्नेषूत्पन्नायां कन्यकायां न स्यादेव । तथा त्रिपादे वा कन्यर्क्षे सति सर्वेष्वपि देशेषु त्रिनाडीविचारो न स्यात् । एवं सति पुनर्वसुकृत्तिकाप्रभृतीनां त्र्यङ्घ्रीणामुभयपार्श्वधिष्ण्यानां तत्तन्नाडीस्थैः सर्वनक्षत्रैः सह नाडीविचाराभावः प्रसज्येत । तथा मृगचित्राधनिष्ठाद्व्यङ्घ्रीणां मध्यनाडीधिष्ण्यानां मध्यनाडीसंस्थैः सर्वैर्भरण्यादिभैः सह च तथा चतुष्पादे भे तु देशविशेषे नाड्यभाव एव प्रसज्येत । न चेष्टापत्तिरिति वाच्यम्, आर्यावर्तनिवासिसकलशिष्टाचारविरोधप्रसङ्गात् । न च—'त्रिनाडी सर्वदेशेषु वर्जनीया प्रयत्नतः' इत्युक्तेरहल्यापाञ्चालयोरपि देशयोस्त्रिनाड्यस्त्येवेति वाच्यम्, 'चतुर्नाडी त्वहल्यायां पाञ्चाले पञ्च नाडिका' इत्येतद्विशेषविधानात् । अत्रेमां समाधिसरणिं पश्यामः । 'चतुस्त्रिद्व्यंघ्रिमोत्थायाः कन्यायाः क्रमशोऽश्विभात् । वह्निभादिन्दुभान्नाडी त्रिचतुःपञ्चपर्वभिः ॥' इति पद्येन कश्यपो नाडीत्रयविचारमभिधायानुपदमेव—'रेखास्तिस्रो विरच्याशु दस्रभाद्यानि विन्यसेत् । एकरेखास्थयोर्मृत्युर्दम्पत्योर्जन्मधिष्ण्योः ॥' इति पुनरपि त्रिनाडीमुपन्यस्तवान् । सा च त्रिनाडी सर्वेष्वपि कन्यानक्षत्रेषु सर्वेष्वप्यहल्यापाञ्चालसहितेषु देशेषु अवश्यं विचार्या यथा स्यादित्येतदर्थमुक्ता । न चेदं त्रिनाड्या लक्षणवाक्यमिदमिति वाच्यम् । एवं चतुर्नाडीपञ्चनाड्योरपि लक्षणाभिधानं कर्त्तव्यं स्यात् । किं च यदि लक्षणवाक्यमङ्गीक्रियते तदा वसिष्ठवाक्यवदनुलोमविलोमगणना वक्तव्या स्यात् । सा च नोक्तेति विधिवाक्यमेवैतत् । तस्माद्वसिष्ठादिभिर्देशनक्षत्रभेदेनानित्यप्रवृत्तिके चतुःपञ्चनाड्यावुपेक्ष्य सकलदेशव्यापित्वात्सकलनक्षत्रव्यापित्वाच्च त्रिनाड्येवोक्ता । न चैतावता चतुःपञ्चनाड्यौ स्वस्वदेशव्यतिरिक्तान्यदेशेषु नैवावलोक्ये किन्तु सर्वेष्वपि देशेषु विचार्ये । तत्र स्वदेशे दोषमहत्त्वमन्यदेशे दोषाल्पता । त्रिनाडी तु सर्वत्रैव समानदोषा । यदाह मनुः—

'अहल्यायां चतुर्नाडीसंयोगः कालमृत्युदः । एष योगोऽन्यदेशेषु ह्यपमृत्युफलप्रदः ॥
पञ्चनाडीसमायोगः पाञ्चाले कालदण्डदः । इतरत्र समायोगो दुःखदारिद्र्यदोषकृद् ॥
त्रिनाड्यां तु समायोगः सर्वत्रानिष्टकारकः' इति ।

यत्तु ज्योतिर्निबन्धे, ज्योतिःप्रकाशे अश्विन्यादित्रिनाडीं प्रकृत्याभिहितं—'निधनं मध्यमनाड्या दम्पत्योर्नैव पार्श्वयोर्नाड्योः' इति । तत्र पार्श्वनाड्यां मृत्युरूपमहादोषाभावं मत्वा विवाहादिकरणं शुभमित्यर्थः । ततः क्षत्रियादिविषयं गोदावरीतो दक्षिणदेशवासिविषयं वा । तदप्युक्तं तत्रैव—'करग्रहे पृष्ठनाड्यौ न निन्द्ये इति यद्वचः । तत्क्षत्रियादिविषयं गौतम्या याम्यतस्तथा ॥' इति । गौतमी गोदावरी । अत्रार्थे आर्षं मूलं मृग्यम् ।

त्रिनाड्यपि गुरुप्रभुपण्याङ्गनादावनिष्टा

इयं चाश्विन्यादित्रिनाडी गुर्वादिष्वप्यनिष्टा प्रभुपण्याङ्गनादौ न शुभैव । उक्तं च स्वरोदये—

'एकनाडी स्थिता यत्र गुरुमन्त्राश्च देवताः । तत्र द्वेषं रुजं मृत्युं क्रमेण फलमादिशेत् ॥
प्रभुः पण्याङ्गना मित्रं देशग्रामं पुरं गृहम् । एकनाडीस्थितं भव्यं विरुद्धं वेधवर्जितम् ॥' इति ।

अत्र नाडीवेधश्चरणवेध आवश्यकविषयस्त्याज्यः—

एतदप्युक्तं तत्रैव—

'आद्यांशेन चतुर्थांशं चतुर्थांशेन चादिमम् । द्वितीयेन तृतीयं तु तृतीयेन द्वितीयकम् ।। एवं भांशव्यधो येषां जायते वरकन्ययोः । तेषां मृत्युर्न सन्देहः शेषांशाः स्वल्पदोषदाः ।।'

नाडीदोषे जपादिकम्—

तत्राप्यावश्यकत्वे गुरुः—

'दोषापनुत्तये नाड्या मृत्युञ्जयजपादिकम् । विधाय ब्राह्मणांश्चैव तर्पयेत्काञ्चनादिना ।। हिरण्यमयीं दक्षिणां च दद्याद्वर्णादिकूटके । गावोऽन्नं वसनं हेम सर्वदोषापहारकम् ।।' इति ।

अष्टकूटानामेवोक्तौ हेतुः—

एवं सर्वसंमतत्वादष्टौ कूटभेदा अभिहिता नान्ये—'माहेन्द्रं गौडदेशे च मालवे रज्जुसंज्ञकम्' इत्यादिवादरायणवाक्येन कूटानां तत्तद्देशविषयतापादनात् । ते च कूटभेदा वसिष्ठसंहितायामस्मत्पितुश्चरणकृते टोडरानन्दे च सामान्यविशेषभावसहिता द्रष्टव्याः ।।' इति ।।३४।।

पीताम्बरा—आदि मध्य और अन्त्य नाडियों के नक्षत्र और परिणाम—ज्येष्ठा, मूल, **आर्द्रा**, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, शततारा, पूर्वाभाद्रपद और अश्विनी नक्षत्रों की गणना **आदि** संज्ञक नाड़ी में, पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, भरणी, घनिष्ठा, पूर्वाषाढ़, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराभाद्र नक्षत्रों की मध्य नाडी में और स्वाती, विशाखा, कृतिका, रोहिणी आश्लेषा, मघा, उत्तराषाढ़, श्रवण और रेवती इन नौ नक्षत्रों की गणना अन्त्य नाडी में **होती** है ।

वर कन्या दोनों के नक्षत्र एक नाडी में (वर नक्षत्र आदि कन्या नक्षत्र भी आदि नाड़ी में, एवं वर नक्षत्र मध्य नाड़ी कन्या नक्षत्र भी मध्य नाड़ी में और वर नक्षत्र अन्त्य नाड़ी कन्या नक्षत्र भी अन्त्य नाड़ी में) होने से विवाह अशुभ होता है । जैसे दो व्यक्तियों के बैठने के लिए (एक आसन ठीक नहीं) दो आसन होने चाहिए वैसे ही दोनों वर कन्या की एक नाडी उचित नहीं होती ।

	वरनाड़ी			
कन्या नाड़ी	नाड़ी	आदि	मध्य	अन्त्य
	आदि	०	८	८
	मध्य	८	०	८
	अन्त्य	८	८	८

ब्राह्मणादिक वर्ण विशेष में अन्त्य नाड़ी के कहीं पर परिहार वचन भी प्राप्त होते हैं किन्तु दोनों की एक नाड़ी का विवाह अशुभ होते हुए मध्य नाड़ी का विवाह तो मृत्युकारक ही बताया गया है ।

अहल्या देश में चतुर्नाड़ी, पाञ्चाल में पञ्चनाड़ीका का दोष कहा गया है किन्तु त्रिनाड़ी दोष (आदि-मध्य अन्त्य) सर्वदेशों में वर्जित होता है । सर्व देश से तात्पर्य है कि अहल्या और पाञ्चाल देशों को छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र त्रिनाड़ी दोष मान्य होता है ।

गुरु शिष्य की परस्पर की एक नाड़ी में द्वेष, मन्त्र और साधक की परस्पर की एक नाड़ी में रोग, देवता और पूजक की परस्पर एक नाड़ी होने से पूजक की मृत्यु होती है।

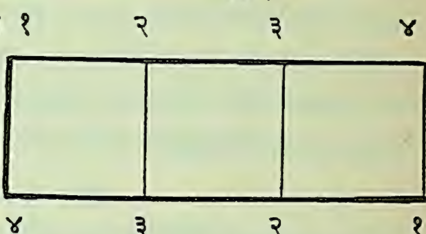
वर कन्या की एक नाड़ी होने पर यदि उस नक्षत्र के चरणों में यदि परस्पर वेध न हो तो नाड़ी दोष परिहार हो जाता है।

वर कन्या दोनों के एक नक्षत्र में, वर का जन्म प्रथम चरण में, कन्या का जन्म चतुर्थ चरण में अथवा वर का जन्म क्रमशः द्वितीय या तृतीय चरण में एवं कन्या का जन्म तृतीय या द्वितीय में हो तो एक ही नक्षत्र में एक ही नाड़ी रहते हुए सूक्ष्म चरण वेध दोष न होने से नाडी दोष नहीं होता।

वर कन्या में वर का नक्षत्र ज्येष्ठा ३ चरण, और कन्या नक्षत्र अश्विनी १ चरण है तो निम्न चरण वेध चक्र से यहाँ नक्षत्र वेध होते हुए भी चरण वेध नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में नाड़ी दोष ग्राह्य है।

प्रथम चतुर्थ और तृतीय द्वितीय चरण एक रेखा में हैं अतः इनका वेध समझना चाहिए।

चक्र



एक नाड़ी के शेष चरणों में चरण वेध (एक रेखास्थिति) नहीं है। नाड़ी दोष परिहार के लिए मृत्युंजय जप से भगवान् साम्ब शिव से, और सुवर्ण दान से ब्राह्मणों से दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए आशीर्वाद लेना चाहिए ॥ ३४ ॥

अथेन्द्रवज्रया पूर्वमध्यापरभागयोगीनि भान्याह—

पौष्णेशशाक्राद्रससूर्यनन्दा पूर्वार्द्धमध्यापरभागयुग्मम्।
भर्त्ता प्रियः प्राग्युजि भे स्त्रियाः स्यान्मध्ये द्वयोः प्रेम परे प्रिया स्त्री ॥३५॥

पीयूषधारा—पौष्णेशेति। पौष्णाद्रेवत्याः षड्भं भानि जात्यभिप्रायमेकवचनम्। पूर्वार्द्ध-योगीनि ज्ञेयानि। आर्द्रादिद्वादशमध्यभागयोगीनि ज्ञेयानि। ज्येष्ठादीनि नव अपरभागयोगीनि ज्ञेयानि। फलमाह भर्त्ता प्रिय इति। अयं भावः। राज्ञामन्तःपुरस्थस्त्रीसमागमे गणिकादिसमागमे वा पूर्वार्द्धे युजि नक्षत्रे सति स्त्रीणां भर्त्ता प्रियः। मध्यभागयुजि भे परस्परं प्रीतिर्भवेत्। परभागयुजि भे स्त्री नृणां प्रिया भवेदिति। एवं वधूवरयोर्नवसमागमेऽपि ज्ञेयमिति रत्नमाला-टीकायां महादेवेनोक्तम् ॥ ३५ ॥

पीताम्बरा—पूर्व, मध्य और अपर भाग योगीनि नक्षत्र—रेवती से मृगशिरा तक ६ नक्षत्र पूर्वभाग संज्ञक, आर्द्रा से अनुराधा तक १२ नक्षत्र मध्यभाग संज्ञक और ज्येष्ठा से उत्तराभाद्रतक ९ नक्षत्र परभाग योगिनी संज्ञक कहे गए हैं।

राजाओं के अन्तःपुर स्त्री समागम या गणिकादिक समागम में दोनों के नक्षत्र पूर्वार्द्ध योगिनी में हों तो ऐसी स्थिति में स्त्रियों के लिए पति विशेष प्रिय, मध्यभाग योगिनी के समागम से दोनों में परस्पर प्रीति, और परभाग योगिनी के समागम में पुरुष को स्त्री विशेष प्रिय होती है।

इसी प्रकार वर-वधू के प्रथम नवसमागम की नक्षत्र स्थितियों से, पति प्रिया वधू, वर-वधू की परस्पर प्रीति और वधूप्रिय पति होता है ॥ ३५ ॥

अथ प्राच्यसम्मतं वर्गकूटमार्ययाह—

अकचटतपयशवर्गाः खगेशमार्जारसिंहशुनाम् ।
सर्पाखुमृगावीनां निजपञ्चमवैरिणामष्टौ ॥ ३६ ॥

पीयूषधारा—अकटेति । नामकर्मप्रकरणे चूचेचोलापदेष्वाद्य इत्यज्झल्रूपाः सर्वे वर्णा **अस्माभिरभिहिताः** । तत्राजूरूपोऽवर्गः कुचुटुतुपु इति पञ्चवर्गाः, एको यवर्गः, अन्यः शवर्गः, **एवमष्टौ** वर्गाः, तत्र अवर्गः खगेशस्य गरुडस्य, कवर्गो मार्जारस्य, चवर्गः सिंहस्य, टवर्गः शुनः कुक्कुरस्य, तवर्गः सर्पस्य, पवर्गः आखोमूषकस्य, यवर्गः मृगस्य, शवर्गो मेषस्य । अत्र निजात्स्वस्मात्पञ्चमा वैरिणो येषां ते यथोक्ताः गरुडसर्पयोः, मार्जारमूषकयोः सिंहमृगयोः श्वमेषयोः परस्परं महावैरमित्यर्थः । अत्र स्त्रीपुंसयोर्नक्षत्रद्वयं भक्ष्यभक्षकवर्गे चेत् भवेत्तदा न शुभम् । यदा त्वेकवर्गे उदासीनवर्गे वा स्यात्तदा शुभमेव ।

एवञ्च स्वामिसेवकयोरपि विचार्यम्—

उक्तं च ज्योतिर्निबन्धे—

'वर्गेशास्तार्क्ष्यमार्जारसिंहश्वव्यालमूषकाः । मृगश्च शशकस्तत्र स्ववर्गात्पञ्चमो रिपुः ॥३६॥

पीताम्बरा—नाम के आदि अक्षर से वर्ग और अधिपति आदि—जिसके नाम का आदि अक्षर अ वर्ग में (अ आ इ ई········) हो उसके वर्ग का स्वामी गरुड, क वर्ग का मार्जार (विडाल) च वर्ग का सिंह, ट वर्ग का श्वान (कुत्ता), त वर्ग का सर्प, प वर्ग का मूषक, य वर्ग का मृग और श वर्ग का मेष (अज बकरा) स्वामी होता है। प्रत्येक वर्ग का क्रमिक पाँचवाँ वर्ग बैरी वर्ग होता है। जैसे अ वर्ग के पञ्चम त वर्ग अ वर्ग का स्वामी गरुड़ है। गरुड़ का बैरी त वर्ग-सर्प होता है। इसी प्रकार प वर्ग के स्वामी मूषक से, पञ्चम क वर्ग का स्वामी मार्जार है। मूषक का बैरी मार्जार या मार्जार का बैरी मूषक प्रत्यक्ष है। वर-वधू के नक्षत्र द्वय के भक्ष्य भक्षक वर्ग में विवाह नहीं होने चाहिये। दोनों का एक वर्ग या उदासीन वर्ग शुभद होता है।

जन्म कुण्डली आदिक की अप्राप्ति पर वर-वधू के नामों से उक्त पद्धति द्वारा नाम राशिमेलापक किया जा सकता है ॥ ३६ ॥

अथैवं कूटान्यभिधायेदानीं नक्षत्रराश्यैक्ये विशेषं शालिन्याह—

राश्यैक्ये चेद्भिन्नमृक्षं द्वयोः स्यान्नक्षत्रैक्ये राशियुग्मं तथैव ।
नाडीदोषो नो गणानां च दोषो नक्षत्रैक्ये पादभेदे शुभं स्यात् ॥ ३७ ॥

पीयूषधारा—राश्यैक्ये इति । द्वयोः स्त्रीपुंसयोरेकराशित्वे सति यदि भिन्नमृक्षं स्यात्तदा नाडीदोषो गणानां च राक्षसमनुष्यगणानां च दोषो नास्ति । यथा एकस्मिन्राशौ शततारका-पूर्वाभाद्रपदापादत्रयं च इत्येव रूपो नक्षत्रभेदः । तथैव नक्षत्रैक्ये राशियुग्मं राशिद्वयं चेत्स्यात्त-दापि प्रागुक्तो दोषो न स्यात् । उपलक्षणत्वात्तारादोषोऽपि न भवेत् । यथा एकस्मिन्नेव नक्षत्रे पूर्वाभाद्रपदाख्ये पूर्वाभाद्रपदायाः प्रथमपादत्रयं कुम्भे चतुर्थचरणाश्च मीने इत्येवं रूपो राशि-भेदः । यदाह नारद :—

'एकराशौ पृथग्धिष्ण्ये दम्पत्योः पाणिपीडनम् । उत्तमं मध्यमं भिन्नराश्येकर्क्षगयोस्तयोः ॥
एकर्क्षे चैकराशौ च विवाहः प्राणहानिदः ।'
वसिष्ठः—'दम्पत्योर्जन्मभे चैक्ये राशौ च निधनं तयोः ।
एकस्य च तथोद्वाहे किञ्चिद्भेदेऽपि वा न वा ॥' इति ।

नक्षत्रभेदे राशिभेदे च गर्गः—

'एकराशिं विना नाडीयोगमादौ विवर्जयेत् । न दोषस्त्वेकराशिस्थे भकूटेऽन्येषु मृत्युदः ॥' इति ।
भृगुरपि—'दम्पत्योरेकराशिश्चेत्पृथगृक्षं यदा भवेत् ।
वसिष्ठोक्तो विवाहः स्याद्गणनाडी न योजयेत् ॥ इति ।

अत एवाह केशवार्कः—

'अभिन्नराश्योर्यदि भिन्नमृक्षं यदि भिन्नराश्योः ।
प्रीतिस्तदानीं निबिडा नृनार्योश्चेत्कृत्तिकारोहिणिवन्न नाडी ॥' इति ।

चतुर्थचरणस्यायमर्थः । चेद्यदि कृत्तिकारोहिणीवत्स्यात्तदापि नाडीदोषो न स्यात् । उपलक्षणत्वाद्गणदोषोऽपि। यथा कृत्तिकारोहिण्योरेकनाडीत्वेऽपि गणदौष्ट्येऽपि तत्सूचिताऽशुभफलं नैव स्यात् ।

स्त्रीपुन्तारयोः प्रथमा पुन्तारा चेदेव शुभो विवाहः—

अत्रापि प्रथमतः पुन्तारापेक्षिता द्वितीया स्त्रीतारेत्यपि विशेषो ध्येयः । यदाह गर्गः—'एकराशौ पृथग्धिष्ण्ये पुन्तारा प्रथमा भवेत् । अतीव शोभना प्रोक्ता स्त्रीतारा चेत्त्वशोभना ॥' इति । तदैवं कैमुतिकन्यायेन यत्र नाडीगणदोषाद्यभावे यथा रोहिणीमृगयोर्हस्तचित्रयोर्वा तत्र पाणिपीडनं शुभं स्यादिति किं वाच्यमित्यर्थः ।

राश्यैक्ये नक्षत्रैक्ये पादभेदे विवाहः—

अथैकराशिनक्षत्रत्वेऽपवादमाह-नक्षत्रैक्ये इति । स्त्रीपुन्सयो राश्यैक्ये नक्षत्रैक्ये च यदि चरणभेदो यथा भरण्याः प्रथमपादे पुंसो जन्म द्वितीयपादे स्त्रियास्तदापि शुभं कल्याणं स्यात् । तदुक्तं केशवार्केण 'पराशरः प्राह नवांशभेदादेकर्क्षराश्योरपि सौमनस्यम् ॥' इति । सौमनस्यं प्रीतिः । वसिष्ठेनापि—'एकगृहसम्भवानां भवति विवाहः सुतार्थसम्पत्त्यै । यद्युभयोरेकर्क्ष भवति तदा चांशको भिन्नः ॥' इति । एतच्च सङ्कोचविषयं वेदितव्यम् । तथा च जगन्मोहने—'एकर्क्षे चैकराशौ च विवाहस्त्वशुभः स्मृतः । सङ्कोचे तु तदा कार्यो भिन्नः पादो यदा तयोः ॥' इति ।

नक्षत्रैक्यं तद्गणना च—

अत्रापि विशेषो ज्योतिर्निबन्धे विधिरत्ने—'रोहिण्यार्द्रामघेन्द्राग्नी तिष्यश्रवणपौष्णभम् । उत्तरा प्रोष्ठपाच्चैव नक्षत्रैक्येऽपि शोभनाः ॥' इति ॥ इन्द्राग्नी विशाखा । तदेतत्स्पष्टमुक्तं तत्रैव विधिरत्ने—'विशाखिकार्द्रश्रवणप्रजेशतिष्यान्त्यतत्पूर्वमघाः प्रशस्ताः । स्त्रीपुन्सतारैक्यपरिग्रहे तु शेषा विवर्ज्या इति सद्भिरन्ते ॥' इति । शेषास्तारा इत्यर्थः ।

जन्मनक्षत्रादीनामज्ञाने तज्ज्ञानोपायः—

अथ द्वयोरन्यतरस्य वा जन्मराशिनक्षत्राद्यज्ञाने उपायमाह वसिष्ठः—
'अज्ञातजन्मनां नृणां नामभे परिकल्पना । तेनैव चिन्तयेत्सर्वं राशिकूटादि जन्मवत् ॥

जन्मभं जन्मधिष्ण्येन नामधिष्ण्येन नामभम् । व्यत्ययेन यदा योज्यं दम्पत्योर्निधनप्रदम् ॥' इति । 'कुर्यात्षोडश कर्माणि जन्मराशौ बलान्विते । सर्वाण्यन्यानि कर्माणि नामराशौ बलान्विते ॥'इति । बृहस्पति-व्यवहारराजसेवासङ्ग्रामग्राममैत्रेषु । ज्ञातोपि जन्मराशौ फलमुक्त नामराशिवशात् ॥'इति।

नाम्नः सकाशाज्जन्मनक्षत्रज्ञानं स्वरोदयाभिहितशतपदचक्रान्तर्गतस्वीयनामादिवर्णवशाज्ज्ञेयमिति। यस्तु ऋकारादिवर्णो नास्ति ऋषभादिनामसु च दृश्यते तत्र यथासम्प्रदायं व्यवस्था॥३७॥

पीताम्बरा—वर-वधू के नक्षत्र और राशियों की एकता—वर कन्या दोनों की एक राशि और क्रमिक पृथक्-पृथक् दो नक्षत्र हों—(जैसे वर नक्षत्र आर्द्रा, कन्या नक्षत्र पुनर्वसु ३ चरण तक मिथुन राशि दोनों की है, आदि नाड़ी वेध दोष है) तो ऐसी स्थिति नाड़ी गण आदिक दोष नहीं होते।

तथा वर कन्या दोनों के एक ही नक्षत्र में राशियां दो (जैसे कृतिका मृगशिरा चित्रा, पुनर्वसु·······हों तो भी नाड़ी और गण दोष नहीं होते।

तथा वर-कन्या का एक ही नक्षत्र होते हुए भी यदि नक्षत्र के चरणों में भेद हो (अर्थात् एक नक्षत्र में भिन्न चरण हों) तो भी नाड़ी गण आदिक दोष नहीं होते।

जन्मराशि नक्षत्र आदिक के अज्ञान से नाम राशि नक्षत्र वश मेलापक विचार करना चाहिए।

ज्ञात जन्म राशि होते हुए भी लोक व्यवहार में, राजसेवा, संग्राम, ग्रामान्तर गमन और मैत्री आदि में नाम राशि वशात् शुभाशुभ विचार करना चाहिए ॥ ३७ ॥

अथ सेवकादिभस्य स्वाम्यादिभात् पूर्वत्वे विशेषं वसन्ततिलकयाह—

सेव्याधमर्णयुवतीनगरादिभं चेत् पूर्वं हि भृत्यधनिभर्तृपुरर्द्दिसद्भात् ।
सेवाविनाशधननाशनभर्तृनाश-ग्रामादिसौख्यहृदिदं क्रमशः प्रदिष्टम् ॥ ३८ ॥

पीयूषधारा—सेव्याधमर्णेति । स्पष्टार्थम् । तथा चोक्तं डामरसंग्रहे—

'भामिनीजन्मनक्षत्राद्द्वितीयं पतिजन्मभम् । न शुभं भर्तृनाशाय कथितं ब्राह्मयामले ॥ प्रथमं सेव्यजन्मर्क्षं द्वितीयं सेवकस्य च । न सेवा सुस्थिरा तस्य जलबुद्बुदवत्प्रिये ॥' इति । 'ऋणग्राहकजन्मर्क्षं प्रथममृणमस्य भात् । द्वितीयं ऋणसम्बन्धो न कर्त्तव्यः कदाचन ॥ कदाचिद्द्रव्यलोभेन क्रियते नैव लभ्यते । पार्वतीप्राणनाथेन प्रोक्तं डामरसंग्रहे ॥

ग्रामभं प्रथमं यस्य द्वितीयं जन्मभं भवेत् ।
न ग्राह्य सर्वथा ग्रामो यतः प्राप्यार्थनाशदः ॥' इति ॥ ३८ ॥

अथ विवाहे एवं मासशुद्धिं दम्पत्योरानुकूल्यशुद्धिं चोक्त्वेदानीं सूक्ष्मं निर्दोषं दिनलग्नविचारं वक्ष्यति । तत्रैकविंशतिः सर्वसंमता दोषाः नारदेन परिगणिताः—

'एकविंशतिदोषाणां नामरूपफलानि च । पितामहोक्तं संवीक्ष्य तानि वक्ष्ये समासतः ॥ पञ्चाङ्गशुद्धिरहितो दोषस्त्वाद्यः प्रकीर्त्तितः । उदयास्तशुद्धिरहितो द्वितीयः सूर्यसङ्क्रमः ॥ तृतीयः पापषड्वर्गो भृगुः षष्ठः कुजोऽष्टमः । गण्डान्तं कर्त्तरीरिष्फषडष्टेन्दुश्च सङ्ग्रहः ॥ दम्पत्योरष्टमं लग्नं राशिविषघटी तथा, दुर्मुहूर्त्तो वारदोषः खार्जूरिकसमांघ्रिभम् ॥ ग्रहणोत्पातभं क्रूरविद्धर्क्षं क्रूरसंयुतम् । कुनवांशो महापातो वैधृतिश्चैकविंशतिः ॥' इति ॥

अन्यैस्तु दशदोषा उक्ताः—

'वेधश्च लत्ता च तथा च पातः खार्जूरयोगो दशयोगचक्रम् ।
युतिश्च जामित्रमुपग्रहाश्च वाणाख्यवज्रौ दश चैव दोषाः ॥'

रति व्यवहारोच्चयेऽभिधानात् । 'दुर्मुहूर्त्तौ 'रवावर्यमा' इत्यादिः । वारदोषः कुलिकादिः । क्रूरसंयुतमित्यस्योपलक्षणत्वादकालवृष्टिना कोऽपि दोषो गृह्यते । यदाह वसिष्ठः—पञ्चाङ्गशुद्धिरहिताश्चोत्पाकाऽतालवृष्टिजाः ।' इति ।

एतद्दोषाणां फलानि—

एषां दोषाणां कर्मविशेषे फलमाह वसिष्ठ एव—

'एकविंशन्महादोषास्त्वेते ब्रह्ममुखोदिताः । कदाचिन्नैव सीदन्ति गुणानां कोटिकोटिभिः ॥
तस्मादेतेषु दोषेषु कदाचिन्नाचरेच्छुभम् । विवाहे विधवा नारी मरणं व्रतवन्धने ॥
ग्रामनाशः प्रतिष्ठायां सीमन्ते गर्भनाशनम् । नवान्नभोजने मृत्युः कृषौ तत्फलनाशनम् ॥
कर्त्तुर्नाशो गृहारम्भे प्रवेशे पतिनाशनम् । यात्रायां कर्तृनाशः स्याद्युद्धयाने विशेषतः ॥
लभते सुमहत्पुण्यमेषु श्राद्धादिकर्मभिः : इति ॥

षड्वर्गस्वरूपाणि

ग्रन्थकर्त्रा तु दोषलक्षणस्य वक्तव्यत्वात्पृथग्दोषनामानि नोक्तानि । तत्र पञ्जाङ्गदोषदुर्मुहूर्त्तवारदोषग्रहणोत्पातनक्षत्रदोषा आद्ये शुभाशुभप्रकरणे निरूपिता एवेति पुनर्नोच्यन्ते । दुर्मुहूर्त्तवारदोषयोः पुनरभिधाने प्रयोजनं तत्रैव वयं वक्ष्यामः । अतोऽन्यान्दोषान्सलक्षणान्विवक्षुरादौ व्याख्यानिरतेक्षत्वेन सुगमं षड्वर्गदोषमाह—कुजशुक्रेत्यादिचतुर्भिः पद्यैः ।

पीताम्बरा—नक्षत्रों के सम्बन्ध से नौकर और मालिक के शुभाशुभ व्यवहार—सेवक के नक्षत्र से सेव्य (मालिक) का प्रथम नक्षत्र सेवा विनाशक होता हैं ।

धनिक के नक्षत्र से ऋण ग्राहक का पहिलानक्षत्र धननाशाय होता हैं ।

पति के नक्षत्र से स्त्री का प्रथम नक्षत्र या स्त्री के नक्षत्र से पति का नक्षत्र द्वितीय (ज्येष्ठ नक्षत्र से कनिष्ठ) हो तो पतिनाश होता हैं ।

जिस ग्राम या नगर में निवास है उस ग्राम या नगर के नक्षत्र से अन्यत्र वास करने योग्य अभीष्ट ग्राम या नगर का प्रथम नक्षत्र भी ग्रामसुख वाधक होता है ।

अष्ट विध कूट मेलापक के अवसर पर ग्रन्थकार के मत से नक्षत्र मेलापक की ही प्रधानता दिखाई दे रही है। प्रकरण के आरम्भ में आचार्य ने प्रश्न लग्न से, क्रूर ग्रहों की स्थितियों से, विवाह विच्छेद, सद्योविवाहकारक, वैधव्य, बाल वैधव्यादि योगों का उल्लेख करते हुए सन्तान भाव का सांकेतिक विचार भी किया हैं । जिससे वर-कन्या की ग्रह-मेलापक पद्धति पूर्णतया स्पप्ट नहीं हो पा रही है । अतः आचार्यो के वाक्यों के अनुसार यहाँ पर ग्रह मेलापक की संक्षिप्त विचारशैली का प्रदर्शन भी आवश्यक प्रतीत होता है ।

नक्षत्र मेलापक में पूर्ण गुण ३६ होते हैं । वर कन्या के नक्षत्र मेलापक में १६ या कम

गुणैक्य साधारण आग्राह्य, १८-२० गुणैक्य विवाह सम्बन्ध के योग्य, २० से ३० तक के भीतर का गुणैक्य उत्तम विवाह का समझना चाहिए।

ग्रह मेलापक—फलित ग्रन्थों में स्त्री नाशक और पति नाशक योग प्रसिद्ध हैं। इन योगों के अनुसार पति के ग्रहों की स्थिति प्रबल होनी चाहिए।

वर कन्या की कुण्डलियों में लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम और द्वादश में पाप ग्रहों के होने से पति नाशक या पत्नी नाशक योग होते हैं। पुरुष कुण्डली में उक्त स्थानों में मंगल हों तो पुरुष को मंगला, कन्या कुण्डली में उक्त स्थानों में किसी एक में मंगल ग्रह हो तो लड़की को मंगली कहते हैं।

विद्वानों के अनुभव से उक्त स्थानों में मंगल ग्रह सर्वाधिक दोषी उससे कम शनि और उससे कम दोषी शेष ग्रह होते हैं।

उक्त दोष लग्न से तो देखे ही जाते हैं फिर भी चन्द्रमा, शुक्र और सप्तमश ग्रह से भी देखने चाहिए। द्वितीय और सप्तम भावों के पाप ग्रह भी कन्या कुण्डली के पुरुष के लिए और पुरुष कुण्डली के कन्या के लिए अनिष्टप्रद होते हैं। कन्या कुण्डलो में सप्तम, अष्टम स्थानों के पाप ग्रह योग अनिष्ट सूचक, द्वितीय अष्टम स्थानों में शुभ योग सौभाग्यवर्द्धक होता है। सन्तान प्रतिबन्धक योग भी एक प्रकार के वैधव्य सूचक योग हैं। पञ्चम एकादश के पाप ग्रह भी विशेष वैधव्य सूत्रक होते हैं। अतः इस प्रकार के प्रवल योग वर की कुण्डली में भी उपलब्ध हों और कन्या के उत्तम सौभाग्य योग हों तभी विवाह सम्बन्ध की सम्मति देनी चाहिए। आयु सम्तान और भाग्य योगों को भी गम्भीरतापूर्वक देख व समझ कर ही "वर कन्या परस्पर का ग्रह मेलापक विवाह योग्य है" ऐसा कहना चाहिए ॥ ३८ ॥

तत्र गृहनवांशस्वामिनः मञ्जुभाषिणीवृत्तेनाह—

कुजशुक्रसौम्यशशिसूर्यचन्द्रजाः कविभौमजीवशनिसौरयो गुरुः।
इह राशिपाः क्रियमृगास्यतौलिकेन्दुभतो नवांशविधिरुच्यते बुधैः ॥ ३९ ॥

पीयूषधारा—कुजेति। अत्र लग्नादीनां लक्षणं नारदेनोक्तं—

'त्रिशद्भागात्मकं कग्नं होरा तस्यार्द्धमुच्यते। लग्नत्रिभागो द्रेष्काणो नवमांशो नवांशकः। द्वादशाशो द्वादशांशस्त्रिशांशस्त्रिशदंशकः। षड्वर्गाः कथिता ह्येते तेषामीशा इमे स्मृताः ॥' इति।

तेषां स्वमिनः—

तत्रैते भौमशुक्रबुधचन्द्रसूर्यबुधशुक्रभौमगुरुशनिगुरवः क्रमेणेह षड्वर्गे राशिपा मेषादिराशीनां स्वामिनः।

नवांशैरंशलनानां विभागो राशीशाश्च—

क्रियेति। क्रियो मेषः, मृगास्यं मकरः, तौलिकं तुला, इन्दुभं कर्कः, एभ्यो द्वादशष्वपि राशिषु नवांशविधिर्बुधैरुच्यते। मेषे मेषादेव, वृषे मकरादेव, मिथुने तुलातः। कर्के कर्कादेव। एवं सिंहेऽपि मेषादेव। एवं कन्यादिष्वपि राशिषु मकरादित एव। ऐवमेव धनुरादिष्वपीत्यर्थः। यदाह नारदः—

'सिंहस्याधिपतिर्भानुश्चन्द्रः कर्कटकेश्वरः । मेषवृश्चिकयोर्भौमः कन्यामिथुनयोर्बुधः ॥
धनुर्मीनयोर्देवेज्यः शुक्रो वृषतुलेश्वरः । शनिर्मकरकुम्भेश इत्येते राशिनायकाः ॥' इति ।
'नवमांशा मेषसिंहचापमेषादयः क्रमात् । क्रमाद्गोमृगकन्यासु ज्ञेयाः स्युर्मकरादयः ॥
तुलामिथुनकुम्भेषु स्युः क्रमेण तुलादयः । अलिकर्कटमीनेषु क्रमात्स्युः कर्कटादयः ॥'इति॥३९।

पीताम्बरा—कथित रवि, गुरु, चन्द्र शुद्धि, मास शुद्धि नक्षत्र मेलापक आदि कथन के अनन्तर निर्दोष सूक्ष्म दिन और लग्न का विचार किया जा रहा है—मेषादि मीन पर्यन्त द्वादश राशियों के क्रमशः मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, शनि और बृहस्पति राशीश्वर होते हैं । सूर्य ग्रह केवल सिंह राशि का एवं चन्द्रमा केवल कर्क राशि का स्वामी है शेष पाँच ग्रह मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि दो-दो राशियों के स्वामी होते हैं । जैसे चक्र को देखने से स्पष्ट होता हैं—

राशियाँ अंकों व नामों में	मेष १	वृष २	मिथुन ३	कर्क ४	सिंह ५	कन्या ६	तुला ७	वृश्चिक ८	धनु ९	मकर १०	कुम्भ ११	मीन १२
अधिपति ग्रह	मंगल	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मंगल	गुरु	शनि	शनि	गुरु

नवांशज्ञान—

एक राशि में तीस अंश होते हैं । प्रत्येक राशि के नवें विभाग का नाम नवांश होता है । जैसे, $३० \div ९ = ३^{\circ}।२०'$ तीन अंश बीस कला एक नवांक का मान होता है । मेष राशि में प्रथम नवांश मेष का दूसरा बृषभ तीसरा मिथुन····इस प्रकार मेष में नवम नवांश धनु का होता है । पुनः वृष राशि का नवांश मकर से चलकर वृष राशि में नवम नवांश कन्या राशि का होता है । फिर मिथुन राशि का प्रथम नवांश तुला से चलकर मिथुन में नवम नवांश होगा । अतः कर्क राशि का प्रथम नवांश कर्क से ही चल कर अन्तिम नवांश मीन का होगा । इस प्रकार मेषादिक चार-चार राशियों में नवांश क्रम मेष, मकर, तुला और कर्क से प्रारम्भ होता है । राशियों के स्वामी ग्रहों की तरह ही नवांश पति ग्रह होते हैं । मेष राशि का अधिपति मंगल और मेष के प्रथम नवांश का पति भी मंगल होता है । राशि और नवांश का पति जहाँ पर एक ही ग्रह हो तो ऐसी जगह वह राशि वर्गोत्तम राशि कही जाती है ॥ ३९ ॥

अथ होराविधिं गायत्रीच्छन्दोभेदेन शशिवदनावृत्तेनाह—

समगृहमध्ये शशिरविहोरा ।
विषमभमध्ये रविशशिनोः सा ॥ ४० ॥

पीयूषधारा—समगृहेति । पञ्चदशभागात्मिकैका होरा समराशिमध्ये प्रथमा चन्द्रस्यापरा सूर्यस्य । विषमराशिमध्ये प्रथमा रवेरपरा चन्द्रस्येत्यर्थः । 'होरार्केन्द्वोरोजराशौ समभे चन्द्रसूर्ययोः' इति नारदोक्तेः ॥ ४१ ॥

पीताम्बरा—होरा ज्ञान—प्रत्येक राशि के ३० अंशों में २ का भाग देने से १५° की एक होरा होती है। राशि मान का अर्द्धांश होरा होता है। इस प्रकार राशियों में २४ होरा होती हैं। अहोरात्र शब्द के आदि और अन्तिम वर्णों के लोप से भी होरा शब्द होता है। अहोरात्र में ६० घटिका और २४ होरा होती हैं, अतः ६० ÷ २४ = २ घटी ३० पल (ढाई घटी) की एक होरा या १ घण्टा होता है यह कालात्मक होरा मान है। आंग्ल भाषा में घण्टे का पर्याय शब्द Hour भी अवर होरा इसी अभिप्राय से है। स्थूलतया ५ घटी की एक लग्न तो २½ घटी में एक अर्द्ध लग्न होरा होती है। होरा के अधिपति दो ही ग्रह सूर्य और चन्द्रमा होते हैं। समराशियों में (२, ४, ६, ८, १०, १२) प्रथम होरा चन्द्रमा की और दूसरी होरा सूर्य की होती हैं। विषम राशियों में (१, ३, ५, ७, ९, ११) में प्रथम होरा रवि की दूसरी होरा चन्द्रमा की होती है।

ध्यान देने की बात है कि जिस प्रकार षडवर्ग या दशवर्गादि में राशियों के ही वर्ग विशेष कहे गये हैं उसी प्रकार होरा भी राशियों की ही होनी चाहिए। जिस राशि में जिस राशि की होरा होगी उसी का अधिपति होरेश भी होगा। २४ होराओं के अधिपति केवल सूर्य चन्द्रमा ही हों यह बात तर्क संगत नहीं है। आर्य पद्धति लुप्त हो जाने से कालान्तर में भ्रम से सूर्य चन्द्रमा मात्र को होराधीश कहने की भ्रमपूर्ण प्रथा प्रचलित हो गई थी।

इसलिए शुद्ध होरा ज्ञान की आर्ष पद्धति निम्न भाँति की दी जा रही है। मेष में प्रथम होरा मेष की, मेष में दूसरी होरा वृषभ की एवं वृष में प्रथम होरा मिथुन की दूसरी होरा कर्क की एवं आगे भी इसी क्रम से क्रमशः होरा राशि समझ कर उनके स्वामियों को होरेश ग्रह समझना चाचिए।

स्पष्ट ज्ञान के लिए होरा चक्र

राशियाँ	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
प्रथम होरा १५°	मेष	मिथुन	सिंह	तुला	धनु	कुम्भ	मेष	मिथुन	सिंह	तुला	धनु	कुम्भ
द्वितीय होरा १५°	वृषभ	कर्क	कन्या	वृश्चिक	मकर	मीन	वृषभ	कर्क	कन्या	वृश्चिक	मीन	मकर

॥ ४० ॥

अथ त्रिंशांशद्रेष्काणान्वसन्ततिलकयाह—

शुक्रज्ञजीवशनिभूतनयस्य बाणशैलाष्टपञ्चविशिखाः समराशिमध्ये।
त्रिंशांशको विषमभे विपरीतमस्माद् द्रेष्काणकाः प्रथमपञ्चनवाधिपानाम् ॥४१॥

पीयूषधारा—शुक्रज्ञेति । समराशिमध्ये क्रमेण प्रथमतः पञ्चानामंशानां शुक्रः स्वामी, ततः शैलानां सप्तानां ज्ञो बुधः, ततोऽष्टानां जीवो गुरुः, ततः पञ्चानां शनिः ततो विशिखा बाणाः पञ्च तेषां भूतनयो भौमः । शुक्रज्ञेत्यादिसमाहारद्वन्द्वः । विषमभे तु अस्मात्समराशेर्विपरीतं ज्ञेयम् । यथा प्रथमतः पञ्चानां भौमः, ततः पञ्चानां शनिः, ततोऽष्टानां गुरुः, ततः सप्तानां बुधः ततः पञ्चानां शुक्र इत्यर्थः । अयमेव त्रिंशांशकसञ्ज्ञ इति । यदाह नारदः—'कुजार्कीज्यज्ञशुक्राणां बाणेष्वष्टाद्रिमार्गणाः । भागाः स्युर्विषमे ते तु समराशौ विपर्ययात् ॥' **इति** । अत्र केचिदाहुः—तुर्विशेषे । तु इति हि प्रथमाबहुवचनान्तः । ततः प्रथमान्तसामानाधिकरण्यानुरोधादानन्तर्याच्च बाणादिका भागा एव परामृश्यन्ते न स्वामिनः । अनान्तर्याद्भिन्नविभक्तिकत्वाच्च । तथा सत्ययमर्थः । समराशौ तु विशेषः । ते बाणादिका भागा विपर्ययात् व्यत्यस्तस्थितानामेव कुजादीनां ज्ञेयाः । यथा प्रथमतः पञ्चानामंशानां स्वामी भौमः, ततः सप्तानां शनिः, ततोऽष्टानां गुरुः, ततः पञ्चानां बुधः, ततः पञ्चानां शुक्र इति । मूलेप्येवमेव वक्तुमुचितम् । तत्कस्य हेतोर्द्वयोरपि वैपरीत्यम् । उच्यते—अव्ययानामनेकार्थत्वात्तुशब्दस्य समुच्चयार्थत्वाङ्गीकरणात्कुजादयोऽपि समुच्चीयन्ते । तथा सति बाणादिका भागाः कुजादिकाः स्वामिनोऽपि विपर्यस्ता ज्ञेया **इत्यर्थः** । अत्रार्थे प्रमाणं श्रुतिकीर्तिवचनं यथा—

'पञ्चाथ पञ्च चाष्टौ सप्त च पञ्चैव चोजभवनेषु । धरणिसुतमन्दसुरगुरुबुधशुक्राणां क्रमेणांशाः ॥
पञ्चैव सप्त चाष्टौ पञ्चपञ्चाथ युग्मभवनेषु । भागा भार्गवशशिसुतसुरेज्यशनिभूमिपुत्राणाम्॥'इति।

अत एव वराहेणापि—

'युजि तु ते विपर्यस्ताः' इत्यत्र तुशब्दः प्रयुक्तः । यदि नायमर्थोऽभिप्रेतः स्यात्तदा न केऽपि तु शब्दं प्रयुञ्जीरन्निति सर्वं निरवद्यम् ।

द्रेष्काणका इति । अत्र प्रमाणं—'दशांशाः द्वादशसु राशिषु प्रथमो द्रेष्काणः प्रथमस्य स्वराश्यधीशस्य द्वितीयो द्रेष्क्राणः स्वराशितः पञ्चमराशीश्वरस्य तृतीयः स्वराशितो नवमराशीश्वरस्य । यथा वृषे प्रथमो द्रेष्काणो वृषाधीशशुक्रस्य, द्वितीयः कन्याधीशबुधस्य, तृतीयो मकराधीशशनेरित्यर्थः । 'स्युर्द्रेष्काणा लग्नपञ्चनवराशीश्वराः क्रमात्' इति नारदोक्तेः ॥ ४१ ॥

पीताम्बरा—त्रिंशांश और द्रेष्काण—त्रिंशांश-राशि के तीस विभागों में प्रत्येक विभाग का नाम त्रिंशांश होना चाहिए । अतः त्रिंशांश ३० होने चाहिए । पर यहाँ बात विचित्र है । नाम तो त्रिंशांश है किन्तु विभाग ५ हो हैं । ३० ÷ ५ = ६ अंश का प्रत्येक त्रिंशांश न होकर न्यूनाधिक अंश नियत देखे जा रहे हैं । प्रचलित प्रथानुसार ग्रन्थकार ने भी समराशियों (२, ४, ६, ८, १०, १२) में शुक्र के ५, बुध के ७, बृहस्पति के ८, शनि के ५, मंगल के भी ५ अंश तथा विषम राशियों में प्रथम ५ अंश तक मंगल, आगे ५ अंश तक शनि आगे ८ अंश तक गुरु आगे के ७ अंश बुध और अन्तिम ५ अंशों का स्वामी शुक्र होता है ।

मेषादिक क्रम से त्रिंशांश में सूर्य चन्द्रमा का भी विभाग उपलब्ध होगा अथवा आचार्यों के त्रिंशांश शब्द का पञ्चमांश अर्थ मान कर ३० ÷ ५ = ६ प्रत्येक त्रिंशांश (पञ्चमांश) को ६ अंश का मान कर पञ्चमांश में मेषादि गणना से सभी ग्रहों के आधिपत्य की सूचना मिलती है ।

राशियां		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
द्रेष्काण (१)	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०
द्रेष्काण (२)	२०	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११
द्रेष्काण (३)	३०	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२

प्रत्येक राशि में दश-दश अंश के तीन भाग ($\frac{३०^\circ}{३} = १०^\circ$) राशि का तृतीय विभाग द्रेष्काण कहा जाता है। प्रत्येक राशि में प्रथम द्रेष्काण १०° तक उसी राशि का द्वितीय २० अंश तक उस राशि की पाचवीं राशि का, एवं तृतीय द्रेष्काण ३० अंश तक उस राशि से नवीं राशि का होता है। इस प्रकार प्रत्येक राशि में जो द्रेष्काण राशि होगी, उसका अधिपति ग्रह द्रेष्काण स्वामी होता है। यह प्रचलित प्रथा है। किन्तु अनेक युक्तियों से द्रेष्काण में भी मेषादिक गणना सिद्ध होती है। प्रचलित परिपाटी में विषम राशि में सभी द्रेष्काण विषम राशियों के (पुरुष) और समराशियों में सभी द्रेष्काण (स्त्री) समराशियों के हो रहे हैं। "द्रेष्काणैस्तत्कराः स्मृताः"—चोर ज्ञान के लिए द्रेष्काण से विचार किया जाता है। चोर स्त्री और पुरुष दोनों हो सकते हैं। अतः द्रेष्काण गणना मेषादिक ठीक होगी जो चक्र से स्पष्ट है।

अथ द्वादशांशं षड्वर्गोपसंहारं सफलं वसन्ततिलकयाह—

स्याद्द्वादशांशं इह राशित एव गेहं
होराऽथ दृक्कनवमांशकसूर्यभागाः।
त्रिंशांशकश्च षडिमे कथितास्तु वर्गाः
सौम्यैः शुभं भवति चाशुभमेव पापैः॥ ४२॥

पीयूषधारा—स्यादिति। इह षड्वर्गे द्वादशांशः सार्द्धमंशद्वयं तत्स्वराशित एवेष्टांशान्तं गणितं सद्यस्तद्राशिस्वामी स द्वादशांशेश्वरः। आरभ्य लग्नराशेस्तु द्वादशांशेश्वरः क्रमात्' इति नारदोक्तेः। अन्यच्चरणत्रयं स्पष्टतरम्। यदुक्तं वसिष्ठेन—

'लग्नं तदर्द्धं च ततस्त्रिभागो नवांशकश्च द्विदशांशकश्च।
त्रिंशांशकश्चेति हि वर्गषट्कं शुभं शुभन्योमचराधिपत्यम्॥
यः पापषड्वर्गभवो हि दोषः पञ्चांगसौम्यग्रहलग्नजातम्।
गुणौघमम्भोधिममोघवाणः शुष्यत्यशेषं खलु राघवस्य॥' इति।

तस्मात्सौम्यपापग्रहषड्वर्गसाङ्कर्ये सति सौम्यषड्वर्गस्त्रिभ्योऽधिकश्चेच्छुभः त्रिभ्यो हीनश्चेदशुभ इत्यर्थः॥ ४२॥

पीताम्बरा—द्वादशांश ज्ञान के अनन्तर षडवर्गोपसंहार—राशि के १२ वें विभाग का, नाम सदृश विभाग का नाम द्वादशांश है। ३० ÷ १२ = २।३० एक द्वादशांश का मान होता है। किसी राशि के द्वादशांश ज्ञान के लिए अंश संख्या को दो से गुणा कर ५ का भाग देकर लब्धि में एक जोड़ने से जो संख्या होगी तत्संख्यक मेषादि गणनया द्वादशांश होता है। जैसे ०।२८।५ स्पष्ट सूर्य के २८ अंश मेष में हैं। अतः $\frac{२८ \times २}{५} = \frac{५६}{५} = ११$ में एक जोड़ने से १२ वाँ द्वादशांश मेष में मीन का होता है।

इस प्रकार (१) लग्न, (२) होरा, (३) द्रेष्काण, (४) नवमांश, (५) द्वादशांश और (६) त्रिंशांश, ये ६ षड्वर्ग कहलाते हैं। जिस लग्न या ग्रह में शुभ ग्रहों का अधिक वर्ग आता हैं, वह शुभ एवं अशुभ ग्रहों के अधिक वर्ग से वह ग्रह या लग्न अशुभ कही जाती है ॥ ४२ ॥

अथ गण्डान्तदोषं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

ज्येष्ठापौष्णभसार्पभान्त्यघटिकायुग्मं च मूलाश्विनी-
पित्र्यादौ घटिकाद्वयं निगदितं तद्भस्य गण्डान्तकम् ।
कर्काल्यण्डजभान्ततोऽर्धघटिका सिंहाश्वमेषादिगा
पूर्णान्ते घटिकात्मकं त्वशुभदं नन्दातिथेश्चादिमम् ॥ ४३ ॥

पीयूषधारा—ज्येष्ठेति। गण्डान्तं नाम सन्धिविशेषः। स चानेकविधः—नक्षत्रसन्धिस्तिथिसन्धिर्लग्नसन्धिस्तथा योगसन्धिः करणसन्धिर्वर्षसन्धिरयनसन्धिर्ऋतुसन्धिर्माससन्धिः पक्षसन्धिर्दिनसन्धी रात्रिसन्धिर्मध्याह्नसन्धिः प्रातःसन्धिः सायंसन्धिर्निशीथसन्धिश्च। तत्र तिथिनक्षत्रलग्नविशेषाणां यः सन्धिर्नियतकालः स गण्डान्तसंज्ञः। अन्येषां तु सन्धिर्नियतकालसन्धिशब्दवाच्य एव।

नक्षत्रगण्डान्तदोषस्तत्कालानि च—

तत्रादौ नक्षत्रगण्डान्तमुच्यते। ज्येष्ठा प्रसिद्धा, पौष्णभं रेवती, सार्पभमाश्लेषा, एषामन्ते घटिकाद्वयम्। तथा मूलाश्विन्यौ प्रसिद्धे, पित्र्यं पितरो देवतास्येति पित्र्यं मघा, 'वाय्वृतुपित्रुषसो यत्' इति यत्। एषामादौ घटिकाद्वयं गण्डान्तं नाम। यथा रेवत्यश्विन्योराश्लेषामघयोर्ज्येष्ठामूलयोरन्तरालवर्तिघटिकाचतुष्टयं नक्षत्रगण्डान्तमशुभदमित्युत्तरार्द्धेनान्वयः। तदुक्तं रत्नमालायाम्—

'पौष्णाश्विन्योः सार्पपित्र्यर्क्षयोश्च यच्च ज्येष्ठामूलयोरन्तरालम्।
तद्गण्डान्तं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकालेष्वनिष्टम् ॥' इति।

यत्तु वसिष्ठेनोक्तं—

'यदन्तरालं पितृसार्पयोश्च मूलेन्द्रयोराश्विनपौष्णयोश्च।
भसन्धिगण्डान्तमिति त्रयं तद्यामप्रमाणं शुभकर्महन्तृ ॥' इति।

यामः प्रहरः। नक्षत्रभोगस्येति शेषः। नारदोऽपि—

'सार्पेन्द्रपौष्णधिष्ण्यान्ते षोडशांशा भसन्धयः। तदग्रभेष्वाद्यजाताः पापा गण्डान्तसंज्ञकाः ॥'
उग्रं सन्धित्रितयजं गण्डान्तत्रितयं महत्। मृत्युदं जन्मयानादिविवाहस्थापनादिषु ॥'

षोडशांशो नक्षत्रभोगस्यार्द्धप्रहर इति यावत्। आद्यजाताः षोडशांशाः, तदेतद्दोषमहत्त्वाल्पत्वसूचनार्थम्। तथा हि चतुर्घटिके नक्षत्रगण्डान्ते महान्दोषस्तदधिके त्वष्टघटिकात्मके मध्यमदोषः। ततोऽप्यधिके चरणावधिके त्वल्पो दोषः। अत एवोक्तं सूर्यसिद्धान्ते—

'सार्पेन्द्रपौष्णधिष्ण्यानामन्त्याः पादा भसन्धयः। तदग्रभेषु साद्धांशो गण्डान्तं नाम कीर्त्यते।
व्यतीपातत्रयं घोरं गण्डान्तत्रितयं तथा। एतद्भसन्धित्रितयं सर्वकर्मसु वर्जयेत् ॥' इति।

अर्द्धांशश्चरणार्द्धं प्रहर इत्यर्थः। दीपिकायां च—

'आद्ये मघाचतुर्भागे मूलपादाद्य एव च। रेवत्यन्ते चतुर्भागे विवाहः प्राणनाशकः ॥' इति।

अथ लग्नगण्डान्तमुच्यते—

कर्केति । कर्कः प्रसिद्धः, अलिर्वृश्चिकः, अण्डजो मीनः 'मीनो वैसारिणोऽण्डजः' इत्यभिधानात् । एषां भानां लग्नानामन्तः सप्तम्यन्तात्तसिः । अन्तेऽर्द्धघटिका । तथा सिंहमेषौ प्रसिद्धौ, अश्वो धनुः, एषां लग्नानामादिभूतार्द्धघटिका गण्डान्तं नाम । तथा कर्कसिंहयोर्वृश्चिकधनुषोर्मीनमेषयोर्वा लग्नयोरन्तर्वर्तिन्येका घटिका लग्नगण्डान्तमशुभमित्यर्थः । यदाह कश्यपः– 'सिंहकर्कटयोश्चापकीटयोर्मीनमेषयोः । गण्डान्तमन्तरालं तन्नाडिका निधनप्रदा' इति । यत्तु नारदेनोक्तं—'कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः । गण्डान्तमन्तरालं स्याद्घटिकार्द्धं मृतिप्रदम् ॥' इति । वसिष्ठेनापि—'लग्नान्तरालं घटिकार्द्धमेतत्कुलीरहर्योरलिचापयोश्च । मीनाजयोः सर्वगुणान्निहन्ति लोभो यथा सर्वगुणान्नरस्य ॥' इति—तद्दोषाधिक्यसूचनार्थम् ।

अथ तिथिगण्डान्तमुच्यतै—

पूर्णान्त इति । पूर्णाः पञ्चमीदशमीपञ्चदश्यस्तासामन्ते घटिकैका, तथा नन्दा प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यस्तासामादिभूतैका घटिका तिथिगण्डान्तं नाम । यथा पञ्चमीषष्ठ्योर्दशम्येकादश्योः पञ्चदशीप्रतिपदोर्वा तिथ्योरन्तरालवर्तिघटिद्वयं तिथिगण्डान्तमशुभमित्यर्थः । यदाह नारदः—

'पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिर्नाडीद्वयं सदा । गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु ॥' इति ।

यत्तु कश्यपेनोक्तं—

'पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिर्नाडीचतुष्टयम् । उद्वाहजन्मयानेषु गण्डान्तं निधनप्रदम् ॥' इति ।

तद्दोषतारतम्यसूचनार्थम् । एवं गण्डान्तसंज्ञः सन्धिरुक्तः ।

तत्र तिथिलग्नगण्डान्तपरिहारः शाकल्यसंहितायाम्—

'तथैव तिथिगण्डान्तं नास्तीन्दौ बलशालिनि । तथैव लग्नगण्डान्तं नास्ति जीवे बलान्विते ॥ इति

अत्र प्रसङ्गादन्येषामपि सन्धिरुच्यतेऽस्माभिः ।

यदाह गुरुः—

'घटिकाद्वयमृक्षान्ते मासान्ते तु दिनत्रयम् । वर्षान्ते वर्जयेत्पक्षं ग्रहणाद्दिनसप्तकम् ॥' इति ।

तिथ्यादिसन्धिमप्याह वसिष्ठः—

'पक्षेऽब्दसन्धिस्त्रिदिनं च माससन्धिस्त्रिनाड्यः खलु सन्ध्ययोश्च ।
नाड्यश्चतस्रःस्थितिऋक्षयोगं सन्धिस्तदर्द्धं करणस्य सन्धिः ॥'

सौरचान्द्रसावननाक्षत्राब्देषु त्याज्यदिनानि विवाहे—

वर्षेषु विशेषमाह स एव—

'सौराब्दान्ते त्यजेत्पक्षं चान्द्रे तु नवमं त्यजेत्। सावनान्तेऽष्टमं त्याज्यं नाक्षत्रे पौष्णभात्त्र्यहम्॥' इति

अत्रापि विशेषमाह स एव—

'अब्दाः स्युस्त्रिविधा जीवसौरचान्द्राह्वयाः सदा । तेषामादौ तथा चान्ते त्रिदिनं वर्जयेच्छुभे ॥' इति ।

अयं च सर्वकार्यसाधारणो निषेधः, अन्यथा मीनादित्ये विवाहप्रसङ्गाभावादेव वर्षान्तनिषेधस्य वैयर्थ्यापातात् ।

गुरुः—

'ऋक्षान्ते पुत्रनाशः स्यान्मासान्ते तु धनक्षयः । वर्षान्ते वर्गनाशः स्याद्ग्रहणात्सर्वनाशनम् । इति ।

सर्वत्रापवादो विवाहे—

आवश्यकत्वे—'नक्षत्रयोगतिथिसन्धिषु नाडिकैका तिथ्यष्टविंशतिपलैः सहितोभयत्र । कर्कालिमीनातनुसन्धिषु दिक्पलानि त्यक्तानि शेषविवरेषु च पञ्च।।' इति । वासनासिद्धं केशवार्कवाक्यमनुकर्त्तव्यम् । वासना च सिद्धान्तशिरोमणावभिहिता—

पञ्चशशितनुविकलाभ्यश्चन्द्रभुक्तेन्दुभान्वोर्गति विवरकलाभिर्भूय एवाभिरेव ।
पृथगथ गतिगुण्या नाडिकाः सन्तिरामा । भतिथिकरणयोगानां फलं तत्र मिश्रम् ।।' इति ।'

सन्धिफलमप्याह केशवार्कः—

'सन्धौ पुरन्ध्री शुचमेति वन्ध्या मृतप्रजा वा यदि सन्धिमन्धिः ।
वदन्ति वात्स्या ऋतुना विमूढा निशीथमध्यं दिनसन्धिषूढा ।।' इति ।

अर्द्धरात्रमध्यन्दिनसन्धिर्मध्ये निशाह्नोर्घटीत्र्यंशमित्याद्यप्रकरणेऽभिहितः । सन्धिगन्धिस्तु केशवार्केणोक्तः—

'रवेर्भवेदेकगृहाधिकस्य यदंशवृन्दं खलु सायनस्य ।
तदत्र राशिद्वयभागतष्टं स्पष्टं वसन्तादृतवो भवन्ति ।।
तत्सन्धयोगाङ्गघटीसमाः स्युर्द्विसंगुणाश्चेद्विषुवायनीयाः ।
स सन्धिसन्धिः खलु यत्र शेषं शून्यं भवेदेष विशेषपुण्यः ।।' इति ।

मीनसंक्रान्तिमारभ्य वसन्तादृतुगणनेति पक्षमङ्गीकृत्यैकगृहाधिकस्येत्युक्तम् । ग्रन्थकृदप्येतद्विषुवायनेष्विति पद्येन सङ्क्रान्तिदोषे वक्ष्यतीत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

अभिजिन्मुहूर्तेऽपि गण्डान्तदोषस्यापवादान्तरम्—

गण्डान्तदोषपरिहारमाह वशिष्ठः—'गण्डान्तदोषमखिलं मुहूर्तोऽभिजिदाह्वयः । हन्ति यद्वन्मृगं व्याधः पक्षिसङ्घमिवाखिलम् ।।' तदेतद्दोषापवादाख्यस्य प्रकारस्य नियामकत्वाद्विवाहविषयं न जातकादौ ।। ४३ ।।

पीताम्बरा—गण्डान्त दोष (सन्धिकाल)—सन्धिकाल विशेष का नाम गण्डान्त काल है । ये समयों की सन्धियाँ, नक्षत्र सन्धि, पक्ष सन्धि, दिन सन्धि, रात्रि सन्धि, मध्याह्न सन्धि, प्रातः सन्धि, सायं सन्धि और निशीथ संधि से प्रसिद्ध हैं । मुख्यतया यहाँ पर तिथि नक्षत्र और लग्न गण्डान्त (सन्धि) शुभ कर्म में दूषित होने से त्याज्य समय कहा जा रहा है ।

ज्येष्ठा, रेवती, आश्लेषा नक्षत्रों की अन्तिम २ घटिका (४८ मिनिट), मूल, अश्विनी, मघा की आदि की २ घटिका (४८ मिनिट) नक्षत्र गण्डान्त होता है । कर्क वृश्चिक मीन लग्नों की अन्तिम आधी घटी (१२ मिनिट) और सिंह धनु मेष लग्नों की आदिम आधी घटी (१२ मिनिट) लग्न गण्डान्त होता है । पूर्णातिथि (५, १०, १५) की अन्तिम १ घटी,

और नन्दा तिथि की आदिम १ एक घटिका तिथि गण्डान्त कहा जाता है। ये समय अशुभ फलद होने से शुभ कर्मों में त्याज्य हैं ॥ ४३ ॥

अथ कर्त्तरीदोषमनुष्टुभाह—

लग्नात्पापावृज्वनृजू व्ययार्थस्थौ यदा तदा।
कर्तरी नाम सा ज्ञेया मृत्युदारिद्र्यशोकदा ॥ ४४ ॥

पीयूषधारा—लग्नादिति। यदा पापग्रहौ लग्नाद्व्ययार्थस्थावृज्वनृजू द्वादशस्थः पापग्रहो मार्गगतिर्द्वितीयस्थः पापग्रहो वक्री स्यात्तदा कर्त्तरीनामदोषः। कृन्तति स्त्रीपुंसयोः प्राणांश्छेदयतीति 'कृती छेदने' इति धात्वर्थानुसारादन्वर्था। सम्मुखकर्त्तरीयं मृत्युदारिद्र्यशोकदा भवेत्। यदाह नारदः—

'लग्नाभिमुखयोः पापग्रहयोर्ऋजुवक्रयोः। सा कर्त्तरीति विज्ञेया दम्पत्योर्गलकर्त्तरी ॥
कर्त्तरीदोषसंयुक्तं यल्लग्नं तत्परित्यजेत्। अपि सौम्यग्रहैर्युक्तं गुणैः सर्वैः समन्वितम् ॥' इति।

गर्गोऽपि—

'व्यये मार्गगतिः क्रूरो वक्री क्रूरो धने यदि। तौ च लग्नांशतुल्यौ च तदा घोराख्यकर्त्तरी ॥'

कर्तरीदोषाभाव—

यदा तु द्वितीये मार्गी द्वादशे च वक्री अथ द्वावपि क्रूरौ व्ययार्थस्थौ सन्तौ शीघ्रिणौ वक्रिणौ वा स्यातां तदा कर्त्तरी नास्त्येव। यदाह वसिष्ठः—'लग्नस्य पृष्ठाग्रगयोरसाध्वोः सा कर्त्तरी स्यादृजुवक्रगत्योः। तावेव शीघ्रौ यदि वक्रचारौ न कर्तरी चेति पितामहोक्तिः ॥' इति।

चन्द्रलग्नयोः कर्त्तरीदोषः—

इयं कर्त्तरी चन्द्रस्यापि द्रष्टव्या। यदाह कश्यपः—'चन्द्रस्य कर्तरी तद्वच्छुभदृष्टा न दोषदा' इति। परन्तु लग्नस्य चन्द्रस्य वा क्रूरग्रहमध्यगतत्वदोषोऽस्त्येव कर्त्तरीतोऽल्पफलः। कन्यानाशकरत्वात्। यदाह वसिष्ठः—'क्रूरग्रहमध्यगते लग्ने चन्द्रेऽथवा करग्रहणम्। ते यमसदनाभिमुखं गमनं चेच्छन्ति कन्यायाः ॥' इति। कर्त्तरीदोषे त्वन्यदप्यपवादान्तरं 'पापौ कर्त्तरिकारकौ' इत्यादिना स्वयं वक्ष्यति।

अन्यत्रापि कर्त्तरीदोषः—

अत्र लग्नादित्युपलक्षणात्सर्वेषामपि भावानां कर्त्तरीदोषो ध्येयः। 'यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा' इत्यादिना तुल्यन्यायत्वात्। तत्र लग्ने कर्त्तरी यदा महादोषकरी लग्नभङ्गाधायकत्वात्तस्या अन्यत्र तादृशदोषाभाव इति तत्त्वम्। अत्र केचित्। द्वादशे यः कश्चित्पापग्रहो भवतु मार्गी द्वितीयस्थाने यदि राहुः केतुर्वा स्यात्तदा कर्त्तर्येव नास्तीत्याहुः। ते प्रष्टव्याः। किं राहुकेत्वोर्ग्रहत्वाभावात्क्रूरग्रहत्वाभावाद्वा दृश्यग्रहत्वाभावाद्वा कर्त्तरी नास्ति।

राहुकेत्वोर्ग्रहत्वं श्रुतिस्मृतिभ्याम्—

नाद्यः। राहोर्ग्रहत्वं श्रुतिस्मृतिप्रामाण्यसिद्धम्। तथाहि। 'स्वर्भानुर्ह वा आसुरिः सूर्यं तमसा विव्याध' इति माध्यन्दिनीया श्रुतिः। कश्यपश्च—'छिन्नोऽपि विष्णुचक्रेण सुधामयशिरास्तमः।

केशवस्य वरेणासौ तथापि ग्रहतां गतः ।।' इति । नारदोऽपि—'अमृतास्वादनाद्राहुः शिरश्छिन्नोऽपि सोऽमृतः । विष्णुना तेन चक्रेण तथापि ग्रहतां गतः ॥' इति । यद्यपि—'अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः । शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः ॥' इति । सूर्यसिद्धान्ते पातानामदृश्यतोक्ता । तथापि चन्द्रपातस्य हि ग्रहत्वं वाचनिकमेव । स्वर्भानुर्वै कुमुदिनीपतिपातो राहुमाहुरिह केपि तमेव' इति भास्कराचार्योक्तेश्च । अत एव राहोर्नैर्ऋतदिक्स्वामित्वं दानं च संहिताकर्तृभिरुक्तम् । राहोरधःशरीरभागः केतुसंज्ञ इति पुराणप्रसिद्धम् ।

राहुकेतवः क्रूरग्रहाः—

न द्वितीयः । ननु केन वचनेन राहुकेत्वोः क्रूरत्वमुच्यते । न च—'क्षीणेन्द्वर्कयमाराः पापास्तैः संयुतः सौम्यः' इति वराहेणोक्तमिति वाच्यम् । तदुपादानाभावादेव । किं च पापग्रहत्वानभिधानाच्छुभग्रहत्वमेवावसीयते । न च—'गुरुबुधशुक्राः सौम्याः सौरिकुजार्का निसर्गतः पापाः । शशिजोऽशुभसंयुक्तः क्षीणोऽपि निशाकरः पापः ॥' इति कल्याणवर्मवाक्ये शुभग्रहमध्ये गणनाभावात्क्रूरत्वमिति वाच्यम् । पापग्रहमध्येऽपि गणना नास्तीति शुभग्रहत्वस्यापि सुवाच्यत्वात् । उभयभ्रष्टत्वेन वा नरसिंहवज्जात्यन्तरस्यापि वक्तुं शक्यत्वादिति चेत्, सत्यम् ।

'सूर्यभौमशनिराहुकेतवः पापसंज्ञखचराः क्षयिचन्द्रः ।
पूर्णचन्द्रगुरुशुक्रसोमजाः सर्वकर्मसु हि सौम्यखेचरा ॥'

इति वसिष्ठेन कण्ठतः क्रूरत्वाभिधानादस्ति क्रूरत्वम् । स्वरोदयेऽपि–'बुधशुक्रेन्दुजीवाश्च सदा सौम्यग्रहा मताः । शन्यर्कराहुमाहेयाः केतुः क्रूरग्रहा मताः ॥' इति ।

फलदातृत्वेन राहुकेत्वोर्ग्रहत्वं दृश्यत्वेऽपि—

न तृतीयः । ननु 'स्वयमशक्तः कथं परान्सधिष्यति' इति न्यायात्सदा चक्षुरदर्शनाभावमितस्य राहोः केतोर्वा कथं फलदातृत्वासामर्थ्यमिति चेत् । न अमावास्यायां प्रतिपदि वोत्पन्नस्य लग्नादिदुष्टस्थानस्थितचन्द्रस्यारिष्टत्वमशुभफलजनकत्वं भवन्मते निरर्थकमापद्येत। ननु 'षष्ठेऽष्टमे च चन्द्रः सद्यो मरणाय पापसंदृष्टः । अष्टाभिः शुभदृष्टो मिश्रैर्वर्षैस्तदर्द्धेन ॥' इति । वाराहोक्तेस्तत्फलं भविष्यतीति चेत् । इहापि ।

'स्वच्छन्दत्वं कदशनरतिर्वल्लभत्वं विशील्यं व्याधिः सुश्रीमतिरथ सुखं गर्भपातप्रवृत्तिः । द्यूतासक्तिर्भवति रविजे वैभवं वक्तृरोगं । स्वर्भानौ वाप्यथ शिखिनि वा लग्नभावादिसंस्थे ।
इति वसिष्ठपद्ये शनिवद्राहुकेत्वोः शुभाशुभफलदातृत्ववचनं किं वायसैर्भक्षितम्। सारावल्यां च—
'राहुश्चतुष्टयस्थो निधनाय निरीक्षितो भवति पापैः । वर्षैर्वदन्ति दशभिः षोडशभिः केचिदाचार्याः॥ अजवृषकर्कटलग्ने रक्षति राहुः समस्तपीडाभ्यः । पृथ्वीपतिः प्रसन्नः कृतापराधं यथा पुरुषम् ॥'

इति राहोः शुभाशुभफलाभिधानमस्ति । ननु वराहेण राहोः फलं कुत्रापि नोक्तमिति चेन्न। 'सोपप्लवे शशांके सक्रूरे लग्नगे कुजेष्टमगे । मात्रा सार्द्धं म्रियते चन्द्रवदर्केण शास्त्रेण ॥' इति । वराहपद्येऽपि राहुकेत्वोरन्यतराभिधानमस्ति। तथाहि किमिदं चन्द्रग्रहणं राहुसाहित्यकृतमुत केतुसाहित्यकृतमिति । तत्र ग्रहणीयं चन्द्रे लग्नने सक्रूरे इत्यत्र क्रूरसाहित्यमभिहितम् ।

क्रूरास्तु सूर्यभौमशनय एव विवक्षिता इति चेत् । सूर्यस्य तावद्योगाभावश्चन्द्रग्रहणे हि सप्तमराशिस्थत्वात् । भौमस्यापि योगः कुजेष्टमग इत्युक्तेर्नास्ति । पारिशेष्याच्छनेरेव योगो वाच्यः । तत्र स्पष्टार्थं शनिपदग्रहणमेव कस्मान्नाकारि । अतः सामान्यवाचिनः क्रूरशब्दस्य प्रयोगाद्राहुकेत्वोरन्यतरयोगोऽपि विवक्षितः । अपरस्य सप्तमराशिस्थत्वात् । योगोऽपि एकराशिस्थत्वे स्यान्न तु भिन्नराशिस्थत्वे इति । एवं च ग्रहणसम्बन्धिलग्नस्थ सूर्यारिष्टोऽपि राहुकेत्वोरन्यतरयोगो व्याख्येयः । अत एव 'राहुस्तमोऽगुरसुरश्च शिखी केतुः' इति पर्यायाभिधानं कृत । विवाहपटलेऽपि 'मरणं लत्ताराहोः कार्यविनाशं भृगोर्वदन्ति' इति कण्ठतो राहुलत्ताप्युक्ता । तस्माद्वराहमतेऽपि राहुकेतुयोगो विवक्षित एव । एवं सति जातके यथा राहोः शुभाशुभफलदातृत्वं वचनाद्बोध्यते तथा विवाहेऽपि प्रागुक्तवसिष्ठवाक्यादपि । तत्र तुल्यन्यायत्वात्कर्त्तरीदोषे सत्यप्यदृश्यत्वे फलदातृता त्वयापि वक्तव्यैव । ननु—'पापयोः कर्त्तरीकर्त्रोः शत्रुनीचगृहस्थयोः । यदा त्वस्तगयोर्वापि कर्तरी नैव दोषदा ॥'

इति कश्यपाद्युक्तेरस्तङ्गतत्वेन राहुकेत्वोः कर्त्तरीदोषो नास्तीति चेत्, भ्रान्तोऽसि । शृणु । 'सम्भवव्यभिचाराभ्यां स्याद्विशेषणमर्थवत्' इति न्यायादस्तङ्गतत्वविशेषणं भौमस्य क्रूरयुक्तबुधस्य शनेर्वेति त्रयाणामेव सम्भवति न सम्भवति च । सूर्यस्तु नित्योदित एव राहुकेतू नित्यास्तमिताविति, व्यभिचाराभावत्त्रयाणां नैव विशेषणम् । यथा—'एत्येधत्यूठ्सु' इत्यत्रानुवर्तमानमेज्ग्रहणं सम्भवव्यभिचाराभ्यामेतेरेव विशेषणम् । यथा उपैति उपेत इतिदर्शनादिण एवैजादावित विशेषणं न त्वेधतेः । एजादित्वादेव । नाप्यूठः । अनेजादित्वादेवेति । तस्मादीदृशे विषयेयं परिहारो न प्रवर्तते । किं च किमस्तगत्वं क्षितिजसंनिधिकृतमुत सूर्यसान्निध्यकृतं वेति । तत्र क्षितिजसन्निधिकृतं यत्तत्सूर्यादिसकलग्रहसाधारणम् । तथा सत्यस्तगत्वविशेषणवैयर्थ्यम् । प्रागुक्तन्यायात् । राहोस्तु नारदादिवाक्याच्चिरोरूपमण्डलावगतेः—'इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसितत्वात्किल न दृश्यते गगने' इति वराहोक्तेस्तमोरूपत्वात्तपत्वात्तादृक्स्वरूपानुपलब्धेरगोचरत्वपरम् । स्थापनमप्यस्य चन्द्रशरमण्डलक्रान्तिमण्डलस्वस्तिके। यदाह केशवार्कः—'वेश्म चास्य शशभृद्विमण्डलक्रान्तिमण्डलमिलच्चतुष्पथे' इति । अत एव न विद्यन्ते गावः किरणा यस्येत्यगुरित्यत्रान्वथताप्यवसीयते । यदि सूर्यसन्निधिकृतामित्युच्येतेति चेत्, न । इतरग्रहवद्राहोरप्युदयास्तप्रसिद्ध्यभावात् । किं च कालांशानभिधानात् कदोदितः कदास्तमितश्चेति निर्णेतुमशक्यत्वात् । एवं केतोरप्येतद्द्रष्टव्यम् । ननु केतूदयो ह्युत्पातादौ प्रत्यक्षतो दृश्यत इति चेन्न । तस्यानियतदिक्प्रभवत्वात् अनियतनक्षत्रप्रमेयत्वाच्च । किं च केतूत्पादौ हि लोके दुरदृष्टसूचकः । अनियतेन बहुना स्वल्पेनापि वा कालेन भवेत् । सूर्यसान्निध्यकृतोदयास्तौ तु नियतकालावेवेति तयोः केत्वोर्भेदः स्वीकर्त्तव्यः । तस्माद्राहुकेतू समदृशावेवेति प्रागुक्तदोषानवसरः । तस्मात् स्थितं राहुकेत्वोर्द्वितीयस्थानस्थितत्वेन वक्रित्वात्कर्तरीदोषोऽस्त्येवेति सिद्धान्तः । ननु ग्रहाणां कथं शुभाशुभफलदातृत्वमरिष्टपरिहारकर्तृत्वं च यतो—

'यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पङ्क्तिम्, व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥'
इति स्वसिद्धान्तव्याघातः, सत्यम् । उपरिष्टच्चिन्तयिष्यतेऽस्माभिरेतदित्यलमतिप्रसंगेन ॥ ४४ ॥

पीयूषधारा—विवाह में कर्तरी दोष—वक्री और मार्गी दो पाप ग्रहों में, लग्न से द्वितीय में

वक्री ग्रह और लग्न से १२ वें मार्गी ग्रह हो तो कर्तरी दोष होता है। कर्तरी दोष युक्त लग्न में, विवाह सम्बन्ध करने से मृत्यु दारिद्रय और शोक होता है।

लग्न से १२ वें वक्री पापग्रह और दूसरे में मार्गी पाप ग्रह होने से कर्तरी नहीं होती।

विवाह लग्न में चन्द्रमा भी कर्तरी दोष से मुक्त होना चाहिए। लग्न और चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के मध्य या दो पाप ग्रहों से युक्त हों तो कर्तरी दोष तुल्य फल न होकर तब भी कुछ अल्प अनिष्ट फल होगा ही।

लग्न उपलक्षण से कर्तरी दोप से सभी भावों पर कर्तरी दोष का दुष्प्रभाव होता है अतः विवाह लग्न से पञ्चम सप्तम नवम भावों को भी कर्तरी दोष से मुक्त करना चाहिए।

कुछ आचार्य द्वादश मे मार्गी पाप ग्रह की स्थिति और द्वितीय में राहु किंवा केतु की स्थिति से कर्तरी दोष लक्षण घटित होते हुए भी ऐसी स्थिति को अन्य वक्र ग्रहकृत कर्तरी दोष की अपेक्षा अल्प दोषप्रद स्थिति मानते हैं। किन्तु मुख्य कर्तरी लक्षण में राहु केतु का पृथक् उल्लेख नहीं है। साधारण पापग्रह शब्द से क्षीण चन्द्र सूर्य मंगल शनि राहु और केतु गृहीत होने से द्वितीय स्थान स्थित स्वाभाविक सदा वक्र राहु किंवा केतु से भी कर्तरी दोष पूर्ववत् होता है अतः न्यूनाधिक कर्तरी दोष कथन प्रसंग व्यर्थ है ॥ ४४ ॥

अथ सङ्ग्रहदोषमनुष्टभाह—

चन्द्रे सूर्यादिसंयुक्ते दारिद्र्यं मरणं शुभम्।
सौख्यं सापत्न्यवैराग्यं पापद्वययुते मृतिः ॥ ४५ ॥

पीयूषधारा—चन्द्र इति। सूर्ययुक्ते चन्द्रे दारिद्र्यं स्यात्। भौमादियोगे मरणादि फलं क्रमेण स्यादित्यर्थः। पापग्रहसाहित्ये शुभफलं राहुकेत्वोरपि द्रष्टव्यम्।

यदाह नारदः—

'शशांके ग्रहसंयुक्ते दोषः सङ्ग्रहसंज्ञकः। सूर्येण संयुते चन्द्रे दारिद्र्यं भवति ध्रुवम् ॥
कुजेन मरणं व्याधिः सौम्येन त्वनपत्यता। दौर्भाग्यं गुरुणा युक्ते सापत्न्यं भार्गवेण तु ॥
प्रव्रज्या सूर्यपुत्रेण राहुणा कलहः सदा। केतुना संयुते चन्द्रे नित्यं कष्टं दरिद्रता ॥
तस्मिन्सङ्ग्रहदोषे तु विवाहं नैव कारयेत्।' इति।

सापत्न्यं मापत्नभाव—भर्त्तुःस्त्र्यन्तरं स्यात्। अत्र गुरुबुधसाहित्यफलमशुभमुक्तम्। ग्रन्थकर्ता तु वसिष्ठवाक्ये केचिन्मताभिप्रायेण शुभफलयुक्तम्। तदुक्तं वसिष्ठेन—

'दारिद्र्यं रविणा कुजेन मरणं सौम्येन न स्युः प्रजा
दौर्भाग्यं गुरुणा सितेन सहिते चन्द्रेण सापत्नकम् ॥
प्रव्रज्यार्कसुतेन सेन्दुजगुरौ वाञ्छन्ति केचिच्छुभं
द्व्याद्यैर्मृत्युरसद्ग्रहैः शशियुतैर्दीर्घप्रवासः शुभैः ॥' इति।

अत एव श्रीपतिनोक्तं 'शुभं च दम्भोलिभृदीज्यविद्भ्यायाम्' इति। दम्भोलिर्वज्रस्तं बिभर्ति स दम्भोलिभृदिन्द्रस्तस्येज्यः पूज्यो बृहस्पतिरित्यर्थः।

चन्द्रस्य पापद्वित्र्यादिग्रहयोगे मृतिः, सौम्यबहुग्रहयोगे पत्युर्देशान्तरेऽवस्थितिः— पापेति। पापद्वयेन युते उपलक्षणत्वात्पापत्रयादिभिर्युते, मृतिरेव स्यात्। 'पापद्वययुते

चन्द्रे दम्पत्योर्मरणं ध्रुवम्' इति नारदोक्तेः । बहुसौम्यग्रहयोगे तु बहुकालं पत्युर्देशान्तरेऽवस्थानं स्यात् । तद्वाक्यमधुनैवाभिहितम् ।

अथ सग्रहचन्द्रदोषापवादः—

अथास्य परिहारो नारदेनोक्तः—'स्वक्षेत्रगः स्वोच्चगो वा मित्रक्षेत्रगतो विधुः । युतिदोषाय न भवेद्दम्पत्योः श्रेयसे तदा ॥' इति । क्वचिद्वर्गोत्तम इति पठ्यते । कश्यपेनापि—'तुङ्गमित्रस्वराशिस्थः शुभयुक्तः शुभप्रदः । एवंविधः क्रूरयुतः सम्पूर्णफलदः शशी ॥'इति ४५॥

पीताम्बरा—वैवाहिक लग्न की ग्रहस्थितियों से सम्बन्धित चन्द्र फल—विवाह लग्न में चन्द्रमा जहाँ हो, वह सूर्य से युक्त हो तो दारिद्रय, मंगल युक्त हो तो मरण, बुध से युक्त हो तो शुभ, बृहस्पति से युक्त हो तो सौख्य, शुक्रयुक्त चन्द्रमा से शत्रुता और शनि युक्त चन्द्रमा से वैराग्य और पापद्वययुक्त चन्द्रमा हो तो मृत्युप्रद होता है । इसी प्रकार राहु युक्त चन्द्रमा से भी अशुभ फल होता है ॥ ४५ ॥

अथाष्टमलग्नदोषं सापवादमनुष्टभाह—

जन्मलग्नभयोर्मृत्युराशौ नेष्टः करग्रहः ।
एकाधिपत्ये राशीशमैत्रे वा नैव दोषकृत् ॥ ४६ ॥

पीयूषधारा—जन्मलग्नेति । जन्मलग्नजन्मराश्योः सम्बन्धिनि मृत्युराशावष्टमलग्ने करग्रहो नेष्टः । यदाह नारदः—

'दम्पत्योरष्टमं लग्नं त्वष्टमो राशिरेव च । यदि लग्नगतः सोऽपि दम्पत्योर्निधनप्रदः ॥

स राशिः शुभयुक्तोऽपि लग्नं वा शुभसंयुतम । लग्नं विवर्जयेद्यत्नात्तदंशांश्च तदीश्वरान् ॥' इति । निधनं मरणम् ।

जन्मलग्नराश्यपेक्षया विशेषो विवाहलग्नस्याष्टमत्वे—

अत्र जन्मलग्ने जन्मराशौ च विशेषमाह कश्यपः—'इष्टं स्वजन्मलग्नं तज्जन्मराशिरनिष्टदः । लग्नगस्तु तयोः स्थानाच्छुभान्युपचयानि वै ॥ इति । नारदोऽपि—'जन्मराश्युद्गमो जन्मलग्नोदयः शुभः । तयोरुपचयस्थान यदि लग्नगतं शुभम् ॥' इति ।

अथाष्टमलग्नदोषपरिहारमाह—

एकेति । जन्मराशिजन्मलग्नयोरन्यतरस्य विवाहलग्नस्य च स्वाम्यैक्ये सति यथा मेषवृश्चिकयोः तथा द्वयो राशीश्वरयोः मैत्रे यथा सिंहमीनयोः अत्र हि सूर्यगुर्वोरन्योन्यप्रीतिरस्ति। एतादृशविषये लग्नाऽटमदोषकृद्विवाहो न स्यात् । यदाह कश्यपः—

'जन्मेशाष्टमलग्नेशो मिथो मित्रे व्यवस्थितौ ।
जन्मराश्यष्टमर्क्षोत्थदोषो नश्यति भावतः ॥' इति ॥ ४६ ॥

पीताम्बरा—जन्म राशि से अष्टम लग्न दोष व परिहार—वर कन्या की जन्मलग्न व जन्म राशि से आठवीं राशि लग्न में होने से विवाह शुभ नहीं होता । किन्तु जन्मलग्न वा जन्मराशि का अधिपति ग्रह ही वैवाहिक लग्न का भी अधिपति हो अथवा दोनों में मैत्री हो तो अष्टम लग्न दोष नहीं होता ॥ ४६ ॥

अथोत्तरार्द्धोक्तमेवार्थं स्पष्टमुपजातिकयाह—

मीनोऽक्षकर्कालिमृगस्त्रियोऽष्टमं लग्नं यदा नाष्टमगेहदोषकृत् ।
अन्योन्यमित्रत्ववशेन सा वधूर्भवेत्सुतायुर्गृहसौख्यभागिनी ॥ ४७ ॥

पीयूषधारा—मीनेति । उक्षा वृषः, स्त्री कन्या, अन्ये प्रसिद्धाः । एते राशयो यद्यष्टमलग्नं स्युः । यथा सिंहान्मीनः, तुलातो वृषः, धनुषः कर्कः, मेषाद्वृश्चिकः, मिथुनान्मकरः, कुम्भात्कन्याष्टमलग्नं तदाष्टमगेहदोषकृन्न भवेत्। कुत इत्यत आह–अन्योन्येति । प्रागुक्तपरस्परप्रीतिवशेनेदं चोपलक्षणं मेषवृश्चिकयोस्तुलामकरयोश्च एकाधिपत्यात् । एवं सति सा वधूः परिणीता कन्या सुतायुर्गृहसौख्यभागिनी स्यात् ।

'झषकुलीरवृषालिमृगाङ्गना जननराशिविलग्नगृहाष्टमाः ।
शुभफला भृगुणा कथितास्तयोरधिपती सुहृदौ हि परस्परम् ॥' इति ।

परिहारान्तरमप्याह गुरुः—

'लग्नादष्टमराशीशः केन्द्रगः शुभवीक्षितः । यद्यष्टमगतस्योक्तदोषमाशु व्यपोहति ॥
रन्ध्रेशः स्वशुभांशस्थस्तुङ्गस्वक्षेत्रमित्रगः । अष्टमस्थानदोषो हि विनश्यति न संशयः ॥इति॥४७॥

पीताम्बरा—अष्टम लग्न गृह दोष परिहार—यदि जन्मलग्न जन्मराशि से अष्टम में, मीन, वृष, कर्क, वृश्चिक, मकर, कन्या, राशियाँ हों तो (सिंह लग्न से अष्टम में मीन, तुला से वृष, धनुष से कर्क, मेष से वृश्चिक, मिथुन से मकर, और कुम्भ से कन्या अष्टम में होती है) इन लग्नेश और अष्टमेश का एकाधिपत्य या परस्पर सख्य सम्बन्ध से अष्टम लग्न, दोषाय न होकर गुणाधिक्यप्रद होती है । ऐसे लग्नों के विवाह की वधू, पुत्र, आयु और गृहसौख्य प्रदायिनी होती है ॥ ४७ ॥

अथाष्टलग्नदोषप्रसङ्गाज्जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यामष्टमेशस्य तदंशस्य च लग्नस्थितत्वदोषं तथा द्वादशभवनदोषं कुसुमविचित्राच्छन्दसाह—

मृतिभवनांशो यदि च विलग्ने तदधिपतिर्वा न शुभकरः स्यात् ।
व्ययभवनं वा भवति तदंशस्तदधिपतिर्वा कलहकरः स्यात् ॥ ४८ ॥

पीयूषधारा—मृतीति । अष्टमभवननवांशो यदि विलग्ने स्यादथवाष्टमभवनस्वामी विलग्ने स्यात्तदा शुभकरो न स्यात् । यदाह कश्यपः—'दम्पत्योरष्टमे लग्ने राशौ वापि तदंशके । तदीशे वा लग्नगते तयोर्मृत्युर्न संशयः ॥' इति ।

व्ययभवन जन्मलग्नराशिभ्यां द्वादशं भवनमथवा व्ययेशोऽथवा व्ययस्वामी यदि लग्ने स्यात्तदा कलहकृत्स्यात् । उक्तं च कश्यपेन—

'तथैव द्वादशे लग्ने तदंशे वा तदीश्वरे । विवाहे लग्नगे नैःस्व्यं नित्यं स्यात्कलहो द्वयोः ॥'इति ।

नारदेनापि—

'दम्पत्योर्द्वादशं लग्नं राशिर्वा यदि लग्नगः ।
अर्थहानि स्तयोस्तस्मात्तदंशस्वामिनं त्यजेत् ॥' इति ॥ ४८ ॥

पीताम्बरा—लग्न में अष्टम और द्वादश भावों की राशि अंशों का भविष्य—अष्टम-भाव नवांश राशि, अथवा अष्टमभाव राशि स्वामी यदि लग्न में हो तो ऐसे लग्न में विवाह संस्कार शुभ नहीं होता।

अथवा लग्न और जन्मराशि से १२ वी राशि का नवांश, या १२ वे राशि का स्वामी यदि लग्न में हो तो वर-वधू में नित्य यावज्जीवन कलह होता है ।। ४८ ।।

अथ विषघटीदोषं वंशस्थाभ्यामिन्द्रवज्रया चाह—

खरामतो-३० ऽन्त्यादितिबह्निपित्र्यभे खवेदतः-४० के रदत-३२ श्च सार्पभे।
खबाणतो-५० ऽश्वे धृतितो-१८ ऽर्यमाम्बुपे कृते-२० भंगत्वाष्ट्रभविश्वजीवभे ।।४९।।
मनो-१४ द्विदैवानिलसौम्यशाक्रभे कुपक्षतः-२१ शैवकरेऽष्टितो-१६ ऽजभे।
युगाश्वितो-२४ बुध्न्यभतोययाम्यभे खचन्द्रतो-१० मित्रभवासवश्रुतौ ।।५०।।
मूलेऽङ्गबाणा-५६ द्विषनाडिकाः कृता-४ वर्ज्याः शुभेऽथो विषनाडिका ध्रुवाः।
निघ्ना भभोगेन खतर्क-६० भाजिताः स्फुटा भवेयुर्विषनाडिकास्तथा ।।५१।।

पीयूषधारा—खरामेत्यादि। रेवतीपुनर्वसुकृत्तिकामघानक्षत्रेषु खरामतः त्रिंशद्घटिकोत्तरं कृताश्चतस्रो घटिका विषनाडिकाः शुभे कार्ये वर्ज्याः स्युरिति तृतीयश्लोकेनान्वयः। एवं सर्वत्र व्याख्येयम्। के रोहिण्या कृतेर्विंशतेः। अजभे पूर्वाभाद्रपदायाम्। अन्यानि पदानि स्पष्टानि। तदेवं षष्टिघटीरूपे नक्षत्रभोगे ध्रुवकाश्चतस्रो विषनाडिकाश्च प्रोक्ताः।

षष्टिघटिकान्यूनाधिक्ये विषनाडिकाप्रमाणानि—

न्यूनाधिकत्वे तु स्पष्टीकरणमुच्यते—अथो इति। विषनाडीनां ध्रुवाः खरामत इत्येव-मादयो नक्षत्रभोगेनेष्टेन निघ्नाः खतर्कैः षष्ट्या भाजितास्ततो विषनाडिका ध्रुवाः स्पष्टाः भवेयुरित्यर्थः। अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन, यदि घटीषष्ट्यात्मकभभोगेनेमे ध्रुवका इमाश्चतस्रो विषनाडिकाश्च लभ्यन्ते तदेष्टभभोगेन किमिति तत्र ध्रुवा विषनाडिकाश्चेष्टभभोगेन गुण्याः षष्ट्या भाज्या इति फलितम्। यदाह कश्यपः—

'वियद्बाणा वेददस्राः खरामा व्योमसागराः। वेदचन्द्राश्चन्द्रदस्राः खरामा व्योमबाहवः ।।
नेत्राग्नयो व्योमगुणाः शून्यदस्राः गजेन्दवः। क्ष्माबाहवो वियद्दस्राः शक्राश्चन्द्राः खभूमयः ।।
वेदचन्द्रास्तर्कबाणा वेददस्राः खबाहवः। व्योमेन्दवो व्योमचन्द्रा धृतयस्तर्कभूमयः ।।
वेदाश्विनः खरामाः स्युर्दास्रर्क्षाद् घटिकाः क्रमात्। आभ्यः परस्तात्क्रमशश्चतस्रो विषनाडिकाः ।।
ऋक्षाद्यन्तघटीनिघ्नाः षष्टिभक्ताः स्फुटाः स्मृताः। विषनाडीदोषदुष्टं लग्नं सर्वगुणान्वितम् ।।
शुभैः सर्वैश्च संयुक्तमपि पञ्चेष्टकं त्यजेत्।' इति।

वसिष्ठ :—

'कुर्वन्त्युद्वाहितां कन्यां विधवां वत्सरत्रयात्।
अन्यस्मिन्मङ्गले ताश्च निधनं चाथ निर्द्धनम् ।।' इति। ताः विषनाडिकाः।

तिथिवारयोर्विषनाडिकाः—

अथ प्रसङ्गात् ग्रन्थान्तरोक्तास्तिथिवारविषनाडिकाः प्रोच्यन्तेऽस्माभिः। दैवज्ञमनोहरे—

तिथी–१५ षु–५ नागा–८ द्वि–७ गिरी–७ पु–५ वारिधि–४
गंजा–८ द्वि–७ दिक्–१० पावक–३ विश्व–१३ वासवाः १४।
मुनी–७ भ–८ संख्या प्रथमातिथेः क्रमात्पर विषं स्याद्घटिकाचतुष्टयम्।
नखा २० द्वयं २ द्वादश १२ दिक् च १० शैला ७
बाणाश्च ५ तत्त्वानि २५ यथाक्रमेण।
सूर्यादिवारेषु एवं परं चतस्रो नाड्यो विषं स्यात्खलु वर्जनीयम्॥'

ज्योतिःसागरे—

'विवाहव्रतचूडासु गृहारम्भप्रवेशयोः। यात्रादिशुभकार्येषु विघ्नदाविषनाडिकाः॥' इति।

अथ विषनाडिकादोषापवादः—

अस्या परिहारमाह दैवज्ञमनोहरे गुरुः—

'चन्द्रो विषघटीदोषं हन्ति केन्द्रत्रिकोणगः।
लग्नं विना शुभैर्दृष्टः केन्द्रे वा लग्नपस्तथा॥' इति।

फलप्रदीपे—

विषनाड्युत्थितं दोषं हन्ति सौम्यर्क्षगः शशी।
मित्रदृष्टोऽथ वा स्वीयवर्गस्थो लग्नपो भवेत्॥' ४९–५१॥

पीताम्बरा—नक्षत्रों की विषघटिका—प्रत्येक नक्षत्र में विषघटिका (अशुभ समय की) होती हैं। नक्षत्र का भभोग मान ६० घटी मान कर आचार्य ने नक्षत्रो की अभीष्ट समय में विष घटिकाएँ बताई हैं। अतः नक्षत्र का वास्तविक भभोग घटिका मान ज्ञात कर त्रैराशिक से, विषघटिका की प्रवृत्ति घटिका, और स्पष्ट विषघटिका ज्ञात करनी चाहिए।

यदि रेवती नक्षत्र के मध्यम मान ६० घटी में ३० घटिका के ऊपर ४ घटिका (३०-३४ घटी तक) विषघटिका होती हैं तो रेवती का भभोग जब ५५।३९ हो तो विषघटिका प्रवेश समय क्या होगा? और विषघटिका का मान भी क्या होगा? तदर्थ गणित से $\frac{३० \times ५५।३९}{६०}$=विषघटिका प्रवेश समय तथा $\frac{४ \times ५५।३९}{६०}$ = विषघटिका मान। उभयतः, २७।४९।३०, ३।४२।३६ अश्विनी नक्षत्र प्रवेश से जब अश्विनी की २७।४९।३० घटिका व्यतीत होंगी इस समय से ३।४२।३६ घटिका तक अर्थात् (२७।४९। + ३।४२३६) = ३१।३२।६ घटिका-पल-विपल तक अश्विनी नक्षत्र में विष घटिका होगी।

भभोग मान ६० से अधिक होने पर विषघटिका प्रवेश और विषघटिका का मान समय भी अनुपात से कुछ बढ़ जावेगा।

रेवती, पुनर्वसु, कृतिका, मघा में १० घटी के ऊपर, ४ घटिका, रोहिणी में आश्लेषा में ३२, अश्विनी के ५०, उत्तराफाल्गुनी, शतभिषा १८ पूर्वाफाल्गुनी चित्रा उत्तराषाढ़, पुष्य २०, विशाखा स्वाती मृगशिरा ज्येष्ठा १४, आर्द्रा, हस्त, २१, पूर्वाभाद्रपद १६ उत्तराभाद्रपद पूर्वाषाढ़ भरणी की २४ घटिका, अनुराधा धनिष्ठा श्रवण की १० घटिका और मूल नक्षत्र

की ५६ घटिका के ऊपर ४, ४ घटिका (मध्यममानीय) विषघटिका होती है। उक्त प्रत्येक नक्षत्र की घटिका और ४ घटिका को पृथक् भभोग से गुणा कर ५० से भाग देकर लब्ध फल (१) नक्षत्रों की विषघटिका प्रवेश और (२) स्पष्ट विषघटिका का मान ज्ञात होगा।

लग्न रहित केन्द्र त्रिकोणगत चन्द्रमा हो या शुभ दृष्ट लग्नपति केन्द्र में हो, अथवा शुभ राशिग मित्रदृष्ट, अथवा अपने वर्गस्थित चन्द्रमा हो तो विषघटी दोष नहीं होता ॥४९-५१॥

अथ दुर्मुहूर्तदोषं विवक्षुरादौ दिवामुहूर्त्तान्मालिनीच्छन्दसाह—

गिरिशभुजगमित्राः पित्र्यवस्वम्बुविश्वेऽभिजिदथ च विधातापीन्द्र इन्द्रानलौ च।
निर्ऋतिरुदकनाथोऽप्यर्यमाऽथो भगः स्युः क्रमश इह मुहूर्त्ता वासरे बाणचन्द्राः ॥५२॥

पीयूषधारा—गिरिशेति। अत्र बाणचन्द्रा इत्युक्ते मुहूर्तस्य पार्थक्येन लक्षणं नोक्तम्। गिरिशो महादेवः, भुजगः सर्पः मित्रं सूर्यविशेषः, पित्र्यवस्वम्बुविश्वे प्रसिद्धाः, अष्टमोऽभिजित्। ततो विधाता ब्रह्मा, इन्द्रः इन्द्रानलौ च। अत्र समुदितयोर्व्यासज्जवृत्तिदेवताम्। ततश्च मुहुर्त-स्वामिनः इत्यपेक्षितं। पित्र्येति नक्षत्राभिधानादयुक्तं प्रतिभाति। अथवा नक्षत्रतदीशयोरभेदोप-चारात् स्वामिनिवृत्तिः। 'इन्द्रस्य' अल्पाच्तरत्वात्पूर्वनिपातः। निर्ऋती राक्षसः। उदकनाथो वरुणः, अर्यमा भगश्चेमो सूर्यविशेषौ। इत्येते बाणचन्द्राः पञ्चदश वासरे मुहूर्ताः स्युः। यदाह नारदः—

पीताम्बरा—दिन के १५ मुहूर्त—दिनमान में १५ का भाग देकर एक मुहूर्त का घट्यात्मक मान होता है। गिरिश, भुजग, मित्र, पितृ, वसु, अम्बु, विश्वेदेव, अभिजित, विधाता, इन्द्र, इन्द्राग्नि, निर्ऋति, उदकनाथ, अर्यमा, और पन्द्रहवाँ भग ये दिन में मुहूर्त होते हैं ॥५२॥

अथ रात्रिमुहूर्त्तानतुष्टुभाह—

शिवोऽजपादादष्टौ स्युर्भेशा अदितिजीवकौ।
विष्णवर्कत्वष्टृमरुतो मुहूर्त्ता निशि कीर्त्तिताः ॥५३॥

पीयूषधारा—शिव इति। प्रथममुहूर्त्तस्वामी शिवः। ततोऽजपादादष्टौ भेशा नक्षत्र-स्वामिनो मुहूर्त्तेशाः स्युः। यथा अजपादः अहिर्बुध्न्यः पूषा अश्विनौ यमः अग्निर्ब्रह्मा सोम इत्यष्टौ ततो दशमेशोऽदितिः जीवको गुरुः। स्वार्थे कः। विष्णवर्कत्वष्टृमरुतः प्रसिद्धाः। एते निशि मुहूर्त्ताः प्रकीर्तिताः। मुनिभिरिति शेषः। यदाह नारदः—

'ईशाजपादहिर्बुध्न्यपूषाश्वियमवह्नयः। धातृचन्द्रादितीज्याख्यविष्णवर्कत्वष्टृवायव ॥' इति।

मुहूर्तलक्षणं तत्फलं च

मुहूर्तलक्षणं कश्यपेनोक्तम्—अह्नः पञ्चदशो भागो मुहूर्त्तोऽथ तथा निशि' इति। प्रयोजनमाह नारदः—'यस्मिन्नृक्षे हि यत्कर्म कथितं निखिलं च यत्। तद्दैवत्ये तन्मुहूर्त्ते कार्यं यात्रादिकं सदा ॥' इति। यात्रेत्युपलक्षणं देवस्थापनाद्यं कार्यम्। 'धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यं-शकेऽस्य इति ग्रन्थकृताप्युक्तम् ॥५३॥

पीताम्बरा—रात्रि के १५ मुहूर्त—रात्रिमान में १५ का भाग देकर प्राप्त घट्यात्मक फल एक मुहूर्त का मान होता है।

शिव, अजपाद, अहिर्बुध्य, पूषा, अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्र, अदिति, बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, त्वाष्ट्र और मरुत् ये रात्रि में १५ मुहूर्त होते हैं। जिस दिन जिस नक्षत्र में जो कर्म कहा गया है यदि वह अप्राप्य हो तो भी उस नक्षत्र के स्वामी के मुहूर्त समय में भी वह कार्य (यात्रादिक) किया जा सकता है ॥ ५३ ॥

अथावसरप्राप्तान्निषिद्धमुहूर्त्तान् भुजङ्गप्रयातेनाह—

रवावर्यमा ब्रह्मरक्षश्च सोमे कुजे वह्निपित्र्ये बुधे चाभिजित्स्यात्।
गुरौ तोयरक्षौ भृगौ ब्राह्मपित्र्ये शनावीशसार्पौ मुहूर्ता निषिद्धाः ॥ ५४ ॥

पीयूषधारा—रवाविति। रवेर्वारेऽर्यमा लक्षणया अर्यमस्वामिकचतुर्दशसंख्यको मुहूर्त्तो निषिद्धः। एवं सोमवारे ब्रह्मरक्षः। द्वन्द्वैकवद्भावः ब्रह्मरक्षःस्वामिकौ मुहूर्त्तौ निषिद्धौ। एवं सर्वत्र व्याख्येयम्। पदानि स्पष्टार्थानि ईशो महादेवः। यदाह नारदः—

'अर्यमाराक्षसौ ब्राह्मौ पित्र्याग्नेयौ तथाभिजित्। रक्षःसार्पौ ब्राह्मपित्र्यौ भौजङ्गेशाविनादिषु।

वारेषु वर्जनीयास्ते मुहूर्त्ताः शुभकर्मणि।' ननु दुर्मुहूर्तोपलक्षितास्तिथ्यंशाः 'सूर्ये षट्स्वरनाग' इत्यादिनोक्ता इति पुनरत्राभिधानमयुक्तमिति चेत्। सत्यम्। अग्रे कुलिका अपि वक्तव्याः सन्ति। तत्पुनरुक्तिपरिहारावसरे समाधास्ये ॥ ५४ ॥

पीताम्बरा—वार सम्बन्ध से निषिद्ध मुहूर्त—रविवार के दिन अर्यमा, चन्द्रवार के दिन ब्रह्म, रक्ष, मंगल के दिन बह्निपितृ, बुध में अभिजित्, बृहस्पति वार को तोयरक्ष, शुक्रवार को ब्रह्मपितृ, और शनिवार के दिन ईश और सार्प मुहूर्त शुभ कार्यों में त्याज्य हैं ॥ ५४ ॥

अथ वेधदोषं विवक्षुर्विहितनक्षत्रादिकमभिजिन्मानं च प्रहर्षिण्याह—

निर्वेधैः शशिकरमूलमैत्र्य-ब्राह्मान्त्योत्तरपवनैः शुभो विवाहः।
रिक्तामारहिततिथौ शुभेऽह्नि वैश्व-प्रान्त्याङ्घ्रिश्रुतितिथिभागतोऽभिजित्स्यात् ॥ ५५ ॥

पीयूषधारा—निर्वेधैरिति। मृगशिरोहस्तमूलानुराधारोहिण्युत्तराफल्गुन्युत्तराषाढोत्तराभाद्रपदास्वातीनक्षत्रैः निर्वेधैर्वेधाख्यदोषरहितैः विवाहः शुभः शुभफलप्रदः। यदाह वसिष्ठः—

'स्वात्यां मघयां निर्ऋतौ ध्रुवान्त्यमित्रेन्दुहस्तेषु च कन्यकानाम्।
पाणिग्रहस्त्विष्टफलप्रदः स्यादविद्धभेष्वेव गुणान्वितानाम् ॥'

नारदोऽपि—

'पौष्णधात्र्युत्तरामैत्रमरुच्चन्द्रार्कपित्र्यभैः। समूलभैरविद्धैरतैः स्त्रीकरग्रह इष्यते ॥' इति।

स्त्रीग्रहणं मुख्यत्वसूचनार्थम्। गृहस्थाश्रमस्य तदायत्तत्वात्।

निषिद्धतिथिवारादयः—

रिक्तेति। रिक्तामाः प्रसिद्धाः। आभिर्वर्जिततिथिषु शुभेऽह्नि शुभग्रहवासरेऽपि विवाहः शुभः। यदाह वसिष्ठः—

'शुक्लद्वितीयादित एव कृष्णे पक्षे दशम्यन्तर्गताः प्रशस्ताः ।
तास्वष्टमीस्कन्दगणेशदुर्गाचतुर्दशी चापि तिथिर्विवर्ज्या ॥
वाराः प्रशस्ता शुभखेचराणां सूर्यार्किवारौ खलु मध्यमौ तौ ।
त्याज्यः सदा भूमिसुतस्य वारः कामार्कतिथ्योरपि तौ प्रदोषौ ॥'

तौ सूर्यार्किवारौ त्रयोदशीद्वादश्योः प्रदोषौ प्रकृष्टदोषावित्यर्थः । गणेशश्चतुर्थी ।

चतुर्थीकर्मान्तं श्राद्धं यथा नापतेत्तथा लग्नावश्यकता विवाहादौ—

अत्र यदि विचारितविविवाहदिनमारभ्य चतुर्थीकर्मपर्यन्तं पित्र्याद्यावश्यकश्राद्ध दिनममावास्या वा भवति तदा विवाहो न कार्यः । उक्तं च—

'विवाहमारभ्य चतुर्थिमध्ये श्राद्धं दिनं दर्शदिनं यदि स्यात् ।
वैधव्यमाप्नोति तदाशु कन्या जीवेत्पतिश्चेदनपत्यता स्यात् ॥' इति ।

अन्यच्च—

'विवाहमध्ये यदि तत्क्षयाहस्तत्राश्रमाख्याः पितरो न यान्ति ।
वृत्ते विवाहे परतस्तु कुर्याच्छ्राद्धं स्वधाभिर्न तु दूषयेत्तम् ॥' इति ।

अथाभिजिन्मानम्—

वैश्वेति । वैश्वमुत्तराषाढा, तस्यान्त्याङ्घ्रिः चतुर्थचरणः, श्रुतेः श्रवणस्य पञ्चदशांशो मिलित्वाऽभिजिद्भोगः स्यात् । यदाह वसिष्ठः—

'अभिजिद्भोगमेतद्वै वैश्वदेवान्त्यपादमखिलं तत् । आद्यचतस्रो नाड्यो हरिभस्यैतच्च रोहिणीविद्धम् ।

प्रयोजनमप्यधुनैव वक्ष्यति ॥ ५५ ॥

पीताम्बरा—विवाह संस्कार के नक्षत्र और अभिजित् नक्षत्र का मान— ग्रह वेधरहित मृगशिरा, हस्त, मूल, अनुराधा मघा, रोहिणी, तीनों उत्तरा और स्वाती नक्षत्रों में रिक्ता और अमावास्या वर्जित शेष तिथियों में, शुभग्रह के वारों में विवाह संस्कार उत्तम होता है ।

अभिजित् नामक कोई पृथक् नक्षत्र (२७ नक्षत्रों की तरह) नहीं है । उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का चतुर्थ चरण का समय, और श्रवण नक्षत्र के भभोग का १५वाँ विभाग, दोनों को मिलाने से जितनी घटिका होती है, उसे अभिजित् नक्षत्र का मान समझना चाहिए ॥ ५५ ॥

अथ वेधदोषं पञ्चशलाकाचक्रोद्धारनिरपेक्षं स्पष्टार्थं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वेधोऽन्योन्यमसौ विरिंच्यभिजितोर्याम्यानुराधर्क्षयो—
विश्वेन्द्वोर्हरिपित्र्ययोर्ग्रहकृतो हस्तोत्तराभाद्रयोः ।
स्वातीवारुणयोर्भवेन्निर्ऋतिभादित्योस्तथोपान्त्ययोः ।
खेटे तत्र गते तुरीयचरणाद्योर्वा तृतीयद्वयोः ॥ ५६ ॥

पीयूषधारा—वेध इति । विरिञ्चिः रोहिणी, रोहिण्यभिजितोर्ग्रहैः क्रूराक्रूरैः नुतो वेधोऽन्योन्यं परस्परं भवेत् । रोहिणीस्थे ग्रहे अभिजिद्विद्धः अभिजित्स्थे रोहिणीविद्धः एवं सर्वत्र व्याख्येयम् । पदानि स्पष्टार्थानि ।

पञ्चशलाकावेधचक्रम्—

'तिर्यक्पञ्चोर्ध्वगाः पञ्च रेखे द्वे द्वे च कोणयोः। द्वितीयशम्भुकोणेऽग्निधिष्ण्यं चक्रे च विन्यसेत्॥
भान्यतः साभिजित्येकरेखाकोणे च विद्धभम्॥' इति।

चक्रोद्धारो यथा—

चक्रे तस्मिन्नेकरेखास्थितेन तद्विद्धर्क्षं खेचरेण प्रदिष्टम्।

क्रूरैर्विद्धं सर्वधिष्ण्ये विवर्ज्य सौम्यैर्विद्धं नाखिलं पाद एव। इति। ननु–अष्टाविंशति-नक्षत्राणि चक्रे तत्र द्वयोः परस्परवेधे चतुर्दश युग्मानि वक्तव्यानि स्युः, कथमष्टावेवाभिहितानि, उच्यते। विवाहे ह्येकादशनक्षत्राणामेव प्राशस्त्याभिधानात्तद्वेधोपयोगिन्येतावन्त्येव युग्मानि सम्भवन्तीति तावतामेवाभिधानम्। अत एव दैवज्ञमनोहरे—

'रोहिण्यभिजितोर्मूलादित्ययोर्मृगवैश्वयोः। रेवत्युत्तरफल्गुन्योर्मघाश्रवणयोर्भवेत्॥
हस्तोत्तराभाद्रपदाः स्वातीवारुणयोर्मिथः। अनुराधाभरण्योश्च वेधोयं पंचरेखजः॥''

वाराहीयविवाहपटले प्रत्येकं वेधफलम्—

'रविवेधे च वैधव्यं पुत्रशोको भवेत्कुजो वन्ध्या पण्डितवेधे दीक्षाकरणं करोति गुरुवेधे॥
भृगुसुतवेधे पुत्री दासी रविजेन्दुराहुसम्भूते।' इति।

पण्डितो बुधः दीक्षाकरणं प्रव्रज्या। चरणवेधमाह—खेट इति। तत्र तस्मिन्नक्षत्रे विद्यमाने ग्रहे सति यदि चतुर्थपादेऽस्ति तदा परनक्षत्रस्य प्रथमपादे वेधः यदि तृतीयपादे तद्वा द्वितीयचरणस्य वेधः एवं यदि द्वितीयपादे तदा तृतीयपादस्य वेधः। यदि प्रथमपादे तदा चतुर्थपादस्य वेध इत्यर्थः। यदाह वसिष्ठः—

'अतोऽन्त्यपादमादिगो द्वितीयगस्तृतीयकं तृतीयगो द्वितीयकं चतुर्थगस्तु चादिमम्।
भिनत्ति वेधकृद्ग्रहो न चान्यपादमादरात्॥'

एतद्यद्यपि शुभाशुभग्रहसाधारणं प्रदीयते, तथापि सौम्यग्रहपरं द्रष्टव्यम्। यतो वसिष्ठेनैव खार्जूरदोषाभिधानावसरे—

'विषप्रदिग्धेन हतस्य पत्रिणा मृगस्य मांसं शुभदं क्षतादृते।
तथैव पादो न शुभोवशिष्टाः पादाः शुभाश्चेति पितामहेन॥'

इत्याशंक्य समाहितं—

'पाद एव न शुभः शुभग्रहैर्विद्ध इत्यखिलशास्त्रसम्मतम्।
क्रूरविद्धभयुतं न शोभनं शोभनेषु गदितं न पादतः॥' इति।

नारदः—'पादमेव शुभैर्विद्धमशुभैर्नैव कृत्स्नतः' इति। कश्यपोऽपि—
क्रूरविद्धं युतं धिष्ण्यं क्रूराक्रान्तं च कृत्स्नभम्। मणिहेममयं हर्म्यं भूताक्रान्तमिव त्यजेत्॥' इति।
कृत्स्नभं सकलनक्षत्रम्। तस्मात्क्रूरग्रहविद्धे सम्पूर्णनक्षत्रत्यागः शुभविद्धे चरणत्याग इति सिद्धान्तः। तत्र विवाहे पञ्चशलाकावेध एव। यदाह वसिष्ठः—'पञ्चशलाकाचक्रे पाणिग्रहणं भवेधविधिरुक्तः। शस्तः शुभमित्रकृतः सप्तशलाकाज इतरत्र॥' इति। श्रीपतिः—वधूप्रवेशने दाने वरणे पाणिपीडने। वेधः पञ्चशलाकाख्योऽन्यत्र सप्तशलाककः॥' इति॥ ५६॥

पीताम्बरा—नक्षत्रों पर ग्रह वेध ज्ञान—रोहिणी अभिजित्, भरणी अनुराधा, उत्तराषाढ़ा मृगशिरा, श्रवण मघा, हस्त उत्तराभाद्रपद, स्वाती शतभिषा, मूल पुनर्वसु और उत्तराफाल्गुनी रेवती नक्षत्रों का परस्पर ग्रह कृत वेध होता हैं। जैसे भरणी पर कोई ग्रह हो तो उस ग्रह का अनुराधा पर और अनुराधा नक्षत्रस्थ ग्रह का भरणी नक्षत्र पर वेध होता है। समग्र ग्रह वेध की अपेक्षा ग्रह जिस नक्षत्र के जिस चरण पर हो वह यदि चतुर्थ हो तो विद्ध नक्षत्र के प्रथम चरण पर, और द्वितीय चरण पर ग्रह हो तो विद्ध नक्षत्र के तृतीय चरण पर सूक्ष्म वेध होता है। पीयूष में लिखित चित्र अवलोकन से एक रेखास्थित दो नक्षत्रों का परस्पर वेध प्रत्यक्ष है। जैसे मृगशिरा में स्थित ग्रह उत्तराषाढ़ा नक्षत्र पर अथवा उत्तराषाढ़ा नक्षत्रस्थ ग्रह मृगशिरा नक्षत्र पर वेध करता है। इसी प्रकार मृगशिरा के चौथे चरण और द्वितीय चरणस्थ ग्रह क्रमशः उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के द्वितीय और तृतीय चरणों पर वेध करेगा। इसी प्रकार उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चौथे चरण पर का ग्रह मृगशिरा नक्षत्र के प्रथम चरण, और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के द्वितीय चरण पर का ग्रह मृगशिरा नक्षत्र के तृतीय चरण पर वेध करेगा। एवं सर्वत्र समझना चाहिए। पापग्रह से विद्ध समग्र नक्षत्र शुभ कर्म में त्याज्य है। शुभग्रह से विद्ध नक्षत्र के वेधित चरण के अतिरिक्त और चरणों में शुभकर्म किये जा सकते है।

विवाह संस्कार, दान कर्म और वधू प्रवेश में पञ्चशलाका वेध का विचार करना चाहिए इनसे अतिरिक्त कार्यों में सप्तशलाका वेध से विचार करना चाहिए ॥ ५६ ॥

अथ केचित्सप्तशलाकाचक्रे वेधमाहुः। तदर्थं चक्रन्यासं विनैव बेधदोषं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

शाक्रेज्ये शतभानिले जलशिवे पौष्णार्यमर्क्षे वसु-
द्वीशे वैश्वसुधांशुभे हयभगे सार्पानुराधे तथा।
हस्तोपान्तिमभे विधातृविधिभे मूलादितित्वाष्ट्रभे,
ऽजाङ्घ्री याम्यमघे कृशानुहरिभे विद्धेऽद्रिरेखे मिथः ॥ ५७ ॥

पीयूषधारा—शाक्रेति। अद्रिरेखे सप्तशलाजाख्ये चक्रे शाक्रेज्ये ज्येष्ठापुष्यनक्षत्रे मिथः परस्परं क्रूराधिष्ठितत्वेन विद्धे ज्ञेये। एवं जलशिवे पूर्वाषाढार्द्रे विद्धे ज्ञेये। एवं सर्वथा व्याख्येयम्। वैश्वसुधांशुभे।

उत्तराषाढामृगशिरसी हयभगे अश्विनीपूर्वाफाल्गुन्यौ उपान्तिमभमन्त्यस्य समीपमुपयाति उत्तराभाद्रपदा। अन्यत्स्पष्टम्। अत्र मूलवाक्यं स्वरोदयस्थं यज्ञोपवीतप्रकरणेऽभिहितम्। चक्रोद्धारो व्यवहारसमुच्चयेऽपि—

'सप्त सप्त विनिपात्य रेखिकास्तिर्यगूर्ध्वमथ कृत्तिकादिकम्।
लेखयेदभिजिता समन्वितं चैकरेखगमेन विध्यते ॥' इति।

दीपिकायां—'यस्याः शशी सप्तशलाकभिन्नः पापैरपापैरथवा विवाहे।
उद्वाहवस्त्रेण तु संवृताङ्गी श्मशानभूमिं रुदती प्रयाति ॥'

तथा च भोजः—'विद्धे सप्तशलाकाख्ये विधवा लग्नवाससा।
पुनर्यात्यचिरान्नारी मुखाग्नौ मुखचन्द्रिकाम् ॥'

वैधव्यं च नक्षत्रतुल्याब्दैर्भवति। तदुक्तं वराहेण—'नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकामितैः सदसत्' इति। अत्रापि तुल्यन्यायत्वात्क्रूरवेधे सम्पूर्णनक्षत्रं त्वाज्यं, शुभग्रहवेधे पादस्त्याज्य इति ध्येयम्। नन्वत्र प्रागुक्तहेतोरष्टरावेवनक्षत्रयुग्मानि वाच्यानि, किमर्थं चतुर्दशयुग्मानामभिधानम् उच्यते। सप्तशलाकाज इतरत्रेति वचनात्सकलशुभकर्मसु विचार्यमाणत्वादेतावता मुक्तिः—

'भुक्तं भोग्यं तथा क्रान्तं विद्धं पापग्रहेण च। शुभाशुभेषु कार्येषु वर्जनीयं' प्रयत्नतः॥'

इति स्वरोदयेऽपि सामान्यतोऽभिधानात्॥ ५७॥

अथ सप्तशलाकाचक्रम्—



पीताम्बरा—सप्तशलाका वेध विचार—ज्येष्ठा पुष्य, शततारा स्वाती, पूर्वाषाढ़ा आर्द्रा, रेवती उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा विशाखा, उत्तराषाढ़ा मृगशिरा, अश्विनी पूर्वाफाल्गुनी आश्लेषा अनुराधा, हस्त उत्तराभाद्र, रोहिणी अभिजित्, मूलपुनर्वसु, चित्रा पूर्वभाद्रपद, भरणी मघा और कृतिका श्रवण, इन दो दो नक्षत्रों का परस्पर ग्रह कृत वेध होता है।

चक्र देखने से स्पष्ट होता है॥ ५७॥

अथ क्रूराक्रान्तादिनक्षत्रदोषं सापवादमनुष्टुभाह—

ऋक्षाणि क्रूरविद्धानि क्रूरमुक्ताविकानि च।
भुक्त्वा चन्द्रेण मुक्तानि शुभार्हाणि प्रचक्षते॥ ५८॥

पीयूषधारा—ऋक्षाणीति। क्रूरग्रहैर्विद्धानि ऋक्षाणीति। तथा क्रूरैर्मुक्तानि त्यक्तानि आदिशब्दात्क्रूराक्रान्तानि क्रूरगन्तव्यानि च। चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात्। त्रिविधोत्पातैः दूषितानि ऋक्षाणि ज्ञेयानि। तानि यदि चन्द्रेण युक्त्वा भुक्तानि तदा शुभार्हाणि प्रचक्षते वदन्ति। मुनय इति शेषः। यदाह वात्स्यः—'भुक्तं भोग्यं तथा क्रान्तं विद्धं पापग्रहेण भम्। मङ्गलेषु च कार्येषु यत्नतः परिवर्जयेत्॥' इति। वसिष्ठोऽपि—'उत्पातभं ग्रहणभं क्रूरविद्धस्थितं च यत्। दहत्येव शुभं कर्म राघवाग्निशरोम्बुधिम्॥' इति। शार्ङ्गीये—

'क्रूराश्रितं क्रूरविमुक्तविद्धं गन्तव्यधिष्ण्येषु कुमारिकाणाम्।
वदन्ति पाणिग्रहणे मुनीन्द्रा वैधव्यमब्दैस्त्रिभिरेवमाहुः॥' इति।

क्रूरोत्पाताद्याक्रान्तस्य भस्य चन्द्रेण भोगे न दोषो विवाहे—

अस्यापवादमाह केशवार्कः—'उत्पातपापग्रहदूषितं भं यदीन्दुराक्रम्य पुनर्भुनक्ति। तदा तदर्हं किल मङ्गलेषु त्यजेत्समाक्रान्तधनू रवीन्द्वोः॥' इति॥ अयमवधिराक्रान्तनक्षत्रभिन्न-

विषयो वेदितव्यः। तत्र हि चाण्डालधृतहस्तस्नानवच्चन्द्रभोगस्या निर्णेजकत्वात्। तदुक्तं शार्ङ्गीये—

'यद्धिष्ण्यं दोषसंयुक्तं स्यात्तथापीन्दुसंयुतम्। शुभकार्येषु तत्त्याज्यमन्यकर्मसु सिद्धिदम्॥
यथा हि चाण्डालधृतैकहस्तो मज्जन्नगाधेऽपि सरित्प्रवाहे।
भवेन्न पूतः शशिभोगतोऽपि तथा न शुध्येदुडुपापयुक्तम्॥
स्पृष्ट्वागते तु चाण्डाले शुद्धिराप्लवनाद्यथा। तथा भुक्त्वा गते क्रूरे चन्द्रभोगाद्विशोधनम्॥' इति

अत एवोक्तं वसिष्ठेन

'गन्तव्यधिष्ण्यं खलु भुक्तभं यत्क्रूरैर्महोत्पातविदूषितं च।
चन्द्रोपभोगादमलं तदानीं शुभेषु कार्येषु शुभप्रदं च॥' इति।

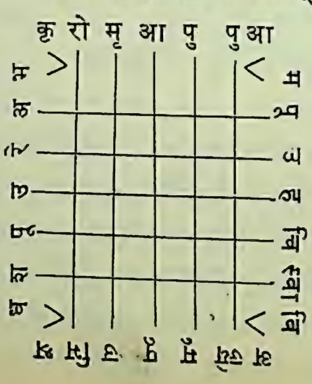
एतच्च सामान्यन्यायत्वात् क्रूरविद्धे भे चन्द्रभोगादपि शुद्धिर्नास्तीत्युक्तम्। यत्तु नारदेनोक्तं—'ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मङ्गलेषु ऋतुत्रयम्। यावच्च रविणा भुक्त्वा मुक्तं तद्दग्धकाष्ठवत्॥' इति। तद्यद्वाक्यं वाचनिकमिति न्यायेन ग्रहणोत्पातभयोः षण्मासपर्यन्तं निषेधस्ततोऽपि यावद्रविणा भुक्त्वा न त्यक्तं तावत्त्यजेत्। तत्रापि चन्द्रग्रहण एव। सूर्यग्रहणीयनक्षत्रस्य तु षण्मासानन्तरं सूर्यभोगोप्यावश्यकः। वसिष्ठवाक्यालोचनात्। अत्र क्रूरवेधे निखिलं भं त्याज्यं न चरण एव तदुक्तं कश्यपेन—

क्रूरविद्धयुतं धिष्ण्यं निखिलं नैव पादतः। अन्यैरपि गुणैर्युक्तं सर्वदोषविवर्जितम्॥
त्यजेदनर्घ्यमाणिक्यं कलङ्कोपहतं यथा।' इति।

अयं च कूराधिष्ठितत्वे दोषः क्रूरग्रहचन्द्रयोरेकराशिस्थत्वे वेदितव्यः। यदा तु चन्द्रः प्रथमपादे क्रूरग्रहश्च तृतीयपादे एवं सति राशिभेदोऽप्युपजायते तदा क्रूरग्रहाधिष्ठितत्वदोषो नास्तीति ध्येयम्। उक्तं च ज्योतिर्निबन्धे—

'एकस्मिन्नधिपे धिष्ण्ये भिन्ने राशौ खलग्रहे शशिनि।
तच्चन्द्रर्क्षे कुर्याद्विवाहयात्रादिकं सर्वम्॥' इति यथा मृगशिरसि प्रथमे पादे चन्द्रः तृतीये क्रूरग्रहः तत्र सत्यप्येकनक्षत्रत्वे राशिभेदो द्वयोरिति॥ ५८॥

अथ पञ्चशलाकाचक्रम्



पीताम्बरा—पापग्रहों से युक्त नक्षत्र दोष—जिस नक्षत्र पर पापग्रह का वेध हो, जिस नक्षत्र को भोगकर पापग्रह उसे छोड़ दिया हो, जिस नक्षत्र पर पापग्रह का योग हो, और जिस नक्षत्र पर पापग्रह का आगमन होने वाला हो वह नक्षत्र यदि चन्द्रमा से भुक्त हो जाय तो ऊपर के सभी दोष मिट जाते हैं और वह नक्षत्र संस्कार के योग्य हो जाती है। यदि नक्षत्र के प्रथम पाद में चन्द्रमा, तीसरे चरण में क्रूरग्रह हो तो क्रूरग्रहाधिष्ठित दोष नहीं होता ॥ ५८ ॥

अथ लत्तादोषमुपजातिकयाह—

ज्ञराहुपूर्णेन्दुसिताः स्वपृष्ठे भं सप्तगोजातिशरैर्मितं हि।
संलत्तयन्तेऽर्कशनीज्यभौमाः सूर्याष्टतर्काग्निमितं पुरस्तात् ॥ ५९ ॥

पीयूषधारा—ज्ञेति। सप्त प्रसिद्धाः गावो नव जातयो द्वाविंशतिः शराः पञ्च एतैर्मितं भं स्वाक्रान्तनक्षत्राज्ज्ञराहुपूर्णेन्दुसिताः स्वपृष्ठे संलत्तयन्ते। यथा बुधः सप्तमं राहुर्नवमं पूर्णेन्दुः पूर्णिमान्तचन्द्रो द्वाविंशम्। तच्च गतकृष्णपक्षे पञ्चमीषष्ठीसप्तमीनामन्यतमस्यां सम्भवति। शुक्रः पञ्चमं स्वपृष्ठे लत्तयतीत्यर्थः। अर्कशनीज्यभौमाः क्रमेण पुरस्तादग्रे सूर्याष्टतर्काग्निमितं संलत्तयन्ते। यथा सूर्यः स्वाक्रान्तनक्षत्राद्द्वादशं शनिरष्टमं गुरुः षष्ठ भौमस्तृतीयम् अग्रतो लत्तयतीत्यर्थः। यदाह नारदः—'पुरतः पृष्ठतोऽर्काद्यादिनर्क्षं लत्तितं च यत्। अर्काकृति-गुणांगर्तुबाणाष्टनवसंख्यभम्।।' इति। सूर्यः पुरतश्चन्द्रः पृष्ठतः एवं क्रमेण भौमादयोऽपि पुरतः पृष्ठतश्च लत्तयन्तीत्यर्थः। वराहोऽपि—

'सूर्यो द्वादशमृक्षं षष्ठं गुरुरवनिजस्तृतीयं तु। संलत्तयति दिवाकरपुत्रोऽष्टममग्रतः पादैः। पश्चाद्द्वाविंशतिभं पौर्णिमचन्द्रस्तु पञ्चमं शुक्रः। स्वर्भानुरपि नवमं सप्तममृक्षं शशांकसुतः॥' इति।

प्रत्येकं वेधफलमाह स एव—

'रविलत्ता वित्तहरी नित्यं कौजी विनिर्दिशेन्मरणम्। चान्द्री नाशं कुर्याद्बौधी नाशं वदत्येव॥ सौरी मरणं कथयति बन्धुविनाशं बृहस्पतेर्लत्ता। मरणं लत्ता राहोः कार्यविनाशं भृगोर्वदन्तीति॥'

नन्वग्रलत्ता वा पृष्ठलत्ता वा वक्तव्या, किमिति द्वैरूप्यकथनम्। अत्र समाधत्ते केशवार्कः।

'इति सति द्युसदामभिलत्तने यदनुलत्तनमुक्तमृषिव्रजैः।
तदुडुपश्चिमपूर्वविभागयोरनधिकाधिकदोषविवक्षया॥' इति।

अनधिकः स्वल्पः। अत्र राहोः सदा वक्रित्वान्नवमगणनाक्रमेणैव ग्राह्या। यथाश्विन्यां राहुराश्लेषां लत्तयति सम्मुखलत्तावादिमतेऽपि वक्रगामिना राहुणा सम्मुखमश्विनीरेवतीत्यादि-गणनया विंशतिभमाश्लेषैव न त्वन्यथा श्रयितव्यमिति साम्प्रदायिकाः॥ ५९॥

पीयूषधारा—लता दोष—बुध अपने से पीछे के ७ वें नक्षत्र, राहु ९ वें, पूर्णचन्द्रमा पीछे के २२ वें, और शुक्र अपने पीछे की ५ वीं नक्षत्र, पर लतादोषकारक (लात मारना) होता है।

जिस नक्षत्र पर सूर्य है उससे अपने आगे के १२ वें शनि ८ वें बृहस्प ६ ठे और मंगल तीसरे नक्षत्र पर लत्ता दोषकारक होते हैं।

राहु सदा वक्री होता है अतः गणनाक्रम से ९ वाँ नक्षत्र लत्ता कारक होगा। जैसे अश्विनी में राहु हो तो उसके पीछे की नवीं नक्षत्र पूर्वाषाढा नहीं होगा अपि च अश्विनी से अनुलोम ९ वीं नक्षत्र आश्लेषा ही समझनी चाहिए॥ ५९॥

अथ पातदोषं सुबोधं पथ्यार्ययाह—

हर्षणवैधृतिसाध्यव्यतिपातकगण्डशूलयोगानाम् ।
अन्ते यन्नक्षत्रं पातेन निपातितं तत्स्यात् ॥ ६० ॥

पीयूषधारा—हर्षणवैधृतीति । व्यतिपातकः इति स्वार्थे कः । हर्षणेत्यादिषड्योगानामन्ते यच्चन्द्रनक्षत्रं भवेत्तत्पातेन चण्डीशचण्डायुधाख्येन निपातितं स्यात् । यदाह त्रिविक्रमः—

'साध्यहर्षणशूलानि वैधृतिव्यतिपातयोः ।
षड्भं गण्डस्य चान्ते स्यात्पातेन निपातितम् ॥' इति ।

नारदेन प्रकारान्तरेणतत्प्रकारसम्पादकः पातोऽभिहितः—

'सूर्यभात्सार्पपित्र्यान्त्यत्वाष्ट्रमित्रोडुविष्णुभे । संख्यया दिनभे तावदश्विभात्पातदुष्टभम् ॥'

वसिष्ठेनापि—

'रविभादहिपितृमित्रत्वाष्ट्रभहरिपौष्णभेषु गणितेषु ।
अश्विनभादिन्दुयुतौ तावति वै पतति गणनया पातः ॥
'अयमपि पातो दोषश्चण्डीशचण्डायुधाह्वयो ज्ञेयः ।
अखिलेषु मङ्गलेष्वपि वर्ज्यो यस्माद्विनाशदः कर्त्तुः ॥

इति पद्येषु यद्यपि हर्षणादीनामुपादानं नास्ति तथाप्यभिहिताश्लेषादिनक्षत्रसाहित्येन पाताभिधानात्तत्तुल्यसंख्याकेष्वेव योगेषु पातसंभवो जायत इति मत्वा हर्षणादीनामुक्तिः । यद्येवं व्यतीपातवैधृतिभ्यां स्वीयभोगघटिकात्मकाभ्यां तिथिनक्षत्रादिकं सर्वमेव सामान्यतो निन्द्यमुक्तं तत्किमत्रानयोर्योगयोः पुनर्ग्रहणेन, उच्यते, यदा नक्षत्रयोगयोस्तुल्यकाले एव प्रवृत्तिनिवृत्तो तदाऽनयोर्योगयोरुपादानं व्यर्थमेव । यदा तु सूर्योदयादारभ्य कियद्घटिकत्वं दर्शयोगयोर्नक्षत्रभोगस्तु सूर्योदयादेव बहुकालव्यापी तदा पात सम्भवे तावत्कालस्यैव निषेधः । सामान्यवाक्यात् । पातसम्भवे हि सम्पूर्णस्य नक्षत्रस्य निषेधो यथा स्यादिति तयोर्दुष्टयोगयोः पुनरुपादानं कृतम् । एवमन्येष्वपि योगेषु पातसम्भवे सम्पूर्णनक्षत्रस्य निषेधो यथा स्यादित्यनयोर्दुष्टयोगयोः पुनरुपादानं त्याग इत्यर्थः । अयं च सर्वोऽपि विचार एकार्गलदोषेऽपि द्रष्टव्यः । यदा तु पातैकार्गलौ न स्तस्तदा दुष्टयोगानामुक्तादिमघटीत्यागः कर्त्तव्य इति ॥६०॥

पीताम्बरा—पात दोष—हर्षण, साध्य वैधृति, व्यतीपात, गण्ड, और शूल योगों के अन्तिम समय में जो नक्षत्र हो वह नक्षत्र पातदोष से दूषित होती है ॥ ६० ॥

अथ सूर्यचन्द्रक्रान्तिसाम्यापरपर्यायं महापातदोषं शालिन्याह—

पञ्चास्याजौ गोमृगौ तौलिकुम्भौ कन्यामीनौ कर्क्यली चापयुग्मे ।
तत्रान्योन्यं चन्द्रभान्वोर्निरुक्तं क्रान्तेः साम्यं नो शुभं मङ्गलेषु ॥ ६१ ॥

पीयूषधारा—पञ्चेति । पञ्चास्याजौ सिंहमेषौ, अन्ये प्रसिद्धाः, एषु राशियुग्मेषु चन्द्रभान्वोः पाठक्रमेण व्युत्क्रमेण वा स्थितयोः क्रान्तिसाम्यं निरुक्तं तन्मङ्गलेषु नो शुभं स्यात् । अत्र पञ्चास्याजावित्येवमादीनां ग्रहणमुदाहरणदिक्प्रदर्शनार्थत्वात्सर्वथा सूर्यचन्द्रमसोः सायनयोर्योगः षड्राशिमितो द्वादशराशिमितो वा विवक्षितः । तदैव क्रान्तिसाम्यस्य सम्भवात् । अतः सम्मतिवाक्यस्यानवसरः । नन्वेतावन्त एव षड्राशियोगा वा सम्भवन्तीति चेन्न । राश्यन्तावच्छेदस्थित्याधिकानामपि सम्भवात् तथाहि प्रत्यंशकलाविकलान्तस्थितत्वेनानन्तभेदसम्भवाच्च । अतः प्रागुक्तं व्याख्यानं ज्यायः । क्रान्तिसाम्यस्य च महापात इति नाम । एतस्य निंद्यतामाह वसिष्ठः—

'दोषो महापात इति प्रसिद्धः सवैधृतो हन्ति वधूं वरं च ।
तं रक्षितुं लग्नगुणास्त्वशक्ताः स्वबान्धवास्तेऽशनितोपघातम् ॥'

अशनिर्वज्रम् । नारदोऽपि—'यस्मिन्दिने महापातस्तद्दिनं वर्जयेच्छुभे' इति । अत एव पतनात्पातः सकलशुभकर्मणामित्यन्वर्थतापि सा च स्पष्टा सोमसिद्धान्ते—
'यच्छुभानां विनाशाय नदन्निव पतत्ययम् । व्यतीपातः प्रसिद्धोऽत्र संज्ञाभेदेन वैधृतिः ॥' इति ।

महापातशब्दस्य रूढिस्तु रवीन्दुसंक्रान्तिसाम्य एव नत्वन्येषां ग्रहाणां क्रान्तिसाम्ये । यथा जलजशब्दस्य रूढिः कमले न तु भेकादौ । क्रान्तिर्नाम ग्रहाणां दक्षिणोत्तरवृत्ते गमनम् । या च सूर्यस्य क्रान्तिः सा यदा चन्द्रक्रान्त्या तुल्या स्यात्स पातमध्यकालः । तत्रोत्सर्गतो रवीन्दु-क्रान्त्योः समानत्वं भुजसाम्ये सति भवति । भुजो नाम—

'त्र्यूनं भुजः स्यात्त्रयधिकेन हीनं भार्द्धं च भार्द्धादधिकं विभार्द्धम् । न वाधिकेनोनि-तमर्कभं च' इति लक्षणलक्षितः । तत्साम्यं तु सूर्याचन्द्रमसोर्योगे षड्राशितुल्ये द्वादशराशितुल्ये वा सति भवति । अत एव ग्रन्थकृता तादृशा योगा एव पठिताः । यदा तु भुजस्य न्यूनाधिकत्वं तदा–'दिवौकसोरन्तरलिप्तिकोटयानुगत्योर्वियोगेन हृतात्' इत्यादिना प्रकारेण ग्रहयुतिवत्तु भुजसाम्यमानेयम् । न तु भुजसाम्यमेव क्रान्तिसाम्यसाधकं चेत् किं गणितग्रन्थोक्तेन बह्वायास-साध्येन पाताध्यायेन, उच्यते—

'विक्षेपायक्रमैकत्वे क्रान्तिर्विक्षेपसंयुता । दिग्भेदे वियुता स्पष्टा भास्करस्य यथागताः ।'

इति सूर्यसिद्धान्तवाक्यात्सूर्यव्यतिरिक्तानां ग्रहाणां शरसंस्कृता क्रान्तिः स्पष्टेत्युच्यते तादृशी चन्द्रक्रान्तिश्चेत्सूर्यक्रान्त्या समा यस्मिन्काले स्यात्स स्पष्टः पातमध्यकालः । तत्र तादृश-क्रान्तिसाम्यानयनस्यातिकष्टसाध्यत्वात्तदध्यायोक्तिः सार्थिकैव । एवं ग्रन्थकर्त्रा सूर्याचन्द्रमसोः क्रान्तिसाम्यमेव दोषोऽभिहितः—'पञ्चास्याजौ' इत्यादिकथनं किमर्थमिति चेदुच्यते । 'विनाश-पातेन्दुमिहायनांशकैर्युतो रविः शीतकरश्च गृह्यते । समापमत्वे व्यतिपातवैधृताह्वयास्तदैक्ये रसभेऽर्कभे क्रमात् ॥' इति भास्कराचार्योक्तिमङ्गीकृत्य सामान्यतः क्रान्तिसाम्यदिवस्य शीघ्रो-पस्थित्यर्थं भुजसाम्यप्रतिपादकत्वात् । नन्वेवं भुजसाम्यमेव चेत्क्रान्तिसाम्योत्पादकं भवेत्तर्हि यत्र सूर्याचन्द्रयोः षड्राशिमितमन्तरं द्वादशराशिमितमन्तरं वा यथा मेषतुलयोर्मेषयोर्वा तत्रापि भुजसाम्यस्य तावदवस्थाक्रान्तिसाम्यं भवत्येवेति मासमध्ये महापातचतुष्टयं वक्तव्यं स्यात् । तत्कुतो हेतोर्नोक्तं ग्रन्थकृतेति चेत्' अत्रोच्यते योगोत्पन्ने हि पाते मुनिभिः स्नानदानादिक-फलमुक्तम् । अतः स एव महापातो गृह्यते न तु वियोगोत्पन्ने उक्तम् । अतः स न गृह्यते तदुक्तं वसिष्ठेन स्वसिद्धान्ते—

'चक्रे चक्रार्द्धतुल्ये वा कियद्भागाधिकोनके । सायनार्केन्दुयोगे चेत्तदा पातस्य सम्भवः ॥
शुभमङ्गलकर्माणि लोकानां च विनाशयेत् । स्नानदानादिकास्तत्र जपश्राद्धादिकाः क्रियाः ॥
तदापि कुरुते मर्त्यः सुमहत्फलमश्नुते । सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे कोटिस्वर्णार्पणे फलम् ॥
तत्फलं लभते पाते स्नानश्राद्धजपादिना । उत्पत्तौ लक्षणगुणितं भ्रमणे कोटिसंगुणम् ॥'
पातेथार्बुदसंगुण्यं पतिते दत्तमक्षयम् ॥' इति ।

तथा सूर्यसिद्धान्तेऽपि—

'एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा । तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः ॥'

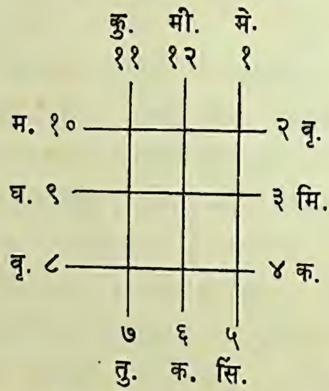
विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः । समास्तदा व्यतीपातो भगणार्द्धे तयोर्युतौ ॥
तुल्यांशजालसम्पर्कात्तयोस्तु प्रवहाततः । तादृक्क्रोधोद्भवो वह्निर्लोकाभावाय जायते ॥' इति ।

अत एवान्तरोत्पन्नक्रान्तिसाम्ये महापातदोषो नास्त्येव । तदुक्तं गणेशदैवज्ञैः—'पूर्वं तत्स्यात्पातमध्यं द्वितीयं पूर्वेणोक्तं तद्यतो नातिदुष्टम्' इति । अनेनैवाशयेन वसिष्ठेन स्वसंहितायामुक्तम्—

'शास्त्रात्समानीय महातिपातः स वैधृतो हन्ति वधूं वरं च ।
त्रिःसप्तवारानिव जामदग्न्यक्रोधोऽचिरात्क्षत्रकुलं समस्तम् ॥' इति ।

शास्त्राद्गणितशास्त्रोक्तान्महापाताधिकारादित्यर्थः । तत्र हि योगादेव महापातस्यानित्यत्वात्तस्यैव दोषत्वं नान्यस्येत्यर्थादुक्तं भवति । किं च पञ्चाङ्गीयोऽपि योगः सूर्याचन्द्रमसोर्योगादेव साधितः । स्पष्टाधिकावेकस्तस्मादेव महापातोऽपि साधयितुमुचित एव । अथात्र ज्ञाते क्रान्तिसाम्येऽप्येकस्मिन्काले मङ्गलकृत्यं निषिद्धमित्येष विशेषविचारो 'न्यूनाधिमासकुलिकप्रहरार्धपात' इत्यत्रास्माभिरभिहितोऽस्ति । स तत एवावगन्तव्य इत्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ६१ ॥

अथ क्रान्तिसाम्यचक्रम्—



पीताम्बरा—क्रान्तिसाम्य दोष—सिंह-मेष, वृष, मकर, तुला-कुम्भ, कन्या-मीन, कर्क, वृश्चिक, और धनु-मिथुन इन दो-दो राशियों में एक राशि में, सूर्य तो, दूसरी राशि में चन्द्रमा हो तो "क्रान्ति साम्य" (महापात) नामक दोष होता है । यथा सिंह में सूर्य और मेष में चन्द्रमा, या मेष में चन्द्रमा तो सिंह में सूर्य हो तो ऐसी स्थितियों में गणित गोल सिद्ध सूर्य और चन्द्रमा की तुल्य क्रान्तियाँ होने से क्रान्ति साम्य नामक दोष हो जाता है । शुभ कार्यों में क्रान्ति साम्य (महापात) दोष शुभ नहीं होता है । यह सिद्धान्त ग्रन्थों में पात गणित ज्ञान का एक स्वतन्त्र और विशद अध्याय है । संक्षेप से एक अयनगत सूर्य चन्द्रमा का योग १२ राशि और उन दोनों की क्रान्तियों में समता होने से वैधृति नामक, तथा भिन्नायन गत सूर्य चन्द्रमा का योग ६ राशि तुल्य और दोनों की क्रान्तियों की समता होने से व्यतीपात नामक योग होता है । दोनों के तुल्य अंशों के जाल सम्पर्क से तथा प्रवह वायु से उत्पन्न सूर्य चन्द्रमा के क्रोध से उत्पन्न अग्नि से लोक में अमंगल उत्पन्न होता है । इत्यादि से गणितागत पात पञ्चाङ्गों में दिया जाता है जो शुभ कार्यों में सदा त्याज्य है ॥ ६१ ॥

अथ खार्जूरदोषं सुबोधमिन्द्रवज्रयाह—

व्याघातगण्डव्यतिपातपूर्वे शूलान्त्यवज्रे परिघातिगण्डे ।
एकार्गलाख्यो ह्यभिजित्समेतो दोषः शशी चेद्विषमर्क्षगोऽर्कात् ॥ ६२ ॥

पीयूषधारा—व्याघातेति । अन्त्यो वैधृतिः, अन्ये प्रसिद्धाः । यस्मिन्दिने व्याघातादिके विरुद्धे दुष्टयोगे सति अर्कादर्कनक्षत्राच्छशी चन्द्रोऽभिजित्समेतो विषमे विषमसंख्याके ऋक्षे नक्षत्रे स्यात्तदा खार्जूरचक्रोत्पन्न एकार्गलाख्यो दोषः । यदा समे स्यात्तदा न दोषः इत्यर्थः । तदाह त्रिविक्रमः—

'विरुद्धनामयोगेषु साभिजिद्विषमर्क्षगः । अर्कादिन्दुस्तदा योगो निंद्य एकार्गलाभिधः ॥' इति ।

केशवार्केणापि—'न्यस्ते सहाभिजिति' इत्यादिनाऽभिजिद्गणनोक्ता ।

वसिष्ठेन तत्र चक्रमभिहितम्—

'अन्त्यातिगण्डपरिघव्यतिपातपूर्वव्याघातगण्डवरशूलमहाशनीषु ।
चित्रानुराधपितपन्नगदस्रभेषु साहित्यमूलशशिसूरिषु मूर्धभेषु ॥
रेखामेकामूर्ध्वगां षट् च सप्त तिर्यक् कृत्वाप्यत्र खार्जूरचक्रे ।
तिर्यग्रेखासंस्थयोश्चन्द्रभान्वोर्दृक्सम्पातो दोष एकार्गलाख्यः ॥'

चक्रोद्धारो यथा—

'खरकरतुहिनांश्वोर्दृष्टिसम्पातजन्मा अनलमयशरीरी सूदिगरन्नग्निसङ्घान् ।
भुवि पतति जनानां मङ्गलध्वंसनाय गुणगणशतसंघैरप्लवार्योऽग्निकोपः ॥' इति ।

अत्र वसिष्ठवाक्येऽभिजित्साहित्यमस्ति न वेति सन्देहः ।

नारदस्त्वभिजिद्वर्जितं चक्रमाह—

'व्याघातशूलपरिघपातपूर्वेषु सत्स्वपि । गण्डातिगण्डकुलिशवै धृत्या सहितेषु च ॥
अदितीन्दुमघाह्याद्यमूलमैत्रेज्यभानि च । ज्ञेयानि सह चित्राभिर्मूर्ध्नि भानि यथाक्रमम् ॥
लिखेदूर्ध्वगतामेकां तिर्यग्रेखास्त्रयोदश । तत्र खार्जूरिके चक्रे कथितं मूर्ध्नि भं न्यसेत् ॥
भान्येकरेखागतयोः सूर्याचन्द्रमसोर्मिथः । एकार्गलो दृष्टिपाताच्चाभिजिद्वर्जितानि वै ॥'

'लाङ्गले कमठे चक्रे फणिचक्रे त्रिनाडिके ।
अभिजिद्गणना नास्ति चक्रे खार्जूरिके तथा ॥' इति ।

कश्यपेनापि—'एकार्गलो दृष्टिपातश्चाभिजिद्रहितानि वै' इति । तत्र त्रिविक्रमकेशवार्कवाक्ययोः समूलत्वस्य शिष्टसम्मतत्वान्नारदादिवाक्यैः सह विकल्पः । ततोऽनयोः पक्षयोर्यथादेशाचाराद्व्यवस्थेति युक्तं प्रतीमः ॥ ६२ ॥

पीताम्बरा—खार्जूर दोष—जिस दिन व्याघात, गण्ड, व्यतिपात, शूल, विष्कम्भ, वैधृति, वज्र, परिघ और अतिगण्ड आदि विरुद्ध दुष्ट योग हों तथा सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा अभिजित् सहित विषम संख्यक नक्षत्रों (१. ३. ५.) में हो तो उस दिन खार्जूर चक्रोत्पन्न एकार्गल दोष होता है । सूर्य नक्षत्र से समसंख्यक नक्षत्रों में चन्द्रमा की स्थिति होने पर उक्त व्याघातादिक दुष्ट योग युक्त दिन में खार्जूर दोष नहीं होता है ॥ ६२ ॥

अथोपग्रहदोषमुपेन्द्रवज्रयाह—

शराष्टदिक्छक्रनगातिधृत्यस्थितिर्धृतिश्च प्रकृतेश्च पञ्च ।
उपग्रहाः सूर्यभतोऽब्जताराः शुभा न देशे कुरुबाह्लिकानाम् ॥ ६३ ॥

पीयूषधारा—शरेति । सूर्यभतः सूर्याक्रान्तनक्षत्रादब्जताराश्चन्द्रनक्षत्राणि पञ्चाष्टदश-चतुर्दशसप्तैकोनविंशतिपञ्चदशाष्टादशैकविंशतिद्वाविंशतित्रयोविंशतिचतुर्विंशतिपञ्चविंशतिसंख्या-काश्चेत्स्युस्तदोपग्रहनामका दोषाः स्युः । प्रकृतिरेकविंशतिः । यदाह नारदः—

'भूकम्पः सूर्यभात्सप्तमर्क्षे विद्युच्च पञ्चमे । शूलोऽष्टमे च नवमे शनिरष्टादशे ततः ॥
केतुः पञ्चदशे दण्डश्चोल्का एकोनविंशतिः । निर्घातपातसञ्ज्ञश्च ज्ञेयः स नवपञ्चमे ॥
मोहनिर्घातकम्पाश्च कुलिशं परिवेषकम् । विज्ञेयाश्चैकविंशाख्यादारभ्य च यथाक्रमम् ॥
चन्द्रयुक्तेषु भेष्वेषु शुभकर्म न कारयेत् ।' इति ।

वराहः—'उपग्रहर्क्षेषु विवाहिता स्त्री सूर्यर्क्षतो दुर्भगतामुपैति ।'

अन्यत्रापि—

'गृहप्रवेशे दारिद्र्यं विवाहे मरणं भवेत् । प्रस्थाने विपदः प्रोक्ता उपग्रहदिने यदि ॥' इति ।

एवं सामान्यतो निषेधमभिधाय देशभेदेन परिहारमाह—शुभा इति । स्पष्टार्थमेतत् । 'वाह्लीके कुरुदेशे च वर्जयेद्भमुपग्रहम्' इति कश्यपोक्तेः ॥ ६३ ॥

पीताम्बरा—उपग्रह दोष—सूर्य नक्षत्र से ५, ८, १०, १४, ७, १९, १५, १८, ११, २२, २३, २४, २५ संख्यक नक्षत्रों में चन्द्रनक्षत्र (दिवस नक्षत्र) होने से उस दिन उपग्रह दोष होता है । सामान्य तथा उपग्रह दोष बताते हुए कुरुक्षेत्र और वाह्लिक (काश्मीर के समीप पश्चिम) देशों में हा उपग्रह नामक दोष का विशेष अनिष्ट फल कहा गया है ॥ ६३ ॥

अथोपग्रहापवादप्रसङ्गात्पातोपग्रहलत्तास्वपवादं वारदोषभेदमर्द्धयामं चानुष्टुप्छन्दसाह—

पातोपग्रहलत्तासु नेष्टोऽङ्घ्रिः खेटपत्समः ।
वारस्त्रिघ्नोऽष्टभिस्तष्टः सैकः स्यादर्धयामकः ॥ ६४ ॥

पीयूषधारा—पात इति । पातश्चण्डीशचण्डायुधाख्यो दोषः । उपग्रहः प्रागुक्त एव । लत्ता 'ज्ञराहुपूर्णेन्दु' इत्यादिनोक्ता । तत्र खेटपत्समः ग्रहचरणतुल्यो नक्षत्रचरणोऽनिष्टः । अस्यार्थः । पाते उपग्रहे च रविर्यस्मिन्नङ्घ्रौ स्यात्तत्संख्यचरणस्तस्य नक्षत्रस्य वर्ज्यो नान्यः । लत्तायां तु ये लत्ताकारिणो ग्रहा यच्चरणे स्युस्तत्संख्य एव चरणो वर्ज्यो नान्यः । उक्तं च मुहूर्तदीपिकायाम्—

'उपग्रहेषु लत्तायां तथा चण्डायुधाह्वये । ग्रहोऽस्ति यत्प्रमाणांशे विद्धांशस्तत्प्रमाणतः ॥' इति ।

उपग्रहचण्डायुधयोः सूर्यक्रतोऽङ्घ्रिर्ग्राह्यः । तस्यैव सम्भवात् । अयं च परिहारस्तुल्य-न्यायत्वात् खार्जूरिकेऽपि द्रष्टव्यः । सूर्यो यस्मिन् पादे भवेत्तत्समसंख्यश्चरण एकरेखावस्थित-चन्द्रनक्षत्रस्य वर्ज्य इत्यर्थः । 'खार्जूरिकसमांघ्रिभम्' इति नारदोक्तेः । ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—

'पूर्वाह्णे दण्डदोषः स्यादपराह्णे तु मोहजः । उल्कायामर्द्धरात्रे तु कम्पोऽह्नोरात्रदूषकः ॥'

'कम्पोल्कादण्डमोहानामङ्घ्रिभम्' इति नारदोक्तेः । 'स्वरमासदशर्त्तवः ७।१२।१०।६।

आदितो घटिकास्तेषु वर्जनीयाः प्राः शुभाः' इति । वार इष्टो वारस्त्रिघ्नः सैकोऽष्टभिस्तष्टः शेषितो योंऽकः सोऽर्द्धयामाख्यो दोषः स्यात् । स्वार्थे कः । यदाह श्रीपतिः—

'मनीषिणोऽर्द्धप्रहराद्द्वितीयादारभ्य सर्वेष्वपि मङ्गलेषु ।
भौमे भृगौ सूर्यबुधार्किचन्द्रसुरेज्यवारेषु विवर्जनीया ॥' इति ।

अत्र कथनं समानार्थमिति चेत् प्रथमार्द्धप्रहरः कस्यापि वर्ज्यो नास्ति । तत्र सूर्यस्य वारे तावत्प्रथमादर्द्धप्रहरादारभ्य तृतीयोऽर्द्धप्रहर उक्तोऽतस्त्रिगुणः सैक इत्युपपन्नः । ततस्तृतीयचन्द्रस्य वारे सूर्योदयात्सप्तम इति वारस्त्रिघ्नः सैक इत्यत्रापि सिद्धम् । ततस्तृतीयो भौमस्य वारे सूर्योदयाद्दशमः । रात्रौ चार्द्धयामानुक्तेरिति दिवसस्याष्टवार्द्धयामा इत्यष्टाभिः शेषित इत्युपपन्नम् । एवं बुधवारादिष्वपि द्रष्टव्यम् । अत्र पुनरुक्तपरिहारमग्रुनैव वक्ष्यामः । कश्यपः—

'शैलाक्षश्रुतयः सूर्ये चन्द्रे षड्वेदपर्वताः । भौमे बाणाग्निनेत्राणि सौम्ये वेदाक्षिवायवः ॥'
गुरुवारेऽग्निचन्द्रेभाः शुक्रे नेत्राद्रिवह्निभाः । शनौ चन्द्रेभतर्काः स्युः कुलिको यमघण्टकः ॥
अर्द्धप्रहरसञ्ज्ञाः स्युर्मङ्गलेषु विवर्जयेत् । वारदोषेण दुष्टं यल्लग्नं सर्वगुणान्वितम् ॥
त्यजेद्यथा पुरोडाशं वायसोपहतं तथा ॥' इति ।

फलमाह वशिष्ठः—

'निधनं प्रहरार्द्धे तु निःस्वत्वं यमघण्टकेत । कुलिके सर्वनाशः स्याद्रात्रावेते न दोषदाः ।' इति ॥६५॥

पीताम्बरा—पात-उपग्रह-लत्ता दोषों का (अपवाद) परिहार और अर्द्धयाम—पात, (चण्डायुध) उपग्रह, लत्ता दोषों में ग्रहचरणतुल्य नक्षत्र चरण नेष्ट हैं । अर्थात् पात और उपग्रह में सूर्य जिस नक्षत्र के जिस चरण में हो उस नक्षत्र का वही चरण त्याज्य है । लत्ता दोष में लत्ता कारक ग्रह जिन चरणों मे हो तत्संख्यक नक्षत्र चरण वर्जित कर शेष चरणों में शुभ कार्य हो सकते हैं ।

तथा अर्द्धयाम दोष ज्ञान के लिए

जिस दिन (वार) में अर्द्धयाम दोष ज्ञात करना हो उस वार संख्या को ३ से गुणा कर आठ से भाग देकर शेष में १ जोड़ देने से उस वार को तत्संख्यक अर्द्धयाम दोष होता है । उदाहरणतः जैसे—मंगल को अर्द्धयाम दोष जानना है । सूर्यादि क्रम से मंगल संख्या ३ को ३ से गुणा किया ९ गुणनफल में ८ का भाग देकर शेष १ में १ जोड़ने से २ आता है । अतः मंगलवार के दिन दूसरी संख्या में अर्द्धयाम दोष होता है । ध्यान देने की बात हैं कि दिनमान में ८ कां भाग देने से अर्द्धयाम होता है ।

आचार्य का अर्द्धप्रहर संख्या का ज्ञान गौरव का है । आचार्य के प्रकार से रविवार को $\frac{१\times३+१}{८}$ = ४ चौथा, सोमवार को $\frac{२\times३+१}{८}$ शेष = ७वाँ, मंगलवार को $\frac{३\times३+१}{८}$ = शेष = २, बुधवार को $\frac{४\times३+१}{८}$ = शेष = ५वाँ, गुरुवार को $\frac{५\times३+१}{८}$ = ८वाँ, शुक्रवार को $\frac{६\times३+१}{८}$ = शेष = ३ तीसरा और शनिवार को $\frac{७\times३+१}{८}$ = ६ छठा अर्द्धयाम या अर्द्ध प्रहर होते हैं । रविवारादि से क्रमशः ४, ७, २, ५, ८, ३, ६ संख्यक अर्द्धयाम होते हैं । देखने से रविवारादि क्रम से प्रत्येक अर्द्धप्रहर ३ संख्यक आगे सिद्ध हो रहा हं । यथा ४ + ३ = ७, ७ + ३ = $\frac{१०}{८}$ = २, २ + ३ = ५, ५ + ३ = ८, $\frac{८+३}{८}$ = ३ और ३ + ३ = ६ ॥ ६४ ॥

अथ वारदोषभेदं कुलिकमनुष्टुभाह—

शुक्रार्कदिग्वसुरसाब्ध्यश्विनः कुलिका रवेः।
रात्रौ निरेकास्तिथ्यंशाः शनौ चान्त्योऽपि निन्दितः ॥ ६५ ॥

पीयूषधारा—शुक्रेति। रवेरिति ल्यब्लोपे पञ्चमी। रविमारभ्य सर्ववारेषु क्रमादुक्तसंख्यास्तिथ्यंशा मुहूर्ताः कुलिकाः स्युः। यथा दिवसे रवौ १४, सोमे १२, भौमे १०, बुधे ८, गुरौ ६, शुक्रे ३, शनौ २, रात्रावेते निरेकाः कार्याः यथा रवौ १३, सोमे ११, भौमे ९, बुधे ७, गुरौ ५, शुक्रे ३, शनौ १, शनौ.त्वन्त्योऽपि रात्रेः पञ्चदशोऽपि मुहूर्तः कुलिकः। एते कुलिका निन्दिताः। यदाह श्रीपतिः—

'मन्वर्कदिग्वस्वृतुवेदपक्षैरर्कान्मुहूर्तैः कुलिका भवन्ति।
दिवा निरेकैरथ यामिनीषु ते गर्हिताः कर्मसु शोभनेषु ॥'

रत्नकोशे—

'दिवा द्वितीयः कुलिकोऽर्कजाते रात्रौ प्रदिष्टः प्रथमः स एव।
रात्रेस्ततः पञ्चदशे विभागे एवं विवर्ज्यं कुलिकत्रयं च ॥' इति।

ननु सामान्यतः सूर्ये षट्स्वरनागेत्यादिना दुर्मुहूर्तार्धयामकुलिका उक्ताः, इदानीं किं पुनरुच्यन्ते इति सत्यम्, आवश्यकत्वद्योतनार्थम्। तथाहि विवाहे एषां दोषाणां सर्वथैव त्यागः। 'विवाहे विधवा नारी' इत्यभिहितफलस्य दुस्सहत्वात्। भर्तुर्मरणे हि यावज्जीवं पत्न्याः सर्वप्रकारकदुःखानुभावसत्त्वात्। यज्ञोपवीतादिशुभकर्मणि तु संस्कार्यमरणे सम्बन्धिनां तात्कालिकं दुःखम्। पित्रोस्तु पुत्रान्तराभावे कियत्कालमेव, तत्सत्त्वे पुनः कियद्दिनमात्रम्। सर्वथा विधवासदृशं दुःखं कस्यापि नास्ति। किं च वारप्रकरणे सामान्यतो मुनिभिर्दिनरात्रिसाधारण्येन कुलिकाद्युक्त्वा रात्रावेते न दोषदा इत्युक्तम्। तस्यापि बाधो यथा स्यात्। अत एव कश्यपो वारप्रकरणे कुलिककण्टकार्द्धयामानभिधाय विवाहप्रकरणे पुनरप्यभिदधाति स्म। ग्रन्थकर्त्रा मुहूर्तत्वं कुलिकादीनामभिसंधाय दुर्मुहूर्त्तानामप्यभिधानं कृतम्। किं च कुलिका अत्रावश्यं वक्तव्याः रात्रौ कुलिकज्ञानं यथा स्यात् तत्र साधारण्येन दिनरात्रिविभागेन शीघ्रोपस्थित्यर्थं पद्येनाभिधानं— 'सूर्ये षट्स्वरनाग' इत्यादिना मुहूर्त्तत्यागे कुलिककण्टकार्द्धप्रहरा इति पुनः सन्देहे 'कुलिकः कालवेला च' इति पद्यस्मरणमपेक्षितमिति गौरवापत्तेश्च। अत एव शिष्टा अप्यन्येषां दोषाणां यथासम्भवत्यागपूर्वकं कुलिकार्द्धयामदुर्मुहूर्त्तानामवश्यं त्यागं विधत्ते। ग्रन्थकर्त्रापि पुनरुक्ता इति युक्तं प्रतीम इत्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ६५ ॥

शीलाम्बरा—वार दोष के कुलिकादि संज्ञा भेद—सूर्यवार से आरम्भ सूर्यादिक सातों वारों में, क्रमशः १४, १२, १०, ८, ६, ४, २ मुहूर्त कुलिक संज्ञक होते हैं। रात्रि में क्रमशः (एक कम) १३, ११, ९, ७, ५, ३ और १ संख्यक मुहूर्त कुलिक संज्ञक होते हैं। "सूर्य षट् स्वर.नाग इत्यादि पीछे प्रकरण में कुलिक कालवेला आदिक मुहूर्त बताए ही गये हैं, तो विवाह में आवश्यक त्याज्य होने के कारण शीघ्र स्मृति बनी रहने से यहाँ पर पुनरुक्ति दोषाय नहीं अपि च गुणाय ही है। शनिवार के दिन कुलिक मुहूर्त तो त्याज्य ही है साथ ही अन्तिम मुहूर्त भी शुभ कर्म में अवश्य त्याज्य है ॥ ६५ ॥

अथ पञ्चाङ्गदोषविशेषं दग्धतिथ्याख्यमिन्द्रवज्रयाह—

चापान्त्यगे गोघटके पतङ्गे कर्काजगे स्त्रीमिथुने स्थिते च ।
सिंहालिगे नक्रघटे समाः स्युस्तिथ्यो द्वितीयाप्रमुखाश्च दग्धाः ॥६६॥

पीयूषधारा—चापेति । तत्तद्राशियुग्मस्थिते पतङ्गे सूर्ये स्थिते द्वितीयाप्रमुखाः शुक्लकृष्णपक्षसाधारणाः समास्तिथ्यो दग्धाः स्युरिति वाक्यार्थः । यथा चापान्त्यगे धनुमर्नीगते सूर्ये द्वितीया दग्धा गोघटगे सूर्ये चतुर्थी कर्काजगे कर्कमेषगे सूर्ये षष्ठी स्त्रीमिथुने कन्यामिथुनस्थिते सूर्येऽष्टमी सिंहालिगे सूर्ये दशमी नक्रघटे मकरतुलागते सूर्ये द्वादशी दग्धेत्यर्थः । यदाह वसिष्ठः—

'एकान्तरा दिनपतौ दिवसे द्वितीया पूर्वान्त्यचापघटयोर्धटमौक्षयोश्च ।
कर्काजयोर्मिथुनकन्यकयोश्च कीटहयोस्तुलामकरयोः खलुः मासदग्धाः ॥
मासदग्धासु तिथिषु कृतं यन्मङ्गलादिकम् ।
तत्सर्वं नाशमायाति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥' इति ।

पूर्वान्त्येत्यत्र पूर्वा अन्त्येत्याद्यपेक्षितम् । तत्र 'नमुने' इत्यत्र नेति योगविभागादसिद्धत्वाभावे सन्धिः । औक्षयोरिति । उक्षा वृषराशिरौक्षः । 'औक्षमनपत्ये' इत्यकारान्तो निपातितः। अस्यापवादमाह कश्यपः—'मासदग्धाश्च तिथयो मध्यदेशे विवर्जिताः' इति ॥ ६६ ॥

पीताम्बरा—दग्ध तिथियाँ—धनु और मीन के सूर्य में द्वितीया, वृष-कुम्भ के सूर्य में चतुर्थी, कर्क-मेष के सूर्य में षष्ठी कन्या मिथुन के सूर्य में अष्टमी, सिंह वृश्चिक के सूर्य में दशमी और मकर तुला के सूर्य में द्वादशी, तिथियाँ दग्ध संज्ञक होती हैं ॥ ६६ ॥

अथ जामित्रदोषं भ्रमरविलसितेनाह—

लग्नाच्चन्द्रान्मदनभवनगे खेटे न स्यादिह परिणयनम् ।
किं वा बाणाशुगमितलवगे जामित्रं स्याच्छुभकरमिदम् ॥६७॥

पीयूषधारा—लग्नादिति । विवाहलग्नाच्चन्द्राद्वा सप्तमभवनं गृहं तत्र गते खेटे परिणयनं न स्यात् । उक्तं च—

'जामित्रं द्विविधं प्रोक्तं गर्गगालवगौतमैः ।
तस्माल्लग्नाच्च चन्द्राच्च जामित्रं परिवर्जयेत् ॥' इति ।

तत्स्वरूपवाह महेश्वरः—'लग्नाच्छीतकराद्ग्रहा द्यूनगता नेष्टा विवाहे स्मृता' इति । वसिष्ठो लग्नप्रकरणे—'सर्वे जामित्रसंस्था विदधति मरणम्' इत्याह स्म । लल्लः—

'पापात्सप्तमगः शशी यदि भवेत्पापेन युक्तोऽथवा यत्नेनापि विवर्जयेन्मुनिमते दोषोऽपि सङ्कथ्यते ।
उद्वाहे विधवा व्रते तु मरणं शूलं च पुंकर्मणा यात्रायां विपदो गृहेषु दहनः क्षौरेऽपि रोगो महान् ॥'

भुजबलः—

चन्द्रात्सप्तमराशिगे दिनकरे त्यक्ता धनैः कन्यकाभौमे च प्रमदा प्रयाति विलयं सौरेण बन्ध्या सरुक्।
जीवः शुक्रशशांकजौ शुभकराः केचिद्वदन्ति क्रमाद्भर्तृप्रेप्सितदीक्षितास्तभवने नित्यं प्रवासान्विता ।'
इति ।

अस्यापवादमाह—

किं वेति । किं वाशब्दो विकल्पे । पूर्वग्रहाधिष्ठितराशेः सप्तमराशिस्थितत्रिशद्भागात्मके लग्नेऽपि चन्द्रो निषिद्ध इत्युक्तम् । इदानीं तदधिष्ठिराशिनवांशमारभ्य बाणाशुगाः पञ्चपञ्चाशत् तन्मितनवांशगे लग्ने चन्द्रे सति जामित्रं स्यात् । यथा मेषराशौ पञ्चमनवांशे भौमोऽस्ति । तस्मात्तुलायां पञ्चनवांशस्थं लग्नम् । तत्र चन्द्रो निषिद्धः । अन्येष्टौ नवांशाः शुभाः । एवंविधं सूक्ष्मं जामित्रमिदमशुभकरं स्यात् । यदाह महेश्वरः—

'कैश्चित्त्र्यायनवांशकादिषु शरैस्तुल्ये नवांशे स्थिता ।' इति ।

केशवार्कस्तु नवांशादेवाह—

'हिमरश्मिनवांशकात्खलो यदि चन्द्रोऽपि स्वलब्धसायकांशके ।
अयमन्यगुणैर्न हन्यते निबिडैरत्युपसर्गडम्बरः ॥' इति ।

अपवादान्तरमाह राजमार्तण्डः—

'तुङ्गत्रिकोणभवने भवने निजे वा सौम्याधिमित्रगृहगोऽपि तदीक्षितो वा ।
जामित्रवेधजनितानपहृत्य दोषान्दोषाकरः सुखमनेकविधं विधत्ते ॥' इति ।

व्यवहारसमुच्चयेऽपि—

'स्वोच्चेऽथवा स्वभवने स्फुरदंशुजालः सौम्यालये हितगृहे शुभवर्गगो वा ।
जामित्रकारिपरिसञ्चितदोषराशिं हृत्वा ददाति बहुशः सुखमेव चन्द्रः ॥' इति ।

कालखण्डे वात्स्यायनः—

'गुरुश्चन्द्रश्च जामित्रे तिष्ठेद्यदि बलान्वितः । धनसौभाग्यपुत्रांश्च लभते नात्र संशयः ॥ मणिमुक्ताप्रवालैश्च सुवर्णाभरणैः शुभैः । शोभिता तु सदा तिष्ठेद्गुरुणापि निरीक्षिते ॥ सा तु भर्त्तुः प्रिया नित्यं बुधे चन्द्रस्य सप्तमे ।' इति ॥ ६७ ॥

पीताम्बरा—प्रसिद्ध जामित्र दोष—लग्न या चन्द्रमा से सप्तम में कोई भी ग्रह जामित्र दोषकारक होता है। यह स्थूल जामित्र होता है। लग्न या चन्द्रमा से ५५ वें नवांश में स्थित ग्रह से भी जामित्र दोष होता है। इसे सूक्ष्म जामित्र कहना चाहिये।

जैसे मिथुन राशि के दूसरे नवांश में लग्न है तो मिथुन के ८ नवांश + कर्क के नवांश, ९ + सिंह ९ + के कन्या के ९, + तुला के ९, + वृश्चिक के ९ + धनु के २=५५ वें नवांश तक ६ राशियाँ होती हैं अतः सप्तम राशि का नवांश धनू राशि का ५५ वाँ नवाश होगा ॥ ६७ ॥

अथैकार्गलादिमहादोषाणामुक्तानां लग्नान्तराभावे सत्यपि अपवादभूतमिन्द्रवज्र-लक्षणाक्रान्तं साक्षाद्वसिष्ठवचनमेवाह—

एकार्गलोपग्रहपातलत्ताजामित्रकर्त्तर्युदयास्तदोषाः ।
नश्यन्ति चन्द्रार्कबलोपपन्ने लग्ने यथार्काभ्युदये तु दोषा ॥६८॥

पीयूषधारा—एकार्गलेति । एकार्गलः खार्जूरचक्रे, उपग्रहः शराष्टेत्यादिनोक्तः पातश्चण्डीशचण्डायुधम्, लत्ता 'ज्ञराहु' इत्यादिनोक्ता, जामित्रमधुनोक्तम्, कर्त्तरी 'लग्नात्पापा' वित्याद्युक्ता । उदयास्तदोषा वक्ष्यन्ते एवंविधा दोषा नश्यन्ति, कदा विवाहलग्ने चन्द्रार्कबलं

स्वोच्चमित्रादिराशिस्थितत्वरूपं विहितस्थानस्थितत्वं च तेनोपपन्ने सहिते सति । अत्र दृष्टान्तमाह—यथेति । अर्कस्य सूर्यस्याभ्युदये दोषा रात्रिर्यथा नश्यतीत्यर्थः । गाढान्धकारयुक्तापि रात्रिरेकाकिना सूर्यस्योदयेन स्वयमेव नश्यति । अत एव दोषापदं प्रयुक्तम् । निशादिप्रयोगे तु साधारण्येन शुक्लपक्षीयाया अपि रात्रेः सम्भवाच्चन्द्रेणैव कियत्तमसो निरस्तत्वादवशिष्टान्धकारनाशे सूर्यस्यापुरुषार्थत्वापत्तेरिति कैमुतिकन्यायमपि सूचयति दोषापदम् । वसिष्ठवाक्यस्य मन्वादिवाक्यवत्प्रामाण्यान्न सम्पत्यन्तरापेक्षा ।। ६८ ।।

पीताम्बरा—उक्त एकार्गलादि महादोषों का अन्य लग्न की अप्राप्ति पर भी अपवाद— जैसे सूर्योदय से रात्रिरूप अन्धकार नष्ट हो जाता है वैसे ही सूर्य और चन्द्रमा दोनों ग्रहों के बलों से युक्त लग्न की स्थिति पर एकार्गल, उपग्रह, पात, लत्ता, जामित्र, कर्तरी और उदयास्तादि अनेक दोष नष्ट हो जाते हैं ।। ६८ ।।

अथ केषाञ्चिद्दोषाणां देशभेदेन परिहारभूतमुपजातिलक्षणाक्रान्तं वसिष्ठपद्यमेवाह—

उपग्रहर्क्षं कुरुबाह्लिकेषु कलिङ्गबङ्गेषु च पातितं भम् ।
सौराष्ट्रशाल्वेषु च लत्तितं भं त्यजेत्तु विद्धं किल सर्वदेशे ।। ६९ ।।

पीयूषधारा—उपग्रहर्क्षमिति । कुरवो वाह्लिकाश्च पश्चिमदेशास्तेषूपग्रहदोषाक्रान्तभं त्यजेत् । तदतिरिक्तसर्वदेशेषु शुभमेवेत्यर्थः । कलिङ्गा बङ्गाश्च प्राग्देशौ । बहुवचनान्मगधाङ्गादयोऽपि । तेषु चण्डीशचण्डायुधापरपर्यायं पातं त्यजेत् । न तु क्रान्तिसाम्यरूपं पातं तस्य महापात इति व्यवहारात् । सौराष्ट्रशाल्वदेशौ पश्चिमदेशविशेषौ । बहुवचनाद्ग्रामबाहुल्यं, तेषु लत्तितं लत्ता सञ्जातास्य तद्भं परित्यजेत् । विद्धं क्रूरेण शुभेन वा पञ्चशलाकादिचक्रद्वाराभिन्नं भं भूतलवर्तिसर्वदेशेषु त्यजेत् । किल निश्चयेन । न त्वस्य देशभेदेन परिहारः । एतदपि वाक्यं सम्मत्यन्तरं नार्हति । विवाहपटलेऽपि—

'लत्तां मालवके देशे पातं कोशलके तथा । एकार्गलं तु काश्मीरे वेधं सर्वत्र वर्जयेत् ।।' इति वराहः-'युतिदोषो भवेद्गौडे जामित्रस्य च यामुने । वेधदोषस्तु विन्ध्याख्ये देशे नान्येषु केषु च ।।'इति

एषां वाक्यानां यथादेशाचारं व्यवस्था ।। ६९ ।।

पीताम्बरा—कुछ दोषों का देशभेद से परिहार—कुरु और वाल्हिक देशों में उपग्रह दोषयुक्त नक्षत्र, कलिङ्ग और बंग देश में पातदूषित नक्षत्र, सौराष्ट्र और शाल्व देशों में लत्ता पीडित नक्षत्र को शुभ कर्म में वर्जित करना चाहिए । ग्रहों से वेधित नक्षत्र तो शुभ कर्म में सब देशों में वर्जित करनी चाहिए ।। ६९ ।।

अथ दशयोगदोषानुपजातिकयाह—

शशाङ्कसूर्यर्क्षयुतेर्भशेषे खं भूयुगाङ्गानि दशेशतिथ्यः ।
नागेन्दवोऽङ्केन्दुमिता नखाश्चेद्भवन्ति चैते दशयोगसञ्ज्ञाः ।। ७० ।।

पीयूषधारा—शशाङ्केति । चेद्यदि चन्द्रसूर्यनक्षत्रयोर्युतेर्योगाद्भैः सप्तविंशत्या भक्ताद्यः शेषस्तस्मिन् शून्यैकचतुःषड्दशैकादशपञ्चदशाष्टादशैकोनविंशतिसंख्याके सति एते अंका दशयोगसंज्ञा भवन्ति । नान्ये इत्यर्थः शिष्टानां दशानामंकानामभिहितत्वाद्दशयोग इत्यन्वर्थसंज्ञा । तदुक्तं दीपिकायाम्—

'तिथ्यङ्गवेदैकदिगूनविंशमेकादशाष्टादशविंशसंख्याः ।
इष्टोडुना सूर्ययुतोडुना वा योगादमी चेद्दशयोगदोषाः ।।

लल्लोऽपि—

'यस्मिन्नृक्षे रविस्तिष्ठेद्यस्मिन्नृक्षे शशी तथा ।
द्वयोर्योगहृते धिष्ण्ये शेषः स्यात्खादितो दश ।।
शून्यवेदर्त्तुरूपाणि दिग्रुद्रतिथयो धृतिः ।
ऊनविंशा नखाश्चेति दशयोगाः प्रकीर्तिताः ।।' इति ।। ७० ।।

पीताम्बरा—दशयोग दोष—दशयोग नाम का एक दोष है। दश से दश संख्यक दोष नहीं समझने चाहिए अपि च सूर्य और चन्द्रमा दोनों के नक्षत्रों के योग में २७ का भाग देने से जो शेष बचे, वह शेष दश संख्या के ०।१।४।६।१०।११।१५।१८।१९।२० पठित इन अंकों में जिस दिन कोई भी अंक उपलब्ध हो तो उस दिन को दशदोष संज्ञक दिन कहा जावेगा ।। ७० ।।

अथ दशयोगानां फलं तदपवादं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वाताभ्राग्निमहीपचोरमरणं रुग्वज्रवादाः क्षति-
र्योगाङ्के दलिते समे मनुयुतेऽथौजे तु सैकेऽर्धिते ।
भं दास्रादथ सम्मितास्तु मनुभी रेखाः क्रमात्संलिखे-
द्वेधोऽस्मिन् ग्रहचन्द्रयोर्न शुभदः स्यादेकरेखास्थयोः ।। ७१ ।।

पीयूषधारा—वातेति । शून्यशेषे वातदोषः स्यात् । एकशेषेऽभ्रान्मेघात् चतुर्ष्ववशिष्टे, ष्वग्नेः षट्सु महीपाद्राज्ञः, दशसु चौरात् एकादशसु मरणं द्वयोरन्यतरस्य वा पञ्चदशसु रुक् अष्टादशसु वज्रम् एकोनविंशेषु वादः कलिर्झकटक इति यावत् विंशतिशेषे क्षतिर्द्रव्येण नाशः स्यात् । यदाह लल्लः—

मरुन्मेघाग्निभूपालचौरमृत्युरुजोऽशनिः । कलिर्हानिर्दशोद्वाहे दोषास्त्याज्याः सदा बुधैः ।
विवाहादौ प्रतिष्ठायां व्रते पुंसवने तथा । कर्णवेधे च चूडायां दशयोगं विवर्जयेत् ।।' इति ।

अथापवाद उच्यते

योगाङ्क इति । खशून्ययुगाङ्गादिरूपे योगाङ्के समे युग्मसंख्याके दलिते सत्यर्द्धीकृते सति मनुभिश्चतुर्दशभिर्युते योगाङ्के तदा दास्रादश्विनीतो भं नक्षत्रं स्यात् । यथा समांशके दशयोगः १० अर्द्धितः ५ मनुयुतः १९ मूलनक्षत्रं जातम् । योगाङ्के अयुग्मसंख्याके सति सैके एकयुक्ते ततोऽर्द्धिते अश्विनीतो भं स्यात् । यथा विषमाङ्कपञ्चदशयोगः १५ सैकः १६ अर्द्धितः ८ पुष्यनक्षत्रं जातम् । अथेत्यनन्तरं मनुभिः समिताश्चतुर्दशरेखास्तिर्यक् क्रमात्संलिखेत् यद्यथा अनेन प्रकारे यन्नक्षत्रमागतं तत आरभ्य साभिजिन्नक्षत्रवृन्दमस्मिंश्चक्रे लेख्यम् । तत्र स्वाक्रान्त-नक्षत्रे स्थाप्याः दिननक्षत्रे च चन्द्रे ।। एवं सति यदि ग्रहचन्द्रावेकरेखास्थौ स्यातां तयोस्तादृशयोः परस्परावलोकनरूपो वेधो न शुभदः उक्तं च ज्योतिःसागरे—

'योगाङ्के विषमे सैके समे सवसुलोचने । दलीकृतेऽश्विनीपूर्वं दशयोगमुदाहृतम् ।।
दशयोगे महाचक्रे प्रमादाद्यदि विध्यते । क्रूरैः सौम्यग्रहैर्वापि दम्पत्योरेकनाशनम् ।।' इति ।

दशयोगापवादान्तरमाह—भरद्वाजः—

'गुरौ लग्नाधिपे शुक्रे सवीर्ये लग्नकेन्द्रगे ।
दशदोषा विनश्यन्ति यथाग्नौ तूलराशयः ।। तूलं कार्पासः ।

व्यासोऽपि—

शुक्रेण गुरुणा वापि संयुतं दृष्टमेव च । दशयोगसमायुक्तमपि लग्नं शुभावहम् ।।' इति ।।७१।।

पीताम्बरा—७० श्लोक में २७ से भाग देने पर शून्यादिक शेष अंकों का फल—शून्य शेष में वायुभय, १ में मेघ, ४ में अग्नि, ६ में राज, १० में चौर, ११ में मृत्यु, १५ में रोग, १८ में वज्र, १९ मे कलह और २० शेष में धन नाश भय होता है ।

समसंख्यक योगांक (०,४,६,१०,१८,२०) के आधे में १४ जोड़ने से और विषम संख्यक (१,११,१५,१९) योगांक में एक जोड़ के उसके आधे से जो अंक उत्पन्न हो उस संख्या के तुल्य अश्विनी से आरम्भ कर गणना से उसे नक्षत्र मानना चाहिए । पुनः १४ तिरछी रेखाओं के चक्र में अभिजित सहित सभी नक्षत्रों को लिखना चाहिये । जिस नक्षत्र में जो ग्रह हो उस ग्रह को उस नक्षत्र में स्थापित करना चाहिए । ऐसे चक्र में चन्द्रमा और ग्रह का परस्पर का वेध भी शुभ नहीं होता है ।

जैसे सम योगांक १० का आधा ५ में १४ जोड़ने से १९वाँ मूल नक्षत्र और विषम योगांक १५ + १ = १६ का आधा = ८ अश्विनी से पुष्य नक्षत्र होता है । अतः ऐसी स्थिति में चक्र में नक्षत्र स्थापन मूल या अश्विनी से प्रारम्भ करना चाहिए इसी प्रकार सर्वत्र ।। ७१ ।।

अथ बाणदोषं शालिन्याह—

लग्नेनाढ्या याततिथ्योऽङ्कतष्टाः शेषे नागद्व्यब्धितर्केन्दुसङ्ख्ये ।
रोगो वह्नी राजचौरौ च मृत्युर्बाणश्चायं दाक्षिणात्यप्रसिद्धः ।। ७२ ।।

पीयूषधारा—लग्नेनेति । शुक्लपक्षप्रतिपदमारभ्य लग्नेनाढ्या गततिथ्योंकैर्नवभिस्तष्टाः शेषे नागसंख्येऽष्टसंख्ये रोगाख्यो बाणः । एवं द्विसंख्ये शेषे वह्न्याख्यः । चतुःसंख्ये शेषे राजाख्यः । तर्काः षट् तत्संख्ये शेषे चौराख्यः । एकसंख्ये शेषे मृत्युसंज्ञो बाणः । अयं च दाक्षिणत्येषु महाराष्ट्रदेशीयेषु लोकेषु प्रसिद्धः । तेन देशाचारव्यवस्थया बाणस्य त्यागः, न तु प्राच्योदीच्यपाश्चात्यानाम् । तदुक्तं सप्तर्षिमते विवाहपटले—

'गततिथियुतलग्नं पञ्चधा स्थापनीयं तिथि-१५-रवि-१२ दश-१० नागै-८ र्वेद-४ युक्तं क्रमेण ।
नव-९-हृतशर-५ शेषे बाणसञ्ज्ञा क्रमेण रुगनलनृपचौराः पञ्चमो मृत्युसञ्ज्ञः ।।' इति ।।७२।।

पीताम्बरा—दक्षिण देश में प्रसिद्ध बाण बोध—शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ कर गत तिथियों की संख्या में लग्न राशि जोड़कर ९ से भाग देकर शेष ८ में रोगबाण, २ शेष में अग्नि बाण, ४ शेष में राजबाण, ६ शेष में चौरबाण और १ शेष में मृत्युबाण होता है । प्राच्य उत्तर और पश्चिम देशों में बाण ज्ञान का इससे भिन्न (दूसरा) प्रकार है । यह प्रकार दाक्षिणात्य महाराष्ट्रीय देशों में ही प्रसिद्ध है ।। ७२ ।।

अथ प्राच्यमतेन बाणं सापवादं मालिनीच्छन्दसाह—

रसगुणशशिनागाब्ध्याढ्यसङ्क्रान्तियातांशकमितिरथ तष्टाङ्कैर्यदा पञ्च शेषाः ।
रुगनलनृपचौरा मृत्युसञ्ज्ञश्च बाणो नवहृतशरशेषे शेषकैक्ये सशल्यः ॥ ७३ ॥

पीयूषधारा—रसेति । अथशब्दः पादपूरणे । रसगुणशशिनागाब्धिभिराढ्या चासौ सङ्क्रातियातांशकमितिश्चेति कर्मधारयसमासः । स्पष्टनिरयनांशसूर्यसङ्क्रान्तिमुक्तांशानां मितिः संख्या पञ्चधा स्थाप्या । कलादिकमुपेक्ष्यम् । सा क्रमेण षट्त्र्येकाष्टचतुर्भिराढ्या संयोज्याङ्कैर्नवभिस्तष्टा सती यदा पञ्च शेषा यस्मिन्स्थले पञ्चावशिष्यन्ते तत्र क्रमेण रुगादिर्बाणो ज्ञेयः । यथा आदौ पञ्चशेषे रोगबाणः, द्वितीये पञ्चशेषेऽग्निबाणः, तृतीये पञ्चशेषे राजबाण, चतुर्थे पञ्चशेषे चौरबाणः, पञ्चमे पञ्चशेषे मृत्युबाणः, तस्मात्तस्माद्भयं भवतीत्यर्थः । यदाह कश्यपः—

'सङ्क्रातियातांशकनन्दशेषस्तर्काग्निरूपाष्टयुगैः समेतः ।
तष्टो ग्रहै रोगहुताशभूपस्तेनो मृतिश्चेति च पञ्च बाणा ॥' इति ।

पच्चेति पृथक् पृथक् पदम् । पञ्च शिष्यते तदा बाणाः स्युरित्यर्थः । तत्र बाणो द्विविधः एक काष्ठशल्योऽपरो लोहशल्यः । तत्राभिहितो बाणः काष्ठशल्य उच्यते । अस्य नाम प्राच्याख्यो बाण इत्याहुः तेन तादृशे बाणे लग्ने तथा पीडा न भवेत्तदर्थं तदपवादभूतो लोहशल्यसहितो बाण उच्यते । नवेति । यानि प्रागागतानि शेषाणि तेषामैक्ये नवहृते पञ्चशेषे सति सशल्यः लोहसहितो बाणः स्यात् । पञ्चव्यतिरिक्ते शेषे शल्यरहितो दुष्टबाणः । अयं तुल्यन्यायत्वात्प्राक्पद्योक्तेऽपि बाणे सशल्यो बाणो ज्ञेयः । ज्योतिश्चिन्तामणावन्यथा बाणोऽभिहितः—

'तिथिवारभलग्नाङ्को रसाग्न्यब्जाष्टवेदयुक् । नन्दाप्तपञ्चशेषे रुग्वह्निराट्चौरमृत्युकृत् ॥'

इति ॥ ७३ ॥

पीताम्बरा—उत्तर भारत में त्याज्य प्रसिद्ध बाण बोध—जब बाण विचार करना है उस मास की संक्रान्ति के गत अंशों को ५ स्थानों में स्थापित कर प्रत्येक स्थान में क्रमशः ६, ३, १, ८, ४ जोड़कर सर्वत्र ९ से भाग देना चाहिए । जहाँ शेष पाँच बचे उसे उस दिन क्रमशः रोग, अनल, नृप, चोर और मृत्युबाण समझना चाहिए । जैसे—प्रथम स्थान में शेष ५ बचे तो उस दिन रोगबाण, द्वितीय ५ शेष से अनल; तृतीय स्थान में ५ शेष से नृप (राज) चतुर्थ स्थान में ५ शेष से चौर और पाँचवें स्थान में ५ शेष से उस दिन मृत्युबाण समझना चाहिये । यदि कहीं भी शेष ५ नहीं हो तो उस दिन कोई भी बाण नहीं होता । सूर्य का गत अंश जिस समय तक होगा तभी तक उस दिन उक्त बाण रहेगा ।

तथा जहाँ ५ शेष बचे और ९ से भाग देने के अनन्तर कहीं ५ शेष बचा हो तो सभी शेषों के योग में ९ का भाग देने से फिर भी शेष ५ रहे तो उस दिन के बाण का नाम (शल्य से युक्त) (सशल्य बाण) बाण होता है । जो विशेष निन्द्य होता है । जैसे—

संक्रान्ति के गत अंश =	१७	१७	१७	१७	१७
	+ ६	+ ३	+ १	+ ८	+ ४
	२३,	२०,	१८,	२५,	२१

सब में पृथक्-पृथक् ९ का भाग देने से शेष ५, २, ०, ७, ३ होते हैं । प्रथम स्थान में ५ शेष होने से जिस समय तक सूर्य

के गतांश १७ होंगे उस समय तक उस दिन (प्रथम बाण) रोग नामक बाण रहेगा। शेषों का ऐक्य ५ + २ + ० + ७ + ३ = १७ ÷ ९ = शेष = ८। यहाँ पर यह भी ५ शेष होता तो सशल्य रोग बाण होता। अतः इस दिन केवल रोगं बाण है ॥ ७३ ।

अथ समयभेदेन वारभेदेन कार्यभेदेन वा त्रिविधं बाणपरिहारं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

रात्रौ चौररुजौ दिवा नरपतिर्वह्निः सदा सन्ध्योः
मृत्युश्चाथ शनौ नृपो विदि मृतिर्भौमेऽग्निचौरौ रवौ।
रोगोऽथ व्रतगेहगोपनृपसेवायानपाणिग्रहे
वर्ज्याश्च क्रमतो बुधैरुगनलक्ष्मापालचौरा मृतिः ॥ ७४ ॥

पीयूषधारा—रात्राविति। तत्र तावत्कालभेदेन परिहारः। रात्रौ चौररुजौ बाणौ त्याज्यौ, दिवा दिवसेऽग्निनृपती वह्निराजबाणो त्याज्यौ, सन्ध्ययोः प्रातः सायंसन्ध्ययोः सदा मृत्युबाणास्त्याज्यः, अर्थवशाद्विभक्तिविपरिणामः तदुक्तं ज्योतिःप्रकाशे—

'रोगं चौरं त्यजेद्रात्रौ दिवा राजग्निपञ्चकम्। उभयः सन्ध्ययोर्मृत्युमन्यकाले न निन्दितः' इति।

वारभेदेन परिहारः

अथेति। अथ शनौ शनिवारे नृपबाणः, विदि बुधवारे मृतिबाणः, भौमेऽग्निचौर-बाणौ, रवौ रोगबाणः, त्याज्यस्त्याज्याविति यथायोग्यं सम्बन्धः। उक्तं च दैवज्ञमनोहरे—

'रवौ रोगं कुजे वह्निं शनौ च नृपपञ्चकम्। वर्ज्यं पुनः कुजे चौरं बुधवारे च मृत्युदम् ॥' इति।

कार्यभेदेन परिहार उच्यते—

अथेति। क्रमतः एतेषु शुभकर्मसु एते बाणा वर्ज्याः। यथा व्रते यज्ञोपवीते रुक्, गेह गृह तस्य गोप आच्छादनं तत्रानलोऽग्नि, नृपसेवायां क्ष्मापालो राजा, यानो यात्रायां चौरः, पाणि-ग्रहे मृतिबाणो वर्ज्य इत्यर्थः। तदुक्त ज्योतिःप्रकाशे—

'नृपाख्यं राजसेवायां गृहगोपेऽग्निपञ्चकम्। याने चौरं व्रते रोगं त्यजेन्मृत्युं करग्रहे ॥' इति।

केचिदेवं पाठमाहुः—

'व्रते विवर्जयेद्रोगं गृहगोपेऽग्निबाणकम्। यात्रायां राजचौराख्यौ विवाहे मृतिपञ्चकम् ॥' इति ॥ ७४ ॥

पीता०—तीन प्रकार से (समय, कर्म और वार) बाण परिहार—समयभेदसे रात्रि में चोर और रोग, दिन में अग्नि और नृप, और प्रातः और सायं सन्ध्या समयों में मृत्यु बाण त्याज्य हैं।

वार भेद से, शनि वार के दिन नृप बाण; बुध के दिन मृत्युबाण, भौम के दिन अग्नि और चोर बाण, रविवार के दिन रोग बाण त्याज्य हैं।

कार्यभेद से यज्ञोपवीत संस्कार में रोग, घर के आच्छादन में अग्नि, राजसेवा समय नृप बाण, यात्रा में चोर बाण और विवाहसंस्कार में मृत्यु बाण का त्याग करना चाहिए ॥ ७४ ॥

अथोदयास्तशुद्धिं विवक्षुस्तदुपयोगिनीं ग्रहदृष्टिमुपजातिकयाह—

त्र्याशं त्रिकोणं चतुरस्त्रमस्तं पश्यन्ति खेटाश्चरणाभिवृद्ध्या।
मन्दो गुरुर्भूमिसुतः परे च क्रमेण सम्पूर्णदृशो भवन्ति ॥ ७५ ॥

पीयूषधारा—त्र्याशमिति। खेटा ग्रहा यस्मिन् स्थाने तिष्ठन्ति तस्मात्कथ्यमानानि स्थानानि चरणाभिवृद्धया पादवृद्धया पश्यन्ति। तद्यथा त्र्याशं तृतीयं दशमं चैकचरणदृष्टया पश्यन्ति, त्रिकोणं नवमं पञ्चमं द्विचरणदृष्टया पश्यन्ति, चतुरस्रं चतुर्थमष्टमं त्रिचरणदृष्टया पश्यन्ति, अस्तं सप्तमस्थानं चतुश्चरणदृष्टया पश्यन्ति, अनेन तत्तद्ग्रहोद्भवशुभफलं चरणाभिवृद्ध्यैव भवतीत्यसूचि। तदुक्तं वराहेण—

'दशमतृतीये नवपञ्चमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च। पश्यन्ति पादवृद्धया फलानि चैवं प्रयच्छन्ति॥' इति।

मन्द इति। मन्दः शनैश्चरः स्वस्थानात् त्र्याशं सम्पूर्णदृक् चतुश्चरणदृष्टिः। एकं गुरुस्त्रिकोणं भूमिसुतः चतुरस्रं परे चन्द्रबुधसूर्यशुक्राः सम्पूर्णदृश इत्यर्थः। यदाह गार्गिः—

'दुश्चिक्यदशमान्सौरिस्त्रिकोणस्थाम्बृहस्पतिः। चतुर्थाष्टमगाम्भौमः शेषाः सप्तमसंस्थितात्॥
भवन्ति वीक्षणान्नित्यमेवाधिकफलग्रहाः।' इति।

वाराहोऽपि—

'पूर्णं पश्यति रविजस्तृतीयदशमे त्रिकोणमपि जीवः।
चतुरस्रं भूमिसुतः सितार्कबुधहिमकराः कलत्रं च॥' इति॥ ७५॥

पीताम्बरा—लग्न शुद्धि के पूर्व ग्रहों की दृष्टियाँ—ग्रह जिस स्थान में स्थित हो उस स्थान से ३।१० वें स्थान को १ चरण से, ९।५ स्थानों को दो चरण से, ४।८ स्थानों को ३ चरण से और सप्तम स्थान को पूरी दृष्टि से देखते हैं। उक्त स्थानों में जो ग्रह हों उन्हें और उन भावों पर ग्रहों की उक्त भाँति की दृष्टि होती है।

जहां पर सब ग्रहों की १ चरण दृष्टि होती है वहां पर (३।१०) और सप्तम पर शनि की पूर्ण दृष्टि, तथा जहां पर सब ग्रहों की २ चरण दृष्टि होती है (९, ५) वहां पर और सप्तम पर भी बृहस्पति की पूरी दृष्टि, तथा जिन स्थानों को ग्रह ३ चरण से देखते हैं उन भावों या भावस्थ ग्रहों को (४।८) तथा सप्तम को भी मंगल पूरी दृष्टि से देखता है। इसका तात्पर्य यह भी हुआ कि शनि की १ चरण, गुरु की २ चरण और मंगल की ३ चरण की दृष्टि नहीं होकर इन जगहों और सप्तम स्थान पर पूरी दृष्टि होती है। शेष सूर्य चन्द्रमा बुध और शुक्र की, ३।१० पर एक चरण ९।५ पर दो चरण, ४।८ पर त्रिचरण और सप्तम पर पूरी (चार चरण) दृष्टि होती है॥ ७५॥

अथावसरप्राप्तावुदयास्तशुद्धिं शिखरिण्याह—

यदा लग्नांशेशो लवमथ तनुं पश्यति युतो भवेद्वाय् वोढुः शुभफलमनल्पं रचयति।
लवद्यूनस्वामी लवमदनभं लग्नमदनं प्रपश्येद्वा वध्वाः शुभमितरथा ज्ञेयमशुभम्॥७६॥

पीयूषधारा—यदेति। यदा लग्नांशेशो लग्नांशस्तस्येशः स्वामी लवं नवांशं पश्यति वा अथवा नवांशेन सह युतो वा भवेत्तदा वोढुर्वरस्यानल्पं बहु शुभफलं रचयति। यथा मेषलग्ने मिथुनांशस्तदीशो बुधः तुलायां मिथुनं पश्यति तत्र तिष्ठति वा। अयमुदयशुद्धेः प्रथमः कल्पः। 'तनु फलं हि लवा न बलवन्त' इति केशवार्कोक्तन्यायात्। तदलाभे तु लग्नांशेशस्तनुं लग्नं पश्यति लग्नेन सह युतो वा भवेत्तदापि वोढुः शुभफलमनल्पं स्यात्। यथा मेषलग्न एवं मिथुननवांशस्वामी बुधो मकरे स्वनवांशं न पश्यति

किन्तु लग्नं पश्यति अथवा मेषे तिष्ठति। अयमस्तशुद्धेः द्वितीयः प्रकारः। लवेति। लवद्यून-स्वामी बलवान्नवांशात् द्यूनं सप्तमनवांशस्तत्स्वामी लवमदनभं लवान्मदनभं सप्तमनवांशं पश्यति तेन सह युतो वा भवेत्तदा वध्वा अनल्पं शुभं रचयति। तथा मिथुननवांशात् सप्तमो धनुरंशस्त-दधीशो गुरुर्मेषे धनुः पश्यति तत्र तिष्ठति वा। अयमस्तशुद्धेः प्रथमः प्रकारः तदलाभे तु लवद्यूनस्वामी लग्नमदनं सप्तमभवनं पश्यति युतः सप्तमभवनेन सह युतो वा भवेत्तदा वध्वाः शुभम्। यथा गुरुः कर्के स्वनवांशं न पश्यति किन्तु सप्तमभवनं तुलां पश्यति अथवा तुलाया-मेवास्ति। अयमस्तशुद्धिद्वितीयः प्रकारः। इतरथेति। इतरथा यदा लग्नांशेशो लवं तनुं वा न पश्यति तत्र युतो वा न स्यात्तदा वरस्याशुभं मृत्युः स्यात्। यदा त्वस्तांशेशोऽस्तांशमस्त-भवनं लवं तनुं वा न पश्यति तत्र युतो वा न स्यात्तदा कन्याया अशुभं, मृत्युरित्यर्थः। यदाह कश्यपः—

'स्वस्वेशेनोदयास्तांशौ वीक्षितावथ संयुतौ। लग्नं वास्तगृहं तत्तदंशेशेनेक्षितं युतम्॥' इति।

वसिष्ठः—

इष्टोदयांशे निजपत्यदृष्टे वरस्य मृत्युस्तनुसंयुते च।
अस्तांशकेप्येवमदृष्टयुक्ते स्वस्वामिना नाशमुपैति कन्या॥' इति।

तुल्यन्यायत्वाल्लग्नेऽप्यस्तलग्नेऽपि उदयलवादस्तांशस्वामिनोर्दृष्ट्यभावेऽप्येतदेव फलं ध्येयम्॥ ७६॥

पीताम्बरा—अब सप्तम प्राप्त लग्नशुद्धि—लग्न के नवांश का पति, नवांश को अथवा लग्न को देखता हो, अथवा लग्न नवांश स्वामी नवांश से युक्त हो तो वर को अत्यन्त शुभ फल देता है। जैसे मेष लग्न में मिथुनांश (लग्न–०।८।१०) का स्वामी बुध तुला में होकर मिथुन को देखता है, अथवा मेष लग्न में मिथुनांश बुध मिथुन में बैठा है।

यदि उक्त योग की अप्राप्ति हो तब भी मेष लग्न में मिथुननवांश स्वामी बुध मकर में होकर अपने नवांश मिथुन को तो नहीं देख रहा है किन्तु तीन चरण दृष्टि से मेष लग्न को देखता है, अथवा बुध मेष में है, अतः लग्न से युत भी होने से भी लग्नशुद्धि का यह द्वितीय कल्प पूर्व की तरह वर के लिए अत्यन्त शुभ फलद होता है।

बलवान् लग्न नवांश से सप्तम नवांश स्वामी, नवांश से सप्तम नवांश राशि को देखता या सप्तम नवांश से युक्त हो तो कन्या के लिए अत्यन्त शुभ फलद होता है। जैसे मिथुन नवांश से सप्तम धनू राशि का स्वामी गुरु—मेष में होने से धनू राशि को देखता है, अथवा गुरु साक्षात् धनू राशि में ही बैठा हो तो कन्या के लिए विशेष शुभ का द्योतक होता है। उक्त योग की अप्राप्ति पर यदि कर्क राशि का बृहस्पति, मेष लग्न में मिथुनांश से सप्तम नवांश धनु को नहीं देख रहा है किन्तु मेष लग्न के सप्तम भवनस्थ तुला को गुरु देखता है अथवा यदि गुरु तुला में ही बैठा भी हो तो भी लग्न शुद्धि का यह द्वितीय कल्प कन्या के लिए विशेष शुभफल का सूचक होता है। इससे अतिरिक्त की स्थितियों की लग्न स्थिति वर कन्या के लिए विशेष सन्तोष की नहीं होती है॥ ७६॥

तदेव भुजङ्गप्रयातेनाह—

लवेशो लवं लग्नपो लग्नगेहं प्रपश्येन्मिथो वा शुभं स्याद्वरस्य ।
लवद्यूनपोंऽशद्युनं लग्नपोऽस्तं मिथो वीक्षते स्याच्छुभं कन्यकायाः ॥७७॥

पीयूषधारा—लवेश इति । नवांशस्वामी नवांशं प्रपश्येल्लग्नस्वामी लग्नं प्रपश्येत्तदा वरस्य शुभं स्यात् । अथवा मिथः परस्परं लवस्वामी लग्नं लग्नेशो लवं च पश्येत्तदापि वरस्य शुभं स्यात् । एवं लवद्यूनपो नवांशान्मदननवांशस्वामी अंशद्यूनमंशं सप्तमराशिमीक्षते लग्नपो लग्नस्वामी अस्तं लग्नात्सप्तमभवनमीक्षते तदा कन्यायाः शुभं स्यात् । वा अथवा मिथोसप्तमाधीशो लग्नसप्तमं वीक्षते लग्नात्सप्तमाधीशोंशसप्तममीक्षते तदापि कन्यायाः शुभं स्यात् अत्रोदाहरणं स्पष्टत्वान्नोक्तमस्माभिः । अत्रान्यथात्वे दम्पत्योरशुभमित्यर्थः । यदाह नारदः—

लग्ननवांशकौ स्वस्वपतिना वीक्षितौ युतौ । न चेद्वान्योन्यपतिना शुभमित्रेण वाथवा ॥
वरस्य मृत्युः स्यात्ताभ्यां सप्तसप्तोदयांशकौ । एवं तावीक्षितौ युक्तौ मृत्युर्वध्वाः करग्रहे ॥

वसिष्ठोऽपि—

'उदयांशः स्वनाथेन मित्रसौम्येन वा युतः । प्रेक्षितौ वा तथास्तांशो दम्पत्योः पुत्रपौत्रदः ॥' इति ।
परस्परवीक्षणेप्येतदेव फलं ध्येयम्, नारदवाक्यस्वरसात् ॥ ७७ ॥

पीताम्बरा—विवाह लग्न नवांश स्वामी नवांश को देखता हो, लग्न स्वामी लग्न को देखता हो तो वर के लिए विशेष शुभ फलद अथवा परस्पर नवांश स्वामी लग्न को और लग्न स्वामी नवांश को देखता हो तब भी वह वर के भविष्य लिए अत्यन्त शुभ सूचक होता है ।

इसी प्रकार लग्न नवांश से सप्तम नवांश स्वामी, नवांश से सप्तम राशि को देखता हो अथवा लग्न स्वामी लग्न से सप्तम भवन को देखता हो तो कन्या के लिए विशेष शुभ भविष्य का सूचक होता है ॥ ७७ ॥

अथ पूर्वोक्तप्रकारेणोदयास्तशुद्धेरभावेऽपि तृतीयप्रकारं मालिनीच्छन्दसाह—

लवपतिशुभमित्रं वीक्षतेऽशं द्युनं वा परिणयनकरस्य स्याच्छुभं शास्त्रदृष्टम् ।
मदनलवपमित्रं सौम्यमंशं द्युनं वा तनुमदनगृहं चेद्वीक्षते शर्म वध्वाः ॥७८॥

पीयूषधारा—लवपतीति—शुभमित्रं च शुभं तन्मित्रं चेति कर्मधारयः । लवपतेर्लग्ननवांशेशस्य शुभग्रहः सोमबुधगुरुशुक्राणामन्यतमश्चेन्मित्रं स्यात्स चेदंशं स्वनवांशं तनुं लग्नं वा वीक्षते यदा परिणयनकरस्य वरस्य शास्त्रदृष्टं वसिष्ठोक्तं पुत्रपौत्रादिप्राप्तिरूपं शुभं फलं स्यात् । एवं मदनलवस्यस्तां शेषस्य मित्रं सौम्यं चेत्स्यात्तच्चांशद्यूनमंशाल्लग्ननवांशात् द्यूनं सप्तमनवांशं चेद्वीक्षितं वा अथवा तनुमदनगृहं लग्नात्सप्तमभवनं चेद्वीक्षते तदा वध्वाः शास्त्रदृष्टं शर्मं न स्यात् । यद्युभयत्रापि नवांशस्वामिनो मित्रं पापग्रहश्चेत्तस्य दृष्टिरशुभैवेति फलितोऽर्थः । यदाह वराहः—

'शुद्धस्त्विह स्यान्न यदोदयांशो लग्नेन चास्तांशमुपैति सिद्धिम् ।
तदा सुहृत्सौम्यनिरीक्षितो यः शुभाय स स्यात्प्रवदन्ति सन्तः ॥' इति ।

नन्वत्र वाक्ये सुहृत्सौम्यनिरीक्षित इति पदे सुहृच्चासौ सौम्यश्चेति कर्मधारयाङ्गीकारे

भवदुक्त व्याख्यानं सत् । यदा हि सुहृच्च सौम्यश्चेति द्वन्द्वः तदा सुहृत्पापग्रहोऽपि स्यादिति चेन्न । प्रागुक्तवसिष्ठवाक्ये मित्रे सौम्येन वा युते इति तृतीयैकवचनान्तस्य पार्थक्योपादानात् । मित्रं चासौ सौम्यश्च मित्रसौम्यस्तेन मित्रशब्दस्य विशेषणत्वात्पूर्वनिपातः । द्वन्द्वाङ्गीकारे तु मित्रसौम्याभ्यामिति भवितव्यम् । तथा सति छन्दोभङ्गोऽपि स्यात् । समाहारद्वन्द्वो भविष्यतीति चेत्, न किञ्चित्प्रमाणम् । अतः कश्यपेनाप्येवमेवोक्तम्—

'राश्यंशौ मित्रसौम्येन वीक्षितौ वाथ संयुतौ । उदयास्तांशयोः शुद्धिस्त्रिविधा मङ्गलप्रदा ॥' इति ।

अतो वराहवाक्येऽपि कर्मधारय एवेति युक्तं प्रतीमः । वसिष्ठः—

'लग्नास्तशुद्धया रहितः सरोषः करोति मृत्युः वरकन्ययोश्च ।
त्रातुं यथा लग्नगुणास्त्वशक्तास्तं बन्धुवर्गा इव सर्पदष्टम् ॥' इति ।

केचित्तु विवाहादौ वज्रयोगं निषिद्धमाहुः । तल्लक्षणम्—

तिथिं वारं च नक्षत्रं नवभिश्च समन्वितम् । सप्तभिस्तु हरेद्भागं शेषांके फलमादिशेद् ॥
त्रिशेषे तु जलं विद्यात्पञ्चशेषे प्रभञ्जनः ।
सप्तशेषे वज्रपाता ज्ञेयं वज्रस्य लक्षणम् ॥' इति टोडरानन्दे ॥ ७८ ॥

पीताम्बरा—लग्न शुद्धि का तृतीय उपाय—लग्न नवांश के स्वामी का मित्र शुभ ग्रह (चन्द्र बुध गुरु और शुक्र में कोई) हो वह लग्न नवांश या लग्न को देखता हो तो विवाह करने वाले वर के भविष्य के लिए शास्त्रविहित शुभ फलदायक होता है ।

इसी प्रकार लग्न के सप्तम नवांश का स्वामी का शुभ मित्र ग्रह यदि लग्न के नवांश से सप्तम नवांश स्थान को देखता हो अथवा लग्न से सप्तम भवन को देखता हो तो वधू के लिए शास्त्रोक्त शुभ सूचक भविष्य का ज्ञापक होता है ॥ ७८ ॥

अथ सूर्यसङ्क्रमणाख्यं दोषं मञ्जुभाषिण्याह—

विषुवायनेषु परपूर्वमध्यमान् दिवसांस्त्यजेदितरसंक्रमेषु ।
घटिकास्तु षोडश शुभक्रियाविधौ परतोऽपि पूर्वमपि सन्त्यजेद् बुधः ॥७९॥

पीयूषधारा—विषुवेति । विषुवं तुलामेषसङ्क्रान्ती । अयनं कर्कमकरसङ्क्रान्ती । एवं चतसृषु विषुवायनाख्यासु सङ्क्रान्तिषु परपूर्वमध्यमान् गतागामिवर्त्तमानान्दिवसान्बुधः शुभक्रियाविधौ विवाहयज्ञोपवीतादिशुभकार्येषु त्यजेत् । इतरेष्वष्टसङ्क्रमेषु सङ्क्रमात्परतोऽग्रेऽपि पूर्वं प्रागपि षोडश घटिका मिलित्वा द्वात्रिंशद्घटिकास्त्यजेत् । यदाह वसिष्ठः—

'विषुवतोरयनयोर्दिनत्रयं हरिपदे षडशीतिमुखेषु च ।
पूर्वतोऽपि परतोऽपि सङ्क्रमान्नाडिकाश्च खलु षोडश त्यजेत् ॥
सङ्क्रान्तिदोषे त्वचिरात्कृतं यदुद्वाहपूर्वाखिलमङ्गलाद्यम् ।
लाक्षासमूहोऽज्ज्वलिताग्निमध्ये विलीयते तद्वदशेषमेतत् ॥' इति ।

उद्वाहादिग्रहणात्स्नानादावनिषेधः । तद्वाक्यानि संक्रान्तिप्रकरणेऽस्माभिरुक्तानि ॥

तत्र सायनसङ्क्रमेऽपि व्यवस्था

किं तद्दिनत्रयं त्याज्यं किं सङ्क्रान्तिकालात् प्राग्दिनत्रयमुत तदनन्तरमुत मध्यमं वेति पक्षत्रयसम्भवे निर्णयमाह गुरुः—

'अयने विषुवे पूर्वं परं मध्यन्दिनं त्यजेत् । अन्यसङ्क्रमणे पूर्वा पराः षोडश नाडिकाः ॥' इति ।

अयं च निषेधः सङ्क्रान्तिष्वपि ध्येयः । यदाह वसिष्ठः—

'यदायनप्रवेशः स्यात्तदा तद्राशिसङ्क्रमः । तस्मिन्नपि दिने त्याज्या नाड्यः षोडश षोडश ॥'

शौनकः—

'अयनद्वये समूढा भर्त्तारं नाभिनन्दते नारी । विषुवद्द्वयेऽपि विधवा षडशीतिमुखेषु सा म्रियते ॥ विष्णुपदेषु विगीता कन्या विकलेन्द्रिया व्यतीपाते । वैधृतिविष्टयोर्भ्रष्टा सुभगा शेषेषु करणेषु ॥'इति

विगीता पुंश्चलीत्याद्यभिशापेन प्रसिद्धा ॥ ७९ ॥

पीताम्बरा—सूर्य संक्रान्ति दोष—मेष तुला (विषुव संक्रान्ति) और कर्क-मकर (अयन संक्रान्तियों में संक्रान्ति का गत, वर्तमान और आगामी दिन, विवाह यज्ञोपवीतादि शुभ कार्यों में वर्जित करने चाहिए । इन चारों संक्रान्तियों के अतिरिक्त अन्य ८ संक्रान्तियों में संक्रमण काल से पहिले की १६ और पश्चात् की १६ घटिका शुभ कर्म में त्यागने का धर्म-शास्त्रज्ञों ने आदेश दिया है ॥ ७९ ॥

अथ सङ्क्रान्तिप्रसङ्गात्सकलग्रहाणां सङ्क्रान्तिघटीरनुष्टुभाह—

देवद्व्यङ्कर्तवोऽष्टाष्टौ नाड्योऽङ्काः खनृपाः क्रमात् ।
वर्ज्याः सङ्क्रमणेऽर्कादेः प्रायोऽर्कस्यातिनिन्दिताः ॥ ८० ॥

पीयूसधारा—देवेति । अर्कादेः सूर्यादेर्ग्रहसमूहस्यैता घटिकास्त्याज्याः । यथा सूर्यस्य सङ्क्रमणकालात्प्राक् पश्चाच्च मिलित्वा त्रयस्त्रिंशद्घटिकास्त्याज्याः । एवं चन्द्रस्य द्वे घटिके, भौमस्य नव, बुधस्य षट्, गुरोरष्टाष्टौ अष्टाशीतिः, शुक्रस्याङ्का नव, शनेः खनृपाः षष्ट्यधिक-शतघटिका वर्ज्याः । तत्रार्कस्य घटिकाः प्रायो बाहुल्येनातिनिन्दिताः । अत्र सम्मतिवाक्यं वासना-सहितविवरणं सङ्क्रान्तिप्रकरणेऽभिहितमस्माभिः । तत एवावधार्यम् ॥ ८० ॥

पीताम्बरा—अन्य सभी ग्रहों की संक्रान्ति शुभ कर्म में त्याज्य और स्नान दानादि के लिए पुण्यकाल—जिस प्रकार सूर्य संक्रमण समय की पूर्व पर की ३३ घटी शुभ कर्म में त्याज्य हैं उसी प्रकार चन्द्रादिक ग्रहों की भी चन्द्रादिक संक्रमण काल से पूर्व पर की क्रमशः चन्द्रमा की २, मंगल की ९, बुध की ६, गुरु की ८८, शुक्र की ९, और शनि की १६० घटिका (२$\frac{2}{3}$ दिन) पूर्वापर की शुभ कर्म मे त्याज्य हैं ॥ ८० ॥

अथ पंग्वन्धकाणबधिराख्यान् लग्नदोषानुपजातिकयाह—

घस्रे तुलाली बधिरौ मृगाश्वौ रात्रौ च सिंहाजवृषा दिवान्धाः ।
कन्यानृयुक्कर्कटका निशान्धा दिने घटोऽन्त्यो निशि पङ्गुसञ्ज्ञः ॥ ८१ ॥

पीयूषधारा—घस्रे इति । घस्रे दिवसे तुलाली तुलावृश्चिकौ बधिरौ स्मृतौ, मृगाश्वौ

मृकरधनुषौ रात्रौ बधिरौ न तु दिवसे, सिंहाजवृषा दिवसेऽन्धा उक्ता न तु रात्रौ । कन्यानृयुक्क-र्कटा राज्यन्धा न तु दिवान्धाः । धटः कुम्भो दिने पङ्गुसंज्ञो न तु रात्रौ । अन्त्यो मीनो निशि पङ्गुसंज्ञो न तु दिने । यदाह वसिष्ठः—

'मेषादिरन्धकं षट्कं चत्वारो बधिराः स्मृताः । द्वौ पङ्गू वेति विज्ञेयावित्येतद्राशिलक्षणम् ॥
मेषो वृषो मृगेन्द्रश्च दिवसेऽन्धाः प्रकीर्तिताः । नृयुक्कर्कटकन्याश्च रात्रावन्धाः प्रकीर्तिता ॥
तुला च वृश्चिकश्चैव दिवसे बधिरौ तथा । धनुश्च मकरश्चैव बधिरौ निशि कीर्तितौ ॥
कुम्भमीनौ च पङ्गू द्वौ दिवारात्रौ यथाक्रमम् ।' इति ।

कुम्भो दिवा पङ्गुः, मीनो रात्रौ पङ्गुः, अनेन यस्मिन्काले लग्नस्य योऽन्धपङ्ग्वादिदोष उक्तस्तस्मिन्नेव काले तल्लग्नं दोषावहं न कालान्तरे इत्युक्तं भवति ॥ ८१ ॥

पीताम्बरा—पंगु-अन्ध-काण-लग्न—प्रत्येक दिन में तुला-वृश्चिक और प्रत्येक रात्रि में धनु-मकर लग्न, बधिर होती हैं । दिन में सिंह-मेष और वृषभ तथा रात्रि में कन्या मिथुन और कर्क लग्न अन्ध होती हैं । तथा दिन में कुम्भ लग्न और रात्रि में मीन लग्न पंगु होती हैं ॥८१॥

अथ परमते पङ्ग्वन्धाँल्लग्नदोषानाह—

बधिरा धन्वितुलालयोऽपराह्णे मिथुनं कर्कटकोऽङ्गना निशान्धाः ।
दिवसान्धा हरिगोक्रियास्तु कुब्जा मृगकुम्भान्तिमभानि सन्ध्ययोर्हि ॥ ८२ ॥

पीयूषधारा—बधिरेति । धन्वितुलालयो धनुस्तुलावृश्चिका अपराह्णे दिवसस्यान्तिमे तृतीयविभागे बधिराः स्मृता । मिथुनकर्कटकन्या निशान्धाः स्मृताः । हरिगोक्रियाः सिंहवृषमेपास्तु दिवसेऽन्धाः स्मृताः । मृगकुम्भान्तिमभानि मकरकुम्भमीनाः सन्ध्ययोः प्रातःसायंसन्ध्ययोर्हि निश्चयेन कुब्जाः पङ्गवः स्मृताः । अत्र मूलवाक्यं नोपलभ्यते ॥ ८२ ॥

पीताम्बरा—मतान्तर से पंगु-अन्ध और काण लग्न—धनु-तुला और वृश्चिक लग्न दिन के अन्तिम तृतीय भाग में बधिर, मिथुन-कर्क और कन्या रात्रि में अन्धे, सिंह वृष मेष दिन में अन्ध, और मकर-कुम्भ मीन प्रातः सायं सन्ध्या समयों में पंगु (कुब्ज) होती हैं । यहाँ मूल वाक्य उपलब्ध नही होता है । अतः पूर्वश्लोक ८१ में पठित पंगु अन्धादि लग्न विशेष प्रमाणित हैं ॥ ८२ ॥

अथैषां प्रयोजनं सापवदं प्रहर्षिण्याह—

दारिद्र्यं बधिरतनौ दिवान्धलग्ने वैधव्यं शिशुमरणं निशान्धलग्ने ।
पङ्ग्वङ्गे निखिलधनानि नाशमीयुः सर्वत्राधिपगुरुदृष्टिभिर्न दोषः ॥ ८३ ॥

पीयूषधारा—दारिद्र्यमिति। स्पष्टार्थं पद्यम् । पङ्ग्वङ्गे पङ्गुलग्ने । यदाह वसिष्ठः—

'अन्धे वैधव्यमाप्नोति दारिद्र्यं बधिरे तथा ।
अर्थनाशो भवेत्पङ्गाविति धात्रा विनिश्चितम् ॥' इति ।

सर्वत्रेत्यस्य सम्मतिः । बादरायणः—

मासशून्याह्वयास्ताराराशयो बधिरादयः । गौडमालवयोस्त्याज्यास्त्वन्यदेशे न गर्हिताः ॥'
इति नारदवाक्यं ग्रन्थकृतैव प्रागुक्तम् ॥ ८३ ॥

पीताम्बरा—पंगु-अन्ध-आदिक लग्नों का फल—बधिर लग्न में विवाह संस्कार दरिद्रता के लिए, दिवान्ध लग्न में वैधव्य, रात्र्यन्ध लग्न का विवाह सन्तति मरण कारक, पंगु लग्न का विवाह समग्र धननाश कारक होता है। पंगु अन्ध आदिक कोई भी लग्न हो यदि इन लग्नों के अधिपतियों या बृहस्पति की लग्न पर दृष्टि हो तो इन लग्नों में किए गए विवाह संस्कार का कोई अनिष्ट फल नहीं होता है ॥ ८३ ॥

अथोदयास्तशुद्धिः प्रागुक्ता तत्रावसरप्राप्तान्विहितनवांशांश्चित्रपदाच्छन्दमाह—

कार्मुकतौलिककन्या युग्मलवे झषगे वा।
यर्हि भवेदुपयामस्तर्हि सती खलु कन्या ॥ ८४ ॥

पीयूषधरा—कार्मुकेति। कार्मुकं धनुः, तौलिकं तुला, कन्या प्रसिद्धा, युग्मं मिथुनम्, एषामंशे नवांशे झषगे वा मीननवांशे वा विकल्पेन। वाशब्दः स्वकीयमतसूचनार्थः। धनुरादिनवांशा सर्वमुनिसम्मता इत्यर्थः। तेष्वंशेषु यर्हि यदा उपयमो विवाहो भवेत्तर्हि कन्या विवाहोत्तरं सती पतिव्रता खलु निश्चयेन श्यात्।

नवांशलग्नेषु विवाहे फलानि—

तदाह वसिष्ठः—'लग्ने हि सर्वे शुभराशयश्च शुभेक्षिता वाऽथ युताः शुभाः स्युः।
नवांशकास्तौलिनयुग्युवत्यश्चापाद्यभागः शुभदो न चान्ये ॥
द्विभर्तृका मेषनवांशके स्याद्वृषांशके साऽपि सुशीलयुक्ता।
धनान्विता पुत्रवती तृतीये कुलीरकांशे कुलटाप्यजस्रम् ॥
सिंहांशके सा पितृमन्दिरस्था कन्यांशके वित्तयुता सुशीला।
तुलांशके सर्वगुणास्पदा सा कीटांशके निःस्वतरा विशीला ॥
चापांशकाद्ये धनिनी द्वितीये भागेऽन्यसक्ता मलिना गदाढ्या।
निःस्वा मृगांशे विगुणा घटांशे विभर्तृका योगरता विशीर्णा ॥
मीनांशके भर्तृयुतार्थहीना शुभग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते वा।
तस्मात्सदैवोक्तनवांशकेषु कुर्याद्विवाहं गुणसंप्रवृद्धयै ॥
नवांशदोषः सकलं गुणौघं लग्नोत्थसौम्यग्रहसम्भवं च।
ध्रुवं निहन्तीव वृकोऽजसंघं षड्वर्गजं सौम्यवियच्चराणाम् ॥' इति।

पशुशीलयुक्ता पश्वाचारपरा, गदो रोगः स्वं जनम्, एते एव च नवांशाः सकलमुनिभिरुक्ताः। 'तुलामिथुनकन्यांशा धनुरर्द्धार्द्धसंयुताः। एते नवांशा शुभदा यदि नान्त्यांशकाः खलु ॥' इति नारदोक्तेः।

शौनकस्तु मीनांशकमपि शुभमाह—

'सुदती सौभाग्यवती प्रहसितवदना च मीनांशे' इति तत्र निषेधस्य तुल्यबलत्वात्षोडशीग्रहणाग्रहणवद्विकल्प इत्याहुः, तत्र 'एकबाधेनोपपत्तावनेकबाधो न न्याय्यः' इति बहुमुनिवचनप्रामाण्यान्मीनांशत्याग एवोचितो न त्वेकतरमुनिवचनानुरोधात्पाक्षिको बाधः पाक्षिको विधिश्च, विकल्पस्याष्टदोषग्रस्तत्वात्। का तर्हि शौनकवाक्यस्य गतिरिति चेत्। गुणवद्वरोपलब्धौ लग्नान्तरासम्भवे मीनांशको निषिद्धोऽपि प्रशस्त इत्येवं युक्ता गतिः। यर्हीति। 'अनद्यतनेर्हिलन्यतरस्याम्' इति किंयत्तद्भ्योऽनद्यतने कालेर्हिल्प्रत्ययः। उपयामः 'यमः समुपनिविषु च' इति भावे धञ्। 'विवाहोपयमौ समौ। तथा परिणयोद्वाहोपयामाः पाणिपीडनम्' इत्यमरसिंहः ॥८४॥

पीताम्बरा—कन्या विवाह के उत्तम लग्न—धनु, तुला, कन्या, मिथुन अथवा मीन के नवांशक में विवाह संस्कार होने से कन्या अवश्य पतिव्रता भाग्यवती होती है ॥ ८४ ॥

अथ विहितनवांशे क्वचिन्निषेधं श्रीच्छन्दसाह—

अन्त्यनवांशे न च परिणेया काचन वर्गोत्तममिह हित्वा ।
नो चरलग्ने चरलवयोगं तौलिमृगस्थे शशिभृति कुर्यात् ॥ ८५ ॥

पीयूषधारा—अन्त्येति । विहितनवांशेष्वपि यथा मेष लग्ने धनुर्नवांशोऽन्तिम इत्येवं विषये लग्नान्तिमनवांशं काचन कन्या न परिणेया न विवाह्या । परन्तु वर्गोत्तममपि नवांशं हित्वा तत्र विवाह उचित एव । तथा मिथुनलग्ने मिथुनांशोऽन्तिमोऽपि वर्गोत्तमः शुभः । यदाह कश्यपः—

'अन्त्यांशका अपि श्रेष्ठा यदि वर्गोत्तमाह्वयाः । अनुक्तांशास्तु न ग्राह्या यतस्ते कुनवांशकाः ॥' इति ।

वसिष्ठोऽपि—

'वर्गोत्तमं विनान्त्यांशो विवाहे न शुभप्रदः । वर्गोत्तमश्चेदन्त्यांशः पुत्रपौत्रादिवृद्धिदः ॥' इति ।

अन्यच्च । नो चरलग्ने इति । तौलिमृगस्थे तुलामकरस्थे शशभृति चन्द्रे सति चरलग्ने विहितचरलवयोगं नो कुर्यात् । यथा मेषलग्ने तुलांशः । उक्तं च केशवार्केण—

'चरलवं चरवेश्मगमुत्सृजेन्मृगतुलाधरगे मृगलक्ष्मणि ।
युवतिरत्र भवेत्कृतकौतुका मदनवत्यनवत्य जनोन्मुखी ॥' इति ।

अनवो जीर्णो भर्त्ता तस्य त्यजने त्यागे उन्मुखी परपुरुषरता स्यादित्यर्थः ॥ ८५ ॥

पीताम्बरा—विवाह योग्य नवांशोंमें कहीं पर निषेध—वर्गोत्तम नवांश को छोड़कर अन्य किसी भी लग्न के अन्तिम नवांश में विवाह संस्कार नहीं करना चाहिये । जैसे मिथुन लग्न में अन्तिम नवांश मिथुन ही होता है अतः ऐसी स्थिति के वर्गोत्तम नवांश में अन्तिम नवांश विवाह संस्कार में शुभ होता है । अन्यथा अशुभ ।

तुला और मकर राशियों पर चन्द्रमा की स्थिति हो तो चर लग्न में चर राशि के नवांशक में भी विवाह संस्कार नहीं करना चाहिए ॥ ८५ ॥

अथ सर्वथा लग्नभङ्गयोगमुपजात्याह—

व्यये शनिः खेऽवनिजस्तृतीये भृगुस्तनौ चन्द्रखला न शस्ताः ।
लग्नेट् कविग्लौश्च रिपौ मृतौ ग्लौर्लग्नेटशुभाराश्च मदे च सर्वे ॥ ८६ ॥

पीयूषधारा—व्यय इति । व्यये द्वादशस्थाने स्थितः शनिः न शस्तः 'सोमकुलेऽपि हि जातां द्वादशगे मद्यपां कुरुते' इति शौनकोक्तेः । अत्र रविसुते इत्यनुवर्त्तते । खे दशमेऽवनिजो मङ्गलो न शस्तः 'शाकिनी व्योम्नि वक्रे' इति केशवार्कोक्तेः ।

तृतीये शुक्रो वर्ज्यः—

तृतीये भृगुः शुक्रो न शस्तः 'धन्या धनगे शुक्रे कृपणत्वं प्राप्नुयान्नारी। दुश्चिक्यगते कन्या त्र्यब्दाद्भर्तुः कनीयसा भजते।'' इति शौनकोक्तेः।

विवाहलग्ने वर्ज्या ग्रहाः—

तनौ लग्ने चन्द्रः खलाः पापग्रहाः न शस्ताः।

'लग्नस्थेऽर्के कन्या विधवा संवत्सरेऽष्टमे भवति। लग्नस्थो हिमरश्मिर्मृत्युं कुर्यात्-त्रयोदशे मासे।

भौमः सद्योविधवां लग्नस्थोऽब्दान्न सौम्यदृग्योगात्।
कामयति नीचवर्णाल्लग्नस्थे रविसुते बहून्पुरुषान्॥
शनिवद्विधुन्तुदस्य तु विज्ञेय सदसदिति विज्ञैः।' इति शौनकोक्तेः।

षष्ठे लग्नपशुक्रचन्द्रा वर्ज्याः—

लग्नेट् लग्नस्वामी, कविः शुक्रः, ग्लौश्चन्द्रश्च रिपौ षष्ठस्थाने न शस्तः। 'रन्ध्रे कुजे सौम्यखगे च मृत्युः षष्ठाष्टगे लग्नपतौ च मृत्युः' इति ज्योतिर्निबन्धकर्त्रोक्ते। 'भृगुषट्काह्वयो दोषो लग्नात्षष्ठगते सिते। उच्चगे शुभसंयुक्ते तल्लग्नं सर्वदा त्यजेत्॥' इति नारदोक्तेः। 'अब्दचतुष्कान्मृत्युर्दम्पत्योः षष्ठगे चन्द्रे' इति शौनकोक्तेः। ग्लौश्चन्द्रः।

अष्टमे लग्नपेन्दुबुधेज्यशुक्रारा वर्ज्याः—

लग्नेट् शुभाश्चन्द्रबुधगुरुशुक्राः आरो भौमश्चैते मृतावष्टमस्थाने न शस्ताः। 'मासत्रयेण विधवां निधनस्थश्चन्द्रमाः कुरुते। मासत्रयेण कन्या निधनस्थे याति पञ्चत्वम्॥' बुध इत्यनुवर्तते। पञ्चत्वं मरणम्। 'दम्पत्योर्निधनस्थः सप्तदशाब्दाद्वियोगदो जीवः पंचत्वं नयति भृगुर्निधनस्थः सप्तभिर्वर्षैः॥' इति शौनकोक्तेः। नारदः—'कुजोऽष्टमे महादोषो लग्नादष्टमगे कुजे। शुभत्रययुतं लग्नं त्यजेत्तत्तुङ्गगे यदि॥' अत्र सम्मतिः प्रागुक्ता।

सप्तमे लग्नात्सर्वथा शुद्धिरपेक्षिता—

लग्नेट् च पुनः सर्वे सूर्योदयो ग्रहा मन्दे सप्तमस्थाने न शस्ताः निषिद्धाः। सर्वे जामित्रसंस्था विदधति मरणम्' इति वसिष्ठोक्तेः। कश्यपोऽपि—सप्तमस्थानगाः सर्वे ग्रहा कुर्वन्ति शीघ्रतः। दम्पत्योर्मरणं यत्स्यादेकस्य च न संशयः॥' इति अर्थादन्येषु स्थानेषु ग्रहाः समीचीनास्तत्र केषुचित्स्थानेषु शुभा एव केषुचिन्मध्यमा एवेत्येतदपि वक्ष्यति। अतोऽमुमर्थमतिसंक्षिप्य त्रिविक्रमेण निषिद्धस्थानान्येवोक्तानि—

'त्याज्या लग्नेऽब्धयो मन्दात्षष्ठे शुक्रेन्दुलग्नपाः।
रन्ध्रे चन्द्रादयः पञ्च सर्वेऽस्तेब्जगुरू समौ॥' इति।

सप्तमे विधौ गुरौ वा दोषफलम्—

अब्जगुर्वोः समत्वं शौनकमतेन, तादृशविरुद्धफलाभावात्। यदाह—

'कन्यास्तिस्रो जनयति सपत्न्यं चैव सप्तमे शशिनि।
शीलचरित्रोपेतां करोति पत्युः कलत्रगो द्वेष्याम्॥' इति।

गुरुरित्यनुवर्त्तते। अत्र वचनद्वयप्रामाण्याद्विकल्पः।

यत्त्वत्रिणोक्तं—

'जामित्रगो यदि भवेदुशना बुधो वा गीर्वाणनाथसचिवः सितचन्द्रपक्षे ।
कन्याविवाहसमये परिहृत्य दोषान् सौभाग्यपुत्रसहिता वनितां करोति ॥' इति ।

तच्चन्द्रजामित्रविषयम् । तथा च भुजबलः—

'स्त्रीणां विवाहे तु बलैरुपेताः पत्युः प्रणाशं विहगा विदध्युः ।
त्यक्त्वा बुधं दैत्यगुरुं गुरुं च निशाकरादस्तगृहं प्रपन्नाः ॥' इति ।

दैत्यगुरुं शुक्रम् । अत एव दीपिकायाम्—

'रविं मन्द कुजाक्रान्तं मृगाङ्कात्सप्तमं त्यजेत् ।
विवाहयात्राचूडासु गृहकर्मप्रवेशने ॥' इति ॥ ८६ ॥

पीताम्बरा—लग्न भंग योग—विवाह लग्न से द्वादश में शनि, दशम में मंगल, तीसरे शुक्र चन्द्रमा, और क्रूर ग्रह लग्न में विवाह संस्कार में शुभ नहीं होते हैं ।

लग्न का स्वामी जो ग्रह हो वह, शुक्र ग्रह और चन्द्रमा छठें स्थान मे नही होने चाहिये । तथा चन्द्रमा लग्ननाथ, शुभग्रह और मंगल लग्न से आठवें शुभ नहीं होते । सातवें स्थान में कोई भी ग्रह शुभ नही होता । (जामित्र दोष होने से) कुछ आचार्यों के मत से चन्द्रमा से सप्तम स्थान में, शुक्र या बुध अथवा बृहस्पति वनिता को सौभाग्य और पुत्र से सम्पन्न करते हैं ॥ ८६ ॥

अथैवं निषिद्धस्थानान्यभिधायेदानीं रेखादातॄन् ग्रहान्वसन्ततिलकयाह—

त्र्यायाष्टषट्सु रविकेतुतमोऽर्कपुत्रा-
स्त्र्यायारिगः क्षितिसुतो द्विगुणायगोऽब्जः ।
सप्तव्ययाष्टरहितौ ज्ञगुरू सितोऽष्ट-
त्रिद्यूनषड्व्ययगृहान् परिहृत्य शस्तः ॥ ८७ ॥

पीयूषधारा—त्र्यायेति । तृतीयैकादशाष्टमषष्ठस्थानेषु रविकेतुतमोर्कपुत्राः शस्ताः शुभफलदातारः । यदाह शौनकः—

'बन्धुजनेभ्यः पूजां त्रिंशद्वर्षाणि सहजगे त्वर्के ।
प्राप्नोति धनं षष्ठे त्र्यब्दादूर्ध्वं सुतांश्चैव ॥
दम्पत्योः सह मरणं निधनस्थेऽर्केऽष्टसप्तत्या ।
कारयति धनविवृद्धिं त्र्यब्दादूर्ध्वं तथायगः सविता ॥' इति रवेः ।
धनधान्यपुत्रयुक्तां पञ्चमसंवत्सरात्तृतीयस्थः ।
षष्ठः षड्भिर्मासैरसपत्नीं कन्यकां कुरुते ॥
निधनगतार्किः कुर्यादामरणादामयवियुक्ताम् ।
आयगतोर्किः कन्यां त्रिवर्गयोग्यां करोति षण्मासात् ॥' इति ।

(अर्कस्यापत्यं आर्किः । 'अत इञ्' । संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वाद्वृद्ध्यभावः । सत्यां वा वृद्धौ 'नमुने' इति नेतियोगविभागादसिद्धत्वाभावात्सन्धिर्दीर्घः । 'आयगतार्किः' इति पाठः ।

आयगतश्चासौ आर्किश्चायगतार्किः इत्येकं पदं वा) अत्र राहुकेत्वोश्च फलं शनिवदेवेति । 'स्वर्भानौ वाप्यथ शिखिनि वा लग्नभावादिसंस्थे ।' इति वसिष्ठोक्तेः ।

विवाहलग्नात्त्र्यायारिगो भौमो योगविशेषकारका भवन्ति—

त्र्यायारिगः तृतीयैकादशषष्ठस्थानस्थितः क्षितिसुतो भौमः शस्तः ।
सहजस्थो भूमिसुतः सौभाग्यकरस्तु यावदायुष्यम् ॥
संवत्सरेण विपुलं धनागमं शत्रुसंस्थस्तु ।
मणिकाञ्चनरत्नाढ्यामेकादशः कुजोऽब्दषट्केन ॥' इति शौनकोक्तेः ।

अथ विाहलग्नाद्द्वित्र्यात्र्यस्थश्चन्द्रो योगविशेषकारकः—

अब्जश्चन्द्रो द्विगुणायगो द्वितीयतृतीयैकादशस्थः शस्तः ।
'अब्दाद्धनसंयुक्तां करोति चन्द्रो धने नार्याः । चन्द्रस्तृतीयराशौ सौभाग्यकरस्तु यावदायुष्यम् ॥
लग्नादेकादशः कन्यामिन्दुर्धनान्वितां कुरुते ।' इति शौनकोक्तेः ।

ज्ञगुरू बुधबृहस्पती सप्तमद्वादशाष्टमातिरिक्तस्थानस्थितौ शस्तौ । उक्तस्थानानामशुभत्वादनुक्तस्थानानां च शुभदातृत्वात् । यदाह वसिष्ठः—

'प्रीतिर्वृद्धिः सगुणनिरतिर्बन्धुपूजा सुताप्तिः सद्वैपक्ष्यं तनयरहितं त्वन्यथा भर्तृनाशः ।
धर्मे बुद्धिर्भवति धरणीलब्धिरत्येव बुद्धिः हानिः स्त्रीणां हिमकरसुते लग्नभादिसंस्थे ॥' इति ।
'लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति सुयशः प्रीतिरन्योन्यवृद्धिरिष्टप्राप्तिर्बहुविधमयं चाश्रमाणां विरक्तिः ।
पापासक्तिः सुकृतनिरतिर्भूरिलाभः सुरेज्ये स्त्रीणां सौख्यं रिपुकृतभयं 'लग्नभावादिसंस्थे ॥'इति ।

अयं शुभदैवम् 'अयः शुभावहो विधिः' इत्यमरः । क्लीबत्वं त्वार्षम् । केचिद्बहुविधमयमित्यत्र बहुविधभयमिति पठन्ति तन्मकारे भशब्दभ्रान्तेः । उभयकुलानन्दकरीं करोति न चिराद्गुरुः षष्ठे' इति षष्ठस्थानस्थितगुरोः शौनकेनापि सम्यक् फलाभिधानाच्च ।

अष्टसप्तषड्द्वादशातिरिक्तस्थानेषु शुक्रः शुभफलदः—

सित इति । अष्टमतृतीयसप्तमषड्द्वादशस्थानानि परिहृत्य त्यक्त्वान्येषु स्थानेषु सितः शुक्रः शस्तः । तदुक्तं वसिष्ठेन—

भोगप्राप्तिर्विविधविभवं स्वैरवृत्तिर्महत्त्वं द्युम्नाधिक्यं भवति निधनं सर्वनाशो वसुत्वम् ।
तथ्यप्रीतिर्बहुविधगुणाः सर्वसम्पत्समृद्धिरस्वं स्त्रीणामुशनसि तथा लग्नभावादिसंस्थे ॥' इति ।
द्युम्नं द्रविणम् । 'हिरण्यं द्रविणं द्युम्नम्' इत्यभिधानात् ।

ग्रहाणामुत्तमत्वं मध्यमत्वं च—

अतो बुधगुरुशुक्राणां शुभाशुभस्थानोक्तेः शुभाशुभफलत्वमेव न कदाचिन्मध्यमत्वम् । अन्येषां तु शुभाशुभस्थानातिरिक्तस्थानसद्भावान्मध्यमत्वमप्यस्ति उत्कृष्टशुभाशुभफलानभिधानात् । किन्तु किञ्चिन्मध्यमफलाभिधानम् । तदुक्तं वसिष्ठेन (रविः)—

'मृत्युर्नैःस्वं बहुविधधनं भ्रातृहानिः प्रजानां
व्याधिः सौख्यं बहुविधमतो भर्तृहानिश्चिरायुः ।

श्रेयोहानिर्भवति हृदयव्याधिरर्थागमश्च
भानौ स्त्रीणामतिशयरुजा लग्नभावादिसंस्थे ॥' (विधुः)—
नाशः सम्पदबहुविधयशो बन्धुवृद्धिः प्रजाप्तिः
शस्त्रान्मृत्युर्भवति न चिराद्दीर्घसापत्न्यबाधा ।
प्रव्रज्यात्वं दुहितृजननं वर्धनं भोगभाक्त्वं
दास्यं स्त्रीणां तुहिनकिरणे लग्नभावादिसंस्थे ॥' इति ।

अत्र चतुर्थचन्द्रस्य प्रजाप्तिः फलमभिहितम्। तथैव श्रीपतिनापि तद्वाक्ये—

'सुखे तु कथितो बन्धुक्षयः कैश्चन' इत्येकीयमतमनुसृत्य ग्रन्थकृता चतुर्थस्थानस्य मध्यमत्वमङ्गीकृतम् । 'बन्धुश्वशुरवियुक्ता चतुर्थः शशी त्वाराष्ट्रात्' इति शौनकोक्तेश्च । विरुद्धार्थयोः शौनकवसिष्टवाक्ययोः का गतिरिति चेत्, बालचन्द्रविषयमशुभफलम्, तद्भिन्नचन्द्रविषयं शुभफलम् । उक्तं च केशवार्केण—'बालोऽब्जः प्रियविरहं शनिः स्तनाम्भः शून्यत्वं सृजति सुखे सुवासिनीनाम्' इति ।

'मृत्युः शोको बहुविधधनं भ्रातृवैरं कुबुद्धिर्लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति मरणं चोभयोर्वंशनाशः ।
स्त्रीणां द्वेषो व्यसननिरतिः पुत्रपौत्रादिसिद्धिर्भीतिर्भूमेर्बलिनि तनये लग्नभावादिसंस्थे ॥
स्वच्छन्दत्वं कदशनरतिर्वल्लभत्वं विशोकं व्याधिः सुश्रीमृतिरथ सुखं गर्भपातप्रवृत्तिः ।
द्यूतासक्तिर्भवति रविजे वैभवं वक्त्ररोगं स्वभानौ वाप्यथ शिखिनि वा लग्नभावादिसंस्थे ॥'
इति ॥८७॥

पीताम्बरा—रेखाप्रद ग्रह—लग्न से ३, ११, ८, ६ स्थानों में सूर्य-केतु-राहु और शनि शुभ होते हैं ।

लग्न से ३।६।११ स्थानों में मंगल शुभ होता है । चन्द्रमा लग्न से २।३।११ स्थानों में शुभ फलद होता है । बुध और बृहस्पति लग्न से ७।८।१२ स्थानों में अशुभ अन्य स्थानों में शुभ तथा शुक्र लग्न से ८।३।७।६।१२ स्थानों में अशुभ तथा इन अशुभ स्थानों के अतिरिक्त १।२।४।५।९।१०।११ स्थानों में शुभ होता है ॥ ८७ ॥

अथ लग्नभङ्गिकर्त्तर्यादिमहादोषाणामपवादं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

पापौ कर्तरिकारकौ रिपुगृहे नीचास्तगौ कर्तरी-
दोषो नैव सितेऽरिनीचगृहगे तत्षष्ठदोषोऽपि न ।
भौमेऽस्ते रिपुनीचगे न हि भवेद्भौमोऽष्टमो दोषकृन्
नीचे नीचनवांशके शशिनि रिःफाष्टारिदोषोऽपि न ॥ ८८ ॥

पीयूषधारा—पापाविति । तत्र कर्त्तर्यपवाद उच्यते । कर्त्तरीयोगलक्षणं लग्नात्पापौ' इत्यादिनोक्तम् । यौ ग्रहौ क्रूरौ कर्त्तरीकारकौ रिपुगृहे शत्रुगेहे स्थितौ नीचेऽस्तगौ स्वनीचराशिस्थितौ अस्तङ्गतौ वा तदा कर्त्तरी नैव स्यात् । यदाहुः कश्यपनारदवसिष्ठाः—

'पापयोः कर्त्तरीकर्त्रोः शत्रुर्नीचगृहस्थयोः । यदा चास्तगयोर्वापि कर्त्तरी नैव दोषदा ॥' इति ।

इदं विशेषणं शत्रुगृहस्थत्वादिकं समुचितं व्यस्तं समस्तं वा ध्येयम् । अपवादान्तरमुक्तं दैवज्ञमनोहरे गर्गेण—

'क्रूरकर्त्तरिसंयुक्तं लग्नं चन्द्रं च न त्यजेत् । केन्द्रत्रिकोणसंस्थेषु गुरुभार्गववित्सु चेत् ।।' ननु कर्त्तरिकारकावित्यत्र कथं ह्रस्वत्वम्, । यावता कर्त्तरीशब्दः 'उणादयो बहुलम्, इति बहुलग्रहणसिद्धारीच्प्रत्ययान्तः 'कृती छेदने' इत्यस्माद्धातोर्निष्पन्नः । तत्र यदीकारान्तस्यदाङचन्तत्वाभावात् 'ङचापोः सञ्ज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' इतिह्रस्वत्वं न प्राप्नोति । यदपि—कृदिकारादक्तिन' इति ङचन्तत्वं तदा सञ्ज्ञाछन्दस्त्वाभावाद्ध्रस्वो न स्यात्, उच्यते । बहुवचनादसंज्ञायामप्येवंविधे प्रयोगे ह्रस्व इति दुर्घटवृत्तिकृत् । अत एव 'विधे हि बन्धो हृदयं विद्' इति कालिदासः । 'स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तःपुरोचितम्' इत्यमरसिंहोपि प्रयुक्तवान् । क्वचिदन्यत्रापि दृश्यन्ते— विधौ धनोपगे शुभग्रहेऽथवान्त्यगे गुरौ । न कर्त्तरी भवत्यहो जगाद बादरायणः' इति । क्रूरद्वयस्यान्तरङ्गं विलग्नं मृतिप्रदं चन्द्रमसं च रोगदम् । शुभैर्धनस्थैरथवान्त्यगे गुरौ न कर्त्तरी स्यादिह भार्गवा विदुः ।।' इति ।

अथ षष्ठशुक्रापवाद उच्यते । सिते शुक्रेऽरिनीचगृहगे शत्रुगृहे स्वनीचगृहगे वा सति तत्षष्ठदोषो भृगुषट्कदोषोऽपि न स्यात् । यदाह कश्यपः—

'नीचराशिगते शुक्रे शत्रुक्षेत्रगतेऽपि वा । भृगुषट्कोत्थितो दोषो नास्ति तत्र न संशयः ।।'इति ।

अथाष्टमभौमदोषापवाद उच्यते । भौमेऽस्ते अस्तङ्गते रिपुनीचगे शत्रुगृहे वा स्वनीचगृहगे वा सत्यष्टमो भौमो न दोषकृत्स्यात् । उक्तं च कश्यपेन—

'अस्तगे नीचगे भौमे शत्रुक्षेत्रगतेऽपि वा । कुजाष्टमोद्भवो दोषो न किञ्चिदपि विद्यते ।।' इति ।

अथ षडष्टद्वादशस्थानचन्द्रापवाद उच्यते । शशिनि चन्द्रे नीच नवांशके वा सति रिःस्फाष्टारि दोषोऽपि द्वादशाष्टमशत्रुस्थानस्थितचन्द्रदोषोऽपि न स्यात् ।

'नीचराशिगते चन्द्रे नीचांशकगतेऽपि वा
चन्द्रे षष्ठारिरिः फस्थे दोषो नास्ति न संशयः' इति कश्यपोक्तेः ।। ८८ ।।

पीताम्बरा—कर्तरी आदिक महादोषों का अपवाद—कर्तरीकारक दो क्रूर ग्रह, शत्रु घर में स्थित हों या अपनी नीच राशि में अथवा दोनों अस्तङ्गत हों तो ऐसी स्थिति में कर्तरी दोष नहीं होता है ।

शुक्र ग्रह; शत्रु या नीच राशि का होकर छठे स्थान में बैठा हो तो छठे स्थान स्थित शुक्र का दोष भी नहीं होता है ।

इसी प्रकार अस्त या शत्रु घर या अपनी नीच राशि में होकर मंगल अष्टम में हो तो मंगल का अष्टमस्थ दोष नहीं होता है ।

तथा अपनी नीच राशि या नीच राशि के नवांश में स्थित चन्द्रमा षष्ठ, अष्टम-द्वादश में बैठा हो तो षष्ठाष्टमद्वादश स्थान स्थित चन्द्रमा का दोष नहीं होता है ।। ८८ ।।

अथ विवाहे अष्टदोषाद्यनेकदोषाणामपवादं वसन्ततिलकयाह—

अब्दायनर्तुतिथिमासभपक्षदग्ध तिथ्यन्धकाणबधिराङ्गमुखाश्च दोषाः ।
नश्यन्ति विद्गुरुसितेष्विह केन्द्रकोणे तद्वच्च पापविधुयुक्तनवांशदोषः ।। ८९ ।।

पीयूषधारा—अब्देति । अब्ददोषः १, अयनदोषः २, ऋतुदोषः ३, तिथिदोषो

रिक्तादिः ४, मासदोषः ५, भं नक्षत्रदोपः क्रूरसहितादिः ६, पक्षदोषस्त्रयोदशदिनात्मकादिः ७, दग्धतिथिः प्रसिद्धा चापान्त्यगे इत्यादिनोक्ता, अन्धकाणवधिराख्यान्यङ्गानि लग्नानि तन्मुखास्तदादयोऽन्ये अकालवृष्टयाद्या दोषाः। विदगुरुसितेषु केन्द्रकोणे, केन्द्रं सप्तमस्थानरहितं विवक्षितं जामित्रदोषस्य सत्त्वात्। अत एवोक्तमग्रे, त्रिकोणे केन्द्रे वा मदनरहिते' इति। कोणे नवपञ्चमे सत्सु नश्यन्ति। उक्तं च कश्यपेन—

'अब्दायनर्तुमासोत्थाः पक्षतिथ्यृक्षसम्भवाः। ते सर्वे नाशमायान्ति केन्द्रसंस्थे शुभग्रहे॥'
काणान्धबधिरोद्भूता दग्धलग्नतिथेर्भवाः। ते दोषा नाशमायान्ति केन्द्रसंस्थे शुभग्रहे॥' इति।
'अकालजाश्च नीहारविद्युत्पांस्वभ्रसम्भवाः। परिवेषप्रतिसूर्यशक्रचापध्वजादयः॥
दोषप्रदा मङ्गलेषु कालजाश्चेन्न दोषदाः। गुरुरेकोऽपि केन्द्रस्थः शुक्रो वा यदि वा बुधः॥
हरेः स्मृतिर्यथा हन्ति तद्वद्दोषानकालजान्। लत्तोपग्रहचण्डीशचन्द्रजामित्रसम्भवान्॥
तत्केन्द्रगो गुरुर्हन्ति सुपर्णः पन्नगानिव।' इति।

अकालजत्वनिर्णयं यात्राप्रकरणे 'पौषादिचतुरो मासान्, इत्यादिना वक्ष्यति। तद्वच्चेति। तथा यदि पापः क्रूर विधुयुक्तराशेर्नवांशे स्याद्यथा चन्द्रो मेषे सूर्य नवांशस्तद्दोषाभिधानं यज्ञोपवीतप्रकरणे। तदा तत्कृतदोषो नश्यति। उक्तं च संहिताप्रदीपे—

'स चन्द्रराशेरशुभो नवांशः प्रोक्तः सपापोऽपि विलग्नसंस्थः।
त्रिकोणकेन्द्रेषु गुरुः सितो वा यदा तदासावशुभोऽपि शस्तः॥ ८९॥

पीताम्बरा—अब्द आदि दोषादिकों का परिहार—बुध-गुरु और शुक्र केन्द्र त्रिकोण में हों तो वर्ष, अयन, ऋतु, तिथि (रिक्तादिक) मास, नक्षत्र, पक्ष (तेरह दिनात्मक) दग्ध तिथि, अन्ध, काण, वधिरादिक लग्न, ग्रहों के अस्त वक्रादिक और अकाल वृष्टयादिक सभी दोष दूर हो जाते हैं। तथा पापग्रह और चन्द्रमा से युक्त लग्न और लग्न नवांश दोष भी समाप्त हो जाते हैं।। ८९॥

अथोक्तानुक्तदोषाणां बहून्परिहाराञ्छालिन्याह—

केन्द्रे कोणे जीव आये रवौ वा लग्ने चन्द्रे वापि वर्गोत्तमे वा।
सर्वे दोषा नाशमायान्ति चन्द्रे लाभे तद्वद्दुर्मुहूर्तांशदोषाः॥ ९०॥

पीयूषधारा—केन्द्रे इति। केन्द्रे कोणे। केन्द्रं प्रसिद्धम्, कोणं नवपञ्चमम्, तत्र च जीवो गुरुः स्यात्तदा सर्वे दोषा नाशमायान्ति। उपलक्षणत्वाद् बुधशुक्रावपि। यदाह नारदः—'उक्तानुक्ताश्च ये दोषास्तान्निहन्ति बली गुरुः। केन्द्रसंस्थः सितो वापि पन्नगान्गरुडो यथा॥' इति। सित इति बुधस्याप्युपलक्षणम्। उक्तं च कश्यपेन—

'काव्ये गुरौ वा सौम्ये वा यदा केन्द्रत्रिकोणगे।
नाशं यान्त्यखिला दोषाः पापानीव हरिस्मृतेः॥' इति।

तत्रापि लग्नाख्यकेन्द्रस्यातिबलत्वात्तत्र स्थितो जीवः सर्वारिष्टहरः। तदुक्तं वसिष्ठेन—

'ये लग्नदोषाः कुनवांशदोषाः पापैः कृता दृष्टिनिपातदोषाः।
लग्ने गुरुस्तान्विमलीकरोति फल यथाम्भः कतकद्रुमस्य॥' इति।

अथवा आये एकादशे रवौ सति दोषनाशः—

'अत्रैकादशगे सूर्ये दोषा नाशं ययुस्तदा। स्मरणादेव रुद्रस्य पापं जन्मशतोद्भवम्॥इति।

अथवा लग्ने वर्गोत्तमे स्वनवांशयुक्ते । यथा मिथुने मिथुनांशश्चेत्तदा दोषनाशः । अथवा चन्द्रे वर्गोत्तमे स्वनवांशस्थिते वा सति दोषनाशः । द्वितीयवाशब्दस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वाच्चन्द्रो लग्नादुपचयस्थाने चेत्स्यात्तदापि सर्वदोषनाशः । एवं क्रमेण परिहारत्रयमुक्तम् ।

यदाह कश्यपः—'वर्गोत्तमगते लग्ने वर्गदोषा लयं ययुः ।
चन्द्रे वोपचये वापि ग्रीष्मे कुसरितो यथा ।।' इति ।

चन्द्रे इति तद्वत्तेनैव प्रकारेण दुर्मुहूर्ता रवावर्यमेत्यादयः । अंशा दोषाः पापग्रहनवांशाख्यास्ते सर्वे चन्द्रलाभे एकादशस्थानस्थिते सति नाशमायान्ति । मुहूर्तलग्नषड्वर्गकुनवांशग्रहोद्भवाः । ये दोषास्तान्निहन्त्येव यत्रैकादशगः शशी ।।' इति ।

अन्यदप्याह कश्यपः—
'लग्नाददुः स्यानगव्योमचरोत्थं दोषसञ्चयम् ।
शुक्रः केन्द्रगतो हन्ति दावाग्निर्विपिनं यथा ।।' इति ।। ९० ।।

पीताम्बरा—उक्त अनुक्त दोषों के अनेक परिहार—केन्द्र या कोण में बृहस्पति के रहने से सभी दोष समाप्त हो जाते हैं। बृहस्पति उपलक्षण से केन्द्र कोण के बुध शुक्र भी दोषनाशक होते हैं । केन्द्र स्थान से सप्तम वर्जित केन्द्र स्वतः समझना चाहिए । अथवा वर्गोत्तम लग्न के विवाह संस्कार में (जैसे कन्या लग्न में कन्या का नवांश) भी सभी दोष समाप्त हो जाते हैं। केन्द्र स्थान से सप्तम वर्जित केन्द्र यह स्वतः समझना चाहिए। अथवा वर्गोत्तम लग्न के विवाह संस्कार में (जैसे कन्या लग्न में कन्या का नवांश) भी सभी दोष समाप्त हो जाते हैं । इसी प्रकार चन्द्रमा की वर्गोत्तम की स्थिति में भी सभी दोष समाप्त हो जाते हैं । यहाँ पर दूसरा वा शब्द अनुक्त समुच्चय अर्थबोधक है अतः लग्न से उपचय स्थान (३।६।१०।११) स्थित चन्द्रमा हो तो भी सभी दोष समाप्त हो जाते हैं ।

चन्द्रमा की लाभ स्थानीय स्थिति से दुर्मुहूर्त दोष और नवांशकादि दोष दूर हो जाते हैं ।। १० ।।

अथैवं विशिष्य दोषाभिधानपूर्वकं विशेषपरिहारानभिधायेदानीं सामान्यतो दोषसमुदायस्यैकपरिहारं शिखरिण्याह—

त्रिकोणे केन्द्रे वा मदनरहिते दोषशतकं हरेत्सौम्यः शुक्रो द्विगुणमपि लक्षं सुरगुरुः । भवेदाये केन्द्रेऽङ्गप उत लवेशो यदि तदा समूहं दोषाणां दहन इति तूलं शमयति ।।९१।।

पीयूषधारा—त्रिकोण इति । त्रिकोणे ९।५ केन्द्रे सप्तमरहिते १।४।१० यदि सौम्यो बुधस्तिष्ठेत्तदा दोष शतकं हरेत् । यदाह नारदः—

उक्तस्थानस्थितः शुक्रोऽपि द्विगुणं दोषद्विशतं हरेत् । तथोक्तस्थानस्थितो गुरुरपि लक्षं दोषान् हरेत् । यदाह नारदः—

'दोषाणां हि शतं हन्ति बलवान्केन्द्रगो बुधः । अपहाय द्युनंशुक्रो द्विगुणं लक्षमङ्गिराः ।।'

अत्र शतशब्देनानेकसंख्या विवेचिता अत एवाह कश्यप—

'बलवान्केद्रगः सौम्यो हन्ति दोषशतत्रयम् । द्युनं विहाय दैत्येज्यः सहस्रं लक्षमङ्गिराः ।।' इति ।

भवेदिति । अङ्गपो लग्नस्वामी । उतशब्दो वार्थे । लग्नेशो लग्नगतांशनाथो वा आये

११। केन्द्रे १।४।१० यद्वा भवेत्तदा सः दोषाणां समूहं शमयति। तत्र दृष्टान्तः—दहनोग्निस्तूलं कार्पासमिव शमयति।

तदुक्तं नारदेन—'लग्नेट्लग्नांशनाथो वा आयगः केन्द्रगोऽपि वा।
राशिं निहन्ति दोषाणामिन्धनानीव पावकः॥' इति।

जातकेऽपि—'लग्नाधिपो यदा केन्द्रे लग्नादेकादशालये।
सर्वग्रहकृतं रिष्टमेकोऽपि विलयं नयेत्॥' इति॥ ९१॥

पीताम्बरा—दोष समुदाय का एक प्रबल परिहार—सप्तम स्थान वर्जित केन्द्र कोण का बुध 'एक सौ' दोषों को, शुक्र 'दो सौ' दोषों को और बृहस्पति 'एक लाख' दोषों को नष्ट कर देता है। तात्पर्य यह है कि सप्तम वर्जित केन्द्र-कोण के बृहस्पति से सभी दोष समाप्त हो जाते हैं।

उसी प्रकार जैसे अग्नि रुई को भस्म कर देता है लग्नेश या लग्न नवांश पति यदि ११ वें या (१।४।१०) केन्द्र में हो तो समग्र दोष भस्म हो जाते हैं॥ ९१॥

अथ लग्नविंशोपकाननुष्टुभाह—

द्वौ द्वौ ज्ञभृग्वोः पञ्चेन्दौ रवौ सार्द्धत्रयो गुरौ।
रामा मन्दागुकेत्वारे सार्द्धैकैकं विंशोपकाः॥ ९२॥

पीयूषधारा—द्वाविति। ज्ञभृग्वो रेखाप्रदयोः सतीर्द्वौ विंशोपकौ। यथा बुधस्य २, शुक्रस्य २, एवंविधे चन्द्रे पञ्च ५, तादृशे सूर्ये सार्द्धत्रयः ३। ३० गुरौ रामास्त्रयः ३, एकमेकमेककं सार्द्धं च एकैकं सार्द्धैकैकम्। एकशब्दस्य 'नित्यवीप्सयोः' इति द्विर्वचने 'एकं बहुव्रीहिवत्' इति बहुव्रीहिवद्भावात् 'सुपो धातु' इति विभक्तेर्लुकि सार्द्धशब्देन कर्मधारयः। तथा सति प्रत्येकं सार्द्धैकैकमित्यर्थः। यथा—मन्दे शनौ सार्द्धकं १। ३०, अगौ राहौ १। ३०, केतौ १। ३०, आरे भौमे १। ३०, एते विंशोपका रेखादातृग्रहाणां ज्ञेयाः, न मध्यमानां निषिद्धानां च। यदाह वराहः—

'रवौ सार्द्धास्त्रयोभागाश्चन्द्रे पञ्च गुरौ त्रयः। द्वौ शुक्रे द्वौ बुधे चैव प्रोक्ता ह्येते विंशोपकाः॥
मन्दे भौमे तथा राहौ सार्द्धं प्रत्येकमुच्यते। बलाबलवशादेवं विज्ञातव्या विंशोपकाः॥' इति।

अत्र पद्ये राहोरुपलक्षणत्वात्केतोरपि सार्द्धकमेव बलं ग्राह्यम्। अत एव मूले केत्वभिधानम्। नन्विदमयुक्तम्, तयोः नवग्रहप्राबल्ये सार्द्धैकविंशतिः विंशोपकात्मकमेव बलं स्यान्न ततोऽधिकमिति, उच्यते। न विवाहादिलग्ने द्वयोरपि राहुकेत्वोर्युगपत्समीचीनत्वस्य गगनकुसुमायमानत्वात्। यदैकस्य शुभत्वमपरस्याशुभत्वमिति। तदैव विंशतिर्विंशोपका लग्ने सम्भवन्ति। द्वयोरप्यनिष्टत्वे सार्द्धाष्टदश। एवं यस्य यस्य ग्रहस्य रेखादातृत्वहानिस्तस्य तस्य तद्विंशोपकाहानिरित्यर्थः। तत्र पञ्चभ्यो विंशोपकेभ्यो हीनं लग्नं त्याज्यमेव। पञ्चभ्योऽधिकं दशभ्यो हीनं निकृष्टफलं लग्नान्तराभावे हितम्। दशभ्योऽधिकं पञ्चदशभ्यो हीनं मध्यमम्। ततोऽधिकं तूत्तममेवेति निष्कृष्टोऽर्थः॥ ९२॥

पीता०—लग्न के विंशोपक—विवाह के लग्न का पूर्णबल २० संख्या से मापा जा रहा है कि लग्न शुद्धि में ग्रहों की स्थिति अनुकूल होने पर बुध और शुक्र का २, २ चन्द्र की अनुकूल स्थिति वश ५, सूर्य की ३॥, गुरु की ३ शनि राहु केतू और मंगल की अनुकूल स्थितियों से १॥, १॥, और १॥ बल मिलता है। इस प्रकार सभी ग्रहों की अनुकूलता से २ + २ + ५ + ३॥ + ३ + १॥ + १॥ + १॥ + १॥ = २१॥ पूर्ण बल उपलब्ध होता है।

विंशोपक शब्द से पूर्ण वल २० ही होना चाहिए किन्तु बल योग २१॥ देखा जा रहा है जो असंगत लगता है। वास्तव में राहु केतु के पृथक् पृथक् १॥ व १॥ बल कहे गये हैं। एक की शुभस्थानीय स्थिति पर दूसरे की स्थिति अशुभ स्थानीय ही होगी अतः इन दोनों में सदा एक का ही विंशोपक बल १॥ नियत होगा अतः पूर्ण विंशोपक बल भी २१॥–१॥ = २० ही समीचीन सही है।

ग्रहों का बलयोग पाँच से अधिक और १० से कम होने पर निकृष्ट फलद होता है, अन्य लग्न के अभाव में गृहीत हो सकता है। दश से अधिक और १५ से कम विंशोपक होने से मध्यम शुभ फलद लग्न होती है। १५ से अधिक २० से कम या २० तक बलशाली लग्न विवाह संस्कार के लिए उत्तमोत्तम होती है ॥ ९२ ॥

अथ ग्रहवशेन श्वशुरादिविभागज्ञानं सप्रयोजनमुपजात्याह—

श्वश्रूः सितोऽर्कः श्वशुरस्तनुस्तनुर्जामित्रपः स्याद्दयितो मनः शशी ।
एतद्बलं सम्प्रतिभाव्य तान्त्रिकस्तेषां सुखं सम्प्रवदेद्विवाहतः ॥ ९३ ॥

पीयूषधारा—श्वश्रूरिति । शुक्रः श्वश्रूः, सूर्यः श्वशुरः । अत्र कन्यानिमित्तशुभाशुभस्य विचारास्पदत्वात्तस्याः कन्यायाः श्वश्रूर्वरमाता, श्वशुरो वरपिता, तनुर्लग्नं, तनुः स्वशरीरं, जामित्रपः सप्तमाधीशो दयितो भर्त्ता ज्ञेयः । शशी मनो ज्ञेयम् । एतद्बलं एतेषां शुक्रादीनां बलं विचार्य तान्त्रिकः तंत्रं सिद्धान्तः 'तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते सूत्रवाये परिच्छदे' इत्यमरः । तं वेत्ति तान्त्रिकः सिद्धान्तवेत्ता ज्योतिर्वित् विवाहतो विवाहादनन्तरं तेषां श्वश्र्वादीनां सुखं स्यादिति प्रवदेत् । यदाह शौनकः—

'श्वशुरः सहस्रकिरणः श्वश्रूर्भृगुनन्दनो विनिर्दिष्टः। होरागमार्थकुशलैर्जामित्रपतिः पतिः स्त्रीणाम्॥
स्वशरीरं लग्नवशात्सुखदुःखं मानसं शशाङ्कवशाद् ।'

शार्ङ्गीयेऽपि—'श्वशुरोऽर्कः सितः श्वश्रूः स्त्रीणामस्तपतिः पतिः ।
एभिरुच्चोपगैषा शुभं नीचारिगैर्न सत् ।' इति ।

विशेषान्तरमप्युक्तं शार्ङ्गीये—

'सूर्यात्पतिः स्त्री च विधोस्तथाराद्वित्तं सुतो ज्ञाच्छवशुरं गुरोश्च ।
धर्मः सितादर्कसुताच्च वेश्म ब्रूयात्समुद्वाहविधौ युवत्या ॥'

एतैर्नीचस्थितैः शत्रुगतैर्विवाहादिकं न सत् । स्वगृहोच्चत्रिकोणस्थैः शुभमेषां यथोदितम्' इति ॥ ९३ ॥

पीताम्बरा—ग्रहों की स्थिति से सास-श्वसुर-पति विभाग और सुखासुख—शुक्र ग्रह को सास (वर की माता) सूर्य को श्वसुर (वर पिता) लग्न पति को कन्या का शरीर, सप्तमेश को पति और चन्द्रमा को मन समझना चाहिए । इन ग्रहों के बलाबल को समझ कर सिद्धान्तवेत्ता (तान्त्रिक ज्योतिर्विद) ने विवाह के अनन्तर कन्या से सास-श्वसुर, स्वशरीर और पति का सुख-दुखादि भविष्य का आदेश करना चाहिए ॥ ९३ ॥

अथ सङ्कीर्णजातीनां विवाहे नियतं कालविशेषं मत्तमयूरच्छन्दसाह—

कृष्णे पक्षे सौरिकुजार्केऽपि च वारे वर्ज्ये नक्षत्रे यदि वा स्यात्करपीडा ।
सङ्कीर्णानां तर्हि सुतायुर्धनलाभ-प्रीतिप्राप्त्यै सा भवतीह स्थितिरेषा ॥ ९४ ॥

पीयूषधारा—कृष्ण इति। कृष्णपक्षे शनिभौमार्कवारे विवाहोक्तनक्षत्रादिभिन्ननक्षत्रेषु चकारात् 'व्याघातशूल' इत्यादिदुष्टयोगेष्वपि यदि सङ्कीर्णानामनुलोमप्रतिलोमजानां करपीडाः विवाहः स्यात्। तर्हि सा करपीडा सुतायुर्धनलाभप्रीतिप्राप्त्यै भवति। एषां स्थितिराचारोऽस्ति। अनुलोमजा मूर्द्धावसिक्तादयः। प्रतिलोमजाश्चाण्डालादयः। तल्लक्षणानि धर्मशास्त्रत एवावधार्याणि।

वाग्रहणमेतदभावे विवाहाद्यावश्यकत्वे च प्रागुक्तदिनेऽपि कार्यमिति सूचनार्थम्। तदुक्तं शार्ङ्गीये—

'कृष्णे पक्षे भानुभौमार्कजानां वारे योगे चापि धिष्ण्ये निषिद्धे।
सङ्कीर्णानां दारकर्म प्रशस्तं प्रीत्यर्थायुःप्राप्तये शौनकाद्याः॥' इति॥९४॥

पीताम्बरा—संकीर्ण जातियों के विवाह के नियत समय—कृष्णपक्ष के शनि, भौम और रविवासरों में, पूर्व में उक्त वैवाहिक नक्षत्रों से भिन्न नक्षत्रों में, रजकादि संकीर्ण जातियों का विवाह पुत्र-आयु धन लाभ और परस्पर की प्रीतिवर्द्धक होता है॥ ९४॥

अथ गान्धर्वादिदुष्टविवाहे त्रिपदीचक्रे नक्षत्रशोधमनुष्टुभाह—

गान्धर्वादिविवाहेऽर्काद्वेद–४ नेत्र–२ गुणे–३ न्दवः–१।
कु–१ युगा–४ ङ्गा–६ ग्नि३ भू–१ रामा–३ स्त्रिपद्यां न शुभाः शुभाः॥९५॥

पीयूषधारा—गान्धर्वादिति। गान्धर्वादिविवाहाः सलक्षणाः प्रागस्माभिरभिहिताः। तेषु अर्कात् भं सूर्याक्रान्तनक्षत्रमारभ्य चत्वार्यशुभानि। तत एकं शुभम्। ततः एकमशुभं। ततः षड-शुभानि। ततस्त्रीणि शुभानि। तत एकमशुभं ततस्त्रीणि शुभानि एतान्यष्टाविंशतिभानि त्रिपद्यामशुभान्येव ज्ञेयानि त्रयाणां पद्यानां समाहारस्त्रिपदी तत्र ब्रह्मविष्णुरुद्रपद्याभिधचक्रत्रये इत्यर्थः अत्र सम्मतिग्रन्थानुपलम्भः॥ ९५॥

पीताम्बरा—गन्धर्वादि विवाहों में त्रिपदी (नक्षत्रों से) चक्र—गान्धर्वादि विवाहों में त्रिपदी चक्र में, सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक के प्रथम ४ नक्षत्र अशुभ, २ शुभ, ३ अशुभ, १ शुभ, १ अशुभ, ४ शुभ, ६ अशुभ, ३ शुभ, १ अशुभ और ३ शुभ होती हैं। जैसे रोहिणी में सूर्य और पुनर्वसु में चन्द्रमा हो तो रोहिणी से रोहिणी मृग, आर्द्रा और पुनर्वसु इन चार नक्षत्रों में गान्धर्व विवाह अशुभ होता है पुन, पुष्य आश्लेषा में शुभ, मघा पू. फा. उ. फा. में अशुभ क्रम से समझना चाहिए॥ ९५॥

अथैवं महता ग्रन्थसन्दर्भेण विवाहे सकलमहादोषरहितां दिनशुद्धिमभिधायेदानीं ततः प्राक्कर्तव्यानामावश्यककर्मणां दिनशुद्धिं पृथ्वीच्छन्दसाह—

विधोर्बलमवेक्ष्य वा दलनकण्डनं वारकं गृहाङ्गणविभूषणान्यथ च वेदिकामण्डपान्।
विवाहविहितोडुभिर्विरचयेत्तथोद्वाहतो न पूर्वमिदमाचरेत्त्रिनवषण्मिते वासरे॥९६॥

पीयूषधारा—विधोरिति। अत्र विधोः चन्द्रस्य बलमवेक्ष्य गृहीत्वा, वाग्रहणात्सत्यवकाशे चन्द्रबल ग्राह्यम्। दलनं गोधूमादेः पिष्टीकरणम्। कण्डनं तण्डुलादेः मुसलाद्याघातादिना शोधनम्। वारको मङ्गलकलशः। एषां द्वन्द्वैकवद्भावः। गृहाङ्गणविभूषणानि गृहभूषणानि चूर्ण-

गैरिकचित्रादिलेखादीनि । अङ्गणभूषणं संमार्जनगोमयाद्यालेपः । अथानन्तरं वेदिका चत्वरं वधूवरयोरुपवेशनार्थं स्थलविशेषः । मण्डपो गृहाच्छादनं-कटादिना वितानादिना वा । बहुवचनात्कटाद्यारोहणहरिद्राचन्दनकाञ्जिकाधारणादिसकलशुभप्रारम्भान् । एतानुद्वाहतः पूर्वं विवाहोक्तैरुडुभिर्नक्षत्रैः पंचाङ्गशुद्धिसहिते दिने रचयेत् । उपलक्षणात्वाद्यज्ञोपवीतादावपि । ततः पूर्वं विवाहविहितनक्षत्रैरेतानभिहितशुभकर्मप्रारम्भान् विरचयेत् ।

तथा इदमुक्तकार्यजातं त्रिनवषण्मिते तृतीयनवमे षष्ठे वासरे दिने पूर्वं नाचरेत् । तदुक्तं शार्ङ्गीये—

'दलनकण्डनमण्डपवेदिकागृहसुमार्जनवारकमण्डपाः ।
करतलग्रहमध्यगतागतं तदखिलं विदधीत विवाहभे ।।
विवाहकृत्यं निखिलं विवाहभे विलोकयेन्नात्र बलं हिमद्युतेः ।
नवत्रिषष्ठेऽह्नि विवाहपूर्वतो नवर्णको मण्डपतैलमङ्गलम् ।।' इति ।

दैवज्ञमनोहरे निषिद्धभान्युक्तानि—

'चित्रा विशाखा शततारकाश्विनी ज्येष्ठभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम् ।
हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिकाप्रदानकं कण्डनमण्डपादिकम् ।।' इति ।

काञ्जिकाधारणमुहूर्तोऽपि तत्रैव—

'मूलेन्दुरुद्रश्रवणार्कपौष्णविश्वेशचित्रानलरेवतीषु ।
संस्थापनं काञ्जिककुण्डिकाया वारे रवेर्भूमिसुतस्य शस्तम् ।।' इति ।

वेदिकायां विशेषमाह केशवार्कः—

वेदिकां विरचयेद्यथा तथा स्यादियं प्रविशतः प्रदक्षिणा ।
स्युर्जनाश्रययवोप्तिवर्णकाः षण्णवत्रिदिवसेषु नाग्रतः प्रदक्षिणाः ।।' इति ।

यवोप्तिरङ्कुरार्पणाख्यं कर्म, जनाश्रयो मण्डपः । 'मण्डपोस्त्री जनाश्रयः' इत्यमरोक्तेः ।। ९६ ।।

पीताम्बरा—विवाह संस्कार में संस्कार के पूर्व दिनो के कृत्यों के शुभ समय—वर कन्या के चन्द्रबलों को समझ कर विवाह के पूर्व के १,२,४,५,७,८, आदिक दिनों में (पूर्व के ३, ६, ९ दिनों को छोड़कर) विवाह के नक्षत्रों में विवाह के लिए कूटना पीसना, गीत कलश मंगलाचित्रकारी कर्म, गोबरादि पवित्र गव्य से मण्डप आदि कार्य प्रारम्भ करने चाहिए। अंकुरार्पण कर्म भी किया जाता है ।। ९६ ।।

अथावसरप्राप्तवेदिकालक्षणं मण्डपोद्वासनादि दिननियमं च शालिन्याह—

हस्तोच्छ्राया वेदहस्तैः समन्तात्तुल्या वेदी सद्मनो वामभागे ।
युग्मे घस्रे षष्ठहीने पञ्चसप्ताहे स्यान्मण्डपोद्वासनं सत् ।। ९७ ।।

पीयूषधारा—हस्तेति । सद्मनो गृहस्य वामभागे हस्तोच्छ्राया एकहस्तमितोच्च समन्तात्सर्वतः चतुर्भिर्हस्तैस्तुल्या समाना तादृशी वेदी विवाहादिमङ्गलकृत्ये स्यात् । शोभाकारिस्तम्भसोपानादियुक्ता चेत्यनुक्तमपि ध्येयम् । तदुक्तं नारदेन—

'हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समन्ततः । स्तम्भैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णैर्वामभागे स्वसद्मनः ।।
समण्डपां चतुर्दिक्षु सोपानैरुपशोभिताम् । प्रागुदक्प्रवणारम्भां स्तम्भैर्हंसशुकादिभिः ।।

विचित्रितां चित्रकुम्भैर्विचित्रैस्तोरणाङ्कुरैः । एवंविधां समारोहेन्मिथुनं साग्निवेदिकाम् ॥' इति ।

साग्नीति भिन्नं पदं मिथुनस्य विशेषणम् । वसिष्ठः—

'षोडशारत्निकां कुर्याच्चतुर्द्वारोपशोभिताम् । मण्डपं तोरणैर्युक्तं तत्र वेदीं प्रकल्पयेत् ॥
अष्टहस्तं च रचयेन्मण्डपं वा द्विषट्करम् ।' इति । द्विगुणिताः षट्करा यस्य तं द्वादशहस्तम् ॥

उत्तमः षोडशहस्तो मध्यमो द्वादशहस्तोऽधमोऽष्टहस्तः अयं वैकल्पिको मण्डपो गृहमानतः कार्यो न तु स्वेच्छया तदुक्तं सप्तर्षिमते विवाहपटले—

'मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः । कार्यः षोडशहस्तो वा द्विषड्ढस्तो दशावधि ॥
स्तम्भैश्चतुभिरेवात्र वेदीमध्ये प्रतिष्ठिता । शोभिता चित्रिता कुम्भैरासमन्ताच्चतुर्दिशम् ॥
द्वारविद्धा बलीविद्धा कूपवृक्षव्यधा तथा । न कार्या वेदिका तज्ज्ञैः शुभा मङ्गलकर्मसु ॥'

बली काष्ठपाषाणादिनिर्मितः स्तम्भः ।

व्रतबन्धे संस्कार्यत्वात् बटुहस्तेन वेदिनिर्मितिः । विवाहे तु कन्यागृहे एव वरपूजनस्योक्तत्वाद्गृहस्थाश्रमस्य तदायत्तत्वाच्च कन्याहस्तेनैव वेदिनिर्माणम् ।

युग्मे इति । विवाहोत्तरं युग्मे द्वितीयचतुर्थादिके घस्रे दिने षष्ठदिवसहीने तथा विषमे तु पञ्चमे सप्तमे चाहनि दिवसे मण्डपोद्वासनं देवकोत्थापनं सच्छुभफलदातृ स्यात् यदाह नारदः—

'समे तु दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुधः । षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमौ ॥' इति ।

समेषु षष्ठं विषमेषु च पञ्चमसप्तमव्यतिरिक्तं दिनं नेष्टमित्यर्थः ९७ ॥

पीताम्बरा—वेदी का प्रमाण और मण्डप आदि निर्माण विन नियम—अपने आवास के (घर) वाम भाग में एक हाथ ऊँची और चारों तरफ चार-चार हाथ की समान वेदी की रचना करनी चाहिए । षष्ठ दिवस रहित सम दिनों में (२. ४. ८.) तथा विषम दिनों में ५, ७ वें दिनों में भी स्तम्भ सोपान शोभायुक्त मण्डप का उद्वासन (उठाना छावना) शुभ होता है ॥ ९७ ॥

अथ प्राप्तशिष्टसम्मतं मण्डपादौ स्तम्भनिवेशनमिन्द्रवज्रयाह—

सूर्येऽङ्गनासिंहघटेषु शैवे स्तम्भोऽलिकोदण्डमृगेषु वायौ ।
मीनाजकुम्भे निरृतौ विवाहे स्थाप्योग्निकोणे वृषयुग्मकर्के ॥ ९८ ॥

पीयूषधारा—सूर्ये इति । कन्यातुलासिंहस्थिते सूर्ये शैवे ईशानकोणे वृश्चिकधनुर्मकरस्थिते सूर्ये वायौ वायुकोणे मीनमेषकुम्भस्थिते सूर्ये निरृतिकोणे वृषमिथुनकर्कस्थिते सूर्येऽग्निकोणे स्तम्भः स्थाप्य इत्यर्थः । यदाह शिल्पशास्त्रे विश्वकर्मा—

'कन्यासिंहे तुलायां भुजगपतिगृहं शम्भुकोणेऽग्निखातं
वायव्ये स्यात्तदास्यं मकरधनुरलावीशखातं वदन्ति ।
कुम्भे मीने च मेषे निरृतिदिशि मुखं वायुकोणे हि खातं
वह्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे दक्षखातं ॥' इति ।

एतद्यद्यपि गृहविषयमुक्तम् तथापि वेदीनिर्माणाश्रयेण स्तम्भनिवेशनं वृषादित्रिराशिगतसूर्यवशेनाग्निकोणे सर्पास्यं, शिवकोणे खातं, एवमन्यत्र राशिगते सूर्येऽन्यकोणेषु स्तम्भनिवेशनमूह्यम् । यदाह विश्वकर्मा—

'वेद्यां वृषाद्गृहे सिंहात्त्रिकं मीनात्सुरालये ।
ईशानतो व्यस्तगत्या पृष्ठं तस्य शुभावहम् ॥' इति । तस्य भुजगपतेः ॥ ९८ ॥

पीताम्बरा—मण्डप में स्तम्भ स्थान निर्णय—कन्या, तुला, सिंहस्थ सूर्य में ईशान कोण में, वृश्चिक धनु, मकर के सूर्य में वायु कोणीय विदिशा में, कुम्भ मीन और मेष के सूर्य में नैऋति कोणीय विदिशा में और वृष-मिथुन-कर्क के सूर्य में अग्नि कोणीय विदिशा (पूर्व दक्षिण की मध्य) में प्रथम स्तम्भ की स्थापना करनी चाहिए ॥ ९८ ॥

अथैवं लग्ननिर्णयमभिधायेदानीं घटिकालग्नसाधनं बहुगणितसाध्यं गोधूलिकथनं च गणितप्रयासरहितं वक्तुमवशिष्यते । तत्र सूचिकटाहन्यायेन गोधूलिप्रशंसां मन्दाक्रान्तयाह—

नास्यामृक्षं न तिथिकरणं नैव लग्नस्य चिन्ता
नो वा वारो न च लवविधिर्नो मुहूर्तस्य चर्चा ।
नो वा योगो न मृतिभवनं नैव जामित्रदोषो
गोधूलिः सा मुनिभिरुदिता सर्वकार्येषु शस्ता ॥ ९९ ॥

पीयूषधारा—नेति । स्पष्टार्थमिदं पद्यम् । यदाह भागुरिः—

'गोपैर्यष्टयाहतानां खुरपुटदलिता याति धूलिर्दिनान्ते
सोद्वाहे सुन्दरीणां विविधधनसुतारोग्यसौभाग्यदात्री ।
तस्मिन् काले न ऋचं न च तिथिकरणं नैव लग्नं न योगाः
ख्याताः पुंसां सुखार्थं शमयति दुरितान्युच्छ्रितं गोरजस्तु ॥'

सत्यां घटिकालग्नशुद्धौ गोधूलिलग्नं न ग्राह्यम्—

ननु सकलदोषनिराकरणेनातिप्रशंसनाद्गोधूल्याः घटिकालग्नाना महादोषनिराकरणपूर्वकमभिहितानां वैयर्थ्यप्रसङ्गः । न च गोधूल्यभावे घटीलग्नमवकाशवदिति वाच्यम् । गोधूल्यभावे हि तस्य दोषत्वे सति स्यात्—'नास्यामृक्षं न तिथिकरणम्' इत्यादिना स्थूलसूक्ष्मसकलदोषापवादार्थत्वात्तस्या दोषलेशो नास्ति, उच्यते । यदयं नास्यामृक्षमित्यादिः स्तुत्यर्थवादः । तेन गोधूल्याः प्रशंसायां तात्पर्यं न तु विधिः । अन्यथा निषिद्धेषु अमावस्याभद्राभरण्यादिष्वपि गोधूलिलग्नं भवितु युक्तं स्यात् । सामान्यवैयर्थ्यापत्तेरिष्टापत्तिरपि वक्तुमशक्या । तस्मादभिहिततिथ्यादिष्वेव यावच्छक्याखिलदोषपरिहारपूर्वकं घटीलग्नं कार्यम् । तदभावे गोधूलिलग्नं कार्यम् । यदाह लल्लः—

'लग्नं यदा नास्ति विशुद्धमन्यद्गोधूलिकं साधु तदा वदन्ति ।
लग्ने विशुद्धे सति वीर्ययुक्ते गोधूलिकं नैव फलं विधत्ते ॥'
शुभाशुभयुतं सर्वं राशेर्दोषं त्वनिन्दितम् ।
'विवाहलग्नवच्छेषं गोधूलिं प्राहः भागुरिः ॥' इति ।
किञ्च—'कुलिकं क्रान्तिसाम्यं च मूर्तौ षष्ठाष्टमः शशी ।
पञ्च गोधूलिके त्याज्यास्त्वन्ये दोषाः शुभावहाः ॥'
इति दैवज्ञमनोहरीयवाक्यास्यापि वैयर्थ्यापत्तेः ।

गोधूल्यधिकारिण आह नारदः—

'प्राच्यानां च कलिङ्गानां मुख्यं गोधूलिकं स्मृतम् । गान्धर्वादिविवाहेषु वैश्योद्वाहे च योजयेत् । चतुर्थमभिजिल्लग्नमुदयर्क्षात्तु सप्तमम् । गोधूलिकं हि भवति सम्पत्पुत्रादिसौख्यदम् ॥' इति ।

दैवज्ञमनोहरे—

'घटीलग्नं यदा नास्ति तदा गोधूलिकं शुभम् । शूद्रादीनां बुधाः प्राहुर्न द्विजानां कदाचन ॥ महादोषान्परित्यज्य प्रोक्तधिष्ण्यादिकेषु च । कारयेद्गोरजो यावत्तावल्लग्नं शुभावहम् ॥' इति । 'लग्नशुद्धिर्यदा नास्ति कन्या यौवनशालिनी । तदा वै सर्ववर्णानां लग्नं गोधूलिकं शुभम् ॥इति ।

अत एव भूपालवल्लभे—

'विप्रेषु घटिकालाभे दातव्यं गोरजो बुधैः । संकीर्णे गोरजः शस्तं परेषु द्वितयं शुभम् ॥' इति । तत्र गोधूलिसूक्ष्मकालसमयः केशवार्केणोक्तः—

'अत्रोभयत्र घटिकादलमिष्टमाहुर्ग्राह्यं तदम्बरमणेरपि चार्द्धबिम्बात्' इति ।

केचित्तु—'यावद्दिनान्ते दिशि पश्चिमायां पश्येत्तृतीयं रविबिम्बभागम् ।
तस्मात्परं नाडिकयुग्ममेके गोधूलिकालं मुनयो वदन्ति ॥' इति ।

तदेतयोः पक्षयोर्यथादेशाचारं व्यवस्था ॥ ९९ ॥

पीताम्बरा—गोधूलि लग्न की स्तुति—गोधूलि लग्न में नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न, वार, नवांश, मुहूर्त योग, अष्टम भवन और जामित्र इत्यादि किसी दोष विशेष की चिन्ता नहीं है। अर्थात् गोधूलि लग्न के विवाह में उक्त विषयों पर किसी विचार-विशेष की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि मुनियों ने गोधूलि लग्न का समय सब कार्यों के लिए अत्यन्त शुभप्रद कहा है।

अभिप्राय यहाँ पर गोधूलि लग्न की स्तुति से है। विधि पक्ष में गोधूलि सर्वोपरि कहना उचित न होगा। गोधूलि लग्न कहने से तो निषिद्ध अमावास्या भद्रा भरणी आदि युक्त दिवसों में भी विवाह संस्कार करने की सम्मति आती है। अतः विवाहोक्तमासतिथि नक्षत्र-वारादिकों में सकलदोष परिहारक लग्न की ही गवेषणा उचित होती है। सही घटी लग्न के अभाव में गोधूलि लग्न सभी वर्णों के लिए (कन्या की अधिक अवस्था, अन्य वर लाभ की बाधा आदिक परिस्थितियों में) उचित ही होती है ॥ ९९ ॥

अथ शीतकालादिभेदेन गोधूलिभेदं जलधरमालाछन्दसाह—

पिंडीभूते दिनकृति हेमंततौं स्यादर्द्धास्ते तप समये गोधूलिः ।
सम्पूर्णास्ते जलधरमालाकाले त्रेधा योज्या सकलशुभे कार्यादौ ॥ १०० ॥

पीयूषधारा—पिण्डीभूते इति । हेमन्ताख्ये ऋतौ हेमन्तशब्देन शीतकाल उपलक्ष्यते । मार्गशीर्षादिमासचतुष्टये इत्यर्थः । दिनकृति सूर्ये पिण्डीभूते ओदनगोलकसदृशे सन्ध्यायां नीहाराद्यावृतत्वेन निष्प्रभे इत्यर्थः । तस्मिन्समये गोधूलिर्ज्ञेया । तथा तपसमये उष्णकाले चैत्रादि-मासचतुष्टये सूर्येऽर्द्धास्ते अर्द्धबिम्बस्य दृश्यत्वे च सति गोधूलिः । जलधरा मेघास्तेषां माला समूहस्तस्योत्पादके काले वर्षाकाले श्रावणादिमासचतुष्टये सूर्यसम्पूर्णास्तमदर्शनमस्य तादृशे सति गोधूलिः । जलधरमालाशब्देन छन्दोऽपि सूचितम् । न केवलमियं विवाहे एव किन्तु सकलशुभे

समस्तशुभकार्यादिष्वपि ज्ञेया । यदाह वराहः—

'गोधूलिं त्रिविधां वदन्ति मुनयो नारीविवाहादिके
हेमन्ते शिशिरे प्रयाति मृदुतां पिण्डीकृते भास्करे ।
ग्रीष्मेऽर्द्धास्तमिते वसन्तसमये भानौ गते दृश्यतां
सूर्ये चास्तमुपागते भगवति प्रावृट्शरत्कालयोः ॥' इति ॥ १०० ॥

पीताम्बरा—हेमन्त ऋतु, शीतकालीन मार्गशीर्षादिक चार महीनों के सन्ध्या समय में ओदन गोल के सदृश प्रभाहीन दृष्टिगोचर सूर्य बिम्ब के समय गोधूलि होती है । तथा चैत्रादिक चार महीनों के ग्रीष्म समयों में अर्द्ध सूर्य बिम्ब दृश्य और अर्द्ध सूर्यबिम्ब अस्त के समय गोधूलि समय होता है । वर्षाकाल-श्रावणादिक ४ महीनों में सम्पूर्ण सूर्य बिम्ब के अस्त समय पर गोधूलि कही गई है ॥ १०० ॥

अथ गोधूलिसमयेऽवश्यवर्ज्यदोषान् वैश्वदेवीछन्दसाह—

अस्तं याते गुरुदिवसे सौरे सार्के लग्नान्मृत्यौ रिपुभवने लग्ने चेन्दौ ।
कन्यानाशस्तनुमदमृत्युस्थे भौमे वोढुर्लाभे धनसहजे चन्द्रे सौख्यम् ॥१०१॥

पीयूषधारा—अस्तं याते इति । गोधूलिरित्यनुवर्तते । गुरुदिवसे बृहस्पतिवारे सूर्येऽस्तं याते सूर्यास्तादनन्तरं गोधूलिः शुभा स्यात्, न तु सूर्यास्तात्पूर्वमर्द्धघटिकं गोधूलिलग्नं कार्यम्, अर्द्धयामसद्भावात् । तथा सौरे सार्के सूर्यदर्शनसहिते गोधूलिः शुभा न तु सूर्यास्तादनन्तरम् । कुलिकसद्भावात् । उपलक्षणत्वात् क्रान्तिसाम्यपि त्याज्यम् । तथा लग्नात्सायङ्कालीनलग्नान्मृत्या-ष्टमे रिपुभवने षष्ठे वा लग्न एव वा चन्द्रे सति कन्यानाशः स्यात् । तदुक्तं दैवज्ञमनोहरे— 'कुलिकं क्रान्तिसाम्यं च मूर्तौ षष्ठाष्टमः शशी ।पञ्चगोधूलिके त्याज्या अन्ये दोषाः शुभावहाः ॥'

अत्र कुलिकशब्देन तत्कालसम्भाव्यार्द्धयामाख्यो वारदोषो गृह्यते अन्येषान्त्वसम्भव एव । केचित्त्वाद्यपादे—'सार्के शनौ रविविचित्रशिखण्डिसूनौ तत्केवलं कुलिकयामदलोपलम्भात् ॥" इति केशवार्कोक्तवाक्यसम्मतिः कस्मान्न भवतीत्यूचुः । तच्चिन्त्यम् । पूर्वापरग्रन्थालोचनया तस्य पूर्वपक्षग्रन्थत्वात् अन्यथा पञ्चम्यन्तहेतूपादानवाक्यमनर्थकं स्यात् । एतच्चाधुनैव निर्णेष्यते । लग्ने इति । लग्नस्थे मदनस्थे मृत्युस्थे वा भौमे सति वोढुर्वरस्य नाशो भवति । तदुक्तं ज्योतिः-संहितासारे—

'षष्ठेऽष्टमे मूर्तिगते शशाङ्के गोधूलिके मृत्युमुपैति कन्या ।
कुजेऽष्टमे मूर्तिगतेऽथवास्ते वरस्य नाशं प्रवदन्ति गर्गाः ॥' इति ।

अन्योऽपि विशेषस्तत्रैव—

'षष्ठाष्टमे चन्द्रजचन्द्रजीवे क्षोणीसुते वा भृगुनन्दने वा ।
मूर्तौ च चन्द्रे नियमेन मृत्युर्गोधूलिकं स्यादिह वर्जनीयम् ॥' इति ।
'धिष्ण्यं क्रूरयुतं त्याज्यं मूर्तौ षष्ठाष्टमः शशी ।
गोरजस्तत्प्रशंसन्ति सन्तः शनिदिनं विना ॥' इति ।

नन्विदं न वक्तव्यम् । सप्तमसूर्यस्य 'अवीरामस्तेर्के' इति फलमभिहितम् । 'अवीरा

निष्पतिसुता' इति कोशः। एवं सति दशदोषदूषितस्य गोधूलिलग्नस्य चेदिहादरस्तदा चन्द्रशुद्धेरत्यादरः किमर्थम्। किं च लग्नस्था अपि सूर्यभौमशनिराहुकेतवः पूज्याः स्युः। उक्तं च केशवार्केण—

'गोधूलिकेऽपि विधुरष्टमषष्ठमूर्तौ यन्मोचयन्ति तदयं स्वरुचि प्रपन्नः।
पञ्चाङ्गशुद्धिमयमेव विवाहधिष्ण्यैर्यस्मादिदं सततमस्तगते पतङ्गे॥
नाशो न लग्नमिह दृष्टयुतं स्वभर्त्रा नार्कारसौरितमसामपि सङ्गभङ्गः।
किं चन्द्रचारभयमेकमिहास्तु किञ्च नात्र प्रमाणवचनं किमपि श्रुतं नः॥
सार्कं शनौ रविविचित्रशिखण्डिसूनौ तत्केवलं कुलिकयादमदलोपलम्भात्' इति।

उच्यते, विशेषविधेः सामान्यशास्त्रबाधकता न्यायसिद्धा। सामान्यतः पञ्चघटिकात्मकस्य सायङ्कालीनलग्नस्य सप्तमसूर्याख्यो महान्दोषः तत्रापि पुनर्गोधूलिकाले सूर्यार्द्धबिम्बरूपे सूक्ष्मे न सप्तमसूर्यदोषो विशेषवचनात्, तत्राप्ययं विशेषो यद्गोधूल्यां यथाशक्ति दोषहानिर्विधेया। घटिकालग्ने त्वखिलदोषहानिः अत एव गोधूलिलग्ने न ऋणमित्यर्थवादोपपत्तिः, तस्याप्ययं षष्ठेऽष्टमे मूर्तिग इत्यर्थवादो विशेषवचनात्। नात्र प्रमाणवचनं किमपि श्रुतम्। किन्तु प्रौढवादमात्रम्। एतादृशानां मूलभूतवाक्यानामनुपलम्भात्। 'सार्के शनौ' इत्यादि तु 'कुलिकं क्रान्तिसाम्यं च' इति वाक्यात्कुलिकादित्यागे स्वयं हेत्वभिधानपरं न तत्र तात्पर्यम्। सप्तमसूर्यातिरिक्तसकलदोषनिराकरणप्रवृत्तत्वात्तस्य। किं च यदि गोधूल्यां कोऽपि दोषो नास्तीत्यभिमतं स्यात्तदैकविंशतिमहादोषनिरूपणात्प्राक् नारदोऽपि गोधूलिलग्नमभिदध्यात्। न च व्यतीपातादिष्वपि गोधूलिलग्नं स्यादिति वाच्यम्, सामान्यवाक्येऽपि निषेधसत्त्वात्। किं चैवं ब्रुवतस्तवेष्टापत्तिरेव स्यादित्यास्तां प्रसक्तानुप्रसक्तेन।

लाभ इति। चन्द्रे लाभस्थे वित्ते द्वितीयस्थे वा सति स्त्रीपुरुषयोः सौख्यं स्यात्। तदुक्तं संहितासारे—

'यत्रैकादशगश्चन्द्रो द्वितीयो वा तृतीयगः। गोधूलिका तु विज्ञेया शेषा धूलिरिति स्मृता।'इति॥१०१॥

पीताम्बरा—गोधूलि समय में भी अवश्य वर्ज्य दोष—बृहस्पतिवार के दिन सूर्य अस्तंगत हो गया हो अर्थात् सूर्यास्त के अनन्तर की गोधूलि लग्न शुभ होती है क्योंकि बृहस्पतिवार को सूर्यास्त के पूर्व अर्द्धयाम दोष होता है। शनिवार के दिन की गोधूलि सूर्यास्त के पहिले की ही शुभ कही गई है इसलिए कि सूर्यास्तानन्तर शनिवार को "कुलिक" (दुष्टक्षण) की सत्ता रहती है।

तथा सायंकालीन लग्न से अष्टम या षष्ठ भवन में चन्द्रमा अथवा लग्न में ही चन्द्रमा हो तो ऐसे समय की गोधूलि लग्न का विवाह कन्या का विनाशक होता है।

तथा सायंकालीन गोधूलि लग्न या सप्तम या अष्टम में मंगल हो तो ऐसे लग्न का विवाह वर का विनाशक होता है।

सायंकालीन गोधूलि लग्न से ११, २, ३, में चन्द्रमा की स्थिति होने से विवाह सम्बन्ध शुभद होता है॥१०१॥

अथावसरप्राप्तां घटिकालग्नसिद्ध्यर्थप्रक्रियां वृत्तपञ्चकेन वक्तुकामस्तावत्सूर्यस्पष्टगतिमिन्द्रवज्रयाह—

मेषादिगेर्केऽष्टशरा नगाक्षाः सप्तेषवः सप्तशरा गजाक्षाः।
गोऽक्षाः खतर्काः कुरसाः कुतर्काः क्वङ्गानि षष्टिर्नवपञ्च भुक्तिः॥१०२॥

पीयूषधारा—मेषादिति । स्पष्टार्थमिदं पद्यम् । मेषादिद्वाददशराशिषु सूर्याक्रान्तासु स्थूलकलात्मिका स्पष्टगतिरित्यर्थः । उक्तं च—

'नागेषवो नगशरास्तुरगेषवोद्रिबाणा भुजङ्गविषयाः क्रियतो नवाक्षाः ।
व्योमर्तवः शशिरसाः कुरसाः कुतर्काः षष्टिर्नवेषव इनस्य गतेः कलाः स्युः ॥' इति ।

इयं स्थूला गतिर्भावनासिद्धेति नार्षवचनापेक्षा ॥ १०२ ॥

पीताम्बरा—मेषादिक द्वादश राशिगत सूर्य की गतियाँ—स्थूल रूप से १ महीने तक स्वल्पान्तरित सूर्य की स्पष्ट गतियाँ आचार्य ने जो निम्न चक्र से स्पष्ट हैं बताई हैं । वस्तुतः प्रतिदिन की गति विलक्षण रूप की होती है । यहाँ तक कि एक पल से भी कम समयों में चन्द्रमा की गतियों का साधन आधुनिक गणित गोलज्ञों ने स्पष्ट कर अन्तरिक्ष यान चालू कर चन्द्र धरातल में पहुँचने के प्रयत्नों में सफलता प्राप्त कर संसार के लिए इस युग का महान् आश्चर्य कारक गणितादि विज्ञान का कौशल प्रदर्शित भी कर दिया है । अतः जहाँ तक हो प्रतिदिन और प्रतिक्षण वा एक-एक होरा के माप की सूर्य गतियों के ज्ञान से लग्न नवांशादिक सूक्ष्म साधन आवश्यक होंगे ।

सूर्य की स्थूल गति-ज्ञान चक्र

सूर्य राशियाँ	मेष मास	वृषभ मास	मिथुन मास	कर्क मास	सिंह मास	कन्या मास	तुला मास	वृश्चिक मास	धनु मास	मकर मास	कुम्भ मास	मीन मास
गति कला	५८	५७	५७	५७	५८	५९	६०	६१	६१	६१	६०	५९

सिद्ध सिद्धान्त ग्रन्थ पद्धतियों से आचार्य ने सूर्य की मेषादि सौर मासों में तात्कालिक मन्दस्पष्टा गति (विकला त्याग कर) ऊपर बताई हैं ॥ १०२ ॥

अथ सूर्यस्य तात्कालिकीकरणमनुष्टुभाह—

सङ्क्रान्तियातघस्राद्यैर्गतिर्निघ्नी खषट्-६० हृता ।
लब्धेनांशादिना योज्यं यातर्क्षं स्पष्टभास्करः ॥ १०३ ॥

पीयूषधारा—सङ्क्रान्तीति । सङ्क्रान्तयो मेषाद्याः पञ्चाङ्गदृष्टाः यद्दिने स्युर्यस्या घट्यां च स्युस्तत आरभ्य स्वाभीष्टस्थूलकालपर्यन्तं यावद्दिनानि यावत्यो घटिकाश्च भवन्ति तैर्मेषादीष्टराशिस्थे सवितरि सति तत्सूर्यस्थूलस्पष्टगतिर्गुण्या । खषड्भिः षष्ठ्या ६० भक्ता यल्लब्धं तेंऽशाः । अवशिष्टेकलादि । येंऽशावयवास्ते आदिशब्दवाच्याः । येन यातर्क्षं ऋक्षं राशिः सूर्यभुक्तमेषादिराशियुक्तः सन् तात्कालिकस्थूलस्पष्टभास्करः स्यात् ॥ १०३ ॥

पीताम्बरा—तात्कालिक स्पष्ट सूर्य ज्ञान—जिस दिन मेषादिक संक्रान्ति जितने घटी पल पर हो, उस समय से अपने अभीष्ट (इष्टकाल) वैवाहिक लग्नेष्टकाल या अन्य इष्टकाल तक जितनी दिनादिक घटी-पल संख्या हो उससे उस संक्रमकालीन ऊपर कथित सूर्यस्पष्ट गति

को गुणा कर गुणनफल में ६० का भाग देते हुए अंश-कला-विकला बनाकर उसे सूर्य संक्रान्ति की गत राशि में जोड़ देने से अभीष्ट स्पष्ट सूर्य हो जावेगा। जैसे सं० २०२८ ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्थी शुक्रवार को सूर्य का वृष राशि संक्रम काल ५७।५५ है। एकादशी गुरुवार ३३।१६ इष्ट पर स्पष्ट सूर्य ज्ञात करना है। अतः संक्रांति समय से ५।३३।१६ (=१२।३३।१६)—६।५७।५ =५।३६।११ यह धन चालन हुआ। वृष संक्रम सूर्य गति से गुणित चालन—

५।३५।११
५७
२८५ | २४५ | ६२७ ÷ ६०
३३ | १८० | २७ शेष
अंश=५ | ३१८ ÷ ६० | १०
२००२ ÷ ६०
शेष १९ कला २२ शेष विकला
अतः १।०।०।०
५।१८।२२
१।५।१८।२२

यह शुक्रवार एकादशी का स्पष्ट स्थूल सूर्य होगा। क्योंकि यहाँ गति स्थूल है। सूक्ष्म गति ग्रहण करने से कला १९ की जगह २०-२२ तक (दो तीन कला का न्यूनाधिक अन्तर) हो सकता है। व्यवहारोपयोगी स्थूल गणित भी आवश्यक है।

अतः उक्त स्पष्ट सूर्य साधन का त्रैराशिकानुपात युक्ति युक्त है। जैसे यदि १ दिन में सूर्य की स्पष्टा गति उपलब्ध होती है तो अभीष्ट दिन में $\frac{\text{गतिकला} \times \text{अभीष्टदिनादिक}}{१}$ आगत फल (६० से अधिक होने पर क्रमशः साठ से भाग देते हुए) को गत संक्रम राशि में जोड़ने से अभीष्टकालीन स्पष्ट सूर्य होता है। ताजिक नीलकण्ठी में आचार्य नीलकण्ठ ने 'गतैष्यदिवसाद्येन गतिर्निघ्नी खषड्हृतेति'' से उक्त स्पष्ट सूर्यानयन प्रकार को अधिक स्पष्ट और सूक्ष्म बनाया है।

वास्तव में आधुनिक विकसित पञ्चाङ्ग गणित में उक्त प्रकार स्पष्ट साधनिका अनावश्यक है। नाट्रिकल अल्मनाक (दृश्य पञ्चाङ्गों) में प्रत्येक घण्टे से कम समयों के सायन ग्रह उपलब्ध होते हैं। निरयण पक्ष समर्थकों को उन्हें निरयण कर अग्रिम कार्य प्रचलित करने चाहिए ॥ १०३ ॥

अथेष्टकालिकलग्नानयनमनुष्टुभाह—

तनोरिष्टांशकात्पूर्वं नवांशा दशसङ्गुणाः ।
रामाप्ता लब्धमंशाद्यं तनोर्वर्गादिसाधने ॥ १०४ ॥

पीयूषधारा—तनोरिति । ग्रहबलसहितस्य लग्नस्य यो विहितो नवांशो दोषरहितो विचारितः सः 'क्रियमृगास्यतौलिकेन्दुभतो नवांशविधिरुच्यते बुधै'रिति गणनया यावत्संख्याक आगच्छेत् तत्पूर्वनवांशा यावन्तः स्युः ते दशभिः सङ्गुण्या रामैस्त्रिभिराप्ता यल्लब्धमंशकलाविकलात्मकं तत्तनोरिष्टकालिकं भुक्तं स्यात्। तेन कृत्वा प्रागुक्तं 'कुजशुक्रसौम्य' इत्यादिप्रकारेण षड्वर्गसाधनं स्यात्। अत्रोपपत्तिः—यदि नवभिर्नवमांशैस्त्रिंशदंशा लभ्यन्ते तदेष्टनवांशेन कियन्त इति। अत्र 'प्रमाणमिच्छा च' इत्यादिना इष्टनवांशानां त्रिंशद्गुणको भाजको

नवसम्पन्नः। तत्र द्वयोरपि त्रिभिरपवर्ते दशगुणकः त्रयो भाजकः इत्युपपन्नं फलमिष्टांशाः स्युः। उक्तं च महेश्वरेण 'इष्टात् पूर्वनवांशका दशहता रामैर्हृताः स्युर्लवाः ॥' इति ॥ १०४ ॥

पीताम्बरा—इष्टकालीन लग्न की अंशादि का ज्ञान—जिस लग्न के जितनी संख्यक जिस नवांशक में विवाह करना हो उस नवांशक के पूर्व की नवांश संख्या को १० से गुणाकर ३ से भाग देने से लब्ध अंश कलादिक लग्न के षड्वर्ग साधन के भुक्त अंशादिक होते हैं। जैसे—विवाह के लिए कन्या लग्न में कन्या नवांश अभीष्ट है। कन्या में मकरादिक नवम नवांश कन्या का होता है। नवम से पूर्व नवांश संख्या ८ को १० से गुणा कर ८० गुणनफल में ३ का भाग देने से २६ अंश ४० कला हुए। अतः कन्या लग्न के २६ अंश ४० कला बीतने पर सिंह नवांश पूरा होकर तब कन्या का नवांश लगेगा। ऐसी स्थिति में षड्वर्ग साधनोपयोगी लग्न का मान ५।२६।४० से ५।२९।५९।५९....तक होगा।

यहाँ भी त्रैराशिकानुपात से ९ नवांशों में ३० अंश तो अभीष्ट नवांश में

$$\frac{३०^{\circ} \times \text{अभीष्ट नवांश}}{९} = \frac{१० \times \text{अभीष्ट नवांश}}{३}$$ = लग्न की गत नवांश समाप्ति और अभीष्ट वर्तमान नवांश की प्रवृत्ति और ३°।२०′ कला तक समाप्ति।

आधुनिक पंचांगों की दैनिक लग्न सारणियों से उक्त ज्ञान और विशेष सूक्ष्मता की ओर होता है। अतः उक्त साधन भी आजकल अनावश्यक सा है ॥ १०४ ॥

अथैवं साधिताभ्यां स्पष्टार्कलग्नाभ्यामिष्टघटिकानयनं शालिन्याह—

अर्काल्लग्नात्सायनाद्भोग्यभुक्तैर्भागैर्निघ्नात्स्वोदयात्खाग्निभक्तात्।
भोग्यं भुक्तं चान्तरालोदयाढ्यं षष्ट्या भक्तं स्वेष्टनाड्यो भवेयुः ॥ १०५ ॥

पीयूषधारा—अर्कादिति। सायनादयनांशसहितात्सूर्याद्राशिभोग्यांशैः सायनांश सूर्याक्रान्तराशेः स्वदेशीय उदयो मेषादिराशीनां पलात्मकं प्रमाणगुण्यं खाग्निभिस्त्रिंशता भक्तं लब्धानि पलानि स्युः। एवं लग्नात्सायनांशाद्भुक्तांशैराक्रान्तस्वदेशीयराश्युदयो गुण्यः। खाग्निभक्तो लब्धानि। एवं जातानां भोग्यभुक्तपलानामैक्यं कार्यम्। तत्सायनांशलग्नार्कयोरन्तरालोदयपलैर्युक्तं कार्यम्। षष्ट्याभक्तं सूर्योदयादिष्टघटिका भवेयुः। अत्रोदयज्ञानं भास्कराचार्येणोक्तम्—

'लङ्कोदया नागतुरङ्गदस्रा २७८ गोऽङ्काश्विनो २९९ रामरदा ३२३ विनाड्यः।
क्रमोत्क्रमस्थैश्चरखण्डकैः स्वैः क्रमोत्क्रमस्थैश्च विहीनयुक्ताः।
मेषादिषण्णामुदयाः स्वदेशे तुलादितो मीनषडुत्क्रमस्थाः ॥' इति। स्वैः स्वदेशीयैः।

अत्र चरखण्डानयनमपि तेनोक्तम्—अयनलवदिनैः प्राङ्मेषसङ्क्रान्तिकालाद्भवति दिवसमध्ये या प्रभाक्षप्रभा सा। दशगजदशनिघ्नी साक्षभान्त्यात्रिभक्ता प्रतिगृहचरखण्डानि' इति। 'अर्कस्य भोग्यस्तनुभुक्तयुक्तो मध्योदयाढ्यः समयो विलग्नात्' इति च ॥ १०५ ॥

पीताम्बर।—साधित स्पष्टसूर्य और स्पष्टलग्न से इष्टघटिका-ज्ञान–सायनसूर्य राशि के भोग्यांशों से सायनसूर्य राशि के स्वदेशोदय को गुणाकर गुणनफल में ३० का भाग देने से लब्ध फल भोग्यफल होते हैं। इसी प्रकार सायन लग्न भुक्तांश से सायन लग्न स्वदेशोदय को गुणाकर ३० से भाग देने पर लब्धफल लग्न का भुक्तकालात्मक भुक्तपल होता है। सूर्य के भोग्यपल में लग्न के भुक्तपल जोड़कर उसमें सायन सूर्य से सायन लग्न तक की मध्यगत राशियों के उदय पलों को जोड़कर योगफल में ६० का भाग देकर लब्ध घटी और पल के तुल्य सूर्योदय से अभीष्ट समय (इष्टकाल) हो जाता है।

ग्रहलाघव-नीलकण्ठी प्रभृति ग्रन्थों में लग्न ज्ञान, इष्टकाल ज्ञान आदि के विस्तृत गणित और उपपत्तियाँ सम्यगुपलब्ध हैं। और अधिक विशेष विवरण यहाँ अनावश्यक है ॥१०५॥

अथ घटिकानयनविशेषं शालिन्याह—

चेल्लग्नार्कौ सायनावेकराशौ तद्विश्लेषघ्नोदयः खाग्निभक्तः।
स्वेष्टः कालो लग्नमूनं यदार्काद्रात्रौ शेषेऽर्कात्सषड्भंनिशायाम् ॥ १०६ ॥

पीयूषधारा—चेल्लग्नेति। लग्नार्कौ सायनौ अयनांशसहितौ यद्येकराशौ स्यातां तदा तयोर्लग्नार्कयोर्विश्लेषोऽन्तरांशास्तैर्गुणितः स्वदेशीय उदयः कार्यः। खाग्निभिस्त्रिंशता भाज्यो लब्धमिष्टकालः सूर्योदयात्स्यात्। तत्र यदार्कात्सायनसूर्यादिकराशिस्थितं लग्नमूनं स्यात्तदा यः 'चेल्लग्नार्कौ सायनौ' इत्युक्तदिशा स्वेष्टकाल आगतः स सूर्योदयात्प्राक् रात्रिशेषो भवेत्। अयमर्थः। आनीत इष्टकालः षष्ट्यां पात्यः प्राग्दिनीयसूर्योदयादनन्तरमेतावानिष्टकालः। अथवा राशिमानात्पात्यः प्राग्दिनीय सूर्यास्तादनन्तरमेतावानिष्टकालः। एवमिष्टकाले सामान्यतो निर्णीते रात्रौ विशेष उच्यते। निशायां रात्रावर्कात्सषड्कयुक्तात्प्रागुक्तप्रकारेण 'अर्काल्लग्नात्' इत्यादिनेष्टकालः साध्यः। स सूर्यास्तानन्तरं भवेत्। यदाह भास्करः—'यदैकभे लग्नरवी तदा तद्भागान्तरघ्नोदयखाग्निभक्तम्। स्यादिष्टकालो यदि लग्नमूनं शोध्यो द्युरात्रादथवा रजन्याः ॥' रात्रीष्टकाले तु सषड्भसूर्याल्लग्नं ततोऽप्युक्तवदिष्टकालः ॥' इति। अत्रांशप्रवृत्तेः पञ्च पलानि पात्यन्ते। विहितनवांशप्रवेशसूचनार्थमिति दैवज्ञसम्प्रदायः। एवमानीत इष्टकाले दम्पत्योरन्योन्य वीक्षणं कार्यमित्याह कश्यपः—'अन्योन्यवीक्षणं सम्यक्सुलग्ने कारयेत्सदा' इति। नारदोऽपि—'एवं सुलग्ने दम्पत्योः कारयेत्सम्यगीक्षणम्' इति। एतेन परस्परावलोकनं सुलग्ने कार्यम्। इतरत्तु समयान्तरेऽपि विधेयमित्युक्तं भवति तुल्यन्यायत्वादुपनयनादावपि साधितेष्टकाले संस्कार्याचार्ययोरप्यन्योन्यवीक्षणं कारणीयम्।

'शास्त्रोक्तमार्गेण सुलग्नकालं स्फुटं समानीय जलादियन्त्रैः।
संलभ्य तं मङ्गलसूक्ष्मकालं संलोकयेत्तत्र मिथोध्वंदृष्टिः ॥'

इति सामान्यतो वसिष्ठेनाभिहितत्वात्।

विवाहे निश्चितलग्ने कर्तव्यकर्माणि—

कश्यपोऽपि तथैवाह—'अन्योन्यवीक्षणं सम्यक् सुलग्ने कारयेत्सदा' इति। अनेन सुलग्नकालः अन्योन्यवीक्षणमेव मुख्यम्। पाणिग्रहणादिगायत्र्युपदेशादिकं तदुत्तरकालकर्तव्यतया गौणमिति प्रतिभाति।

स चेष्टकालः कथं साधनीय इत्यत आह कश्यपः—

'एवं गुणगणान् वीक्ष्य लग्नं निश्चित्य यत्नतः। सिद्धान्तोक्तेन मार्गेण लग्नकालं प्रसाधयेत् ॥
जलयन्त्रेण तल्लग्नं दद्यात्तेनार्चितो द्विजः। मुखं वृत्तं द्वादशभिरङ्गुलैश्च षडुन्नतम् ॥
घटार्द्धवत्ताम्रपात्रं कुर्यात्तद्दशभिः पलैः। षष्टीर्भजेदहोरात्रे घटिकापात्रमुत्तमम् ॥
माषत्रयत्र्यंशयुतस्वर्णवृत्तशलाकया । चतुर्भिरङ्गुलैरायतया विद्धं स्फुटं न्यसेत् ॥
रवेरर्द्धोदयं दृष्ट्वा वाप्यद्धस्तिमयं तथा। पूर्वोक्तलक्षणं यन्त्रं मन्त्रेणानेन निःक्षिपेत् ॥'

निःक्षिपेज्जलपूर्णपात्र इत्यर्थः। यदाह नारद—

ताम्रपात्रे जलैः पूर्णे गन्धपुष्पैरलङ्कृते। तण्डुलस्थे रत्नयुते शुचिभूमावहर्पतेः ॥
मण्डलार्द्धोदयं वीक्ष्य जलपात्रे विनिःक्षिपेत्।' इति।

मन्त्रमप्याह स एव—

यन्त्राणां मुख्ययन्त्रं त्वमिति धात्रा पुराकृतम्। दम्पत्योरायुवृद्धयर्थं पुत्रादिधनहेतवे ॥
जलयन्त्रकमेतस्मादिष्टसिद्धिप्रदं भव।' इति।

ताम्रघटिकाद्यभावे द्वादशाङ्गुलशङ्कुना कालः साध्यः। तदुक्तं कश्यपेन—'अथवा साधयेत्कालं द्वादशाङ्गुलशङ्कुना' इति।

शङ्कुलक्षणमाह नारदः—

'न्यग्रोधखदिराश्वत्थरक्तचन्दनवृक्षजम्। श्रीखण्डागरुवृक्षस्य मञ्जुशङ्कुमकल्मषम् ॥
द्वादशाङ्गुलमुत्सेधं परिणाहं षडङ्गुलम्। एवं लक्षणसंयुक्तं कल्पयेत्कालसाधने ॥' इति।
शङ्कुना घटीज्ञानं तु करणकुतूहले भास्करेणाभिहितम्। यथा—

'चरपलयुतहीना नाडिकाः पञ्चचन्द्रा १५ द्युदलमथ निशार्धं याम्यगोले विलोमम्।
द्युदलगतघटीनामन्तरं तन्नतं स्यान्नतरहितदिनार्धं चोन्नतं जायतेऽत्र ॥

दिनदलं विशरं खहरो भवेन्नतकृतिः पृथगभ्रशराहता।
खखनवाब्धपृथक्स्थितया हृता खहरतः पतितोभिमतो हरः ॥
अथ नतं यदि पञ्चदशाधिकं दिनलवात्पतितं खहरस्तदा।
प्रथमखण्डहृतं दलितं चरं स्वगुणितं स्वषडंशविवर्जितम् ॥
दशयुतं पलकर्णहतं हृतिर्हरहृतः श्रवणोंगुलपूर्वकः।
रवियुतोनितकर्णहतेः पदं द्युतिरिन द्युतिवर्गयुते श्रुतिः ॥
श्रुतिविभक्तहृतिस्तु हरो भवेत्स पतितः खहरादवशेषकम्।
पृथगिदं खखनन्दहतं हरेत्खविषयैरविशेषविवर्जितैः ॥
फलपदं हि नतं यदि शेषक दिगधिकं हर एव तदुन्नतम्।' इति ॥ १०६ ॥

पीताम्बरा—इष्टकाल ज्ञान पर विशेष वक्तव्य—यदि सायन लग्न और सायन सूर्य एक ही राशि में हों तो लग्न और सूर्य के स्पष्टों के अंशादिक अन्तर से स्वदेशीय उदय मान को गुणाकर उसमें ३० का भाग देने से लब्धफल ही इष्टकाल हो जाता है।

यदि सायन सूर्य से सायन लग्न कम हो तो उक्तविधि से आनीत इष्ट सूर्योदय से पहिले (रात्रि शेष) का इष्टकाल होता है। क्योंकि रात्रिशेष में सदा लग्न क्षितिज पर लगी है और सूर्य अभी क्षितिज के नीचे है। राश्यादिक गणना क्रम में पूर्व-पूर्व अग्रिम राशि होने से रात्रिशेष समय में लग्न से सूर्य स्पष्ट अधिक होगा या सूर्य से लग्न कम ही होगा। इस इष्ट को ६० में घटा देने से सूर्योदय से इष्टकाल हो जावेगा।

यदि सायन सूर्य की राश्यादिक सायन लग्न राश्यादि से कम हो तो आनीत इष्टकाल दिन का ही होता है। उसे ६० में घटाने की आवश्यकता नहीं होती।

रात्रि के इष्टकाल में सूर्य में ६ राशि जोड़कर लग्नादिक साधन करना चाहिए।

जैसे—सायन सूर्य ११।२०।०।० और सायन लग्न ११।१९।०।० है दोनों का मीन राशि का अन्तर १ अंश ०।० हुआ इसे मीन राशि के वाराणसी के उदय मान २२१ से गुणा किया, २२१।०।० गुणनफल में ३० का भाग देने से ७ पल, २२ विपल यह रात्रि शेष का इष्टकाल हुआ। इसे ६० में घटा देने से ५९ घटी, ५२ पल, ३८ विपल सूर्योदयादिष्ट होगा ॥१०६॥

अथ विवाहादिशुभकार्येष्वावश्यकान्वर्ज्यदोषानविस्मरणार्थं शार्दूलविक्रीडितत्रयेणाह—

उत्पातान् सह पातदग्धतिथिभिर्दुष्टांश्च योगांस्तथा
चन्द्रेज्योशनसामथास्तमयनं तिथ्याः क्षयर्द्धी तथा।
गण्डान्तं च सविष्टिसङ्क्रमदिनं तन्वंशपास्तं तथा
तन्वंशेशविधूनथाष्टरिपुगान् पापस्य वर्गास्तथा ॥ १०७ ॥
सेन्दुक्रूरखगोदयांशमुदयास्ताशुद्धिचण्डायुधान्
खार्जूरं दशयोगयोगसहिते जामित्रलत्ताव्यधम्।
बाणोपग्रहपापकर्तरि तथा तिथ्यृक्षयोगोत्थितं
दुष्टं योगमथार्द्धयामकुलिकाद्यान् वारदोषानपि ॥ १०८ ॥
क्रूराक्रान्तविमुक्तभं ग्रहणभं यत्क्रूरगन्तव्यभं
त्रेधोत्पातहतं च केतुहतभं सन्ध्योदितं भं तथा।
तद्वच्च ग्रहभिन्नयुद्धगतभं सर्वानिमान् सन्त्यजे-
दुद्वाहे शुभकर्मसु ग्रहकृतान् लग्नस्य दोषानपि ॥ १०९ ॥

पीयूषधारा—उत्पातानित्यादि। उत्पातादीन्दोषानुद्वाहे विवाहे यज्ञोपवीतादिशुभकर्मसु च सन्त्यजेदिति तृतीयश्लोकगतेनान्वयः उद्वाहग्रहणं गोबलीवर्दन्यायेन मुख्यत्वसूचनार्थम्।

उत्पातान् विविधान् दिव्यान्तरिक्षभौमान् लक्षणया तत्सम्बन्धिसप्तवर्ज्यदिवसान् त्यजेत्।

यदाह गुरुः—

'दिग्दाहे वा महादारुपतने चाम्बुवर्षणे। उल्कापाते महावाते महाशनिनिपातने ॥
अनभ्राशनिपाते च भूकम्पे परिवेषयोः। ग्रामोत्पाते शिवाशब्दे दुर्निमित्ते न शोभनम् ॥
केतवो यत्र दृश्यन्ते सधूमा वा पृथग्विधाः। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव वर्जयेद्दिनसप्तकम् ॥' इति।

पातो महापातः क्रान्तिसाम्यमिति यावत् । तद्गणितप्रसिद्धम् । दग्धतिथयः 'चापान्त्यगे गोघटे' इत्यादिनोक्ताः । एतैः सह त्यजेदिति सम्बन्धः । तथा दुष्टयोगान् व्यतीपातवैधृतिपरिघार्द्धादीन् । चन्द्रेज्योशनसां चन्द्रगुरुशुक्राणां अस्तमयनमस्तं च तिथ्योः क्षयर्द्धी तिथिवृद्धिस्तत्क्षयं च पुनर्गण्डान्तं नक्षत्रतिथिलग्नैः त्रिविधं विष्टिर्भद्रा सङ्क्रमदिनं—'देवद्व्यंक' इत्यादिना सङ्क्रमकालादुभयतो वर्ज्या घटिकाः । अयनेषु विषुवेषु च पूर्वापरं त्रिदिनमिति विशेषो ध्येयः । ताभ्यां सहितमिति पूर्वेण सम्बन्धः तन्वंशपास्तमिति । तनुर्लग्नम् अंशो लग्नागतविहितनवांशः तौ पात इति तन्वंशपौ तयोरस्तं लग्नाधीशलग्ननवांशाधीशास्तं चेत्यर्थः । तथा तन्वंशेश विधून् लग्नेशनवांशेशचन्द्रान् अष्टरिपुगानष्टषष्ठस्थानगान् । तथा पापस्येत्येकत्वमविवक्षितम् । पापग्रहाणां वर्गान् । सेन्दुक्रूरखगोदयांशम् । इन्दुश्च क्रूरखगश्चेन्दुक्रूरखगौ उदयो लग्नं च अंशो नवांशश्च उदयांशमिति समाहारद्वन्द्वैकवचनम् । इन्दुक्रूरखगाभ्यां सहितमुदयांशम् । इन्दुसहितं लग्नं लग्नाशं च क्रूरग्रहेण सहितं लग्नं लग्नांशं चेत्यर्थः । उदयास्तशुद्धिचण्डायुधान् उदयशुद्धिरस्तशुद्धिश्च—'इष्टोदयांशैर्निजपत्यदृष्टे वरस्य मृत्युस्तदसंयुते वा । अस्तांशकेप्येवमदृष्टयुक्ते स्वस्वामिना नाशमुपैति कन्या ॥' इति वसिष्ठाद्युक्तम् । इतरथा ज्ञेयमशुभमिति ग्रन्थकर्त्राप्युक्तं प्राक् । चण्डायुधं—'हर्षणवैधृतिसाध्य' इत्यादिनोक्तं, खार्जूरम्—'व्याघातगण्डे' इत्यादिनोक्तम् । दशयोगः—'सूर्यर्क्षेन्द्रर्क्षयुत्' इत्यादिनोक्तः । योगो ग्रहयुतिश्च तत्सहितं जामित्रलत्ताव्यधं—समाहारद्वन्द्वैकवचनम् । जामित्रं द्विविधं—लग्नजामित्रं चन्द्रजामित्रं च—'लग्नाच्चन्द्र' इत्यादिनोक्तम् । लत्ता—'ज्ञराहुपूर्णेन्दुसिता' इत्युक्ता । व्यधं वेधं सप्तशलाकोक्तं पञ्चशलाकोक्तं च 'बाणाः पञ्चकम् । उपग्रहः प्रसिद्धः—शराष्टदिक् शक्र' इत्यादिनोक्तः । पापकर्त्तरीक्रूरग्रहकर्त्तरी । समाहारद्वन्द्वैकवचनम् । तिथ्यृक्षवारोत्थितं दुष्टं योगं तिथिनक्षत्रवारैः कृत्वा उत्थितमुत्पन्नं दुष्टयोगं, तथा तिथिनक्षत्रोद्भवं 'वैश्वमादिमे' इत्यादि, तिथिवारोद्भवं 'सूर्येशपञ्च' इत्यादि, नक्षत्रवारोद्भवं 'याम्यं त्वाष्ट्रम्' इत्यादि, तिथिनक्षत्रवारोद्भवं 'हस्तार्के पञ्चमी' इत्यादि, अनेकं दुष्टयोगम् । अथार्द्धयामकुलिकाद्यान् वारदोषानपि । स्पष्टार्थम् । आदिशब्देन दुर्मुहूर्तादिकान्, क्रूराक्रान्तविमुक्तभं क्रूराक्रान्तं क्रूरविमुक्तं च भं, ग्रहणभं यस्मिन् भे सूर्यचन्द्रोपरागो जातस्तद्भं यत् क्रूरगन्तव्यभं क्रूरेण जिगमिषितं यद्भं नक्षत्रं, त्रेधोत्पातहतं च भं त्रिविधोत्पातैर्दिव्यभौमान्तरिक्षैरुत्पातैर्हतं तन्मासषट्कं त्याज्यम् । एवं ग्रहनक्षत्रमपि केतुहतभं च केतुना हतं भं च । ननु केतोर्दिव्योत्पातत्वात्त्रेधोत्पातहतमित्यनेनैव निषिद्धमिति किं पुनर्विशेषनिषेधेन, उच्यते । अशुभफलदकेतोराधूमनैः स्पर्शैश्च नक्षत्रान्तरेऽपि दोषवत्तास्ति । तथा सन्ध्योदितं भम् । अत्र सन्ध्याशब्देन सायंसन्ध्या गृह्यते । तत्रोदितं तत्काले यन्नक्षत्रस्य क्षितिजे उदयस्तत्तु सूर्यर्क्षाच्चतुर्दशं नक्षत्रमित्यर्थः । ननु प्रातः सन्ध्याम् । तत्र हि सूर्यणाक्रान्तभुक्तभान्यतमसत्त्वात्, यदुक्तं केशवार्केण—'तरणितारकतोऽपि चतुर्दशं तदखिलेप्यखिलं शुभकर्माणि' इति । तारकशब्दक्लीबेऽपि । 'कनीनिकायां नक्षत्रे तारकं तारकेऽपि च' इति विश्वः । ननूपग्रहत्वादेव निषेधे सिद्धे पुनर्दोषाभिधानं किमर्थम्, उच्यते । उपग्रहर्क्षदोषस्य सत्यावश्यकत्वे कुरुबाह्लिकविषयत्वाच्च चतुर्दशस्य तु भस्य दोषाधिक्यसूचनादावश्यकेऽपि सर्वदेशविषयत्वेन निषेधो यथा स्यादिति । तद्वच्च ग्रहभिन्नयुद्धगतभं ग्रहेण भेदितं ग्रहयुद्धगतं च षण्मासन्निषिद्धम् । तथा ग्रहकृतात् लग्नस्य दोषान् 'व्यये शनिः खेवनिज' इत्यादिकान् लग्नसन्धिदोषान्

सन्त्यजेत् । अत्र मूलवाक्यानि सर्वाण्यस्मिन्नेव प्रकरणेऽभिहितानि । कानिचिदाद्यप्रकरणे इति पुनरत्र नोक्तानीति शिवम् ।। १०७–१०९ ।।

पीताम्बरा—शीघ्र स्मृति बनी रहने के लिए पुनः वर्ज्य दोषों का कथन—दिव्य अन्तरिभौम उत्पात, महापात (क्रान्ति साम्य) दग्धतिथियाँ (चापान्त्यगे) दुष्टयोग (व्यतीपात-वैधृति परिघादिक) चन्द्र-गुरु-शुक्र के अस्त वक्र समय, तिथियों की क्षय वृद्धि, त्रिविध गण्डान्त (तिथि-नक्षत्र-लग्न गण्डान्त) भद्रा, संक्रान्ति दिन, लग्न नवांश स्वामियों का अस्तादिक समय, लग्न नवांश स्वामियों और चन्द्रमा की षष्ठाष्टम स्थितियाँ, पापग्रहों का षड्वर्ग, चन्द्र और क्रूरग्रह युक्त लग्न और नवांश, उदय और अस्त लग्न शुद्धि, चण्डायुध (हर्षण वैधृति साध्य अन्ते····) खार्जूर, दशयोग (सूर्य चन्द्र नक्षत्र योग ÷ २७) जामित्र (लग्न जामित्र-चन्द्र जामित्र) लत्ता (ज्ञराहुपूर्णेन्दुसिता) वेध (सप्तशलाका पञ्चशलाका) बाण (रुगनलनृपचौर-मृत्यु) उपग्रह (शराष्टशक्रदिक्) कर्तरी, (पापग्रहों क्रूरग्रहों से) तिथिवार नक्षत्रों से उत्पन्न अनेक दुष्टयोग, (वैश्वमादिमे, सूर्येशपञ्चाग्नि····याम्यंत्वाष्ट्रं····हस्तार्क पञ्चमीतिथौ····) अर्द्धयाम कुलिकादिक अनेक दोष, वारदोष, क्रूराक्रान्त क्रूरविमुक्त क्रूर गन्तव्य नक्षत्र, ग्रहण की नक्षत्र' तीन प्रकार के उत्पातों (दिव्य आन्तरिक्ष, भौम) से हत नक्षत्र, केतूदय का नक्षत्र, सन्ध्या समय में उदित नक्षत्र, (सायं सन्ध्या के समय उदित नक्षत्र, सूर्य नक्षत्र से १४ वीं नक्षत्र) तथा ग्रह से भेदित और ग्रह से युद्ध की नक्षत्र तथा ग्रह कृत लग्न दोषों (व्यये शनिः खेऽवनिज····इति) को विवाहादिक शुभ कार्यों में वर्जित करना चाहिए ।।१०७।।१०८।।१०९।।

कैश्चित्तैलादिलापने दिनसंख्यानियम उक्तस्तमाह—

मेषादिराशिजवधूवरयोर्बटोश्च
तैलादिलापनविधौ कथिताऽत्र सङ्ख्या ।
शैलादिशः शरदिगक्षनगाद्रिबाण-
बाणाक्षबाणगिरयो विबुधैस्तु कैश्चित् ।।११०।।

इति श्रीदैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्तचिन्तामणौ षष्ठं विवाहप्रकरणं समाप्तम् ।। ६ ।।

पीयूषधारा—मेषादिराशिजेति । स्पष्टम् । इदं देशविशेषे औदीच्यादौ प्रसिद्धम् ।।११०।।

विवाहप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—

इति श्रीदैवज्ञेति । स्पष्टार्थम् ।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा
पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्त्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयविधौ पीयूषधाराभिधे
व्याख्याने करपीडनप्रकरणं सम्पूर्णतामध्यगात् ।। १ ।।

इति श्रीदैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां मुहूर्त्तचिन्तामणि-टीकायां पीयूषधाराभिधायां विवाहप्रकरणं समाप्तिमगमत् ।। ६ ।।

पीताम्बरा—वर-वधू-वटु के तेल लगाने की संख्या—तेल आदि लगाने की संख्या औदीच्य आदिक नागरों मे प्रचलित है। इस विषय में मूल वाक्य उपलब्ध नहीं होते।

मेषादि द्वादश राशियों के वर-वधू के लिये क्रमशः तेल लगाने की संख्या, क्रमशः ७, १०, ५, १०, ५, ७, ७, ५, ५, ५, ५, और ७ वार की है। यह विचार देश भेद से जो कुछ भी हो साधारण दृष्टि से अनावश्यक सा ही प्रतीत होता है।। ११०।।

इति अल्मोड़ा मण्डलान्तर्गत जुनायल ग्रामज श्री पं० हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज पर्वतीय श्री केदारदत्त जोशीकृत (काशीस्थ) मुहूर्तचिन्तामणि, छठे विवाह प्रकरण की पीयूषधारा की संक्षिप्त हिन्दी 'पीताम्बरा' व्याख्या सम्पन्न।। ६।।

अथ वधूप्रवेशप्रकरणम्।। ७।।

गणनायकमाराध्य विघ्नसङ्घनिवारकम्।
वधूप्रवेशप्रकरणं व्याख्याति विदुषां मुदे।। १।।

अथ वधूप्रवेशप्रकरणं व्याख्यायते। तत्र वधूप्रवेशो नाम नूतनपरिणीतायाः कन्यायाः प्रथमतः करिष्यमाणो भर्तृगृहप्रवेशो वधूप्रवेशशब्दवाच्य इति। अधुनावसरप्राप्तत्वात्तन्मुहूर्तमुपेन्द्रवज्रयाह—

समाद्रिपञ्चाङ्कदिने विवाहाद्वधूप्रवेशोऽष्टिदिनान्तराले।
शुभः परस्ताद्विषमाब्दमासदिनेऽक्षवर्षात्परतो यथेष्टम्।। १।।

पीयूषधारा—समाद्रीति। विवाहाद्विवाहदिवसादारभ्याष्टिदिनानि षोडश दिनानि तेषामन्तराले समाद्रिपञ्चाङ्कदिने समदिनानि द्वितीयचतुर्थषष्ठाष्टमदशमद्वादशचतुर्दशषोडशसंख्यानि विषममध्ये सप्तमपञ्चमनवमदिनानि तेषु वधूप्रवेशः वध्वा नूतनपरिणीतायाः कन्यायाः भर्तृगृहप्रवेशः शुभः शुभफलप्रदः। यदाह नारदः—

'आरभ्योद्वाहदिवसात्षष्ठे वाप्यष्टमे दिने। वधूप्रवेशः सम्पत्त्यै दशमेऽथ समे दिने।।'

षडादीनां समत्वादेव ग्रहणं पुनस्तदुक्तिरितिप्राशस्त्यसूचनार्थम्। ज्योतिर्निबन्धे तु विशेषः—

'वधूप्रवेशनं कार्यं पञ्चमे सप्तमे दिने।
नवमे च शुभे वारे सुलग्ने शशिनो बले।।' इति।

परस्तात्प्रतिबन्धवशात् षोडशदिनाभ्यन्तरे वधूप्रवेशो न जातस्तदा तदनन्तरं विषमाब्दमासदिने विषमवर्षे प्रथमतृतीयपञ्चमवर्षे विषममासे विवाहमासात्प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमनवमैकादशमासेषु विषमदिनानि सप्तदशादीनि तेषु वधूप्रवेशः शुभः।

तत्रापि यदि प्रतिबन्धवशात्कालातिक्रमः पञ्चवर्षात्मको जातस्तदा पञ्चवर्षादनन्तरं यथेष्टं वर्षादिनियमो नास्ति । किन्तु दोषरहिते काले वधूप्रवेशो विधेयः । तदुक्तं च सङ्ग्रहे—

'विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे दिने षोडशवासरान्तः ।
ऊर्ध्वं ततोऽब्देऽयुजि पञ्चमान्तं पुनःपरस्तान्नियमो न चास्ति ॥'

अत्राब्देऽयुजीति पदच्छेदो द्रष्टव्यः । तदुक्तं विवाहपटले—

'वधूप्रवेशः प्रथमेऽत्र वर्षे तथा तृतीयेप्यथ पञ्चमे वा ।
सूर्येन्दुदेवेज्यबलेन कुर्यात्पुंसो मुनिर्गौतम आह सत्यम् ॥' इति

समवर्षे दोषस्मरणाच्च । यदाह धर्मशास्त्रे नारदः—

'समे वर्षे समे मासे यदि नारी गृहं व्रजेत् ।
आयुष्यं हरते भर्त्तुः सा नारी मरणं व्रजेत् ॥' इति ।

अयुग्मवत्सरनिषेधः पञ्चवर्षात्प्राग्ज्ञेयो न पश्चात् । तद्वाक्यस्य प्रागभिधानात् ॥ १ ॥

पीताम्बरा—वधूप्रवेश विचार—भारत के बहुत अधिक प्रदेशों में वधूप्रवेश विवाह के साथ हो जाता है। जैसे राजस्थान तथा कूर्माद्रि आदिक पर्वतीय प्रान्तों में वधूप्रवेश नाम का पृथक् कोई मुहूर्त नहीं है। कन्यादान के अनन्तर दो चार दिनों के भीतर, नूतन परिणता बहू का पति घर में प्रवेश सुविधानुसार शुभ मुहूर्त में हो जाता है। किन्तु प्रायः पूर्वोत्तर प्रदेश, विहार आदिक प्रान्तों में कन्यादान संकल्प लेकर विना वधू के बारात अपने घर (पति घर) में वापस आजाती है। तत्पश्चात् नूतन परिणीत बहू के अवस्था क्रम को समझ कर, प्रथम या तीसरे या पाँचवें वर्ष तक विषम वर्षों में वधू प्रवेश किया जाता है। आजकल तो प्रायः सभी प्रदेशों में कन्या विवाह अधिक अवस्थाओं में होने से विवाह के साथ ही वधू प्रवेश किया जा रहा है जो सम्यक् समुचित है। ऐसा लगता है कि इसी समय या आगे के दशकों में वधूप्रवेश नामक मुहूर्त की पृथक् सत्ता समाप्तप्राय हो जावेगी। तथा इसी प्रकार वधूप्रवेश के अनन्तर का द्विरागमन मुहूर्त भी अनावश्यक सा हो जावेगा। यह युग धर्म है, जो सदा से सर्वोपरि होता आया है। कूर्माचल कुमाऊँ में विवाह के साथ ही वधूप्रवेश हो जाता है अतः उन देशों में वधूप्रवेश नामक मुहूर्त की पृथक् आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

कम अवस्था की कन्याओं के विवाह के समय वधूप्रवेश नहीं होकर अवस्था के तारा-तम्य से विवाह के पश्चात् १६ दिन के भीतर के समदिनों (२।४।६।८।१०।१२।१४।१६।) में, अथवा, विवाह के १६ दिन के पश्चात् महीने तक विषम दिनों में १ वर्ष तक विषम मासों में, १ वर्ष के बाद विषम वर्षों में वधूप्रवेश शुभ होता है। विवाह संस्कार के ५ वर्ष बाद अपनी इच्छा के समय में जब चाहे वधूप्रवेश हो जाता है। ५ वर्ष के पश्चात् भी दोष रहित शुभमास दिन मुहूर्त में ही वधूप्रवेश करना चाहिए॥ १ ॥

अथ वधूप्रवेशे नक्षत्रादिशुद्धिमनुष्टुभाह—

ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघानिले ।
वधूप्रवेशः सन्नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परैः ॥ २ ॥

पीयूषधारा—ध्रुवेति । ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयं च, क्षिप्राणि अश्विनीपुष्यहस्ताः;

मृदूनि चित्रानुराधारेवतीमृगाः, श्रोत्रं श्रवणः वसुर्धनिष्ठा, मूलं प्रसिद्धम्, अनिलः स्वातीः, एषु भेषु वधूप्रवेशः सच्छुभफलदः। अर्थादन्यासु तिथिषु अर्काराभ्यामन्यवारेषु च वधूप्रवेशः प्रशस्त इत्यर्थः। उक्तं च व्यवहारतत्त्वे—

'पौष्णात्कभाच्च श्रवणाच्च युग्मे हन्तत्रये मूलमघोत्तरासु।
पुष्ये च मैत्रे च वधूप्रवेशो रिक्तेतरे व्यर्ककुजे च शस्तः॥'

कभं रोहिणी। बुधे परैरिति। अन्यैः शिष्टैर्बुधवारे वधूप्रवेशो नेष्यते। कस्मिंश्चिद्देशे शिष्टाचारो यद्बुधवारे बधूप्रवेशो न विधीयते। केचिदत्र हेतुमपि वर्णयन्ति यद्बुधो नपुंसक इति, तच्चिन्त्यम्। शनेरपि नपुंसकत्वात्तस्यापि निषेधो वाच्यः स्यात्॥ २॥

पीताम्बरा—वधूप्रवेश में नक्षत्र शुद्धि—ध्रुव, क्षिप्र मृदु संज्ञक, श्रवण धनिष्ठा मूल मघा और स्वाती, नक्षत्रों में, रिक्ता तिथि वर्जित शेष तिथियों में, मंगल शनि रहित शेष वारों में वधूप्रवेश शुभ होता है। कुछ आचार्यों के मत से वधूप्रवेश के लिए नपुंसक ग्रह होने से बुधवार भी निन्द्य है॥ २॥

अथ विवाहानन्तरं प्रथमं केषुचिन्मासेषु वध्वाः पित्रादिगृहनिवासे फलमिन्द्रवंशाछन्दमाह—

ज्येष्ठे पतिज्येष्ठमथाधिके पतिं हन्त्यादिमे भर्तृगृहे वधूः शुचौ।
श्वश्रूं सहस्ये श्वशुरं क्षये तनुं तातं मधौ तातगृहे विवाहतः॥ ३॥

इति श्रीदैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्तचिन्तामणौ
वधूप्रवेशप्रकरणं समाप्तम्॥ ७॥

पीयूषधारा—ज्येष्ठ इति। विवाहतो विवाहादनन्तरं भर्तृगृहे स्थिता यदि आदिमें प्रथमे ज्येष्ठे मासि तिष्ठन्ती वधूः पतिज्येष्ठं भर्तुर्ज्येष्ठभ्रातरं हन्ति। एवमादिमेऽधिके मासि स्थिता वधूः पतिं भर्त्तारं हन्ति। आदिमे शुचावाषाढ़े श्वश्रूं भर्तृजननीं हन्ति। आदिमे पौषे श्वशुरं भर्तुः पितरं हन्ति। आदिमे क्षये क्षयमासे भर्तृगृहे तिष्ठन्ती तनुं निजशरीरं हन्ति म्रियत इत्यर्थः। तथादिमे मधौ चैत्रे तातगृहे पितृगृहे तिष्ठन्ती तातं पितरं हन्तीत्यर्थः।

यदि कन्यायाः पित्राद्यभावस्तदा तत्तन्मासे तत्तद्गेहावस्थितौसत्यामपि न कोऽपि दोष इत्यर्थः। उक्तं च मुहूर्त्तमार्त्तण्डे—

'उद्वाहात्प्रथमे शुचौ यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका
हन्यात्तज्जननीं क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिज्येष्ठकम्।
पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये
तिष्ठन्ती पितरं निहन्ति न भयं तेषामभावे भवेत्॥' इति।

मलिनेऽधिकमासे। क्षयमासाधिकमासयोर्लक्षणं सङ्क्रान्तिप्रकरणेऽभिहितम्। तस्मान्न वध्वा विवाहानन्तर ज्येष्ठाषाढ़पौषाधिकमासक्षयमासेषु भर्तृगृहे न स्थातव्यम्। किन्तु पितृगृहे एव स्थातव्यम्। एवं चैत्रे मासि पितृगृहे न स्थातव्यम्। किन्तु भर्तृगृहे एव स्थातव्यमिति फलितोऽर्थः। तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे—

'विवाहात्प्रथमे पौष्णे आषाढे चाधिमासके । न सा भर्तृगृहे तिष्ठेच्चैत्रे पितृगृहे तथा ॥'
आषाढो ज्येष्ठोपलक्षकः । अधिमासः क्षयमासोपलक्षकः अत्र प्रमाणं प्रागुक्तमिति ॥ ३ ॥
अथोपसंहरति—इति श्रीदैवज्ञेति । स्पष्टार्थम् ।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा
पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्त्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे
व्याख्याने हि वधूप्रवेशसमयाध्यायः समाप्तिं गतः ॥ १ ॥

इति श्रीविद्वद्वृन्दमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दरचितायां
मुहूर्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां वधूप्रवेश-
प्रकरणं समाप्तिमगात् ॥ ७ ॥

पीताम्बरा—वधूप्रवेश मासीय फल—विवाह के अनन्तर के प्रथम ज्येष्ठ मास में पति के घर में रहने से वह वधू पति के ज्येष्ठ भाई के लिए, प्रथम अधिक मास में पति के लिए, प्रथम आषाढ मास में सास के लिए, प्रथम पौष में श्वसुर के लिए, अनिष्टफल करती है और प्रथम क्षय मास में पति घर में रहने से वधू स्वयं अपने आयु की हानि करती है । तथा विवाह के प्रथम चैत्र मास में पिता के घर में रहने से भी वह वधू पिता के अनिष्ट भविष्य की सूचना देती है ॥ ३ ॥

इति पर्वतीय स्व० श्री पं० हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज श्री केदारदत्त जोशी कृत मुहूर्तचिन्तामणि वधूप्रवेश प्रकरण की "पीयूषधारा की संक्षिप्त पीताम्बरा" हिन्दी व्याख्या सम्पन्न ॥ ७ ॥

●

अथ द्विरागमनप्रकरणम् ॥ ८ ॥

गणनायकमाराध्य नीलकण्ठं गुरुं तथा ।
द्विरागमप्रकरणं व्याख्याति विदुषां मुदे ॥ १ ॥

अथ द्विरागमनप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र पूर्वं नववधूप्रवेशे जाते तदनन्तरं परावृत्यापि पितृगृहप्राप्ताया अपि वध्वा यथेष्टवर्षाणि स्थितायाः पुनर्भर्तृगृहप्रवेशो द्विरागमशब्दवाच्यः । अयमाचारः । अयमाचारः प्राच्योदीच्यपाश्चात्यानामेवेति । अधुनावसरप्राप्तत्वात्तन्मुहूर्त्तं पञ्चचामरच्छन्दसाह—

चरेदथौजहायने घटालिमेषगे रवौ रवीज्यशुद्धियोगतः शुभग्रहस्य वासरे ।
नृयुग्ममीनकन्यकातुलावृषे विलग्नके द्विरागमं लघुध्रुवे चरेऽस्रपे मृदूडुनि ॥ १ ॥

पीयूषधारा—चरेदिति। अथ वधूप्रवेशकथनानन्तरं पुनर्वधूप्रवेशः द्विरागमनं वक्ष्यमाणनक्षत्रादिषु चरेत्कुर्यात्। कदा ओजहायने विषमवर्षे प्रथमे तृतीये पञ्चमे वा वर्षे सति। तथा घटालिमेषगे कुम्भवृश्चिकमेषस्थिते रवौ। तथा वरस्य रवीज्यशुद्धियोगतः रवेः सूर्यस्य, इज्यस्य गुरोः शुद्धियोगतः शुभग्रहस्य सोमबुधगुरुशुक्राणामन्यतमस्य वासरे सति। मिथुनमीनकन्यातुलावृषाणामन्यतमे लग्ने शुभग्रहावलोकिते शुभयुक्ते वा सति। लघून्यश्विनीपुष्यहस्ताः, ध्रुवाणि प्रसिद्धानि, चराणि श्रवणादित्रयपुनर्वसुस्वात्यः, अस्रपो राक्षसस्तद्भं मूलम्, मृदूनि प्रसिद्धानि, एषु भेषु द्विरागमः प्रशस्त इत्यर्थः। यदाह ऋक्षोच्चयः—

'तिष्यादित्यसमीरणादितिवसुत्रीण्युत्तराण्यश्विनीरोहिण्यः शुभदाश्च वर्षमसमं मेषालिकुम्भे रविः।
कन्यामन्मथमीनभे नववधूयानं वृषे तौलिके
देवाचार्यसितेन्दुसौम्यदिवसे शुद्धे गुरौ भास्करे॥' इति।

ग्रन्थकर्त्रात्र कानिचिद्भान्यधिकान्युक्तानि। तानि राजमार्त्तण्डेनोक्तानि—

'नीहारांशुधनोत्तरादितिगुरुब्रह्मानुराधाश्विनी-
मूलाहस्करवारुणानिलहरित्वाष्ट्रेषु शस्ते तिथौ।
कुम्भाजालिगते रवौ शुभकरे प्राप्तोदये भार्गवे
सूर्ये कीटघटाजगे शुभदिने पक्षे च कृष्णेतरे॥
हित्वा दिक्प्रतिलोमगौ बुधसितौ लालादृगं दिक्पतिं
चानीता गुणशालिनी नववधूर्नित्योत्सवैर्मन्दिरम्।'

लालाटगान् यात्रायां वक्ष्यति। शुक्रास्तनिषेधस्तु सामान्यतो—'वाप्याराम' इत्यादिनोक्त एवेति न पुनरुक्तः। यद्यपि प्रावसामान्येन कालशुद्धिरुक्ता। तथाप्यावश्यकत्वे—

'चैत्रे पौषे हरिस्वप्ने गुरोरस्ते मलिम्लुचे। नवोढागमनं नैव कृते पञ्चत्वमाप्नुयात्॥'

इति बादरायणवाक्यान्नैव वधूप्रवेशः कार्यः॥ १॥

पीताम्बरा—द्विरागम शब्द के अर्थ के साथ द्विरागमन मुहूर्त—पति घर मे नववधूप्रवेश होने के अनन्तर लौट कर पिता के घर में यथेष्ट समय तक रह कर पुनः पतिगृह-प्रवेश का नाम द्विरागमन पति धर में द्वितीय आगमन हैं।

वधूप्रवेश के अनन्तर पति घर से विषम वर्षों में कुम्भ मीन वृश्चिक राशि के सूर्य में सूर्य और बृहस्पति की शुद्धि के साथ शुभ ग्रह के वारों में मिथुन मीन कन्या तुला और वृष लग्नों में किसी एक में, लघु ध्रुव चर ध्रुव संज्ञक और मूल नक्षत्रों में द्विरागमन मुहूर्त शुभ होता है॥ १॥

अथ द्विरागमने सम्मुखशुक्रदोषं प्रहर्षिणीछन्दसाह—

दैत्येज्यो ह्यभिमुखदक्षिणे यदि स्याद्गच्छेयुर्न हि शिशुगर्भिणीनवोढाः।
बालश्चेद्व्रजति विपद्यते नवोढा चेद्वन्ध्या भवति च गर्भिणी त्वगर्भा॥ २॥

पीयूषधारा—दैत्येज्य इति। यदि दैत्येज्यः शुक्रोऽभिमुखे दक्षिणे गन्तव्यदिगभिमुखे गन्तुर्दक्षिणदिग्भागे वा स्थितः स्यात्तदा शिशुर्बालः गर्भिणी गर्भवती नवोढा नूतनपरिणीता, इत्येते न

गच्छेयुः। यदि व्रजेत्तदा बालः विपद्यते म्रियते, गर्भिणी त्वगर्भा गर्भरहिता स्यात्। गर्भस्राववती भवेत्, नूतनपरिणीता नवोढा वन्ध्या अपत्यसम्भवरहिता स्यात्, यदाह बादरायणः—

'अस्तंगते भृगोः पुत्रे तथा सम्मुखमागते। नष्टे जीवे निरंशो वा नैव सञ्चालयेद्वधूम्॥
गर्भिण्या बालकेनापि नववध्वा द्विरागमे। पदमेकं न गन्तव्यं शुक्रे सम्मुखदक्षिणे॥
गुर्विणी स्रवते गर्भं बालो वा मरणं व्रजेत्। नवा वधूर्भवेद्वन्ध्या शुक्रे सम्मुखदक्षिणे॥'

यदि शुक्रः पूर्वस्यामुदितः पूर्वदिशि गन्तुः सम्मुख एव, पश्चिमे गन्तुः पृष्ठे, दक्षिणे गन्तुर्वामे, उत्तरे गन्तुः दक्षिणे स्यात् तदा पूर्वोत्तरे दिशौ न गच्छेत्। किन्तु पश्चिमदक्षिणे दिशौ गच्छेत्। यदि पश्चिमायामुदितः शुक्रः पश्चिमां गन्तुः सम्मुख एव, दक्षिणां गन्तुः दक्षिणः, पूर्वां गन्तुः पृष्ठे, उत्तरां गन्तुर्वामः तदा पश्चिमदक्षिणे दिशौ न यायात्। किन्तु पूर्वोत्तरे दिशौ गच्छेत्।

पृष्ठे भृगौ पुत्रवती प्रयाणे कान्तां कुलीनां सुभगां करोति।
अग्रे सुखं वै विदधाति शुक्रो वैधव्यशोकः खलु नास्ति शुक्रे॥' इति।

केचिद्दीपोत्सवप्रतिपदि नक्षत्रादिनियमं विनैव वधूप्रवेशं वाञ्छन्ति। उक्तं च—
'अस्तंगते गुरौ शुक्रे सिंहस्थे वा बृहस्पतौ। दीपोत्सवबलेनैव कन्या भर्तृगृहं विशेत्॥'
इति तदेतच्छिष्टाचारतो ज्ञेयम्।

अत्र लग्नशुद्धिमाह बादरायणः—

'उपचयगते जीवे भृगौ केन्द्रमुपागते।
शुद्धे लग्ने शुभाक्रान्ते गन्तव्यं भर्तृमन्दिरम्।' इति॥ २॥

पीताम्बरा—द्विरागमन के साथ अन्य यात्राविक में सम्मुख और दक्षिण शुक्रदोष—सर्व प्रथम शुक्र का सम्मुख दक्षिण विचार समझना चाहिए। शुक्र पूर्व या पश्चिम में उदय होता है। यदि शुक्र पूर्व में उदय हो तो पूर्व दिशा जाने वाले के लिए सम्मुख पश्चिम जाने के लिए पृष्ठ, दक्षिण यात्रा के लिये बाँया और उत्तर गमन के लिए दाहिना होगा। सम्मुख या दक्षिण शुक्र में पिता घर से पति घर आने के लिए (द्विरागमन) यात्रा शुभ नही होती। पीछे या बायें शुक्र की यात्रा समीचीन होती है। अतः पूर्वके शुक्र में पूर्व और उत्तर दिशा का द्विरागमन अशुभ होगा। पश्चिम दक्षिण यात्रा शुभ होगी।

एवं यदि शुक्र पश्चिम में उदित हो तो, पश्चिम यात्रा में शुक्र सम्मुख, उत्तर की यात्रा में शुक्र बायें, पूर्व की यात्रा में शुक्र पृष्ठस्थ और दक्षिण की यात्रा में शुक्र दाहिने होने से पूर्व और उत्तर की यात्रा शुभ और पश्चिम दक्षिण दिशा का द्विरागमन अशुभ होगा। सम्मुख और दक्षिण शुक्र की यात्रा में, बालक की प्रथम यात्रा, गर्भवती स्त्री की यात्रा और नव विवाहिता की यात्रा क्रमशः मृत्यु, गर्भ शून्यता और वन्ध्याकारक होती है॥ २॥

अथ प्रतिशुक्रापवादं प्रहर्षिण्याह—

नगरप्रवेशविषयाद्युपद्रवे करपीडने विबुधतीर्थयात्रयोः।
नृपपीडने नववधूप्रवेशने प्रतिभार्गवो भवति दोषकृन्न हि॥ ३॥

पीयूषधारा—नगरेति। नगरप्रवेशे, विषयो देशः, आदिशब्देन ग्रामः, तस्योपद्रवे अन्य-

राजकृतोपद्रवे सति दुर्भिक्षादिनोपद्रवे सति गन्तव्यदिशि प्रतिशुक्रदोषो नास्ति। करपीडने विवाहोद्देशेन यात्रायां सत्याम्। विबुधा देवास्तेषां यात्रा। यथा नगरकोटयात्रा देवयात्रा तीर्थयात्रा। प्रयागादिका। तयोः नृपपीडने नृपाद्राज्ञः सकाशात्पीडने पीडायां दण्डादिकृतायां सत्यां, नववधूप्रवेशने नूतनपरिणीतायाः कन्यायाः भर्तृगृहप्रवेशे, एतेषामन्यतमे सति भार्गवः सम्मुखदोषकृन्नहि। यथाह बादरायणः—

'स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विभ्रमे तथोद्वाहे।
नूतनबध्वा गमने प्रतिशुक्रो नैव दोषकृद्भवति ॥' इति।

नूतनवधूग्रहणादभिगमनं स्त्रीणां प्रतिशुक्रयात्रायां महाद्वेषकृत्। तद्वाक्यं प्रागुक्तम् ॥ ३ ॥

पीताम्बरा—सम्मुख दक्षिण शुक्र का परिहार—एक नगर या स्थान से अन्य नगर प्रवेश के समय, देश में आपत्कालीन स्थिति में आवश्यक देश परिवर्तन, विवाह में (बारात रूप में), देवतीर्थ यात्रा में, राजपीडित होकर स्थान परिवर्तन की स्थिति में तथा नववधू का प्रथम पति गृह-प्रवेश में सम्मुख शुक्र दोषावह नहीं होता ॥ ३ ॥

अथ प्रौढस्त्रीणा द्विरागमने तथा गोत्रपरत्वेन प्रतिशुक्रापवादान्तरमिन्द्रवंशा छन्दसाह—

पित्र्ये गृहे चेत्कुचपुष्पसम्भवः स्त्रीणां न दोषः प्रतिशुक्रसम्भवः।
भृग्वङ्गिरोवत्सवसिष्ठकश्यपात्रीणां भरद्वाजमुनेः कुले तथा ॥ ४ ॥

इति श्रीदैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्तचिन्तामणौ अष्टमं द्विरागमनप्रकरणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

पीयूषधारा—पित्र्ये इति। पितुरिदं पित्र्यं—'वाय्वृतुपित्रुषसो यत्' इति यत्प्रत्ययः। तस्मिन्पित्र्ये गृहे कुचौ स्तनौ पुष्पमृतुः तत्सम्भवः स्यात्तदा स्त्रीणां प्रतिशुक्रसम्भवदोषो नास्ति। उपलक्षणत्वाद्भर्तुः सूर्यगुरुशुद्धिराहित्यसम्भवोऽपि दोषो नास्तीति। तदुक्तं चण्डेश्वरेण—
पित्र्यागारे कुचकुसुमयोः सम्भवो वा यदि स्यात्पत्युः शुद्धिर्न भवति रवेः सम्मुखो वाथ शुक्रः।
तूले लग्ने गुणवति तिथौ चन्द्रताराविशुद्धौ स्त्रीणां यात्रा भवति सफला सेवितुं स्वामिसद्म ॥' इति।

वाशब्दाद्गुरुशुद्धिरपि चेन्न भवतीत्यर्थः।

अथ भृग्वङ्गिरोवत्सवसिष्ठकश्यपात्रिवंशोत्पन्नानां तथा भरद्वाजवंशोत्पन्नानामपि प्रतिशुक्रसम्भवो दोषो नास्ति। यदाह बादरायणः—

'कश्यपेषु वसिष्ठेषु चात्रिभृग्वङ्गिरःसु च। भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुक्रो न दुष्यति। इति।

अयं चापवादो यात्रामात्रसाधारणः न द्विरागमने। एवं सम्मतिवाक्ये विशेषानुक्तेः। एवं प्राक्पद्योक्तोऽपवादो ध्येयः। केचिच्छुभमाहुः यदाह महेश्वरः—

'एतेषां प्रतिशुक्रपातमशुभं ये वत्सभृग्वङ्गिरोभारद्वाजवसिष्ठकश्यपकुलोत्पन्नास्तथाऽत्रेः कुले। देशानां विषयप्लवे च नियतं न स्याद्विवाहे तथा तीर्थानां गमने तथैकनगरे ग्रामे च सौम्यं तथा ॥' इति।

सोमस्यापत्यं सौम्यो बुधः—'सोमाटचण्' इति यण्। बुधसाम्मुख्येऽपि भृग्वादिगोत्रोत्पन्नानामपि तथा यानमशुभं नास्ति। चकाराद्दुर्भिक्षाद्युपद्रवसद्भावेऽन्येषामपि यानमशुभं नास्तीत्यर्थः। तच्चिन्त्यम् मूलवाक्यस्यापवादरूपस्यानुपलम्भात्। किं च यथा साधारण्येन यस्यां

कस्याञ्चिद्दिशि यात्रायां शुक्राधिष्ठितदिङ्निषेधः स च बादरायणादिवाक्यैरपोह्यते तथा बुधसाम्मुख्ये गमननिषेधानुक्ते अपवादस्यानुक्तत्वदर्शनात् । ननु 'प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रतिभौमं गतो नृपः । बलेन शक्रतुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्तते ॥' इति वसिष्ठोक्तिरेव बुधसांमुख्यदोषनिषेध-बाधिकास्तीति । किं च—

'कुजाय वृषभं दद्यात्स्वर्णं दद्याद् बुधाय च । तत्तत्सम्मुखजो दोषस्तत्क्षणादेव नश्यति ॥'

इति बुधसाम्मुख्यदोषनिराकरणार्थापि तदुक्तिरेषास्ति प्रमाणमिति चेत्, सत्यम् 'प्रति-शुक्रं प्रतिबुधम्' इत्यादिवाक्यैर्बुधसाम्मुख्यमपि दोषावहमेवेति प्रतीयते । अत्रार्थवादोप्यभाणि श्रीपतिना–'प्रतीन्दुजं भूमिपतेर्ग्रहस्य नान्ये ग्रहास्त्राणविधौ समर्थाः इति । त्राणं रक्षणम् । नारदेनापि–'प्रतीन्दुजकृतं दोषं हन्तुं शक्ता ग्रहा नहि' इति । तत्र गोत्रादिविषयत्वेन परिहारो योऽभिहितः स शुक्रसाम्मुख्ये । वचनं तु बुधसाम्मुख्ये । अतो गोत्रपरिहारस्तु दोषकरवाक्यान्ते प्रतिशुक्रं न विद्यते इत्युक्तम्, ननु प्रतिशुक्रम्' इत्यादिवाक्योपात्तस्य प्रतिबुधदोषस्याप्ययं परि-हारोऽस्तु । दोषकथनानन्तरमेव तस्याभिधानात् । प्रतिशुक्रपदं तु मुख्यतां सूचयितुमुपात्तम् । तदभिप्रायेण सौम्यस्य तथेति महेश्वरोक्तिः साधीयसीति चेन्न । यद्येषोऽभिमतः स्यात्सौम्यं तथेति चेद्भौमं तथेति वक्तव्यं स्यात् । तच्च नोक्तम् । किञ्च प्रतिशुक्रपदं मुख्यतां सूचयितु-मुपात्तमित्युक्तम्' कुतः शुक्रास्तदोषस्य महत्त्वोक्तेः । तद्विषयकोऽयं गोत्रादिपरिहारः । 'कामं व्रजेद्वा प्रतिशुक्रमस्तं गते च यायान्न जिगीषुरत्र' इति श्रीपत्युक्तेः ।

शुक्रास्तदोषापवादः—

शुक्रास्तदोषस्यापवादो बुधानुकूल्यमपि तेनैव—'अस्तं गतेप्यास्फुजिति प्रयायाद्बुधो यदि स्यादनुकूलवर्ती, इति । अनुकूलवर्ती यातव्यदिशीष्टवर्ती । बुधप्रातिकूल्यं तु महादोषावहम् । एतद्वाक्यं प्रागभिहितम् । परन्तु बुधास्तः समीचीनो वेति कैरपि वचनं युक्तिपदवीं काञ्चिदप्य-धायि । तस्माद्वाचनिकेऽर्थे न युक्तिः प्रभवेदिति । बुधसाम्मुख्ये गोत्रादिपरिहारो न शिरोमणि-पदवीमारोहति । आदिशब्दात्—

'स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विभ्रमे तथोद्वाहे । नूतनवध्वागमने प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति ॥
एकग्रामे पुरे वापि दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे । विवाहे तीर्थयात्रायां प्रतिशुक्रो न दुष्यति ॥' इति ।

तुल्यन्यायत्वाद्भौमसाम्मुख्येऽपि न । वसिष्ठऋषिवचनेऽभावात् । किन्तु शुक्रसाम्मुख्य एव स परिहारः सर्वोऽपि सर्वेषां यात्रामात्रसाधारणः । परन्तु शिशुगर्भिणीनववधूनाम् । 'अस्तं-गते भृगोः पुत्रे' इत्यादिना बादरायणादिवाक्यात्तु विशेषफलावगतिमात्रम् । तत्रैषां शिश्वादीनां बुधसामुख्यविचारस्तु दूरापास्त एवेत्यलमतिप्रसङ्गेनेति शिवम् ॥ ४ ॥

द्विरागमनप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—इति श्रीदैवज्ञेति । स्पष्टार्थम्—

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्त्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे व्याख्याने पुनरागमप्रकरणं सम्पूर्तिभागात्किल ॥१॥

इति श्रीविद्वद्दैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्विद्विरचितायां मुहूर्त्तचिन्ता-मणिटीकायां पीयूषधाराभिधायामष्टमं द्विरागमनप्रकरणं समाप्तिमगमत् ॥ ८ ॥

पीताम्बरा—प्रौढ़स्त्रियों के द्विरागम तथा गोत्रपरत्वेन सम्मुख प्रतिशुक्र का अपवाद— यदि दैवात् पिता के घर में स्त्री के स्तन चिह्न उत्पन्न हो और रजोदर्शन हो जाय तो पतिघर जाने के लिए सम्मुख शुक्र का दोष नहीं होता। तथा भृगु, अङ्गिरा वत्स, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि और भरद्वाज ऋषियों के गोत्रजों के लिए सम्मुख शुक्रदोष नहीं होता है। यह अपवाद किसी भी यात्रा मात्र के लिए उपयुक्त होता है। द्विरागम में तो प्रतिशुक्र विचार सभी गोत्रजों के लिए आवश्यक होगा।

इति कूर्माञ्चलीय जुनायल ग्रामज पर्वतीय श्री हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज श्री केदारदत्त जोशी कृत मुहूर्तचिन्तामणि द्विरागमन प्रकरण की पीयूषधारा टीका की पीताम्बरा हिन्दी व्याख्या सम्पन्न ॥ ८ ॥

अथाग्न्याधानप्रकरणम् ॥ ९ ॥

गणनायकमाराध्य नीलकण्ठं गुरुं तथा। अग्निहोत्रप्रकरणं व्याख्याति विदुषा मुदे ॥१॥

अथाग्न्याधानप्रकरण व्याख्यायते। तत्राग्निर्धीयते श्रौतेन स्मार्तेन वा कर्मविशेषेणेत्यग्न्याधानम्। तत्र प्रवदन्ते। केचित्पाणिग्रहणसमये एव अग्न्याधानमाहुः।

अपरे पित्रा भ्रातृभिः सह विभागकाले एवाहुः। उक्तं च। श्रुतौ—'आवसथ्याधानं दारकाले दायाद्यकाले एकेषाम्' इति पारस्करः। दायाद्यकाले विभागकाले। एतदेवाभिप्रेत्योक्तं महेश्वरेण—'अग्न्याधानं दारकाले विधेयं कैश्चित्प्रोक्तं तच्च दायाद्यकाले' इति।

अन्ये वसन्ताद्यृतुपुरस्सरेण वर्णविशेषानाहुः तदुक्तं श्रुतौ—'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत ग्रीष्मे राजन्यः शरदि वैश्यो वर्षासु रथकार आदधीत' इति।

इतरे तु श्रद्धोदये एवाहुः। एतदप्युक्तं श्रुतौ—'यदहरेवैनं श्रद्धोपरमेत्तदहरेवादध्यात्' इति। एतच्च सोमाग्न्याधानविषयम्। यदाह आपस्तम्बः 'सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं प्रतीच्छेन्न नक्षत्रम्' इति।

तत्र पाणिग्रहणकालस्य प्रागुक्तत्वात्तत्क्षणादारभ्यमाणाग्न्याधानार्थं न मुहूर्तगवेषणा। एवं पित्रादिभिः सह यस्मिन्काले विभागो जातः तस्मिन्यथाकथञ्चिद्व्यतीपातभद्रादिदोषरहिते आधानं कार्यमेव। तदा उत्तरायणादिकालशुद्धेर्नपेक्षा। तत्रापि यदि प्रतिबन्धवशादाधानाभावो जातस्तदा कालशुद्धिर्वक्ष्यमाणविषया विचार्यैव। अथैषां वर्णानां वसन्ताद्यृतवः सोमयागाद्यर्थं नियता एवोक्तास्तेषां यद्यप्युत्तरायणविचारो नास्ति। सम्भव्यभिचाराभावात्। तथापि शुक्रास्तादिदोषनिवारणार्थं मुहूर्तो गवेष्य एव। येषां तु श्रद्धोदये एवाधानमिति पक्षस्तेषां सोमाधानकालः श्रद्धोदय एवेति यथाकथञ्चित्पञ्चाङ्गशुद्धिःविचार्या नतु नक्षत्रादिप्रतीक्षा वारादेर्वा। 'वाजपेयेन यजेत्' इति वाजपेयादीनां यागविशेषाणां शरदाद्यृतुविशेषविहितानामपि सौम्यायनप्रतीक्षामकृत्वा शुक्रास्तादिदोषराहित्यं विचार्यम्।

तदयमत्र निर्णयः सम्पन्नः। तत्र तु कालनियमेनाधानादि विहित तदा न मुहूर्तविचारः। यदा तु कालनियमाभावस्तदा मुहूर्तो विचार्यं एवेत्यभिसन्धायाग्न्याधानसोमयागादिमुहूर्तं वसन्ततिलकावृत्तेनाह—

स्यादग्निहोत्रविधिरुत्तरगे दिनेशे मिश्रध्रुवान्त्यशशिशक्रसुरेज्यधिष्ण्ये ।
रिक्तासु नो शशिकुजेज्यभृगौ न नीचे नास्तङ्गते न विजिते न च शत्रुगेहे ॥ १ ॥

पीयूषधारा—स्यादिति । उत्तरगे उत्तरायणगते उत्तरदिग्गते दिनेशे सूर्ये अग्निहोत्रविधिः स्यात् । यदाह नारदः–'गृहप्रवेशवैवाहप्रतिष्ठामौञ्जिबन्धनम् । मखादिमङ्गलं कर्म विधेयं चोत्तरायणे ॥' इति । मखस्याग्निहोत्रपूर्वकत्वात्तदारम्भोऽपि । विवाह एव वैवाहः । स्वार्थे अण् । प्रतिष्ठा देवतादिप्रतिष्ठा । मिश्रे कृत्तिकाविशाखे, ध्रुवाणि प्रसिद्धानि, अन्त्यं रेवती, शशी मृगः, शक्रो ज्येष्ठा, सुरेज्यः पुष्यः, एतेषामन्यतमेषु ऋक्षेषु अग्निहोत्रविधिः स्यात् । यदाह श्रीपतिः—

'प्राजापत्ये पूषभे सद्विदैवे पुष्ये ज्येष्ठास्वैन्दवे कृत्तिकासु ।
अग्न्याधानं ह्युत्तराणां त्रयेऽपि श्रेष्ठं प्रोक्तं प्राग्जनैर्विप्रमुख्यैः ॥' इति ।

अग्न्याधाने निषिद्धकालाः—

रिक्तास्विति । रिक्ताश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः, आसु अग्न्याधानं नो कार्यम् । तदुक्तं दीपिकायाम्—'पुष्योत्तराविशाखासु ज्येष्ठान्त्याग्निकचन्द्रभे । अग्न्याधानमरिक्तासु कार्यं वा देवजेऽह्नि ॥' इति ।

को रोहिणो शशीति । चन्द्रमङ्गलगुरुशुक्रेषु नीचगतेषु तथास्तङ्गतेषु तथा ग्रहान्तरैर्विजितेषु तथा शत्रुगृहस्थितेषु अग्न्याधानं नो कार्यम् । उक्तं च रत्नमालायाम्—

'कुजेन्दुजीवैं रिपुराशिसंस्थैः पराजितैर्नीचगृहोपगैर्वा ।
अस्तङ्गतैर्वाग्निपरिग्रहं यः करोति हास्यं विदुषां स याति ॥' इति ।

कश्यपस्तु शुक्रदोषमप्याह अत एव मूलपद्ये चतुर्णामभिधानम् ॥ १ ॥

पीताम्बरा—अग्नि आधान मुहूर्त—नित्य अग्निहोत्र कर्म के लिए कुछ आचार्य अग्न्याधान मुहूर्त विवाह के समय में मानते हैं । पिता के हाथो, भाइयों में सम्पत्ति विभाजन के समय अग्नि आधान करना मुख्य पक्ष है । कुछ आचार्यों का मत है कि जिस समय जिसको श्रद्धा उत्पन्न हो उसी समय अग्नि आधान करना चाहिए ।

विवाह के समय किए गए अग्न्याधान के लिए मुहूर्त की आवश्यकता नहीं है । सम्पति विभाजन के समय के अग्नि आधान में शुभतिथिवारादि अवश्य होने चाहिए । वर्ण क्रम से सोम याग के लिए वसन्तादि शरद आदिक ऋतुओं में अग्न्याधान काल विहित होने से उत्तरायण सूर्यादिक विचार भी अपेक्षित नहीं होता है । जहाँ अग्नि आधान का कालनियम है वहाँ मुहूर्त विचार आवश्यक नहीं है । (फिर भी शुभदिनादि होने ही चाहिए) जहाँ कालनियम आवश्यक नहीं हैं वहाँ अग्नि आधान के लिए मुहूर्त आवश्यक है ।

वह मुहूर्त इस प्रकार है । उत्तरायण के सूर्य मे रिक्ता वर्जित शेष तिथियों में मिश्र ध्रुव रेवती मृगशिरा ज्येष्ठा पुष्य नक्षत्रों में, चन्द्र मंगल गुरु और शुक्र ग्रह जिस समय शत्रु नीच राशियों में न हों, अस्त भी न हों और युद्ध में पराजित भी न हों उस समय का अग्न्याधान मुहूर्त शुभ होता है ॥ १ ॥

अथाग्न्याधाने लग्नशुद्धिं वसन्ततिलकयाह—

नो कर्कनक्रझषकुम्भनवांशलग्ने नोऽब्जे तनौ रविशशीज्यकुजे त्रिकोणे।
केन्द्रर्क्षषड्भवनगे च परैस्त्रिलाभ-षट्खस्थितैर्निधनशुद्धियुते विलग्ने ॥ २ ॥

पीयूषधारा—नो कर्केति। कर्कः प्रसिद्धः, नक्रो मकरः, झषो मीनः, कुम्भः प्रसिद्धः, एतेषामन्यतमे लग्ने नवांशे वा अग्न्याधानं नो कार्यम्—

अग्न्याधानलग्ने निषिद्धा ग्रहाः—

तथा अब्जे चन्द्रे तनौ लग्नस्थे सति चाग्न्याधानं न कार्यम्। तथा चोक्तं श्रीपतिना—

'नक्रे विलग्नेऽम्बुचरे घटे वा तदंशके वाप्यथवा शशांके।
आधानकालो द्विजपुङ्गवानां जातेऽपि निर्वाणमुपैति सिद्धिम् ॥' इति।
ये नवांशकाद्यास्तेषामम्बुचरत्वाभावात्पृथग्ग्रहणम्।

मतान्तरं लग्ने चन्द्रे शुक्रे वा—

वराहस्तु नैतन्मन्यते। मकरस्य पश्चिमार्धं कुम्भो मीनः कर्क इति जलचरे इति। अत एवैतद्दूषणभयान्नाप्युक्तं महेश्वरेण—

'कर्कनक्रघटमीनविलग्ने वा गते तनुगतेऽथ तदीये।
लग्नगे कुमुदिनीदयिते वा नाशमेति जनितोऽपि हुताशः ॥' इति।

लग्नगचन्द्रस्योपलक्षणत्वाच्छुक्रोऽपि लग्ने निषिद्धः। यदाह कश्यपः—
'यस्यैवाधानलग्नस्थे चन्द्रे वा भृगुनन्दने। उपैति तस्य जातोऽग्निर्निर्वाणं सततं ज्वलन् ॥' इति।

आधानेऽनुकूलग्रहस्थित्यादयः—

रवीति। सूर्यचन्द्रगुरुभौमेषु त्रिकोणस्थितेषु सत्सु परैर्बुधशुक्रशनिराहुकेतुभिस्त्रिलाभ-षट्खस्थितैस्तृतीयैकादशषष्ठदशमस्थानस्थितैः सद्भिराधानं हितं स्यात्। यदाह श्रीपतिः—

'त्रिकोणकेन्द्रोपचयेषु सूर्ये बृहस्पतौ शीतकरे कुजे वा।
शेषग्रहेषूपचयस्थितेषु धूमध्वजोत्पादनमामनन्ति ॥' इति।
धूमध्वजोऽग्निः निर्घातस्थे केचिदाहुः अग्न्याधानम्।

आधानलग्नादष्टमशुद्धिरावश्यकी—

निधनशुद्धियुते अष्टमस्थाने सकलग्रहराहित्यं निधनशुद्धिः तथा युते सत्याधानं शुभम्। तस्मादष्टमस्थाने यः कश्चिद्ग्रहः स्यात् तदाऽशुभमेव। उक्तं च श्रीपतिना—'चन्द्रे पत्नी मृत्युगे मृत्युमेति क्षिप्रं वह्न्याधायको याजमानः।' धाधातोः 'ण्वुल्तृचौ इति ण्वुल्। 'आतो युक्चिण्कृतोः' इति युगागमः अन्ये त्वेवमाहुः। निधनमष्टमलग्नम् कस्मान्निधनमित्याकाङ्क्षायामाधानकर्तुर्जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यामष्टमं लग्नमित्यर्थः। तस्य शुद्धिः राहित्यम्। तदभाव इति यावत्, तेन युते लग्ने इति यदाह कश्यपः—

'पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे चन्द्रताराबलान्विते। चन्द्रे शुद्धियुते लग्नं चाष्टमोदयवर्जिते ॥' इति।

अत्र व्याख्याद्वये प्रमाणसद्भावाद्द्वयमपि युक्तमिति वयमुत्पश्यामः। तत्र निधनशुद्धिश्च निधनशुद्धिश्च ताभ्यां युते लग्ने इति मूलस्थस्य निधनशुद्धिपदस्य—'सरूपाणामेकशेष एक-

विभक्तौ' इत्येकशेषः। यथा अन्वर्था भ्वादयः स्मृता इति तृतीयपक्षव्याख्यानावसरे भ्वादयश्चेति तन्त्रावृत्त्येकशेषाणामन्यतमाश्रयणेन पदमञ्जरीकारादिभिर्भ्वादीनान्धातुत्वमुक्तम् ॥ २ ॥

पीताम्बरा—अग्न्याधान में लग्न शुद्धि—कर्क-मकर-मीन-कुम्भ राशियों में किसी एक के लग्न और नवांश में तथा लग्नस्थित चन्द्रमा के समय अग्न्याधान शुभ नहीं होता है।

लग्न से अष्टम भवन की शुद्धि के समय रवि-चन्द्र-बृहस्पति और मंगल केन्द्र त्रिकोण और ३, ६, ११ में हों और बुध, शुक्र, शनि, राहु और केतु ३, ६, १०, ११ वें होने पर अग्न्याधान शुभ होता है ॥ २ ॥

अथाग्निहोत्रेण आधानलग्नवशाद्यागकर्तृत्वयोगाननुष्टुभाह—

चापे जीवे तनुस्थे वा मेषे भौमेऽम्बरे द्युने।
षट्त्र्यायेऽब्जे रवौ वा स्याज्जाताग्निर्यजति ध्रुवम् ॥ ३ ॥

इति श्रीदैवज्ञानन्तसूनुदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्त्त-चिन्तामणौ।
नवममग्न्याधानप्रकरणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

पीयूषधारा—चापे इति। जीवे गुरौ चापस्थे धनुःसंस्थे सति तनुस्थे आधानलग्ने धनुराख्ये गुर्वधिष्ठिते सतीत्यर्थः। अयमेको योगः वा अथवा भौमे मेषलग्ने सति अयं द्वितीयो योगः। वा अथवा आधानलग्नस्थानस्थ सप्तमस्थानस्थे भौमे सति योगद्वयमेतत्। अथवा अब्जे चन्द्रे षष्ठे तृतीयैकादशस्थानान्यतमस्थानस्थे योगत्रयमेतत्। अथवा सूर्ये षष्ठतृतीयैकादशान्यतमस्थानस्थे सति योगत्रयमप्येतत्।

शुद्धलग्ने कृताधानस्य फलम्—

एवंविधे लग्ने जाताग्निः अग्निहोत्रकर्ता स्यात् भवेत्स ध्रुवं निश्चयेन यजति ज्योतिष्टोमादियागं करोतीत्यर्थः। उक्तं च श्रीपतिना—

लग्नस्थे धनुषि गुरावथ क्रिये वा भूसुनौ दशमगतेऽथ सप्तमे वा।
तिग्मांशौ सहजषडायगे विधौ वा जाताग्निर्यजति न संशयं द्विजेन्द्रः ॥' इति।

मतान्तररीत्या फलम्—यागपदार्थश्च—

केचिदेवमाहुः ध्रुवं निश्चितं निरन्तरमिति यावत् यजति देवतोद्देशनावदानत्यागो यागस्तं करोति। निरन्तरमग्निहोत्रकर्मकर इत्यर्थः।

यदाह कश्यपः—'लग्नस्थे चापगे जीवे मेषे वा सप्तकर्मगे।
कुजेऽर्के त्रिषडायस्थे चन्द्रे वाग्निर्ज्वलत्यलम् ॥' इति ॥ ३ ॥

अथाग्निहोत्रप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—इति श्रीदैवज्ञेति। स्पष्टार्थमेतत्।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्तचिन्तामणेः।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे व्याख्यानेऽग्निपरिग्रहप्रकरणं सम्पूर्णतामभ्यगात् ॥ १ ॥

इति श्रीदैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां
मुहूर्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायामग्न्याधानप्रकरणं
समाप्तिमगमत् ॥ ९ ॥

पीताम्बरा—अग्नि आधान मुहूर्त के अनुसार शुभ फल—धनू राशि का बृहस्पति या मेष राशिस्थ मंगल लग्न में हो अथवा लग्न से मंगल १० वें या ७ वें हो अथवा ३, ६, ११ में चन्द्रमा वा सूर्य हों तो अग्निहोत्र कर्ता दीर्घ समय तक ज्योतिष्टोमादि याग करता है ॥३॥

इति अल्मोड़ा मण्डलान्तर्गतजुनायल ग्रामज पर्वतीय १०८ श्री पं० हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज
श्रीकेदारदत्त जोशी कृत मुहूर्त चिन्तामणि अग्न्याधान प्रकरण की
पीयूषधारा की पीताम्बरा हिन्दी व्याख्या सम्पन्न ॥ ९ ॥

अथ राजाभिषेकप्रकरणम् ॥ १० ॥

गौरीतनयमाराध्य गोविन्देन सतां मुदे ।
राजाभिषेचनाध्यायः सम्यग्व्याख्यायतेऽधुना ॥ १ ॥

अथ राजाभिषेकप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र वैदिकेनाभिषेकाख्येन विशिष्टकर्मणा राजशब्दवाच्यपुरुषस्य संस्कारविशेषो राजाभिषेकशब्देनोच्यते । तत्र चैतन्मुहूर्त्तं वक्तुकामः कालशुद्धिं तावदिद्रवज्रयाह ।

राजाभिषेकः शुभ उत्तरायणे गुर्विन्दुशुक्रैरुदितैर्बलान्वितैः ।
भौमार्कलग्नेशदशेशजन्मपैर्नो चैत्ररिक्तारनिशाम्लिम्लुचे ॥ १ ॥

पीयूषधारा—राजाभिषेक इति । उत्तरायणगते सूर्ये सति तथा गुर्विन्दुशुक्रैरुदितैर्बलान्वितैः बृहस्पतिचन्द्रशुक्रैरुदितैः सद्भिः भौमसूर्यलग्नेशदशेशजन्मलग्नस्वामिभिः बलान्वितैः सद्भी—राज्ञोऽभिषेकः शुभः शुभफलप्रदः स्यात् । यदाह कश्यपः—

'अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भूतानामभिषेचनम् । सौम्यायने सिते जीवे नास्तगे नच हृद्धगे ॥'इति ।

ननु 'गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठा' इत्यादिना प्राग्दक्षिणायननिषेधस्योक्तत्वादेव शास्तानां प्रयोज्यादीनां च गुरुशुक्रास्तादिदोषरहिते काले भूपाभिषेको ज्ञास्यत एव किमनेन पुनरुक्तग्रन्थेन । न च काश्यपादिभिरुक्तमिति कृत्वोक्तमिति वाच्यम् । तैस्तु सामान्यप्रकरणस्याकृतत्वात् । किन्तु तत्कृत्ये विशेषाभिधानमेव कृतम्, उच्यते 'गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठा' इत्यादिना 'वाप्यारामतडाग' इत्यादिना च सामान्यत एव कृत्येषु दोषराहित्यमुक्तम् । तत्र कस्यचिदेव भ्रान्तिः स्यात् । यदि दक्षिणायने शुक्रास्तादिदोषरहिते शुभं कर्म वाप्यारामादि कार्यं शुक्रास्तादिदोषरहितोत्तरायणेऽपि कार्यमिति सन्देहस्तन्निरासार्थमाह–राजाभिषेकः शुभ उत्तरायणे गुर्विन्दुशुक्रैरुदितैर्बलान्वितैः' इति । 'सिंहस्थं मकरस्थं च गुरुं यत्नेन वर्जयेत्' इत्यादिदोषाणां 'मगधे गौडदेशे इत्यादि देशभेदकृत परिहारस्य स्ववचनत्वादिति तेषां पुनरुक्तिः । ननु

'सदा कृतयुगं चात्र सदा चैत्रोत्तरायणम् । न ग्रहास्तोदयकृतो दोषो विश्वेश्वरालये ॥'

इत्यादिभिर्व्यासवाक्यैः शुक्रास्तादिदोषसहिते उत्तरायणेऽपि कार्यमिति तन्निरासार्थमाह—'राजाभिषेकः शुभ उत्तरायणे गुर्विन्दुशुक्रैरुदितैर्बलान्वितैः ।' इति । 'सिंहस्थं मकरस्थं च गुरुं

यत्नेन 'वर्जयेत्' इत्यादिदोषाणामपि वाराणस्यादिदेशभेदेन परिहार्यत्वात् किमित्युक्तिरिति काशिखण्डे तीर्थयात्राप्रस्तावात्तद्विषय एवापवादस्तेन वाराणस्यादावल्पदिनस्थास्नोः पुनरखिलदोषराहित्ये एव स्युः । न तु मकरस्थगुर्वादौ मगधदेशहानार्थमेव कर्तव्यावश्य पुनरुक्तिः, सत्यम्, नक्तेत्येव । वस्तुतस्तु दोषाविस्मरणार्थमेवेयं पुनरुक्तिः । न चैतावद्दोषहानार्थमेवावश्यकम् । विवाहप्रकरणोक्तानां वेधादिदोषाणामपि निरासस्यावश्यकत्वाद् । उक्तं च वसिष्ठेन—'तस्मादेतेषु दोषेषु कदाचिन्नाचरेच्छुभम्' इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

राजाभिषेकलग्नरीत्या ग्रहबलानि—

बलान्वितैः बलं सद्ग्रहाधिष्ठितत्वं तेतान्वितैः गुर्विन्दुशक्रैः सद्भीराजाभिषेकः शुभः । उक्त च च वसिष्ठेन—

'मूलत्रिकोणस्वगृहोच्चमित्रगृहस्थितैर्वापि तदंशसंस्थैः ।
शुभे विलग्ने सततं ग्रहेन्द्रा दिशन्ति लक्ष्मीं विपुलां च कीर्तिम् ।।' इति ।

अर्थान्निर्बल्यैर्गृहाणामशुभं स्यात् । तदप्युक्तं तेनैव—

'स्वनीचगैः शत्रुगृहस्थितैश्च तदंशसंस्थैः स्वगृहोपगैर्वा ।
पापोदये शोकभयं स्वकीर्ति दिशन्ति राज्ञां भृशमन्तरायम् ।।' इति ।

राज्ञः जन्मकालग्रहबलमभिषेककाले—

भौमेति । भौमार्कौ प्रसिद्धौ, लग्नेशौ जन्मलग्नस्वामिनौ दशेशौ वर्तमानजातकीयमहादशान्तर्दशास्वामिनौ जन्मपो जन्मराशिस्वामी एतैरपि बलान्वितैः सद्भिः राजाभिषेकः शुभः । बलान्वितत्वमधुना व्याकृतमेव । यदाह वसिष्ठः—

'आधानजन्मेशदशाधिनाथरवीन्दुभौमेज्यसितैर्बलिष्ठैः ।
उत्पातदोषादिविवर्जितेषु पदं स्थिरं स्याच्च नराधिपानाम् ।।' इति ।

आधानं जन्मलग्नजन्मराशी अनयोरीशावाधानजन्ममेशौ ।

यदाह श्रीपतिः—

'विलग्नजन्मेशदशाधिनाथमार्तण्डधात्रीतनयैर्बलिष्ठैः ।
गुर्विन्दुशुक्रैः स्फुरदंशुजालैर्महीपतीनामभिषेक इष्टः ।।'

राजाभिषेके मासतिथ्यादयः ऋते बुधममां च ।

नो चैत्र इति । चैत्राख्यो मासः, रिक्ताः ४।९।१४ तिथयः प्रसिद्धाः आरो भौमवारः, निशा रात्रिः मलिम्लुचोऽधिकमासः एषु राजाभिषेको न शुभः । यदाह चण्डेश्वरः—

'नाभिषेकः शुभो वाच्यो नृपे चैत्रेऽधिमासके । न भूसुते प्रसुप्ते च विष्णौ रिक्तासु रात्रिषु ।।'

वसिष्ठेन बुधवारस्यामावास्यायाश्च निषेध उक्तः । स यथा—

'रिक्तास्वमायां बुधभौमवारविवर्जिते वारदिनेषु चैव ।
खले दिने ऋक्षनिशे तथैव न नैधने भे त्वभिषेक इष्टः ।।' इति ।

यत्तु भीमपराक्रमेणोक्तम्—

'राजाभिषेको हयदुष्टदन्तिसेतुच्छिदानां कृषिकर्मणां च।
वादस्य च क्ष्मातनयस्य वारे प्रारम्भसिद्धिं मुनयो वदन्ति ॥' इति।

अत्र भौमवारे राजाभिषेकविधानं सेनापत्यभिषेकविषयं द्रष्टव्यम्। भौमस्य सेनापतित्वात्। 'राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो मन्त्री' इति वराहोक्तत्वात्। अन्यथा वसिष्ठचण्डेश्वरोक्तौ भौमनिषेधो निर्विषयः स्यात्।

मृते राजनि तत्पुत्रस्य राज्याभिषेके न कालप्रतीक्षा कार्या—

यत्तु रत्नमालायाम्—'मन्त्रौषधानि शकुनौ च सपौष्टिकानि गोविप्रराजपितृकर्मचतुष्पदे तु' इति अत्र हि चतुष्पदाख्ये करणे राज्यं कर्तव्यमित्युक्तम्। तच्चामावास्यायामवश्यं भवत्येवेत्युक्तं श्रीपतिवाक्यं प्रतिभाति। उच्यते। जीर्णराजमरणे सञ्जाते पुत्रादेः शीघ्रमेवाखिलदोषनिरासपूर्वकशुभमुहूर्तालब्धौ कालान्तरप्रतीक्षायां च द्विषदादिभिः सर्वनाशः कृतः स्यादित्येवंविषयेऽपि चतुष्पदकरणे पुत्रादिरभिषेक्तव्य एवेत्येतत्परं व्याख्यानमिति युक्तं प्रतीमः उक्तं च दैवज्ञमनोहरे—

'मृते राज्ञि न कालस्य नियमोऽत्र विधीयते।
नृपाभिषेकः कर्तव्यो दैवज्ञेन पुरोधसा ॥' इति ॥ १ ॥

पीताम्बरा—राजा का अभिषेक मुहूर्त—विशिष्ट वैदिक विधि से किया गया राजपुत्र के अभिषेक का नाम राजाभिषेक है। उत्तरायण के सूर्य में उदित गुरु, चन्द्र, शुक्र बलवान् हों, साथ ही मंगल, सूर्य, लग्नेश, दशेश और राजकुमार की जन्मराशीश भी बली हों तो ऐसे समय पर राज्याभिषेक कर्म शुभ होता है। राज्याभिषेक के लिए चैत्र मास, रिक्तातिथि, मंगलवार, रात्रि का समय और अधिकमास का निषेध है।

राजा की मृत्यु होने पर राजकुमार के राज्याभिषेक के लिए समय का नियम मुहूर्त आदि शोधन आवश्यक नही हैं: राजा की मृत्यु के साथ ही राजकुमार का जो स्वभावतः राज्य का उत्तराधिकारी है अविलम्ब अभिषेक करना चाहिए। जिससे राष्ट्र में विप्लव की सम्भावना न हो सके ॥ १ ॥

अथ राजाभिषेकनक्षत्राणि लग्नशुद्धिं च इन्द्रवंशयाह—

शाक्रश्रवः क्षिप्रमृदुध्रुवोडुभिः शीर्षोदये वोपचये शुभे तनौ।
पापैस्त्रिषष्ठायगतैः शुभग्रहैः केन्द्रत्रिकोणायधनत्रिसंस्थितैः ॥ २ ॥

पीयूषधारा—शाक्रेति। शाक्रं ज्येष्ठा, श्रवः श्रवणः क्षिप्राणि अश्विनीपुष्यहस्ताः, मृदूनि मृगचित्रानुराधारेवत्यः, ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयं च, एतैरुडुभिः सद्भिः राजाभिषेकः शुभः। यदाह कश्यपः—'उत्तरात्रयमैत्रैन्द्रधातृचन्द्रकरोडुषु। सश्रुत्यश्वीज्यपौष्णेषु कुर्याद्राजाभिषेचनम् ॥' इति। ऐन्द्रं ज्येष्ठा, अत्र वाक्ये द्वादश ग्रन्थकृद्वाक्ये त्रयोदश चित्रैकाधिका। सा च महेश्वरवाक्यालोचनेन। यथा 'तथा श्रवः क्षिप्रमृदुध्रुवेषु सौम्यग्रहस्याह्नि तिथावरिक्ते' इति। नात्र प्रमाणं पश्यामः। रत्नमालावाक्यं भविष्यतीति चेन्न।

'मैत्रशाक्रकरपुष्यरोहिणीवैष्णवेषु तिसृषूत्तरासु च ।
रेवतीमृगशिरोऽश्विनीषु च क्ष्माभृतां समभिषेक इष्यते ।।' इति ।।

चण्डेश्वरोऽपि—'मैत्रं शाक्रं श्रवणः पुष्यं त्रीण्युत्तराणि चाश्विकरैः । पौष्णं प्राजापत्यं मृगशिर' इति । तस्माच्चित्राग्रहणं निर्मूलम् ।

राजाभिषेके लग्नानि शीर्षोदयपदार्थश्च—

शीर्षोदय इति । शीर्षोदया मिथुनसिंहकन्यातुलावृश्चिककुम्भाख्याः । यदाह वराहः—

'गोजाश्विकर्किमिथुनाः समृगा निशाख्याः पृष्ठोदयाः विमिथुनाः कथितास्त एव ।
शीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति शेषा लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम् ।।' इति ।

एषु शीर्षोदयराशिषु अभिषेकलग्ने वा अथवा उपचये विशेषानुक्तेः । स्वजन्मलग्नात्स्वजन्मराशितो वोपचयभवने त्रिषडेकादशभानामन्यतमे तनौ लग्नगे वा सति शुभे शुभग्रहाक्रान्ते शुभग्रहेक्षिते वा राजाभिषेकः शुभः । यदाह वसिष्ठः—

'शीर्षोदये चोपचये ग्रहे वा स्वजन्मलग्नादथ लग्नगेऽपि ।
शुभग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते वा स्थिरं पदं स्यात्सततं हि राज्ञाम् ।।' इति ।

अपिशब्दात्स्वजन्मराशेरप्युपचयभवनं ग्राह्यम् । यदाह कश्यपः—

'जन्मराशेरुपचये लग्ने शीर्षोदये स्थिरे । शुभग्रहेक्षितयुते नृपाणां नेक्षिते परैः ।।' इति ।

तथैव ग्रहाः शुभाः—

परैः पापग्रहैस्तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थितैः शुभग्रहैः प्रथमचतुर्थसप्तमदशमनवपञ्चमैकादशद्वितीयतृतीयस्थानस्थितैः राजाभिषेकः शुभदः । यदाह वसिष्ठः—

'त्रिकोणकेन्द्रत्रिधनेषु सौम्यैस्त्रिषष्ठलाभक्षगतैश्च पापैः ।
षष्ठाष्टलग्नव्ययवर्जितेन चन्द्रेण राज्ञां शुभदोऽभिषेकः ।।' इति ।। २ ।।

पीताम्बरा—राजाभिषेक में नक्षत्र और लग्न शुद्धि—ज्येष्ठा, श्रवण, क्षिप्र-मृदु ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में, केन्द्र त्रिकोण और २, ३, ११ में शुभग्रह और ३, ६, ११ में पापग्रह हों, शीर्षोदय लग्न (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ) या जन्मलग्न जन्म राशि से ३, ६, ११ वीं राशियाँ लग्न गत हों तो राज्याभिषेक शुभ होता है ।। २ ।।

अथ स्थानविशेषे पापग्रहैरशुभं फलं सापवादं इन्द्रवंशयाह—

पापैस्तनौ रुङ्निधने मृतिः सुते पुत्रार्तिरर्थव्ययगैर्दरिद्रता ।
स्यात्खेऽलसो भ्रष्टपदो द्यु नाम्बुगैः सर्वं शुभं केन्द्रगतैः शुभग्रहैः ।। ३ ।।

पीयूषधारा—पापैरिति । तनौ लग्ने पापग्रहैः रुक् रोगः स्यात् । राज्ञ इति शेषः । निधने अष्टमस्थाने पापग्रहैः मृतिः (मृत्युः) स्यात् । सुते पञ्चमस्थाने पापग्रहैः पुत्रार्तिः पुत्रजनितपीडा स्यात् । अर्थव्ययगैः द्वितीयद्वादशस्थानस्थितैः पापैः दरिद्रता द्रारिद्र्यं स्यात् । खे दशमे पापग्रहैः अलसो निरुद्योगः द्युनाम्बुगैः सप्तमचतुर्थस्थानस्थितैः पापग्रहैर्भ्रष्टपदो भ्रष्टैश्वर्यः स्यात् । उपलक्षणत्वात् षष्ठाष्टमद्वादशस्थानस्थितश्चन्द्रोऽपि मृत्युदः । यदाह वसिष्ठः—'पाप-

ग्रहैः स्वान्त्यगतैश्च निःस्वो रोगविलग्नोपगतैर्भवेत्सः। पदच्युतः सप्तचतुर्थगैस्तु पुत्रस्थितैः सर्वसुतैर्विहीनः ॥' इति। 'नूनं व्ययाष्टारिगतः शशाङ्कः क्षितीश्वरं हन्ति तदा बलिष्ठः' इति बलिष्ठशब्दोपादानान्निर्बलश्चन्द्रः व्यायाष्टमषष्ठगतो न दुष्टफलद इति तात्पर्यम्। अपवादमाह—सर्वमिति। केन्द्रगतैः शुभग्रहैः सर्वं प्रागुक्तं दुष्टफलं शुभं शुभोदर्कं स्यात् ॥ ३ ॥

पीताम्बरा—सपरिहार लग्न फल—लग्न में पाप ग्रह से राजा को रोग, अष्टम में पापग्रह से मृत्यु, पञ्चम में पापग्रह से राजपुत्र जनित चिन्ता (पीड़ा) द्वितीय दशमगत पाप ग्रहों और राजा के अभिषेक लग्न से चतुर्थ सप्तम स्थान स्थित पापग्रहों से राजा भ्रष्टपद अधिकार शून्य हो जाता है ॥ ३ ॥

अथाभिषेके राज्ञः सम्पत्स्थैर्यकर्तृयोगद्वयं भुजङ्गप्रयातेनाह—

गुरुर्लग्नकोणे कुजोऽरौ सितः खे स राजा सदा मोदते राजलक्ष्म्या।
तृतीयायगौ सौरिसूर्यौ खबन्ध्वोर्गुरुश्चेद्धरित्री स्थिरा स्यान्नृपस्य ॥ ४ ॥

इति श्रीदैवज्ञानन्ततनूजदैवज्ञरामसूरिविरचितमुहूर्तचिन्तामणौ दशमं राजाभिषेकप्रकरणम् ॥ १० ॥

पीयूषधारा—गुरुरिति। लग्ने गुरुश्चेत्स्यादथवा कोणे नवमे पञ्चमे वा गुरुः स्यात्, कुजो मङ्गलोऽरौ शत्रुगृहे षष्ठे स्यात्, सितः शुक्रः कर्मगो दशमगः स्यात् एतादृशे अभिषेकयोगे यो राजा अभिषिच्यते स राजा सर्वदा सर्वकालं राजलक्ष्म्या मोदते। अयमेको योगः। यदाह वसिष्ठः—

'यस्याभिषेके पुरुहूतमन्त्री लग्ने त्रिकोणे यदि वा भवेत्सः।
षष्ठः कुजः कर्मगतश्च शुक्रः स मोदते विक्रमराजलक्ष्म्या ॥' इति।

अथापरो योगः—

सौरिसूर्यौ तृतीयायगौ स्यातां यथासंख्यं शनिस्तृतीये, सूर्यः रविः एकादशे स्यात्, गुरुः खबन्ध्वोः खे दशमे बन्धौ चतुर्थे वा चेद्गुरुः स्यात् एवंविधे योगेऽभिषिक्तस्य नृपस्य राज्ञः धरित्री पृथ्वी स्थिरा सदा हस्तगता स्यात्। यदाह कश्यपः—

'त्रिलाभस्थः शनिः सूर्यश्चतुर्थे वाम्बरे गुरुः। यस्याभिषेकः क्रियते तत्र तस्य मही स्थिरा ॥' इति।

श्रीपतिरपि—

'त्रिलाभसंस्थौ शनितिग्मरश्मी मेषूरणे बन्धुगृहे गुरुश्च।
यस्यात्र योगे क्रियतेऽभिषेकः सम्पत्स्थिरा तस्य चिरायुरेषः ॥' इति।

मेषूरणं दशमम् केचित्त्रिलाभारिगौ सौरिसूर्यौ इत्याहुः। अन्यत्समानम्। तृतीयैकादशषष्ठानामन्यतमस्थानद्वये स्थितौ सौरिसूर्यौ स्यातामित्यर्थः। एतदपि युक्तमेव। यदाह वसिष्ठः—

दुश्चिक्यलाभारिगताविनार्की खस्थोऽमरेज्यो यदि बन्धुगेहे।
यस्यात्र योगे क्रियतेऽभिषेकः सम्पत्स्थिरा तस्य चिरायुरेषः ॥' इति।

अत्र वचनद्वयप्रमाण्याद्विकल्प इति शिवम् ॥ ४ ॥

अथ राजाभिषेकप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—

इति श्रीदैवज्ञानन्तेति। स्पष्टार्थमेतत्।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा
पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्त्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे
व्याख्याने ह्यभिषेचनप्रकरणं राज्ञोऽगमत्पूर्णताम् ।। १ ।।

इति श्रीविद्द्वज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां मुहूर्त्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां दशमं राजाभिषेकप्रकरणं समाप्तिमगमत् ।। १० ।।

पीताम्बरा—राजाभिषेक लग्न से स्थिरसम्पत्ति योग—लग्न या कोण में बृहस्पति, शत्रुघर (छठे) में मंगल, दशमगत शुक्र की स्थिति के लग्न में जिस राजा का अभिषेक किया जाता है वह राजा सदा राज्यलक्ष्मी से युक्त होकर बड़ा प्रसन्न रहता है।

तथा राज्याभिषेक लग्न से शनि सूर्य ३, ११ अर्थात् शनि तीसरे सूर्य ११ वाँ और बृहस्पति चतुर्थ या दशम में हो तो ऐसे लग्न में किये गए राज्याभिषेक से राजा की राज्यसीमा की धरित्री सदा स्थिर और सदा हस्तगत रहती है ।। ४ ।।

इति अल्मोड़ा मण्डलान्तर्गत जुनायल ग्रामज पर्वतीय श्री १०८ पं० हरिदत्त ज्योतिविदात्मज श्री केदारदत्त जोशी कृत मुहूर्त चिन्तामणि ग्रन्थ की दशमराज्याभिषेक प्रकरण की पीयूषधारा संस्कृत टीका की संक्षिप्त पीताम्बरा हिन्दी व्याख्या सम्पन्न ।। १० ।।

अथ यात्राप्रकरणम् ।। ११ ।।

पार्वतीहृदयपद्मभास्करं वक्रतुण्डमघसङ्घवारणम् ।
तं प्रणम्य कुरुते नयान्वितां यात्रिकप्रकरणस्य दीपिकाम् ।। १ ।।

पीयूषधारा—अथ यात्राप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र किञ्चित्कार्यमुद्दिश्य देशान्तरगमनं यात्रा सा संक्षेपतो द्विविधा—एका समरविजययात्रा परासामान्ययात्रा । तत्र शत्रुनगरजयार्थं वक्ष्यमाणयोगलग्नजातकोक्तराजयोगलग्नेषु प्राधान्येन यात्रा सा समरविजयाख्या । यद्यपि कानिचिन्नगराणि विनैव युद्धं कटकबाहुल्यादेव वशं यान्ति । तथापि युद्धसम्भावनास्त्येव । या द्रव्यार्जनार्थं वाराणस्यादितीर्थदर्शनार्थं वा तिथ्यादिशुद्धिमङ्गीकृत्य यात्रा सा सामान्ययात्रा । तदुक्तं वसिष्ठेन—

'परविषये विजयार्थं गन्तुर्यात्रा तु समरविजयाख्या ।
निखिलाऽपरयात्रा या सामान्या सा भवेद्द्विविधा ।।
कथिततिथिवासरर्क्षेष्वभिमतफलदा भवेच्च सामान्या ।
समराह्वया च यात्रा योगविलग्नक्षितीशयोगेषु ।।' इति ।

तत्र यात्राप्रकरणं प्रारिप्सुर्ग्रन्थकृद्यात्राधिकारिणस्तावत्प्रहर्षिणीछन्दसाह—

यात्रायां प्रविदितजन्मनां नृपाणां दातव्यं दिवसमबुद्धजन्मनां च ।
प्रश्नाद्यैरुदयनिमित्तमूलभूतैर्विज्ञाते ह्यशुभशुभे बुधः प्रदद्यात् ।। १।।

पीयूषधारा—यात्रायामिति । वैरिव्यतिरिक्तसकललोकहितकारित्वान्नृपस्य वक्ष्यमाण-शुभाशुभसमुदायविचारस्य सकलशिष्टसम्मतत्वेन तदधीनत्वाच्च नृपग्रहणं । न च नृपग्रहणाद्राज्ञामेवैष विच.रो युक्त इति वाच्यम् । वक्ष्यमाणयोगलग्नेषु प्रतिश्लोकं राजपदानुपादानप्रसङ्गात् । प्रकरणादेतल्लाभादविस्मरणार्थमिति चेन्न । दिक्शूलादावप्यविस्मरणार्थं नृपग्रहणं कर्त्तव्यं स्यात् । तस्माद्यथासम्भवं राजव्यतिरिक्तस्य ब्राह्मणादेरप्येषविचार उपयोज्यः । एवमेव च वसिष्ठाद्यृषिवाक्येष्वपि समाधेयम् ।

प्रविदित छायाघटिकादिना ज्ञातं जन्म जन्मसमयो लक्षणया तत्कालीनलग्नकुण्डलीस्थ-शुभाशुभग्रहसूचितशुभाशुभफलोदर्कज्ञानं येषां तेषां नृपाणां यात्रायां दिवसं दातव्यं यात्रादिनं देयमित्यर्थः । 'वा तु क्लीबे दिवसवासरौ' इति दिवसशब्दो नपुंसकलिङ्गः । तच्च ज्ञानं जातकशास्त्राधीनम् । शुभफलदग्रहस्य दशायामन्तर्दशायां च राज्ञा यात्रा विधेया ।

अशुभफलप्रदग्रहस्य दशायामन्तर्दशायां च नैव विधेया । यदाह वराहः—

'विदिते होराराशौ स्थानादिवले ग्रहाणां च ।
आयुषि च परिज्ञाते शुभमशुभं यातुरिह वाच्यम् ।।' इति ।

वसिष्ठोऽपि—

'निखिलगुणयुतानां राज्ञां कथयामि विधानमत्र यात्रायाम् ।
जातकमवलोक्य वदेत्फलसिद्धिस्त्वन्यथा मृषा भवति ।।' इति ।

अज्ञातजन्मकालस्य शुभाशुभद्वारा—

ननु यस्य दैवाज्जन्मकालो न विदितस्तस्य कथं यात्रा स्यादित्यत आह । अबुद्धेति । अबुद्धमज्ञातं जन्मकालो येषां तेषामपि प्रश्नाद्यैः पृच्छोपश्रुत्यादिभिरशुभे विज्ञाते निर्ज्ञाते सति बुधो यात्रादिवसं प्रदद्यात् । कीदृशैः, उदयो दिने दिने राज्याभिवृद्धिः । अथवा लग्नं निमित्तं शकुनादि । एतदादीनि वस्तूनि मूलभूतानि निदानकारणानि येषां तैः । यदाह नारदः—

'शूज्ञातजन्मनां नृणां फलासिर्घुणवर्णवत् । प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैस्तेषामपि फलोदयः ।।' इति ।

नन्वत्र नारदवाक्ये अज्ञातजन्मनः पुसो यात्राफलं घुणाक्षरतुल्यमिति पूर्वार्द्धे उक्तम् । प्रश्नादिना तु तादृश्यपि फलाप्तिरिति पूर्वापरविरोधाः । उच्यते प्रश्नादिना हि शुभाशुभनिर्णये कृते निष्पन्नमपि यात्राफलं घुणाक्षरतुल्यम् । घुणः कीटविशेषः स यथाशक्ति काष्ठं भिन्दन् तत्र दैवादेकः ककारादिको वर्णो जातस्तद्वदिदम् । यदा तु प्रश्नादिना शुभनिर्णयसद्भावे क्रियमाणा यात्रावश्यफलदेति न कोऽपि विरोधः ।

विशेषमाह बृहद्यात्रायां वराहः—

'तस्मान्नृपः कुसुमपुष्पफलाग्रहस्तः प्राप्तः प्रणम्य रवये हरिदिङ्मुखस्थः ।

होराङ्गशास्त्रकुशलान्हितकारिणश्च सङ्गृह्य दैवगणकान्सकृदेव पृच्छेत् ॥
अथ नृपतिसमीपे दैववित्पृष्टमात्रः फलमुदयनिमित्तैस्तर्कयेच्छास्त्रदृष्ट्या ।
सदसि सदिति वाच्यं यद्यपि स्यादनिष्टं स्फुटमपि कथनीयं मन्त्रिणे भूभुजे वा ॥' इति ॥१॥

पीताम्बरा—यात्रा के अधिकारी—किसी कार्य विशेष के उद्देश्य से स्वनगर या ग्राम से अन्य देश गमन का नाम यात्रा है। शत्रु नगर जीतने के लिये कथित तिथि वार नक्षत्र लग्नादिक राजयोगों में यात्रा का मुहूर्त राजा के लिए सविशेष्य यात्रा मुहूर्त होता है। किन्तु प्रयाग, वाराणसी, पुष्कर, गया, रामेश्वर, कैलास, बदरी, केदार आदि तीर्थ दर्शन की, या द्रव्य उपार्जन के लिए व्यापारादिकार्य या अन्य वृत्तियों से द्रव्योपार्जनार्थ देशान्तर गमन का यात्रा मुहूर्त सामान्य यात्रा मुहूर्त कहा जावेगा।

प्रकृत सम्पूर्ण यात्रा प्रकरण में ग्रन्थकार ने नृप (राजा) शब्द विशेष से राजा की ही यात्रा का ग्रहण किया है। यहाँ राजा शब्द उपलक्षण मात्र है। वास्तव में जनता के हित में यात्रा मुहूर्त बताते समय नृप शब्द वर्णन के माध्यम विशेष से यात्रा का मुहूर्त जनसाधारण के लिये है।

क्योंकि नृप शब्द आधिकारिक होने से जन साधारण का सम्बोधक हो जाता है। जैसे अर्जुन के माध्यम से भगवान् श्रीकृष्ण का सर्वसाधारण के लिए गीता का उपदेश होता है। अतः नृप शब्द या राजा शब्द से ग्रन्थकार का अभिप्राय राजा की ही यात्रा मात्र से कदापि नहीं समझना चाहिये। प्रति श्लोक में राज पद के उल्लेख से केवल राजाओं तक ही नहीं अपि च राजाओं से अतिरिक्त जनता के लिए समग्र यात्रा प्रकरण में उक्त शुभाशुभ मुहूर्तों का उपयोग सर्वसाधारण होना चाहिये।

जिन राजाओं या व्यक्तियों की ज्ञात जन्मसमय से जन्मकुण्डली आदि का ज्ञान है उनके लिए उनकी जन्मपत्रिकाओं के आधार से उनको यात्रा मुहूर्त का आदेश करना चाहिये। जिन राजा या व्यक्तियों के जन्मेष्ट आदि का ज्ञान नही है दैवज्ञ ने उन्हें शकुन और प्रश्न आदिक स्थितियों के शुभाशुभ ज्ञान से यात्रा मुहूर्त का आदेश करना चाहिये ॥ १ ॥

अथ ज्ञाताज्ञातजन्मनां पुंसां साधारण्येन यात्रा वक्ष्यते। तत्र ज्ञातजन्मनां जातकाद्यवगतशुभफलानां यात्राविचारोऽल्पायाससाध्यः। अज्ञातजन्मनां तु जातकशास्त्रे प्रश्नाद्यनुक्तेः कथं तद्यात्रानिर्वाह इत्याशङ्क्य शुभफलयात्रावेदकं प्रश्नं द्रुतविलम्बितेनाह—

जननराशितनू यदि लग्नगे तदधिपौ यदि वा तत एव वा।
त्रिरिपुखायगृहं यदि वोदयो विजय एव भवेद्वसुधापतेः ॥ २ ॥

पीयूषधारा—जननेति। नन्वत्र कथमज्ञातजन्मत्वं यावता जन्मराशिलग्नज्ञानं विना समयज्ञानं नैव भवेत्, सत्यम्। यद्यपि राशिलग्नज्ञानं जात तथापि विशिष्य जातकागमजशुभफलदग्रहदशानवगमादज्ञातजन्मत्वं ज्ञेयम्। अत एव राशिलग्नज्ञानाभावे 'यदि पृच्छितनौ' इति प्रश्नं वक्ष्यति।

यात्रायां प्रश्नवशाच्चतुर्धा जयः—

जननं जन्म तत्सम्बन्धिनी राशिलग्ने ते यदि प्रश्ने स्यातां जन्मराशिजन्मलग्नं वा यदि प्रश्नलग्नं स्यात्तदा वसुधापते राज्ञो विजय एव। वा अथवा तदधिपौ जन्मलग्नराश्योः स्वामिनौ

लग्नगतौ स्यातां तदापि वसुधापतेर्विजयः। अथवा तत एव ताभ्यामेव जन्मलग्नजन्मराशिभ्यामेव त्रिरिपुखायगृहं तृतीयषष्ठदशमैकादशानामन्यतमं गृहं यद्युदयो लग्नं स्यात्तदापि वसुधापतेर्विजय एव स्यादित्यर्थः। यदाह नारदः—

'जन्मोदये जन्मराशौ तयोरीशस्थभेऽपि वा।
ताभ्यां त्र्यायारिदशमे यातुः शत्रुक्षयो भवेत् ॥' इति।

अत्र तदीशः शुभग्रहश्चेल्लग्नगोऽपेक्षित इत्यपि विशेषो ध्येयः। यदाह वसिष्ठः—

'जन्मराशौ लग्नगते तदीशे वापि लग्नगे। अभीष्टफलदा यात्रा राशीशश्चेच्छुभग्रहः ॥
जन्मलग्ने लग्नगते तदीशे वापि लग्नगे। अथ लाभप्रदा यात्रा लग्नेशश्चेच्छुभग्रहः ॥' इति।

केचित्ताभ्यामित्यनेन जन्मलग्नजन्मराश्यधिपाभ्यामित्याहुः। तन्न।

'जन्मराशिविलग्नाभ्यां लग्ने वोपचये गृहे। सम्पूर्णफलदा यात्रा तथैव विजयप्रदा ॥'
इति वसिष्ठेन कण्ठत एव जन्मराशिविलग्नाभ्यामित्युक्तत्वात् ॥ २ ॥

पीताम्बरा—यात्रा में शुभ फल सूचक प्रश्न—राजा या पृच्छक (जनता) की जन्मलग्न या जन्मराशि ही यात्रा अभिप्राय की प्रश्न लग्न हो, अथवा जन्मलग्न जन्मराशि के अधिपति लग्न में हो तो राजा या व्यक्ति की (यात्रा उद्‌देश्य में) अवश्य विजय होती है।

अथवा जन्मलग्न जन्मराशि से तृतीय-षष्ठ-दशम-एकादश राशियों में कोई भी राशि प्रश्न लग्नगत हों तो भी उस वसुधाधिप की यात्रा विजयप्रद होती है ॥ २ ॥

अथान्यं प्रश्नं मञ्जुभाषिणीछन्दसाह—

रिपुजन्मलग्नभमथाधिपौ तयोस्तत एव वोपचयसद्म चेद्भवेत्।
हिबुके द्युनेऽथ शुभवर्गकस्तनौ यदि मस्तकोदयगृहं तदा जयः ॥ ३ ॥

पीयूषधारा—रिपुजन्मलग्नभमिति। रिपोः शत्रोर्जन्मलग्नभं यज्जन्मलग्नं जन्मराशिश्च तच्चेत्प्रश्नलग्नाद् हिबुके चतुर्थे द्युने सप्तमे वा स्यात्तदा राज्ञः पराजयो न भवेत्। अथवा तत एव ताभ्यां शत्रोर्जन्मलग्नराशिभ्यामेव चोपचयगृहं त्रिषडेकादशदशमानामन्यतमगृहं प्रश्नलग्नाद्धिबुके द्युने वा चेज्जयः। अथवा तयोः शत्रुजन्मलग्नराश्योरधिपौ स्वामिनौ प्रश्नलग्नाद्धिबुके द्युने वा स्यातां तदापि विजय एव। अथवा तनौ प्रश्नलग्ने शुभवर्गकः शुभग्रहाणां यः षड्वर्गः स चेत्स्यात्तदापि विजय एव। अथवा यदि मस्तकोदयाः शीर्षोदयराशयः प्रश्नगताश्चेत्स्युस्तदापि जय एव। शीर्षोदयराशीनाह वराहः—

'गोजाश्विकर्किमिथुनाः समृगा निशाख्याः पृष्ठोदया विमिथुनाः कथितास्त एव।
शीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति शेषा लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम् ॥' इति।

पृथुरोमा मीनः, श्रीपतिः—

'इदमप्यरिसम्भवं यदास्ते हिबुके वा विजयस्तदापि यातुः।
शिरसोदयमेति यश्च राशिर्जयकृत्सोप्युदये तथेष्टवर्गः ॥' इति।

यदा अस्ते इति पदच्छेदः। अस्ते सप्तमस्थाने इदं शब्देन प्रागुक्तपद्योक्तार्थः परामृश्यते।
'**जन्मराशिरुत** जन्मविलग्नं तत्पती उदयगौ यदि वास्तः। आयकर्मरिपुभान्युत ताभ्यां शत्रुसंसय-

मवेहि तदानीम् ॥' इति । जन्मराशिरित्यादिकं सर्वं शत्रुसमुद्भवं चेदस्ते सप्तमस्थाने स्यादथवा हिबुके स्यात्तदापि यातुर्नृपस्य विजय इत्यर्थः। वाराहोऽपि—

'उदयमुदयपं वा जन्मभं जन्मभं वा तदुपचयगृहं वा वीक्ष्य लग्ने यियासोः ।
विनिहतमरिपक्षं विद्धि शत्रोरिदं वा हिबुकगृहसमेतं पृच्छतोस्तस्थितं वा ॥'इति॥३॥

पीताम्बरा—अन्य शुभफल सूचक प्रश्न—शत्रु की जन्म लग्न जन्मराशि या इन दोनों के अधिपति, यात्राकालीन प्रश्न लग्न से चतुर्थ या सप्तम में हों तो यात्रा करने वाले व्यक्ति या राजा की पराजय नहीं होती । अथवा शत्रु की जन्म लग्न जन्मराशि से ३, ६, १०, ११ में कोई राशि प्रश्न लग्न से ४ या ७ में हो, अथवा प्रश्न लग्न में शुभग्रहों का षड्वर्ग हो अथवा प्रश्न लग्न में शीर्षोदय राशियाँ (३, ५, ६, ९, ११) हों तब भी यात्रा विजयाय ही होती है ।३।

अथाज्ञातजन्मनां शुभफलदप्रश्नं तोटकछन्दसाह—

यदि पृच्छितनौ वसुधा रुचिरा शुभवस्तु यदि श्रुतिदर्शनगम् ।
यदि पृच्छति चादरतश्च शुभग्रहदृष्टयुतं चरलग्नमपि ॥ ४ ॥

पीयूषधारा—यदीति । अत्र वसुधापतेर्जय इत्यनुवर्त्तते । यदि पृच्छितनौ प्रश्नलग्ने वसुधा भूमी रुचिरा स्यात् । अथवा यदि शुभवस्तु माङ्गल्यवस्तु वस्त्राभरणादि श्रुतिदर्शनगं श्रवणगोचर वा। दर्शनमत्र चाक्षुषम् । अथवा प्रष्टा आदरतो दैवज्ञं पृच्छति तदा वसुधापतेर्जयः स्यादिति सर्वत्र व्याख्येयम् । यदाह श्रीपतिः—

'मनोरमा भूर्यदि पृच्छतः स्यान्माङ्गल्यवस्तु श्रुतिदर्शने स्तः ।
यद्वादरात्पृच्छति वा ग्रहज्ञ तदादिशेदस्ति जयस्तवेति ।। इति ।

अथवा चरलग्नं मेषकर्कतुलामकराणामन्यतमं यदि प्रश्नलग्नं शुभग्रहैः दृष्टं युतं वा तदापि राज्ञो जयः । 'करोति राशिर्गमनं फलं च चरो विलग्ने शुभदृष्टयुक्तः' इति श्रीपत्युक्तेः ।४।

पीताम्बरा—अज्ञात जन्म के व्यक्तियों के शुभसूचक प्रश्न—दैवज्ञ से प्रश्नलग्न के समय जहाँ प्रश्न किया जा रहा है वहाँ सुन्दर आकर्षक भूमि हो, अथवा सुन्दर वस्तु सुनने या देखने में आवै, प्रश्नकर्ता विनम्र होकर आदर से दैवज्ञ से यात्रा विषयक प्रश्न पूछ रहा हो, अथवा शुभग्रहों से युक्त दृष्ट चर लग्न (१।४।७।१०) हो तो भी ऐच्छिक यात्रा शुभफलदा होती है ।४।

अथ ज्ञाताज्ञातजन्मनां पुंसा साधारण्येनाशुभफलदं प्रश्नं मालिनीछन्दसाह—

विधुकुजयुतलग्ने सौरिदृष्टेऽथ चन्द्रे मृतिभमदनसंस्थे लग्नगे भास्करेऽपि ।
हिबुकनिधनहोराद्यूनगे वापि पापे सपदि भवति भङ्गः प्रश्नकर्तुस्तदानीम् ॥ ५ ॥

पीयूषधारा—विध्विति । विधुकुजयुते चन्द्रमङ्गलयुक्ते लग्ने सौरिणा शनिना दृष्टे तदा प्रश्नकर्त्तुर्नृपादेर्भङ्गः । शत्रुतः पराजयो नाशो वा स्यात् । अथ चन्द्रे मृतिभमदनसंस्थेऽष्टमसप्तमसंस्थे लग्नगे च भास्करो सत्येवंविधे विशिष्टे योगे प्रष्टुर्भङ्गः स्यात् । अत अपिशब्दोऽव्ययानामनेकार्थत्वाद्विपर्ययार्थः । तथाहि—अपिविपर्यये वा सति भास्करे मृतिभमदनसंस्थे चन्द्रे लग्नगे च सति एवंविधे योगे द्रष्टुर्भङ्गः स्यात् । उक्तं च वराहेण—

'स चन्द्रे रुधिरे लग्ने भङ्गः सूर्यात्मजेक्षिते । द्यूननैधनगे चन्द्रे लग्ने याते दिवाकरे ॥
विपर्यये वा यातस्य त्रासभङ्गवधागमाः ।' इति ।

वा अथवा पापग्रहे चतुर्थाष्टमलग्नसप्तमस्थानानामन्यतमस्थे सति प्रष्टुर्भङ्गः उक्तं च वराहेण—

'निधनहिबुकहोरासप्तमर्क्षेषु पापा न शुभफलकराः स्युः पृच्छतां मानवानाम् ।
दशमभवनयुक्तेष्वेषु सौम्याः समस्ताः सदसदिदमशेषं यानकाले विचिन्त्यम् ॥' इति॥५॥

पीताम्बरा—अशुभ सूचक यात्रा प्रश्न—चन्द्र मंगल युक्त शनि दृष्ट प्रश्न लग्न से प्रश्नकर्ता की यात्रा असफल होती है। शत्रु से पराजय या हानि होगी। अथवा प्रश्न-लग्न से सप्तम या अष्टम में चन्द्र, लग्नगत सूर्य हो या सूर्य अष्टम हो, चन्द्रमा लग्नस्थ हो, अथवा १, ४, ७, ८ में से किसी में पापग्रह हो तो भी यात्रा असफल होती है। शत्रु से हानि होगी।५।

अथ याता कस्यां दिशि गमिष्यतीतिप्रश्ने निर्णयं भुजङ्गप्रयातेनाह—

त्रिकोणे कुजात्सौरिशुक्रज्ञजीवा यदैकोऽपि वा नो गमोऽर्काच्छशी वा ।
बलीयांस्तु मध्ये तयोर्यो ग्रहः स्यात् स्वकीयां दिशं प्रत्युतासौ नयेच्च ॥ ६ ॥

पीयूषधारा—त्रिकोणे इति । कुजान्मङ्गलात्त्रिकोणे नवपञ्चमे सौरिशुक्रज्ञजीवाः शनैश्चर-शुक्रबुधगुरवश्चेत्स्युरथवा एकोपि वा सौरिशुक्रज्ञजीवानामन्यतमश्चेत्त्रिकोणे स्यात्तदा याता यां दिशमुद्दिश्य जिगमिषति तत्र दिशि गमो गमनं न स्यात् । वा अथवाऽर्काच्छशी त्रिकोणे चेत्स्या-त्तदाप्युद्दिष्टदिग्गमनं न स्यादेव ।

तर्हि कस्यां दिशि गमनं स्यादित्यत आह—बलीयानिति । तयोर्मध्येऽधुनोक्तोद्दिष्ट-दिक्प्रतिबन्धकारकयोर्मध्ये यो ग्रहो बलवान् स्यात्स्वकीयां दिशं प्रत्युत साम्प्रतं नयेत् । चः पादपूरणे । यदाह वराहः—

'एकोऽपि जीवज्ञसितासितानां कुजात्त्रिकोणे रवितोऽथवेन्दुः ।
यत्रोद्यतस्तत्र न याति याता तयोर्बलीयान्नयति स्वकाष्ठाम् ॥' इति ।

काष्ठां दिशम् । ग्रहदिशस्तु—'सूर्यः सितो भूमिसुत' इत्यादिना वक्ष्यति ॥ ६ ॥

पीताम्बरा—यात्रिक किस दिशा की यात्रा करेगा—मंगल से त्रिकोण में शनि-शुक्र-बुध-बृहस्पति सभी या एक भी हो अथवा सूर्य से त्रिकोण में चन्द्रमा हो तो यात्री जिस दिशा में जाना चाहता है, वह उस दिशा में गमन नहीं कर सकेगा। उक्त दोनों ग्रहों में बलवान् ग्रह की जो दिशा है उसकी ही दिशा की यात्रा करनी पड़ेगी ॥ ६ ॥

अथैतादृशं द्वितीयं योगं मदलेखाच्छन्दसाह—

प्रश्ने गम्यदिगीशात्खेटः पञ्चमगो यः ।
बोभूयाद्बलयुक्तः स्वामाशां नयतेऽसौ ॥ ७ ॥

पीयूषधारा—प्रश्ने इति । गम्यदिगीशात् गन्तुमिष्टा या दिक् तस्याः ईशः स्वामी प्रश्ने प्रश्नलग्ने यस्मिन्स्थाने स्यात्ततः पञ्चमे स्थाने यो ग्रहो बलयुक्तो बोभूयात् बलयुक्तो भवेत्तदासौ ग्रहः स्वां स्वीयामाशां दिशं नयते प्रापयति । उक्तं च वराहेण—

'यात्रादिगीशाद्यदि पञ्चमेऽन्यो गृहे ग्रहो वीर्ययुतस्तु तिष्ठेत् ।
समुद्यता सा कथितानि भुक्त्वा फलानि वीर्यान्नयति स्वकाष्ठाम् ॥' इति ।

अन्यदपि योगान्तरं तेनैवोक्तम्—

'परस्परं सौरिकुजौ रवीन्दू त्रिकोणगौ भार्गवलोहितौ वा ।

फलं यदुक्तं तदशेषमेव विनाश्य पश्चान्नयति स्वकाष्ठाम् ।।' इति ।। ७ ।।

पीताम्बरा—दिग्गमन प्रश्न—यात्री जिस दिशा की यात्रा का प्रश्न पूछता है उस दिशा का अधिपति ग्रह प्रश्न लग्न कुण्डली में जिस भाव में स्थित हो उस भाव से पञ्चम स्थान में बलवान् जो ग्रह हो वह ग्रह अपनी दिशा में उस यात्री (यात्रा अभीष्ट दिशा में न कर) को पहुँचाता है ।। ७ ।।

अथैवं प्रश्नलग्नात्प्रष्टुः शुभाशुभे निर्णीय यात्राकालादिषु भुजङ्गप्रयातेनाह—

धनुर्मेषसिंहेषु यात्रा प्रशस्ता शनिज्ञोशनोराशिगे चैव मध्या ।

रवौ कर्कमीनालिसंस्थेऽतिदीर्घा जनुः पञ्चसप्तत्रितारश्च नेष्टाः ।। ८ ।।

पीयूषधारा—धनुर्मेषेति । रवौ धनुर्मेषसिंहस्थिते सति यात्रा प्रशस्ता शुभफलदा । शनिज्ञोशनोराशिगे मकरकुम्भकन्यामानवृषतुलागते रवौ यात्रा मध्या मध्यफलदा न शुभदा नाप्यशुभफलदेत्यर्थः ।

बहुकालसाध्या यात्रा—

कर्कमीनालिसंस्थे रवौ अतिदीर्घा बहुकालसाध्या यात्रा । हीनफलेत्यर्थः । यदाह लल्लः—

'यात्राजसिंहतुरगोपगते वरिष्ठा मध्या शनैश्चरबुधोशनसां गृहेषु ।

भानौ कुलीरवृषवृश्चिकगेऽतिदीर्घा शस्तस्तु देवलमतेऽध्वनि पृष्ठगोऽर्कः ।।'

यात्रायां पृष्ठगसूर्यप्राशस्त्यं पृष्ठगसूर्यस्वरूपं च—

शस्त इति । देवलाचार्यमतेऽध्वनि मार्गेऽर्कः सूर्यः पृष्ठगः शस्तः पृष्ठगत्वं तु भ्रमणवशेन । सूर्यो ह्यहोरात्रमध्ये उदयकालादारभ्य प्रहराष्टकेन प्रदक्षिणं प्राच्याद्यष्टौ दिशो भ्रमतीति । यदाह वसन्तराजः—'दग्धा दिगैशी ज्वलिता दिगैन्द्री प्रधूमिता चानलदिक् प्रभाते । इत्येवमेव प्रहराष्टकेन भुक्ते दिशोऽष्टौ सविता क्रमेण ।।

'दग्धा दिगुक्ता दिननाथभुक्ता विवस्वदाभा भवति प्रदीप्ता ।

सन्धूमितायां सविता प्रयातः शेषा दिगन्ता खलु पञ्च शान्ताः ।। इति ।

एतेन भ्रमणप्रकारेण यस्यां दिशि यस्मिन् प्रहरे भ्रमणसम्भवः सा दिक् सूर्यसम्मुखेत्युच्यते । तत्पञ्चमी दिक् सूर्यपृष्ठगते इति पितृचरणा व्याचख्युः ।

सूर्यपृष्ठादिस्वरूपनिर्णयः स्वमतेन—

वयं त्वेवं व्याकुर्मः । शस्त इति । द्वादशराशिचक्रभ्रमवशेन यस्यां दिश्यर्कः स्थितस्तां पृष्ठतः कृत्वा यायादित्यर्थः यथा लग्नस्थेऽर्के पश्चिमां दिशं गच्छेत् । चतुर्थस्थे सूर्ये दक्षिणां दिशं गच्छेत् । सप्तमे सूर्ये पूर्वां उत्तरां दिशं गच्छेत् । यदाह देवलः—

'लग्नस्थे वरुणाशां हिबुकस्थे दक्षिणां रवौ यायात् ।

सप्तमगे पूर्वाशां मेषूरणसंस्थिते सौम्याम् ।।' इति ।

एवं विदिक्ष्वपि तुल्यन्यायत्वाज्ज्ञेयम् यथा द्वितीयस्थे तृतीयस्थे वा सूर्ये नैर्ऋतीं गच्छेत् । पञ्चमस्थे षष्ठस्थे वा सूर्ये आग्नेयीं गच्छेत्, अष्टमस्थे नवमस्थे वा सूर्ये वायव्यां गच्छेदिति ।

तारानिषेधो यात्रायाम्—

अथ तारानिषेध उच्यते । जनुरिति । स्वजन्मनक्षत्राद्दिननक्षत्रं यत्सङ्ख्यं स्यात्तन्नवभक्तमवशिष्टाः प्रथमसप्तमपञ्चमतृतीयास्ताराश्चेत्स्युस्तदा नेष्टाः निषिद्धाः । यदुक्तं रत्नमालायां श्रीपतिना—'त्यक्त्वा त्रिपञ्चसप्तमसप्ततारा:' इति । नारदोऽपि—'विपञ्चसप्तम्याद्येषु यात्राभीष्टफलप्रदा' इति । जनुरित्यादिनक्षत्रोक्तिसमीपे वक्तव्यमप्यत्रोक्तं पादपूरणार्थम् ॥८॥

पीताम्बरा—प्रश्न लग्न से शुभाशुभ ज्ञान निर्णय के अनन्तर यात्रा समय—मेष, सिंह और धनू राशियों के सूर्य में यात्रा शुभ कही गई है। मकर, कुम्भ, कन्या, मिथुन, वृष और तुला राशि के सूर्य में यात्रा मध्य फलदा होती है। कर्क वृश्चिक और मीन के सूर्य की यात्रा बहुत लम्बी अर्थात् दीर्घ समय साध्य होती है। अर्थात् हीन फलद होती है।

यात्रा समय यात्री की ३, ५, ७ तारा अनिष्ट फल देती है ॥ ८ ॥

अथ तिथिनक्षत्रशुद्धि भुजङ्गप्रयातेनाह—

न षष्ठी न च द्वादशी नाष्टमी नो सिताद्या तिथिः पूर्णिमाऽमा न रिक्ता ।
हयादित्यमित्रेन्दुजीवान्त्यहस्तश्रवोवासवैरेव यात्रा प्रशस्ता ॥ ९ ॥

पीयूषधारा—नेति । सिताद्या तिथिः शुक्लपक्षप्रतिपत्, अर्थात्कृष्णपक्षप्रतिपदुत्तमा । अमा अमावस्या, अन्यास्तिथयो नामतः प्रसिद्धाः ज्ञेयाः । आसु तिथिषु यात्रा प्रशस्तेति वाक्यार्थः । पदार्थस्त्वयम् । षष्ठा न यात्रायां प्रशस्तेत्यर्थः । एवं सर्वत्र । बहुनकारकरणं कवित्वे पदानां पुनरुक्त्या गौरवलाघवविचारो नास्तीति द्योतयितुम् । न करो न च भूयः स्यान्मृदुरितिवत् । यदाह नारदः—

'षष्ठ्यष्टमीद्वादशिकारिक्तामावर्जितासु च । यात्रा शुक्लप्रतिपदि निधनाय भवेदिति'' ॥
अर्थात्षष्ठ्यादिनिषिद्धतिथिरिक्तास्तिथयो यात्रायां प्रशस्ता इत्यर्थः ।
अत्र प्रत्येकं तिथिफलान्याह वसिष्ठः—

'वलक्षपक्षे प्रतिपत्प्रयाणे भङ्गप्रदा वा निधनप्रदा वा ।
यशस्करी भूरिधनप्रदा च तृ पञ्चमी मृत्युकरी च षष्ठी ॥
सप्तमी विजयदा ह्यथाष्टमी शोकदुःखभयदामयप्रदा ।
सर्वदुःखशमनी यशस्करी लाभदा च दशमी निरन्तरम् ॥
पशुप्रदा मानकरी सुगन्धरक्ताम्बरानेकशुभप्रदा स्यात् ।
एकादशी चित्रमृगप्रभूता धान्यादा ह्युत्तमवस्तुदा स्यात् ॥
भूरिभूतिनाशिनी भूरिकर्महारिणी भूरिभीतिदायिनी द्वादशी प्रभङ्गदा ।
त्रयोदशी सुभोगदा विपक्षपक्षनाशिनी विनाशदाथ पूर्णिमा यशःक्षयं करोत्यमा ॥'

वलक्षपक्षः शुक्लपक्षः । यस्यां प्रतिपदि सत्यामुदये चन्द्रस्यातिक्षीणत्वाद्भङ्गप्रदत्वम् । यदा तु चन्द्रोदयाभाव एव तदा निधनप्रदत्वं मरणदातृत्वं च । अर्थात् कृष्णपक्षप्रतिपदुत्तमा । आहुश्च—'प्रतिपत्सु प्रयाताना सिद्धिरेव न संशयः' इति—तत्कृष्णप्रतिपद्विषयम् ।

हयेति । ननु तिथयः प्रोक्ताः । मध्ये वारान्विहाय नक्षत्रोक्तिर्न सङ्गच्छते किं च वसिष्ठेनोक्तत्वाद्वारा वक्तव्या एव—

'सुरेज्यदैत्येज्यशशीन्दुजानां वाराश्च वर्गाः शुभदाः प्रयाणे।
आदित्यभूसूनुशनैश्चराणां वाराश्च वर्गा न शुभप्रदाः स्युः ॥' इति।

फलान्याह राजमार्त्तण्डः—

सूर्यदिनेऽध्वनि नाशश्चन्द्रे शक्तिक्षयोऽर्थनाशश्च। ज्वलनासृक्पित्तरुजः कौजे बोधे सुहृत्प्राप्तिः ॥
जैवे जयधनलब्धिः शुक्र स्त्रीवस्त्रागन्धधनलाभः। दैन्यवधवन्धरोगान्प्राप्नोति दिनेऽर्कपुत्रस्य।।इति

तस्माद्वारा वक्तव्या एवेति चेत्, उच्यते। न वक्तव्या एव वारा इति वयं ब्रूमः, कुतः। नारदकश्यपादिभिरनुक्तत्वात्, किं च—

न मन्देन्दुदिने प्राचीं न गच्छेद्दक्षिणां गुरौ। सितार्कयोर्न प्रतीचीं नोदीचीं ज्ञारयोरपि ।।

इति नारदवाक्यबोधितम्—

'तुहिनकरमन्दवारे शक्रदिशं व्रजेद् गुरौ च याम्यायाम्।
रविसितदिने प्रतीच्यां सौम्यदिशं ज्ञारयोश्च वारशूलं स्यात्।'

इति वसिष्ठवाक्यबोधितमपि पापग्रहवारशूलं सर्वमते निरर्थकमापद्येत। सामान्यत एव निषेधसत्त्वात्। दोषाधिक्यसूचनार्थमिति चेन्न। भिन्नकर्तृकेषु मुनिग्रन्थेषु मुनिवचनानां वैयर्थ्यानर्हत्वादेवंविधा गतिरुचिता न त्वेककर्तृके ग्रन्थे। तत्र हि पूर्वापरविरोधे अर्थान्तरं वाक्यार्थं ग्रन्थान्तरेण सहैकवाक्यतया वा कार्या। तत्रायं वसिष्ठवाक्यस्वरसः। 'तुहिनकर मन्दवारे' इति वाक्यात्पापवारनिषेधो गौण इत्यनुमीयते तत्र तस्य गतिस्त्वेवम्। यदा स्वजन्मराशेरुपचयस्थानस्थो यो ग्रहः स्यात्स शुभो पापो वा भवतु सर्वदिक्षु हितः परन्तु शूलदिशो विहाय। यदा त्वनुपचयस्थानस्थः स्यात्स कुत्रापि न हितः। यदाह राजमार्त्तण्डः 'उपचयकरग्रहदिने शुद्धिः क्रूरेऽपि वापिनां भवति। सौम्येऽप्यनुपचयस्थे न भवति यात्रा शुभा यातुः ॥' इति। एवं ग्रंथभेदेन चन्द्रे शुभाशुभोक्तिरपि परिहर्त्तव्या। केचित्पुष्टक्षीणचन्द्रविषयेत्याहुः। तस्मान्नार्थो वारोक्त्या। अतो ग्रंथकृतापि नोक्ता वारा इत्यलमतिप्रसङ्गेन। प्रस्तुतमनुसरामः। हयेति। हयोऽश्विनी आदित्यं पुनर्वसुः मित्रोऽनुराधा, इन्दुर्मृगः, जीवः पुष्यः, अन्त्यं रेवती, हस्तादयः प्रसिद्धाः, एतैर्नवनक्षत्रैरेव यात्रा प्रशस्तोत्तमा यदाह वसिष्ठः—

'पौष्णद्वयादित्यकरेज्यमित्रमिन्दुर्हरीवासवभानि यानि।
श्रेष्ठानि यात्रासु नवैव तानि मुक्त्वा त्रिपञ्चादिमसप्तमानि ॥' इति।

श्रेष्ठानीत्युक्तेः कियतां नक्षत्राणां मध्यमत्वं कियतां निकृष्टत्वं चानुमीयते।

उत्तमानि मध्यमानि च नक्षत्राणि यात्रायाम्—

तदपि तेनैवोक्तम्—

'तिस्रोत्तरावारुणनैर्ऋतेन्द्रपूर्वात्रयं ब्राह्मभयुग्दशैवम्।
मध्यानि नेष्टान्यनलानिलेशद्विदैवचित्राहिमघान्तकानि ॥' इति।

तिस्र उत्तरा इति वक्तव्ये तिस्रोत्तरा इत्यार्षः सन्धिः।

गुरुस्तु बहूनि भानि निषिद्धान्याह—

'पूर्वासु त्रिषु याम्यर्क्षे ज्येष्ठायां रौद्रभौरगे। सर्वाशासु गते यात्रां प्राणहानिर्भविष्यति ।।' इति।

केचित्तु—

'पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि ।
सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम् ॥
आदित्य हस्ताभिजिदश्विनानि वणिग्जनानां प्रभवन्ति भानि ।
मूलात्रनेत्रानलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्कुतायाः ॥
सौम्येन्द्रचित्रावसुदैवतानि भानि ग्रहस्वाम्यमुपागतानि ।
सार्पं विशाखाश्रवणाभरण्यश्चाण्डालजातेरभिनिर्दिशन्ति ॥'

इति वराहोक्तेर्जातिविशेषेण यात्रानक्षत्राण्याहुः । तच्चिन्त्यम्' यतो वराहसंहितायां नक्षत्रव्यूहाध्याये पञ्चदशसंख्याके एतानि पद्यान्युक्तानि । तत्र देशजातिवस्त्वाद्युक्तेरशुभोपघाते तेषां देशानां जातीनां च गोधूमादिवस्तूनां च पीडा । अन्यथा हि शुभमिति तस्यार्थः । उक्तं च तत्रैव वराहेण—

'रविरविसुतभोगमागतं क्षितिसुतभेदनवक्रदूषितम् ।
ग्रहणगतमथोक्तपातहतं नियतमुखाकरपीडितं च यत् ॥
तदुपहतमिति प्रचक्षते प्रकृतिविपर्ययया तमेव वा ।
निगदितपरिवर्ग इत्ययं कथितविपर्ययगं समृद्धये ॥' इति ।

परिवर्गः स्ववर्गः ॥ ९ ॥

पीताम्बरा—यात्रा में तिथि नक्षत्र शुभाशुभ फल—शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, षष्ठी, द्वादशी, अष्टमी तथा रिक्ता, पूर्णिमा, अमावस्या तिथियों में यात्रा का निषेध है । अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रों की यात्रा शुभावह होती है ॥ ९ ॥

अथ वारशूलनक्षत्रशूले पृथ्वीछन्दसाह—

न पूर्वदिशि शक्रभे न विधुसौरिवारे तथा
न चाजपदभे गुरौ यमदिशीनदैत्येज्ययोः ।
न पाशिदिशि धातृभे कुजबुधेऽर्यमर्क्षे तथा
न सौम्यककुभि व्रजेत्स्वजयजीवितार्थी बुधः ॥१०॥

पीयूषधारा—न पूर्वदिशीति । शक्रभे ज्येष्ठानक्षत्रे पूर्वदिशि न व्रजेत् । तथा विधुसौरिवारे सोम-शनिवारेऽपि पूर्वदिशि न व्रजेत् । तथा अजपदभे पूर्वभाद्रपदानक्षत्रे तथा गुरौ गुरुवारेऽपि यमदिशि न व्रजेत् । इनदैत्येज्ययोः रविशुक्रवारयोस्तथा धातृभे रोहिण्यां पाशिदिशि, पाशी वरुणस्तस्य दिशि पश्चिमदिशि न व्रजेत् । कुजबुधे मङ्गलबुधवारे तथार्यमर्क्षे उत्तराफल्गुन्यां सौम्यककुभ्युत्तरदिशि न व्रजेत् कः । बुधः पण्डितो ज्ञाता वा राजादिः । कीदृशो बुधः । स्वजयजीवितार्थी स्वं धनं जयः शत्रुपराजयपूर्वकः स्वोत्कर्षः जीवितमायुष्मम् एतानि अर्थयतेऽसौ । गच्छतश्च पुंसो द्रव्यनाशो जयनाशो मरणं वा स्यादिति निष्कृष्टोऽर्थः । यदाह नारदः—

'न मन्देन्दुदिने प्राचीं न व्रजेद्दक्षिणां गुरौ । सितार्कयोर्न प्रतीचीं नोदीचीं ज्ञारयोरति ॥' इति ।

राजमार्तण्डेन विशेष उक्तः—

'तोयेशवह्निधनदान्तकराक्षसानां यातोऽथवानिलशतक्रतुशङ्कराणाम् ।
दिग्भागमुष्णकिरणादिदिनेषु देवैः संरक्षितोऽपि निधनं नचिरादुपैति ॥
सूर्ये शुक्रे कुजे राहौ मन्दे चन्द्रे बुधे गुरौ । अग्रतः शोभना यात्रा पृष्टतो मरणं ध्रुवम् ॥
प्रतीचीं रविवारेण प्राचीं च रविनन्दने । उदीचीं भूमिपुत्रेण न यायाद्दक्षिणां गुरौ ॥' इति तदेतदार्षवाक्यं मूलाभावादुपेक्ष्यम् ।

वसिष्ठोक्तानि दिग्भेदेन योग्यनक्षत्राणि यात्रायाम्—

पुरुहूतदिशं पुरन्दरर्क्षे नेयाद्याम्यदिशं त्वजाङ्घ्रिधिष्ण्ये ।
ज्वलनाप्यदिशं पितामहर्क्षं शूलाख्यान्यथ सौम्यमर्यमर्क्षे ॥' इति ।

पितामहो रोहिणी । सौम्यं सोमदेवताकं देशमुत्तरदिशमित्यर्थः ।

'शूलसंज्ञानि धिष्ण्यानि शूलसंज्ञाश्च वासराः । यायिनां मृत्युदाः शीघ्रमथवा चार्थहानिदाः ॥' इति

वारशूलपरिहारमाह गुरुः—

'सूर्यवारे घृतं प्राश्य सोमवारे पयस्तथा । गुडमङ्गारके वारे बुधवारे तिलानपि ॥
गुरुवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि । माषान्भुक्त्वा शनेर्वारे गच्छन्छूले न दोषभाक् ॥
ताम्बूलं चन्दनं मृच्च पुष्पं दधि धृतं तिलाः । वारशूलहराण्यर्कादिदानाद्धारणतोऽदनात् ॥'

ननु—'हयादित्य' इत्यादिना नवैव भानि यात्रायां प्रशस्तान्युक्तानि । तत्रैतासां ज्येष्ठापूर्वभाद्रपदारोहिण्युत्तराफल्गुनीनां यात्रायां प्रवेशाभावः । किञ्च अग्रे दिग्द्वारभानि सपरिघानि वक्ष्यन्ते । तत्र ज्येष्ठापश्चिमास्थत्वात्प्रागुदीच्योः परिघः, पूर्वभाद्रवदोत्तरास्थत्वाद्दक्षिणपश्चिमयोः परिघः, रोहिणीप्राक्स्थत्वाद्दक्षिणपश्चिमयोः परिघः, उत्तराफल्गुनीदक्षिणास्थत्वात्प्रागुदीच्योः परिघः, तत्र 'प्राप्तिपूर्वकत्वात्प्रतिषेधस्य, इति न्यायान्नक्षत्रशूलाभिधानं व्यर्थमिति चेत्, उच्यते 'योगात्सिद्धिर्धरणिपतीनाम्' इति वक्ष्यति । तत्र योगयात्राया आत्ययिककार्यविषयत्वात् । पञ्चाङ्गशुद्धिमनादृत्य केवललग्नशुद्धौ राज्ञां यात्रायाः [illegible] यदाह पराशरः—'आत्ययिककार्यपाते दैवेन निपीडिते च यातव्ये । केवलविलग्नयोगादपि याता सिद्धिमाप्नोति ॥' इति । तत्र यदि नक्षत्रशुद्धौ दैवाद्विहितनक्षत्रादन्यनक्षत्रेष्वपि यात्राप्रसक्तौ सत्यां कदाचित्पूर्वस्यां दिशि गन्तुर्ज्येष्ठानक्षत्रेऽपि यात्रा स्यात्, एवं दक्षिणादिदिग्गमने पूर्वभाद्रपदादिनक्षत्रेष्वपि यात्रा स्यात्सा माभूदित्येतदर्थं नक्षत्रशूलोक्तिः । किञ्च 'तिस्रोत्तरा' इत्यादीनां दशनक्षत्राणां निन्द्यानिन्द्यव्यतिरिक्तफलत्वेन मध्यमत्वोक्तेर्विहितनक्षत्रालाभे मध्यमनक्षत्रेषु यात्रायां प्राप्तायां ज्येष्ठादिषु दिक्शूलनक्षत्रेषु सर्वथा यात्रा न कार्येति वा समाधिः । अत एव दक्षिणदिशि त्रयाणामपि, प्राशस्त्यावगतेः ऋक्षगुणैरपि भूदेवानामिति वचनात्ब्राह्मणानां नक्षत्रप्राशस्त्यावश्यकत्वाच्च मध्यमनक्षत्रधनिष्ठादिपञ्चकनिषेधोपपत्तिः । शततारकापूर्वभाद्रपदोत्तराभाद्रपदानामसत्त्वात् । नन्वेवं सति दक्षिणदिशि धनिष्ठादिपञ्चकनिषेधादेव पूर्वभाद्रपदानिषेधः सिद्धः । किं पुनर्निषेधेन । उच्यते । दोषाधिक्यसूचनार्थमेवेति ऋजवः । वयं तु यदा एकस्मिन्नेवाहनि प्रयाणं नगरप्रवेशश्च सम्भवेत्तदा प्रावेशिक एव मुहूर्तो विचार्य इत्युक्तम् । यदाह गर्गः—'प्रवेशनिर्गमौ स्यातामेकस्मिन्नेव वासरे । तदा प्रावेशिकं चिन्त्यं बुधैनैव तु यात्रिकम् ॥' इति । भृगुरपि—

'एकस्मिन्नपि दिवसे यदि चेद्गमनं प्रवेशश्च । यच्छुक्रवारशूलं न चिन्तयेद्योगिनी-पूर्वम् ॥' इति ।

तत्र यथा प्रतिशुक्रभद्रादिको दोषो नास्ति तथेह दक्षिणदेशगमने पञ्चकदोषोऽपि नास्ति । तादृशेऽपि गमने पूर्वाभाद्रपदानिषधो यथा स्यादित्यजपाद्ग्रहणं कृतमिति ब्रूमः । एतच्च 'योगात्सिद्धिर्धरणिपतीनाम्' इत्यत्र 'कुरुमाषांन्तिलतण्डुलान्' इत्यत्रापि च सम्यक् विचारयिष्यत इत्यलं पल्लवितेन ॥ १० ॥

पीताम्बरा—यात्रा में दिशाशूल विचार—पूर्व दिशा की यात्रा के लिए ज्येष्ठा नक्षत्र और शनि, सोमवार, दक्षिण की यात्रा के लिए पूर्वाभाद्रपदा नक्षण गुरुवार, पश्चिम की यात्रा के लिए रोहिणी नक्षत्र, शुक्र रविवार और उत्तर दिशा की यात्रा के लिए मंगल बुधवार उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, ये वार शूल और नक्षत्रशूल (दिशाशूल) कहे गये हैं । अतः स्वजय जीवन की आकांक्षा के यात्री को उक्त नक्षत्र वारों में उन-उन दिशाओं की यात्रा कदापि नहीं करनी चाहिए ॥ १० ॥

अथ ध्रुवादिनक्षत्रैः पूर्वाह्लादिकालविशेषे कालशूले यात्रानिषेधं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

पूर्वाह्णे ध्रुवमिश्रभैर्न नृपतेर्यात्रा न मध्याह्नके
तीक्ष्णाख्यैरपराह्णके न लघुभैर्नो पूर्वरात्रे तथा ।
मिश्राख्यैर्न च मध्यरात्रिसमये चोग्रैस्तथा नोच्चरै
रात्र्यन्ते हरिहस्तपुष्यशशिभिः स्यात्सर्वकाले शुभा ॥ ११ ॥

पीयूषधारा—पूर्वाह्णे इति । नृपतेरित सर्वत्र सम्बध्यते । ध्रुवाख्यैर्मिश्राख्यैश्च भैर्नक्षत्रैः पूर्वाह्णे यात्रा न स्यात् । तीक्ष्णाख्यभैर्मध्याह्नके यात्रा न स्यात् । मध्याह्नक इति स्वार्थे कः । अपराह्णके लघुभैर्यात्रा न स्यात् । तथा पूर्वरात्रे मैत्राख्यैर्यात्रा न स्यात् । मध्यरात्रिसमये उग्रनक्षत्रैर्यात्रा न स्यात् । तथा पूर्वरात्रौ मैत्राख्यैर्यात्रा न स्यात् । मध्यरात्रिसमये उग्रनक्षत्रैर्यात्रा न स्यात् । तथा रात्र्यंते रात्रितृतीयभागे चरनक्षत्रैर्यात्रा न स्यात् ।

अत्र विशेषः ।

हरिहस्तपुष्यशशिभिः श्रवणहस्तपुष्यमृगैः । सर्वकाले षष्टिघटिकात्मकेऽहोरात्र रूपे यस्मिन्कस्मिश्चित्काले शुभा स्यात् । यदाह वसिष्ठः—

'स्थिरसाधारणधिष्ण्यैः पूर्वाह्णेनैव गमनं सत् ।
गमनं न दारुणर्क्षदिनदलसमये न कार्यमशुभं स्यात् ॥
क्षिप्रैर्नापरवासरसमये मृदुभिर्न रात्रिमुखे ।
उग्रर्क्षैर्निशिसमये चरधिष्ण्यैरुषसि न श्रेष्ठम् ॥'

निशिसमये अर्द्धरात्रे । तथा चाह श्रीपतिः—

पूर्वाह्णे ध्रुवमिश्रभैर्न गमनं तीक्ष्णैर्न मध्यन्दिने
श्रेष्ठे नापरवासरे च लघुभिर्मैत्रैर्न रात्रेर्मुखे ।
उग्राख्यैर्न च मध्यरात्रिसमये नेष्टं निशान्ते करैः
सर्वेष्वेव करैन्दवेज्यहरिभिः कालेषु यात्रा शुभा ॥' इति ।

अत्र दिनस्य रात्रेश्च त्रेधा विभागं कृत्वा पूर्वाह्लादिव्यवहारः प्रसिद्धः । तदेतदुक्तं स्पष्टं महेश्वरेण—'आद्येऽह्नस्त्रिलवे ध्रुवर्क्षसहितैर्मिश्रैर्न यात्रा शुभा । नो तीक्ष्णैरपरांशके न लघुभैरह्नस्त्रिभागेऽन्तिमे ।

त्र्यंशे त्वादिमके निशो न मृगभैरुग्रैर्न मध्येंशके
नान्त्याशे चरभैः करश्रुतिमृगेज्यर्क्षैः शुभा सर्वदा ॥' इति ।

ननु प्राप्तिपूर्वकत्वात्प्रतिषेधस्येतिन्यायात् ध्रुवर्क्षेषु यात्राप्राप्तिरेव नास्ति किं पुनःपूर्वाह्ला-

दिकालविशेषनिषेधेनेति चेत्, उक्तोऽत्र समाधिः। ननु प्राक्पद्ये 'तिस्रोत्तरा' इत्यादिना ध्रुवादीनां मध्यमत्वमङ्गीकृत्य समाहितम्। मिश्रादीनां तु विशिष्यनिषेधात्कथं प्रागुक्तः समाधिरत्र सङ्गच्छेतेति चेत्, सत्यम्। तुल्यन्यायत्वादावश्यकयात्रायां यथा भद्राव्यतीपातादिषु दुष्टेषु केवलां लग्नशुद्धिमाश्रित्यैव यात्रा राज्ञां प्रशस्ता तथा निषिद्धनक्षत्रेष्वपि। अस्मिन्नेवार्थे इदमेव वाक्यं ज्ञापकमिति वयं ब्रूमः। एवं सति कालविशेषनिषेधोपपत्तिरसङ्गता भवति। पूर्वरात्र इति रात्रेः पूर्वः पूर्वरात्र इति 'पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे' इत्येकदेशिसमासस्तत्पुरुषः। तत्र समासशास्त्रांतर्गतस्य प्रथमान्तपूर्वापरादिवाक्यस्य पूर्वशब्दस्य 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' इत्युपसर्जनसञ्ज्ञकत्वात् 'उपसर्जनं पूर्वम्' इति पूर्वनिपातः। ततः 'अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः' इत्यच्प्रत्ययः समासान्तः। 'यस्येति च' इतीकारलोपः। अमुमेवाशयं मनसि निधाय 'उग्राख्यैर्न च मध्यरात्रसमय' इत्यत्र कृतसमासान्तमध्यरात्रशब्दं पठन्ति केचित्, तच्चिन्त्यम्। यतो रात्रेर्मध्यं मध्यरात्र इति विगृह्यते। तदैकदेशिसमासविधायकसूत्रे मध्यशब्दस्याभावादेकदेशिसमासोऽनुपपन्नः। अत एव पूर्वनिपातोऽपि न। समासान्तस्य त्वनुन्मेष एव। तस्माद्रात्रिमध्यसमये इत्येव पाठ्यं स्यादिति कथमयं प्रयोगः। उच्यते। मध्या चासौ रात्रिश्च मध्यरात्र इति 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' इति समानाधिकरणस्तत्पुरुषः। 'पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' इति पूर्वपदस्य पुंवद्भावः। पूर्वादिक् पश्चिमं नभ इत्यादिवदेकशेषपर्यवसानम्। अर्द्धरात्र इत्यर्थः। समासान्तस्त्वत्र नैव भवति। 'अहःसर्वैकदेश' इत्यत्र 'कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्यय' इति न्यायादेकदेशिशब्देन पूर्वापरादिसूत्रस्थः प्रतिपदोक्त एकदेशिसमासो गृह्यते। अत एव च समासान्तविधानादिति घण्टापथकारादयः। ये त्वेवंविधेष्वपि समासेष्वेकदेशिसमासमाश्रित्य समासान्तमाहुः—ते समासविधायकसूत्राभावात्समासान्तविषयन्यायविरुद्धत्वाच्च चिन्त्योक्तयो ध्येयाः। अतः 'उग्राख्यैर्न च मध्यरात्रिसमये' इति श्रीण्तिवाक्येऽपि मध्यरात्रिरितीकारान्तः पाठः पाठ्यः एवं मूलेऽपोत्यलमतिविस्तरेण ॥ ११ ॥

पीताम्बरा—अहोरात्र में काल-विभाग से काल-शूल—ध्रुव-मिश्र-संज्ञक नक्षत्रों में पूर्वाह्न में, तीक्ष्ण नक्षत्रों में मध्याह्न में, लघु सज्ञक नक्षत्रों में अपराह्न में, मैत्र संज्ञक नक्षत्रों में पूर्वरात्रि में, उग्र संज्ञक नक्षत्रों मध्य रात्रि के समय और चर संज्ञक नक्षत्रों में रात्रि के अन्तिम समय में यात्रा नहीं करनी चाहिये।

किन्तु श्रवण हस्त पुष्य और मृगशीर्ष नक्षत्रों में पूरे अहोरात्र में किसी भी इष्ट समय में यात्रा शुभ होती है।

ध्रुवादि संज्ञक नक्षत्रों में यात्रा प्राप्ति नहीं होते हुए भी, पूर्वाह्न अपराह्न आदि कालो में ध्रुव संज्ञकादि नक्षत्रों का यात्रा में समावेश कैसे ?

आवश्यक यात्रा पर भद्रा व्यतीपातादि से मुक्त समय में समीचीन शुभ लग्न की संशुद्धि से भी यात्रा किसी भी नक्षत्र में की जा सकती है ॥ ११ ॥

अथ तत्रापि कालविशेषे मध्यमानां निषिद्धानां च कियता भाना वर्ज्यघटिका इन्द्रवज्राछन्दसाह—

पूर्वाग्निपित्र्यन्तकतारकाणां भूपप्रकृत्युग्रतुरङ्गमाः स्युः।
स्वातीविशाखेन्द्रभुजङ्गमानां नाड्यो निषिद्धा मनुसम्मिताश्च ॥ १२ ॥

पीयूषधारा—पूर्वेति । पूर्वात्रिये प्रथमातिक्रमे कारणाभावादादिमाः षोडश नाड्यो निषिद्धाः । एवमग्नेः कृत्तिकाया एकविंशतिघटिकाः पित्र्यस्य मघाया एकादश घटिकाः अन्तकस्य भरण्याः सप्त घटिकास्त्याज्या इत्यर्थः । स्वातिविशाखाज्येष्ठाश्लेषाणां चतसृणां तारकाणां च चतुर्दश घटिकास्त्याज्याः । यदाह भरद्वाजः—

'भरण्यां सप्त घटिका वह्निभे चैकविंशतिः । एकादशघटीः पित्र्ये त्रिपूर्वासु च षोडश ।
स्वातीसार्पविशाखासु ज्येष्ठायां च चतुर्दश । वर्जयेच्छेषघटिका यातुः शुभफलप्रदा ॥' इति ।

एतदप्यावश्यकगमनविषयम् । तथा च तेनैवोक्तम्—

'निषिद्धेष्वपि ऋक्षेषु त्यक्त्वा दुष्टघटीः क्रमात् ।
तदन्या घटिका ग्राह्या आवश्यगमने सति ॥' इति ।

अपिशब्दान्मध्यमेषु ऋक्षेषु ॥ १२ ॥

पीताम्बरा—निषिद्ध मध्यम फलद नक्षत्रों की वर्ज्य घटिका—तीनों पूर्वा नक्षत्रों की प्रारम्भ की १६ घटिका, कृतिका की २१; मघा की ११, भरणी की ७ घटी त्याग कर तथा स्वाती, विशाखा, ज्येष्ठा, आश्लेषा की आदिम १४ घटिकाओं को त्याग कर शेष समय में यात्रा की जा सकती है ॥ १२ ॥

अथ मतान्तरेण वर्ज्यघटीत्वमिन्द्रवज्रयाह—

पूर्वार्द्धमाग्नेयमघानिलानां त्यजेद्धि चित्राहियमोत्तरार्द्धम् ।
नृपः समस्तां गमने जयार्थी स्वातीं मघां चोशनसो मतेन ॥ १३ ॥

पीयूषधारा—पूर्वार्द्धमिति । स्पष्टार्थमिदं पद्यम् । यदाह बृहद्योगयात्रायां वराहः—

'विवर्जयेत्त्वाष्ट्रयमोरगाणामर्द्धं द्वितीयं गमने जयेप्सुः ।
पूर्वार्द्धमाग्नेयमघानिलानां स्वातीं मघां चोशनसः समस्ताम् ॥' इति ।

उशनसो मतेनेति शेषः ॥ १३ ॥

पीयूषधारा—मतान्तर से वर्ज्य घटिका—यात्रा में सफलता की आकांक्षा से कृतिका, मघा, स्वाती का पूर्वार्द्ध, और चित्रा आश्लेषा भरणी का उत्तरार्द्ध वर्जित कर शेष (उत्तरार्ध और पूर्वार्द्ध) समयों में यात्रा की जा सकती है । शुक्राचार्य के मत से यात्रा के लिए मघा और स्वाती का सम्पूर्ण समय वर्जित है ॥ १३ ॥

अथ भानां जीवपक्षादिकाः सञ्ज्ञा भुजङ्गप्रयातेनाह—

तमोभुक्ततारा: स्मृता विश्वसङ्ख्याः शुभो जीवपक्षो मृतश्चापि भोग्यः ।
तदाक्रान्तभं कर्तरी संज्ञमुक्तं ततोऽक्षेन्दुसङ्ख्यं भवेद्ग्रस्तनाम ॥ १४ ॥

पीताम्बरा—तमोभुक्तारा इति । तमो राहुनामा ग्रहो विपरीतगतिरस्ति । आगमप्रामाण्यात् तेन भुक्ताः तमोभुक्ताः एवंविधा विश्वसंख्यास्त्रयोदशसङ्ख्यास्तारा नक्षत्राणि जीवपक्षो जीवपक्षसंज्ञानि शुभः शुभकार्यकराणि । भोग्याः राहुणाक्रान्तनक्षत्राद्भोग्यानि भोक्तुं योग्यानि त्रयोदश नक्षत्राणि मृतो मृतपक्षसञ्ज्ञानि । तदाक्रान्तभं तेन राहुणाक्रान्तभं कर्तरी इत्येवं नामकम् । ततो राह्वाक्रान्तनक्षत्रादक्षेंदुसङ्ख्यं पञ्चदशसङ्ख्याकं भं ग्रस्तनामकं स्यात् ।

यथा राहुर्हस्तेऽस्ति तेन भुक्तानि चित्रास्वातीविशाखानुराधाज्येष्ठामूलपूर्वाषाढोत्तराषाढाभिजिच्छ्रवणधनिष्ठाशततारकापूर्वाभाद्रपदाख्यानि भानि जीवपक्षः। तदाक्रान्तभात् हस्तात्पञ्चदशमुत्तराभाद्रपदाख्यानि भानि जीवपक्षः। तदाक्रान्तभात् हस्तात्पञ्चदशमुत्तराभाद्रपदाभं ग्रस्तभं ग्रस्तसञ्ज्ञम्। तेन राहुणा भोग्यानि उत्तराफाल्गुनीमघाश्लेषापुनर्वस्वार्द्रामृगरोहिणीकृत्तिकाभरण्यश्विनीरेवत्याख्यानि मृतपक्षः। हस्तस्तु कर्त्तरीसञ्ज्ञमिति। यदाह वसिष्ठः—

'राहुस्थिरर्क्षं तस्यास्य पुच्छं पञ्चदशं ततः। तदेव केतुर्विज्ञेयः सदा राहुः प्रतीपगः॥

त्रयोदश च देयानि धिष्ण्यान्युभयपार्श्वयोः।
मुखभागो मृतेः पक्षो जीवपक्षस्तु पृष्ठगः॥' इति।

स्वरोदयेऽपि—

'राहुभुक्तानि ऋक्षाणि जीवपक्षस्त्रयोदश। त्रयोदशैव भोग्यानि मृतपक्षः प्रकीर्तितः॥
यत्र ऋक्षे स्थितो राहुर्वदनं तद्विनिर्दिशेत्। मुखपञ्चदशे ऋक्षे तस्य पुच्छं व्यवस्थितम्॥' इति।

ग्रन्थकृता कर्तरीग्रस्तसंज्ञा समरसारोक्तत्वात्कृता स्वरोदये षडङ्गराह्वभिधाने च कृताः। अत्र जीवपक्षमृतपक्षयोरन्वर्थसञ्ज्ञाविज्ञानाज्जीवपक्षे यात्रा कार्या। मृतपक्षे यात्रा न कार्येति व्यङ्ग्योऽर्थः। कर्त्तरीग्रस्तयोस्तु फलं स्वयमेव वक्ष्यति—'ग्रस्तर्क्षं मृतपक्षतः शुभकरं ग्रस्तात्तथा कर्त्तरी' इत्यादिना॥ १४॥

पीताम्बरा—नक्षत्रों की जीव पक्षादिक संज्ञा—राहु ग्रह की विपरीत गति है। अतः यदि राहु हस्त नक्षत्र में है तो राहु भुक्त नक्षत्र चित्रा स्वाती विशाखा····पूर्वाभाद्रपदा आदि नक्षत्र होंगे। राहु ने भुक्त १३ नक्षत्रों की जीव-पक्ष संज्ञा शुभ है। तथा राहु नक्षत्र से भोग्य १३ नक्षत्र (उत्तरा फा० मघा श्लेषा····) ग्रस्त संज्ञक होते हैं। जिस नक्षत्र मे राहु स्थित है, उस नक्षत्र का नाम कर्त्तरी और कर्त्तरी संज्ञक नक्षत्र से १५ वे नक्षत्र का ग्रस्त नाम होता है। जैसे हस्त में राहु है तो हस्त से १५ वां (साभिजित्) उत्तरा भाद्रपद ग्रस्त संज्ञक हैं॥१४॥

अथ जीवपक्षादीनां विशेषफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मार्त्तण्डे मृतपक्षगे हिमकरश्चेज्जीवपक्षे शुभा
यात्रा स्याद्विपरीतगे क्षयकरी द्वौ जीवपक्षे शुभा।
ग्रस्तर्क्षं मृतपक्षतः शुभकरं ग्रस्तात्तथा कर्तरी
यायीन्दुः स्थितिमान् रविर्जयकरौ तौ द्वौ तयोर्जीवगौ॥१५॥

पीयूषधारा—मार्त्तण्ड इति। मृतपक्षे मार्त्तण्डे सूर्ये सति चन्द्रश्चेज्जीवपक्षे स्यात्तदा यात्रा शुभा स्यात्। विपरीतगे मार्त्तण्डे जीवपक्षगे सति चन्द्रश्चेन्मृतिपक्षगस्तदा क्रियमाणा यात्रा यातुः क्षयकरी स्यात्। उक्तं च स्वरोदये—

'जीवपक्षे क्षपानाथे मृतपक्षे रवौ तथा।
तस्मिन्काले शुभा यात्रा विपरीता तु हानिदा॥' इति।

द्वौ सूर्याचन्द्रमसौ चेज्जीवपक्षे स्यातां तदा शुभा शुभतरेत्यर्थः। अर्थात् द्वावपि सूर्याचन्द्रमसौ मृतपक्षे स्यातां तदा यात्रातिक्षयकरी स्यात्। एतदप्युक्तं तत्रैव—

'चन्द्रादित्यौ यदा ह्युक्तौ जीवपक्षे व्यवस्थितौ ।
तत्र क्षेमं जयो लाभो यात्राकाले न संशयः ।।
मृतपक्षे यथाकाले संस्थितौ चन्द्रभास्करौ ।
तदा हानिर्भयं भङ्गो मृत्युर्यात्राफलं मतम् ।।' इति ।

अस्यापवादमाह —

ग्रस्तमिति । मृतपक्षतः मृतपक्षसंज्ञकनक्षत्रगणनात् ग्रस्तर्क्षं राह्वाक्रान्तनक्षत्रात्पञ्चदशसङ्ख्याकं भं शुभकरं स्यात् । यथा शवान्मरिष्यमाणो देही प्रबलः तथा ग्रस्ताद् ग्रस्तनक्षत्रात्कर्तरी राह्वाक्रान्तं भं शुभकरं स्यात् । तदुक्तं समरसारे—प्रेताज्जग्धं किमपि तु वरं कर्तरीजग्धतश्च' इति ।

स्थायियायिनो राज्ञोर्जयपराजयसन्धयः फलानि अर्थार्जनयुद्धयात्रयोः—

एवं सामान्यतः सर्वेषां यात्राफलविचारमभिधाय राज्ञां विशेषमाह—यातीति । द्विविधो राजा स्थायी यायी चेति । यो राजा स्वदेशे दुर्गं कृत्वा तिष्ठति स स्थायी । यो वैरिणमुद्दिश्य जिगमिषुः स यायी । तत्रेन्दुश्चन्द्रो यायिनो राज्ञः स्वामी, रविः स्थितिमान् स्थायिनो राज्ञः स्वामी । तौ द्वौ सूर्याचन्द्रमसौ जीवगौ जीवपक्षगतौ सन्तौ तयो राज्ञोः स्थायियायिनोर्जयकरौ सन्धिकरौ स्याताम् । रविश्चेज्जीवपक्षगः तदा स्थायिनो जयः । चन्द्रश्चेज्जीवपक्षगस्तदा यायिनो जयः । अर्थात् द्वावपि चेत् । मृतपक्षगौ तदा पराजयकरौ स्याताम् । यदाह वसिष्ठः—

'जीवपक्षगयोः सूर्यचन्द्रयोः सन्धिमादिशेत् ।
उभौ पराजितौ ज्ञेयौ मृतपक्षगयोस्तयोः ।।' इति ।

अत्रापि मार्त्तण्डे 'मृतपक्षग' इत्यनुवर्तत एवं सत्ययमर्थः । मृतपक्षगे सूर्ये चन्द्रश्चेज्जीवपक्षगस्तदा यायिनां राज्ञां शुभा यात्रा जयः स्यात्, स्थायिनां पराजयश्च । तदुक्तं वसिष्ठेन—

'रविः स्थायी शशी यायी तद्वशाच्च जयाजयौ । मृतपक्षगते भानौ जीवपक्षगते विधौ ।।
यायिनां विजयस्तत्र स्थायिनां च पराजयः ।' इति ।

विपरीतगे चन्द्रे मृतिपक्षगते सूर्यश्चेज्जीवपक्षगतस्तदा स्थायिनां राज्ञां शुभा यात्रा जयः स्यात् । अर्थाद्यायिना पराजयः । उक्तं च तेनैव—

'जीवपक्षगते सूर्ये मृतपक्षगते विधौ । स्थायिनां विजयस्तत्र यायिनां च पराजयः ।।' इति ।

यदा तु सूर्ये राह्वाक्रान्तनक्षत्रे चन्द्रोऽक्षेन्दुसङ्ख्ये तदा यायिनां स्वल्पो जयो स्थायिनां नैव । यदा तु चन्द्रो राह्वाक्रान्तनक्षत्रे सूर्योऽक्षेन्दुसंख्ये तदा स्थायिनां स्वल्पो जयो यायिनां नैव । यदा द्वावपि राह्वाक्रान्तनक्षत्रे तदा द्वयोरपि पराजयः । यदा तु अक्षेन्दुसंख्यभस्थितौ द्वौ तदा द्वयोरपि सन्धिरित्यपि विशेषो ध्येयः । यदाह वसिष्ठः—

'चन्द्रे पुच्छे मुखे सूर्ये जयः स्वल्पोऽपि यायिनाम् । व्यत्यये व्यत्ययफल युद्धेप्येवं विचिन्तयेत् ।।
यात्रायामपि सर्वत्र चिन्तनीय प्रयत्नतः ।' इति ।

तस्मादयं विचारो युद्धयात्रायामर्थार्जनादिसामान्ययात्रायां च ज्ञेयः सामान्यतो मङ्गलकृत्येष्वपि ज्ञेयः । उक्तं च स्वरोदये—

'जीवपक्षस्थिते चन्द्रे कार्यं स्यादमृतोपमम् ।
मृतपक्षे मृतं ज्ञेयं यतश्चन्द्रबले बलम् ।।' इति ।

अत्र स्वरोदयादियुद्धग्रंथेषु षडङ्गराहुनक्षत्रचरणफलान्यभिहितानि ग्रन्थकर्ता ग्रन्थभूयस्त्व-भयान्नोक्तानीति नास्माभिर्विविच्यन्ते शुश्रूषुभिश्च तत एवावधार्याणीत्यलं पल्लवितेन ॥ १५ ॥

पीताम्बरा—जीव मृत पक्ष में यात्रा का शुभाशुभ फल—सूर्य मृत पक्ष में, चन्द्रमा जीव पक्ष में हो तो यात्रा शुभ होती है। विपरीत अर्थात् मृत पक्ष में चन्द्रमा और जीव पक्ष में सूर्य होने से यात्रा अशुभ होती है।

सूर्य चन्द्र दोनों जीव पक्ष में हों तो यात्रा शुभतर होती है। अर्थात् दोनों मृतपक्ष में हों तो यात्रा अति क्षय करी होती है।

मृत पक्ष से ग्रस्त नक्षत्र शुभ होता है। तथैव ग्रस्त से कर्तरी शुभ होती है।

यात्री दो प्रकार के (राजा या व्यक्ति) होते हैं। (१) स्थायी। (२) यायी। जो राजा अपने नगर के किले में बैठा है वह स्थायी और जो शत्रु नगर पर विजय कामना से ससैन्य युद्ध के लिए यात्रा करता है वह यायी कहलाता है। आधुनिक न्यायालयों में न्याया-धीश से प्रथमतः जो अन्य व्यक्ति से अपनी सम्पति सत्ता आदि प्राप्ति के लिये प्रार्थना करता है वह यायी (मुद्दयी) जिससे लाभ चाहता है वह स्थायी (मुद्दालह) कहलाता है।

यायी का अधिपति चन्द्रमा और स्थायी का अधिपति सूर्य होता है। सूर्य चन्द्र दोनों जीवपक्ष में हों तो दोनों राजाओं की या व्यक्तियों की परस्पर सन्धि होती है। जीव पक्ष में रवि से स्थायी की और चन्द्रमा के जीव पक्ष में रहने से यायी की विजय होती है। यदि सूर्य चन्द्र दोनों मृत पक्ष नक्षत्रस्थ हों तो दोनों की पराजय होती है ॥ १५ ॥

अथ सफलमकुलकुलाकुलकुलचक्रं युद्धयात्रायां वसन्ततिलकाशार्दूलविक्रीडिताभ्यामाह—

स्वात्यन्तकाहिवसुपौष्णकरानुराधा-
दित्यध्रुवाणि विषमास्तिथयोऽकुलाः स्युः।
सूर्येन्दुमन्दगुरवश्च कुलाकुला ज्ञो
मूलाम्बुपेशविधिभं दशषड्द्वितिथ्यः ॥ १६ ॥
पूर्वाश्वीज्यमघेन्दुकर्णदहनद्वीशेन्द्रचित्रास्तथा
शुक्रारौ कुलसञ्ज्ञकाश्च तिथयोऽर्काष्टेन्द्रवेदैर्मिताः।
यायी स्यादकुले जयी च समरे स्थायी च तद्वत्कुले
सन्धिः स्यादुभयोः कुलाकुलगणे भूमीशयोर्युध्यतोः ॥१७॥

पीयूषधारा—स्वात्यन्तेति। स्वाती प्रसिद्धा, अन्तकं भरणी, अहिराश्लेषा, वसुर्धनिष्ठा, पौष्णं रेवती, करो हस्त, आदित्यं पुनर्वसुः, ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयं च, एतानि द्वादश भानि विषमास्तिथयः प्रतिपत्तृतीयापञ्चमोसप्तमीनवम्येकादशीत्रयोदशीपञ्चदश्य इत्यष्टौ तिथयः, वाराः सूर्येन्दुमन्दगुरवः, मन्दः शनिः चत्वारो वाराः एतानि नक्षत्राणि तिथयो वाराश्च प्रत्येकमकुलसंज्ञकाः स्युः। ज्ञो बुधवार एकः मूलं प्रसिद्धम्, अम्बुपं शततारका, ईश आर्द्रा, विधिभमभिजित् एतानि चत्वारि भानि दशषड्द्वितिथ्यः दशमीषष्ठीद्वितीयास्तिस्रस्तिथयश्च। एते पदार्थाः प्रत्येकं कुलाकुलसंज्ञकाः स्युः।

पूर्वाश्वीति। पूर्वास्तिस्रः, अश्विनो अश्विनी, इज्यः पुष्यः, मघाइन्दुर्मृगः, कर्णः श्रवणः,

दहनः कृत्तिका, द्वीशं विशाखा, इन्द्रो ज्येष्ठा, चित्रा प्रसिद्धा, एतानि द्वादश भानि शुकारौ शुक्रमङ्गलवारौ अर्काष्टेन्द्रवेदैर्मिताः द्वादश्यष्टमीचतुर्थीसंज्ञाश्चतस्रस्तिथय एते प्रत्येकं कुल-संज्ञकाः स्युः ।

अकुलकुलाकुलादियोगेषु यात्रायां फलानि—

तदुक्तं स्वरोदये—

द्वितीया दशमी षष्ठी कुलाकुलमुदाहृताः ।
विषमा अकुला सर्वाः शेषाश्च तिथयः कुलाः ॥
रविश्चन्द्रो गुरुः सौरिश्चत्वारो ह्यकुला मताः ।
भौमशुक्रौ कुलाख्यौ च बुधवारः कुलाकुलः ॥
वारुणार्द्राभिजिन्मूलं कुलाकुलमुदीरितम् ।
कुलानि मासधिष्ण्यानि शेषभान्यकुलानि तु ॥

अस्य फलमाह—यायीति । अकुलसंज्ञके तिथिवारनक्षत्राणां गणे समरे युद्धप्रारम्भे सति यायी राजा जयी स्यात् । यदि कुलसंज्ञके तिथिनक्षत्रवारगणे सति समरे स्थायी राजा तद्वज्जयी जययुक्तः स्यात् । कुलाकुलसंज्ञके तिथिवारनक्षत्रगणे युद्धचतोर्युद्धं कुर्वतोर्भूमीशयो राज्ञोरुभयोः परस्परं सन्धिः प्रीतिः स्यात् । उक्तं च स्वरोदये—

'तिथौ वारे च नक्षत्रे अकुले यायिनो जयः ।
कुलाख्ये स्थायिनो ज्ञेयः सन्धिश्चैव कुलाकुले ॥' इति ।

वसिष्ठेन तु फलान्तरमप्युक्तम्—

'कुलभेषु च ये जातास्ते मनुजा भवन्ति कुलमुख्याः ।
उपकुलभे परविभवं भोक्तारस्त्वन्यभेषु सामान्याः ॥' इति ।

एतत्तुल्यन्यायत्वाद्वारेषु तिथिष्वपि ध्येयम् ॥ १६-१७ ॥

पीताम्बरा—अकुल, फुलाकुल और कुलसंज्ञक नक्षत्र—स्वाती, भरणी, आश्लेषा, धनिष्ठा, रेवती, हस्त, अनुराधा पुनर्वसु, ध्रुव संज्ञक नक्षत्र, तथा विषम संज्ञक (१।३।५।७।९। ११।१३।१५) तिथियाँ, रवि चन्द्र बृहस्पति और शनिवार इनमें प्रत्येक की अकुल संज्ञा है ।

मूल, शतभिषा, आर्द्रा, अभिजित् नक्षत्र २, ६, १० तिथियाँ और बुधवार इनमें प्रत्येक की कुलाकुल संज्ञा है ।

तीनों पूर्वा, अश्विनी, पुष्य मघा, मृगशिरा श्रवण कृतिका, विशाखा ज्येष्ठा, चित्रा नक्षत्र शुक्र मंगलवार १२।८।१४।४ तिथियाँ कुल संज्ञक हैं ।

अकुल संज्ञक तिथिनक्षत्र वारादिकों में युद्ध होने से यायी की जय, कुल—संज्ञक में स्थायी की जय तथा कुलाकुल में युद्ध होने से परस्पर सन्धि होती है ॥ १६-१७ ॥

अथ पथिराहुचक्रं स्रग्धरयाह—

स्युर्धर्मे दस्रपुष्योरगवसुजलपद्वीशमैत्राण्यथार्थे
याम्याजाङ्घ्रीन्द्रकर्णादितिपितृपवनोडून्यथो भानि कामे ।
वह्न्यार्द्राबुध्न्यचित्रानिर्ऋतिविधिभगाख्यानि मोक्षेऽथ रोहि-
ण्यार्यम्णाप्येन्दुविश्वान्तिमभदिनकरर्क्षाणि पथ्यादिराहौ ॥ १८ ॥

पीयूषधारा—स्युरिति । अश्विनीपुष्याश्लेषाधनिष्ठाशततारकाविशाखानुराधाख्यानि-भानि धर्मे धर्मस्थाने लेख्यानि स्युः । अथ भरणीपूर्वाभाद्रपदाज्येष्ठाश्रवणपुनर्वसुमघास्वात्या-ख्यान्युडूनि अर्थे लेख्यानि स्युः । अथ कृत्तिकार्द्रोत्तरभाद्रपदाचित्रामूलाभिजित्पूर्वाफल्गुनीनक्षत्राणि कामे लेख्यानि स्युः । अथ रोहिण्युत्तराफल्गुनीपूर्वाषाढामृगोत्तराषाढारेवतीहस्ताख्यानि भानि मोक्षमार्गे लेख्यानि स्युः । पथिशब्द आदिर्यस्य स तादृशे राहौ पथिराहावित्यर्थः । चक्र इति विशेष्यमध्याहार्यम् ।

'ऊर्ध्वगाः पञ्च रेखाः स्युस्तिर्यग्रेखास्तथा नप । द्वात्रिंशत्कोष्ठकैश्चकं पथिराहुः प्रकीर्तितः ॥

धर्मार्थकाममोक्षाः स्युरूर्ध्वकोष्ठचतुष्टये । विन्यसेत्सर्पचलनादश्विन्यादीनि भान्यथ ॥' इति ।

सर्पचलनवदनुलोमविलोमाभ्यां भानि लेख्यानीत्यर्थः ।

तदेतत्स्पष्टमुक्तमादियामले—

'अश्विन्यादीनि चत्वारि गणयेत्सप्तधा पुनः ।
अनुलोमविलोमाभ्यां साभिजिन्ति पुनः पुनः ॥
धर्मार्थकाममोक्षाख्या मार्गाश्चत्वार एव च ।' इति ।

अत्र ग्रन्थकृत्पद्ये गौरवदर्शनात्पूर्वपक्षो जायते । तदुपपत्तिस्तत्समाधिश्च 'अन्धाक्षं वसु-पुष्य' इत्यादिपद्यव्याख्याने तिष्ठति । सा तत एवावधार्या । अत एवोक्तमादियामले—

'तिष्याश्वाहिविशाखाश्च मैत्रं शतभिषग्वसुः । एतानि सप्तऋक्षाणि धर्ममार्गे नियोजयेत् ।
अजपादमघास्वाती याम्यज्येष्ठाः पुनर्वसुः । श्रवणं सप्त ताराश्च धनमार्गे प्रकीर्तिताः ॥
अहिर्बुध्न्याभिजिन्मूलभगत्वाष्ट्रार्द्रकृत्तिकाः । एतावत्यः सप्त ताराः काममार्गे व्यवस्थिताः ॥
विधीन्दुविश्वहस्ताश्च उत्तरावारिपौष्णकाः । सप्तसङ्ख्याकऋक्षाणि मुक्तिमार्गे व्यवस्थिता ॥'इति।

विधिः रोहिणी ॥ १८ ॥

पथिराहुचक्रम्—

मोक्षः	रो.	मृ.	उ.	ह.	पू.	उ.	रे.
कामः	कृ.	आ.	पू.	चि.	मू.	अ.	उ.
अर्थः	भ.	पु.	म.	स्वा.	ज्ये.	श्र.	पू.
धर्मः	अ.	पु.	आ.	ध.	श.	वि.	अनु.

पीताम्बरा—(मार्ग में) पथि राहु चक्र—यात्रा फल ज्ञापक धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में २७ नक्षत्रों में सात-सात नक्षत्र के विभाजन वश फलादेश किया जावेगा । अतः अश्विनी-पुष्य आश्लेषा, धनिष्ठा, शत तारा, विशाखा, अनुराधा ये सात नक्षत्र धर्म स्थानीय, भरणी पूर्वा-

भाद्रपदा, ज्येष्ठा, श्रवण पुनर्वसु, मघा, और स्वाती, ये सात नक्षत्र अर्थस्थानीय, कृतिका आर्द्रा उत्तराभाद्रपदा चित्रा मूल अभिजित, पूर्वाफाल्गुनी''''ये ७ नक्षत्र कामस्थानीय और रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा मृगशिरा, उत्तराषाढ़ा, रेवती, हस्त ये सात नक्षत्र मोक्षस्थानीय हैं। पीयूष के चक्र दर्शन से सुस्पष्ट है ।। १८ ।।

अथैवं पथिराहुचक्रमुक्त्वा तत्फलं स्रग्विणीछन्दसाह—

धर्मगे भास्करे वित्तमोक्षे शशी वित्तगे धर्ममोक्षस्थितिः शस्यते ।
कामगे धर्ममोक्षार्थगः शोभनो मोक्षगे केवलं धर्मगः प्रोच्यते ।। १९ ।।

पीयूषधारा—धर्मग इति। धर्ममार्गस्थिते भास्करे सूर्ये सति चेद्वित्तमोक्षगे अर्थमार्गे मोक्षमार्गे वा शशी स्यात्तदा शोभनश्चन्द्रः। अथवा वित्तगे अर्थगे भास्करे सति धर्ममार्गस्थितो मोक्ष मार्गस्थितो वा चेच्छशी स्यात्तदा शोभनः। अथवा कामगे काममार्गस्थिते भास्करे धर्ममार्गगो मोक्षमार्गगो वा स्याच्चेच्छशी तदापि शुभः। अथवा मोक्षमार्गस्थिते भास्करे केवलं धर्ममार्गस्थितश्चेच्चन्द्रः स्यात्तदापि शुभः। अर्थात् विपरीतावस्थितौद्वयोः सूर्याचन्द्रमसोरशुभत्वं स्यात्। उक्तं चादियामले—

सूर्ये धर्मगते चन्द्रो धने मोक्षे शुभप्रदः। सूर्य धनगते वित्तमोक्षमार्गे शुभः शशी ।।
कामेऽर्के धर्ममोक्षार्थे संस्थश्चन्द्रो जयप्रदः। मोक्षेऽर्के धर्मश्चन्द्रः शुभोऽन्यत्र न शोभनः ।।' इति।

राजविजये तु शुभाशुभाख्यफलद्वयमप्यभिहितम्—

'धर्ममार्गगते सूर्ये चन्द्रे तत्रैव संस्थिते। समं युद्धं भवेतत्र किञ्चिद्यायी जयी भवेत् ।।
धर्मे सूर्योऽर्थगश्चन्द्रो यायिनो विजयप्रदौ। धर्मेऽर्कः कामगश्चन्द्रो विरोधो बान्धवैः सह ।।
धर्मेऽर्को मोक्षगश्चन्द्रः शुभयोगेन लाभकृत्। अर्थेऽर्को धर्मगश्चन्द्रः शुभयुक्तश्च लाभकृत् ।।
अर्थस्थौ चन्द्रसूर्यौ च यायिनां भङ्गदायकौ। अर्थेऽर्कः कामगश्चन्द्रो निन्द्यो यात्रासु कर्मसु ।।
अर्थेऽर्को मोक्षगश्चन्द्रः शुभयुग्भूमिलाभकृत्। कामेऽर्को धर्मगश्चन्द्रः शुभयुग्ग्रन्थलाभकृत् ।।
कामेऽर्कोऽर्थगतश्चन्द्रो बुधो जीवगतो यदि। श्रीलाभद्रौ समाख्यातौ भृगुणाथ समन्वितौ ।।
चन्द्रार्कौ कामगौ यत्र रिपुयोगादिदुःखदौ। कामेऽर्को मोक्षगश्चन्द्रः शुभयुतोऽर्थलाभकृत् ।।
मोक्षेऽर्कश्चन्द्रमा धर्मे महालाभः शुभान्वितः। मोक्षे सूर्योऽर्थगश्चन्द्रस्तथा यात्रा न निष्फला ।
मोक्षेऽर्के कामगश्चन्द्रो यात्रा दुःखप्रदा भवेत्। चन्द्रार्कौ मोक्षमार्गस्थौ घोरविघ्नप्रदायकौ ।।
यात्रादिसर्वकार्येषु चक्रमेतद्विलोकयेत्। पथिराहुरिति ज्ञेयः शुभाशुभफलप्रदः ।।' इति।

अत एवास्य निष्कृष्टमर्थमाहुरस्मत्पितामहानन्तचरणाः—

धर्मेऽर्को वित्तमोक्षेऽब्जो वित्तस्थे धर्ममोक्षगः। कामो धर्मार्थमोक्षेषु मोक्षे धर्मगतः शुभः ।।'

इति सफलं पथिराहुचक्रम् ।। १९ ।।

पीताम्बरा—पथि (मार्ग में) राहु चक्र का फल—सूर्य धर्म मार्ग में, चन्द्रमा अर्थ या मोक्ष मार्ग में हो तो यात्रा शुभ होती है। अथवा अर्थमार्गग सूर्य, धर्म या मोक्ष मार्गगामी चन्द्रमा हो तो भी यात्रा शुभ होती है। अथवा काम मार्गगामी सूर्य, धर्म या मोक्ष मार्गगामी चन्द्रमा से भी यात्रा शुभ होती है। अथवा मोक्षमार्गगत सूर्य केवल धर्ममार्गगामी चन्द्रमा हो तो भी यात्रा शुभ होती है। इससे विपरीत सूर्य चन्द्र की स्थितियो मे यात्रा अशुभ ही होती है ।। १९ ।।

अथावश्यकर्त्तव्याया यात्राया तिथौ दुष्टाया तिथिचक्रं शालिनीवृत्तचतुष्टयेनाह—

पौषे पक्षत्यादिका द्वादशैवं तिथ्यो माघादौ द्वितीयादिकास्ताः ।
कामात्तिस्रः स्युस्तृतीयादिवच्च याने प्राच्यादौ फलं तत्र वक्ष्ये ॥ २० ॥

सौख्यं क्लेशो भीतिरर्थागमश्च शून्य नैःस्वं निःस्वता मिश्रता च ।
द्रव्यक्लेशो दुःखमिष्टाप्तिरर्थो लाभः सौख्यं मङ्गलं वित्तलाभः ॥ २१ ॥

लाभो द्रव्याप्तिर्धनं सौख्यमुक्तं भीतिर्लाभो मृत्युरर्थागमश्च ।
लाभः कष्टद्रव्यलाभौ सुखं च कष्टं सौख्यं क्लेशलाभौ सुखं च ॥ २२ ॥

सौख्यं लाभः कार्यसिद्धिश्च कष्टं क्लेशः कष्टात्सिद्धिरर्थो धनं च ।
मृत्युर्लाभो द्रव्यलाभश्च शून्यं शून्यं सौख्यं मृत्युरत्यन्तकष्टम् ॥ २३ ॥

पीयूषधारा—पौषे इत्यादि । अत्र पौषमासादितः प्रतिमासं द्वादश द्वादश कोष्ठका लेख्याः । एवं कृते चतुश्चत्वारिंशदधिकशतं कोष्ठका जायन्ते । मासकोष्ठकसहिताः षट्पञ्चाशदधिकशतं कोष्ठकाः स्युरित्यर्थः । एवं चक्राकृतिर्भवति । तत्र पक्षस्य (शुक्लस्य कृष्णस्य वा) मूलं प्रारम्भः प्रतिपदादिति यावत् । 'पक्षात्तिः' इति मूलेऽर्थे तिप्रत्ययः । प्रथमं पौषे पौषमासे पक्षतिः प्रतिपत् तदादिका द्वादश तिथयोऽधोधो लेख्याः माघादौ माघादिमासेषु द्वितीयादिकास्तिथयो लेख्याः यथा माघे द्वितीयादिकाः' फाल्गुने तृतीयादिकाः, चैत्रे चतुर्थ्यादिकाः वैशाखे पञ्चम्यादिकाः, ज्येष्ठे षष्ठ्यादिकाः आषाढे सप्तम्यादिकाः, श्रावणेऽष्टम्यादिकाः, भाद्रपदे नवम्यादिकाः, आश्विने दशम्यादिकाः, कार्तिके एकादश्यादिकाः, मार्गशीर्षे द्वादश्यादिकाः लेख्याः । सर्वास्तिथयो द्वादश्यन्ता लेख्याः । कामात्तिस्रः स्युरिति विशेषोक्तेस्त्रयोदश्याद्यग्रहणादवशिष्टस्थानानि प्रतिपदादिभिः पूरणीयानि । तत्र त्रयोदशीचतुर्दशीपञ्चदश्यस्तिथयोऽवशिष्यन्ते तासां विभागमाह—कामात्तिस्र इति । कामात्त्रयोदशीतस्तिस्रस्त्रयोदशीचतुर्दशीपञ्चदश्यस्तृतीयादितिथिवत्स्युः । यथा त्रयोदशी तृतीयावत् चतुर्दशी चतुर्थीवत्, पञ्चदशी पञ्चमीवत्स्युरित्यर्थः । फलार्थमतिदेशोऽयम् तिथिचक्रन्यासो यथा-तत्र प्राच्यादौ प्राचीदक्षिणाप्रतीच्युदीचीषु चतसृषु दिक्षु यानं गमने चिकीर्षिते सति फलं शुभाशुभरूपं 'सौख्यं क्लेशं' इत्यादिना वृत्तत्रयेण वक्ष्ये कथयिष्यामि ।

तत्र सौख्यं क्लेश इत्यादि । वृत्तत्रयं स्पष्टार्थमेव । तत्र पौषमासे प्रतिपदि दिक्चतुष्टये सौख्यं क्लेशो भीतिरर्थागमश्चेतिफलचतुष्टयंक्रमेण ज्ञेयम् । एवं द्वितीयादिष्वपि क्रमेण दिक्चतुष्टये श्लोकतुर्यांशोक्तं फलं स्यात् । तदेतत्सर्वं माघादिमासेषु द्वितीयादि तिथिषु ध्येयमित्यर्थः ॥२०-२३॥

पीताम्बरा—प्रत्येक मास में पूर्वादि क्रम की शुभ और अशुभ तिथियाँ—दोनों पक्षों में पौष मास की प्रतिपदा से द्वादशी तक १२ तिथियाँ, माघ की द्वितीया से १२ तिथियाँ द्वादशी के पश्चात् प्रतिपदा तक, फाल्गुन की तृतीया से १२ तिथियाँ प्रतिपद के पश्चात् द्वितीया तक, केवल १२ तिथियों में द्वादशी तक ही सभी तिथियाँ लिखकर, (त्रयोदशी चतुर्दशी और पूर्णिमा की जगह पर क्रमशः तृतीया चतुर्थी और पञ्चमी माननी चाहिये) २०८ कोष्ठ का एक चक्र बनाना चाहिए । चक्र नीचे स्पष्ट है ।

जैसे इस चक्र में पौष मास की प्रतिपदा तिथि की पूर्व यात्रा में सौख्य, दक्षिण में क्लेश, पश्चिम में भीति और उत्तर में लाभ होगा यही फल माघ की द्वितीया, फाल्गुन की तृतीया, चैत्र की चतुर्थी, वैशाख की पञ्चमी, ज्येष्ठ की षष्ठी, आषाढ़ की सप्तमी, श्रावण की अष्टमी, भाद्रपद की नवमी, आश्विन की दशमी, कार्तिक की एकादशी और मार्गशीर्ष की द्वादशी को पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की दिशाओं की यात्रा में होगा। प्रत्येक मास की त्रयोदशी चतुर्दशी और पूर्णिमा का शुभाशुभ प्रत्येक मास की तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी की तरह समझना चाहिये ॥२०-२१-२२-२३॥

अथ तिथिचक्रम्—

पौ.	मा.	फा	चै.	वै.	ज्ये	आ	श्रा	भा.	आ	का	मा.	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	सौख्यम्	क्लेशः	भीतिः	अर्था.
२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	शून्यम्	नैःस्वं	नैःस्वं	मिश्र.
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	द्र. क्ले.	दुःखं	द्र. प्रा.	अर्थः
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	लाभः	सौख्यं	मङ्गलं	वित्तलाभः
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	लाभः	द्र. प्रा.	धन प्रा.	सौख्यं
६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	भीतिः	लाभः	मृत्युः	अर्था
७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	लाभः	कष्टं	द्र. ला.	सुखं
८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	कष्टं	सौख्यं	क्ले.ला.	सुखं
९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	सौख्यं	लाभः	कष्टार्त्ति	कष्टं
१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	क्लेशः	कष्टा.	अर्थः	धनम्
११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	मृत्युः	लाभः	द्र. ला.	शून्यं
१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	शून्यम्	सौख्यं	मृत्युः	अत्यंतकष्टं

अथ सर्वाङ्कज्ञानं वसन्ततिलकयाह—

तिथ्यृक्षवारयुतिरद्रिगजाग्नितष्टा स्थानत्रयेऽत्र वियतिप्रथमेऽतिदुःखी ।
मध्ये धनक्षतिरथो चरमे मृतिः स्यात् स्थानत्रयेऽङ्कयुजि सौख्यजयौ निरुक्तौ ॥२४॥

पीयूषधारा—तिथ्यृक्षवारेति। तिथयोऽत्र शुक्लपक्षादितो ग्राह्याः। तत्र तिथिनक्षत्रवाराणां युतिः स्थानत्रये स्थाप्या। क्रमेण सप्तभिरष्टभिस्त्रिभिश्च तष्टा भक्तावशिष्टा सती प्रथमे-

स्थाने वियति शून्ये सति अतिदुःखी यात्राकर्ता स्यात् । मध्ये द्वितीयस्थाने वियति सति धनक्षतिर्द्रव्यनाशः । अथो चरमे तृतीयस्थाने वियति सति मृत्युर्मरणं स्यात् । स्थानत्रयेऽङ्कयुज्यङ्कयुते सौख्यजयौ भवेताम् । उक्तं च दैवज्ञमनोहरे चण्डेश्वरेण—

'तिथिं वारं च नक्षत्रं संयुक्तं स्थापयेत्त्रिधा ।
द्वाभ्यां रामैस्तथा वेदैर्गुणयित्वाथ तद्बुधैः ॥
भाजितं चाष्टमुनिभिस्तथा द्विगुणपावकैः ।
आदिशून्ये भवेत्पीडा मध्यशून्ये महद्भयम् ॥
अन्त्यशून्ये भवेद्धानिः सर्वशून्ये न जीवति ।
सर्वाङ्के विजयो राज्ञो धनलाभो रिपोर्वधः ॥' इति ।

द्विगुणपावकाः षट् । ननु ग्रन्थकर्त्रा स्थानत्रये शून्ययुजि फलाभिधानं कस्मान्नाकारीति चेत्, सत्यम् । असम्भवादेव नोक्तमिति वयं ब्रूमः । अनेकधा हि तिथिवारनक्षत्रयुतौ कल्पितायां यथाकथञ्चित्स्थानद्वये शून्ययोगो भवति न कदाचित्स्थानत्रय इति चण्डेश्वरस्य क आशय इति चेत्, सत्यम् । यद्यपि सर्वशब्दो वस्तुगतं बहुत्वं प्राह । तथाप्यत्रासम्भवादेकत्वव्यतिरिक्तसङ्ख्यापरः । तथा सति स्थानद्वये शून्ययुजि मृत्युरित्यर्थः । अत्र सर्वाङ्कध्रुवाङ्के यात्राकर्तुर्नक्षत्रं योज्यमित्याहु ॥ २४ ॥

पीलाम्बरा—यात्रा के समय अंक ज्ञान से शुभाशुभ—यात्रा के अभीष्ट दिन के तिथि वार नक्षत्रों के योग को तीन स्थानों पर रखकर क्रमशः ७, ८, ३ से भाग देने से प्रथम-द्वितीय तृतीय स्थानों में शून्य शेष (अथवा ७, ८, ३ शेष) बचने से यात्रा करने वाला क्रमशः अत्यन्त दुःख, द्रव्यनाश और मृत्यु प्राप्त करता है। भाग देने से तीनों स्थानों में अंकात्मक शेष से सुख और विजय की प्राप्ति होती है।

उदाहरण से—सं० २०२८ ज्येष्ठ शुक्ल दशमी गुरुवार हस्त नक्षत्र में पञ्चाङ्गों में व्यतीपात के पूर्व में दक्षिण दिशा को छोड़कर शेष तीनों दिशाओं की यात्रा का मुहूर्त दिया गया है। अतः शुक्ल प्रतिपदादि तिथि संख्या १० + वार संख्या ५ + यात्रा करने वाले की नक्षत्र संख्या पुनर्वसु ७=२२ में पृथक्-पृथक् ७, ८, ३ का भाग देने से क्रमशः प्रथम स्थान में शेष १, द्वितीय स्थान में ६, तृतीय स्थान में शेष १ रहने से पुनर्वसु नक्षत्र के यात्रियों की यात्रा शुभ होती है।

उक्त तिथि वार नक्षत्र योग रूप ध्रुवकों में तिथिवार पञ्चाङ्ग से तीसरा ध्रुवाङ्क और यात्री का जन्म नक्षत्र लेना चाहिये। ऐसा पीयूषकार का मत है।

किन्तु परम्परया नक्षत्र भी पञ्चाङ्गस्थ ही लिया जाता है। तदनुसार हस्त नक्षत्र संख्या १० + ५ + १३=२८ ÷ ७ शेष=१, २८ ÷ ८ शेष=४, २८ ÷ ३=शेष १, शून्य शेष कहीं भी नहीं होने से इस दिन की यात्रा शुभ है। गुरुवार होने से दक्षिण दिशा शूल से दक्षिण यात्रा निषेध सही है। यतः हस्त नक्षत्र की यात्रा चारों दिशाओं के लिए शुभ है ॥ २४ ॥

अथ—दाक्षिणात्यप्रसिद्धान् कियतो दोषान् वक्तुकामस्तावन्महाडलभ्रमणाख्यौ दोषौ प्रमाणिकाछन्दसाह—

रवेर्भतोऽब्जभोन्मितिर्नगावशेषिता द्वचगा।
महाडलो न शस्यते त्रिषण्मिता भ्रमो भवेत् ॥ २५ ॥

पीयूषधारा—रवेरिति। सूर्यनक्षत्रादब्जभस्य चन्द्रनक्षत्रस्योन्मितिर्गणना कार्या। सा नगैः सप्तभिरवशेषिता सती द्वचगाद्विशेषमिता सप्तशेषमिता वा भवेत्तदा महाडलो दोषः स्यात्। स न शस्यते प्रशस्तो न भवेत्। प्रागुक्तप्रकारेण यदि त्रिषण्मिता त्रिशेषमिता षट्शेषमिता वा स्यात्तदा भ्रमणाख्यो दोषः स्यात्। सोऽपि न शस्यते। एतन्निर्मूलम्, ऋषिवाक्याभावात्। तथापि पौरुषवाक्यमेतत्—

'सूर्यभाद्गणयेच्चान्द्रं सप्तभिर्भागमाहरेत्।
एकं पञ्च च चत्वारि आडलो याति निश्चयात् ॥
त्रिषट्के भ्रमणं शेषे द्वौ सप्त स्यान्महाडलः।' इति।

तत्र भ्रमणाख्यं दोषं तु यात्रायामेव त्यजन्ति। आडले बहूनि शुभकर्माणि त्यजन्ति। आहुश्च—

'यात्रायां च हलप्रवाहसमरे चौर्ये च सन्धौ तथा
कूपारामतडागबन्धनविधौ पापद्धिदुर्गग्रहे।
अश्वेभोष्ट्ररथादिरोहणकृतौ त्याज्यं सदैवाडलं
यत्नादत्र शुभेषु मङ्गलविधौ दोषो न तस्य क्वचित्।' इति ॥ २५ ॥

पीताम्बरा—महाडल दोष—सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिनती कर ७ से भाग देने से शेष २, ७ या शून्य से महाडल, ३, ६ शेष से भ्रम योग दोष होता है। ये दोनों दोष यात्रा में त्याज्य हैं ॥ २५ ॥

अथ हिंवराख्यं योगमुपजातिकयाह—

शशाङ्कभं सूर्यभतोऽत्र गण्यं पक्षादितिथ्या दिनवासरेण।
युतं नवाप्तं नगशेषकं चेत् स्याद्धिवरं तद्गमनेऽतिशस्तम् ॥ २६ ॥

पीयूषधारा—शशाङ्कभमिति। सूर्यनक्षत्राच्चान्द्रनक्षत्रं गण्यं पक्षादितिथ्या पक्षस्य शुक्लस्य कृष्णस्य वादिः प्रतिपत्तस्याः सकाशाद्वर्तमानया तिथ्या युतं दिनवासरेण रविवारादिना च युतम्। तत्र नवभिराप्तं भक्तं नगशेषकं सप्तशेषं चेत्तदा हिंवरं भवति। तद्धिवरं गमनेऽतिशस्तं स्यात्। उक्तं च—

'सूर्यभाद्गणयेच्चान्द्रं पक्षादितिथिवारयुक्। नवभक्तं सप्तशेषं हिंवरं तस्य कीर्तितम् ॥' इति। तदेतन्निर्मूलम्।

प्रसङ्गात् धवाडमपि—

'सूर्यभाद्गणयेच्चान्द्रं त्रिगुणं तिथिसंयुतम्। सप्तभिस्तु हरेद्भागं त्रिशेषं स्याद्धवाडकम् ॥' एतच्च हैंवराच्छुभं ज्ञेयम्। एतत्सर्वं दाक्षिणात्या विचारयन्ति।

टेलकगौरवयोगौ—उक्तचतुर्योगानां फलानि च—

अत्र प्रसङ्गात् ग्रन्थान्तरस्थसंग्रहः—

'सूर्यभाद्गणयेच्चान्द्रं तिथिवारं च मिश्रितम्। सप्तभिस्तु हरेद्भागं पञ्चशेषं तु टेकलम्।

सूर्यभाद्गणयेच्चान्द्रं तिथिवारं च मिश्रितम्। अर्कसंख्यैर्हरेद्भागं नवशेषं तु गौरवम्॥
प्रवेशे गौरवं दद्यान्निर्गमे हिंवरं तथा। तस्करे टेलकं दद्याद्धवाडं सर्वकर्मसु॥'
इति ज्योतिर्निबन्धे॥ २६॥

पीताम्बरा—हिंवर योग—सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र संख्या ज्ञात कर उसमें शुक्लपक्ष प्रतिपदादिक तिथि संख्या, रविवारादिक वार संख्या जोड़कर ९ से भाग देने से ७ शेष बचने पर यात्रा में श्रेष्ठ हिंवर योग होता है॥ २६॥

अथ घातचन्द्राख्यं शालिन्याह—

भूपञ्चाङ्कद्व्यङ्गदिग्वह्निसप्तवेदाष्टेशार्काश्च घाताख्यचन्द्रः।
मेषादीनां राजसेवाविवादे यात्रायुद्धाद्ये च नान्यत्र वर्ज्यः॥ २७॥

पीयूषधारा—भूपञ्चाङ्केति। मेषादीनां राशीनां भूपञ्चाङ्केत्यादिको घाताख्यचन्द्रो ज्ञेयः, यथा मेषस्य प्रथमो मेष एव, वृषस्य पञ्चमः कन्यास्थः, मिथुनस्य नवमः कुम्भस्थः, कर्कस्य द्वितीयः सिंहस्थः, सिंहस्य षष्ठो मकरस्थः, कन्याया दशमो मिथुनस्थः, तुलायास्तृतीयो धनुःस्थः, वृश्चिकस्य सप्तमो वृषस्थः, धनुषश्चतुर्थो मीनस्थः, मकरस्याष्टमः सिंहस्थः। कुम्भस्यैकादशो धनुस्थः। मीनस्य द्वादशः कुम्भस्थः। एते घातचन्द्रा ज्ञेया इत्यर्थः।

अथ घातचन्द्रफलानि—

स घातचन्द्रो राजसेवायां विवादे प्रतिवादिना सह कलहे विद्यासम्बन्धिनि वा विवादे युद्धे आदिशब्दान्मृगयादिषु वर्ज्यः। अन्यत्र विवाहान्नप्राशनादिमङ्गलकृत्ये न वर्ज्यः। उक्तं च—'अजाज्जन्मधीधर्मवित्तारिखत्रिस्मराम्बष्टलाभान्त्यगो घातचन्द्रः। नृपद्वारयात्रावरोधागमादौ विचिन्त्यो विवाहादिके नैव चिन्त्यः॥' इति अन्यत्रापि—

'भूपञ्चनन्दायमषड्दिशश्च वह्न्यद्रिवेदावसुरुद्रसूर्याः।
मेषादिकानां क्रमशो भवन्ति यात्रासु युद्धेषु च घातचन्द्राः॥'

युद्धे चैव विवादे च कुमारीपूजने तथा। राजसेवावाहनादौ घातचन्द्रं विवर्जयेत्॥
तीर्थयात्राविवाहान्नप्राशनोपनयादिषु। माङ्गल्यसर्वकार्येषु घातचन्द्रं न चिन्तयेत्॥' इति।

अत्र मदीयं घातचन्द्रपद्यमिदम्—

'मेषकन्याघटहरिनक्रयुग्मधनुर्वृषाः। मीनसिंहधनुःकुम्भा घातचन्द्रा अजादितः॥' इति।

अत्र गणनाभावादर्थलाघवम्। मूलपद्ये तु अमुकस्मादमुकसंख्याक इति गणनायाः कदाचिद् भ्रमसद्भावाच्च गौरवमिति। एतदपि निर्मूलम्॥ २७॥

पीताम्बरा—चन्द्रघात दोष—मेषादिक द्वादश राशियों के लिए क्रमशः १, ५, ९, २, ६, १०, ३, ७, ४, ८, ११, १२ घात चन्द्र दोष होता है। जैसे मेष राशि के लिए मेष का, वृषभ राशि का वृषभ से पञ्चम कन्या राशि इत्यादि का चन्द्रमा घात चन्द्रमा होता है। राजसेवा युद्ध और विवाद में घात चन्द्रमा वर्ज्य है॥ २७॥

अथ घातचन्द्रपरिहारमनुष्टुब्भ्यामाह—

आग्नेयत्वाष्ट्रजलपपित्र्यवासवरौद्रभे ।
मूलब्राह्माजपादर्क्षे पित्र्यमूलाजभे क्रमात् ॥ २८ ॥
रूपद्व्यग्न्यग्निभूरामद्वयब्ध्यग्न्यब्धियुगाग्नयः ।
घातचन्द्रे धिष्ण्यपादा मेषाद्वर्ज्या मनीषिभिः ॥ २९ ॥

पीयूषधारा—आग्नेयेति । स्पष्टार्थमिदं पद्यद्वयम् ॥ २८–२९ ॥

पीताम्बरा—मेषादिक राशियों के लिए क्रमशः—कृतिका, चित्रा, शतभिषा, मघा, धनिष्ठा, आर्द्रा, मूल, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, मूल और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रों के क्रमशः १।२।३।३।१।३। २।४।३।४।४ और ४ चरण नक्षत्रघात चरण हैं ॥ २८-२९ ॥

अथ घाततिथीमुपजातिकयाह—

गोस्त्रीझषे घाततिथिस्तु पूर्णा भद्रा नृयुक्कर्कटकेऽथ नन्दा ।
कौर्प्याजयोर्नक्रघटे च रिक्ता जया धनुःकुम्भहरौ न शस्ताः ॥ ३० ॥

पीयूषधारा—गोस्त्रीति । गौर्वृषः, स्त्री कन्या, झषो मीनः, एतद्राशिमति नरे पूर्णातिथिः पञ्चमी दशमी पञ्चदशी घाततिथिः । नृयुक् मिथुनं, कर्कटकः प्रसिद्धः, अनयोर्भद्रातिथि द्वितीया सप्तमी द्वादशी च घाततिथिः । कौर्प्यो वृश्चिकः, अजो मेषः, एतयोर्नन्दा तिथिः प्रतिपत्षष्ठ्येकादशी च घाततिथिः । नक्रघटे मकरतुलयो रिक्तातिथिः चतुर्थी नवमी चतुर्दशी च । धनुःकुम्भसिंहानां जयातिथिः तृतीयाष्टमी त्रयोदशी च घाततिथिः । एते घाततिथयो यात्रायां युद्धादौ च न शस्ता इति ॥ ३० ॥

पीताम्बरा—घाततिथियाँ—वृष कन्या मीन राशियों के लिए पूर्णा, मिथुन-कर्क के लिए भद्रा, वृश्चिक-मेष के लिए नन्दा, मकर-तुला के लिए रिक्ता और धनु-सिंह-कुम्भ राशि वालों के लिए जया तिथियाँ घाततिथियाँ हैं। घाततिथियों में यात्रा अशुभ होती है ॥ ३० ॥

अथ घातवारान् शालिन्याह—

नक्रे भौमो गोहरिस्त्रीषु मन्दश्चन्द्रो द्वन्द्वेऽर्कोऽजभे ज्ञश्च कर्के ।
शुक्रः कोदण्डालिमीनेषु कुम्भजूके जीवो घातवारा न शस्ताः ॥ ३१ ॥

पीयूषधारा—नक्रे इति । मकरराशिमति पुरुषे भौमो घातवारः, वृषसिंहकन्यासु मन्दवारः, द्वन्द्वे मिथुने च चन्द्रवारः, अजे मेषेऽर्कवारः, कर्के बुधवारः, धनुर्वृश्चिकमीनेषु शुक्रवारः, जूकस्तुला, कुम्भतुलयोर्जीवो गुरुर्घातवार इत्यर्थः । एते घातवाराः यात्रायां न शस्ता इत्युक्तम् । एतदपि निर्मूलम् ॥ ३१ ॥

पीताम्बरा—घातवार—मकर राशि के लिए मंगलवार, वृष, सिंह, कन्याराशि वालो के लिए शनिवार, मिथुन के लिए चन्द्रवार, मेष के लिए रविवार, कर्क राशि के लिए बुधवार, धनु, वृश्चिक, मीन राशियों के लिए शुक्रवार तथा कुम्भ और तुला राशियो के लिए गुरुवार घातवार होते हैं। घातवार की यात्रा अशुभ फलदायिनी होती है ॥ ३१ ॥

अथ घातनक्षत्राण्यनुष्टभाह—

मघाकरस्वातिमैत्रमूलश्रुत्यम्बुपान्त्यभम् ।
याम्यब्राह्मेशसार्पं च मेषादेर्घातभं न सत् ॥ ३२ ॥

पीयूषधारा—मघाकरेति । मेषादिराशीनां क्रमेण घातकभमिदं स्यात् । यथा मेषस्य मघा, वृषस्य हस्तः, मिथुनस्य स्वाती, कर्कस्यानुराधा, सिंहस्य मूलं, कन्यायाः श्रवणः, तुलायाः शतभम्, वृश्चिकस्य रेवती, धनुषो भरणी, मकरस्य रोहिणी, कुम्भस्यार्द्रा, मीनस्याश्लेषा, एतत् घातनक्षत्रमित्यर्थः । तद्यात्रायां सत् शोभनं न, किन्तु दोष इत्यर्थः । उक्तं च—'मघार्कस्वातिमैत्राणि मूलं श्रवणवारुणे । रेवतीयाम्यधात्रीशसार्पं मेषादि मृत्यवे ॥' इति । क्वचित् 'धात्रग्निसार्पम्' इति पाठः । तत्राग्निः कृत्तिकानक्षत्रं, कुम्भस्य घातभं तदा याम्यब्राह्मादिसार्पं चेति कल्प्यमिति तदेते दोषा दाक्षिणात्यप्रसिद्धा निर्मूलाः ॥ ३२ ॥

पीताम्बरा—मेषादिक राशियों के लिए घात नक्षत्र—मेषादिक १२ राशियों के लिए क्रमशः मघा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, शततारा, रेवती, भरणी, रोहिणी, आर्द्रा और आश्लेषा—घात नक्षत्र यात्रा में त्याज्य है । (जैसे मेष राशि के लिए मघा, वृष के लिए हस्त इत्यादि) ॥ ३२ ॥

अथ घातलग्नान्याह—

भूमिद्वचब्ध्यद्विदिक्सूर्याङ्गष्टाङ्केशाग्निसायकाः ।
मेषादिघातलग्नानि यात्रायां वर्जयेत्सुधीः ॥ ३३ ॥

पीयूषधारा—भूमीति । एतदपि यात्रायां वर्ज्यम् ॥ ३३ ॥

पीताम्बरा—घात-लग्न—मेषादिक द्वादश राशियों के नर नारी को क्रमशः १।२।४।१०।१२।६।७।८।९।११।३।५ इन घात-लग्नों को यात्रा में वर्जित करना चाहिए ॥ ३३ ॥

अथ सफला योगिनीश्छन्दोविशेषेणाह—

नवभूम्यःशिववह्नयोऽक्षविश्वेऽर्ककृताः शक्ररसास्तुरङ्गतिथ्यः ।
द्विदिशोऽमावसवश्च पूर्वतः स्युस्तिथयः सम्मुखवामगा न शस्ताः ॥ ३४ ॥

पीयूषधारा—नवभूम्य इति । एतास्तिथयः पूर्वतः पूर्वा दिशिमारभ्य ल्यब्लोपे पञ्चमी, पूर्वादितोऽष्टदिक्षु ज्ञेयाः । यथा पूर्वस्यां नवभूम्यः नवमी प्रतिपच्च, आग्नेय्यां शिववह्नयः एकादशी तृतीया च, दक्षिणस्यामक्षविश्वे पञ्चमी त्रयोदशी च, नैर्ऋत्यामर्ककृता द्वादशी चतुर्थी च, पश्चिमायां शक्ररसाः चतुर्दशी षष्ठी च, वायव्यां तुरङ्गतिथ्यः सप्तमी पूर्णिमा च, उत्तरस्यां द्विदिशो द्वितीया दशमी च, ऐशान्याममावास्याष्टमी च, एतास्तिथयस्तत्तद्दिक्षु योगिन्याख्या इति जीर्णाः । तास्तिथयः सम्मुखवामगा न शस्ताः । यथा प्राच्यां गन्तुः प्रतिपत्सम्मुखी, दक्षिणस्यां गन्तुः वामा, पश्चिमायां गन्तुः पृष्ठगा, उत्तरस्यां गन्तुर्दक्षिणा । एवं सर्वासु दिक्षु सर्वास्तिथयो विचार्याः । तत्र सम्मुख्यो वामगाश्च तिथयो न शुभाः । अर्थाद्दक्षिणाः पृष्ठगाश्च तिथयः शुभाः । उक्तं च स्वरोदये—

'पूर्वस्यामुदयेद्ब्राह्मी प्रथमे नवमे तिथौ । माहेशी चोत्तरस्यां तु द्वितीयादशमीतिथौ ॥
एकादश्यां तृतीयायां कौमारी वह्निकोणगा । चतुर्थी द्वादशी प्रोक्ता वैष्णवी नैर्ऋते तथा ॥

वाराही दक्षिणे भागे पञ्चमी च त्रयोदशी । षष्ठी चतुर्द्दशी चैव इन्द्राणी पश्चिमे तथा ॥
पूर्णिमायां च सप्तम्यां वायव्ये चण्डिकोदयः । नष्टचन्द्रदिनाष्टम्योर्महालक्ष्मीः शिवालये ॥' इति।

नष्टचन्द्र दिनममावास्यां । विजयकल्पलतायाम्—

पृष्ठतो दक्षिणे वापि योगिनी गमने हिता । वामसम्मुखयोर्नेष्टा वायुमेवं विचिन्तयेत् ॥' इति ।

अर्द्धप्रहरयोगिन्यः—

समरसारेऽर्द्धप्रहरयोगिन्यप्युक्ता । यथा—

'प्राक्तोयानलरक्षोवायुः पाशीशदिक्षु दर्शन्तैः ।
तिथिभिः स्थितिपदयुक्ताह्यर्द्धप्रहरा तु योगिनो शस्ता ॥' इति ।

अस्यार्थः—अत्र पूर्वार्द्धेन योगिन्युक्ता उत्तरार्द्धेनार्द्धप्रहरयोगिन्युच्यते—स्थितिपदे इत्यादिना । पदं स्थानं स्थितिः या तिथिर्यस्यां दिशि प्रागुक्तक्रमेणावस्थिता तद्दिशि तत्तत्तिथिमारभ्य सर्वयोगिन्यस्तेनैव क्रमेण तत्तिथिमध्ये वारद्वयं भ्रमन्ति । यथा द्वितीयोत्तरस्यां योगिनी तां षोडशधा विभज्य प्रथमो त्रिभागो द्वितीयायाः । एवमुत्तरस्यामर्द्धप्रहरयोगिनीसंज्ञः द्वितीयो विभाग आग्नेय्याम् । तृतीयाया अर्द्धप्रहरयोगिनिसंज्ञः इत्यग्रिमाः सर्वे विभागाः अर्द्धप्रहरयोगिनोसंज्ञा ज्ञेया इत्यर्थः । उक्तं च स्वरोदये—'यत्रोदयगता देवी ततो यामार्द्धभुक्तिगा । भ्रमन्ती तेन मार्गेण भवेत्तत्कालयोगिनो ॥' इति उदयस्थाने देवीयोगिनी । विजयकल्पलतायामपि—'यत्रैता उदयं यान्ति भ्रमन्त्येवं तिथिक्रमात् । यतो यामार्द्धभुक्त्यैव योगिन्यः स्वेष्टकालिकाः ॥' इति । 'इनवत्तु योगिनो शस्ता' इति पाठे स्पष्टार्थम् ।

वारयोगिन्यः—

स्वरोदये तु वारयोगिन्यप्युक्ता 'इन्द्रचन्द्राग्निनैर्ऋत्ययाम्यतोयानिले हरौ ।
सूर्यादिषु च वारेषु वर्जयेद्वारयोगिनीम् ॥' इति ।

फलमपि स्वरोदय एव—

'जयदा पृष्ठदक्षस्था भङ्गदा वामसम्मुखी । त्रिविधं योगिनीचक्रमित्युक्तं ब्रह्मयामले ॥' इति।
त्रिविधत्वं तु तिथियोगिन्यर्द्ध प्रहरयोगिनीवारयोगिनीभेदतः ॥ ३४ ॥

पीताम्बरा—सफल योगिनी विचार—पूर्वादि दिशाओं में तिथि क्रम से योगिनी वास होता है । जैसे नवमी प्रतिपद में पूर्व में, तृतीया-एकादशी में अग्निकोण, पञ्चमी-त्रयोदशी में दक्षिण, चतुर्थी-द्वादशी में, नैर्ऋत में षष्ठी-चतुर्दशी मे पश्चिम में, सप्तमी-पौर्णमासो मे वायव्य में, द्वितीया-दशमी में उत्तर में और अष्टमी-अमावस्या में ईशान कोण में योगिनी वास रहता हैं । यात्रा में पृष्ठ दक्षिण की योगिनी शुभ और सम्मुख वाम की अशुभ होती है ॥ ३४ ॥

अथ कालपाशाख्यौ योगौ शालिन्याह—

कौबेरीतो वैपरीत्येन कालो वारेऽर्काद्ये सम्मुखे तस्य पाशः ।
रात्रावेतौ वैपरीत्येन गण्यौ यात्रा युद्धे सम्मुखे वर्जनीयौ ॥ ३५ ॥

पीयूषधारा—कौबेरीति—कुबेरो देवता यस्याः सा 'सास्य देवता' इत्यण् । आदिवृद्धिः । अणन्तत्वात् ङीप् । कौबेरी उत्तरा दिक् । ततः ल्यब्लोपे पञ्चमी । उत्तरां दिशमारभ्यार्काद्ये वारे दिवसे वैपरीत्येन दिक्प्रातिलोम्येन संहारमार्गेण यस्यां दिशि वारेशस्थितिस्तस्यां दिशि कालः

स्यात् । यथा रविवारे उत्तरस्यां कालः, सोमे वायव्यां, भौमे पश्चिमायां, बुधे नैर्ऋत्यां, गुरौ दक्षिणस्यां, शुक्रे आग्नेय्यां, शनौ पूर्वस्यामित्यर्थः । अयमर्थः स्पष्टो रत्नसारे—

'रवावुत्तरतः कालः सोमे वायव्यभोगके । भौमे तु पश्चिमे भागे बुधे नैर्ऋत्यकोणके ॥

जीवे च याम्यदिग्भागे शुक्रे चाग्नेयकोणके । शनौ तु पूर्वदिग्भागे कालचक्रं प्रकीर्तितम् ॥' इति ।

इति कालयोगः ।

पाशयोग उच्यते—

तस्य कालस्य सन्मुखे सम्मुखदिशि कालदिशातः पञ्चमदिशि तस्य कालस्य पाशो गलकर्त्तनरज्जूः स्यात् । तथा रविवारे दक्षिणस्यां पाशः, सोमे आग्नेय्यां, भौमे पूर्वस्यां, बुधे ऐशान्यां, गुरावुत्तरस्यां, शुक्रे वायव्यां, शनौ पश्चिमायामित्यर्थः ।

कालपाशदोषद्वयफलानि—

फलमुच्यते । यात्रायामर्थयात्रायां युद्धे युद्धयात्रायां समाहारद्वन्द्वः । तयोर्यात्रायुद्धयोरुपस्थितयोः । सतोस्तौ कालपाशौ गन्तव्यदिगवस्थितौ वर्ज्जनीयौ । तद्दिशि न गच्छेदित्यर्थः । अर्थाद्वामभागदक्षिणभागयोः कालपाशौ शुभौ । तत्रापि कालो दक्षिणभागस्थ एव शुभः । पाशो वामभागस्थ एव शुभ इत्यनुक्तोऽपि विशेषो ज्ञेयः । उक्तं च स्वरोदये—

'वारोत्थः पूर्वदिग्भागे ततः सव्येन मन्दगाः । यत्रस्थस्तत्र कालः स्यात्पाशस्तस्य तु सम्मुखः ॥ दक्षिणस्थः शुभः कालः पाशो वामदिगाश्रयः । यात्रायां समरे श्रेष्ठस्ततोऽन्यत्र न शोभनः ॥'इति ।

सव्येन प्रदक्षिणमार्गेण मन्दगः शनैश्चरः अन्यत्र सम्मुखपृष्ठभागयोः ।

दिवा यौ कालपाशौ तौ रात्रौ विपरीतौ—

अयं कालपाशविचारो दिवैव । रात्रौ विशेष उच्यते । तु विशेषे । एतौ । कालपाशौ तु रात्रौ व्यस्तसञ्ज्ञौ विपरीतनामकौ चिन्त्यौ ज्ञेयौ । दिवा यस्यां दिशि कालस्तस्यां दिशि रात्रौ पाशः । दिवा यस्यां दिशि पाशस्तस्यां दिशि रात्रौ कालः । यथा रविवासरे रात्रौ दक्षिणस्या कालः उत्तरस्यां पाशः । एवं सर्ववारेष्वित्यर्थः । उक्तं च—

'सौम्यादौ वाममार्गेण रवितः कालसंस्थितिः । तत्संमुखे भवेत्पाशो रात्रौ ज्ञेयौ विलोमतः ॥' इति ।

सोमो देवताऽस्याः सा 'सोमाट्ट्यण्' इति देवतार्थ टयण, णित्त्वादादिवृद्धिः 'यस्येति च' इत्यलोपः, ततो 'हलस्तद्धितस्य' इति यलोपः सौमी उत्तरा दिक् तदादौ । ननु वर्ज्यत्वाविशेषाद्रात्रौ किं नाम वैपरीत्येन कृत्यमिति चेत्' उच्यते । गन्तव्यदिशि कालो दक्षिणभागस्थः शुभो यथा भवेत्पाशो वामभागस्थः शुभो यथा स्यादित्येवमर्थमुक्तिः । अन्यथा ह्यशुभ इत्यर्थः । 'दक्षिणस्थः शुभः कालः पाशो वामदिगाश्रयः' इति वचनात् । ननु कालपाशयोर्नामवैपरीत्यं स्वरोदयस्थवाक्ये कुतो नोक्तमिति चेत्, सत्यम् । साक्षात् नोक्तं परन्तु स्वरोदयकर्तुरभिप्रेतमस्तीत्यनुमीयते । तथा हि यद्यपि 'घस्रो दिनाहनी वा तु क्लीबे दिवसवासरौ' इति कोशात्, 'दशाहंशावमाशौच सपिण्डेषु विधीयते' इति धर्मशास्त्रोक्तेश्चाहःशब्दस्याहोरात्रपरतैव तथा 'आगामिवर्तमानाहर्युक्तायां निशिपक्षिणी' इत्यादिषु निशीतिपदोपादानादहः शब्दः सूर्यदर्शनपरिच्छेद्यकालवाचको यथास्ति यथेहापि । 'वारह्नः पूर्वदिग्भागे' इत्यत्र वापरः पूर्वदिग्भागे इति

वक्तव्येऽहःशब्दोपादानान्यथानुपरात्रौ । अतस्तत्र वैलक्षण्यम् । तद्वैलक्षण्यं नाम किम् । वैपरीत्यमित्यर्थः । अतः पूर्वोक्तं—'रात्रावेतौ व्यस्तसंज्ञौ तु चिन्त्यौ' इति ।

खण्डराहुदोषो यात्रायाम्—

कालपाशप्रसङ्गात् खण्डराहुरुच्यतेऽस्माभिः । यथा स्वरोदये—

'ऐन्द्र्यां कृष्णे तृतीयायां सप्तम्यां शूलिनो दिशी । दशम्यां धनदाशायां वायव्यां भूतवासरे ॥
शुक्लपक्षे तु वारुण्यां चतुर्थ्यां समुदेत्यसौ । नैऋत्ये च तथाष्टम्यामेकादश्यां यमौकसि ॥
आग्नेय्यां पञ्चदश्यां च मासे राहूदये सति । खण्डगत्या भ्रमत्येवं खण्डराहुस्ततो मतः ॥' इति ।

यमौकसि दक्षिणस्याम्, शूलिनः ईशानस्य, अतस्तस्यां दिशि तत्तिथौ राहुसद्भावान्न गन्तव्यमिति वाक्यतात्पर्य्यार्थः । एतासु भद्रातिथिषु भद्रामपहाय तद्दिशोऽन्यस्यां दिशि सुखेन गंतव्यमिति । खण्डे तिथिखण्डे तिथ्यर्द्धे भद्रारहिते गमनं गतिरित्यन्वर्थत्वमपि खण्डराहौ प्रतीयते । सूक्ष्मोर्द्धयामकाल उक्तः समरसारे—

'हालान्तकाभसखियामदलैस्तु कालः सूर्यादिवासरगतो युधि वर्जनीयः ।
भासारमेदलतियामदलानि भानुर्वारक्रमादपि पुनः स्वहितार्थमूहेत् ॥' इति ।

रवौ हालाकारोपलक्षितोऽष्टमोर्द्धयामः, एवं सोमे तृतीयः, भौमे प्रथमः, गुरौ चतुर्थः, शुक्रे सप्तमः शनौ द्वितीयो युद्धे च वर्जनीय इति पूर्वार्द्धस्यार्थः । उत्तरार्द्धे तु सांहितिका अर्द्धयामा उक्ताः समस्तशुभकर्मसु निषिद्धाः ग्रन्थकर्त्रापि विवाहप्रकरणेऽभिहिताः । अर्द्धयामो नाम दिनस्य रात्रेर्वाऽष्टमो भाग इति ।

'इन्द्रवायुवमरुद्रतोयाग्निशशिभास्करे । यामार्द्धमुदितो राहुर्भ्रमत्येवं दिगष्टके ॥' इति ।

अयं यामार्द्धराहुभ्रमो दिवसे रात्रौ च तुल्यो ज्ञेयो विशेषानुक्तेः ।

तत्रैव मुहूर्त्तराहुरप्युक्तः—

ईशानयमवातेन्द्ररक्ष सोमाग्निवारुणे । पूर्वाह्णेऽपि भ्रमत्येवमपराह्णेऽप्ययं क्रमः ॥
जलाग्निसौम्यनैर्ऋत्यशक्रानिलयमेतरे । पूर्वरात्रे भ्रमत्येव परारात्रेऽप्ययं क्रमः ॥
दिनस्य षोडशांशेन मुहूर्तः परिकीर्तितः ।

दिनस्येत्युपलक्षणं रात्रेरपि एवमेव अर्धमुहूर्तचतुर्थ चतुर्थ दिग्गणनोक्ता रात्रौ तु षष्ठषष्ठदिग्गणनोक्ता ।

यत्तु रामवाजपेयिभिः समरसारे उक्तम्—

'प्राग्वातान्तकशम्भुपाशिहुतभुक्पौलस्त्यरक्षोदिशो
यामार्द्धैरगुरह्नि पाशिककुभोऽसौ षष्ठषष्ठीनिशि ।
पृष्ठे दक्षिणतः शुभो द्विघटिकोऽसौ तुर्यतुर्या
व्रजन्नीशावाक्पवनेन्द्रराक्षसमरुद्वह्निप्रतीचीं दिशम् ॥' इति ।

अत्र यामार्द्धराहौ दिने प्राच्याः सकाशात्षष्ठषष्ठदिग्गणनोक्ता । रात्रौ तु प्रतीच्याः सकाशात्तथैवोक्ता । उत्तरार्धे मौहूर्तिकराहौ तु दिने दिनरात्रिविभागो नोक्तस्तट्टीकाकृता भरतेन तथैव व्याकृतश्च । यथा यथा द्विघटिको मौहूर्तिको राहुः प्रातरारभ्यैशानीतश्चतुर्थचतुर्थदिशं मुहूर्ते मुहूर्ते याति । दिनरात्र्योर्द्वात्रिंशन्मुहूर्त्ता अष्टदिशां चत्वारो भ्रमाः । तत्र क्रमः ऐशानीदक्षिणवायव्यपूर्वनैऋतोत्तराग्नेयपश्चिमास्विति—तदेतन्निर्मूलम् । मूलवाक्यानुपलम्भात् ।

ननु कस्तर्हि तदुक्ताशय इति चेत् सत्यम् । तदेवोच्यते । स्वरोदये हि यामार्द्धराहौ षष्ठषष्ठ-दिग्गणनोक्ता । मुहूर्तराहौ तु दिने चतुर्थचतुर्थदिग्गणनामभिधाय रात्रौ तु षष्टषष्ठदिग्गणगोक्ता अनुचितेत्यभिसन्धाय स्वयं स्वपद्ये षष्ठषष्ठदिग्गणनामुररीकृत्य दिनरात्रिविभागेन यामार्द्धराहुरुक्तः मुहूर्त्तराहुरीशानतश्चतुर्थदिग्भागेन दिनरात्रिविभागमनादृत्योक्त इति' एवंविधे पाठे मूलान्तरं मृग्यम् । ऋषोणां तु स्वतन्त्रेच्छापर्यनुयोगानर्हत्वात्स्वरोदये एवमुक्तिः ।

स्थूलसूक्ष्मराहोर्दिग्भेदेन फलानि—

एतादृशः स्थूलः सूक्ष्मो वा राहुः कस्यां दिशि शुभोऽशुभो वेति स्वरोदय एवाभिहितम्—
'सम्मुखा वामसंस्था वा यस्यैवं राहुमण्डली । पराजयो भवेत्तस्य वादद्यूतरणादिषु ।।
यस्य दक्षिणपृष्ठस्था ह्येषा राहुपरम्परा । सहस्रशः शतेनापि परसैन्यं निकृन्तति ।।' इति ।

समरसारेऽपि—

'पृष्ठे दक्षे योगिनीं राहुयुक्ता यस्यैकोऽयं शत्रुलक्षं निहन्ति ।
श्रेष्ठं सर्वेभ्यो बलेभ्यस्तदेवं संक्षेपोऽयं सर्वसारोऽभ्यधायि ।।' इति ।

ननु योगिनीकालपाशवारयोगिनीमृतपक्षखण्डराह्वादिभिः स्थूलैर्दोषैरर्द्धयामराह्वादिभिः सूक्ष्मश्च स्वरोदयस्थैस्तथा सांहितिकैश्चायनशूलनिषिद्धमासवारशूलनक्षत्रनिषिद्धनक्षत्रपारिधदण्ड-मृतपक्षादिभिश्च दोषैर्यात्रादिनाऽनुन्मेष एव, तथा हि । रवौ पूर्वस्यां वारयोगिनी दक्षिणस्यां पाशो दिवा रात्रौ तु कालः पश्चिमायां वारशूलम् उत्तरस्यां कालो दिवारात्रौ तु पाशः विदिशस्तु महादिगन्तर्गता एव । 'प्रादक्षिण्यं चैव मासा विपूर्वा, इति श्रीपत्युक्तेः एवं सति रविवारे कस्यामपि दिशी यात्रा न स्यात् । अन्ये पुनर्दोषामृतपक्षादयो विचारणीयाः । एवं सति सोमवारादिष्वपि यथासम्भवं दोषा ऊहनीया इति प्रागुक्तदोषवज्ज्ञापिताः । अत्र समाधिः । अयं सर्वोपि स्वरोदयस्थो मृतपक्षयोगिनीकालपाशादिस्थूलसूक्ष्मदोषविचारो युद्धयात्रायामेव बहुधा विचार्य प्रकरणस्यापि नियामकत्वात्, तथा हि । सर्वेष्वपि स्वरोदयग्रन्थेषु नरपतिजयचर्य्योच्यते । सा च युद्धं विना न सम्भवति । अत एव स्वरोदयबले प्रोक्तम्—'पुष्पैरपि न योद्धव्यं यावद्धीनः स्वरोदयः । स्वरोदयबले प्राप्ते योद्धव्यं शस्त्रकोटिभिः ।।' इति । तथा चतुरशीतिचक्रान्तेप्युक्तम्—
'एतानि सर्वचक्राणि ज्ञात्वा युद्धं समारभेत् । जयेदिह न सन्देहः शक्रतुल्येऽपि वैरिणि ।।' इति ।

तथा भूबलेप्युक्तम्—

'इमानि भूबलान्यत्र ज्ञात्वा यः प्रविशेद्रणम् । अरयस्तस्य नश्यन्ति मेघा वातहता यथा ।।'इति ।

सर्वतोभद्रकालदंष्ट्रसूर्यचन्द्रकालानलचक्राणि—

एवं सति सर्वतोभद्रकालद्रंष्टसूर्यचन्द्रकालानलचक्राणि युद्ध एव विचार्याणि यथासम्भवजन्येषु शुभकृत्येष्वपि विचार्याणि । उक्तं च तत्रैव—
'लाभालाभं सुखं दुःखं जयं चैव पराजयम् । चन्द्रकालानले चक्रे ज्ञानं संशयवर्जितम् ।।' इति ।

तथा—
'यथा जन्मविवाहे च सङ्ग्रामे विग्रहेऽपि च । घोरकालानलं चक्रं ज्ञात्वा कर्म समारभेत् ।।'इति।

यात्रावश्यकत्वमपेक्ष्य सांहितिकदोषहानितारतम्यम्—

सामान्ययात्रायामप्यावश्यकानावश्यकवशेन यथासम्भवं सांहितिकदोषहानिर्विचार्या। अन्यथा हि सर्वेषां स्वरोदयस्थानां सांहितिकानां च स्थूलसूक्ष्मदोषाणां त्यागो वर्षसहस्रेणापि दुःशकः स्यात्। तत्रापि गुणानां भूयस्त्वं दोषाणां चाल्पत्वमङ्गीकृत्य निखिलकृत्यं निर्वाह्यम्। उक्तं च श्रीपतिना—

'समस्तगुणसम्पदां न खलु लब्धिरल्पैर्दिनैर्गुणप्रचुरता ततो बहुमता च दोषाल्पता।
न भूरिगुणसञ्चये प्रभवतीह दोषोऽल्पको ह्युदर्चिषि हुताशने सलिलबिन्दुरेको यथा॥' इति।

विवाहादौ महादोषे तद्विरुद्धमहाप्रतीकारः—

तत्रापि महादोषः पापग्रहवेधयुतिकर्तरीमहापातादिश्चेत्तदावश्यं वर्ज्य एव यदि तत्समः प्रतीकारकारको गुणो न भवेत्। उभयसम्भवे हि प्रबलदुर्बलविचारः कार्यः। तदप्युक्तं श्रीपतिना—

'एकोऽपि हन्ति गुणलक्षमपीह दोषः कश्चित्परो यदि गुणोऽस्ति न तद्विरोधी।
मद्यस्य बिन्दुरपि पावनपञ्चगव्यं सम्पूर्णमत्र कलशं मलिनीकरोति॥'

इत्यास्ता प्रसक्तानुप्रसक्तेन॥ ३५॥

पीताम्बरा—कालपाश योगद्वय—उत्तर दिशा से विपरीत क्रम के रवि आदि वारों के दिनों में काल और काल दिशा की विपरीत दिशा में पाश रहता है। जैसे रविवार को उत्तर में काल तो दक्षिण में, पाश, तथैव सोमवार को वायव्य में काल तो अग्नि मे पाश रहता है। रात्रि में विपरीत क्रम से काल पाश होते हैं। जैसे रविवार की रात्रि मे दक्षिण में काल एव उत्तर में पाश रहता है। यात्रा युद्ध में सम्मुख काल पाश वर्जित हैं॥ ३५॥

अथ पारिघदण्डाख्यं दोषमनुष्टुमाह—

भानि स्थाप्यान्यब्धिदिक्षु सप्तसप्तानलर्क्षतः।
वायव्याग्नेयदिक्संस्थं पारिघं नैव लङ्घयेत्॥ ३६॥

पीयूषधारा—भानीति। अब्धिदिक्षुचतुर्दिक्ष्वनलर्क्षतः कृत्तिकातः सप्तभानि पूर्वस्यां स्थाप्यानि। मघातः सप्तभानि दक्षिणस्यां स्थाप्यानि। अनुराधातः सप्तभानि पश्चिमायां स्थाप्यानि। धनिष्ठातः सप्तभान्युत्तरस्यां स्थाप्यानि। तत्र वायव्याग्नेयदिगुपनिबद्धा रेखा पारिघ-दण्डः स्यात्। तं सर्वथा नैव लङ्घयेत्।

चक्राकृतिरियम्

यदाह नारदः—'क्रमाद्द्विवारभानि स्युः सप्त सप्ताग्निऋक्षतः। पारिघं लङ्घयेद्दण्डं नाग्निश्वसनदिग्गतम्॥' इति। काश्यपोऽपि—'अग्निधिष्ण्यात्सप्त सप्त क्रमाद्धिष्ण्यानि पूर्वतः। वाय्वग्निदिग्गतं दण्डं पारिघं तु न लङ्घयेत्' इति। ननु प्रागादिदिङ्न्यस्तानां नक्षत्राणां प्रयोजनं किं नोक्तम्। पारिघदण्डाख्यानार्थत्वं तु न धनिष्ठादिचतुर्दश भानि वायव्याग्नेयदिशोः पूर्वभागे स्थाप्यानि, मघादिचतुर्द्दश भानि तयोरेव दिशोः पश्चिमविभागे स्थाप्यानीत्येवमर्थकपद्योपनिबन्ध-नेन स्यात्, उच्यते स्पष्टत्वान्नोक्तम्। तदा हि प्राग्द्वारिकैः कृत्तिकादिकसप्तनक्षत्रैः पूर्वस्यां यात्रा प्रशस्ततमा एवं दक्षिणस्यां मघादिसप्तभैः, पश्चिमायामनुराधादिसप्तभैः उत्तरस्यां धनिष्ठादि-सप्तभैः, अयमर्थो यात्राप्रकरणे—'क्रमाद्द्वारभानि स्युः' इति नारदकश्यपाद्युक्तेर्लभ्यते।

प्रतिशुक्रविचारे पारिघदण्डदोषविचारः कार्यः—

किं च त्रिविधप्रतिशुक्रविचारेऽपि दिग्द्वारभानामुपयोगोऽस्ति । यदाहात्रिः—'तद्दिग्गतः समुदयेद्विचरेद्यत्र गोलके । यद्द्वारभेषु विचरेत्त्रिविधं प्रतिभार्गवम् ॥' इति । श्रीपतिश्च—विचरति च भचक्रे येषु दिग्द्वारभेषु' इति ।

गृहप्रवेशेऽपि पारिघदण्डदोषविचारः कार्यः—

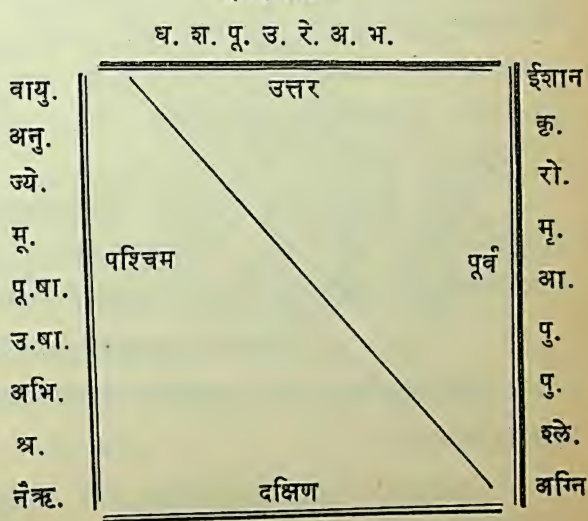
अन्यच्च गृहप्रवेशे पूर्वादिदिग्द्वारेषु गृहेषु तत्तद्दिङ्नक्षत्रैः प्रवेशश्चोक्तः तदुक्तं वसिष्ठेन-'यद्दिग्द्वारं मन्दिरं तद्दिगर्क्षैरुक्तर्क्षैः स्यात्सन्निवेशो न सर्वैः' इत्यादीनि प्रयोजनानि ध्येयानि ।

दिग्भेदेन केषाञ्चिद्भानां श्रेष्ठत्वादिकम्—

तत्र प्रस्तुते पारिघदण्डोक्तेरेवं ज्ञायते—यद्धनिष्ठादिचतुर्दश भानि प्रागुत्तरदिशोर्यात्रायां प्रशस्तानि मघादिचतुर्दश भानि दक्षिणपश्चिमदिशोः प्रशस्तानि, तत्र स्वदिशि प्रशस्ततमानि, अन्यदिशि प्रशस्तानि । यथा मघादि सप्त भानि पश्चिमायामनुराधादिसप्त भानि दक्षिणस्यां प्रशस्तानीत्यर्थः । अत एवाह दुर्गादित्यः 'प्राग्दिग्गतैरुग्दिशमुदग्गतै प्राग्दिशं भनक्षत्रैः दक्षिणगैरपरां दिशमपरगैर्दक्षिणां यायात् ॥' इति । भानि राशयो मेषाद्या नक्षत्राणि कृत्तिकादीनि । यवनेश्वरोऽपि—'प्राचीमुदग्द्वारिभिरत्र यायात्प्राग्द्वारभश्चोडुभिरप्युदीचीम् । तथैव याम्यामपराश्चितैर्भैर्याम्याश्रयैश्चाप्यपरां प्रयायात्' इति एतेन नो गच्छेदुत्तराशां त्रिदशपतिककुब्भैर्नयाम्यप्रतीच्यै' इति वदन् महेश्वरः प्रत्याख्यातो भवति । मूलवाक्यानुपलम्भात् । किन्तु सर्वथा प्रागुदयनक्षत्रैर्दक्षिणां पश्चिमां च नैव गच्छेत् । तथा दक्षिणपश्चिमनक्षत्रैः प्रागुदीचीं च नैव गच्छेत् । पारिघदण्डसत्त्वात् । यदाह यात्रायां वराहः—'दिशि दिशि बहुलाद्यास्तारका सप्त लेख्याः पवनदहनदिक्स्थस्तिर्यगत्युग्रदण्डः सुरपतिरपि कृच्छ्रं याति तं लङ्घयित्वा नहि भवति विरोधो दिक्षु दण्डैकगासु ॥' इति ॥ ३६ ॥

पीताम्बरा—परिघ दण्ड— चारों दिशाओं में कृतिका से सात-सात नक्षत्रों की स्थापना करते हुए (जैसे कृतिका से आश्लेषा तक पूर्व दिशा में, मघा से विशाखा तक दक्षिण दिशा में, अनुराधा से अभिजित् तक पश्चिम और धनिष्ठा से भरणी तक उत्तर दिशा में स्थापित कर) यात्रा के नक्षत्रों में उन्हीं नक्षत्रों में यात्रा करनी चाहिए जिनसे वायव्य से अग्नि दिशा तक

परिघ चक्र



खींची गई रेखा का उल्लंघन न हो। चक्र देखने से स्पष्ट होता है।

जो नक्षत्र जिस दिशा में है उन नक्षत्रों में उस दिशा की यात्रा शुभतम होती है। जैसे कृतिकादि सात नक्षत्रों में पूर्व की यात्रा उत्तम, उत्तर की यात्रा साधारण शुभ होती है। किन्तु पूर्व की कृतिकादि सात नक्षत्रों में पश्चिम या दक्षिण की यात्रा सर्वथा अशुभ होती है। इसी प्रकार मघादि सप्त में पूर्व उत्तर अनुराधादि सात नक्षत्रों में भी पूर्व उत्तर तथा धनिष्ठादि कृतिकादि सात नक्षत्रों में पश्चिम-दक्षिण यात्रा सदा नेष्ट होती है ॥३६॥

अथ कस्यचिद्विदिग्गमनं चिकीर्षितं तदा पृथक्नक्षत्रोपदेशाभावात्तासु विदिक्षु आग्नेयादिषु कैर्नक्षत्रैर्गमनं स्यादित्याशङ्क्य विदिक्षु नक्षत्राणि चावश्यकत्वे पारिघदण्डापवादं च वसन्ततिलकावृत्तेनाह—

अग्नेर्दिशं नृप इयात्पुरुहूतदिग्भैरेवं प्रदक्षिणगता विदिशोऽथ कृत्ये।
आवश्यकेऽपि परिघं प्रविलङ्घ्य गच्छेच्छूलं विहाय यदि दिक्तनुशुद्धिरस्ति ॥३७॥

पीयूषधारा—अग्नेर्दिशमिति। नृपः पुरुहूतदिक् प्राची तदुत्थैः कृत्तिकादिसप्तनक्षत्रैः अग्नेर्दिशमाग्नेयीमियात् गच्छेत्। एवमनेन प्रकारेण प्रदक्षिणगताः सृष्टिमार्गेणवस्थिता विदिशो नैर्ऋत्यादीर्गच्छेत्। यथा दक्षिणादिक्स्थैर्भैर्मघादिसप्तभिर्नैर्ऋतीं दिशं गच्छेत्। प्रतीचीस्थैरनुराधादिसप्तभिर्भैर्वायव्यां गच्छेत्। उदीचीस्थैर्धनिष्ठादिसप्तभिर्भैः ऐशानीं गच्छेदित्यर्थः। यदाह नारदः—'आग्नेयीं पूर्वदिक्संस्थैर्विदिशस्त्वेवमेव हि' इति। अस्यार्थं स्पष्टमाह गुरुः—

'प्राग्द्वारिकैश्च तत्तत्रै राग्नेय्यां शोभना गतिः। दक्षिणस्थैश्च नैर्ऋत्यां वायव्यां वारुणैरपि॥
ऐशान्यां दिश्युदक्संस्थैर्यात्रातीव शुभप्रदा।' इति।

पारिघदण्डापवाद उच्यते

अथेति। आवश्यके कृत्ये अवश्यकर्तव्ये गमनादिकृत्ये पारिघमपि पारिघदण्डमपि प्रविलङ्घ्य लङ्घयित्वा नृपो गच्छेत्। परन्तु शूलं वारशूलं नक्षत्रशूलं च विहाय त्यक्त्वा यदि दिक्तनुशुद्धिरस्ति स्यात्। अस्तीति स्यात्। अस्तोति स्यादित्यर्थकमव्ययम्। पूर्वादिचतुर्दिक्षु मेषादयस्त्रिरावृत्ता दिग्राशयः स्युः। त एव तस्यां तस्यां दिशि दिग्लग्नशब्देन व्यवह्रियन्ते। तेषां शुद्धिः शुभफलदातृग्रहानुकूल्यसाहित्यं स्यात्। यदाह श्रीपतिः—'प्रयोजनेष्वात्ययिकेषु भूपतिर्विलङ्घ्य रेखामपि पारिघीं व्रजेत्।

विहाय दिक्छूलसमाह्वयानुडून्यदि स्वदिग्लग्नविशुद्धिराप्यते॥' इति। उडुशब्देन वारोऽप्युपलक्ष्यते। यतो वराहेण—'उल्लङ्घ्य दण्डमपि काममियान्नरेन्द्रः शूलं विहाय यदि भस्य विलग्नशुद्धिः' इत्यत्र शूलं विहायेति सामान्यतोऽभिधानात्।

दिग्राशयः—तत्र गमने फलानि च—

अत्र दिग्राशीनाह नारदः—'दिग्राशयः स्युः क्रमशो मेषाद्याश्च पुनः पुनः' इति। फलमाह वसिष्ठः—

'पूर्वादिदिक्षु मेषाद्याः क्रमाद्दिग्द्वारराशयः। तत्तच्छुद्धिवशात्सर्वे तद्दिग्यातुः शुभप्रदाः॥
तद्वर्गाश्च तदंशाश्च ज्ञातव्या वै तथाविधाः।' इति ॥ ३७ ॥

पीताम्बरा—परिघ दण्ड का परिहार और विदिशाओं की यात्रा के नक्षत्र—पूर्व दिशा की सात नक्षत्रों में अग्नि दिशा की, दक्षिण दिशा की सात नक्षत्रों में नैर्ऋत्य दिशा, पश्चिम दिशा की सात नक्षत्रों में वायु दिशा और उत्तर दिशा की सात नक्षत्रों में ईशान दिशा की यात्रा की जा सकती है। अर्थात् यहाँ पर आचार्य का तात्पर्य है कि अग्नि दिशा की गणना प्राची में, नैर्ऋत्य की दक्षिण में, वायु की पश्चिम में और ईशान दिशा की गणना उत्तर दिशा में की जाय इस प्रकार ४ विदिशाओं का मुख्य चार दिशाओं में अन्तरभाव हो जाता है।

आवश्यक कार्य के यात्रा कृत्य में, पारिघ दण्ड का उल्लंघन किया जा सकता है जब कि गन्तव्य दिशा की लग्न शुद्धि उत्तम हो। दिशाओं में १।५।९ पूर्व, २।६।१० दक्षिण, ३।७।११ पश्चिम और ४।८।१२ राशियाँ उत्तर दिशा की होती हैं॥ ३७॥

अथानावश्यकत्वेऽपि पारिघदण्डापवादे चिकीर्षिते सर्वदिग्द्वारकनक्षत्राणि वक्रिग्रहस्य केन्द्रगत्वादिनिषेधं चेन्द्रवज्रयाह—

मैत्रार्कपुष्याश्विनभैर्निरुक्ता यात्रा शुभा सर्वदिशासु तज्ज्ञैः।
वक्री ग्रहः केन्द्रगतोऽस्य वर्गो लग्ने दिनं चास्य गमे निषिद्धम्॥ ३८॥

पीयूषधारा—मैत्रार्केति। मैत्रमनुराधा, अर्को हस्तः, पुष्यः प्रसिद्धः, आश्विनमश्विनी, एतैश्चतुर्भिर्नक्षत्रैः कृत्वा सर्वदिशासु प्राच्यादिचतुर्दिक्षु तज्ज्ञैर्ज्योतिर्विद्भिर्यात्रा गमनं शुभा शुभफलदा निरुक्ता। यदाह वसिष्ठः—

'पुष्यार्काश्विनमैत्राणि सर्वदिग्द्वारभानि च।
सर्वदिक्ष्वपि यात्रायां सर्वकामार्थदानि च॥' इति।

नारदः—'पुष्ये मैत्रे करेऽश्विन्यां सर्वाशागमनं शुभम्।' आशा दिशः। श्रीपतिरपि—'हस्तः पुष्यो मैत्रमप्याश्विनं च चत्वार्याहुः सर्वदिग्द्वारभानि' इति।

यत्तु बालबोधिन्याम्—

'पूर्वाद्याः शनिचन्द्रगीष्पतिबुधादित्येषु शुक्रे कुजे।
नो गम्याः क्रमशस्तथा परिहरेत्प्राचीं च मूलेन्द्रयोः॥
याम्ये च श्रवणादिषट्सु विधिभे पुष्ये प्रतीचीं त्यजेत्।
सौम्यां चोत्तरफाल्गुनेष्वपि तथा हस्ते न यायाद्बुधः॥

इति प्रागादिचतुर्दिक्षु श्रवणाश्विपुष्यहस्तानां क्रमेण त्याग उक्तः—स निर्मूलत्वादुपेक्ष्यः। किञ्च यद्येषामस्ति निषेधो वसिष्ठादीनामभिमतः स्यात्तदा 'पुरुहूतदिशं पुरन्दरर्क्षं' इत्यादिनक्षत्रशूलपद्ये हि 'विष्णुशाक्रे याम्यदिशं त्वजांघ्रिधिष्ण्यं ज्वलनार्थदिशं विधातृपुष्यौ शूलास्वात्यथ सौम्यार्यमार्के' इति। एवमेव वादिनामाशयो व्याख्येयः। बालबोधिनीवद्भिन्नं वाक्यं तु दूरापास्तमेव अन्यच्च पुष्याद्यष्टभानां क्वचित्सार्वदिग्द्वारिकत्वं स्मर्यते। यदाह गुरुः—
'पुष्याश्विहस्तमैत्राणि पौष्णवैष्णवसौम्यभम्। वासवं सर्वदिक्ष्वाशु यात्रायां शोभनानि हि॥' इति।

वराहोऽपि—

'सर्वद्वारगसञ्ज्ञितानि गुरुभं हस्ताश्विमैत्राणि च।
श्रेष्ठान्यैन्दवपौष्णविष्णुवसुभान्याद्यैः सहोष्ट सदा॥ इति।

तत्राष्टानामपि सार्वदिग्द्वारगत्वं स्मर्यते चतुर्णां का कथा बहुवचनसंवादात्। तत्र मृगरेवतीश्रवणधनिष्ठानां सर्वद्वारगत्वमावश्यकगमनेऽभ्यनुज्ञानार्थम्। तत्र यदि पुष्यादीनि भानि दिग्विशेषेण त्यजेरंस्तदा बहुदिक्त्वं स्यात् न सर्वदिक्त्वम्। तत्र को विशेषः सर्वदिक्त्वबहुदिक्त्वयोः। उच्यते, सर्वशब्दः शक्त्या बुद्धिस्थवस्तुमात्रवचनः। तत्र वस्तुसङ्घं गृहीत्वैकत्वस्योपपत्तिः—सर्वः पदार्थ इति। तस्यैव द्वित्वे च सर्वौ पदार्थौ इति भवति। सर्वे इत्यत्र तु वस्तुसङ्घातो सर्वशब्देनोच्यते न बहुत्वम्। तदेव वचसा द्योत्यते। अत्र सर्वे इति बहुवचनेन त्रिचतुरादयः पदार्था उच्यन्ते। बहुशब्देन त्रय एवोच्यन्ते नाधिकाः। बहूनामन्त्रयस्वेत्युक्ते चतुरादिशब्दसन्निधाने त्रय एव निमन्त्र्यन्ते। किमत्र प्रमाणमिति चेच्छृणु। मीमांसायां एकादशेऽध्याये—'वसन्ताय कपिञ्जलानालभेत' इति वैदिके वाक्ये वसन्ताय वसन्त इत्यर्थं छांदसम्। कपिञ्जलाः पक्षिविशेषाः। तानालाभेत हन्यात्। तत्र कपिञ्जलानिति बहुत्वं तावत् गम्यते ते त्र्यादयः परार्धावधिकाः कपिञ्जलाः, त्रयो वा चत्वारो वा पञ्च वाऽऽलब्धव्याः, त्रय एवेति संशयः। तत्रैवं पूर्वपक्षः—कपिञ्जलानिति बहुवचनेन द्वित्वातिरिक्तसंख्यासामान्यरूपेणाभ्यधायि। तद्विशेषाकांक्षायामसत्यां त्र्यादिपरार्धातिरिक्तसंख्याविशेषाभावात्। त्र्यादिसंख्याविशेषा आक्षिप्यन्ते। न च तत्र चत्वारोऽपि पञ्च वा हन्तव्या इति संख्यान्तरमेव प्रतीयेत न त्र्यादयः। न च कपिञ्जलत्वावच्छेदकावच्छिन्नः कपिञ्जला हन्तव्या इति वाच्यम्। तथा सत्येकस्मिन्नेव यागे कृते जगतीतलवर्तिनां सर्वेषां कपिञ्जलानां विनाशप्रसङ्गः। तस्माद्यथाप्राप्तानां त्रिचतुरादीनां तेषामेव विकल्पेनालम्भ इति। उक्तं च जैमिनिना पूर्वपक्षसूत्रेण बहुवचनेन सर्वप्राप्तेर्विकल्पः स्यादिति। सिद्धान्तस्तु घटानानयेतिवदुच्चारितस्य बहुवचनान्तस्य शब्दस्य चतुरादिशब्दोपादानमन्तरेण त्रित्वमात्रं वाच्यम्। तावतैव बहुत्वोपपत्तेः अतिरिक्ताक्षेपे च प्रमाणाभावः। तस्मात्त्रय एव कपिञ्जला हिंस्याः। उक्तं च जैमिनिना—'प्रथमं वा नियम्येत कारिणा स्यादतिक्रमः। 'स्यात्' इति। सिद्धान्तसूत्रेण। अत एव बहुत्वं त्रित्वे पर्यवस्यतीति लोकोक्तिः साधीयसी। एवं प्रस्तुतेऽपि विषये दृष्टिः। न च प्रथमोक्तेः साधुत्वाख्यानार्थं बहव इत्यादौ प्रवृत्तिनिमित्तबहुत्वव्यंजकबहुवचनोत्पत्तिः। बहुरोदन इत्यत्र बहुवचनं कस्मान्न भवति, सत्यम्। नात्र बहुशब्देन संख्योच्यते किन्तु वैपुल्यम्। तस्माद्बहुशब्देन त्रित्वसंख्योच्यते। सर्वशब्देन न त्रित्वसंख्या न तु चतुरादिका वा। अतोऽत्र मतभेदः।

ननु पुष्यादीनां सर्वदिक्त्वे समर्थिते सत्यपि नैव सर्वदिक्त्वोपपत्तिः। यावता वारशूलं मत्वा तद्दिग्वर्जनादितत्त्रयमेवावशिष्यते। तेन बहुदिक्त्वमेवोपपद्यते इति। उच्यते। नैतावता भवदिष्टं सिध्यति। 'प्राचीं श्रवणशक्राभ्याम्' इत्यादिना नक्षत्रविशेषे दिग्विशेष इत्यादि प्रतीयते। वारशूलेनायमर्थ उच्यते—रविवारे पश्चिमशूलं सोमे पूर्वेत्यादि। अतः बहुदिक्त्वसर्वदिक्त्वप्रतिपादकयोरन्यतरस्य सर्वदिक्त्ववाक्यस्य सबलत्वे निर्णीते तृतीयेन वारशूलेन सर्वदिक्त्वं व्याहतं यद्यपि तथापि नियतबहुदिक्त्ववाक्यात्तु सबलमेव। नहि यथा बालिसुग्रीवयोर्युद्ध्यमानयोर्भगवता रामेण वालिनिहते वालिनः सुग्रीवापेक्षया दौर्बल्यं मन्यन्ते शूराभिमानिन इति।

किंच दक्षिणाशायां धनिष्ठोत्तरार्द्धादिपञ्चकं त्याज्यमित्युक्तम्। तत्राश्विनीत्यागे धनिष्ठादि षट्कं त्याज्यमित्येवं कस्मान्नोक्तम्। न च प्रेतदाहतृणकाष्ठसङ्ग्रहादिनिषेधार्थं तथाभिधानमिति वाच्यम्। वाक्यान्तरे हि प्रतिपदमेव पञ्चकस्य निषेधात्। यदाह वसिष्ठः—

'वसुभस्योत्तरार्द्धाच्च पञ्चधिष्णयेषु सर्वदा ।
याम्यग्दिग्यायिनां नृणां न मुहूर्तो जयप्रदः ॥' इति ।

अन्यच्चापरे आहुः—

पश्चिमे पुष्यस्त्याज्य इत्युच्यते च । श्रीपतिना तु—'हस्तः पुष्य' इत्यादिना पुष्यस्य सर्वदिग्द्वारतत्वमुक्त्वा नक्षत्रप्रकरणे—

'ग्रहेण विद्धोप्यशुभान्वितोऽपि विरुद्धतारोऽपि विलोमगोऽपि।
करोत्यवश्यं सकलार्थसिद्धिं विहाय पाणिग्रहमेव पुष्ये ॥'

इत्युक्तम् । अत्र हि 'विलोमग' इति पदं टीकाकृन्महादेवो विलोमगः प्रतीच्यादिगमनविरुद्धोऽपि तत्र शुभ इति शब्दार्थं व्याख्यायमाशयः । पुष्यो हि प्राचीनक्षत्रं तद्दक्षिणस्यां पश्चिमायां वा पारिघदण्डसत्वाद्विदिग्गमनप्रतिबन्धकर्तृसदोपपद्यते । तत्र 'द्विर्वद्धं सुवद्धं भवति' इति न्यायात्पुष्योऽपि सर्वदिग्द्वारम् एव । यद्येवं हस्तेप्यपवादः पुष्यवत्कार्यः स्यात् । तुल्यन्यायत्वात् । एककर्तृकेणैव वाक्येन सर्वदिग्द्वारगत्वे सिद्धे पुनरन्येनाभिधानं व्यर्थं स्यात् । तस्मान्नैवं शक्यं वक्तुम् । अतः प्रागुक्तमेवोपोद्वलकं सत् । यद्येवं कस्तर्हि विलोमग इत्यस्यार्थः । केचिदाहुः विलोमं विपरीतं गच्छतीति विलोमगः । यथा—'तेषां संक्षेपोऽयं प्राकृतेरन्यत्वमुत्पातः' इति वराहोक्तेर्यदोत्पातेन विलोमगामित्वं पुष्यस्य स्यात्तदापि न दोषः । यथा भौमस्योष्णादिपञ्चविधं वक्रत्वमुक्तम् । तत्रोष्णं वक्रम् ।

'स्वस्वोदयार्क्षान्नवमेष्टमे वा सप्तर्क्षगे वा क्षितिजे प्रतीपे ।
तद्वक्रमुष्णाह्वयमेव तत्र वह्नेर्भयं व्याधिभयं जनानाम् ॥'

इति वसिष्ठेन तल्लक्षणमुक्तम् । तत्रैतादृशं वक्रं न कदाचित्सम्भवति । तथापि उत्पातवशाद्गणित विरुद्धापिवक्रगतिः । स्यात्तदर्थं फलोपन्यासः । एवं पुष्यवक्रत्वमस्यालोच्यम् । एतद्व्याख्यानं निर्मूलत्वादुपेक्ष्यम् । यथोष्णस्य वक्रस्यासम्भवस्तथा पितृचरणैष्टोडरानन्दे भौमचारे सम्यक् प्रतिपादितम् । अन्ये त्वाहु —विलोमगोऽपि विलोमग्रहाधिष्टितापि शुभः—
'एकार्गलहत धिष्णयं क्रूराक्रान्तं च विद्धभम् । उत्पातदूषितं यत्तद्यात्रायां भङ्गदं सदा ॥' इति ।

वसिष्ठादिवाक्यात् क्रूरस्य वक्रिणो मार्गिणो वा योगो दुष्ट एव । अत एवाशुभान्वितोऽपि पुष्यः सकलार्थसिद्धिदातेत्युक्तम् । अनेन तु सौम्यस्य गुर्वादेर्वक्रिणो मार्गिणो वा दुष्ट एवाशुभान्वितोऽपि अशुभफलदाता न स्यात् । तच्चिन्त्यम् मूलभूतार्षवाक्यानुपलम्भात् । यद्वक्रिसौम्यग्रहयोगेष्वशुभफलदाता पुष्यो न भवेदिति ।

'क्रूरैर्विद्धो युतो वापि पुष्यो यदि बलान्वितः । विना पाणिग्रहं सर्वमङ्गलेष्विष्टदः सदा ॥'

इति वसिष्ठादिवाक्यान्यप्येवमर्थकानि सन्ति न कुत्रापि विलोमग इत्यभिहितम् । किं च सौम्यवक्रिग्रहाधिष्ठितोऽश्विन्यादिभगणश्चेत्तदाश्विन्यादेर्दोषवत्ता भवन्मते प्रसज्यते । सा चाप्रसिद्धा । अन्यच्च ग्रहाधिष्ठितत्वं लक्षणया व्याक्रियते । मुख्यार्थसम्भवे सा प्रयुक्ता । अस्ति च मुख्यार्थसम्भवो यदुत्पातादिना नक्षत्रस्य वक्रत्वमिति । अपरे पुनराहुः—

विलोमा उत्पातास्तैः सह गच्छतीति विलोमगः त्रिविधोत्पातैर्यदि पुष्यो निहतः तदापि शुभ इति । तदपि न । पुष्यस्त्रिविधोत्पातहतो दुष्ट एव । यदाह वसिष्ठः—

'मृगगणमध्ये सिंहो ह्युडुगणमध्ये तथैव पुष्यश्च ।
निजबलसहितोऽप्येवं त्रिविधोत्पातैर्न शक्तिमान्निहतः ॥'

इति तस्माद्विलोमग इत्यस्यार्थश्चिन्त्यः ।

ननु नक्षत्रविशेषे अश्विन्यादौ विहितत्वप्रतिषिद्धत्वाभ्यां विकल्पः । यथा षोडशीग्रहणाग्रहणयोः न पुनरतुल्य बलयोः । यथौदुम्बर्याः सर्ववेष्टनस्पर्शन प्रतिपादिकयोः स्मृत्योः । तत्र हि स्पर्शनस्मृतेः प्रत्यक्षदृश्यो वेदः प्रमाणमौदुम्बरीं स्पष्ट्वा वेष्टयेदिति । सर्ववेष्टनस्मृतेस्तु प्रत्यक्षदृश्यमूलवेदानुपलम्भः । एतच्च स्मृतिचरणे सम्यगुपपादितं वार्तिककृता, एवमश्विन्यादिविषयकसार्वदिग्द्वारगप्रतिपादकस्य 'हस्तः पुष्यइत्यस्य' वाक्यस्य वसिष्ठादिमुनिवाक्यानि प्रमाणानि । निषेधवाक्यन्तु चिन्त्यम् । मूलमित्यतुल्यबलत्वाद्विकल्पोऽपि न सम्भवति । तस्मान्मैत्रार्कपुष्याश्विनीनां भानां सार्वदिग्द्वारगत्वं सिद्धम् । तत्र सर्वशब्दग्रहणाद्वा । 'अग्नेर्दिशं नृप इयात्' इत्यादिना वा विदिक्ष्वाग्नेयादिदिक्ष्वपि मैत्रादिभिर्यात्रोचितेति भावः । यदाह वसिष्ठः—

सर्वस्मिन्नपि समये सर्वासु च दिग्विदिक्ष्वेव ।
सार्वद्वारगधिष्ण्यान्यतिशुभदातृण्यखिलनृणाम् ॥' इति ।

अत्र सार्वद्वारगधिष्णयानामेव सर्वकालगामित्वमुक्तम् । रत्नमालायां तु श्रवणमृगशीर्षहस्तपुष्याणामुक्तम् । तच्च गुरूक्तसार्वदिग्द्वारगत्वाभिप्रायेण । अनुराधाश्विन्योस्तु सर्वमतेन सर्वकालगामित्वम् । तदा कालविशेषे निषेधे क्षिप्रग्रहणमश्विनीरहितं ध्येयम् । मृदुग्रहणमनुराधा रहितं ध्येयं । गुरुमते रेवतीरहितमपि । चरग्रहणं धनिष्ठाव्यतिरिक्तं गुरुमते एव द्रष्टव्यम्, एवमष्टानां सार्वदिग्द्वारगत्वं सर्वकालगमनार्थम् । चतुर्णां पुनर्मैत्रादीनां दिक्षु यात्रार्थमपि सार्वदिग्द्वारगत्वमित्यलमतिप्रसङ्गेन । वक्री ग्रह इति । वक्रं विपरीतं गमनं यस्य भौमादेः स वक्री ग्रहश्चेत्केन्द्रगतः स्यात्स गमे यात्राया निषिद्धः । अथवास्यलग्ने वर्गः षड्वर्गश्चेत्स्यात्तदापि भङ्गदः । अथवा अस्य वक्रीग्रहस्य दिनं वारोऽपि स्यात् सोऽपि निषिद्धः । यदाह वराहः—

'एकोऽपि वक्रोपगतो नराणां शुभोऽशुभो वापि चतुष्टयस्थः ।
वर्गोऽपि वास्योदयगो विनाशं बहुप्रकारं कुरुतेऽध्वगानाम् ॥' इति ।

श्रीपतिनापि—

'नेष्टश्चतुष्टये वक्री तद्वर्गोऽपि विलग्नतः । करोति बहुधा नाशं तद्वारोऽपि यियासताम् ॥' इति ।
चतुष्टयं केन्द्रम् । यत्तु वसिष्ठेनोक्तम्—

'एकोऽपि वक्रगः खेटो लग्नस्थो वारिराशिगः। नीचस्थो वा तदंशस्थो यात्राफलविनाशनः ॥'इति ।
वारिराशिश्चतुर्थस्थानम् । नारदोऽपि—

'विलोमगो ग्रहो यस्य यात्रालग्नोपगो यदि । तस्य भङ्गप्रदो राज्ञस्तद्वर्गोऽपि विलग्नगः ॥' इति ।
तद्वक्रिग्रहस्य लग्नादिस्थितत्वे दोषाधिक्यं सूचयितुम् ।

यात्रार्थ वाराः—

तर्हि कस्य वारे गमनं कार्यमित्याह वसिष्ठः—

'बलप्रदस्य खेटस्य वारवर्गः शुभप्रदः । इतरग्रहवारादि यात्रायामशुभप्रदम् ॥' इति ।

अत्र केचित्—'नेष्टश्चतुष्टये वक्र' इति पाठमादृत्य वक्रं मङ्गलमिति व्याचख्युः । 'आरो वक्रः क्रूरदृक् चावनेय' इति वराहोक्तेः । तत्र वक्रमस्यास्तीति वक्रः । अर्शआदित्वादच् । वक्री ग्रह ऐवेत्यर्थः अत्रापि 'एकोऽपि वक्रगःखेट' इति विलोमगो ग्रहो यस्येति च वसिष्ठनारदादिवाक्यान्यनुकूलानि वक्रीति पाठे मत्वर्थीये इनिप्रत्यये सति वक्रीति रूपसिद्धौ भौमस्य गन्धोऽपि नास्ति ॥ ३८ ॥

पीताम्बरा—चारों दिशाओं की यात्रा के नक्षत्र—अनुराधा हस्त पुष्य और अश्विनी ये दिग्द्वार नक्षत्र हैं । इन चारों नक्षत्रों में चारों दिशाओं की यात्रा शुभ होती है । इन नक्षत्रों की यात्रा में पारिघ और वाम चन्द्रादि दोष नहीं माने जाते । ये दिग्द्वार नक्षत्र कहे जाते हैं ।

यात्रा लग्न से केन्द्र में वक्रीग्रह (विलोमगतिक) तथा लग्न में वक्रीग्रह के षडवर्ग के समय तथा वक्री ग्रह के वार में यात्रा अशुभ होती है ।

आचार्य वराह और आचार्य गुरु के मत से, अनुराधा, हस्त, पुष्य, अश्विनी के साथ-साथ मृगशीर्ष, रेवती, श्रवण और धनिष्ठा को भी दिग्द्वार नक्षत्र कहा है । इस प्रकार ४ की जगह पर ८ दिग्द्वार नक्षत्र हो जाते हैं । जिनमें चारों दिशाओं की यात्रा हो सकती है ॥३८॥

अथायनशुद्धिमिन्द्रवज्राछन्दसाह—

सौम्यायने सूर्यविधू तदोत्तरां प्राचीं व्रजेत्तौ यदि दक्षिणायने ।
प्रत्यग्यमाशां च तयोर्दिवानिशं भिन्नायनत्वेऽथ वधोऽन्यथा भवेत् ॥ ३९ ॥

पीयूषधारा—सौम्यायन इति । यदि सूर्यचन्द्रौ सौम्यायन उत्तरायणे गतौ स्यातां तदा उत्तरां प्राचीं वा व्रजेत् । तद्दिङ्मुखा यात्रा शुभेत्यर्थः। यदि तु रविचन्द्रौ दक्षिणायनगतौ स्यातां तदा प्रतीचीं दक्षिणां वा व्रजेत् । यदाह पराशरः—

'चन्द्रार्कौ दक्षिणगतौ यायाद्याम्यां परां प्रति । सौम्यायनगतौ यायात्प्राचीं सौम्यां दिशं प्रति ॥ इति

अयनभेदे एव दिवानिशं यात्रा कार्या—

तयोः सूर्याचन्द्रमसोर्भिन्नायनत्वे अयनभेदे सति दिवा निशं व्रजेत् । यथा सूर्यो यस्मिन्नयने तां दिशमुत्तरां दक्षिणा वा दिवा दिवसे यायात् । यदा चन्द्रो यस्मिन्नयने तां दिशमुत्तरां दक्षिणां वा निशी रात्रौ यायात् ।अत्रोत्तरस्यां पूर्वस्या अन्तर्भावः । दक्षिणस्यां पश्चिमाया इत्यपि ध्येयम् । अत्र सम्मतिर्वक्ष्यते । अन्यथा चेत्कुर्यात्तदा वधो मरणं भवेत् । यथा भिन्नायनत्वे सति सूर्यो यस्मिन्नयने तां दिशं यदि रात्रौ गच्छेत् । चन्द्रश्च यस्मिन्नयने तां दिशं दिवसे गच्छेत्तदा यातुर्वधो भवेदित्यर्थः । यदाह वसिष्ठः—

'यात्रेष्टसिद्धिदार्केन्द्वोरेकायनगयोस्तयोः । भिन्नायनगयोरह्नि निशि चेदन्यथा वधः ॥' इति ।

नारदोऽपि—

'रवीन्द्वयनयोर्यानमनुकूलं शुभप्रदम् । तदभावे दिवा रात्रौ यात्रा यातुर्वधोऽन्यथा ॥' इति ।

तदभावे एकायनत्वाभावे दिवारात्रौ यात्रागमनं स्यात् । स्पष्टं व्याख्यानं प्राग्वद्ध्येयम् ।

तदुक्तं रत्नकोशे—

'दिनकरकरप्रतप्तां मकरादावुत्तरां च पूर्वां च। यायाच्च कर्कटादौ याम्यामाशां प्रतीचीं च।।इति।

अतो विलोमदिग्यात्रायां वधः स्यात्। एतस्य नामायनप्रतिलोमयात्रेत्युच्यते। तन्माहात्म्यमाह वराहः—

'यातोऽयनस्य प्रतिलोमकाष्ठां यः स्यात्स्वतन्त्रोऽपि जितः परेषाम्।
स केवलव्याकरणाभियुक्तः काव्यज्ञगोष्ठ्यामिव हास्यमेति।।' इति।। ३९।।

पीताम्बरा—यात्रा में अयन शुद्धि—उत्तरायण सूर्य चन्द्रमा की स्थिति में उत्तर-पूर्व दिशा की यात्रा शुभ होती है। दक्षिणायन सूर्य चन्द्रमा की स्थितियों में पश्चिम-दक्षिण की यात्रा शुभ होती है। तथा केवल सूर्य चन्द्रमा दोनों के भिन्न अयन हों तो—जिस अयन में (उत्तर या दक्षिण) सूर्य हो उस उत्तर या दक्षिण दिशा की यात्रा दिन में करनी चाहिए। इसी प्रकार जिस (उत्तर या दक्षिण) अयन में चन्द्रमा हो उत्तर या दक्षिण दिशा की यात्रा रात्रि में करनी चाहिये। इस प्रकार के विधान से उत्तर दक्षिण दो ही दिशाओं की यात्रा होती है। पूर्व या पश्चिम दिशाओं की यात्रा का उक्त पद्य में समावेश नहीं होता? यहाँ पर श्लोक के पूर्वार्द्ध में उत्तर, पूर्व और दक्षिण पश्चिम चारों दिशाओं का उल्लेख होने से, सूर्य, चन्द्रमा के भिन्न अयनों की पृथक-पृथक अयन गत स्थितियों से सूर्य के "उत्तरायण में उत्तर पूर्व, दक्षिणायन में दक्षिण-पश्चिम यात्रा दिन में करनी चहिए" स्पष्टता प्रत्यक्ष है। तथैव चन्द्रमा की उत्तरायण या दक्षिणायन की स्थितियों वश उत्तर-पूर्व या दक्षिण-पश्चिम की यात्रा रात्रि में करनी चाहिए। उसके अतिरिक्त की विपरीत यात्रा में मरण की स्थिति (आशंका) होती है।। ३९।।

अथ राज्ञां यात्रायां सम्मुखशुक्रदोषमुपजातिकाछन्दसाह—

उदेति यस्यां दिशि यत्र याति गोलभ्रमाद्वाथ ककुब्भसङ्घे।
त्रिधोच्यते सम्मुख एव शुक्रो यत्रोदितस्तां तु दिशं न यायात्।। ४०।।

पीयूषधारा—उदेतीति। शुक्रस्त्रिधा प्रकारत्रयेण सम्मुख उच्यते। मुनिभिरिति शेषः। कथम्। शुक्रो यस्यां दिशि प्राच्यां प्रतीच्यां वा उदेति कालांशवशेनोदयं करोति। अत्र गन्तुः पुंसः शुक्रः सम्मुखः। अयमेकः प्रकारः। वा अथवा गोलभ्रमादुत्तरदक्षिणगोलभ्रमणवशेन यत्र यस्यां दिशि उत्तरस्यां दक्षिणस्यां वा याति तत्र गन्तुः सम्मुखः शुक्रः स्यात्। अयं द्वितीयः प्रकारः। तत्र शब्दोऽनुवर्तते। यत्र ककुब्भसङ्घे प्राच्यादिदिशि कृत्तिकादिन्यासवशेन यद्दिङ्नक्षत्रे चरति तत्र दिशि गन्तुः सम्मुखः शुक्रः स्यात्। अयं तृतीयः प्रकारः। यदाहात्रिः—

'यद्दिग्गतः समुदयेद्विचरेद्यत्र गोलके। यद्द्वारभेषु विचरेत्त्रिविधं प्रतिभार्गवम्।।'

उदिते शुक्रे तद्दिशि न गन्तव्यम्—

एवं प्रकारत्रयेण शुक्रसाम्मुख्ये निर्णीते उदयं गते शुक्रे दोषाधिक्यमाह—यत्रोदित इति। तुर्विशेषे। एवशब्दो भिन्नक्रमो दिशमित्यनेन सम्बध्यते। यस्यां दिश्युदितः शुक्रो दृश्येत तां दिशमेव न यायान्न गच्छेत्। अन्य दिश्यपि यथासम्भवं न यायात्। यदाह श्रीपतिः—

'उदयति दिशि यस्यां याति तत्र भ्रमाद्वा विचरति च भचक्रे येषु दिग्द्वारभेषु।

त्रिविधमिह सितस्य प्रोच्यते सम्मुखत्वं मुनिभिरुदय एव त्यज्यते तत्र यत्नात् ॥' इति ।

स्पष्टार्थं पद्यम् । याति यत्र भ्रमाद्वेति अत्र केचित् । स्वोदयकालात्प्रदक्षिणं प्राच्याद्यष्ट- दिक्षु प्रहराष्टकेन सूर्यवच्छुक्रोऽपि भ्रमति । सूर्यभ्रमणं च वसन्तराजेनोक्तं—

'दग्धा दिगैन्द्री ज्वलिता दिगैशी प्रधूमिता वानलदिक्प्रभाते ।
प्रत्येकमेवं प्रहराष्टकेन भुङ्क्ते दिशोऽष्टौ सविता क्रमेण ।
दग्धदिगुक्ता दिननाथमुक्ता विवस्वदाप्ता भवति प्रदीप्ता ।
सन्धूमितायां सविता प्रयाता शेषा दिगन्ताः खलु पञ्च शान्ताः ॥' इति ।

अनेन सूर्यभ्रमणप्रकारेण शुक्रोऽपि यस्यां दिशि स्यात्सा दिक् गन्तुः सम्मुखा स्यात् । अतस्तस्मिन्प्रहरे सापि दिक् त्याज्येत्यर्थ इत्याहुः । तन्न वसन्तराजे हि सूर्यभ्रमणवच्छुक्रभ्रमण- मप्यवसेयमित्येवंविधशुक्रातिदेशवाक्याभावात् तस्मात् भ्रमादिति गोलभ्रमादित्येवं व्याकर्तव्यम् । अत्रार्थेऽत्रिरप्यनुकूलः तद्वाक्यं च प्रागुपन्यस्तम् ।

प्रतिशुक्रदोषफलमाह वराहः—

'प्रतिशुक्रबुधाशनिवृष्टिहतादिविधं कुरुते नृपतेर्गमने ।
मदिरामुदिता मदनाकुलिता प्रमदेव कुलं परवेश्मगता ॥' इति ।

नारदोऽपि—

'मूढे शुक्रे कार्यहानिः प्रतिशुक्रे पराजयः ।' इति । ननु वधूप्रवेशप्रकरणे 'दैत्येज्यो ह्यभिमुखदक्षिणेन शस्त' इति पद्येन शुक्रसाम्मुख्यदोषनिराकरणार्थं पुनरभिधानम् । किं च आवश्यकयात्रायां यत्रोदितस्तामेव दिशं नेयात् । तथा सति—

'प्राच्यामभ्युदिते शुक्रे प्रतीचीं दक्षिणा दिशम् ॥' पश्चादभ्युदिते शुक्रे यायात्प्राचीं तथोत्तराम् ।

इति वसिष्ठवाक्यमपि यथासम्भवमादरणीयं च भवति । अनेन सम्मुखशुक्रव्यतिरिक्त- दिग्यात्राभ्युपगमात् । किं च वधूप्रवेशप्रकरणे शिश्वादीनां विशेषफलाभिधानं कृतं न तु सामान्यतो यात्रासाधारण्येनान्येषामपि राजादीनां कृतम् अत एव यस्य विशिष्य पुनरपेक्षानास्ति नगरप्रवेश- विषयाद्युपद्रव इति 'भृग्वङ्गिरोवत्स' इति चाभिहितस्य सम्मुखखशुक्रापवादस्याभिधानमत्र पुनर्न कृतमेतेनैव सिद्धेः ।

अथैवंविधेऽपि शुक्रसाम्मुख्ये अवश्यकर्तव्ये च गमने शान्तिमाह वसिष्ठः—

'तद्दोषशमनार्थाय शांतिं वक्ष्ये समासतः । कृत्वा शान्तिं प्रयत्नेन पश्चात्सर्वं समाचरेत् ॥
उपोष्य भृगुवारेऽपि यावच्छुक्रोदयं प्रति ॥ भृगुलग्ने भृगोर्वारे भृगोर्वर्गे भृगूदये ।
लिखेदष्टदल पद्मं कांस्यपात्रे च तण्डुलैः ॥ रजतेन च शुद्धेन कारयेत्प्रतिमा भृगोः ।
शुक्लपुष्पाक्षतैर्गन्धैर्मुक्ताहारैर्विचित्रितैः ॥ शुक्लसूक्ष्माम्बरैर्वेष्टच प्रतिमां तत्र पूजयेत् ।
तन्मन्त्रेण जपं कुर्यात्सम्यगष्टोत्तरं शतम् ॥ उपचाराणि कार्याणि शुक्रन्ते अन्यदित्यृचा ।
श्वेतगन्धाक्षतैः पुष्पैः क्षीरमिश्रेण वारिणा ॥ कर्मान्ते तेन मन्त्रेण भक्त्या चार्घं प्रदापयेत् ।
श्वेतोऽथ मण्डली काव्यो विधिस्थो भृगवे नमः ॥ दैत्यमन्त्री दिवादर्शी चोशना भार्गवः कविः ।
अनेनैव च मन्त्रेण प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः । दत्त्वेत्यर्घं प्रयत्नेन प्रार्थयेद्देवभक्तितः ।

त्वत्पूजयानया शुक्र सम्मुखत्वसमुद्भवम् । दोषं विनाशय क्षिप्रं रक्षमां तेजसां निधे ॥
इति प्रार्थ्य प्रयत्नेन प्रतिमा भूषणान्विता । दैवज्ञायैव दातव्या श्वेताश्वसहितैव च ॥
शिष्टेभ्यो दक्षिणां दद्याद्यथावित्तानुसारतः । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ॥
इतरेषां ग्रहाणां च पूजां कुर्यात्प्रयत्नतः । तत्तत्सम्मुखजो दोषस्तत्क्षणादेव नश्यति ॥
सूर्याय कपिलां दद्याच्छङ्खं चन्द्रमसे तथा । कुजाय वृषभं दद्यात्स्वर्णं दद्याद्बुधाय च ॥
गुरवे पीतवस्त्रं चाश्वं सितायासिताय गाम् । एवं प्रयत्नतः कृत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥' इति ।

इतरग्रहसाम्मुख्येऽपि यात्रा न कार्या—

शुक्रवदितरग्रहसाम्मुख्ये तत्तल्लिङ्गस्वशाखोक्तवैदिकमन्त्रैः पूजादिकं विधेयम् । अस्मादेव शान्तिकथनज्ञापकादितरसान्मुख्ये दोषाभिधायकं वाक्यं विनैव किञ्चिद्दोषोऽस्तीत्यनुमीयते । बुधसाम्मुख्यदोषं तु स्वयमेव वक्ष्यति । भौमसाम्मुख्यदोषं कण्ठतो वसिष्ठ एवाह । तद्वाक्यमधुनैव प्रदर्शयिष्यत इत्यास्तां प्रसक्तानुप्रसक्तेन ।

दीपिकायां तु दानमेवोक्तम्—

'सितमश्वं सितं छत्रं हेममौक्तिकसंयुतम् । ततो द्विजातये दद्यात्प्रतिशुक्रप्रशान्तये ॥' इति । एतच्छान्तिप्रकाराशक्तौ ज्ञेयम् ॥ ४० ॥

पीताम्बरा—यात्रा में तीन प्रकार से सम्मुख शुक्र दोष—शुक्र के तीन प्रकार की सम्मुख स्थिति होती है—

(१) शुक्र जिस दिशा में पूर्व या पश्चिम में उदय होता है, उस दिशा में जाने वाले के लिए सम्मुख शुक्र होगा ।

(२) उत्तर-दक्षिण गोल के क्रम से शुक्र जिस गोल में हो उस गोलाभिमुख यात्रा करने वाले के लिए भी सम्मुख शुक्र (गोलक्रम से) होता है ।

(३) कृतिकादि न्यास क्रम से जिस दिशा के नक्षत्र संघ में शुक्र हो उस दिशा की यात्रा में भी शुक्र सम्मुख होता है ।

इस प्रकार तीन प्रकार से सम्मुख शुक्र होता है । यात्रा में सम्मुख शुक्र नहीं होना चाहिए । तीनों प्रकार से सम्मुख शुक्र का विचार करने से यात्रा सम्भव नहीं है । अतः जिस दिशा में शुक्र का उदय होता है उस दिशा की अभिमुख यात्रा मेंही सम्मुख शुक्र विशेष दोषप्रद समझना चाहिए ।

सम्मुख शुक्र दिशा की यात्रा आवश्यक होने पर वसिष्ठ मुनि के शान्ति प्रकार के अनुसार शान्ति कर्म पूर्वक यात्रा की जानी चाहिए ॥ ४० ॥

अथैवं सम्मुखशुक्रदोषमभिधायेदानीं तस्यैव वक्रास्तादिदोषं सापवादमुपजातियाह—

वक्रास्तनीचोपगते भृगोः सुते राजा व्रजन् याति वशं हि विद्विषाम् ।
बुधोऽनुकूलो यदि तत्र सञ्चलन् रिपूञ्जयेन्नैव जयः प्रतीन्दुजे ॥४१॥

पीयूषधारा—वक्रास्तेति । भृगोः सुते शुक्रे वक्रोपगते अस्तोपगते वा उपलक्षत्वाद्ग्रहयुद्धपराजिते वर्णरहिते वा सति राजा परराष्ट्रं वजन् सन् हि निश्चयेन विद्विषां शत्रूणां वशं याति निबद्धो भवतीत्यर्थः । यदाह भारद्वाजः—

'विवर्णे विजिते नीचे वक्रिते वा सितेऽस्तगे । शत्रुग्रहयुते वापि तदंशे तन्निरीक्षिते ।।
यात्रां नैव प्रकुर्वीत लक्ष्म्यायुर्बलहानिदाम् ।' इति । श्रीपतिरपि—
'नीचगग्रहजिते प्रतिलोमे भार्गवे कलुषितेऽस्तगते वा ।
प्रस्थितो नरपतिः प्रबलोऽपि क्षिप्रमेव वशमेति रिपूणाम् ।।' इति ।

गुरुशुक्रचन्द्राणामस्तदोषे बाल्ये वार्द्धक्ये च यात्रा न कार्या—

अत्र विशेषमाह लघुवसिष्ठः—'शुक्रे वास्तङ्गते जीवे चन्द्रे वास्तमुपागते । तयोर्बाल्ये वार्द्धके च सा यात्रा भयरोगदा ।।' इति ।

अथ शुक्रास्तापवाद उच्यते—

बुध इति । तत्र शुक्रास्ते यदि बुधोऽनुकूलः पृष्ठदिक्संस्थो भवेत्तदा सञ्चलन्गच्छन् राजा रिपून शत्रून् जयेत् । यदाह श्रीपतिः—'एवंविधे ह्यास्फुजिति प्रयायाद्बुधो यदि स्यादनुकूलवर्ती' इति । अपवादान्तरमप्याह नारदः—
'नीचगोऽरिगृहस्थो वा वक्रगो वा पराजितः । यातुर्भङ्गप्रदः शुक्रः स्वोच्चस्थश्चेद्धनप्रदः ।।' इति ।

सम्मुखे बुधे कुजे शुक्रे वा यात्रा कार्या—

नवेति । प्रतीन्दुजे बुधसम्मुखत्वे सति गन्तू राज्ञो नैव जयः किन्तु पराजयः । यदाह नारदः—प्रतीन्दुजकृतं दोषं हन्तुं सक्ता ग्रहा न हि' इति । वसिष्ठोऽपि—
'प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रतिभौमं गतो नृपः । बलेन शक्रतुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्त्तते ।।' इति ।

प्रतिशुक्रबुधादिदोषो नृणां प्रथमगमे राज्ञां युद्धयात्रायामेव—

अयं च प्रतिशुक्रादिविचारः नृणां प्रथमगमने राज्ञां तु विजययात्रामाहुः । तथा च रम्यः—
'प्रतिशुक्रादिदोषोऽयं नूतने गमने नृणाम् । राज्ञां विजययात्रायां नान्यथा दोषमावहेत् ।।' इति ।
आदिशब्दाच्छुक्रास्तप्रतिभौमप्रतिबुधा गृह्यन्ते । तेषामप्येवंविधे विषये दोषः ।। ४१ ।।

पीताम्बरा—वक्रादि शुक्र दोष के अपवाद—वक्र या अस्तंगत शुक्र की संस्थिति में राजा की यात्रा से राजा शत्रु के वश में आ जाता है। ऐसी स्थिति में यात्रा समय यदि बुध ग्रह अनुकूल (यात्रा दिशा के पृष्ठ में) हो तो राजा शत्रु की पराजय के साथ स्वयं विजयी होता है, तथा यात्रा के समय बुध की सम्मुख स्थिति भी राजा के विजय की न होकर पराजय के लिए ही होती है ।। ४२ ।।

अथ कालविशेषे प्रतिशुक्रापवादं शुक्रास्ते च विशेषं शालिनीछन्दसाह—

यावच्चन्द्रः पूषभात्कृत्तिकाद्ये पादे शुक्रोऽन्धो न दुष्टोऽग्रदक्षे ।
मध्ये मार्गं भार्गवास्तेऽपि राजा तावत्तिष्ठेत्सम्मुखत्वेऽपि तस्य ।। ४२ ।।

पीयूषधारा—यावदिति । चन्द्रो यदा पूषभाद्रेवतीनक्षत्रादारभ्य कृत्तिकाद्ये पादे रेवत्यश्विनीभरणीकृत्तिकाप्रथमचरणे यावच्चन्द्रस्तिष्ठति तावच्छुक्रोऽन्धो ज्ञेयः । दुष्टोऽपि शुक्रो दर्शनकार्यं न करोतीत्यर्थः । तदेवाह—न दुष्ट इति । शुक्रोऽन्धो तदा भवेत्तदा अग्रे सम्मुखे दक्षिणभागे च दुष्टो न स्यात् । यदाह पराशरः—
'पौष्णादिवह्निभाद्याङ्घ्रि यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः । तावच्छुक्रो भवेदन्धः सम्मुखे गमनं हितम् ।।' इति ।

मध्येमार्गमिति । मार्गस्य मध्ये मध्येमार्गं 'पारेमध्ये षष्ठ्या वा' इत्यव्ययीभावसमासः । पूर्वपदस्यैदन्तत्वं निपातनात् पारे मध्ये इति । सुमुहूर्तप्रस्थितो राजा मार्गमध्ये यदि शुक्रास्तो भवेत्तावत्कालं तस्मिन्नेव प्रयाणे तिष्ठेत् यावच्छुक्रोदयो भवेत् । यदि शुक्रो गन्तू राज्ञः सम्मुखो दैवात्तावत्तस्य शुक्रस्य सम्मुखत्वेऽपि तस्मिन्नेव प्रयाणे तिष्ठेत् ।

क्वचिद्गुरोरपि साम्मुख्यास्तत्वदोषौ यात्रायां न स्तः—

उपलक्षणत्वाद्गुरावप्येवंविधे द्रष्टव्यम् । यदाह पराशरः—'जीवः शशाङ्कः शुक्रो वा मार्गमध्येऽस्तगो यदि । तत्रैव निवसेद्राजा यावदभ्युदितो भवेत् ॥' इति ।

तत्र विशेषः—

उदयादनन्तरं यदि सम्मुखः शुक्रस्तदापि स्थेयमिति प्राग्वचनाज्ज्ञायते । ततः शुक्रास्तापेक्षायां तत्रैव स्थितिः । ततः शुक्रोदयमपेक्ष्य तं च पृष्ठतः कृत्वाग्रे सुमुहूर्ते वा गच्छेदित्यनुक्तमप्येतत्सर्वं ज्ञायत इति ।

एवं मध्येमार्गं बुधास्तश्चेत्स्यात्तदा दोषाभावः । सामान्यविशेषवाक्याभावात् । यदा तु मध्येमार्गं बुधोदयो भवेत्स च पुनः सम्मुखः स्यात्तदा दोष एव । उक्तं च वसिष्ठेन—'सम्मुखे चन्द्रजे यत्र मार्गमध्योदितो यदि यावदस्तङ्गते तस्मिस्तावत्तत्रैव संवसेत्' इति ॥ ४२ ॥

पीताम्बरा—समय विशेष से सम्मुख शुक्र का अपवाद, तथा मार्ग में शुक्रास्त पर विशेष—जब तक चन्द्रमा रेवती नक्षत्र से कृतिका नक्षत्र के प्रथम चरण में रहता है तब तक सदा शुक्र अन्धा रहता है, अतः शुक्र की अन्ध समय तक की स्थिति में सम्मुख या दक्षिण शुक्र का दोष नहीं होता है ।

यात्रा के शुभ मुहूर्त में प्रस्थान कर यात्रा करते हुए मध्य मार्ग में यदि शुक्र अस्त हो जाय तो भी शुक्रास्त काल तक राजा को मार्ग में ही रुक कर पुनः शुक्रोदय के पश्चात् शुभ समय में शेष यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए जब कि शुक्र का उदय हो जाय ।

पीयूष में बुध गुरु ग्रहों के उदय अस्त और सम्मुख होने पर शुक्र के उदयास्त की तरह ही व्यवस्था बताई है । लोक में यात्रा में शुक्र ग्रह का ही सम्मुख आदिक दोष विशेष माना जाता है ॥४२॥

अथैवं महतायासेन दिनशुद्धिमभिधायेदानीं लग्नशुद्धिं वक्तुकामस्तावत्प्रयाणेऽनिष्टलग्नमनुष्टुभाह—

कुम्भकुम्भांशकौ त्याज्यौ सर्वथा यत्नतो बुधैः ।
तत्र प्रयातुर्नृपतेरर्थनाशः पदे पदे ॥ ४३ ॥

पीयूषधारा—कुम्भेति । स्पष्टार्थमिदं पद्यम् । यदाह नारदः—'निन्द्यो निखिलयात्रासु घटलग्नं घटांशकः' इति । श्रीपतिरपि—'नेष्टः कुम्भोऽप्युद्गमेंशस्थितो वा' इति । वराहोऽपि—'न कुम्भलग्नं शुभमाह सत्यो न भागभेदाद्यवना वदन्ति' इति ॥ ४३ ॥

पीताम्बरा—यात्रा में लग्न शुद्धि और अनिष्ट लग्न—कुम्भ लग्न और किसी भी लग्न में कुम्भ राशि के नवांश को यात्रा में सदा त्याग करना चाहिए । कुम्भ और कुम्भ नवांश काल की यात्रा से पद-पद में अर्थ की क्षति होती है ॥ ४३ ॥

अथान्यदनिष्टलग्नं शुभफलदलग्नं च मञ्जुभाषिणीछन्दसाह—

अथ मीनलग्न उत वा तदंशके चलितस्य वक्रमिह वर्त्म जायते ।
जनिलग्नजन्मभपती शुभग्रहौ भवतस्तदा तदुदये शुभो गमः ॥ ४४ ॥

पीयूषधारा—अथ मीन इति । मीनलग्ने वा सत्यपि लग्नान्तरे तदंशे मीनांशे वा चलितस्य राज्ञो वर्त्म वक्रं स्यात् । यदाह नारदः—'वक्रः पन्था मीनलग्ने यातुर्मीनांशकेऽपि वा' इति । श्रीपतिरपि—'वक्र पन्था मीनलग्नेंशके वा कार्या सिद्धिः स्यान्निवृत्तिश्च तस्य' इति । दुर्गादित्यः—मीनोदये गमनमन्यगृहोदयेऽपि मीनांशके कुटिलमेव च निष्फलं स्यात्' इति ।

यात्रायां शुभलग्नानि—

एवमशुभलग्नमभिधायेदानीं शुभलग्नान्युच्यन्ते—जनीति । जनिर्जन्मकालीनलग्न जनिलग्नं जन्मभं जन्मराशिः तयोर्जन्मराश्योः पती स्वामिनौ शुभग्रहौ चेदुदये लग्ने भवतस्तदा गमो गमनं शुभः स्यात् । जन्मलग्नं जन्मराशिश्च यात्रालग्नं शुभमिति प्रागेवाभिहितं—'जननराशितनू यदि लग्नगे' इति । अर्थाज्जन्मलग्नजन्मराशिस्वामिनौ पापग्रहौ यदि यात्रालग्ने स्यातां तदा तादृशे लग्ने गमनशुभफलदमित्यर्थः । यदाह वशिष्ठः—
'जन्मराशौ लग्नगते तदीशे वा विलग्नगे । अभीष्टफलदा यात्रा राशीशश्चेच्छुभग्रहः ॥' इति ।
ननु—'जन्मराश्युद्गमो नैव जन्मलग्नोदयः शुभः । तयोरुपचयस्थानं यदि लग्नगतं शुभम् ॥'

इति वृद्धनारदेन जन्मराशेर्यात्रालग्नावस्थितौ निषेधोऽभिहितः सत्यम् । राशेः पापग्रहस्वामित्वे दोषो न शुभग्रह स्वामित्वे प्रागुक्तवसिष्ठवाक्यस्वरसात् । एवं जन्मलग्नोदयः शुभ इत्यपि जन्मलग्नस्य शुभग्रहस्वामित्वे शुभफलं न पापस्वामित्वे इति व्याख्येयम् ॥ ४४ ॥

पीताम्बरा—अन्य अनिष्ट लग्न—मीन लग्न और मीन लग्न नवांश (किसी लग्न में मीनांशक) में यात्रा करने से राजा का यात्रा मार्ग वक्रहो जाता है । जैसे वागीश्वर (अल्मोड़ा) से वाराणसी की यात्रा करने से सीधे वाराणसी न पहुँच कर अन्यत्र हरिद्वार या ऋषीकेश आदि जगहों पर जाना पड़ेगा ।

अतः यदि जन्म लग्न और जन्म राशियों के स्वामी शुभ ग्रह हों तथा शुभग्रह के लग्न में यात्रा शुभ होती है ॥ ४४ ॥

अथान्यदनिष्टं लग्नं रथोद्धताछन्दसाह—

जन्मराशितनुतोऽष्टमेऽथवा स्वारिभाच्च रिपुभे तनुस्थिते ।
लग्नगास्तदधिपा यदाथवा स्युर्गतं हि नृपतेर्मृतिप्रदम् ॥ ४५ ॥

पीयूषधारा—जन्मराशीति । स्वस्य जन्मराशेर्जन्मलग्नाच्चाष्टमे राशौ लग्नस्थे सति तथा स्वारिभात् जिगमिषतः स्वशत्रोर्भाद्राशेर्लग्नाच्च रिपुभे षष्ठराशौ तनुस्थिते वा सति अथवा स्वराशिलग्नाभ्यामष्टमभवने स्वशत्रोर्जन्मराशिलग्नाभ्यां षष्ठभवने तेषां स्वामिनो यात्रा लग्नगताः स्युर्यदा तदा राज्ञो मृतिप्रदाः । यदाह श्रीपतिः—
'जननसमयलग्नान्नैधने जन्मभाद्वा निजरिपुभवनाद्वा शत्रुभे लग्न याते ।
पतिभिरुत तदीयैर्लग्नगैः पार्थिवानां गमनमथ विषं वा भक्षितं तुल्यमेव ॥' इति ।

विषं वा भक्षितं मरणप्रदमित्यर्थः। वसिष्ठेन तु स्वजन्मराशिलग्नाभ्यां द्वादशभवनमपि निषिद्धमुक्तम्। यथा—

'स्वाष्टलग्ने लग्नगते राशौ वा लग्नगे सति। यातुर्भङ्गो भवेत्तत्र द्वादशे वाथ लग्नगे॥' इति॥४५॥

पीताम्बरा—अन्य अनिष्ट लग्न—अपनी जन्म लग्न जन्म राशि से अष्टम लग्न की राशि लग्न में हो तथा जिस शत्रु की पराजय उद्देश्य से यात्रा की जा रही है उस शत्रु की जन्मराशि जन्म लग्न से छठी राशि यात्रा लग्न में हो, अथवा अपनी जन्मलग्न जन्मराशि से अष्टम भवन का और शत्रु के जन्म व लग्नराशि से छठे भवन का अधिपति ग्रह यदि यात्रा लग्न में हो तो यात्रा करने वाले (राजा या व्यक्ति) की मृत्यु होती है॥ ४५॥

अथान्यच्छुभलग्नं शालिन्याह—

लग्ने चन्द्रे वापि वर्गोत्तमस्थे यात्रा प्रोक्ता वाञ्छितार्थैकदात्री।
अम्भोराशौ वा तदंशे प्रशस्तं नौकायानं सर्वसिद्धिप्रदायि॥ ४६॥

पीयूषधारा—लग्ने इति। मीनकुम्भव्यतिरिक्ते यस्मिन्कस्मिंश्चिल्लग्ने वर्गोत्तमस्थे वर्गोत्तमनवांशगते सति वा अथवा चन्द्रे वर्गोत्तमस्थे सति यात्रा वाञ्छितार्थस्य मनोभीष्टार्थस्यैकाऽद्वितीया दात्री। यदाह वसिष्ठः—'वर्गोत्तमांशगे लग्ने त्वथवापि सुधाकरे। यात्रा कार्यदुघा यातुर्माता पुत्रस्य वै यथा॥' इति। वै निश्चयेन॥

नौकायात्रालग्नम्—

नौकायात्रा असाधारणत्वेन लग्नमुच्यते—अम्भोराशौविति। जलचरराशौ लग्नगते सति अथवा लग्नान्तरे तदंशे जलचरांशे सति नौकायानं सर्वसिद्धिप्रदायि स्यात्। यदाह नारदः—'जलोदयो जलांशोऽपि जलयाने शुभप्रदः' इति। दुर्गादित्योऽपि—नौयानमाप्यभवनेषु विलग्नगेषु कुर्यात्तथान्य गृहगेषु' तदंगेषु इति। वराहोऽपि—'नौयानमिष्टं जलराशिलग्ने तदंशके वान्यगृहोदयेऽपि' इति एतेन सम्मतिदर्शनेन लग्ने चाप्यंशे च नौयानमिष्टमिति श्रीपतिवाक्यं च आप्ये इति पदच्छेदेन स्पष्टार्थमपि चापसम्बन्धिनि लग्ने धनुर्लग्ने धनुरंशे च नौकायानमिष्टमित्येवं केचिद्व्याकुर्वते। तद्व्याख्यानमपाकृतं भवति। किंच तादृशे वाक्यार्थे क्रियमाणे मूलवाक्यानुपालम्भः प्रयोगशुद्धिश्च स्यात् चापशब्दात्—'वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्' इति वृद्धसञ्ज्ञकात्—'वृद्धाच्छः' इति विहितस्य शैषिकछप्रत्ययस्येयादेशे चापीय इति पाठ्यं स्यात्तथा च पाठे छन्दोभङ्गः स्यात्॥ ४६॥

पीताम्बरा—यात्रा के अन्य शुभ लग्न—मीन और कुम्भ दो लग्नों को छोड़कर किसी भी वर्गोत्तम लग्न में अथवा वर्गोत्तम चन्द्रमा की स्थिति में यात्रा अभीष्टफलदायिनी होती है।

लग्न में जलचर राशि या जलचर राशि नवांश में नौका की यात्रा (नाव, समुद्री जलयान, जहाज) सर्वसिद्धि प्रदा होती है॥ ४६॥

अथ मेषादीना दिगनुलोमप्रतिलोमराशीनां लग्नावस्थितौ फलमिन्द्रवज्राछन्दसाह—

दिग्द्वारभे लग्नगते प्रशस्ता यात्रार्थदात्री जयकारिणी च।
हानिं विनाशं रिपुतो भयं च कुर्यात्तथादिक्प्रतिलोमलग्ने॥ ४७॥

पीयूषधारा—दिगिति । दिग्द्वारभानि मेषादिराशयस्तद्विलग्नेषु गन्तव्यदिगवस्थितेषु सत्सु यात्रा प्रशस्ता । प्रशस्तत्वमेवाह—अर्थदात्री जयकारिणीं चेति । यथा मेषः पूर्वस्यां वृषो दक्षिणस्यां, मिथुनः पश्चिमायां, कर्कटः उत्तरस्याम् । एवं सिंहादयो धनुरादयश्च पूर्वादिषु ध्येयाः । यदाह वसिष्ठः—'पूर्वादिदिक्षु मेषाद्याः क्रमादिग्द्वारराशयः । सर्वे तद्दिग्यातुः शुभप्रदाः' इति ।

तत्र द्रव्यहानिशत्रुभयादिलग्नानि—

हानिमिति । दिक्प्रतिलोमलग्ने विपरीतदिगवस्थिते लग्ने सति यथा पश्चिमायां मेषः, उत्तरस्यां वृषः, पूर्वस्यां मिथुनः, दक्षिणस्यां कर्कः । एवं पुनः पश्चिमादिषु दिक्षु सिंहादयो धनुरादयश्च ज्ञेयाः । तादृशे लग्ने गन्तुः पुंसो यात्राहानि द्रव्यादिनाशं रिपुतः शत्रुतो भयं च कुर्यात्। तथाशब्दः पादपूरणे । उक्तं च वसिष्ठेन—'दिग्द्वारभे लग्नगते यात्रार्थविजयप्रदा । लग्ने दिक्प्रतिलोमे सा हानिदा शत्रुभीतिदा' इति । बृहद्यात्रायां वराहोऽपि—'यातव्यदिक्त्नुगतस्य सुखेन सिद्धिर्व्यर्थश्रमो भवति दिक्प्रतिलोमलग्ने' इति ॥ ४७ ॥

पीताम्बरा—दिग्द्वार लग्न—पूर्व दिशा की यात्रा के लिए मेष, सिंह, धनु, दक्षिण की वृषभ, कन्या, मकर, पश्चिम की मिथुन, तुला, कुम्भ और उत्तर की यात्रा के लिए कर्क, वृश्चिक, मीन लग्न दिग्द्वार लग्न हैं । दिग्द्वार राशि लग्न की यात्रा धनदात्री होते हुए विजयप्रदा भी होती है । दिग् विपरीत लग्नों में (जैसे पूर्व की यात्रा के लिए मिथुन, तुला, कुम्भ दक्षिण की ४।८।१२, पश्चिम की १।५।९, उत्तर की २।६।१० ये दिग्प्रतिलोम लग्न हैं) यात्रा करने से हानि विनाश और शत्रु भय होता है ॥ ४७ ॥

अथ शुभलग्नान्येव वसन्ततिलकाछन्दसाह—

राशिः स्वजन्मसमये शुभसंयुतो यो यः स्वारिभान्निधनगोऽपि च वेशिसञ्ज्ञः ।
लग्नोपगः स गमने जयदोऽथ भूपयोगैर्गमो विजयदो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥४८॥

पीयूषधारा—राशिरिति । जिगमिषोः पुंसः स्वजन्मसमये यो राशिः शुभग्रहैश्चन्द्रबुधगुरुशुक्रैः संयुतोऽस्ति स राशिश्चेद्यात्रालग्नोपगः स्यात् अथवा स्वारिभात् स्वशत्रोर्भं राशिर्लग्नं वा ततोऽष्टमी यो राशिः स चेद्यात्रालग्नोपगः स्यात् अथवा यो राशिर्वेशिसञ्ज्ञः सूर्याक्रान्तराशिद्वितीयो राशिर्वेशिसञ्ज्ञः स चेद्यात्रालग्नोपगः स्यात् तदा स राशिर्गमने जयदः स्यात् । यदाह नारदः—'यो ग्रहो जन्मनि शुभो यो राशिर्वेशिसञ्ज्ञकः । तावुभौ जन्मलग्नं च यात्रायां शुभदं त्रयम् ॥' इति । शुभः शुभग्रहयुतः । यदाह श्रीपतिः—'यः स्वजन्मनि शुभग्रहाश्रितो यश्च राशिरिह वेशिसंज्ञकः । यः स्वशत्रुभवनाच्च नैधने लाभगः स गमने शुभावहः ॥' इति ।

वसिष्ठः—

'शत्रोरष्टमलग्ने वा राशौ वापि विलग्नगे । तदीशस्थितलग्ने वा यातुःशत्रुक्षयः सदा ॥'

इति । वेशिलक्षणमाह वराहः—'दिनकरयुताद्भाद्द्वितीयो हि वेशिः' इति ।

यात्रालग्नयुतजातकोक्तराजयोगाः—

अथवा भूपयोगैर्जातकोक्तयात्रालग्नावस्थितै राजयोगैर्गमो मुनिभिर्विजयदः प्रोक्तः। यदाह नारदः—ये नृपा यान्त्यरीञ्जेतुं तेषां योगैर्नृपाह्वयैः। उपैति शान्तिं कोपाग्निः शत्रुयोषाश्रुवारिभिः।' इति।

वराहोऽपि—

'जातकोक्तनृपयोगगतानां प्रत्यहं भवति राज्यविवृद्धिः। वातघूर्णितमिवार्णवयानं पल्ववे तु समुपैति विनाशम् ॥' इति। ते च राजयोगा बृहज्जातके सारावल्यां च टोडरानन्दे च सन्त्यतस्तत एवावधार्याः ॥ ४८ ॥

पीताम्बरा—अन्य शुभ लग्न—शुभ ग्रहों से युक्त अपनी जन्म राशि ही यात्रा की लग्न हो अथवा शत्रु की जन्मराशि जन्मलग्न से अष्टम राशि को यात्रा लग्नराशि हो अथवा सूर्य जिस राशि पर हैं उससे दूसरी राशि का नाम वेशि है यही राशि यात्रा लग्न हो तो यात्रा जयप्रद होती है। अथवा जातक शास्त्रों में त्रिवर्णित राजयोग विशेष ग्रह की स्थितियों में यात्रा जयकारिणी होती है ॥ ४८ ॥

अथ लालाटिकयोगान्वक्तुकामस्तावद्दिक् स्वामिन उपजातिकयाह—

सूर्यः सितो भूमिसुतोऽथ राहुः शनिः शशी ज्ञश्च बृहस्पतिश्च।
प्राच्यादितो दिक्षु विदिक्षु चापि दिशामधीशाः क्रमतः प्रदिष्टाः ॥ ४९ ॥

पीयूषधारा—सूर्य इति। स्पष्टार्थमिदं पद्यम्। यदाह वसिष्ठः—'दिगीश्वरा भास्करशुक्रभौम राह्वार्किचन्द्रज्ञसुरार्चिताः स्युः' इति ॥ ४९ ॥

पीताम्बरा—दिशाओं के स्वामी—सूर्य शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बुध और बृहस्पति ये आठ ग्रह पूर्वादिक आठों दिशा और विदिशाओं के क्रमशः स्वामी होते हैं। जैसे चक्र देखने से सुस्पष्ट है ॥ ४९ ॥



अथ दिगधीशकथनप्रयोजनं तनुमध्याछन्दसाह—

केन्द्रे दिगधीशे गच्छेदवनीशः।
लालाटिनि तस्मिन्नेयादरिसेनाम् ॥ ५० ॥

पीयूषधारा—केन्द्रे इति। दिक्स्वामिनि सूर्यः सित इत्यादिनोक्ते केन्द्रे केन्द्रवर्तिनि सति अवनीशो राजा गच्छेत्। तस्मिन् दिगधीशे लालाटिनि सति अरिसेनां नेयान्न गच्छेत्। यदाह श्रीपतिः—'ललाटगे न प्रवसेद्दिगीशे गन्तव्यमस्मिन् खलु कण्टकस्थे' इति ॥ ५० ॥

पीताम्बरा—दिशा के अधिपतियों का प्रयोजन—जिस दिशा की यात्रा करनी हो उस दिशा का स्वामी ग्रह, यदि यात्रा लग्न से केन्द्र में हो तो उस लग्न में यात्रा करनी चाहिए

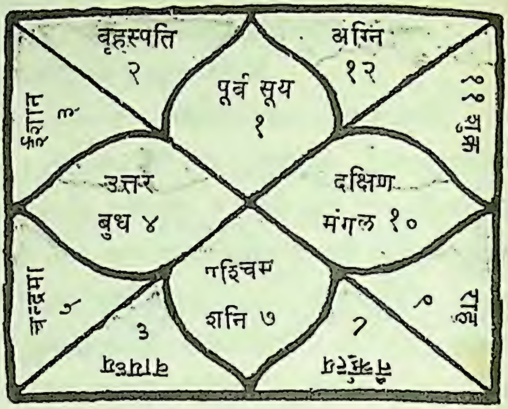
और यदि वह दिशाधीश ग्रह लालाटिक योग करता हो तो ऐसे योग में शत्रु सेना पर चढ़ाई नहीं की जानी चाहिए। लालाटिक योग आगे श्लोक में है ॥ ५० ॥

अथ लालाटिकयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

प्राच्यादौ तरणिस्तनौ भृगुसुतो लाभव्यये भूसुतः
कर्मस्थोऽथ तमो नवाष्टमगृहे सौरिस्तथा सप्तमे।
चन्द्रः शत्रुगृहात्मजेऽपि च बुधः पातालगो गीष्पति-
र्वित्तभ्रातृगृहे विलग्नसदनाल्लालाटिकाः कीर्तिता ॥ ५१ ॥

पीयूषधारा—प्राच्यादाविति। प्राच्यादौ प्राच्याद्यष्टदिक्षु क्रमेण विलग्नादिषु भावेषु सूर्यादिग्रहस्थित्या ललाटिकाः स्युरिति वाक्यार्थः। यथा तनौ लग्नस्थस्तरणिः सूर्यः प्राच्यां गन्तुर्लालाटिकः। एवमाग्नेय्यां भृगुसुतो लाभव्ययैकादशद्वादशस्थाने लालाटिकः। कर्मस्थो दशमस्थो भूसुतो मङ्गलो दक्षिणस्याम्। तमो राहुरष्टमनवमस्थानस्थितो नैर्ऋत्याम्। सौरिः शनिः सप्तमस्थः पश्चिमायाम्। चन्द्रः शत्रुगृहात्मजे षष्ठपञ्चमस्थो वायव्याम्। बुधः पातालगश्चतुर्थ-स्थानस्थ उत्तरस्याम्। गीष्पतिर्बृहस्पतिवित्तभ्रातृगृहे द्वितीयतृतीयस्थानस्थ ऐशान्यां लालाटिक इत्यर्थः। यदाह नारदः—'लग्नस्थो भास्करः प्राच्यां दिशि यातुर्ललाटगः। द्वादशैकादशे शुक्र आग्नेय्यां तु ललाटगः॥ दशमस्थः कुजो लग्नाद्याम्यायां तु ललाटगः॥ नवमाष्टगतो राहुर्नैर्ऋत्यां तु ललाटगः॥ लग्नात्सप्तमगो सौरिः प्रतीच्यां तु ललाटगः। षष्ठपञ्चमगश्चन्द्रो वायव्यां तु ललाटगः॥ चतुर्थस्थानगः सौम्य उत्तरस्यां ललाटगः। द्वित्रिस्थानगतो जीव ऐशान्यां तु ललाटगः। ललाटिदिक्पतिं त्यक्त्वा जीवतेप्सुर्व्रजेन्नृपः' इति। वराहोऽपि—'लग्ने भानुः सुतरि-पुगतश्चन्द्र आरो नभःस्थः पातालस्थो हिमकरसुतः स्वत्रिगो देवमन्त्री। तद्वच्छुक्रो व्ययभवनगो भास्करिः सप्तमस्थो राहुर्नित्यं निधननवगः स्वां दिशं वारयन्ति' इति। यत्तु वसिष्ठवाक्ये— 'राशीनेके द्वाविनाक्रान्तराशेरप्रादक्षिण्याद्विन्यसेद्दिग्विदिक्षु। यद्दिग्राशौ लग्नगे सम्मुखत्वं तद्दिग्या-तुर्मृत्युदस्तद्दिगीशः' इति—तदयुक्तं प्रतिभाति। तथाहि सूर्याधिष्ठितराशेरप्रादक्षिण्येन द्वादश-राशिचक्रे दिश्येको विदिशिद्वावित्येवं व्यस्ते 'सूर्यः सित' इत्यादिना प्राच्याद्यष्टदिक्षु ग्रहन्यासे कृते सति सूर्याक्रान्तराशेश्चेच्चतुर्थो बुधस्तदोत्तरस्यां लालाटिकः स्यात्। स चासम्भवनीयः। नहि चेनापि गणितप्रकारेण सूर्याच्चतुर्थो बुधः स्यात्। अत एव वराहोऽपि—'चतुर्थभवने सूर्याज्ज्ञ-सितौ भवतः कथम' इति। अन्यच्च सूर्याधिष्ठितराशेः सप्तमः शनि पश्चिमायां लालाटिकः। तत एव दशमस्थो भौमो दक्षिणस्याम्। एवमेव सर्वेऽपि ग्रहाः लालाटिका इत्यापद्येत। इष्यते च लग्नराशेरेव। एवंसति सकलमुनिविरोधश्चापतेत्। तस्माद्वसिष्ठसंहितापुस्तके—'इनाक्रान्त-राशे' इति लेखकभ्रमसम्भूतः पाठः। तस्मात् 'राशीनेके द्वावितो लग्नराशेः' इति पाठः साधी-यान् कल्प्यः। एवं सति चतुर्थस्थानगतबुधासम्भवः सकलमुनिविरोधश्च नास्ति। रत्नकोशे— 'योऽधिपतिर्दिशि यस्यास्तस्मिंस्तत्स्थेन तां दिशं यायात्। अनुकूले च दिगीशे गन्तव्यं कण्टकोप-गते' इति। अत्र सूर्यभौमशनिबुधानामस्ति च कंटकोपगतत्वमस्ति लालाटिकत्वम्। अन्येषां शुक्रादीनामुभयरूपत्वासम्भव एव। तत्र लालाटिकस्थानव्यतिरिक्तं स्थानत्रयं कण्टकशब्देन व्यवहर्तव्यम्। बहुव्यापकत्वाल्पव्यापकत्वरूपसामान्यविशेषभावसत्त्वात्। तस्माल्लालाटिकव्यति-रिक्ते कण्टकस्थाने यदि दिगीशस्तदा शुभफलदा यात्रान्यथा ह्यशुभदेति हृदयम् ॥ ५१ ॥

पीताम्बरा—लालाटिक योग—यात्रा लग्न में सूर्य ग्रह पूर्व गमन के लिए लालाटिक १०, ११ शुक्र, अग्नि दिशा गमन के लिए, दक्षिण गमन में, १० वें मंगल से ८, ९ वें राहु से नैर्ऋत्य में, ७ वें शनि से पश्चिम गमन के लिए ५, ६ चन्द्रमा से वायव्य गमन, ४ थे बुध से उत्तर दिशागमन में तथा २, ३ में बृहस्पति से ईशान गमन के लिए लालाटिक योग होते हैं।



चक्र से लालाटिक योग की स्पष्टता होती है। कोई भी लग्न, यहाँ यात्रा लग्न को पूर्व में रखकर २, ३ भाव ईशान में, चतुर्थ भाव उत्तर में, पञ्चम-षष्ठ भाव वायव्य में, सप्तम भाव पश्चिम में, अष्टम नवम भाव नैर्ऋत्य में, दशम-भाव दक्षिण में और एकादश द्वादश भाव अग्निकोण में ही होते हैं। यात्रा काल में जैसे पश्चिम दिशा की यात्रा के समय पश्चिम दिशा का स्वामी शनि अपनी दिशा सप्तम में होने से यात्रा कर्ता के ललाट के सम्मुख होने के कारण यहाँ शनि लालाटिक होता है अतः पश्चिम दिशा की यात्रा ऐसे समय उचित न होगी। शनि सप्तम में न हो तो यात्रा उत्तम होगी। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए। कुछ आचार्य सूर्याधिष्ठित राशि से उक्त स्थानों में दिगधीश की स्थिति वश लालाटिक योग कहते हैं। यह कथन युक्ति संगत नहीं है इसलिए कि सूर्य से बुध और शुक्र ग्रह की स्थितियाँ चतुर्थ भाव में नहीं हो सकतीं ॥ ५१ ॥

लथ पर्युषितयात्रायोगचतुष्टयमनुष्टुभेन्द्रवज्रया चाह—

मृगे गत्वा शिवे स्थित्वादितौ गच्छञ्जयेद्रिपून्।
मैत्रे प्रस्थाय शाक्रे हि स्थित्वा मूले व्रजं स्तथा ॥ ५२ ॥
प्रस्थाय हस्तेऽनिलतक्षधिष्ण्ये स्थित्वा जयार्थी प्रवसेद्द्विदैवे।
वस्वन्त्यपुष्ये निजसीम्नि चैकरात्रोषितः क्ष्मां लभतेऽवनीशः ॥ ५३ ॥

पीयूषधारा—मृगे इति। मृगशिरसि स्वगृहाद्यातव्यदिगभिमुखं कस्यचिदिष्टस्य गेहे गत्वा प्रस्थायार्द्रायां तस्मिन्नेव गृहे स्थित्वोषित्वादितौ पुनर्वसौ गच्छन् तद्गेहं त्यक्त्वा ग्रामाद्बहिरेव गच्छन् सन् रिपून् शत्रुन् जयेत्। अयमेको योगः। एवमेव मैत्रेऽनुराधायां प्रस्थाय शाक्रे ज्येष्ठायां स्थित्वा मूले व्रजन् सन् तथा शत्रून जयेदित्यर्थः अयं द्वितीयो योगः। यथा हस्ते प्रस्थायानिलतक्षधिष्ण्ये स्वातीचित्रा नक्षत्रद्वये स्थित्वा द्विदैवे विशाखायां जयार्थी भूपादिः प्रवसेद्देशान्तरं गच्छेत्। अयं तृतीयो योगः। वस्वंत्यपुष्ये धनिष्ठारेवतीपुष्येषु निजसीम्नि स्वनगरप्रान्ते प्रस्थितः सन्यदि एकरात्रोषितः स्यात्तदाऽवनीशो राजा क्ष्मां भूमिं शत्रोरिति शेषः। लभते जयेन प्राप्नोतीत्यर्थः। अयं चतुर्थो योगः। यदाह बृहद्यात्रायां वराहः—'सौम्ये गत्वाध्युष्य रौद्रे दितीशे संप्रस्थाता बाधते शत्रुसंघान्। मैत्रे गत्वा पौरुहूते समुष्य

मूले यायाच्छत्रुनाशाय भूपः । हस्ते गत्वा स्वातिचित्रे समुष्य शुक्राग्न्योर्भे ग्रस्थितो बाधतेऽरीन् । तिष्ये पौष्णे वासवे चैकरात्रं सीम्नि स्थित्वा भूतिमाप्नोति याता ॥' इति ।

अयमन्यो योगः—

क्वचिन्मृगे प्रस्थायार्द्रायां पुनर्वसौ च स्थित्वा पुष्ये गच्छेदित्युक्तम् । यदाह गुरुः—'सौम्ये गत्वा समभ्युष्य रौद्रादित्ये व्रजेत्पुनः । पुष्येतिसम्पदौ विद्वाँल्लभते जीवसम्पदः' इति ।

विशेषमाह वराहः—

'यथेष्ठवेलागमनं प्रशस्तं हस्तेन्दवोपेन्द्रसुरेशभेषु । कृत्वा प्रयाणं श्रवणे श्रियोऽर्थी वसेन्न जातु क्षितिपः स्वसीम्नि' इति ।

उपेन्द्रः श्रवणः, सुरेशभं ज्येष्ठा ॥ ५२-५३ ॥

पीताम्बरा—यात्रा के पूर्व प्रस्थान समय—मृगशिरा नक्षत्र में अपने घर से गन्तव्य दिशा की ओर किसी अभीष्ट घर में जाकर आर्द्रा में उसी घर में रुककर पुनर्वसु में उस घर को छोड़कर उस ग्राम से बाहर चलते हुए यात्रा करने से राजा अपने शत्रुओं पर विजय पाता है।

इसी प्रकार अनुराधा में प्रस्थान कर, ज्येष्ठा में रुककर, मूल में यात्रा करने से शत्रुओं को पराजित कर राजा स्वयं विजयी होता है ।

हस्त नक्षत्र में प्रस्थान कर, स्वाती चित्रा दोनों नक्षत्रों में (स्थिर) रुककर, विशाखा में जयकामना के राजा को देशान्तर की यात्रा करनी चाहिए ।

यदि राजा धनिष्ठा, रेवती, पुष्य, नक्षत्रों में अपने नगर की सीमा में स्थित होकर एक रात्रि वहाँ बिता कर तब आगे की यात्रा करे तो राजा शत्रु की भूमि प्राप्त करता है ॥५२-५३॥

अथ समयबलमनुष्टुभाह—

उषःकालो विना पूर्वां गोधूलिः पश्चिमां विना ।
विनोत्तरां निशीथः सन्याने याम्यां विनाभिजित् ॥ ५४ ॥

पीयूषधारा—उषःकाल इति । स्पष्टार्थं पद्यम् । सन् शब्दश्चरणचतुष्टयेऽपि संबध्यते । निशीथोऽर्द्धरात्रम् । याने यात्रायाम् । सर्वत्र विना योगे द्वितीया—'पृथग्विना नानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्' इति पक्षे द्वितीयाया अपि विधानात् । अत्र हि—'दग्धा दिगैशी ज्वलिता दिगैन्द्री' इति वसन्तराजोक्तरीत्या तुर्यस्य तत्तद्दिगवस्थानात्तस्यां तस्यां दिशि यात्रा निषिद्धेति युक्तिसिद्धोऽयमर्थ उपनिबद्धः ।

दिग्विशेषेण समयविशेषः—

वराहेण दिग्विशेषे समयविशेषः प्रशस्तोऽभिहितः । यथा—'पूर्वाह्णे तूत्तरां गच्छेन्मध्याह्ने पूर्वतो व्रजेत् । अपराह्णे व्रजेद्याम्यां मध्यरात्रे तु पश्चिमाम्' इति । वसिष्ठोऽपि—पूर्वाह्णेऽप्युत्तरां गच्छेत्प्राचीं मध्यन्दिने तथा । दक्षिणां चापराह्णे तु पश्चिमामर्द्धरात्रके । न तत्राङ्गारको विष्टिर्व्यतीपातो न वैधृतिः । सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि यात्रायां दक्षिणे रविः' इति ।

अभिजित्प्रशंसा

अत्राभिजित्प्रशंसामाह श्रीपतिः—'अष्टमोह्यभिजिदाह्वयक्षणो दक्षिणाभिमुखयानमन्तरा। कीर्तितोऽपरककुप्सु सूरभिर्यायिनामभिमतार्थसिद्धये' इति ।। ५४ ।।

पीताम्बरा—समय बल—उषाकाल में पूर्व दिशा को छोड़कर सब दिशाओं की, गोधूलि में, पश्चिम दिशा को छोड़कर सब दिशाओं की, अर्द्धरात्रि में उत्तर दिशा को छोड़कर सब दिशाओं की यात्रा, और अभिजित् (मुहूर्त) में दक्षिण दिशा को छोड़कर सब दिशाओं की यात्रा हो सकती है ।। ५४ ।।

अथ लग्नादिभावानां सञ्ज्ञा अनुष्टुभाह—

लग्नाद्भावाः क्रमाद्देहकोशधानुष्कवाहनम् ।
मन्त्रोऽरिर्मार्ग आयुश्च हृद्व्यापाराऽऽगमव्ययाः ।।५५।।

पीयूषधारा—लग्नादिति । हृन्मनः—'स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यभिधानात् । आगमः प्राप्तिः । अन्यत्स्पष्टार्थं पद्यम् । 'मूर्तिः कोशो धन्विनश्च वाहनं मन्त्रसञ्ज्ञकः । शत्रुर्मार्गस्तथायुश्च मनोव्यापारसञ्ज्ञकः ।। प्राप्तिरप्राप्तिरुदयाद्भावाः स्युर्द्वादशैव ते ।।' इति नारदोक्तेः । एवंविधसञ्ज्ञाकथनप्रयोजनं तु क्रूरग्रहसाहित्ये तत्तद्भावानां पीडा, शुभग्रहसाहित्ये तद्भावानां शुभमित्युत्सर्गः ।। ५५ ।।

पीताम्बरा—लग्नादि द्वादश भावों के नाम—लग्न से व्यय तक—(१) देह, (२) कोष, (३) धानुष्क, (४) वाहन, (५) मन्त्र, (६) अरि, (७) मार्ग, (८) आयु, (९) हृदय, (१०) व्यापार, (११) आगम और (१२) व्यय ये १२ भावों की संज्ञा है। देह वाचक तनु, अंग शरीर आदि से भी लग्न का बोध होता है तथैव कोष-धन-वित्त····द्वितीयादिक व्यय पर्यन्त भावों के अनेक नाम (संज्ञा) सर्वत्र प्रसिद्ध हैं ।। ५५ ।।

अथ विशिष्य शुभाशुभफलं शालिन्याह—

केन्द्रे कोणे सौम्यखेटाः शुभाः स्युर्घ्नन्ति पापास्त्र्यायषट्खेषु चन्द्रः ।
नेष्टो लग्नान्त्यारिरन्ध्रे शनिः खेऽस्ते शुक्रो लग्नेण्लग्नान्त्यारिरन्ध्रे ।।५६।।

पीयूषधारा—केन्द्रे इति । केन्द्राणि १ । ४ । ७ । १० कोणं ९ । ५ यदि सौम्यग्रहाः केन्द्र कोणे स्युस्तदा शुभफलदाः स्युः । अर्थाददयेषु भावेष्वशुभफलदाः । पापग्रहास्त्र्यायषट्खेषु तृतीयैकादशषष्ठदशमस्थानस्थाः शुभफलदाः । अर्थादन्येषु अशुभफलदाः । चन्द्रो लग्नान्त्यारिरन्ध्रे लग्नद्वादशषष्ठाष्टमेषु स्थितो नेष्टोऽशुभफलदः शनिः खे दशमे नेष्टोऽशुभफलदः शुक्रोऽस्ते सप्तमे नेष्टः । यदाह वसिष्ठः—'घ्नन्ति कूरास्त्रिषष्ठायभावान्हित्वा परान्सदा । पुष्णन्ति सौम्यखचरा षष्ठाष्टास्यं विना परान् । लग्नषष्ठाष्टमं हन्ति चन्द्रः शुक्रोऽस्तगस्तथा । मृत्युलग्नस्थितश्चन्द्रो यातुर्मृत्युप्रदः सदा' इति ।

अन्यत्रापि—केन्द्रत्रिकोणगैः सौम्यैस्त्रिभवारिगतैः परैः ।
अलग्नरिःफचन्द्रेण यात्राभीष्ट फलप्रदा ।।' इति ।

वराहोऽपि—'प्रायोजगुः सहजशत्रुदशायसंस्थाः पापाः शुभाः सवितृजं परिहृत्य खस्थम् ।
सर्वत्रगाः शुभफलं जनयन्ति सौम्यास्त्यक्त्वास्तसंस्थममरारिगुरुं यियासोः ।।' इति ।

श्रीपतिरपि—'क्रूरग्रहास्त्र्यरिदशायगताः शुभाः स्युर्हित्वा शनिं दशमभावगतं यियासोः ।
मूर्त्यादिभावनिचये सकलेऽपि सौम्याः श्रेष्ठा भृगोस्तनयमस्तगतं विहाय ।।' इति ।

यात्रालग्नपः षष्ठसप्तमाष्टमद्वादशस्थोऽनिष्टदः—

लग्नेटिति । लग्नेट् यात्रालग्नस्वामी नगान्त्यारिरन्ध्रे सप्तमद्वादशषष्टमस्थश्चेतदानिष्टोऽशुभ फलदो मृत्युद इत्यर्थः । यदाह गुरुः—लग्नपो मृत्युदो याने रन्ध्रास्तारिव्ययापगः । केप्याहुर्भयदो धर्मे शेषस्थाने शुभावहः ।।' इति ।

अत्र यात्राकालीनलग्नेन लग्नादिद्वादशभावस्थितानां ग्रहाणां फलानि बादरायणप्रोक्तानि लिख्यन्ते—

तनुभावस्थग्रहफलम्—

'राहुर्भौमदिवाकरेन्दुरविजाः प्रस्थानलग्नं गताः क्षुत्तृष्णाग्निविषायुधज्वरभावारोगाश्च नानाविधाः जीवः सोमसुतस्तथैव भृगुजो यात्रोदयस्थो नृणां सा यात्रा धनधान्यभोगसुखदा पुण्यैः कृतैर्लभ्यते ।१।

धनभावस्थग्रहफलम्—

कोशस्थाने नराणामसुरगुरुबुधैर्धर्मकामार्थलाभं
पुत्रोत्पत्तिं च जीवो धनुसुखमतुलं शत्रुपक्षक्षयं च ।
मन्दो बन्धं सुदीर्घं मृतिमवनिसुतः कोशहानिं च भास्वां-
श्चन्द्रः कुर्यान्निरेन्द्रं प्रियजनसहितं राहुरुत्पातरूपम् ।। २ ।।

सहजभावस्थग्रहफलम्—

प्रस्थाने भूमिपस्य क्षितिसुतरविजौ तिग्मभानुश्च राहुः
शुक्रश्चन्द्रात्मजो वा सुरगुरुरथवा शीतरश्मिर्धनायुः ।
दुश्चिक्यस्थानसंस्थो गजतुरगरथान्प्राप्य सर्वार्थसिद्धि-
ञ्जित्वा शत्रूनशेषान्विचरति वसुधा गोकुले गोपवेषः ।। ३ ।।

सुखभावस्थग्रहफलम्—

बन्धुस्थानगतो ददाति विपुलान्भोगान् भृगोरात्मजो
जीवः शत्रुविनाशमिच्छतिमहालाभं करोतीन्दुजः ।
हानिं बन्धुगतः करोति रविजो वृद्धिं क्षयं चन्द्रमा
राहूर्भूमिसुतस्तथोष्णकिरणः कुर्वन्ति दुःखं महत् ।। ४ ।।

पुत्रभावस्थग्रहफलम्—

कार्यादर्थस्य सिद्धिं सुतभवनगतो वाक्पतिः शत्रुनाशं
शुक्रः शीतांशुपुत्रः सुरगुरुसदृशं युद्धकाले करोति ।
सूर्यश्चन्द्रश्च भौमो दिनकरतनयः सिंहिकानन्दनोऽसौ
सर्वे ते पञ्चमस्था विविधभयकराः पार्थिवानां रणोर्व्याम् ।। ५ ।।

अरिभावस्थग्रहफलम्—

शत्रुस्थाने नराणा दिनकरतनयो भूमिपुत्रस्तथार्कः ।
शीतांशुर्दैत्यमन्त्री रजनिकरसुतः सैंहिकेयोऽथ जीवः ।
कुर्वन्त्येवार्थलाभं परबलमथनं सिद्धिमाप्नोति कार्यं
शत्रुघ्नं भूमिपानां भवति हि गमने धर्म्मकामार्थसिद्धिः ॥ ६ ॥

कलत्रभावस्थग्रहफलम्—

नाशं शुक्रदिवाकरार्कतनया राहुस्तथा भूमिजः
क्षिप्रं शत्रुवशं नयन्ति पथिकं स्थाने स्थिताः सप्तमे ।
सौम्यो मित्रसमागमं सुरगुरुः स्त्रीवित्तलाभं नृणां
चन्द्रोऽभीष्टसुखं ददाति च धनं यात्रासु जामित्रगः ॥ ७ ॥

आयुर्भावस्थग्रहफलम्—

आरोग्यं चन्द्रपुत्रो जनयति भृगुजः सर्वकामार्थसिद्धि
जीवो रक्षत्यशेषं सुतमिव जननी यात्रिकं नैधनस्थः ।
चंद्रार्कौ चेत्तमो वा जनयति नियतं शत्रुपक्षस्य वृद्धि
भौमश्चार्कात्मजो वा जनयति सततं तस्करेभ्यो भयं च ॥ ८ ॥

भाग्यभावस्थग्रहफलम्—

शुक्रोऽतिसौख्यं नवमो बुधश्च जीवो जयः श्रीधनधान्यलाभम् ।
चन्द्रार्कसौरा नवमाः सभौमाः कुर्वन्त्यनेकान्पुरुषस्य दोषान् ॥ ९ ॥

कर्मभावस्थग्रहफलम्—

कर्मस्थानस्थितोर्कः प्रचुरजयकरः पुष्टिदः शीतरश्मि-
र्जीवः सङ्ग्रामकाले भवति शुभकरः सर्वकार्यप्रदो ज्ञः ।
शुक्रः साम्राज्यलक्ष्मीं वितरति च महीनन्दनः प्राज्यकीर्ति-
राहुर्वैरापनुत्ति जनयति सततं दीर्घरोगं तथार्किः ॥ १० ॥

लाभभावस्थग्रहफलम्—

शशिबुधगुरुशुक्राः सूर्यराह्वार्किभौमा व्रजति हि नरनाथः क्षिप्रमेकादशस्थाः ।
द्रुतमिह रिपुवर्गघ्नन्ति नूनं प्रयातुर्विचरति गजराजो युद्धमध्यस्थितो वा ॥ ११ ॥

व्ययभावस्थग्रहफलम्—

क्षितिजरविसुतार्काः सैंहिकेयो नराणां जनयतिरजनीशः श्रेष्ठभृत्येषु भेदम् ।
रिपुजयधननाशं भृत्यनाशं च कुर्युर्यदि बुधगुरुशुक्रा द्वादशस्था भवन्ति' ॥ १२ ॥

इति वादरायणीययात्रायां भावफलानि एवं सम्यग्यात्रालग्नं दत्त्वा यात्रा करणीयेति तात्पर्यार्थः ।

लग्नभङ्गयोगे यात्रा न कार्या—

तत्रैकस्मिन्नपि लग्नभङ्गिनि ग्रहे सति यात्रा सर्वथा न विधेया । तथा हि, मृत्युमूर्त्यो-श्चन्द्रस्य स्थितिर्लग्नभङ्गिनी । सप्तमस्थानस्थितिः शुक्रस्य दशमस्थितः शनैश्चरस्य । एवंविधे ग्रहेऽन्येषु ग्रहेषु शुभफलदातृष्वपि नैव कार्या अत्र केचिद्वल्गुः चेल्लग्नाधीशो केन्द्रे स्यात्तदा

लग्नभङ्गी ग्रहो दोषदो न भवति। यथा मकरलग्नाधीशः शनिस्तुलायां दशमे स्यात् कुम्भलग्नाधीशो वृश्चिके तथा वृषलग्नाधीशो भृगुः सप्तमे वृश्चिके स्यात्तुलाधीशश्च मेषे तथा कर्कराशिस्थितश्चन्द्रो यात्रालग्ने कर्काख्ये स्यात्। एतादृशे यात्रालग्ने दोषो नास्तीति। उक्तं च जातकेऽपि —'लग्नाधिपो यदा केन्द्रे लग्नादेकादशालये। सर्वग्रहकृतं रिष्टमेकोऽपि विलयं नयेत्, इति। सत्यम्। इदं तावद्वाक्यं जातकविषयकम्। तत्रैवोत्पत्तिसत्त्वात्। 'ये जातकोक्तक्षितिपालयोगैर्महीभृतो यान्ति रिपून्विजेतुम्। तेषां प्रकोपाग्निरुपैति शान्तिं विद्वेषियोषाश्रुजलप्रवाहैः।' इति वदति देशाभावाच्च। प्राग्वाक्यं तु निर्मूलमेव। निबन्धेष्वदृष्टत्वात्। सत्यपि वा समूलत्वे सामान्यदूषणस्य सामान्यत एव परिहार उचितः। यथा–'घ्नन्ति क्रूरास्त्र्यायवर्जं हि भावान्व्यापारं निहतः सूर्यभौमो' इति वाक्यात्सर्वे क्रूरग्रहास्तृतीयैकादशस्थानवर्जितानि घ्नन्ति। तत्र सूर्यभौमो दशमस्थानं न हत इतिवत्सूर्यो वा, भौमो वा चेल्लग्नाधीशः सन् लग्नचतुर्थसप्तमस्थानगतो भवेत्तदा केन्द्रगतत्वेन—'घ्नन्ति क्रूरास्त्र्यायवर्ज्जं हि भावान्' इति तस्यापवादान्तरमप्यस्तु न काप्यस्माकं हानिः। यत्र तु विशिष्यस्थानविशेषो ग्रहव्यक्तिविशेषश्चोच्यते–यथा '–शुक्रश्चास्तं मृत्युमूर्त्तिस्तथेन्दुं हित्वा शनिं दशमभावगतं हिमांशुम्' इति च तत्र तस्माद्विशेषवाक्यान्निषेधप्राबल्यमेवास्ति। यथा शुक्रश्चेल्लग्नाधीशः सन् सप्तमाख्यकेन्द्रे चन्द्रो वा लग्नाधीशः सन् लग्नमेव चेत्कर्के शनिर्वा लग्नाधीशः सन् दशमाख्यकेन्द्र एव चेत्स्यात्तदा निषेध एव प्रबलः। 'सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्' इत्युक्तेः। अतो निषिद्धकेन्द्रव्यतिरिक्तकेन्द्रेषु स्थिताः सोमशुक्रशनयः सामान्यतोरिष्टपरिहारकर्त्तारः स्युरिति कथमस्य सामान्यवाक्यत्वम्। उच्यते। लग्नाधिप इत्यत्र लग्नपदेन द्वादशराशय उच्यन्ते। तेषामधिप इत्यनेन सप्तापि ग्रहाः प्रोच्यन्ते। केन्द्रपदेन च चत्वारि स्थानान्युच्यन्ते इति परिहारवाक्ये सामान्यतोऽभिहितमस्ति। निषेधवाक्ये तूभयोः स्थानविशेषग्रहशेषयोरभिधानमिति प्रागुक्तदोषो वज्रायितः।

एवं लालाटिकयोगेष्वपि ध्येयम्। यथा–'प्राच्यादौ तरणिस्तनौ भृगुसुतो लाभव्यये भूसुतः कर्मस्थ' इति लालाटिकयोगवाक्येषु यदि प्राच्यां यातुः सिंहलग्नाधीशः सूर्यो लग्न एव चेत्तदा लालटिकत्वे न दोष एव प्रबलो न तु लग्नाधीशोऽस्य केन्द्रगतत्वेन सिंहलग्नं शुभदम्। एवं दक्षिणस्यां यातुर्मेषवृश्चिकयोरधीशः शनिः क्रमेण मकरस्थ उच्चगतः सिंहस्थो मित्रगृहगतोऽपि तथैव। पश्चिमायां यातुर्मकरकुम्भयोरधीशः शनिः क्रमेण मकरस्थ उच्चगतः सिंहस्थो मित्रगृहगतोऽपि तथैव। एवमुत्तरस्यां यातुर्मिथुनकन्यालग्नयोरधीशो बुधः क्रमेण कन्यायां धनुषि वा चेत्तदापि तथैव। उच्चगतत्वादिकं तु दैवागतम्। 'केन्द्रे दिगधीश' इति परिहारवाक्यं तु तत्तत्स्थानविशेषव्यतिरिक्तं केन्द्रपरं द्रष्टयम्। यदीदं वाक्यमेष्वपि केन्द्रेषु प्रवर्तते तदा प्राचीदक्षिणाप्रतीच्युत्तरासु महादिक्षु लालाटिक दोषाभिधानं खपुष्पायितमेव स्यात्। तासु विषयालाभात्। किन्तु विदिक्षु चतसृषु विशिष्यैव लालाटिकदोषाभिधानं वक्तव्यं स्यात्। तासु विदिक्षु एवं च 'लग्नपो मृत्युदो याने रन्ध्रास्तारिव्ययोपगो' इति गुरुवारेऽपि लग्नाधीशस्य सप्तमस्थानगतत्वमशुभमुक्तम्। तत्र सप्तमस्थानस्य केन्द्रत्वेन परिहारोऽनुचित एव। अन्यथा दोषोक्तिरेव वक्तव्या भवेदिति। ननु–'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः' इति दृष्टान्ताल्लग्नरस्य समीचीनस्थानस्थितबहुग्रहसाहित्येन सबलत्वात्तत्त्द्भाव इति चेत्। चिन्त्यमेव।

तथा मीनलग्नेंशके वा कार्यसिद्धिः स्यात्तन्निवृत्तिश्च । तत्र 'नेष्टः-कुम्भोऽप्युदगमेंशस्थितो वा लग्ने चाप्यंशे च नौयानमिष्टम्' इति स्वरोदयतो दुष्टयोः कुम्भमीनसंज्ञकयोर्यात्रालग्नयोर्ग्राह्यता भवन्मते प्रसज्येत । तत्रेष्टापत्तिरिति चेत् । ज्योतिःशास्त्रे हि सामान्यशास्त्रेणैव सर्वसिद्धिविषयस्य व्यापृतत्वाद्विशेषशास्त्रे दत्तजलाञ्जलितादोषप्रसंगः स्यात् । एवं च 'न हिंस्यात्सर्वभूतानि' इत्यादिसाधारणवैदिकवाक्यानाम् 'आग्नीषोमीयं पशुमालभेत' इत्यादिविशेषवाक्येष्वपि व्यापृतत्वाद्विशेषशास्त्रोच्छेदापत्तिः ।

केषां ग्रहाणां फलदातृत्वमित्यस्योत्तरं तद्भेदेन फलेषु तारतम्यं च—

अत्र ग्रहाणां फलदातृत्वं सबलानां दुर्बलानां वा यादृशतादृशानां वा स्यादिति सन्देहस्तत्र निर्णयमाह श्रीपतिः—अस्तङ्गता ग्रहजिता रिपुदृष्टदेहा नीचस्थिता विरुचयोऽरिगृहं प्रयाताः । ऋक्षाण्यावश्यकमपि स्वफलं विलग्ने दातुं क्षमाः खलु भवन्ति न खेचरेन्द्राः ।। युद्धे जिताः शुभफलानि विनाशयन्ति पापानि चाशु नितरां परिवर्धयन्ति' इति । औत्पातिकाः सवितृलुप्तकरा विरूक्षा नीचङ्गता रिपुगृहं च नभश्चरेन्द्राः' इति सारावल्याम् । अत एव तादृशाधिकारविशेषमाह श्रीपतिः—'स्वोच्चेरूपं चरणरहितं स्वत्रिकोणे स्वभेऽर्द्धं नागांशानां त्रयमधिसुहृत्गेहगो मित्रभेऽघ्रिः । अंशोऽष्टानां समगृहगते भूपभागोऽरिगेहे दन्तांशः स्यादधिरिपुगृहे नीचगे शून्यमेव ।। एतच्छुभाख्यमशुभं च पुनर्गृहेषु स्वोच्चादिवर्तिषु वदन्ति तदूनमेकम्' इति ।। ५६ ।।

पीताम्बरा—विशेष शुभाशुभ योग—यात्रा लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में शुभग्रह शुभ, अन्य स्थानों में नेष्ट, ३।६।१०।११ में पापग्रह शुभ अन्य स्थानों में अशुभ होते हैं । १।१२। ६।८ में चन्द्रमा, १० में शनि, ७ में शुक्र तथा लग्नेश ७।१२।६।८ में अशुभ होते हैं ।। ५६ ।।

अथ योगयात्रा व्याख्यायते । तत्र ग्रन्थकृच्छन्दःशास्त्रकृतपटुतराभ्यासं सूचयन्नानाविधैश्छन्दोभिः मञ्जुभाषिणीप्रभृतिभिर्ग्रथितामावश्यकराजयात्रौपयिकीं योगयात्रां वक्तुकामस्तदारम्भप्रयोजनमाह—

योगात्सिद्धिर्धरणिपतीनामृक्षगुणैरपि भूदेवानाम् ।
चौराणामपि शुभशकुनैर्वा भवति मुहूर्तादपि मनुजानाम् ।। ५७ ।।

पीयूषधारा—योगाविति । पादाकुलकं छन्दः । तल्लक्षणं वृत्तरत्नाकरे—'यदतीतकृतविविधलक्ष्मयुतैर्मात्रा समादिपादैः कलितम् । अनियतवृत्तपरिमाणसहितं प्रथितं जगत्सु पादाकुलकम्' । इदं लक्षणं—'द्विगुणितवसुलघुचरचलधृतिरिह' इत्येतत्प्रकरणे पठ्यते । तेन-चरणचतुष्टये प्रत्येकं षोडशमात्रा ज्ञेयाः । तत्र गुरोर्मात्राद्वयं लघोर्मात्रैका मिलित्वा षोडश यथात्र पद्ये । अत्र प्रथमतृतीयचतुर्थचरणेषु मात्रासमकलक्षणम् । उक्तं च—'मात्रासमकं नवमोलान्तलगतम्' इति मात्रासमकाख्ये छन्दसि नवमो लघुरित्यर्थः । गत पादान्ते गुरुः द्वितीयचरणे उपचित्रालक्षणम् । उक्तं च—'उपचित्रा नवमे परयुक्ते' परा दशमी मात्रा तया युक्ते नवमे दशममात्राद्वये नैको गुरुः स्यादित्यर्थः । अत एवोक्तं—'यदतीतकृतविविधलक्ष्मयुतैः इति । न चारत्यत्र मात्रासाम्यम् । परन्तु वृत्तम् । यत्तु वृत्तं परिमाणसहितमिति तेन पादाकुलकमित्यन्वर्थसंज्ञाप्यस्ति ।

दोषेऽपि सिद्धिर्योगबलेन—

धरणिपतीनां राज्ञां योगाद्वक्ष्यमाणसहितयोगयात्रालग्नवशाद्दुष्टेपि तिथ्यादौ सिद्धिर्वाञ्छितकार्यनिष्पत्तिः स्यात्। भूदेवानां ब्राह्मणानामृक्षगुणैश्चन्द्रबलताराबलविहितनक्षत्रादिभिः सिद्धिर्भवति। अपिशब्दात्पञ्चाङ्गशुद्ध्यादिषु नावश्यकता। चौराणां शकुनैर्वक्ष्यमाणशुभसूचकशकुनैः सिद्धिर्भवति। केचित्तु शिवालिखितोक्तमुहूर्तात्सिद्धिः स्यादित्याहुः। यदाह नारदः—'फलसिद्धिर्योगबलाद्राज्ञो विप्रस्य धिष्ण्यतः। मुहूर्तशक्तितोऽन्येषां शकुनैस्तस्करस्य च' इति।

वराहोऽपि—

'योगैः क्षितिपालविनिर्मिताः शकुनैस्तस्करचारणादयः। नक्षत्रबलैर्द्विजातयः क्षणवीर्यादितरो जनोऽर्थभाक्' इति। द्विजातयो ब्राह्मणाः। अत्र द्विजातय इतिब्राह्मणैःक्षत्रियवैश्या इति भट्टोत्पलो व्याख्यत्। तत्र नारदवाक्ये साक्षाद्विप्रपदोपादानात्। अत एव वसिष्ठोऽपि—'फलसिद्धिर्धिष्ण्यगुणैरग्रजानां भवेत्सदा। योगलग्नैः क्षितीशानां चौराणां शकुनैर्भृशम्' इत्यग्रजपदं प्रायुंक्त। नन्वत्र राज्ञां योगैर्यात्राफलसिद्धिरेत्युक्तम्। तत्रेयं योगयात्रा किं सर्वदोषापवादिकाउत विषयविवेक इति। सर्वापवादिकेति चेत्। किं सर्वशब्देन शुभाशुभप्रकरणाभिहिता दोषा उच्यन्ते, उत एतद्यात्राप्रकरणोक्तनक्षत्रशूलवारशूलपरिघदण्डप्रतिशुक्रादिका दोषाः, उत अविशेषात्सर्वेपि दोषा इति। तत्र यदि शुभाशुभप्रकरणोक्तदोषापवादकत्वे सति योगयात्रालग्ने तद्विचारस्य त्यागप्रसङ्ग इति चेत्।न। 'न, हिंस्यात्सर्वभूतानि' 'आग्नीषोमीयं पशुमालभेत' इतिवदत्रोत्सर्गापवादस्य शिष्टसम्मतत्वाभावात्। अत्र यात्राप्रकरणोक्तदोषापवादकत्वे सति नक्षत्रशूलप्रतिशुक्रादीनां राजविषयकाणामनभिधानप्रसङ्गात्। तथाहि, 'ज्येष्ठायां पुरुहूतदिङ्मुखमतः प्राप्तो बलिर्बन्धनं याम्याभाजपदे सुरश्च दितिजो यातो मुरारेर्वशम्। रोहिण्यां नमुचिः प्रतीच्यभिगतश्चूर्णीकृतो वज्रिणा सौम्याम्बर्थमदैवतेन गतवान्मृत्योर्वशं शम्बरः' इति। 'प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रतिभौमं गतो नृपः बलेन शक्रतुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्तते' इत्यादिषु नृपविषयत्वात्। अस्तु वा ननु नक्षत्रशूलकथने वसिष्ठादिर्भो राजपदोपादानं तादृशो दृष्टान्ते वा नाऽभ्यधायि, कथं नृपतिविषयताङ्गीक्रियते। सत्यम्। सामान्यवाक्यस्य विशेषवाक्यानुरोधाद्विशेषे पर्यवसानम्। यथा 'पुरोडाशं चतुर्द्धा करोति' आग्नेयं चतुर्द्धा करोति' इतिवत्। तेन न वैश्वदेवाख्यपुरोडाशस्य चतुर्द्धाकरणम्। किं च योगादेव चेत्फलसिद्धिस्तदा 'न षष्ठी न च द्वादशी नाष्टमी' इत्येतत्प्रकरणपठितं तिथिशुद्ध्यादिकं स्यादिति वाच्यम्। तत्रापि नक्षत्रगुणादिभिरेव प्राशस्त्यावबोधनात्। अथोभयदोषापवादकत्वे इष्टे शुभाशुभप्रकररणं यात्राप्रकरणं चोल्लङ्घ्य स्थलान्तरेऽतिदेशं विना योगयात्रोपनिबन्धः कर्तव्यः स्यात् शवप्रतिकृतिदाहश्राद्धनिर्णयकथनवत्। नहि तत्र पञ्चाङ्गदोषा उपयुज्यन्त। यद्येवं संस्कारप्रकरणगृहप्रवेशप्रकरणादीनां पार्थक्योपनिबन्धात्पञ्चाङ्गदोषापवादकता कुतो नास्तीति चेत्। उच्यते। तत्राहि—'पञ्चाङ्गसंशुद्धदिनादिके च' इति वसिष्ठादिभिः 'पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेऽह्नि' इति ग्रन्थकृताप्यतिदेशोपनिबन्धस्य कृतत्वात्। अतः सर्वाप्रवादिकेत्ययुक्तः पक्षः। तस्मात्—'अबाधेनोपपत्तौ बाधो न न्याय्यः' इतिहेतोर्विषयविवेक इत्येव युक्तः पक्षः।

द्विविधा यात्रा तयोर्विषयविवेकश्च—

यथा सा च यात्रा द्विविधा, एका साधारणयात्रा परा समरविजयाख्या । साधारणयात्रा तु वर्णचतुष्टयसाधारणी । तत्र बहुना कालेन बहुदोषहीनं बहुगुणोपादानं चोदितम् । द्वितीया समरविजयाख्या राज्ञामेव । तत्र योगयात्रा समरविजयोपयोगिनी । उपस्थिते युद्धे पञ्चाङ्गशुद्धिर्बहुदिवसप्राप्येति तद्विचारानुपयोगात् । उक्तं च वसिष्ठेन योगयात्राप्रारम्भे—'उक्ता साधारणी यात्रा युद्धयात्रां ब्रवीम्यहम् । व्रजन्ति ये नृपाः सूक्ष्मे लग्ने ते जयिनः सदा ॥ योगलग्नैर्युता राज्ञां यात्रा च विजयप्रदा । विचित्रान्योगलग्नांस्तान्सम्यग्वक्ष्ये समासतः ॥' इति । अन्ये तु युद्धं विनैव आप्ययिककार्यविषयैवयोगयात्रेत्याहुः । यदाह पराशरः—'आत्ययिककार्यपाते दैवेन निपीडिते च यातव्ये । केवलविलग्नयोगादपि याता सिद्धिमाप्नोति ॥' इति । तत्रापि केवलेन योगयात्राबलेनैवंविधे विषये यात्रा न विधेया । किन्तु यथासम्भवं पञ्चाङ्गसम्बन्धिनां दोषाणां त्यागः तादृशानां गुणानां चोदापानं विधेयम् । सन्ति हि द्विविधाः दोषा नैसर्गिकाः अन्याहिताश्च । यथा तिथेः 'न षष्ठी न च द्वादशी' इति नैसर्गिको दोषः । 'चापान्त्यगे गोघटगे' इति दग्धदोषोऽन्याहितः ।

वारनक्षत्रगुण अप्येवं द्विविधाः—

एवं वारनक्षत्रयोगानां द्वैविध्यमूह्यम् । एवं गुणा अपि द्विविधाः । 'हयादित्य इति विहितनक्षत्रत्वान्नैसर्गिको गुणः । शुभग्रहस्य साहित्यमन्याहितो गुणः । एवमन्येषामपि गुणानां द्वैविध्यमूह्यम् ।

राजवद्ब्राह्मणादीनामपि यथासम्भवं शुभदोषयोर्हानोपादाने—

तत्र यथा राज्ञां यथासम्भवं दोषहानि गुणोपादानं चाङ्गीकृत्य योगयात्रा विधेया एवं ब्राह्मणादीनामत्यावश्यककार्यातिपातविषये नक्षत्रादिबलं ग्राह्यम् । यथासम्भवं च लग्नादिसमस्तदोषगुणानां हानोपादाने न्याय्ये स्त इति । तथा च लल्लः—'यातव्ये व्यसनगते ह्यनिष्टदैवे च भूपतिस्त्वरया । लग्नैरभीष्टकल्पैर्व्रजेत्तिथौ भेषु च समेषु ॥ कार्येषु पराधीनेष्वनेकसाधारणेषु शीघ्रेषु । प्रायेण गमनमिष्टं सदैव नतु सूक्ष्मचिन्तयास्तीति ॥' अत एव—'न तिथिर्न च नक्षत्रं न ग्रहो नैन्दवं बलम् । योगमेव प्रशंसन्ति वसिष्ठात्रिपराशराः ॥' इति वराहवाक्यं योगयात्रालग्नप्रशंसापरं न तु तिथ्यादीनामपवादकमिति तात्पर्यम् । ननु पूर्वं दोषहानपूर्वकं समीचीनलग्नाभिधानं कृतमेवास्ति कोऽस्ति योगयात्रालग्नेषु विशेषः । उच्यते शुक्रः सप्तमो लग्नभङ्गकर्तेत्युक्तं प्राक् अत्र तु शशिनि चतुर्थे सति शुक्रः सबुधश्चेत्सप्तमस्थस्तदा तद्योगयात्रालग्नमतीव शुभफलदम् । एतादृशं योगलग्नं ग्रन्थकृद्वक्ष्यति । तत्र तिष्ठतामेव ग्रहाणां नियतस्थानावस्थितया प्रागुक्तनीतेरशुभफलदायकं लग्नं भवति । यदाह श्रीपतिः— यथा हि योगादमृतायते विषं विषायते मध्वपि सर्पिषा समम् । तथा विहाय स्वफलानि खेचराः फलं प्रयच्छन्ति हि योगसम्भवम् ॥' इति योगात् दुग्धादिव्ययोगेन शोधनादित्यर्थः । सर्पिर्घृत् । लग्नप्राबल्ययोगयोः सत्त्वे यात्रातिशुभफलदा योगयात्रापदार्थौ च—

स्वभावतो लग्नप्राबल्यो योगोऽपि चेत्सम्भवेत्तदातीव शुभफलदं लग्नम् । अत एव योगेन यात्रायोगत्रायेत्यन्वर्थसञ्ज्ञाविज्ञानमपि प्रतीयते । योगो नाम कियतां ग्रहाणां नियतस्थानावस्थितत्वम् । एवं वक्ष्यमाणेषु सर्वेष्वपि योगयात्रालग्नेषु यथासम्भवं किञ्चिद्दूषणं समूह्य तस्मादेव वाक्याद्दोषाभावपूर्वकं गुणाधिक्यमस्तीति व्याकर्तव्यमित्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ५७ ॥

पीताम्बरा—ब्राह्मण क्षत्रियादिकों के लिए शुभ विषय—(राजाओ) क्षत्रियों के लिए तिथि आदिकों से वाञ्छित फलप्रद यात्रा योगों की यात्रा सिद्धिदायक होती है। ब्राह्मणों के लिए चन्द्रतारा नक्षत्रादिक बलपूर्ण दिवस की यात्रा सिद्धि देती है। चोरी करने के लिए चोरों की यात्रा, यात्रा समय के शुभ शकुनों से शुभ होती है। अन्य सर्वसाधारण की यात्रा शुभ मुहूर्तों से शुभ होती है ॥ ५७ ॥

अथ योगयात्रामाह—

सहजे रविर्दशमभे शशी तथा शनिमङ्गलौ रिपुगृहे सितः सुते।
हिबुके बुधो गुरुरपीह लग्नगः स जयत्यरीन् प्रचलितोऽचिरान्नृपः ॥ ५८ ॥

पीयूषधारा—सहज इति। मञ्जुभाषिणीछन्दः। तल्लक्षणं च—सजसाजगौ भवति मञ्जुभाषिणी' इति। अस्यार्थः। सगणजगणसगणजगणगुरवो यस्य पद्यस्य चरणे तन्मञ्जुभाषिणी नाम यथा ननु मञ्जुभाषिणीति पद्यनामधेयमुक्तं, लक्षणं तु चरणस्यैवोक्तं न सकलस्य। सत्यम्। एतच्चरणलक्षणं पादचतुष्टयेऽपि ध्येयम्। समवृत्तत्वात्। त्रिविधानि हि वर्णच्छन्दांसि 'सममर्द्ध-समं वृत्तं विषमं च तथापरम्' इति तत्रैवोक्तत्वात्। अत्र यस्य पद्यस्य चत्वारश्चरणा एकलक्षण-ग्रथितास्तत्समवृत्तम्। उक्तं च—'अङ्घ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः। तच्छन्दःशास्त्र-तत्त्वज्ञाः समवृत्तं प्रचक्षते ॥' तुल्यमेकम्। यथा द्रुतविलम्बितं—'नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुट-परागपरागतपङ्कजम्। मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्ससुरभिं सुरभिंसुमनोभरैः' इति। तल्लक्षणं चेदं—'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इति यस्य पद्यस्य प्रथमचरणस्तृतीयचरणश्चैकलक्षणलक्षितो द्वितीयश्चतुर्थश्चाप्येकलक्षणलक्षितस्तदर्धसमं वृत्तम्। 'प्रथमाङ्घ्रिसमो यस्य तृतीयचरणो भवेत्। द्वितीयस्तुर्यवद्वृत्तं तदर्द्धसममुच्यते ॥' इति तेनैवोक्तत्वात्। एतेनार्द्धसममर्द्धसममित्यन्वर्थ-संज्ञापि यथा पुष्पिताग्रा—अनुगिरमृतुभिर्वितायामानामथ स विलोकयितुं वनान्तलक्ष्मीम्। निर-गमदभिरोद्धुमा गतानां भवति महत्सु न निष्फलः प्रयासः ॥' इति। पुष्पिताग्रालक्षणं चेदम्—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति यस्य चतुर्षु चरणेषु प्रत्येकं भिन्नं भिन्नं लक्षणं तद्विषमं वृत्तम्। उक्तं च—'यस्य पादचतुष्केऽपि लक्ष्मभिन्नं परस्परम्। तदाहुर्विषमं वृत्तं छन्दःशास्त्रविशारदाः ॥' इति। यथोद्गता 'ननु सर्व एव समवेक्ष्य कमपि गुण-मेति पूज्यताम्। सर्वगुणविहितस्य हरेः परिपूजया कुरु नरेन्द्र को गुणः।' इति। लक्षणं चास्येदं' सजमादिमे सलघुकौ च न सजगुरुकेष्वयोद्गता। त्र्यङ्घ्रिगतभनजलागयुता सजसा चगौ चरण-मेकतः पठेत्।' इति मगणादिकगणा उक्तं भामहेन—'मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो योऽन्तगुरुः कथि-तोऽन्तलघुस्तः ॥' इति। एवं सत्यत्र मञ्जुभाषिणीछन्दसः समवृत्तत्वादेकचरणलक्षणाभिधानं कृतं केदारेणेत्यलमतिप्रसङ्गेन। अथ प्रस्तुतमनुसरामः। सहज इति। रविः सहजे तृतीयस्थाने स्यात्। शशी चन्द्रो दशमभे दशमस्थाने शनिमङ्गलौ रिपुगृहे षष्ठस्थाने स्याताम्। सितः शुक्रः सुते पञ्चम-स्थाने। बुधो हिबुके चतुर्थस्थाने। गुरुर्लग्नगश्चेत्स्यात्। अपितथाशब्दौ पादपूरणे। इहैवंविध-योगे यात्रालग्ने नृपो राजाप्रचलितश्शत्रुनगरार्थं कृतयात्रः सन्नचिरात्स्वल्पकालेनैवारीन् शत्रून् जयति वशीकरोतीत्यर्थः। यथाह वराहः—लग्ने गुरुर्बुधभृगू हिबुकात्मसस्थौ षष्ठौ कुजार्कतनयौ

दिनकृत्तृतीयः। चन्द्रश्च यस्य दशमे भवति प्रयातुस्तस्याभिवाञ्छितफलासिरलं नृपस्य' इति। क्वचित्, 'भृगुबुधौ' इति पाठः स चिन्त्यः। 'भृगुर्हिबुके भृगुरात्मजे इति यथासंख्येनान्वयः। क्वचित्, 'भृगुबुधौ' इति पाठः स चिन्त्यः। 'भृगुर्हिबुके' इति तावद्युक्तम्। परन्तु रविस्तृतीये बुधः पञ्चमे इतीदमयुक्तम्। नहि सूर्यात्तृतीयो बुधः क्वचिदपि सम्भवेत्। तस्मात्प्रागुक्त एव साधीयान् पाठः।। ५८।।

पीताम्बरा—विजय योग—यात्रा लग्न से सूर्य तीसरे, चन्द्रमा दशम में, शनि और मंगल छठे शुक्र पञ्चम में, बुध चतुर्थ में और लग्न में वृहस्पति होने से, इस प्रकार की शत्रु-नगर विजय की राजयात्रा से थोड़े ही समय में राजा शत्रु को अपने वश में कर लेता है।। ५८।।

अथान्ययोगयात्रालग्नमाह—

भ्रातरि सौरिर्भूमिसुतो वैरिणि लग्ने देवगुरुः।
आयगतेऽर्के शत्रुजयश्चेदनुकूलो दैत्यगुरुः।। ५९।।

पीयूषधारा—भ्रातरीति। अस्य गाथाछन्दः। तल्लक्षणं च—'विषमाक्षरपादं वा पादैरसमं दशधर्मवत्। यच्छन्दो नोक्तमत्र गाथेति तत्पूर्वसूरिभिः प्रोक्तम्' इति। अत्र ग्रन्थे उक्तछन्दोभ्यो यदन्यद्विषमाक्षरपादं पादैरसमं वा छन्दस्तद्गाथाख्यमिति केचिदाहुः। अपरे तु प्रागुक्तेषु समाक्षरपादेपूक्तादिष्वपि विशिष्य यस्याभिधानं नोक्तं तद्गाथेत्यूचुः। तदेतदर्थद्वयं यच्छन्दो नोक्तमत्र गाथेतीत्येतस्यावृत्त्या लभ्यम्। अत एव पिङ्गलः सूत्रकारोऽपि—'सम्मुग्धाकारेणात्रानुक्तं गाथा' इत्यवोचत्। छन्दोग्रन्थान्तरेऽस्य नामास्ति। भ्रातरि तृतीये सौरिः शनिः स्यात् वैरिणि षष्ठे भूमिसुतो मङ्गलः, लग्ने देवगुरुः आय एकादशस्थानं तत्र गतोऽर्कश्च। एवं विधे योगे राज्ञः शत्रुजयो भवेत्। चेद्दैत्यगुरुः शुक्रोऽनुकूलो यातव्यदिक्पृष्ठवर्ती भवति यदाह वराहः—'होरातृतीयरिपुलाभगतैः क्रमेण जीवार्कभौमरविभिर्भृगुजानुकूले। यातोऽतिदृप्तमपि शत्रुबलं निहन्ति नैशं तमिस्रमिव तिग्ममयूखमाली' इति। भृगुजानुकूल्यं यातव्यदिक्पृष्ठवर्तित्वं विवक्षितम्। यदाह बादरायणः—'लग्नत्रिलाभारिगतैः क्रमेण जीवार्किसूर्यावनिजैः सितश्च। यातव्यदिक्पृष्ठगतो नरेन्द्रः शत्रोर्बलं हन्ति गतोऽचिरेण' इति।।

पीताम्बरा—अन्य योग—यात्रा लग्न से शनि तीसरे, भौम छठे, लग्न में वृहस्पति, ११वें सूर्य तथा शुक्र (वाम या पृष्ठ) अनुकूल हो तो राजा शत्रु को जीतता है।। ५९।।

अथान्ययोगयात्रालग्नमाह—

तनौ जीव इन्दुर्मृतौ वैरिगोऽर्कः।
प्रयातो महीन्द्रो जयत्येव शत्रून्।। ६०।।

पीयूषधारा—तनौ जीव इति। गाथाछन्दः प्राग्वत् स्वमतौ ग्रन्थान्तरे च। लग्ने जीवो गुरुः स्यात्। मृतावष्टमस्थाने इन्दुः स्यात्। वैरिगः षष्ठस्थानगतोऽर्कश्चेत्स्यादेवंविधे योगे प्रयाता गन्ता महीन्द्रो राजशत्रून् जयत्येव। यदाह श्रीपतिः—'गुरुर्लग्ने रविः षष्ठे रन्ध्र इन्दुश्च गच्छतः। यस्य तस्यारिसेनाग्ने खलमैत्रीव न स्थिरा' इति। केचित् 'रन्ध्रे नेन्दुः' इति पाठं पठन्ति। तत्र रन्ध्रेऽष्टमे स्थाने इन्दुर्नापेक्षितो यत्र कुत्राप्यस्तु चन्द्र इति व्याकुर्वते तदशुद्धम्। यस्मात्स्पष्टमाह वाराहः—'गुरुरुदये रिपुराशिगतोऽर्को यदि निधनेऽपि च शीतमयूखः। भवति गतोऽत्र शशीव नरेन्द्रो रिपुवनिताननतामरसानाम्' इति।

नारदोऽपि—

'जीवार्कचन्द्रा लग्नारिरन्ध्रगा यदि गच्छतः। तस्याग्रे खलमैत्रीव न स्थिरा रिपुवाहिनी' इति। बादरायणोऽपि—'गुरुर्विलग्ने रिपुराशिगोऽर्कस्तथाष्टमे शीतमयूखमाली। गतोऽत्र योगे रिपुकामिनीनां वक्त्रारविन्देषु शशित्वमेति' इति॥ ६०॥

पीताम्बरा—अन्य योग यात्रा—लग्न में गुरु, आठवें चन्द्रमा, छठे सूर्य हों तो यात्रा करने पर राजा निश्चय शत्रु को जीतता है॥ ६०॥

अथान्ययोगयात्रालग्नमाह—

लग्नगतः स्याद्देवपुरोधाः।
लाभधनस्थैः शेषनभोगैः॥ ६१॥

पीयूषधारा—लग्नगत इति। अत्र सुप्रतिष्ठायां पङ्क्तिच्छन्दः। तल्लक्षणं च 'भ्गौगिति पङ्क्तिः' यथा बृहस्पतिलग्नगतः स्यात्। अन्ये ग्रहा लाभधनस्था एकादशद्वितीयस्थानस्थाश्चेत्तदैवं विधे योगे राज्ञो विजयः। उक्तं च नारदेन—'लग्नस्थे त्रिदशाचार्ये धनायस्थैः परग्रहैः गतस्य राज्ञोऽरिसेना नीयते यममन्दिरम्' इति।

'वाक्पतौ तनुस्थिते वित्तलाभगैः परैः। गच्छतोरिवाहिनी नीयतेऽन्तकालयम्' इति॥६१॥

पीताम्बरा—अन्य योग—लग्न से लग्न में गुरु, अन्य ग्रह द्वितीय एकादश स्थान स्थित हों तो ऐसे लग्न की यात्रा में अवश्य राजा की विजय होती है॥ ६१॥

अथान्ययोगयात्रालग्नमाह—

द्यूने चन्द्रे समुदयगेऽर्के जीवे शुक्रे विदि धनसंस्थे।
ईदृग्योगे चलति नरेशो जेता शत्रून् गरुड इवाहीन्॥ ६२॥

पीयूषधारा—द्यून इति। अस्य पङ्क्तौ मत्ताछन्दः। तल्लक्षणं च 'ज्ञेया मत्ता मभसगयुक्ता'। चन्द्रे द्यूने सप्तमस्थाने सति अर्के समुदयगे लग्नगते सति जीवे शुक्रे विदि बुधे एषु त्रिषु ग्रहेषु धनसंस्थेषु द्वितीयस्थानस्थेषु सत्सु, एवंविधे योग चेन्नरेशश्चलति तदा शत्रून् जेता जेष्यति। कः कानि व। गरुडोऽहीन्सर्पान्यथा जयति। यदाह वराहः—'शुक्रवाक्पतिबुधैर्धनसंस्थैः सप्तग शशिनि लग्नगतेऽर्के। निर्गतो नृपतिरेति कृतार्थो वैनतेयवदरीन्विनिहन्ति' इति॥ ६२॥

पीताम्बरा—अन्य योग यात्रा—जिस लग्न से सप्तम स्थान में चन्द्रमा, लग्न में सूर्य, बृहस्पतिशुक्र और बुध की द्वितीय स्थान स्थिति हो, ऐसे यात्रा लग्न योग की यात्रा में, उसी प्रकार राजा भी शत्रुओं पर विजय पाता है जिस प्रकार गरुड़ सर्पों पर विजय पाता है॥६२॥

अथान्यदपि योगलग्नमाह—

वित्तगतः शशिपुत्रो भ्रातरि वासरनाथः।
लग्नगतो भृगुपुत्रः स्युः शलभा इव सर्वे॥ ६३॥

पीयूषधारा—वित्तगत इति। अस्यानुष्टुभि चित्रपदाछन्दः। तल्लक्षणं च 'भौग्निति चित्रपदागः' शशिपुत्रो बुधो वित्तगतः द्वितीयस्थः वासरनाथः सूर्यो भ्रातरि तृतीयस्थः भृगुपुत्रे शुक्रे

लग्नसंस्थे सति, एवंविधे योगे चेद्राजा चलति तदा शत्रवः शलभा इव स्युः । यथा शलभा अग्नौ स्वयमेव गत्वा पतन्ति तथा शत्रवोऽपि गन्तूराजप्रतापानले पतिष्यन्तीत्यर्थ । यदाह वराहः—'मूर्तिवित्तसहजेषु संस्थिताः शुक्रचन्द्रसुततिग्मरश्मयः । यस्य यानसमये रणानले तस्य यान्ति शलभा इवारयः' इति ॥

पीताम्बरा—अन्य योग—जिस लग्न से धन भावगत बुध, तृतीय भावस्थ सूर्य, लग्नस्थ शुक्र हो ऐसे राजयोग की राज यात्रा से, राजा के प्रताप रूपक दीपक से, पतंग रूप शत्रु भस्म हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

अथान्ययोगलग्नमाह—

उदये रविर्यदि सौरिररिगः शशी दशऽमेपि ।
वसुधापतिर्यदि याति रिपुवाहिनी वशमेति ॥ ६४ ॥

पीयूषधारा—उदये इति । अस्य गाथाछन्दः प्राग्वत्स्वमते ग्रन्थान्तरे च । यदि उदये लग्ने रविः स्यात् सौरिः अरिगः षष्ठस्थः स्यात् । शशी दशमस्थः स्यात्तदा एवंविधे योगे वसुधापतिः राजा याति तर्हि रिपुवाहिनी शत्रुसेना वशमेतीति । यदाह नारदः—'व्यापारशत्रुमूर्तिस्थैश्चन्द्रमन्ददिवाकरैः । रणे गतस्य भूपस्य जयलक्ष्मी, प्रमाणिका ।।' इति । व्यापारः दशमम् । वराहोऽपि—'दिवाकरो लग्नगतो यदि स्यात्षष्टऽर्कसूनुर्दशमे शशी च । योगेऽत्र यातस्य न तिष्ठतेऽन्यो वलेन हीनस्य बलान्वितोऽपि' इति ॥ ६४ ॥

पीताम्बरा—अन्य राजयोग—लग्न में सूर्य, छठे शनि, दशम चन्द्रमा की स्थिति के यात्रा लग्न में राजा की राजयात्रा से शत्रु सेना अपने वश में हो जाती है। अर्थात् शत्रु सेना प्रबल दुश्मन को अपना आत्मसमर्पण कर देती है ॥ ६४ ॥

अथान्ययोगयात्रालग्नद्वयमाह—

तनौ शनिकुजौ रविर्दशमभे बुधो भृगुसुतोऽपि लाभदशभे ।
त्रिलाभरिपुभेषु भूसुतशनी गुरुज्ञभृगुजास्तथा बलयुताः ॥ ६५ ॥

पीयूषधारा—तनौ इति । अस्य जगत्यां जलोद्धतगतिछन्दः तल्लक्षणम्—'रसैर्जसजसाजलोद्धतगतिः' रसैः षड्भिरक्षरैर्यतिर्विच्छेदः । इत आरभ्य वसुधापतिर्यदि याति रिपुवाहिनी वशमेतीत्युत्तरा 'सहजेद्धे कुजः, इत्येतत्पद्यपर्यन्तमनुवर्तते । तेन यत्रयत्र श्लोके फलनिर्देशो नास्ति तत्र जिगमिषो राज्ञो विजयः स्यादिति वाक्यार्थो ध्येयः । तनौ लग्नस्थौ शनि मङ्गलौ यथासम्भवं स्यातां रविर्दशमभे स्यात् बुधः लाभे दशमे वा स्यात् भृगुसुतो वा लाभे दशमे वा स्यात् तदैवंविधे योगे प्रचलितस्य राज्ञो जयः स्यात् । यदाह वराहः—'सौरे भौमे लग्नगेर्के खमध्ये कर्मण्याये भार्गवे चन्द्रजे वा । यायाद्भूपः शत्रुदेशं निहन्तुं दृप्तं शत्रुं कालवत्क्रूरचेष्टः' इति गुरोरपि—'आरे वा सूर्यजे वापि लग्नगे दशमे रवौ । कर्मण्याये सिते ज्ञे वा योगोऽयं यातुरुत्तमः' इति । अयमेको योगः ।

द्वितीयो योगः—

त्रिलाभरिपुभेषु तृतीयैकादशषष्ठस्थानानामन्यतमस्थानद्वयस्थितौ भूसुतशनी मङ्गलशनैश्चरौ यदि स्यातां यस्मिन् कस्मिंश्चित्स्थाने स्थिता गुरुज्ञभृगुजा बलयुताः स्युस्तदवंविधे योगे

तथा राज्ञो विजय इत्यर्थः। यदाह नारदः—'त्रिषडायेषु सौरारी बलवन्तः शुभा यदि। यात्रायां नृपतेस्तस्य करस्था शत्रुमेदिनी' इति। श्रीपतिरपि—'आयारिषु यमारौ चेच्छक्तिभाजः शुभग्रहाः। प्रयाणे नृपतेर्यस्य हस्तस्था तस्य मेदिनी॥' इति। शुभग्रहाश्चन्द्ररहिता विवक्षिताः। यदाह गुरुः—'यमारी त्रिषडायस्थौ बुधजीवसितास्तदा। महाबलयुता योगो यातुरिष्टार्थदः सदा॥' इति।

पीताम्बरा—अन्य दो राजयोग यात्रा—यदि शनि मंगल लग्न में, सूर्य दशम, दशम एकादश में बुध वा शुक्र हों, अथवा शनि मंगल ३।६।११ में बुध-बृहस्पति और शुक्र बलवान् हों तो राजा की राजयात्रा विजयाय होती है॥ ६५॥

अथान्ययोगयात्रालग्नमाह—

समुदयगे विबुधगुरौ मदनगते हिमकिरणे।
हिबुकगतौ बुधभृगुजौ सहजगताः खलखचराः॥ ६६॥

पीयूषधारा—समुदयगे इति। अस्य गाथाछन्दः प्राग्वत्स्वमते ग्रन्थान्तरे च। समुदयगे लग्नस्थे गुरौ सति हिमकिरणे चन्द्रे मदनगते सप्तमस्थे सति, हिबुकं चतुर्थस्थानं, तत्र गतौ बुधशुक्रौ स्यातां खलखचरे पापग्रहे सहजं तृतीयस्थानं तत्र गते च सति एवंविधे योगे वसुधापतिर्यदि याति रिपुवाहिनी तदा वशमेति। यदाह वराहः—'पापास्तृतीये हिबुके सितज्ञौ जीवो विलग्ने मृगलाच्छनोऽस्ति। यस्योद्यमे तस्य बलं रिपूणां कृतं कृतघ्नेष्विव याति नाशम्॥' इति॥ ६६॥

पीताम्बरा—अन्य राज यात्रा योग—गुरु लग्नगत, चन्द्रमा सप्तम, बुध शुक्र चतुर्थ और पापग्रह तीसरे हों तो भी राजा की यात्रा विजयप्रदा होती है॥६६॥

अन्ययात्रायोगमाह—

त्रिदशगुरुस्तनुगो मदने हिमकिरणो रविरायगतः।
सितशशिजावपि कर्मगतौ रविसुतभूमिसुतौ सहजे॥ ६७॥

पीयूषधारा—त्रिदशगुरुरिति। अस्य त्रिष्टुभि सुमुखीछन्दः तल्लक्षणं च 'नजजलगैर्गदिता सुमुखी' यथा बृहस्पतिर्लग्नगः स्यात् चन्द्रः सप्तमे स्यात् शुक्रबुधौ दशमगतौ स्यातां सूर्य एकादशस्थः स्यात् शनिमङ्गलौ तृतीयस्थाने स्यातां एवंविधे योगे राज्ञो विजय एव। यदाह वराहः—'चन्द्रेस्तगे देवगुरौ विलग्ने ज्ञशुक्रयोः कर्म्मणि लाभगेऽर्के। सौरारयोर्भ्रातृगयोश्च याता नृपः स्वभृत्यानिव शास्ति शत्रून्' इति॥ ६७॥

पीताम्बरा—अन्य राज यात्रा योग—लग्नगत बृहस्पति, सप्तम में चन्द्रमा, सूर्य एकादशस्थ, बुध-शुक्र दशम में और शनि मंगल तीसरे हों तो राजा या जनता के जनविशेष की यात्रा विजयप्रद होती है॥ ६७॥

अन्ययोगयात्रालग्नमाह—

देवगुरौ वा शशिनि तनुस्थे वासरनाथे रिपुभवनस्थे।
पञ्चमगेहे हिमकरपुत्रः कर्मणि सौरिः सुहृदि सितश्च॥ ६८॥

पीयूषधारा—देवगुराविति—अस्य त्रिष्टुभि श्रीछन्दः तल्लक्षणं च 'पञ्चरसैः श्रीर्भ-

तनगगैश्च' पञ्चरसैः पञ्चभिः षड्भिरक्षरैश्च यतिः। गुरौ चन्द्रे वा लग्नस्थे सति, सूर्ये षष्ठस्थे, बुधश्च पञ्चमस्थाने, शनिर्दशमे स्यात्' शुक्रः चतुर्थस्थाने स्यात्, एवंविधे योगे जिगमिषो राज्ञो विजय एव। यदाह वराहः—'गुरौ विलग्ने यदि वा शशाङ्के षष्ठे रवौ कर्मगतेऽर्कपुत्रे। सितज्ञयोर्बन्धुसुतस्थयोश्च यात्रा जनित्रीव हितानि धत्ते ॥' इति। जनित्रीमाता॥६८॥

पीताम्बरा—अन्य राज-यात्रा योग—लग्न में गुरु या चन्द्रमा, सूर्य छठे, बुध पञ्चम, शनि दशम, शुक्र चतुर्थ हो तो ऐसे शुभ लग्न में यात्रा करने से राजा और प्रजा सबकी विजय होती है ॥ ६८ ॥

अन्ययोगयात्रालग्नमाह—

हिमकिरणसुतो बली चेत्तनौ त्रिदशपतिगुरुर्हि केन्द्रस्थितः।
व्ययगृहसहजारिधर्मस्थितो यदि च भवति निर्बलश्चन्द्रमाः ॥ ६९ ॥

पीयूषधारा—हिमकिरणसुत इति। अस्य जगत्यां प्रमुदितवदनाछन्दः। तल्लक्षणं च—'प्रमुदितवदना भवेन्नौ ररौ' बुधो बली सन् चेत्तनौ लग्ने स्यात् हि निश्चयेन बृहस्पतिश्चेत्केन्द्रगतः प्रथमचतुर्थसप्तमदशमानामन्यतमस्थानस्थः यदि च निर्बलो नोचाद्यशुभाधिकारप्राप्त्या बलरहितः सन् चन्द्रो द्वादशतृतीयषष्ठाष्टनवमानामन्यतमस्थानस्थस्तदैवंविधे योगे जिगमिषो राज्ञो विजय एव यदाह वराहः—'त्रिषण्णवान्तेषु बली शशाङ्कश्चान्द्रिर्बली यस्य गुरुश्च केन्द्रे। तस्यारियोषाभरणैः प्रियाणि प्रियाः प्रियाणां जनयन्ति सैन्ये ॥' इति। तस्य सैन्ये प्रियाः सैनिका अरियोषाभरणानि बलादपहृत्य स्वस्त्रीभ्यो दत्त्वा तासां प्रियाणि जनयन्तीत्यर्थः। अत्र यद्यपि बुधस्य स्थानविशेषो नाभ्यधायि। तथापि लग्नस्थो बुध इति व्याकर्त्तव्यम्! यदाह गुरुः—'त्रिषण्णवान्त्यगे चन्द्रे लग्ने च सबले बुधे। गुरौ केन्द्रे तदा याता राजलक्ष्मीं लभेन्नृपः' इति॥६९॥

पीताम्बरा—यात्रा के अन्य विजय योग—बलवान् बुध लग्न में, केन्द्र में बृहस्पति, निर्बल चन्द्रमा १२।३।६।९ में होने से भी राजा व प्रजा जो कोई यात्रा करै उसकी विजय होती है ॥ ६९ ॥

अन्ययोगयात्रालग्नमपि—

अशुभखगैरनवाष्टमदस्थैर्हिबुकसहोदरलाभगृहस्थः।
कविरहि केन्द्रगगीष्पतिदृष्टो वसुचयलाभकरः खलु योगः ॥ ७० ॥

पीयूषधारा—अशुभखगैरिति। अस्य जगत्यामभिनवतामरसाख्यं छन्दः। तल्लक्षणं च बृहद्रत्नाकरे—'अभिनवतामरसं नजजाद्यः' इति। स अशुभखगैः पापग्रहैर्हि निश्चितं नवमाष्टमसप्तमस्थानव्यतिरिक्तस्थानस्थैः सद्भिर्यदि कविः शुक्रः चतुर्थतृतीयैकादशस्थानस्थः सन् केन्द्रस्थितो यो गीष्पतिर्गुरुस्तेन दृष्टो भवेत् एवंविधो योगो वसुचयो द्रव्यसमूहस्तस्य लाभकरः स्यात्। विजगीषो राज्ञो विजयोऽपि स्यात्। उक्तं च वराहेण—'केन्द्रोपगतेन वीक्षिते गुरुणा त्र्यायचतुर्थगे सिते। पापैरनवाष्टसप्तगैर्वसु तत्किन प्रदाप्नुयान्नृपः ॥' इति।

पापग्रहाणां नवमाष्टमसप्तमस्थाने स्थितावपि शुभदा योगयात्रा—

क्वचित्तु पापग्रहा नवमाष्टमसप्तमस्थाः शुभा एवेत्युक्तम्। तथा च गुरुः—'आत्रायनगृहगे शुक्रे केन्द्रे देवगुरौ स्थिते। सप्ताष्टनवराशिस्थाः पापा यातुः शुभप्रदाः ॥' इति। गृहं चतुर्थस्थानम् ॥ ७० ॥

पीताम्बरा—राज योग यात्रा—९, ८, ७ से रहित शेष स्थानों में पापग्रह हों, शुक्र ४, ३, ११ में हो और केन्द्रस्थित बृहस्पति उसे देखता हो तो ऐसे योग की यात्रा से द्रव्य-समूह का लाभ होता है ॥ ७० ॥

अन्यद्योगयात्रालग्नमाह—

रिपुलग्नकर्महिबुके शशिजे परिवीक्षिते शुभनभोगमनैः ।
व्ययलग्नमन्मथगृहेषु जयः परिवर्जितेस्वशुभनामधरैः ॥ ७१ ॥

पीयूषधारा—रिपुलग्नेति—अस्य जगत्यां प्रमिताक्षराछन्दः । तल्लक्षणं च 'प्रमिता-क्षरा सजससैरुदिता ।' षष्ठ-६ लग्न-१ दशम-१० चतुर्थ-४ स्थानानामन्यतमस्थानस्थे शशिजे बुधे शुभनभोगमनैः शुभग्रहैश्चन्द्रगुरुशुक्रैः परिवीक्षिते दृष्टे सति द्वादश-१२ लग्न-१ सप्तम-७ स्थानेभ्यो व्यतिरिक्त स्थानस्थितैरशुभनामधरैः पापग्रहैरुपलक्षिते सति जिगमिषो राज्ञो जय एव स्यात् । यदाह वराहः—लग्नारिकर्महिबुकेषु शुभेक्षिते ज्ञे द्यूनान्त्यलग्नरहितेषु शुभग्रहेषु । यातुर्भयं न भवति प्रतरेत्समुद्रं यद्यश्मनापि किमुतारिसमागमेषु ॥' इति ॥ ७१ ॥

पीताम्बरा—अन्य विजय योग के यात्रा लग्न—शुभ ग्रहों से दृष्ट, ६, १, १०, ४ स्थानों में बुध ग्रह हो और १२।१।७ स्थानों से रहित शेष स्थानों में पाप ग्रह हों तो भी युद्ध के लिए यात्रा करने वाले राजा या प्रजा की न्यायालय में मुकदमे आदि से दोनों की विजय होती है ॥ ७१ ॥

अन्यद्योगयात्रालग्नद्वयमाह—

लग्ने यदि जीवः पापा यदि लाभे कर्मण्यपि चेद्राज्याधिगमः स्यात् ।
द्यूने बुधशुक्रौ चन्द्रो हिबुके वा तद्वत्फलमुक्तं सर्वैर्मुनिवर्यैः ॥ ७२ ॥

पीयूषधारा—लग्ने इति—अस्य जगत्यां मणिमालाछन्दः । तल्लक्षणं च—'त्यौत्यौ मणिमाला छिन्ना गुहवक्त्रैः तगणयगणतगणयगणा गुहः कार्तिकेयस्तस्य वक्त्राणि मुखानि षट्तैः षड्भिरक्षरैश्छिन्ना यतिसहिता । लग्ने गुरुर्यदि स्यात् अथवा लाभे एकादशस्थाने कर्मणि दशमस्थाने पापग्रहाः स्युस्तदा राज्यप्राप्तिर्भवेत् । उक्तं च वराहेण—'होराश्रिते देवगुरौ क्रूरग्रहैः कर्मणि लाभगैर्वा । कृत्वा रिपूणां क्षयमक्षताङ्गः क्षयं क्षितिशोऽक्षयकोशमेति ॥' इति । क्षितीशो राजा रिपूणां क्षयं नाशं कृत्वाऽक्षताङ्गः क्षतरहितशरीरः सन् अक्षयकोशमक्षीणकोशं क्षयं स्वगृहमेति आगच्छतीत्यर्थः । अथवा द्यूने सप्तमे बुधशुक्रौ स्यातां चन्द्रश्च हिबुके चतुर्थ-स्थाने स्यादेवंविधे योगे सर्वैर्मुनिवर्यैस्तद्वत्फलमुक्तं राज्याधिगमः स्यात् । तथा च श्रीपतिः—'शशिनि चतुर्थे सविदि सितेऽस्ते जयति गतोरीह्नरिरिव युद्धे' इति । वराहोऽपि—'शशिनि चतुर्थ-गृहं समुपेते बुधसहितेऽस्तगते भृगुपुत्रे । गमनमवाप्य पतिर्मनुजानां जयति रिपून्समरेण विनैव ॥' इति ॥ ७२ ॥

पीताम्बरा—अन्य योग यात्रा लग्न—गुरु लग्न में, १० या ११ वें पाप ग्रह जिस लग्न से हों उस लग्न की यात्रा से राज्य प्राप्ति होती है । अथवा सप्तम में बुध-शुक्र चतुर्थ में चन्द्रमा हो तो ऐसे योग की यात्रा से सभी मुनियों के मतों से राज्याधिगम (राज्य प्राप्ति) होती है ॥ ७२ ॥

अन्ययोगत्रयमाह—

रिपुतनुनिधने शुक्रजीवेन्दवो ह्यथ बुध-भृगुजौ तुर्यगेहस्थितौ ।
मदनभवनगश्चन्द्रमा वाम्बुगः शशिसुतभृगुजान्तर्गतश्चन्द्रमाः ॥ ७३ ॥

पीयूषधारा—रिपुतनुनिधने इति । अस्यातिजगत्यां चन्द्रिकाछन्दः । यल्लक्षणं च—'ननततगुरुभिश्चन्द्रिकाः चतुर्भिः, सप्तभिः षड्भिश्चाक्षरैर्यतिः' । अत्र मानसाम्याद् ग्रहसाम्याच्च यथासंख्यं ज्ञेयम् । यथा रिपौ षष्ठे शुक्रः तनौ जीवः निधने अष्टमे इन्दुश्चन्द्रः एवंविधे विशिष्टे योगे राज्ञो विजयः स्यादित्यर्थः । यदाह वराहः—'गुरौ विलग्ने भृगुजेऽरिसंस्थे चन्द्रेऽष्टमे हन्ति गतोऽरिसेनाम् । वृष्टिं यथा दक्षिणमार्गचारी वृद्धो यथा ह्रस्यतनुश्च शुक्रः ॥' इति । अयं प्रथमो योगः ।

अथ द्वितीयो योगः—

बुधभृगुजौ तुर्यगेहं चतुर्थस्थानं तत्र स्थितौ चेत्स्यातां चन्द्रमा मदनभवनगः सप्तमस्थानस्थितश्चेत्स्यात्तदैवंविधेऽपि योगे राज्ञो विजयः यदाह वराहः—'सितेन्दुजौ चतुर्थगौ निशाकरश्च सप्तमे । यदा तदा गतो नृपः प्रशास्त्यरीन्विनारणम् ॥' इति ।

अथ तृतीयो योगः—

अथवा चन्द्रमा अम्बुगश्चतुर्थः सन् शशिसुतभृगुजयोर्बुधशुक्रयोरन्तर्गतो मध्यवर्ती स्यात् एवंविधे योगे गन्तू राज्ञो विजय एव । यदाह वराहः—'बुधभार्गवमध्यगते हिमगौ हिबुकोपगते च बुधः प्रवसेत् । पुरुहूतदिशं यदि वान्तकृतः पुरुहूतयमप्रतिभो भवति ॥' इति । ननु चन्द्रस्य बुधभार्गवमध्यवर्तित्वं किं भिन्नराशिस्थितत्वे सत्युतैकराशिस्थितत्वे सति विवक्षितम् । तत्र भिन्नराशिकृतमध्यवर्तित्वे विवक्षिते सत्ययमर्थः स्यात् । बुधभार्गवयोरन्यतरस्तृतीयस्थाने परः पञ्चमे चन्द्रश्चतुर्थ इति एकराशिस्थितत्वे त्वंशकृतं पौर्वापर्यम् । चतुर्थे स्थाने बुधशुक्रौ वा स्वल्पांशैःस्यात् तयोरन्यतरोऽतिबह्वंशैस्तत्रैव स्थाने चन्द्रस्तत्रांशैर्मध्यवर्ती स्यात् । यथा बुधो राश्यादिः ३।५।१० चन्द्रः ३।१५।२० शुक्रः ३।२५।३० एवं पक्षद्वयासम्भवे किं युक्तमिति । उच्यते । यद्यपि वराहवाक्ये सन्देहः तथापि बादरायणवाक्यादेकराशिव्यवधानकृतमेव मध्यवर्तित्वं विवक्षितम् । यदाह बादरायणः–'पुत्राम्बुश्चिक्यगतैः क्रमेण दुश्चिक्यतोयात्मजसंस्थितैर्वा । बुधेन्दुशुक्रैर्यमशक्रनाथकाष्ठां प्रयातस्य जयः प्रदिष्टः ॥' इति । काष्ठां दिशम् । एतच्चोपलक्षणम् । तेन लग्नस्थचन्द्रः पार्श्ववर्तिस्थानद्वयवर्तिनोर्बुधशुक्रयोर्मध्यवर्ती चेत्स्यात्तदा सोऽपि राज्ञो विजयद इति । यदाह गुरुः—'चन्द्रे सितज्ञयोर्मध्ये हिबुके लग्नगोऽपि वा । प्रयाता श्रियमाप्नोति जित्वा शत्रून्महीमिमाम्' इति ॥ ७३ ॥

पीताम्बरा—अन्य तीन प्रकार की योग यात्रा—लग्न से छठे शुक्र, लग्न में बृहस्पति, अष्टम में चन्द्रमा, हो तो प्रजा और राजा दोनों प्रकार के यात्रियों की विजय होती है ।

दूसरा विजय योग—बुध शुक्र चतुर्थ में, चन्द्रमा सप्तम में हो तो यात्रा करने वाले राजा या व्यक्ति की विजय होती है ।

तीसरा योग—बुध-शुक्र के मध्यगत चन्द्रमा चतुर्थ में हो, तो भी राजा की विजय होती है । कल्पना कीजिये मेष लग्न से चतुर्थ स्थानस्थ कर्क राशि में बुध के ५ अंश, कर्कस्थ

चन्द्रमा के १५ अंश और कर्क राशिस्थ शुक्र के २० अंशों की स्थितियों में चन्द्रमा, बुध और शुक्र के मध्यगत होगा। अथवा बुध तीसरे, चन्द्रमा चौथे और शुक्र पाँचवें हो तो भी चन्द्रमा बुध, शुक्र के मध्यवर्ती होगा ॥ ७३ ॥

अन्यद्योगयात्रालग्नद्वयमाह—

सितजीवभौमबुधभानुतनूजास्तनुमन्मथारिहिबुकत्रिगृहे चेत्।
क्रमतोऽरिसोदरखशात्रवहोराहिबुकायगैर्गुरुदिनेऽखिलखेटैः ॥ ७४ ॥

पीयूषधारा—सितजीवेति। अस्य गाथाछन्दः प्राग्वत्स्वमते ग्रन्थान्तरे च। लग्ने शुक्रः स्यात्, सप्तमे जीवः, षष्ठे भौमः, चतुर्थे बुधः, तृतीये शनिः, एवंविधे विशिष्टे योगे राज्ञो विजय एव। यदाह वराहः—'यस्योदयास्तारि चतुस्त्रिसंस्थाः शुक्राङ्गिरोङ्गारकसौम्यसौराः। द्विषद्बलस्त्रीवदनानि तस्य कान्तानि कान्तान्नविलोकयन्ति' इति।

नारदोऽपि—

'शुक्रार्यज्ञार्किभौमेषु लग्नास्ताम्बुत्रिशत्रुषु। गतस्याग्रे ह्यरिचमूरग्नौ लाक्षेव लीयते' इति।

श्रीपतिरपि—

यमज्ञशुक्रेज्यमहीसुतेषु त्रिबन्धुलग्नास्तरिपुस्थितेषु। विलीयते वैरिचमूरणाग्रे लाक्षेव वह्नौ नृपतेर्गतस्य' इति। अयमेको योगः, अथान्यः—गुरुदिने बृहस्पतिवासरे अखिलखेटैः समस्तग्रहैः सूर्यादिभिः सप्तभिः क्रमतोऽर्थादिस्थानस्थितैः सद्भिरुपलक्षिते सति यथा षष्ठे सूर्यस्तृतीये चन्द्रः दशमे मङ्गलः षष्ठे बुधः लग्ने गुरुः चतुर्थे शुक्रः एकादशे शनिरिति। एवंविधे योगे राज्ञो विजय एव। यदाह वराहः—सूर्यादयोरिसहजाम्बरशत्रुलग्नबन्ध्वायगाः सुरगुरोर्दिवसश्च यस्य। यागेऽरिसैन्यमुपगच्छति तस्य नाशं मीमांसकश्रवणकेष्विव तीर्थपुण्यम्' इति। मीमांसाविचारस्तन्मात्रनिष्ठा मीमांसका न तु वेदान्तविद एवंविधा ये श्रमणका बौद्धसंन्यासिनस्तेषां तीर्थेषु यथा वैदिकानां पुण्यनाशः ॥ ७४ ॥

पीताम्बरा—अन्य दो प्रकार की राजयोग यात्रा—लग्न में शुक्र, सप्तम में बृहस्पति, षष्ठस्थ भौम, चतुर्थ में बुध और तृतीय में शनि हो, ऐसे लग्न की ग्रहस्थिति की यात्रा विजयप्रद होती है।

अथवा, बृहस्पतिवार के दिन जिन लग्न से सूर्यादिक सातों ग्रह सू. चं. मं. बु. बृ. शु. और शनि क्रमशः ६, ३, १०, ६, १, ४, ११ स्थानों में हों उस लग्न की यात्रा शुभाय और विजयाय होती है ॥ ७४ ॥

अन्यद्योगयात्रालग्नद्वयमाह—

सहजे कुजो निधनगश्च भार्गवो मदने बुधो रविररौ तनौ गुरुः।
अथ चेत्स्युरीज्यसितभानवो जलत्रिगता हि सौरिरुधिरौ रिपुस्थितौ ॥७५॥

पीयूषधारा—सहजे इति। अस्यातिजगत्यां मञ्जुभाषिणीछन्दः। तल्लक्षणमुक्तं प्राक्। अथ तृतीये मङ्गलः स्यात् अष्टमे शुक्रः सप्तमे बुधः षष्ठे सूर्यः लग्ने गुरुः एवंविधे योगे गन्तू राज्ञो विजय एव। यदाह वराहः—त्रिनिधनतनुसप्तमारिसंस्थाः कुजसितजीवबुधा रविश्च यस्य। खलजनजनितेव लोकयात्रा न भवति तस्य चिराय शत्रुसेना' इति। अयमेको योगः। अथेति—

योगान्तरमुच्यते । इज्यसितभानवो बृहस्पतिशुक्रसूर्याः जलत्रिगताश्चतुर्थतृतीयस्थानगताश्चेत्स्युः सौरिरुधिरौ शनिमङ्गलौ रिपुस्थितौ भवेताम् एवंविधे विशिष्टे योगे हि निश्चितं राज्ञो जयः स्यात् । यदाह वराहः—'कुजरविजयुतेरिभे गतानां जलसहजोपगतैः सितार्कजीवैः । रिपुबलमुपयाति नाशमाशु श्रुतमधनस्य कुटुम्बचिन्तयेव' इति ॥ ७५ ॥

पीताम्बरा—अन्य दो प्रकार के राजयात्रा योग—जिन लग्न से मंगल तीसरे, अष्टम शुक्र, सप्तम में बुध, षष्ठ में सूर्य और लग्न में बृहस्पति हो उस लग्न की यात्रा से राजा और व्यक्ति की विजय होती है ।

तथा बृहस्पति, शुक्र, सूर्य तृतीय-चतुर्थ स्थानों में हों और शनि-मंगल छठे स्थान स्थित हों तो ऐसे विशिष्ट योग में यात्रा करने में यात्रा करने वाले राजा और साधारण व्यक्ति की यात्रा अवश्य विजयप्रद होती है ॥ ७५ ॥

अथ नामविशेषपुरस्कारेण योगयात्रालग्नान्याह—

एको ज्ञेज्यसितेषु पञ्चमतपःकेन्द्रेषु योगस्तथा
द्वौ चेत्तेष्वधियोग एषु सकला योगाधियोगः स्मृतः ।
योगे क्षेममथाधियोगगमने क्षेमं रिपूणां वधं
चाथो क्षेमयशोऽवनीश्च लभते योगाधियोगे व्रजन् ॥ ७६ ॥

पीयूषधारा—एक इति । अस्यातिधृत्यां शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । तल्लक्षणं च—'सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' । 'सूर्याश्वैर्द्वादशभिः सप्तभिश्चाक्षरैर्यतिः ।

योगाख्यो योगः—

ज्ञेज्यसितेषु बुधबृहस्पतिशुक्रेष्वेकोऽपि बुधो वा गुरुर्वा शुक्रो वा चेत्पञ्चमतपःकेन्द्रेषु स्यात् । पञ्चमे वा स्थाने तपसि नवमे वा केन्द्रे प्रथमचतुर्थसप्तमदशमानामन्यतमे स्थाने वा स्यात् तदा योगाख्यो योगः ।

अधियोगाख्यो योगः—

तथा तेषु ज्ञेज्यशुक्रेषु द्वौ बुधशुक्रौ वा चेत्तदा—अधियोगः ।

योगाधियोगाख्यो योगः—

तथा तेषु ज्ञेज्यशुक्रेषु सर्वेऽपि चेत्पञ्चमतपःकेन्द्राणामन्यतमस्थानभेदेन स्थानैक्येन वा स्थिताश्चेत्स्युस्तदा योगाधियोगाख्यो योगः ।

योगाधियोगयोगाधियोगेषु यात्रायां फलानि—

फलमाह—योग इति । योगे व्रजन् राजा क्षेमं कुशलं लभते । कुशलेन गतागतं करोतीत्यर्थः । अधियोगे राजा व्रजन् क्षेमं तथा रिपूणां शत्रूणां वधं च लभते । योगाधियोगेन व्रजन् राजा क्षेमयशोऽवनीश्चकाराच्छत्रुवधं च लभते । यदाह नारदः—'केन्द्रत्रिकोणेष्वेकेन योगः शुक्रज्ञसूरिषु । अधियोगः स चेद्द्वाभ्यां त्रिभिर्योगाधियोगकः ॥ योगे यियासतां क्षेममधियोगो जयावहः । योगाधियोगे क्षेमायुर्विजयोर्थविभूतयः' इति । वराहोऽपि—'एकेन वा बुधबृहस्पतिभार्गवाणां योगो भवेन्नवमपञ्चम-

कण्टकेषु । द्वाभ्यां वदन्ति मुनयस्त्वधियोगमेषां योगाधियोगमपरे त्रिभिरुद्दिशन्ति ॥ योगेन ये नृपतयोऽरिपुरं व्रजन्ति क्षेमेण ते गमनमागमनं च कुर्युः । क्षेमं यशो रिपुविनाशमथाधियोगे योगाधियोगगमनेन जयेद्धरित्रीम्' इति ।

योगाधियोगयोर्भेदेषु योगभेदाः—

अत्र योगस्याधियोगस्य च भेदविचारः । तत्र योगस्याष्टादश भेदाः तथा हि त्रयो ग्रहाः षट् स्थानानि तत्रैकस्य तु तन्वादिस्थान् षडङ्कस्थित्या षड्भेदाः । एवं गुरोः षट् शुक्रस्यापि षट् । एवं योगेऽष्टादशभेदाः अधियोगस्याष्टोत्तरशतं भेदाः । यथा ज्ञेज्यशुक्राणा द्वयोर्द्वयोर्योगे त्रयो भेदाः । बुधशुक्रौ बुधगुरू तत्र बुधगुर्वोरेकैकस्थानस्थित्वा षट्भेदाः । स्थानभेदे तु बुधः प्रथमे स्थाने गुरुर्द्वितीयादिषु पञ्चसु स्थानेसु स्थितस्तदा पञ्च । एवं गुरुः प्रथमे स्थाने बुधो द्वितीयादिषु पञ्चसु तत्रापि पञ्चैव । अथ बुधो द्वितीये गुरुस्तृतीयादिषु चतुर्षु तदा चत्वारो भेदाः एवं वैपरीत्येऽपि द्वयोश्चत्वारः । तथा बुधस्तृतीये गुरुश्चतुर्थादिषु तदा त्रयः । एवं वैपरीत्येऽपि त्रयः । तथा बुधः चतुर्थे गुरुः पञ्चमे षष्ठे वा तदा द्वौ भेदौ । एवं वैपरीत्येऽपि द्वौ । तथा बुधः पञ्चमे गुरुः षष्ठे तदैको भेदः । एवं द्वौ भेदौ । एवं वैपरीत्येऽप्येकः । एवं बुधगुर्वोः सर्वे मिलिताः षट्त्रिंशत् भेदाः स्युः । अनेनैव प्रकारेण बुधशुक्रयोः षड्त्रिंशद्भेदाः । एवं गुरुशुक्रयोरपि तावन्त एव मिलित्वाऽष्टोत्तरशतं भेदाः भवेयुः ।

योगाधियोगभेदाः—

तथाहि ज्ञेज्यशुक्राणां संघेनैकस्थानस्थित्या षट् भेदाः भवन्ति ।

स्थानभेदेन योगभेदाः—

स्थानभेदेनोच्यन्ते भेदास्तत्र द्वयोः समुदाय एको भिन्नश्चैवं ग्रहाणां त्रयो भेदाः स्युः । यथा हि सङ्घः प्रथमस्थाने एको द्वितीयादिषु तथापि पञ्चैव । द्विग्रहसङ्घो द्वितीये एकस्तृतीयादिषु चतुर्षु चत्वारो भेदाः एवं भेदवैपरीत्येऽपि चत्वारः । तथा द्विग्रहसङ्घस्तृतीये एकश्चतुर्थादिषु तदा त्रयः तथा द्विग्रहसङ्घश्चतुर्थे एकः पञ्चमे षष्ठे वा तदा द्वौ भेदौ एवं वैपरीत्येऽपि द्वौ । एवं बुधगुरुसमुदायस्य शुक्रसहितस्य त्रिंशद्भेदाः । एवमेव बुधशुक्रसङ्घस्य गुरुसहितस्य त्रिंशत् ३० । तथा गुरुशुक्रसङ्घस्य बुधसहितस्य तावन्त एव । सर्वभेदैक्यम् ॥९०॥

त्रिग्रहाणां स्थानत्रयाक्रान्त्या योगभेदाः—

अथ त्रयाणां ग्रहाणां स्थानत्रयाक्रान्तत्वेन भेदाः उच्यते । तत्र बुधगुरुशुक्राणामन्योन्यपरिवर्त्तनात्षड्भेदा भवन्ति । यथा एतदुत्पत्तिप्रकारो भास्कराचार्येण—अङ्कपाशगणिते 'स्थानान्तमेकादिचयाङ्कघात' इत्यादिनाभ्यधायि । तत्र त्रिभिर्ग्रहैः षण्णां स्थानानां मध्ये निरन्तरस्थानत्रयाक्रान्तत्वेन चत्वारो भेदाः । एवं पञ्चभिरपि भेदैरित्येवं चत्वारो जाताः सर्वे चतुर्विंशतिः ॥२४॥

बु.	बृ.	शु.	बु.	बृ.	शु.	शु.	बृ.
बु.	शु.	बृ.	बु.	बु.	बु.	बु.	शु
बृ.	शु.	बु.	बृ.	शु.	शु.	बृ.	बु.

योगलालाटिकयोः प्राबल्यदौर्बल्यविचारः—

अत्रायं विचारः—बुधश्चतुर्थे उत्तरस्यां दिशि लालाटिकः केन्द्रगतत्वाद्योगकर्ता च । तत्र किं योगः प्रबलः उत लालाटिक इति तत्र सामान्यविशेषभावेन एव प्रबलः । एवं सप्तमश्च

शुक्रो लग्नभङ्गी प्रबल एव तथैवाधियोगे योगाधियोगे चोक्तहेतुः । तथैव बुधशुक्रयोर्लालाटिकलग्नभङ्गिदोषौ प्रबलाविति बालानामप्येतत्सुबोधम् । अत्र वसिष्ठकश्यपनारदाद्यृषिभिर्वराहादिभिश्च भूयांसि योगयात्रालग्नान्युक्तानि तानि तद्वदन्येभ्य एवावधार्याणि ग्रन्थाधिक्यभयादत्र ग्रन्थकृता नोक्तानि ॥७६॥

पीताम्बरा—यात्रा में योग, अधियोग और योगाधियोग—बुध बृहस्पति और शुक्र इन तीनों में कोई एक ग्रह (बुध अथवा गुरु अथवा शुक्र) केन्द्र त्रिकोण (१।४।७।१०।९।५) में हो तो योग नामक यात्रा योग होता है।

तथा उक्त तीन ग्रहों में दो ही ग्रह बुध गुरु या बुध शुक्र केन्द्र त्रिकोण में हों तो अधियोग नामक यात्रा योग होता है।

तथा उक्त बुध बहस्पति और शुक्र तीनों स्थान में या स्थानैक्य से पञ्चम-नवम प्रथम चतुर्थ सप्तम दशम-स्थानों में हों तो योगाधियोग नामक यात्रा योग होता है।

योग नामक यात्रा योग में यात्रा करने से राजा क्षेम (कुशल) प्राप्ति करता है अर्थात् कुशलपूर्वक गमन और घर में आगमन करता है।

अधियोग नामक यात्रा योग में यात्रा करने से शत्रुबध के साथ कुशल पूर्वक गमनागमन करता है।

योगाधियोग नामक यात्रा योग मे यात्रा करने से शत्रुबध और यश के साथ पृथ्वी लाभ पूर्वक कुशल से गमनागमन करता है।

बुध, बृहस्पति, शुक्र की केन्द्र त्रिकोण स्थितियों से १०८ प्रकार की स्थितियाँ होती हैं। जैसे—(१) बुध, शुक्र, बृहस्पति लग्न में। (२) बुध, शुक्र लग्न में बृहस्पति चतुर्थ, (३) बुध, शुक्र लग्न में बृहस्पति पञ्चम, (४) बुध, शुक्र लग्न में बृहस्पति सप्तम, (५) बुध, शुक्र लग्न में बृहस्पति नवम, (६) बुध, शुक्र लग्न में बृहस्पति दशम, (७) बुध, शुक्र लग्न में बुध द्वितीय, शुक्र तृतीय इत्यादि से ग्रह तीन और स्थान ६ (१।४।७।१०।९।५) हैं अतः एक-एक स्थान स्थिति से योग से गुरु के ६ भेद, ६ शुक्र के और ६ बुध के कुल १८ भेद होंगे। और दो-दो ग्रहों की स्थिति वश (१८ × ६) १०८ भेद...... इस प्रकार पीयूष ने भेदों की नियत स्थितियाँ स्पष्ट की हैं। प्रकृत में जो विशेष आवश्यक नहीं हैं।

पहिले के श्लोकों में उत्तर दिशा गमन के लिए चतुर्थ बुध लालाटिक होने से तथा लग्न से सप्तम शुक्र होने से यात्रा में विघ्न बताये गये हैं किन्तु यहाँ पर योग-योगाधियोगों में चतुर्थ बुध और सप्तम शुक्र, विशेष शुभ फलद बताए गये हैं। तो सहज शंका होती है कि किस पक्ष को समीचीन माना जाय ? सामान्य वचन का विशेष वचन बाधक होता है अतः योग योगाधियोगादि प्रबल होने से लालाटिकादि दोष अमान्य हो जाने चाहिये ॥७६॥

अथ विजयदशमीसंज्ञकं सिद्धमुहूर्त्तमाह—

इषमासि सिता दशमी विजया शुभकर्मसु सिद्धिकरी कथिता।
श्रवणर्क्षयुता सुतरां शुभदा नृपतेस्तु गमे जयसन्धिकरी ॥७७॥

पीयूषधारा—इषमासीति—अस्य जगत्यां तोटकाख्यं छन्दः। तल्लक्षणम् यथा 'इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितं'। स्पष्टार्थं पद्यम्। यदाह नारदः—'बलक्षपक्षदशमी आश्विने विजयाभिधा। विजयस्तत्र यातॄणां सन्धिर्वा न पराजयः' इति। कश्यपोऽपि—'मासीषे शुक्लदशमी सर्वदा विजयाभिधा। जयप्रदा सा यातॄणां सन्धिर्वा न पराजयः' इति।

विजयदशमीसिद्धमुहूर्तेन श्रवणयोगेऽतिप्राशस्त्यम्—

वसिष्ठेन तु श्रवणसाहित्येऽतिप्राशस्त्यमुक्तम्—'श्रवणर्क्षं यदा काले सा तिथिर्विजयाभिधा। विजया दशमी तत्र सर्वकार्येष्वनिन्दिता। यात्रायां जयदा राज्ञां सन्धि वापि प्रयच्छति' इति। आश्वयुक्शुक्ले इत्यनुवर्तते। काले कालस्वामिकायां तिथौ दशम्याम्॥ ७७॥

पीताम्बरा—सिद्ध मुहूर्त विजयादशमी—आश्विन मास शुक्लपक्ष की दशमी का नाम विजयादशमी है। विजयादशमी सभी शुभ कार्यों के लिए सिद्धि देने वाली होती है। यदि विजयादशमी के दिन श्रवण नक्षत्र भी हो तो ऐसी विजयादशमी विशेष शुभफलद होती है। राजयात्रा के लिए या सर्वसाधारण की यात्रा के लिए विजयादशमी जयप्रद और परस्पर मैत्री (सन्धिकारक) कारक होती है॥ ७७॥

अथैवं महतायासेन विचारिते पञ्चाङ्गशुद्धिसहिते लग्ने सत्यपि मनोविशुद्धौ वक्ष्यमाणशकुनाद्यावश्यकत्वं तत्रापि प्रबलदुर्बलभावं च वसन्ततिलकाछन्दसाह—

चेतोनिमित्तशकुनैरतिसुप्रशस्तैर्ज्ञात्वा विलग्नबलमुर्व्यधिपः प्रयाति।
सिद्धिर्भवेदथ पुनः शकुनादितोऽपि चेतोविशुद्धिरधिका न च तां विनेयात्॥७८॥

पीयूषधारा—चेत इति—अथशब्दो मङ्गलार्थ आनन्तर्यार्थश्च। चेतोऽन्तःकरणम्। निमित्तमङ्गस्फुरणादि। शकुनानि वक्ष्यमाणानि। एतैः खलु निश्चयेन सुप्रशस्तैः सद्भिः तथा समीचीनं विलग्नबलमपि ज्ञात्वा उर्व्यधिपो राजा प्रयाति तथा सिद्धिर्वाञ्छितकार्यसिद्धिर्भवति। यदाह नारदः—'मनोनिमित्तशकुनैर्लग्नं लब्ध्वा रिपोः पुरम्। विजिगीषुर्यो व्रजति विजयश्रीस्तमेत्यलम्' इति। निमित्तमङ्गस्फुरणादि। श्रीपतिरपि—'शकुननिमित्तमनोभिरनिंद्यैरुदयविशुद्धिमिह प्रतिपद्य। रिपुविषयं प्रति यो विजिगीषुर्व्रजति तमेत्यचिराद्विजयश्रीः' इति।

अपशकुने यात्रा न कार्या (लग्नादिशुद्धावपि)—

यदा तु लग्नादिबले सत्यपि निद्यानि चेच्छकुनादीनि स्युस्तदा यात्रा निषिद्धैव। यदाह वसिष्ठः—अशुभानि निमित्तानि उत्पातशकुनानि च। यात्राकाले नृणां तेषां निधनायाधनाय वा' इति।

मनोजयाभावे लग्नशुद्धिसुशकुनयोः सतोर्यात्रा न कार्या—

यदा तु दैवाच्छकुनलग्नादीन्यनिंद्यानि लब्धानि मनोविशुद्धिश्च नास्त्येव तत्र कस्य प्राबल्यमित्यतआह—अधिकेति। शकुनादितः सकाशाच्चेतोविशुद्धिरधिका। तां चेतोविशुद्धि विना नेयात् न गच्छेत्। यदाह कश्यपः—'निमित्तशकुनादिभ्यप्रधानो हि मनोजयः। तस्माद्वियासतां नृणां फलसिद्धिर्मनोजयात्' इति। श्रीपतिश्च—'निमित्तराशिरेकतो नृणां मनस्तथैकतः। अथो यियासतां बुधैर्मनोविशुद्धिरिष्यते' इति॥ ७८॥

पीताम्बरा—यात्रा समय शकुनादि और चित्त की शुद्धि से—यात्रा के समय अन्तःकरण की शुद्धि, और अंगस्फुरणादि शुभ शकुन से यात्रा उत्तम शुभफलद होती है। इसके साथ-साथ लग्नबल विचार के साथ की जाने वाली यात्रा से राजा या व्यक्ति की यात्रा सिद्धिप्रद होती है। शुभशकुनादिकों से भी यात्रा समय मन की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। अतः मन की शुद्धि जब तक न हो तब तक यात्रा नहीं करनी चाहिये। यात्रा समय अपशकुन होने पर लग्नादि बल होते हुए भी यात्रा नही करनी चाहिये ॥७८॥

अथ शुभसूचकसकलपदार्थसमवायेऽपि यात्रायामवश्यनिषिद्धनिमित्तान्याह—

व्रतबन्धनदैवतप्रतिष्ठाकरपीडोत्सवसूतकासमाप्तौ।
न कदापि चलेदकालविद्युद्घनवर्षातुहिनेऽपि सप्तरात्रम् ॥ ७९ ॥

पीयूषधारा—व्रतबन्धेति—अस्य विषमच्छन्दसि वसन्तमालिकाछन्दः। तल्लक्षणं च—'विषमे ससजा गुरू समे चेत्समरा यश्च वसन्तमालिका सा' व्रतबन्धनं यज्ञोपवीतम्, देवताप्रसिद्धा, करपीडा विवाहः, उत्सवो होलिकादिः। सूतकं द्विविधं—जननसूतकं मरणसूतक च। एतेषा पदार्थानां शास्त्रोक्तयावद्दिनसमाप्यानामसमाप्तौ समाप्तिं विना कदापि नैव चलेद्गच्छेत्। यदाह नारदः—उत्सवोपनयोद्वाहप्रतिष्ठाशौचसूतके। असमाप्ते न कुर्वीत यात्रां तत्र जिजीविषुः' इति।

अकालविद्युदादिषु उत्पातत्रयेऽपि यात्रादिकं सप्तदिनेषु न कार्यम्—

अकालेति। विद्युत्प्रसिद्धा, घनो घनगर्जितम्, वर्षा वृष्टिः तुहिनं नीहारः' एषु पदार्थेष्वकालजेषु सत्सु सप्तरात्रं दिवससप्तकं न चलेत्। यदाह राजमार्तण्डः—'पौषादिचतुरो मासान् प्राप्ता वृष्टिरकालजा। व्रतं यात्रादिकं चैव वर्जयेत्सप्तवासरान् ॥' श्रीपतिः—वृष्टिरकालप्रभवा चतुर्षु मासेषु पौषपूर्वेषु। आसप्ताहं त्याज्यं व्रतं च यात्रादिकं तत्र' इति। नारदोऽपि—'अकालजेषु नृपतिर्विद्युद्गर्जितवृष्टिषु। उत्पातेषु त्रिविधेषु सप्तरात्रं न तु व्रजेत्' इति। त्रिविधत्वं दिव्यान्तरिक्षभौमभेदेन। यदाह श्रीपतिः—सौदामिनीवर्षणवर्जितेषु नाकालजेषु प्रवसेन्नरेन्द्रः। आसप्तरात्राद्ध्रुवमद्भुतेषु दिव्यान्तरिक्षक्षितिजेषु चैवम्' इति। ग्रन्थकर्त्रात्रोत्पातग्रहणं न कृतम् 'उत्पातग्रहतोद्ग्रहहानि' इति शुभाशुभप्रकरणेऽभिहितत्वात्।

धूमकेतूत्पाते तु यावद्दर्शनं यात्रानिषेधः—

अत्रोत्पाताः केतुव्यतिरिक्ता द्रष्टव्याः। केतौ तु यावद्दर्शनं गमननिषेधः। यदाह ऋषिपुत्रः—'यावदभ्युदितः केतुरस्तमेवोपगच्छति। तावद्राजा न गच्छेत निवर्तेत गतोऽन्यथा' इति।

अकालविद्युदादिषु यात्रादौ कालसङ्कोचे मतान्तरम्—

अत्र श्रीपतिवाक्ये 'सौदामिनी' इत्यादिषु तत्कालिक एव निषेधः। आसप्तरात्रादिति तूत्तरार्द्धपठितेषूत्पातेष्वेव सम्बध्यत इत्याहुः। यदाह वसिष्ठः—'प्रयाणसमये यस्य विद्युन्नीहारवृष्टयः। अकालजा भवन्त्येते तदा भङ्गकरा नृणाम्, इति। ननु देहलीदीपन्यायेनात्र पूर्वत्रापरत्र वा सम्बन्धः स्यान्नोभयत्र। न चावृत्त्या सेत्स्यतीति। न चोभयत्राप्यासप्तरात्रादिति सम्बन्ध इति वाच्यम्, गौरवापत्तेः। कथम्। 'सकृदुच्चरितः शब्दः सकृदर्थप्रत्यायकः' इति न्यायेनैकत्र पूर्वत्र परत्र वा सम्बन्धः स्यान्नोभयत्र। न चावृत्त्या सेत्स्यतीति वाच्यम्, आवृत्तौ प्रमाणाभावात्। अत्रोच्यते। आसप्तरात्रादित्युभयत्रापि सम्बध्यते। ध्रुवमद्भुतेषु दिव्यान्तरिक्षक्षितिजेषु

चैवम्' इति समुच्चयद्योतकस्य चकारस्य स्पष्टमनुवृत्तिसूचकस्य चैवमित्यत्र करणात् । अत एव नारदोऽपि—'अकालजेषु नृपतिर्विद्युन्नीहारवृष्टिषु उत्पातेषु त्रिविधेषु सप्तरात्रं न तु व्रजेत्' इति दोषानुवादपूर्वकं 'सप्तरात्रं न तु व्रजेत्' इति । 'प्रयाणसमये यस्य' इति वसिष्ठवाक्यं प्रयाणदिवसोत्पन्नस्य विद्युदादेर्दोषातिशयसूचनार्थम् तेन तस्मिन् दिने नैव गच्छेदित्यर्थः । वृष्ट्यर्थं स्वयमेवाग्रे वक्ष्यति 'यदिमास्सु' इति ।।७९।।

पीताम्बरा—यात्रा में निषिद्ध समय—अपने परिवार में, यज्ञोपवीत, देवता प्रतिष्ठा, विवाह, होलिकादि उत्सव और जननमरणादिक सूतक दैवात् आगये हों तो उक्त कार्यों की परिसमाप्ति तक यात्रा कदापि नहीं करनो चाहिये । इसी प्रकार असमय पर बिजली आदि गिरना, घन गर्जन, वृष्टि, पाला गिरना, इत्यादिक दुष्ट समयों में ७ दिन तक यात्रा वर्जित करनी चाहिये ।।७९।।

अथ राज्ञ एकदिनसाध्ये एकस्मान्नगरान्नगरान्तरगमने चिकीर्षिते दिक्छलरवाद्यभावं वंशस्थवृत्तेनाह—

महीपतेरेकदिने पुरात्पुरे यदा भवेतां गमनप्रवेशकौ ।
भवारशूलप्रतिशुक्रयोगिनीविचारयेन्नैव कदापि पण्डितः ॥ ८० ॥

पीयूषधारा—महीपतेरिति—यथा वाराणसीनगराच्चरणाद्रिगमनमेकदिनसाध्यम् । तद्वदन्यत्रापि महीपते राज्ञः पुरादेकस्मान्नगरात्पुरे नगरान्तरे एकदिने एव गमनप्रवेशकौ स्याताम् । कोऽर्थः । यस्मिन्नेव दिने एकस्मात्पुराद्गमनं तस्मिन् दिने एव च नगरान्तरे प्रवेशः । तत्र यथाकथञ्चित्पंचाङ्गशुद्धिमालोच्य नक्षत्रशूलं वारशूलं प्रतिशुक्रञ्च योगिन्यश्च एतान् दोषान् पण्डितः कदापि नैव विचारयेत् । उक्तं च भृगुणा—'एकस्मिन्नपि दिवसे यदि चेद्गमनं प्रवेशश्च । प्रतिशुक्रवारशूलं न चिन्तयेद्योगिनीपूर्वम् ।।' इति । यदा तु दिनभेदेन यात्राप्रवेशौ भवतस्तदा यात्रायां प्रतिशुक्रवारशूलादिविचारोऽस्त्येव ।।८०।।

पीताम्बरा—एक ही दिन में गमन प्रवेश पर विशेष आदेश—जैसे वाराणसी से विन्ध्याचल देवी दर्शन की यात्रा एक दिन साध्य है । इसी प्रकार अन्यत्र सर्वत्र एक दिन में एक नगर या ग्राम से यात्रा कर दूसरे नगर या ग्राम में प्रवेश हो जाता है तो यात्रा की ऐसी स्थिति में साधारणतया पञ्चाङ्ग शुद्धि समय देख कर, नक्षत्र वार प्रति शुक्र-योगिनी आदिकों पर विद्वान् के विचार अनावश्यक हैं । अर्थात् ऐसे अवसर पर दिक्शूलादिक विचारणीय नहीं होते ।।८०।।

अथैकदिनसाध्ये निर्गमनप्रवेशरूपे कार्ये चिकीर्षिते किं विचार्यमित्याशंक्योत्तरमार्यावृत्तेनाह—

यद्येकस्मिन्दिवसे महीपतेर्निर्गमप्रवेशौ स्तः ।
तर्हि विचार्यः सुधिया प्रवेशकालो न यात्रिकस्तत्र ॥ ८१ ॥

पीयूषधारा—यद्येकेति—स्पष्टार्थं पद्यम् । प्रवेशकालो गृहप्रवेशप्रकरणे वक्ष्यते । यात्रिको यात्रासम्बन्धी कालः । तत्र नगरान्नगरान्तरगमने । यदाह गर्गः—प्रवेशनिर्गमौ स्यातामेकस्मिन्नपि वासरे । तदा प्रावेशिकं चिन्त्यं बुधैर्नैव तु यात्रिकम्' इति । प्रावेशिकं वासरं यात्रिकं च वासरम् । 'वा पुंसि क्लीबे दिवसवासरौ' इति वासरशब्दस्य पुंनपुंसकत्वात्सामानाधिकरण्येन सम्बन्धः । अत्राहुः—एतत्पद्योपनिबन्धने प्राक्पद्योपनिबन्धनस्याजागलस्तनाय मानत्वमस्ति एककर्तृकत्वात् । भिन्नकर्तृके तु नायं दोषः, यथासम्मतिवाक्ययोः । अत्र समाधिः एकस्मिन्नेव

दिने यात्राप्रवेशकालयोः कियद्धटिकाकृतो विलम्बस्तिष्ठति । परं तु यात्रासमये भद्राव्यतीपातादिकं महादोषजातं विचार्य वा नवेति सन्देहः । यदि विचार्य तदा विशिष्य प्रोक्तं प्रतिशुक्राद्यपि । विचार्यम् । यदि न विचार्यं तदेदमपि न विचार्यम् । एवं सति भृगुवाक्यमनर्थकं स्यात् । ननु सामान्यविशेषवाक्यभावेन प्रतिशुक्रादिकं बाधकं भविष्यतीति चेन्न । एतत्प्रकरणपठितानां शुभाशुभप्रकरणत्वाद्दोषाणां नास्ति सामान्यविशेषभावः । अयं विचारो 'योगात्सिद्धिर्धरणिपतीनाम्' इति पद्यव्याख्यानेऽभिहितः तस्मात्प्रकरणद्वयपठिते दोषविचारे प्रसक्ते विना वचनं दोषत्यागोपादानविचारो न निर्णयपदवीमवगाहत इति प्राक्पद्योपनिबन्धः सार्थक इति ॥८१॥

पीताम्बरा—एक ही दिन में जहाँ गमन प्रवेश दोनों हों वहाँ प्रवेश मुहूर्त—यदि राजा या व्यक्ति का एक ही दिन में यात्रा और गन्तव्य नगर ग्राम में प्रवेश हो सकता है तो ज्योतिर्विद महोदय प्रवेश मुहूर्त का ही आदेश करते हैं ऐसी स्थिति पर यात्रा मुहूर्त विचारणीय नहीं होता ॥८१॥

अथ प्रयाणे त्रिनवमीदोषमनुष्टुभाह—

प्रवेशान्निर्गमं तस्मात्प्रवेशं नवमे तिथौ ।
नक्षत्रे च तथा वारे नैव कुर्यात्कदाचन ॥८२॥

पीयूषधारा—प्रवेशेति । त्रिविधा नवमी प्रयाणनवमी, प्रवेशनवमी, तिथिनवमी । तत्र गृहप्रवेशतिथितो नवमे तिथौ निर्गमं न कुर्यात् । इयं च प्रयाणनवमी । पुनश्च गमनदिवसान्नवमे तिथौ गृहप्रवेशं न कुर्यात् । इयं च प्रवेशनवमी । नवमी तिथिस्तु प्रसिद्धैव । यदाह वसिष्ठः—नवमी ज्ञेया त्रिविधा प्रवेशनवमी प्रयाणनवमदिनम् । निर्गमनतः प्रवेशात् प्रयाणनवमी नवमदिनं च । सततं नवमीत्रितयं यात्रायां प्राणहानिदं यातुः' इति । अत्र पद्ये तु नवमीदोषः प्रागुक्तत्वान्नोपनिबद्धः ननु प्रयाणनवम्यां तिथौ च नवम्यां यात्रा निषिद्धेति युक्तम् । प्रवेशनवम्यां तु वहिःस्थस्य पुंसो गृहप्रवेशनिषेधस्यैव युक्तत्वात्कथं पुनस्तस्य गृहाद्गमनसम्भवो युक्तः । अतो दोषाभिधानमपि न युक्तम् । उच्यते । यथा गृहान्निर्गतः पुमान् दैवात् शीघ्रमेव कृतकार्यः सन् सप्तमे अष्टमे वा तिथौ गृहं प्रविष्टः स चेत्पुनः कार्यनिपातप्रवेशतिथेः सकाशात्तृतीया वा तिथिः प्राङ्निर्गमतिथितो नवमीतिथिस्तस्यां तिथौ यात्रां नैव विदध्यादित्यर्थः ।

प्रयाणप्रवेशनवमीवन्नक्षत्रवारयोरप्यत्र दुष्टत्वम्—

नक्षत्रे च तथेति । तथा प्राङ्निर्गमतिथितो नवमीतिथिरित्येतत्तुल्येन प्रकारेण नक्षत्रे वारे वा कदाचन नैव कुर्यात् । अयमर्थः । यस्मिन्नक्षत्रे गृहप्रवेशः कृतस्ततो नवमे नक्षत्रे प्रयाणं न कार्यम् । यथा मृगे प्रवेशो हस्ते गमनम् । अत्र निर्गमनक्षत्रान्नवमे नक्षत्रे प्रवेशो न कार्यः । यथा हस्ते गमनमुत्तराषाढायां प्रवेशः । अत्रापि प्रागभिहितरीत्या यात्रापि निषिद्धा । एवं वारेऽपि ध्येयम् । यथा बुधवारे प्रवेशस्ततो नवमे दिवसे गुर्वाख्ये प्रयाणं न कार्यम् । गुरुदिवसाच्च नवमे शुक्राख्ये दिवसे प्रवेशोऽपि न कार्य इत्यर्थः । यदाह गर्गः—'प्रवेशान्निर्गमश्चैव निर्गमाच्च प्रवेशनम् । नवमे जातु नो कुर्याद्दिने वारे तिथाविति' ॥८२॥

पीताम्बरा—त्रिनवमी दोष—गृह प्रवेश तिथि से नवम तिथि में निर्गमन, (प्रयाणनवमी) तथा निर्गम तिथि से नवमी तिथि में (प्रवेश नवमी) प्रवेश नहीं होना चाहिये ।

निर्गम तिथि से नवमी तिथि में, नवम वार में, और नवम नक्षत्र में प्रवेश नहीं करना

चाहिये। जैसे बुधवार की यात्रा से नवम गुरुवार को गृह प्रवेश, या गुरुवार के प्रवेश के अनन्तर नवम वार शुक्रवार को यात्रा नहीं करनी चाहिये इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये ॥८२॥

अथ यात्रादिनीयं विधि शालिनीछन्दसाह—

अग्निं हुत्वा देवतां पूजयित्वा नत्वा विप्रानर्चयित्वा दिगीशम्।
दत्त्वा दानं ब्राह्मणेभ्यो दिगीशं ध्यात्वा चित्ते भूमिपालोऽधिगच्छेत् ॥८३॥

पीयूषधारा—अग्निमिति। स्पष्टार्थम्। यदाह नारदः—'हुताशनं तिलैर्हुत्वा पूजयेत्तु दिगीश्वरम्। तथा प्रणम्य भूदेवानामाशीर्वादैर्नृपो व्रजेत्' इति।

वसिष्ठोऽपि—

'दिगीश्वराकृतिं कृत्वा सुवर्णेन स्वयन्त्रकैः। स्वस्ववर्णैः स्वगन्धाद्यैर्धूपदीपैर्मनोरमैः॥ तद्वर्णवस्त्रनैवेद्यैर्भक्त्या सम्यक् प्रपूजयेत्। दिगीशं च सुसम्पूज्य तिलहोमं च कारयेत्॥ दैवज्ञाय ततो दद्यात्प्रतिमां भूषणान्विताम्। दैवान्गुरून्पितॄन्विप्रान्स्वस्तिवाचनपूर्वकम्॥ नत्वा तुष्टः प्रीतमना व्रजेन्मङ्गलनिःस्वनैः।' इति।

ग्रहयज्ञगुह्यकपूजादिकं यात्रादिनात्प्राक् त्रिसप्तदिनमध्ये—

अत्र यात्रादिनात्प्राक् सप्तदिनमध्ये गुह्यकपूजनमुक्तम्। त्र्यहे पूर्वं विजयस्नानमुक्तम्। विजयस्नानं ग्रहयज्ञः। सप्तदिवसमध्ये गुह्यकपूजा इति। तदेतद्वराहेण बृहद्यात्रायां महता ग्रन्थसन्दर्भेणाभिहितं तत्तत एवावधार्यम्। वसिष्ठादिभिस्तु दिगीश्वरध्यानान्यपि तत्तत्पूजायां पाठात्तत्रैव द्रष्टव्यानीति नास्माभिर्लिख्यन्ते। गमन समये ध्यानमिन्द्राय नमः अग्नये नमः इत्यादिनापि पूजा सम्भवति ॥८३॥

पीताम्बरा—यात्रा प्रारम्भ के पूर्व की विधि—यात्रा प्रारम्भ करने के पहिले राजा या व्यक्ति ने अग्नि में हवन कर, देवताओं का पूजन कर, ब्राह्मणों से नमस्कार पूर्वक आशीर्वाद लेकर, जिस दिशा की यात्रा करनी हो उस दिशा के अधिपति ग्रह का विशेष पूजन कर ब्राह्मणों को रत्न वस्त्र सुवर्णादिक दान से तृप्त कर, और गन्तव्य दिशा के अधीश का सम्यक् ध्यान कर, यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये ॥८३॥

अथ नक्षत्राणां दोहदाञ्छार्दूलविक्रीडिताभ्यामाह—

कुल्माषांस्तिलतण्डुलानपि तथा माषांश्च गव्यं दधि
त्वाज्यं दुग्धमथैणमांसमपरं तस्यैव रक्तं तथा
तद्वत्पायसमेव चाषपललं मार्गं च शाशं तथा
षाष्टिक्यं च प्रियङ्गवपूपमथवाचित्राण्डजान्सत्फलम् ॥८४॥
कौर्मं सारिकगौधिकं च पललं शाल्यं हविष्यं हया-
द्यृक्षे स्यात्कृसरान्नमुद्गमपि वा पिष्टं यवानां तथा।
मत्स्यान्नं खलु चित्रितान्नमथ वा दध्यन्नमेवं क्रमा-
द्भक्ष्याभक्ष्यमिदं विचार्य मतिमान्भक्षेत्तथाऽऽलोकयेत् ॥८५॥

पीयूषधारा—कुल्माषानिति । अत्र प्रथमपद्ये चतुर्थचरणे 'प्रियंग्वपूप' इत्यत्र छन्दोभङ्गोऽस्ति, स गणप्रक्षेपाकरणात् 'सत्यप्रेभ्रेह्रे वा' इति पिङ्गलसूत्रकारेण रेफसंयोगे च प्राग्वर्णस्य लघुत्वाभिधानात् । तथा च कालिदासः—'गृहीतप्रत्युद्गमनीय वस्तु' तद्वदत्रापिछन्दोभङ्गाभावः । सूत्रकारोच्चारणं मुखसुखार्थम् तेन प्रीत्यादावपि लघुत्वम् । अन्ये तु संयोगमात्रे परभूतमतीव्रप्रयत्नेनेत्याहुः । उक्तं च सरस्वतीकण्ठाभरणे 'यत्रातीवप्रयत्ने संयोगादेरगौरवम् । न च्छन्दोभङ्गमप्याहुस्तद्वद्दोषाय सूरयः' इति । एतच्च श्रुत्वा गदितो भवांस्त्वं सीतोपलम्भे प्रकुरु प्रबुद्धिम्' इति च । ततोऽतीव्रप्रयत्नेन नात्र प्राप्तस्योच्चारणे प्राग्वर्णस्य लघुतैव तेनासगणप्रक्षेपेण । तथा सति छन्दोभङ्गाभाव इत्यलमतिप्रसङ्गेन । हयाद्यृक्षे अश्विन्यादिसप्तविंशतिभेषु नक्षत्रदोहदं कुल्माषानित्यादिकमिदं भक्ष्याभक्ष्यं वर्णभेदेन देशभेदेन वा इदं भक्ष्यमेतदभक्ष्यमिति विचार्य भक्ष्यसम्भवे भक्षयेत् । भक्ष्यासम्भवे आलोकयेत्पश्येत्स्पृशेद्वेत्यपि ध्येयम् । यथा अश्विन्यां कुल्माषानक्षतस्विन्नमाषान्, भरण्यां तिलमिश्रतण्डुलान्, कृत्तिकायां माषान्, रोहिण्यां गव्यं गोसम्बन्धि दधि, मृगे गव्यमाज्यं घृतम्, आर्द्रायां दुग्धं गव्यमेव, पुनर्वसौ एणमांसं हरिणमांसं, पुष्ये तस्यैव मृगस्य रक्तं रुधिरम्, आश्लेषायां पायसं दुग्धमध्ये वह्निसम्पर्के पाचिततण्डुलान्, मघायां चाषस्य पक्षिणः पललं मांसं, पूर्वाफाल्गुन्यां मृगस्येदं मार्गं मांसम्, उत्तराफाल्गुन्यां शशस्येदं शाशं मांसं, हस्ते षाष्टिक्यं षष्टिकान्नं, साठीतिभाषायां, चित्रायां प्रियङ्गुः फलिनी, स्वात्यामपूपो घृतपक्वो भक्ष्यविशेषः, विशाखायां चित्राण्डजान्नानावर्णान्पक्षिणः, अनुराधायां सत्फलमुत्तमफलमाम्रादि, ज्येष्ठायां कूर्मस्य कच्छपस्य कौर्मं मांसं, मूले सारिकायाः पक्षिण्याः इदं सारिकंमासं, पूर्वाषाढायां गोधाया इदं गौधिकं मांसम्, उत्तराषाढायां शाल्यं शल्यस्य पक्षिण इदं शाल्यं पललं मांसं, 'श्वावित्तु शल्यं इत्यमरः । सारसलमितिभाषया, अभिजिति हविष्यं मुद्गादि, श्रवणे कृसरान्नम् । खिच्चडीतिभाषया । धनिष्ठायां मुद्गान्नं मुद्गौदनं शतभे यवानां 'पिष्टं पूर्वाभाद्रपदायां मत्स्यमिश्रितमन्नमोदनम्, उत्तराभाद्रपदायां चित्रितान्नं, नानाविधैरन्नैर्गोधूमादिभिः पक्वैर्मिश्रमोदनमिति केचित् । वयं त्वेवं व्याकुर्म्मः । यवतन्डुलतिला मेषीदुग्धेन पक्त्वा मेषकर्णोपरक्तेनारक्ताश्चित्रान्नमोदनमिति चित्रितशब्देनोच्यते इति । रेवत्यां दध्यन्नं दध्योदनमिति अपि च तथेत्यादीन्यव्ययानि पादपूरणार्थानि । यदाह नारदः—'कुल्माषांश्च तिलान्माषान्दधिगव्यं घृतं पयः । मृग मांसं च तत्सारपायसं चाषकं मृगम् । शशमांसं च षाष्टिक्यं प्रियङ्गुकमपूपकम् ।। चित्राण्डजा फलं कूर्म शाटीङ्गोधां च शल्यकम् ।। हविष्यं कृसरान्नं च मुद्गान्नं यवपिष्टकम् । मत्स्यान्नं चित्रितान्नं च दध्यन्नं दस्रभात्क्रमात्' इति । तत्सारं मृगरुधिरम् । अत्र चित्राण्डजाफलमित्येकमेव दोहदमाहुः । तन्न । 'चित्राण्डं च फलं ततः' इति कश्यपेन पृथगुक्तेः । अण्डा अण्डजा उच्यन्ते । अण्डगतवैचित्र्याभावात् । यत्तु श्रीपतिवाक्ये 'चित्राण्डजायाः फलम्' इत्युक्तं–तस्यार्थं न विद्मः । 'प्राश्याः प्रियङ्गुचित्राण्डजाः फलं यावककुलत्थाश्च' इति वराहपद्यव्याख्याने चित्रान्नाकाराः पक्षिणश्चित्रायां प्राश्याः फलानि प्रसिद्धानि स्वाताविति भट्टोत्पलो व्याख्यत् ।

चित्रान्नलक्षणम्—

चित्रान्नलक्षणमुक्तं दीपिकायाम्—

'अजाक्षीरेण संस्विन्ना यवाः सतिलतण्डुलाः ।
अजकर्णस्य रक्तेन रक्ताश्चित्रान्नसञ्ज्ञकाः ।।' इति ।

केषांचिदभक्ष्यत्वे अलाभे वा तद्दानतद्दर्शनतत्स्मरणानि कार्याणि—

अत्र यदभक्ष्यं दुष्प्रापं वा स्मृत्वा दृष्ट्वा तद्दत्वा गन्तव्यमित्याह गुरुः—

'अलभ्यलभ्यभक्ष्यान्वा स्मृत्वा स्पृष्ट्वाऽथ तान्व्रजेत्।
दत्वा वा सिद्धिमाप्नोति दुष्टभादिषु भूपतिः' इति।

दुष्टतिथिवारादिष्वप्येवं दोहदः कार्यः—

आदिशब्दात्तिथिवारदिग्दोहदेषु स्मरणं स्पर्शनं दानं भक्षणं वा यथा सम्भवं ध्येयम्। नक्षत्रदोहदेषु वसिष्ठादिपद्येषु क्वचिद्भेदः'। तत्र विकल्पः। तुल्यबलत्वात्। ननु भक्षेदिति। 'भक्ष अदने' इति धातुश्चुरादिः। तस्मात् 'सत्यापपाश' इति स्वार्थणिजन्ताद्विधिलिङि तिपि शबवादौ च कृते 'इतश्च' इतीकारलोपे भक्षयेदिति भवितव्यं न तु भक्षेदिति। कथमयं प्रयोगः उच्यते। चुरादिभ्यस्तु णिजनित्योऽस्ति। 'अनित्यण्यन्ताश्चुरादयः' इत्युक्तं, एवं सति णिज-भावपक्षे विधिलिङि भक्षेदिति सिद्धयति। ज्ञापकं चात्र चुरादौ 'चिति स्मृत्याम्' इतिचिति-धातोरिदित्करणम्। तद्धि चिन्तति इत्यादौ 'इदितोनुम्धातोः' इति नुमि 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' इति नलोपो मामूदित्येवमर्थं कृतम्। नित्ये तु णिचि नलोपस्याप्रसङ्गादित्वं वृथैव भवति। नुमर्थमिति चेन्न। चितिस्मृत्यां निर्नुम्त्वमेव पठितव्यं किमिदित्वं ज्ञापकमुक्तार्थस्य सम्पन्नमिति। अत एव-'महीपालवचः श्रुत्वा जुघुषुः पुण्यमानवाः' इति विशब्दनार्थस्य चौरादि-कस्य घुषेर्घोषयामासुरित्यर्थे जुघुषुरित्यादिमहाकविप्रयोगोपपत्तिरिति वामनः। पक्षे चोरती-त्यादिप्रक्रियाकौमुदीकृच्चेत्याह स्मेत्यलमतिप्रसङ्गेन। अथवा व्यक्तमेवं पठितव्यं—'खादेत्तथा-लोकयेत्' इति ॥ ८४-८५ ॥

पीताम्बरा - नक्षत्र दोहद—गर्भवती स्त्री की प्रबल रुचि को दोहद कहते हैं।

तिथि, वार, नक्षत्रों की स्वाभाविक रुचि के अनुसार यहाँ पर भी दोहद शब्द का प्रयोग हुआ है। जिस तिथि, वार, नक्षत्रों में यात्रा करनी हो उस तिथि, वार, नक्षत्रादिक के दोहद पदार्थ बताये जा रहे हैं।

प्रथमतः अश्विनी आदिक रेवती पर्यन्त के २७ नक्षत्रों के उरद, तिल, हरिण, मांस आदिक, ब्राह्मणादिक वर्णभेद से या देश भेद से, भक्षाभक्ष पदार्थों को समझ कर अभक्ष पदार्थों के भक्षण के संकोच में उन्हें यात्रा समय में देख कर या स्पर्श कर यात्रा करनी चाहिये। दोहद के उपयोग से भी यात्रा सफल होती है।

अश्विनी से आरम्भ कर अभिजित् सहित रेवती पर्यन्त २८ नक्षत्रों के दोहद क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) अश्विनी उरद, जौ आदि, (२) भरणी तिल, (३) कृतिका उरद, (४) रोहिणी गौ दूध की दही, (५) मृग गौ का घी, (६) आर्द्रा गौ का दूध, (७) पुनर्वसु हरिण का मांस, (८) पुष्य हरिण का रक्त, (९) अश्लेषा दूध में पका चावल (खीर), (१०) मघा पपीहा का मांस (११) पूर्वाफाल्गुनी मृगमांस, (१२) उत्तराफाल्गुनी खरगोश का मांस, (१३) हस्त षष्टिका साठी चावल, (१४) चित्रा प्रियंगु फलिनी (मालकंगनी) (१५) स्वाती मालपूवा, (१६) विशाखा नानावर्ण के पक्षी, (१७) अनुराधा उत्तम फल, (१८) ज्येष्ठा कछुये का मांस, (१९) मूल सारिक पक्षी का मांस, (२०) पूर्वाषाढ़ा गोधा का मांस, (२१) उत्तरा-षाढ़ा साही का मांस, (२२) अभिजित् मुद्ग, मूंग, (२३) श्रवण खिचड़ी, (२४) धनिष्ठा मूंग की दाल व भात, (२५) शतभिषा जौ की पीठी, (२६) पूर्वाभाद्र मछली भात, (२७) उत्तराभाद्र मछली भात, (२८) रेवती दही भात, इन्हें भक्षण कर या देखकर या स्पर्श कर यात्रा करनी चाहिये ॥ ८४-८५ ॥

अथ दिग्दोहदमनुष्टुभाह—

आज्यं तिलौदनं मत्स्यं पयश्चापि यथाक्रमम् ।
भक्षयेद्दोहदं दिश्यमाशां पूर्वादिकां व्रजेत् ॥ ८६ ॥

पीयूषधारा—आज्यमिति । आज्यं घृतं पूर्वस्यां तिलौदनं दक्षिणस्यां, मत्स्यं प्रसिद्धं पश्चिमायां, पयो दुग्धमुत्तरस्याम् । एतद्यथाक्रमं दिश्यमभीष्टदिग्भं दोहदं भक्षयेत् । ततः पूर्वादिकाशां जिगमिषितां दिशं व्रजेत् । यदाह श्रीपतिः—'आज्यतिलौदनमत्स्यपयोभिः प्राक्प्रभृति क्रमशः खलु भुक्त्वा' इति नारदेन त्वन्यथोक्तं—'घृतान्नं तिलपिष्टान्नं मत्स्यान्नं घृतपायसम् । पूर्वादिषु क्रमाद्भुक्त्वा याता सिद्धिमवाप्नुयात् ॥' इति । अत्रैव विरोधे विकल्पो यथादेशाचारं व्यवस्था ॥ ८६ ॥

पीताम्बरा—दिशाओं के दोहद—पूर्व दिशा की यात्रा समय घी, दक्षिण की तिल, पश्चिम की मत्स्य और उत्तर की यात्रा समय दूध पीकर यात्रा करनी चाहिये ॥ ८६ ॥

अथ वारदोहदमनुष्टुभाह—

रसालां पायसं काञ्जीं शृतं दुग्धं तथादधि ।
पयोऽशृतं तिलान्नं च भक्षयेद्वारदोहदम् ॥ ८७ ॥

पीयूषधारा—रसालामिति । रसाला शर्करादधिमरीचकर्पूरैलासंसृष्टा लोके शिखरिणीति प्रसिद्धा, तां रविवारे । पायसकाञ्ज्यौ प्रसिद्धौ सोममङ्गलवारयोः । शृतं पक्वं दुग्धं बुधे । 'श्रृ पाक' इति साधु तत्रापि 'क्षीरहविषोरेव' इति वार्तिकात्प्रस्तुते क्षीरे साधुत्वम् । दधि प्रसिद्धं गुरुवारे । अश्रितमपक्वं दुग्धं शुक्रे । तिलान्नं तिलमिश्रमोदनं शनौ । एतद्वारदोहदं रविवारादौ क्रमेण भक्षयेत् । यदाह श्रीपतिः—'मज्जिकां सघृतपायस तथा काञ्जिकं शृतपयो दधि क्रमात् । क्षीरपक्वमथितं तिलौदनं वारदोहद्विधिर्बुधैः स्मृतः ॥' इति ।

क्षीरस्य पाकविशेषो नेति मतान्तरम्—

वसिष्ठनारदाभ्यां दुग्धस्य पाकविशेषो नाभ्यधायि । 'मज्जिका परमान्ने च काञ्जिकं च पयो दधि । क्षीरं तिलौदनं भुक्त्वा भानुवारादिषु क्रमात्' इति । मज्जिका रसाला । 'स्याद्रसाला तु मज्जिका' इत्यभिधानात् ।

वारदोहदा मतान्तरेण—

गुरुस्तु विशेषमाह—'सूर्यवारे घृतं प्राश्य चन्द्रवारे पयस्तथा । गुडमङ्गारके वारे बुधवारे तिलानपि ॥ गुरुवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि । माषान्भुक्त्वा शनेर्वारे शूले गच्छन्न दोषभाक्' इति ॥ ८७ ॥

पीताम्बरा—वारदोहद—रविवार के दिन शिखरिणी (चीनी, दही, मरिच, कपूर, एलामिश्रित) सोमवार के दिन खीर, मंगल के कांजी, बुध के दिन औटाया दूध, गुरु के दिन दही, शुक्र के दिन कच्चा दूध, शनिवार के दिन तिल और चावल भक्षण कर यात्रा करनी चाहिये ॥ ८७ ॥

अथ तिथिदोहदं वसन्ततिलकाछन्दसाह—

पक्षादितोऽर्कदलतण्डुलवारिसर्पिः श्राणा हविष्यमपि हेमजलं त्वपूपम् ।
भुक्त्वा व्रजेद्रुचकमम्बु च धेनुमूत्रं यावान्नपायसगुडानसृगन्नमुद्गान् ॥ ८८ ॥

पीयूषधारा—पक्षादित इति । पक्षादिः प्रतिपत्तस्याः । ल्यब्लोपे पञ्चमी । प्रतिपदादिपञ्चदशतिथिषु क्रमेण तिथिदोहदं भुक्त्वा व्रजेत् । यथा प्रतिपदि अर्कस्य वृक्षविशेषस्य दलानि पर्णानि । रुइ इति भाषायाम् । द्वितीयायां तण्डुलवारि क्षालिततण्डुलजलम् । तृतीयायां सर्पिर्घृतम् । चतुर्थ्यां श्राणा यवागुः अम्बिलि इति भाषायाम् । पञ्चम्यां हविष्यं मुद्गादि । षष्ठ्यां हेमजलं प्रक्षालितसुवर्णजलम् । सप्तम्यामपूपम् । अष्टम्यां रुचकं बीजपूरफलम् । 'फलपूरो बीजपूरो रुचको मातुलिङ्गके' इत्यमरः । नवम्यामम्बु जलम् । दशम्यां धेनुमूत्रंस्त्री गवीमूत्रं न तु वृषमूत्रम् । धेनुशब्दग्रहणात् । एकादश्यां यावान्नं यवविकारम् । द्वादश्यां पायसम् । त्रयोदश्यां गुडमिक्षुविकारम् । चतुर्दश्यामसृक् रुधिरम् । पञ्चदश्यामन्नमुद्गानोदनमिश्रितमुद्गान् । यदाह बृहस्पतिः—'अर्कपत्रं भवेद्यातुः प्रथमायां तु भक्षणम् । द्वितीयायां भवेद्यातुर्भक्ष्यं सत्तण्डुलोदकम् । तृतीयायां यथा सर्पिर्यवागूः स्यात्ततः परम् । पञ्चम्यां तद्धविष्यं स्यात्षष्ठ्यां वा काञ्चनोदकम् ।। अपूपभुक्तिः सप्तम्यां अष्टम्यां बीजपूरकम् । नवम्यां तोयपानं स्याद्गोमूत्रं तु ततः परम् ।। एकादश्यां यवान्नाद्द्वादश्यां पायसं भवेत् । त्रयोदश्यां गुडं लेह्यं रुधिरं स्याच्चतुर्दशे । मुद्गौदनं भवेद्भोज्यं पञ्चदश्यां यियासतः । पक्षयोरुभयोरेवं यात्रायोगे विधिः स्मृतः' इति ।

तिथिदोहदेषु क्वचिद्भेदाः—

दैवज्ञमनोहरेऽपि क्वचिद्भेदः । यथा—'अर्कदलतण्डुलोदकसर्पींषि हविष्यदधिसुवर्णपयः । तिलवारिबीजपूरकमध्वाज्यकमूत्रपिष्टिकाश्चापि । तिलपिष्टकन्दमूलानि शाकमशस्तवृक्षपर्णानि । प्रतिपत्प्रभृतिषु भुक्त्वा प्रस्थाता सिद्धिमाप्नोति' इति । ननु च 'अलभ्यलभ्यभक्ष्यान्वा स्मृत्वा दृष्ट्वाथ तान्व्रजेत् । दत्त्वा बा सिद्धिमाप्नोति दुष्टभादिषु भूपतिः' इति गुरूक्तेः वारादिषु दोहदाभिधानं सार्थकम् । विहितेषु पुनर्नक्षत्रतिथिवारादिषु दोहदाभिधानं व्यर्थम् । दोषनिवारणफलको हि दोहदः तदभावेन वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । उच्यते,—'दुष्टभादिषु भूपतिः' इत्यत्र, दुष्टत्वं किं नैसर्गिकमुतान्याहितम् । नक्षत्रेष्वपि क्रूरग्रहसाहित्यादिर्महान् दोषः सम्भावितोऽस्ति तदपाकरणाय दोहदाभिधानं युक्तम् । एवं सर्ववर्णानामपि पारिघदण्डे विरुद्धताराक्रूरग्रहसाहित्यादिमहादोषनिवारणाय दोहदोक्तेः सार्थक्याच्च । एवं विहिततिथिदोहदाभिधानं योगिन्यादिदोषनाशार्थं 'सक्रूरराशेरशुभा तिथिः स्यात्' इत्येतद्दोषनिवारणार्थं च तद्दोषाभिधानम् । रत्नमालायां च—'आद्याश्चतस्रः क्रियपूर्वकाणां मेषाच्चतुर्णामिह पञ्चमो स्यात् । परा परेषां परतस्तथैव सक्रूरराशेरशुभा तिथिः स्यात्' इति । एवं वारदोहदोक्तिरपि वक्रिग्रहवारशूलादिदोषहान्या सार्थिका, दिग्दोहदोक्तिरपि त्रिविधप्रतिबुधप्रतिशुक्रप्रतिभौमादिदोषहान्या सार्थिका ।। ८८ ।।

पीताम्बरा–तिथि दोहद–प्रतिपदा के दिन आकपत्र, द्वितीया चावल माड़, तृतीया घी, चतुर्थी इमली, पञ्चमी मूँग, षष्ठी सुवर्ण प्रक्षालित जल, सप्तमी मालपूवा, अष्टमी बिजौरा, नवमी जल, दशमी गोमूत्र, एकादशी जौ, द्वादशी खीर, त्रयोदशी गुड़, चतुर्दशी रुधिर और पञ्चदशी के दिन मूँग को भक्षण कर या देखकर या स्पर्श कर यात्रा करनी चाहिये । ये तिथियाँ दोनों पक्षों की हैं । शुक्ल पक्ष के पूर्णमासी की जगह कृष्णपक्षकी अमावस्या समझनी चाहिये ।।८८

अथ गमनसमयभवं विधिं प्रहर्षिणीछन्दसाह—

उद्धृत्य प्रथमत एव दक्षिणाङ्घ्रिं द्वात्रिंशत्पदमभिगत्य दिश्ययानम् ।
आरोहेत्तिलघृतहैमताम्रपात्रं दत्त्वादौ गणकवराय च प्रगच्छेत् ।। ८९ ।।

पीयूषधारा—उद्धृत्येति—राजा गमनसमय एव प्रथमतो दक्षिणाङ्घ्रिं दक्षिणचरण-मुद्धृत्य पश्चात् द्वात्रिंशत् पदं द्वात्रिंशत्पदपरिमितां भूमिं गत्वा दिश्ययानं वक्ष्यमाणं दिग्विशेषं हस्त्यादियानमारोहेत् इति । यदाह गुरुः—'पूर्वं दक्षिणमुद्धृत्य पादं यायेन्नराधिपः । द्वात्रिंशत् पदं गत्वा यानमारुह्य संव्रजेत्' ।

वराहोऽपि—

'कल्याणनामसचिवाप्तजनायुधीय दैवज्ञविप्रजनकञ्चुकिमध्यसंस्थः । द्वात्रिंशतं समुपगम्य पदानि भूमौ प्रागादि नागरथवाजिनरैस्तु यायात्' इति ।

यानाद्यारोहणसमये गणकाय ब्राह्मणेभ्यश्च दानविशेषो राज्ञः—

तिलेति । आरोहणसमये तिलघृतहेमसतिलताम्रपात्रमादौ गणकवराय ज्योतिर्विच्छ्रेष्ठाय चकारादन्येभ्योऽपि ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति दानं दत्वा प्रगच्छेत् । यदाह गुरुः—'ताम्रपात्रे तिला-न्कृत्वा सघृतान्हेमसंयुतान् । निवेद्य विप्रमुख्याय दैवज्ञाय विशेषतः' इति ।। ८९ ।।

पीताम्बरा—यात्रा समय की विधि—यात्रा के समय सर्व प्रथम दक्षिण (दाहिना) पैर उठाकर जमीन में ३२ कदम तक आगे चलकर तब जिस दिशा की यात्रा करनी हो उस दिशा की ओर जो सवारी, हाथी, घोड़ा, मोटर-कार आदि हो उस सवारी में बैठना चाहिये। सवारी में बैठते समय, सतिल ताम्रपात्र, घी सुवर्ण दान से दैवज्ञ श्रेष्ठ (ज्योतिषी) की पूजा करनी चाहिये ।। ८९ ।।

अथावसरप्राप्तानि दिश्ययानान्युनुष्टुभाह—

प्राच्यां गच्छेद्गजेनैव दक्षिणस्यां रथेन हि ।
दिशि प्रतीच्यामश्वेन तथोदीच्यां नरैर्नृपः ।। ९० ।।

पीयूषधारा—प्राच्यामिति । स्पष्टार्थं पद्यम् । नरैर्नरवाह्यैः सुखासवादिभिः । यदाह श्रीपतिः—'हस्तिरथाश्वनरैर्यदि राजा याति तदा सुजयस्यरिचक्रं' इति । वराहोपि—'प्रागादि नागरथवाजिनरैस्तु यायात्' इति ।। ९० ।।

पीताम्बरा—किस दिशा में कौन वाहन—पूर्व-दक्षिण-पश्चिम और उत्तर की यात्रा क्रमशः हाथी, रथ, घोड़ा और मनुष्य पर चढ़ कर करनी चाहिये । प्राचीन समय में यात्रा के साधन हाथी, घोड़े, रथ आदिक थे । आधुनिक युग में भी हाथी, घोड़े, रथ, उपलब्ध हैं रथ के स्थान पर हवाई जहाज प्रसिद्ध हैं । मनुष्य यान या नर यान से पालकी या रिक्सा आदि आज भी प्राचीन सवारियों के अनुकूल ही है ।। ९० ।।

अथ निर्गमस्थानानि पादाकुलछन्दसाह—

देवगृहाद्वा गुरुसदनाद्वा स्वगृहान्मुख्यकलत्रगृहाद्वा ।
प्राश्य हविष्यं विप्रानुमतः पश्यच्छृण्वन्मङ्गलमेयात् ।। ९१ ।।

पीयूषधारा—देवेति । देवा विष्णवादयः पूज्यन्ते यस्मिन् गृहे तद्देवगृहम्, गुरुरध्याप-कस्वस्य कुलगुरुर्वा, स्वगृहं स्वशय्यागृहम्, बहुस्त्रीसत्त्वे मुख्यकलत्रं पट्टराज्ञी तद्गृहम् । एषां मध्ये मनोऽभीष्टात् स्थानात् भोजनसम्भवे हविष्यमन्नं प्राश्य भक्षयित्वा विप्रैर्ब्राह्मणैरनुमतः कृतोत्सवः मङ्गलं मङ्गलद्रव्यं मनोऽभीष्टं पश्यन् । सन् एयात् गच्छेत् । यदाह लल्लः—

'स्वनिकेताद्देवगृहात्प्रधानदाराश्रयाद्गुरुगृहाद्वा । यायात्कृताग्निकार्याः प्राश्य हविष्यं द्विजानुमतः ।। द्विजो विष्णुक्रमाद्भूपं मन्त्रेणानेन चालयेत् । इदं विष्णुर्विचक्रम इत्येवं पादमुद्धरेत् । मङ्गलानि ततः पश्यन् स्पृशञ्छृण्वन्नृपो व्रजेत्' इति ।

वराहोऽपि—

'अन्तःपुराद्वा स्वनिवेशनाद्वा सिंहासनादग्निपरिग्रहाद्वा । कुर्यान्नरेन्द्रः प्रथमं प्रयाणं विप्रैः शताग्र्यैः कृतमङ्गलाशीः ।। इदं विष्णुर्विचक्रम इत्येवं पादमुद्धरेत् । अमुकस्य वधायेति दक्षिणं क्षितिपो न्यसेत्' इति अग्निपरिग्रहोऽग्निहोत्रगृहम् ।। ९१ ।।

पीताम्बरा—घर में यात्रा करने का प्रथम स्थान—मकान में जिस कमरे में नित्य देव-पूजन होता है उस कमरे से, अथवा अपने कुल गुरु के अथवा अपने अध्यापक के, अथवा अपने शयनकक्ष से अथवा राजा के लिये (पट्टराज्ञी) राजमहिषी के कमरे से, साधारण व्यक्ति को अपनी धर्मपत्नी के शयनकक्ष से, इत्यादिक मनोनुकूल स्थान से, (हविष्य) शुद्ध अन्न भोजन कर, ब्राह्मणों के वेद मंगलघोष के साथ ब्राह्मणों से यात्रा की आज्ञा और आशीर्वाद लेकर मंगलोत्सव की मुद्रा में मनोनुकूल सुन्दर द्रव्य आदिक पदार्थों को देखते-देखते मंगल गीतादिक शुभ शब्दों को सुनते हुए यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए ।। ९१ ।।

अथ गमनकाले निर्णीते सत्यपि स्वस्यावश्यकार्यानिष्पादाद्गमनविलम्बे वर्णक्रमेण प्रस्थानवस्तूनि प्रहर्षिणीछन्दसाह—

कार्याद्यै रिह गमनस्य चेद्विलम्बो भूदेवादिभिरुपवीतमायुधं च ।
क्षौरं चामलफलमाशु चालनीयं सर्वेषां भवति यदेव हृत्प्रियं वा ।।९२।।

पीयूषधारा—कार्याद्यैरिहेति । किञ्चिदावश्यकं कार्यं नाभूदिति गमनस्य चेद्विलम्बो स्यात्तदा विचारिते यात्रालग्ने भूदेवादिभिर्ब्राह्मणप्रभृतिभिरेतानि वस्तूनि आशु चालनीयानि प्रस्थापनीयानि—यथा ब्राह्मणेनोपवीतम्, क्षत्रियेणायुधं, वैश्येन मधु, शूद्रेण आमलकफलं, नारिकेलादि । यदाह वसिष्ठः—'तस्मिन्मुहूर्ते स्वयमप्रयाणे प्रयोजनापेक्षितया च दैवात् । तत्रैव तान्निर्गमनं च कार्यं स्वीयासनाच्चापि तदुच्यमानम्' इति । राजमार्त्तण्डः—'प्रस्थाने ब्राह्मणादीनां यज्ञसूत्रमथायुधम् । मध्वामलफलं चैव प्रशस्तं वृद्धिकारणम् ।।' इति ।

सर्ववर्णानामप्येकमभीष्टं वस्तु प्रस्थापनीयमिति प्रकारान्तरम्—

वा अथवा सर्वेषां वर्णानां यदेव हृत्प्रियं मनोऽभीष्टं तदेव प्रस्थापनीयम् । उक्तं च वसिष्ठेन—'श्वेतातपत्रध्वजचामराश्वविभूषणोष्णीषगजाम्बराणि । आन्दोलिकारत्नरथाश्ववारा-ञ्छय्यासनाद्यं मनसस्त्वभीष्टम् । इति । नारदोऽपि—'अप्रयाणे स्वकं कार्यमपेक्षी भूपतिस्तथा । कुर्यान्निर्गमनं छत्रध्वजवाहनसंयुतम्' इति ।।९२।।

पीताम्बरा—यात्रा समय आकस्मिक विलम्ब का कर्तव्य—"कोई आवश्यक कार्य छूट गया" इत्यादि तात्कालिक स्मृति से यात्रा मुहूर्त में आवश्यक विलम्ब होने से ब्राह्मण वर्ण के यात्री ने यज्ञोपवित, क्षत्रिय ने शस्त्र, वैश्य ने शहद, शूद्र ने आँवला या नारियल; अथवा जिसे जो वस्तु प्रिय हो उसे शीघ्र आगे यात्रा की दिशा में प्रचालित कर देनी चाहिये । आवश्यक कार्य के अनन्तर पुनः यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए ।।९२।।

अथ स्वयं गमने कियद्दूरं प्रस्थानं कार्यमित्येतदाशंक्य प्राच्यमतेन प्रस्थानपरिमाणं मन्दाक्रान्ताछन्दसाह—

गेहाद्गेहान्तरमपि गमस्तर्हि यात्रेति गर्गः
सीम्नः सीमान्तरमपि भृगुर्बाणविक्षेपमात्रम् ।
प्रस्थानं स्यादिति कथयतेऽथो भरद्वाज एवं
यात्रा कार्या बहिरिह पुरात्स्याद्वसिष्ठो ब्रवीति ॥९३॥

पीयूषधारा—गेहादिति । स्वगृहात्परगृहमतिसमीपवर्त्यपि तत्रापि चेद्गमो गमनं स्यात्तर्हि यात्रा जातेति गर्गः कथयते । अथवा स्वग्रामसीमामुल्लङ्घ्य सीमान्तरं ग्रामान्तरसीमां प्राप्य वसेदिति भृगुः कथयते । अथवा महता योद्ध्रा स्वबलेन क्षिप्यमाणः शरो यावद्दूरं गच्छति तावन्मात्रं प्रस्थानं स्यादिति भरद्वाजः कथयते । अथवा पुरान्नगराद्बहिर्यात्रा कार्या स्यादित्येवं वसिष्ठः ब्रवीति । यदाह राजमार्त्तण्डः—'गृहाद्गृहान्तरं गर्गः सीम्नः सीमान्तरं भृगुः । शरक्षेपाद्भरद्वाजो वसिष्ठो नगराद्बहिः' इति । एतच्च यथायोग्यं कार्यस्यावश्यकतायां च ध्येयम् ॥९३॥

पीताम्बरा—प्रस्थान का परिमाण—गर्गमुनि के मत से अपने घर से समीपवर्ती घर तक चले जाने मात्र से यात्रा मुहूर्त की सिद्धि होती है ।

भृगु मुनि के मत से अपनी सीमा से दूसरे नगर या ग्राम की सीमा तक पहुँचने से यात्रा मुहूर्त की सिद्धि मानते हैं ।

भरद्वाज मुनि का कथन है कि—बलवान् सैनिक द्वारा फेंके गये बाण या गोली जितनी दूर तक जाती है उतनी दूर तक का प्रस्थान, यात्रा मुहूर्त की शुभ सफलता का द्योतक होता है ।

और वसिष्ठ जी के मत से अपने नगर या ग्राम से बाहर हो जाने मात्र के प्रस्थान से यात्रा मुहूर्त की चरितार्थता हो जाती है ॥९३॥

अथ मुनिमतेन प्रस्थानपरिमाणं बसन्ततिलकाछन्दसाह—

प्रस्थानमत्र धनुषां हि शतानि पञ्च केचिच्छतद्वयमुशन्ति दशैव चान्ये ।
सम्प्रस्थितो य इह मन्दिरतः प्रयातो गन्तव्यदिक्षु तदपि प्रयतेन कार्यम् ॥९४॥

पीयूषधारा—प्रस्थानेति । धनुषः परिमाणमाह भास्करः—यवोदरैरङ्गुलमष्टसंख्यैर्हस्तोऽङ्गुलः षड्गुणितैश्चतुर्भिः हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषाम्' इति । अत्र गमनकाले तादृशानां धनुषां पञ्चशतानि हस्तसहस्रद्वयमिति यावत् । स्वगृहात्तावद्धस्तावधि प्रस्थानं स्यादिति केचिदूचुः । अन्ये तु तादृशानां धनुषां शतद्वयमष्टौ शतानि हस्तास्तावत्प्रस्थानमित्याहुः । अपरे तु इह यात्राकाले मन्दिरतः स्वगृहाद्दशैव धनूंषि चत्वारिंशद्धस्तास्तावद्दूरे सम्प्रस्थितः प्रयात एव ज्ञेय इत्याहुः यदाह वसिष्ठः—'प्रस्थानं धनुषां पञ्चशतान्युत शतद्वयम् । स्वदेवसदनाद्वापि दशभिः प्रस्थितो गतः' इति ।

कार्यावश्यकत्वानावश्यकत्वाभ्यामुपरितनविकल्पानुसरणम्—

नायं स्वेच्छाविकल्पः किन्तु कार्यस्थानावश्यकावश्यकत्वात्तादृशप्रस्थानम् । अत एव

नारदोऽपि—'स्वस्थानान्निर्गमं स्थानं दण्डाना च शतद्वयम् । चत्वारिंशत्पञ्चविंशत्प्रस्थितः स स्वयं गतः' इति । प्रस्थानविकल्पानाह । अतएव प्रयाणे स्वकं कार्यमपेक्ष्येत्याह च ।

गन्तव्यदिगभिमुखं प्रस्थानम्—

गन्तव्यदिक्ष्विति । यदपि प्रस्थानं प्रयतेन सविघ्नानेन राजादिना गन्तव्यदिक्षु यस्यां दिशि गमनं चिकीर्षितं तद्दिगभिमुखं कार्यम् । यदाह राजमार्तण्डः—'गन्तव्यदेशाभिमुखे प्रदेशे प्रस्थानमाहुः शुभदं नराणाम्' इति ।

स्वयं प्रस्थाने गुणाः—

अतः स्वयं प्रस्थानगुणमप्याह स एवं—'स्वशरीरेण यः कश्चिन्निर्गच्छेच्छ्रद्धयान्वितः । तस्य यात्राफलं सर्वं सम्पूर्णं पथिसिध्यति' इति ।

यात्रोत्तरदिनेष्टमचन्द्रादिदोषे स्वयं यात्रा न कार्या--

यदा तु स्वयं प्रस्थानं कृतं ततोऽपरदिनेऽष्टचन्द्रादिदोषसद्भावे न गन्तव्यमित्याह नारदः--जन्मर्क्षे चाष्टमे चन्द्रे वारे भौमे शनैश्चरे । प्रस्थितेऽपि न गन्तव्यं यदि स्याद्गर्हितं दिनम्' इति । अष्टमचन्द्रादि दोषसद्भावदुष्टे यात्रा न कार्येत्यर्थः ।

वैधृत्यादिदोषे स्वयं यात्रा कार्यैव—

ये तु व्यतीपातवैधृतिभद्राभरण्यादिदोषसद्भावेन गर्हितेऽपि दिने यात्रेत्याहुः । तन्न, पूर्वार्द्धस्य वैयर्थ्यापातात् वाक्यभेदाच्च । दोषोपलक्षणार्थमिति चेन्न । एकस्मिन्नेव दोषे उपलक्षणार्थे वक्तव्ये बहुदोषकथनस्य वैयर्थ्यात् तस्मादष्टमचन्द्रादि दोषेषु सर्वथा यात्रा न कार्या । व्यतीपातादिदोषसद्भावप्रतिबन्धकेषु सुखेन यात्रेति तत्त्वमिति प्रतीमः ।

गृहान्निर्गतेन प्रस्थानकरणे प्रथमादिदिनयात्राक्रमः—

यस्तु गृहान्निर्गतो न प्रस्थानमाचरति तस्य केन क्रमेण प्रथमादिदिनगमनयित्याह चण्डेश्वरः–क्रोशं वा यदिवाप्यर्द्धं प्रथमेऽह्नि शस्यते । द्वितीये योजनं गत्वा निवसेत महीपतिः ।। तृतीये योजनं सार्द्धं वसेदाक्रम्य दूरतः । ततः परं यथेष्टं तु मार्गे यायान्महीपतिः' इति ।।९४।।

पीताम्बरा—प्रस्थान का परिमाण--आचार्यों के एकमत से अपने घर से पाँच सौ धनुष = २ हजार हाथ=१ हजार गज की दूरी तक प्रस्थान माना जाता है । ८ जौ गर्भ = १ अंगुल, २४ अंगुल = १ हाथ, ४ हाथ = १ दण्ड या १ धनुष दूसरों के मत से २ सौ धनुष = ८०० हाथ=४०० गज की दूरी पर प्रस्थान की अवधि होती है ।

और कुछ आचार्य १० धनुष=४० हाथ = २० गज मात्र अपने घर से गन्तव्य दिशा की ओर चले जाने से प्रस्थान की अवधि मानते हैं । प्रयत्न पूर्वक उसी दिशा के अभिमुख भी प्रस्थान करना चाहिए जिस दिशा की यात्रा करनी हो ।। ९४ ।।

अथ कृते प्रस्थानेऽधिकारिविशेषपुरस्कारेण कियद्दिवसननिषेधमुत्तरार्द्धेन मैथुननिषेधं च स्रग्धराछन्दसाह—

प्रस्थाने भूमिपालो दशदिवसमभिव्याप्य नैकत्र तिष्ठे-
त्सामन्तः सप्तरात्रं तदितरमनुजः पञ्चरात्रं तथैव ।
ऊर्ध्वं गच्छेच्छुभाहेष्वथ गमनदिनात्सप्तरात्राणि पूर्वं
चाशक्तौ तद्दिनेऽसौ रिपुविजयमना मैथुनं नैव कुर्यात् ॥९५॥

पीयूषधारा—प्रस्थाने इति । भूमिपाल एकत्र प्रस्थाने दशदिवसमभिव्याप्य दशाहोरात्राणि न वसेत् । सामन्तो माण्डलिकश्चतुर्द्वारिक एकत्र प्रस्थाने सप्तरात्रं न वसेत् । तदितरमनुजो ब्राह्मणादिः तथैव एकत्र प्रस्थाने पञ्चरात्रं न वसेत् । यदि दैवाद्वसेत्तदा किं कुर्यादित्यत आह—ऊर्ध्वमिति । अवधिदिवसातिक्रमानन्तरं पुनर्गृहमागत्य शुभाहे पूर्वोक्तप्रकारेण विचारितशुभदिवसे गच्छेत् । यदाह वसिष्ठः—आरभ्य निर्गमाद्यावद्दशाहं न वसेन्नृपः' माण्डलिकः सप्तरात्रं प्राकृतः पञ्चरात्रतः ॥ अत ऊर्ध्वं व्रजेद्भूयो भद्रेऽन्यदिवसे नृपः' इति भद्रे कल्याणकारिणि । श्रीपतिः—'वसेन्न चैकत्र दश क्षितीशो दिनान्यथो सप्त च माण्डलीकः । यः प्राकृतः सोऽपि न पञ्चरात्रं भद्रेण यात्रा परतः प्रयोज्या' इति । नन्वत्र प्रस्थाने दशदिवसाद्यतिक्रमे भूयः सुमुहूर्त्तेन यात्रा कार्येत्युक्तम् । तन्न युक्तिसहं प्रतिभाति । यतो यात्रा हि शत्रुमारणादिद्रव्यार्जनार्था । शत्रुमरणादिमनोऽभीष्टवस्तुप्राप्तिर्यात्रासमाप्तिरित्युच्यते । नहि तां विना पुनर्मुहूर्त्तविचारो युक्तः । आहुश्च—'अयुक्तमेतत्प्रतिभाति नूनं होराविदां युक्तिमतां बहूनाम् । यात्रासमाप्तिः खलु वाञ्छितार्थफलस्य सिद्धचै नियतं प्रदिष्टा इति । उच्यते । वसिष्ठाद्यैरपि वचःप्रामाण्यमङ्गीकुर्वद्भिः किमीदृशं युक्तिविरुद्धं वक्तुमुचितम् । यतोऽवधिकथनार्थकानां तत्तदृषिवाक्यानामप्रामाण्यप्रसङ्गात् ज्योतिषस्मृतिलङ्घने दुरितोत्पत्तिः स्यात् । किं च मासगम्यमध्वानमतिक्रम्य यदि कार्यवशाद्दशाह्यतिक्रमे सति तत्रापि तत एव स्थानात्सुमुहूर्त्तविचारोस्ति किं पुनः प्रस्थाने । यदाह वराहः—'एकत्राध्युषितस्य जगुर्यात्रामत्रात्रिगौतमच्यवनाः । पञ्चत्रिसप्तरात्राद्भूयाद्भद्रेण संयोज्यम्' । इति अयुक्तमेतत्प्रतिभाति । 'नूनम्' इति तु वाक्यं निर्मूलत्वादुपेक्ष्यम् । नहि वचनबोधितेऽर्थे युक्तिः प्रभवेत् । यथा तस्मादवध्यतिक्रमे सति शुभमुहूर्त्तेन यात्रा विधेया । अवधिमध्ये तु निषिद्धभद्राव्यतीपातादिमहादोषपरिहारायान्या यात्रा स्यादित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

दिग्विशेषेण प्रस्थानदिने नियमाः—

क्वचिद्दिग्विशेषेण प्रस्थाने दिवसनियमोऽभिहितः । यदाह राजमार्त्तण्डः 'प्रच्यामहानि मुनयः प्रवदन्ति सप्त याम्यामतीव शुभदानि दिनानि पञ्च । त्रीण्येव पश्चिमदिशि क्षितिनायकानां प्रस्थानकेषु दिवसदिश्यमुत्तरस्याम्' ॥ इति ।

प्रस्थातुः पुनर्गृहं प्रत्यागमने यात्राभङ्गः—

यदा तु स्वयं प्रस्थाय परावृत्य गृहमागच्छेत्तदा पुनः सुमुहूर्त्ते यात्रा कार्या । यदाह राजमार्तण्डः—'यस्तु सम्प्रस्थितो यात्रां निवर्तेत पुनर्गृहम् । कामाद्वा यदि वाकामान्न स सिद्धिमवाप्नुयात्' ॥ इति । दुर्गादित्यः—'कार्यवशाद्यदि कथमपि निवर्त्तते प्रस्थितः स्वगृहमेव । यायात्तदा विशदधैः पुनरपि तिथिकरणदिवसाद्यैः इति ।

प्रस्थानकर्त्तुर्नियममाह—

अथेति । असौ राजादिः रिपुविजयमनाः शत्रुजये कृतान्तःकरणः सन् यात्रादिनात्पूर्वं सप्तरात्राणि मैथुनं सम्भोगं नैव कुर्यात् । यदाह च्यवनः—'त्रिरात्रं वर्जयेत्क्षीरं पञ्चाहं क्षुरकर्म च । तदहश्चावशेषाणि सप्ताहं मैथुनं त्यजेत्' । इति ।

स्त्रीसेवननिषेधदिनेषु सङ्कोचः—

वा अथवा अशक्तौ सप्ताहमतिकामितया स्थातुमशक्तौ तद्दिने यात्रादिवसे मैथुनं नैव कुर्यात् । यदाह गर्गः—'यात्राकाले तु सम्प्राप्ते मैथुनं यो निषेवते । रोगार्त्तः क्षीणकोशश्च स निवर्त्तेत वा न वा' । इति । अत एवानयोर्वाक्ययोर्मैथुनपीडासहिष्णवसहिष्णुपरा विषयव्यवस्था ।

मार्गमध्येऽपि स्त्रीसेवनविकल्पः ।

मार्गमध्येऽपि मैथुननिषेधे विकल्पानाह च्यवनः—'यावद्व्रजति चाध्वानं यावत्कार्यं न सिद्ध्यति । यावद्वा न निवर्त्तेत तावद्वर्ज्यं हि मैथुनम्' । इति ।

ऋतुगमनयात्रयोस्समायोगे निर्णयः—

यदा तु प्रयाणदिने स्त्री ऋतुस्नाता भवति गमने चावश्यकता तदा मैथुनं कार्यं न वेति सन्देहः । तत्र यदि न कार्यमिति चेद्ब्रूषे—तदा धर्मशास्त्रविरोधः । यदाह स्वायम्भुवः—'ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः' । इति । कार्यमिति चेत्-ज्यौतिषस्मृत्युल्लङ्घनम् । तद्वचः प्रागभिहितम् । तत्र निर्णयमाह च्यवन एव—'आत्ययिककार्यपाते पुष्पस्नातासमागमं कृत्वा । मुदितो गच्छन् लभते मनोरथानचिरकालेन' इति । यदा हि पुनर्गमनार्थं कालान्तरमप्यस्ति तदा तद्दिने मैथुनं कृत्वा कालान्तरे सुलग्ने यायादित्यर्थसिद्धम् ।

प्रस्थानदिनात्पूर्वरात्रौ स्त्रीसेवनं न कार्यम्—

यदा प्रस्थानकालः श्वोदिवसस्तत्पूर्वरात्रावपि मैथुनं न कार्यमित्याह लल्लः—'कृत्वा तु मैथुनं रात्रौ प्रभाते योऽधिगच्छति । नासौ फलमवाप्नोति कृच्छ्रेण च निवर्त्तते ॥' कृच्छ्रेण कष्टेन ॥ ९५ ॥

पीताम्बरा—प्रस्थान के अनन्तर के स्थिति की दिन संख्या—चक्रवर्ती राजा के प्रस्थान स्थान में १० दिन तक नहीं रहना चाहिये । सामन्त को (छोटा राजा) सात रात्रि तक प्रस्थान स्थान में नहीं रहना चाहिये । साधारण मनुष्य को प्रस्थान स्थान पर ५ रात्रि तक निवास नहीं करना चाहिये ।

दिनों की उक्त अवधि से प्रस्थान स्थान में और अधिक दिन बीतने पर पुनः अपने घर में आकर यात्रा मुंहूर्त का फिर से विचार करके ही यात्रा करनी चाहिये । क्योंकि प्रस्थान स्थान से अपने घर पहुँच जाने से पूर्व में किया गया यात्रा मुहूर्त भंग हो जाता है अतः पुनः नये शुभ मुहूर्त से यात्रा करनी होगी ।

शत्रु पर विजय पाने की अन्तःकरण की कामना के राजा या व्यक्ति को यात्रा दिन के पूर्व की सात रात्रियों में मैथुन (स्त्री प्रसंग) नहीं करना चाहिये । अत्यधिक (कामी) मैथुनप्रिय के लिए यात्रा-दिन की पूर्व रात्रि मे तो मैथुन का त्याग अवश्य करना ही होगा ।

दैवात् यदि यात्रा के समीप समय में पत्नी पुष्पवती होकर ऋतुस्नाता हो गई (मासिक रज) हो तो ऐसी स्थिति में धर्मशास्त्र के अनुसार स्त्री समागम आवश्यक है। न होने पर भ्रूण हत्यादि दोष (पाप) लगते हैं। किन्तु ज्यौतिष स्मृति से यात्रा समय के पूर्व दिनों में मैथुन का स्पष्ट निषेध है तो ऐसी स्थितियों में धर्मशास्त्र और ज्योतिष के वैषम्य का समन्वय कैसे हो ? तो च्यवन के मत से अत्यावश्यक यात्रा हो तो पूर्व रात्रि में स्त्री समागम के अनन्तर द्वितीय दिन यात्रा की जा सकती है।

अथान्यानपि प्रस्थानकर्तुर्नियमान् शालिन्याह—

दुग्धं त्याज्यं पूर्वमेव त्रिरात्रं क्षौरं त्याज्यं पञ्चरात्रं च पूर्वम्।
क्षौद्रं तैलं वासरेऽस्मिन्वमिश्च त्याज्यं यत्नाद्भूमिपालेन नूनम् ॥९६॥

पीयूषधारा—दुग्धमिति। यात्रादिनात्पूर्वं भूमिपालेन राज्ञोपलक्षणत्वाद्गमनकर्त्रा यत्नात् दुग्धं पेयत्वेन त्याज्यं न तु द्रष्टुत्वेन तद्विकारः पायसं च निषिद्धम्। च पुनः पञ्चरात्रं पूर्वं क्षौर क्षौरसम्बन्धि मुण्डनं श्मश्रुकर्म च त्याज्यम्। अस्मिन्वासरे यात्रादिने क्षौद्रं मधु भक्ष्यत्वेन तैलं तैललापनं, त्याज्यम्। वमिश्चेद्दैवादुद्भूता शरीरशोधनार्थे बलात्कारकृता वा यात्रादिने निषिद्धा। नूनं निश्चितम्। यदाह च्यवनः—'वपनं वमनं क्षौद्रं तैलं चैत्र विवर्जयेत्। तदहश्चावशेषाणि सप्ताहं मैथुनं त्यजेत् ॥' इति। वपनं श्मश्रुकर्मणोप्युपलक्षणम्। तथा च वसिष्ठेन—यात्राहवे तूत्कटभूमिते च भुक्तोरू रात्रिषु मन्ध्ययोर्वा। क्षौरं प्रकुर्यात्खलु चात्मनो हि श्रेयोऽभिलाषी न कदाचिदेव ॥' इति क्षौरपदोपादानात्। क्षौरमशुभपदार्थोपलक्षणम्। यदाह स एव—'कामं क्रोधं तथा लोभं मद्यं मांसं च रोदनन् ॥' इति ॥९६॥

पीताम्बरा—यात्रा में त्याज्य पदार्थ—यात्रा दिन से पूर्व की तीन रात्रियों में दूध नहीं पीना चाहिये। अवलोकन किया जा सकता है। ५ रात्रि पहिले क्षौर मुण्डन (हजामत आदि) त्याग करना चाहिये। यात्रा के दिन शहद, (भक्षण की दृष्टि से त्याज्य हैं, अवलोकन हो सकता है) तेल मर्दन, शरीर शोधनार्थ औषध से वमन आदि सब त्याज्य हैं ॥९६॥

अथान्यानपि प्रस्थानकर्तुर्नियमान् गीत्याख्यच्छन्दसाह—

भुक्त्वा गच्छति यदि चेत्तैलगुडक्षारपक्वमांसानि।
विनिवर्तते स रुग्णः स्त्रीद्विजमवमान्य गच्छतो मरणम् ॥९७॥

पीयूषधारा—भुक्त्वेति। तैलं तैलपक्वानि वटकादीन्यन्नानि वा गुडमिक्षुविकारं तत्पाचितमन्नं वा। क्षारं सलवणं पक्वमांसानि रन्धितमांसानि यो भुक्त्वा गच्छति स राजादिः रुग्णो रोगसहितो निवर्त्तते। यदाह गर्गः—''कटुतैलगुडक्षारपक्वमांसाशनं तथा। भुक्त्वा यो यात्यसौ मोहाद्व्याधितः सन्निवर्त्तते ॥' इति। अत्र मांसदुग्धादिनिषेधस्तत्तन्नक्षत्रादिदोहदव्यतिरिक्तविषयः। दोहदस्य विशेषविहितत्वात्—

गमनसमये स्त्रीद्विजावमानना न कार्या—

स्त्रीद्विजमिति। स्त्री च द्विजश्च अनयोः समाहारः स्त्रीद्विजम्। स्त्रियं स्वीयां परकीयां वा द्विजः ब्राह्मणः 'दन्तविप्राण्डजा द्विजाः' इत्यभिधानात्। अवमान्यं धिक्छन्दताडनादिना मानभङ्गं कृत्वा गच्छतः पुंसो मरणं स्यात्। यदाह गर्गः—'यस्तु सम्प्रस्थितो यात्रां भार्यां नैवाभिनन्दति। भार्या वा नाभिनन्देत न स प्रतिनिवर्त्तते ॥ परकीयां स्वकीयां वा स्त्रियं

पुरुषमेव वा । ताडयित्वा तु यो मोहात्त दन्तं तस्य जीवितम् । यात्रायां प्रस्थितो यश्च ब्राह्मणा-नवमानयेत् । नासौ प्रतिनिवर्त्तेत तदन्तं तस्य जीवितम् ।।' इति । केचित्तु शुभाशुभशब्दान्यात्रा काले शुभाशुभसूचकानाहुः यदाह लल्लः—'प्रापय गच्छ विसर्जय निर्गच्छ व्रज संसर्पेति सिद्धि-कराः । खल्वेतेष्वप्यधिकाः प्रमोद जयं जीव शब्दाश्च । यागास्तिष्ठ निवर्त्त क्व गम्यते मूढ़ दुर्मते मोहात् । यात्रां नेच्छन्ति बुधाः क्षुतकासितभीतशब्दैश्च ।।' इति । काऽसितं रोगार्त-ध्वनिहिक्कादिः ।।९७।।

पीताम्बरा—प्रस्थान कर्ता के लिये अन्य नियम—यदि तेल, गुड़, लवण, पका मांस खाकर यात्रा को जाती है तो यात्री रोगी होकर लौटता है। अपनी या किसी भी स्त्री और ब्राह्मण आदिक ज्येष्ठ श्रेष्ठ कनिष्ठादिकों का अपमान कर यात्रा करने से मृत्यु होती है। अतः शान्त मन से सभी स्त्री द्विज ज्येष्ठ श्रेष्ठ कनिष्ठादिक समाज को प्रसन्न कर उनसे आशीर्वाद लेकर या देकर यात्रा करने से अवश्य सफलता मिलती है। यात्रा समय शुभ शब्दों का उच्चारण शुभ होता है ।। ९७ ।।

अथाकालवृष्ट्याख्यं दोषं सलक्षणं वसन्तमालिकाच्छन्दसाह—

यदि मास्सु चतुर्षु पौषमासादिषु वृष्टिर्हि भवेदकालवृष्टिः ।
पशुमर्त्यपदाङ्किता न यावद्वसुधा स्यान्नहि तावदेव दोषः ।। ९८ ।।

पीयूषधारा—यदीति । पौषादिषु चतुर्षु पौषमाघफाल्गुनचैत्राख्येषु मासेषु यदि वृष्टिर्भ-वेत्साऽकालवृष्टिः स्यात् पौषादयश्चत्वारो मासाः वृष्ट्यकालः । तत्र भवा वृष्टिरकालवृष्टि-रुच्यते । यदाह राजमार्तण्डः—'पौषादि चतुरो मासान् प्राप्ता वृष्टिरकालजा' इति । तत्रा-कालवृष्ट्यां जातायां यदि वसुधा पृथिवी यावत्पशवो गवादयः मर्त्या मनुष्यास्तेषां पदैश्चरणै-रङ्किता चिह्निता न भवति तावद्कालवृष्टिदोषो नास्ति । यदा पशुचरणाङ्किता वसुधा स्यात्तदाऽकालवृष्टेर्दोषवत्त्वमस्त्येव । यदाह राजमार्तण्डः—'वृष्टिः करोति दोषं तावन्नाकाल-सम्भवा राज्ञाम् । यावन्न भवति याने नरपशुचरणाङ्किता वसुधा ।।' इति । अस्यार्थः । अकालसम्भवा वृष्टिः राज्ञां गमने तावद्दोषं न करोति । यावद्वसुधा याने गमने नरपशु-चरणाङ्किता न भवति तेनातिस्वल्पया रजोपगममात्रं भवति । तत्र पश्वादिचरणचिह्ना-भावाद्दोषाभावः । यदा तु किञ्चिदधिका वृष्टिः स्यात्तदा कर्दमसद्भावात्पश्वादिचरणचिह्नानि जायन्ते तदा दोष एव । स च सप्तरात्रिक इत्युक्तं प्राक् ।। अत्र केचित् अल्पा वृष्टिर्दोषाय न महतीति वदन्ति । तत्रेयं युक्तिः अल्पवृष्ट्या कर्दमबाहुल्यात्पश्वादिचरणचिह्नानां वसुधायां दर्शनादत्यल्पवृष्टेर्दोषवत्त्वम् । महत्त्वात्तु वृष्ट्याः सकलकर्दमापाकरणात्पश्वादिचरणचिह्ना-दर्शनाद्दोषाभावः । तदेतदृषिप्रणीतसंहिताग्रन्थाभिहितविषयाणां केवलन्यायाभिनिविष्टमनसां मतम् । तथाहि । मार्गशीर्षशुक्लपक्षप्रतिपदादयः सार्द्धाः षण्मासा मेघानां गर्भग्रहणकालः । तदनन्तरं वृष्टिर्भवति । यदाह कश्यपः— सितादौ मार्गशीर्षस्य प्रतिपद्दिवसे तथा । पूर्वाषाढागते चन्द्रे गर्भाणां धारणं वदेत् ।।' इति । गर्गोऽपि—'शुक्लादौ मार्गशीर्षस्य पूर्वाषाढाव्यवस्थिते । निशाकरे तु गर्भाणां तदादौ लक्षणं वदेत् ।।' इति ।

मेघवृष्ट्यारम्भदितसङ्ख्या आगर्भग्रहणात्—

गर्भप्रसवकालज्ञानं वराहेण प्रोक्तं—'यन्नक्षत्रमुपगते गर्भ चन्द्रे भवेत्सचन्द्रवशात् । पञ्चनवतौ दिनशते १९५ तत्रैव प्रसवकालमायाति ।।' इति । माससंहितायां च—'पौषासित-पक्षाद्यैः श्रावणशुक्लादयो विनिर्द्देश्याः । सार्द्धैः षड्भिर्मासैर्गर्भविपाकः स्वनक्षत्रे ।।' इति ।

विशेषमाह वराहः—'सितपक्षभवाः कृष्णे शुक्ले कृष्णा असम्भवा रात्रौ। नक्तं प्रभवाश्चाहनि सन्ध्याजातास्तु सन्ध्यायाम् ॥' इति कृष्णाः कृष्णपक्षोद्भवा गर्भाः एवं सार्धषण्मासा गर्भनिग्रहकालः तदनन्तरं जायमाना वृष्टिः कालवृष्टिरिति।

अकालवृष्टिपदार्थनिर्णयः—

या चैतद्व्यतिरिक्ते काले वृष्टिर्गर्भनिर्गलनरूपा स्यात्साऽकालवृष्टिः। अकाले अयोग्ये काले वृष्टिरिति निर्वचनसम्भवात्। एतदेवाभिप्रेत्योक्तं—'सौदामिनीवर्षणगर्जितेषु' इति पद्यव्याख्याने महादेवेन गृहीतगर्भाणां मेघानां यो वृष्टिकाल उक्तस्तं विना यदि वृष्टिर्गर्भनिर्गलनरूपा स्यात्साऽकालवृष्टिरिति। तत्र मार्गशीर्षशुक्लादितो मेघानामवश्यं गर्भसम्भवात्तच्चिह्नभूता किंचिद्वृष्टिरवश्यमपेक्षितैव। यदाह वराहः—'पवनसलिलविद्युद्गर्जिताभ्रान्वितो यः स भवति बहुतोयः पञ्चभूताभ्युपेतः। विसृजति यदि तोयं गर्भकाले तु भूरि प्रसवसमयमित्वा शीकराम्भः करोति ॥' इति। तेन किञ्चिद्वृष्ट्यां गर्भसत्तानिश्चयादल्पावृष्टिर्न दोषमावहतीति। अल्पवृष्ट्यामपि त्रैराशिकवशादत्यल्पम्। बृहद्यात्रायां वराहोक्तेर्मार्गशीर्षगर्भाणां मन्दफलत्वम्। तं च मार्गशीर्षमतिक्रम्य पौषादिवृष्टेरकालिकत्वम्। अत एवोक्तम् 'पौषादिचतुरो मासान्प्राप्ता वृष्टिरकालजा ॥' इति।

अकालवृष्ट्यन्तरम्—

मन्दफलत्वादितुल्यन्यायतया च मार्गवृष्टेरप्यकालिकत्वम्। एतदप्युक्तं राजमार्त्तण्डेन—'मार्गान्मासात्प्रभृति मुनयो व्यासवाल्मीकिगर्गाश्चैत्रं यावद्गमनसमये वृष्टिदोषं वदन्ति ॥' इति। एवं सति गर्भनिर्गलनं विकृतिः सा यथा तुल्या सती नरपशुचरणाङ्कितत्वेन किञ्चिद्दोषं जनयति। यथा उपचीयमानापि विकृतिर्महान्तं दोषमादधाति। तेन महावृष्टेर्दोषवत्त्वमेव न दोषाभावः। अत एवोक्तं वराहसंहितायाम्—'गर्भसमयेऽतिवृष्टिर्गर्भाभावाय सा निमित्तकृता। द्रोणाष्टांशेऽभ्यधिके वृष्टेर्गर्भः क्षुतो भवति ॥ निमित्तं शुक्रास्तादि। बृहद्यात्रायामपि—'भृशं क्षरन्तो रुधिरारुणाभाः स शक्रचापा खररूक्षनादाः रणोपयोज्याकृतिचित्ररूपा रणाय दृष्टा गमनेम्बुवाहाः ॥' इति।

सप्ताहं वृष्टिः राजहन्त्री—

अन्यदपि तेनैवोक्तं—'सप्ताहं सततान्यर्तौ वृष्टिर्हन्यान्नराधिपम् ॥' इति। सतता निरन्तरा। मेघभेदस्तेनैवोक्तः—'सप्ताहान्तर्बलभयकरी वृष्टिरन्यर्त्तुजाता केचिद्यात्रामसितजलदैः संयुतां पूजयन्ति। चित्राभ्रायां बलमतिवधोरुक्सपीताम्बुदायां शुक्लाब्दायां न भवति चिराद्व्यम्बुदायां च नात्र ॥' इति। चित्राभ्रायां वृष्टाविति शेषः। अनेनैवाशयेन क्वचित्पठ्यते—'वृत्तेष्वकालवर्षे तु तावद्दोषो न जायते। यावन्न यानसमये पशुपादाङ्किता मही ॥' इति। तस्मात्सिद्धमेतत्—यदत्यल्पायामकालवृष्टौ दोषाभावः, अल्पायामकालवृष्टौ दोषाभावः, महत्यामकालवृष्टौ महादोष इति। वसिष्ठोऽपि वृष्टिविशेषे फलविशेषमाह—'अकाले सततं वृष्टिः सप्ताहान्नृपतेर्वधः। रक्तवृष्टौ रणोद्योगो मांसवृष्टौ महद्भयम् ॥ मकरश्चास्थिवर्षे स्याद्वसावर्षेऽपि तत्फलम्। क्षौद्रवर्षे राष्ट्रनाशस्त्वङ्गारैः पांशुभिर्गदः। धान्याकफलपुष्पाद्यैर्लोहैश्चापि महद्भयम्। पर्णैस्तृणैः काष्ठवर्षैस्तदेव फलमादिशेत् ॥ पाषाणवृष्टिरभ्रेषु प्राणिवृष्टिरथापि वा। चित्रवृष्टिर्यदि भवेत्सा हि स्यादीतिकारणम्' इति अत्र रक्तवृष्ट्यादीनां वृष्टित्वादेव

निषेधे सिद्धे पुनर्ग्रहणं कृतं तत्कालवृष्टावप्यासां वृष्टीनां दोषसूचनार्थम्। यत आसां वृष्टीनामुत्पातत्वमस्ति। तेषां संक्षेपोऽयं प्रकृतेरन्यत्वमुत्पातः' इति वराहोक्तेः ॥ ९८ ॥

पीताम्बरा—सलक्षण अकालवृष्टिदोष—यदि पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र—इन चारों मासों में वृष्टि हो तो उसे अकालवृष्टि कहते हैं। यद्यपि उक्त चारों मासों में भी साधारणतया वृष्टि होती रहती है, जो सदोष नहीं है। किन्तु अधिक वृष्टि से आर्द्र होकर पृथ्वी में पशु और मनुष्यों के पादचिह्न उत्पन्न हो जाने से ही अकालवृष्टि सदोष है। पृथ्वी में चरणचिह्न दृष्टिगत नहीं होने से उक्त चारों मासों की वृष्टि दोषावह नहीं होती। सदोष वृष्टि में यात्रा निषेध है ॥ ९८ ॥

अथामुमेवार्थं स्पष्टीकुर्वन्सन्नावश्यकयात्रां तच्छान्तिकं प्रसङ्गात् दुष्टशकुनोद्भूतारिष्टशान्तिकं चातिशक्वर्यां गाथाछन्दसाह—

अल्पायां वृष्टौ दोषोऽल्पो भूयस्यां दोषो भूया-
ञ्जीमूतानां निर्घोषे वृष्टौ वा जातायां भूपः।
सूर्येन्द्वोर्बिम्बे सौवर्णे कृत्वा विप्रेभ्यो दद्याद्
दुःशाकुन्ये साज्यं स्वर्णं दत्वा गच्छेत्स्वेच्छाभिः ॥ ९९ ॥

पीयूषधारा—अल्पायामिति। अल्पायामकालवृष्टावल्पो दोषः स्यात्। भूयस्यामतिशयेन बह्वी भूयसी तस्यामकालवृष्टौ भूयानतिशयेन महान्दोषः। अतो यत्प्राच्याः पठन्ति—'तावत्प्रयाणादिषु भूपतीनामकालवृष्टिः प्रकरोति दोषम्। यावद्भवेत्सञ्चरतां जनानां तथा पशूनां चरणाङ्किता भूः ॥' इति तदेतन्निर्मूलत्वाद्युक्त्यसहत्वाच्चोपेक्ष्यम्।

प्रस्थानोत्तरं मार्गमध्ये न दोषो यात्रायाम्—

अथं चाकालवृष्टयाख्यो दोषः प्रयाणानन्तरं सप्तरात्रं यावद्विलोकनीयमिति महादेवेन व्याख्यातम्। न तत्र प्रमाण पश्यामः। किन्तु जातायामकालवृष्टौ यात्रामेव न कुर्यात्। कृते तु स्वयं प्रस्थाने मार्गमध्ये नास्त्ययं दोषः। शुक्राद्यस्तादिदोषो मार्गमध्ये 'जीवः शशाङ्कः शुक्रो वा' इति वचनबलादङ्गीक्रियते। प्राच्यास्तु महत्यामकालवृष्टौ दोषाभावं वर्णयन्ति। तेषामाशयं न विद्मः।

यात्रावश्यकत्वेऽकालवृष्टौ दानम्—

सत्यप्यकालवृष्टयादिनिमित्ते आवश्यकयात्रायां दानमाह–जीमूतानामिति। जीमूतानां निर्घोषे शब्दे वृष्टावकालवृष्टौ जातायां वा सूर्येन्द्वोः सूर्यचन्द्रमसोर्बिम्वे स्वरूपे सौवर्णे यथाशक्ति सुवर्णनिर्मिते कृत्वा भूपो राजा विप्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्। यदाह माण्डव्यः 'दुर्दिने गर्जिते वृष्टयां सूर्याचन्द्रमसोर्द्वयोः। बिम्बे विधाय शान्त्यर्थं श्रोत्रियाय निवेदयत् ॥' इति। यद्यपि श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते' इति पाणिनिवचनात्' छन्दोऽध्येतृत्वेन श्रोत्रियत्वमुच्यते। तत्र वर्णत्रयसाधारणम्। तथापि प्रतिग्रहाधिकारी ब्राह्मण एव श्रोत्रियशब्देन व्याकर्तव्यः। अत एव मूले विप्रपदोपादानाम्।

वा अकालवृष्टौ यात्रावश्यकत्वे शान्तिः—

अकालवृष्टौ शान्तिर्महता ग्रन्थसन्दर्भेण बृहद्यात्रायां वराहेणाभ्यधायि। सा तत एवावधार्या।

अकालवृष्टौ यात्रानिषेधप्रतिसवविधिः—

क्वचिदकालवृष्टेरपवादः पठ्यते । यथा—'एकेनैकमहः प्रोक्तं द्वितीयेन त्रिरात्रकम् । तृतीयेन तु सप्ताहं दश रात्रमतः परम् । पौषे दिनत्रयं वर्षं माघे चैव दिनद्वयम् । फाल्गुने दिनमेकं तु चैत्रे तु घटिकाद्वयम् ॥' इति तदेतदप्यत्यायिककार्यविषयं ध्येयम् ।

आवश्यकयात्रायां दुष्टशकुने दानम्—

अथ प्रसङ्गाद्दुष्टेऽपि शकुने जातेऽवश्यविधेयायां यात्रायां दानमाह—दुःशाकुन्य इति । शकुनं एव शाकुन्यम् । चातुर्वर्ण्यादिवाकृतिगणत्वात्ष्यञ् । दुष्टं च तच्छाकुन्यं च दुःशाकुन्यं तस्मिन् दुष्टे शकुने वक्ष्यमाणे प्रस्थानकाले सम्भूते सति साज्यं सघृतं स्वर्णं सुवर्णं श्रोत्रियाय दत्वा स्वेच्छाभिर्गच्छेत् । यदाह माण्डव्यः—'यदापशकुनं पश्येद्विपरीतमुपस्थितम् । सघृतं काञ्चनं दत्त्वा निर्विशङ्कस्ततो व्रजेत् ॥ इति ॥ ९९ ॥

पीताम्बरा—सदोषवृष्टि में आवश्यक यात्रा विचार—यात्रा समय अल्पवृष्टि में अल्पदोष तथा अधिक वृष्टि में दोष अधिक होता है। प्रस्थान करने के अनन्तर मार्ग के मध्य में वृष्टि का दोष नहीं होता है।

बादलों की गर्जन अथवा वृष्टि होने से राजा ने सुवर्ण की सूर्य चन्द्रबिम्व प्रतिमा बनाकर श्रोत्रिय ब्राह्मणों को दान रूप में देनी चाहिए।

तथैव यात्रा समय में उत्पन्न विपरीत दुःशकुन दर्शन से (अपशकुन) घी और सुवण दान के अनन्तर राजा या व्यक्ति ने अपनी इच्छा से यथादिक् की यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए॥ ९९ ॥

इति यात्रोपयोगिदोषविवरणम्—

अथ शुभाशुभसूचकत्वेन द्वेधा शकुनाः सन्ति । तान्वक्तुकामस्तावच्छुभसूचकाञ्छकुनान् शार्दूलविक्राडिताभ्यामाह—

विप्राश्वेभफलान्नदुग्धदधिगोसिद्धार्थपद्माम्बरं
वेश्यावाद्यमयूरचाषनकुला बद्धैकपश्वामिषम् ।
सद्वाक्यं कुसुमेक्षुपूर्णकलशच्छत्राणि मृत्कन्यका
रत्नोष्णीषसितोक्षमद्यससुतस्त्रीदीप्तवैश्वानराः ॥ १०० ॥
आदर्शाञ्जनधौतवस्त्ररजका मीनाज्यसिंहासनं
शावं रोदनवर्जितं ध्वजमधुच्छागास्त्रगोरोचनम् ।
भारद्वाजनृयानवेदनिनदा माङ्गल्यगीताङ्कुशा
दृष्टाः सत्फलदाः प्रयाणसमये रिक्तो घटः स्वानुगः ॥ १०१ ॥

पीयूषधारा—विप्रेति । विप्रा बहवो द्वौ वा, न त्वेकः । अश्वः प्रसिद्धः, इभो हस्त अनुन्मत्तः । फलान्नदुग्धदधीनि प्रसिद्धानि 'गो स्त्रीगवी' सिद्धार्थाः सर्षपा सिरसा इति भाषा, पद्मं कमलम्, अम्बरं वस्त्रं स्वच्छम्, वेश्या गणिका, वाद्यं मर्दलादि, मयूरचाषौ पक्षिणौ नकुलः प्रसिद्धः, बद्धैकपशुः रज्ज्वादिवद्धो वृषः, आरक्तादि वर्णः, आमिषं मांसम्, सद्वाक्यं कार्यसिद्धिरस्त्वित्वादिवाक्यम् । कुसुमानि पुष्पाणि, इक्षवः प्रसिद्धाः, जलपूर्णकलशः, क्षत्रं प्रसिद्धम्, मृत् आर्द्रमृत्तिका, कन्या कुमारी रत्नं माणिक्यादि, उष्णीषं शिरोवेष्टनम्, सितो-उक्षा

श्वेतो वृषः अयमबद्धोऽपि, मद्यं प्रसिद्धम्, ससुतस्त्री सपुत्रापि काचित् स्त्री, दीप्तो जाज्वल्यमानोऽग्निः शिखावानित्यर्थः, आदर्शो दर्पणः, अञ्जनं सुर्मा, धौतवस्त्रं रजको वस्त्रनिर्णेक्ता, मीनो मत्स्यः, आज्यं घृतम्, सिंहासनं देवादेः, शावं शवमेव शावं मृतकं पृष्ठगामिलोकरोदनरहितम्, ध्वजः पताका, मधु क्षौद्रम्, छागो मेषः, अस्त्रं धनुरादि, गोरोचनं प्रसिद्धम्, भारद्वाजः पक्षी, नृयानं सुखासनम्, वेदनिनदः अधीयानानां ब्राह्मणानां मुखान्निःसरन्वेदध्वनिः माङ्गल्यं प्रसिद्धम्, गीतं गानम् अङ्कुशो हस्तिनिवारणमस्त्रम्, एते पदार्थाः गन्तुर्भूपादेः प्रयाणसमये यात्राकाले सम्मुखं दृश्यमानाः सत्फलदाः शुभफलदाः। तथा रिक्तो जलरहितो घट स्वानुगः स्वस्य पश्चाद्भागगामी सोऽपि शुभफलदः। जलेन भरिष्यमाणत्वात्। यदाह नारदः—'प्रज्वलाग्निश्च तुरगनृपासनपुराङ्गनाः। गन्धपुष्पाक्षतच्छत्रचामरान्दोलिका गजाः॥ भक्ष्येक्ष्वङ्कुशमृत्स्नान्नमद्वाज्यदधिगोवृषाः। मत्स्यकांसासुराधौतवस्त्रशङ्खरवध्वजाः॥ पण्यस्त्रीपूर्णकलशरत्नभृङ्गारदर्पणम्। भेरीमृदङ्गपटहशङ्खवीणादिनिःस्वनाः। वेदमङ्गलघोषाः स्युर्याने वै कार्यसिद्धिदाः॥' इति श्रीपतिरपि—'भारद्वाजो नाकुलश्चाषसंज्ञश्छागो बर्हो शोभनो वीक्षितः स्यात्॥ भृङ्गाराञ्जनवर्द्धमानमुकुराबद्धैकपश्वामिषोष्णीषक्षीरनृयानपूर्णकलशच्छत्राणि सिद्धार्थकाः। वीणाकेतनमीनपङ्कजदधिक्षौद्राज्यगोरोचनाः कन्याशङ्खसितोक्षवस्तुसुमनोविप्राश्वरत्नानि च। प्रज्वलज्ज्वलनदन्तितुरङ्गा भद्रपीडगणिकाङ्कुशमृत्स्नाः। अक्षतेक्षुफलचामरभक्ष्याण्यायुधानि च भवन्ति शुभानि॥ भेरीमृदङ्गमृदुमर्दलशङ्खवीणावेदध्वनिर्मधुरमङ्गलगीतघोषाः। पुत्रान्विता च युवतिः सुरभिः सवत्सा धोताम्बरश्च रजकोऽभिमुखः प्रशस्तः॥' इति। 'भृङ्गारः कनकालुका' इत्यमरः। वर्द्धमानः शरावः 'शरावो वर्द्धमानकः, इत्यमरः। वसिष्ठः—'दृष्टे शवे रोदनवर्जिते च सम्पूर्णयात्रा फलमेव तत्र। दृष्टः प्रवेशे तु शवः शवत्वं करोति तद्रोदनवर्जितोऽपि॥' इति। कश्यपोऽपि—'कार्यसिद्धिर्भवेद्दृश्ये शवे रोदनवर्जिते। प्रवेशे रोदनयुतः शवः स्यात्तु शवप्रदः॥' इति। वसन्तराजः—'आदाय रिक्तं कलश जलार्थी यदि व्रजेत्कोऽपि महाध्वगेन। पूर्णं समादाय निवर्त्ततेऽसौ यथा कृतार्थः पथिगस्तथैव॥' इति। एतानि शकुनानि यदि दैवात्स्युस्तदोत्तमान्येव। यदि वा स्वयं रचितानि तदापि शुभान्येव। यदाह वराहः—'स्वयमथ रचितान्ययत्नतो वा यदि कथितानि भवन्ति मङ्गलानि। स जयति सकलां ततो धरित्रीं ग्रहणदृशां श्रुतिपाठतो यथाहः' इति।

शकुनप्रयोजनमाह वराहः—

'अन्यजन्मान्तरकृतं शुभं वा यदि वाशुभम्। यत्तस्य पाकं शकुनो निवेदयति गच्छताम्॥' इति। लल्लोऽपि—'नक्षत्रस्य मुहूर्त्तस्य तिथेश्च करणस्य च। चतुर्णामपि चैतेषां शकुनो दण्डनायकः॥' इति।

लग्नबलेन शुभसूचकाः शकुनाः—

अत्र कैश्चिल्लग्नवशेन शुभसूचकाः शकुना उक्ताः—'लग्ने वाक्पतिशुक्राणां ब्राह्मणाः सम्मुखाः स्त्रियः। बुधशुक्रौ च केन्द्रस्थौ सवत्सा गौः प्रदृश्यते॥ चन्द्रसूर्यौ च भवतो दशमस्थौ यदाथवा। दीपादर्शौ सुमनसौ रजका धौतवाससः॥ सुतस्थाने यदा सौम्यो वृषो बद्धस्तु सम्मुखः। गुरुश्चेत्त्वनवमो दक्षिणे सद्मवायसः॥ चन्द्रो गुरुश्च सहजे श्वानो वामाङ्गभागतः। सर्वं कर्मायनवमे भारद्वाजोऽथ नाकुलः॥ चाषस्य दर्शनं वा स्याद्वामाङ्गे त्यन्तदुर्लभम्। आदि-

स्यो राहुसौरी च सहजस्थो कुमारिका ।। प्रौढानां सुभगानां वा दर्शनं सर्वकामदम् । षष्ठे तृतीये कर्माये भौमश्चेत्तत्फलं भवेत् ।। दास्यो वेश्या सुरा मांस लाभश्चैव सुनिश्चितः । · साष्टपञ्चमे यस्य जीवो ज्ञो वात्र वर्त्तते ।। आदर्शपुष्पमांसानि सुरादर्शश्च लाभदः । राहुभौमश्च मन्दश्च लग्नाद्यदि तृतीयगः । उद्धृतं गोमयं पश्येच्छीघ्रं लाभं धनं दिशेत् ।' इति । एवमादीनि शकुनानि लग्नबलेन शकुनग्रन्थेष्वभिहितानि । तानि तत एवावधार्याणीति विस्तरभयान्नात्राभिलिख्यन्ते इति ।। १००–१०१ ।।

पीताम्बरा—यात्रा में शुभशकुन—यात्रा के समय अधिक से अधिक जितने हों किन्तु कम से कम दो ब्राह्मण, घोड़ा, अनुन्मत्त हाथी, फल, अन्न, दूध, दही, गौ, सरसों, कमल, स्वच्छ वस्त्र, वेश्या, वाद्य, मृदंग आदिक, मोर, नेवला, पपीहा, रज्जु आदि से बद्ध एक बैल (जहाँ तक लाल वर्ण हो) मांस, "यात्रा में कार्यसिद्धि हो" इत्यादि प्रकार के शुभ वाक्य, पुष्प, ईख, जलपूर्ण कलश, छत्र, गीली मट्टी, कुँवारी कन्या, माणिक्यादि रत्न, पगड़ी, अवद्ध सफेद बैल, मद्य, सपुत्रवती (पुत्र के साथ) स्त्री प्रज्वलित, अग्नि, (ज्वालायुक्त अग्नि) दर्पण, धौतवस्त्र' धोती' मछली, घी, देवताओं का सिंहासन, लोकरोदन रहित, पीछे से ले जाया जाता हुआ मृतक (शव) पताका, मधु, बकरा, धनुषादिक, अस्त्र, गोरोचन, भरद्वाज पक्षी, पालकी, वेदध्वनि, गीत, हाथी को यथास्थिति देनेवाला अंकुश, प्रभृतिक अन्तिम उक्त पदार्थों में कोई या अधिक जो भी हो यात्राभिमुख सामने (आगे) दृष्टिगोचर हो तो उनसे समग्र यात्रा शुभफलदायिनी होती है ।

तथा जलरहित खाली घड़ा यात्रा कर्त्ता के पीछे दिखाई दे तो वह भी शुभ शकुन है। जैसे यह घड़ा जल से पूर्ण कर घड़ा घर में लाया जाता है उसी प्रकार राजा या व्यक्ति सफल और परिपूर्ण होकर यात्रा से वापस होकर अपने राष्ट्र देश नगर के राजभवन में या अपने आनन्ददायक हरि हर्ष निकेतन में पहुँचता है ।

अन्य जन्मान्तर में कृत शुभाशुभ कर्म के ज्ञापन में शुभाशुभ शकुन यात्रा के प्रतीक होते हैं ।। १००–१०१ ।।

अथाशुभसूचकान शकुनान् शार्दूलविक्रीडिताभ्यामाह—

वन्ध्याचर्मतुषास्थिसर्पलवणाङ्गारेन्धनक्लीबविट्
तैलोन्मत्तवसौषधारिजटिलप्रव्राट्तृणव्याधिताः ।
नग्नाभ्यक्तविमुक्तकेशपतितव्यङ्गक्षुधार्ता असृक्
स्त्रीपुष्पं सरठः स्वगेहदहनं मार्जारयुद्धं क्षुतम् ।। १०२ ।।
काषायी गुडतक्रपङ्कविधवाकुब्जाः कुटुम्बे कलि-
र्वस्त्रादेः स्खलनं लुलायसमरं कृष्णानि धान्यानि च ।
कार्पासं वमनं च गर्दभरवो दक्षेऽतिरुङ्गर्भिणी
मुण्डार्द्राम्बरदुर्वचोऽन्धबधिरोदक्या न दृष्टाः शुभाः ।।१०३।।

पीयूषधारा—वन्ध्येति । वन्ध्या कदापि गर्भसम्भावनारहिता, चर्माश्वादेश्चर्म, तुषं धान्यादितुषम्, अस्थिसर्पलवणानि प्रसिद्धानि, अङ्गारोनिर्धूमोऽग्निपिण्डः, इन्धनं काष्ठादि, क्लीबो नपुंसकः, विट् विष्ठा, 'अस्त्री विष्ठाविशौ समौ' इत्यमरः । तैलं प्रसिद्धम्, उन्मत्तो मद्यभूताद्यावेशवान्, वसा शरीरमांसविशेषः वसाग्रहणादन्ये मांसविभागाः समीचीनाः, औषधं प्रसिद्धम्,

अरिः शत्रुः, जटिलो जटावान्, प्रव्राट् संन्यासी, तृणं प्रसिद्धम्, व्याधितोऽचिकित्स्यव्याधिमान्, नग्नः अपरिहितवस्त्रः कुमारव्यतिरिक्तः, अभ्यक्तः कृततैलाभ्यङ्गः, विमुक्तकेशः प्रसृतकेशः, पतितो मद्यपानाद्यभिशापवान् द्विजः, व्यङ्गः छिन्ननासिकादिः, क्षुधार्त्तः क्षुत्पीडितः, असृक् रुधिरम्, स्त्रीपुष्पं स्त्रीणामृतुः, सरठः कृकलासः, गिर्गिधम इति भाषा प्राच्यानाम्, स्वगेहदहनं स्वगृहदाहः, मार्जारयुद्धम्, क्षुतं छिक्का, काषायी कषायो रागविशेषस्तेन रक्तं वस्त्रं काषायं तद्वान् । गुडतक्रपङ्कविधवाकुब्जाः प्रसिद्धाः, कुटुम्बे कलिः स्वपुत्रादिभिः सह कलहः, वस्त्रं प्रसिद्धम्, आदिशब्देन गुणकच्छत्रादिस्खलन स्वहस्तानिर्निमित्तं पतनम्, लुलाया महिषास्तेषां समरं युद्धम्, कृष्णानि श्यामवर्णानि धान्यानि माषादीनि, कार्पासं वमनं च प्रसिद्धम्, दक्षे दक्षिणभागे गर्दभस्य रवः शब्दः । अर्थाद्वामभागे गर्दभशब्दः साधीयान् । अतिरुट् क्रोधाधिक्यम्, गर्भिणी गर्भवती, मुण्डो मुण्डितशीर्षो यः कश्चित्, आर्द्राम्बरो जलार्द्रवस्त्रः दुर्वचः स्वमुखोत्थं परमुखोत्थं वा दुष्टं वाक्यम्, अन्धबधिरौ प्रसिद्धौ, उदक्या रजस्वला स्त्री, एते पदार्था गन्तुर्भूपादेर्यानसमये दृष्टाः सन्तो न शुभा न शुभफलदाः किन्तु गमने सत्यशुभफलदाः' यदाह कश्यपः—औषधवलीबबधिरैर्जटिलोन्मत्तपावकैः । अभ्यक्ताङ्गारकाष्ठास्थिचर्मान्त्रिचिररोगिभिः । तैलकार्पासलवणगुडतक्रतृणोरगैः । पङ्ककुब्जैकपदकमुक्तकेशबुभुक्षितैः ॥ सनग्नमुण्डैर्दृष्टस्तु यात्रा नैव फलप्रदा ॥' इति ।

श्रीपति—

तृणतुषफणिचर्माङ्गारकार्पासपङ्कैर्लवणगुडवसास्थिक्लीबतैलौषधैश्च । रिपुविडसितधान्यव्याधिताभ्यक्ततक्रैः पतितजटिलमुण्डोन्मत्तवान्तैर्न सिद्धिः । विमुक्तकेशकाषायनग्नेन्धनबुभुक्षितैः । कुब्जांधवन्ध्याबधिरैर्दृष्टैः सिद्धिर्न जायते ॥ कुटुम्बकलहो गृहज्वलनमार्त्तवं योषितो बिडालसमरं क्षुतं स्खलनगम्बरादेस्तथा । दुरुक्तमतिकोपता महिषयोश्च युद्धं भवेत्प्रयाणसमये नृणामभिमतार्थविच्छित्तये ॥' इति ।

बृहद्यात्रायां वराहः—

'कार्पासौषधकृष्णधान्यलवणक्लीबास्थितालानलं सर्पाङ्गारगराहिचर्मप्रवृताः केशारिम-
व्याधिताः । वान्तोन्मत्तजडान्धकास्तृणतुषक्षुत्क्षामतक्रारयो मुण्डाभ्यक्तविमुक्तकेशपतिताः काषा-
यिणश्चाशुभाः ॥' तालो हरितालः, गरो विषम्, केशारिः क्षुरादिः, 'ध्वजातपत्रायुधसन्निपातः
क्षितौ प्रयाणे यदि मानवानाम् । उत्तिष्ठतो वायुध‌‌ीति सङ्ग पतेत वा तन्नृपतेर्भयाय ॥' इति ।
योगयात्रायां वराहः—'न सरठो दृष्टः शुभाय क्वचित्' इति । चण्डेश्वरः—'खरोष्ट्रमहिषारूढा
अमाङ्गल्यादिसंयुताः । कर्णतालादिभिर्हीना विवशाः कृष्णवाससः ॥ मुक्तकेशातिकृष्णाङ्गास्तै-
लाभ्यक्तरजस्वलाः । गर्भिणीविधवोन्मत्ताः क्लीबांधबधिरा नराः ॥ एतेषां दर्शने जाते न गन्तव्यं
कदाचन ॥' इति । वसन्तराजः—'सर्वं शुभं दक्षिणतः कार्यं निन्द्यं तु वामतः ॥' इति ।

क्षुते फलानि दिग्यामभेदेन—

क्षुते विशेष उच्यतेऽस्माभिः । तत्र नारदः—'सर्वदिक्षु क्षुतं नष्टं गोक्षुतं मरणप्रदम् ।
अफलं तच्छ्रुतं वाक्यं मद्यं पीनसकैतवे ॥' इति । सर्वशाकुने—'अथ क्षुते फलं वक्ष्ये दिक्षु ग्राम-
क्रमेण च लाभो वह्निर्धनं मित्रं चतुःस्थानेषु पूर्वतः ॥ लाभो वह्निः सुतो वह्निः क्रमादाग्नेयतो

भवेत् । यामक्रमाद्दक्षिणस्यां धनमन्नमृतिः कलिः ॥ लाभो मित्रं सुखं वार्ता लाभो नैर्ऋत्यदेशतः । गमनोत्साहकलहवस्त्राप्तिः पश्चिमादिशि ॥ वायव्यायां जयो लाभः पुत्राप्तिर्मङ्गलं क्रमात् । शत्रुनाशो रिपुप्राप्तिर्लाभोनं चोत्तरे क्षुतम् ॥ सङ्ग्रामनाशरुग्बुद्धिरीशयामक्रमेण च । क्षुते गतघटीवारतिथियुग्वसुभिर्हृता ॥ विषमा लाभदा नित्यं समा विघ्नमृतिप्रदा । औषधे वाहनारोहे विवाहे शयनेऽशने ॥ विद्यारम्भे बीजवापे क्षुतं सप्तसु शोभनम् ॥' इति ।

वसन्तराजः—

'निषिद्धमग्रेऽक्षिणि दक्षिणे च धनव्ययं दक्षिणकर्णदेशे । तत्पृष्ठभागे कुरुतेऽरिवृद्धिं क्षुतं प्रकामं शुभमादधाति ॥ भोगाय वामश्रवणे स्वपृष्ठे कर्णे च वामे कथितं जयाय । सर्वार्थलाभाय च वामनेत्रे जातं क्षुतं स्यात्क्रमतोऽष्टधैवम् ॥' इति ॥ १०२–१०३ ॥

पीताम्बरा—यात्रा में अशुभ सूचक शकुन—गर्भ सम्भावना रहित स्त्री (वन्ध्या), घोड़ा आदिक के चर्म, धान की तुषा, हड्डी, सर्प, लवण, अङ्गारक, लकड़ी, हिंजड़े, विष्टा, तैल, उन्मत्त, चर्वी, औषधि, शत्रु, जटाधारी संन्यासी, तृण, रोगी, कुमार से अतिरिक्त, नग्न व्यक्ति, उबटन, लगाये हुए व्यक्ति, मुक्त केश, जाति पतित, अंगहीन, क्षुधित, रुधिर, रजस्वला स्त्री, गिरगिट, गृहदाह (अपना घर दाह दर्शन) मार्जार युद्ध, छींक, कषायवस्त्रधारी, गुड़, मठ्ठा, कीचड़, विधवा स्त्री, कुब्रड़ा, परिवार का कलह, अपने हाथ से वस्त्र छत्रादिक का गिरना, भैंसों की लड़ाई, कृष्ण वर्ण के अन्न (उरदादिक) रूई, वमन, अपने दाहिने भाग का गर्दभ रोदन, (वाम भाग का गर्दभ रोदन शुभ होता है) अत्यन्त क्रोध, गर्भिणी स्त्री, मुण्डित शिरस्क व्यक्ति, गीले वस्त्र का व्यक्ति, अपने या अन्य के मुख से दुर्वचन (कटु शब्द) अन्ध, वधिर रजस्वला स्त्री इत्यादि इत्यन्त ये पदार्थ यात्रा के समय दृष्टिपथ में में पड़ने से यात्रा अशुभ सूचिका होती है ॥ १०२-१०३ ॥

अथान्यच्छकुनं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

गोधाजाहकसूकराहिशशकानां कीर्तनं शोभनं
नो शब्दो न विलोकनं च कपिऋक्षाणामतो व्यत्ययः ।
नद्युत्तारभयप्रवेशसमरे नष्टार्थसंवीक्षणे
व्यत्यस्ताः शकुना नृपेक्षणविधौ यात्रोदिताः शोभनाः ॥१०४॥

पीयूषधारा—गोधेति । गोधा गोह इति प्राच्याः, घोरपड इति दाक्षिणात्याः, जाहकः गात्रसङ्कोची जन्तुविशेषः, सूकराहिशशकाः प्रसिद्धाः । यानसमये एषां गोधादीनां कीर्तनं स्वमुखेनान्यमुखेन वोच्चारणम् शुभफलदातृ स्यात् च पुनः एषां गोधादीनां शब्दो रुतं विलोकनं दर्शनं च न शोभनं निषिद्धम् । कपिऋक्षाणामित्यत्र 'ऋत्यकः' इति प्रकृतिभावः । व्यत्ययः यथा वानराणां भल्लूकानां कीर्तनं निषिद्धम् । तेषामेव शब्दितं दर्शितं वा न निषिद्धमित्यर्थः । यदाह श्रीपतिः—'जाहकादिशशसूकरगोधाकीर्त्तनं शुभमुदाहृतमाद्यैः । मोहनं न च विलोकनमेषामन्यथा गदितमृक्षकपीनाम् ॥' इति । वशिष्ठः—शाखामृगोलूककानां दर्शनं शब्दितं तथा । शशशूकरगोधानां यातुः कार्यविनाशनम् ॥' इति । शाखामृगो वानरः ।

अथ विशेषमाह

नद्युत्तारेति । नद्या गङ्गादेरुत्तारणे भये भयसम्बन्धिनि कार्ये पलायनादिके प्रवेशे गृह-

प्रवेशे समरे सङ्ग्रामे नष्टस्यार्थस्य द्रव्यस्य समीक्षणे गवेश्रणे एतत्सम्बन्धिनि गमने क्रियमाणे सति प्रागुक्ताः शुभाशुभाः शकुनाः व्यत्यस्ताः ज्ञेयाः। शुभशकुना विप्राश्वेभेत्यादयोऽशुभा ज्ञेयाः, वन्ध्याचर्मेत्याद्यशुभकुनाः शुभफलदा ज्ञेयाः इत्यर्थः। यदाह वसन्तराजः—'नद्युत्तारे भये युद्धे प्रवेशे नष्टवीक्षणे। शकुना व्यस्तगाः शस्ताः नृपालोके प्रयाणवत् ॥' इति। वराहः—'नद्युत्तर-रणयुद्धेषु प्रवेशे नष्टमार्गणे। यानव्यस्तगताः शस्ताः शकुना दैवचिन्तकैः ॥' इति।

राजदर्शनार्थं गन्तॄणां शकुनानि—

नृपेति। नृपस्येक्षणविधौ दर्शनार्थगमने यात्रायामुदिता विप्राश्वेभेत्यादयः शुभशकुनाः शोभनाः ज्ञेयाः 'नृपालोके प्रयाणवत्, इत्युक्तः। श्रीपतिरपि—'नृपावलोकेन शकुनः प्रयाणवत्' इति राजदर्शनस्य भयस्थानत्वात्तदपवादोऽयम् ॥ १०४ ॥

पीताम्बरा—अन्य शुभ शकुन (दर्शन संस्मरण)—यात्रा समय मे, गोध (गोह) जाहक (गात्रसंकोची जन्तु विशेष), सूकर, सर्प, खरगोश इनका दर्शन और किसी अन्य मुख से या अपने मुख से उच्चारण और श्रवण शुभ कहा गया है। किन्तु इनका स्वयं दर्शन या स्वयं शब्द अशुभ होता है। वानर और रीछ का कीर्तन अशुभ, वानर रीछ का स्वयं का शब्द और दर्शन शुभ होता है।

भय से नदी में पार उतरते समय, गृहप्रवेश, युद्ध, और नष्ट द्रव्य के अन्वेषण के समय उक्त शुभ शकुन अशुभ और अशुभ शकुन शुभ होते हैं।

राजदर्शन के समय यात्रा में कथित शुभ शकुन कहे जाते हैं ॥ १०४ ॥

अथ कोकिलादीनां वामाङ्गभागेन शकुनमनुष्टुभाह—

वामाङ्गे कोकिला पल्ली पोतकी सूकरी रला।
पिङ्गला छुच्छुका श्रेष्ठाः शिवाः पुरुषसञ्ज्ञिताः ॥ १०५ ॥

पीयूषधारा—वामाङ्गेति। कोकिलापल्लयौ प्रसिद्धौ, पोतकी दुर्गेति पितृचरणाः, सूकरी जात्यचटिका, रला पक्षिविशेषः, पिङ्गला भैरवी, छुच्छुका छच्छुन्दरी, शिवा शृगाली, पुरुष-सञ्ज्ञिता पुन्नामानः कपोतखञ्जनतित्तिरहंसादयः। एते गच्छतां राजादीनां वामाङ्गे शरीरवाम-भागे शस्ताः स्युः। यदाह श्रीपतिः—'छुच्छुका भवनगोधिका रला पिङ्गलारिकवधूश्च पोतकी। सूकरी पुरुषसंज्ञिताः शिवा वामतः खलु यियासतां शुभाः' इति।

वराहोऽपि—

शिवाश्यामारलाछुच्छुपिङ्गलागृहगोधिकाः सूकरी परपुष्टा च पुन्नामानश्च वामतः इति श्यामा पोतकी। भवनगोधिका पल्ली, परपुष्टा कोकिला ॥ १०५ ॥

पीताम्बरा—यात्रा समय वामभागीय शकुन—कोकिल, छिपकली, कबूतरी, (पोतकी दुर्गा) सूकरी, रला (पक्षि विशेष), पिंगला (भैरवी), छुछुन्दरा, शृगाली, तथा पुल्लि-ङ्गवाचक, कपोत खञ्जन, तित्तिर, हंसादिक पक्षी यात्रा के समय वामविभाग में शुभद होते हैं ॥ १०५ ॥

अथ दक्षिणाङ्गभागामवस्थितं शकुनं चानुष्टुभाह—

छिक्करः पिक्कको भास श्रीकण्ठो वानरो रुरुः।
स्त्रीसञ्ज्ञकाः काकऋक्षश्वानः स्युर्दक्षिणाः शुभाः ॥ १०६ ॥

पीयूषधारा—छिक्कर इति। छिक्करो मृगजातिः, पिक्ककः पक्षिविशेषः, भासः पक्षी, श्रीकण्ठः पक्षिविशेषः, वानरः प्रसिद्धः, रुरुर्मृगविशेषः, स्त्रीसञ्ज्ञकाः। काकः प्रसिद्धः। ऋक्षो भल्लूकः। अत्रापि 'ऋत्यकः' इति प्रकृतिभावः। श्वा कुक्कुरः, एते यात्रायां गन्तुर्भूपादेः दक्षिणभागगताः शुभाः शुभफलदाः। यदाह श्रीपतिः—'ऋक्षो मासश्छिक्करो वानरश्च श्रीकण्ठः श्वा पिक्ककाख्यो रुरुश्च। ये स्त्रीसञ्ज्ञा दक्षिणास्ते प्रशस्ताः प्रोक्ताः पूर्वैः सूरिभिस्ते प्रयाणे' इति।

वराहः--

स्त्रीसञ्ज्ञाश्चाषभषकपिकश्रीकर्णछिक्कराः। शिकिश्रीकण्ठपिककरुरुश्येनाश्च दक्षिणाः॥'

इति भषकः श्वा।

दिक्परत्वेन शकुनाः—

वराहेण प्राच्यादिदिक्परत्वेन शकुना उक्ताः—'कुक्कुटेभचिरल्वाश्च शिखिवञ्जुलछित्कराः। बलिनः सिंहनादाश्च कूटपूरी च पूर्वतः॥ क्रोष्टुकोलूकहारीतकाककोकर्क्षपिङ्गलाः। कपोतरुदिताक्रन्दक्रूरशब्दाश्च याम्यतः॥ गोशशक्रौञ्चलोमाशहंसक्रोशकपिञ्जलाः विलोमोत्सववादित्रगीतहासाश्च वारुणाः॥ शतपत्रकुरङ्गाखुमृगैकशफकोकिलाः। चाषशल्यकपुण्याहघण्टाशङ्खरवा उदक् इति॥ १०६॥

पीताम्बरा—यात्रा के समय दक्षिण विभागीय शुभ शकुन—स्त्रीसंज्ञक मृगविशेष छिक्कर, पक्षिविशेष पिक्कक, भास, श्रीकण्ठ पक्षिविशेष, वानर, मृगविशेष रुरु, तथा काक, रीछ और कुत्ता यात्रा समय दक्षिण भाग में शुभ होते हैं॥ १०६॥

अथोक्तव्यतिरिक्तानां मृगपक्षिणां सामान्यतः प्रादक्षिण्येन शकुनमनुष्टुभाह—

प्रदक्षिणगताः श्रेष्ठाः यात्रायां मृगपक्षिणः।
ओजा मृगा व्रजन्तोऽतिधन्या वामे खरस्वनः॥ १०७॥

पीयूषधारा—प्रदक्षिणेति। रुरुव्यतिरिक्ता मृगाः पक्षिणश्च यात्रायां प्रादक्षिण्येन गताश्चलिताः श्रेष्ठाः शुभफलदाः स्युः। परन्तु मृगा ओजा विषमसख्यास्त्रिपञ्चसप्तादयश्चेद्व्रजन्तो दृष्टाः स्युस्तदातिधन्याः। यदाह श्रीपतिः—'मृगा विहङ्गाश्च गताः प्रदक्षिणां महीभृतां काङ्क्षितकार्यसिद्धये। मृगाः व्रजन्तः परभोजसख्यया' इति।

तत्र पक्षिणां विषमसंख्याः शकुनाः खरस्वनो वामे शुभः—

वराहस्तु पक्षिणामपि विषमसंख्याकत्वमाह। यथा—ओजाः प्रदक्षिणं शस्ता मृगाश्वनकुलाण्डजाः' इति। अण्डजाः पक्षिणः वामे इति। स्ववामभागे खरस्वनो गर्दभशब्दोऽतिधन्यः।

शकुनाः क्वचिन्निष्फलाः

शकुनानां कियतां कालविशेषे नैष्फल्यमाह—'न च ग्राम्यो वने ग्राह्यो नारण्यो ग्रामसंस्थितः। दिवाचरो न शर्वर्यां न च नक्तञ्चरो दिवा॥ द्वन्द्वरोगादितस्तत्र कलहामिषकाङ्क्षिणः आपगान्तरिता मत्ता न ग्राह्याः शकुनाः क्वचित्॥ रोहितास्वजवालेयकुरङ्गोष्ट्रमृगाः शशाः। निष्फलाः शिशिरे ज्ञेया वसन्ते काककोकिलौ। न तु भाद्रपदे ग्राह्याः सूकराश्च वृकादयः शर-

द्यूक्षादयः क्रौंचाः श्रावणे हस्तिचातकौ । व्याघ्रर्क्षवानरद्वीपिमहिषा सविलेशयाः । हेमन्ते निष्फला ज्ञेया बालाः सर्वे विमानुषाः ।।' इति ।

स्थानभेदेन शकुनो न शुभफलदः—

स्थानविशेषे शकुनः शुभोऽपि दुष्टफलद इत्याह वराह एव–'प्रभग्नशुष्कद्रुमकण्टकेषु श्मशानभस्माग्नितुषाकुलेषु । प्राकारशून्यालयजर्जरेषु सौम्योऽपि पापः शकुनः प्रकल्प्यः ।।' इति

दुःशकुननिन्दा—

विरुद्धशकुननिन्दाभिहिता दैवज्ञमनोहरे—'वरं शुभं दुर्जनकृष्णसर्पौ वरं क्षिपेत्सिंहमुखे स्वमङ्गम् । वरं तरेद्वारिनिधिं भुजाभ्यां नोल्लङ्घयेद्दुःशकुनं कदापि ।।' इति ।। १०७ ।।

पीताम्बरा—यात्रा समय मृगविशेष रुरु को छोड़ शेष मृग पक्षी आदिकों का दक्षिण भाग में प्रचलन से यात्रा श्रेष्ठ होती है । तथापि उक्त विषम संख्यक ३, ५, ७ पक्षी या मृग दक्षिण भाग में चलते उड़ते देखे गये, यात्री के धन्य भाग के लिए होते हैं ।

तथा यात्रा समय बायीं तरफ का गर्दभ स्वर यात्रा में शुभ यात्रा सूचक होता है ।। ११७ ।।

अथावश्यककर्तव्यायां यात्रायां विरुद्धे शकुने जाते किं कर्तव्यमित्यनुष्टुभाह—

आद्येऽपशकुने स्थित्वा प्राणानेकादश व्रजेत् ।
द्वितीये षोडश प्राणांस्तृतीये न क्वचिद्व्रजेत् ।। १०८ ।।

पीयूषधारा—आद्य इति । निर्गमसमये यदापशकुने 'वन्ध्याचर्म' इत्यदिके विरुद्धे शकुने आद्ये प्रथमे सञ्जाते चेति एकादशसंख्याकान् स्थित्वा 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया । एकादश प्राणपरिच्छेद्यकालं स्थित्वेत्यर्थः । ततः समीचीने शकुने व्रजेत् ।

तत्रापि द्वितीयेऽपशकुने संवृत्ते षोडशसंख्याकान् प्राणान् स्थित्वा शुभशकुने व्रजेत् । तत्रापि पुनस्तृतीये विरुद्धे शकुने संवृत्ते क्वचिदपि न व्रजेत्किन्तु परावृत्य गृहमागच्छेत् । यदाह वसन्तराजः—'जाते विरुद्धे शकुनेऽध्वनीनो व्यावृत्य कृत्वा करपादशौचम् । आचम्य च क्षीरतरोरधस्तात्तिष्ठेत्प्रपश्येच्छकुनान्तराणि' इति ।

श्रीपतिः—

आद्ये विरुद्धे शकुने प्रतीक्ष्य प्राणान्नृपः पञ्च च षट् प्रयायात् । अष्टौ द्वितीये द्विगुणास्तृतीये व्यावृत्य नूनं गृहमभ्युपेयात् ।।' इति । प्राणशब्देन विंशतिलघ्वक्षराणि दशगुर्वक्षराणि वा यावता कालेन पूर्यन्ते तावान् काल उच्यते । यदाह शौनकः—'लघ्वक्षरैः स्फुटोक्तैः प्राणाः कथितस्तु विंशतिभिः' इति । भास्करः—'गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुः' इति । अन्यत्रापि 'दशगुर्वक्षरैः प्राणः' इति ।

त्रयः प्राणायामा इति मतान्तरम्—

कश्यपेन तु प्राणायामत्रयमेव प्रतीक्ष्यमित्युक्तम् । यथा—'यायी विरुद्धशकुनमादौ दृष्ट्वा प्रयत्नतः । प्राणायामत्रयं कुर्याद्द्वितीये द्विगुणं चरेत् ।। तृतीये पुनरावृत्य शान्त्या यायाद्दिनान्तरे ।।' इति । प्राणायामस्तु वर्णत्रये प्रसिद्धः ।

अवश्ययात्रायामपशकुने शान्तिः—

शान्तिरुक्ता दैवज्ञमनोहरे—'यदा हि शकुनं पश्येद्विपरीतमुपस्थितम् । सघृतं काञ्चनं दत्त्वा निर्विशङ्कः सुखं व्रजेत् ॥' इति । एतच्च मूले स्पष्टमुक्तम्—'दुःशाकुन्ये साज्यं स्वर्णं दत्त्वा गच्छेत् स्वेच्छाभिः' इति ।

निर्दोष यातू राज्ञः फलम्—

एवं निखिलदोषशुद्धिं विचार्य शुभलग्ने गन्तुर्भूपस्य शत्रुपराजयपूर्वकस्तन्मरणपूर्वको जयो वा भवत्येव ।

जिते शत्रुनगरे राज्ञा वर्ज्यानि—

तत्र शत्रुनगरे जिते सति राज्ञा किं कार्यमित्याह वसिष्ठः—'विगजतुरगभीतान्पुण्यलोकाभिलाषान्विरथशिथिलवस्त्रान्मुक्तशस्त्रास्त्रकेशान् । तृणमुखगतसत्त्वान्प्राञ्जलीनुह्यमानान्क्षितिपतितनयादीन्युद्धभूमौ न हन्यात् ॥ सपत्नदेशान्नगरं प्रविश्य महीपतिर्देवगुरुद्विजार्थे । कुर्यान्न वाञ्छां न कुलाङ्गनानां प्राणाभिलाषी च कदाचिदेव ॥' इति । वराहोऽपि—नार्ता न भीता न तृणाननाश्च विमुक्तशस्त्रा विपलायमानाः । क्षीणायुधा वाजिगणावतीर्णा ह्येते न वध्या न च पीडनीयाः ॥ कुलैकतन्तुः शरणङ्गतो वा कृताञ्जलिर्यश्च वदेत्तवास्मि । अयुध्यमानानवगम्य चान्यान्न बालकान्स्त्रीपरिरक्षितांश्च ॥' इति ग्रन्थकर्त्रा तदर्थकं पद्यं नोपनिबद्धम् । मुहूर्तविचारेऽनुपयोगात् । यत्तु श्रीपतिनोक्तम्—'न परविषयप्राप्तौ राजा द्विजामरसज्जनद्रविणहरणे चेतः कुर्यान्न वा कुलयोषिताम् । विरजतुरगानार्त्तान्हिन्यान्न भीतनिरायुधान् प्रमुदितमनाः मैन्ये शस्ते क्षणे स्वपुरं विशेत्' इति तत् 'महतामनुरोधो न्याय्यः' इति मनस्यालोच्याभिहितम् ॥ १०८ ॥

पीताम्बरा—यात्रा में विरुद्ध शकुन विचार—प्रथम अपशकुन में ११ श्वास, द्वितीय अपशकुन में १६ श्वासा, रुककर पुनः शुभ शकुन की प्राप्ति से यात्रा करनी चाहिए । किन्तु तृतीय अपशकुन पर तो यात्रा रोक ही देनी चाहिए । तृतीय अपशकुन की यात्रा कदापि नहीं करनी चाहिए । प्रथम द्वितीय अपशकुन में प्राणायाम के अनन्तर यात्रा करनी चाहिए ॥१०८॥

तत्र शस्ते क्षणे प्रवेशस्योक्तत्वाद्विजययात्रां विधाय परावृत्य गृहमागतस्य भूपस्य यात्रानिवृत्तिगृहप्रवेशोऽयमुहूर्तं जगत्यामुपजातिकाछन्दसाह—

यात्रानिवृत्तौ शुभदं प्रवेशनं मृदुध्रुवैः क्षिप्रचरैः पुनर्गमः ।
द्वीशेऽनले दारुणभे तथोग्रभे स्त्रीगेहपुत्रात्मविनाशनं क्रमात् ॥१०९॥

पीताम्बरा—यात्रानिवृत्ताविति । चतुर्धा प्रवेशः । नववधूप्रवेशः, सुपूर्वप्रवेशः, अपूर्वप्रवेशः, द्वन्द्वाभयप्रवेशश्चेति । तत्र नववधूप्रवेशः प्रागुक्तः । अपूर्वप्रवेशद्वन्द्वाभयप्रवेशौ वक्ष्येते । इह तु सुपूर्वप्रवेश उच्यते । तत्र नववधूप्रवेशस्यान्वर्थसंज्ञाविज्ञानादेव तल्लक्षणं नोक्तं कैश्चिदपि ।

त्रिविधगृहप्रवेशलक्षणानि—

अपूर्वादित्रिविधगृहप्रवेशलक्षणान्याह वसिष्ठः—'अपूर्वसंज्ञः प्रथमः प्रवेशो यात्रावसाने च सुपूर्वसंज्ञा । द्वन्द्वाभयस्त्वग्निभयादिजातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः ।' इति । यस्तु भूपस्य समरविजययात्रां विधाय गृहमागतस्य प्रवेशः न सुपूर्वसंज्ञः । यस्तु अग्निभयेनाग्निकृतदाहेनादिशब्देन

नद्यादिसमीपवर्तित्वाज्जलाप्लवनेन वा क्रुद्धराजादिपातनेन वा गेहनाशस्तद्गृहं पुनर्यदा सम्पाद्यते तस्मिन् यः प्रवेशः स द्वन्द्वाभय इत्युच्यते । अन्वर्थसंज्ञा चेयम् द्वन्द्वं शीतोष्णम् । शीतशब्देन जलमुष्णशब्देनाग्निरुच्यते लक्षणया । जलाप्लवनेन वा अनवरतकियद्दिवसवृष्टिपातेन वा गृहनाशस्तज्जलमयम् । अग्निकृतदाहेन यो गृहनाशस्तदग्निभयम् । तस्माच्छीतोष्णरूपात् द्वन्द्वादपुनरुत्थापनेन यद्भयं तद्द्वन्द्वभयमित्युच्यते । द्वन्द्वाभयं विद्यते यस्मिन्निति 'अर्श आदिभ्यो अच्' इति मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययः । तादृशः प्रवेशो द्वन्द्वाभय इति । अत्र गुरुशुक्रास्तादिकालशुद्धिविचारस्तु नूतनोत्थापितगृहप्रवेशे एव, न द्वन्द्वाभयसुपूर्वसंज्ञकप्रवेशयोः । वास्तुपूजा सर्वेष्वपि प्रवेशेषु । यदाह वसिष्ठः—'नवप्रवेशे त्वथ कालशुद्धिर्न द्वन्द्वसौपूर्विकयोः कदाचित् । प्रवेशपंचाङ्गदिनेषु लग्ने वास्त्वर्चनं पूर्ववदेव कुर्यात् ॥' इति । पूर्ववत्पूर्वस्मिन्नपूर्वे गृहप्रवेशे यथा वास्त्वर्चनं तथाऽपरयोरपि । अमुमेवाशयं मनसि निधायाग्रे ग्रन्थकृद्वक्ष्यति—'जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि मार्गोर्जयोः श्रावणिकेऽपि सत्स्यात् । वेशोंऽबुपेज्यानिलवासवेषु नावश्यमास्तादिविचारणात्र ॥' इति । अतोऽत्र यात्रानिवृत्तिप्रवेशमुहूर्त्तविचारे शुक्रास्तादिदोषविचारो नाभिहितः । किन्तु यथाकथञ्चित्पञ्चाङ्गशुद्धिमात्रमवेक्ष्यम् । विशेषतश्च पञ्चाङ्गशुद्धिं लग्नशुद्धिञ्चाग्रे वक्ष्यति । साप्यत्र यथासम्भवमूह्या । नक्षत्रशुद्धिस्त्वेवंविधे प्रवेशविशेषाभिधानान्न ग्रन्थकृतोक्ता ।

तत्र वास्त्वर्चनभूतबल्योः कालः—

तत्र कालशुद्धिमाह श्रीपतिः—'अथ प्रवेशे नवमन्दिरस्य यात्रानिवृत्तावथ भूपतीनाम् । सौम्यायने पूर्वदिने विधाय वास्त्वर्चनं भूतबलिं च सम्यक् ।' इति । नारदोऽपि—'अथ सौम्येऽयने कार्यं नववेश्मप्रवेशनम् । राज्ञां यात्रानिवृत्तौ च' इति । सौम्यायन इत्येतत्तु राज्ञां यात्रानिवृत्तौ कालविलम्बसत्वे बोद्धव्यम् । वसिष्ठस्वरसात् ।

स्मृत्योर्विरोधे विषयभेदकल्पना युक्ता न विकल्पः—

स्मृत्योर्विरोधविषयकल्पनोचिता न तु विकल्पः । यथोक्तम्—'स्मृतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्म्माबुभौ स्मृतौ । स्मृतिद्वैधे तु विषयः कल्पनीयः पृथक्-पृथक् ॥' इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

यात्रातो निवृत्तौ प्रवेशे नक्षत्राणि—

यात्रानिवृत्ताविति । मृदूनि चित्रानुराधामृगरेवत्यः । ध्रुवाणि रोहिणीत्र्युत्तराश्च । एभिर्नक्षत्रै राज्ञां यात्रानिवृत्तौ प्रवेशनं शुभदम् । यदि क्षिप्रैः अश्विनीपुष्यहस्ताभिजिद्भिश्चरैः श्रवणधनिष्ठाशततारकापुनर्वसुस्वातीभिर्नक्षत्रैः प्रवेशनं स्यात्तदा पुनरपि राज्ञो गमो यात्रा स्यात् । तस्मादेतानि मध्यमानि । द्वीशादिनक्षत्रेषु प्रवेशे क्रमात् स्त्र्यादीनां नाशः । यथा विशाखाया प्रवेशे स्त्रियो राज्ञ्याः मरणं स्यात् । कृत्तिकायां प्रवेशे गृहनाशनमग्निना गृहं दग्धं स्यात् । दारुणभे मूलज्येष्ठार्द्राश्लेषासु प्रवेशे पुत्रस्य राजकुमारस्य मरणं स्यात् । तथोग्रभे पूर्वात्रयभरणीमघासु प्रवेशे आत्मनः स्वस्यैव राज्ञो मरणं स्यादित्यर्थः । यदाह श्रीपतिः—'शुभप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवाख्यैः विप्रैश्चरैः स्यात्पुनरेव यात्रा । उग्रैर्नृपो दारुणभैः कुमारो राज्ञी विशाखासु विनाशमेति । कृत्तिकासु भवनं कृशानुना दह्यते प्रविशतां न संशयः ॥' इति कृशानुरग्निः । अथाग्रे ग्रन्थकृता प्रोक्तापि पञ्चाङ्गलग्नशुद्धिरत्रोपयोगान्मूलवाक्यान्युच्यन्ते । वसिष्ठः—'चन्द्रजार्यसितवासरेषु तु श्रीकरं सुखमहार्थलाभदम् । सूर्यसूनुदिवसैः स्थिरप्रदं किन्तु चौरभयमत्र विद्यते ॥' इति ।

श्रीपतिः—

'रिक्तातिथिर्भूसुतभानुवारौ निन्द्याश्च योगाः परिवर्जनीयाः ।
मेषः कुलीरो मकरस्तुला च त्याज्याः प्रवेशे हि तथा तदंशाः ॥' इति ।

निन्द्यलग्नानां सापवादतया फलानि—

अत्र मेषादिनिन्द्यलग्नानां फलं सापवादमुक्तम् । राजमार्त्तण्डः—'भूपो यात्रा मेषलग्नप्रवेशे नाशं गच्छेत्कर्कटस्योदये च । व्याधिं तौलिन्याश्रिते लग्नवर्तिन्याकेकेरे प्राप्नुयाद्धान्यनाशम् ॥' आकेकेरो मकरः । 'लग्नेऽन्यत्रांशकेऽन्येषामेते दुष्टफलप्रदाः । शुभान्यन्यानि लग्नानि प्रवेशे मुनयो विदुः । निन्दिता अपि शुभांशसमेतास्तौलिमेषमकराः सकुलीराः । कर्तृभोपचयगाश्च विलग्ने राशयः शुभफलाय भवन्ति ॥' इति ।

वशिष्ठः—

त्रिकोणकेन्द्रत्रिधनायसंस्थैः शुभैस्त्रिषष्ठायगतैः खलैश्च । लग्नान्त्यषष्ठाष्टविवर्जितेन चन्द्रेण लक्ष्म्यानिलयप्रवेशः ॥ न नैधने भेऽपि न चाष्टलग्ने पञ्चेष्टकेष्यष्टमशुद्धियुक्ते । कार्यः प्रवेशो न चरांशलग्ने शुभेक्षिते वाप्यथ संयुते वा ॥ प्रवेशलग्नान्निधनस्थितो यः क्रूरग्रहः क्रूरगृहे यदि स्यात् । प्रवेशकर्त्तारमथ त्रिवर्षाद्धन्त्यष्टवर्षैः शुभराशिगश्चेत् ॥' इति ।

तत्र प्रवेश प्रकारः—

अन्यदप्याह वसिष्ठ एव—'कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोऽर्कं विप्रान्पूज्यानग्रतः पूर्णकुम्भम् । हर्म्यं रम्यं तोरणैस्त्रन्वितानैः स्त्रीभिः स्रग्वी गीतवाद्यैर्विशेत्तत् ॥' इति ।

वामसूर्यज्ञानोपायः—

वामसूर्यज्ञानोपायमाह विश्वकर्मा—'लग्नात्प्रागादितो दिक्षु द्वौ द्वौ राशी नियोजयेत् । एकमेकं न्यसेत्कोणे सूर्यं वामे विचिन्तयेत् ॥'

यात्रामासान्नवमे दिने प्रवेशो न कार्यः—

अत्रेदं ध्येयम् । यत्र मासे यात्रा कृता तन्मासान्नवमे मासि यात्रादिनान्नवमदिने वा प्रवेशो निषिद्धः । यदाह गुरुः—'निर्गमान्नवमे मासि प्रवेशो नैव शोभनः । नवमे दिवसे चैव प्रवेशं नैव कारयेत् ॥' इति । एतत्सविशेषं नूतनगृहप्रवेशव्याख्यानावसरेऽभिधास्यते इत्यास्तां प्रसक्तानुप्रसक्त्या ॥ १०९ ॥

पीताम्बरा—यात्रा निवृत्ति के अनन्तर गृहप्रवेश मुहूर्त—चार प्रकार का गृहप्रवेश होता है । (१) निर्मित नूतन घर का प्रवेश अपूर्व प्रवेश; (२) यात्रा युद्ध के अनन्तर अपनी राजधानी के राजभवन का प्रवेश सुपूर्व प्रवेश, (३) जल या अग्नि आदिक भय से पुनः द्वितीयादिक गृहप्रवेश द्वन्दाभय प्रवेश, (४) नववधू का प्रथम प्रवेश—ये चार प्रकार के गृहप्रवेश कहे जाते हैं ।

शत्रु पराजय पूर्वक यात्रा से निवृत्त होकर पुनः अपनी राजधानी के राजभवन में (राष्ट्रपति भवनादिक) साधारण व्यक्ति को अपने घर की सफल यात्रा के अनन्तर अपने घर में प्रवेश के समय मृदु संज्ञक और ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में किसी एक में गृहप्रवेश करना शुभ शुभफलाय और सुखाय होता है ॥ १०९ ॥

क्षिप्र और चर संज्ञक नक्षत्रों में गृहप्रवेश करने से पुनः शीघ्र यात्रा करनी पड़ती है। अतः यात्रा निवृत्ति के अनन्तर क्षिप्रचर संज्ञक नक्षत्रों में गृहप्रवेश नहीं करना चाहिए।

तारतम्य से आवश्यकता पर दैवात् यदि अनुक्त नक्षत्रों में गृहप्रवेश किया भी जाय तो विशाखा, कृत्तिका, दारुण संज्ञक नक्षत्र (मूल ज्येष्ठा आर्द्रा आश्लेषा) और उग्र संज्ञक (तीनों पूर्वा, भरणी, मघा) नक्षत्रों में यात्रा निवृत्ति के अनन्तर गृहप्रवेश करने से क्रमशः स्त्री नाश, अग्निमय, पुत्रनाश, और स्वयं का विनाश होता है।। १०९ ।।

अथ विवाहप्रकरणोक्तदोषानतिदिशन् प्रागुक्तान्यात्राप्रकरणोक्तदोषान् शिष्याणामविस्मरणार्थं मञ्जुभाषिणोभ्यां संगृह्णाति—

अयनर्क्षमासतिथिकालवासरोद्भवशूलसम्मुखसितज्ञदिक्कपाः।
भृगुवक्रतादिपरिघाख्यदण्डको युवतीरजोऽप्यशुचितोत्सवादिकम् ॥ ११० ॥

पीयूषधारा—अयनर्क्षेति। एतेऽयनर्क्षादयो दोषा विवाहप्रकरणोक्ताश्च दोषा यात्रायां कर्त्तव्यायां नेष्टाः।

तत्रायनशूलः—'सौम्यायने सूर्यविधू तदोत्तराम्, इत्यादिकः। मासोद्भवः शूलो द्विविधः—'वृषादित्रित्रिराशिष्वर्के प्राच्यादिदिक्षु न गन्तव्यम्' इत्येकः। कपाटकण्टकादिश्च द्वितीयो युद्धयात्रायां स्वरोदयशास्त्रे सर्वतोभद्रचक्रेऽभिहितो यथा—'यत्र त्रयो वृषाद्याश्च पूर्वाशादिबुधैः क्रमात्। राशयो द्वादशैवं तु मेषान्ताः सृष्टिमार्गगाः।। यत्र पूर्वादिकाष्ठायां वृषराश्यादिगो रविः। सा दिशास्तमिता ज्ञेया तिस्रः शेषाः सदोदिताः।।' इति।

कपाटकण्टकशूलौ—

कपाटकण्टकादिर्यथा—'कपाटं पूर्वतो ज्ञेयं कार्तिकादित्रिकं तथा। नमस्यतो वास्तुमध्ये मधोरेकेन कण्टकः' इति ज्योतिषार्कवचनात्।

नक्षत्रतिथिवारशूलसम्मुखशुक्रबुधादिदोषा यात्रायाम्—

नक्षत्रवारशूलः—'न पूर्वदिशि शक्रभे न विधुसौरिवारे तथा' इत्युक्तेः। तिथिशूलः—योगिनि—'नवभूभ्यः शिववह्नयः' इत्युक्तः। सम्मुखसितज्ञदिक्कपा इति। सम्मुखः शुक्रः सम्मुखो बुधः सम्मुखो दिक्स्वामी लालाटिकत्वेन 'यत्रोदितस्ता ककुभं न यायात्' इत्यादिनोक्तः। भृगुवक्रतादीति। आदिशब्दात्क्षीणास्तमितानां च गतपराजितत्वबाल्यादिकं 'वक्रास्तनीच' इत्युक्तम्। परिघाख्यदण्डकः—'पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु' इत्युक्तेः। युवतीरजः स्वपत्नीरजोदर्शनम्। अशुचिता अशौचं—जननाशौचं। मरणाशौचं च। अशुचितेत्यत्र 'नञ्पूर्वात्तत्पुरुषात्' इत्यनेन यो निषेधः स ह्येतस्मात्सूत्रादनन्तरं वक्ष्यमाणविषये आदिशब्देन विवाहव्रतबन्धादिः।। ११० ।।

पीताम्बरा—विवाह प्रकरणान्त की तरह संस्मरण—अयन शूल, नक्षत्र शूल, मास तिथि वार से उत्पन्न शूल, सम्मुख शुक्र, बुध, दिगधीश, गुरु की वक्रतादि, परिघ दण्ड, स्त्री रजोदर्शन, जन्ममृत्यु के अशौच समय, विवाहादिक उत्सवादिक यात्रा समयों में त्याज्य हैं।११०।

अथान्यदपि मञ्जुभाषिणीछन्दसाह—

मृतपक्षरिक्तरवितर्कसङ्ख्यकास्तिथयश्च सौरिरविभौमवासराः ।
अपि वामपृष्टगविधुस्तथाऽडलो वसुपञ्चकाभिजिदथापि दक्षिणे ॥१११॥

पीयूषधारा—मृतेति । मृतपक्षः ततो भुक्ततारा इत्युक्तः । रिक्तरवितर्कसंख्यकाश्च-तुर्थीनवमीचतुर्दशीद्वादशीषष्ठयस्तिथयः । उपलक्षणत्वादष्टमीपूर्णिमामावस्याशुक्लप्रतिपदः । सौरिरविभौमवासराः शनिसूर्यमङ्गलवाराः । अयं च निषेधो दिक्शूले न सर्वत्रेति प्रागभिहितम् ।

वामपृष्ठगविधुरपि वामे पृष्ठे च निषिद्धः कैश्चित्—

वामपृष्ठगविधुरपि वामभागे पृष्ठभागे च चन्द्रो निषिद्धः । उक्तं च—सम्मुखेऽर्थस्य लाभाय दक्षिणे सुखसम्पदः । पृष्ठतो मरणं चैव वामे चन्द्रे धनक्षयः ॥ इति । एतच्च निर्मूल-त्वादुपेक्ष्यम् । सत्यपि मूलवत्त्वे एतत्सर्वद्वारगनक्षत्रव्यतिरेकेण ज्ञेयम् । अन्यथा सर्वत्र दिग्द्वय-निषेधे पुष्यादीनां सर्वदिग्वारगता भज्येत । तथाऽडलः—'रवेर्भतोऽब्जभोन्मितिः, इत्युक्तः । उपलक्षणत्वाद्भ्रमणमपि निषिद्धम् । वसुपञ्चकं—वसुशब्देन धनिष्ठोत्तरार्द्धमुच्यते तदादिकं नक्षत्रपञ्चकम् । अभिजिदभिजित्संज्ञको मुहूर्तो दिवसेऽष्टमः एतद्द्वयमपि दक्षिणे एते पञ्चाङ्ग-दोषाः ॥ १११ ॥

पीताम्बरा—यात्रा में अन्य संस्मरण—राहु सम्बन्ध से मृतपक्ष, रिक्ता, द्वादशी और षष्ठी, शनि, रवि, भौमवार, वामपृष्ठगत चन्द्रमा, आडल योग, ये सर्व साधारण यात्रा में वर्जित हैं । तथा धनिष्ठा, शततारा, पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्र, रेवती और अभिजित् मुहूर्त दक्षिण यात्रा में विशेष वर्ज्य हैं ॥ १११ ॥

अथ लग्नदोषान् स्रग्धरयाह—

लग्ने जन्मर्क्षतन्वोर्मृतिगृहमहितर्क्षाच्च षष्ठं तदीशा
वा लग्ने कुम्भमीनर्क्षनवलवतनू चापि पृष्ठोदयं च ।
पृष्ठाशासंस्थमृक्षं दशमशनिरथो सप्तमे चापि काव्यः
केन्द्रे वक्राश्च वक्रिग्रहदिवसविवाहोक्तदोषाश्च नेष्टाः ॥ ११२ ॥

इति श्री दैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्त्तचिन्तामणौ
यात्राप्रकरणं समाप्तम् ।

पीयूषधारा—लग्न इति । लग्ने यात्रालग्ने विचारयितव्ये सति जन्मर्क्षतन्वोर्जन्म-राशिर्जन्मलग्ने तत्सम्बन्धि मृतगृहमष्टमस्थानम् । अहितर्क्षात् शत्रुराशेः शत्रुलग्नाद्वा षष्ठं स्थानं तदीशाः—स्वजन्म राशितोऽष्टमाधिपतिः स्वजन्मलग्नाद्वाष्टमाधिपतिः स्वशत्रुराशितः षष्ठस्वामी स्वशत्रुजन्मलग्नाद्वा षष्ठाधिपतिः । एते लग्ने लग्नस्थिताः स्युः । कुम्भमीनर्क्षनवलवतनू । कुम्भलग्नं मीनलग्नं लग्नान्तरसद्भावे वा कुम्भनवांशो वा । पृष्ठोदयं च । पृष्ठोदयराशयः—

गोजाशिवकर्किमिथुना समृगा निशाख्या पृष्ठोदया विमिथुनाः' इति वराहोक्ताः पृष्ठाशासंस्थमृक्षम् । दिग्विलोमलग्नमित्यर्थः । दशमशनिः । दशमे स्थाने शनिर्दशमशनिः । अथो इति । सप्तमे स्थाने स्थितः काव्यः शुक्रः । केन्द्रे वक्राः वक्रिणो ग्रहाः वक्रिग्रहस्य वक्रिग्रहयोर्वा वक्रिग्रहाणां वा दिवसा वाराः । एते दोषा यात्रायां नेष्टा अवश्यं वर्ज्याः । अत्रार्थे मूलवाक्यानि प्राग्लिखितानि ।

विवाहप्रकरणोक्तदोषा यात्रायां निषिद्धाः—

अथं च विवाहोक्तदोषा विवाहप्रकरणेऽभिहिता ये दोषास्तेऽपि निषिद्धाः । त इमे—'उत्पातान्सहपातदग्धतिथिभिर्दुष्टांश्च योगांस्तथा चन्द्रेज्योशनसामथास्तमयनं तिथ्याः क्षयर्द्धी तथा । गण्डान्तं च सविष्टिसङ्क्रमदिनं तन्वंशपास्तं तथा तन्वंशेशविधूनथाष्टरिपुगान्पापस्य वर्गास्तथा ।। सेन्दुक्रूरखगोदयांशमुदयास्ताशुद्धिचण्डायुधान्खार्जूरं दशयोगयोगसहितं जामित्रलत्ताभिधम् । बाणोपग्रहपापकर्त्तरि तथा तिथ्यृक्षवारोत्थितं दुष्टं योगमथार्द्धयामकुलिकाद्यान्वारदोषानपि ।। क्रूराक्रान्तविमुक्तभं ग्रहणभं यत्क्रूरगन्तव्यभं त्रेधोत्पातहतं च केतुहतभं सन्ध्योदितं भं तथा । तद्वच्च ग्रहभिन्नयुद्धगतभं सर्वानिमान्सन्त्यजेदुद्वाहे शुभकर्मसु ग्रहकृताल्लग्नस्य दोषानपि ।।' इति । यदाह वसिष्ठः—'एकविंशन्महादोषास्त्वेते ब्रह्ममुखोदिताः । कदाचिन्नैव सीदन्ति गुणानां कोटिकोटिभिः ।। तस्मादेतेषु दोषेषु कदाचिन्नाचरेच्छुभम् । विवाहे विधवा नारी मरणं व्रतबन्धने ।। ग्रामनाशः प्रतिष्ठायां सीमन्ते गर्भनाशनम् । नवान्नभोजने मृत्युः कृषौ तत्फलनाशनम् । कर्त्तुर्नाशो गृहारम्भे प्रवेशे पतिनाशनम् । यात्रायां कर्तृनाशः स्याद्युद्धयाने विशेषतः ।। लभ्यते सुमहत्पुण्यमेषु श्राद्धादिकर्मभिः ।।" इति ।

सप्तमगुरुबुधजामित्रदोषौ, धनुरर्कादिमासदोषोऽपि यात्रायां न—

अत्र सप्तमशुक्रव्यतिरिक्तो जामित्रदोषो धनुरर्कादिमासदोषोऽपि नास्तीति ध्येयम् । तदुक्तं गणेशदैवज्ञैः—'सर्वमुद्वहनजं मासास्तदोषो विना' तति मासदोषो धनुरर्कादिः । अस्तदोषो जामित्रदोषः तथापि शुक्राराहित्यं विवर्जितम् । यतः सप्तमशुक्रस्य यात्रायां विशिष्य निषेधोऽस्ति । बुधगुरू तु प्रशस्तावेव । एवं मासदोषजामित्रदोषा विवाहोक्ता यात्राया न निषिद्धाः । किन्तु विहिता इत्येतद्वर्ज्जमन्ये विवाहोक्ता दोषा यात्रायां निषिद्धा एवेति शिवम् ।। ११२ ।।

अथ यात्राप्रकरणं गद्येनोपसंहरति—इति श्रीदैवज्ञेति । स्पष्टार्थमेतत् ।

ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे व्याख्याने खलु यात्रिकप्रकरणं सम्पूर्णतामध्यगात् ।।

इति श्रीविद्वद्दैवज्ञमुकुटालङ्कार श्रीमन्नीलकण्ठज्योतिर्विद्विरचितायां मुहूर्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां यात्राप्रकरणं
समाप्तिमगमत् ।। ११ ।।

पीताम्बरा—यात्रा समय लग्नदोष—जन्मलग्न, जन्मराशि से अष्टमराशि, शत्रु की राशि से छठी राशि लग्न गत हो, अथवा अपनी जन्मराशि लग्न से अष्टम भवन स्वामी की, अथवा शत्रु राशि से छठी राशि स्वामी की लग्न, लग्न हो या कुम्भ मीन लग्न, या कुम्भ,

मीन के नवांशक लग्न, पृष्ठोदय राशि, पृष्ठगत नक्षत्र, लग्न से १० वें शनि ७ वें शुक्र, केन्द्र में वक्री ग्रह, वक्री ग्रह के वार के दिन के साथ विवाह प्रकरण में कहे गये दोषों को भी समझ कर उन्हें यात्रा में वर्जित करना चाहिए ॥ ११२ ॥

इति कूर्मपृष्ठीय (कुमायूँ) जुनायल, ग्रामनिवासी स्वर्गीय श्री पं० हरिदत्तज्योतिर्विदात्मज पर्वतीय केदारदत्त जोशी कृत (वर्त्तमान में नगवा नलगाँव १।२८ हरिहर्ष निकेतन कौशीस्थ) मुहूर्तचिन्तामणि यात्राप्रकरण पीयूषधारा की हिन्दी पीताम्बरा व्याख्या सम्पन्न ॥ ११ ॥

अथ वास्तुप्रकरणम् ॥ १२ ॥

गौरीनन्दनमिष्टसिद्धिसदनं विघ्नावलीभेदनं
नत्वा ज्योतिषिकाग्र्यरामरचिते मौहूर्त्तचिन्तामणौ ।
गोविन्दो बुधनीलकण्ठविधिवित्सूनुः सतामग्रणी-
र्वह्वर्थं गृहनिर्मितिप्रकरणं व्याख्याति विद्वन्मुदे ॥ १ ॥

अथ वास्तुप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र त्रिविधप्रवेशे वसिष्ठाद्यभिहिते अपूर्वसञ्ज्ञः प्रथमः प्रवेश इत्युक्तम् । स च गृहनिर्माणायत्त इति वास्तुनिर्माणप्रारम्भ उच्यते । यदाह वसिष्ठः— 'वास्तुज्ञानं प्रवक्ष्यामि तदुक्तं ब्रह्मणा पुरा । ग्रामसद्मपुरादीनां निर्माणं वक्ष्यतेऽधुना ॥' इति गृहनिर्माणप्रयोजनमभिहितं भविष्यत्पुराणे—'गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा न सिध्यन्ति गृहं विना । यतस्तस्माद्गृहारम्भप्रवेशसमयौ ब्रुवे ॥' गृहं स्वसत्ताकम् । गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा न सिध्यन्ति निष्फला भवन्तीत्यर्थः । एतदपि स्पष्टमभिहितं तत्रैव—'परगेहे कृताः सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः । निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते ॥' इति । एतत्सर्वं मनस्यालोच्य गृहारम्भ-प्रकरणं विवक्षुः ग्रन्थकृद्ग्रामपुरादिस्थानेषु स्वस्य शुभमशुभं वा लाभमलाभं वा द्वारनिवेशनं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

यद्भं द्व्यङ्कसुतेशदिङ्मितमसौ ग्रामः शुभो नामभात्
स्वं वर्गं द्विगुणं विधाय परवर्गाढ्यं गजैः शेषितम् ।
काकिण्यस्त्वनयोश्च तद्विवरतो यस्याधिकाः सोऽर्थदो-
ऽथ द्वारं द्विजवैश्यशूद्रनृपराशीनां हितं पूर्वतः ॥ १ ॥

पीयूषधारा—यद्भमिति । ग्रामः स्वस्य शुभोऽशुभो वेति तावच्चिन्त्यते । व्यवहारप्रसिद्धं यन्नाम नीलकण्ठ इत्यादिकं तस्यावकहडाचक्रानुसारेण यदनुराधादिकं नक्षत्रं ततो यद्वृश्चिका-दिकराशिः स्यात्तन्नामभम् । एवं यस्मिन् ग्रामे नगरे वा वास्तुमिष्यते तस्य चरणाद्रिरित्यादिकं यन्नाम तस्माज्जातो यो राशिर्मीनादिस्तद्ग्रामभम्, एवं नामद्वयं ज्ञात्वा नामभात्पुरुषनामराशेः सकाशात् यद्भं यस्य ग्रामस्य भं राशिः स चेद्द्वितीयो नवमः पञ्चम एकादशसङ्ख्यो दशमश्च स्यात्तदासौ ग्रामः स्वस्य शुभः शुभफलदाता स्यादन्यथा शुभो न भवतीत्यर्थः । यथा नीलकण्ठस्य वृश्चिकराशितः पञ्चमो मीनराशिः । अतश्चरणाद्रिर्नीलकण्ठस्य वासयोग्यः सन् शुभफलदो न वाराणस्यादिः । उक्तं च मुहूर्त्तमार्तण्डे—'नामर्क्षाद्द्विसुताङ्कदिग्भवनतो ग्रामः

शुभो नान्यथा ।' इति । अत्र काकिण्यादौ नामराशिरेव ग्राह्यः । उक्तं च—'काकिण्यां वर्गशुद्धौ च वादे द्यूते स्वरोदये । मन्त्रे पुनर्भवरणे नामराशेः प्रधानता ॥' इति । अथ ग्रामात्मनोरुत्तमर्णत्वमधमर्णत्वं चाह—स्वं वर्गमिति । वर्गास्तु—'अकचटतपयशवर्गाः खगेशमार्जारसिंहशुनाम् । सर्पाखुमृगावीनां निजपञ्चमवैरिणामष्टौ ॥' इत्युक्ताः । तत्र यस्य पुंसः यत्सङ्ख्याको वर्गो गरुडादिः स्यात्तद्वर्गसङ्ख्यां द्विगुणां विधाय कृत्वा परस्य ग्रामस्य वर्गसङ्ख्या आढ्यां च कृत्वा गजैरष्टभिः शेषितमवशिष्टं ताः काकिण्यो ज्ञेयाः पुंसः, एवं ग्रामस्यापि स्ववर्गसङ्ख्यां द्विगुणां कृत्वा परस्य पुंसः वर्गसङ्ख्यया युक्तां च कृत्वा गजभक्ताः अवशिष्टाः काकिण्यो ग्रामस्य भवन्ति । एवमनयोः पुरुषग्रामयोः काकिण्यः स्युः । तत्र तद्विवरतः पुरुषकाकिणीनां ग्रामकाकिणीनां विवरमन्तरं तस्मिन् क्रियमाणे यस्य ग्रामस्य दातृत्वात् पुंसः काकिण्यादशेषे पुंसो द्रव्यहानिः । ग्रामस्य प्रतिगृहीतृत्वादित्यर्थः । यथा नीलकण्ठस्य वर्गः सर्पः । तत्संख्या ५ द्विगुणा १०, नरणार्द्रेवर्गः सिंहः तत्सङ्ख्यया ३ युक्ताः १३, गजभक्ताः शेषं ५ नीलकण्ठस्य काकिण्यः । एवं ग्रामवर्गसंख्या ३ द्विगुणां ६ नीलकण्ठवर्ग–५ संख्यया युक्ताः ११ । अष्टभक्तावशेषं २ ग्रामस्य काकिण्यः ३ अत्र द्वयोरन्तरे 'शेषम् २ नीलकण्ठस्य दातृत्वात्स्वद्रव्यहानिरित्यर्थः । उक्तं च—'स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत् । अष्टभिस्तु हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत्' इति । इतोऽन्यथाहुः कश्यपवसिष्ठनारदाः—'अकारादिषु वर्गेषु दिक्षु प्रागादिषु क्रमात् । गृध्रमार्जारसिंहाश्वसर्पाखुगजशाशकाः । दिग्वर्णानामियं योनिः स्ववर्गात्पञ्चमो रिपुः ॥ रिपुवर्गं परित्यज्य शेषवर्गाः शुभप्रदाः । साध्यवर्गं पुरः स्थाप्य पृष्ठतः साधकं न्यसेत् ॥ विभजेदष्टभिः शेषं साधकस्य धनं स्मृतम् । व्यत्ययेनागतं शेषं साधकस्य ऋणं स्मृतम् ॥ धनादिकं स्वल्पमृणं सर्वसम्पत्प्रदं स्मृतम्' इति । गृध्रोऽत्र गरुडः । गरुडसर्पयोर्महावैरसत्त्वात्साध्य इत्यर्थः । साध्यो वासयोग्यो ग्रामादिस्तस्य वर्गं वर्गसंख्या पुरः संस्थाप्य साधकस्य नीलकण्ठादेः वर्गसंख्यां पृष्ठतो न्यसेत् । एवं विशिष्टोऽङ्कोऽष्टभिर्भक्ताः शेषं साधकस्य ऋणं स्यात् । यथा साध्यवर्गसंख्या पुरः स्थापिता साधकस्य वर्गसंख्या च पृष्ठतः । सा चैवं पृष्ठतः । सा चैवं ५३ एतास्त्रिपञ्चाशत् अष्टभक्तावशिष्टं धनं साधकस्य ऋणं स्यात् । विपरीतं स्थापितं यथा ३५ अष्टभक्तं शेषं ३ साधकस्य ऋणं स्यात् ।

द्वारनिवेशनं वर्णदिग्भेदेन—

अथ द्वारनिवेशनमाह—अथेति । द्विजादिराशिमतां पुंसां क्रमेण पूर्वतः प्राच्यादिदिक्चतुष्टये द्वारं हितम् । यथा द्विजराशयः कर्कवृश्चिकमीनास्तेषां पूर्वादिशि, वैश्यराशयो वृषकन्यामकरास्तेषां दक्षिणदिशि, शूद्रराशयो मिथुनतुलाकुम्भास्तेषां पश्चिमदिशि, नृपराशयो मेषसिंहधनूंषि तेषामुत्तरदिशि द्वारनिवेश इत्यर्थः ॥ १ ॥

पीताम्बरा—अपने नाम से किस नाम के ग्राम में निवास हो—द्विविध या चतुर्विध गृहप्रवेश की चर्चा पूर्व प्रकरण में हो चुकी है। नवनिर्मित गृहप्रवेश का नाम अपूर्व गृहप्रवेश कहा गया है। अतः अपूर्व प्रवेश के लिये नवीन गृहनिर्माण आवश्यक होता है। ग्राम, नगर और गृहनिर्माण प्रकरण का नाम वास्तुप्रकरण है। गृहस्थ के कोई भी कार्य निजी घर में (मकान, भवन, राजभवन) शुभ होते हैं। दूसरे के घर में किए गये श्रौत स्मार्त आदिक सभी शुभ कर्म पूर्ण सफल नहीं होते। इन शुभ कर्मों के शुभ फल का भागी भूमिपति भी (मकान

मालिक) हो जाता है । अतः शास्त्रों ने लोकतन्त्र की मूलभूत भित्ति गृहस्थ के लिए आवास की सुव्यवस्था का सहर्ष सुदृढ़ समर्थन किया है । इसलिए किस दिशा में या किस नगर या ग्राम में मकान बनाया जाय ? कब प्रारम्भ किया जाय ? इत्यादिक गृहनिर्माणादिक मुहूर्त और घरों की लम्बाई-चौड़ाई आदि इस प्रकरण में देखिए समझिए और आधुनिक युग के सुन्दरतम भवनों के निर्माण में प्राचीन गृहनिर्माण शैली का भी उपयोग कीजिए ।

सर्व प्रथम अपने लिए ग्राम या नगर शुभ या अशुभ है विचारा जा रहा है । लोक व्यवहार मे प्रसिद्ध अपने नाम (जैसे "तारकेश" नाम से अवकहड़ाचक्र से स्वाती चतुर्थ चरण तुला राशि होती है) की तुला राशि होती है । तारकेश को सर्व प्रिय वाराणसी नगरी में गृह-निर्माण करना है । वाराणसी नगरी की अवकहड़ा चक्र से रोहिणी नक्षत्र और वृष राशि होती है । तारकेश की नाम राशि तुला से वाराणसी की वृषभ राशि अष्टम होती है जो शुभ नहीं है किन्तु नगवा (नल-दमयन्ती से गांव का अपभ्रंश नलगाँवनगवा) की वृश्चिक राशि, नहीं है किन्तु नगवा (नल-दमयन्ती से गांव का अपभ्रंश नलगाँव अपभ्रंश नगवा) की वृश्चिक राशि, २, ९, ५, ११, १० वीं होती है उस नगर या ग्राम में गृहनिर्माण पूर्वक आवास करने से वह भूमि उस नाम के व्यक्ति के लिए सुफलवती होती है । इस प्रकार सुरेश, दिनेश की नाम राशियों (कुम्भ-मीन से) से नगवा ग्राम राशि वृश्चिक १०, ९वीं होने से दोनों के लिए नगवा ग्राम का मकान शुभ होता है । जिस ग्राम (या कालोनी) की राशि, जैसे विश्वनाथ और विजया व नवीन नामों से क्रमशः वाराणसी व नगवा की राशियाँ समान होती हैं अतः उक्त नामों के लिये वाराणसी नगवा साधारण शुभ होती हुई भी, वाराणसी के पुरपति श्री विश्वनाथ सदा से सनातन रूप में वाराणसी में सुस्थिर और सुदृढ़ होकर प्राणिमात्र की गृहभूमिवाहन को समृद्धि-वृद्धि के साथ तारकेश होने से तारक मन्त्र से भवबन्धन से मुक्त भी करते हैं । अतः ज्यौतिष स्मृति यहाँ पर विपरीत होते हुए भी, लोकव्यवहारतः, विश्वनाथार्पण की भावना से निर्मित घर व्यवहार में शुभफलद ही चरितार्थ होता है ।

अपने नाम के आदिम वर्ण के वर्ग संख्या को दूना कर उसमें ग्राम नाम के आदिम वर्ण की वर्ग संख्या जोड़कर ८ से भाग देने से शेष संख्या तुल्य अपनी, तथा ग्राम वर्ग संख्या को दो से गुणा कर, उसमें अपने नाम की वर्ग संख्या जोड़कर ८ का भाग देने से शेष तुल्य ग्राम की काकिणी होती हैं । जिसकी काकिणी अधिक हो वह कम काकिणीवाले को धनप्रद होता है । और जिसकी काकिणी कम हो वह ऋणी होता हैं ।

अ	क	च	ट	त	प	य	श
१	२	३	४	५	६	७	८

जैसे तारकेश का नामादि त वर्ग संख्या ५ × २ = १० में नगवा वर्ग संख्या ५ को जोड़ने से १५ होती है । १५ ÷ ८ = शेष = ७ काकिणी तारकेश की होती है । एवम् नगवा की वर्गसंख्या ५ × २ = १० + तारकेश वर्ग संख्या ५ = १५ ÷ ८ = शेष = ७ दोनों की काकिणी तुल्य होती हैं । तात्पर्य हुआ कि नगवा तारकेश दोनों समान धनसूचक होने से तारकेश का मकान नगवा में होना शुभ ही होगा । तथा सुरेश से नगवा का काकिणी सम्बन्ध ८ × २ + ५ = २१ ÷ ८ = शेष ५, तथा नगवा ५ × २ + ८ = १८ ÷ ८ शेष २, यहाँ पर सुरेश नामक व्यक्ति से नगवा नामक गाँव को धन प्राप्ति होगी । ५ − २ = ३ सुरेश की आय का ४० प्रतिशत नगवा ले लेगा, अतः

नगवा में सुरेश नामक व्यक्ति का मकान ठीक नहीं होगा। यदि बबुआ नाम के व्यक्ति का नगवा में मकान हो तो बबुआ को शत प्रतिशत उस मकान से लाभ होगा। इसी प्रकार दिनेश नाम से ५ × २ + ५ = १५ ÷ ८=७ एवं ५ × २ + ५=१५ ÷ ८=७ अर्थात् दिनेश नाम से नगवा का घर समान रहेगा।

विजया = ७ × २ = १४ + ६ = २०/८ = ४

प्रयाग = ६ × २ = १२ + ७ = १९   १९ ÷ ८ = ३

विश्वनाथ व विजया दोनों पति पत्नियों के नाम से वाराणसी का घर शुभ होगा तुल्य काकिणी होने से।

मकान बनाने वाले के नाम को काकिणी ग्राम नाम की काकिणीं से कम या तुल्य होनी चाहिए तभी तो ग्राम से व्यक्ति को अर्थाप्ति होगी।

विप्र वर्ण की राशियाँ (४ । ८ । १२) के नाम के व्यक्तियों के लिए मकान का मुख्य द्वार पूर्व में, वैश्य वर्ण की राशियों (२।६।१०) के नाम के व्यक्तियों का दक्षिण, शूद्र वर्ण की ३ । ७ । ११ राशियों के नाम के व्यक्तियों के लिए पश्चिम और क्षत्रिय वर्ण की राशियाँ (१।५।९) के व्यक्तियों के लिए मकान का मुख्य द्वार उत्तर दिशा में होना चाहिए ॥१॥

अनेक साधनों से सर्वप्रथम भूमि शोधन कर रुचिकर स्थिर सुहावनी आकर्षक भूमि में गृहनिर्माण करना चाहिए। गृहनिर्माण समय, घर धन्य-धान समृद्धि, पुत्र-पौत्र पशु-मित्र-स्त्री आदि सभी के लिये सुखमय हो सभी प्रसन्न रहे, कोई भूखा-प्यासा-वस्त्रहीन न रहे, इस घर में सभी प्रकार के अतिथियों का स्वागत-सत्कार हो इत्यादि शुभ भावनाओं से प्रवृत्त होकर गृहनिर्माण करना चाहिए।

अथ राशिपरत्वेन ग्रामनिवासनिषिद्धस्थानानि वसन्ततिलकाछन्दसाह—

गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये ग्रामस्य पूर्वककुभोऽलिझषाङ्गनाश्च।
कर्को धनुस्तुलभमेषघटाश्च तद्व-द्वर्गाः स्वपञ्चमपरा बलिनः स्युरैन्द्रयाः॥ २॥

पीयूषधारा—गोसिंहेति। वस्तुमिष्टस्य ग्रामस्य वस्त्रविभागवन्नवधा विभागं कृत्वा मध्ये मध्यमविभागे गोसिंहनक्रमिथुनम्। समाहारद्वन्द्वः। न निवसेत् वृषसिंहमकरमिथुनराशिमन्तः पुरुषा न वसेयुः। अथ पूर्वककुभः पूर्वदिशातोऽष्टदिक्षु अलिर्वृश्चिकः तदादिराशिमन्तः पुरुषा न वसेयुः। यथा पूर्वस्यां वृश्चिकः आग्नेय्यां झषो मीनः, दक्षिणस्यां कन्या, नैर्ऋत्यां कर्कः, पश्चिमायां धनुः, वायव्यां तुला, उत्तरस्यां मेषः, ऐशान्यां कुम्भः, न वसेयुरित्यर्थः। अथ वर्गाः अकचटतपयशवर्गाः अष्टौ ऐन्द्रयाः पूर्वदिशमारभ्य अष्टदिक्षु बलिनः। यथा अवर्गः पूर्वस्यां, कवर्गः आग्नेय्यां, चवर्गो दक्षिणस्यां, टवर्गो नैर्ऋत्यां, तवर्गः पश्चिमायां, पवर्गो वायव्यां, यवर्ग उत्तरस्यां, शवर्ग ऐशान्यां बलीत्यर्थः कीदृशा वर्गाः स्वपञ्चमपराः स्वस्मात्पञ्चमः परः शत्रुर्येषां ते, यस्य वर्गः पूर्वस्यां बली तेन पश्चिमायां द्वारं निवासो वा न विधेयः। एवं कवर्गादीनामाग्नेयादिसप्तदिक्षु बलित्वं सप्रयोजनं ज्ञेयम्। यदुक्तं मुहूर्त्तमार्त्तण्डे—नामर्क्षाद्द्विसुताङ्कदिग्भवगतो ग्रामः शुभोऽन्योऽन्यथा तत्कोणेन्त्यभुवां शुभं निवसतां दोषः परेषामलम्। कन्यार्कालितुलाधनुःक्रियघटाः कौर्प्यण्डजौ याम्यतो मध्येन्येन वसन्त्यथेन्द्रककुभो वर्गाः स्युरोजस्विनः' इति। ओजस्विनो बलिनः॥ २॥

पीताम्बरा—राशि सम्बन्ध से ग्राम निवास निषेध—वस्त्रों के नौ विभागों की तरह ग्राम के दिशा-विदिशाओं मे ८ विभाग और मध्य में नवम भाग की कल्पना करनी चाहिए।

वृष, सिंह, मकर और मिथुन राशि के व्यक्तियों को ग्राम के मध्य में निवास हेतु मकान नहीं बनाने चाहिए। इसी प्रकार ग्राम की आठों दिशाओं में वृश्चिक राशि वाले पुरुषों को पूर्व में, अग्नि में मीन, दक्षिण में कन्या, नैर्ऋत्य में कर्क, पश्चिम में धनु, वायु मे तुला, उत्तर में मेष और ईशान में कुम्भ राशि वाले पुरुषों को निवास हेतु गृहनिर्माण नहीं करना चाहिए। अ क़ च ट त प य श ये आठों वर्ग क्रमशः पूर्व से अग्नि, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायु, उत्तर और ईशान दिशाओं में रहते हैं। जिनके स्वामी क्रमशः गरुड़, मार्जार, सिंह, श्वान्, सर्प, मूषक, मृग और मेढ़ होते हैं। प्रत्येक वर्ग अपने से पञ्चम का वैरी होता है। जैसे अ वर्गेश गरुड, से पञ्चम त वर्गेश सर्प अ का वैरी होता है। जैसा विवाह प्रकरण में भी सुस्पष्ट है ॥ २ ॥

इष्टनक्षत्रेष्टायाभ्यामिष्टभूम्यां विस्तारायामौ इन्द्रवज्रयेन्द्रवंशापूर्वार्धेन चाह—

एकोनितेष्टर्क्षहताद्वितिथ्यो रूपोनितेष्टायहतेन्दुनागैः।
युक्ता घनैः १७ श्चापि युता विभक्ता भूपाश्विभिः शेषमितो हि पिण्डः ॥ ३ ॥
स्वेष्टायनक्षत्रभवोऽथ दैर्घ्यहृत्—स्याद्विस्तृतिर्विस्तृतिहृच्च दीर्घता।

पीयूषधारा—एकोनित इति। यत्र गृहं कर्तुमिष्टं भवति सा भूर्नानाकारा भवति। समविषमचतुरस्रत्र्यस्राद्यनेकभेदेन तत्र यदेव नक्षत्रं स्वव्यवहारनाम्ना—'राशिकूटादिकं सर्वं दम्पत्योरिव चिन्तयेत्' इति वसिष्ठोक्तेः विवाहोक्तमेलापकविधिना शुभदं स्यात्तदेव स्वेष्टभं कल्प्यम्। कल्पितं यदृक्ष तेन हता गुणिता द्वितिथ्यः १५२ कार्याः। ततो रूपेणोनितो य इष्टायो ध्वजादिकः तेन हता इन्दुनागाः एकाशीतिस्तया युक्ताः कार्याः। ततो घनैः सप्तदशभिरपि युक्तास्ततो भूपाश्विभिः षोडशाधिकद्विशत्या विभक्तास्ततो भक्ते सति यच्छेषं तन्मितः पिण्डः क्षेत्रफलं स्यात्। स च पिण्डः स्वेष्टायनक्षत्रभवः स्वस्य स्वगृहकर्तुरिष्टं यन्नक्षत्रं इष्ट आयश्च ताभ्या भवतीति तादृशः स्यात् पिण्डः दैर्घ्यहृत् कल्पितदैर्घ्यभक्तः सन् विस्तृतिर्विस्तारः स्यात्। अथ पिण्डो विस्तृतिहृत् कल्पितविस्तारभक्तो दीर्घता स्यात्। उक्तं च सारसमुच्चये—रूपाष्टभि-८१ र्विनिहतो भवनस्य बन्धो नक्षत्रमिष्टमिह युग्मशरेन्दुनिघ्नम्। एकीकृतं घन-१७ युतं च रसेन्दुयुग्म—२१६ भक्तस्ततो भवति मध्यगृहस्य पिण्डः' इति। अत्रोदाहरणम्—नीलकण्ठस्य अनुराधानक्षत्रस्य रोहिण्या सह मेलापकः सम्भवतीति इष्टभं रोहिणी कल्पितं विषमायः सिंहस्तृतीयः ३ इष्टर्क्षम् ४ एकोनितम् ३ अनेन द्वितिथ्यो १५२ हताः ४५६ इष्टायः ३ रूपोनितः २ आभ्यामिन्दुनागा ८१ हताः १६२ एतैर्युक्ता ६१८ घनै-२७ युताः ६३५ भूपाश्विभिः २१६ विभक्ताः शेषमिदमेव क्षेत्रफलं गृहस्य २०३। अथ कल्पितदैर्घ्यम् २९ अनेन भक्तो लब्धो विस्तारः ७ कल्पितविस्तृतिः ७ अनेन भक्तो लब्धं दैर्घ्यम् २९। यदाह प्रकारान्तरेण गोपिराजः—विष्णुं व्येकायगोभूहतिमयुग्गि फल गोपिराजो भशेषात्सायं वाहोष्टिदृग्घ्नेष्टयुतमहिहतादृक्प्रकृत्याख्य-२१ विश्वे १३। बाणाः ५ सिद्धा-२४ ष्टि-१६ नागो-८ डु-२७ विधृति-१९ गिरिश-११ त्र्या-३ कृती-२२ द्र-१४ तुं-६ तत्त्वा-२५ त्यष्टचं-१७ क-९ क्षमा-१ न-२० ना-१२ र्णविविकृति-२३ दिवा-१५ द्रयु-७ त्कृती-२६ भेन्दु-१८ काष्ठाः १०' अस्यार्थः। गोपिराजो व्येका-

यगोभूहतिभयुति सति भशेषात् विष्णुम् । अहिहतादृक्प्रकृत्याख्या विश्वादयः फलं स्यादित्याहेति योजना। विगत एको यस्मात्स व्येकः स चासौ आयश्च व्येकायः ध्वजादिरिष्टायः स च गोभुवश्च १९ एषां हतिः परस्परगुणितं व्येकायगोभूहतिश्च भं च व्येकायगोभूहतिभयुक् तस्मिन्सति भशेषाद्भैः २७ भक्ते सति यच्छेषं तस्माद्विष्णुनामानं शिष्यं अहिहताश्चाष्टगुणिताः दृक् द्वौ प्रकृत्याख्या एकविंशतिविश्वे त्रयोदशेत्यादयो गृहक्षेत्रफलं सायमिष्टायसहितं स्यात् इत्याह वदति गोपिराजः। अत्रोदाहरणं–पूर्वोक्त इष्टायः व्येकः २ गोभू-१९ हतिः ३८ इष्टर्क्ष रोहिणी तत्संख्यया ४ युतं ४२ अस्मात् भं. २७ शेषं १५ एतत्संख्यया फलं २५ अहि-८ हतं २०० इष्टायसहितं २०३ इदं स्वेष्टायनक्षत्रभवं क्षेत्रफलं पूर्वसममेव।

महागृहप्रमाणे विशेषः

महागृहप्रमाणार्थमाह—वेति। वा इत्यर्थे। वा इष्टायसहितं जातं यत्फलं तत् अष्टिदृग्घ्नयुतं अष्टिश्च दृशश्च अष्टिदृशः षोडशाधिकद्विशती २१६ तया हतो गुणितो य इष्ट एकद्वित्र्याद्यङ्कस्तेन युक्तं कार्यम्। तन्मनोऽभीष्टस्थ क्षेत्रफलं स्यादित्यर्थः॥ ३॥

पीताम्बरा—गृहनिर्माण स्थल की लंबाई चौड़ाई—यद्यपि वर्तुलाकार पृथ्वी में अनेक राष्ट्रों के अनेक देशों के अनेक प्रदेशों के अनेक मण्डलों के अनेक नगर अनेक गाँव इत्यादि बसे हैं। अगाध अनेक सागरों से आवेष्टित भूमण्डल के सागरों तक के गाम्भीर्य का पता लग चुका है। पृथ्वी के अगम्य परमाधिक अक्षांश के "ध्रुव" जैसे देशों, परम उच्च "एवरिष्ट" जैसी चोटियों की यात्रा से भी आगे अनन्त ब्रह्माण्ड के इस सौर-मण्डल के चन्द्रग्रह पर भी मानव चरण चिह्नित हो गए हैं। निकट के कुछ ही दशकों में तथा अन्य और मंगल····शनि तक ग्रह-पिण्डों की जानकारी भी होने जा रही है निःसन्देह विज्ञान की अभूतपूर्व देन से अग्रिम पीढ़ियों में मानव बुद्धि और बहुत आगे पहुँच जावेगी इसमें सन्देह नहीं है। तब बहुत पूर्व में, और आज भी सर्वप्रथम मानव के आवास की समस्या का समाधान सदा आवश्यक रहा था और आगे भी रहेगा।

इसलिये जो जहाँ भी रहेगा वहाँ उसे अपने जीवन निर्वाह की आजीविका के साथ आवास की आवश्यकता पड़ेगी।

गाँव या नगर में—भूमि की इयत्ता से उसके सम-विषम चतुर्भुजात्मक, त्रिकोणात्मक खण्डों में मानव विशेष का अधिकार रहेगा, अतः उस भूमि के अत्यल्प खण्ड पर गृहनिर्माण की व्यवस्था प्राचीन वास्तुशास्त्रज्ञों (इन्जीनियरों....) ने की है। आचार्य ने मकान बनाने की जगह का उपयुक्त नाम लम्बाई × चौड़ाई को गृह-पिण्ड कहा है। मकान के भी २७ नक्षत्र होंगे जैसे प्रत्येक व्यक्ति के नाम से कोई नक्षत्र होगा। इसी प्रकार प्रत्येक मकान में (१) ध्वज, (२) धूम (३) सिंह, (४) श्वान् (५) वृष, (६) खर, (७) हस्ती और (८) ध्वाङ्क्ष, ये आठ नामों के ८ आय होते हैं। इनमें नाम सदृश, ध्वज, सिंह, वृष, और हाथी, ये ४ विषम आय शुभ आय होते हैं।

आचार्य ने गृहपिण्ड साधन के बहुश्रमसाध्य कठिन गणित की एक सारणी सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत कर पिण्ड साधन गणित का अनुपम कौशल बताया है। विवाह प्रकरण में वर-कन्या के मेलापक की तरह मकान और मकान मालिक के नक्षत्रों से नक्षत्र गणना यहाँ भी होनी चाहिए। वर कन्या मेलापक में दोनों की नाड़ियाँ भिन्न होनी चाहिए, किन्तु यहाँ गृह-निर्माण में वास्तु और भू-स्वामी की परस्पर एक नाड़ी ही उत्तम मानी गई है। अतः यहाँ

ध्यान पूर्वक इस बात का विचार करना चाहिए कि वास्तु और भू-स्वामी की परस्पर में एक ही नाड़ी हो। जिस नक्षत्र से भू-स्वामी के साथ गणना बैठती हो उस नक्षत्र को इष्ट नक्षत्र और उक्त ८ आयों में जो अभीष्ट विषम आय हो उसे आय मानकर, इष्ट नक्षत्र और इष्ट आय वश (विलोम विधि) से ग्रहपिण्ड बनाया गया है। उसका प्रकार निम्न है—

इष्ट नक्षत्र संख्या में १ घटा कर शेष को १५२ से गुणा कर गुणनफल को अन्यत्र स्थापित करना चाहिए।

इसी प्रकार जो अभीष्ट आय हो उसमें भी १ घटा कर शेष को ८१ से गुणा कर गुणनफल का पूर्व अन्यत्र स्थापित गुणनफल के साथ योग कर योगफल में १७ और जोड़कर उसमें २१६ का भाग देने से जो शेष बचेगा उसी अंक का नाम गृहपिण्ड अर्थात् घर की लम्बाई-चौड़ाई का गुणनफल रूप क्षेत्रफल होगा। पिण्ड में अभीष्ट लम्बाई से भाग देने पर अभीष्ट चौड़ाई हो जाती है। जमीन की न्यूनाधिकतावश आगत उक्त पिण्ड में २१६ जोड़ते-जोड़ते तारतम्य से अनेक नये गृहपिण्ड बन जाते हैं। जैसे तारकेश का स्वाती नक्षत्र है, तारकेश का अभीष्ट तीसरा आय हरि है और अभीष्ट नक्षत्र स्वाती की संख्या १५ है।

अभीष्ट नक्षत्र संख्या $१५ - १ = १४ \times १५२ = २१२८$=नक्षत्र सम्बन्ध से गुणनफल।

इष्ट आय $३ - १ = २ \times ८१ = १६२$ = आय सम्बन्ध से गुणनफल। दोनों गुणनफलों का योग = २२९०।

$२२९० \div २१६$ शेष = १३० के तुल्य पिण्ड होता है। यदि लम्बाई = १३ तो $१३० \div १३$ = चौड़ाई १० हाथ होगी। १३० पिण्ड मे २१६ को आवर्त रूप से जोड़ने पर अनेक पिण्ड सिद्ध होंगे। जैसे १३० + २१६, ३४६, ५६२ इत्यादि।

यहाँ गणितज्ञों की विशेष जानकारी के लिये आचार्य के गृहपिण्ड साधन गणित की उपपत्ति दी जा रही है—कल्पना करिए गृहपिण्ड प्रमाण, (लम्बाई × चौड़ाई) = य'' है। पिण्ड $\div$ २७ = य $\div$ २७ = लब्धि = क, शेष = इष्टनक्षत्र = इ.न.।

$$= \frac{८य}{२७} = क + \frac{इ.\ न.}{२७} \quad अतः\ य = \frac{२७क + इ.\ न.}{८} = (१)$$

इसी प्रकार पिण्ड में ८ का भाग देने से ध्वजादिक आय होते हैं।

$$अतः\ \frac{या}{८} = न + \frac{इ.\ आ.}{८} \therefore या = ८न. + इ.\ आ. = (२)$$

(१) और (२) समीकरण समान हैं।

$$अतः\ \frac{२७क + इ.\ न.}{८} = ८न + इ.\ आ.$$

$$\therefore २७क + इ.\ न. = ६४न. + ८इ.\ आ.$$

$$\therefore क = \frac{६४न. + ८इ.अ. - इ.न.}{२७}$$

यहाँ पर भास्कराचार्य के कुट्टक गणित प्रकार से—

६४न.=भाज्य, २७=हार, ८इ. अ. – न.=क्षेप।

प्रथमतः १ क्षेप में $\frac{६४न + १}{२७}$ लब्धि – १९, गुणा – ८, धन में, ऋण क्षेप मे=४५,१९

अभीष्ट क्षेप + ८ इ. अ. सम्बन्धि लब्धि गुण = १५२ इ. अ. ६४ इ. अ. अपने हारों से तष्टित करने पर इ. अ. २४, इ. अ. १० । इसी प्रकार ऋणक्षेप सम्बन्धि गुण ४५।१९ को इष्ट ऋणक्षेप से (इ.न.) से गुणा करने हर लब्धि गुण=इ. न. ४५, इ. न. १९

अतः क=४५ इ. अ + ४५ इ. न.

गुण योग=इ. अ. १० + इ. न. १९=नी., इनमें उत्थापन से य=८१ इ.अ. + इ. न. १५२

= इ. अ. ८१ + ८१ – ८१ + इ. न. १५२=१५२ – १५२

= इ. अ. ८१=८१ + इ. न. १५२ – १५२ + २३३

= ८१ (इ. अ. – १) + १५२ (इ. न. – १) + २३३

अन्तिम खण्ड २३३, २७ नक्षत्र सम्बन्ध से २७ × ८=२१६ से तष्टित करने पर (२३३ – २१६=१९)

पिण्डमान य = ८१ (इ. आ. – १) + १५२ (इ. न. – १) + १७

य = जब २१६ से अधिक हो तो २१६ से भाग देकर शेष तुल्य पिण्ड मान बीज गणित से भी आचार्य ने सही बताया है ।।३।।

इन्द्रवंशोत्तरार्धेन ध्वजान्वदन्नायैर्वर्णपरत्वेन द्वारनिवेशनं उपजात्याह—

आया ध्वजोधूम्रहरिश्वगोखरे भध्वाङ्क्षकाः पिण्ड इहाष्टशेषिते ।। ४ ।।
ध्वजादिकाः सर्वदिशि ध्वजे मुखं कार्यं हरौ पूर्वयमोत्तरे तथा ।
प्राच्यां वृषे प्राग्यमयोर्गजेऽथवा पश्चादुदक्पूर्वयमे द्विजादितः ।। ५ ।।

पीयूषधारा—आया इति । पिण्डे क्षेत्रफलेऽष्टशेषिते अष्टभक्ते सति यदवशिष्यते तत्परिमिता आया ध्वजादिकाः स्युः । ध्वजधूमौ प्रसिद्धौ हरिः सिंहः, श्वा कुक्कुरः, गौर्वृषः, खरो गर्दभः, इभो हस्ती, ध्वांक्षः काकः, ध्वांक्ष एव ध्वांक्षकः स्वार्थे कः यदाह विश्वकर्मा—'विस्तारेणाहतं दैर्घ्यं विभजेदिहाष्टभिस्ततः । यच्छेषं स भवेदायो ध्वजाद्यास्ते स्युरष्टधा ।। ध्वजो धूमो हरिः श्वा गौः खरेभौ वायसोऽष्टमः । पूर्वादिषु चष्टानां ध्वजादीनामवस्थितिः' इति ।

द्वाराणि दिक्षु—

सर्वदिक्षु ध्वजाख्ये आये आगते सति सर्वदिशि दिक्चतुष्टयेऽपि गृहद्वाराणि कार्याणि स्युः इत्यर्थः । हरौ सिंहाये पूर्वदक्षिणोत्तरदिक्षु द्वाराणि स्युः न पश्चिमदिशि, तथा नृपाख्ये आये प्राच्यां दिश्येव मुखं नान्यदिक्षु । गजाख्ये आये प्राग्यमयोः पूर्वदक्षिणदिशोर्गृहं कार्यं स्यात् । यदाह श्रीपतिः—'गृहेषु चाया विषमाः प्रशस्ताः स्वस्थानगाः सर्वगतो ध्वजश्च । ध्वजो हरौ तौ च गजे वृषे ते वृषोज्झितान्यत्र समाश्रितं स्यात्'

वसिष्ठोऽपि—

'विषमायः शुभायैव समायः शोकदुःखदः । ध्वजः सिंहे तौ च गजे ह्येते गवि शुभप्रदाः ।। वृषो न पूज्यतेऽन्यत्र ध्वजः सर्वत्र पूजितः' इति । अस्यार्थः । प्रागवस्थितया तत्र पूजित एव परन्तु हरावपि दक्षिणस्यामभिपूजितः । तौ च गजे तौ गजसिंहायौ गज उत्तरस्यामपि प्रशस्तः स्व-स्थाने किमुत । एते ध्वजसिंहगजाख्या आयाः पश्चिमायामपि पूजितः स्वस्थाने किमुत । वृष

आयस्तु अन्यत्र पूर्वदक्षिणोत्तरदिक्षु न पूजितः किन्तु स्वावस्थित्या पश्चिमदिश्येव। ध्वजस्तु सर्वत्रैव पूजित इति। अन्यथा रीत्यान्ये आयाः यात्रावस्थिताः स्युस्तत्सम्मुखदिक्षु द्वाराणि स्युरित्यर्थः। 'प्रत्यग्ध्वजे द्वारमथोक्षिण पूर्व हरावपि स्याद्द्विरदे च याम्यम्' इति श्रीपत्युक्तेः। महेश्वरोऽपि—'सर्वद्वार इह ध्वजो वरुणदिग्द्वारं च हित्वा हरिः प्राग्द्वारो वृषभो गजो यमसुरेशाशामुखः स्याच्छुभः' इति।

वापीकूपसरस्सु च आयानामुपयोगः—

आयानां प्रयोजनान्तरमाह विश्वकर्मा—'वृषः सिंहो गजश्चैव कुण्डे कर्कटकीटयोः। द्वीपः पुनः प्रयोक्तव्यो वापीकूपसरःसु च। मृगेन्द्रमासने दद्याच्छयने च गजं पुनः। वृषं भोजनपात्रेषु छत्रादिषु पुनर्ध्वजम्॥ अग्निवेश्मसु सर्वेषु गृहे वह्न्युपजीविनाम्। धूमं नियोजयेत्केचिच्छानं म्लेच्छादिजातिषु॥ खरो वेश्यागृहे शस्तो ध्वांक्षः शेषकुटीषु च। वृषसिंहौ ध्वजाश्चापि प्रासादपुरवेश्मसु' इति।

वसिष्ठः—

'गजाये वा ध्वजाये वा गजानां सदनं शुभम्। अश्वालयं ध्वजाय वा खराये वृषभेऽपि वा। उष्ट्राणां मन्दिरं कार्यं, गजाये वा वृषे ध्वजे। पशुसद्मनृषाये वा ध्वजाये वा शुभप्रदम्॥ शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहः शुभप्रदः। अमत्रच्छत्रवस्त्राणां वृषाये वा ध्वजेऽपि वा॥ पादुकोपानहौ कार्यौ सिंहाख्येऽप्यथवा ध्वजे। उक्तानामप्यनुक्तानां मन्दिराणां ध्वजः शुभः' इति।

ब्राह्मणादिवेश्मद्वाराणि—

अथ ब्राह्मणादिकर्णपरत्वेन द्वारनिवेशनमुच्यते-अथवेति। द्विजादितः ब्राह्मणादिवर्णविभागेन पश्चादित्यादिदिक्षु गृहद्वारं स्यात्। यथा ब्राह्मणस्य पश्चान्मुखं गृहद्वारं क्षत्रियस्योदग्दिशि, वैश्यस्य पूर्वस्यां, शूद्रस्य यमे दक्षिणस्यामित्यर्थः। उक्तं च श्रीपतिना—'ध्वजे प्रतीच्यां मुखमग्रजानामुदङ्मुखं भूमिभृतां च सिंहे। विशो वृषे प्राग्वदनं गजे तु शूद्रस्य याम्यां न समामनन्ति' इति। टोडरानन्दे च्यवनः—'ध्वजे परास्यं विप्राणां राज्ञां सिंहेऽप्युदङ्मुखम्। गजे शूद्रास्य याम्यास्यं विशः पूर्वामुखं वृषे' इति॥ ४-५॥

पीताम्बरा—ध्वजादिक आय और गृहद्वार विचार—ध्वजादिक आय के नाम पहिले बताये जा चुके हैं।

आय के अनुसार गृहद्वार दिशा समझनी चाहिये। किस पिण्ड का ध्वज आय है उसमें चारों दिशाओं में घर के द्वार होते हैं।

सिंह आय में पूर्व, दक्षिण और उत्तर मे द्वार होते हैं। वृष आय में केवल पूर्व में द्वार होता है। गज आय में पूर्व और दक्षिण में द्वार होते हैं। अथवा ब्राह्मणादिक वर्ण क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के मकानों के क्रमशः पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण दिशाओं में द्वार शुभ होते हैं॥ ४-५॥

अथ गृहारम्भे विशिष्टकालनिषेधमुपजातिकयाह—

गृहेशतत्स्त्रीसुखवित्तनाशोऽर्केन्द्वीज्यशुक्रे विबलेऽस्तनीचे।
कर्त्तुः स्थितिर्नो विधुवास्तुर्नोभे पुरःस्थिते पृष्ठगते खनिः स्यात्॥ ६॥

पीयूषधारा—गृहेशेति । चेद्गृहस्वामिनो जन्मराशिवशात् अर्केन्द्वीज्यशुक्रे विबले निर्बले अस्ते अस्तङ्गते नीचे नीचराशिगते सति क्रमाद्गृहेशतत्स्त्रीसुखवित्तनाशो भवति । यथा सूर्ये दुष्टे विबले निर्बले नीचस्थिते वा गृहेशस्य नाशः इन्दौ चन्द्रे निर्बले अस्तमिते नीचगते वा गृहेशस्त्रीनाशः, ईज्ये गुरौ तादृशे सति गृहेशसुखनाशः, शुक्रे तादृशे सति गृहेशसुखनाशः, शुक्रे तादृशे गृहेशस्य वित्तं द्रव्यं तस्य नाशः । यदाह श्रीपतिः—'रवौ गृहस्थो गृहिणी शशाङ्के धनं सिते देवगुरौ च सौख्यम् । विनाशमायाति बलेन हीने नीचस्थिते वास्तुमुपागते वा' इति । वसिष्ठस्तु नैःस्वमेंवाह—'नीचे शत्रुगते जीवे शुक्रे वा यदि वा बुधे । शशाङ्के वा कृतं गेहमतिनिःस्वत्वमाप्नुयात्' इति इदमस्तस्याप्युपलक्षणम् । अत्रास्तगतत्वं किं क्षितिजसन्निधिकृतमुत सूर्यकृतं वा विवक्षितम् । अन्यथा तद्विशेषणानर्थक्यम् । अर्थतत्त्वविशेषेणानर्थक्यम् । अनेनैवाशयेन वास्तुशास्त्रे—'अस्तदोषोऽत्र न ग्राह्यः प्रातिदैवात्मको बुधैः । नास्तदोषः सदा चन्द्रे न मैत्रेऽब्जस्य नीचता' इति । अब्जस्य चन्द्रस्य ।

चन्द्रर्क्षगृहर्क्षयोः सम्मुखपृष्ठस्थयोः फलानि—

कर्त्तुरिति विधुवास्तुनोर्भे यन्नक्षत्रे दिनचन्द्रस्तद्विधुभं यद्गृहं तस्य विस्तारायामवशादुत्पन्नं भं तद्गृहभं तस्मिन्पुरःस्थिते सम्मुखस्थिते सति कर्तुर्गृहनिर्मातुस्तस्मिन्गृहे स्थितिर्निवासो न स्यात् । पृष्ठगते वा विधुवास्तुनोर्भे सति खनिः खननं चौरकृतापहारं तद्वशात्सर्वस्वहानिरित्यर्थः । उक्तं च वास्तुशास्त्रे—'ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च त्वग्रे पृष्ठे न शस्यते' इति । श्रीपतिना तु चन्द्रफलमुक्तम्—'क्षपाकरेणैव गृहं पुरःस्थे कुर्याद्वसेत्तत्र न जातु कर्ता । पतन्ति स्वप्नानि च पृष्ठसंस्थे यत्नेन तस्मादिदमत्र चिन्त्यम्' इति । पुरःस्थितत्वं लग्नवशादिति केचिद्व्याचख्युः । यथा प्राङ्मुखे गृहे कर्त्तव्ये लग्नस्थश्चन्द्रः पुरःस्थितो भवति । दक्षिणमुखे तु गृहे वामगः । पश्चिममुखे तु पृष्ठगः । उत्तरमुखे तु दक्षिणगः । एवं दशमस्थचन्द्रो दक्षिणमुखे गृहे सम्मुखः । एवं सर्वास्वपि दिक्षु पृष्ठगत्वं सम्मुखत्वं च ध्येयम् ।

चिकीर्षितद्वारदिङ्नक्षत्रे गृहारम्भो न कार्यो गृहारम्भनिर्णयश्च—

तत्रापि दक्षिणवामगत्वं चन्द्रस्य समीचीनमित्यर्थः । रत्नमालाटीकाकारो महावास्तु दिग्द्वारभक्रमेण सम्मुखदिश्यवस्थिते व्याख्यत्—यथा गृहद्वारं यस्यां दिशि विवक्षितं तद्दिङ्नक्षत्रेषु गृहारम्भो न कार्य इति ।

गृहारम्भो वामदक्षिणगे चन्द्रे—

अर्थाद्दिङ्नक्षत्रवशेन वामदक्षिणगे चन्द्रे गृहारम्भः सुखेन कार्यः । यदाह ब्रह्मशम्भुः—'भानावपि तथैव स्यादधिकं च तदन्तरे । धनलाभो मतिर्व्याधिरविनाशो विलोमतः' इति तदन्तरे विदिक्षु । विलोमतः—

दिग्द्वारनक्षत्रवशेन चन्द्रफलं वास्तुनक्षत्रफलं च—

ईशानवायव्यनैर्ऋत्याग्नेयदिक्षु क्रमेण धनलाभो करणं व्याधिः रविनाशः फलं स्यादित्यर्थः । इदं दिग्द्वारनक्षत्रवशेन चन्द्रफलं तुल्यन्यायत्वाद्वास्तुनक्षत्रेऽपि ध्येयम् । तदुक्तं ब्रह्मशम्भुना—'गृहायलब्धंऋक्षेषु यत्र ऋक्षे च चन्द्रमाः । शलाकासप्तके ध्येयं कृत्तिकादिक्रमेण च ॥ वामदक्षिणभागे तु प्रशस्तं शान्तिकारिकम् । अग्रे पृष्ठे न दातव्यं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ऋक्षे

चन्द्रस्य वास्तोश्च त्वग्रे पृष्ठे न शस्यते' इति । अयमाशयः । कृत्तिकादिसप्तनक्षत्रे चन्द्रेषु अनुराधादिसप्तसु वा गृहनक्षत्रे च सति पूर्वद्वारं पश्चिमद्वारं वा न कार्यम् । तत्र चन्द्रः पृष्ठस्थितोऽग्रस्थितो वा भवति, एवं मघादिसप्तसु धनिष्ठादिसप्तसु वा गृहनक्षत्रे वा सति दक्षिणद्वारमुत्तरद्वारं वा न कार्यमित्यर्थः ।। ६ ।।

पीताम्बरा—गृहारम्भ में निषेध समय—गृहस्वामी की राशि से सूर्य अशुभ, निर्बल या नीच राशिस्थ हो तो गृहस्वामी का नाश, चन्द्रमा निर्बल या नीचगत हो तो गृहपति की स्त्री का विनाश, इसी प्रकार बृहस्पति हो तो गृहस्वामी का सुख नाश, ऐसी ही स्थिति शुक्र की होने से गृहपति का वित्त विनाश होता है ।

दिन नक्षत्र=चन्द्र नक्षत्र तथा पूर्व सिद्ध वास्तु नक्षत्रों में वास्तु नक्षत्र के सम्मुख होने पर घर के मालिक की उस घर में स्थिति नहीं होती पृष्ठस्थ होने पर उस घर में चोरों से सर्वस्व सम्पति आदि की हानि होती है ।

कुछ आचार्य "पूर्व मुख के घर में लग्नगत चन्द्रमा आगे, दक्षिण मुख घर में लग्नगत चन्द्रमा बायें पश्चिम मुख घर में लग्नस्थ चन्द्रमा पीछे और उत्तर मुख घर में लग्नगत चन्द्रमा दक्षिण होता है" ऐसा कहते हैं । इसी प्रकार सर्वत्र विचारना चाहिए ।। ६ ।।

अथैवमायं सफलमभिधाय व्ययकथनपुरःसरमंशकज्ञानं सफलमुपजात्याह—

भं नागतष्टं व्यय ईरितोऽसौ ध्रुवादिनामाक्षरयुक्तपिण्डः ।
तष्टो गुणैरिन्द्रकृतान्तभूपा ह्यंशा भवेयुर्न शुभोऽन्तकोऽत्र ।। ७ ।।

पीयूषधारा—भमिति । प्रागुक्तदिशा कल्पितं यद्गृहभं तन्नागैरष्टभिस्तष्टं भक्तावशिष्टं स व्यय ईरितः । यथा भं रोहिणी ४ । अयमेव व्ययः असौ व्ययः ध्रुवादिनामाक्षरयुक् ध्रुवादीनां नामानि अधुनैव वक्ष्यति । यत्संख्याकानि दिक्षु द्वाराणि चिकीर्षितानि तदनुरोधेन यदायतं ध्रुवादिगृहनाम तदक्षरसंख्यया युक्तः ततः सपिण्डः प्रागानीतपिण्डयुक्तः गुणैस्त्रिभिस्तष्टः भक्तावशिष्टः एकद्वित्रिशेषेण इन्द्रयमराजसञ्ज्ञकास्त्रयोंऽशाः स्युः ।

अन्तकयमांशौ त्यक्त्वा इन्द्रराजांशयोर्गृहारम्भः शुभः—

अत्र गृहारम्भेऽन्तको यमाख्योंऽशको न शुभः । अर्थादिन्द्रराजानौ शुभफलदौ । यदाह श्रीपतिः—'धिष्ण्ये विभक्ते वसुभिर्व्ययः स्याद्व्ह्यायमूनव्ययमालयं सत् । व्ययान्विते क्षेत्रफले गृहस्य ध्रुवादिनामाक्षरमिश्रिते च ।। त्रिभिर्विभक्ते क्रमशोंऽशकः स्यादिन्द्रो यमो भूपतिरन्तकोने' इति । वास्तुशास्त्रेऽपि—मूलराशौ व्यये क्षिप्ते गृहनामाक्षरैः पुनः । युते हरेत्त्रिभिर्भागं यच्छेषं सोंऽशको भवेत् ।। इन्द्रो यमश्च राजा स्याद्यमांशो नैव शोभनः' इति । समूलराशिः क्षेत्रफलम् ।।७।।

पीताम्बर—घर की नक्षत्र संख्या में ८ का भाग देने से शेष संख्या तुल्य व्यय होता है । आगत व्यय में, अग्रिम श्लोकोक्त ध्रुव धान्यादिक घर के नाम के अक्षरों की संख्या तथा पिण्ड का योगफल जो हो उसमें ३ का भाग देने से १, २, ० शेष रहे तो क्रमशः इन्द्र, यम और राज के अंश होते हैं । यम के अंश का पिण्ड शुभ नहीं होता । इन्द्र और राज अंश के मकान

सुन्दर सुखद होते हैं। जैसे २१ × १९ का ३९९ पिण्ड है। इष्ट नक्षत्र ६ आर्द्रा है। ६ ÷ ८= शेष ६ व्यय सिद्ध होता है। घर का नाम ध्रुव दो अक्षर का है। ६ + २=८ में पिण्डाङ्क ३९९ जोड़ने से ४०७ होता है। इसमें ३ तीन का भाग देने से शेष ० राज अंश शुभ हैं॥ ७॥

अथ विवक्षितशालाध्रुवाङ्कानयनं पथ्यावक्राख्येनानुष्टुभाह—

दिक्षु पूर्वादितः शाला ध्रुवा भूद्वौ कृता गजाः।
शालध्रुवाङ्कसंयोगः सैको वेश्मध्रुवादिकम्॥ ८॥

पीयूषधारा—दिक्ष्विति। पूर्वादितो दिक्षु प्राच्यादिषु चतसृषु दिक्षु इमे शालाः स्युः। यथा प्राच्यां द्वारे चिकीर्षिते शालाध्रुवाङ्कः एकः, दक्षिणस्यां द्वौ, पश्चिमायां कृताश्चत्वारः उत्तरस्यां गजाः अष्टौ। अथ दिक्परत्वेन यावन्ति द्वाराणि एकं द्वे, त्रीणि, चत्वारि वा चिकीर्षितानि तावतां शालाध्रुवाङ्कानां संयोगः कार्यः। सैकः स तु ध्रुवादिकं वेश्म गृहं स्यात्।

तत्रोपपत्तिः—

अत्रोपपत्तिर्नीलकण्ठगुरुचरणप्रसादतः उच्यते। यथाह नारदः—'गुरोरधो लघुं न्यस्य पुरस्तात्पूर्ववन्यसेत् गुरुभिः पश्चिमं पूर्वं यावत्सर्वलघुर्भवेत्'। एतच्च सामान्यतो यस्मिन्कस्मिश्चित्प्रस्तारे सम्भवति। तथापि गृहेऽपि विदिग्द्वारानौचित्यादिक्ष्वेव द्वाराणां प्राशस्त्योक्तेः दिशां चतुष्टयात्वाच्चत्वार एव गुरवः स्थाप्या इति विधिः कार्यः। तत्र प्रथमातिक्रमे कारणाभावादादिगुरोरेवाधो लघुः स्थाप्यः। एवमग्रेऽपि।

लघुगुरुस्वरूपे—

गुरुलघुस्वरूपं वृत्तरत्नाकरे—'असौ वक्रो गुरुर्ज्ञेयो ह्यन्यो वै मातृको ऋजुः' इति। असौ गुरुर्वक्रो लेख्यः (˘) (ऽ) अन्यो गुरुव्यतिरिक्तः लघुमातृकः ऋजुः सरलः (।) ऊर्ध्वदण्डाकृतिर्लेख्यः।

शालाध्रुवानयनप्रस्तारः—

यथा चतुर्णां प्रस्तारः—अत्र दिशां चतुःक्रमेण लघुस्थानेनालिन्दं गुरुमाश्रितं प्रदक्षिणैर्गृहद्वारालिन्दैर्दशषड्विधा इति गृहभेदाः स्युरिति शेषः। अलिन्दं अलिन्दशब्देन शालाभिधीयते। ब्राह्मे यागे मणिका जालकवृत्ताङ्गणसम्मुखा क्रियते सा ज्ञेयेत्युत्पलः। प्रतिशालाख्यमिति महादेवः। 'प्रघाणप्रघणालिन्दा बहिर्द्वारप्रकोष्ठके' इत्यमरः। तत्र गुरुचतुष्टयं प्रथमभेदस्य लघोरभावाद्दिग्द्वाराभावादूर्ध्वमुखं गृहं कोष्ठीसदृशं स्यात्। अन्येषु पञ्चदशसु भेदेषु लघुस्थानावस्थित्या तत्तद्दिक्षु द्वाराणि स्युः।

शालाध्रुवानयनं प्रस्तारमन्तरा प्रकारान्तरेण—

तत्र ग्रन्थकृद्विनापि प्रस्तारोक्ति लाघवेन शालाध्रुवानानयति स्म। यथा एकस्मिन्नेव द्वारे चिकिर्षिते शालाध्रुवाङ्कः १, एवं दक्षिणदिशि २, पश्चिमदिशि च ३, उत्तरदिशि च ४ प्रत्यक्षतो दृश्यते। तत्र द्वित्र्यादिद्वारज्ञानार्थमुपायः। यद्यद्दिशुद्वारेच्छा तत्तद्दिग्भवध्रुवयोगः कार्यः। यथा पूर्वस्यां पश्चिमायां च द्वारे अभीष्टे शालाध्रुवौ १।४ अनयोर्योगः ५। एवं पूर्वदक्षिणोत्तरद्वारेऽभीष्टे शालाध्रुवाः १।२।८। एषां योगः ११। एवं दिक्चतुष्टयेऽपि शालाध्रुवाङ्कयोगः १५

प्रस्तारलिखितक्रमेण प्रत्यक्षत उपलभ्यते । चतुर्गुरुप्रस्तारमारभ्योक्तः । तत्र चतुर्गुरोः प्रथमभेदस्य दिग्द्वाराभावेन गणनाभावात्तत्त्यागस्य प्राप्तत्वात्समारभ्योक्तवदित्येकयोगः कृत सर्वत्र यया पूर्वपश्चिमयोः ६ विजयाख्यं गृहम् । अत एवोक्तं 'दिक्षु पूर्वादित' इत्यादि ॥ ८ ॥

पीताम्बरा—शाला (बरामदा, अलिन्द) ध्रुवाङ्क साधन—पूर्वादिक प्रदक्षिण गत चारों दिशाओं के क्रमशः १, २, ४, ८ ध्रुवा होती हैं । दिशाक्रम से एक, दो, तीन या चार जितने द्वार बनाने हों उस-उस दिशा के उन-उन ध्रुवाङ्कों के योग में १ जोड़ने से ध्रुवादिक नाम के घर होते हैं ।

लघु, गुरु छन्दशास्त्र के अनुसार प्रस्तार चक्र से (ऽ गुरु चिह्न) (।) लघु चिह्न से ४ चार गुरु के १६ भेद होते हैं । सब गुरु के भेद=४, त्रिगुरुभेद=६, द्विगुरुभेद=४, एक गुरुभेद=१ अन्तिम सर्वलघु=१ अतः योग करने से १६ प्रकार के घर होते हैं । जो प्रस्तार चक्र को देखने से स्पष्ट है ।

ऽऽऽऽ—१	ऽऽ।ऽ—५	ऽऽऽ।—९	ऽऽ।।—१३
।ऽऽऽ—२	।ऽ।ऽ—६	।ऽऽ।—१०	।ऽ।।—१४
ऽ।ऽऽ—३	ऽ।।ऽ—७	ऽ।ऽ।—११	ऽ।।।—१५
।।ऽऽ—४	।।।ऽ—८	।।ऽ।—१२	।।।।—१६

यदि एक ही दिशा में द्वार हो तो पूर्व शाला ध्रुवाङ्क=१, दक्षिण २, पश्चिम ३, उत्तर ४ प्रत्यक्ष देखे जा रहे हैं ।

यदि इष्ट किसी या किन्हीं दिशाओं में द्वार की इच्छा हो तो उन दिशाओं का ध्रुवाङ्क योग करना चाहिये । जैसे पूर्व और पश्चिम में द्वार निर्माण करना हो तो अभीष्ट शाला ध्रुव १ + ४=५, यदि पूर्व=दक्षिण, उत्तर द्वार अभीष्ट हो तो १ + २ + ८=११, इस प्रकार चारों दिशाओं में शाला ध्रुवाङ्क योग=१ + २ + ४ + ८=१५ जो प्रस्तार के लिखित प्रकार में प्रत्यक्ष हैं ॥ ८ ॥

अत्रैव विवक्षितध्रुवानयनमभिधायेदानीं ध्रुवादीनां नामाक्षरसंख्या पथ्यावक्त्रच्छन्दसाह—

तिथ्यर्काष्टाष्टिगोरुद्रशक्रे नामाक्षरं त्रयम् ।
भूद्वयब्धोष्वङ्गदिग्वह्निविश्वेषु द्वौ नगाब्धयः ॥ ९ ॥

पीयूषधारा—तिथ्यर्केति । 'दिक्षु पूर्वादितः' इत्यादिना यद्वेश्मध्रुवादि समागतं तस्या शालाध्रुवाङ्कसंयोगः सैकः इत्युक्तदिशा संख्यामवधारयेत् । तदा गृहनामाक्षरत्रयात्मकं स्यात् । सा च संख्या पञ्चदशी, द्वादशी, अष्टमी, षोडशी, नवमी, एकादशी, चतुर्दशी वा स्यात् तदा गृहनामाक्षरात्मकं स्यात् यथा—१५।१२।८।१६।९।११।१४। अत्र त्रीणि चाक्षराणि पुनः सैव संख्या प्रथमा, द्वितीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, तृतीया त्रयोदशी वा स्यात्तदा गृहनाम द्वौ अक्षरद्वयात्मकं स्यात् । यथा १।२।४।५।६।१०।३।१३ अत्र द्वे अक्षरे पुनः सा संख्या सप्तमी स्यात्तदाऽब्धयश्चतुरक्षरं गृहनाम । यथा ७ चत्वार्यक्षराणि अत एतच्च पद्यं ध्रुवधान्याद्यक्षरगणनामूलमिति नात्र मूलवाक्यम् ॥ ९ ॥

पीताम्बरा—भवनों की नामाक्षर संख्या—अष्टम श्लोक के अनुसार १५, १२, ८, १६, ९, ११, १४ में की कोई संख्या हो तो भवन का नाम तीन अक्षरों से और यदि प्रस्तार में १,२,४,५,

६, १०, ३, १३ हों तो भवन का नाम दो अक्षरों से और ७ वीं संख्या के भवन का नाम चार अक्षरों से निम्न भाँति होता है ॥ ९ ॥

अथ षोडशगृहाणां नामान्यार्यागीतिछन्दसाह—

ध्रुवधान्ये जयनन्दौ खरकान्तमनोरमं सुमुखदुर्मुखोग्रं च ।
रिपुदं वित्तदं नाशं चाक्रन्दं विपुलविजयाख्यं स्यात् ॥ १० ॥

पीयूषधारा—ध्रुवधान्य इति। आर्यागीत्याख्यं छन्दः। तल्लक्षणं वृत्तरत्नाकरे—'आर्यापूर्वार्धं 'यदि गुरुणैकेनाधिकेन निधने युक्तम्। इतरं तद्वन्निखिलं यदियमुदितेयमार्यागीतिः ॥' इति। यथा प्रस्तारः ॥SS॥SS॥S॥S॥S॥॥॥S॥SS पूर्वार्धे उत्तरार्धे ॥S॥SSSSSS॥S॥SSS। अत्रार्यासामान्यतत्तल्लक्षणमप्यनुसंधेयम्। विशेषलक्षणस्य सामान्यलक्षणाधीनत्वात्। निधने प्रान्ते। ध्रुवेत्यादि पद्यं स्पष्टार्थमेव तथापि विविच्यते। यथा—ध्रुवधान्ये जयनन्दाविति चेतरेतरयोगद्वन्द्वः। ध्रुवमूर्ध्वमुखं प्रथमं, गृहं धान्यं पूर्वं द्वितीयं, जयं दक्षिणद्वारं तृतीयं नन्दं प्राग्दक्षिणद्वारं चतुर्थं, पश्चिमद्वारं पञ्चमं, कान्तं प्राक्प्रत्यग्द्वारं षष्ठं मनोरमं दक्षिणपश्चिमद्वारं सप्तमं, सुमुखं प्राग्दक्षिणपश्चिमद्वारमष्टमं, दुर्मखमुत्तरद्वारं नवमं, उग्रं पूर्वोत्तरद्वारं दशमं, रिपुदं विपक्षाख्यं दक्षिणोत्तरद्वारमेकादशं, धनदं पूर्वदक्षिणोत्तरद्वारं द्वादशं, पश्चिमोत्तरद्वारं नाशसंज्ञं त्रयोदशं, आक्रन्दं पूर्वपश्चिमोत्तरद्वारं चतुर्दशं, विपुलं दक्षिणपश्चिमोत्तरं द्वारं पञ्चदशं, विजयं पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरद्वारं षोडशमिति। ननु ध्रुवाद्यक्षरसंख्याज्ञानं प्राक्पद्येनैवोक्तम्। तत्किं पुनर्ध्रुवादीनां नामग्रहणेन उच्यते। नामसदृशफलसूचनार्थं तदुपादानम्। अन्यथा द्वारानुरोधेन ध्रुवाद्यक्षरसंख्यायोगे उक्ते कीदृशानां गृहाणां विधिनिषेधो वेति निश्चयो न भवेत्। तस्माद्येषां शुभफलादीनि नामानि तेषां गृहाणां ग्रहणं येषां चाशुभं फलं तेषां त्यागो विधेय इति निष्कृष्टोऽर्थः। उक्तं च वसिष्ठेन—ध्रुवसंज्ञं गृहं त्वाद्यं धनधान्यसुखपदम्। धान्यं धनप्रदं नृणां जयं स्याद्विजयप्रदम्। नन्दं स्त्रीहानिदं नूनं खरं सम्पद्विनाशनम्। पुत्रपौत्रप्रदं कान्तं श्रीपदं स्यान्मनोरमम् ॥ सुवक्रं भोगदं नूनं दुर्मुखं विमुखप्रदम्। सर्वदुःखप्रदं क्रूरं विपक्षं शत्रुभीतिदम्। धनदं धनदं गेहं क्षयं सर्वक्षयप्रदम्। आक्रन्दं शोकजननं विपुलं श्रीयशःप्रदम्। विपुलं नामसदृशं धनदं विजयाभिधम् ॥' इति ॥ १० ॥

पीताम्बरा—(१) प्रथम ऊर्ध्वमुख घर का नाम, ध्रुव, (२) पूर्वमुख धान्य, (३) दक्षिणद्वार के जय, (४) पूर्व-दक्षिणद्वार के मन्द, (५) पश्चिमद्वार खर, (६) पूर्व-पश्चिमद्वार कान्त, (७) दक्षिण पश्चिमद्वार मनोरम, (८) पूर्व दक्षिण-पश्चिमद्वार सुमुख, (९) उत्तरद्वार दुर्मुख, (१०) पूर्वोत्तरद्वार उग्र, (११) दक्षिणोत्तरद्वार रिपुद, (१२) पूर्वोत्तर-दक्षिणद्वार धनद, (१३) पश्चिमोत्तरद्वार नाश, (१४) पूर्व-पश्चिमोत्तरद्वार आक्रन्द, (१५) दक्षिण-पश्चिमोत्तरद्वार विपुल और (१६) पूर्व दक्षिण-पश्चिम-उत्तर द्वार के भवन का नाम विजय घर है।

शुभ नाम के भवनों का शुभ फल होता है। १० श्लोक का विषय नवम श्लोक से स्पष्ट होते हुए भी आवश्यक समझ कर १० श्लोक में भवनों के नामों का उपयोग किया गया है।

वाराणसी नगर के नगवा ग्राम में जैसे—हरि-हर्ष निकेतन नामक भवन के तीनों ओर पश्चिम-उत्तर-दक्षिण शाला = अलिन्द (बरामदा) है अतः शाला ध्रुवाङ्क २ + ४ + ८ = १४ में

एक जोड़ने से १५ होता है। इसलिए हरि-हर्ष निकेतन नामक घर का शास्त्रीय नाम "विपुल" होता है। "विपुलं श्रीयशःप्रदम्" विपुल नामक घर श्री और सुयश देता है ॥ १० ॥

अथ केषाञ्चिन्मतेन गृहस्यायादिनवकमुपजातिकापथ्यावक्राभ्यामाह—

पिण्डे नवाङ्काङ्गगजाग्निनागनागाब्धिनागैर्गुणिते क्रमेण ।
विभाजिते नागनगाङ्कसूर्यनागर्क्षतिथ्यृक्षखभानुभिश्च ॥ ११ ॥
आयो वारोंऽशको द्रव्यमृणमृक्षं तिथिर्युतिः ।
आयुश्चाथ गृहेशर्क्षं गृहभैक्यं मृतिप्रदम् ॥ १२ ॥

पीयूषधारा—पिण्डे इति । पिण्डे क्षेत्रफले नवधा स्थापिते क्रमेण नवादिभिरङ्कैर्गुणिते क्रमेण च नागादिभिरङ्कैर्भक्ते सति यदवशिष्टं तदायादिकं स्यात् क्षेत्रफलं नवभिर्गुणमष्टभिर्भक्तं शिष्टमायः स्यात् । तद्यथा पिण्डः २०३ नवभिर्गुणितः १८२७ अष्टभक्ते शेषं ३ सिंह आयो जातः । पुनर्नवभिर्गुणितः सप्तभिर्भक्तं शिष्टं वारः ७ । एवं सर्वेप्यानीताः अंशकः ३ द्रव्यं ४, ऋणं १, नक्षत्रं ४ रोहिणी तिथिः ४ चतुर्थी, योगः २ प्रीतिः, आयुः ६४ । उक्तं च—'गोङ्कर्स्वष्टगुणाष्टनागजलधिव्यालैः– । ९ । ९ । ६ । ३ । ८ । ८ । ४ । ८ । हतं भूपलं नागाद्रयङ्कदिवाकराष्टमतिथीयोगैः खसूर्यै–८ । ७ । ९ । १२ । ८ । २७ । १५ । २७ । १२९ । र्भजेत् । आयं वारमथांशकं धनमृणं तारां तिथिं चिन्तयेद्योगं चायुरितीहशेषकपदे भागैर्हते तान्त्रिकैः' इति । वसिष्ठादिभिस्तु षडेते निर्दिष्टाः । यदाह—'विस्तारायामगुणितं गृहस्य पदमुच्यते । तस्माद्धनाघनायर्क्षे वासराख्यनवांशकाः । गजरामाङ्कवस्वङ्कऋतुभिः—८ । ३ । ९ । ८ । ९ । ६ गुणितात्पदात् । सूर्याष्टाष्टर्क्षशैलाङ्क–१२ । ८ । ८ । २७ । ९ । विभक्तादवशिष्टकाः । सम्पूर्णाः शुभदास्त्वेते ह्यसम्पूर्णास्त्वनिष्टदाः' इति । पदं क्षेत्रफलम् । अधनमृणम् । अत्रोपपत्तिः । गुणकानां भाजकानां च आयाः अष्टावेव, वाराः, सप्तैव, अंशा नवैव, धनमृणम्, नक्षत्राणि सप्तविंशतिः, तिथयः पञ्चदश, योगाः सप्तविंशतिः, परमायुर्विंशत्यधिकशतम् ।

आयादीनां फलानि—

एषामायादीनां प्रयोजनमुच्यते–आयस्य तावत्–'विषमायः शुभायैव समायः शोकदुःखदः' इति वसिष्ठोक्तेः । वाराणां च–'सूर्यारवारराश्यंशाः सदा वह्निभयप्रदाः । शेषग्रहाणां वारांशाः कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदाः' । इति । यथा गणितेनागतो भौमवारः सोऽपि निन्द्यः । तद्राशी मेषवृश्चिकौ निन्द्यौ । एवमन्येष्वपि वारेषु नवांशाः नव 'गृहस्यागतभं यत्तु तद्द्विराश्यात्मकं यदि । तन्नवांशवशात्तत्र ज्ञातव्यं सर्वदा गृहम्' इति । यथा कृत्तिका द्विराश्यात्मिका तत्रैकावशेषे मेषः, द्वयावशेषे वृषः, मृगोऽपि द्वयादिशेषे मिथुनम्, अन्यथा वृषः, पुनर्वसावप्यंशकत्रयं यावन्मिथुनम्, अन्यथा कर्कः, एवमुत्तराफाल्गुन्यादिषु द्विराश्यात्मकेषूहनीयं विद्वद्भिः, न तु निः सन्दिग्धेष्वेकराश्यात्मकेषु अश्विन्यादिषु ।

धनर्णविचारो गृहारम्भे—

धनर्णयोश्च–'धनादिकं गृहं वृद्धौ निर्धनाय ऋणाधिकम्' इति नक्षत्रस्य । 'विपत्प्रदा विपत्तारा प्रत्यरा प्रतिकूलदा । । निधनाख्या तारका तु सर्वथा निधनप्रदा । विवर्ज्यतारकास्त्वेतन्निर्माणमशुभप्रदम् । कुर्वन्नाज्ञानतो मोहाद्दुःखभोग्यादिभाग्भवेत्' अयमर्थः । गृहनक्षत्राद्दिनभं

यत्संख्यं तन्नवभक्तावशिष्टतन्नवभक्तावशिष्टतारकाविपत्तारादिकाः स्युश्चेत्तदानिष्टास्तत्दिने इति गृहारम्भं न कुर्यात् । अन्यस्मिन्दिने शुभतारासु गृहारंभं कुर्यादित्यर्थः केचित् । अपरे तु गृहकर्तुर्नामनक्षत्राद्गृहभं गण्यं नवभक्तमवशिष्टं विपत्तारादिकं स्यात् । तद्गृहमनिष्टमन्यथा शुभमिति । यदाह कश्यपः—'दत्ते दुःखं तृतीयर्क्षं पञ्चमर्क्षं यशःक्षयम् । आयु क्षयं सप्तमर्क्षं कर्त्तुर्भाद्यदि सप्तमम्' इति । वास्तुशास्त्रेऽपि—'गृहभात्स्वामिभं गण्यं भक्तं च नवभिः पुनः । यच्छेषं सा भवेत्तारा सप्तपञ्चत्रिकाधमा' इति ।

गृहेशगृहर्क्षयोरैक्ये शुभाशुभज्ञानोपायो गृहारम्भे—

यदा तु गृहस्य चैकं नक्षत्रं स्यात्तदा तच्छुभमशुभं चेति निर्णयं स्वयमेवाह—अथेति । गृहेशो गृहस्वामि तस्यर्क्षं नक्षत्रं प्रागुक्तप्रकारेण चानीतं भं गृहभं तयोरैक्यं तयोरेकमेव भं स्यात्तदा तद्गृहकर्त्तुर्मृतिप्रदं मरणकरं स्यात् । यदाह वसिष्ठः—गृहस्य तत्पतेस्त्वेकं धिष्ण्यं चेन्निधनप्रदम्' इति । निधनं मरणम् । राश्यैक्येऽयं दोषः न तु भिन्नराशित्वे । तद्वाक्यस्य विवाहप्रकरणोक्तत्वात् । कैश्चिदन्यदपि प्रयोजनमुक्तम् । तदुक्तं व्यवहारसमुच्चये—'त्रिभिस्त्रिभिर्वेश्मनि कृत्तिकाद्यैरुक्छेदपुत्राप्तिधनानि शोकम् । शत्रोर्भयं राज्यभयं च मृत्युः सुखं प्रवासश्च नव प्रभेदाः' इति ।

गृहर्क्षवशेन राशिज्ञानफलम्—

गृहभवशाद्राशिज्ञानेऽपि प्रयोजनमाह स एव—'राशिकूटादिकं सर्वं दम्पत्योरिव चिन्तयेत् । नैःस्वं द्विर्द्वादशे नूनं त्रिकोणे त्वनपत्यता ॥ षष्ठाष्टके नैधनं स्याद्व्यत्यये मध्यमं स्मृतम् । परेषु शुभदं प्रोक्तं गेहं तत्कर्तृराशितः' इति । व्यत्यये द्वादश द्वितीय इत्यादिके ।

तत्र वर्णवश्यराशिकूटादयोप्यावश्यकाः—

अन्ये राशिकूटप्रभेदा वर्णो वश्यमित्यादिका विवाहप्रकरणोक्ता ध्येयाः । सर्वपदोपादानात् ।

तत्र राशिनिर्णयः—

राक्षसामरमर्त्या यत्र कृत्तिकादिषु द्विराशिषु भेषु राशिनिर्णयो वास्तुशास्त्रे—अश्विन्यादि त्रयं मेषं सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम् । मूलादित्रितयं चापे शेषेषु नव राशयः ॥' इति शेषेषु भेषु रोहिण्यादिषु नव राशयो ज्ञेयाः । यथा रोहिणीमृगयोर्वृषः आर्द्रापुनर्वस्वोर्मिथुनं पुष्याश्लेषयोः कर्कः एवं हस्तादिके श्रवणादिद्विके च कन्यामकराद्याः राशयः स्युरित्यर्थः । अयं च पक्षो वास्तुशास्त्रे नवांशानुक्तेरुक्तः ।

राशिकूटे नाडीवेधदोषाभावः—

अत्र राशिकूटे नाडीवेधो न दोषाय । उक्तं च ज्योतिश्चिन्तामणौ–'सेव्यसेवकयोश्चैव गृहतत्स्वामिनोरपि । परस्परं मित्रभावे एकनाडी प्रशस्यते' इति ।

तत्र तिथ्यानयनं तत्फलानि—

तिथिप्रयोजनं तिथ्यानयनप्रकारान्तरं च वास्तुशास्त्रे—'शक्राहतं क्षेत्रफलं त्रिंशद्भक्तावशेषकम् । तिथिः प्रतिपदा ज्ञेया दर्शं रिक्ता च वर्जयेत्, इति तुल्यन्यायाच्छुभाशुभप्रकरणोक्तं ष्टयोगवर्जं च योगानां प्रयोजनं स्पष्टमेव तावत्कालं गृहस्थितिरिति ।

तत्र क्षेत्रफलसाधनक्रमः—

यत्र हस्तादिगणनया क्षेत्रफले क्रियमाणे आयव्ययांशकादिषु शुद्धिर्नोपलभ्यते तत्राप्यङ्गुलादिकं निःक्षिप्य संशोध्य वा क्षेत्रफलं साध्यम् । यदाह भीमपराक्रमः—'करमानादिष्टगुणं नो चेत्तदाङ्गुलादि प्रदाय हित्वा वा । क्षेत्रफलगणितेन प्रसाधयेदिष्टसिद्धयर्थम् ।। इति । अगुणमायव्ययोदिशून्यं यदि स्यात्तदेष्टसिद्धयर्थमिष्टानामायांशकानां सिद्धयर्थं प्रक्षिपेत् । अत्र वृत्तादिक्षेत्रेषु क्षेत्रफलानयनं लीलावतीप्रभृतिषु ज्योतिर्ग्रन्थेषु द्रष्टव्यम् ।। ११–१२ ।।

पीताम्बरा—भवन में आय-व्ययादि नौ पदार्थ ज्ञान—साधित गृहपिण्ड को (लम्बाई-चौड़ाई) ९ स्थानों में रख कर ९, ९, ६, ८, ३, ८, ८, ४, ८, अंकों से पृथक्-पृथक् गुणा कर प्रत्येक गुणनफल में क्रमशः ८, ७, ९, १२, ८, २७, १५, २७, १२० का भाग देकर ९ स्थानों में जो शेष रहे, वे घर के क्रमशः (१) आय, (२) वार, (३) अंश, (४) धन, (५) ऋण, (६) नक्षत्र, (७) तिथि, (८) योग और (९) नवम शेष आयु होता है। गृह की और गृहपति के नक्षत्रों की एक नाडी तो ठीक है किन्तु दोनों का एक नक्षत्र से मकान मालिक की मृत्यु होती है।

जैसे—७५ × ७५ = ५६२५ पिण्ड

५६२५ × ९	५६२५ × ९	५६२५ × ६	५६२५ × ८	५६२५ × ३	५६२५ × ८	५६२५ × ८	५६२५ × ४	५६२५ × ८
८ ५०६२५	७ ५०६२५	९ ३३७५०	१२ ४५०००	८ १६८७५	२७ ४५०००	१५ ४५०००	२७ २२५००	१२० ४५०००
८	७	९	१२	८	२७	१५	२७	१२०
ल. ६३२८	ल. ७२३२	ल. ३७५०	ल. ३७५०	ल. २१०९	ल. १६६६	ल ३०००	ल. ८३३	ल. ३७४
शेषः १	शेषः १	शेपः ९	शेषः १२ या शून्य	शेषः ३	शेषः १८	शेषः १५	शेषः ९	शेष १२०
आय	वार	अंश	धन	ऋण	नक्षत्र	तिथि	योग	आयु
इस मकान का विषमआयशुभ	सूर्यवार साधारण	शुभ	१२–३ = ९ लाभ	३	ज्येष्ठा	पूर्णिमा	साधारण	उत्तम

इस प्रकार प्रत्येक पिण्ड से आय वार आदिक के विचार पूर्वक गृहस्वामी के साथ नक्षत्र मेलापक द्वारा अधिक से अधिक आयु के पिण्डात्मक भवन निर्माण के लिए गणितज्ञ ज्योतिर्विद के आदेशानुसार गृह निर्माण कार्य कराना चाहिए ।। ११–१२ ।।

अथ गृहारम्भे वृषवास्तुचक्रं शालिनीभ्यामाह—

गेहाद्यारम्भेऽर्कभाद्वत्सशीर्षे रामैर्दाहो वेदभैरग्रपादे ।
शून्यं वेदैः पृष्ठपादे स्थिरत्वं रामैः पृष्ठे श्रीयुगैर्दक्षकुक्षौ ।। १३ ।।

लाभो रामैः पुच्छगैः स्वामिनाशो वेदैर्नैःस्वं वामकुक्षौ मुखस्थैः ।
रामैः पीडा सन्ततं चार्कधिष्ण्यादश्वैः रुद्रैर्दिग्भिरुक्तं ह्यसत्सत् ॥१४॥

पीयूषधारा—गेहाद्यारम्भे इति । गेहं गृहमादिशब्देन । प्रासादग्रामादि तदारम्भे सति अर्कभात् सूर्यकान्तनक्षत्राद्रामैस्त्रिभिर्भैर्वत्सस्य वृषस्य शीर्षे स्थितैर्दाहः फलं स्यात् । वेदभैश्चतुर्भिर्भैः अग्रपादे पुरःस्थितपादद्वये स्थितैः शून्यं जनवासशून्यं स्यात् । ततश्चतुर्भिर्भैः पृष्ठपादद्वये स्थितैः स्थिरत्वं गृहकर्त्तुः । ततो रामभैः पृष्ठे स्थितैः श्रीः स्यात् । ततो वेदैश्चतुर्भिर्भैर्वामकुक्षौ स्थितैर्लाभः । ततस्त्रिभिः पुच्छगैः स्वामिनो गृहकर्त्तुर्नाशः । ततो वेदैश्चतुर्भिर्भैर्वामकुक्षौ स्थितैः नैःस्व्यं दरिद्रम् । ततस्त्रिभिर्मुखस्थितैर्गृहकर्तुः पीडा सन्ततमनवरतं स्यात् । उक्तं च ज्योतिःप्रकाशे—'वास्तुचक्रं प्रवक्ष्यामि यच्च व्यासेन भाषितम् । यदृक्षे वर्तते भानुस्तत्रादौ त्रीणि मस्तके। चतुष्कमग्रपादे स्यात्पुनश्चत्वारि पश्चिमे । पृष्ठे च । त्रीणि ऋक्षाणि कुक्षौ चत्वारि वामतः ॥ चत्वारि दक्षिणे कुक्षौ पुच्छे भत्रयमेव च मुखे भगेत्रमेय स्युरष्टाविंशतितारकाः ॥ शिरस्ताराग्निदाहाय गृहावासोऽग्रपादयोः । स्थैर्यं स्यात्पश्चिमे पादे पृष्ठे चैव धनागमः ॥ कुक्षौ स्याद्दक्षिणे लाभो वामकुक्षौ दरिद्रता । पुच्छे स्वामिविनाशः स्यान्मुखे पीडा निरन्तरम्' इति । पितामहानन्तचरणा अपि—'त्रिवेदवेदाग्नियुगाग्निवेदत्रिकेषु ३ । ४ । ४ । ३ । ४ । ३ । ४ । ३ । भानोः शशिभं गृहेषु । दाहो विनाशः स्थिरता धनं श्रीः शून्यं च दारिद्र्यवधौ क्रमेण' इति । अथैतस्य चक्रस्य प्रकारान्तरेण निष्कृष्टमर्थमाह—वेति अर्कधिष्ण्यादश्वैः सप्तभैरसत्फलं, रुद्रैरेकादशभिः सत्फलं ततो दिग्भिर्दशभैरसत्फलमुक्तं स्यादिति निष्कृष्टोऽर्थः । उक्तं च—'रविभात्सप्त नेष्टानि शुभान्येकादशाष्टमात् । दश शेषाण्यनिष्टानि साभिजिद्वृषवास्तुनि' इति । पूर्वं सविस्तरोक्तिस्तु मूलवाक्यानुरोधात् ॥ १३–१४ ॥

पीताम्बरा—गृहारम्भ में वृष वास्तु चक्र—सूर्य नक्षत्र से गृहारम्भ के दिन की तीन नक्षत्र तक वृष के शिर में स्थित नक्षत्र से गृहदाह होता है। चार नक्षत्र तक वृष के अग्र नक्षत्रों में घर जनवास शून्य रहता है । पुनः पीछे के चार पैरों में, चारों नक्षत्रों में घर निर्माता की सुस्थिर स्थिति होती है । पुनः पीछे आगे के तीन नक्षत्र वृष पृष्ठ में श्री प्राप्ति के लिए होते हैं । पुनः आगे के ४ चार नक्षत्रों में वृष के दक्षिण कुक्षि में घर आरम्भ करने से घर में लाभ होता है । उसके आगे के तीन नक्षत्रों में पुच्छ में गृहस्वामी का नाश होता है ।. सूर्य नक्षत्र से आगे के चार नक्षत्रों में गृहनिर्माण से दारिद्र्य होता है । उसके आगे के तीन नक्षत्रों में गृहनिर्माता को सन्तत पीड़ा ही रहती है ।

वृष चक्र नाम से साधारण सरल बोध के लिए वृष चक्र कहा गया है ।

फलितार्थ है कि सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा की नक्षत्र तक गिनती के प्रथम ७ नक्षत्रों का गृहनिर्माण अशुभ, ८ से १८ तक के ११ नक्षत्रों का गृहनिर्माण शुभ और (अभिजित् सहित) १९ से २८ तक के १० नक्षत्रों का गृहनिर्माण अशुभ होता है। वास्तव में सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा की नक्षत्र संख्या जब ८ से १८ तक हो तभी गृहनिर्माण का कार्यारम्भ शुभ होता है । शेष में अशुभ ॥ १३–१४ ॥

अथ सौरचान्द्रमासैक्येन प्राच्यादिदिक्षु द्वाराणि गृहनिर्माणनक्षत्राणि च सूतिकागृहनिर्माणप्रवेशमुहूर्तौ स्रग्धराछन्दसाह—

कुम्भेऽर्के फाल्गुने प्रागपरमुखगृहं श्रावणे सिंहकर्क्योः
पौषे नक्रे च याम्योत्तरमुखसदनं गोऽजगेऽर्के च राधे ।

मार्गे जूकालिगे सदध्रुवमृदुवरुणस्वातिवस्वर्कपुष्यैः
सूतीगेहं त्वदित्यां हरिभविधिभयोस्तत्र शस्तः प्रवेशः ॥१५॥

पीयूषधारा—कुम्भेर्क इति । कुम्भे कुम्भस्थिते सूर्ये फाल्गुने च मासि प्रागपरमुखं गृह प्राङ्मुखं पश्चिममुखं च गृहं सत् शुभफलदं स्यादित्यर्थः । श्रावणे मासि सिंहकर्कसङ्क्रान्त्यो प्रागपरमुखं च गृहं स्यात् । पौषे मासे नक्रे मकरसङ्क्रान्तौ च प्रागपरमुखं गेहं स्यात् । अथ गोऽजगे वृषमेषगे सूर्ये राधे वैशाखे मासे च तथा मार्गे मार्गशीर्षे मासि जूकालिगे तुलावृश्चिकगते सूर्ये सति याम्योत्तरमुखं सदनं दक्षिणमुखमुत्तरमुखं च सदनं स्यात् । यदाह नारदः—'गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदं भवेत् । वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं ध्रुवम् ॥ कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्धनम् । कन्यारोगं तुले सौख्यं वृश्चिके धनवर्धनम् । कार्मुके तु महाहानिर्मकरे स्याद्धनागमः । कुम्भे तु रत्नलाभः स्यान्मीने सद्म भयावहम्' इति ।

चान्द्रमासफलानि गृहारम्भे

चान्द्रमासफलान्याह श्रीपतिः—शोको धान्यं मृतिपशुहृतिर्द्रव्यवृद्धिर्विनाशो युद्धं भृत्यक्षतिरथ धनं वह्निर्भयं च । लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भवनारम्भकर्तुः क्रमेण चैत्रादूचे मुनिरिति फलं वास्तुशास्त्रप्रदिष्टम्' इति ।

अन्यच्च—

'आषाढचैत्राश्वयुजोर्जमाघज्येष्ठेषु सप्रौष्ठपदेषु नूनम् । निकेतनानां घटनं नृपाणां योगेश्वराचार्यमते न शस्तम्' इति । मते नेति पदच्छेदः ।

सौरचान्द्रमासोक्तफलविरोधपरिहारो गृहारम्भे—

अत्र सौराणां चान्द्रमासानां महान् शुभाशुभफलभेदेन विरोधः । अत्र चिकीर्षितगृहद्वारानुकूलरविसङ्क्रमसमीचीनविहितमासेष्वेव वैशाखादिषु गृहारम्भः कार्य इति विरोधाभाव इति पितृचरणाः ।

तत्र द्वारनियमाः

तत्र द्वारनियममाह श्रीपतिः—'कर्किनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि । तौलिमेषवृष वृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि च कुर्यात् ॥ अन्यथा यदि करोति दुर्मतिर्व्याधिशोकजननाशमश्नुते । मीनचापमिथुनाङ्गनागते कारयेत्तु गृहमेव भास्करे' इति । कर्कसहिते श्रावणे मासि तादृशमेव गृहम् । उक्ताद्धेतोः । एवं मकरार्कसहिते पौषे मासे । अनेनैन हेतुना दक्षिणोत्तरमुखं गृहं मेष वृषार्कसहिते वैशाखे स्यात् । तुलावृश्चिकार्कसहिते मार्गशीर्षमासे तथैव गृहं स्यादित्यर्थः ।

तृणादिगृहे सौरचान्द्रमासनियमो न

अत्र सौराणां च मासानां निषेधस्तृणादिनिर्मेयगृहाद्यारम्भे नैव भवति । यदुक्तं व्यवहारसमुच्चये—'निषिद्धेष्वपिऋक्षेषु स्वानुकूले शुभे दिने । तृणदारुगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ॥' इति । जगन्मोहनेऽपि—'पाषाणेष्टाद्यादिगेहादि निन्द्यमासे न कारयेत् । तृणदारुगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते' । अत्र केचिदनियतदिग्गृहारम्भे सर्वदा कालदोषो न प्रवर्तत इत्याहुः । तन्न वचनाभावात् । किं 'दिङ्मूढे कुलनाशः स्यात्' इत्यनियतदिग्गृहस्य विचारकोटिसन्निवेशाभावात् ।

गृहनिर्माणे—

अथ गृहनिर्माणे नक्षत्रण्याह—ध्रुवेति। ध्रुवाणि मृदूनि च प्रसिद्धानि, वरुणः शतभं, स्वाती प्रसिद्धाः वसुः धनिष्ठा, अर्को हस्तः, पुष्यश्च एषु भेषु गृहनिर्माणं सत् शुभफलदम्। यदाह गर्गः—'त्र्युत्तरेऽपि च रोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करद्वये। धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते' अत्र वाक्ये मृगानभिधानेऽपि तदुक्तिर्महेश्वरवाक्यालोचनेन—'प्रारम्भो भवनस्य वारुणमृदुस्वात्यर्कपुष्यध्रुवैर्वस्वृक्षेण युतैः' इति।

सूतिकागृहनिर्माणे विशेषः—

सूतिकागृहनिर्माणे विशेषमाह—सूतीगेहमिति। अदित्यां पुनर्वसौ सूतिकागृहनिर्माणं शस्तम्। शस्त इति वक्ष्यमाणस्यात्र नपुंसकत्वेन सम्बन्धात्। तत्रेति। तत्र सूतिकागृहे हरिभविधिभयोः श्रावणाभिजितोर्नक्षत्रयोः प्रवेशः शस्तः। उक्तं च श्रीपतिना—'पुनर्वसौ च दुतिकागृहस्य निर्मितिः शुभा। विरिञ्चिविष्णुभान्तरे प्रवेशनं हितं भवेत्' इति। केचित्तु विरिञ्चिः रोहिणी, विष्णुभं श्रवणः तयोरन्तरे मध्यवर्तिनि नक्षत्रसमुदाये इत्याहुः; तन्न असन्देहार्थं विरिञ्चिभादिभूतेषु इत्येवं ब्रूयात्। तस्माद्विरिञ्चिरभिजिन्नक्षत्रमन्तरे मध्ये विरिञ्चिविष्णुतारयोरित्येव सप्तमीव्यधिकरणत्वबोधिते अन्तरपदोक्तिः स्पष्टार्था। तदेतद्ब्राह्मणव्यतिरिक्तवर्णत्रयसाधारणम्। यदाह लल्लः—'पुनर्वसौ नृपादीनां कर्तव्यं सूतिकागृहम्। श्रवणाभिजितोर्मध्ये प्रवेशं तत्र कारयेत्' इति। आवश्यकत्वे तु श्रवणाभिजितोर्मुहूर्तस्तदुदयो वा ग्राह्य इत्यर्थः। ब्राह्मणस्य तु प्रागुक्तनक्षत्रेष्वेव सूतिकागृहनिर्माणप्रवेशौ।

सूतिकागृहस्थानम्—

तत्र सूतिकागृहं नैर्ऋत्यां कार्यम्। यदाह वृद्धवशिष्ठः—'ऐन्द्र्यां तु विक्रमस्थानमाग्नेय्यां पचनालयः। वारुण्यां भोजनगेहं नैर्ऋत्यां सूतिकागृहम्॥ याम्यायां शयनस्थानं वायव्यां पशुमन्दिरम्। कौबेर्यां तु धनस्थानमैशान्यां देवतालयः' इति। स्मृतिभास्करे गर्गः—'वारेऽनुकूले राशौ तु दिने दोषविवर्जिते। सानुकूलदिशि प्रोक्तं सूतिकाभवनं बुधैः' इति।

कालनियमः सूतिकागृहनिर्माणे—

कालनियम उक्तो रत्नकोशे—'आसन्नप्रसवे मासि कुर्याच्चैव विशेषतः। तद्वत्प्रसवकाले स्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः' इति।

तत्र नक्षत्राणि—

वराहेणात्रानेकनक्षत्राभिधानं कृतम्। यथा—'हस्तादित्यशशाङ्कतिष्यपवनप्राज्येशसित्रोत्तराश्चित्राश्विश्रवणेषु वृश्चिकवटौ हित्वा विरिक्ते तिथौ। शुक्राचार्यशनैश्चरज्ञराशीनां वारेऽनुकूले विधौ सद्भिर्वेश्मनि सूतिकागृहविधिः क्षेमङ्करः कीर्त्यते' इति। वेश्मनि चतुर्थस्थाने सद्भिः शुभग्रहैः।

सूतिकागृहप्रवेशे कालनियमः—

सूतिकागृहप्रवेशे कालविशेमाह—ज्योतिस्सारे वसिष्ठः—'अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सूतिकागारवेशनम्। मासे तु नवमे प्राप्ते पूर्वपक्षे शुभेदिने॥ प्रसूतिसम्भवे काले सद्य एव प्रवेशयेत्' इति। पूर्वपक्षेशुक्लपक्षे। नक्षत्रादीन्याह वर्गः—'रौहिण्यैन्दवपौष्णेषु स्वातीवारुणयोरपि। पुष्ये पुनर्वसौ हस्तधनिष्ठात्र्युत्तरासु च' इति। 'मैत्रत्वाष्ट्रे तथाश्विन्यं सूतिकागारवेशनम्। सर्वे शुभग्रहाः केन्द्रे पापाश्च त्रिषडायगाः शुभांशे शुभसंदृष्टौ सूतिकागारवेशनम्' इति॥ १५॥

पीताम्बरा—द्वार दिशा, गृहनिर्माण की नक्षत्र और प्रसव गृह मुहूर्त—सौर चान्द्र-मासों के समन्वय से पूर्व और पश्चिम दिशा के मुख के गृहनिर्माण में कुम्भ के सूर्य में फाल्गुन मास, सिंह, कर्क में श्रावण, और मकर के सूर्य में पौष मास, शुभ होते हैं।

एवं दक्षिण और उत्तर मुख के गृहनिर्माण में मेष, वृष के सूर्य मे वैशाख मास, तुला, वृश्चिक के सूर्य में मार्गशीर्ष चन्द्रमास शुभ होते हैं।

मृदु-ध्रुव संज्ञक शततारा, स्वाती धनिष्ठा हस्त और पुष्य नक्षत्रों में गृह का शुभारम्भ शुभ होता है।

तथा पुनर्वसु में सूतिका घर निर्माण और श्रवण रोहिणी में सूतिका गृहप्रवेश शुभ होता है।

तृणादिकों के मकानों में सौर चान्द्र समन्वयित मासों की आवश्यकता नहीं है। साधारण शुभ मुहूर्त आवश्यक है।

वित्तादि सम्भव स्थितियों के मानवों के लिए, भवन के नैर्ऋत्य भाग में सूतिका गृहनिर्माण शुभ होता है।

आसन्न प्रसवकाल समझ कर गर्भ से नवमादिक मास में शुभ दिन वार लग्नादिक शुभ मुहूर्त में सूतिका गृहप्रवेश शुभ होता है॥ १५॥

अथ प्रागभिहितानां सौराणां चान्द्राणां मासानां प्रकारान्तरेणैकवाक्यतां शार्दूलविक्रीडितेनाह—

कैश्चिन्मेषरवौ मधौ वृषभगे ज्येष्ठे शुचौ कर्कटे
भाद्रे सिंहगते घटेऽश्वयुजि चोर्जेऽलौ मृगे पौषके।
माघे नक्रघटे शुभं निगदितं गेहं तथोर्जे न सत्
कन्यायां च तथा धनुष्यपि न सत्कृष्णादिमासाद्भवेत्॥१६॥

पीयूषधारा— कैश्चिदिति। पूर्वदिग्द्वारवशेनैकवाक्यता उक्ता। इदानीमेतादृशमुच्यते। मेषसंस्थे रवौ मधौ चैत्रे मासि गेहप्रारम्भं शुभं स्यात्। तथा वृषस्थे सूर्य ज्येष्ठे मासे, कर्कस्थेऽर्के शुचावाषाढे सिंहगतेऽर्के भाद्रपदे मासि घटे तुलास्थे रवौ आश्वयुजि आश्विनमासे, अलौ वृश्चिकगेऽर्क ऊर्जे कार्तिके मासे, मृगे मकरस्थेऽर्के पौषे मासे नक्रघटे मकरकुम्भस्थेऽर्के माघे मासि प्रारब्धं गृहं शुभं स्यादित्यर्थः। इति कैश्चिन्निगदितम्।

विरुद्धसौरचान्द्रमासगृहारम्भफलेषु विरोधपरिहारः—

अस्यायमाशयः। 'मीनचाप' इत्यादिना द्विस्वभावराशयो निषिद्धाः शोको धान्यम् इत्यादिना च कियन्तश्चान्द्रा अपि मासा निषिद्धाः अतोऽन्ये सौराश्चान्द्रा वा विहिताः। तेषामयमेव एकवाक्यताप्रकारः—मेषस्थे रवौ चैत्रेऽपि गृहं शुभम्। यस्तु चैत्रो निषिद्धः स मीनार्कविषयः। वृषभस्थे रवौ ज्येष्ठोऽपि शुभम्। वैशाखस्तु विहित एवास्ति, ज्येष्ठो निषिद्धः स मिथुनार्कविषयः। कर्कटस्थे सूर्ये आषाढेऽपि शुभम्। आषाढनिषेधस्तु मिथुनार्कविषयः। सिंहगते सूर्ये भाद्रपदेऽपि शुभम्। श्रवणश्चेत्तत्र स्यात्स विहितत्वादेव शुभः। यस्तु भाद्रपदनिषेधः स कन्यार्कविषयः। तुलागते सूर्ये आश्विनेऽपि शुभम्। यस्त्वस्य निषेधः स कन्यार्कपरः। वृश्चिकस्थे सूर्ये कार्तिकेऽपि शुभं स्यात्। निषेधविषयं स्वयमेव

वक्ष्यति । मार्गशीर्षो विहित एव । मकरस्थे सूर्ये पौषे शुभम् । धनुरर्कस्य राहित्ये सोऽप्यशुभः । मकरकुम्भस्थे सूर्ये माघेऽपि शुभम् । निषेधस्तु धनुरर्कविषयः । अत एव—'पौषफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः । मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यशुभप्रदाः' इति नारदवाक्यम् । 'मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्विषे । ऊर्जे च गृहनिर्माणं पुत्रपौत्रधनप्रदम्' इति । वसिष्ठवाक्यं च आश्विनकार्तिकमासानां शुभत्वप्रतिपादकं तुलावृश्चिकमकरकुम्भार्कराहित्यप्राशस्त्यपरम् । वचनान्तरबोधितो निषेधः प्रागुक्तविषय एव । फाल्गुनस्य शुभत्वं कुम्भार्कविषयं मीनार्कराहित्ये तु निषिद्धम् । ननु कार्तिकमाघमासौ श्रीपतिना निषिद्धौ तयोः को विषय इत्यत्र आह—दथेति । ऊर्जः कार्तिको मासः कन्यायां कन्यागते रवौ न सत् न शुभः । च पुनः तपो माघमासो धनुषि धनुरर्के न सत् । अपि पादपूरणे । नन्वेतदयुक्तं प्रतिभाति । यतश्चान्द्रमासेन चैत्रादिमाससञ्ज्ञाः सन्ति । तत्र कार्तिके मासि कन्यासङ्क्रान्तिः माघे मासि धनुरर्कश्च कदापि न सम्भवेदतः कार्तिकस्य माघमासस्य शुक्लप्रतिपदादित्रिंशत्तिथयः यावत्तावत् संज्ञेत्यत आह—कृष्णादिमासादिति । अस्ति द्विविधो मासः—शुक्लादिः कृष्णादिश्चेति। तत्र शुक्लप्रतिपदमारभ्यामावास्यापर्यन्तं शुक्लादिः । कृष्णपक्षप्रतिपदमारभ्य पूर्णिमान्तं कृष्णादिः । यथा चैत्रशुक्लपक्षे मतद्वयेऽपि स एव चैत्रपौर्णमास्यनन्तर कृष्णपक्षे चैत्रमास एव । एवं चान्द्रमासो भवति । एवं कृष्णपक्षो यदि वैशाखकृष्णपक्षत्वेन व्यवह्रियते तदनन्तरं भाविशुक्लपक्षो वैशाखशुक्लः सर्ववादिसिद्धः तदा कृष्णादिर्मासः सम्भवति । उभयथा हि शास्त्रे व्यवहारः । 'अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्याद्दिने दिने' इति । 'अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणी ऋक्षसञ्ज्ञिता । भवेत्प्रौष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता' इति । अत्र यदि दर्शान्तो मासो विवक्ष्यते तदा भाद्रपदकृष्णपक्षे श्रावणे मासि चेत्येवं ब्रूयात् । तदेतन्मासस्य कृष्णादित्वे प्रमाणम् । 'अत ऊर्ध्वममी युक्ता गतकालाब्दसङ्ख्यया । मासीकृता युता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतैः' इत्यादीनि बहुवाक्यानि शुक्लादित्वे प्रमाणम् । तत्राश्विनपूर्णिमातः कार्तिकशुक्लपौर्णिमान्तं कृष्णादित्वे कार्तिकव्यवहारात् । कन्यासङ्क्रान्तिसम्भवात् निषेध उपपन्नो भवति । एवमेव माघमासि धनुरर्कसम्भवे तन्निषेधस्य सार्थक्यमित्यलमियता ।। १६ ।।

पीताम्बरा—पूर्वश्लोक में वर्णित सौर-चन्द्र मासों की एकवाक्यता—आचार्यों के मतान्तर से—मेष, वृष, कर्क, सिंह, तुला, वृश्चिक, मकर और कुम्भ राशियों के सूर्य में, क्रमशः चैत्र, ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, पौष और माघ मासों में गृहनिर्माण शुभ होता है। कन्या के सूर्य में कार्तिक और धनु के सूर्य में माघ मास में गृहनिर्माण शुभ नहीं होकर अशुभ होता है।

चान्द्र मासों की गणना यहाँ कृष्ण प्रतिपदा से आरम्भ समझनी चाहिए ।। १६ ।।

अथ तिथिपरत्वेन द्वारनिषेधमुपजातिकयाह—

पूर्णेन्दुतः प्राग्वदनं नवम्यादिषूत्तरास्यं त्वथ पश्चिमास्यम् ।
दर्शादितः शुक्लदले नवम्यादौ दक्षिणास्यं न शुभं वदन्ति ।। १७ ।।

पीयूषधारा—पूर्णेन्दुत इति । पूर्णेन्दुतः पूर्णिमातः कृष्णाष्टमीपर्यन्तं प्राङ्मुखं गृहं शुभ न वदन्ति । कृष्णनवमीतश्चतुर्दशीपर्यन्तं क्रियमाणं गृहमुत्तरास्यं न शुभम् । दर्शादितः शुक्ला ष्टमीपर्यन्तं पश्चिमास्यं गृहं न शुभम् । शुक्लनवमीतश्चतुर्दशीपर्यन्तं दक्षिणास्यं गृहं न शु वदन्ति । तासु तिथिषु तत्तद्दिङ्मुखं गृहं न कर्त्तव्यमिति वाक्यार्थः फलितः । यदुक्तं व्यवहार

समुच्चये—'पूर्णिमातोऽष्टमीं यावत्पूर्वास्य वर्जयेद्गृहम्। उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादि-चतुर्दशीम्॥ अमावास्याष्टमीं यावत्पश्चिमास्यं विवर्जयेत्। नवम्यादौ दक्षिणास्यं यावच्छुक्ल-चतुर्दशीम्॥' इति।

सफला विहितनिषिद्धतिथयः—

विहिततिथयोऽपि तत्रैवोक्ताः—'द्वितीयापञ्चमीमुख्यास्तृतीया षष्ठिका तथा। सप्तमी दशमी चैव द्वादश्येकादशी तथा॥ त्रयोदशी पञ्चदशीतिथयः स्युः शुभावहाः। दारिद्र्यं प्रतिपत्कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी॥ अष्टम्युच्चाटनं चैव नवमी शस्त्रघातिनी। दर्शे राजभयं ज्ञेयं भूते दारविनाशनम्॥' इति। पक्षफलं च तत्रैव—'शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम्॥' इति।

मार्गतरुस्तम्भभ्रमपङ्कब्रह्मादिद्वारवेधफलानि—

अत्र प्रसङ्गाद्द्वारवेधफलानि लिख्यन्ते। तत्र वराहः—'मार्गतरुकोणकूपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम्। उच्छ्रायाद्द्विगुणिता भूमिं त्यक्त्वा न दोषाय' इति। भ्रमो जलनिर्गमप्रदेशः प्रणालिकेत्यर्थः। विद्धं सम्मुखावस्थितम्। अत्रोच्छ्रायो द्वारस्य गृह्यते। तथा च गर्गः—'द्वारोच्छ्रायाद्द्विगुणितां भूमिं त्यक्त्वा बहिः स्थिताः। न दोषाय भवन्त्येव॥' इति। 'रथ्याविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरुणा। पङ्कद्वारे शोको व्ययोम्बुनिस्राविणि प्रोक्तः॥ कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे'। 'क्रमेण स्त्रीदोषः कुलनाशी ब्रह्मणोऽभिमुखे भवति।' पङ्कविद्धं द्वारं पङ्कद्वारं यस्य द्वारस्याग्रतो निरन्तरं पङ्कस्तिष्ठति। देवताः सुरप्रतिमाः। नाशः स्वामिन एव। ब्रह्मवेध एकाशीतिपदचक्रस्थितब्रह्मवेधो गृह्यते। यदाह विश्वकर्मा—'गृहमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यधान्यविनाशनम्॥' इति।

द्वारस्थाननियमाः—

विशेषमाह भरद्वाजः—'शिरामर्माणि वंशञ्च नालं मध्य न सर्वशः। विहाय वास्तुमध्यं च द्वाराणि विनिवेशयेत्॥' इति। वास्तुमध्यं ब्रह्मस्थानम्। तत्र द्वारं चेन्निधनप्रदमिति वशिष्ठोक्तेश्च।

देवालयविहारप्रपामण्डपप्रतोल्यादौ नोक्तनियमो द्वारस्थाने—

अस्यापवादमाह विश्वकर्मा—'देवागारे विचारे च प्रपायां मण्डपेषु च। प्रतोल्ये च मखे वास्तुमध्ये द्वारं निवेशयेत्' इति। वास्तुमध्यं ब्राह्मस्थानम्। देवालयादिस्थानेषु कृतस्य गृहान्तर्गतद्वारस्य ब्रह्मणो न वेध इति निष्कृष्टोऽर्थः।

एकाशीतिपदचक्रस्यात्रानुक्तौ हेतुः—

अत्रैकाशीतिपदचक्रं च सामान्यविशेषभावपुरःसरंग्रन्थसन्दर्भेण वराहसंहितायामप्युक्तं नोक्तम्। एतस्मिंश्चक्रे मुहूर्तविरोधप्रसङ्गात्। केचित्तु प्रयोजनाभावान्नोक्तमित्याहुः, तन्न। तत्र हि वास्तुनरस्य शिरामर्मवंशादिदुष्टस्थानानामशुभफलदानां त्यागोक्त्या प्रयोजनस्य सत्त्वात्। तथा तस्यैव शुभफलदानां अन्येषां वाह्वादिस्थानानां ग्राह्यत्वोक्त्या च वशिष्ठऋषिसंहितासु वास्तुशान्त्यर्थमेव तस्याभिधानमित्यतोऽत्रानुक्तिः॥ १७॥

पीताम्बरा—तिथि सम्बन्ध से द्वार निषेध—पूर्णिमा से कृष्णाष्टमी तक पूर्वमुख घर, कृष्ण नवमी से चतुर्दशी तक उत्तरमुख, अमावास्या से शुक्लाष्टमी तक पश्चिममुख और शुक्लनवमी से शुक्लचतुर्दशी तक दक्षिणमुख का मकान नहीं बनाना चाहिए।

गृहनिर्माण में, २, ५, ३, ६, ७, १०, १२, ११, १३, ओर पूर्णिमा तिथियाँ शुभ हैं। कृष्णपक्ष की अपेक्षा शुक्लपक्ष गृहनिर्माण में शुभ है।

अपने मकान की द्विगुणित ऊँचाई तक की भूमि के भीतर मार्ग के वृक्ष, स्तम्भ और कूप, आदि ये मकान के वेधक होते हैं। अतः मकान की द्विगुणित ऊँचाई तक की चारों तरफ की जमीन स्वच्छ और उद्यान के उपयोग की रखनी चाहिए ॥ १७ ॥

अथ गृहारम्भे पञ्चाङ्गशुद्धि चानुष्टुभाह—

भौमार्करिक्तामाद्यूने चरोने च दिपञ्चकः।
व्यष्टान्त्यस्थैः शुभैर्गेहारम्भस्त्र्यायारिगैः खलैः ॥ १८ ॥

पीयूषधारा—भौमार्केति। भौमार्कौ वारौ रिक्ताश्च प्रसिद्धाः। अमा अमावास्या। आदिः प्रतिपत्। उपलक्षणत्वादष्टम्यपि। एतैः ऋते काले तथा पञ्चकं धनिष्ठोत्तरार्धाधिका पञ्चनक्षत्री पञ्चकमित्युच्यते। पञ्चकशब्दात् सङ्घार्थे 'संख्यायाः सञ्ज्ञासंसूत्राध्ययनेषु' इति कप्रत्ययः'। विगतं पञ्चकं यस्मिन्नेवंविधे च काले सति। चरोने चरराशिभिः मेषकर्कतुलामकरैरूनेऽङ्गे लग्ने स्थिरे द्विस्वभावे च गृहारम्भः कार्यः। तदुक्तं व्यवहारसमुच्चये—'द्वितीयापञ्चम्य' इति। पूर्वमन्यास्ति यायोऽर्यान्निषिद्धाः। तदप्युक्तं तत्रैव—दारिद्र्यं प्रतिपत्कुर्यात्' इत्यादि। वास्तुशास्त्रेऽपि—'चरलग्ने चरांशे वा रिक्तामारार्कवासरे। अङ्गाष्टान्त्यारिगे चन्द्रे रन्ध्रे पापे क्षयः प्रभोः ॥' इति। नन्वत्र धनिष्ठापञ्चकदोषोऽनुपपन्नः। नक्षत्रप्रकरणोक्तधनिष्ठादिपञ्चकनिषेधेन गतार्थत्वान्न पुनरुक्तमिति। यतो गृहगोपनमिति पूर्वमुक्तम्। तत्र गृहस्य तृणकाष्ठादिभिराच्छादनं गोपनम्। तद्धि सिद्धस्य गृहस्य सम्भवात्। गेहारम्भस्तु प्रागभवनरूपः। स त्वसिद्धस्यैवेति। ननु—ध्रुवमृदुचरभस्वातिवस्वर्कपुष्यैः' इति गृहारम्भे नक्षत्रेषु धनिष्ठाशततारकोत्तराभाद्रपदारेवतीनां विहितत्वेनैकस्या एव भाद्रपदाया निषेधोक्तौ कर्तव्याया सत्यां पुनः पञ्चकनिषेधानुपपत्तिः। सत्यम्। स्तंभोच्छ्रायविषयकोऽयं निषेधः। यदाह माण्डव्यः—'धनिष्ठापञ्चके नैव कुर्यात्स्तम्भसमुच्छ्रयम्। सूत्राधारशिलान्याससप्रकारादि समारभेत ॥' इति। प्राकारो देवालयम्।

गृहारम्भे गृहलग्नाद् ग्रहाणां स्थानविशेषस्थितिः शुभदा—

अन्ये पुनरेवमाहुः। विवाहप्रकरणोक्तानि पञ्चकानि रोगाग्निराजचोरमृत्युसंज्ञानि तैः रहितेऽङ्गे लग्ने पञ्चकरहिते लग्ने इत्यर्थः। उक्तं च गणेशदैवज्ञैः—मृत्युकेन्द्रखलगेऽङ्गे वर्जिते पञ्चकैः' इति। नात्रार्षवाक्यं प्रमाणमस्ति। व्यष्टान्त्येति। अष्टमस्थानद्वादशस्थानव्यतिरिक्तस्थानस्थैः शुभैः खलैः पापैस्तृतीयैकादशषष्ठस्थानस्थैश्चोपलक्षिते सति गृहारम्भः कार्यः। उक्तं च श्रीपतिना—पापैस्त्रिषष्ठायगतैस्त्रिकोणकेन्द्राश्रितैः साधुभिरालयस्य। वदन्ति निर्माणमिहाष्टमस्थः क्रूरस्तु कर्तुर्मरणं करोति ॥' इति।

गृहारम्भे शुभलग्नादयः—

अन्यदपि उक्तं तेनैव—'द्वयङ्गे स्थिरे वा विलग्ने सौम्यग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते वा कर्मस्थितैर्वीर्ययुतैश्च सौम्यैर्निर्माणमाहुर्भवनस्य सन्तः ॥ शुद्धकेन्द्रनिधनस्थिरोदये सौम्यवर्गमनुजोद्गमेऽपि च। सन्निवेश उदितो हि वास्तुनः सूरिभिर्न तु चरोदये क्वचित्' ॥ १८ ॥

पीताम्बरा—गृहारम्भ में पञ्चांग शुद्धि—मंगल, रविवार, रिक्ता, अमावास्या, प्रतिपद, अष्टमी तथा धनिष्ठादि रेवत्यन्त पञ्चक संज्ञक नक्षत्रों और बाणपञ्चक को छोड़कर शेष वार तिथि नक्षत्रों में गृहनिर्माण का कार्य शुभ होता है।

गृहारम्भ—लग्न से १२, ८ स्थान रहित शेष स्थानों में शुभ ग्रह होने चाहिए। ३। ६। ११ में पाप ग्रह होने चाहिए ॥ १८ ॥

अथ देवालये गृहारम्भे जलाशये च विदिगवस्थितं राहुमुखं सकलमिन्द्रवंशाछन्दसाह—

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात्पृष्ठविदिक्छुभो भवेत् ॥ १९ ॥

पीयूषधारा—देवालय इति। अत्र यथासंख्यसम्बन्धः। देवालयप्रारम्भे राहोर्मुखं मीनार्कतस्त्रिराश्यवस्थिते सूर्ये ऐशानीतो विलोमतो विपरीतं विदिक्षु वायव्यादिषु राहोर्मुखं स्यात्। यथा मीनमेषवृषराश्यवस्थिते सूर्ये राहोर्मुखमैशान्याम्। मिथुनकर्कसिंहराश्यवस्थिते सूर्ये वायव्यां राहुमुखम्। कन्यातुलावृश्चिकस्थे सूर्ये नैर्ऋत्यां राहुमुखम्। धनुर्मकरकुम्भराश्यवस्थिते सूर्ये आग्नेय्यां राहोर्मुखमित्यर्थः।

राहुमुखं गृहारम्भे

एवं गृहारम्भेऽपि सिंहार्कतस्त्रिराश्यवस्थितेऽर्के विलोमत ऐशान्यां राहुमुखम्, वृश्चिकादित्रये वायव्याम्, कुम्भादित्रये नैर्ऋत्याम्, वृषादित्रये आग्नेय्यां राहुमुखं स्यात्।

जलाशयारम्भेऽपि मकरार्कतस्त्रित्रिराश्यवस्थितेऽर्के विलोमत ऐशान्यां राहुमुखं स्यात्। मेषादितः त्रिभिर्वायव्याम्। कर्कादितस्त्रिभिर्नैर्ऋत्याम्। तुलादितस्त्रिभिराग्नेय्यां राहुमुखं स्यादित्यर्थः।

राहु मुखज्ञानफलानि

फलमाहु—खात इति। देवालयादिविषयके खाते भूमिशोधने कर्त्तव्ये सति राहुमुखाक्रान्तदिशःसकाशात्पृष्ठवर्तिनी दिक् शुभा भवेत्। यथा देवालयविषये मीनादित्रिराशिस्थितसूर्यत्वेन ऐशान्यां राहुमुखम्। तत्पृष्ठविदिगाग्नेयी। तस्यां प्रथमखातप्रारम्भः शुभफलद इत्यर्थः। इति राहुमुखचक्रम्।

खातारम्भदिङ्निर्णयः—

मिथुनादिराशित्रयस्थे सूर्ये राहुमुख वायव्याम्, तत्पृष्ठविदिगैशानी, तास्यां खातारम्भः शुभः। एवं सर्वत्र। तथैव गेहविधावपि राहुमुखं कस्यां दिश्यस्तीत्यवधार्य तत्पृष्ठविदिश खातं शुभफलदं कार्यमित्यर्थः। यतः सर्पेण विदिग्व्याप्ता यथा ऐशान्यां मुखं, वायव्यामुदरं, नैर्ऋत्यां पुच्छम्। अतः खाते आग्नेयी सम्यक्। एवमन्यत्राप्यूहनीम्। यदाह विश्वकर्मा—'ईशानतः सर्पति कालसर्पो विहाय सृष्टिं गणयेद्विदिक्षु। शेषस्य वास्तोर्मुखमध्यपुच्छं त्रयं परित्यज्य खनेच्चतुर्थम्' इति। ज्योतिश्चिन्तामणौ—'वृषार्कादित्रिकं वेद्यां सिंहादिगणयेद्गृहे। देवालये च मीनादि तडागे मकरादिकम्' इति।

वास्तुपुरुषो गृहारम्भे—

वसिष्ठस्तु गृहारम्भे वास्तुनरमाह—'त्रिपु त्रिपु च मासेषु नभस्यादिषु च क्रमात्। यद्दिङ्मुखो वास्तुनरस्तन्मुखं सदनं शुभम् ॥ अन्यदिङ्मुखगेहं तद्दुःखशोकभयप्रदम्' इति।

चतुर्दिशादिशालायामेष दोषो न विद्यते' इति । नभस्यादिसङ्ग्रहः सिंहाद्यर्कसङ्क्रमोपलक्षणेन गेहवास्तुविदिशि खननार्थः । नरवास्तुस्तु गृहस्य तत्तद्दिङ्मुखार्थः ।

खातारम्भादिनक्षत्राणि—

तत्र खातारम्भादिनक्षत्राण्याह माण्डव्यः—'अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं शिलास्तथा चोर्ध्वमुखैश्च पट्टम् । निर्यङ्मुखैर्द्वारकपाटयानं गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवर्क्षैः ॥' इति । खातं भूमिशोधनम् ॥ १९ ॥

	ऐशान्याम्	वायव्याम्	नैरृत्याम्	आग्नेय्याम्
देवालयारम्भः	मीनमेषवृषस्थिते सूर्ये राहुमुखम्	मिथुनकर्कसिंहस्थे सूर्ये राहुमुखम्	कन्यातुलावृश्चिकस्थे सूर्ये राहुमुखम्	धनुर्मकरकुम्भस्थिते सूर्ये राहुमुखम्
गृहारम्भः	सिंहकन्यातुलास्थिते सूर्ये राहुमुखम्	वृश्चिकधनुर्मकरस्थे सूर्ये राहुमुखम्	कुम्भमीनमेषस्थिते सूर्ये राहुमुखम्	वृषमिथुनकर्कस्थे सूर्ये राहुमुखम्
जलाशयारम्भः	मकरकुम्भमीनस्थिते सूर्ये राहुमुखम्	मेषवृषभमिथुनस्थे सूर्ये राहुमुखम्	कर्कसिंहकन्यास्थिते सूर्ये राहुमुखम्	तुलावृश्चिकधनुःस्थे सूर्ये राहुमुखम्

पीताम्बरा—सफल राहुमुख विचार—देव-मन्दिर, मानव-मन्दिर (गृह) और वापी-कूप तालाब आदिक जलाशय के निर्माण में, क्रमशः मीन, सिंह, मकर राशि के सूर्य में ईशान कोण से विलोम वायव्य नैरृत्य और अग्निकोण में राहु का मुख होता है । जैसे देव-मन्दिर में मीन, मेष वृषभ में ईशान, मिथुन, कर्क, सिंह इत्यादि के सूर्य में वायव्य आदि तथा गृहनिर्माण में सिंह, कन्या तुला में ईशान इत्यादि तथा जलाशय निर्माण में—मकर कुम्भ, मीन के सूर्य में ईशान....इत्यादि से राहुमुख जान कर विपरीत दिशा में राहु का पुच्छ समझना चाहिए । पुच्छ दिशा में प्रथम खात का आरम्भ कर वहाँ पर शिला नींव स्थापन करना शुभ है ॥१९॥

स्पष्टार्थ ज्ञान के लिए पीयूष में चक्र देखिए—

अथ गृहकूपादिनिर्माणदिगवस्थितया फलं शालिनीछन्दसाह—

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः ।
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम् ॥२०॥

पीयूषधारा—कूपे इति । 'वेश्मभुर्वास्तुरस्त्रियाम्' इति वास्तुशब्दः पुल्लिङ्गेऽपि । वास्तोर्गृहस्य मध्यदेशे मध्यभागे जलकूपे कृते सति स्वामिनोऽर्थनाशः स्यात् । अथैशान्यादिषु

सृष्टिमार्गेणाष्टसु दिक्षु पुष्टिरित्यादि फलम् । यथा ऐशान्यां कूपे पुष्टिः, पूर्वस्यां कूपे ऐश्वर्यवृद्धिः, आग्नेय्यां कूपे पुत्रनाशः, दक्षिणस्यां कूपे स्त्रीविनाशः, नैर्ऋत्यां कूपे गृहकर्तुर्मृतिः, पश्चिमायां कूपे सम्यक् शोभनं, वायव्यां कूपे शत्रुतः सकाशात्पीडा, उत्तरस्यां कूपे सुखं गृहस्वामिन एव । उक्तं च वसिष्ठेन—ऐश्वर्यं पुत्रहानिश्च स्त्रीनाशो निधनं भवेत् । सम्पच्छत्रुभयं सौख्यं पुष्टिः प्रागादितः क्रमात्' इति ॥ २० ॥

पीताम्बरा—मकान सीमा में कूप आदि जलाशयों का स्थान—वास्तु के मध्य में कूप-निर्माण धनहानि के लिए होता है। वास्तु की ईशान दिशा में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्य वृद्धि, अग्नि में पुत्र नाश, दक्षिण में स्त्री विनाश, नैऋत्य में गृहस्वामी की मृत्यु, पश्चिम में शुभ, वायव्य में शत्रुपीडा और वास्तु के उत्तर में कूप निर्माण से गृह स्वामी के लिए शुभ होता है ॥ २० ॥

अथ कूपे कृते गृहमध्ये करिष्यमाणानामुपकरणगृहाणां दिक्परत्वेन करणं वसन्ततिलका-छन्दसाह—

स्नानाग्निपाकशयनास्त्रभुजश्च धान्य-भाण्डारदैवतगृहाणि च पूर्वतः स्युः ।
तन्मध्यतस्तु मथनाज्यपुरीषविद्याभ्यासाख्यरोदनरतौषधसर्वधाम ॥ २१ ॥

पीयूषधारा—स्नानेति । पूर्वतः पूर्वाद्यष्टदिक्षु स्नानगृहादीनि गृहाणि स्युः । यथा पूर्वस्यां स्नानगृहम्, आग्नेय्यां पाकगृहम्, दक्षिणस्यां शयनगृहम्, नैर्ऋत्यां शस्त्रगृहम्, पश्चिमायां भोजनगृहम्, वायव्यां धान्यसङ्ग्रहगृहम्, उत्तरस्यां भाण्डारस्य द्रव्यस्य गृहम्, ऐशान्यां दैवतगृहं स्यादित्यर्थः । यदाह वसिष्ठः—'ऐन्द्रयां दिशि स्नानगृहमाग्नेयां पचनालयः । याम्यां शयनं वेश्म नैर्ऋत्यां शस्त्रमन्दिरम् । वारुण्यां भोजनगृहं वायव्यां धान्यमन्दिरम् । प्रतीच्यां भोजनगृहं वायुभागेऽन्नसङ्ग्रहम् । भाण्डारसदनं सौम्ये त्वैशान्यां देवतालयम् ॥' इति । नारदस्तु विशेषमाह—'भाण्डागारं तूत्तरे स्याद्वायव्यां पशुमन्दिरम्' इति । विश्वकर्मा पुनराह—'उत्तरस्यां जलस्थानं पूर्वस्यां श्रीगृहं तथा' इति ।

मथनाद्यष्टगृहाणि दिग्विदिङ्मध्ये—

तन्मध्यत इति । पूर्वाद्यष्टदिक्षु तन्मध्यतस्तयोर्दिग्विदिशोर्मध्ये अष्टसंख्याके मथनाद्यष्टौ गृहाणि स्युः । यथा पूर्वाग्नेययोर्मध्ये मथनस्य दध्यालोडनस्तद गृहम्, आग्नेयीदक्षिणयोर्मध्ये आज्यस्य घृतसङ्ग्रहस्य गृहं दक्षिणनैर्ऋत्योर्मध्ये पुरीषस्य विष्ठात्यागस्य गृहं, नैर्ऋतिपश्चिमयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य गृहम्, पश्चिमवायव्ययोर्मध्ये रोदनस्य गृहम्, उत्तरवायव्ययोर्मध्ये रतेः सम्भोगस्य गृहम्, उत्तरैशान्योर्मध्ये औषधस्य गृहम्, ऐशानीप्राच्योर्मध्ये उक्तव्यतिरिक्तसर्ववस्तूनां धाम गृहं कार्यं स्यादित्यर्थः । यदाह वसिष्ठः–'इन्द्राग्न्योर्मथनं मध्ये याम्याग्न्योर्घृतमन्दिरम् । यमराक्षसयोर्मध्ये पुरीषत्यागमन्दिरम् ॥ राक्षस्याम्बुपयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य मन्दिरम् ॥ तोयेशानिलयोर्मध्ये रौदनं मन्दिरं स्मृतम् ॥ वायव्योत्तरयोर्मध्ये सम्भोगस्यैव मन्दिरम् । उत्तरेशानयोर्मध्ये त्वौषधागारमुच्यते । पुरन्दरेशयोर्मध्ये सर्ववस्तुसुसंग्रहम् । सदनं कारयेदेवं क्रमादुक्तानि षोडश' इति । कश्यपोऽपि—'इन्द्राग्न्योर्मथनं गेहं यमाग्न्योर्घृतमन्दिरम् । पुरीषत्यागसदनं मध्ये राक्षसकालयोः । विद्या जलेशनैर्ऋत्योर्मध्ये च सदनं स्मृतम् । रौदनं सदनं नूनं जलाधीशसमीरयोः । नवरत्नालयं मध्ये कुबेरेश्वरयोस्तथा । इन्द्रेशयोर्धान्यगृहम् ॥' इति ॥ २१ ॥

पीताम्बरा–भवन के भीतर शौच स्नान, और रसोई के (पाकादि) कमरे–पूर्व में स्नान घर, आग्नेय में पाकशाला, दक्षिण में शयनकक्ष का कमरा, नैऋत्य में राजगृह में अस्त्र-शस्त्र और जन-

तान्त्रिक जन गृह में साधारण व्यावहारिक औजार कल पुर्जे कपड़े सीने आदिकी मशीन, मोटर, ट्रैक्टर प्रभृति, पश्चिम में भोजनकक्ष, वायव्य में धान्य संग्रह (स्टोर रूम), उत्तर में कोष गृह और ईशान में देवगृह (स्वेष्ट देव का स्थान) का स्थान होना चाहिए। कमशः उक्त दो-दो कमरों के बीच में, दधिमथन स्थान, घृत भण्डार, विद्याध्ययनकक्ष, रोदनगृह, (राजभवन में) रति स्थान, औषधियों की जगह का कमरा, और गृहस्थों के सभी प्रकार के अन्य आवश्यक पदार्थों को रखने के कमरे होने चाहिए। प्राचीन वैज्ञानिक पद्धतियों से निर्मित साधारण या राजमहल तक के घरों की बनावट को नीचे के चक्र से स्पष्ट समझिये ॥ २१ ॥

वायव्य उत्तर ईशान

पश्चिम

<table>
<tr><td>कोष धान्य</td><td rowspan="2">रति सम्भोग</td><td rowspan="2">भाण्डार-गृह</td><td rowspan="2">औषधि</td><td rowspan="2">देवता</td></tr>
<tr><td>रोदन</td></tr>
<tr><td rowspan="3">भोजनकक्ष</td><td rowspan="6" colspan="3">आँगन</td><td rowspan="2">सर्ववस्तु</td></tr>
<tr></tr>
<tr><td rowspan="2">स्नानगृह</td></tr>
<tr><td rowspan="3">विद्याभ्यास</td></tr>
<tr><td rowspan="2">दधिमथन</td></tr>
<tr></tr>
<tr><td>शस्त्रागार</td><td>शौचालय</td><td>शयनकक्ष</td><td>घी</td><td>रसोई</td></tr>
</table>

पूर्व

नैऋत्य दक्षिण अग्नि

अत्र गृहारम्भप्रसक्त्या सामान्यतः प्राग्लग्नबलमप्यभिधायेदानीमारब्धगृहाणां नियतस्थानावस्थित्या नियतायुर्दाययोगद्वयमुपजातिकयाह—

जीवार्कविच्छुक्रशनैश्चरेषु लग्नारिजामित्रसुखत्रिगेषु।
स्थितिः शतं स्याच्छरदां सिताकरिज्ये तनुत्र्यङ्गसुते शतं द्वे ॥२२॥

पीयूषधारा जीवेति। अत्र योगद्वये ग्रहस्थानयोर्यथासङ्ख्यं सम्बन्धः यथा जीवो लग्ने, अर्कः—सूर्यः षष्ठे, विद्बुधो जामित्रे सप्तमे, शुक्राश्चतुर्थे, शनैश्चरस्तृतीये, एवं नियतस्थानावस्थितग्रहसहिते लग्ने प्रारब्धस्य गृहस्य स्थितिरब्दशतं १०० वर्षशतं स्यात्। अयमेको योगः। यदाह श्रीपतिः—'उदये गुरुरस्तगृहे शशिजो बुधः सहजे तु शनिः' इति। अथ द्वितीयो योगः। सितेति। शुक्रो लग्ने, अर्कस्तृतीये, आरो भौमः षष्ठे, इज्यः पञ्चमे, एवंविधे लग्ने प्रारब्धगृहस्थितिर्द्वेशते शतद्वयं २०० स्यात्। यदाह श्रीपतिः—लग्ने भृगुः पुत्रगतश्च जीवः षष्ठे कुजस्तिग्मकरस्तृतीयः। निवेशने यस्य गृहस्य तद्धि शतद्वयं तिष्ठति वत्सराणाम्' इति ॥ २२ ॥

पीताम्बरा—मकानों की आयु—गृह के प्रारम्भ समय की लग्न से, बृहस्पति लग्नगत, सूर्य–बुध सातवें, शुक्र चौथे, और तीसरे शनि हो तो मकान की पूर्णायु १०० वर्ष की होती है। तथा यदि लग्न में शुक्र, तीसरे सूर्य, मंगल छठे और बृहस्पति पञ्चम स्थान में में हो तो ऐसी ग्रह स्थिति के मकान की आयु २०० वर्ष की होती है ॥ २२ ॥

अथान्यन्नियतायुर्दाययोगद्वयमिन्द्रवंशाछन्दसाह—

लग्नाम्बरायेषु भृगुज्ञभानुभिः केन्द्रे गुरौ वर्षशतायुरालयः।
बन्धौ गुरुर्व्योम्नि शशी कुजार्कजौ लाभे तदाशीतिसमायुरालयः ॥२३॥

पीयूषधारा—लग्नेति। अत्रापि योगद्वये स्थानग्रहयोर्यथासङ्ख्यं सम्बन्धः। लग्ने भृगुः, दशमे बुधः एकादशे सूर्यः, लग्नव्यतिरिक्तकेन्द्रं गुरुः स्यात् तदैवंविधे योगे प्रारब्धालयो गृहं वर्षशतमायुरवस्थानं यस्य तादृशः १०० स्यात्। यदाह श्रीपतिः—'शशाङ्कजीवौ खरसातलस्थौ' इति। आलयशब्दः पुँलिङ्गः 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव निकाय्यनिलयालयाः' इत्यमरः। पुंसि च सम्बध्यते रूपभेदेन वा पुल्लिङ्गः। अतएव नैषधीये प्रयुक्तः—'निशि माणिक्यमया यदालयाः' इति 'पङ्क्तिविंशति' इत्यादिना सूत्रेण अशीतिशतशब्दौ सङ्ख्यावाचिनौ निपातितौ। अथ द्वितीयः। बन्धाविति। बन्धौ चतुर्थे गुरुः, व्योम्नि दशमे चन्द्रः, कुजार्कजौ मङ्गलशनैश्चरावेकादशे तदा गृहमशीतिसमा वर्षाण्यायुर्यस्य तादृशं ८० स्यात् ॥ २३ ॥

पीताम्बरा—आयु सम्बन्धी अन्य विचार—गृह के आरम्भकालीन लग्न से—लग्नस्थ शुक्र, दशम बुध, एकादश सूर्य लग्न रहित शेष केन्द्रों में (४। ७। १०) में बृहस्पति हो तो मकान शतायु का होता है।

तथा यदि बृहस्पति चौथे, चन्द्रमा दशम में, मंगल और शनि एकादश में हो तो घर की आयु ८० वर्ष तक की होती है ॥ २३ ॥

अथ लक्ष्मीयुक्तगृहयोगत्रयमनुष्टुभाह—

स्वोच्चे शुक्रे लग्नगे वा गुरौ वेश्मगतेऽथवा।
शनौ स्वोच्चे लाभगे वा लक्ष्म्या युक्तं चिरं गृहम् ॥२४॥

पीयूषधारा—स्वोच्चे इति। स्वोच्चस्थे मीनस्थे शुक्रे लग्नगते गृहं चिरं लक्ष्म्या युक्तं स्यात्। अथवा स्वोच्चस्थे गुरौ चतुर्थस्थानगते सति तादृशमेव गृहम्। अथवा स्वोच्चस्थे शनावेकादशस्थानगेऽपि लक्ष्मीयुक्तं गृहं स्यात्। एतत्प्रत्येकं योगत्रयम्। यदाह श्रीपतिः—'स्वोच्चवर्तिनि गते विलग्ने देवमन्त्रिणि रसातलेऽथवा। स्वोच्चगे रविसुतेऽथवायगे स्यात्स्थितिश्च सुचिरं सह श्रिया' इति ॥ २४ ॥

पीताम्बरा—लक्ष्मीयुक्त गृह के तीन ग्रहयोग—(१) अपनी उच्च राशि—मीन लग्न में शुक्र, (१) अथवा अपनी उच्च राशि कर्क का बृहस्पति चतुर्थ (२) अथवा अपनी उच्च राशि तुला का शनि एकादश स्थान में तो हो ऐसी ग्रहस्थितियों में प्रारम्भ किए गए गृह का सर्वारम्भ बहुत दीर्घ समय तक लक्ष्मी युक्त होता है ॥ २४ ॥

अथ गृहस्य परहस्तगामित्वयोगमनुष्टुभाह—

द्यूनाम्बरे यदैकोऽपि परांशस्थो ग्रहो गृहम् ।
अब्दान्तः परहस्तस्थं कुर्याच्चेद्वर्णपोऽबलः ॥ २५ ॥

पीयूषधारा—द्यूनाम्बरे इति । एकोऽपि ग्रहोऽत्युत्कृष्टशुभफलदाता परांशस्थः शत्रुनवांशस्थितः सन् यदि द्यूने सप्तमे स्यात्तदा अम्बरे दशमे स्यात्तदा सग्रहस्तद्गृहं प्रारब्धमब्दान्तर्वर्षमध्य एव परहस्तस्थमन्यहस्तगामि कुर्याच्चेद्वर्णपो ब्राह्मणादिवर्णस्वामी 'विप्राधीशौ भार्गवेज्यौ' इत्यभिहित स चेदबलः स्यात् । उक्तं च वसिष्ठेन—'एको ग्रहश्चेत्परभागवर्त्ती जायागतः कर्मगतोऽथवा स्यात् । करोति गेहं परहस्तयातं करोति वर्षाद्विबलः स खेटः' इति । खेटो वर्णस्वामी । तदुक्तं श्रीपतिना–'एकोऽपि नूनं परभागवर्ती वियत्स्मरस्थः खचरोच्चमध्ये । करोति गेहं परहस्तयातं स्याद्दुर्बलश्चेदिह वर्णनाथः' इति ।

पराधीनत्वदोषो न गृहस्य—

यदा तु वर्णाधीशः सबलः स्यात्तदा परहस्तगामी न स्यादित्यर्थतः सिद्धम् ॥ २५ ॥

पीताम्बरा—वर्ष के भीतर घर के परहस्त गत होने का योग—अत्यन्त शुभफल देनेवाला एक भी ग्रह शत्रु के नवांश में होकर सप्तम अथवा चौथे हो तथा ब्राह्मणादिक वर्ण स्वामी ग्रह भी निर्बल हो तो ऐसी ग्रहस्थिति में प्रारम्भ किया गया घर १ साल के भीतर दूसरे के हस्तगत हो जाता है ॥ २५ ॥

अथ गृहारम्भे नक्षत्रविशेषेण च फलविशेषाच्छुभसूचकफलविशेषं योगद्वयं वसन्ततिलकाछन्दसाह—

पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैः सजीवैस्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात् ।
द्वीशाश्वितक्षिवसुपाशिशिवैः सशुक्रैर्वारे सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात् ॥२६॥

पीयूषधारा—पुष्येति । पुष्यो ध्रुवाणि च प्रसिद्धानि, इन्दुर्मृगः हरिः श्रवणं, सर्प आश्लेषा, जलं पूर्वाषाढा, एतैर्नक्षत्रैः सजीवैः गुरुयुक्तैर्गुर्वधिष्ठितैः तद्वासरेण कृतं कर्तुः आरब्धं गृहं सुतान्पुत्रान् राज्यं च ददाति तादृशं स्यात् । यदाह वशिष्ठः—इज्योत्तरात्रयाहीन्दुविष्णुधातृजलोडुषु । गुरुणा सहितेष्वेषु कृतं गेहं श्रिया युतम्' इति ।

गृहारम्भयोगबलेन तत्र जातस्वामिसुतस्य राज्यप्राप्तिः—

वारेण गृहफलविशेषश्च नारदवाक्ये—'श्रवणाषाढयोश्चैव रोहिण्यां चोत्तरात्रये । गुरुवारे कृतं वेश्म राजयोग्यमिहोच्यते । तद्गृहे जातपुत्रस्य राज्यं भवति निश्चयात्' । नक्षत्रभेदो वचनप्रामाण्यात् ।

धनधान्यसुवर्णदो गृहारम्भलग्नजो योगः—

द्वीशेति । द्वीशं विशाखा, अश्वि अश्विनी, तक्षि त्वाष्टं, वसुर्धनिष्ठा, पाशी शतभम्, शिव आर्द्रा, एतैर्नक्षत्रैः सशुक्रैः शुक्रसहितैः सितस्य शुक्रस्य वारे कृतं गेहं धनानि सुवर्णादीनि, धान्यानि तण्डुलादीनि तानि ददाति तादृशं गृहं स्यात् । यदाह वसिष्ठः—'द्विदैवत्वाष्ट्रवारेशरुद्रादित्यवसूडुषु । शुक्रेण सहितेष्वेषु कृतं धान्यप्रदं गृहम्' इति ।

नारदोऽपि—

'अश्विनीशततारासु विशाखाभाद्रचित्रके । धनिष्ठादिसंयुक्ते तथा वै शुक्रवासरे ।। गृहं नाटकशालाख्यं देवागारं कृतं शुभम् । तद्वेश्मनि प्रजातस्तु कुबेरसदृशो भवेत्' इति । अत्रापि नक्षत्रभेदे प्राग्वदेव समाधिः ।। २६ ।।

पीताम्बरा—गृहारम्भ समय नक्षत्र के नक्षत्र विशेष से फल विशेष–पुष्य, ध्रुव संज्ञक, मृगशीर्ष, श्रवण, आश्लेषा, पूर्वाषाढ़ा इन नक्षत्रों में जिस किसी में बृहस्पति हो बृहस्पतिभुक्त— उस नक्षत्र में और बृहस्पति वार के ही दिन प्रारम्भ किया गया घर पुत्र और राज्यप्रद होता है।

तथा विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शततारा और आर्द्रा नक्षत्रों में जिस किसी में शुक्र ग्रह हो शुक्र युक्त उस नक्षत्र में तथा शुक्रवार के ही दिन प्रारम्भ किया गया घर धन-धान्य से परिपूर्ण करता है ।। २६ ।।

अथान्ययोगद्वयमशुभदातृ इन्द्रवज्राछन्दसाह—

सारैः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः कौजेऽह्नि वेश्माग्निसुतार्तिदं स्यात् ।
सज्ञैः कदास्त्रार्यमतक्षहस्तैर्ज्ञस्यैव वारे सुखपुत्रदं स्यात् ।। २७ ।।

पीयूषधारा—सारैरिति । हस्तपुष्यरेवतीमघापूर्वाषाढामूलैः सारैर्मङ्गलयुक्तैः कौजे भौमसम्बन्धिनि अह्नि वारे च कृतं वेश्म गृहमग्निसूतार्तिदमग्निपीडा पुत्रपीडा च तां ददाति तादृशं स्यात् । यदाह वसिष्ठः—' पितृमूलेज्यभाग्यार्कपौष्णभेषु च यत्कृतम् । कुजेन सहितेष्वेषु गृहं सन्दह्यतेऽग्निना' इति । नारदोऽपि—'मूलं च रेवती चैव कृत्तिकाषाढमेव च । पूर्वाफाल्गुनिहस्तश्च मघा चैव तु सप्तके । एषु भौमेन युक्तेषु वारे तस्यैव वेश्म यत् । अग्निना दह्यते कृत्स्नं पुत्रनाशश्च जायते' इति । अत्र विशेषमाह वसिष्ठः—'अग्निनक्षत्रगे सूर्ये चन्द्रे वा संस्थिते यदि । निर्मितं मन्दिरं नूनमग्निना दह्यतेऽचिरात्' इति । आवश्यकत्वाद्विहितनक्षत्रानुपलब्धौ मध्यमेषु गृहारम्भः प्राप्तः स कृत्तिकायां मामूदिति निषेधः । सूर्यनक्षत्रे कृत्तिकायां माभूदिति पूर्वोपि । संज्ञैरिति । रोहिण्यश्विन्युत्तराफाल्गुनीचित्राहस्तैः सज्ञैर्बुधयुक्तैर्ज्ञस्यैव वारे च कृतं गेहं सुखदं पुत्रदं स्यात् । यदाह वसिष्ठः—'हस्तार्यमत्वाष्ट्रदस्रचतुरास्येन्दुभेषु च । बुधेन सहितेष्वेषु धनपुत्रसुखप्रदम्' इति ।। २७ ।।

पीताम्बरा—अन्य अनिष्टप्रद योग—हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढ़ और मूल नक्षत्रों में जिस किसी नक्षत्र में मंगल ग्रह हो, उसी नक्षत्र और मंगलवार के दिन (तथा मंगल युक्त नक्षत्र न होने पर मंगलवार में उक्त नक्षत्रों में कोई नक्षत्र हो तो भी) गृह के आरम्भ से उस घर में अग्नि से पीडा एवं पुत्र कष्ट होता है ।

तथा रोहिणी, अश्विनी, उत्तरफाल्गुनी, चित्रा, हस्त नक्षत्रों में जिस नक्षत्र में बुध ग्रह हो, उसी नक्षत्र तथा बुधवार के दिन (नक्षत्र युक्त बुध ग्रह न भी हो तो भी उक्त नक्षत्र और बुधवार के दिन) गृह के आरम्भ से वह घर सुख और पुत्रप्रद होता है ।। २७ ।।

अत्राशुभफलदमेव योगमनुष्टुभाह—

अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलान्तकैः ।
समन्दैर्मन्दवारे स्याद्रक्षोभूतयुतं गृहम् ।। २८ ।।

पीयूषधारा—अजैकपाविति । पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदाज्येष्ठानुराधारेवतीस्वातीभरणीनक्षत्रैः समन्दैः शनैश्चरयुक्तैर्मन्दस्यैव वारे च प्रारम्भं गृहं रक्षोभिर्भूतैश्च युतं स्यात् । यदाह वसिष्ठः—'अजपादद्वितये याम्यमित्रेन्द्रानिलभेषु च । यत्कृतं शनिसंयुक्ते दिह्यते यक्षराक्षसैः' इति । दिह्यते उपचीयते 'दिह उपचये' इति धातुः । नारदोऽपि—'ज्येष्ठानुराधके चैव भरणीस्वातिपूर्वभे । धनिष्ठास्वपि ऋक्षेषु शनिस्तिष्ठेद्दिनस्य च ।। कृपणो नामतः प्रोक्तो धनधान्यादिके गृहे । पुत्रो जातोऽथवा तस्मिन्गृह्यन्ते यक्षराक्षसैः' इति ।

गृहारम्भे कर्त्तव्यकृत्यसङ्ग्रहः

अयं निष्कृष्टोऽर्थः—पूर्वं गृहारम्भे नक्षत्राणि अवधार्याणि । ततो वृषवास्तुचक्रशोध्यानि । पश्चादिदं योगपञ्चकं विचार्यम् । एवं सति गृहारम्भ उक्तफलदाता भवेत् ।

प्रासादवापीकूपादिष्वपि गृहनिर्माणायोक्तानामतिदेशः—

अयं सर्वोऽपि गृहविचारः प्रासादवापीकूपादिषु ध्येयः । तदुक्तं विष्णुधर्मोत्तरे—'प्रासादेष्वेवमेव स्याद्वापीकूपेषु चैव ही'ति । प्रासादो देवगृहम् ।। २८ ।।

पीताम्बरा—अशुभ फलद योग—पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा, अनुराधा, रेवती स्वाती और भरणी नक्षत्रों में जिस किसी भी नक्षत्र में शनि हो उस नक्षत्र और शनिवार के दिन (शनियुक्त नक्षत्र भाव में शनिवार के दिन उक्त कोई नक्षत्र होने पर) किया गया गृह का आरम्भ राक्षस और भूत-प्रेतों के निवास के लिए होता है । मूल में रेवती नक्षत्र का उल्लेख नहीं है तथापि पीयूषकार ने रेवती नक्षत्र ग्रहण कैसे किया होगा ? ।। २८ ।।

अथ केषाञ्चिन्मतेन द्वारचक्रं सफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

सूर्यर्क्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कोणभै-
र्नागैरुद्वसनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवेत् ।
देहल्यां गुणभैर्मृतिर्गृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः
सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम् ।। २९ ।।

इति श्रीदैवज्ञानन्तसुतरामदैवज्ञविरचिते मुहुर्त्तचिन्तामणौ वास्तुप्रकरणं समाप्तम् ।। १२ ।।

पीयूषधारा—सूर्यर्क्षेति । अत्र द्वारस्य चत्वारः पाषाणा आवश्यकाः । द्वौ ऊर्ध्वाधोभावेनावस्थितौ समावल्पपरिमाणौ । भाषया उत्तरङ्ग इत्यूर्ध्वावस्थितस्य सञ्ज्ञा । अधोवस्थितस्य तु देहलीति सर्वसाधारणं नाम । द्वौ पार्श्वद्वये स्थितौ महापरिमाणौ उच्चत्वेन साह इति भाषया द्वयोरपि सञ्ज्ञा । एवं दीर्घचतुरस्रद्वारं भवति । पाषाणासम्भवे तु काष्ठादेरपि ।

द्वारचक्रानुसारेण फलानि—

तत्र द्वारे चिकीर्षिते सूर्याधिष्ठितनक्षत्राद्युगभैश्चतुर्भिर्नक्षत्रैः शिरस्यवस्थितः सद्भिः लक्ष्मीप्राप्तिरूपं फलं स्यात् । ततस्तदग्रिमैर्नागैः कोणभैर्द्वयोरवस्थिता चतुष्कोणेष्ववस्थितैरष्ट-

संख्याकैर्नक्षत्रैरुद्वसनं तद्द्वारगृहं सर्वदा जनवासरहितं स्यात् । ततस्तदग्रिमैर्गजमितैरष्टभिर्भैः शाखासु भाषया साहर इति नाम, तत्रावस्थितैर्गृहस्वामिनः सौख्यरूपं फलं स्यात् । ततस्तदग्रिमैर्गुणैस्त्रिभिर्नक्षत्रैर्देहल्यामवस्थितैर्गृहपतेर्मृतिः स्यात् । ततस्तदग्रिमैर्वेदभैश्चतुर्भिर्नक्षत्रैर्मध्यस्वरूपेऽवकाशे स्थितैः सौख्यं स्यात् ।

एतच्चक्रं पर्यालोच्यैव द्वाराणि—

फलितार्थमाह—चक्रमिति । इदं द्वारचक्रं सुधिया शुभं शुभफलदातृ द्वारं विधेयं कर्तव्यम् ।

सफलं द्वारचक्रं ग्रन्थान्तरे—

तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे—'द्वारचक्रं प्रवक्ष्यामि भाषितं विश्वकर्मणा । सूर्यभाद्भचतुष्कं तु शिरस्योपरि विन्यसेत् ।। द्वे-द्वे कोणे प्रदातव्ये शाखायुग्मे द्वयं-द्वयम् । अधश्च त्रीणि देयानि वेदा मध्ये प्रतिष्ठिताः ।। राज्यं स्यादूर्ध्वनक्षत्रे कोणेषूद्वासनं भवेत् । शाखायां लभते लक्ष्मीमधश्चैव मृतिं लभेत् ।। मध्यमेषु लभेत्सौख्यं चिन्तनीयं सदा बुधैः । इति द्वारचक्रम् ।।

द्वारस्थापने नक्षत्रतिथयः—

अथ द्वारस्थापनम् । 'द्वारस्थापननक्षत्राण्युच्यन्तेऽश्विनि चोत्तराः । हस्तपुष्यश्रुतिमृगाः । स्वातौ पूष्णि च रोहिण्यां द्वारशाखावरोपणम्' इति ज्योतिर्निबन्धेऽभिहितत्वात् । तिथयोऽपि तत्रैवाभिहिताः—'पञ्चमी धनदा चैव मुनिनन्दवसौ शुभम् । प्रतिपत्सु न कर्तव्यं कृते दुःखमवाप्नुयात् ।। द्वितीयायां द्रव्यहानिः पशुपुत्रविनाशम् । तृतीया रोगदा ज्ञेया चतुर्थी भङ्गकारिणी ।। कुलक्षयं तथा षष्ठी दशमी धननाशिनी । विरोधकृदमा पूर्णा न स्याच्छाखावरोपणम्' इति । एवं सति विरुद्ध तिथिं विहाय विहिततिथिषु विहितभेषु च तत्रापि चक्रशुद्धेषु भेषु द्वारं विहितं शुभफलदातृ स्यादिति निष्कृष्टोऽर्थ इति शिवम् ।। २९ ।।

अथ गृहारम्भप्रकरणं गद्येनोपसंहरति । इति श्रीदैवज्ञेति । स्पष्टार्थमेतत् ।
ज्योतिर्विद्वरनीलकण्ठविदुषः श्रीचन्द्रिकायास्तथा पुत्रेणाहिगवीप्रसारितधिया मौहूर्त्तचिन्तामणेः ।
गोविन्देन विनिर्मिते नयनिधौ पीयूषधाराभिधे व्याख्याने गृहनिर्मितिप्रकरणं सम्पूर्णतामध्यगात् ।।१।।

इति श्रीविद्वद्वरदैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां
मुहूर्त्तचिन्तामणिटीकायां पीयूषधारायां
वास्तुप्रकरणं समाप्तम् ।। १२ ।।

पीताम्बरा—सफलद्वार चक्र—मकान में द्वार बैठाने के दिन—सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक (दिन नक्षत्र तक) गिनती करनी चाहिए, ऐसी गिनती २७ तक होगी ।

प्रथम के चार नक्षत्र द्वार के मस्तक पर होते हैं जिनमें द्वार निवेशन से लक्ष्मी प्राप्ति होती है ।

सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र, ५ से–१२ तक क्रमशः द्वार के चारों कोणों में होते हैं, इन नक्षत्रों में मकान में प्रथम दरवाजों के लिए चौखट बैठाने से उस घर से घर के स्वामी का त्याग हो जाता है, अर्थात् घर जनवास रहित हो जाता है ।

अनन्तर सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र १३ से २० संख्या तक चौखट की चार शाखाओं में होते हैं अतः शाखास्थित चन्द्र नक्षत्रों में चौखट बैठाने से उस घर में गृहपति को सदा सुख प्राप्ति होती है ।

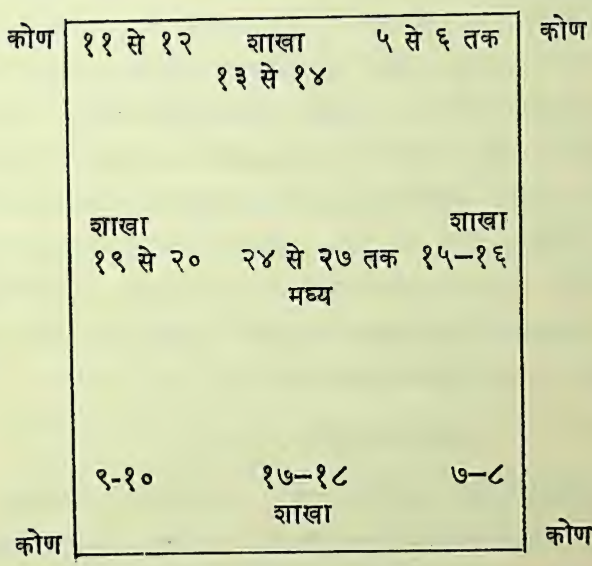
तत्पश्चात् सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र २१ से २३ संख्या के हों तो ये नक्षत्र द्वार चौखट की देहली में होते हैं । इनमें द्वार की चौखट के बैठाने से गृहपति की मृत्यु होती है ।

अनन्तर सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र २४ से २७ हों तो ये नक्षत्र द्वार के बीच में पड़ते हैं । इनमें द्वार के निमित्त चौखट बैठाने से गृहपति को सुख मिलता है । स्पष्टता के लिए चक्र भी दिया जा रहा है । बुद्धिमान लोग चक्र देखकर भी द्वार निवेशन के लिए अतिस्पष्ट शुभ मुहूर्त का आदेश कर सकते हैं ।। २९ ।।

द्वार-चक्रम्

सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक

१ से ४ तक मस्तक



२१ से २३ तक देहली

इति कूर्मपृष्ठीय अल्मोडामण्डलान्तर्गत जुनायल ग्रामज पर्वतीय स्व० पं० हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज श्री केदारदत्त जोशी कृत [वर्तमान काशीस्थ हरिहर्ष निकेतन १।२८ नगवा (नलगाँव)] मुहूर्तचिन्तामणि १२वें वास्तुप्रकरण की पीयूषधारा की पीताम्बरा हिन्दी व्याख्या सम्पन्न ।। १२ ।।

– + –

अथ गृहप्रवेशप्रकरणम् ॥ १३ ॥

लम्बोदरं नमस्कृत्य गोविन्देन विदां मुदे ।
गृहप्रवेशप्रकरणं सम्यग्व्याख्यायतेऽन्तिमम् ॥ १ ॥

अथ गृहप्रवेशप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र चतुर्धा प्रवेश इत्युक्तं प्रागस्माभिः तत्र नववधूप्रवेशो विवाहप्रकरणान्तेऽभिहितः । अन्यप्रवेशत्रयमुहूर्तोऽत्राभिधीयते । ननु—'यात्रानिवृत्तौ शुभदं प्रवेशनम्' इत्यादिना सुपूर्वप्रवेशस्याभिहितत्वात्प्रवेशद्वयमेव वक्तव्यं स्यान्न तु प्रवेशत्रयमिति उच्यते । यात्रां कृत्वा प्रतिनिवृत्तस्य भूपादेरशुभमुहूर्तं नगराद्बहिः स्थातुमशक्नुवती दैवादागतवृष्ट्याद्यभिभूतस्य यथाकथञ्चिच्छुभाशुभप्रकरणोक्तां पञ्चाङ्गशुद्धिं विचार्योक्तयथा विहितनक्षत्रैरेव प्रशस्तः प्रवेशोऽभिहितः, न तु विशिष्य तादृशे प्रवेशे कालशुद्धिर्वक्तेत्यतः सुपूर्वस्याभिधानम् । तत्रापूर्वप्रवेशसुपूर्वप्रवेशयोः कालशुद्ध्यादिकमिन्द्रवंशाछन्दसाह—

सौम्यायने ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे यात्रानिवृत्तौ नृपतेर्नवे गृहे ।
स्याद्वेशनं द्वाःस्थमृदुध्रुवोडुभिर्जन्मर्क्षलग्नोपचयोदये स्थिते ॥ १ ॥

पीयूषधारा—सौम्यायने इति । एतेषु सौम्यायन इत्यादिकेषु पदार्थेषु सत्सु नृपतेर्यात्रानिवृत्तौ अथवा नवे नूतनोत्थापिते गृहे वेशनं 'विश प्रवशने' स्यात् । सौम्यायन उत्तरायणे । अत्र शुक्रगुर्वस्तादिको दोषो 'वाप्यारामतडाग' इत्यादिनोक्त इति न पुनरुक्तः । एवं गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठा' इत्यादिना दक्षिणायननिषेधोऽपि । अतः परिशेषात्सौम्यायनग्रहणे सिद्धे तदुक्तिर्मन्दबुद्धीनां शीघ्रप्रतिपत्त्यर्था । उक्तं च वसिष्ठेन—'अथ प्रवेशो नवसद्मनश्च सौम्यायने जीवसिते बलाढ्ये' इति । बलाढ्य उदिते । नारदेनापि—'अथ सौम्यायने कार्यं नववेश्मप्रवेशनम् । राज्ञां यात्रानिवृत्तौ' इति । केवलायां भूमौ क्रीतायां प्राप्तायां वा स्वतः सिद्धायां वोत्थापितं गृहं नूतनमित्युच्यते । ज्येष्ठेति । माघफाल्गुनवैशाखमासेष्वेव सत्यप्युत्तरायणे प्रवेशनं शुभम् । यदाह नारदः—'माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः । प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्त्तिकमासयोः' इति । सौम्यो मार्गशीर्षः । मध्यमोक्तिरावश्यकविषया ।

चान्द्रमासफलानि गृहप्रवेशे—

चान्द्रमासफलान्याह वसिष्ठः—'माघेऽर्थलाभः प्रथमप्रवेशे पुत्रार्थलाभः खलु फाल्गुने च । चैत्रेऽर्धहानिर्धनधान्यलाभो वैशाखमासे पशुपुत्रलाभः ॥ ज्येष्ठे च मासेषु परेषु नूनं हानिप्रदः शत्रुभयप्रदश्च । शुक्ले च पक्षे सुतरां विवृद्ध्यै कृष्णे च यावद्दशमी च तावत्' इत्याद्युक्तैरेव ग्रन्थकृता पक्षविशुद्धिर्नोक्ता । तिथिवारशुद्धिश्चाग्रे वक्ष्यते ।

सौरमानं गृहप्रवेशे न ग्राह्यम्—

वशिष्ठेन तु गृहप्रवेशे सौरमानमनूद्य दूषितम् । यथा—'मृगादिषड्राशिषु संस्थितेऽर्के नवप्रवेशः शुभदः सदैव । कुम्भं विनान्येष्वपि केचिदूचुर्न सौरमिष्टं खलु सन्निवेशे' इति । अस्यार्थः नूतनगृहप्रवेशो मकरादिषड्राशिसंस्थिते सूर्ये शुभफलदो भवति । तत्रापि माघादिषु विहितेषु चतुर्षु मासेषु शुभः ।

कुम्भे फाल्गुनपौर्णिमोत्तरं सर्वथा न कार्यः—

ननु 'अथ प्रवेशो नवसद्मनश्च सौम्यायने' इति स्वयं प्राक् सौम्यायन इत्युक्तत्वात्किमित्येतत्पुनरुक्तमित्यत आह—कुम्भं विनेति। सत्यप्युत्तरायणे कुम्भसङ्क्रान्तौ नूतनगृहप्रवेशो न भवतीत्येदर्थं पुनरुक्तमित्यर्थः। नन्विदं पूर्वापरविरुद्धम्। तथाहि—'माघेऽर्थलाभः प्रथमप्रवेश' इत्यादिना माघफाल्गुनयोश्चान्द्रमासयोः शुभफलाभिधानात्तत्रैव च कुम्भसङ्क्रान्तिसद्भावाद्द्वयोरन्यतरस्याशुभत्वं प्रतिपाद्यते। उभयामासनिर्मुक्तः कुम्भस्तु नास्त्येवेति चेत्। उच्यते। सन्ति हि द्विविधा मासाश्चान्द्रमासाः शुक्लादयः कृष्णादयश्चेति। तत्र फाल्गुनपूर्णिमोत्तरमासस्य कृष्णादिमासगणनया चैत्रत्वात्तस्य च विरुद्धफलत्वात्तद्विषयकोऽयं कुम्भसंक्रान्तिनिषेधः। चान्द्रमासस्य शुक्लादिकृष्णाद्यभिधायकानि वाक्यानि गृहारम्भप्रकरणेऽस्माभिरुक्तानि। अयमपि निषेधो मासस्य कृष्णादित्वे ज्ञापकः।

सुपूर्वगृहप्रवेशः तृणागारप्रवेशो वा कर्कादिषड्राशिषु—

कर्कादिसङ्क्रान्तिषु मतान्तरमाह—अन्येष्वपीति। केचिदाचार्या अन्येष्वपि कर्कादिषड्राशिस्थिते सूर्येऽपि नवगृहप्रवेशः कार्य इत्यूचुः। तदेतद्द्वन्दसौपूर्विकगृहप्रवेशविषयम्। तदुक्तं स्वयमेव—'नवप्रवेशे त्वथ कालशुद्धिर्न द्वन्द्वसौपूर्विकयोः कदाचित्' इति। नूतनतृणागारप्रवेशविषयं वा। तदुक्तं ज्योतिःप्रकाशे—'गृहारम्भोदितैर्मासैर्धिष्ण्यैर्वारैर्विशेद्गृहम्। विशेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारं तु सर्वदा' इति। अत एव—'कुलीरकन्यकाकुम्भे दिनेशे न विशेदगृहम्। ग्रामं वा नगरं वापि पत्तनं वा सुराधिप' इति गुरुवाक्येष्वेवमेव व्याख्येयम्।

विरुद्धफलयोः सौरचान्द्रमासयोः चन्द्रमासेन नवगृहप्रवेशः कार्यः—

ननु पौषचैत्रादिषु विरुद्धफलेषु चान्द्रमासेषु विहितसङ्क्रान्तिश्चेत्तदा नूतनगृहप्रवेशः कार्यो वा नवेत्यत आह—न सौरमिति। खलु निश्चयेन। सौरं मानं सन्निवेशे गृहप्रवेशे नेष्टं न शुभफलदम्। विरुद्धशुभफलयोश्चान्द्रसौरमासयोः साहित्ये विहितचान्द्रमासैरेव गृहप्रवेशः कार्य इत्यलमतिप्रसङ्गेन।

प्रवेष्टव्यद्वाराभिमुखदिङ्नक्षत्रैः गृहप्रवेशनं कार्यम्—

द्वाःस्थेति। द्वारनक्षत्राणि 'भानि स्थाप्यान्यग्निधिदिक्षु वा' इत्यादिनोक्तानि। मृदूनि ध्रुवाणि चोडूनि प्रसिद्धानि। द्वाःस्थानि च तानि मृदुध्रुवोडूनि चेति कर्मधारयः तादृशैर्भैः प्रवेशनं हितं स्यात्। अयमर्थः। यस्मिन्गृहे प्रवेशः कर्तुमिष्यते तस्य द्वारं यद्दिगभिमुखं तद्दिग्नक्षत्रैः विहितैः प्रवेशः कार्यः। यदाह वसिष्ठः—'यद्दिग्द्वारं मन्दिरं तद्दिगृक्षैरुक्तर्क्षैः स्यात्सम्प्रवेशो न सर्वैः' इति।

त्रिविधप्रवेशे नक्षत्राणि विना पुष्यधनिष्ठाशततारकाः—

उक्तर्क्षाण्याह स एव—'चित्रोत्तराधातृशशाङ्कमित्रवस्वन्त्यवारीश्वरभेषु नूनम्। आयुर्धनारोग्यसुपुत्रपौत्रसत्कीर्तिदः स्यात्त्रिविधः प्रवेशः' इति। नारदोऽपि—'वस्विज्यान्त्येषु वरुणत्वाष्ट्रमित्रस्थिरोडुषु। शुभः प्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयोः' इति।

पुष्यधनिष्ठाशततारकाः जीर्णगृहप्रवेशे एव न नूतने—

अत्र पुष्यधनिष्ठाशततारकाः ग्रहणं जीर्णगृहप्रवेशविषयम्। उक्तं च ज्योतिःप्रकाशे—'प्रवेशो नूतने हर्म्ये ध्रुवैर्मैत्रैः सुखासये। पुष्यस्वातीयुतैस्तैश्च जीर्णे स्याद्वासवद्वये इति। एतद्ग्रन्थकृदप्यग्रिमपद्यैर्वक्ष्यति।

शुभाशुभफलानि प्रवेशनक्षत्रेषु—

असुमेवाशयं मनसि निधायाह श्रीपतिः—'शुभः प्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवाख्यैः क्षिप्रैश्चरैः स्यात्पुनरेव यात्रा । उग्रैर्नृपो दारुणभैः कुमारो राज्ञी विशाखासु विनाशमेति ।। कृत्तिकासु भवनं कृशानुना दह्यते प्रविशतां न संशयः । यन्मुखं च सदनं हि तत्ककुब्द्वारभेषु शुभकृत्प्रवेशनम् ।।' इति । वसिष्ठोऽपि—'अर्कानिलेयादितिदस्रविष्णुऋक्षे प्रविष्टं नवमन्दिरं यत् । अब्दत्रयात्तत्पर-हस्तयातं शेषेषु धिष्ण्येषु च मृत्युदं स्यात् ।।' इति ।

गृहप्रवेशे लग्नानि—

प्रवेशलग्नान्याह—जन्मर्क्षेति । जन्मर्क्षं जन्मराशिः जन्मलग्नं प्रसिद्धम् । ताभ्यामुपचये तृतीयषष्ठैकादशमस्थेऽन्येषु तथा स्थिराख्यराशिषु लग्नगतेषु सत्सु नव गृहप्रवेशनं शुभम् । यदाह वसिष्ठ —'कर्त्तुर्विलग्नादथ जन्मराशेर्लग्नस्थितो राशिरिति प्रदिष्टः । निर्व्याधिदारिद्र्यचयशस्क-रश्च सुहृत्सुतघ्नो रिपुनाशनश्च । कलत्रहन्ता निधनप्रदश्च रोगप्रदः सिद्धिकरोऽर्थदश्च । क्रमाच्च वैरामयदः क्रमेण सदैव नूनं त्रिविधः प्रवेशः ।।' इति । अतो निष्कृष्टमर्थमाह—गृहप्रवेशे राज-मार्त्तण्डः—'कर्तृभोपचयगाश्च विलग्ने राशयः शुभफलाय भवन्ति' इति । नारदोऽपि—'कर्तु-र्जन्मभलग्ने वा ताभ्यामुपचयेऽपि वा । प्रवेशलग्ने स्याद्वृद्धिरन्यभे शोकनिःस्वनः ।।' इति । पुनर्वसिष्ठः—'सौम्ये स्थिरे भे शुभदृष्टियुक्ते लग्नेऽथवा द्वन्द्वगृहे विलग्ने' इति । सौम्यगृहयुक्ते द्वचन्द्रगृहे द्विस्वभावराशौ । अत्र विवाहप्रकरणोक्ता एकविंशतिमहादोषाः वर्ज्या इत्यपि ध्येयम् । एकविंशतिदोषानुपक्रम्य वसिष्ठेनोक्तं—'कर्त्तुर्नाशो गृहारम्भे प्रवेशे पतिनाशनम्' इति ।। १ ।।

पीताम्बरा—गृहप्रवेश मुहूर्त विचार—चार प्रकार के प्रवेश पहिले कहे जा चुके हैं । जिनमें वधू प्रवेश मुहूर्त का विचार विवाहप्रकरण में किया जा चुका है अन्य तीन प्रवेश मुहूर्त यहाँ पर बताए जा रहे है ।

राजा या व्यक्ति की दीर्घ यात्रा की निवृत्ति के अनन्तर अपने नगर या गाँव के अपने घर में या नवनिर्मित अपने घर में उत्तरायण के सूर्य में प्रवेश शुभ होता है ।

उत्तरायण के ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख मासों का गृहप्रवेश शुभ होता है । तृणा-गार तृण, घास फूस आदि से आच्छादित नवीन घरों में दक्षिणायन में भी प्रवेश किया जा सकता है ।

द्वार नक्षत्र, मृदु संज्ञक ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में गृह प्रवेश शुभ होता है । जिस घर में प्रवेश करना है उस घर का मुख्य दरवाजा पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर जिस ओर हो उस दिशा के दिग्द्वार संज्ञक नक्षत्र में उस दिशा के घर में प्रवेश शुभ होता है ।

जीर्ण गृह का नवीनीकरण होने पर उसमें पुष्य, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में भी प्रवेश किया जा सकता है ।

जन्म लग्न जन्म राशि से तृतीय षष्ठ दशम एकादश राशिलग्नों तथा स्थिर लग्न राशियों में नये गृह का प्रवेश शुभ होता है ।

गृह प्रवेश के समय विवाहप्रकरणोक्त मुख्य अनेक दोषों को भी वर्जित करना चाहिए ।। १ ।।

अथ जीर्णगृहादिविषयकप्रवेशविशेषमिन्द्रवज्राछन्दसाह—

जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि मार्गोर्जयोः श्रावणिकेऽपि सत्स्यात् ।
वेशोऽम्बुपेज्यानिलवासवेषु नावश्यमस्तादिविचारणाऽत्र ॥ २ ॥

पीयूषधारा—जीर्णे इति । जीर्णे पुरातनेऽन्यनिमित्ते गृहेऽथवा सिद्धे एव गृहेऽग्न्यादिभयादग्निकृतं भयं दाहः आदिशब्देन बहुवृष्टिपातभयं राजकोपो वा इत्याद्युपद्रवैः पतिते गृहे पुनरपि सम्यक् नवे कृते उत्थापिते गृहेऽपि प्राक्पद्योक्ताः सर्वेपि मासास्तादृशगृहप्रवेशे ध्येयाः । किं च मार्गोर्जयोः मार्गशीर्षकार्तिकयोश्च श्रावणिकेऽपि श्रावणे मासि प्रवेशः सत् शुभफलदः स्यात् । श्रावणे तु स्यान्नभाः श्रावणिकश्च सः' इत्यमरः । यदाह सनत्कुमारः—'गृहारम्भोदितैर्मासैर्धिष्ण्यैर्वारैर्विशेद्गृहम् ॥' इति ।

गृहारम्भोक्ता मासाः जीर्णान्यनिर्मितगृहप्रवेशेषु—

अत्र सामान्यतो गृहारम्भोदिता मासा गृहप्रवेशेऽभिहिताः ते चेमे 'सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः । मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः' इति नारदोक्ताः मार्गशीर्षफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिका विहिताः । तत्र उत्तरायणे एव गृहप्रवेशस्य वाक्यान्तरेण विहितत्वात् । श्रावणकार्त्तिकमार्गशीर्षाणामुत्तरायणत्वाभावाद्विरोधेन नूतनजीर्णगृहप्रवेशयोर्विधानात्, गृहारम्भोदितैर्मासैः' इत्यनेन तु सामान्यतस्त्रिविधस्यापि गृहप्रवेशस्याभिधानादुत्तरायणीया मासास्त्रिविधगृहप्रवेशे शुभाः । दक्षिणायनीया मासाः श्रावणादयस्तु जीर्णगृहप्रवेशविषयाः । अत एव नारदो मार्गशीर्षकार्तिकयोर्नूतनगृहप्रवेश मध्यमत्वमाह । अर्थादेव जीर्णगृहप्रवेशे उत्कृष्टत्वमध्यवस्यते ।

जीर्णप्रवेशे निषिद्धर्क्षाणि यानि तान्येवैतानि नवे शुभानि—

अम्बुपेति । अम्बुपः शततारका, इज्यः पुष्यः, अनिलः स्वाती, वासवं धनिष्ठा, एष्वपि भेषु जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि गृहे प्रवेशः शुभः । प्राक्पद्योक्तेषु शुभ एवेति कैमुतिकन्यायादवगम्यते । तदुक्तं ज्योतिःप्रकाशे—'प्रवेशो नूतने हर्म्ये ध्रुवैर्मैत्रैः सुखास्पदं । पुष्ये स्वातियुतैस्तैश्च जीर्णे स्याद्वासवद्वये ॥ इति ।

जीर्णगृहान्यतरगृहप्रवेशेऽस्तादिदोषो न—

नावश्यमिति । अत्रैवंविधे जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽप्यावश्यमस्तादिविचारणा शुकास्तगुर्वस्तबाल्यवार्द्धकसिंहस्थगुरुमकरस्थगुरुलुप्तसम्वत्सरादीनां दोषाणां विचारणा विचारो नास्ति । अस्तादयः कालदोषाः सन्तु वा मा वा । तथापि गृहप्रवेशः कार्यः । परन्तु सोऽपि यथाकथंचित्पञ्चाङ्गशुद्धिमात्रमङ्गीकृत्य विहितनक्षत्रेष्वेव कार्यः ।

त्रिविधप्रवेशेऽपि वास्तुपूजा कार्यैव—

वास्तुपूजा त्वेवंविधे गृहप्रवेशे भवतीत्यपि ध्येयम् । तदुक्तं ज्योतिःप्रकाशे—'नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके । वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्ये गुरुशुक्रयोः ॥' इति । वसिष्ठेनाप्युक्तम्—'नवप्रवेशे त्वथ कालशुद्धिर्न द्वन्द्वसौपूर्विकयोः कदाचित्' इति । अस्यार्थः । नूतनगृहप्रवेशे कालशुद्धिर्विचार्या । द्वन्द्वं द्वन्द्वोभयाख्यो गृहप्रवेशः । सौपूर्विको राज्ञो यात्रासमाप्तौ गृहप्रवेशः । तादृशयोर्गृहप्रवेशयोः कालशुद्धिः कदाचिदपि नापेक्षिता । सति सम्भवे सुखेनास्तु ।

किन्तु प्रवेशदिनीयपञ्चाङ्गशुद्धिसहिते सुलग्ने गृहप्रवेशः कार्यः पूर्वस्मिन्नाद्ये नूतने प्रवेशे यथा वास्तुपूजा तथाद्वन्द्वसौपूर्विकयोरपि कार्येत्यर्थः। नारदस्तु यात्रानिवृत्तिप्रवेशे कालशुद्धिरपेक्षितैवेत्याह। तद्वाक्यं प्रागभिहितम्। तदेतयोर्वाक्ययोरावश्यकानावश्यकत्वेन व्यवस्था।

प्रवेशत्रयस्यापि लक्षणानि—

त्रयाणां गृहप्रवेशानां लक्षणमुक्तं वसिष्ठेन—'अपूर्वसंज्ञः प्रथमः प्रवेशो यात्रावसाने तु सुपूर्वसंज्ञः। द्वन्द्वाभयस्त्वग्निभयादिजातः प्रवेश एवं त्रिविधः प्रदिष्टः॥' इति। एतद्व्याख्यानं यात्रानिवृत्ताविति पद्यव्याकृतावस्ति। तत एवावधार्यम्।

सर्वप्रवेशे क्रूराक्रान्तविद्धनक्षत्राणि वर्ज्यानि—

अत्रेदं ध्येयम्। यत्त्रिविधेऽपि प्रवेशे प्रवेशदिनीयनक्षत्रं क्रूराक्रान्तं क्रूरविद्धं वा तत्सर्वथा वर्ज्यमिति। उक्तं च वसिष्ठेन—'क्रूरग्रहाधिष्ठितविद्धभं च विवर्जनीयं त्रिविधप्रवेशे' इति॥२॥

अथ गृहप्रवेशदिनात्प्राक्कर्तव्यां वास्तुपूजां विवक्षुस्तन्नक्षत्राण्युपजातिकापूर्वार्धेनाह—

मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु मूलभे वास्त्वर्चनं भूतबलिं च कारयेत्।

पीयूषधारा—मृद्विति। मृदूनि ध्रुवाणि क्षिप्राणि चराणि नक्षत्राणि प्रसिद्धानि मूलभं च। एषु, सप्तदशसु भेषु नक्षत्रेषु वास्तोः वास्तुपुरुषस्यार्चनं भूतबलिं च कारयेत्। गृह-पतिर्वास्तुपूजां कुर्यात्। पुरोहितो गृहपतिं वास्तुपूजादिकं कारयेत्। 'हृक्रोरन्यतरस्याम्' इत्यणौ कर्त्तुः कर्मत्वम्। यदाह ऋक्षोच्चयः—'चित्रा शतभिषा स्वाती हस्तः पुष्यः पुनर्वसुः। रोहिणी रेवती मूलश्रवणोत्तरफाल्गुनी॥ धनिष्ठा चोत्तराषाढा तथा भाद्रोत्तरान्विता। अश्विनी मृगशीर्षं च अनुराधा तथैव च॥ वास्तुपूजनमेतेषु नक्षत्रेषु करोति यः। स प्राप्नोति नरो लक्ष्मीमिति प्राह पराशरः' इति।

अथ वास्तुपूजाप्रकारः—

वास्तुपूजाप्रकारमाह वसिष्ठः—'निर्माणे मन्दिराणां च प्रवेशे त्रिविधेऽपि वा। वास्तुपूजा तु कर्त्तव्या यस्मात्तां कथयाम्यतः॥ गृहमध्ये हस्तमात्रं समन्तात्तण्डुलोपरि। एकाशीतिपदं कार्यं तिलैस्तुल्यं सुशोभनम्॥ एकद्वित्रिपदाः पञ्चचत्वारिंशत्सुरोचिताः। द्वात्रिंशद्बाह्यतो वक्ष्यमाणोश्चान्तस्त्रयोदश। तेषां स्थानानि नामानि वक्ष्यामीश्वरकोणतः। तत्राग्निः शम्भुकोणस्थस्त्वसौ चैकपदेश्वरः। तस्माद्द्वितीयः पर्जन्यश्चासावेकपदेश्वरः। जयन्तेन्द्रार्कसत्याख्या भृशश्च द्विपदेश्वराः॥ आकाशवायूपरतः क्रमादेकपदेश्वरौ। एवं प्राच्यां नव ज्ञात्वा त्वेवमेवान्यदिक्षु च॥ आद्याश्चान्त्यावेकपदौ द्विपदाः पूषाद्यष्टौ यमान्ताः स्युरमरा याम्यभागगाः॥ आद्याश्चान्त्यावेकपदौ द्विपदा पञ्चमध्यगाः। पञ्चमध्यगाः। अष्टौ पितृगणाधीशाः पापान्ताः पश्चिमेश्वराः। आद्यन्तौ द्वावेकपदौ द्विपदाः पञ्चमध्यगाः। रोगादिदित्यन्तसुराः सप्त सौम्यदिशि क्रमात्। तत्राधःस्थश्चतुष्कोणेष्वीशानादिषु च क्रमात्। आपः सावित्रविजयरुद्राश्चैकपदेश्वराः॥ मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्यैशानादिकोणगाः। आपवत्सोथ सविता विबुधाधिपसंज्ञकः॥ राजयक्ष्मा च चत्वारः सुराश्चैकपदेश्वराः। ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु त्रिपदाश्चामरा अमी॥ अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पितृधरः क्रमात्। स्वस्वस्थलेषु देवेषु

स्थापितेष्वीदृशं भवेत् ।। कोणेषु पञ्चमं चैव चतुर्थैकपदाः सुराः । प्रागादिदिक्षु द्विपदाः पञ्च-पञ्च यथाक्रमम् ।। ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु त्रिपदाः स्युः समीपगाः । हिरण्यरेता पर्जन्यो जयन्तः पाकशासनः ।। सूर्यः सत्यो भृशा काशो वायुः पूषा च वँ तथा । गृहक्षतः पितृपति-र्गन्धर्वो भृङ्गराजकः ।। मृगः पितृगणाधीशस्तथा दौवारिकाह्वयः । सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च जला-धीशो निशाचरः ।। शोषः पापश्च रोगोहिर्मुखो भल्लाट एव च । सोमसर्पौ दित्यदिती द्वात्रि-शदमराः स्मृताः ।। आपश्चैवापवत्सश्च जयो रन्ध्रस्तथैव च । मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्थौ तस्य समीपगः ।। प्राच्यां ह्यन्तरिता देवाः परितो ब्रह्मणः स्मृताः । अर्यमा सविता चैव विस्वान्वि-बुधाधिपः । मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् । आपवत्सोऽष्टमः पञ्चचत्वारिंशत्सु-रोत्तमाः ।। ज्ञात्वैवं स्थाननामानि ब्रह्मणा सहितान्न्यसेत् । वास्तुज्ञो वास्तुमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षता-दिभिः ।। प्रणवेनार्चयेद्वापि अथवा स्वस्वनामभिः । शुक्लवस्त्रयुगं दद्याद्धूपदीपफलैः सहः ।। अपूपैर्भूरिनैवेद्यैर्याद्यैः सह समर्चयेत् । ताम्बूलं च ततो दद्याद्देवेभ्यश्च पृथक्-पृथक् ।। दत्वा पुष्पाजलिं कर्ता प्रार्थयेद्वास्तुपूरुषम् । वास्तुमूर्ते नमस्तेऽस्तु भूमिशय्यारत प्रभो ।। मद्गृहं धन-धान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा । इति प्रार्थ्य ततो दद्याद्दक्षिणामर्चकाय च । विप्रेभ्यो भोजनं दत्वा स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः । एवं यः कुरुते सम्यग्वास्तुपूजां प्रयत्नतः ।। आरोग्यं पुत्रपौत्रादि धन-धान्यं लभेन्नरः । वास्तुपूजामकृत्वा यः प्रविशेन्नवमन्दिरे । रोगान्नानाविधान्क्लेशानश्नुते सर्वसङ्क-टम्' इति वसिष्ठसंहितायां वास्तुपूजाप्रकारः । विशेषस्त्वन्यसंहिताभ्योऽवसेयः । एवं भूतबलि-रपि । उपक्रमोपसंहाररूपो वास्तुशान्तिप्रकारः प्रयोगरत्नादिनाम्नीषु स्वशाखाभेदेन भिन्नासु पद्धतिषु द्रष्टव्यः । इत्थं विस्तरभयान्नेह लिख्यत इत्यलमतिप्रसङ्गेन । केचित्तु पञ्चाङ्गशुद्धि-मात्रयुक्ते पूर्वदिन एव वास्तुपूजामाहुः । यदाह नारदः—'विधाय पूर्वदिवसे वास्तुपूजाबलि-क्रियाम्' इति । श्रीपतिरपि—'अथ प्रवेशो नवमन्दिरस्य यात्रानिवृत्तावथ भूपतीनाम् । सौम्या-यने पूर्वदिने विधाय वास्त्वर्चनं भूतबलिं च सम्यक्' इति ।

पीताम्बरा—नवसंस्कृत पुराने घर का प्रवेश मुहूर्त—अग्निभय से, बहुवृष्टिपात से, वा राजकोप से गिर गया या गिराये गये घर का पुनः जीर्णोद्धार करने पर, सति सम्भवे उत्तरायण अथवा श्रावण कार्तिक और मार्गशीर्ष मासों में, उपर्युक्त नक्षत्रों अथवा पुष्य, स्वाती, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में भी प्रवेश शुभ होता है ।

इस प्रकार के पुराने घरों के गृहप्रवेश में शुक्रास्त गुरुअस्त, बाल्य, वार्धक्य, सिंह मकरस्थ गुरु और लुप्त संवत्सरादिक दोषों का विचार आवश्यक नहीं है ।

वास्तुपूजा और भूतबलि के मुहूर्त—मृदु, ध्रुव, क्षिप्र, चर संज्ञक और मूल नक्षत्रों में वास्तुपुरुष पूजन (वास्तुपूजा) और भूतबलि करनी चाहिए ।

"पीयूष" में वास्तुपूजा प्रकार दिया गया है । अन्यत्र भी वास्तुपूजा और भूतबलि की शास्त्रीय पद्धतियाँ सर्वत्र सुलभ हैं ।। २ ।।

अथ लग्नशुद्धिं तिथिशुद्धिं चोपजातिकोत्तरार्धेनेन्द्रवज्रया चाह—

त्रिकोणकेन्द्रायधनत्रिगैः शुभैर्लग्ने त्रिषष्ठायगतैश्च पापकैः ।। ३ ।।

शुद्धाम्बुरन्ध्रे विजनुर्भमृत्यौ व्यर्कारिरिक्ताचरदर्शचैत्रे ।

ह्यग्रेऽम्बुपूर्णं कलशं द्विजांश्च कृत्वा विशेद्वेश्म भकूटशुद्धम् ।। ४ ।।

पीयूषधारा—त्रिकोणेति । नवमपञ्चमचतुर्थसप्तमदशमैकादशद्वितीयतृतीयस्थानानामन्यतमस्थानस्थैः शुभग्रहैरुपलक्षिते पूर्णचन्द्रबुधगुरुशुक्रैरुपलक्षिते । अत्र चन्द्रस्य लग्नराहित्ये ध्येयम् । तथा तृतीयषष्ठैकादशस्थैः पापग्रहैरुपलक्षिते तथा अम्बु चतुर्थस्थानं रन्ध्रमष्टमस्थानं शुद्धे सर्वग्रहरहिते अम्बुरन्ध्रे यस्मिंस्तादृशे लग्ने वेश्म गृहमाविशेत् । यदाह वसिष्ठः—केन्द्रत्रिकोणायधनत्रिसंस्थैः शुभैस्त्रिषष्ठायगतैः खलैश्च । लग्नान्त्यषष्ठाष्टमवर्जितेन चन्द्रेण लक्ष्मीनिलयः प्रवेशः' इति अन्यच्च–'प्रवेशलग्नान्निधनस्थितो यः क्रूरग्रहः क्रूरगृहे यदि स्यात् । प्रवेशकर्त्तारमथ त्रिवर्षाद्धन्त्यष्टवर्षैः शुभराशिगश्चेत्' इति । नारदः—'स्थिरलग्ने स्थिरे राशौ नैधने शुद्धिसंयुते । त्रिकोणकेन्द्रखत्र्यायसौम्यैस्त्र्यायारिगैः परैः ।। लग्नान्त्यार्यष्टमस्थानवर्जितेन इति । प्रवेशो स्यादिति पूर्वेण सम्बन्धः । गुरुः—'सप्तमं शुद्धमुद्वाहे यात्रायामष्टमं तथा । दशमं च गृहारम्भे चतुर्थं सन्निवेशने' इति । यत्तु श्रीपतिना—'केन्द्रच्छिद्रव्ययैः शुद्धे क्रूरैः षट्त्र्यायगैर्गुरौ । लग्ने भृगौ वा केन्द्रे वा स्थिरप्रायोदये विशेत्' इति । केन्द्रस्य शुद्धत्वमुक्तं तत्पापग्रहराहित्यकृतं ध्येयम् । लग्नस्थगुरुभृग्वोरुक्तिस्त्वतिप्राशस्त्याभिधानार्था । कीदृशे लग्ने विजनुर्भमृत्यौ भं राशिर्लग्नं च । जनुषि जन्मकाले भे जनुर्भे ताभ्यां मृत्युरष्टमभवनं जनुर्भमृत्युः विगतो जनुर्भमृत्युर्यस्मिन् स्वजन्मलग्नात् स्वजन्मराशेर्वाष्टमो राशिः प्रवेशलग्नतो नापेक्षित इत्यर्थः । पुनः कीदृशः । व्यर्कारिरिक्ताचरदर्शचैत्रे । अर्कारौ प्रसिद्धौ वारौ । रिक्ताः । ४ । ९ । १४ । उपलक्षणत्वाद्दग्धतिथयोऽपि । चरलग्नानि मेषकर्कतुलामकराः उपलक्षणत्वात्तदंशा अपि । दर्शोऽमावास्या । चैत्रो मासः । उपलक्षणत्वादाषाढोऽपि । विगता अर्कादयो यस्मिन् । अर्कादयः प्रवेशदिने निषिद्धा इत्यर्थः । यदाह वसिष्ठः—'न नैधने भेपि न चाष्टलग्ने पञ्चेष्टकेप्यष्टमशुद्धियुक्ते । कार्यः प्रवेशो न चरांशलग्ने शुभेक्षिते वाप्यथ संयुते वा । रिक्तामभां दग्धतिथिं दिनेशभूसुनुषड्वर्गमिनेन्दुदृष्टिम् । क्रूरग्रहाधिष्ठितविद्धभं च विवर्जनीयं त्रिविधप्रवेशे ।।' इति ।।

वारफलानि गृहप्रवेशे—

वारफलमप्याह स एव—'दह्यते प्रविशतां च मन्दिरं वह्निभे । ब्रध्नभूमिसुतवासरे तथा शीतरश्मिदिवसे हि वृद्धिदम् ।। चन्द्रजार्यसितवासरेषु च श्रीकरं सुखमहार्थलाभदम् । सूर्यसुनुदिवसे स्थिरप्रदं किन्तु चौरभयमत्र विद्यते ।।' इति ।

प्रवेशे तिथ्यादिनिर्णयसङ्ग्रहः—

एषा निष्कृष्टमर्थमाह श्रीपतिः—'रिक्तातिथिर्भूसुतभानुवारौ निन्द्याश्च योगाः परिवर्जनीयाः । मेषः कुलीरो मकरस्तुला च त्याज्याः प्रवेशे हि तथा तदंशाः' इति ।

निषिद्धलग्नफलानि प्रवेशे—

निषिद्धलग्नफलान्यभिहितानि राजमार्त्तण्डे—'भूपो यात्रा मेषलग्ने प्रवेशे नाशं गच्छेत्कर्कटस्योदये वा । व्याधिं तौलिन्याश्रिते लग्नवर्तिन्योकेकेरे चाप्नुयाद्धान्यनाशम् ।' ओकेकेरे मकरे ।

शुभाशुभानि लग्नानि तदंशाश्च—

'लग्नेऽन्यत्रांशकेप्येषामेतद्दुष्टफलप्रदाः शुभान्यन्यानि लग्नानि प्रवेशे मुनयो विदुः ।।' इति । अन्यानि स्थिराणि द्विस्वभावानि च । उक्तं च वसिष्ठेन—'पञ्चाङ्गसंशुद्धदिने निशेशताराबले चाष्टकवर्गयुक्ते । सौम्ये स्थिरे भे शुभदृष्टियुक्ते लग्नेऽथवा द्व्यङ्गगृहे विलग्ने इति ।

विशेषो राजमार्त्तण्डे—निन्दिता अपि शुभांशसमेतास्तौलिमेषमकराः सकुलीराः। कर्तुंभोपचयगाश्च विलग्ने राशयः शुभफलाय भवन्ति ॥' एतल्लग्नान्तराशुद्धौ बहुकालासह्रिष्णुत्वे वा द्रष्टव्यम् । शुभांशाः वृष- मिथुनकन्याधनुर्मीनानामंशा इत्यर्थः ।

कर्के तुलांशे सर्वथा प्रवेशनिषेधः—

कर्के तुलांशस्थे स्वरूपतो निषिद्धत्वाद्विशेषान्तरमाह वसिष्ठः—'यः क्षीणचन्द्रोऽन्त्यषडष्टसंस्थः पापेक्षितः पापयुतोऽथवा स्यात् । कर्त्तुः स्त्रियं हन्ति स वत्सरेण त्रिवर्षतः सौम्यनिरीक्षितश्चेत् ॥' इति ।

अथ राज्ञां यात्रानिवृत्तिप्रवेशे विशेषो ध्येयः । यत्र मासे यात्रा कृता तस्मान्नवमे मासि यात्रादिनान्नवमे दिने वा प्रवेशो निषिद्धोऽस्ति । यदाह गुरुः—'निर्गमान्नवमे मासि प्रवेशो नैव शोभनः । नवमे दिवसे चैव प्रवेशं नैव कारयेत् ॥' इति । वामं रविमिति । गृहप्रवेशसमये रविं सूर्यं वामं यद्दिगभिमुखान् प्रवेश्य गृहाद्वामभागस्थं कृत्वा वेश्म गृहं विशेत्तया पुरोऽग्रे स्वसम्मुखं पूर्णघटं जलपूर्णं कलशमुपलक्षणत्वात्पूगीफलादि पूर्णं घटं वा कृत्वा । चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वाद्ब्राह्मणांश्च सजलकलशानपि ब्राह्मणान्वाग्रे कृत्वा वेश्म विशेत् ।

प्रवेशसमये शुक्रस्य पृष्ठगत्वमावश्यकम्—

अत्र शुक्रः पृष्ठगः कार्य इत्यनुक्तोऽविशेषो ध्येयः । यदाह वसिष्ठः—'कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोऽर्कं विप्रान् पूज्यानग्रतः पूर्णकुम्भम् । हर्म्यं रम्यं तोरणस्रग्वितानैः स्त्रीभिः स्रग्वी गीतमाल्यैर्विशेत्तत् । इति ।

पृष्ठतो दक्षिणगत एव वा शुक्रस्य शुभदत्वं गुरुमतेन—

गुरुस्तु-वामगोऽग्रगो वा शुक्रो निषिद्धः । किन्तु पृष्ठगतो वा शुभ इत्याह—'पृष्ठगं दक्षिणं वापि भृगुं कृत्वा विशेत्सदा । पुरोऽग्रं वामगं वापि शुक्रं कृत्वा विशेच्च न ॥' इति ।

शुक्रस्य दिक्चतुष्टये स्थितिरुक्ता—

अत्र शुक्रस्य दिक्चतुष्टयस्थत्वज्ञानं चन्द्रवदेव ज्ञेयम् । विशेषानुक्तेः तच्च गृहारम्भप्रकरणेऽस्माभिरुक्तम् ।

सर्ववर्णसाधारणमुक्त्वा राज्ञां प्रवेशे विशेषविधयः—

अयं च सर्ववर्णानां त्रिविधेऽपि प्रवेशो विधिः । राज्ञां तु यात्रानिवृत्तौ विशेषमप्याह श्रीपतिः—'कृत्वा विप्रान्सजलकलशांश्चग्रतो वामतोऽर्कं स्नातः स्रग्वी विमलवसनो मङ्गलैर्वेदघोषैः । व्यस्तैर्यात्राकथितशकुनैर्द्वारमार्गेण राजा हर्म्यं पुष्पप्रकररुचिरं तोरणाढ्यं विशेच्च' इति । कीदृशं वेश्म । भकूटशुद्धं भकूटं षष्ठाष्टकादि तेन शुद्धं उपलक्षणत्वाद्विवाहप्रकरणोक्तं 'वर्णो वश्यं तथा तारा' इत्येवमादिकं च तेनापि शुद्धं ध्येयम् । यदाह वशिष्ठः—'राशिकूटादिकं सर्वं दम्पत्योरिव चिन्तयेत्' इति ॥ ३ ॥ ४ ॥

पीताम्बरा—गृहप्रवेश में लग्नतिथि शुद्धि—गृहप्रवेश में लग्न से ९, ५, १, ४, ७, १०, ११, २, ३ स्थानों में शुभ ग्रह, पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्ररहित लग्न में, ३, ६, ११, में पाप ग्रह, चतुर्थ अष्टम भाव ग्रह रहित लग्न में, जन्मराशि और जन्मलग्न से अष्टम राशिलग्न रहित शेष राशिलग्नों में, सूर्य, मंगल वार रहित शेष वारों में, रिक्ता, दग्धादि तिथि दोष व अमावास्या रहित शेष शुभ तिथियों में, चर लग्न, चर नवांश रहित शेष शुभ लग्न नवांशों में, चैत्र मास रहित कथित शेष शुभ मासों में गृहप्रवेश करने वाले व्यक्ति या

राजा (सपरिवार, सपरिषद) ने पूगीफल पुष्प, विविध शुभ शाकुनीय द्रव्यों के साथ जलपूर्ण कलश व ब्राह्मणों को आगे करके शुभ भवन में शुभ प्रवेश करना चाहिए। गृहप्रवेश समय वाम रवि विचार भी आवश्यक है (तथा सम्मुख दक्षिण शुक्रदोष भी)॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ वामगतार्कज्ञानं तिथिपरत्वेन पूर्वाद्यभिमुखगृहप्रवेशं चेन्द्रवज्रयाह—

वामो रविर्मृत्युसुतार्थलाभतोऽर्के पञ्चभे प्राग्वदनादिमन्दिरे।
पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे शुभो नन्दादिके याम्यजलोत्तरानने॥ ५॥

पीयूषधारा—वाम इति । अष्टमपञ्चमद्वितीयैकादशस्थानेभ्यः पञ्चस्र स्थानेषु स्थिते रवौ सति प्राग्वदनादिमन्दिरे प्रवेशव्ये गृहप्रवेशकर्तुर्वामो रविर्ज्ञेयः। यद्यथा यस्मिन् लग्ने प्रवेशः कर्तुमिष्यते तस्मादष्टमं यत्स्थानं तस्मात्पञ्चसु स्थानेषु अर्के स्थिते पूर्वाभिमुखगृहप्रवेशकर्तुर्वामः सूर्यः स्यात् तथा लग्नाद्यत्पञ्चमं स्थानं ततः पञ्चषु स्थानेषु अर्के स्थिते दक्षिणाभिमुखगृहप्रवेश-कर्तुर्वामः सूर्यः एवं लग्नाद्यद्द्वितीयं स्थानं ततः पञ्चसु स्थानेषु स्थिते सूर्ये पश्चिमाभिमुखगृह-प्रवेशकर्तुर्वामः सूर्यः। तथैव लग्नाद्यदेकादशं स्थानं ततः पञ्चसु स्थानेषु सूर्ये स्थिते उत्तरा-भिमुखगृहप्रवेशकर्तुर्वामः सूर्य इत्यर्थः।

वामार्कस्वरूपज्ञापकं चक्रम्—

यथा चक्रोद्धारः। उक्तं च—'रन्ध्रात्पुत्राद्धनादायात्पञ्चस्वर्के स्थिते क्रमात्। पूर्वाशादि-मुखं गेहं विशेद्वामो भवेद्यतः' इति। विश्वकर्माऽपि—'लग्नात्प्रागादितो दिक्षु द्वौ-द्वौ राशी नियोजयेत्। एवमेकं न्यसेत्कोणे सूर्यं वामे विचिन्तयेत्॥' इति। प्राच्यां लग्नात् द्वौ राशी स्थाप्यौ कोणे चैकः।

गृहप्रवेशे गृहदिङ्मुखभेदेन भिन्नतिथयः—

पूर्णातिथाविति–प्राग्वदने पूर्वाभिमुखे गृहे पूर्णातिथौ पञ्चम्यां दशम्यां पूर्णिमायां वा प्रवेशः। नन्दादिके तिथिगणे याम्यजलोत्तरानने गृहप्रवेशः। यथा दक्षिणाभिमुखे गृहे नन्दायां प्रतिपदि षष्ट्यामेकादश्यां वा प्रवेशः शुभः। जलं पश्चिमदिक् तद्दिगभिमुखे भद्रायां द्वितीयायां सप्तम्यां वा प्रवेशः शुभः। उत्तराभिमुखे गृहे जयायां तृतीयायामष्टम्यां त्रयोदश्यां वा प्रवेशः शुभः इत्यर्थः। यदाह गुरुः—'नन्दायां दक्षिणद्वारं भद्रायां पश्चिमामुखम्। जयायामुत्तरद्वारं पूर्णायां पूर्वतो मुखम्' इति। यद्यपि मूले नन्दाकिके इति पदोपानाद्रिक्ताग्रहणमपि प्राप्नोति। तथापि विदिक्षु द्वाराणां निषेधाद्दिशां च चतुष्टयेन चतुर्णां द्वाराणां सम्भवाच्च रिक्ताग्रहणा-सम्भवो ध्येयः। सोऽपि सम्मतिवाक्ये स्पष्ट एव॥ ५॥

पीताम्बरा—वाम रवि विचार—जिस लग्न में गृहप्रवेश की इच्छा हो, उससे जो अष्टम स्थान उससे पांच स्थान आगे ८, ९, १०, ११, १२ भाव में यदि सूर्य हो तो पूर्वा-भिमुख गृहप्रवेश करनेवाले के लिये रवि, वाम होता है।

तथा प्रवेश लग्न से पञ्चम स्थान से पांच स्थान आगे (५, ६, ७, ८, ९,) में स्थित सूर्य से दक्षिणाभिमुख प्रवेश कर्ता के लिए सूर्य वाम एवं गृहप्रवेश लग्न से द्वितीय स्थान से पांच स्थानों में २, ३, ४, ५, ६, तक सूर्य हो तो पश्चिमाभिमुख गृहप्रवेश में सूर्य वाम तथा लग्न से ११वें स्थान से आगे के पांच स्थानों ११।१२।१।२।३ में सूर्य हो तो उत्तर मुख के घर प्रवेश में सूर्य वाम होता है।

पूर्व द्वार के गृह में पूर्णा तिथियों ५।१०।१५ में दक्षिण द्वार में नन्दा १।६।११ में, पश्चिमद्वार में भद्रा २।७।१२ और उत्तर द्वार के घर में जया ३।८।१३ तिथि में गृहप्रवेश शुभ होता है। रिक्ता तिथि सर्वत्र वर्ज्य है।

गृह प्रवेश समय वाम रवि शुभ होता है।

वाम रविज्ञान बोधक चक्र पीयूष में सुस्पष्ट है ॥ ५ ॥

वामार्कचक्रम्—

पूर्वमुखः	दक्षिणमुखः	पश्चिममुखः	उत्तरमुखः
सूर्यः ८	सूर्यः ५	सूर्यः २	सूर्यः ११
सू० ९	सू० ६	सू० ३	सू० १२
सू० १०	सू० ७	सू० ४	सू० १
सू० ११	सू० ८	सू० ५	सू० २
सू० १२	सू० ९	सू० ६	सू० ३

अथ गृहप्रवेशे कलशवास्तुचक्रं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वक्त्रे भूरविभात्प्रवेशसमये कुम्भेऽग्निदाहः कृताः,
प्राच्यामुद्वसनं कृता यमगता लाभः कृताः पश्चिमे।
श्रीर्वेदाः कलिरुत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे,
रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनलाः कण्ठे भवेत्सर्वदा ॥ ६ ॥

पीयूषधारा—वक्त्रेति। कलशस्याष्टधा विभागाः परिकल्प्याः—मुखं कण्ठो गर्भो गुदं चेति चत्वारो विभागाः, पूर्वादिदिक्परत्वेन च चत्वारो विभागाः। एवमष्टौ भागाः स्युः। तत्र विभागपरत्वेन सूर्यभान्नक्षत्रन्यासे फलमुच्यते—वक्त्र इति। गृहप्रवेशसमये इति सर्वत्रापि सम्बध्यते। कुम्भे कलशाकृतौ वास्तुनि रविभात्सूर्याक्रान्तनक्षत्रादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी। रविभारम्य नक्षत्रन्यास इत्यर्थः। तत्र कलशस्य वक्त्रे मुखे भूरेकं सूर्यनक्षत्रमेव स्थाप्यम्। तत्फलं गृहस्याग्निदाहः।

ततः सूर्यभात्कृता अग्निमाणि चत्वारि भानि प्राच्यां स्थाप्यानि। फलमुद्वसनं जनवासशून्यं गृहं स्यात्। ततः कृता यमगताः तदग्निमाणि चत्वारि भानि दक्षिणस्यां यमदिशि स्थाप्यानि फलं गृहपतेर्लाभो द्रव्यप्राप्तिः। ततः कृता पश्चिमे तदग्निमाणि चत्वारि भानि पश्चिमायां स्थाप्यानि, फलं गृहपतेः श्रीप्राप्तिः। ततो वेदा उत्तरे तदग्निमाणि चत्वारि भानि उत्तरस्यां स्थाप्यानि, फलं कलिर्लोकैः सह गृहसम्बन्धी निरर्थकः कलहः स्यात्। ततो युगमितास्ततोऽग्निमाणि चत्वारि भानि गर्भे कलशमध्ये स्थाप्यानि। फलं विनाशः। कस्येत्याकाङ्क्षायां गर्भो पादाद्धाविनां गर्भाणां विनाश इत्यर्थः। ततो रामास्तदग्निभाणि त्रीणि भानि गुदे बुध्न्ये स्थाप्यानि फलं स्थैर्यं गृहपतेर्बहुकालं तत्र गृहे निवासः। ततोऽनलास्तदग्निमाणि त्रीणि भानि कण्ठे स्थाप्यानि, फलं स्थिरत्वं सर्वदा गृहपतेर्भवेत्। एवमभिजिद्रहितानि सप्तविंशतिभानि स्युः।

कलशवास्तुचक्रे नक्षत्रसनिवेशप्रकारस्तत्फलानि च—

तदुक्तं विश्वकर्मणा—'घटाकारं लिखेच्च रविधिष्ण्यक्रमेण च। मुखैकं दिक्षु चत्वारि त्रिस्त्रीणि गुदकण्ठयोः। एवं चक्रं समालेख्यं प्रवेशार्थं सदा बुधैः' अत्र चत्वारि इति वीप्सा द्रष्टव्या, दिक्षु इत्यनेन गर्भोप्युपलक्ष्यते। तथा च फलनिर्देशस्तत्रैव—'अग्निनाशो मुखे प्रोक्त उद्वासः पूर्वतो भवेत्। दक्षिणे चार्थलाभाय पश्चिमे श्रीप्रदो भवेत्॥ उत्तरे कलहश्चैव गर्भे गर्भविनाशनम्। स्थिरता च गुदे कण्ठे कलशस्य प्रकीर्तिता' इति। ज्योतिःप्रकाशेऽपि—'भूर्वेद-पञ्चकं त्रिस्त्रिः १।४।४।४।४।४।३।३ प्रवेशे कलशेऽर्कभात्। मृतिर्गतिर्धनं श्रीः स्याद्वैरं रुक् स्थिरतां मुखम्' इति। वेदपञ्चकं वेदाश्चत्वारस्तेषां पञ्चकं पञ्चवारम्। चत्वारि भानि लेख्यानीत्यर्थः। मृतिरित्यादीन्यष्टौ यथासङ्ख्यं फलानि।

तत्र निष्कृष्टार्थः कलशवास्तुचक्रे—

अत्र कलशचक्रे शुभफलस्थाने याते सत्येव विहितनक्षत्राणां परिग्रहो युक्तः। तत्रापि यद्दिङ्मुखे प्रवेशे विधित्सिते तद्दिङ्मुखविहितनक्षत्रपरिग्रहः। यथा पूर्वदिङ्मुखगृहप्रवेशे विधित्सिते रोहिणीमृगे ग्राह्ये, दक्षिणाभिमुखगृहप्रवेशे उत्तरफाल्गुनीचित्रे, एवं पश्चिमाभिमुखे अनुराधोत्तराषाढ़े, एवमुत्तराभिमुखे उत्तरभाद्रपदारेवत्यौ ग्राह्ये इति निष्कृष्टोऽर्थः। अत एवोक्त वसिष्ठेन—'यद्दिग्द्वारं मन्दिरं तद्दिगर्क्षैरुक्तर्क्षैः स्यात्सन्निवेशो न सर्वैः' इति। तद्दिगर्क्षैरिति उक्तर्क्षैरिति चानयोः सामानाधिकरण्येनान्वयः। भिन्नवाक्यत्वे तु विवक्षिते चकारः कर्त्तव्यः। 'सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदो हि दूषणम्' इति न्यायाच्च। अत एव—'अर्कानिलेज्यादिति-दस्रविष्णवृक्षे प्रविष्टं नवमन्दिरं यत्। अब्दत्रयात्तत्परहस्तयातं शेषेषु धिष्ण्येषु च मृत्युदं स्यात्' इति निषेधोप्युपपन्नो भवति ॥ ६ ॥

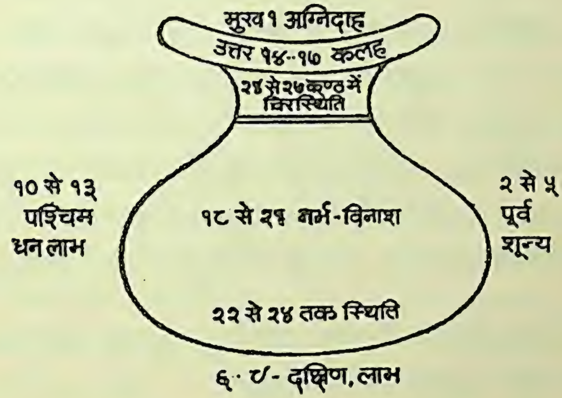
पीताम्बरा—गृहप्रवेश मुहूर्त में कलश चक्र से विचार किया जा रहा है—गृहप्रवेश समय के सूर्य के नक्षत्र से गृहप्रवेश के दिन जो चन्द्रमा का दैनिक नक्षत्र हो वहाँ तक की गिनती करने से कुछ संख्यक नक्षत्र शुभ और कुछ संख्यक नक्षत्र अशुभ होती हैं। स्पष्ट समझने के लिए एक कलशाकार चक्र द्वारा गृहप्रवेश के शुभ नक्षत्र की खोज की जा रही है।

सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक की एक संख्या को कलश के मुख में समझकर उस दिन गृह-प्रवेश करने से घर में अग्निदाह हो जाता है। इसी प्रकार सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा नक्षत्र संख्या २ से

५ तक कलश के पूर्व में होती है इनमें गृहप्रवेश करने से घर सदा खाली रहता है घर जनवास शून्य हो जाता है । सूर्य नक्षत्र से ६....९ संख्यक नक्षत्र कलश की दक्षिण तरफ होती हैं इनमें गृहप्रवेश करने से गृहस्वामी के घर में सदा द्रव्य लाभ होता है । पुनः सूर्य नक्षत्र से १० से १३ तक कलश के पश्चिम की नक्षत्रों का गृहप्रवेश गृहस्वामी की श्री प्राप्ति के होते हैं । पुनः सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्रों १४-१७ की स्थिति कलश के उत्तर का गृहप्रवेश सदा घर में निरर्थक कलह पैदा करता है । तथा सूर्य नक्षत्र से १८-२१ तक के चन्द्र नक्षत्रों में (जो कलश के गर्भ हैं) गृहप्रवेश करने से गर्भनाश अर्थात् भविष्य के गर्भस्थ शिशुओं का विनाश होता है । ततः सूर्य नक्षत्र से २२-२३-२४ संख्यक कलश के गुह्य के चन्द्र नक्षत्रों में गृहप्रवेश करने से दीर्घ समय तक गृहपति उस घर में निवास करता है । सूर्य नक्षत्र से अन्तिम के २५-२६-२७ संख्यक चन्द्रनक्षत्र कलश के कण्ठगत हैं उन चन्द्र नक्षत्रों का जो गृहप्रवेश वह घर के स्वामी के लिए यह स्थिति सदा स्थिरता की होती है ॥ ६ ॥

स्पष्ट समझने के लिए कलश चक्र देखिए ।

सफल कलश चक्र



अथ गृहप्रवेशप्रकरणोपसंहारं सूचयन् प्रवेशोत्तरकालीनकर्त्तव्यविधिमुपजात्याह—

एवं सुलग्ने स्वगृहं प्रविश्य वितानपुष्पश्रुतिघोषयुक्तम् ।
शिल्पज्ञदैवज्ञविधिज्ञपौरान् राजार्चयेद्भूमिहिरण्यवस्त्रैः ॥ ७ ॥

पीयूषधारा—एवं सुलग्न इति । एवं प्रागुक्तप्रकारेण विचारिते सुलग्ने निर्दूषणे सकलगुणयुक्ते च शोभनलग्ने स्थिरराश्यादिके राजा वितानपुष्पश्रुतिघोषयुक्तं वितानानि वस्त्रमण्डपाः, पुष्पाणि स्वर्तुजातानि मालत्यादीनि, श्रुतिघोषो वेदध्वनिश्च तैर्युक्तमुपलक्षणत्वात्तोरणाद्यनेकमङ्गलवस्तुसहितमेतादृशं स्वगृहं प्रविश्य शिल्पज्ञान् गृहोत्थापकान् स्थापतिवार्धक्यादीन् दैवज्ञान्

ज्योतिर्विदो विधिज्ञान्वास्तुपूजाभूतबलिगृहप्रवेशनीयविधिज्ञान् पुरोहितप्रभृतीन् पौरान् नागरिकान् पण्डितान् दीनानाथान्धकृपणांश्च भूमिहिरण्यवस्त्रैर्यथाशवित हिरण्येन वा वस्त्रैर्वा व्यस्तैर्वा समुचितैर्वा उपलक्षणत्वादश्वगजादिभिर्वा अर्चयेत् पूजयेत्। यदाह वशिष्ठः—'हर्म्यं रम्यं तोरणस्रग्वितानैः स्त्रीभिः स्रग्वी गीतवाद्यैर्विशेत्तत्' इति। राजमार्त्तण्डेऽपि—'भूरिपुष्पनिकरं सतोरणं तोयपूर्णकलशोपशोभितम्। गन्धपुष्पबलिपूजितामरं ब्राह्मणध्वनियुतं विशेद्गृहम्' इति।

प्रवेशायोग्यगृहस्वरूपम्—

कीदृशं गृहं प्रवेशयोग्यं न भवतीति वशिष्ठेनाभ्यधायि—'यद्वास्तुपूजारहितं त्वदत्तबलित्वेनाच्छन्नगृहं विरूपम्। कपाटहीनं न विशेद्यतस्तत्सर्वापदामालय एव तत्स्यात्' इति। नारदोऽपि—'अकपाटमनाच्छन्न मदत्तबलिभोजनम्। गृहं न प्रविशेद्धीमान्विपदामलयो हि तत्' इति। तस्मात्सकपाटमुपरिष्टादाच्छादितं कृतवास्तुपूजं दत्तबलिकमेव गृहं प्रविशेत्।

प्रवेशान्तरकार्यविधयः—

प्रवेशोत्तरकर्तव्यविधिमाह श्रीपतिः—'ततो नृपो विप्रसुहृत्पुरोधसः शिल्पज्ञभूगोलविदश्च लिङ्गिनः। धनैश्च रत्नैः पशुभिः समर्चयेत्सह्यान्धदीनान्पुरवासिनस्तथा' इति। शिवम्॥ ७॥

पीताम्बरा—गृहप्रवेश के अनन्तर के कार्य—इस प्रकार सकल गुण युक्त स्थिर राश्यंशक शोभन लग्न में वितान पुष्प वेदध्वनि आदि से तथा संगीत मृदंग तोरणादि अनेक मंगल वस्तुओं के साथ, अपनी सत्ता के घर में प्रवेश कर राजा या समाज के व्यक्ति ने गृहनिर्मातृ शिल्पज्ञ, ज्योतिर्विद्, वास्तुपूजा और भूतबलि जानने वाले गृहप्रवेशनीय विधिके ज्ञाता पुरोहितादिकों, नागरिकों, पण्डितों, दीन अनाथ, अन्ध कृपण आदिकों की, भूमि से, सुवर्ण से, वस्त्र से अश्व गजादि से यथा वित्त से यथा पात्र पूजा करनी चाहिए॥ ७॥

अथ मुहूर्त्तचिन्तामणेर्ज्योतिषग्रन्थस्य समाप्तिं कर्तुकामो ग्रन्थकृत्तत्स्वकुलालङ्कारभूतं स्वपितामहचिन्तामणिदैवज्ञवर्णनं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

आसीद्धर्मपुरे षडङ्गनिगमाध्येतृद्विजैर्मण्डिते
ज्योतिर्वित्तिलकफणीन्द्ररचिते भाष्ये कृतातिश्रमः।
तज्जातकसंहितागणितकृन्मान्यो महाभूभुजां
तर्कालङ्कृतिवेदवाक्यविलसद्बुद्धिः स चिन्तामणिः॥ ८॥

पीयूषधारा--आसीदिति। प्रसिद्धः चिन्तामणिश्चिन्तामणिनामा धर्मपुरे विदर्भदेशप्रदेशविशेषे नर्मदासमीपवर्तिनि मातृपुराख्ये आसीत् कीदृशे धर्मपुरे षडङ्गनिगमाध्येतृद्विजैर्मण्डिते निगमो वेदः। षट् अङ्गानि यस्यासौ षडङ्गः, षडङ्गानीमानि-शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषं चेति। षडङ्गश्चासौ निगमश्च षडङ्गनिगमस्तस्याध्येतारोऽध्ययनकर्त्तारः अध्येतृभिरध्यापका अप्युपलक्ष्यन्ते। नहि विनाध्यापकं वेदाध्ययनं क्वचिद्दृष्टम्। तादृशाः द्विजाः ब्राह्मणाः ब्राह्मणक्षत्रिय-

वैश्या वा तैर्मण्डितेभूषिते। कीदृशः चिन्तामणिः। ज्योतिर्वित्तिलकः ज्योतींषि नक्षत्राणि लक्षणया तत्प्रतिपादकाः ग्रन्था ज्योतिःशब्देनोच्यन्ते तानि विदन्ति ते ज्योतिर्विदः 'सत्सूद्विषत्' इत्यादिना ज्योतिर्वित्सु तिलक एव ज्योतिर्विच्छ्रेष्ठ इत्यर्थः। पुनः कीदृशः। फणीन्द्ररचिते फणीन्द्रः शेषो विलप्। महानागस्तेन रचिते भाष्ये व्याकरणमहाभाष्ये कृतोऽतिश्रमोऽत्यभ्यासो येन सः महाभाष्याध्ययनपारङ्गग इत्यर्थः। पुनः कीदृशः। तत्तज्जातकसंहितगणितकृत् तानि तानि स्वल्पवृहदादिभेदेनानेकविधानि जातकानि जातकशास्त्राणि संहिताशास्त्राणि गणितानि गणितशास्त्राणि करोति तादृशः होरासंहितागणितरूपस्कन्धत्रयात्मकस्य ज्योतिःशास्त्रस्य स्वपद्यैर्निमतित्यर्थः। अनेन महाकविरित्यपि सूचितम्। पुनः कीदृशः। महाभूभुजां सकलजम्बूद्वीपवर्तिराजमुकुटमणीनां महतां राज्ञां पातिशाहादीनां मान्यः पूज्यः महाराजमान्य इत्यर्थः। पुनः कीदृशः। तर्कालङ्कृतिवेदवाक्यविलसद्बुद्धिः तर्को न्यायशास्त्रं अलङ्कृतिरलङ्कारशास्त्रं वेदवाक्यं वेदवाक्यविचारप्रतिपादको ग्रन्थो मीमांसाशास्त्रं तेषु विलसन्ती विलासयुक्ता बुद्धिर्यस्य सः। अलंकार शास्त्रे 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इति न्यायात्तर्कशास्त्रज्ञः मीमांसाज्ञो वेदान्तज्ञश्चेत्यर्थः। आसीदिति—'अस् भुवि' इत्यस्माल्लङि 'आडजादीनाम्' इत्याट्। 'श्नसोरल्लोप' इत्यकारस्य लोपः षडङ्गनिगमाध्येतृद्विजैरित्यसमस्तपदे। षडङ्गविगम इत्यत्र 'तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारय' इति कर्मधारयः' इति कर्मधारयसमासः। अध्येतृशब्दे च 'इत्यस्यादिङिकावध्युपसर्गान्न व्यभिचरत इत्युक्तेरधिपूर्वकात् 'ण्वुल्तृचौ' इति कर्तरि तृच्। 'सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः' इति गुणः ततो यणादेशः। ततः षडङ्गनिगमस्याध्येतार इति कर्मणि शेषे षष्ठी उतः षष्ठी शेषे' इति सम्बन्धसामान्ये षष्ठी। तत्र यदि विशेषषष्ठी तदा 'कर्तरि च' इति कर्त्रर्थोत्पन्नाभ्यां तृजकाभ्यां कर्मषष्ठीसमासनिषेधप्रसङ्गः। न च तृचमङ्गीकृत्यैतद्दूषणं त्वया दत्तम्। एवं नाङ्गीकुर्मः। किन्तु तच्छीलाधिकारविहितं तृनं विधास्यामः। तद्योगे प्राग्वदेवषष्ठी विधाय षष्ठी समासो भविष्यतीति वाच्यम् 'एकं सन्धित्सतोऽपरं प्रच्यवते' इति—न्यायेन नलोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' इति तृनो योगे षष्ठ्येव नास्ति कुतस्तरां षष्ठीसमासः॥ ष ननु चायं कृद्योगनिमित्तकर्मषष्ठ्या समासः किं तर्हि। षडङ्गनिगममधीयत इति विगृह्य तन्यानीते 'उपपदमतिङ्' इत्युपपदसमासे कृते इति भविष्यत्येव किं कल्पनान्तरेण। न च सोपपदाद्धातोस्तृविधानं नास्तीति वाच्यम्। 'हिमवच्छ्रोता आदित्यद्रष्टा' इत्यादिमहाभाष्यकारप्रयोगेषु न समाधानं स्यात्। एवं तर्हि कर्मण्युपपदे 'कर्मण्यण्' इत्यण् प्रसज्येत। ततश्च षडङ्गनिगमाध्येया इति स्यात्। तस्माच्छेषषष्ठीमङ्गीकृत्यानुपपन्नः षडङ्गनिगमाध्येतार इति प्रयोगः। सत्यम्। ज्ञापकाद्भविष्यति समासः। किं ज्ञापकम्। 'जनिकर्तुः' इति। अनेन 'कर्तरि च' इति षष्ठीसमासप्रतिषेधो न नित्य इति ज्ञाप्यत इत्यनित्यत्वं षष्ठीसमासप्रतिषेधस्य मनसि निधाय साधुत्वमङ्गीकृतवानस्य प्रयोगस्य ग्रन्थकृत्। अत एव 'भीष्मः कुरूणां भयशोकहन्ता कालचक्रप्रयोक्तारं' 'सैव सिद्धान्तवेत्ता' इत्यादयो महाकविप्रयोगा उपपन्ना भवन्ति। एवमेव विवाहप्रकरणे 'भवति विवाहविनाशकारकोऽयम्'। इति 'पापौ कर्तरिकारकौ' इति च अत्र विवाहविनाशकारक इति 'कर्तरिकारकौ' इत्यनयोः प्रयोगयोः साधुत्वमिदानीमुक्तम्, पक्षयोर्ज्यायस्त्वात्। 'तत्प्रयोजको हेतुश्च' इति ज्ञापकान्नित्यमङ्गीकृत्य समाधिरङ्गीकार्यः। अत एव 'निजत्रिनेत्रावतरत्वबोधिकाम्' इत्यादिप्रयागोपपत्तिः। यदि तु सम्बन्धमात्रे षष्ठीति मतं तदा

कर्मषष्ठ्याभावादेव 'कर्तरि च' इति निषेधात्सुखेन षष्ठीसमासः । अथवा षडङ्गनिगमध्येतुं शीलं येषां ते इति विगृह्य तच्छीलाधिकारविहितं विधाय गम्यादीनामिष्टिरिति गम्यादेराकृतिगणत्वात् तृनो योगे षष्ठ्यभावाच्च द्वितीयातत्पुरुषसमास इत्यलमतिप्रसङ्गेनेति शिवम् ॥ ८ ॥

पीताम्बरा—ग्रन्थ के रचयिता व पीयूष प्रणेता का संक्षिप्त परिचय—मुहूर्तचिन्तायणि ग्रन्थ की रचना विद्या राजधानी विश्वनाथ नगरी श्री काशी में शकाब्द १५२२ (विक्रम संवत् १६५७) में श्रीराम दैवज्ञ से हुई है।

विदर्भ प्रदेश में नर्मदा समीपवर्ती धर्मपुर (मातृपुर) नामक ग्राम में चिन्तामणि नाम के प्रसिद्ध विद्वान् ब्राह्मण हुए थे। शेपनाग कृत व्याकरण महाभाष्य में इसका गहन अध्ययन था।

ये स्कन्धत्रय ज्यौतिष ग्रन्थों के प्रणेता थे। राजाओं में ये विशेष सम्मानित थे। न्याय-अलङ्कारमीमांसा और वेदान्तादि शास्त्रों में चिन्तामणि नामक आचार्य की प्रतिभा, विशेष व्यापक वैदुष्य की सूचिका थी।

पृथ्वी के विद्वानों में सूर्य प्रतिभ, तत्कालीन दैवज्ञ मण्डलपूजित चरण, सर्व शास्त्रज्ञ विद्वान् चिन्तामणि के पुत्र श्री अनन्त नामक दैवज्ञ भी अपने पिता की परम्परागत प्रतिष्ठा के अनुरूप आचरण से लोक विश्रुत हुए ॥ ८ ॥

अथ क्रमप्राप्तं तातवर्णनं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

ज्योतिर्विद्गणवन्दिताङ्घ्रिकमलस्तत्सूनुरासीत्कृती
नाम्नाऽनन्त इति प्रथामधिगतो भूमण्डलाहस्करः ।
यो रम्यां जनिपद्धतिं समकरोद्दुष्टाशयध्वंसिनीं
टीकां चोत्तमकामधेनुगणितेऽकार्षीत्सतां प्रीतये ॥ ९ ॥

पीयूषधारा—ज्योतिर्विद्गणेऽपि । तत्सूनुस्तस्य चिन्तामणिदैवज्ञस्य सूनु पुत्रोऽनन्त इति नाम्ना प्रथां ख्यातिमधिगतः प्राप्त आसीत् । कीदृश । ज्योतिर्विद्गणवन्दिताङ्घ्रिकमलः ज्योतिर्विदां ज्यौतिपिकाणां यो गणः समूहस्तेन वन्दिते अङ्घ्रिकमले चरणसरोरुहे यस्य तादृशः सकलज्योतिर्विदां ज्योतिःशास्त्राध्ययने एप एवाध्यापक आसीति विख्यातं तन्मानं निगदामि च । दक्षिणोत्तरत्होर्नद्यौ वरणासिश्च पूर्वं जाह्नवी पश्चिमे वापि पाशपाणिर्गणेश्वरः । तस्या अनन्तः स्थितं दिव्यं इत्यर्थः । पुनः कीदृशः । भूमण्डलाऽहस्करः भूमण्डलस्य पृथ्वीमण्डलस्याहस्करः सूर्यः प्रकाशकत्वात् । यथा सूर्यः स्वकिरणैरखिलां पृथ्वीं प्रकाशयति तथा ज्योतिः शास्त्राध्यापनद्वारा पृथिव्याः प्रकाशक इति भावः । पुनः कीदृशः । कृती कुशलः । 'कृती कुशल इत्यपि' इत्यमरः । नानाग्रंथकरणकुशल इत्यर्थः । ग्रन्थकर्तृत्वमेवोत्तरार्धेन प्रकाशयति । यो रम्यामिति । योऽनन्तः जनिपद्धतिं जनिर्जन्म । 'जनुर्जननजन्मानि जनिरुत्पत्तिरुद्भवः' इत्यमरः । तस्य पद्धतिर्मार्गः भावादीनामन्तर्दशान्तर्गणितेन जातकशास्त्रोक्तशुभाशुभफलकालोपदेशप्रतिपादको ग्रन्थो जन्मपद्धतिस्तां समकरोत्सम्यक् चकार । सम्यक्त्वमेवाह-दुष्टेति । कीदृशीं

जनिपद्धतिं दुष्टाशयध्वंसिनीं दुष्टाः जन्मपद्धतिमार्गसम्प्रदायानभिज्ञास्तेषामाशयोऽभिप्रायो युक्त्या वैपरीत्याख्यानं तं ध्वंसितुं शीलं यस्याः सा तादृशीम्। यथा—आद्या दशा चेत्सवितुर्विधोर्वा तदा बलं संस्कृतमेव तस्य' इति श्रीपतिवाक्ये संस्कृतमिष्टकष्टबलान्तरेण गणितमिति जातकालङ्काराख्यटीकाकृता व्याकृतम्। तत्रादिकर्मपद्धतिवाक्यं सम्मतित्वेन दर्शितं—तदुभयमपि चिन्त्यम्। चिन्त्यप्रकारस्त्वनुवादपूर्वकः स्वपद्यैरेवोपनिबद्धः। यथा—"य इष्टकष्टान्तरविघ्नवीर्यद्दशाक्रमं रिष्टमनीष्टभङ्गम्। विचारयन्तीह नमोस्तु तेभ्यः श्रीश्रीधरोक्तं बहुसम्मतं सत्॥ यस्येष्टकष्टे सदृशे भवेतां तदन्तरघ्नं बलमेव शून्यम्। यदा तदासौ बलवान् प्रवीर्यो वेत्थं विचिन्त्यं भुवनोचितं हि। यतः शुभ वाप्यशुभं ग्रहस्य वीर्यं सहैवास्ति न तस्य हानिः। तस्मान्न नाशो विवरेऽनयोस्तु द्वैधं फलाप्त्यै न दशाक्रमादौ" इति॥ एवमन्येषु स्थलेषु दुष्टाशयनिराकरणं कृतिमिति। अतः रम्यां दोषापाकरणेनातिसुन्दरीम्। यथान्योपि राजादिः पद्धतिं मार्गं चौरादिदुष्टनिराकरणेनातिसुन्दरं करोतीति ध्वनिः। किं च यः उत्तमकामधेनुगणिते उत्तममल्पक्लेशेन ब्रह्मार्यभटपक्षीयपञ्चांगानयनप्रतिपादकं यत्कामधेनुनामकं गणितशास्त्रं तत्र टीकां तदभिप्रायविवृतिमकार्षीत्। किमर्थम्। सतां गणितशास्त्राभिज्ञानां प्रीतये तुष्टचै अनेनास्यानेकग्रंथकरणप्रयासकर्तृत्वं न स्वार्थमत्यल्पायासेन दृढतरज्जोतिःशास्त्राभिज्ञत्वात्, किंतु सुतुष्टचर्थमेव। यावत्स्वीयशास्त्राभ्यासो ग्रंथकरणद्वारा न प्रकाश्यते तावत्सकलसंतुष्टिर्न भवतीत्यनेकग्रंथकरणप्रयास इति सूचितम्। कृतीत्यत्र "अत इनि ठनौ" इतीनिः। "ननु एकाक्षरात्कृतो जातेः सप्तम्या च न तौ स्मृतौ" इत्युक्तेः कृतशब्दस्य कृदंतत्वात्कथमत्रेनिः। उच्यते। नायं समुच्चयः कृतो जातेश्चेति। किं तर्हि जातिविशेषणं कृद्ग्रहणं कृद्योगे जातिरिति। एवं च कार्यी कार्यिकः तांडुलिक इत्यपि सिद्धचति। तेन व्याघ्रवानित्यादावेवेनिठनोर्निषेधो नान्यत्रेति महाभाष्यकारेणैवं वार्तिकव्याख्यानाद्भवत्येवात्रेनिः। अहस्कर इत्यत्र 'दिवाविभानिशा' इत्यादिना कर्मण्यणो बाधकष्टप्रत्ययः। समकरोदित्यत्र 'डुकृञ् करणे' इत्यस्मात्संपूर्वात् "अनद्यतने लङ्" इति लङ्। अकार्षीदित्यत्र—तस्मादेवानिटी लुङि च्लेः सिच् "सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु" इति वृद्धिः "उरण् रपरः" इति रपरत्वम्॥ ९॥

पीताम्बरा—अनन्त दैवज्ञ ने फलित ज्यौतिष पर अश्रद्धा पैदा करने वाले विद्वानों के विपरीत आशयों की मूलोच्छेदिका रमणीय जन्म पद्धति, की रचना के साथ साथ ब्रह्म सिद्धान्त और आर्य सिद्धान्त मतों के अनुसार पञ्चाङ्ग, निर्माण की कामधेनु नाम की गणित शास्त्र पद्धति का भी निर्माण कर पञ्चाङ्ग गणितीय विद्वानों और ज्यौतिष जगत् को आजतक के लिए और भविष्य के लिए भी प्रसन्न किया है॥ ९॥

अथ स्वनामकथनपूर्वकं मंगलं सूचयन् मूहूर्तचिंतामणिनामकज्यौतिषग्रंथसमाप्तिं पृथ्वीछन्दसाह—

तदात्मज उदारधीर्विबुधनीलकण्ठानुजो
गणेशपदपङ्कजं हृदि निधाय रामाभिधः।
गिरीशनगरे वरे भुजभुजेषुचन्द्रेमिते
शके विनिरमादिमं खलु मुहूर्त्तचिन्तामणिम्॥ १०॥

इति श्रीदैवज्ञानन्तसुतदैवज्ञरामविरचिते मुहूर्त्तचिन्तामणौ त्रयोदशं गृहप्रवेशप्रकरणं समाप्तम् ।

समाप्तोऽयं मुहूर्त्तचिन्तामणिः ।

पीयूषधारा—तदात्मज इति । तदात्मजस्तस्याऽनंतज्योतिविद आत्मजः पुत्रो रामाभिधो रामसंज्ञकः गिरीशनगरे वरे गिरीशो महादेवस्तस्य नगरे वाराणस्याख्ये मुहूर्त्तचिंतामणिनामकं ज्यौतिषग्रंथमिमं प्रत्यक्षदृश्यं विनिरमात् अकार्षीत् । खलुशब्दो वाक्यालंकारे । कीदृशो रामाभिधः । उदारधीः उदारा अनेकशिष्यविद्यादिदानकारिका धीर्बुद्धिर्यस्यासौ तथा पाठिता-नेकशिष्य इत्यर्थः । पुनः कीदृशः । विबुधनीलकंठानुजः विबुधः ज्यौतिषव्याकरणाद्यनेकविद्यायां पंडितो यो नीलकंठस्तस्यानुजो लघुभ्राता । किं कृत्वा गणेशस्य स्वकुलोपास्यमहागणपतेः पदपंकजं चरणकमलं, जात्यभिप्रायेणैकवचनं, गणेशपदपंकजे इत्यर्थः । ते ह्यन्तःकरणे निधाय "मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि शास्त्राणि प्रथंत वीरपुरुषकाण्यायुष्मत्पुरुषकाणि च" इति महाभाष्यकारोक्तेश्च । कस्मिन् गिरीशनगरे । कीदृशे वरे मोक्षदातृत्वेन श्रेष्ठे ।

काशीक्षेत्रस्यैव मोक्षदत्वम्—

यद्यपि—"अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका । पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः" इति वाक्यान्मोक्षरूपफलप्रदत्वेनायोध्यादीनां नगरीणां साम्यमेव प्रतीयते । तथापि—"अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि वै । काशीं प्राप्य विमुच्येत नान्यथा तीर्थकोटिभिः" इति वाराणस्या विशिष्य मुक्तिपदत्वेनाभिधानाच्छ्रैष्ठ्यं वाराणस्याः ।

ननु—'अयोध्या मथुरा माया' इत्यादिवाक्यस्य, अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि इत्यस्य च व्यासप्रणीतत्वसाम्यादेकस्य साम्यापादकस्य काशीमुक्तिदप्रावचनस्याप्रामाण्यं प्रतिभाति । उच्यते । अयोध्यादीनि तीर्थानि सम्यग्ज्ञानोत्पादनद्वारेण सालोक्यमुक्तिप्रदानि । अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि' इति मुक्तिपदापादोनात्पुनर्गर्भवासं च प्रयच्छंति । काशी तु सर्वथा ज्ञानादज्ञानाद्वा येनकेनाप्युपायेन वा मरणाऽनन्तरं मुक्तिमेव प्रयच्छति न पुनर्गर्भवासम् । तदुक्तं पद्मपुराणे तीर्थान्तराणि क्षेत्राणि विष्णुभक्तिश्च नारद । अंतःकरणसंशुद्धिं जनयंति न संशयः ॥ वाराण-स्यपि देवर्षे तादृश्येव परंच सा । प्रकाशयति ब्रह्मैक्यं तारकस्योपदेशतः" काशीखण्डे—"अवि-मुक्तिरहस्यज्ञा मुच्यन्ते ज्ञानिनो नराः । अज्ञानिनोपि तिर्यञ्चो मुच्यन्ते हि सकल्मषाः" इति । अत एव वाराणस्याः श्रैष्ठ्यम् । एतदप्यभिहितं पद्मपुराणे—"नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गंगाद्वारे च पुष्करे । स्नानात्संसेवनाद्वापि न मोक्षः प्राप्यते नरैः । इदं संप्राप्यते येन तत एव विशिष्यते" इह काश्याम् । किं च काश्यां मरणे कालकृतोपि विशेषो नास्ति । उक्तं च काशीखण्डे—"उत्तरं दक्षिणं वापि अयनं न विचारयेत् । सर्वोप्यस्य शुभः कालो ह्यविमुक्ते प्रिये यतः ॥ इति । देशविशेषापेक्षाप्यत्र नास्तीत्युक्तं सनत्कुमारसंहितायाम्—"रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चांडाल-वेश्मन्यथवा श्मशाने । कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभतेऽत्र मोक्षम्" इति ।

काश्यामन्तरिक्षमरणादिदोषाभावः—

अन्यच्च तीर्थान्तरे अंतरिक्षादिमरणदोषोऽस्ति सोप्यत्र नास्ति । तद्वत—"भूमौ जलेन्तरिक्षे वा यत्र क्वापि मृतो द्विजः । ब्रह्मैकत्वामवाप्नोति काशी शक्तिरूपाहिता ॥" इति ।

काश्यां दुर्मरणदोषाभावः—

नाप्यत्र दुर्मरणदोषोस्ति । तदुक्तं पद्मपुराणे–सूच्यग्रमात्रमपि नास्ति ममास्पदेऽस्मिन् स्थानं सुरैश्च विमृतस्य न यत्र मुक्तिः । भूमौ जले वियति वा भुवि मध्यतो वा सर्पाग्निदस्युप-विभिर्निहतस्य जंतोः ।।" इति । पविर्वज्रम् । 'वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः 'इत्यमर-कोशोक्तेः । अत एव ब्रह्मवैवर्ते प्रश्नप्रतिवचनाभ्यां वाराणस्यां विशेषोऽभिहितः । यथा "जिते-न्द्रियाः पापविवर्जिताश्च शांता महांतो मधुसूदनाश्रयाः । अन्येषु तीर्थेष्वपि मुक्तिभाजो भवंति काश्यामपि को विशेषः ।।" इति दीपकप्रश्ने गुरुणोत्तरितं—"विशेषं शृणु वक्ष्यामि काश्याः कथयतो मम । कृतानि साधनान्यत्र स्वल्पान्यपि महामते ।। भवंति काशीमाहात्म्यात्सिद्धान्येव न संशयः । अन्यत्र साधुसुकृतैः कृतैर्मुच्येत वा न वा । अत्र साधनवैकल्ये काशी पूर्णं प्रकल्पयेत् ।।" इति ।

काश्यां साधनसंपत्त्यभावेऽपि मुक्तिः—

अयं भावः । साधनसंपत्तिमतामधिकारिणां काश्यतिरिक्तेपि क्षेत्रे मुक्तिः । काश्यां त्वन्येषामपीति । अत एवोक्तं काशीखण्डे—"संसारभयभीता ये ये बद्धाः कर्मबंधनैः । येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ।। श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचारविवर्जिताः । येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः" इत्याद्यनेकैः पद्यैः काश्या महत्त्वमुक्तम् ।

अर्थवादत्वमस्येति वादिपाषण्डनिन्दा—

अत्राऽर्थे येर्थवादमाहुस्ते नास्तिका मंतव्या । तदुक्तं काशीखण्डे—"यत्र विश्वेश्वरो देवः साक्षात्स्वर्गतरंगिणी । मिथ्या तत्रानुसूयंते तार्किकाश्चानुसूयकाः ।। उदाहरंति ये मूढाः कुतर्क-बलदर्पिताः । काश्यां सर्वार्थवादोयं ते विट्कीटा युगेयुगे ।।" विट् विष्ठा । अत एव ब्रह्मवैवर्ते– 'मा जानीह्यर्थवादत्वं काश्यां मुक्तिविनिर्णये" इति । तस्मात्सर्वस्यापि काश्यां मरणान्मुक्तिररिति सिद्धम् । काशीखंडेपि—"ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः । कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः । कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः । कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये ।। चंद्रार्धमौलयः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः ।।' इति । यथा—"अकामो वा सकामो वा तिर्यग्योनिगतोपि वा । अविमुक्ते त्यजन्प्राणान्मम लोके महीयते ।।" इति ।

काश्यां चतुर्विधमुक्तिप्राप्तिः कालभेदात्—

अन्यच्च मरणानंतरं सालोक्यादिचतुर्विधमुक्तिरपि क्रमेण भवति न पुनर्गर्भवासः तदुक्तं पद्मपुराणे—"काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात्प्राप्नोति सत्तमः । ततः सरूपतां याति ततः सान्नि-ध्यमश्नुते ।। ततो ब्रह्मैकतां याति न परावर्त्तते पुनः ।।" इति । सालोक्यं शिवलोकवासित्वम् । सरूपतां शिवतुल्यरूपताम् । सान्निध्यं शिवसामीप्यम् । ब्रह्मैकतां शिवाभेदताम् एतद्व्यवस्थापि तत्रैव—"सालोकतां च सारूप्यं सान्निध्यं वापि सत्तमाः । कल्पं कल्पमवाप्नोति ततो ब्रह्मात्मको भवेत् ।।" इति ।

काशीवाराणस्यविमुक्तयन्तर्गृहाख्यक्षेत्रचतुष्टयं क्रमेणेति मतान्तरम्—

अन्ये तु क्षेत्रभेदेन सालोक्यादिमुक्तितारतम्यम् । एतदप्युक्तं ब्रह्मपुराणे—"चतुर्विधेऽपि

क्षेत्रेऽस्मिन्प्रमीतो गर्भयातनाम् । नैवाप्नोति मुनिश्रेष्ठ विशेषोऽयं ब्रवीमि वः ।।'' इति तत्र काश्यात्मके क्षेत्रे सारूप्यमुक्तिः । वाराणस्यात्मके क्षेत्रे सारूप्यमुक्तिः अविमुक्तात्मके क्षेत्रे सान्निध्य मुक्तिः । अन्तर्गृहात्मके क्षेत्रे कैवल्यमुक्तिः । उक्तं च पद्मपुराणे—''चतुर्धा वितते क्षेत्रे सर्वत्र भगवाञ्छिवः । व्याचष्टे तारकं वाक्यं ब्रह्मात्मैक्यप्रबोधकम् । काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात्प्राप्नोति सत्तमः । वाराणस्यां मृतो जन्तुः साक्षात्सारूप्यमश्नुते । अविमुक्ते विपन्नस्तु साक्षात्सान्निध्यमाप्नुयात् । अन्तर्गृहे विपन्नस्तु साक्षात्कैवल्यमाप्नुयात् ।।'' इति । केवलस्य भावः कैवल्यं शिवतादात्म्यं प्राप्नुयात्साक्षाच्छिवस्वरूप एव व भवतीत्यर्थः ।

काश्यादिक्षेत्रपरिमाणानि—

काश्यादिक्षेत्रपरिमाणानि पद्मपुराणीयपातालखंडे—''परिमाणं च वक्ष्यामि तन्निबोधत सत्तमाः । मध्यमेश्वरमारभ्य यावद्देहलिविघ्नपम् । सूत्रं संस्थाप्य तद्दिक्षु भ्रमयेन्मंडलाकृति । तत्र या जायते रेखा यन्मध्यक्षेत्रमुत्तमम् । काशीति यद्विदुर्वेदास्तत्र मुक्तिः प्रतिष्ठिता । काश्यन्तं परमं क्षेत्रं विशेषफलसाधकम् ।। वाराणसीति विख्यातं तन्मानं निगदामि वः । दक्षिणोत्तरयोर्नद्यौ वरणासिश्च पूर्वतः ।। जाह्नवी पश्चिमे वापि पाशपाणिर्गणेश्वरः । तस्या अन्तःस्थितं दिव्यं विशेषफलसाधनम् ।। अविमुक्तमिति ख्यातं तन्मानं च ब्रवीमि वः । विश्वेश्वराच्चतुर्दिक्षु धनुःशतयुगोन्मितम् ।। अविमुक्ताभिधं क्षेत्रं मुक्तिस्तत्र न संशयः ।। गोकर्णेशः पश्चिमे पूर्वतश्च गङ्गामध्यं ह्युत्तरे भारभूतः । ब्रह्मेशानो दक्षिणे संप्रदिष्टस्तत्तु प्रोक्तं भवनं विश्वभर्तुः'' ।। इति । काशीपरिमाणवाक्ये मुक्तिपदं सालोक्यमुक्तिपरम्, अविमुक्तपरिमाणवाक्ये मुक्तिपदं सान्निध्यमुक्तिपरम् । पूर्वाभिहितवाक्यैकवाक्यताबलात् । अस्याः वाराणस्याः । धनुश्चतुश्चतुर्हस्तमितम् । एवं सति विश्वेश्वरस्थानाच्चतुर्दिक्ष्वष्टशतहस्तमित्यर्थः । विश्वभर्तुर्भवनमन्तर्गृहम् । ततश्च यथायथा मुक्तीनां सालोक्यसारूप्यसान्निध्यकैवल्याख्यानां पूर्वपूर्वापेक्षयोत्कृष्टत्वं तथा तथा काशीवाराणस्यविमुक्तान्तर्गृहाख्यानां चतुःक्षेत्राणां पूर्वपूर्वान्तर्भाविपूर्वापेक्षया न्यूनं परिमाणमिति संपिडितोऽर्थः । तस्मात्सर्वथा मथुरादिमुक्तिपुर्यपेक्षया काशी श्रेष्ठेति सिद्धमित्यास्तां प्रसक्ताऽनुप्रसक्त्या ।

एतद्ग्रन्थोत्पत्तिकालः शकाशब्दार्थश्च—

ननु कस्मिन्कालेऽयं ग्रन्थः कृत इत्यत आह—भुजेति । भुजौ द्वौ । पुनरपि भुजौ द्वौ इषवः पञ्च चन्द्र एको भुजभुजेषुचन्द्राः तैः । कोऽर्थः 'अङ्कानां वामतो गतिः' इति दैवज्ञसंप्रदायागतवाक्याद्द्वाविंशत्यधिकपञ्चदशशती तया मिते गणिते शके । शकाः यवनास्तेषां स्वामी लक्षणया शकशब्देनोच्यते । तत्रापि लक्षणया शकशब्देनैतद्राज्यप्राप्तिगमनाद्गतवर्षाणि प्रोच्यन्ते । एवं सति लक्षितलक्षणया लोकव्यवहारमूलभूतोयमर्थो लभ्यते । तत्र निखिलभूपालचूडामणेः श्रीशालिवाहननृपस्य राज्याप्तिस्तु इदानीतनादष्टाविंशतिकलियुगादेकोनाशीत्यधिकैकत्रिशञ्छतीपरिमिते गते काले ३१७९ जाता । तत आरभ्य शालिवाहननृपशकप्रवृत्तिः उक्तं च भास्वत्यां—''नवाद्रींदुकृशानु—३१७९ युक्तः कलेर्भवत्यब्दगणस्तु वृत्तः'' इति स च शालिवाहननृपशककालो ग्रन्थकरणसमये द्वाविंशत्यधिकपञ्चदशशति १५२२

मितो गतोऽभूत् । अत एतावत्संख्याके शककाले व्यतिक्रान्ते सति रामज्योतिर्विन्मुहूर्तचिन्तामणिनामकं ज्यौतिषग्रन्थं व्यधादित्यर्थं इति । शिवम् ॥ १० ॥

पीताम्बरा—स्वनामधन्य अनन्त दैवज्ञ के ज्येष्ठ (प्रथम) पुत्र प्रसिद्ध श्री नीलकन्ठ दैवज्ञ थे । द्वितीय पुत्र श्री राम नामक प्रसिद्ध ज्योतिर्वेत्ता थे जो श्री नीलकण्ठ दैवज्ञ के अनुज भी थे । भारत राष्ट्र के झोपड़ी से महलों तक में श्री राम दैवज्ञ का यह मुहूर्त चिन्तामणि ग्रन्थ आज भी प्रसिद्धि पा रहा है । स्कन्धत्रय ज्यौतिष की मुहूर्त शाखा का यही एक सर्वश्रेष्ठ पुष्प और सुन्दर सुपक्व फल है । जिसका रसस्वाद करते रहने से रस की क्षति नहीं अपि च निरन्तर रस की वृद्धि होती रहती है । यह ग्रन्थ एक शाश्वत रस है । मेरी प्रज्ञा इसे 'रसो वै सः', यही रस है (कहने में उत्तरोत्तर अग्रसरित होती है) विकसित होती है, और परमानन्द की एक आणविक अनुभूति भी मानता है ॥ १० ॥

ग्रन्थकृद्वंशवर्णनं गद्येनोपसंहरन्मुहूर्तचिन्तामणिनामकज्योतिर्ग्रन्थसमाप्तिं करोति । इति श्रीदैवज्ञेति । स्पष्टार्थम् ।

पीयूषधाराटीकाकर्तुर्वंशवर्णनम्

कीर्त्या विद्योतिताशो द्रविणवितरणैरर्थिनां पूरिताशो ज्योतिर्विद्वृन्दवंद्यो निखिलवसुमतीमण्डलाखण्डलेज्यः । दर्भाग्रप्रख्यबुद्धिर्द्विजकुलकोऽभूद्विदर्भाख्यदेशे ज्योतिःशास्त्रारविन्दप्रविकसनरविविन्दुचिन्तामणिः सः ॥ १ ॥ तस्यात्मजोऽभवदनन्त उमातनूजपादारविंदमकरंदमधुव्रतायुः । ज्योतिर्नयत्रिनयनेन हठादवाप येन त्रिकालविदुषा खलु भर्गभावः ॥ २ ॥

तत्सूनुर्नीलकण्ठः कृतिपरिकलनाऽकुण्ठितप्रौढबुद्धिर्ज्योतिः शास्त्रैकसिंधोर्घटनयिघटनासर्गधाता बभूव । यत्प्रोक्तं ग्रन्थसिन्धुच्छलदमलकणाकर्णनेनापि लोको गर्गाचार्याद्धि यस्मिन्रचयति जगति प्रौढभावं नितान्तम् ॥ ३ ॥ रामोऽनुजस्तस्य बभूव काश्यां यत्प्रोक्तसुज्योतिषजान्निबन्धान् । निपीय सौहित्यमुपेत्य सद्यः सुधा मुधा विन्दति विदुवृन्दम् ॥ ४ ॥

पीयूषधाराटीकोत्पत्तिकालवर्णनम्—

श्रीमद्भूपतिशालिवाहनशके चन्द्रांकशक्रै १४९१–मिते मासीषेऽपरपक्षगे नग—७ तिथौ तिग्मांशुवारेदितौ । धर्मज्यौतिषशास्त्रपाणिनिमहाशास्त्रादिपारंगमात्संभूतः खलु नीलकण्ठविदुषो गोविन्दनामा सुतः ॥ १ ॥ शाके १ तत्त्वतिथीमिते १५२५ युगगुणाब्दे ३४ नीलकण्ठात्मभूर्दग्धाब्धि निखिलार्थयुक्तममलं मौहूर्त चिन्तामणिम् । काश्यां वाक्यविचारमन्दरनगेनामथ्यलेखप्रियां गौविन्दो विधिविद्वरोऽतिविमलां पीयूषधारां व्यधात् ॥ २ ॥

इति श्रीमद्दैवज्ञमुकुटालङ्कारनीलकण्ठज्योतिर्वित्पुत्रगोविन्दज्योतिर्विद्विरचितायां-
मुहूर्त चिन्तामणिटीकायां पीयूषधाराभिधायां
गृहप्रवेशप्रकरणं समाप्तम् ॥

समाप्तश्चायं मुहूर्त चिन्तामणिः पीयूषधाराटीकासमेतः ॥

पीयूषधारा रचयिता श्री दैवज्ञ, शकाब्द १४९१ (विक्रम सं० १६२६) के आश्विन मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि रविवार के दिन श्री नीलकण्ठात्मज श्री गोविन्द दैवज्ञ का जन्म हुआ था।

अपनी कुलपरम्परागत समग्र विद्याओं के अध्ययन के अनन्तर अपनी अवस्था के ३४वें वर्ष के शके १५२५ में (विक्रम सं० १६६०) श्री वाराणसी में, श्री गोविन्द दैवज्ञ ने अपने पितृव्य श्री राम दैवज्ञ प्रदत्त मुहूर्त्त चिन्तामणि का रसास्वादन किया। इस ग्रन्थ की अनन्त रसधाराओं की एक धारा श्री गोविन्द गणक की जिह्वा पर भी लग गई। इस रसस्वाद पान से श्री गोविन्द ने मुहूर्त चिन्तामणि की पीयूषधारा टीका के निर्माण से अपने पितृव्य की उक्त कृति और भी अमर कर दी कि मुहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थ की पीयूषधारा टीका का नाम भी सार्थक हो गया। आज भी जिसका रसास्वादन सभी पाठकों की जिह्वा में है। जिनसे और सर्वसाधारण जनता का भी लाभ हो रहा है। और निरन्तर भविष्य में होता रहेगा।

पीयूष उपसंहार की काशी क्षेत्र महिमा आदिक विचार भूमिका में देखिए।

इति कूर्मपृष्ठीय अल्मोड़ा मण्डलान्तर्गत जुनायल ग्रामस्थ स्व० पं० हरिदत्त-
ज्योतिर्विदात्मज पर्वतीय श्री केदारदत्त जोशी कृत (वर्त्तमान नगवा
(नलगाँव) हरि-हर्ष निकेतन १।२८) मुहूर्तचिन्ता-
मणि ग्रन्थ की १३ वें गृहप्रवेश
प्रकरण की पीयूषधारा टीका
की पीताम्बरा हिन्दी
व्याख्या सम्पन्न ॥ १३ ॥

मुहूर्तचिन्तामणिः

किसी भी शुभ कार्य का आरम्भ करने के लिये इष्ट मुहूर्त का ज्ञान होना आवश्यक है। इस दिशा में श्रीराम दैवज्ञ (ई० १५५०) की प्रस्तुत कृति मुहूर्तचिन्तामणि और इस पर आचार्य गोविन्द की पीयूषधारा अतीव उपयोगी सिद्ध हुई है।

इस ग्रन्थ में तेरह प्रकरण हैं: (१) शुभाशुभ, (२) नक्षत्र, (३) संक्रान्ति, (४) गोचर, (५) संस्कार, (६) विवाह, (७) वधू-प्रवेश, (८) द्विरागमन, (९) अग्न्याधान, (१०) राजाभिषेक, (११) यात्रा, (१२) वास्तु, (१३) गृह-प्रवेश।

इन तेरह प्रकरणों में तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, लग्न सम्बन्धी विचारों के, गर्भाधान, नामकरण, उपनयनादि संस्कारों के, गृहारम्भ, गृह-प्रवेश, देश-विदेश यात्रा, राजाभिषेक, अभियान आदि के लिये शुभ मुहूर्त देखने की विधि बतलाई गई है।

किन्तु मूल और पीयूष टीका संस्कृत में हैं और कहीं-कहीं दोनों दुर्बोध हो गये हैं। अतः मूल और संस्कृत व्याख्या के साथ-साथ ज्योतिष-शिरोमणि पंडित केदारदत्त जोशी-कृत पीताम्बरा हिन्दी व्याख्या भी जोड़ दी गई है। गूढ़ एवं दुर्बोध स्थलों को समझाने के लिए चक्र दे दिये गए हैं जिससे सूक्ष्म एवं गम्भीर ज्योतिष विषय अधिक सरल और सुबोध हो गया है।
